भगवान् पार्श्वनाथ ध्यान में खडे हैं

भगवान्

श्री केसरियानाथ बाबा

Shree Gyan-Gun Pushpa Mala. Pushpa No 35

Shreemad Ratnaprabh Sooriswar Padkamlebhyo Namah

Shree

Bhagwan Parshwanath ki Parampara ka Itihas

POORVARDH

[VOL II]

Author

Sheeghra-bodhaditatvik, Kakabateesi Adhyatma, Panch pratikramanadi vidhi vidhan, Vyakhya vilasadi updesheek, Samajsudhar vishaya Kagad Hundi Peth Per-peth or Mejharnama stavnadi bhakti vishaya, Pratima chattisee, Dan chattisee, Dayabahutari, Charcha Etihasik vishaya, Murti Puja ka Pracheen Itihas, Lonkashah, Jain Jati Mahodaya ya Samsinghadi vividh vishaya ke

235

Granthon ke Lekhak va Sampadak

Itihas Premi Muni Shree Gyan Sunderji Maharaj

Prakashak

Shree Ratnaprabhakar Gyan Pushpa Mala
PHALODI (Marwar)

OSWAL SAMVAT 2400

Veer Samvat 2469 [V Samvat 2000] Iswi Samvat 1943

First Edition 500

[卐 卐 卐 卐 卐]

Cost of complete set Rs 31
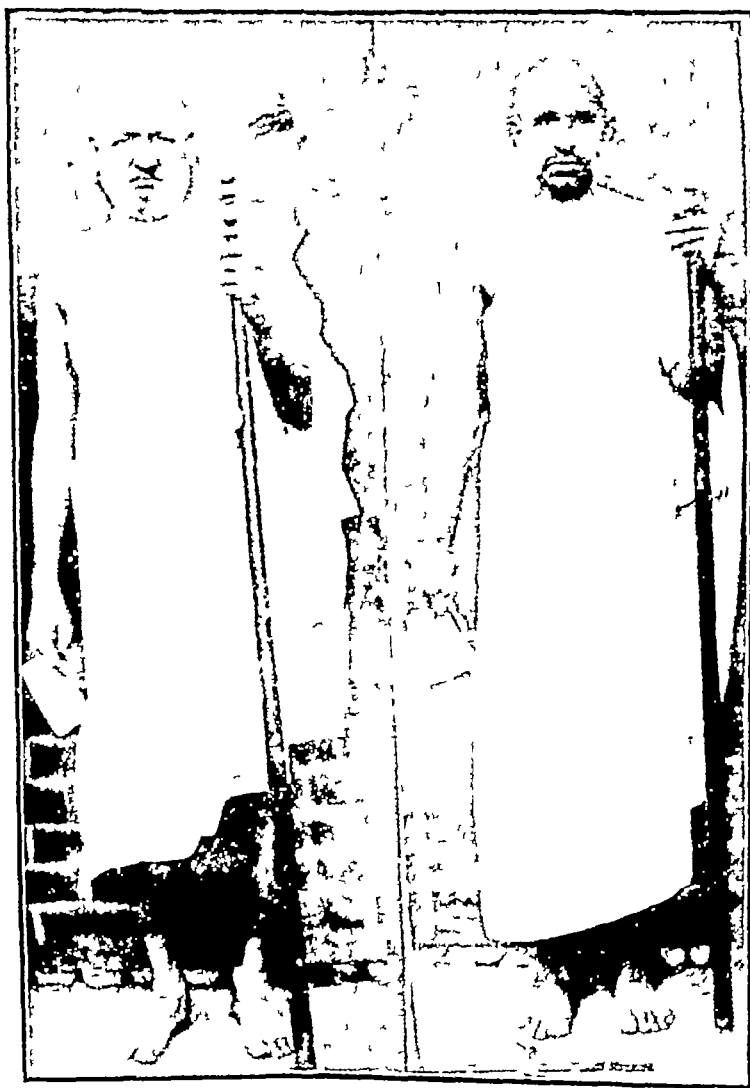
मुनीश्रीज्ञानसुन्दरजी म० ❀ मुनिश्रीगुणसुन्दरजी म०

सेठ शकरलालजी मुनौयत

—व्यावर—

२७—आचार्य यक्षदेवसूरि (पांचवा)

भूर्याख्यान्वयभूषणं सुचरितः सूरिस्तु यक्षोत्तरः ।
देवो दीर्घतयाः प्रभावमहितो नित्यं स्वधर्मे रतः ॥
तेनैवेय मिहागमज्जनतया सार्क सुभूपेन्द्रता ।
सेवायां स हि वन्दनीय चरितः कल्याणकारी प्रभुः ॥

आचार्य यक्षदेवसूरीश्वर एक यक्षपूजित महान प्रतिभाशाली धुरंधर विद्वान और योग विद्या में निपुण आचार्य हुये । पट्टावलीकारों ने आपके जीवन के विषय में बहुत विस्तार से वर्णन किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैं यहाँ आपका पुनीव जीवन संक्षिप्त से ही लिखता हूँ ।

सिन्ध देश में धन धान्यपूर्ण वीरपुर नाम का नगर था वहाँ पर उपकेशवंशी भूरि गोत्रिय शाह गोशल नाम का धनकुबेर सेठ बसता था । शाह गोसल के पूर्वज पाचवों पुश्त लल्ल नाम का पुरुष हुआ और किसी कारण से वह उपकेशपुर का त्याग कर सिन्ध में आया और वीरपुर को अपना निवास स्थान बनाया । शाह लल्ल ने अपने आत्मकल्याण के लिये वीरपुर में भगवान पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनाया था । उस जमाने में यह तो एक जैनों की पद्धति ही बन गई थी कि जहाँ जाकर वे वसते वहाँ अपने मकान के पहिले जैन मंदिर की नींव डालते । शाह लल्ल के इतने पुण्य बढ़ गये कि एक ओर तो परिवार बढ़ता रहा तब दूसरी ओर धन भी बढता गया । गोसल के समय भूरि गोत्रिय शाह लल्ल की संतान में परिवार सम्पन्न और धन धान्य से समृद्ध एक सौ घर होगये थे । शाह गोशल के दो स्त्रियां थीं, एक उपकेशवंश की जिसका नाम जिनदासी था तब दूसरी क्षत्रिय वंश की जिसका नाम राहुली था गोशल की वीरता एव कार्यकुशलता से वहाँ का राव कोक ने गोसल को मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया । शाह गोशल की जिनदासी स्त्री के सात पुत्र और दो पुत्रियें थीं तब राहुली के चार पुत्र थे जिसमें धरण नामक पुत्र एक विलक्षण ही था अर्थात् उसका तप तेज पराक्रम सब क्षत्रियोचित ही था । धारण एक समय किसी विवाह प्रसग पर अपने मामाल गया था । वहाँ कई भाई और कई सगा सम्बन्धी एकत्र हुए थे और राजपूतों का भोजन मांस मदिरा की मनुहारो हो रही थी । किसी ने धारण को भी इस कार्य्य में शामिल होने को कहा पर धारण के तो सस्कार ही ऐसे जमे हुये थे कि वह इन अभक्ष्य पदार्थों से घृणा करता था । धारण ने कहा कि यह मनुष्यों का नहीं पर राक्षसों का भक्ष्य है । बड़ी शरम की बात है कि राजपूत जैसी पवित्र एव उच्च जाति कि जिस वश में चौबीस तीर्थंकर एवं भगवान् रामचन्द्र श्रीकृष्ण पाण्डव वगैरह महापुरुषों ने अवतार लेकर दुनिया में अहिंसा धर्म का प्रचार किया जिनका उज्ज्वल यश बड़े बड़े ऋषि मुनि गा रहे हैं । बड़ी लज्जा की बात है कि उनकी सतान आज निर्दयतापूर्वक विचारे मूक प्राणियों के कोमल कंठ पर छुरे चलाकर अर्थात् उनका मास भक्षण करने में खुशी मना रही है । पर याद रक्खो इसका फल सिवाय नरक के और क्या हो सकेगा इत्यादि खूब फटकारा ।

किसी ने कहा क्यों वरख तू तो वाणिया है, मांस खाकर तेरे जैसा संग्राम में जाना है तू तो अपनी दुकान पर बैठकर नमक मिरच तोला कर।

वरख ने कहा यह आपकी भ्रान्ति है कि मांस खाने वाला ही संग्राम कर सकता है पर अमांसभोजी में कितनी ताकत होती है वह आपको मालूम नहीं है यदि किसी को परीक्षा करनी हो तो मेरे सामने आइये फिर आपको मालूम हो जायगा कि ताकत मांस भक्षी में ज्यादा है या अमांस भोजी में। वरख था बाल ब्रह्मचारी उसके चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज झलक रहा था किसी की ताकत नहीं हुई कि वरख के सामने आकर खड़ा हो।

किसी ने कहा वरख तेरे अन्दर कितनी ही ताकत क्यों न हो पर आखिर वह तेल लूण तोलने में ही काम आवेगी। न कि राज करने में ?

वरख ने कहा कि क्या अमांस भोजी राज नहीं कर सकता है देखिये शिवकार, हमरेल, चन्द्रपुर फतेपुर, चम्पावती, शिवपुरी, कोरंटपुर, पद्मावती, आदि के जब राजा अमांसभोजी होते हुये भी वे बड़ी वीरता से राज करते हैं और कई बार संग्राम में मांस भक्षियों को इस प्रकार पराजय किये हैं कि दूसरी बार उन्होंने कभी ऐसा साहस ही नहीं किया कि अमांस भोजियों के सामने आकर खड़े हो। दूसरे राज करना कोई बड़ी भारी बात है परन्तु हमारा धर्म सिद्धान्त तो राज करने के बजाय राज त्यागने में अधिक गौरव समझता है। और पूर्व जमाने में बड़े बड़े चक्रवर्ती राजाओं ने राज्य त्याग करने में ही अपना गौरव एवं कल्याण समझा है। भाइयो ! त्याग कोई साधारण बात नहीं है एवं त्याग करना कोई कायरों का काम भी नहीं है। त्याग में बड़ी भारी वीरता रही हुई है और वीर होगा वही त्याग कर सकता है पर जो इन्द्रियों के गुलाम और विषय के कीड़े बन चुके हैं वे त्याग के महत्व को नहीं समझते हैं जैसे एक ग्रामीण मौक्तिक रत्न के गुण को नहीं समझता है इत्यादि वरख ने उन मांस भक्षियों को ऐसे आड़े हाथों लिया कि उनके सामने किसी ने चूं तक भी नहीं की। वरख ने अपनी कुशलता से कई मांस भक्षियों को मांस का त्याग करवा कर अहिंसा भगवती के उपासक बना दिये। अतः इस कार्य में वरख की रुचि बढ़ गई और उसने यथा शक्ति इसका ही प्रचार करता।

वरख आनन्द से अपने घर पर आया पर उसके दिल में यही बात खटक रही थी कि मैं एक छोटा सा राज स्थापन कर यहाँ का राज लेलूं पर यह कार्य कोई साधारण नहीं था कि जिसको वरख आसानी से कर सके। फिर भी वरख के दिल में इस काम के लिये लग्नी लगन थी।

पहिले जमाने में राज छोटे २ हिस्सों में विभक्त थे और वे वे निर्जीवक कि छोटे छोटे कारणों से एक दूसरे के साथ लड़ाइयें किया करते थे। कभी कभी विदेशियों के आक्रमण भी हुआ करते थे। एक दिन वीरपुर पर भी एक सेना ने आकर आक्रमण किया उस समय वारख का पिता लोसल यहाँ का मंत्री था। उसने अपनी ओर से लड़ाई की तैयारियें की जिसमें वरख भी सम्मिलित हुआ केवल सम्मिलित ही नहीं पर वरख को सेनापति बनने को तैयार हो गया। राजा लोगों के मन में शंका हो रही थी कि यह महाजन (बणिया) क्या करेगा ? परन्तु वरख ने अच्छा विश्वास दिला दिया। अतः सेनापति पद वारख को दिया गया। बस, फिर तो था ही क्या, पहिले दिन की लड़ाई में वरख की विजय हुई। अतः वरख का उत्साह खूब बढ़ गया दूसरे दिन जोर से युद्ध हुआ और तीसरे दिन के संग्राम में दुश्मन की सेना को भगा दिया

और उनका सामान भी छीन लिया। अतः राजा ने धरण की वीरता देख ७ ग्राम उनको विजय के उपलक्ष में इनायत कर दिये।

अब तो धरण सात ग्राम का जागीरदार बन गया और अपनी हुकूमत चलाने लगा। धरण की तृष्णा इतने से शांत नहीं हुई फिर भी उसका संकल्प था वह सफल हो ही गया।

इधर धर्मधुरधर धर्मचक्रवर्ती एव धर्मप्राण आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी अपने विद्वान शिष्यों के परिवार से जनकल्याण करते हुये वीरपुर नगर की ओर पधार रहे थे। शाह गोसल आदि को खबर होते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा। सूरिजी महाराज का सुन्दर स्वागत किया और गोसल ने धरण को भी खबर दे दी कि वह भी सूरिजी की सेवा में हाजिर हुआ। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था। वहा का राजा कोक भी सूरिजी के व्याख्यान सुनने से सूरिजी का परम भक्त बन गया।

एक दिन सूरिजी ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता पर इस कदर व्याख्यान दिया कि यह मनुष्य जन्म चिन्तामणि रत्नतुल्य मिला है इसको जैसे किसान काग उड़ाने में रत्न फेंक देता है और मालूम होने पर पश्चाताप करता है इसी प्रकार लोग इस मनुष्य भव की कीमत को न समझ कर व्यर्थ ही गवा देते हैं और पीछे पश्चाताप करते हैं।

प्यारे बन्धुओ! लोहे से सोना बनाने की रसायन मिलना सुलभ है पर गवाया हुआ नरावतार पुन प्राप्त होना बड़ा ही दुर्लभ है। मनुष्य चाहे तो घर में रह कर भी इसको सार्थक बना सकता है पर घर में रहने से कई उपाधिया एवं झंझटें पीछे लग जाती हैं कि वह इच्छा के होते हुये भी आत्म कल्याण नहीं कर सकता है। इत्यादि ज्यों ज्यों सूरिजी बातें कहते गये त्यों २ राजा और धरण के गले उतरती गई उन्होंने सोच लिया कि सूरिजी फरमाते हैं वह सोलह आना सत्य है और यह सब बातें हम खुद अनुभव कर रहे हैं। मनुष्य की दृष्टि सम हो जाती है फिर उनको ज्यादा उपदेश की जरूरत नहीं रहती है। जब सूरिजी का व्याख्यान समाप्त हुआ तब सब लोग अपने २ स्थान जाने लगे तो राजा धरण को अपने राज में ले गये और दोनों बैठ कर बातें करने लगे। राजा ने कहा धरण आज के व्याख्यान में सूरिजी ने कहा वह बात सत्य है। धरण ने कहा हां, दरबार मेरे भी यही जचती है। राजा ने कहा फिर करना क्या है? केवल जचने से ही क्या होता है। धरण ने कहा दरबार मेरी इच्छा तो बहुत है पर थोड़ी सी तृष्णा आड़ी आ रही है वरना मैं तो सूरिजी के हाथों से दीक्षा ले अपना कल्याण कर सकता हूँ। राजा ने कहा मैं जानता हूँ तेरे तृष्णा राज की है। ले मैं अपना राज तुझको दे देता हूँ बोल फिर क्या है? धरण ने कहा हुजूर मैं जानता हूँ कि राजेश्वरी नरकेश्वरी होता है। खैर, दोपहर को सूरिजी के पास चलेंगे। इतना कह कर धरण तो अपने मकान पर आ गया। पीछे राजा ने विचार किया कि ये राज तो अस्थिर है या तो राज मुझे छोड़ जायगा या राज को मैं छोड़ जाउगा इसलिये कुछ भी हो मुझे तो आत्म कल्याण करना है। इस प्रकार राजा ने दृढ़ सकल्प कर लिया। दोपहर को धरण के साथ राजा सूरिजी के पास गये और अपने मनोगत भाव सूरिजी की सेवा में निवेदन कर दिये। बस, फिर तो कहना ही क्या था सूरिजी जैसे चतुर दुकानदार भला आये हुये ग्राहक को कैसे जाने देने वाले थे।

सूरिजी ने कहा राजन्! आपका तो क्या राज है पर चारित्र के सामने छ खंड के राज की भी कुछ कीमत नहीं है। उन चक्रवर्तियों ने भी राज ऋद्धि पर लात मार के चारित्र की शरण ली थी। आयुष्य

के लिए क्षण भर का भी विश्वास नहीं है। जो विचार किया है वह शीघ्र ही कर लीजिये। राजा ने वरुण के सामने देखकर कहा वरुण! सूरिजी महाराज क्या कह रहे हैं? वरुण ने कहा सूरिजी सत्य कह रहे हैं। यदि आप तैयार हैं तो आपकी सेवा में मैं भी तैयार हूँ। बस दोनों ने निश्चय कर लिया कि इस असार संसार का त्याग कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करेंगे।

राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राहुप को राजतिलक कर दिया और राजा राहुप तथा मंत्री गोपल्ल ने दीक्षा का बड़ा भारी महोत्सव किया। जिस में राज त्याग के बाद राजा की दीक्षा होना यह पहला ही नंबर था। अतः दुनिया में बड़ी भारी हलचल मच गई। राजा और वरुण के साथ कई ३५ नरनारी दीक्षा लेने को और भी तैयार हो गये। सूरिजी महाराज ने शुभ मुहूर्त में उन ३७ मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ भगवती जैन दीक्षा देकर उन सबका उद्धार किया। वरुण का नाम मुनि धनानन्द रख दिया। मुनि धनानन्द बाल ब्रह्मचारी थे धर्म प्रचार का पहिले से ही आपको शौक था। मुनि धनानन्द पर सूरिजी की पहिले से ही पूर्ण कृपा थी। दीक्षा लेने पर तो और भी विशेष हो गई। मुनि धनानन्द स्वयं पहिले तो जैनागमों के अभ्यास को आवश्यक समझ कर उसके अध्ययन में लग गया। पर जिन्होंने अपने कर्म को कमजोर एवं निर्बल बना दिये फिर तो देवी सरस्वती की मेहरबानी उनको ज्ञान पढ़ने में क्या देर लगती है। यही हाल मुनि धनानन्द का था। उसने स्वल्प समय में वर्तमान जैन जैनेतर साहित्य का अध्ययन कर लिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि भूभ्रमण करते हुये नागपुर नगर में पधारे वहाँ पर देवी सच्चायिका की सम्मति से बड़े महोत्सवपूर्वक मुनि धनानन्द को सर्वगुण सम्पन्न समझ कर सूरिपद से अलंकृत कर आपका नाम अपने पट्टक्रमानुसार यक्षदेवसूरि रख दिया। कहा है कि 'कर्मेशूरा सो धर्मेशूरा' संसार में वरुण कर्म में शूरवीर था अब यक्षदेवसूरि बनकर धर्म में शूरवीर बन गये।

आचार्य यक्षदेवसूरि नागपुर से विहार कर मेदिनीपुर, मुग्धपुर, शंखपुर, खटकूप नगर आदि नगरों में भ्रमण करते हुये उपकेशपुर पधारे। पूज्याचार्य के पधारने से जनता में खूब उत्साह बढ़ गया। सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। सूरिजी ने महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर बड़ा ही आनन्द मनाया। कुछ अर्सा वहाँ स्थिरता कर माडव्यपुर होते हुये पालिका नगरी में पदार्पण किया। पालिका नगरी जैसे धन-धान्य से समृद्धिशाली थी वैसे ही उसमें जैनों की आबादी भरपूर थी एवं जैनों का एक केन्द्र ही था।

सूरिजी का वीरतापूर्वक व्याख्यान सबको रुचिकर था। श्री संघ के आग्रह व चतुर्मास की प्रार्थना और सूरिजी ने लाभा लाभ का कारण जान स्वीकार करली। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। सूरिजी की एक तो वक्तृत्वकला ही दूसरे संसार के आप वीर थे अतः आपका व्याख्यान वीरतापूर्ण होता था, जिस किसी ने एक बार सुन लिया उसके हृदय में फिर कायरता तो रह ही नहीं सकती थी। सूरिजी इस बात पर अधिक जोर दिया करते थे कि जैनधर्म वीरों का धर्म है और पुरुषों ने ही जैनधर्म का उद्धार एवं प्रचार किया है। तुम भी वीर बनो। मुक्ति वीरों के लिये है न कि कायरों के लिये। जैसे वीरता की ओर आपका लक्ष था वैसे ही उदारता की ओर भी आपका ध्यान था।

एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि यों तो मनुष्य में अनेक गुण होना चाहिये पर सबसे पहिले मनुष्य में उदारता गुण की परमावश्यकता है जिसमें एक उदारता का गुण है उसमें दूसरे सैकड़ों गुण स्वयं ही आ जाते हैं। यदि दूसरे सैकड़ों गुण हैं पर एक उदारता का गुण नहीं है तो दूसरे कोई गुण

फल नहीं देंगे। यही कारण है कि तीर्थङ्कर भगवान ने दीक्षा लेने के पूर्व दुनियाँ को सिखाने के लिये पहिले वर्षीदन दिया था क्योंकि ससार भर इनका अनुकरण कर सहज ही में कल्याण कर सके।

भगवान केशीश्रमणाचार्य सब गुणों की आवश्यकता जानते थे तथापि राजा प्रदेशी को सबसे पहिले दानधर्म का उपदेश दिया कि जो साधुओं की भिक्षा से भाग लेने वाला राजा प्रदेशी ऐसा उदार दिल वाला बन गया कि अपने राज की आमदानी का चतुर्थ भाग ज्ञानशाला में लगा दिया इसका विस्तार से वर्णन श्री राजप्रश्नी सूत्र में किया है।

श्री विपाक सूत्र में सुबहु आदि दश राजकुमारो के अधिकार में लिखा है कि उन्होंने पूर्व भव में उदारता पूर्वक दान देकर ऐसे पुन्योपार्जन किये कि बड़े ही सुखों का अनुभव करते हुये कई एक भव और कई १५ भव में मोक्ष जाने का निश्चय कर लिया इत्यादि।

श्रोतागण! दान कोई साधारण धर्म नहीं है पर एक विशेष धर्म है जिसमें भी पात्र को दान देना। इसका तो कहना ही क्या है। ऐसा नीतिकारों ने फरमाया है।

दूसरे को कोई भी पदार्थ देना उसको दान कहा जाता है वह दान दश प्रकार का है यथा—

१—अनुकम्पादान—दीन अनाथ दुःखी जीवों पर अनुकम्पा लाकर दान देना।

२—सग्रहदान—व्यसनीया मृतपण्डादि मृत के पिछ दान देना

३—भयदान—राजा या बलवान के भय से दान देना।

४—कालुण्य करुणा दान—पुत्रादि के वियोग में शोक वगैरह से दान देना।

५—लज्जादान—बहुत मनुष्यों के बीच रह कर उनकी लज्जा से दान देना।

६—गर्वदान—नाटक नृत्यदि में दूसरों की स्पर्द्धा करता हुआ दान देना।

७—अधर्मदान—हिंसादि पाप करने वाले तथा व्यभिचारियों को दान देना।

८—धर्म्मदान—धृत्ति महात्मा को सत्पात्र जान कर दान देना।

९—प्रति उपकार—अपने पर उपकार करने वालों को दान देना।

१०—कीर्त्तिदान—अपने यश. कीर्त्ति बढ़ाने के लिये दान देना।

जैसे—एकमास में अमावश की रात्रि सर्व अंधेरा और पूर्णिमा की रात्रि मे सर्वथा उज्जवल शेष २८ रात्रि किसी मे उज्जवल अधिक अधेरा थोड़ा किसीमे अन्धेरा अधिक उज्जवल कम है इसी प्रकार उपरोक्त दश प्रकार के दान मे सातवाँ अधर्म्मदान हय और आठवाँ धर्म्मदान उपादय है शेष आठ दान ज्ञय हैं कारण इन आठ प्रकार के दानों मे पुन्य पाप का मिश्रण है अनुकम्पादान-अभयदान यह विशेष पुन्य बन्ध का कारण है। अभयदान के लिये तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई दानेश्वरी एक सोना का मेरु पर्वत बना कर दान दे रहा है तब दूसरा एक मरता हुआ जीव को अभय यानी प्राणों का दान दे रहा है तो अभय दान के सामने सुवर्ण का मेरु पर्वत कुछ भी गिनती मे नहीं है अत अभयदान सब दानों में प्रधान दान है। तथा सुपात्र दान के भी दो भेद हैं एक स्थावर और दूसरा जंगमदान शास्त्रकारों ने फरमाया है कि—

स्थावरं जङ्गम चेति सत्पात्र द्विविधं मत्तं। स्थावरं पत्र पुण्याय प्रासादं प्रतिमादिकम् ॥ १ ॥
ज्ञानाधिक तपः क्षमा निर्मम निराङ्कृतिम्। स्वद्यायब्रह्मचर्यादि युक्तं पात्रं तु जङ्गमं ॥ २ ॥

इष्टदेव का मन्दिर बनाना मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाना पुष्पादि से सेवा पूजा करना यह स्थावर सुपात्र दान है कि जिससे अनेक भव्य स्वपर का कल्याण कर सके दूसरा जङ्गम सुपात्र जो ज्ञानदर्शन चारित्र, तप संयम, क्षमा, दया मार्दव एवं अहंकारादि रहित वा स्वपात्म ध्यान योग साधन समाधि और ब्रह्मचर्यादि अनेक गुणों वाले महात्मा को दान देना वह जंगम सुपात्र दान है।

साधु साध्वी श्रावक श्राविका मन्दिर मूर्ति और ज्ञान एवं सात क्षेत्र रूपी भूमि में दान रूपी बीज बोना और शुभ भावना रूपी जल सिंचन करने से भव भवान्तर में मोक्ष रूपी फल प्राप्त होता है अत प्रत्येक मुमुक्षुओं का कर्तव्य है कि पूर्वोक्त शुभ क्षेत्र में यथाशक्ति दान करके सद् कर्म उपार्जन करना चाहिये।

उदाहरण के तौर देखिये ! एक समुद्र में अपार जल है पर वह दूसरे का उपकार नहीं कर सके जब मेघ थोड़ा थोड़ा बरसता है वह सर्वत्र उपकार कर सकता है इसी प्रकार एक मनुष्य के पास अपार द्रव्य है पर वह दूसरे का उपकार नहीं कर सकता है जब वही धन थोड़ा थोड़ा दूसरे को दान रूप में दिया जाय तो अनेकों का उपकार हो सकता है अत उदार मनुष्यों को चाहिये कि अपनी लक्ष्मी का दान करके लाभ उठावे। क्यों कि पाप और दुर्गति से बचाने वाला एक दान ही है अतः कीर्ति बढ़ाने वाला सुख सम्पत्ति लाने वाला और संसार समुद्र से पार उतारने वाला एक दान ही है। दान देना तो बहुत बड़ी बात है पर दान देने वाले दानेश्वरी का अनुमोदन करने वाला एवं सुख देखने से भी स्वर्ग की प्राप्ती हो सकती है। महानुभावों ! जैसे समुद्र का जल लेजाने से कम नहीं होता है पर बढ़ता है और उस जल का अच्छी तरह से रक्षण होता है इसी प्रकार धनवान के दान करने से धन कम नहीं होता है पर बढ़ता ही है कारण इस भव में शुभ कार्य एवं उदार भावना से द्रव्य बढ़ता है तब भवान्तर में पुन्य बढ़ता है और पुन्य उदय होने से लक्ष्मी स्वयं आकर स्थिर वास करती है।

जिस द्रव्य को आप अर्जना और दूसरों को देना बस इतना ही द्रव्य तेरा है शेष द्रव्य के लिए तो केवल तू एक चौकीदार ही है। १—याचक घर २ में भटकते हैं वे यों तो भिक्षार्थ ही फिरते हैं पर दूसरा अर्थ इसका यह होता है कि वे जनता को चेतावनी देते हैं कि हमलोगों ने पूर्वभव में दान नहीं किया अत इस प्रकार दीन होकर आपसे याचना करते हैं पर आप सावधान हो जाइये कहीं आपको भी कहीं ऐसा न होजाय कि भवान्तर में हमारा अनुकरण करना पड़े। २—संग्रह करने से ही समुद्र रसातल में जाता है तब मेघ अपना जल ऊँच नीच सब को देता है इसीलिये वह आकाश में गर्जना करता है। ३—जैसे मनुष्य गुणी होने पर भी उनमें कई ऐसे भी अवगुण पड़जाते हैं कि वह सब गुणों को दबा देते हैं। इसी प्रकार दान देने वाले दातार के लिये १—अनादर से देना २—विलम्ब करके देना ३—मुँह बांका कर देना ४—कटु वचन बोलना ५—दान देने के बाद पश्चाताप करना एवं पांच दूषण होते हैं इन दूषणों से युक्त दान करने का जैसा फल नहीं होता जो होना चाहिये। ४—जैसा दान करने वालों में भी कई गुण होता है जैसे १—पात्र देख प्रसन्न होना, २—आदर सत्कार करना, ३—भावना एवं बहुमान पूर्वक दान देना, ४—दान करने के बाद खुश होना और विशेष में ५—दान की बात को गुप्त रखना यह पांच दानेश्वर के भूषण हैं। इनसे संयुक्त दान देने से महान पुन्य होता है।

सुपात्र में दान देने से अनेक गुण प्राप्त होते हैं। जैसे दर्शन की शुद्धि, ज्ञान की वृद्धि, चारित्र की

उज्ज्वलता, पुण्य का संचय, पाप का नाश, यश कीर्ति का पसारा विनय का विकाश, स्वर्ग का साधन और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ती होती है। कहा है कि—

व्याजे स्याद्विगुणं वित्तं व्यवसायो चतुर्गुणम्। क्षेत्रे दशगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनन्तगुणं भवेत्॥

व्याज में दुगुणा व्यापार में चारगुणा क्षेत्र में दश एवं सौगुणा परन्तु सुपात्र में दान देने से तो अन्नत गुणा पुण्य होता है गृहस्थवास में रहे हुये जीवों से अन्य कार्य मुश्किल से बनते हैं पर दान तो सहज ही में बन सकता है। अत. मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले सज्जनों को सामग्री के सद्भाव दान जरूर देना चाहिये।

ससार में धन माल राज पाट कुटुम्ब परिवार सब नाशवान हैं परन्तु दान के द्वारा कीर्त्ति मिली है वह अमर रहती है जैसे कर्ण की कीर्त्ति अब भी लोग गारहे हैं।

हाथ कंकण से शोभा नहीं पाता है पर दान से सुशोभित होता है। दान से भोग मिलते हैं वैरी शान्त होते हैं सर्व जगत वश में होता है और क्रमश. स्वर्ग और अपवर्ग मिलता है फिर क्या चाहते हो?

जैनों के अलावा जैनेतर शास्त्रों में भी दान के गुण गाये हैं

नान्नदानात्परं दानं, किंचिदस्ति नरेश्वर!। अन्नेन धार्यते कृत्स्नं चराचरमिदं जगत्॥१॥
सर्वेषामेव भूतानामन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः। तेनान्नदो विशां श्रेष्ठ! प्राणदाता स्मृतो बुधैः॥२॥
ददस्वान्नं ददस्वन्न-ददस्वान्नं नराधिप!। कर्मभूमौ गतो भूयो यदि स्वर्गत्वमिच्छसि॥३॥
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः। याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः॥४॥
दुःखं ददाति योऽन्यस्य भूयो दुःखं च विन्दति। तस्मान्न कस्यचिदुःखं दातव्यं दुःख भीरुणा॥५॥
पात्रेस्वल्पमपि दानं कालं दानं युधिष्ठिर!। मनसा सुविशुद्धेन प्रेत्यानन्तफलं स्मृतम॥६॥
पात्रे दत्वा दानं प्रयाण्युक्त्वा च भारत!। अहिंसाविरतः स्वर्गं गच्छेदिति मतिर्मम॥७॥
साधूनां दर्शनं स्पर्शः कीर्तनं स्मरणं तथा। तीर्थानामिव पुण्यानां सर्वमेवेह पावनम्॥८॥
साधूनां दर्शनं पुण्य तीर्थभूता हि साधवः। कालतः फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥९॥
आरोहस्व रथे पार्थ! गाण्डीवं च करे कुरु। निर्जितां मेदिनी मन्ये निर्ग्रन्थो यदि संमुखः॥१०॥
श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुंजरो वृषः। प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकाए मताः॥११॥
पद्मिनी राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः। य देशमुपसर्पन्ति तत्र देशे शुभ वदेत्॥१२॥

धर्म रूपी नगर में दान राजा है। जैसे स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरा हुआ जल बहुमूल्य मोती बनता है इसी प्रकार सुपात्र को दान देना बहुत फल देता है। इत्यादि दान के अनेक गुण हैं और इस प्रकार सुपात्र को दान देकर अनेक भव्यों ने अपना कल्याण किया है।

१—भगवान् ऋषभदेव के जीव धना सारथवाह के भव में एक मुनि को घृत का दान दिया अत. वे तेरहवें भव में ऋषभदेव तीर्थङ्कर हुये। और जो भव किया है वे बड़े ही सुख के लिये।

२—शालीभद्र सेठ ने ग्वालिये के भव में एक मुनि को खीर का दान दिया

३—अमरजस राजकुँवार ने पूर्व ग्वालिये के भव में एक मुनि को वस्त्र दान दिया जिससे दूसरे भव में अपार ऋद्धि का धणी राजकुँवार अमरजस हुआ।

४—दान का अनुमोदन करने वाली ग्वालिये की औरत तथा एक [illegible] भवान्तर में राजकन्यायें हो अपार सुख भोग कर स्वर्ग गई।

५—सुबाहु कुँवरादि दश राजकुँवरों ने पूर्व भव में दान देकर ऋद्धि प्राप्त की।

६—तीर्थङ्कर शान्तिनाथ ने पूर्व मेघरथ राजा के भव में अपने शरीर का मांस काट काट कर देकर एक कबूतर को अभयदान दिया।

७—भगवान् नेमिनाथजी तथा राजमति ने शंखराजा और यशोमती राणी के भव में मुनि को आहारदान दिया तथा नेमिनाथ प्रभु ने विवाह के समय अनेक पशुओं को जीवनदान दिया।

८—भगवान् पार्श्वनाथ ने अग्नि में जलते हुये सर्प को अभयदान दिया।

९—इनके अनुकरण रूप में ऐसे सैकड़ों नहीं पर हजारों उदाहरण हैं कि जिन्होंने अभयदान एवं सुपात्र दान देकर अपना कल्याण साधन किया है।

१०—दान करने के लिए सुपात्र एवं सुक्षेत्र होना जरूरी बात है। इसके लिये शास्त्रकारों ने सात क्षेत्र बतलाये हैं जैसे —

१ साधु २ साध्वी ३ श्रावक ४ श्राविका ५ जिनमन्दिर ६ जिनमूर्ति ७ ज्ञान

साधु साध्वियों को आहार पानी वस्त्र पात्र मकान पाट पाटले और औषधी वगैरह का दान देना महान लाभ है।

श्रावक श्राविकायें-समानता स्वधर्मीवात्सल्य तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल कर स्वधर्मी भाइयों को लाभ पहुँचाना तथा कोई अशक्त एवं निर्धन स्वधर्मी भाई हो उसको मदद पहुँचाना यह भी एक उत्तमक्षेत्र है। कारण सात क्षेत्र के पोषण करने वाला श्रावक है। यह क्षेत्र हरा भरा सुखमय रहता है। तब ही धर्म की उन्नति होती है।

जिनमन्दिर-यह एक धर्म का स्थायी स्तम्भ है। इसके होने से हजारों जीव धर्म में स्थिर रह कर आत्मा कल्याण कर सकते हैं। मन्दिर के लिये आर्य भद्रबाहु ने कूप का उदाहरण दिया है और महानिशीथ सूत्र में मन्दिर बनाने वाले की गति बारहवां स्वर्ग की बतलाई है। श्रावक का आचार है कि शक्ति के होते हुये अपने जीवन में छोटा बड़ा एक मन्दिर तो अवश्य ही बनाना चाहिये।

जिनप्रतिमा-जिनप्रतिमा की अञ्जनशिलाका, प्रतिष्ठा और पूजा करने आदि में द्रव्य व्यय करना। जितना भावतीर्थंकरों की सेवा भक्ति का लाभ है उतना ही उनकी स्थापना की सेवा भक्ति से लाभ है इतना ही क्यों पर मूर्ति द्वारा तीर्थंकरों के पांच कल्याणक की आराधना हो सकती है।

ज्ञान-ज्ञान की वृद्धि करना ज्ञान पढ़ने वालों को मदद करना। ज्ञान के पावन पुस्तकों पर ज्ञान एवं आगम लिखा कर ज्ञान भंडार में रखना। इस पंचम आरा में जितनी मन्दिरों की जरूरत है उतनी ही ज्ञान की आवश्यकता है। अतः ज्ञानवृद्धि के निमित्त द्रव्य व्यय करना भी महान् लाभ का कारण है।

इस प्रकार सात क्षेत्रों में द्रव्य दान किया जाय वह सुपात्र दान कहा जाता है। इनके अलावा काल दुकाल में मनुष्य और पशुओं को मदद पहुँचाना भी दान की गिनती में ही गिना जाता है।

इत्यादि सूरिजी ने अनेक हेतु युक्ति दृष्टान्त और आगमों के प्रमाण से दान का महत्त्व बतलाते हुये

परिषदा पर इस कदर का प्रभाव डाला कि श्रोतावर्ग चौंक उठा और हरेक के दिल में दान देने की विशेष रुचि जागृत होगई ।

इस प्रकार सूरिजी ने अपने व्याख्यानों में प्रत्येक विषय पर विवेचन कर श्रोताजनों पर धर्म का खूब ही प्रभाव डाला और भावुकों ने अच्छा लाभ भी प्राप्त किया ।

उस समय का श्रीसघ कल्पवृक्ष ही समझा जाता था । आचार्य श्री जिस समय जो कार्य्य श्रीसघ से करवाना चाहते उसी विषय का उपदेश करते कि आचार्य श्री का हुक्म श्रीसघ उठा ही लेता । एक दिन सूरिजी ने तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय का महत्त्व और सघपति पद का वर्णन किया तो वलाह गोत्रिय शाह केसा ने शत्रुंजय का संघ निकालने का निश्चय कर लिया । चतुर्मास समाप्त होते ही शाहकेसा ने खूब उत्साह से विराट सघ निकाला । पट्टावलीकारों ने उस संघ का बहुत विस्तार से वर्णन किया है । तीर्थ पर पहुँचे वहाँ तक पाँच हजार साधु साध्वियों और एक लक्ष भावुकों की संख्या बतलाई है । शाहकेसा ने इस सघ के निमित्त पाँच लक्ष द्रव्य व्यय किया । यात्रा कर सघ तथा कई मुनि तो वापिस लौट आये और सूरिजी वहीं रहे । आचार्य यक्षदेवसूरि जैसे ज्ञानी थे वैसे तपस्वी भी थे । आप पहिले से ही कठोर तप तपने वाले थे परन्तु शत्रुंजय पधारने पर तो आपने अपनी शेष जिन्दगी के लिये छट छट पारणा और पारणा के दिन भी आंबिल करना इस प्रकार की भीषण प्रतिज्ञा करली थी । सूरिजी जानते थे कि दुष्ट कर्म विना तपस्या कट नहीं सकता है और जब तक पुद्गलों का सडा नहीं छुटे वहाँ तक आत्मा निर्मल भी नहीं हो सकता है । अत आपश्री ने निरन्तर तपश्चर्य करना शुरु कर दिया ।

सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव और कठोर तपस्या के कारण कई राजा महाराजा भी आपकी सेवा मे उपस्थित होकर आपकी देशना सुधा का पान किया करते थे । इतना ही क्यों पर कई देवी देवता भी सूरिजी की सेवा कर अपने जीवन को सफल बनाते थे । सौराष्ट्र के विहार के अन्दर कई स्थानों पर आपकी बौद्धों से भी भेंट हुई थी पर वे सूरिजी के सामने सदैव नत मस्तक ही रहते थे । सूरिजी ने सौराष्ट्र में विहार कर कई मदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई, कई मुमुक्षुओं को दीक्षा भी दी और कई अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित किये । तत्पश्चात् आपका विहार कच्छभूमि में हुआ । आपके पधारने से वहा भी धर्म की खूब ही जागृति हुई । आपके कई साधु पहिले से ही विचरते थे उन्होंने भी सूरिजी की सेवा में आकर वन्दन किया । सूरिजी ने उनके प्रचार कार्य पर खूब ही प्रसन्नता प्रगट की और उनमें जो विशेष योग्य थे उनको पदस्थ बना कर उनके उत्साह को बढ़ाया । जब सूरिजी कच्छ में घूम रहे थे इस बात का पता सिंध वासियों को मिला तो उन लोगों ने दर्शनार्थ आकर सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! एक बार जन्मभूमि की यात्रा कर सिन्धवासियों को दर्शन देकर कृतार्थ बनावें। सब लोग आपके दर्शन के प्यासे हैं और प्रतीक्षा कर रहे हैं सूरिजी के साथ कल्याणमूर्ति (वीरपुर का राजा कोक) भी थे और उनका हाड़ और हाड़ की मींजी जैनधर्म में इतनी रगी हुई थी कि वृद्धावस्था में कठोर तपस्या और ज्ञान ध्यान में तल्लीन रहते थे । सिंधवासियों ने उनसे बहुत ही आग्रह किया कि पूज्यवर ! आप पहिले ही हमारे नाथ थे और अब तो विशेष हैं । अत. आप जल्दी ही सिन्ध को पावन बनावें । मुनि कल्याणमूर्ति ने कहा मैं पूज्याचार्यदेव की कृपा से परमानन्द में हूँ । मेरी इच्छा है कि मुझे भव भव में जैनधर्म की शरण हो । ससार में तारक और पार उतारक है तो एक जैनधर्म ही है । देवानुप्रिय ! ससार में विषय कषाय की जालों जाल अग्नि लग

रही है इसका रखना चाहो तो आओ जैनधर्म की शरण लो इत्यादि । सिन्ध के लोगों ने सोचा कि जब जीव के कल्याण का समय आता है तब स्वयं उनकी भावना बदल जाती है । हिंसा करनेवाला की सिफारस करने वाले जीव की क्या भावना बदल गई है । सच कहा है कि 'कर्मे शूराते धर्मे शूरा' इस युक्ति को हमारे भावजी ने ठीक चरितार्थ करके बतला दी है इत्यादि । सूरिजी एवं करुणामूर्ति के कहने से सिन्ध के भावकों को विश्वास हो गया कि सूरिजी सिन्ध में अवश्य पधारेंगे । वे वंदन कर वापिस लौट गये ।

सूरिजी ने कई मासों तक कच्छ में विहार किया बाद आपश्री ने सिन्ध की ओर प्रस्थान कर दिया जब इस बात की खुशखबरी सिन्ध में पहुँची तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा । जब सूरिजी सिन्धवासियों को दर्शनलाभ करते हुए वीरपुर पधार रहे थे तो राजा राहुप तथा शाह गोसल और उनके सब परिवार ने सूरिजी का स्वागत बड़े ही धामधूम से किया । क्यों नहीं करे एक तो वे नगर के राजा, दूसरे अब आये धर्म के राजा । माता राहुली ने अपने पुत्र सरस को देखा तो उनके हर्ष के अश्रु बहने लग गये ।

सूरिजी बड़े ही साधु एवं ज्ञानी थे । शायद उनको अपने माता पितादि कुटुम्ब का स्नेह न होगा पर वे तो थे संसारी उनको स्नेह आये बगैर कैसे रह सकता । देवानन्दा ने भगवान् महावीर को देखा तो उनके स्तनों से दूध टपकने लग गया । माता राहुली ने अपने बेटे को खूब ध्यान पर सम्भव [illegible] बड़ा ही प्रसन्न था एक माई का सुपुत्र जगत का पूज्य बन कर आया है । सूरिजी का व्याख्यान खूब धड़ाधार होने लगा । जब सूरिजी वैराग्य के विषय का व्याख्यान में फरमाते थे तो लोगों को बड़ा भारी भय उत्पन्न होता था कि न जाने सूरिजी फिर किसको साधु बना देंगे । क्योंकि सूरिजी जब संसार के दुःखों का चित्र खींच कर बतलाते थे तब लोगों के रूंगटे खड़े हो जाते हैं, और यही भावना होती थी कि इस दुःखमय संसार का त्याग ही कर दिया जाय । पर संसार छोड़ना कोई ऐसी मजाक की बात नहीं था जिसके कर्मों का क्षयोपशम हुआ हो वही संसार छोड़ दीक्षा ले सकता है । तथापि सूरिजी ने चार पाँच मुमुक्षुओं पर वासक्षेप डाल ही दिया पर बनाव ऐसा बना कि दीक्षा लेने वाले तो चार मनुष्य थे पर अभिनय हजामत बनाने के लिये नाई पाँच आगये । जब चार तो चारों की हजामत बनाने लगे तब एक नाई दो चिन्ता में उदास होकर बैठा था किसीने पूछा भगवान् तू उदास क्यों है ? उसने कहा सेठ साहिब मैं बुलाया हुआ नहीं आशा करके आया था कि दीक्षा लेने वालों की हजामत करने पर कुछ प्राप्ति होगी पर मेरी तकदीर ही फूटी हुई है । इसपर सेठजी को बड़ा आश्चर्य और भावी उदार कर कहा कि ले मैं दीक्षा लेता हूँ तू मेरी हजामत बना दे । अहाहा ! कैसे लघुकर्मी सेठजी कि नाई की इच्छा के लिये आप दीक्षा लेने को तैयार होगये । बस सूरिजी ने महा महोत्सव पूर्वक पाँचों भावुकों को दीक्षा देदी । तदनन्तर राजा राहुप के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई तत्पश्चात् सूरिजी ने विहार का विचार किया पर माता राहुली ने सूरिजी से कहा कि मैं अब वृद्धावस्था में हूँ न जाने कब चल पडूंगी । अतः यह चतुर्मास यहाँ करके हमारा उद्धार करावें । इसी प्रकार शाह गोसल और राजा राहुप ने भी आग्रह प्रार्थना की जिसको सूरिजी ने स्वीकार करली और यह चतुर्मास वीरपुर में करने का निश्चय कर लिया । बस, फिर तो था ही क्या वीरपुर के लोगों के मनोरथ सफल हो गये ।

माता राहुली ने महामहोत्सव करके सूरिजी से भीभगवती सूत्र व्याख्यान में बचाया शाह गोसल ने इस पवित्र कार्य में मोलह रुपये व्यय किया । माता राहुली ने ३६ सुवर्ण मुद्रिकाओं से श्री भगवतीजी सूत्र के ३६००० प्रश्नों की पूजा की । इसी प्रकार नागरिक लोगों ने भी आगम पूजा कर

लाभ उठाया और श्री भगवतीजी सूत्र बड़े ही आनन्द से सुना। इतना ही क्यों पर आस पास के नगरों के लोग भी बहुत संख्या में आये थे। उन्होंने श्री भगवतीजी सूत्र सुनकर अपने जीवन को सफल बनाया। क्यों कि उन लोगों को इस प्रकार का सुअवसर मिलना कहाँ सुलभ था। सूरिजी के विराजने से केवल वीरपुर के लोगों को ही नहीं पर सिन्धप्रान्त वालों को बड़ा ही लाभ मिला।

सूरिजी माई के एक सुपूत पुत्र थे। माता पिता के करजा को अदा करने को कुछ असी तक सिन्ध में विहार किया। और सर्वत्र घूमघूम कर जैन धर्म का खूब प्रचार बढ़ाया—

जिस समय आचार्य श्री सिन्ध में विराजमान थे उस समय देवी सच्चायिका सूरिजी के दर्शन करने को आई थी। उसने प्रार्थना की कि प्रभो! आप एक बार उपकेशपुर शीघ्र पधारें आपको बडा भारी लाभ होने वाला है। और इस कार्य के लिये ही मैं आपकी सेवा मे हाजर हुई हूं ?

सूरिजी ने कहा देवीजी उपकेशपुर में ऐसा कौनसा लाभ होने वाला है ? कारण कि मेरा विचार पांचाल में होकर पूर्व देश की यात्रा करने का है। फिर जैसी आपकी इच्छा।

देवी-पूज्यवर! पाचाल और पूर्व में आप फिर भी विहार कर सकते हो पर इस समय तो आपको उपकेशपुर ही पधारना चाहिये।

सूरिजी ने सोचा कि देवी की जय इतनी आग्रह है तो वहाँ कोई लाभ होने वाला ही होगा। आपश्री ने फरमा दिया कि ठीक है देवीजी क्षेत्र स्पर्शना होगा तो मैं मरुधर की ओर ही विहार करूँगा। बस देवी तो सूरिजी को वदन करके चली गई और सूरिजी ने थोड़े ही समय में मरुधर की ओर विहार कर दिया और क्रमश: विहार करते उपकेशपुर के नजदीक पधार भी गये।

इधर पूर्व में आभापुरी नगरी का कर्माशाह एक सघ लेकर उपकेशपुर भगवान महावीर के दर्शन एव देवी सचायिका की यात्रा के लिये आया था।। शाह कर्मा ने स्थावर तीर्थ के साथ जंगम तीर्थ अर्थात् आचार्य यक्षदेवसूरि के दर्शन किये। आचार्यश्री ने एक दिन व्याख्यान में ऐसा वैराग्य का उपदेश दिया कि सघपति कर्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंप कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार होगया। आपके अनुकरण रूप १७ नारी और १३ पुरुषों ने भी निश्चय कर लिया एव सब ३१ मुमुक्षुओं को सूरिजी ने दीक्षा दी। उसी रात्रि में देवी सच्चायिका ने सूरिजी को वन्दन कर अर्ज की कि क्यों पूज्यवर! उपकेशपुर पाधारने से आपको लाभ हुआ है न ? आपके कर कमलों से ३१ भावुकों का उद्धार हुआ जिसमें कर्मा तो एक शासन का उद्धारक ही होगा।

सूरिजी ने कहा देवीजी! भला कहीं आपका कहना कभी व्यर्थ जाता है, आप तो इस गच्छ की शुभचिन्तका हैं और आपकी सहायता से ही इस गच्छ की दिन ब दिन वृद्धि हुई है। देवीजी आप खूब पुन्य सचय कर रही हो। आचार्य रत्नप्रभसूरि स आज पर्यन्त जितने आचार्य हुये हैं आपने सघ की सेवा की है और देववा के अवसर सब आचार्यों ने आपको धर्मलाभ दिया है और आशा है कि भविष्य के लिये भी आप इसी प्रकार करती रहेंगी। देवी ने कहा पूज्यवर! आचार्य रत्नप्रभसूरि का मेरे पर असीम उपकार हुआ है कि मैं इस भव में तो क्या पर भवोंभव में भूल नहीं सकती हूँ। मैं व्यर्थ घोर पातक सचय कर रही थी जिससे छुड़ा कर जैनधर्म की उपासिका बनाई। मैं आप लोगों की जितनी सेवा करती हूँ इसमें मैं अपना अहोभाग्य समझती हूँ इत्यादि बातें होने के बाद देवी सूरिजी को वन्दन कर चली गई।

रही है इससे बचना चाहो तो आओ जैनधर्म की शरण लो इत्यादि । सिन्ध के लोगों ने सोचा कि जब जीव के कल्याण का समय आता है तब स्वयं उनकी भावना बदल जाती है । शिव करंटोरा की शिकार करने वाले जीव की क्या भावना बढ़ गई है । सच कहा है कि 'कर्मे शूराने धर्मे शूरा' इस युक्ति का हमारे भावकी ने ठीक चरितार्थ करके बता दी है इत्यादि । सूरिजी एवं करुणामूर्ति के कहने से सिन्ध के भावकों को विश्वास हो गया कि सूरिजी सिन्ध में अवश्य पधारेंगे । वे वंदन कर वापिस लौट गये ।

सूरिजी ने कई अर्सो तक कच्छ में विहार किया बाद आपश्री ने सिन्ध की ओर प्रस्थान कर दिया जब इस बात की खुशखबरी सिन्ध में पहुँची तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा । जब सूरिजी सिन्धवासियों को धर्मोपदेश करते हुए वीरपुर पधार रहे थे तो राजा राहुप तथा राव गोसल और उनके सब परिवार ने सूरिजी का स्वागत बड़े ही धामधूम से किया । क्यों नहीं करे एक तो वे नगर के राजा दूसरे धन धान्य के राजा । माता राहुली ने अपने पुत्र धरण को देखा तो उनके हर्ष के आंसू बहने लग गये ।

सूरिजी मानो ही साधु धर्म जानी थे । शायद उनको अपने माता पितादि कुटुम्ब का स्नेह न होगा पर वे तो वे संसारी उनको स्नेह आवे और कैसे रह सकता । देवानन्दा ने भगवान् महावीर को देखा तो उनके स्तनों से दूध टपकने लग गया । माता राहुली ने अपने बेटे को खूब कहा पर समझ विन बड़ा ही प्रसन्न था एक भाई का सुपुत्र जगत का पूज्य बन कर आया है । सूरिजी का व्याख्यान खूब असरकारक होने लगा । जब सूरिजी वैराग्य के विषय को व्याख्यान में फरमाते थे तो लोगों को बड़ा भारी भय उत्पन्न होता था कि न जाने सूरिजी फिर किसको को साधु बना लें । क्योंकि सूरिजी जब संसार के दुःखों का चित्र खींच कर बतलाते थे तब लोगों के कपाट खुले हो जाते हैं, और यही भावना होती थी कि इस दुःखमय संसार का त्याग ही कर दिया जाय । पर संसार छोड़ना कोई हँसी मजाक की बात नहीं था जिसके कर्मों का क्षयोपशम हुआ हो वही संसार छोड़ दीक्षा ले सकता है । तथापि सूरिजी ने चार पांच मुमुक्षुओं पर वासक्षेप डाल ही दिया पर बनाव ऐसा बना कि दीक्षा लेने वाले तो चार मनुष्य थे पर अभिषेक हजामत बनाने के लिये नाई चाहिये । जब चार तो चारों की हजामत बनाने लगे तब एक नाई ही चिन्ता में उदास होकर बैठा था किसीने पूछा खवास तू उदास क्यों है ? उसने कहा सेठ साहिब मैं बुड्ढा हुआ नहीं आशा करके आया था कि दीक्षा लेने वालों की हजामत करने पर कुछ प्राप्ति होगी पर मेरी तकदीर ही फूटी हुई है । इसपर सेठजी को बड़ा आश्चर्य और उनकी उदार कर कहा कि ले मैं दीक्षा लेता हूँ तू मेरी हजामत बना दे । अहाहा ! कैसे लघुकर्मी सेठजी कि नाई की दया के लिये आप दीक्षा लेने को तैयार होगये । बस सूरिजी ने बड़ा महोत्सव पूर्वक पाँचों मुमुक्षुओं को दीक्षा देदी । अनन्तर राजा राहुप के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई तत्पश्चात् सूरिजी ने विहार का विचार किया पर माता राहुली ने सूरिजी से कहा कि मैं अब वृद्धावस्था में हूँ न जाने कब चल बसूंगी । अतः यह चतुर्मास यहाँ करके हमारा उद्धार करावें । इसी प्रकार राव गोसल और राजा राहुप ने भी साग्रह प्रार्थना की जिसको सूरिजी ने स्वीकार करली और वह चतुर्मास वीरपुर में करने का निश्चय कर लिया । बस, फिर तो था ही क्या वीरपुर के लोगों के मनोरथ सफल हो गये ।

माता राहुली ने महामहोत्सव करके सूरिजी से भगवतीजी सूत्र व्याख्यान में बचाया राव गोसल ने इस पवित्र कार्य में सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया । माता राहुली ने ३६ सुवर्ण मुद्रिकाओं से श्री भगवतीजी सूत्र के ३६० प्रश्नों की पूजा की । इसी प्रकार नागरिक लोगों ने भी आगम पूजा कर

लाभ उठाया और श्री भगवतीजी सूत्र बड़े ही आनन्द से सुना । इतना ही क्यों पर आस पास के नगरों के लोग भी बहुत संख्या में आये थे । उन्होंने श्री भगवतीजी सूत्र सुनकर अपने जीवन को सफल बनाया । क्यों कि उन लोगों को इस प्रकार का सुअवसर मिलना कहाँ सुलभ था । सूरिजी के विराजने से केवल वीरपुर के लोगों को ही नहीं पर सिन्धप्रान्त वालों को बड़ा ही लाभ मिला ।

सूरिजी माई के एक सुपूत पुत्र थे । माता पिता के करजा को अदा करने को कुछ अर्सा तक सिन्ध में विहार किया । और सर्वत्र घूमघूम कर जैन धर्म का खूब प्रचार बढ़ाया—

जिस समय आचार्य श्री सिन्ध में विराजमान थे उस समय देवी सच्चायिका सूरिजी के दर्शन करने को आई थी । उसने प्रार्थना की कि प्रभो ! आप एक बार उपकेशपुर शीघ्र पधारें आपको बड़ा भारी लाभ होने वाला है । और इस कार्य के लिये ही मैं आपकी सेवा मे हाजर हुई हूं ?

सूरिजी ने कहा देवीजी उपकेशपुर में ऐसा कौनसा लाभ होने वाला है ? कारण कि मेरा विचार पांचाल में होकर पूर्व देश की यात्रा करने का है । फिर जैसी आपकी इच्छा ।

देवी-पूज्यवर ! पांचाल और पूर्व में आप फिर भी विहार कर सकते हो पर इस समय तो आपको उपकेशपुर ही पधारना चाहिये ।

सूरिजी ने सोचा कि देवी की जब इतनी आग्रह है तो वहाँ कोई लाभ होने वाला ही होगा । आपश्री ने फरमा दिया कि ठीक है देवीजी क्षेत्र स्पर्शना होगा तो मैं मरूधर की ओर ही विहार करूँगा । बस देवी तो सूरिजी को वदन करके चली गई और सूरिजी ने थोड़े ही समय में मरुधर की ओर विहार कर दिया और क्रमश' विहार करते उपकेशपुर के नजदीक पधार भी गये ।

इधर पूर्व में आभापुरी नगरी का कर्माशाह एक संघ लेकर उपकेशपुर भगवान महावीर के दर्शन एव देवी सचायिका की यात्रा के लिये आया था।। शाह कर्मा ने स्थावर तीर्थ के साथ जगम तीर्थ अर्थात् आचार्य यक्षदेवसूरि के दर्शन किये । आचार्यश्री ने एक दिन व्याख्यान में ऐसा वैराग्य का उपकेश दिया कि संघपति कर्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंप कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार होगया । आपके अनुकरण रूप १७ नारी और १३ पुरुषों ने भी निश्चय कर लिया एव सब ३१ मुमुक्षुओं को सूरिजी ने दीक्षा दी । उसी रात्रि में देवी सच्चायिका ने सूरिजी को वन्दन कर अर्ज की कि क्यों पूज्यवर ! उपकेशपुर पाधारने से आपको लाभ हुआ है न ? आपके कर कमलों से ३१ भावुकों का उद्धार हुआ जिसमें कर्मा तो एक शासन का उद्धारक ही होगा ।

सूरिजी ने कहा देवीजी ! भला कहीं आपका कहना कभी व्यर्थ जाता है, आप तो इस गच्छ की शुभचिन्तका हैं और आपकी सहायता से ही इस गच्छ की दिन ब दिन वृद्धि हुई है । देवीजी आप खूब पुन्य सचय कर रही हो । आचार्य रत्नप्रभसूरि से आज पर्यन्त जितने आचार्य हुये हैं आपने सब की सेवा की है और देवता के अवसर सब आचार्यों ने आपको धर्मलाभ दिया है और आशा है कि भविष्य के लिये भी आप इसी प्रकार करती रहेंगी । देवी ने कहा पूज्यवर ! आचार्य रत्नप्रभसूरि का मेरे पर असीम उपकार हुआ है कि मैं इस भव में तो क्या पर भवोंभव में भूल नहीं सकती हूँ । मैं व्यर्थ घोर पातक संचय कर रही थी जिससे छुड़ा कर जैनधर्म की उपासिका बनाई । मैं आप लोगों की जितनी सेवा करती हूँ इसमें मैं अपना अहोभाग्य समझती हूँ इत्यादि बातें होने के बाद देवी सूरिजी को वन्दन कर चली गई ।

११—करणावती	के समभट्ट	शाहपुनड़ा	ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
१२—गुर्ज्जपुर	के मोरीच	शाहवीजा	ने	,,	,,
१३—स्थानापुर	के चोरलिया	शाहवागा	ने	,,	,,
१४—चन्द्रावती	के पोकरणा	शाहरांणा	ने	,,	,,
१५—पैठराली	के कुलभद्र	शाहपद्मा	ने	,,	,,
१६—पद्मावती	के चीरड़ट	शाहदूधा	ने	,,	,,
१७—कोरंटपुर	के अदित्यनाग	शाहलाधा	ने	,,	,,
१८—शिवपुरी	के बाप्पनाग	शाहनारायण	ने	,,	,,
१९—वल्लभी	के बोहरा	शाहगाधा	ने	,,	,,
२०—स्तम्भनपुर	के भीयाणी	शाहनारा	ने	,,	,,
२१—भरोंच	के श्रेष्टिगो०	शाहगेंदा	ने	,,	,,
२२—माडव्यपुर	के कुमटगो०	शाहहंसा	ने	,,	,,
२३—मुग्धपुर	के कनोजिया	शाहहीरा	ने	,,	,,
२४—खटकूपनगर	के भूपाला	शाहमुकन	ने	,,	,,
२५—भशिकादुर्ग	के सुचंतिगो०	शाहपीरा	ने	,,	,,
२६—हर्षपुर	के सुचंतिगो०	शाहनाथा	ने	,,	,,
२७—नागपुर	के पाराका	शाहकर्मण	ने	,,	,,
२८—उपकेशपुर	के नागगोत्ता	शाहगर्गा	ने	,,	,,
२९—रावण	के चरडगोत्ता	शाहरावल	ने	,,	,
३०—सत्यण	के सुघडगो०	शाहरावण	ने	,,	,,
३१—मदनपुर	के मलगो०	शाहमाला	ने	,,	,,
३२—पालिका	के प्राग्वटवंशी	शाहचतुरा	ने	,,	,,
३३—शान्तिपुरा	के श्रीमालवंशी	शाहखेमा	ने	,,	,,
३४—रणकदुर्ग	के प्राग्वटवंशी	शाहनोंधण	ने	,	,,

आचार्य श्री के शासन मे यात्रार्थ संघादि शुभ कार्य—

१—उपकेशपुर	मे	लुंग गौत्रीय शाह जसा	ने	शत्रुञ्जय का	संघ	निकाला
२—नागपुर	से	अदित्य नाग० शाह सहदेव	ने	,,	,,	,,
३—हँसावली	से	बाप्प नाग० शाह हीना	ने	,,	,,	,,
४—पद्मावती	से	बलहा गौ० शाह नागदेव	ने	,,	,,	,,
५—आनन्दपुर	से	भूरि गौ० शाह पद्मा	ने	,,	,,	,,
६—रिहुनगर	से	चारलिया० शाह नेता	ने	,,	,,	,,
७—मेदनीपुर	से	सुघड़ गौ० शाह सुलतान	ने	,,	,,	,,

६—पाल्हिकापुरी	के चिंचट गो०	शाह	साना	ने	ऋषभ०	मन्दिर	प्रतिष्ठा
७—कोरंटपुर	के चरड़ गो०	,,	जगा	ने	,,	,,	,,
८—चन्द्रावती	के भूरि गो०	,,	जैसल	ने	शान्ति	,,	,,
९—शिवपुरी	के भाद्र गो०	,,	जोजर	ने	पार्श्व	,,	,,
१०—टेलीग्राम	के मल्ल गो०	,,	नाथा	ने	सुपार्श्व	,,	,,
११—नन्दपुर	के सुघड़ गो०	,,	आदू	ने	चद्र०	,,	,,
१२—ब्राह्मणपुर	के कुमट गो०	,,	ओटा	ने	धर्मनाथ	,,	,,
१३—विजयपुर	के कनौजिया०	,,	गेंदा	ने	महावीर	,,	,,
१४—देवपतन	के तप्तभट्ट	,,	डूंडमल	ने	,,	,,	,,
१५—पचासरा	के लघुश्रेष्टि०	,,	धीरा	ने	पार्श्व०	,,	,,
१६—पोतनपुर	के डिड्डू गो०	,,	धंघला	ने	,,	,,	,,
१७—रत्नपुर	के पोकरणा०	,,	चूड़ा	ने	अजीत०	,,	,,
१८—हुनपुर	के लुग	,,	चोला	ने	आदीश्वर	,,	,,
१९—चपटनगर	के श्रेष्टि०	,,	छाजू	ने	,,	,,	,,
२०—सागापुर	के श्रेष्टि गो०	,,	चहाड़	ने	महावीर	,,	,,
२१—श्रीनगर	के चिंचाट गो०	,,	तोला	ने	,,	,,	,,
२२—बावला	के प्राग्वट वंशी	,,	थाना	ने	,,	,,	,,
२३—कलकोड़ी	के प्राग्वट वंशी	,,	देदा	ने	पार्श्व	,,	,,
२४—खेडीपुर	के श्रीमाल वंशी	,,	देपाल	ने	,,	,,	,,
२५—खोखड़	के श्रीमाल वंशी	,,	जोजा	ने	चन्द्र	,,	,,
२६—खीजुरी	के श्री श्रीमाल गो०	,,	नागदा	ने	पार्श्व	,,	,,
२७—हेमड़ी	के सुघड गो०	,,	पेथा	ने	चोमुख	,,	,,
२८—दानीपुर	के सोमावत	,,	फूवा	ने	पार्श्व	,,	,,
२९—दुजाणा	के कुमट गो०	,,	सारंग	ने	महावीर	,,	,,
३०—वसावती	के बाप्पनाग०	,,	सलखण	ने	,,	,,	,,
३१—फूसीग्राम	के आदित्यनाग	,,	सूढ़ा	ने	,,	,,	,,
३२—नागपुर	के श्रेष्टि गो०	,,	महादेव	ने	पार्श्व	,,	,,
३३—शाकम्भरी	के लुग गो०	,,	धनदेव	ने	पार्श्व	,,	,,

पट्ट सतावीस यक्षदेव गुरु, भूरिगोत्र दिपाया था ।
तप जप ज्ञान अपूर्व करके, जैन झण्ड फहराया था ॥
संघ चतुर्विध के थे नायक, सुरनर शीश झुकाते थे ।
सुन करके उपदेश गुरु का, मुमुक्ष दीक्षा पाते थे ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २७ वें पट्टपर आचार्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

२८—आचार्य श्री कक्कसूरि (पाँचवां)

श्रेष्ठीत्यारम्भ कुले तु सम्प महिमा कक्काख्यसूरिः कृती ।
आभारम्भाभमरासु संघपतिना सार्धं ययौ पत्तने ॥
दीक्षां चाप्युपदेश पूर्वकं पुरे संघं प्रति प्रन्विन ।
जित्वा जैनमत प्रचार निपुणो ग्रन्थान् बहून् निर्ममौ ॥

चार्यश्री कक्कसूरीश्वर प्रखर धर्म प्रचारक जैन शासन के एक महान प्रभाविक आचार्य हुये आपके पवित्र जीवन के लिये पट्टावलीकार लिखते हैं कि पूर्व देश में धन धान्य पूर्ण आभापुरी नगरी थी। जहाँ जैनधर्म के कट्टर प्रचारक चतुर राजा चंद्र जैसे भूपति हो गये थे। अत आभापुरी एक प्राचीन नगरी थी जहाँ ऊँचे ऊँचे शिखर और दुग्धोज्वल कलस एवं ध्वजदंड से सुशोभित मन्दिर और अनेक धर्मशालायें थी। वहाँ १ धनाढ्य श्रावक सुखपूर्वक आत्मसाधना कर रहे थे उसमें श्रेष्ठिगोत्रिय वीर शाह धर्मसिंह नाम का एक बड़ा भारी व्यापारी था आपके श्रेष्ठी नाम की [illegible] जो आपके पूर्वज मरुधर से व्यापारार्थ आये थे पर व्यापार की अनुकूलता के कारण आभापुरी को ही अपना निवास स्थान बना लिया। शाह धर्मसिंह के ग्यारह पुत्र थे जिसमें कर्मा नाम का पुत्र बड़ा ही धर्मात्मा था। शाह धर्मसिंह ने अपने जीवन में तीन बार तीर्थों का संघ निकाला। आभापुरी में एक आदीश्वर भगवान का मन्दिर बनाया संघ को तिलक करके पहिरामणी दी इत्यादि शुभकार्यों में लाखों द्रव्य व्यय किया। अन्त में अपने पुत्र कर्मा को घर का भार सौंप आप सम्मेतशिखर तीर्थ पर अनशन कर स्वर्ग में वास किया। पीछे कर्मा भी सुपुत्र था उसने अपने पिता की अमल कीर्ति और यशस्वता को खूब बढ़ाया था कारण कर्मा की बड़ा ही उदार चित्त वाला था शुभकार्यों में भाग लेता था। शाह कर्मा ने अपने व्यापारिक व्यवसाय एवं व्यापार क्षेत्र को खूब विशाल बना दिया। केवल भारत में ही नहीं पर भारत के बाहर पाश्चात्य देशों के साथ भी कर्मा का व्यापार चलता था। साधर्मी भाइयों की ओर कर्मा का अधिक लक्ष था। शाह कर्मा के सात पुत्र और चार पुत्रियें थी। शाह कर्मा देवगुरु का परम भक्त था, धर्म साधना में हमेशा तत्पर रहता था। उस जमाने की यही तो खूबी थी कि इतना बड़ा कार्य भार होने पर भी वे अपना जीवन बड़े ही संतोष में व्यतीत करते थे। इतना व्यवसाय होने पर भी वे एक धर्म को ही उपादेय समझते थे।

एक समय शाह कर्मा अर्द्ध निद्रा में सो रहा था कि रात्रि में देवी सच्चायिका आकर कर्मा को कह रही है कि कर्मा तू कोरंटपुर स्थित भगवान महावीर की यात्रा कर तुमको बड़ा भारी लाभ होगा। बस इतने में तो कर्मा की आँखें खुल गई। उसने सोचा कि यह कौन होगी कि मुझे सूचित करती है कि तू कोरंटपुर मंडन महावीर की यात्रा कर। खैर, शाहकर्मा ने बाद निद्रा नहीं ली। सुबह अपनी स्त्री और पुत्र कलत्र को एकत्रित कर रात्रि का सब हाल सुनाया। महान लाभ के नाम से सब सम्मत हो गये कि अपने

पूर्वज बातें भी किया करते थे कि एक बार जननी जन्म भूमि की स्पर्शना करनी है वे नहीं कर पाये। जब ऐसा संकेत हुआ है तो अपने सब कुटुम्ब के साथ उपकेशपुर की यात्रा अवश्य करनी चाहिये। शाह कर्मा ने सोचा कि उपकेशपुर भी एक तीर्थ ही है। अव्वल तो अपनी जन्म भूमि है दूसरे महावीर के दर्शन तीसरे अपनी कुलदेवी सच्चायिका। अतः संघ के साथ ही यात्रा करनी चाहिये। जब काम बनने को होता है तब निमित्त भी सब अनुकूल मिल जाता है। इधर से पूर्व में विहार करने वाले उपकेशगच्छीय वाचनाचार्य देवप्रभ अपने शिष्य परिवार से आभापुरी पधार गये। शाह कर्मा ने अपने विचार वाचकजी के सामने रक्खे। वाचकजी ने तुरत ही आपके सम्मत होकर उपदेश दिया कि कर्मा समय का विश्वास नहीं है धर्मका कार्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये।

कर्मा ने संघ की तैयारियें करनी शुरू करदीं और अंग वंग मगध कलिंग वगैरह प्रान्तों में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवादीं। कारण उस समय पूर्व देश में मरुधर से आये हुये उपकेशवंशी लोगों की काफी संख्या थी और उपकेशपुर का संघ निकालने का यह पहला ही अवसर था अतः ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाला था। ठीक शुभ मुहूर्त में कर्मा शाह को संघपति पद प्रदान कर दिया और वाचनाचार्य देवप्रभ के नायकत्व में संघ ने प्रयाण कर दिया। रास्ते में जितने तीर्थ आये सबकी यात्रा की ध्वजमहोत्सव वगैरह शुभकार्य करते हुए संघ उपकेशपुर पहुँचा। शासनाधीश चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर की यात्रा का लाभ तो मिला ही पर विशेष में उपकेशगच्छाधीश धर्मप्राण आचार्य यक्षदेवसूरि भी अपने शिष्य मण्डल के साथ उपकेशपुर विराजते थे उनके दर्शन का भी संघ को लाभ अनायास मिल गया जिसकी संघ को बड़ी भारी खुशी थी तत्पश्चात् देवी सच्चायिका के दर्शन किये। इधर वाचनाचार्यजी ने भी आकर अपने पूज्य आचार्य देव को वंदना की और चिरकाल से मिलने से साधुओं के समागम से बड़ा भारी आनन्द हुआ।

संघ ने स्थावर तीर्थ के साथ जंगम तीर्थ की यात्रा की तो उपदेशश्रवण की भावना होना तो स्वाभाविक ही था। सूरिजी ने दूसरे दिन व्याख्यान दिया तो नगर के अलावा संघपति कर्मा तथा संघ के सब लोग व्याख्यान में उपस्थित हुये। सूरिजी ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि मोक्षमार्ग की आराधना के लिये प्रवृति और निर्वृति एवं दो मार्ग हैं। प्रवृति कारण है तब निवृति कार्य है। कार्य को प्रगट करने के लिये कारण मुख्य साधन है। जैसे एक मनुष्य को मकान पर चढ़ना है तो सीढ़ी के आलम्बन की जरूरत है। बिना सीढ़ी मकान के ऊपर पहुँच नहीं सकता है पर केवल सीढ़ी को ही पकड़ के बैठ जाना एवं संतोष करलेना ठीक नहीं हैं, पर आगे बढ़कर मकान पर जल्दी पहुँचजाने की कोशिश करना चाहिये। कारण, विलम्ब करने में कई अन्तरायें उपस्थित होजाती हैं। इसी प्रकार प्रवृति मार्ग में प्रवृति करता हुआ निर्वृति प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये जैसे पूजा, प्रभावना, स्वामी वात्सल्य, मन्दिर मूर्ति बनाना, तीर्थ यात्रा के लिये संघ निकालना। यह सब प्रवृति मार्ग है इसका उद्देश्य निर्वृति प्राप्त करने का है जैसे सीढ़ी पर रहा हुआ मनुष्य मकान पर चढ़ता है इसी प्रकार मनुष्य को प्रवृति से ऊँचा चढ़ निर्वृति मार्ग को स्वीकार कर उसकी ही आराधना करनी चाहिये। जब तक आरम्भ और परिग्रह को न छोड़ा जाय तब तक निर्वृति आ नहीं सकती है अतः निर्वृति के लिये सर्वोत्कृष्ट मार्ग तीर्थंकर कथित भगवती जैनदीक्षा है इसकी आराधना किये बिना मोक्ष हो नहीं सकती है। क्योंकि गृहस्थ ज्यादा से ज्यादा पाचवें गुणस्थान का स्पर्श कर सकता है तब मोक्ष है चौदहवें गुणस्थान के अन्त में। श्रावकों! अभी आपको बहुत दूर जाना है।

चेतना हो तो चेत लो यह सुअवसर हाथों से जाता है। आयुष्य का क्षण मात्र भी विश्वास नहीं है। यदि आपको जन्म मरण के दुःख मिटा कर आत्मा सुखी बनाना है तो आज ही क्या तो देरी से भी या भवान्तर में तो दीक्षा अवश्य लेनी पड़ेगी पर भविष्य में न जाने कैसे संयोग एवं साधन मिलेंगे वे दीक्षा लेने में साधक होंगे या बाधक ? अतः मेरी सलाह तो यही है कि क्षणमात्र का विलम्ब न करके अभी दीक्षा लेकर मोक्ष को नजदीक कर लेना चाहिये इत्यादि। सूरिजी के उपदेश ने तो मोह निद्रा में सोये हुये मनुष्यों को जागृत कर दिया। संघपति कर्मा ने सोचा कि क्या सूरिजी ने आज मुझे ही उपदेश दिया है पर आपका कहना अक्षरशः सत्य है चाहे द्रव्य दीक्षा लो चाहे भाव दीक्षा लो पर यह तो निश्चय है कि दीक्षा बिना मोक्ष नहीं है तो मुझे तो आज ही सूरिजी के पास दीक्षा लेलेनी चाहिये। बस फिर तो देरी ही क्या थी मनुष्य को भावना ही फिरनी चाहिये। कर्मा को फिकर देने संसार असार लगने लग गया। उसने उठकर सूरिजी से अर्ज की प्रभो ! आपका कहना सत्य है और मैं उसे स्वीकार करने को भी तैयार हूं। परिषदा के लोग शाह कर्मा के शब्द सुन कर चकित रह गये कि संघपति यह क्या कह रहा है ? कई लोगों ने सोचा कि संघपति दीक्षा लेने को तैयार है तो अपने को ऐसा अवसर हाथों से क्यों जाने देना चाहिये। पहिले भी इनके साथ तीर्थयात्रा की तो अब भी संयम यात्रा करनी चाहिये कई १० नरनारी कर्मा के साथ होगये और कर्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र धन्ना को संघपति की माला एवं सब घर का भार सुपुर्द करके आपने १० नरनारियों के साथ भगवान् महावीर के मन्दिर में सूरिजी के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली। क्षयोपशम इसका ही नाम है जैसे सतुलवी कम एक साथ बंधते हैं वैसे ही पूर्वभव के दुष्कर्म से कर्मों का क्षयोपशम भी एक साथ में होजाता है। जम्बुकुंवार के साथ ५२० जनों का सम्बन्ध था तब इन्द्रभूति आदि के साथ ४४०० ब्राह्मणों का सम्बन्ध था एक साथ में ही दीक्षित हुये थे। आचार्य श्री ने सबको दीक्षा देकर संघपति कर्मा का नाम धर्मविशाल रख दिया था। तदान्तर मुनि धर्मविशाल ने ज्ञानाभ्यास कर धुरंधर विद्वान होगये तथा सबगुण सम्पादित कर लिये तो आचार्य कक्कदेवसूरि ने शाकम्भरी नगरी में श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक मुनि धर्मविशाल को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। जो नाम के पट्टपरम्परा से क्रमशः चला आ रहा था—

आचार्य कक्कसूरि बड़े ही विद्वान् प्रतिभाशाली और धर्मप्रचारक आचार्य हुये। आचार्य कक्कसूरि सपादलक्ष प्रान्त में सर्वत्र विहार करते हुये नागपुर पधारे। वहाँ के बाप्पनाग गोत्रिय शाह पुनड़ ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय करके सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही समारोह से महोत्सव किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था और जनता पर प्रभाव भी खूब ही पड़ता था। एक दिन सूरिजी ने उपकेशपुर का वर्णन करते हुये फरमाया कि जैसे शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थ हैं वैसे ही मरुधर में उपकेशपुर भी एक तीर्थ है जिसमें महाजन संघ के लिये तो उपकेशपुर की भूमी और भी विशेष है। कारण वहाँ पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से महाजन वंश और भगवान् महावीर के मन्दिर की स्थापना हुई थी। महाजन संघ की रक्षक देवी सच्चायिका का स्थान भी उपकेशपुर में ही है। अतः महाजन संघ का कर्त्तव्य है कि साल में एक बार उपकेशपुर की स्पर्शना कर भगवान महावीर का स्नात्र महोत्सव करके लाभ उठावें इत्यादि। सूरिजी के उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ। बप्प गोत्रिय शाह पुनड़ ने उपकेशपुर की यात्रार्थ संघ निकालने का विचार कर सूरिजी एवं श्रीसंघ से प्रार्थना की कि मेरी इच्छा है कि मैं उपकेशपुर का संघ निकाल कर

श्रीसंघ के साथ यात्रा करूँ। सूरिजी ने फरमाया कदर्पि तू भाग्यशाली है। तीर्थयात्रा का लाभ कोई साधारण लाभ नहीं है पर इस पुनीत कार्य से कई भव्यों ने तीर्थङ्कर नाम कर्मोपार्जन किया है क्योंकि श्रीसंघ रत्नों की खान है इसमें मोक्षगामी जीव भी शामिल है न जाने किस जीव के इस निमित्त कारण से किस प्रकार से भला हो जाता है इत्यादि बाद में सघ अग्रेश्वरों ने भी कहा कदर्पि आपके यह विचार सुन्दर और शुभ हैं। आप खुशी से सघ निकालें श्रीसंघ आपके सहमत है। बस, फिर तो था ही क्या नागपुर के घर-घर में आनद मगल छागया। कारण गुरुदेव के साथ छरी पाली यात्रा का करना कौन नहीं चहाता था। सेठ कदर्पि ने सघ के लिये आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी और सब तरह की तैयारियें करने में लग गया। कदर्पि जैसे विपुल सम्पत्ति का मालिक था वैसे ही बहुकुटुम्बी भी था। और दिल का भी उदार था—

सूरिजी के दिये हुये शुभ मुहूर्त में शाह कदर्पि को संघपति पद अर्पण कर सूरिजी के नायकत्व में संघने प्रस्थान कर दिया। मुग्धपुर, कुर्च्चपुर, फलवृद्धि, मेदनीपुर खटकूप शखपुर, हर्षपुर, आसिकापुरी और माढव्यपुर होते हुये जब सघ उपकेशपुर पहुँचा तो वहाँ के लोगों को ज्ञात हुआ कि आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज नागपुर से सघ के साथ पधार रहे हैं अतः संघ में उत्साह का पार नहीं रहा। सघ की ओर से नगर प्रवेश का बड़े ही समारोह के साथ महोत्सव किया। भगवान् महावीर की यात्रा कर सबने अपना अहो भाग्य समझा तत्पश्चात् पहाड़ी पर भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की यात्रा और देवी सच्चायिका के दर्शन एवं आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज के स्थूभ की यात्रा की। सघपति ने पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि अनेक शुभ कार्य किये अष्टान्हिका महोत्सव और ध्वजारोहणमें सघपति ने पुष्कल द्रव्य व्यय कर खूब ही पुन्योपार्जन किया।

वहाँ भी सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि यों तो मोक्ष मार्ग की आराधना के अनेक कारण हैं पर साधर्मी भाइयों के साथ में वात्सल्यता रखना उनकी सहायता एव सेवा उपासना करना विशेष लाभ का कारण है शास्त्रों में भी कहा है कि

"रागत्थ सव्व धम्मा, साहम्मिअ वच्छलं तु एगत्थ" । बुद्धि तुलाए तुलिया, देवि अतुल्लाइं भणिआइं ॥

श्रोताओ! इसी वात्सल्यता के कारण जो महाजन सघ लाखों की सख्या में था वह करोड़ों तक पहुँच गया है। आपने सुना होगा कि जिस समय महाराजा चेटक और कोणिक के आपस में युद्ध हुआ उस समय काशी कौशल के अट्ठारह गण राजा केवल एक साधर्मी भाई के नाते से चेटक राजा की मदद में अपने २ राज्य का बलिदान करने को तैयार होगये। इतना ही नहीं पर उन्होंने अपने २ राज बलिदान कर भी दिया था। अत साधर्मी भाइयों की ओर सदैव वात्सलयता रखनी चाहिये।

यात्रार्थ संघ निकलना भी एक साधर्मी वात्सल्यता ही है पूर्व जमाने म भरत सागर चक्रवर्ती व राम पाण्डव जैसे भाग्यशालियों ने सघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को तीर्थों की यात्रा करवाई थी। महाराज उत्पलदेव, सम्राट सम्प्रति और राजा विक्रमादि अनेक भूपतियों ने तथा इस महाजन सघ के अनेक भाग्यशालियों ने भी सम्मेत शिखर शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों के सघ निकाल कर अपने साधर्मी भाइयों को यात्रा करवाई थी। इसका अर्थ यह नहीं होता है कि एक धनाढ्य संघ निकाले और साधारण लोग उसमें शामिल होकर यात्रार्थ जावे। पर साधारण मनुष्य के निकाले हुये सघ में धनाढ्य लोग भी जाते और उसके दिये हुये स्वामीवात्सल्य एव पहरामणी को वे धनाढ्य बड़ी खुशी से लेते थे और आज भी ले रहे

हैं तथा भविष्य में लेंगे जैनधर्म की यही तो एक विशेषता है कि द्रव्य की अपेक्षा भावों को ही विशेष स्थान दिया है इत्यादि सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर अच्छा असर हुआ और साधर्मी भाइयों की वात्सल्यता पर विशेष भाव जागृत हुए। शाह करमसी ने अपनी भावना से इस शुभ कार्य में पुष्कल द्रव्य व्यय किया और सूरिजी को वन्दन कर संघ वापिस लौट कर नागपुर गया। सूरिजी कई अर्सों तक उपकेशपुर में स्थिरता की जिससे धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। बाद वहाँ से विहार कर आस-पास के ग्रामों में भ्रमन करते हुए कोरंटपुर नगर की ओर पधार रहे थे।

उस समय कोरंट संघ में एक ऐसा विग्रह उत्पन्न हुआ था कि सूरिजी के पधारने की न तो किसी ने खबर मंगाई न स्वागत ही की तैयारियें की। किन्तु वहाँ पर कोरंटगच्छीय उपाध्याय देवशेखर विराजते थे। उन्होंने सुना कि आचार्य यक्षसूरिजी महाराज पधार रहे हैं। संघ को बुला कर कहा कि यह क्या बात है कि संघ निश्चिन्त बैठा है हाँ, साधुओं को तो इस बात की जरूरत नहीं है पर इसमें संघ की क्या शोभा है कि यक्षसूरि जैसे प्रभाविक आचार्य कृपा कर आपके नगर की ओर पधार रहे हैं जिसमें तुम्हारा कुछ भी उत्साह नहीं। यह बड़े अफसोस की बात है संघ अग्रेसरों ने कहा पूज्यवर! यहाँ एक उपकेशवंशी व्यक्ति ने राजपूत की कन्या के साथ शादी करली है जिसका विग्रह फैल रहा है। उपाध्यायजी ने कहा कि ऐसे पूज्य पुरुष के पधारने से विग्रह शान्त हो जायगा अतः सूरिजी का स्वागत कर नगर-प्रवेश कराओ। उपाध्यायजी महाराज अपने शिष्यों को लेकर सूरिजी के सामने गये और श्री संघ ने भी अच्छा स्वागत किया सूरिजी-भगवान महावीर के दर्शन कर उपाध्यायजी के साथ उपाश्रय पधारे। और थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी बाद सभा विसर्जन हुई। जब संघ का झगड़ा सूरिजी के पास आया तो सूरिजी ने मधुर वचनों से सबको समझाया कि राजपूत की कन्या के साथ विवाह करने में आपको क्या नुकसान हुआ है। एक अजैन कन्या आपके घर में आई है आपके धर्म की आराधना करेगी और आप सब राजपूत ही थे वैवाहिक क्षेत्र जितना विशाल होता है उतनी ही सुविधा रहती है। जब से क्षेत्र संकुचित हुआ है तब से फायदा नहीं किन्तु नुकसान ही हुआ है अतः व्यर्थ ही आपस संघ में विग्रह डालना सिवाय कर्मबंध के कुछ भी लाभ नहीं है। यदि राजपूत की पुत्री जैनधर्म का वासक्षेप लेले एवं शिक्षा दीक्षा लेकर भगवान महावीर की स्नात्र महोत्सव करलें फिर तो संघ में किसी प्रकार का मतभेद नहीं रहना चाहिये।

बस सूरिजी का कहना दोनों पक्ष वालों ने स्वीकार कर लिया। कारण, उस समय जैनाचार्यों का संघ पर बड़ा भारी प्रभाव था। अपक्षपात से कहना सब संघ शिरोधार्य कर लेता था। कोरंट संघ में शांति हो गई। राजपूत कन्या ने सूरिजी से वासक्षेप लेकर जैनधर्म स्वीकार कर लिया और भगवान् महावीर का स्नात्र महोत्सव कर अपना अहोभाग्य समझा। हाँ कलिकाल ने तो श्री संघ में फूट कुसम्प के बीज बोने का प्रयत्न किया था पर आचार्य भी हाथ में दंड लेकर खड़े कदम रहते थे।

संघ में एक वरदत्त के विषय में भी मतभेद चलता था उसको भी सूरिजी ने शान्त कर दी थी इतना ही क्यों पर वरदत्त को बड़े ही समारोह से दीक्षा देकर सूरिजी ने अपना शिष्य बना कर उसका नाम मुनि पूर्णचंद्र रख दिया था—यह सब सूरिजी की अपूर्व कुशलता एवं अपक्षपात वृत्ति का ही प्रभाव था।

सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था। व्याख्यान एक शांति और वैराग्य का मुख्य कारण था। व्याख्यान से अनेक भावुकों का कल्याण होता है त्यागियों के व्याख्यान का जनता पर असर

प्रभाव पड़ता है। एक समय सूरिजी महाराज ने अपने व्याख्यान में अनादि संसार का वर्णन करते हुये फरमाया कि मोह कर्म के जोर से जीव अनादि काल से जन्म मरण करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता आया है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्टी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ सागरोपम की है जिसमें गुनंतर कोड़ाकोड़ सागरोपम मिथ्यात्व दशा में ही क्षय करता है जब धर्म प्राप्ती करने के योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव का निमित्त कारण मिलता है तत्पश्चात् सात प्रकृतियों का क्षय करता है जैसे—

१—मिथ्यात्व मोहनीय-कुदेव, कुगुरु, कुधर्म पर श्रद्धा विश्वास रखना।

२—मिश्रमोहनीय-सुदेव, सुगुरु, सुधर्म और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को एकसा ही मानना।

३—सम्यक्त्व मोहनीय-क्षायक दर्शन आने में रुकावट करना। पर दर्शन का विरोधी न हो।

४—अन्तानुबंधी क्रोध-जैसे पत्थर की रेखा वैसे ही जावत जीव क्रोध रखना।

५—अन्तानुबन्धी मान जैसे वज्र का थंभ वैसे ही जावत् जीव मान रखना।

६—अन्तानुबन्धी माया-जैसे बांस की गांठ वैसे ही जावत जीव माया रखना।

७—अंतानुबंधी लोभ-जैसे किरमिची रंग वैसे ही जावत् जीव लोभ रखना।

इन सात प्रकार का क्षय करने से दर्शन गुण (सम्यकत्व) प्राप्त होता है। जब जीव को क्षायक दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो वह फिर संसार में जन्म मरण नहीं करता है। यदि किसी भव का आयुष्य नहीं बंधा हो तो उसी भव में मोक्ष जाता है किंतु आयुष्य पहिले बंध गया हो तो एक भव बधा हुआ आयुष्य का करता है और दूसरे भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शास्त्र में जो तीन भव कहा है इसका कारण यह है कि यदि तिर्यंच का आयुष्य बंधा हुआ हो तो उसको तिर्यंच में जाना पड़ता है और सम्यग्दृष्टि तिर्यंच सिवाय विमानीक देव के आयु बंध नहीं सकता है अतः तिर्यंच से विमानीक देवता का भव करे और वहां से मनुष्य का भव कर मोक्ष जाना है। दर्शन के साथ ज्ञान चारित्र की भी आवश्यकता रहती है और इन तीनों की आराधना करने से ही जीव की मोक्ष होती है। श्री भगवतीजी सूत्र के आठवें शतक के दशवें उद्देश्य मे विस्तार से उल्लेख मिलता है कि—

आराधना तीन प्रकार की होती है, ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना इनके भी तीन २ भेद बतलाये हैं जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टा—जो निम्न लिखित हैं—

१—ज्ञानाराधना के तीन भेद

१—जघन्य ज्ञानाराधना अष्ट प्रवचन की आराधना करना। या मति श्रुति ज्ञान की आराधना करना

२—मध्यम ज्ञानाराधना-एकादशांग की आराधना करना। अवधि० मन पर्यव ज्ञान की ,, ,,

३—उत्कृष्ट ज्ञानाराधना-चौदह पूर्व एव दृष्टिवाद की आराधना या केवल ज्ञान की ,, ,,

इनके अलावा ज्ञान पढ़ने में उद्यमापेक्षा थोड़ा परिश्रम करना यह जघन्य आराधना है मध्यमोद्यम करना यह मध्यम आराधना है और उत्कृष्ट—प्रबल्य परिश्रम करना यह उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है। चाहें पूर्व भवोपार्जित ज्ञानावर्णिय कर्मोदय होने में ज्ञान नहीं चढ़ता हो पर उत्कृष्ट परिश्रम करने से ज्ञानवर्णिय कर्म का क्षय हो सकता है। जैसे एक मुनि को परिश्रम करने पर एक पद भी नहीं आसका परंतु उसने उद्यम नहीं छोड़ा अर्थात् रुचि पूर्वक उद्यम करता रहा। अत में उसको केवल ज्ञान उत्पन्न होगया।

हैं तथा भविष्य में ऐसे जैनधर्म की यही तो एक विशेषता है कि द्रव्य की अपेक्षा भावकों को विशेष स्थान दिया है इत्यादि सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर अच्छा असर हुआ और स्वधर्मी भाइयों की वात्सल्यता पर विशेष भाव जागृत हुए। शाह कल्हणने अपनी उदारता से इस शुभ कार्य में पुष्कल द्रव्य व्यय किया और सूरिजी को वन्दन कर संघ वापिस लौट कर माण्डवपुर गया। सूरिजी कई असी तक उपकेशपुर में स्थिरता कि जिससे धर्म की खूब ही प्रभावना हुई। बाद वहाँ से विहार कर आस-पास के ग्रामों में भ्रमन करते हुए कोरंटपुर नगर की ओर पधार रहे थे।

उस समय कोरंट संघ में एक ऐसा विग्रह उत्पन्न हुआ था कि सूरिजी के पधारने की न तो किसी ने खबर मंगाई न स्वागत ही की तैयारियें की। किन्तु वहाँ पर कोरंटगच्छीय उपाध्याय मेरुशेखर विराजते थे। उन्होंने सुना कि आचार्य कक्कसूरिजी महाराज पधार रहे हैं। संघ को बुला कर कहा कि यह क्या बात है कि संघ निश्चिन्त बैठा है हाँ, साधुओं को तो इस बात की जरूरत नहीं है पर इसमें संघ की क्या शोभा है कि कक्कसूरि जैसे प्रभाविक आचार्य कृपा कर आपके नगर की ओर पधार रहे हैं जिसमें तुम्हारा कुछ भी उत्साह नहीं। यह बड़े अफसोस की बात है संघ अग्रेसरों ने कहा पूज्यवर! यहाँ एक जैनेतर व्यक्ति ने राजपूत की कन्या के साथ शादी करली है जिसका विग्रह फैल रहा है। उपाध्यायजी ने कहा कि ऐसे पूज्य पुरुष के पधारने से विग्रह शांत हो जायगा अतः सूरिजी का स्वागत कर नगर-प्रवेश कराओ। उपाध्यायजी महाराज अपने शिष्यों को लेकर सूरिजी के सामने गये और श्री संघ ने भी अच्छा स्वागत किया सूरिजी-भगवान महावीर के दर्शन कर उपाध्यायजी के साथ उपाश्रय पधारे। और चौकी पर धारगर्भित देशना दी बाद सभा विसर्जन हुई। जब संघ का झगड़ा सूरिजी के पास आया तो सूरिजी ने मधुर वचनों से सबको समझाया कि राजपूत की कन्या के साथ विवाह करने से आपको क्या नुकसान हुआ है। एक अजैन कन्या आपके घर में आई है आपके धर्म की आराधना करेगी और आप स्वयं राजपूत ही थे वैवाहिक क्षेत्र जितना विशाल होता है उतनी ही सुविधा रहती है। जब से क्षेत्र संकुचित हुआ है तब से फायदा नहीं किन्तु नुकसान ही हुआ है अतः विग्रह ही कारण संघ में विग्रह बढ़ाना सिवाय कर्मबन्ध के कुछ भी लाभ नहीं है। यदि राजपूत की पुत्री जैनधर्म का वासक्षेप लेवे एवं शिक्षा दीक्षा लेकर भगवान महावीर की स्नात्र महोत्सव करावें फिर तो संघ में किसी प्रकार का मतभेद नहीं रहना चाहिये।

बस सूरिजी का कहना दोनों पक्ष वालों ने स्वीकार कर लिया। कारण उस समय जैनाचार्यों का संघ पर बड़ा भारी प्रभाव था। अपक्षपात से कहना सब संघ शिरोधार्य कर लेता था। कोरंट संघ में शांति हो गई। राजपूत कन्या ने सूरिजी से वासक्षेप लेकर जैनधर्म स्वीकार कर लिया और भगवान् महावीर का स्नात्र महोत्सव कर अपना अहोभाग्य समझा। हाँ, कलिकाल ने तो भी संघ में फूट कुसम्प के बीज बोने का प्रयत्न किया था पर आचार्य श्री हाथ में दंड लेकर खड़े कदम रहने से।

संघ में एक वरदत्त के विषय में भी मतभेद चलता था उसको भी सूरिजी ने शान्त कर दी थी इतना ही क्यों पर वरदत्त को बड़े ही समारोह से दीक्षा देकर सूरिजी ने अपना शिष्य बना कर उसका नाम मुनि पूर्णचंद्र रख दिया था—यह सब सूरिजी की कार्य कुशलता एवं [illegible] वृत्ति का ही प्रभाव था।

सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था। व्याख्यान एक शांति और वैराग्य का मुख्य कारण था। व्याख्यान से अनेक भावुकों का कल्याण होता है त्यागियों के व्याख्यान का जनता पर अवश्य

प्रभाव पड़ता है। एक समय सूरिजी महाराज ने अपने व्याख्यान में अनादि संसार का वर्णन करते हुये फरमाया कि मोह कर्म के जोर मे जीव अनादि काल से जन्म मरण करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता आया है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्टी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ सागरोपम की है जिसमें गुनंतर कोड़ाकोड़ सागरोपम मिथ्यात्व दशा में ही क्षय करता है जब धर्म प्राप्ती करने के योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव का निमित्त कारण मिलता है तत्पश्चात् सात प्रकृतियों का क्षय करता है जैसे—

१—मिथ्यात्व मोहनीय-कुदेव, कुगुरु, कुधर्म पर श्रद्धा विश्वास रखना।
२—मिश्रमोहनीय-सुदेव, सुगुरु, सुधर्म और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को एकसा ही मानना।
३—सम्यक्त्व मोहनीय-क्षायक दर्शन आने में रुकावट करना। पर दर्शन का विरोधी न हो।
४—अन्तानुबंधी क्रोध-जैसे पत्थर की रेखा वैसे ही जावत जीव क्रोध रखना।
५—अन्तानुबन्धो मान जेसे वज्र का थंभ वैसे ही जावत् जीव मान रखना।
६—अन्तानुबन्धी माया-जैसे बांस की गांठ वैसे ही जावत जीव माया रखना।
७—अंतानुबंधी लोभ-जैसे किरमिची रंग वैसे ही जावत् जीव लोभ रखना।

इन सात प्रकृति का क्षय करने से दर्शन गुण (सम्यक्त्व) प्राप्त होता है। जब जीव को क्षायक दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो वह फिर संसार में जन्म मरण नहीं करता है। यदि किसी भव का आयुष्य नहीं बंधा हो तो उसी भव में मोक्ष जाता है किंतु आयुष्य पहिले बंध गया हो तो एक भव बधा हुआ आयुष्य का करता है और दूसरे भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शास्त्र में जो तीन भव कहा है इसका कारण यह है कि यदि तिर्यंच का आयुष्य बधा हुआ हो तो उसको तिर्यंच में जाना पड़ता है और सम्यग्दृष्टि तिर्यंच सिवाय विमानीक देव के आयु बंध नहीं सकता है अत तिर्यंच से विमानीक देवता का भव करे और वहां से मनुष्य का भव कर मोक्ष जाता है। दर्शन के साथ ज्ञान चारित्र की भी आवश्यकता रहती है और इन तीनों की आराधना करने से ही जीव की मोक्ष होती है। श्री भगवतीजी सूत्र के आठवें शतक के दशवें उद्देश्य में विस्तार से उल्लेख मिलता है कि—

आराधना तीन प्रकार की होती है, ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना इनके भी तीन २ भेद बतलाये हैं जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टा—जो निम्न लिखित हैं—

१—ज्ञानाराधना के तीन भेद

१—जघन्य ज्ञानाराधना अष्ट प्रवचन की आराधना करना। या मति श्रुति ज्ञान की आराधना करना
२—मध्यम ज्ञानाराधना-एकादशांग की आराधना करना। अवधि० मन' पर्यव ज्ञान की ,, ,,
३—उत्कृष्ट ज्ञानाराधना चौदह पूर्व एव दृष्टिवाद की आराधना या केवल ज्ञान की ,, ,,

इनके अलावा ज्ञान पढ़ने में उद्यमापेक्षा थोड़ा परिश्रम करना यह जघन्य आराधना है मध्यमोद्यम करना यह मध्यम आराधना है और उत्कृष्ट—प्रबल्य परिश्रम करना यह उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है। चाहें पूर्व भवोपार्जित ज्ञानावर्णीय कर्मोदय होने से ज्ञान नहीं चढ़ता हो पर उत्कृष्ट परिश्रम करने से ज्ञानवर्णीय कर्म का क्षय हो सकता है। जैसे एक मुनि को परिश्रम करने पर एक पद भी नहीं आसका परंतु उसने उद्यम नहीं छोड़ा अर्थात् रुचि पूर्वक उद्यम करता रहा। अंत में उसको केवल ज्ञान उत्पन्न होगया।

२—दर्शन आराधना के तीन भेद

दर्शनाराधना भी तीन प्रकार की है। जैसे कि—

१—जघन्य दर्शनाराधना-जघन्य क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

२—मध्यम दर्शनाराधना-उत्कृष्ट क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

३—उत्कृष्ट दर्शनाराधना-क्षायक सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

व्यवहारापेक्षा जघन्य दर्शनाराधना देवदर्शन एवं पूजन करना गुरुदर्शन स्वधर्मियों से वात्सल्यता आदि जिनशासन की उन्नति के कार्यों में शामिल होना। मध्यम दर्शनाराधना तीर्थयात्रा या मंदिर बनाना मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाना, स्वधर्मी भाइयों को सहायता पहुँचा कर धर्म में अस्थिर होते हुए को स्थिर करनादि। उत्कृष्ट दर्शनाराधना तीर्थों का बड़ा संघ निकालना अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित करनादि।

३—चारित्र आराधना के तीन भेद

१—जघन्य चारित्र आराधना सामयिक चारित्र, छेदोपस्थापनीय एवं सर्वव्रत धारण कर आराधना करना।

२—मध्यम चारित्र आराधना-परिहार विशुद्ध एवं सूक्ष्म संपराय चारित्र की आराधना।

३—उत्कृष्ट चारित्र आराधना-यथाख्यात चारित्र की आराधना।

व्यवहार की अपेक्षा चारित्रवान को उपकरण वगैरह सहायता पहुँचाना यह जघन्य चारित्र आराधना चारित्र का अनुमोदन करना चारित्र लेने वालों के भावों की वृद्धि करना यह मध्यम चारित्र आराधना और चारित्र लेना या चारित्र से पतित होते हुए को चारित्र में स्थिर करना यह उत्कृष्ट चारित्र आराधना है।

इन ज्ञान दर्शन चारित्र की जघन्य आराधना करने वाले जीव पन्द्रह भव में अवश्य मोक्ष जाता है तथा इन रत्नत्रय की मध्यम आराधना करने से तीन भव में तथा उत्कृष्ट आराधना करने से उसी भव में मोक्ष जाता है। अतएव आप लोगों को इस भव में जब सामग्री अनुकूल मिलगई है तो ज्ञान दर्शन चारित्र की जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट जैसी बने वैसी आराधना अवश्य करनी चाहिये इत्यादि खूब विस्तार से उपदेश दिया जिसका श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। और आत्मकल्याण की भावना वालों की अभिरुचि आराधना की ओर झुक गई। सूरिजी ने कोरंटपुर में स्थिरता कर वहाँ के श्रीसंघ में धार्मिक जागृत करदी और उनको इस प्रकार समझाया कि उनका दिल उदार एवं विशाल बन गया।

एक समय चन्द्रावती नगरी के संघ अग्रेश्वर सूरिजी के दर्शनार्थ आये और प्रार्थना की कि प्रभो! चन्द्रावती का सकल श्रीसंघ आपके दर्शनों की अभिलाषा कर रहा है अतः आप शीघ्र ही चन्द्रावती पधारें आपके पधारने से बहुत उपकार होगा। सूरिजी ने फरमाया कि हमको विहार तो करना ही है और इस प्रदेश में आये हैं तो चन्द्रावती की स्पर्शना भी करनी ही है पर आप शीघ्रता करने को कहते हो ऐसा वहाँ क्या लाभ है? श्रावकों ने कहा यह तो आप वहाँ पधारेंगे तब मालूम हो जायगा। सूरिजी ने कहा क्या कोई दीक्षा लेने वाला है या मंदिर की प्रतिष्ठा करवानी है तथा तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालना है ऐसा कौनसा लाभ है? श्रावकों ने कहा कि दीक्षा भावक ही लेते हैं मंदिर भावक ही करवाते हैं और संघ भी भावक ही निकालते हैं। आप चंद्रावती पधार सब होगा। सूरिजी ने कहा क्षेत्र स्पर्शना। बस चंद्रावती के श्रावक सूरिजी को वंदन करके चले गये। तदनंतर सूरिजी कोरंटपुर से विहार करके आस पास के ग्रामों में धर्मोपदेश करते

हुये चन्द्रावती पधारे। श्रीसंघने बड़े ही समारोह से सूरिजी का स्वागत किया। सूरिजी महाराज ने मंगलाचरण में ही फरमाया कि जिनशासन की प्रभावना।जिनशासन की उन्नति और मिथ्या दृष्टियों को प्रतिबोध करने से जीव तीर्थङ्कार नाम कर्मोपार्जन करता है। इस विषय में कई उदाहरण बतला कर जनता पर अच्छा प्रभाव डाला तत्पश्चात् भगवान् महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्ज्जन हुई।

दोपहर के समय जो कोरटपुर आये थे वे श्रावक आये। सूरिजी को वन्दन करके अर्ज की कि प्रभो! यह दुर्गा श्रीमाल है इसने भगवान शान्तिनाथ का मंदिर बनाया है इसकी इच्छा है कि प्रतिष्ठा करवा कर श्रीशत्रुंजय का संघ निकालूं और उस तीर्थ की शीतल छाया में दीक्षा ग्रहण करूं इसलिये हम आपके पास विनती करने को आये थे। सूरिजी ने कहा दुर्गा बड़ा ही भाग्यशाली है। जो श्रावक के करने योग्यकृत्य हैं उनको करके कृतार्थ होना चाहिये। दुर्गा ने जो कार्य करने का निश्चय किया यह तो बहुत अच्छा है कल्याणकारी है पर। दुर्गा के कुटुम्ब में कौन है? उन्होंने कहा दुर्गा के औरस तो गुजर गई तीन पुत्र और पौत्रे वगैरह हैं पर वे भी धर्मिष्ट हैं उन्होंने कह दिया कि आप अपने कमाये द्रव्य को धर्म-कार्य में व्यय करें इसमे हमारा कोई उजर नहीं है इतना ही नहीं वल्कि जरूरत हो तो हम अपने पास से भी दे सकते हैं आप खुशी से धर्म-कार्य करावे इत्यादि। सूरिजी ने कहा कि शाल का वृक्ष के परिवार भी शाल का ही होता है पर धर्म्म कार्य में विलम्व न होना चाहिये। श्रावकों ने कहा गुरुदेव! मन्दिर तो तैयार होगया। आप शुभ मुहूर्त निकाल दें सब सामग्री तैयार है संघ के लिये अभी तो ऋतु गरमी की है आप चतुर्मास करावें और बाद चतुर्मास के संघ निकाल कर दुर्गा दीक्षा लेने को भी तैयार है। उम्मेद है कि दुर्गा का अनुकरण करने को और भी कई भावुक तैयार होजायगे। सूरिजी ने फरमाया कि क्षेत्र स्पर्शन सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ हो रहा था श्री संघ ने चतुर्मास की विनती की और सूरिजी ने स्वीकार करली। सूरिजी ने आर्बुदाचलादि प्रदेश में घूम कर पुन. चन्द्रावती आकर चतुर्मास कर दिया। व्याख्यान में आगम वाचना के लिये श्रीभगवती सूत्र बाचने का निश्चय होने पर शाहदुर्गा ने रात्रि जागरणादि आगम पूजा का लाभ हासिल किया कारण दुर्गा के एक यही काम शेष रहा था। सूरिजी की कृपा से वह भी होगया चन्द्रावती नगरी के लिये यह सुवर्ण समय था कि एक तो सूरिजी का चतुर्मास और दूसरे महा प्रभाविक पंचमागम का सुनना जिसके लिये मनुष्य तो क्या पर देवता भी इच्छा करते हैं। प्रत्येक शतक ही नहीं पर प्रत्येक प्रश्न की पूजा सुवर्ण मुद्रिका से होती थी जनता को बड़ा ही आनन्द आरहा था, क्यों नहीं सूरिजी जैसे विद्वान के मुँह से श्रीभगवती सूत्र का सुनना। यों तो भगवती सूत्र ज्ञान का समुद्र ही है और इसमें सब विषयों का वर्णन आता है पर त्याग वैराग्य एव आत्म कल्याण की और विशेष विवेचन किया जाता था जिससे कई मुमुक्षुओं के भाव ससार से विरक्त होगये थे सूरिजी के चतुर्मास से जनता को बहुत लाभ मिला, तप सयम की आराधना भी बहुत लोगों ने की। इधर शाह दुर्गा ने अपनी ओरसे संघ की तैयारियें करनी शुरू करदी। बड़ी खुशी की बात है कि मन्दिर की प्रतिष्ठा और संघ प्रस्थान का मुहूर्त नजदीक २ में ही निकला कि जनता को और भी सुविधा होगई। दुर्गा ने आमत्रण भी दूर २ प्रदेश तक भिजवा दिये थे। अत. चतुर्विध श्रीसंघ बहुत गहरी सख्या में उपस्थित हुआ। सूरिजी ने शुभ मुहूर्त में मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करवा कर शाह दुर्गा को संघपति बनाया और संघ यात्रा के लिये प्रस्थान कर दिया। रास्ते में मंदिरों के दर्शन पूजा प्रभावना ध्वजारोहण और स्वामिवात्सल्यादि कई शुभ कार्य्य करते हुये संघ श्रीशत्रुंजय पहुँचा।

दर्शन स्पर्शन कर सब लोगों ने अपना अहोभाग्य समझा । अष्टान्हिका महोत्सव व स्वामीवात्सल्यादि के पश्चात् शाह दुर्गा व संघपति की माता अपने ज्येष्ठ पुत्र कुंभा को आज्ञा दी और आपने पच्चीस नरनारियों के साथ सूरिजी के चरण कमलों में भगवति जैनदीक्षा स्वीकार करली । इस शुभ अवसर पर सूरिजी ने उन मुमुक्षुओं की दीक्षा के साथ अपने शिष्यों में से मुनि पूर्णचन्द्रादि पांच साधुओं को उपाध्याय पद राजसुन्दरादि ५ साधुओं महत्तर पद पर हंसराजादि पांच साधुओं को पण्डित पद प्रदान किया । बाद संघ शाह कुंभा के संघपतित्व में वापिस लौट कर चन्द्रावती आया ।

सूरिजी महाराज ने कई वर्षों तक तीर्थ की शीतल छाया में निवृत्ति का सेवन किया बाद विहार कर सौराष्ट्र भूमि में सर्वत्र भ्रमण कर धर्म जागृति एवं धर्म का प्रचार बढ़ाया इत्यादि अनेक प्रान्तों में घूम कर अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन को द्रुतगति से चलाकर हजारों लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर उनका उद्धार किया । कई मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठायें करवाई । कई मौलिक ग्रन्थों का भी निर्माण किया और अपने चरण सिन्ध में विहार कर पंजाब की भूमि को पावन की । कई वर्षों तक वहाँ विहार कर जैनधर्म की प्रभावना की तत्पश्चात् हस्तिनापुर मथुरादि तीर्थों की यात्रा कर पूर्व देश एवं आवन्ति मेदपाट होते हुये मरुधर में पधारे । आपके आज्ञावर्ति साधु साध्वियों की संख्या बहुत थी । आपने भी कई नरनारियों को दीक्षा दी थी अतः वे साधु साध्वियों प्रत्येक प्रान्त में विहार करते थे । आपने अपने २१ वर्षों के शासन में जैनधर्म की खूब सेवा बजाई । अन्त में आप उपकेशपुर पधारे और श्रेष्ठि गौत्रिय शाह लाधा के महा महोत्सव पूर्वक तथा देवी सच्चायिका की सम्मति से उपाध्याय पूर्णचन्द्र को आचार्य पद से विभूषित कर अपना सर्व अधिकार नूतन आचार्य देवगुप्तसूरि को सौंप कर आप अन्तिम सल्लेखना में लगगये और अन्त में २१ दिन का अनशन कर समाधि पूर्वक स्वर्ग पधारे ।

आचार्य श्री के शासन में भावुकों की दीक्षा

१— चन्द्रावती	के प्राग्वट वंशीये रामादि कई भावुकों ने		सूरिजी से	दीक्षा ली
२—दुधा	के प्राग्वट वंशीये	भिमाशा ने	"	"
३—पद्मावती	के प्राग्वट वंशीय	पेथ ने	"	"
४—पालेली ग्राम	के श्रीमाल शाह	सुखा ने	"	"
५—देवी ग्राम	के सुचंति गौत्रीय "	माना ने	"	"
६—भद्रकोटी	के भूरि गौत्रीय "	आसू ने	"	"
७—दशेसपुर	के भाद्र गौत्रीय "	कृष्णा ने	"	"
८—नागपुर	के बाप्पनाग गौत्रीय "	चापा ने	"	"
९—शंखपुर	के भाद्र गौत्रीय "	भीमा ने	"	"
१०—पालोली	के चरड गौत्रीय "	देवा ने	"	"
११—शंखपुर	के चोरलिया गौत्रीय "	जीवण ने	"	"
१२—हापड़ा	के कुम्मट गौत्रीय "	गोविन्द ने	"	"
१३—कोटा	के कनोजिया गौत्रीय "	लाखा ने	"	"

१४—भरोंच	के चिंचटगौत्रीय	शाह	सारग ने	सूरिजी से	दीक्षाली
१५—मीयाणी	के मोराक्षगौत्रीय	,,	शोभा ने	,,	,,
१६—भुजपुर	के मल्लगौत्रीय	,,	फरमण ने	,,	,,
१७—वीरपुर	के सुघडगौत्रीय	,,	रांणा ने	,,	,,
१८—खोखर	के तप्तभट्टगौत्रीय	,,	माथुर ने	,,	,,
१९—नरवर	के करणाटगौत्रीय	,,	फागु ने	,,	,,
२०—कीराटकुम्प	के अदित्य नाग गौ०	,,	पेथा ने	,,	,,
२१—मथुरा	के श्रेष्टिगौत्रीय	,,	कल्याणने	,,	,,
२२—भीमावली	के कुलभद्रगौत्रीय	,,	सूपण ने	,,	,,
२३—विसट	के विरहटगौत्रीय	,,	हरदेव ने	,,	,,
२४—चन्देरी	के सोनावतगौत्रीय	,,	देसल ने	,,	,,
२५—माडव्यपुर	के सुसाणिया गौत्रीय	,,	हाला ने	,,	,,
२६—मधुमति	के भाद्रगौत्रीय	,,	डुगर ने	,,	,,
२७—मधिमा	के बाप्पनाग गौत्रीय	,,	भैसा ने	,,	,,
२८—ठाकुरपुर	के डिडुगौत्रीय	,,	हरराज ने	,,	,,
२९—दशपुर	के बोहरागौत्रीय	,,	फरमाण ने	,,	,,
३०—देवली	के श्रेष्टिगौत्रीय	,,	नारायण ने	,,	,,
३१—देवपट्टन	के प्राग्वटवशीगोत्रीय	,,	पन्ना ने	,,	,,
३२—कानड़ा	के राव क्षत्री गौत्रीय	,,	सूधा ने	,,	,,

पूज्याचार्य देव के शासन में सद्कार्य्य

१—नागपुर के अदित्यनाग गौत्रीय शाह धीवा ने श्री उपकेशपुर स्थित भगवान् महावीर की यात्रार्थ छरी पाली संघ निकाला साधर्मी भाइयों को स्वामिवात्सल्य एव एक एक सुवर्ण मुद्रिका की पहरामणी दी। इस संघ में शाह धीवा ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर शुभ कर्मों का संचय किया।

२—उपकेशपुर का श्रेष्टि गौत्रीय शाह रावल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

३—सोपार पाटण का बलाह गौत्रीय शाह राणा ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

४—मांडवगढ़ के मोरक्ष गौत्री मत्री नागदेव ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

५—दशपुर के सुचंति गौत्र का शाह भारमल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

६—वीरपुर के भूरि गौत्रीय शाह भाला ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

७—चंदेरी के कुम्मट गौत्रीय शाह कल्हण ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

८—लोहाकोट के बाप्प नागगोत्रीय मंत्री रणवीर ने श्री सम्मेतशिखरजी का सङ्घ निकाला।

९—तक्षशिला से करणाट गौत्रीय शाह रावल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

१०—देवपट्टन से श्रेष्टिगौत्रीय मत्री गोकल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

१०—सिलोरा	के	श्रेष्टि गो०	चूड़ा ने	भ०	महावीर	म०	प्र०
११—डामरेल	के	भूरि गो०	जाल्हा ने	,,	शितल०	,,	,,
१२—आलोर	के	अदित्य नाग०	जोधा ने	,,	वासपूज	,,	,,
१३—जायलीपुर	के	चोरलिया०	मुकन्द ने	,,	विमल	,,	,,
१४—नगरकोट	के	बलाह गो०	मुरार ने	,,	धर्म०	,,	,,
१५—त्रिभुवनगीरि	के	कुंमट गो०	भाखर ने	,,	शान्ति०	,,	,,
१६—मारोटगढ	के	कनोजिया०	जैहिंग ने	,,	महावीर	,,	,,
१७—नारायणगढ	के	चिंचट गो०	नागड़ ने	,,	,,	,,	,,
१८—देवलकोट	के	सुचति गो०	पर्वत ने	,,	,,	,,	,,
१९—कानपुर	के	श्री श्रीमाल	अमाराने	,,	आदीनाथ	,,	,,
२०—दुनारी	के	श्री श्रीमाल	बोपा ने	,,	पार्श्व	,,	,,
२१—कोटीपुर	के	तप्तभट्ट गो०	डुंगर ने	,,	,,	,,	,,
२२—वदनपुर	के	बाप्पनाग गो०	हरजणने	,,	गोडीपार्श्व	,,	,,
२३—घूसीग्राम	के	करणाट गो०	कचरा ने	,,	,,	,,	,,
२४—देपालपुर	के	कुलभद्र गो०	नोधण ने	,,	महावीर	,,	,,
२५—अटाल्डू	के	विरहट गो०	छुद्दा ने	,,	,,	,,	,,
२६—भरणी	के	चरड़ गौत्र०	टेका ने	,,	सीमधर	,,	,,
२७—पाल्हिका	के	सुघड़ गो०	दुर्गा ने	,,	शान्ति०	,,	,,
२८—पुष्कर	के	छुंग गौत्र०	मुकना ने	,,	,,	,,	,,
२९—झासी	के	प्राग्वट गो०	वच्छा ने	,,	महावीर	,,	,,
३०—जैतलपुर	के	प्राग्वट गो०	नानग ने	,,	,,	,,	,,
३१—सिद्धपुर	के	श्रीमाल गो०	हाहूमंत ने	,,	,,	,,	,,
३२—वड़नगर	के	श्रेष्टि गो०	पृथुसेन ने	,,	,,	,,	,,
३३—आकांणी	के	डिड्डु गौत्र०	नाथा ने	,,	,,	,,	,,

वीस अष्ट पट्ट कक्कसूरि हुये, श्रेष्टि कुल उज्ञारक थे ।
वादी गंजन मन केसरी, जैनधर्म प्रचारक थे ॥
जैन मन्दिरों की करी प्रतिष्ठा, दर्शन खूब दिपाया था ।
जिनके गुणों को कहे वृहस्पति, फिर भी पार न पाया था ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २८ वें पट्ट पर आचार्य कक्कसूरिजी महान् आचार्य हुये ॥

२६—आचार्य देवगुप्तसूरि (पाँचवाँ)

आचार्यस्तु स देवगुप्त पदभृत् श्रीमान् चंदे वृष ।
रोगग्रस्त तथापि यो न विमहो धर्मे मतिर्मा च स्वाम् ॥
दीक्षानन्तरमेव येन रचिता तपस्यया दीपितम् ।
वादि व्यान्त विनाशनं च विदितं तस्मै नमः साम्प्रतम् ॥
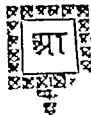
आ चार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज जैन जैनागमों के पारगामी व वैसे ही तपस्या करने में बड़े ही शूरवीर थे । आपकी तपस्या के कारण कई देवी देवता आपके चरण कमलों की सेवा में रहना अपना अहोभाग्य समझते थे । आपको कई लब्धियें एवं विद्यायें तो स्वयं वरदाई थी । जैनधर्म का उत्कर्ष बढ़ाने के लिये आप खूब देशाटन करते थे । आपके आज्ञावर्ति हजारों साधु साध्वियां प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जनता को धर्मोपदेश दिया करते थे । आपका प्रभावोत्पादक जीवन बड़ा ही अनुकरणीय था ।

आप श्रीमान् कोरंटपुर नगर के श्रीमालवंशी शाह सुख्खा की पुण्य पावना भार्या पूर्णी के लाड़ले पुत्र थे आपका नाम वरदत्त था । शाह सुख्खा अपार सम्पत्ति का मालिक था । आपका व्यापार क्षेत्र इतना विशाल था कि भारत के अलावा भारत के बाहर पाश्चात्य प्रदेशों में जल एवं थल दोनों रास्तों से पुष्कल व्यापार था । साधर्मी भाइयों की ओर आपका अच्छा लक्ष था । शाह सुख्खा ने कईवार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिका की पहरावणी दी थी । उस जमाने में तीर्थों के संघ का खूब ही प्रचार था । श्रीसंघ को अपने घर बुला कर उनको अधिक से अधिक पहरावणी में द्रव्य देना बड़ा ही गौरव का कार्य समझा जाता था, मनुष्य अपनी न्यायोपार्जित लक्ष्मी इस प्रकार शुभ कार्य एवं विशेष साधर्मी भाइयों के अर्पण करने में अपने जीवन को कृतार्थ हुआ समझते थे । यों तो शाह सुख्खा के बहुत कुटुम्ब था पर वरदत्त पर उसका पूर्ण मन एवं विश्वास था कि मेरे पीछे वरदत्त ही ऐसा होगा कि धर्म कर्म करने में जैसे मैंने अपने पिता के स्थान, मान, एवं गौरव की रक्षा की है वैसे ही मेरे पीछे वरदत्त करेगा यों भी वरदत्त सर्व प्रकार से योग्य भी था ।

एक समय अशुभ कर्मोदय वरदत्त के शरीर में ऐसा रोग उत्पन्न हुआ कि उसके शरीर में जगह २ रक्त निकलने लग गया । वरदत्त के भगवान् महावीर के स्नात्र करने का अटल नियम था जिस दिन से वरदत्त ने यह नियम लिया था उस दिन से अखण्डपने से पालता था पर न जाने किस भव के कर्मोदय हुआ होगा । जहाँ तक शरीर में थोड़ा रक्त चीकता था वहाँ तक तो वरदत्त अपने नियमानुसार भगवान् महावीर का स्नात्र करता रहा पर जब कुछ अधिक विकार हुआ तो लोगों में चर्चा होने लगी कि वरदत्त के शरीर में रक्त चीक रहा है । इससे स्नात्र करने से भगवान की आशातना होती है । अतः वरदत्त को पूजा नहीं करनी चाहिये । तब कई एकों ने कहा कि वरदत्त के अकस्त्र नियम है वह पूजा बिना किया मुँह में पानी तक भी नहीं लेता है । श्रीपालजी को कुष्टरोग होने पर भी पूजा की है इससे तो भावों की शुद्धि होनी

चाहिये। इस प्रकार की चर्चा हो रही थी परन्तु कलिकाल के प्रभाव से चर्चा ने उग्र रूप धारण कर लिया कि दो पार्टियां बनगई। इस हालत में वरदत्त ने सोचा कि केवल मेरे ही कारण से संघ में फूट कुसम्प पैदा होना अच्छा नहीं है। दूसरे प्राण चले जाने पर भी मैं अपने नियम को खण्डित करना नहीं चाहता हूँ। इससे तो यही उचित है कि जहां तक मैं स्नात्र नहीं करलूं वहा तक मुंह में अन्न जल नहीं लू वरदत्त का यह विचार विचार ही नहीं था परन्तु उसने तो कार्य के रूप में परिणित कर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया जिसको करीव नौ दिन व्यतीत होगये न वरदत्त का रोग गया न उसने पूजा की और न उसने नौ दिनों में मुह में अन्नजल ही लिया। इस बात की नगर में खूब गरमा गरम चर्चा भी चल रही थी।

ठीक उसी समय धर्मप्राण आचार्य कक्कसूरि का शुभागमन कोरटपुर में हुआ। श्री संघ में जैसे वरदत्तकी चर्चा चल रही थी वैसे एक उपकेशवंशी ने राजपूत की कन्या के साथ शादी करली थी इसका भी विग्रह चल रहा था परन्तु सूरिजी के पधारने से एवं उपदेश से राजपूत की कन्या को जैनधर्म की दीक्षाशिक्षा देकर उस झगड़े को शान्त कर दिया पर वरदत्त का एक जटिल प्रश्न था। इसके लिये सूरिजी ने सोचा कि इसमें निश्चय तो स्नात्र करने में कोई हर्ज है नहीं पर व्यवहार से ठीक भी नहीं है। अत इस प्रश्न का निपटारा कैसे किया जाय। दूसरे संघ की दोनों पार्टी अपनी २ बात पर तुली हुई हैं अत आपने देवी सचायिका का स्मरण किया। बस, फिर तो क्या देरी थी। सूरिजी के स्मरण करते ही देवी ने आकर वन्दन किया और अर्ज की प्रभो! फरमाइये क्या काम है ? सूरिजी ने कहा देवीजी! वरदत्त का यहा बड़ा भारी बखेड़ा है इसको किस प्रकार निपटाया जाय ? देवी ने अपने ज्ञान से उपयोग लगा के देखा तो वरदत्त के वेदनीय कर्म का अन्त हो चुका था। अत देवी ने सूरिजी से कहा प्रभो! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं आपके यश रेखा जबरदस्त हैं और यह पूर्ण यश आपको ही आने वाला है। वरदत्त की वेदना खतम हो चुकी है। सुबह आप वरदत्त को वासक्षेप देंगे तो इसका शरीर कंचन जैसा हो जायगा और वह महावीर स्नात्र करवाकर पारणा भी कर लेगा और भी कुछ सेवा हो तो फरमाइये ? सूरिजी ने कहा देवीजी आप समय २ पर इस गच्छ की सार सँभाल करती हो अतः यह कोई कम सेवा नहीं है। देवी ने कहा पूज्यवर! इसमें मेरी क्या अधिकता है। यह तो मेरा कर्त्तव्य ही है। पर इस गच्छ का मेरे पर कितना उपकार है कि जिसको मैं वर्णन ही नहीं कर सकती हूँ इत्यादि। सूरिजी को वदन कर देवी वरदत्त के पास आई और कहा कि वरदत्त! तू सुबह जल्दी उठकर सूरिजी का वासक्षेप लेना कि तेरी वेदना चली जायगी। वरदत्त ने कहा तथाऽस्तु। बस, देवी तो अदृश्य हो गई। वरदत्त ने सोचा कि यह अदृश्य शक्ति कौन होगी कि मुझे प्रेरणा की है ? खैर उसके दिलों में तो परमात्मा के स्नात्र की लगन लगही रही थी उसने रात्रि में निद्रा ही नहीं ली। सुबह उठ कर सीधा ही सूरिजी के पास गया और प्रार्थना की कि प्रभो! कृपा कर वासक्षेप दिरावें। ज्योंही सूरिजी ने वरदत्त पर वासक्षेप डाला त्यों ही वेदना चोरों की भाँति भाग छूटी और वरदत्त का शरीर कंचन सा हो गया। वह सूरिजी को वन्दन कर सीधा ही महावीर के मन्दिर गया और स्नान कर स्नात्र कराने लग गया। इस बात की जब लोगों को खबर हुई तो आपस में चर्चा करते हुये सब लोग चल कर सूरिजी के पास आये और अपना २ हाल कहा। सूरिजी ने कहा महानुभावो! आपने बिना हि कारण संघ में अशाति फैला रखी है ? तीर्थङ्करों का धर्म स्याद्वाद है। जैनधर्म कषाय जीतने में धर्म बतलाता है न कि कषाय बढ़ाने में। धन्य तो है वरदत्त को कि कषाय बढ़ने के भय से उसने तपस्या करना शुरू कर दिया कि जिससे

न तो अपना मत कायम हो और न संघ में कलह पड़े। कई ने कहा गुरुदेव! वरदत्त अधिक समार्ग जाता है इसने तपस्या तो की है पर आज किसी की बहकावट में आकर मन्दिर में स्नात्र करा रहा है। इसलिये हम सब लोग आपकी सेवा में आये हैं जैसा आप फरमावें हम शिरोधार्य करने को तैयार हैं। सूरिजी ने कहा वरदत्त का शरीर निरोग है इसके पूजा करने में कोई भी हर्ज नहीं है। सूरिजी के यहाँ बातें हो रही थीं इतने में वरदत्त सूरिजी को वन्दन करने के लिये आया तो सब लोगों ने देखा कि उसका शरीर कंचन की भाँति निर्मल था। उपस्थित लोगों ने सोचा कि यह सूरिजी महाराज की कृपा का ही फल है। बस, फिर तो था ही क्या सब लोगों ने वरदत्त को धन्यवाद देकर अपने अपने अपराध की माफी माँगी। वरदत्त ने कहा कि मेरे अशुभकर्मोदय के कारण आप लोगों को इतना कष्ट देखना पड़ा अतः मैं आप लोगों से माफी चाहता हूँ। इतने में व्याख्यान का समय हो गया था सूरिजी ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। उस दिन के व्याख्यान में सूरिजी ने चार कषाय का वर्णन करते हुये फरमाया कि क्रोध और मान द्वेष से उत्पन्न होते हैं तथा माया एवं लोभ राग से पैदा होते हैं और राग द्वेष संसार के बीज हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ मूल सम्यक्त्वगुण की घात करता है। अप्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ देशव्रतगुण को रुकावट करता है तथा प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ सर्वव्रतगुणस्थान को आने नहीं देता है और संज्वल का क्रोध मान माया लोभ वीतराग गुण की हानि करता है। अब इन चारों प्रकार के क्रोधादि की पहचान भी करवाई जाती है कि मनुष्य अपने अन्दर आये हुए क्रोधादि को जान सके कि मैं इस समय कौनसी कषाय में वरत रहा हूँ और भवान्तर में इसका क्या फल होगा।

१—अनन्तानुबन्धी क्रोध—जैसे पत्थर की रेखा सदृश अर्थात् पत्थर की रेखा टूट जाने से मिलाने से मिलती नहीं है वैसे ही अनन्तानुबन्धी क्रोध आने पर जीवन पर्यन्त शान्त नहीं होता है।

२—अनन्तानुबन्धीमान—जैसे वज्रमय स्तंभवत् अर्थात् वज्र का स्तम्भ टूट जाता है पर नमता नहीं है।

३—अनन्तानुबन्धी माया—जैसे बांस की गंठी अर्थात् बांस के गंठ गंठ में गंठ होती है।

४—अनन्तानुबन्धी लोभ—जैसे करमचीरंग को जलादेने पर भी रंग नहीं जाता है। इन चारों की स्थिति यावत् जीव, गति नरक की और हानि समकित की अर्थात् यह चौकड़ी मिथ्यात्वीय के होती है।

५—अप्रत्याख्यानी क्रोध—जैसे तालाब की तड़ को वरसाद से तड़े पड़ जाती है पर वे एक वर्ष में मिल जाती है। वैसे ही क्रोध है कि संवत्सरि प्रतिक्रमण समय उपशान्त हो जाता है।

६—अप्रत्याख्यानी मान—जैसे काष्ठ का स्तंभ।

७—अप्रत्याख्यानी माया—जैसे मिंढा का सींग।

८—अप्रत्याख्यानी लोभ—जैसे गाड़ा का कीचड़।

इन चारों की स्थिति एक वर्ष की, गति तिर्यंच की हानि श्रावक के व्रत नहीं आने देता है।

९—प्रत्याख्यान क्रोध—जैसे गाड़ा की लकीर।

१०—प्रत्याख्यान मान—जैसे बेंत का स्तम्भ

११—प्रत्याख्यान माया—जैसे बांस की छाली।

१२—प्रत्याख्यान लोभ—जैसे आंखों का काजल।

इन चारों की स्थिति चार मास की गति मनुष्य की हानि मुनि के पांच महाव्रत नहीं आने देता है।

१३—संज्वल का क्रोध—जैसे पानी की लकीर।

१४—संज्वल का मान—जैसे तृण का स्तभा।

१५—सज्वल का माया—जैसे चलता वलद का पेशाव

१६—संज्वल का लोभ—जैसे हल्दी का रग।

इनमें क्रोध की दो मास, मान की एकमास, माया की प्रन्द्रह दिन, और लोम की अन्त मुहूर्त की स्थिति है गति देवतों की ? हानि वीतरागता नहीं आना देती है।

इस प्रकार क्रोधादि सोलह कपाय हैं इसमें भी एक एक के चार चार भेद होते हैं जैसे १—अन्तानुवन्धी क्रोध अन्तानुवन्धी क्रोध जैसा २—अन्तानुवन्धी क्रोध अप्रत्याख्यानी क्रोध जैसे ३—अन्तानुवन्धी क्रोध प्रत्याख्यानी क्रोध जैसे और ४—अन्तानुवन्धी,क्रोध सज्वल जैसा उदाहरण जैसे एक मिथ्यातवी प्रथम गुणस्थान वाला जीव है। और वह इतनी क्षमा करता है कि उसको लोग मारे पिटे कटू शब्द कहें तो भी क्रोध नहीं करता है। पर उसका मिथ्यत्वमय पहिला गुनस्थान नहीं छुटा है अत' अन्तानुवन्धी कपाय मौजुद है हाँ यह अन्तानुवन्धी क्रोध सज्वल सदृश है। तथा एक मुनि छठे गुणस्थान वाला है। परन्तु उसका क्रोध इतना जोर दार है कि जिसको अन्तानुवन्धी क्रोध कहा जाता है। परन्तु तीन चौकड़ीयों का क्षय होने से उस क्रोध को स ज्वल का क्रोध अन्तानुवन्धी जैसा ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार शेष कपायोंको भी समझ लेना।

महानुभावों। ससार में परि भ्रमन कराने वाला मुख्य कपाय ही है श्री भगवतीजी सुत्र के वारहवें शतक के पहले उद्देशे में शक्ख श्रावक ने भगवान महावीर को पुच्छा था कि जीव क्रोध करे तो क्या फल होता है ? उत्तर में भगवान महावीर ने फरमाया कि शक्ख क्रोध करने से जीव आयुष्य कर्म साथ में बन्धे तो आठों कर्मों का वन्धकरे शायद आयुष्य कर्म न वन्धे तो सात कर्म निरान्तर वन्धता है जिसमें भी क्रोध करने वाला शिथल कर्मों को मजबूत करे, मन्द रस को तीव्र रस वाला करे अल्पस्थिति वाला कर्मों को दीर्घ स्थिति करे। अल्पप्रदेशों को बहु प्रदेशों वाला बनावे असाता वेदनी बार बार वन्धे और जिस ससार की आदि नहीं और अन्त नहीं उस ससार में दीर्घ काल तक परि-भ्रमन करे इसी प्रकार मान माया और लोभ के फल बतलाये हैं। इससे आप अच्छी तरह समझ सकते हैं ? कि क्रोध मान माया और लोभ करना कितना बुरा है और भवान्तर में इसके कैसे कटु फल मिलते हैं। उदाहरण लीजिये—

टेली ग्राम में चंडा नाम की बुढ़िया रहती थी उसके आरुण नाम का पुत्र था वे निर्धन होने पर भी बड़े ही क्रोधी थे बुढ़िया सेठ साहुकारों के यहां पानी पीसनादि मजूरी कर दुख पुर्ण अपना गुजारा करती थी आरुण भी बाजार में मजूरी करता था पर क्रोधी होने से उसे कोई अपने पास आने नहीं देता था। एक समय चडा रसोई बना कर अपने बेटे की राह देख रही थी कि वह भोजन करले तो मैं किसी मजुरी पर जाऊ पर आरुण घर पर नहीं आया। इतने ही मैं किसी सेठ के यहाँ से बुलावा आया कि हमारे यहाँ पर महमान आये हैं पानी ला दो। बुढिया ने सोचा कि बेटे का स्वभाव क्रोधी है वह भोजन कर जावे तो मैं जाऊ पर साथ में यह भी सोचा की सेठजी का घर मातम्बर है मेरा गुजारा चलता है इस वक्त इन्कार करना भी अच्छा नहीं है चडाने बनाई हुई रसोई एक छींके पर रख पानी भरने को चली गई पिछे आरुण आया माता को न देख लाल बबुल बन गया जब माता आई तो बेटाने कहा रे पापनी तुझे शुली चढ़ादूं कि तु कहाँ चली गई थी मैं तो भुखों मर रहा हूँ इत्यादि बेटे के कठोर वचन सुन कर माता को भी क्रोध आगया

और उसने कहा रे दुष्ट ! क्या तेरा हाथ कट गया था कि छींके में पड़ी रोटी लेकर तू नहीं खा सका बस ! दोनों के निकाचित कर्म बन्ध गये ! बाद कई वर्षों के वे दोनों मर कर संसार में भ्रमन करते हुए बहुत काल व्यतित कर दिया और क्रमशः पुत्रिका का जीव एक धना सेठ के यहाँ कन्या हुई जिसका नाम लीलू रखा और पारस का जीव एक दूसरे सेठ के यहाँ पर पुत्र हुआ जिसका नाम सरदा दिया क्रमशः युवान् इन दोनों की आपस में सगाई हो गई सरदा ने विदेश जाकर पुष्कल द्रव्योपार्जन किया उसने माता पिता के लाने एक कांकण की जोड़ी आपनी औरत के लिए भेज दी बाद आप देश को आने के लिये एक मित्र के साथ रवाना हो गया इधर लीलू मेला में गई थी वापिस आते वक्त किसी बदमाश ने उसके हाथ काट कर कांकण निकाल लिया जब पुलिस आई तो वो बदमास भाग कर एक बगीचा में आया वहाँ मुसाफिरी करता सरदा भी आकर एक मकान में सो रहा था बदमाश ने छुरा और कांकण सरदा के पास रख दिया गरज कि पुलिस आवेगी तो सरदा को पकड़ेगी और नहीं तो मैं कांकण लेकर भग जाऊंगा । पुलिस आई और कांकण देख सरदा को पकड़ कर ले गई और राजा के हुक्म से उसे शूली चढ़ा दिया सरदा के मित्र द्वारा यह खबर धना सेठ को हुई तो उसे अपार दुख हुआ कारण एक और तो पुत्री के हाथ कटे दूसरी ओर जमाई को शूली दे दी गई । उस समय भाग्य के अनुकूल गुणसागर नामक आचार्य वहाँ पधारे कि जिनके पास ही सरदा को शूली दी गई थी । सेठ धना अपनी पुत्री को लेकर सूरिजी की सभा में पहुँचा और व्याख्यान सुन कर प्रश्न किया कि पूज्यवर ! मेरी पुत्री और जमाई ने पूर्व जन्म में क्या कार्य किया था कि पुत्री के हाथ कटे और जमाई को शूली चढ़ाया गया । इस पर सूरिजी ने कहा क्रोध के कटु फल हैं पूर्व जन्म में तुम्हारी लड़की चंदा नाम की सठानी थी और जमाई पारस नाम का पुत्र था पुत्र ने कहा कि तुम्हे शूली चढ़ा दूँ तब माता ने कहा था कि तेरे क्या हाथ कट गया है कि छींके पर से रोटी लेकर खा नहीं सके । इस प्रकार क्रोध के वश शब्द निकालने से दोनों के कर्म बन्ध गये थे ही कर्म आज दोनों के उदय आये हैं और इन कर्मों की अवधि भी पूरी हो गई है इस कथन को सुन कर परिषदा सब आनन्द हो गई और क्रोध का त्याग-क्षमा करना अच्छा समझा । राजा के मन्त्री ने निर्णय किया तो बदमाश दूसरा ही निकला तब जाकर सरदा को शूली से उतार दिया । इधर लीलू के हाथ भी अच्छे हो गये । तात्पर्य यह है कि क्रोध बड़ा भयंकर होता है क्रोध व्याप्त मनुष्य अपना भान भूल जाता है और क्रोध से अनर्थ कर नरक जाने के कर्मोपार्जन कर लेता है अतः समझदारों को क्रोध के समय क्षमा धारण करनी चाहिये ।

इत्यादि सूरिजी ने इस कदर से विवेचन किया कि उपस्थित लोग थर थर कांपने लग गये । कारण, संसार वृद्धि का मुख्य कारण कषाय ही है । अतः सब लोग सूरिजी के व्याख्यान से ही कषाय करना से उपशान्त करके निवृत्त हो गये । तत्पश्चात महावीर की जयध्वनि से व्याख्यान समाप्त हुआ ।

सरदा ने अपने मकान पर जाकर भी व्याख्यान का मनन किया पर उसका दिल संसार से विरक्त हो गया कि मेरे ही निमित्त इन दोनों के कर्म बन्ध का कारण हुआ । यदि मैं पहले ही दीक्षा ले लेता तो इस कार्य का मैं कारण क्यों बनता इत्यादि विचार करता हुआ सरदा समय पाकर सूरिजी के पास आया और वन्दन कर कहा पूज्यवर ! मेरी इच्छा संसार छोड़ कर आपके चरणों में दीक्षा लेने की है पर मेरे व्याज का व्रत नियम है । इसके लिये क्या करना चाहिये ? आप ऐसा रास्ता बतलावें कि मेरा नियम खण्डित न हो और मैं दीक्षा भी ले सकूँ । अहा हा उस जमाने के लोग अपने नियम पर कैसे पाबंद थे ।

सूरिजी ने कहा वरदत्त ! पूजा दो प्रकार की होती है १—द्रव्य पूजा, २—भाव पूजा जिसमें भाव-पूजा कार्य है और द्रव्यपूजा कारण है । सारंभी सपरिगृही गृहस्थों के द्रव्य पूजा से ही भावपूजा हो सकती है कारण गृहस्थों के मनोगत भाव कई स्थानों पर बिखरे हुये रहते हैं । उन सबको एकत्र करने के लिये द्रव्य पूजा है । जब द्रव्य पूजा करली है तो भी भावपूजा अवश्य की जाती है । अकेली द्रव्य पूजा इतने फल की दावार नहीं है कि जितनी भाव पूजा के साथ होती है गृहस्थ द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की पूजा के अधिकारी हैं । तब साधु एक भाव पूजा के अधिकारी हैं । तुमने आचार्य रत्नप्रभसूरि का चरित्र सुना है । गृहस्थपने में उनको भी द्रव्य पूजा का अटल नियम था पर दीक्षा लेते समय गुरु आज्ञा से मूर्ति अपने साथ में ले ली और वे हमेशा भाव पूजा करते थे । इतना ही क्यों पर वह मूर्ति आपके पट्टपरम्परा के आचार्य के पास उपासना के लिये चली आ रही है एवं आज मेरे पास है और मैं सदैव भाव पूजा करता हूँ ।

वरदत्त यदि तुझे दीक्षा लेनी है तो खुशी के साथ ले इससे तेरे नियम खण्डित न होगा पर नियम में वृद्धि होगी शास्त्रों में कहा है कि:—

संति एगेहि भिक्खूहि, गारत्था संजमुत्तरा । गारत्थेहि य सव्वेहि, साहवो संजमुत्तरा ॥

सब जगत के असयति एक तरफ और एक नवकारसी व्रत करने वाला श्रावक एक तरफ तो वे मास मास खामण के पारणे करने वाले असंयति एक श्रावक की बराबरी नहीं कर सकते हैं । तब सब जगत के देशव्रती श्रावक एक तरफ और एक सयति साधु एक तरफ तो वे सब श्रावक एक साधु की बराबरी नहीं कर सकते हैं और सयति की बराबरी तो क्या परन्तु शास्त्रकार तो यहाँ तक फरमाते हैं कि:—

मासे मासे उजोबालो, कुसंगेणं तु भुंजए । ण सो सुक्खातधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसि ॥

मास मास की तपस्या और पारणा के दिन दाभ के अग्र भाग पर आवे उतना पदार्थ का ही पारणा करे तो भी वे व्रतधारी के सोलहवे भाग में भी नहीं आ सकते हैं ।

गुणस्थान की अपेक्षा असंयति-मिथ्यादृष्टि पहिले गुणस्थान है देशव्रती श्रावक पाँचवें गुणस्थान है और साधु छट्ठा या इनसे ऊपर के गुणस्थान का अधिकारी होता है । पहिले गुणस्थान में अन्तानुबन्दी चौक का उदय होता है तब देशव्रती गुणस्थान में अन्तानुबन्दी अप्रत्याख्यानी एव दो और सर्वव्रती के तीन चौकड़ी निकल जाती हैं । केवल एक सञ्वलन की चौकड़ी रहती है अत संयति की बराबरी कोई नहीं कर सकते हैं ।

वरदत्त ! ज्यों २ कषाय की चौकड़ियों का क्षय व क्षयोपशम होता जाता है त्यों २ मोक्ष नजदीक आता है । अत दीक्षा के लिये द्रव्य पूजा का विचार करने की आवश्यकता नहीं है । कारण इसमें द्रव्य पूजा की बजाय भाव पूजा अधिक गुणवाली है । इतना ही क्यों पर सोने के मंदिरों से मेदिनी मण्डित कर दे तो भी एक मुहूर्त के संयम के तुल्य नहीं हो सकती है । हाँ, ससार में सारंभी सपरिगृही जीवों के लिये द्रव्य पूजा भी लाभकारी है कारण, भाव आता है वह द्रव्य से ही आता है । जब भाव पूजा का अधिकारी बनता है तो उसके सामने द्रव्य पूजा की आवश्यकता नहीं है इत्यादि सूरिजी ने खूब विस्तार से समझाया ।

वरदत्त ने कहा पूज्यवर ! आपका कहना मेरे समझ में आ गया है और मैंने दीक्षा लेने का विचार निश्चय कर लिया है । सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्' देवानुप्रिय । पर यदि निश्चय कर लिया है तो बिलम्ब न करना जिसको वरदत्त ने 'तथाऽस्तु' कर सूरिजी का वचन शिरोधार्य कर लिया और सूरिजी को वन्दन

कर वरदत्त अपने मकान पर आया और अपने पिता एवं कुटुम्ब वालों को कह दिया कि मेरा भाव सूरिजी के पास दीक्षा लेने का है पर कुटुम्ब वाले कब अनुमति देने वाले थे। जैसे मकड़ी की जाल में फंसे रहते हैं यदि उसमें कोई एक जन्तु बाहर निकलता है तो उसे खेंचके ताणा बढ़ा कर जाल में फंसा लेता है। इसी प्रकार जीव संसार में कर्मों से बंध रहे हैं यदि कोई जीव संसार का त्याग करना चाहे तो कुटुम्ब वाले उसको कब जाने देते हैं पर जिसके वैराग्य का सच्चा रंग लग गया हो वह जान बूझ कर संसार रूपी कारागृह में कब रह सकता है। आखिर वरदत्त ने अपने माता पिता स्त्री वगैरह कुटुम्ब को ऐसा समझा दिया कि वे वरदत्त को घर में रखने में समर्थ नहीं हुये। आखिर शाह कृष्णा ने वरदत्त की दीक्षा का बड़ा भारी महोत्सव किया और वरदत्त के साथ उसके आठ साथियों ने भी वरदत्त का अनुकरण किया और सूरिजी महाराज ने उन आठ वीरों को शुभ मुहूर्त में दीक्षा देदी और वरदत्त का नाम मुनि पूर्णानन्द था।

मुनि पूर्णानन्द बड़ा ही भाग्यशाली था। सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा थी। पूर्णानन्द ने गुरुजी महाराज का विनय व्यावच्च और भक्ति कर वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर लिया और गुरुकुलवास में रहकर सर्वगुण सम्पन्न होगया। अतः आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में उपकेशपुर में महामहोत्सवपूर्वक उपाध्याय पूर्णानन्द को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया।

आचार्य देवगुप्तसूरि बड़े ही प्रतिभाशाली थे। आप जैसे स्वपर मत के शास्त्रों के मर्मज्ञ थे वैसे ही तप करने में बड़े भारी शूरवीर थे। आपने जिस दिन से सूरि पद पाये उसी दिन से छठ छठ तपस्या करने की प्रतिज्ञा करली थी। अतः आप भी निरन्तर छठ छठ की तपश्चर्या करते थे तपस्या से आत्मा निर्मल होता है, कर्मों का नाश होता है अनेक लब्धियें उत्पन्न होती हैं देव देवी सेवा करते हैं तपस्या का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव भी पड़ता है। और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ती भी होती है।

सूरिजी महाराज ने अपने विहार क्षेत्र को इतना विस्तृत बना लिया था कि अपने पूर्वजों की पद्धति के अनुसार जहाँ जहाँ अपने साधु साध्वियों का विहार होता था एवं उपकेशवंश के श्रावक रहते थे वहाँ वहाँ घूम घूम कर उन लोगों को धर्मोपदेश अमृत का लाभ प्रदान करते थे। पूर्वाचार्यों की स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन को जो जो जितने आचार्य हुये उन्होंने तीव्र एवं मंदगति से चलाई ही थी पर आपने उस मशीन के जरिये हजारों मांस भक्षियों को दुर्व्यसन से छुड़ाकर जैन संघ में वृद्धि की थी।

सूरिजी महाराज के शिष्यों में कई तपसी कई विद्याबली साधु भी थे। एक देवप्रभ पंडित आकाश-गामिनी विद्या और योनि प्राभृत शास्त्र का ज्ञाता था। वह हमेशा शत्रुंजय गिरनार की यात्रा करके ही अन्न जल लेता था। एक समय शत्रुंजय की यात्रा कर वापिस लौट रहा था रास्ते में एक संघ शत्रुंजय जा रहा था। मार्ग में म्लेच्छों की सेना ने संघ पर आक्रमण कर दिया जिससे संघ महासंकट में आ पड़ा। सब लोग अधिष्ठायिक देव को याद कर रहे थे। पण्डित देवप्रभ ने संघ को दुःखी देख योनिप्राभृत शास्त्र की विद्या से अनेक हथियारबन्ध सुभट बनाकर उन म्लेच्छों का सामना किया। पर विद्याबल के सामने वे म्लेच्छ बिचारे कहाँ तक ठहर सकते थे ? बस, म्लेच्छ बुरी तरह पराजित होकर भाग छूटे और संघ उस संकट से बचकर शत्रुंजयतीर्थ पर पहुँच गया। उस संघ ने सोचा कि अधिष्ठायक देव ने हमारी सहायता की है। पर वह अधिष्ठायक सूरिजी का शिष्यमुनि देवप्रभ ही था।

म्लेच्छों ने पुनः अपना संगठन कर शत्रुंजय पर धावा बोल दिया। उस समय भी देवप्रभ शत्रुंजय

की यात्रा करने को आया था। म्लेच्छों को देख कर उसको गुस्सा आया तो उसने अपने विद्याबल से एक शेर का रूप बनाकर मलेच्छों की ओर छोड दिया। कई मलेच्छों को मारा कई को घायल किया और शेष सब भाग छूटे जिससे संघ एवं तीर्थ की रक्षा हुई। मुनिदेवप्रभ ने अपनी विद्याशक्ति से संघ के कईकार्य किये।

दूसरा सूरिजी का एक शिष्य सोमकलस था जिसको देवी सरस्वती ने वचन सिद्धि का वरदान दिया था। एक दिन उनके सामने से एक मिसरी (शक्कर) की बालद जारही थी। आपने पूँछा कि बालद में क्या है उसने कर के भय से कह दिया कि मेरी बालद में नमक है। मुनि ने कह दिया अच्छा भाई नमक ही होगा। आगे चलकर वालदियों ने देखा तो सब वालद में नमक होगया। तव वे दौड़कर मुनि के पास आये और प्रार्थना की कि प्रभो! हम गरीब मारे जायगे हम लोगों ने तो केवल हासल के बचाव के लिये ही शकर को नमक बतलाया था परन्तु आप सिद्ध पुरुष के वचन कभी अन्यथा नहीं होते हैं हमारी बालद का सब शकर नमक होगया। कृपा कर उसे पुन' शकर बनादें। मुनिजी ने दया लाकर कह दिया अच्छा भाई मिसरी होगी। अतः सब बालद का नमक मिसरी होगया। इसी प्रकार एक साहूकार के कंकरों के रत्न होगये। पट्टावलीकारों ने ऐसे कई उदाहरण लिखा है कि जिससे मुनिजी ने हजारों नहीं पर लाखों जैनेतरों को जैनधर्म की दीक्षा देकर जैनों की सख्या बढ़ाई।

सूरिजी के तीसरे शिष्य गुणनिधान को वचन लब्धि प्राप्त थी कि आप का व्याख्यान सुन कर राजा महाराजा मत्रमुग्ध बन जाते थे। केवल मनुष्यही क्यों पर देवताभी आपके व्याख्यान का सुधापान कियाकरते थे आप जहाँ जाते वहाँ राज सभा में ही व्याख्यान दिया करते थे। जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

सूरिजी के चतुर्थ मुनि पुरधरहंस जो आगमों के पारगामी थे और साधुओं को आगमों की वाचना दिया करते थे। स्वगच्छके अलावा अन्य गच्छके कई साधु एव आचार्य वगैरह आगमों की वाचनार्थ आया करते थे। और पुरंधर मुनि बड़ी उदारता से सबको बाचना दिया करते थे आपने शासन में ज्ञान का खुब ही प्रचार कियाथा।

इस प्रकार जैसे समुद्र में अनेक प्रकार के रत्न होते हैं। उसी प्रकार सूरिजी के गच्छ रूपी समुद्र में अनेक विद्वान मुनि रूपी रत्न थे। जिन्हो ने स्वगच्छ एव शासन की खूब उन्नति की।

आचार्य श्री देवगुप्तसूरि मरुधर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध पांचाल, शूरसेन 'मरस' आवन्ती आदि में भ्रमण करते हुऐ मेदपाट में पधारे। आपका चतुर्मास चित्रकूट में हुआ। यह केवल चित्रकोट के लिये ही नहीं पर अखिल मेदपाट के लिये सुवर्ण समय था कि पूज्याराध्य धर्मप्राण धर्म प्रचारक आचार्य श्री का चतुर्मास मेदपाट की राजधानी चित्रकोट में हुआ? आपश्री ने अपने मुनियों को आस पास के नगरों में चतुर्मास के लिये भेज दिये थे? जिसमे चारों और धर्मोन्नति एवं धर्म की खुब जागृति हो रही थी? चित्रकोट तो एक यात्रा का धामही बन गया था? सैकड़ो हजारों भावुक सूरिजी के दर्शनार्थ आरहे थे और वे लोग सूरिजी की अमृतमय देशना सुन अपना अहोभाग्य समझते थे। एक समय सूरिजी ने आचर्यश्री रत्नप्रभसूरि एव यक्षदेवसूरिका जीवनके विषयमें व्याख्यान करते हुऐ फरमाया कि महानुभावों उन महापुरुषों ने किस २ प्रकार कठिनाइयों को सहन कर उन दुर्व्यसन सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की स्थापना की और उनके सन्तान परम्परा के आचार्यों ने उस सस्था का किस प्रकार रक्षण पोषण और वृद्धि की इसमें आचार्यों का तो मुख्य उद्योग था ही पर साथ में बड़े २ राजा महाराजा एव सेठ साहुकारों

का भी सहयोग था उन्होंने समय २ पर अपने नगर में सभाओं करके धर्म प्रचार के लिये जनता को खूब उत्तेजित की थी सभा एक धर्म प्रचार एवं संगठन का मुख्य साधन है इस से अनेक साधु साध्वियों, श्रावक और श्राविकाएं का आपस में मिलना समागम होना विचार-सलाह करना एक दूसरे को मदद करना विशेष धर्म प्रचारकों का उत्साह में वृद्धि होती है ! और वे अपना पैर धर्म प्रचार में आगे बढ़ा सकते वे उपकेशपुर, चन्द्रावती कोरंटपुर नागपुर आदि स्थानों में कई बार संघ सभा हुई थी और उसमें अच्छी सफलता भी मिली थी इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा उपदेश दिया जिसको सुनकर उपस्थित लोगों की भावना हुई कि अपने यहाँ भी एक ऐसी सभा की जाय कि चतुर्विध श्रीसंघ को आमन्त्रण कर बुलाया जाय जिससे सूरिजी महाराज के कथनानुसार धर्म प्रचार का कार्य सुविधा से हो सके इत्यादि उस समय तो यह विचार २ ही रहा व्याख्यान समाप्त हो गया और सभा विसर्जन हो गई । परन्तु मंत्री ठाकुरसीजी के हृदय में सूरिजी के व्याख्यान ने घर कर लिया उनको चैन कहाँ था भोजन करने के बाद पन्द्रह बीस महाजनों को लेकर मंत्री सूरिजी के पास आया और सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्याराध्य ! यहाँ का श्रीसंघ यहाँ पर एक संघ सभा करना चाहता है ! अतः यह कार्य किस पद्धति से किया जाय जिसका रास्ता कृपा कर बतावें ! सूरिजी ने फरमाया मंत्रीश्वर यह कार्य साधारण नहीं पर शासन का विशेष कार्य है इससे धर्मप्रचार को महान् सहाय्य रहा हुआ है ! पूर्व जमाने में धर्म प्रचार को इतनी सफलता मिली वह इस प्रकार के काम से ही मिली थी पर आप पहिले इस बात को सोच लीजिये कि इस कार्य में जैसे पुष्कल द्रव्यकी आवश्यकता है वैसे जनानुयायों के स्वागत के लिये कार्य कर्त्ताओं की भी आवश्यकता है । साथ में यह भी है कि बिना कष्ट लाभ भी नहीं मिलता है जितना अधिक कष्ट है उतना अधिक लाभ है ।

मंत्रीश्वर ने कहा पूज्यवर ! आप लोगों की कृपा से इन दोनों कार्यों में यहां के संघ को किसी प्रकार का विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है कारण यहां का संगठन अच्छा है कार्य करने में सब लोग उत्साही है और द्रव्य के लिये तो यदि संघ आज्ञा दीराबे तो एक आदमी सब पूर्ण दे सकता है इतना ही क्या पर यदि श्री संघ की कृपा मेरे ऊपर हो जाय तो मैं मेरा अहोभाग्य समझ कर इस कार्य में जितना द्रव्य खर्च हो उसको मैं अकेला खर्च दूंगा । पास में बैठे हुए सज्जनों में से शाह रघुवीर ने कहा पूज्यवर ! मंत्रीश्वर बड़े ही भाग्यशाली है संघ के प्रत्येक कार्य में आप अग्रेसर होकर भाग लिया करते है पर इस पुनीत कार्य का लाभ तो व्यावहारिक सकल संघ को ही मिलना चाहिये ।

सूरिजी ने उन सब की बातें सुन कर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक कहा कि मुझे उम्मेद नहीं थी कि यहां के संघ में इतना उत्साह है और आपके कार्य में अवश्य सफलता मिलेगी । सूरिजी का आशीर्वाद मिलना फिर कमी ही किस बात की थी संघ अग्रेसर सूरिजी को वन्दन कर वहां से चले गये और किसी स्थान पर एकत्र हो इस कार्य के लिये एक ऐसी स्कीम बनाली कि कार्य ठीक व्यवस्थित रूप से हो सके क्यों न हो वे लोग राजतंत्र चलाने में कुशल और व्यापार करने में दीर्घ दृष्टि वाले थे उनके लिये यह कार्य कौन सा कठिन था ।

मंत्रीश्वर वगैरह सूरिजी के पास आकर सभा के लिये दिन निश्चय करने की प्रार्थना की इस पर सूरिजी ने फरमाया कि ऐसा समय रखना चाहिये कि जिसमें नजदीक और दूर से सब मुनि आ सके कारण यह सभा ही खास मुनियों के लिये ही की जाती है और धर्म प्रचार के लिये मुनियों का उत्साह बढ़ाना है । मेरे ख्याल से पोष वदी १० भगवान पार्श्वनाथ का जन्म कल्याणक है । अत वही दिन सभा का

रखा जाय तो अच्छा है यदि इससे आगे बढ़ना हो तो माघ शुक्ल पूर्णिमा का रखा जावे कि सिन्ध पंजाब और सौराष्ट एव महाराष्ट प्रान्त के साधु भी आ सकें। इस पर सघ की इच्छा हुई की माघशुक्ल पूर्णिमा का समय रखा जावे तो अधिक लाभ मिल सकता है। अतः उन्होंने अर्ज की कि पूज्यवर! सभा का समय माघशुक्लपर्णिमा का ही रखा जाय तो अच्छी सुविधा रहेगी ? सूरिजी ने कहा ठीक है जैसे आपको सुविधा हो वैसा ही कीजिये। श्रीसङ्घ ने भगवान-महावीर की जय ध्वनी से सूरिजी के वचन को शिरोधार्य कर अपने कार्य में लग गये। आचार्य श्री के विराजने से चित्रकोट एवं आस पास के प्रदेश में धर्म की बहुत प्रभावना हुई। बाद चर्तुमास के सूरिजी विहार कर मेदपाट भूमि में खूब ही भ्रमन किया और जहां आप पधारे वहा धर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। इधर चित्रकोट के श्रीसंघ अग्रश्वेर ने अपने कार्य को खुब जोरों से आगे बढ़ा रहे थे। नजदीक और दूर २ आमन्त्रण पत्रिकाऐं भिजवा रहे थे और मुनियों कों आमन्त्रया के लिये श्रावक एव आदमियों को भेज रहे थे। इधर आगन्तुओं की स्वागत के लिए खूब ही तैयारियां कर रहे थे जिनके पास विपुल सम्पति और राज कारभार हाथ में हो वहां कार्य करने में कौनसी असुविधा रह जाती हैं दूसरे कार्य करने वाले बड़े ही उत्साही थे यह पहिले पहल का ही काम था सब के दिल में उमग थी।

ठीक समय पर सूरिजी महाराज इधर उधर घूमकर वापिस चित्रकोट पधार गये इधर मुनियों के मुण्ड के मुण्ड चित्रकोट की ओर आ रहे थे इसमें केवल उपकेशगच्छ के मुनि ही नहीं पर कोरंट गच्छ कोटी गच्छ और उनकी शाखा प्रशाखा के आस पास में विहार करने वाले सब साधु साध्वियों बड़े ही उत्साह के साथ आ रहे थे ऐसा कौन होगा कि इस प्रकार जैनधर्म के महान प्रभाविक कार्य से वंचित रह सकें चित्रकोट के श्री सघ ने बिना किसी भेद भाव के पूज्य मुनिवरों का खूब ही स्वागत सत्कार किया जैसे श्रमण संघ आया वैसे श्राद्ध वर्ग भी खुब गहरी तादाद में आये थे उसमें कई नगरों के नरेश भी शामिल थे और उन नरेशों की सहायता से ही धर्म प्रचार बढ़ा और बढता है चित्रकोट का राजा वैरेसिंह यों ही सूरिजी का भक्त था कई बार सूरिजी का उपदेश सुना था जब चित्रकोट में इस प्रकार महामंगलिक कार्य हुआ तो राजा कैसे वंचित रह सके। बाहर से आये हुये नरेशों की राजा ने अच्छी स्वागत की और भी आने वालों के लिये राजा की ओर से सब प्रकार की सुविधा रही थी।

ठीक समय—अर्थात माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन आचार्य देवगुप्तसूरि के अध्यक्षत्व में विराट सभा हुई उस सभा में कई पाच हजार साधु साध्वियों और एक लक्ष भावुक उपस्थित थे इतनी बड़ी सख्या होने पर भी वातावरण बहुत शान्त था सूरिजी की बुलंद आवाज सबको ठीक सुनाई देती थी। सूरिजी ने अपने व्याख्यान में जैनधर्म का महत्व और उसकी उपादयता के विषय में फरमाया कि जैन धर्म के स्याद्वार अर्थात् अनेकान्तवाद में सब धर्मों का समावेश हो सकता है अहिंसा सत्य अस्तय ब्रह्मचर्य निस्पृही और परोपकार में किसी का भी मतभेद नहीं हैं अर्थात् यह विश्वधर्म है। इसकी आराधना करने से जीवों का कल्याण होता है। जन्ममरण के दुखों का अन्त कर सकते हैं पुर्व जमाने में तीर्थंकर देवों ने इस धर्म का जोरों से प्रचार किया था परन्तु कलिकाल के प्रभाव से कई प्रान्तों में मुनियों के उपदेश के अभाव से पाखंडी लोगों ने धर्म के नाम पर इतना अधर्म बढ़ा दिया कि मास मदिरा और व्यभिचार में ही हित सुख और मोक्ष मान लिया। फिर तो दुनिया की वैसी कौनसी कामना शेष रह जाती कि जनता धर्म के नाम पर पुरी नहीं कर सके परन्तु कल्याण हो आचार्य स्वयप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि आदि का कि उन्होंने हजारो सकटों

को सहन कर चार चार मास तक भूखे प्यासे रह कर उन जंगलों की झाड़ उखेड़ कर धर्म के बीज बो दिये और जिसे आचार्य ने क्रमशः सींचन कर उसे हरा भरा एवं फला-फूला उपवन की भांति समृद्धशाली बना दिया है आर्य सुहस्ती सूरि ने सम्राट सम्प्रति जैसे को जैन धर्म का प्रचारक बना कर अनार्य देशों तक जैन धर्म का प्रचार करवा दिया! यही कारण है कि उन पूर्वाचार्य के प्रभाव से आज हम सुख पूर्वक विहार कर रहे हैं आज भी श्वेताम्बरों आदि महाजनसंघ मेरे सामने विद्यमान है यह उन आचार्यों के उपकार का ही सुमधुर फल है पर हमको केवल उन आचार्यों के बनाए हुए संघ पर ही हमारी जीवन यात्रा समाप्त नहीं कर देनी है! पर हम भी उन पूज्य पुरुषों का थोड़ा बहुत अनुकरण करें। प्यारे श्रमण गण आज आपके लिये सुवर्ण समय है पूर्व जमाने की अपेक्षा आज आपको सब प्रकार की सुविधा है! यदि आप कमर कस कर तैयार हो जावें तो चारों ओर धर्म का प्रचार कर सकते हो और यहां के संघ ने यह सभा इसी उद्देश को लक्ष में रख कर की है! मुझे आशा ही नहीं पर दृढ़ विश्वास है आप मेरे कथन को हृदय में स्थान देकर धर्म प्रचार के लिये कटिबद्ध तैयार हो जावेंगे! शासन का आधार मुख्य आप पर ही है! हां श्रावक वर्ग आपके कार्य में सहायक जरूर बन सकते हैं! और इस प्रकार दोनों के प्रयत्न से धर्म का उत्कर्ष बढ़ सकता है! इत्यादि सूरिजी ने उपदेश दिया और श्रवण करने वाले चतुर्विध श्री संघ में धर्मप्रचार की बिजली एक दम चमक उठी कई साधु तो भरी सभा में उठ कर खड़े हो कि पूज्यवर! आपने हमारा कर्त्तव्य बतला कर हमारे जीवन में एक नयी शक्ति पैदा कर दी है जिससे हम लोग धर्म प्रचार के लिये हमारा जीवन अर्पण करने में कटिबद्ध एवं तैयार बैठे है। आप जिस प्रदेश के लिये आज्ञा फरमावें उसी प्रदेश में हम विहार करने को तैयार है। फिर वहां सुविधा हो या कठनाइयों इसकी तनिक भी परवाह नहीं।

इस प्रकार श्रावकवर्ग ने भी सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! पूर्व जमाने में भी मुनियों ने धर्म प्रचार किया और आज भी मुनिगण आप का हुक्म शिरोधार्य करने को तैयार है इसमें जो हमारे से बने वह हमें भी फरमाइये कि हम को भी लाभ मिले।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि यह तो मुझे पहले से ही विश्वास था कि जिस त्याग वैराग्य से मुनिवरों ने स्वपर कल्याण कि भावना से दीक्षा ली है वो शासन सेवा करने में कब पीछे पैर रखेंगे! फिर भी आपके वीरता पूर्वक वचन सुन मुझे विशेष हर्ष होता है! इसी प्रकार श्राद्ध वर्ग के लिए भी कहा।

प्रायः देश से वाममार्गी रूपी अन्धकार के पैर तो उखड़ गये हैं! परन्तु बौद्धों का प्रचार कई प्रान्त में बढ़ता जा रहा है! इस लिये आप लोगों को तत् विषय के साहित्य का अध्ययन कर प्रत्येक प्रान्त में विहार कर स्वधर्म की रक्षा और प्रचार करें यह जुम्मेवारी आप लोगों पर छोड़ दी जाती है! इत्यादि उप-देश के अन्त में सभा विसर्जन हुई इस सभा से चित्रकोट के लोगों का दिल को बड़ा ही संतोष हुआ कारण जिस उद्देश को लक्ष में रख सभा का आयोजन किया गया था उसमें आशातीत सफलता मिल गई इससे बढ़ कर खुशी ही क्या हो सकती है!

आचार्य देवगुप्तसूरि ने आये हुए श्रमण संघ के अन्दर कई योग्य मुनियों को पद प्रतिष्ठित बना कर उनके योग्य गुणों की कदर की एवं उनके उत्साह को बढ़ाया जिसमें—

७—योगीन्द्र मूर्ति आदि सात साधुओं को पंडित पद
१२—ज्ञान सिन्धु आदि बारह „ „ वाचनाचार्य पद

[चित्रकोट में मुनियों को पद प्रदान

१५-निधान कलसादि पन्द्रह „ „ गणि पद
५-शान्ति शेखरादि पाच „ „ उपाध्याय"

इत्यादि पदवियों प्रधान की और सूरिजी इन पदवियों की जुम्मेवारी के विषय उनका कर्त्तव्य भी विस्तार से समझाया तथा त्याग का महत्व और दीक्षा से आत्म कल्याण पर खुब ही प्रभाव डाला फलस्वरूप में उसी सभा में कई ८ नरनारी सूरिजी के चरण कमलों मे दीक्षा लेने को तैयार होगये। श्री संघने पुन.महोत्सव किया और मोक्षाभिलाषियों को सूरिजी ने दीक्षा देकर उनका उद्धार किया और कइ दानवीरों ने संघ को पहरावणी भी दी तत्पश्चात सब लोग भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की जय ध्वनी के साथ अपने २ नगरों की ओर प्रस्थान किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि का चतुर्मास चित्रकोट में होने से मेदपाट में आपका बहुत जबर्दस्त प्रभाव पड़ा बहुत ग्राम नगरों के सघ ने अपने २ नगर की ओर पधारने की विनती करी। सूरिजी ने फरमाया कि—वर्तमान योग। आखिर सूरिजी ने वहाँ से विहार किया और छोटे बड़े ग्राम में विहार करते हुए आघाट नगर की ओर पधार रहे थे जब वहा के श्रीसघ को समाचार मिला तो उनके हर्ष का पारावार नहीं रहा बढे ही समारोह के साथ सूरिजी का स्वागत किया सूरिजी ने मन्दिर के दर्शन कर मंगलाचरण के पश्चात सारगर्भित देशना दी। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था वहां के श्रेष्टिगोत्री मंत्री नाहरु ने भगवान पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनाया था जिसकी प्रतिष्ठा सूरिजी के करकमलों से करवाई इस प्रतिष्ठा का प्रभाव मेदपाट की जनता पर बहुत अच्छा हुआ था पाच पुरुष और तीन बहिनों ने सूरिजी के पास दीक्षा भी ली थी। जिससे जैन धर्म की काफी प्रभावना हुई।

जब सूरिजी मेदपाट को पावन बनाकर मरुधर में पधार रहे थे तो मरुधर वासिओं के उत्साह का [illegible] नहीं रहा जिस ग्राम में सूरिजी पधारते वहा एक यात्रा का धाम ही बनजाता था सैकड़ों हजारों नरनारी [illegible]नार्थ आया करते थे इस प्रकार क्रमश आप शाकम्भरी पदमावती हंसावली मुग्धपुर होते हुये नागपुर [illegible]धारे आपका प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था कई लोगों ने त्याग वैराग्य एव तपश्चर्य कर लाभ [illegible]ठाया वहा से सूरिजी खेमकुशल वटपार हर्षपूर माडव्यपुर पधारे। वहाँ पर डिडूगोत्रीय शाह ठाकुरशी के [illegible]हामहोत्सव पूर्वक मुनि आशोकचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर उसका नाम सिद्धसूरि रखा तत्पश्चात् [illegible]रिजी ने सात दिन के अनसन एव समाधि पूर्वक स्वर्गवास किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि महाप्रभाविक और जैनधर्म के प्रचारक हुए आपने अपने तेरह वर्ष के शासन काल [illegible] खूब देशाटन कर जैनधर्म की उन्नति की अनेक मास मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये कई मन्दिर [illegible]ूर्तियों की प्रतिष्टाए करवाई इत्यादि अनेक ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे काम किये कि आपश्री की धवलकीर्ति [illegible]आज भी विश्व में अमर है ऐसे प्रभाविक आचार्यों से ही जैन शासन पृथ्वी पर गर्जना कर रहा है उन महा[illegible]पुरुषों का केवल जैनों पर ही नहीं पर विश्व पर उपकार हुआ है जिसको क्षणभर भी भुला नहीं जा सकता है।

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

१—कोरंटपुर	के	बलाह गो०	शाह	भूराने	सूरि०	दीक्षा ली
२—वडनगर	के	अदित्य० गो०	„	नाहराने	„	„

५—हर्षपुर से कुम्मट गो०	,,	काल्हण ने	,,	,,
६—आघाट नगर से श्रीमाल	,,	पवरा ने	,,	,,
७—मथुरा से बलाह गो०	,,	नरदेव ने	,,	,,
८—शालीपुर से श्रेष्टि	,,	प्रद्युम्न ने	,,	,,
९—ब्राम्हरेल से भूरि गो०	,,	ॐकार ने	,,	,,
१०—मुजपुर मे प्राग्वट वंशी	,,	जाला ने	,,	,,
११—चन्द्रावती से श्रीमाल वंशी	,,	माहू ने	,,	,,
१२—सोपार पटन से कुलभद्रगो०	,,	फागु ने	,,	,,
१३—डाणापुर से करणाट गो०	,,	झाला ने	,,	,,
१४—चंदेरी से श्रेष्टि	,,	मंत्री हाला ने	,,	,,
१५—सत्यपुर से प्राग्वट	,,	मन्त्री नारा ने	,,	,,

१६—खटकूंप का अदित्यनाग सुलतान युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१७—नागपुर का अदित्यनाग वीर भारमल युद्ध में०   ,,   ,,
१८—पद्मावती का चरड़ गो० वीर हनुमान   ,,   ,,   ,,
१९—रानीपुर का समभट्ट गो० शाह लुम्बो   ,,   ,,   ,,
२०—हिंदु नगर का मल्ल गो० शाह देदो   ,,   ,,   ,,
२१—कन्याकुब्ज का श्रेष्टि० वीर शादूल   ,,   ,,   ,,
२२—खटकूंप नगर में सुचंति गो० नोंधण की स्त्री ने एक कुंवा खुदाया
२३—हंसावली का श्रेष्टि धनदेव की विधवा पुत्री ने एक तलाव खुदाया
२४—विराट नगर के चोरलिया नाथा ने दुकाल में शत्रुकार दिया

इत्यादि वंशावलियों में उपकेश वंश के अनेक दान वीर उदार नर रत्नों ने धर्म सामाज एवं जन कल्याणार्थ चोखे और अनोखे कार्य कर अनंत पुन्योपार्ज्जन किये जिन्हों की धवल कीर्ति आज भी अमर है।

यह नोंध वंशावलियों से नमूना मात्र ली गई है परन्तु इस उपकेशवंश में जैसे उदार दानेश्वरी हुए हैं वैसे अन्य वंशों में भी बहुत से नर रत्न हुए हैं। उस समय के उपकेश वंशी मंत्री महामंत्री सेनापति आदि पदको सुशोभित कर अपनी वीरता का परिचय दिया करते थे यदि वे कहीं युद्ध में काम आजाते तो उनकी पत्नियों अपने सतीत्व की रक्षा के लिये अपने पतिदेव के पिछे प्राणापर्ण कर अपना नाम वीरांगणने में विख्यात कर देती थी। जिनके नमूने मात्र यहां बतलाया है।

सूरीश्वरजी महाराज के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाऐं

१—कायोजी	के चिंचट गौत्र	शाह	जुजार	ने	पार्श्वनाथ	प्रतिमाए
२—जैनपुर	के बाप्पनाग०	,,	कासा	ने	महावीर	,,
३—नारदपुरी	के आदित्यनाग	,,	कर्मा	ने	,,	,,
४—मादड़ी	के करणाट०	,,	हाना	ने	,,	,,

३०—आचार्य सिद्धसूरि (पांचवां)

गोत्रे मोरख नाम के समभवत् सिद्धेति सूरिर्महान् ।
भ्रान्त्वा देश मनेकशो जिनमतं लोके तथा ख्यापितम् ॥
येनासन् बहुलब्धयोऽथ च सदा दासाः स्वयं सिद्धयः ।
दीक्षित्वा स जनान् बहून् विहितवान् मोक्षाध्वयात्रा परान् ॥

चार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक सिद्ध पुरुष ही थे। आपने अपने शासन समय में जैनधर्म की खूब ही उन्नति की। कई जैनेतरों को जैनधर्म की दीक्षा दी कई मुमुक्षुओं को संसार से मुक्त किये और कई वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर जैनधर्म का झंडा सर्वत्र फहराया था। आपके जीवन के विषय पट्टावलीकार लिखते हैं कि जावलीपुर नगर में मोरख गोत्रिय पुष्करणा शाखा में जगाशाह नाम का धनकुबेर सेठ था। आपके गृहदेवी का नाम जैती था। माता जेती ने एक समय अर्द्ध निद्रा के अन्दर देखा कि उसका पतिदेव बड़ी ठकुराई के साथ बैठा हुआ है और किसी ने आकर उसको रत्न भेंट किया है। सुबह होते ही अपना शुभ स्वप्न शाह जगा को कह सुनाया। शाह जगा धर्मीष्ठ था। मुनियों की सेवा उपासना कर व्याख्यान सुनता था। वह स्वप्नशास्त्र का भी जानकार था अपनी प्रिय पत्नी का स्वप्न सुनकर विचार करके कहा कि हे प्रिय—तू बड़ी भाग्यशालिनी है। इस स्वप्न से पाया जाता है कि तेरी कुक्ष में कोई उत्तम जीव गर्भपने अवतीर्ण हुआ है इत्यादि जिसको सुन जेती ने बहुत हर्ष मनाया और जिन मन्दिरों में अष्टान्हिक महोत्सव पूजा प्रभावना और स्वामिवात्सल्यादि शुभ-कार्य किया। पहिले जमाने में हर्ष एव आफत में धर्मक्षेत्रों को विशेष याद किया करते थे।

जब माता के गर्भ तीन मास पूरे हुये और चतुर्थमास चल रहा था तो एक दिन उसको दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं सघ के साथ तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा कर प्रभु आदीश्वर की पूजा करूं इत्यादि। जेती ने इस दोहले को अपने पतिदेव को कह सुनाया। फिर तो देरी ही क्या थी, शाह जगा ने स्वीकार कर लिया। उस समय उपकेशगच्छ के पण्डित विवेक निधान का शुभागमन जावलीपुर में हुआ। शाह जगा ने पण्डित जी से प्रार्थना की कि आप सघ में पधार कर श्रीसघ को यात्रा का लाभ दीरावें पण्डित जी ने लाभालाभ का कारण समझ कर जगा का कहना स्वीकार कर लिया फिर तो देरी ही क्या थी शाह जगा ने सघ को आमन्त्रण करके बुलाया। पंडितजी ने जगा को सघपति पद से विभूषित किया और पण्डित विवेक निधान के नायकत्व में शुभ मुहूर्त्त एव अच्छे शकुनों से सघ ने प्रस्थान कर दिया। माता जेती सुखासन पर बैठी हुई ज्यों २ सघ को देखती थी त्यों २ उसको बड़ा ही आनन्द आता था। क्रमश रास्ता के मन्दिरों के दर्शन करता हुआ सघ शत्रुंजय पहुँचा और भगवान आदीश्वर की भक्ती सहित पूजा कर शाह जगा और आपकी पत्नी जैती ने अपना अहोभाग्य मनाया और माता ने अपना दोहला पूर्ण किया। शाह जगा ने तीर्थ पर पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य एवं ध्वजारोहण करने में खुल्ले दिल से पुष्कल द्रव्य व्यय

कर पुन्योपार्जन किया पट्टावलीकार लिखते हैं कि इस संघ में ७०० साधु साध्वियां और बीस हजार श्रावक थे आठ दिनों की स्थिरता के बाद संघ वहाँ से लौट कर पुनः आघाटपुर आया । शाह जगा ने स्वामिवात्सल्य कर एक एक सोना मुहर और वस्त्रादि की प्रभावना कर सब को विसर्जन किया ।

अहाहा ! वह जमाना आत्मकल्याण और धर्मभावना के लिये कैसा उत्तम था कि धर्म के नाम पर बात की बात में हजारों लाखों रुपये व्यय कर डालते थे । यही कारण था कि उन लोगों के पूर्वसंचित पुन्योदय और इस भव में पुन्य करते थे कि वे सर्व प्रकार से सुखी रहते थे । लक्ष्मी की तो उन लोगों को कभी परवाह तक नहीं थी तथापि वह उन भाग्यशालियों के घरों में स्थिर वास कर बैठ जाती थी जब कभी वे लोग इस प्रकार के कार्यों में लक्ष्मी को विदा करना चाहते थे तो लक्ष्मी गुस्सा कर दुगुनी चौगुनी होकर उन भाग्यशालियों के घर में अपना वास कर रहती थी । लक्ष्मी का स्वभाव एक विलक्षण ही था जहाँ इस को चाहते हैं आशा एवं तृष्णा रखते हैं वहाँ जाने में आनाकानी करती है पर जहाँ लक्ष्मी को न तो कभी याद करते हैं और न इसका आदर करते हैं वहाँ रहने में खुशी मनाती है और चिरस्थायी रहती है ।

माता मेघी को कभी अपनी साधर्मियों को भोजन करा कर जयणामयी देने का तथा कभी गुरुमहाराज के व्याख्यान सुनने का एवं दान देने का और कभी परमेश्वर की पूजा करने का मनोरथ उत्पन्न होता था । जिसको शाह जगा आनन्द पूर्वक पूर्ण करता था । क्रमशः माता मेघी ने शुभ वक्त में एक पुत्र रत्न को जन्म दिया जिससे शाह जगा के हर्ष का पार नहीं रहा । याचकों को दान और सज्जनों को सम्मान दिया । जिन मन्दिरों में अष्टाह्निका महोत्सव प्रारंभ किया । कहा है कि—

रण जीतण कंकण बंधन, पुत्र जन्म उत्साह । तीनों अवसर दान के, कौन रंक को राव ॥

जन्मादि महोत्सव करते हुए बारहवें दिन दशोटन कर पुत्र का नाम ठाकुरसी रक्खा गया । बाल कुँवर ठाकुरसी क्रमशः बड़ा हो रहा था उसकी बालक्रीड़ायें मानो होनहार की सूचना कर रही थीं। उसके शुभ पगों की रेखा एवं हृदय उसका अभ्युदय बतला रहे थे और शाह जगा और माता मेघी ठाकुरसी के लिये बड़ी बड़ी आशाओं के पुल बाँध रहे थे ।

जब ठाकुरसी आठ वर्ष का हुआ तो उसको महोत्सव के साथ विद्यालय में प्रवेश किया पर ठाकुरसी ने पूर्व जन्म में ज्ञानपद की एवं सरस्वती देवी की एकाग्र चित्त से आराधना की हुई थी कि अपने सहपाठियों से सदैव अग्रेसर ही रहता था व्यावहारिक विद्या के साथ ठाकुरसी को धार्मिक ज्ञान पर विशेष रुचि थी । उसके माता पितादि सब कुटम्ब पहिले से ही जैनधर्मोपासक एवं जैनधर्म की क्रिया करने वाले थे । जब ठाकुरसी बालक था तब ही माता मेघी उसको स्नान करवाकर अच्छे वस्त्र पहना कर मन्दिर ले जाया करती थी अतः ठाकुरसी के धार्मिक संस्कार शुरू से ही जमे हुये थे अब धार्मिक पढ़ाई करने से और उसके भावों को समझने में तो और भी अधिक आनन्द आने लगा जिससे वह अपनी माता को धार्मिक क्रिया के लिये प्रेरणा किया करता था जिसको देखकर कभी कभी तो माता शंका करने लग जाती थी कि ठाकुरसी कहीं दीक्षा न ले ले ! अतः ठाकुरसी की माता चाहती थी कि ठाकुरसी का विवाह जल्दी कर दिया जाय । उसने अपने पतिदेव को कहा कि क्या ठाकुरसी की शादी नहीं करनी है ? सेठ जी ने कहा कि ठाकुरसी की शादी के लिये तो बहुत प्रस्ताव आते हैं पर अभी ठाकुरसी की वय सोलह वर्ष की है मेरी इच्छा है कि २ वर्ष

होजाय तब शादी करनी ठीक है। सेठानी ने कहा कि १६ वर्ष के की शादी करना कौनसा अनुचित है। सोलह वर्ष के की शादी तो सब जगह होती है। मेरी इच्छा है कि ठाकुरसी की शादी जल्दी की जाय। आयुष्य का क्या विश्वास है एक बार पुत्रवधू को आँखों से देख तो लूं इत्यादि। सेठानी का अत्याग्रह होने से सेठजी ने उसी नगर में बलाह गोत्रिय शाह चतरा की सुशील लिखी पढ़ी विनयादि गुणवाली जिनदासी के साथ बड़ी ही धामधूम से ठाकुरसी का विवाह कर दिया। बस, अब तो माता की शंका मिट गई और सब मनोरथ सिद्ध होगये। इधर तो ठाकुरसी माता का सुपुत्र था और उधर जिनदासी विनयवान लज्जावान् लिखी पढी चतुर और गृहकार्य में दक्ष बहू आगई फिर तो माता जैती फूली ही क्यो समावे। संसार में जो सुख कहा जाय वह सब माता जैती के घर पर आकर एकत्र ही होगये।

ठाकुरसी के लग्न को पूरे छ मास भी नहीं हुये थे कि धर्मप्राण धर्ममूर्त्ति लब्धप्रतिष्ठित धर्मप्राचारक अनेक विद्वान मुनियों के साथ आचार्य देवगुप्तसूरि का शुभागमन जावलीपुर की ओर हुआ। जब वहाँ के श्रीसघ को यह शुभ समाचार मिले तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। उन्होंने सूरिजी का स्वागत एव नगर-प्रवेश का महोत्सव बड़े ही समारोह से किया जिसमें शाह जगा एवं ठाकुरसी भी शामिल थे। सूरिजी का मगलाचरण इतना सारगर्भित था कि श्रवण करने वालों को बड़ा ही आनन्द आया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ त्याग वैराग्य और आत्मकल्याण पर विशेष होता था एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता बतलाते हुये फरमाया कि तीर्थङ्करदेवों ने संसार को दु खों का खजाना इस वास्ते बतलाया है कि—

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य। अहो! दुक्खो हुं संसारो, जत्थ किस्सं तिजंतुणो ॥
जरा मरण कंतारे चाउरंते भयागरे। मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥

यह दु ख उत्पन्न होता है इन्द्रियों से। इन्द्रिय के विषय को दो विभाग में विभाजित करदिया जाय तो एक काम और दूसरा भोग—जैसे श्रोत्रइन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय भोगी हैं। इस काम और भोग से ही जीव दुःख परम्परा का सचय कर ससार में भ्रमण कर रहा है। जब जीव को अज्ञान एवं भ्रान्ति होजाती है तब वे दु ख को भी सुख मान लेते हैं अर्थात् हलाहल जहर को अमृत मान लेते हैं जैसे कि—

जहां किंपाकफलाणं, परिणामो ण सुंदरो। एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो ण सुंदरो ॥
सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा। कामेय पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥

कई काम भोग से विरक्त होते हुये भी माता पिता स्त्री आदि कुटुम्ब परिवार की माया में फँस कर कर्मबंध करते हैं जैसे—

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा। नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतितस्स सकम्मुणा ॥

पर यह नहीं सोचते हैं कि जब कर्मोदय होगा तब यह माता पितादि मेरी रक्षा कर सकेंगे या मैं अकेला ही कर्म भुक्तुगा। जैसे एक हलवाई ने किसी राजा के यहाँ घेवर बनाया पर उसके दिल में बेईमानी आगई कि गरमागरम चार घेवर चुरा कर अपने लड़के के साथ घर पर भेज दिये। औरत ने समझा कि मैं पुत्र पुत्री और पति एव घर में चार जने हैं, और चार घेवर हैं एक एक घेवर हिस्से में आता है तो फिर गरमागरम न खाकर स्वाद क्यों गमावें। उन तीनों ने तीन घेवर खा लिये, एक हलवाई के लिये रख दिया

अपनी माँ से भी कहता हूँ कि आपका मेरे प्रति सच्चा प्रेम है तो आप भी गुरु महाराज के चरणों की शरण लेकर आत्म कल्याण करें। किसका बेटा और किसके माँ बाप यह तो एक स्वप्न की माया है न जाने किस गति से आये और किस गति में जावेंगे यह मनुष्य जन्मादि अनुकूल सामग्री बार बार मिलने कि नहीं है। आपने सुना हुआ सच्ची प्रीति तो जम्बुकुँवर के माता पिता और स्त्रियों की थी कि उन्होंने अपने प्यारे पुत्र के साथ दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया इत्यादि।

✓ ठाकुरसी अपने माता पिता से बातें कर रहा था और एक तरफ उसकी छ मास की परणी हुई स्त्री बैठी थी और अपने पतिदेव की सब बात सुन रही थी। जिससे उसको बड़ा ही दुःख हो रहा था।

शाह कागा ने कहा बेटा तू भी जम्बुकुँवर बनना चाहता है। बेटा ने कहा पिताजी जम्बुकुँवर तो चरम मोक्षगामी था परन्तु भावना तो एक मेरी क्या पर सब की ऐसी ही होनी चाहिये। शाह कागा तो ठाकुरसी के वचन सुन मंत्रमुग्ध बन गया। अब ठाकुरसी को क्या जवाब दे इसके लिए वह विचार समुद्र में गोता लगा रहा था आखिर में कहा चलो भोजन तो करलो फिर इसके लिये विचार किया जायगा! बाप बेटा ने साथ में बैठकर भोजन कर लिया बाद बाप तो गया दुकान पर और बेटा गया अपने महल में वहाँ पर ठाकुरसी की स्त्री थी उसने अपने पति को खूब कहा पर ठाकुरसी ने उसे इस कदर समझाई कि उसने अपने पतिदेव का साथ देना स्वीकार कर लिया। रात्रि के समय सेठ सेठानी ने आपस में विचार किया कि अब क्या करना चाहिये। ठाकुरसी ने तो दीक्षा का हठ पकड़ लिया है। सेठानी ने कहा कि केवल ठाकुरसी ही क्यों पर ठाकुरसी की बहू भी दीक्षा लेने को तैयार होगई है। सेठ ने कहा यदि ऐसा ही है तो फिर अपने घर में रहकर क्या करना है आखिर एक दिन मरना तो है ही जब ठाकुरसी और उसकी औरत इस तरुणावस्था में भोग विलास छोड़ दीक्षा लेते हैं तो अपन तो भुक्त भोगी हैं इत्यादि। सेठानी ने कहा दीक्षा का विचार तो करते हो पर दीक्षा पालनी सहज बात नहीं है। इसका पहिले विचार कर लीजिये। सेठजी ने कहा कि इसमें विचार कैसी क्या बात है। इतने हमारी साधु साध्वियां दीक्षा पालते हैं वे भी तो एक दिन गृहस्थ ही थे। दूसरे हम व्यापार में भी देखते हैं कि थोड़ा मूल्य कम मिला लाभ भी तो कहा है इत्यादि दोनों का विचार पुत्र के साथ दीक्षा लेने का होगया। बस शाहकागा ने अपने पुत्र थोगा को सब अधिकार देदिया और जो सात क्षेत्र में द्रव्य देना था वह देदिया तथा थोगा ने अपने माता पिता एवं लघु बान्धव की दीक्षा का महोत्सव किया और सूरिजी ने ठाकुरसी उसके माता पिता स्त्री तथा ११ नरनारी एवं १७ मुमुक्षुओं को शुभ मुहूर्त में दीक्षा देदी और ठाकुरसी का नाम यशोकचन्द्र रख दिया। मुनि यशोकचन्द्र बड़ा ही त्यागी वैरागी विनयविज्ञ था उसकी ज्ञान पढ़ने की तो पहिले से ही रुचि थी। सरस्वती देवी की पूर्ण कृपा थी अतः विनय भक्ति करके थोड़े ही दिनों में वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर धुरंधर विद्वान् बन गया आपकी व्याख्यान शैली इतनी मधुर और व ओजोत्पादक थी कि बड़े बड़े राजा महाराजा आपके व्याख्यान सुनने को लालायित रहते थे। शास्त्रार्थ में तो आप इतने सिद्ध हस्त थे कि कई राजाओं की सभा में वादियों को पराजित कर जैन धर्म की ध्वजा पताका फहराई थी। आचार्य देवगुप्त सूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में देवी सच्चायिका की सम्मति से माडव्यपुर के विद्रु मीर्मिप शाह ठाकुरसी आदि श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनि यशोकचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य सिद्धसूरि महान प्रभाविक एवं जैनधर्म के कट्टर प्रचारक हुए। आप विहार करते हुए एक

होजाय तब शादी करनी ठीक है । सेठानी ने कहा कि १६ वर्ष के की शादी करना कौनसा अनुचित है । सोलह वर्ष के की शादी तो सब जगह होती है । मेरी इच्छा है कि ठाकुरसी की शादी जल्दी की जाय । आयुष्य का क्या विश्वास है एक बार पुत्रबधू को आँखों मे दाख तो लू इत्यादि । सेठानी का अत्याग्रह होने से सेठजी ने उसी नगर में बलाह गोत्रिय शाह चतरा की सुशील लिखी पढ़ी विनयादि गुणवाली जिनदासी के साथ बड़ी ही धामधूम से ठाकुरसी का विवाह कर दिया । बस, अब तो माता की शंका मिट गई और सब मनोरथ सिद्ध होगये । इधर तो ठाकुरसी माता का सुपुत्र था और उधर जिनदासी विनयवान लज्जावान् लिखी पढी चतुर और गृहकार्य्य में दक्ष बहू आगई फिर तो माता जैती फूली ही क्यों समावे । ससार में जो सुख कहा जाय वह सब माता जैती के घर पर आकर एकत्र ही होगये ।

ठाकुरसी के लग्न को पूरे छ' मास भी नहीं हुये थे कि धर्मप्राण धर्ममूर्त्ति लब्धप्रतिष्ठित धर्मप्रचारक अनेक विद्वान मुनियों के साथ आचार्य देवगुप्तसूरि का शुभागमन जावलीपुर की ओर हुआ । जब वहाँ के श्रीसघ को यह शुभ समाचार मिले तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा । उन्होंने सूरिजी का स्वागत एव नगर-प्रवेश का महोत्सव बड़े ही समारोह से किया जिसमें शाह जगा एव ठाकुरसी भी शामिल थे । सूरिजी का मंगलाचरण इतना सारगर्भित था कि श्रवण करने वालों को बड़ा ही आनद आया । सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ त्याग वैराग्य और आत्मकल्याण पर विशेष होता था एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता बतलाते हुये फरमाया कि तीर्थङ्करदेवों ने ससार को दु'खों का खजाना इस वास्ते बतलाया है कि—

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य । अहो ! दुक्खो हुँ संसारों, जत्थ किस्सं तिजंतुणो ॥
जरा मरण कंतारे चाउरंते भयागरे । मए सोढ़ाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥

यह दु ख उत्पन्न होता है इन्द्रियों से । इन्द्रिय के विषय को दो विभाग में विभाजित करदिया जाय तो एक काम और दूसरा भोग—जैसे श्रोत्रइन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय भोगी हैं । इस काम और भोग से ही जीव दुख परम्परा का सचय कर ससार में भ्रमण कर रहा है । जब जीव को अज्ञान एवं भ्रान्ति होजाती है तब वे दु'ख को भी सुख मान लेते हैं अर्थात् हलाहल जहर को अमृत मान लेते हैं जैसे कि—

जहाँ किंपाकफलाणं, परिणामो ण सुंदरो । एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो ण सुंदरो ॥
सल्लं कामा विस कामा, कामा आसीविसोवमा । कामेय पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥

कई काम भोग से विरक्त होते हुये भी माता पिता स्त्री आदि कुटुम्ब परिवार की माया में फँस कर कर्मबध करते हैं जैसे—

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा । नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतितस्स सकम्मुणा ॥

पर वह नहीं सोचते हैं कि जब कर्मोदय होगा तब यह माता पितादि मेरी रक्षा कर सकेंगे या मैं अकेला ही कर्म भुक्तुगा । जैसे एक हलवाई ने किसी राजा के यहाँ गेवर बनाया पर उसके दिल में बेईमानी आगई कि गरमागरम चार गेवर चुरा कर अपने लड़के के साथ घर पर भेज दिये । औरत ने समझा कि मैं पुत्र पुत्री और पति एव घर में चार जने हैं, और चार घेवर हैं एक एक घेवर हिस्से में आता है तो फिर गरमागरम न खाकर स्वाद क्यों गमावें । उन तीनों ने तीन घेवर खा लिये, एक हलवाई के लिये रख दिया

अपनी माँ से भी कहता हूँ कि आपका मेरे प्रति सच्चा प्रेम है तो आप भी गुरु महाराज के चरणों की शरण लेकर आत्म कल्याण करें। किसका बेटा और किसके माँ बाप यह तो एक स्वप्न की माया है न जाने किस गति से आये और किस गति में जावेंगे यह मनुष्य जन्मादि अनुकूल सामग्री बार बार मिलने कि नहीं है। आपने सुना हुआ सच्ची बीति तो जम्बुकुँवर के माता पिता और स्त्रियों थी की उन्होंने अपने प्यारे पुत्र के साथ दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया इत्यादि।

ठाकुरसी अपने माता पिता से बातें कर रहा था और एक तरफ उसकी नवयौवना की परणी हुई स्त्री बैठी थी और अपने पतिदेव की सब बात सुन रही थी। जिससे उसको बड़ा ही दुःख हो रहा था।

शाह जगा ने कहा बेटा तू भी जम्बुकुँवर बनना चाहता है। बेटा ने कहा पिताजी जम्बुकुँवर तो तद्भव मोक्षगामी था परन्तु भावना तो एक मेरी क्या पर सब की ऐसी ही होनी चाहिये। शाह जगा तो ठाकुरसी के वचन सुन मंत्रमुग्ध बन गया। अब ठाकुरसी को क्या जवाब दे इसके लिये वह विचार समुद्र में गोता लगा रहा था आखिर में कहा चलो भोजन तो करलो फिर इसके लिये विचार किया जायगा। बाप बेटा ने साथ में बैठकर भोजन कर लिया बाद बाप तो गया दुकान पर और बेटा गया अपने महल में वहाँ पर ठाकुरसी की स्त्री थी उसने अपने पति को खूब कहा पर ठाकुरसी ने उसे इस प्रकार समझाई कि उसने अपने पतिदेव का साथ देना स्वीकार कर लिया। रात्रि के समय सेठ सेठानी ने आपस में विचार किया कि अब क्या करना चाहिये। ठाकुरसी ने तो दीक्षा का हठ पकड़ लिया है। सेठानी ने कहा कि केवल ठाकुरसी ही क्यों पर ठाकुरसी की बहू भी दीक्षा लेने को तैयार होगई है। सेठ ने कहा यदि ऐसा ही है तो फिर अपने घर में रहकर क्या करना है आखिर एक दिन मरना तो है ही जब ठाकुरसी और उसकी औरत इस तरुणावस्था में भोग विलास छोड़ दीक्षा लेते हैं तो अपने तो कुछ भोगी हैं इत्यादि। सेठानी ने कहा दीक्षा का विचार तो करते हो पर दीक्षा पालनी सहज बात नहीं है। इसका पहिले विचार कर लीजिये। सेठजी ने कहा कि इसमें विचार जैसी क्या बात है। इतने हमारे साधु साध्वियाँ दीक्षा पालते हैं वे भी तो एक दिन गृहस्थ ही थे। दूसरे हम व्यापार में भी देखते हैं कि थोड़ा बहुत कष्ट बिना काम भी तो नहीं है इत्यादि दोनों का विचार पुत्र के साथ दीक्षा लेने का होगया। बस शाह जगा ने अपने पुत्र योग्य को सब अधिकार देदिया और जो बाद देव में द्रव्य देना था वह देदिया तथा लोगों ने उनके माता पिता एवं लघु बान्धव की दीक्षा का महोत्सव किया और सूरिजी ने ठाकुरसी उनके माता पिता स्त्री तथा ११ नरनारी एवं १० मुमुक्षुओं को शुभ मुहूर्त में दीक्षा देदी और ठाकुरसी का नाम यशोदेवचन्द्र रख दिया। मुनि यशोदेवचन्द्र बड़ा ही त्यागी वैरागी जितेन्द्रिय था उसको ज्ञान पढ़ने की तो पहिले से ही रुचि थी। सरस्वती देवी की पूर्ण कृपा थी आप विनय भक्ति करके थोड़े ही दिनों में वर्तमान् साहित्य का अध्ययन कर धुरंधर विद्वान् बन गया आपकी व्याख्यान शैली इतनी मधुर और प्रभावोत्पादक थी कि बड़े बड़े राजा महाराजा आपके व्याख्यान सुनने को लालायित रहते थे। शास्त्रार्थ में तो आप इतने सिद्ध हस्त थे कि कई राजाओं की सभा में वादियों को पराजित कर जैन धर्म की ध्वजा पताका फहराई थी। आचार्य देवगुप्त सूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में देवी सच्चायिका की सम्मति से माडव्यपुर के श्रेष्ठि गौत्रीय शाह ठाकुरसी आदि श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनि यशोदेवचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य सिद्धसूरि महान प्रभाविक एवं जैनधर्म के कट्टर प्रचारक हुये। आप विहार करते हुए एक

समय उज्जैन नगरी में पधारे। श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया तथा श्रीसंघ की आग्रह पूर्वक विनती होने से वह चतुर्मास आपने उज्जैन में ही किया। आपके विराजने से कई प्रकार से धर्म की प्रभावना हुई। उज्जैन के चतुर्मास में आपने विचार किया कि कई वर्ष होगये हैं आचार्यों का दक्षिण की ओर विहार नहीं हुआ है। वहा कई मुनि विचरते हैं उनका क्या हाल है ? अतः दक्षिण की ओर विहार करना जरूरी है। उस अवसर पर देवी सच्चायिका भी सूरिजी को वंदन करने को आई थी। सूरिजी ने देवी की भी सम्मति ली तो देवी ने बड़ी खुशी के साथ सम्मति देदी और कहा पूज्यवर ! जितना आपका विहार अधिक क्षेत्रों मे होगा उतना ही धर्म का प्रचार अधिक बढेगा। आप खुशी से दक्षिण की ओर विहार करें। बस चतुर्मास समाप्त होते ही आप श्री ने अपने पांचसौ साधुओं के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया।

उस समय के आचार्य अपने पास अधिक मुनियों को इस गर्ज से रखते थे कि जिस प्रान्त में आप विहार करते उस प्रान्त के छोटे बड़े सब ग्रामों में लोगों को उपदेश मिल जाता कारण, छोटे २ ग्रामों में थोड़े २ साधुओं को भेज देते और बड़े नगरों में सब साधु शामिल हो जाते थे इससे एक तो गोचरी पानी की तकलीफ उठानी नहीं पड़ती और दूसरे ग्राम वालों को उपदेश भी मिलजाता। अत. उस समय के साथ जैनाचार्यों के कम से कम एक सौ साधु और ज्यादा से ज्यादा ५०० साधु तक भी रहते थे। उस समय जैनों की सख्या बहुत थी और भग्यशाली दीक्षा भी बहुत लेते थे। उन आचार्यों के त्याग.वैराग्य निस्पृहता एवं परोपकार का प्रभाव भी वो दुनियां पर बहुत पड़ता था।

सूरिजी महाराज अपने ५०० शिष्यों के साथ यूथपति की भांति ग्रामोग्राम विहार करते हुये एवं धर्मोपदेश देते हुये और धर्म जागृति करते हुये पधार रहे थे। जिस प्रदेश में आपश्री का पदार्पण होता वह प्रदेश धर्म से नवपल्लव बन जाता था कारण आपश्री का उपदेश ही ऐसा था कि क्या राजा और क्या प्रजा धर्म के अनुरागी बन जाते थे कइ महानुभाव ससार त्याग कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण में लग जाते थे। सूरिजी का पहला चतुर्मास मानपेट राजधानी में हुआ वहाँ भी धर्म की खुब प्रभावना हुई बाद चतुर्मास के सूरिजी आस पास के प्रदेश में विहार कर बहुत अजैनों को जैन बनाये कइ-मुमुक्षुओं को दीक्षा दी तत्पश्चात् आप मदुरा में पधारे वहाँपर एक श्रमण सभा की गई जिसमें उस प्रान्त में विहार करने वाले सब मुनि एकत्र हुए थे। सूरिजी ने उन मुनियों के धर्म प्रचार कार्यों की खुब सहराना की और योग्य मुनियों को पदवियों प्रधान कर उनके उत्साह को बढाया दूसरा चतुर्मास सूरिजी ने मथुरा में किया वहाँ पर श्रेष्टि यशदेव ने भगवान् महावीर का बहुतर देहरी वाला मन्दिर बनाया उस की प्रतिष्टा करवाई उस सुअवसर पर बारह नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा ली तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमशः ग्राम नगरों की स्पर्शना करते हुए सोपारपट्टन पधारे वहाँ के श्री सघ ने सूरिजी का बहुत समारोह से स्वागत किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था श्रोताजन को बड़ा भारी आनन्द आता था श्रीसंघ ने सूरिजी से चतुर्मास की प्रार्थना की और लाभालाभ का कारण जान कर सूरिजी ने स्वीकार करली। सूरिजी के चतुर्मास मे श्रीसघ में धर्म जागृत अच्छी हुई। कई शुभ कार्य्य हुये। पांच महिला और तीन श्रावकों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली। तदनन्तर आस पास के प्रदेश में भ्रमण करते हुए सूरिजी सौराष्ट्र में पधार कर गिरनार मण्डन भगवान नेमिनाथ की यात्रा की। वहाँ पर एक योगियों की जमात आई हुई थी उसमें एक तरुण साधु अच्छा लिखा पढ़ा था पर उसको अपने ज्ञान का बड़ा ही घमंड था यहाँ तक कि दूसरे विद्वानों को

१—एक सधवा औरत कि जिसके पुत्र होने का स्वभाव है और पति भी पास में है उसके पुत्र
प्राप्ती जल्दी होती है ।

२—सधवा औरत है पुत्र होने का स्वभाव भी है पर उसका पति घर पर नहीं जब पति घर
आवेगा तब पुत्र होगा । अतः पुत्र होने में विलम्ब है ।

३—विधवा औरत है पुत्र होने का स्वभाव है पर उसका पति गुजर गया है इसके कभी पुत्र हो
ही नहीं केवल पुत्र होने का स्वभाव जरूर है ।

४—चौथी सधवा है पर बांझ है । उसका पति चाहे घर पर हो चाहे प्रदेश में हो उसके कभी पु
नहीं होगा । क्योंकि उसमें पुत्र होने का स्वभाव ही नहीं है ।

इस उदाहरण का मतलब यह है कि चार औरतों के स्थान चार प्रकार के जीव हैं । पुत्र होने के स्वभा
के स्थान मोक्ष जाने का स्वभाव है । पति के स्थान ज्ञान दर्शन चा रत्र समझ लीजिये । अब इसका खुलासा:-

१—पहिला जीव निकट भव्यी है जल्दी मोक्ष जाने वाला है । कारण मोक्ष जाने का स्व
है और ज्ञान दर्शन का संयोग एवं आराधना भी है ।

२—दूसरा दुर्भवी इसमें मोक्ष जाने का स्वभाव है पर वर्तमान ज्ञान दर्शन की आराधना का सा
न नहीं है । जब कभी आराधना का संयोग मिलेगा तब मोक्ष होगा ।

३—तीसरे जातिभव्य के मोक्ष जाने का स्वभाव है पर उसको ज्ञानादि की आराधना का समय
नहीं मिलता और न वह मोक्ष ही जायगा केवल स्वभाव मात्र है ।

४—चौथा अभव्य कि मोक्ष जाने का स्वभाव ही नहीं है उसको ज्ञानादि आराधना का समय
नहीं मिले कदाचित् समय मिले तो आन्तरिक भावों से नहीं आराधे उसकी मोक्ष भी कभी नहीं होगी ।

इस उदाहरण से आप समझ सकते हो कि यह कभी न तो हुआ न होगा कि सब जीव मोक्ष चले जा

रासू—इसका क्या कारण है कि जातिभव्य और अभव्य को ज्ञानादि की आराधना का स
क्यों मिले ?

मुनि—जीव के आठ कर्मों में एक मोहनीय नाम का कर्म है कि जातिभव्य और अभव्य जीवों
आत्म प्रदेश से कभी दूर ही नहीं सकता है । उसके बिना हटे ज्ञानादि की आराधना हो नहीं सकती ।
अतः वह मोक्ष जा नहीं सकता है ।

रासू—ज्ञान दर्शन चारित्र किसको कहते हैं और इसकी आराधना किस प्रकार होती है ?

मुनि—ज्ञान वस्तु तत्त्व को सम्यक् प्रकार अर्थात् यथार्थ समझना उस सम्यक् ज्ञान कहते हैं इ
भी पांच भेद हैं । जैसे कि —

१—मतिज्ञान जो स्वयं ज्ञान से ज्ञानशक्ति पैदा होती ।

२—श्रुतिज्ञान-दूसरों से सुनना या पुस्तकादि का पठन पाठन करने से ज्ञान होता है ये दोनों ज्ञा
ऐसे हैं कि साथ में ही रहते हैं और आपस में एक दूसरे के सहायक भी हैं ।

३—अवधिज्ञान—इसके अनेक भेद हैं और यह है भी अतिशय ज्ञान कि इससे भूत भविष्य और
वर्तमान की बात जान सकता है पर है मर्यादित ।

४—मनपर्यवज्ञान— इस ज्ञान से दूसरे के मन की बात कह सकता है ।

समय उज्जैन नगरी में पधारे। श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया तथा श्रीसंघ की आग्रह पूर्वक विनती होने से वह चतुर्मास आपने उज्जैन में ही किया। आपके विराजने से कई प्रकार से धर्म की प्रभावना हुई। उज्जैन के चतुर्मास में आपने विचार किया कि कई वर्ष होगये हैं आचार्यों का दक्षिण की ओर विहार नहीं हुआ है। वहा कई मुनि विचरते हैं उनका क्या हाल है ? अत: दक्षिण की ओर विहार करना जरूरी है। उस अवसर पर देवी सच्चायिका भी सूरिजी को वदन करने को आई थी। सूरिजी ने देवी की भी सम्मति ली तो देवी ने बड़ी खुशी के साथ सम्मति देदी और कहा पूज्यवर ! जितना आपका विहार अधिक क्षेत्रों में होगा उतना ही धर्म का प्रचार अधिक बढेगा। आप खुशी से दक्षिण की ओर विहार करें। बस चतुर्मास समाप्त होते ही आप श्री ने अपने पाचसौ साधुओं के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया।

उस समय के आचार्य अपने पास अधिक मुनियों को इस गर्ज से रखते थे कि जिस प्रान्त में आप विहार करते उस प्रान्त के छोटे बड़े सब ग्रामों में लोगों को उपदेश मिल जाता कारण, छोटे २ ग्रामों में थोडे २ साधुओं को भेज देते और बड़े नगरों में सब साधु शामिल हो जाते थे इससे एक तो गौचरी पानी की तक्लीफ उठानी नहीं पड़ती और दूसरे ग्राम वालों को उपदेश भी मिलजाता। अत उस समय के साथ जैनाचार्यों के कम से कम एक सौ साधु और ज्यादा से ज्यादा ५०० साधु तक भी रहते थे। उस समय जैनों की सख्या बहुत थी और भग्यशाली दीक्षा भी बहुत लेते थे। उन आचार्यों के त्याग, वैराग्य निस्पृहता एव परोपकार का प्रभाव भी तो दुनिया पर बहुत पड़ता था।

सूरिजी महाराज अपने ५०० शिष्यों के साथ यूथपति की भांति ग्रामोग्राम विहार करते हुये एव धर्मोपदेश देते हुये और धर्म जागृति करते हुये पधार रहे थे। जिस प्रदेश में आपश्री का पदार्पण होता वह प्रदेश धर्म से नवप्लव बन जाता था कारण आपश्री का उपदेश ही ऐसा था कि क्या राजा और क्या प्रजा धर्म के अनुरागी बन जाते थे कइ माहानुभाव समार त्याग कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण में लग जाते थे। सूरिजी का पहला चतुर्मास मानपेट राजधानी में हुआ यहाँ भी धर्म की खुब प्रभावना हुई बाद चतुर्मास के सूरिजी आस पास के प्रदेश में विहार कर बहुत अजैनों को जैन बनाये कइ मुमुक्षुओं को दीक्षा दी तत्पश्चात् आप मदुरा में पधारे वहाँपर एक श्रमण सभा की गई जिसमें उस प्रान्त में विहार करने वाले सब मुनि एकत्र हुए थे। सूरिजी ने उन मुनियों के धर्म प्रचार कार्यों की खुब सहराना की और योग्य मुनियों को पदवियों प्रधान कर उनके उत्साह को बढाया दूसरा चतुर्मास सूरिजी ने मथुरा में किया वहाँ पर श्रेष्टि यशादेव ने भगवान् महावीर का बहुतर देहरी वाला मन्दिर बनाया उस की प्रतिष्टा करवाई उस शुभअवसर पर बारह नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा ली तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमश ग्राम नगरों की स्पर्शना करते हुए सोपारपट्टन पधारे वहाँ के श्री सघ ने सूरिजी का बहुत समारोह से स्वागत किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था श्रोताजन को बड़ा मारी आनन्द आता था श्रीसघ ने सूरिजी से चतुर्मास की प्रार्थना की और लाभालाभ का कारण जान कर सूरिजी ने स्वीकार करली। सूरिजी के चतुर्मास से श्रीसघ में धर्म जागृत अच्छी हुई। कई शुभ कार्य्य हुये। पाच महिला और तीन श्रावकों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली। तदनन्तर आस पास के प्रदेश में भ्रमण करते हुए सूरिजी सौराष्ट्र में पधार कर गिरनार मण्डन भगवान नेमिनाथ की यात्रा की। वहाँ पर एक योगियों की जमात आई हुई थी उसमें एक तरुण साधु अच्छा लिखा पढ़ा था पर उसको अपने ज्ञान का बड़ा ही घमढ था यहाँ तक कि दूसरे विद्वानों को

१—एक सधवा औरत कि जिसके पुत्र होने का स्वभाव है और पति भी पास में है उसके पुत्र की प्राप्ती जल्दी होती है ।

२—सधवा औरत है पुत्र होने का स्वभाव भी है पर उसका पति घर पर नहीं जब पति घर पर आवेगा तब पुत्र होगा । अतः पुत्र होने में विलम्ब है ।

३—विधवा औरत है पुत्र होने का स्वभाव है पर उसका पति गुजर गया है इसके कभी पुत्र होगा ही नहीं केवल पुत्र होने का स्वभाव जरूर है ।

४—बाँझी सधवा है पर बाँझ है । उसका पति चाहे घर पर हो चाहे प्रदेश में हो उसके कभी पुत्र नहीं होगा । क्योंकि उसमें पुत्र होने का स्वभाव ही नहीं है ।

इस उदाहरण का मतलब यह है कि चार औरतों के स्थान चार प्रकार के जीव हैं । पुत्र होने के स्वभाव के स्थान मोक्ष जाने का स्वभाव है । पति के स्थान ज्ञान दर्शन चारित्र समझ लीजिये । अब इसका खुलासा—

१—पहिला जीव निकट भव्य जल्दी मोक्ष जाने वाला है । कारण मोक्ष जाने का स्वभाव है और ज्ञान दर्शन का संयोग एवं आराधना भी है ।

२—दूसरा दुर्भवी इसमें मोक्ष जाने का स्वभाव है पर वर्तमान ज्ञान दर्शन की आराधना का साधन नहीं है । जब कभी आराधना का संयोग मिलेगा तब मोक्ष होगा ।

३—तीसरे जातिभव्य के मोक्ष जाने का स्वभाव है पर उसको ज्ञानादि की आराधना का समय ही नहीं मिलता और न वह मोक्ष ही जावगा केवल स्वभाव मात्र है ।

४—चौथा अभव्य कि मोक्ष जाने का स्वभाव ही नहीं है उसको ज्ञानादि आराधना का समय ही नहीं मिले कदाचित् समय मिले तो आन्तरिक भावों से नहीं आराधे उसकी मोक्ष भी कभी नहीं होगी ।

इस उदाहरण से आप समझ सकते हो कि यह कभी न तो हुआ न होगा कि सब जीव मोक्ष चले जाय ।

तापस—इसका क्या कारण है कि जातिभव्य और अभव्य को ज्ञानादि की आराधना का संयोग नहीं मिले ?

मुनि—जीव के आठ कर्मों में एक मोहनीय नाम का कर्म है कि जातिभव्य और अभव्य जीवों के आवरण गहरा है कभी दूर ही नहीं सकता है । उसके बिना हटे ज्ञानादि की आराधना हो नहीं सकती है । अतः वह मोक्ष जा नहीं सकता है ।

तापस—ज्ञान दर्शन चारित्र किसको कहते हैं और इसकी आराधना किस प्रकार होती है ?

मुनि—ज्ञान वस्तु तत्त्व को सम्यक् प्रकार अर्थात् यथार्थ समझना उसे सम्यक् ज्ञान कहते हैं इसके भी पांच भेद हैं । जैसे कि —

१—मतिज्ञान-जो स्वयं प्रभाव से ज्ञानशक्ति पैदा होती ।

२—श्रुतिज्ञान-दूसरों से सुनना या पुस्तकादि का पठन पाठन करने से ज्ञान होता है ये दोनों ज्ञान ऐसे हैं कि साथ में ही रहते हैं और आपस में एक दूसरे के व्यापक भी हैं ।

३—अवधिज्ञान—इसके अनेक भेद हैं और यह है भी अतिशय ज्ञान कि इससे भूत भविष्य और वर्तमान की बात जान सकता है पर है मर्यादित ।

४—मनःपर्यवज्ञान— इस ज्ञान से दूसरे के मन की बात जान सकता है ।

५—कैवल्य-ज्ञान यह सर्वोत्कृष्ट महाज्ञान है । इससे सकल लोकालोक के चराचार को एक समय मात्र में जान सकते हैं । इस ज्ञान से जीव की मोक्ष होजाती है फिर उस जीव को ससार में जन्म मरण नहीं करना पड़ता ।

दर्शन-जाने हुये भावों को यथार्थ सरद्धना अर्थात् आत्मा के प्रदेशों पर मिथ्यात्मा मोहनीय कर्म लगे हुये हैं जिसको समूल क्षय करने से क्षायक दर्शन और कुछ प्रकृतियों का क्षय और कुछ उपसम करना से क्षयोपसम दर्शन होता है । तथा शुद्ध देव गुरु धर्म को पहिचान कर उसकी आराधना करना और भी आत्मवाद, ईश्वरवाद, सृष्टिवाद, कर्मवाद और क्रियावाद इनको यथार्थ समझ कर उस पर श्रद्धा रखना ये व्यवहार दर्शन है एव दर्शन की आराधना है ।

चारित्र—आरम्भ सारम्भ सर्व कनक कामिनी का सर्वथा त्याग कर पाच महाव्रत का पालन करना और अध्यात्म में रमणता करना चारित्र की आराधना है । स्याद्वाद इनसे भी गंभीर है ।

महात्माजी ! दूसरा हमारा सिद्धान्त है अहिंसा परमोधर्मः और कहा है कि "एवं खु नाणीणो सार जन हिंसे ही किंचण" "नाणस्स सारं धृवि ।" ज्ञान का सार यही है कि किंचित मात्र हिंसा नहीं करना । इसलिये ही साधु-जीवसहित कच्चा जल तथा अग्नि और वनस्पति का स्पर्श मात्र भी नहीं करते हैं । प्रत्येक कार्य में अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है । आत्म कल्याण का सर्वोत्कृष्ट यही मार्ग है ।

तापस थोड़ी देर विचार कर सोचने लगा कि मुनिजी का कहना तो सोलह आना सत्य है । आत्मा के कल्याण का रास्ता तो यही है । जब तक इस सड़क पर नहीं आवें तब तक कल्याण होना असभव है । क्योंकि हम लोग साधु होते हुये भी अनेक प्रकार के आरम्भ सारम्भ करते हैं । कच्चे पानी में जीव होना तो अपने शास्त्र में भी लिखा है कि 'जले विष्णु थले विष्णु' तथा कन्द मूल वनस्पति में भी बहुत जीव बतलाया है, जैसे :—

मूलकेन समंचान्नं यस्तु भुङ्क्ते नराधमः । तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥
यस्मिन्गृहे स दानार्थं मूलकः पच्यते जनैः । श्मशान तुल्यं तद्वेश्य पितृभिः परिवर्जितम् ॥
पितृणां देवतानां च यः प्रयच्छति मूलकम् । स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥
अज्ञानेन कृत देव ! मया मूलक भक्षणम् । तत्पापं यातु गोविंद! गोविन्द इति कीर्त्तनात् ॥

हम स्नान करते हैं, कच्चा जल पीते हैं, अग्नि जलाते हैं, कन्द मूलादि वनस्पति का भक्षण करते हैं इत्यादि सम्पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकते हैं फिर भी साधु कहलाते हैं इत्यादि विशुद्ध विचार करने से तापस के चेहरे पर वैराग्य की कुछ झलक झलकने लगी जिसको देख कर मुनि ने कहा महात्माजी ! क्या विचार करते हो आत्म कल्याण के लिये मतबन्धन या वेश बन्धन का जरा भी ख्याल नहीं करना चाहिये पर जिस धर्म से आत्मकल्याण होता हो उसको स्वीकार कर उसकी ही आराधना करनी चाहिये कहा भी है कि—

सुच्चा जणइ कल्लाणं सुच्चाजणइ पावयं । उभमंपि जाणई सोच जं सयं तं समायरे ॥ १ ॥

इनके अलावा नीति कारों ने धर्म की परीक्षा के लिये भी कहा है ।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन ताप ताडनैः ।
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन तपो दयागुणैः ॥

पुनः महर्षियों ने कहा है कि

कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते । कथं च स्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति ॥१॥
सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्द्धते । क्षमयाऽवस्थाप्यते धर्मः क्रोध लोभाद्विनश्यति ॥

इन सब बातों को आप सोच लीजिये फिर जिसमें आपको कल्याण मार्ग दीखता हो उसे ही स्वीकार कर लीजिये ? तापस ने कहा ठीक है मुनिजी ! अब आप कहाँ पधारेंगे ?

मुनि—हमारे आचार्य महाराज जहाँ विराजते हैं हम वहाँ जावेंगे ।

तापस—क्या मैं भी आपके आचार्य के पास चल सकता हूँ ।

मुनि—अवश्य, आप बड़ी खुशी से चल सकते हैं । चलिये मेरे साथ । तापस अपने साथ १० तापसों को जो उस समय उसके पास थे उनको लेकर मुनिजी के साथ चलकर सूरिजी महाराज के पास आया । सूरिजी महाराज ने तापस की सौम्य आकृति देख कर उसका यथोचित सत्कार किया और मधुर वचनों से इस प्रकार समझाया कि वह तापस अपने गुरु के पास भी नहीं जाकर किन्तु सूरिजी महाराज के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार होगया । सूरिजी ने उन ११ तापसों को दीक्षा देदी और मुख्य तापस का नाम मुनि शान्तिमूर्ति रख दिया । मुनि शान्तिमूर्ति आदि क्यों २ जैनधर्म की क्रिया और ज्ञान करने लगे त्यों २ उन सबको बड़ा भारी आनन्द आने लगा । मुनि शान्तिमूर्ति पहिले ही लिखा पढ़ा था । फिर उसको पढ़ने में क्या देर लगती थी थोड़े ही समय में उसने जैनसाहित्य का अध्ययन कर लिया । मुनि शान्तिमूर्ति जैसा लिखा पढ़ा विद्वान था वैसा ही वह वीर भी था उसने सम्यक् ज्ञान पाकर मिथ्यान्धकार को समूल नष्ट करने का निश्चय कर लिया और इसके लिये भरसक प्रयत्न भी किया जिसमें आपश्री को सफलता भी काफी मिली । तत्पश्चात् सूरिजी महाराज अपने शिष्यों एवं शान्तिमूर्ति के साथ विहार करते हुए क्रमशः तीर्थ श्री सिद्धगिरिजी पधारे । वहाँ की यात्रा कर शान्तिमूर्ति तो आनन्दमय ही गया ।

तदनन्तर सूरिजी महाराज अनेक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया । सौराष्ट्र लाट, कच्छ, सिन्ध, पंजाब ये आपके विहार के क्षेत्र ही थे । आपके पूर्वजों ने इन प्रान्तों में विहार कर महाजनसंघ-उपकेशवंश की खूब वृद्धि की थी तो आप ही कब पीछे रहने वाले थे । आपने भी इन प्रान्तों में विहार कर कई मांस भक्षियों को सदुपदेश देकर जैनधर्म की राह पर लगाये । कई मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर श्रमणसंघ में वृद्धि की । कई मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर तथा कई ग्रंथों का निर्माण कर जैनधर्म को चिरस्थायी बनाया । कई बार तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकलवा कर भावुकों को यात्रा का लाभ दिया । कई वादियों के साथ राजसभाओं में शास्त्रार्थ कर जैनधर्म का झंडा फहराया इत्यादि आपने अपने दीर्घ समय अर्थात् ३० वर्ष के शासन में जैनधर्म की कीमती सेवा बजाई जिसका पट्टावल्यादि ग्रन्थों में बहुत विस्तार से वर्णन किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने यहां पर संक्षिप्त से नाम मात्र का ही उल्लेख किया है कि आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक महान युगप्रवर्तक आचार्य हुये हैं । आप अपनी अन्तिम अवस्था के समय मरुधर में विहार करते हुये माण्डव्यपुर पधारे और अन्तिम चतुर्मास भी वहीं

किया था वहां अपना आयुष्य नजदीक जानकर मुनि शांतिसागर को सूरिमंत्र की आराधना करवा कर देवी सचायिका की सम्मति से तथा श्रेष्ठि गोत्रीय शाह पारस के महामहोत्सवपूर्वक मुनि शांतिसागर को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया था । पश्चात आप आलोचना एवं सलेखना करते हुये १९ दिनों के अनशनव्रत पूर्वक समाधि के साथ नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया । देवी सचायिका द्वारा श्रीसंघ को ज्ञात हुआ कि आप पांचवा स्वर्ग में पधारे और महाविदेह में एक भव कर मोक्ष पधारेंगे । ऐसे जैनधर्म का उद्योत करने वाले सूरिजी के चरण कमलों में कोटि कोटि वन्दन हो ।

आचार्यदेव के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षा

१—वीरपुर के	श्रेष्टिगो०	शाह	राजडा ने	सूरि०	दीक्षा०
२—उज्जैन के	भूरिगो०	,,	काना ने	,,	,,
३—दसपुर के	भाद्रगो०	,,	शाखला ने	,,	,,
४—चदेरी के	मल्लगो०	,,	सुरजण ने	,,	,,
५—विराटपुर के	चरडगो०	,,	राणा ने	,,	,,
६—हमीरपुर के	ब्राह्मण	,,	शकरादि ७ ने	,,	,,
७—माधुपुर के	राववीर	,,	गोकल ने	,,	,,
८—वीरमपुर के	आदित्य०	शाह	रावल ने	,,	,,
९—पुलाह के	कुमटगो०	,,	मुजल ने	,,	,,
१०—फेफावती के	करणाटगो०	,,	भारत ने	,,	,,
११—चेनपुरा के	बलाहगो०	,,	धन्ना ने	,,	,,
१२—वल्लभी के	प्राग्वटवशी	,,	कुंभा ने	,,	,,
१३—भवानीपुर के	श्रीमालवशी	,,	कल्हण ने	,,	,,
१४—चन्द्रावती के	तप्तभट्टगो०	,,	सगण ने	,,	,,
१५—कोरटपुर के	बाप्पनागगो०	,,	सारंग ने	,,	,,
१६—पाल्हिका के	श्रेष्टिगो०	,,	भाल्लु ने	,,	,,
१७—सोनापुर के	सुचंतिगो०	,,	समरा ने	,,	,,
१८—भोजपुर के	करणाटगो०	,,	समरथ ने	,,	,,
१९—कुंतिनगरी के	वीरहटगो०	,,	मेघा ने	,,	,,
२०—हापड के	कुलभद्रगो०	,,	देवा ने	,,	,,
२१—हुनपुर के	शक्खगो०	,,	दसरथ ने	,,	,,
२२—हर्षपुर के	नागवंशी	,,	फुवा ने	,,	,,
२३—आनंदपुर के	श्रेष्टिगो०	,,	जवल ने	,,	,,
२४—मासावरी के	सुंचतीगो०	,,	गोगलाने	,,	,,
२५—डाकीपुर के	प्राग्वटवंशी	,,	लछमणने	,,	,,

कम से कम एक बार संघ को अपने घर पर बुलाकर उनका सत्कार करना प्रत्येक व्यक्ति अपना खास कर्तव्य ही समझते थे और अपने पास साधन होने पर हरेक महानुभाव संघ निकालकर तीर्थयात्रा करते करवाते थे। यहा पर तो थोड़े से नाम लिखे हैं कि उन महानुभावों का अनुमोदन करने से ही कर्मों की निर्ज्जरा होगी। साथ में थोड़े से जैनवीरो और वीरांगणाओं के भी नाम लिख दिये हैं कि जैन क्षत्री अपनी वीरता से देश समाज एव धर्म की किस प्रकार रक्षा करते थे।—

आचार्यदेव के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ

१—आसलपुर	के	मल्लगौ०	शाह	पाता ने	भ० महावीर के	म० प्र०
२—आभापुरी	के	श्रेष्टिगौ०	,,	भोजदेव ने	,,	,,
३—घघाणी	के	सुघड़गौ०	,,	नागदेव ने	,,	,,
४—जैनपुर	के	बाप्पनागगौ०	,,	नारायण ने	पार्श्व०	,,
५—आमेर	के	लघुश्रेष्टिगौ०	,,	इन्दा ने	,,	,,
६—मथुरा	के	चरड़गौ०	,	अनड़ ने	,,	,,
७—चित्रकोट	के	अदित्यनाग०	,,	लाड़ण ने	सीमंधर०	,,
८—मधिमा	के	सुचंतिगौ०	,,	लुणा ने	आदीश्वर	,,
९—ऊकारपुर	के	कुलभद्रगौ०	,,	गंगदेव ने	पार्श्व०	,,
१०—पोतनपुर	के	चिंचटगौ०	,,	लाखण ने	महावीर	,
११—देवपट्टन	के	मोरक्षगौ०	,,	विजल ने	,,	,,
१२—दसपुर	के	श्रेष्टिगौ०	,,	लोला ने	,,	,,
१३—चदेरी	के	डिडुगौ०	,,	निंबा ने	,,	,,
१४—गुडोली	के	करणाटगौ०	,,	पर्वत ने	शान्ति	,,
१५—मुलेट	के	लघुश्रेष्टिगौ०	,,	हाप्पा ने	,,	,,
१६—रोहड़ा	के	डिडुगौ०	,,	झांझण ने	विमल०	,,
१७—कुकुमपुर	के	भाद्रगौ०	,,	रोडा ने	महावीर	,,
१८—काच्छली	के	भूरिगौ०	,,	कल्हण ने	,,	,,
१९—जैनपुर	के	सुवर्णकार	,,	खेता ने	,,	,,
२०—जैसलकोट	के	ब्राह्मण	,,	देदा ने	,,	,,
२१—कीराटकुंप	के	प्राग्वटवंशी	,,	कानड़ने	पार्श्व०	,,
२२—नंदकुलपट्टन	के	प्राग्वटवंशी	,,	खीवसी ने	,,	,,
२३—वीरपल्ली	के	श्रीश्रीमाल	,,	कचरा ने	पद्मप्रभु	,,
२४—मारोटकोट	के	श्रीमालवंशी	,,	गधा ने	शान्ति०	,,
२५—पादलिप्तपुर	के	प्राग्वटवंशी	,,	करमण ने	,,	,,
२६—भिन्नमाल	के	बलाहगौ०	,,	सलखण ने	महावीर	,,

२७—हरोड़ी के मेघिगो „ वीरदेव ने „ „

२८—कुंतिनगरीके भाम्मरवंशी „ बोहरा ने ,

अहा-हा ! उस जमाना में जैन श्रीसंघ की मन्दिर मूर्तियों पर कैसी श्रद्धा थी कि प्रत्येक जैन के घर में घर देरासर तो था ही पर वे नगर मन्दिर बनाकर अपनी लक्ष्मी का किस प्रकार सद् उपयोग करते थे ? यही कारण था कि तक्षशिला में ५ मन्दिर थे। कुन्तीनगरी में १० चन्द्रावती में १० मथुरा में १० मन्दिर ७० स्तूप शौर्यपुर, राजगृह, चम्पा, उपकेशपुर नागपुर भिन्नमाल पद्मावती हंसावली शालिमपुर वगैरह बड़े-बड़े नगरों में सकड़ों मन्दिर थे इतने ही क्यों उस जमाना में मन्दिरों के सेवा पूजा करने वाले जैन श्रावक बसते थे इतना ही क्यों पर जैनवसति वाला छोटा से छोटा ग्राम में भी जैन मन्दिर अवश्य होता था—और जैन मन्दिर होने से गृहस्थों के पुन्य बढ़ता था कारणमन्दिर के निमित्त कारण से गृहस्थों के घर से शुभ भावना से कुछ न कुछ द्रव्य शुभक्षेत्र में लगाही जाता था यही कारण था कि वे लोग धन धान्य पुत्र कलित्र और इज्जत, मान प्रतिष्ठा से सदैव समृद्धशाली रहते थे। कहा भी है कि कुवों में पुष्कल पानी होता है तब गृहस्थों के घरों में भी खूब पुष्कल पानी रहता है इसी प्रकार जिनके पूज्य इष्टदेव के मन्दिर में खूब रंगराग महोत्सव रहता है तब उनके भक्तों के घरोंमें भी अच्छी तरह से रंगराग हर्ष आनन्द मंगल और महोत्सव बना ही रहता है। जब हम पट्टावलियों वंशावलियो वगैरह ग्रन्थ देखते हैं तो इस बात का पता सहज ही में मिल जाता है कि उस जमाना के जैन लोग सब तरह से सुखी थे। एकेक धार्मिक कार्यों में लाखों रुपये लगादेना तो उनके लिये साधारण कार्य ही था यह सब मन्दिरों की भक्ति का ही सुन्दर एवं मधुर फल था—

तीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर, तपकर सिद्धि पाई थी ।
नत मस्तक बन गये वादीगण, विजय भेरी बजाई थी ॥
किये ग्रन्थ निर्माण अपूर्व, प्रतिष्ठायें खूब कराई थी ।
अमृत पी कर जिन वाणी का कई एक दीक्षा पाई थी ॥—

॥ इति श्री पार्श्वनाथ के ३० वें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरीश्वर महान प्रभाविक आचार्य हुवे ॥

[बड़े बड़े नगरों में जैनमन्दिर

वल्लभी नगरी का भंग और शंका जाति की उत्पत्ति

वल्लभी नगरी सौराष्ट्रप्रान्त की प्राचीन राजधानी थी। वल्लभी नगरी के साथ जैनियों का घनिष्ट सम्बन्ध था, पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय की तहलेटी का स्थान वल्लभी नगरी ही था जैनाचार्यों के चरण कमलों से वल्लभी अनेकवार पवित्र बन चुकी थी एक समय वल्लभी के राजा प्रजा जैन धर्म के उपासक एवं अनुरागी थे। उपकेशगच्छीय आचार्यों का आना जाना एवं चतुर्मास विशेष होते थे, आचार्य सिद्धसूरि ने वल्लभी नगरी के राजा शिलादित्य को उपदेश देकर शत्रुंजय का परम भक्त बनाया था और उसने शत्रुञ्जय का उद्धार भी करवाया था तथा पर्युषणादि पर्व दिनों में राजा सकुटुम्ब शत्रुञ्जय पर जाकर अष्टान्हिका महोत्सवादि धर्म कृत्यकर अपना कल्याण साधन किया करता था इत्यादि। यही कारण है कि जनग्रन्थकारों ने वल्लभी नगरी के लिये बहुत कुछ लिखा है। वल्लभी का इतिहास पढ़ने से पाया जाता है कि भारतीय व्यापारिक केन्द्रों में वल्लभी भी एक है। वहाँ पर बड़े बड़े व्यापारी लोग थोकबन्द व्यापार करते थे। वहाँ का जत्था बन्द माल पाश्चात्य प्रदेशों मे जाता था वहाँ का माल यहाँ आया करता था जिसमें वे लोग पुष्कल द्रव्य पैदास करते थे उन व्यापारियों में विशेष लोग महाजन संघ के ही थे। कई विदेशी लोग यात्रार्थ भारत में आते थे और भारतीय कला कौशल व्यापार वगैरह भारतीय सभ्यता देख देख कर अपने देशों में भी उनका प्रचार किया करते थे उनके यात्रा विवरण की पुस्तकों मे पाया जाता है कि उस समय वल्लभी नगरी धन धान्य से अच्छी समृद्धशाली नगरी थी।

विक्रम संवत पूर्व कई शताब्दियों से विदेशियों के भारत पर आक्रमण हुआ करते थे और कभी कभी तो धनमाल लूटने के साथ कई नगरों को ध्वंश भी कर डालते थे। इस प्रकार के आक्रमणों से वल्लभी नगरी भी नहीं बच सकी थी इस नगरी को भी विदेशियों ने कई बार नुकशान पहुँचाया था जिसके लिये इतिहासकारों ने वल्लभी का भंग नाम से कई लेख लिखे हैं और उनका समय अलग अलग होने से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि वल्लभी पर एक बार ही नहीं पर कई बार आक्रमण हुआ होगा। इतना ही क्यों पर कई उदाहरण तो ऐसे ही मिलते हैं कि भारत में आपसी विद्रोह एवं सत्ता का अन्याय के कारण भारतीयों ने अपने ही देश पर आमन्त्रण करवाने को विदेशियों को लाये थे जैसे उज्जैन के गर्दभिल्ल का अत्याचार के कारण कालकाचार्य ने शकों को लाये थे। तथा कई देवादि के कोप से भी पट्टन दट्टन होगये थे कई आपसी झगड़ों मे और कई दुकालादि के कारण भी नगर विध्वंश होगये थे जिन्होंके स्मृति चिन्ह आज भी भूगर्भ से उपलब्ध हो रहे हैं जैसे हराप्पा मोहनजाडेरा और नालंदादि के खोद काम से नगर के नगर भूमिसे निकले हैं। अत आज मैं वल्लभीभंग के विषय में यहाँ पर कुच्छ लिखूँगा। जो जैन इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थों में लिखा हैं।

यह तो मै ऊपर लिख आया हूँ कि वल्लभी का भंग एक बार नहीं पर कई बार हुआ है कई विक्रम की चतुर्थ शताब्दी तो कई छट्ठी शताब्दी एवं कई आठवी शताब्दी में वल्लभी का भंग हुआ लिखते हैं जैसे उपकेशगच्छ पट्टावली में लिखा है कि वल्लभी का भंग वि० स० ३७५ में हुआ था और यही बात आचार्य मेरुतुंग ने अपनी प्रबन्ध चिंतामणि एवं विचार श्रेणी में लिखी हैं। जैसे कि—

"पण सयरी वाससयं तिन्निसया समभियाई अइकमिउं ।
विक्कम कालाउतओ वल्लभी भंगो समुप्पन्नो ॥"

इसी प्रकार आचार्य धनेश्वरसूरि ने शत्रुंजय महात्म्य में भी वि० सं० ३७५ में वल्लभी का भंग हुआ लिखा है तथा भारत भ्रमण करने वाला कर्नल टॉड साहब ने राजपूताने का इतिहास नामक पुस्तक में लिखा है कि वल्लभी सं० २०५ (वि० सं० ५८०) में वल्लभी का भंग हुआ तब कई लोगों का अनुमान है कि वल्लभी का भंग विक्रम की आठवीं शताब्दी में हुआ होगा। उपरोक्त मान्यता का समय अलग अलग होने पर भी वल्लभी के भंग के समय वहाँ का राजा शिलादित्य का शासन होना सब लेखक मानते हैं इसका कारण यह है कि वल्लभी के शासन कर्त्ताओं में शिलादित्य नाम के बहुत से राजा हो गये हैं अतः उपरोक्त संवत् में शिलादित्य राजा माना गया हो तो कोई विरोध की बात नहीं है।

जैनग्रन्थकारों के लेखानुसार यदि वल्लभी भंग का समय वि० सं० ३७५ का माना जाय तो इस समय के पश्चात् भी वल्लभी में अनेक घटनाएं घटी के उल्लेख मिलते हैं जैसे आचार्य जिनानन्द का वल्लभी में रहना दुर्लभदेवी और उनके जिनयश यक्ष और मल्ल एवं तीन पुत्रों को दीक्षा देना। आचार्य मल्लवादी ने बौद्धों को पराजय करना तथा श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने वल्लभी में जैनागमों को पुस्तकारूढ़ करना और उपकेशगच्छाचार्यों का वल्लभी में बार-बार आना जाना एवं चतुर्मास करना और अनेक भावुकों को दीक्षा देना इत्यादि वल्लभी के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं अतः इस समय के बाद वल्लभी का भंग हुआ मानना चाहिये।

उपरोक्त ख्याल वि० सं० ३७५ में वल्लभी का भंग मानने में कुछ भी बाधा नहीं कर सकता है कारण वल्लभी का भंग होने से यह तो कदापि नहीं समझा जा सकता है कि वल्लभी के मकानादि तमाम इमारतें ही नष्ट हो गई थी भंग का मतलब तो इतना ही है कि म्लेच्छ लोगों ने वल्लभी पर आक्रमण कर वहाँ का धन माल लूटा एवं वहाँ का राजा मारा गया। बाद फिर से वल्लभी को आबाद करदी और वह आज भी विद्यमान है जो 'वला' के नाम से प्रसिद्ध है। जैसे प्राचीन तक्षशिला को विदेशियों ने नष्टभ्रष्ट किया था और वे पुनः आबाद हुए इसी प्रकार वल्लभी का भंग होने के बाद पुनः वहाँ पर जैनों का आगमन एवं जैनागम पुस्तकारूढ़ हुआ हो यह सर्वथा संभव हो सकता है अतः ऊपर दिये हुए जैन ग्रन्थकारों के प्रमाण से वल्लभी नगरी का सबसे पहिला भंग वि० सं० ३७५ में होना युक्तियुक्त ही समझना चाहिये।

वल्लभी नगरी का भंग किस कारण से हुआ जिसके लिये यों तो प्रबन्ध चिन्तामणि एवं शत्रुंजय महात्म्य में संक्षिप्त से लिखा है पर उपकेशगच्छ पट्टावली में इस घटना को कुछ विस्तार से लिखी है अतः पाठकों की जानकारी के लिये उस घटना को यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत करदी जाती है।

पालिका नगरी (पाली) में उपकेशवंशीय प्राग्वट गौत्र के काकू और पातक नामके दो सहोदर बसते थे वे साधारणस्थिति के गृहस्थ होने पर भी बड़े ही धर्मिष्ठ थे एक समय पाली नगरी से बाप्पनाग गौत्रीय शाह सुखा ने श्री शत्रुंजयतीर्थ की यात्रार्थ विराट्संघ निकाला जिसमें काकू और पातक सकुटुम्ब यात्रा करने के लिये उस संघमें शामिल हो गये जब संघ यात्रा कर वापिस लौट रहा था तो वल्लभी नगरी के कई उपकेशवंशी लोगों ने काकू पातक को धर्मिष्ठ जानकर वहाँ रखलिये । और आर्थिक सहायता

ही कि जिससे वे दोनों भाई वल्लभी में रहकर व्यापार करने लगगये उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा करली थी कि प्रत्येक मास की पूर्णिमा के दिन तीर्थ श्री शत्रुंजय की यात्रा करनी और उस प्रतिज्ञा को अखण्ड रूपसे पालन भी किया करते थे। इस प्रकार धर्म क्रिया करने से उनके अशुभ एवं अन्तराय कर्म का क्षय होकर शुभकर्मो का उदय होने लगा। कहाँ है कि नर का नसिब किसने देखा हैं। एक ही भवमें मनुष्य अनेक अवस्थाओं को देख लेता है। काकुऔर पातक पर लक्ष्मी देवी की सैने सैने कृपा होरही थी कि वे खूब धनाढ्य बनगये उन्होंने अपनी पूर्व स्थिति को याद कर न्यायोपार्जित द्रव्य से वल्लभी में एक पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया और भी कई शुभकार्यों में लक्ष्मी का सदुपयोग किया फिर भी लक्ष्मी तो बढ़ती ही गई काकुपातक के जैसे लक्ष्मी बढती थी वैसे परिवार भी बढता गया। काकु के पुत्रों में एकमल्ल नाम का पुत्र था तथा मल्लके पुत्र शोभण और शोभण के राका और बाका नाम के पुत्र हुए परम्परा से चली आई लक्ष्मी राका बाका से रूष्टमान हो उनसे किनारा कर लिया अत. रांका बांका फिर से साधारण स्थितिमें आ ...चे शायद लक्ष्मी ने उनकी परीक्षा करने को ही कुच्छ दिनों के लिये मुशाफरी करने को चली गई होगी। ... राका बाकाने इस ओर इतना लक्ष नहीं दिया—

एक योगीश्वर यात्रार्थ भ्रमन करता हुआ वल्लभी में आ पहुँचा उसके पास एक सुवर्ण सिद्धिरस की तुम्बी ... उनकी रक्षण करने में वह कुच्छ दुःखी होगया, ठीक है योगियों के और इस जंजाल के आपस में बन नहीं ...कता है फिर भी उसकी सर्वथा ममत्व नहीं छुट सकी अतः वह चाहता था कि मैं इस तुंबी को कहीं इना-...त रख जाउ कि वापिस लौटने के समय ले जाऊगा, भाग्यवसात् रांका से उसकी भेट हुई और तुम्बी उसको ...स शर्तपर देदी कि मैं वापिस आता ले जाउगा। राकाने उस तुबी को लेजाकर अपने रसोई बनाने का घास ...से छाया हुआ मकान की छातमें एक वास से बान्ध कर लटकादी योगीश्वर तो चला गया बाद किसी कारण उस तुबी से एक बुन्द रसोई के तवा हुआ तवा पर गिर गई जिससे वह लोहा का तवा सुवर्ण बनगया। राका गया था शत्रुंजय यात्रा के लिये। बाका था घर पर उसने लोहा का तवा को सुवर्ण का हुआ देख उस तुंबी को हजम करने का उपाय सोचकर अपने मकान को आग लगादी और रूदन करने लग गया अज्ञात लोगों ने उसको असास्वन दिया और बाकाने दूसरा घर बनाकर उसमें निवास कर दिया और लोहाका सुवर्ण बनाना शुरु कर दिया जब राका घर पर आया और बाका की सब हकीकत सुनी तो उसने बड़ा भारी पश्चाताप कर बाका को बड़ा भारी उपालम्भ दिया कि ऐसा जघन्यकार्य करना तुमको योग्य नही था अब भी इस तुबी को इनामत रख दो जब योगीश्वर आवे तो उसको समला देना पर न आया योगीश्वर न समला तुबी क्योंकि तुबी तो राका बाका के तकदीर में ही लिखी हुई थी बस उस तुबी से राका बाकाने पुष्कल सुवर्ण बनाकर वे बड़े भारी धनकुबेर ही बनगये। न जाने इनयुगल भ्राताओं ने किस भाव में ऐसे शुभ कर्मोपार्जन किया होंगे। कि उस जमा बदी को इस भाव में इस प्रकार वसुल किया। अस्तु।

शाहराका के एक चपा नामकी पुत्री थी राकाने उसके बाल समारने के लिये किसी विदेशी से रत्न जड़ित बहुमूल्य कांगसी खरीद कर चपा को देदी वह कागसी क्या भी एक अपूर्व जेवरात का पूजथा जिसको भरतकी एक आदर्श सभ्यता एवशिल्प कही जा सकती है चपाके वह कागसी एक दूसरा प्राण ही बनाई थी।

एक समय राजा शिलादित्य की कन्या रत्नकुँवरी अपनी साथणियों को लेकर बगेचा में खेलने के लिये एव स्नान मज्जन करने को गई थी चम्पा भी वहाँ आगई जब वे खेल कूद के स्नान किया तो सबने अपने

पास रमाने इस हालत चम्पा ने भी अपनी कांचली से पास रमाने लगी और राजकन्याने चमकती हुई कांचली चम्पा का हाथ में देखी तो उसका मन ललचा गया उसने चम्पा के हाथ से कांचली लेकर सब सखियों को देखाई तो सबने मुक्तकण्ठ से चम्पा की प्रशंसाकी जिसको राजकन्या सहन नहीं करसकी और चम्पा को कहा चम्पा। यह कांचली मुझे देदे ? चंपा ने कहा बाईजी मेरे यह एकही कांचली है अतः इसको तो मैं दे नहीं सकती हूं यदि आप फरमावें तो मेरे पिता से कह कर आपके लिये भी एक कांचली मंगा दूंगी। राजकन्या ने कहा कि चंपा यह तेरी कांचली तो मुझे देदे तू दूसरी मंगा लेना जिसका खर्चा लगेगा वह मैं दीला दूंगी परन्तु चम्पा भी तो महाजन की लड़की थी वह अपनी कांचली कब देने वाली थी । राजकन्या के हाथ से कांचली छीन ली और वह वहाँ से भाग कर अपने मकान पर आगई इससे राजकन्या को बड़ा भारी गुस्सा आया हुआ थी तो पर वह भी राजा की कन्या। अपने महल में आकर अपनी माता को कहा कि चंपा के पास कचली है वह मुझे दीलादो वरना मैं अन्न जल नहीं लुंगी। बालकों का यही तो हाल होता है जिसमें भी बाल हठ, स्त्री हठ और राजहठ एकत्रित हो एक स्थान मिल गया। रानीने कन्या को बहुत समझाया पर उसने एक भी नहीं सुनी इस हालत में रानी राजा को कहा और राजा ने रांका को बुला कर कहाँ कि तुम्हारी पुत्री के पास कांचली है वह ला दो और उसका मूल्य हो वह ले जाओ। रांकाने सोचा कि 'समुद्र में रहना और मगरमच्छ से वैर करना' ठीक नहीं है वह कह कर चंपा के पास आया और उससे कांचली मांगी परंतु एक तो चंपा को कांचली प्यारी थी दूसरा था अपमान जो राजकन्या के साथ टक्कर ले आई थी तीसरा उस कांचली के कारण भविष्य में एक बड़ा भारी अनर्थ होने वाला भी था इस भवितव्यता को कौन मिटा सकता था चम्पा ने हठ पकड़ लिया कि मैं मर जाऊं पर कांचली नहीं दूंगी। लाचार होकर रांका राजा के पास जाकर कहा हजूर मैं कासीद को भेजकर आपको कांचली शीघ्र ही मंगा दूंगा। राजा ने कहा रांका कांचली की कोई बात नहीं है पर मेरी कन्या ने हठ पकड़ रखा है अतः तू कांचली जल्दी से ला दे। रांका ने कहा गरीबनवाज ! वही हाल मेरा हो रहा है चम्पा कहती है कि मैं मरजाऊं पर कांचली नहीं दूं अब आपही फरमाइये कि इसके लिये मैं क्या करूं। राजा ने कहा तुम कुछ भी करो कांचली तुमको देनी पड़ेगी। रांका ने कहा ठीक है मैं फिर जाता हूँ। बाद रांका ने अपनी पुत्री को खूब कहा पर चम्पा टस की मस तक भी नहीं हुई। रांका अपनी दुकान पर चला गया। राजकन्या ने शाम तक अन्न जल नहीं लिया अतः राजा ने अपने आदमियों को रांका के वहां भेजा और कहा कि ठीक तरह से दे तो कांचली ले आना वरन जबरी से कांचली ले आना। राजा के आदमी जाकर रांका को बहुत कहा जवाब में रांका ने कहा कि जैसे राजा को अपनी पुत्री प्यारी है वैसे मुझे भी मेरी पुत्री प्यारी है यदि राजा इस प्रकार का अन्याय करेगा तो इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा ? आखिर राजा के आदमियों ने चम्पा से जबरन कांचली छीन कर ले गये। चम्पा खूब जोर २ से रोई पर उसके सामने उसका क्या चलने का था चम्पा का दुःख रांका से देखा नहीं गया वह था अपार लक्ष्मी का धनी। उसने चम्पा को धैर्य दिला कर अपने घर से निकल गया और म्लेच्छों के देश में जाकर उनको एक करोड़ सोनइये देने की शर्त पर वल्लभी का भंग करवाने का निश्चय किया पर साथ रांका ने कहा कि दूसरा सब धन माल आपका है पर एक मेरी कांचली मुझे देनी होगी म्लेच्छों ने स्वीकार कर लिया और वे असंख्य सेना लेकर वहां से रवाना हो गये क्रमशः वल्लभी पर आकर घेरा दिया क्योंकि वल्लभी को लूट बड़ा तथा राजमहलों में जाकर राजकन्या से कांचली छीन कर शाह रांका को दे दी और रांका ने उस कांचली को

लेकर चम्पा को दे दी जब जाकर चम्पा को संतोष आया। इस प्रकार एक मामूली बात पर नगर एवं नागरिकों को बड़ा भारी नुकसान उठाना पड़ा और विदेशियों को सहज ही में मौका हाथ लग गया पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है इस प्रकार स्वर्ग सदृश वल्लभीपुरी का भंग हुआ—इस घटना का समय वि० सं० ३५५ का है जो उपरोक्त प्रमाणों से साबित होता है उस दिन से शाह रांका की संतान रांका, और बांका की संतान बांका कहलाई। एवं ये दोनों जातियां आज विद्यमान हैं जो उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा स्थापित महाजन संघ के अठारह गोत्रों में चतुर्थ बलाहा गोत्र की शाखा रूप है उस रांका जाति के संतान परम्परा में एक धवल शाह नामक प्रसिद्ध पुरुष हुआ था वि० सं० ८०२ में आचार्य शील-गुणसूरि की सहायता से वनराज चावड़ा ने गुजरात में अणहिलपट्टन बसाई थी उस समय वल्लभी से शाह धवल को सन्मानपूर्वक बुला कर पाटण का नगर सेठ बनाया था उस दिन से शाह धवल की संतान सेठ नाम से मशहूर हुए जो अद्यावधि विद्यमान हैं जैतारन पीपाड़ वगैरह में जो रांका हैं वे सेठ नाम से बतलाये जाते हैं अर्थात बलाह गोत्र रांका शाखा और सेठ विरुद से सर्वत्र प्रख्यात है इन गौत्र जाति और विरुद के दान वीर नररत्नों ने जैनधर्म एवं जनोपयोगी कई चोखे और अनोखे कार्य करके अपनी उज्वल कीर्ति एवं अमरयश को इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्ण के अक्षरों से अंकित करवा दिये थे जिसके कई उदाहरण तो हम पूर्व के प्रकरणों में लिख आये हैं और शेष आगे के प्रकरणों में लिखेंगे। पर दुःख है कि कई लोग इतिहास के अनभिज्ञ और गच्छ कदाग्रह के कारण इस प्रकार प्राचीन इतिहास का खून कर प्राचीन जातियों को न्यूतन बतला कर इन जातियो के पूर्वजों के सेकड़ों वर्षों के किये हुए देश समाज एवं धार्मिक कार्यों के गौरव को मिट्टी में मिलाने की कोशिश करते हैं इतना ही क्यों पर कई इस जाति के अनभिज्ञ लोग अपनी जाति की उत्पत्ति न जानने के कारण वे स्वयं अपने को अर्वाचीन मान लेते हैं पर वे विचारे क्या करें उनके संस्कार ही ऐसे जम गये कि स्पष्ट इतिहास मिलने पर भी उन मिथ्या संस्कारों को हटाने में वे इतने निर्बल एवं कमजोर हैं कि उनके पूर्वजों को मांस मदिरा एवं व्यभिचार जैसे दुर्व्यसन छुड़ाने वाले परमोपकारी महात्माओं का नाम लेते भी शरमाते हैं इतना ही क्यों पर कई तो इतने अज्ञानी हैं कि उस उपकार का बदला अपकार से देते हैं उन पर दया भाव लाने के अलावा हम और क्या कह सकते हैं यही कारण है कि आज उन्हों की यह दशा हो रही है कि जो कृतघ्नी लोगों की होती या होनी चाहिये—

प्यारे! बलाहगौत्री रांका जाति एवं सेठ विरुद वाले भाइयो अब भी आपके लिये समय है कि आप अपने प्राचीन इतिहास को पढ़कर उन महान् उपकारी पूज्याचार्यदेव का उपकार को याद करो और उन्होंने जो आपके पूर्वजों को शुरू से रास्ता बतलाया था उस पर श्रद्धा विश्वास रख कर चलो चल।को कि फिर आपके लिये वे दिन आवें कि आप सब प्रकार से सुख शांति में आत्म कल्याण कर सदैव के लिये सुखी बनो इत्यादि।

३१—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि (षष्टम्)

प्राग्वाटान्वय रत्नतुल्य महितः सूरिस्तु रत्नप्रभः ।
यस्यासीच्चरितं विशाल्यममलं यल्लोकिकं पुण्यितम् ॥
ज्ञातो यः परमः सुदर्शन गणे रत्नप्रभास्थान च ।
क्ष्टे नैव समः स वादिजयने योद्धा ह्यभूत् महान् ॥

आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज एक अद्वितीय प्रतिभाशाली धर्म प्रचारक आचार्य थे आप प्रथम रत्नप्रभसूरि सदृश्य के परम ज्ञाता थे जैसे चक्रवर्ति छः खण्ड में वैरी एवं वादियों का मान मर्दन कर एक छत्र से अपना राज्य स्थापन करते हैं । इसी प्रकार प्रथम रत्नप्रभसूरि वादियों को मद मस्तक कर सर्वत्र अपना शासन स्थापित किया था इतना ही क्यों पर आपका नाम सुनने मात्र से ही वादी दूर दूर भाग छूटते थे यही आपकी विजय थी आपश्री ने अपने शासनकाल में जैन धर्म की खूब प्रभावना और उन्नति की थी आपका जीवन परम आश्चर्य का था पट्टावल्यादि ग्रन्थों में खूब विस्तार से वर्णन किया है । परन्तु मैं यहां संक्षिप्त रूप से पाठकों के सामने रख देता हूँ ।

मरुधर प्रान्त में शंखपुर नाम का एक नगर था जो राजा शंखसेन की संतान में एक शंख ने आबाद किया था और वहां पर उस समय राव अमरसेन राज करता था और वह परम्परा से जैन धर्म का परम उपासक था । उसी शंखपुर में यों तो उपकेश वंशीयों के बहुत व्यापारी एवं धनाढ्य लोग बसते थे । पर उनमें श्रेष्ठि गौत्रीय शाह कल्ला नाम का साहूकार भी एक था और उनके गृह शृंगार धर्म पत्नी का केसी नाम की स्त्री थी शाह कल्ला जैसा धनाढ्य था वैसा ही कुटुम्बी भी था शाह कल्ला के ११ पुत्र थे जिसमें एक भीमदेव नाम का पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली एवं होनहार था । बाल्यावस्था से ही वह अपने माता पिता के साथ मन्दिर उपासरे जाया करता था और साधु मुनियों की सेवा उपासना कर प्रतिक्रमण जीवविचारादि का ज्ञान और कर्म सिद्धान्त का ज्ञान भी कर लिया था । संसार की असारता पर भी आप कभी कभी विचार किया करता था और जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करने से कभी कभी आपको वैराग्य का समागम भी होता था । एक समय आप अपने साथियों के साथ जंगल में जा रहे थे इक्षु रस की चरखियां चारों ओर चल रही थी खेत वाले किसान लोगों ने उन सब को आमन्त्रण किया सेठजी पधारिये यह इक्षु रस तैयार है और भीमदेव अपने साथियों के साथ इक्षु रस का पान किया ।

शाम को वापस होगये वे जंगल से घूम कर वापिस नगर में आ रहे थे कुछ अंधेरा पड़ रहा था भाग्यवशात् रास्ते में एक दीर्घ काय काला सर्प पड़ा था परन्तु वे सब लोग अपनी अपनी बातों में मग्न थे कि किसी को भी सर्प नजर नहीं आया और एक दम सर्प पर किसी का पैर पड़ गया पर सर्प ने किसी को काटा नहीं सब लोग भय भ्रांत हो हो-हा करने लगे । भीमदेव ने सोचा कि यदि यह सर्प किसी को काट खाता तो प्राण के अफसोस पर कालो दाग लगजाता जो कि इस प्रकार की उत्तम सामग्री मिलने पर

भी अभी तक मैंने कुछ भी आत्म कल्याण सम्पादन नहीं किया इत्यादि जब भीमदेव अपने घर पर आया तब सब हाल अपने माता पिता को कहा उन्होंने बहुत फिक्र किया और कहा आइन्दा से तुम ऐसे समय कभी बाहर नहीं जाना। इत्यादि पर भीम के हृदय में वैराग्य ने घर बना लिया!

इधर लब्ध प्रतिष्ठित धर्म प्राण आचार्य सिद्धसूरजी भ्रमन करते करते शंखपुर नगर में पधार गये श्रीसंघ ने आपका बड़े ही धाम धूम से नगर प्रवेश कराया। आचार्यश्री ने मंगलाचरण के पश्चात् भव भजनी देशना दी जिसमें बतलाया कि—

"असख्यं जीवियं मापमायए जरोवणीयस्सहु णत्थि ताणं।
एवं वियाणाहिं जणे पमत्ते, कन्नू वि हिंसा अजय गहिति ॥ २ ॥"

ससांर की तमाम-चिजों टुटने के बाद किसी न किसी तरह से मिला दी जाती हैं। पर एक आयुष्य ही ऐसी चीज है कि इसके टूटने पर पुनः नही मिलता है। जिस सामग्री के लिए सुरलोक में रहे हुए सुरेन्द्र भी इच्छा करते है वह सामग्री आप लोगों को सहज ही में मिल गई है। अब उसका सदुपयोग करना आपके ही हाथ में है। यदि कई लोक बाल युवक एवं वृद्ध पना का विचार करते है तो यह निरर्थक है। कारण सब जीव अपने २ कर्म पूर्व जन्म में ही ले आये है उससे थोड़ा सा भी न्यूनधिक हो नहीं सकता है। कई लोग स्त्री पुत्रादि के मोह की पाश में जकड़े हुए है। उसका रक्षण पोषण में अपना कल्याण भूल जाते हैं पर उनको यह मालुम नहीं है कि भावान्तर में जब कर्मोदय होंगें उस समय वे लोग जो जिन्हों के लिये मैं कर्मोपार्जन कर रहा हूँ मेरे दुःख में भाग लेगा या नहीं? जैसे कि—

तेणे जहां सधि मुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पाव कारी।
एवं पया पेच्चइहंच लोय, कडाण कम्माण नमोक्खअत्थि ॥ २ ॥

एक चोर किसी साहूकार के यहा चोरी करने को गया था उसने भींत फोड़ी पर वह ऐसी तर्कीब सेकि अष्ट कली फूल की तरह फोड़ी थी पर इतने में घरधणीं जाग गया और हाथ में एक रस्सी लेकर दम्पति खड़े हो गये ज्योंहि चोर ने पैर अन्दर डाला त्योंहि सेठ सेठानी ने रस्सा से खुब जोर से बांध दिया चोर न तो अन्दर आ सका और न बहार ही जा सका जब सुर्योदय होने में थोड़ा समय रहा तो चोर की औरत और माता उसको सोधने के लिये गई सेठ की भींत में फसा हुआ चोर को देखा अत सोचा की यदि राज इसको पकड़ लेगा तो अपने सबको दुःख एवं फांसी देगा इसलिये उन्होंने बाहर से उसका शिर खेचा पर अन्दर से सेठ ने छोड़ा नहीं इस हालत में चोर की स्त्री एव माताने चोर का शिर काट कर अपने यहा ले आयी अहा-हा ससार को धिकार ॥ धीकार २ ॥। संसार कि जिस स्त्री माता के लिए चोर ने उमर भर चोरियाँ की वे ही माता और स्त्री चोर का शिर काट डाला। जब इस भव में ही इस प्रकार अपने किये कर्म आप ही को भुगतने पड़ते हैं तब परभव का तो कहना ही क्या है? इत्यादि सूरिजी ने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में उपदेश दिया जिसका प्रभाव जनता पर बहुत अच्छा हुआ जिसमें भी कुवर भीमदेव के लिए तो मानो सीप के मुह में आसौज का जल पड़ने की भाति अमूल्य मुक्ताफल ही पैदा हो गया। भीमदेव ने सोचा की आज का व्याख्यान सूरिजी ने खास तौर मेरे लिये ही दिया है खैर जयध्वनी के साथ सभा विसर्जन हुई।

सब लोग चले जाने पर भी भीमदेव सूरिजी की सेवा में मूर्तिमान बैठा ही रहा सूरिजी ने पूछा देव [क्या काम है ?—

भीम—साहिबजी मेरा काम भी क्या है ?

सूरिजी—क्या ध्यान लगा रहा है ?

भीम—आप श्री के व्याख्यान का विचार कर रहा हूँ।

सूरिजी—क्या तुझे संसार से भय आया है ?

भीम—जी हाँ।

सूरिजी—तो फिर क्या विचार कर रहा है ?

भीम—मैं विचार करता हूँ कि मेरा कल्याण कैसे हो सके ?

सूरिजी—कल्याण का सरल और सीधा रास्ता यह है कि संसार को तिलांजलि दे और दीक्षा लेकर आराधना करे कि जन्म मरण के दुःख का अन्त हो एवं शाश्वत सुख प्राप्त हो जाय। बस सबसे बढ़िया यह एक ही रास्ता कल्याण का है।

भीम—पूज्यवर मेरा दिल तो इस बात को बहुत चाहता है पर कुटुम्ब बंधन ऐसा है कि वे अन्तराय डाले बिना नहीं रहते हैं।

सूरिजी—भीम ! हम लोग भी अकेले नहीं थे पर हमारे पीछे भी कुटुम्ब वाले थे जब हमारे अन्तरंग के भाव थे तो उसको कौन रोक सके ! हमारा यह कहना नहीं है कि कुटुम्ब वालों को लात मार कर अनीति से काम करे। पर कुटुम्ब वालों को समझा कर बन सके तो जम्बु कुंवर की भांति उनका भी उद्धार करे। और यह तुम्हारा कर्त्तव्य भी है।

भीम—पूज्यवर ! आपका फरमाना सत्य है बन सकेगा तो मैं अवश्य प्रयत्न करूंगा ! वरना मैं मेरे कल्याण के लिये तो प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आपके चरण कमलों में दीक्षा लेकर यथा साध्य आराधना करूंगा।

सूरिजी—महानुभाव पर भीमा घर जाकर प्रतिज्ञा को भूल न जाना।

भीमदेव—नहीं गुरुदेव ! प्रतिज्ञा भी कहीं भूली जा सकती है बाद सूरिजी को वंदन कर भीम अपने घर पर आया जिसकी माता पिता राह देख रहे थे। माता ने पूछा कि बेटा व्याख्यान कब का ही समाप्त हो गया तू इतनी देर कहाँ ठहर गया तुम्हारे बिना सब भोजन किये बिना बैठे हैं ? भीम ने कहा माता मैं आचार्यश्री की सेवा में बैठा था। भीम के वचन सुनते ही माता को कुछ शंका हुई और कहने लगी कि बेटा जब सब लोग चले गये तो एक तेरे ही ऐसा क्या काम था कि इतनी देर वहाँ ठहर गया ?

भीम—माता बिना काम एक क्षण भर भी कौन ठहरता है। माता को विशेष शंका हुई और उसने कहा बेटा क्या काम था ?

भीम—माता मैं सूरिजी का व्याख्यान सुना जिससे सूरिजी से कल्याण का मार्ग पूछा था ! बस ! माता की आत्मा सत्य हो गई उसने कहा बेटा मन्दिर जाकर भगवान की पूजा करो, सामायिक प्रतिक्रमण और दान पुन्य करो, गृहस्थों के लिये यही कल्याण का मार्ग है।

बेटा—हाँ माता यह कल्याण का मार्ग जरूर है पर मैं तो इससे विशेष मार्ग के लिये पूछा था।

माता—तुझे यह तो बता कि सूरिजी ने तुझे क्या मार्ग बतलाया है ?

बेटा—सूरिजी ने जो मार्ग बतलाया है वह मुझे अच्छा लगा है और मैं उसी रस्ते पर चलने की प्रतिज्ञा भी कर आया हूँ केवल आपकी अनुमती की ही देर है।

माता—क्या तू पागल तो नहीं हो गया है। साधुओं के तो यह काम हैं कि लोगों को बहकाना और अपनी जमता बढ़ाना। खबरदार है आइन्दा से साधुओं के पास एकान्त में बैठ कर कभी बात मत करना ले आ जीमलो (भोजन कर लो)

भीम—(अपने मन में) अहो ? मोह विकार कैसा मोहनीय कर्म है। कि यदि कोई मर जाय तो रो पीट कर बैठ जाते हैं पर दीक्षा का नाम तक भी सहन नहीं होता है। विशेषता यह है कि धर्म को जानने वाले धर्म की क्रिया करने वालों की यह बात है तो अज्ञ लोगों का तो कहना ही क्या ? पर अपने को तो शाति से काम लेना है। माता के साथ भीमादि सबने भोजन कर लिया बाद भी मां बेटा के खासी चर्चा हुई—वह भी बड़ी गंभीरता पूर्वक—

भीमदेव की वैराग्य क बात सर्वत्र फैल गई। शाम को बहुत से लोग सेठ धन्ना के वहा एकत्र हो गये। कइएकों को दुख तो कईएकों को मजाक हो रही थी पर भीमदेव वैरागी बनड़ा बना हुआ सबको यथोचित उत्तर दे रहा था और कहता था कि जब मेरे पैरों में सर्प आया था वह काट गया होता और मैं मर गया होता तो आप क्या करते भला ! इस समय भी आप समझ लीजिये कि भीमदेव मर गया है मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि मैं इस संसार रूपी कारागृह में रहना नहीं चाहता हूँ इतना ही क्यों पर मैं तो आपसे भी कहता हूँ कि यदि आपका मेरे प्रति अनुराग है तो आप भी इसी मार्ग का अनुसरण कर आत्म कल्याण करावे क्योंकि ऐसा सुवर्ण अवसर बार २ मिलना मुश्किल है और यह कोई नई बात नहीं है पूर्व जमाने में हजारों महापुरुषों ने इस मार्ग का अवलम्बन कर स्वकल्याण के साथ अनेक आत्माओं का कल्याण किया। आप दूर क्यों जावें आज हजारों मुनि भूमि पर विहार कर रहे हैं वे भी तो पूर्वास्था में अपने जैसे गृहस्थ ही थे। जब बाल एव कुंवारावस्था में भी विषय भोग छोड़ दीक्षा ली है तो भुक्त भोगियों के लिये तो यह जरूरी बात है अत. जिसको आत्म कल्याण करना हो वह तैयार हो जाय।

भीमदेव के सारगर्भित एवं आन्तरिक बचन सुनकर सब समझ गये कि अब भीमदेव का घर में रहना मुश्किल है और इनका वैराग्य बनावटी नहीं है पर आत्मिक है।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा बचता था त्याग वैराग्य और आत्म कल्याण आपका मुख्य ध्येय था जनता पर प्रभाव भी खूब पड़ता था इधर भीमदेव वैरागी बन रहा था और कई लोग उसका अनुकरण करने को भी तैयार हो रहे थे।

एक समय शाह धन्ना और फेफोंदेवी सूरिजी के पास आये और भीमदेव के विषय में कुछ अर्ज की इस पर सूरिजी ने कहा कि भीमदेव के लिये तो मैं क्या कह सकता हूँ पर मैं आप से कहता हूँ कि जब आपकी कुक्ष से उत्पन्न हुआ नवयुवक भीमदेव अपना कल्याण करना चाहता है तो आपको क्यों देरी करनी चाहिये एक दिन मरना तो निश्चय है फिर खाली हाथे जाना यह कहा की समझदारी हैं, अतः आप मेरी सलाह मानते हो तो विना विलम्ब दीक्षा लेन को तैयार हो जाइये भीम के माता पिता ने सूरिजी से कुछ भी नहीं कहा और वन्दन कर अपने घर पर आगये और भीम को बुला कर कहा कि बोल बेटा तेरी क्या इच्छा है तू अपने माता पिता को इस प्रकार रोते हुए छोड़ देगा क्या तुमको हमारी जरा भी दया नहीं

जाती है ? भीम ने कहा नहीं पिताजी आपका तो मेरे पर बहुत उपकार है और मैं अब ही थोड़ा बहुत अभ्यास कर सकूंगा कि आप दीक्षा ले और मैं आपकी सेवा करूं ? माता पिता ने सूरिजी के उपदेश की और लक्ष दीलाते हुए कहा अच्छा भीम हम दोनों दीक्षा लेने को तैयार हैं।

बस ! फिर तो कहना ही क्या था नगर में बिजली की तौर खबर फैल गई और सूरिजी ने दीक्षा के लिये दिन माघ शुक्ल ११ का मुकर्रर कर दिया और भी कई १२ पुरुष १८ महिलाएं दीक्षा लेने को तैयार होगये शाह अम्बा का ज्येष्ठ पुत्र रामदेव ने जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव था और इस कार्य के लिये जो कुछ करना था वह सब बड़े ही ठाठ से किया और सूरिजी ने ठीक समय पर उन मोक्षाभिलाषियों को भगवती जैन दीक्षा देकर उनका उद्धार किया तथा वीर भीमदेव का नाम मुनि शांतिसागर रख दिया। मुनि शान्तिसागर बड़ा ही त्यागी वैरागी और तपस्वी था ज्ञानाभ्यास की रुची पहले से ही थी अब तो बिल्कुल निवृति मिल गई इधर सूरिजी की भी पूर्ण कृपा थी मुनिजी ने स्वल्प समय में ही वर्तमान आगमों के साथ व्याकरण न्याय छन्द तर्क अलंकारादि शास्त्रों का अध्ययन कर लिया आपने निमित्त ज्ञान में भी पूर्ण निपुणता हासिल करली थी योग विद्या में तो आप इतने निपुण थे कि कई जैन जैनेतर आपकी सभा में रह कर योगाभ्यास किया करते थे। एक समय आचार्यश्री भूभ्रमन करते हुए सिन्ध प्रान्त की ओर पधारे। उस समय सिन्ध में जैनों की खूब आबादी थी और उपकेशगच्छाचार्यों का अच्छा प्रभाव था सिन्ध के बहुत वीरों ने दीक्षा लेकर वहां भ्रमन भी किया था सूरिजी के पधारने से जनता का उत्साह बढ़ रहा था जहां आप पधारते वहां व्याख्यान का अच्छा ठाठ लग जाता था जैन जैनेतर काफी संख्या में सूरिजी का उपदेश सुन अपना अहोभाग्य समझते थे क्रमशः विहार करते हुए सूरिजी डमरेल नगर की ओर पधार रहे थे। यह शुभ समाचार वहां के श्रीसंघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा महामहोत्सव के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया सूरिजी ने मंगलाचरण के पश्चात् देशनादी और भी सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था तथा सूरिजी की प्रशंसा नगर भर में फैल रही थी वहां का राव चन्द्रसेन भी आचार्य श्री का उपदेश सुनकर मांस मदिरा का त्याग कर दिया था इतना ही क्यों पर उसने अपने राज में जीव हिंसा बन्द करवादी थी। परन्तु कहा है कि एक मनुष्य दूसरों की प्रशंसा को सुन नहीं सकता है अतः वहां पर एक सन्यासी आया हुआ था और वह कुछ रसायन विद्या भी जानता था उसने जनता को कुछ लोभ देकर कई लोगों को अपने वश में कर जैन धर्म और आचार्य श्री की निन्दा करने लगा कि जैन धर्म नास्तिक धर्म है राजपूतों को मांस मदिरा छोड़ा कर उनके शौर्य पर कुठार घात कर रहे हैं इनका आचार विचार इतना भ्रष्ट है कि कभी स्नान भी नहीं करते हैं इत्यादि।

एक समय मुनि शान्तिसागर कई मुनियों के साथ जंगल (स्थंडिले) जाकर वापिस आरहा था रास्ता में सन्यासी मिल गया वह भी अपनी जमात के साथ था सन्यासी ने मुनि शान्तिसागर को सम्बोधन कर कहा-अरे सेवड़ाओ ! तुम जनता को मिथ्या उपदेश देकर नास्तिक क्यों बनाते हो बनियों को तो ठीक परन्तु क्षत्रियों को मांस एवं शिकार छोड़ा कर कायर क्यों बनाते हो और तुम बिना स्नान अपवित्र शुद्धि क्रिया बिन परमात्मा का भजन कैसे करते हो ?

मुनि शान्तिसागर ने कहा प्रिय महात्माजी ! आप नास्तिक आस्तिक किसको कहते हो पहला इसका अभ्यास करो ? जैनधर्म नास्तिक नहीं पर जरूर आस्तिक धर्म है जैन ईश्वर को आत्मा को सृष्टि को मानता

है स्वर्ग नरक को मानता हैं सुकृत के शुभ और दुकृत के अशुभ फल अर्थात पुन्य पाप को मानता है ऐसा पवित्र धर्म को नास्तिक कहना अनभिज्ञता नहीं तो और क्या हैं ? महात्माजी ! क्षत्रियों का धर्म शिकार करना एवं मांस खाने का नहीं है किन्तु चराचर जीवों की रक्षा करने का है कोई भी धर्म विना अपराध विचारे मुक् जीवों को मारना एव मांस खाने की आज्ञा नहीं देता हैं बल्कि 'अहिंसा परमोधर्म' की उद्घोषणा करता है। अफसोस है कि आप धर्म के नेता होते हुए भी शिकार करना एव मांस भक्षण की हिमायत करते हो ? महात्माजी ! साधु सन्यासी तप जप एवं ब्रह्मचर्य मे सदैव पवित्र रहते है उनको स्नान करने की आवश्यकता नहीं है और गृहस्थ लोगों को षट्कर्म में पहला देवपूजा है वह स्नान करके ही की जाती है और यह गृहस्थों का आचार भी हैं इसके लिये कोई इन्कार भी नहीं करते है फिर समझ में नहीं आता है कि आप जैसे ससार त्यागी व्यर्थ ही जनता में भ्रम क्यों फैलाते हो। इत्यादि मधुर वचनों से इस प्रकार उत्तर दिया कि सन्यासीजी इस विषय में वापिस कुछ भी नहीं बोल सके। फिर सन्यासीजी ने कहा कि आपलोग केवल भूखे मरना जानते हो पर योग विद्या नहीं जानते है जो आत्मकल्याण एवं मोक्ष का खास साधन है।

मुनि ने कहा महात्माजी ! योग विद्या का मूल स्थान ही जैन धर्म है दूसरों ने जो अभ्यास क्रिया है वह जैनों से ही किया है कई लोग केवल हट योग को ही योग मान रखा है पर जैनों में हटयोग की बजाय सहज समाधि योग को अधिक महत्व दिया हैं। महात्माजी ! योग साधना के पहला कुछ आत्म ज्ञान करना चाहिये कि योग की सफलता हो वरन् हटयोग केवल काया क्लेश ही समझा जाता है इत्यादि मुनिजी की मधुरता का सन्यासीजी की भद्र आत्मा पर खुब ही प्रभाव पड़ा।

सन्यासीजी के हृदय में जो जैनधर्म प्रति द्वेष था वह रफूचक्र होगया और आत्मज्ञान समझने की जिज्ञासा पैदा होगई अत आपने पूछा कि मुनिजी आप आत्मज्ञान किसको कहते हो और उसका क्या स्वरूप है यदि आपको समय हो तो समझाइये मैं इस बात को समझना चाहता हूँ।

मुनि शान्तिसागर ने कहा सन्यासीजी बहुत खुशी की बात है मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आप आत्म का स्वरूप को समझने की जिज्ञासा करते हो और मेरा भी कर्तव्य है कि मैं आपको यथाशक्ति समझाऊँ पर इस समय हमको अवकाश कम है कारण दिन बहुत कम रहा है हमें प्रतिक्रमणादि अवश्यक क्रिया करनी है यदि कल आप हमारे यहां अवसर देखे या मैं आपके पास आजाऊँ तो अपने को समय काफी मिलेगा और आत्मादि तत्व के विषय चर्चा की जायगी इत्यादि कहकर शान्तिसागर चला गया। प्रतिक्रमण क्रिया करने के बाद सब हाल सूरिजी को सुना दिया।

रात्रि में सन्यासीजी ने सोचा कि जहा तक आत्म ज्ञानप्राप्त न किया जाय वहां तक मेरी विद्यायें किस काम की हैं? यदि मुनिजी आवें या न आवें मुझे सुबह जैनाचार्य के पास जाना और आत्म ज्ञान सुनाना चाहिये। क्योंकि आत्म के विषय जैनों की क्या मान्यता है? सन्यासीजी ने अपने शिष्यों को भी कह दिया और दिन उदय होते ही अपने शिष्यों के साथ चल कर सूरिजी के मकान पर आये उस समय सूरिजी अपने शिष्यों के साथ सब मौनपने से प्रतिलेखन क्रिया कर रहे थे सन्यासीजी को किसी ने आदर नहीं दिया तथापि सन्यासीजी जैनश्रमणों की क्रिया देखते रहे जब क्रिया समाप्त हुई तो मुनि शातिसागर ने सूरिजी से कहा कि यह सन्यासीजी आ गये हैं आप बड़े ही सज्जन एव जिज्ञासु हैं। सूरिजी ने बड़े ही स्नेह एवं वात्सल्यता के साथ सन्यासीजी का यथोचित सत्कार किया और अपने पास बैठाया। सूरिजी बड़े

अच्छे बुरे देवगुरु धर्म को एकसा समझनेसे मिश्रमोहनीय क्रोध, मान, माया, लोभ हँसादिसे चारित्र मोहनीय कर्म बन्धते हैं। ५—जैसे परिणाम वैसा आयुष्कर्म। ६—देवगुरु की सेवा उपासनादि शुभकर्म करने से शुभ नाम और अशुभ कर्म करने से अशुभनाम कर्म बन्धता है ७—जातिकुल बल,रूप, लाभादि का मद करने से नीच गोत्र और मद नही करने से उच्च गौत्र बन्धता है। ८—किसी जीव के दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य की अन्तराय देने से अन्तराय कर्म बन्धजाता है। इस प्रकार आठ कर्म तथा इनकीउत्तर प्रकृतियें हैं जैसे २ अध्यवसायों की प्रेरणा से कार्य किया जाता है वैसे-वैसे कर्म बन्ध जाता है फिर उदय आने पर उन कर्मों को भोगना पड़ता है। जो लोग कर्मों का स्वरूप को सम्यक् प्रकार से जान कर समभाव से भोगते हैं वे कर्मों की निर्जरा कर देते हैं और नये कर्म नहीं बन्धते हैं तब अज्ञानता के वस होकर आर्तध्यान करते हैं वे फिर नये कर्मोपार्जन कर लेते हैं अत' कर्म परम्परा से छुट नहीं सकते। इसलिये कर्मों की निर्ज्जरा करने के लिये दीक्षा लेकर ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना करनी चाहिये इत्यादि।

सन्यासी जी ने इस प्रकार अपूर्व ज्ञान अपनी जिन्दगी में पहला ही सुना था और भी जिस-जिस विषय में आप शंका करते उसका मुनिजी अपनी शान्त प्रकृति से ठीक समाधान कर देते थे जिससे सन्यासी जी को अच्छा सतोष हो गया इतना में सूरिजी भी वापिस पधार गये थे सन्यासीजी ने सूरिजी से प्रार्थना की कि मुनिजी ने आत्मा एवं कर्मों का स्वरूप मुझे समझाया जिसको मैंने ठीक तौर से समझ लिया पर कृपा कर आप मुझे आत्म कल्याण का रास्ता बतलावें कि जिससे जन्म मरण के दु'ख मिट जाय ? सूरिजी ने कहा यदि आपको जन्म मरण के दु ख मिटाना है तो जिनेन्द्रदेव कथित दीक्षा लेकर तप, संयम की आराधना करो सबसे उत्तम यही मार्ग है। बस फिर तो देरी ही क्या थी। सन्यासी ने अपने शिष्यों के साथ सूरिजी के चरणकमलों में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली अह-हा। जब जीव के कल्याण का समय नजदीक आता है तब वे किस प्रकार उल्टे के सुल्टे बन जाते हैं एक व्यक्ति द्वारा जैनधर्म की निन्दा होती थी वही व्यक्ति जैन धर्म की दीक्षा ले इससे अधिक क्या लाभ एव प्रभावना हो सकती है। सूरिजी ने उन सत्योपासक सन्यासीजी को दीक्षा देकर आपका नाम "आनन्दमूर्ति" रख दिया मुनि आनन्दमूर्ति आदि ज्यों ज्यों जैनधर्म के आगमों का अध्ययन एव क्रिया कॉढ करते गये त्यों-त्यों उनकी आत्मा के अन्दर आनन्द की तरगों उछलने लग गई थी यह कार्य नया ही नहीं था पर पहले भी शिवराजर्षि पोग्गल एव स्कन्धक सन्यासी आदि अनेक सन्यासियों ने जैनदीक्षा स्वीकार कर स्व-परात्माओं का कल्याण के साथ जैनधर्म का खूब ही उद्योत किया था डामरेल नगर के श्री संघ का उत्साह खूब बढ़ गया अत श्री संघ ने सूरिजी से साग्रह विनती की कि पूज्यवर! यह चतुर्मास यहाँ करके हम लोगों को कृतार्थ करावें आपके विराजने से बहुत उपकार होगा— इत्यादि। सूरिजी ने लाभा-लाभ का कारण जान श्रीसघ की विनती स्वीकार करली बस। फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह नदी का वेग की भाँति खूब बढ़ गाय।

मुनि आनन्दमूर्ति पर सूरिजी एव मुनि शान्तिसागर की पूर्ण कृपा थी आपको ज्ञान पढ़ने की खूब रुचि थी आप पहिले से ही विद्वान् थे केवल उल्टे से सुल्टे होने की ही जरूरत थी आप थोड़ा ही समय में जैनागमों का ज्ञान प्राप्त कर धुरधर विद्वान् बन गये दूसरा एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्त्तन होता है तब उनके उत्साह का वेग कई गुना बढ़ जाता है और स्वीकार धर्म का प्रचार की बिजली खूब सतेज हो

जाती है तीसरा इनको यह भी अनुभव रहता है कि जैसे मैं अज्ञान दशा में आत्मा का अहित करता था इसी प्रकार मेरे भाई कर रहे हैं उनका मैं उद्धार करूँ इत्यादि —

जैसे रत्नाकर भाँति-भाँति के अमूल्य रत्नों से शोभा देता है इसी प्रकार आचार्यरत्नप्रभसूरि का गच्छ अनेक विद्वान् मुनियों से शोभा दे रहे थे उन मुनि समूह में मुनि शान्ति सागर सर्व गुण सम्पन्न था सूरिजी के वृद्धावस्था के कारण व्याख्यान मुनि शान्तिसागर ही दिया करते थे आपका व्याख्यान विशेष आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयपर होताथा तथा त्याग वैराग्य तो आपके नस-नस में कूट-कूट कर भरा हुआ था कि जिसको श्रवण कर मनुष्यों के रोमांच खड़े होजाते थे अतः नगरमें मुनि शान्तिसागर की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी इतना ही क्यों पर श्रीसंघ की भावना तो यहाँ तक हो गई कि मुनि शान्तिसागर को आचार्य पद दिया जाय तो बहुत अच्छा है कारण आप सूरि पद के सर्वथा योग्य है अतः श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यों तो आपके सर्व शिष्य योग्य हैं और शासनकल्याण के लिये तत्पर है परन्तु यहाँ के श्रीसंघ की प्रार्थना है कि मुनि शान्तिसागर को सूरिपद दिया जाय और यह कार्य हमारे नगर में हो कि हम लोगों को भी लाभ मिले साथ में एक यह भी अर्ज है कि यदि आपका शासन स्वीकार करना हो तो आनन्दमूर्ति को भी वाचक बनाना चाहिये । कारण आनन्दमूर्तिजी अच्छे विद्वान एवं योग्य पुरुष हैं ऐसों का उत्साह बढ़ाने में जैनधर्म को तो लाभ है ही परन्तु दूसरे सन्यासियों पर भी इस बात का अच्छा प्रभाव पड़ेगा । पूज्यवर ! कई लोग तो इस कारण से जानते हुये भी मतकल्पना एवं वेशकल्पना छोड़ नहीं सकते हैं कि हम जैन साधु बने तो वहाँ छोटा बनना पड़ेगा ? दूसरा योग्य पुरुषों का सत्कार करना आपका कर्तव्य भी है । इस पर सूरिजी ने कहा श्रावकों ! आपका कहना ठीक है मैं इसको स्वीकार करता हूँ मुनि शान्ति सागर को सूरिपद देना यह तो मैंने पहिले से ही निश्चय कर रखा है दूसरे आनन्दमूर्ति भी योग्य पुरुष है जैन शास्त्रों में योग्य पुरुषों का सत्कार करने की मनाई नहीं है इतना ही क्यों पर योग्य हो तो जिस दिन दीक्षा दी उसी दिन आचार्य पदादि पद देने का फरमान है अतः मैं आनन्दमूर्ति के लिये भी विचार अवश्य करूँगा । श्रीसंघ ने कहा पूज्यवर ! आप शासन के स्तम्भ हैं दीर्घदर्शी हैं आप जो कुछ करेंगे वह शासन के हित का ही कारण होगा परन्तु यहाँ के श्रीसंघ का बहुत आग्रह है कि यह शुभ कार्य इस नगर में ही होना चाहिये अतः स्वीकृती फरमावे ?

सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जानकर स्वीकृति दे दी । बस फिर तो कहना ही क्या था नगर के घर घर में उत्साह एवं हर्ष की तरंगें उछलने लग गई हैं और वह महोत्सव करने में लग गये । शुभ मुहूर्त में मुनि शान्तिसागर को आचार्य पद देकर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया गया मुनि सोमप्रभादि ५ मुनियों को उपाध्यायपद राजसुन्दर एवं आनन्दमूर्ति आदि ११ मुनियों को पण्डित पद मुनिकल्याणकलशादि सात मुनियों को वाचनाचार्य पद मुनि रत्नशिखरादि की मुनियों को गणि पद दिया पूर्व जमाना में योग्यता की पूरी परीक्षा करके ही पदवियाँ दी जाती थी और पदवियाँ लेने वाले भी अपनी जुम्मावारी का पूरा पूरा ख्याल रखते थे यही कारण है कि आचार्यों का शासन उस समय पदवीधरों से शोभायमान दीखता था जैसे समुद्र कमलों से तथा चन्द्र नक्षत्र और तारों से शोभायमान दीखता है —

एक समय आचार्य सिद्धसूरि रात्रि समय धर्म कार्य एवं शासन कार्य की चिन्तवना करते समय

विचार कर रहे थे कि अब मेरा आयुष्य शायद् नजदीक ही हो इतने मे तो देवी सच्चायिका एवं मातुला आकर सूरिजी को वन्दन कर अर्ज की कि पूज्यवर ! अब आपका अ युष्य केवल एक मास का रहा है। आपने मुनि शान्तिसागर को सूरि पद दिया यह भी अच्छा ही किया है इत्यादि सूरिजी ने देवियों को अन्तिम धर्म लाभ दिया अत' वे वन्दन कर आदश्य होगई —

सुबह सूरिजी ने आचार्य रत्नप्रभसूरि आदि श्रीसघ को कहा कि मेरी आयु नजदीक है। मेरी इच्छा अनशन करने की है। इसको सुनकर सब लोग उदास होगये और कहने लगे कि पूज्यवर ! आप हमारे शासन के स्तम्भ हैं हमारे शिर छत्र हैं। आपकी तन्दुरुस्ती अच्छी है। श्रीसघ यह नहीं चाहते कि आप इस समय अनशन करें। हां जब समय आवेगा तो श्रीसंघ स्वय विचार करेगा। इस प्रकार नौ दिन निकल गये आखिर सूरिजी ने अनशन कर लिया और २१ दिन समाधि पूर्वक अराधना कर आप परम समाधि से स्वर्ग धाम पधार गये। इस अवसर पर सिंध के ही नहीं पर कई प्रान्तों के भावुकजन सूरिजी के दर्शनार्थ आये हुये थे उन सब के चेहरे पर ग्लानी छाई हुई थी ! फिर भी निरानन्द होते हुए भी उन सबने करने योग्य सब क्रिया की और संघ अपने अपने नगरों की ओर चले गये।

आचार्य सिद्धसूरि का सिंध भूमि पर महान उपकार हुआ है। अतः सूरिजी की चिर स्मृति के लिये आपके शरीर का अग्नि संस्कार हुआ था उस स्थान पर एक विशाल स्तम्भ बनाया और आश्वन शुक्ल नौमि के दिन जो सूरिजी के स्वर्गवास का दिन था वहां एक बड़ा मेला भरना मुकर्रर कर दिया कि सालो साल मेला भरता रहे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि महान प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं आपने डामरेलपुर से कई ५०० मुनियों के परिवार मे विचार कर सिन्ध भूमि में अपनी ज्ञान सूर्य की किरणों का प्रकाश चारों ओर डालते हुए जैनधर्म का खूब उद्योत किया।कई अर्सो सिन्ध में विहारकर आप श्रीनी पंजाब की ओर पधारे छोटेबड़े ग्रामों में भ्रमन कर सावस्थी नगरी की ओर पधारे वहा के श्रीसघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया आपश्री का व्याख्यान हमेशा तात्त्विक एवंदार्शनिक विषय पर होता था षट दर्शन के तो आप पूर्ण अनुभवी थे जिस समय आप एक एक दर्शन का तत्त्व एवं मान्यता बतलाकर व्याख्यान करते थे तो अच्छे अच्छे पण्डित आश्चर्य में डुब जाते थे आचार्यश्री की प्रतिपादन शैली इतनी उत्तम थी कि बीच में किसी को तर्क करने का अवकाश ही नहीं मिलता था कारण आप स्वय तर्क कर उसका समाधान कर देते थे। जिसमे लोगों की मिथ्या धर्म मे असूची और सत्य धर्म की ओर रुचि बढ़ जाती थी।

एक समय सूरिजी के व्याख्यान में एक क्षणक वादी ने आकर प्रश्न किया कि जिस नरक का आप भय बतलाते हैं और स्वर्ग का लालच देते हो कि जिसमे जनता का विकाश की रुकावट हो जाती है ! वे नरक एव स्वर्ग क्या वस्तु है और कहां पर है उन नर्क स्वर्ग को किसने देखी और कौन अनुभव कर आया। इस विषय में।क्या आप कुच्छ साबुती दे सकते हो ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि वस्तु का ज्ञान करने के लिये दो प्रकार के प्रमाण होते है एक प्रत्येक्ष दूसरा परोक्ष जो नजरों के सामने पदार्थ है। उसको प्रत्येक्ष देख सकते है पर जो दूर रहा हुआ पदार्थ है उसको जानने के लिये परोक्ष प्रमाण ही काम देता है। यदि कोई व्यक्ति सवाल करे कि एक सौ कोस पर नगर है वहा एक सुन्दर बडवृक्ष है;परन्तु इसके लिये खुद नजरों से देखने वाला भी परोक्ष प्रमाण के अलावा क्या

बता सकता है इसी प्रकार स्वर्ग नरक जिन्होंने साक्षात् देख कर कथन किया है उनके वचन ही प्रमाण एवं साक्षी है। चोरी करने वाले को दंड और सेवा करने वाले को इनाम मिलता है इसी प्रकार पाप करने वाले को नरक और पुन्य करने वाले को स्वर्ग मिले इसमें शंका ही क्या हो सकती है इत्यादि सूरिजी ने बहुत हेतु युक्तियोंकर समझाया परन्तु नास्तिक वादी ने कहा कि मैं ऐसे परोक्ष प्रमाणों को नहीं मानता हूँ मुझे तो प्रत्यक्ष प्रमाण बतलाओ कि यह स्वर्ग नरक है ?

पास ही में सूरिजी महाराज का एक भक्त बैठा था उसने कहा पूज्य गुरु महाराज यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसको समझा सकता हूँ। सूरिजी ने कहा ठीक समझाओ। भक्त ने उस नास्तिक वादीको अवसर देकर बाहर ले जाकर उस के मुँह पर जोर से एक थप्पड़ लगाया जिससे वह रो कर चिल्लाने लगा।

"भक्त ने पूछा कि भाई तू रोता क्यों है ?

"नास्तिक—तुमने मुझे मारा जिससे मुझे बड़ा ही दुःख हुआ है।

"भक्त—भाई थोड़ा सा दुःख को निकाल कर मुझे बतला दें कारण मैं परोक्ष प्रमाण को नहीं मानता हूँ अतः आप प्रत्यक्ष प्रमाण से बतलावें कि दुःख यह पदार्थ है!

"नास्तिक—अरे दुःख कभी बतलाया जा सकता है यह तो मेरे अनुभव की बात है

"भक्त—जब आप हमारे अनुभव की बात अर्थात् स्वर्ग को नहीं मानते हो तो हम आपके अनुभवकी बात कैसे मान लेंगे। दूसरा आप मुझे उपालम्भ भी नहीं दे सकते हो कारण आपकी मान्यतानुसार आत्मा क्षण-क्षण में उत्पन्न एवं विनाश होती हैं अतः थप्पड़ की मारने वाली आत्मा विनाश होगई और जिसके थप्पड़ की मारी थी वह आत्मा भी विनाश होगई इसलिये आपको दुःख भी नहीं होना चाहिये क्योंकि आपकी और मेरी आत्मा अभी उत्पन्न हुई है विनाश हुई आत्मा का सुख दुःख अभी उत्पन्न हुई आत्मा भुक्त नहीं सकती है इत्यादि युक्तियों से इस प्रकार समझाया कि नास्तिक वादी की अक्कल ठिकाने आगई और उसने सोचा कि यदि आत्मा क्षण-क्षण में विनाश और उत्पन्न होती हो तो जिस क्षणमें मुझे दुःख हुआ वह अब तक क्यों ? अतः इसमें अवश्य समझने का अवसर है चलो गुरु महाराज के पास बस नास्तिकवादी और भक्त दोनों सूरिजी के पास आये—

ब्रह्मचारी ने सूरिजी से पूछा कि गुरु महाराज आत्मा क्या वस्तु है और जन्ममरण क्यों होता है मरके आत्मा कहां जाती है और नयी आत्मा कहां से आकर उत्पन्न होती है और आत्माको सुखदुःख कैसे मिलता है? सूरिजी ने कहा आत्मा का न विनाश होता है और न उत्पन्न ही होता है जीवके अनादिकाल से शुभाशुभ कर्म लगा हुआ है और उन कर्मों से नये-नये शरीर धारण करता हुआ चतुर्गति में भ्रमण करता है यदि जिनेन्द्रदेव कथित दीक्षा ग्रहण कर सम्यग् ज्ञानदर्शन चारित्र की आराधना करें तो जन्ममरण रूपी कर्मों से मुक्त हो आत्मा परमात्मा बन कर सदैव सुखी बन जाता है

ब्रह्मचारी क्या मैं दीक्षा लेकर ज्ञानदर्शन चारित्र की आराधना कर सकता हूँ !

सूरिजी-क्यों नहीं। आप खुशी से कर सकते हो।

ब्रह्मचारी—तब दीजिये दीक्षा और बतलाइये रास्ता !

सूरिजी—उसी समय ब्रह्मचारी को दीक्षा देदी।

इस प्रकार आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अनेक अन्यमतियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर उनका उद्धार किया इतना ही क्यों पर उन अन्यमति साधुओं ने जैनधर्म में दीक्षित हो एवं जैन सिद्धान्त का अभ्यास करके क्षणिक वादी बोधों का और वाममार्गी एव यज्ञवादियों के अखाड़े उखेड़ दिये थे। आचार्य रत्नप्रभसुरि पट्दर्शन के मर्मज्ञ एव अनेक विद्या एव लब्धियों के ज्ञाता थे और उस समय बौद्ध वेदान्तियों और वाममार्गियों के आक्रमण के सामने जैन धर्म जीवित रह सका यह उन विश्वोपकारी आचार्य रत्नप्रभसूरि जैसे प्रभावशाली आचार्यों का ही उपकार समझना चाहिये।

सूरिजी ने सावत्थी नगरी से विहार कर क्रमश तक्षशिला पधारे तक्षशिला का तुर्कों के द्वारा भंग होने से पहले वाली तक्षशिला नहीं पर सर्वथा जैनों से निर्वासित भी नहीं थी वहाँ उस समय बहुत से जैन बसते भी थे कई मन्दिरों पर बोद्धों ने अपना कब्जा कर लिया था पर आचार्य रत्नप्रभसूरि के पधारने से जैनों में पुन जागृति हो आई थी आचार्यश्री ने तक्षशिला का हाल देख वहाँ पर एक चतुर्विध सघ की सभा करने का विचार किया वहाँ के श्रीसंघ को कहाँ तो उन्होंने सूरिजी का कहना स्वीकार तो कर लिया पर उनके दिल में यह भय था कि यहाँ बोद्धों का जोर अधिक है फिर भी उनका गुरुदेव पर विश्वास था पजाब सिंध शूरसेनादि कइ प्रान्तों में आमन्त्रण भेज दिये ठीक समय पर चतुर्विध सघ खूब गेहरी तादाद में एकत्र हुआ और आचार्य श्री के नायकत्व में सभा हुई सबसे पहला यह प्रस्ताव रखा गया कि बोद्धों ने अपने मन्दिर दबा लिया है उनको पुन प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये दूसरा जैनधर्म का प्रचार करने के लिये मुनियों का विहार और श्रावकों को भी प्रयत्न करना जरूरी है इत्यादि इस सभा का जनता पर काफी प्रभाव पड़ा बहुत से मन्दिर बोद्धों से वापिस लेकर उनकी पुन प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ के श्रीसंघ की अत्याग्रह होने से वह चतुर्मास सूरिजी ने तक्षशिला में ही किया। भाद्र गोत्रीय शाह चचग के महा महोत्सव पूर्व व्याख्यान में महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र फरमाया जिनका जैन जैनेतर जनता पर बहु असर हुआ विशेषता यह थी कि श्रेष्ठिगोत्रीय शाह हाप्पा ने सम्मेतशिखर तीर्थ की यात्रार्थ सघ निकलने का निश्चय किया उसने बहुत दूर-दूर तक आमन्त्रण पत्रिका भेज कर श्री सघ को बुलाया तथा आत्मकल्याण की भावना वाले बहुत लोग ठीक समय पर आ भी गये और चतुर्मास समाप्त होते ही सूरिजी की अध्यक्षत्व में सघ यात्रार्थ प्रस्थान कर दिया सघपति की माला शाह हाप्पा का कण्ठ में सुशोभित थी रास्ता के तीर्थों की यात्रा करते हुए सघ सम्मेत शेखरजी पहुँचा तीर्थ का दर्शन स्पर्शन कर सबने आनन्द मनाया सूरिजी ने शाह हाप्पा को उपदेश दिया कि यह बीस तीर्थङ्करों एव आचार्य ककसूरि की निर्वाणभूमि है मन्त्री पृथुसेन के पुत्र ने यहाँ पर दीक्षा ली है ऐसा सुअवसर बार बार मिलना मुश्किल है प्रवृति में सबसे बड़ा कार्य संघ निकालने का है तब निवृति में दीक्षा लेना है। सूरिजी के उपदेश का भाव हाप्पा समझ गया और अपने जेष्ठ पुत्र कुम्भा को संघपति की माला पहना कर शाह हाप्पा सूरिजी के पास दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया आपके अनुकरणरूप में कई ११ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। सूरिजी ने उन सबकों दीक्षा दे दी। कइ मुनियों के साथ संघ वापिस लौट गया और सूरिजी अपने ५०० मुनियों के साथ पूर्व में विहार किया और बोद्धों के बढ़ता हुआ जोर को हटा कर जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया-पाटलीपुत्र, चम्पा, अयोध्या, राजग्रह, तुंगिया वाणियाग्राम, कांकादी, वैशाला और हेमाला एव कपिलवस्तु तक विहार कर जनता को जैनधर्म का उपदेश दिया बाद कलिंग की ओर विहार कर उदयगिरि खण्डगिरि जो शत्रुंजय गिरनार अवतार के नाम से तीर्थ कहलाते थे

भी प्रार्थना की थी कि पूज्य आचार्य देव आपने मरुधर की पवित्र भूमि पर जन्म लेकर केवल मरुधर पर ही नहीं पर भारत पर बड़ा भारी उपकार किया है यह वही उपकेशपुर है कि आपके पूर्वजों ने जैनधर्म का वीज वोया और पिच्छले आचार्यों ने उसको जलसिंचन कर नवपल्लव वनाया। कृपा कर यह चतुर्मास यहा कर के यहाँ की जनता पर उपकार करावे आपके विराजने से मुझे भी दर्शनों का लाभ मिलेगा। सूरिजी ने कहाँ देवीजी क्षेत्रस्पर्शना होगा तो मुझे तो कही न कही चतुर्मास करना ही है। यह कब हो सकता है कि इस गच्छ के आचार्य आपकी विनती स्वीकार नहीं करे। दूसरे हमारे लिये तो यह एक पवित्र तीर्थ धाम हैं आचार्य रत्नप्रभसूरि के शुभ हाथों से शासनाधीश चरमतीर्थंकर की स्थापना हुई जिसकी उपासना तो प्रवलय पुन्योदय से ही मिलती है इत्यादि सूरिजी के कहने से देवी को वड़ा ही सतोप होगया।

उस समय उपकेशपुर का शासन कर्ता महाराजा उत्पलदेव की सन्तान परम्परा के राव आल्हन देव था आप वश परम्परा से ही जैन धर्म के परमोपासक थे सूरिजी के पधारने से आपको बड़ा ही हर्ष था कारण आपका लक्ष आत्मकल्याण की ओर विशेष रहता था। अत एक दिन श्रीसघ एकत्र हो सूरिजी से चतुर्मास की प्रार्थना की जिस पर सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान श्रीसंघ की विनति को स्वीकार करली। दूसरे यह भी था कि उपकेश गच्छ के आचार्य उपकेशपुर पधारे तो कम से कम एक चतुर्मास तो वहा अवश्य करते ही थे जिसमें सूरिजी की तो अवस्था ही वृद्ध थी।

रावजी ने महामहोत्सव पूर्वक श्री भगवतीजी सूत्र को अपने वहा लाकर रात्रि जागरण पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य किया और हस्ति पर सूत्रजी विराजमान कर वरघोड़ा चढा कर सूरिजी को अर्पण किया और सूरिजी ने उस महाप्रभाविक शास्त्रजी को व्याख्यान में वाचकर श्रीसंघ को सुनाया जिसको सुन कर जनता ने अपूर्व लाभ उठाया। सूरिजी के विराजने से धर्म का खूब ही उद्योत हुआ अपनी २ रूची के अनुसार सव लोगों ने यथाशक्ति लाभ लिया। एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में आचार्य रत्नप्रभसूरि का जीवन सुनाते हुए फरमाया कि महानुभावों! जिन महापुरुष ने इसी उपकेशपुर में धर्म रूपी वृक्ष का बीज बोया था और पिछले आचार्यों ने उसको जल सिंचन कर नवपल्लव वनाया जिसके ही मधुरफल है कि आज हम जहा जाते है वहा उपकेशवश उपकेशवश ही देखते है और वे भी देवी सहायका का वरदान से 'उपकेशे वहुल द्रव्य' धन धान एव परिवार से समृद्ध और धर्म करनी में तत्पर नजर आते है और वे भी केवल मरुधर में ही नहीं पर लाट सौराष्ट कच्छ सिन्ध कुनाल पाचाल शुरसेन पूर्व वगाल वुन्देलखण्ड आवन्ति मेदपाट तक हमने भ्रमन करके देखा है कि कोई भी प्रान्त उपकेशवश से शून्य नहीं पाया उनको पूछने से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्राय वे लोग अपनी व्यापार सुविधा के लिये ही वहा गये थे वाद में जैनाचार्यों ने वहा के अजैनों को जैन बना कर उनके शामिल मिलाते गये थे कि उनकी सख्या बहुत वढ़ गई। इस पवित्र कार्य में उन आचार्यों का प्रयत्न तो था ही पर साथ में महाराजा उत्पलदेव मत्री ऊहड़ादि धर्मवीर गृहस्थों एव उनकी सन्तान परम्परा का भी सहयोग था तथा देवी सहायिका की भी पूर्ण कृपा थी जिससे इस पुनीत कार्य में आशातीत सफलता मिलती गई पूर्वाचार्यों की यह भी एक पद्धति थी कि वे जैनों के केन्द्र में समय समय सभाएँ करके चतुर्विध श्रीसंघ को और विशेषतय श्रमण सघ को जैनधर्म का प्रचार के लिये प्रेरणा एव उत्साहित करते थे तथा कोई भी प्रान्त जैन साधुओं से निर्वासित नहीं रखते थे। दूसरा यह भी था कि जहा नये जैन बनाये वहा उनके आत्मकल्याण के लिये जैन मन्दिर एवं विद्यालय की प्रतिष्ठा

करवा ही देते थे कि जनता एवं ज्ञान की वृद्धि और धर्म के संस्कार मजबूत बन जाते थे। समय समय तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकलवा कर भी जनता में धर्म उत्साह फैलाया करते थे इत्यादि कारणों से ही वह धर्म वृक्ष अपनी शाखा प्रति शाखा से फला फूला आनन्द में अहलमहलाय शासन कर रहा है। इत्यादि सूरिजी ने जनता पर अच्छा प्रभाव डाला। जिससे राजा एवं प्रजा के हृदय में धर्म प्रचार की बिजली सतेज होगई।

एक समय राव आसलादेवादि सब अग्रेसर एकत्र होकर सूरिजी के पास गये वन्दन करके धर्म प्रचार के विषय मे बातें कर रहे थे राजा ने कहा पूज्यवर ! आचार्यश्री का पधारना हो गया है यहां पर एक सभा की जाय कि जिसमें चतुर्विध श्रीसंघ को बुलाया जाय और धर्म प्रचार के लिये प्रयत्न किया जाय। यहां पर पहले भी कईबार सभाए हुई थी जिसमें अच्छी सफलता मिली थी इस समय भी श्रीसंघ की यही भावना हैं। केवल आपकी सम्मति की ही जरूरत है।

सूरिजी ने फरमाया कि राजन्! आपकी भावना एवं धर्म प्रचार की योजना बहुत अच्छी है और हमारे और आपके पूर्वजों ने इसी प्रकार धर्म प्रचार बढ़ाया था समाए धर्म प्रचार का मुख्य कारण है मैं मेरी सम्मति देता हूँ कि आप धर्म प्रचार को बढ़ाइये। बस फिर तो क्या देर थी श्रीसंघ ने बहुत दूर दूर प्रान्तों तक आमन्त्रण भेजवा दिया और आगन्तुओं के लिये सब तरह का प्रबन्ध कर दिया। सभा का समय माघ शुक्ल पूर्णिमा का रखा जो आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गारोहण दिन था। समय तीन मास जितना लम्बा रखा गया था कि नजदीक एवं दूर से साधु साध्वियों आ सके। अर्थात् ठीक समय पर कई तीन हजार साधु साध्वियों उपकेशपुर को पावन बनाया इसमें केवल उपकेशगच्छ के ही साधु साध्वियों मात्र नहीं थे पर कोरंटगच्छ एवं वीर सन्तानिये तीर्थंगच्छ के साधु साध्वियों भी शामिल थे तथा श्रावकगण भी बहुत संख्या में आये थे इसका कारण एक तो भगवान् महावीर की यात्रा दूसरा आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास दिन तीसरा हजारों साधु साध्वियों के दर्शन चतुर्थ लाखों स्वधर्मी भाइयों का समागम पांचवा धर्म प्रचारार्थ सभा छठा आचार्य रत्नप्रभसूरी की वृद्धावस्था में दर्शन एवं सेवा भक्ती ! ऐसा पुनीत कार्य में विचत रहना कौन चाहता था ? अर्थात कोई नहीं चाहता ! ठीक समय पर सभा हुई आचार्य रत्नप्रभसूरि ने आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि और वाममार्गियों वगैरह सबका इतिहास समझाया और वर्तमान में प्रत्येक प्रान्तों में अपने भ्रमण का हाल सुनाया। थोड़ा लोग अपना प्रचार किस प्रकार बढ़ा रहे है साथ में जैनों का क्या कर्तव्य है जैन श्रमणों को क्या करना चाहिये जैन गृहस्थ जैन धर्म का किस प्रकार सहायक बन सकते है इत्यादि आप श्री ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा मार्मिक शब्दों में इस प्रकार उपदेश दिया कि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में जैन धर्म का विशेष प्रचार की भावना जागृत होगई। अत जैन श्रमण एवं श्रावकगणे उत्साह पूर्वक अर्ज की कि पूज्यवर! धर्म प्रचार के लिए हम हमारा सर्वस्व अर्पण करने को तैयार है जिस प्रान्त में जाने की आज्ञा फरमावे हम विहार करने को कटिबद्ध तैयार है इत्यादि। भगवान् महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने देवी सच्चायिका की सम्मति लेकर आपके हृदय के समीप मुनि प्रमोदरत्न को अपने पट्ट पर आचार्य बना दिया तथा अन्य भी योग्यतानुसार कई मुनियों को पदवियों प्रदान कर उनके उत्साह को बढ़ाया और योग्य स्थान के लिये आज्ञायें देदी कि अमुक मुनि अमुक प्रान्तों में विहार कर धर्म प्रचार करे। राजा आसलादेव वगैरह उपकेश २ का श्रीसंघ अपने कार्य की सफलता देख बड़ा ही आनंद

मनाया आये हुए श्रीसंघ को पेहरामणी वगैरह देकर विसर्जन किया कार्य की सफलता से उनके दिल में भी हर्ष का पार नहीं था।

पाठकों! आज कांग्रेसो, कान्फरन्से, मीटिंगे, कमेटिये और सभाए कोई नयी बातें नहीं है पर प्राचीन समय से ही चलती आई थीं उसके पहले धर्म प्रचार के लिये तीर्थङ्करों के समवसरण रचा जाता था वे भी एक प्रकार की सभाए ही थी उस जमाने में और आज के जमाने में केवल इतना ही अन्तर है कि पूर्व जमाना में जो कार्य करना चाहते थे सर्व सम्मति से निश्चय कर कार्यकर्त्ता तन मन एव धन से उस कार्य को करके ही निद्रा लेते थे तब आज प्रस्ताव पास कर रजिस्टरों में बान्ध कर रख दिया जाता है। विशेषता यह है कि काम करना कोई चाहते नहीं है पर एक दूसरे पर व्यर्थ आक्षेप करके मतभेद खड़ा कर देते है जिससे कार्य करना तो दूर रहा पर उल्टी पार्टियों बन जाती है और जनता का भला के स्थान बुरा हो जाता है।

खैर आचार्य रत्नप्रभसूरि अपनी वृद्धावस्था के कारण उपकेशपुर के श्रीसंघ की अति आग्रह होने से वहां ही विराजमान रहे नूतनाचार्य यक्षदेवसूरि भी आपकी सेवा में ही थे सूरिजी ने गच्छी का सर्व भार यक्षदेवसूरी के सुपर्द कर आप अन्तिम सलेखना करने में लग गये अन्त में लुणाद्री पहाड़ी पर १६ दिन का अनसन कर समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये।

आचार्य रत्नप्रभसूरी महान प्रभाविक एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए है आप उपकेशगच्छ में षष्टम् आचार्य अर्थात इस नाम के अन्तिमाचार्य हुए है। आपश्री ने अपने २४ वर्ष का दीर्घ शासन में प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का खूब ही प्रचार किया आपने बहुत से मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर श्रमण सघ में भी अच्छी वृद्धि की यही कारण है कि अपने प्रत्येक प्रान्त में मुनियों का विहार करवा कर जैन धर्म का प्रचार बढ़ाया था पट्टावलियों वंशावलियों, आदि ग्रंथों में आपके शासन में धर्म कार्यों के कई उल्लेख मिला है।

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ—

१—शाखपुर	के	श्री श्रीमालगौ०	शाह	जैता ने	दीक्षा ली
२—आसिकादुर्ग	के	आदित्य नागगौ०	,,	भारमल ने	,,
३—अरजुनपुर	के	भाद्रगोत्रीय	,,	भाणा ने	,,
४—नागपुर	के	कुमटगोत्रीय	,,	चूड़ा ने	,,
५—उपकेशपुर	के	डिडूगौत्रीय	,,	सालगने	,,
६—शाम्भाकतरी	के	लघुश्रेष्ठिगौ०	,,	सखला ने	,,
७—फलवृद्धि	के	चिंचटगौ०	,,	पोलाक ने	,,
८—कोरटपुर	के	श्रेष्टिगौत्री०	,,	जिनदास ने	,,
९—सत्यपुर	के	आदित्यनाग०	,,	कांकण ने	,,
१०—सागली	के	बाप्पनाग०	,,	जोरा ने	,,
११—मेननगर	के	भूरिगौत्रीय०	,,	फागु ने	,,
१२—गोसलपुर	के	करणाटगौ०	,,	जल्हण ने	,,

१३—नरवर के प्राग्वटगौ॰ शाह भैरा ने दीक्षा ली
१४—वीरपुर के चरडगौत्रीय „ मूला ने „
१५—मुग्धपुर के मल्लगौत्रीय „ महराज ने „
१६—कन्नौजी के सु चिंतिगौ „ नागर ने „
१७—मत्स्यक्षेत्र के सुचन्तगौ॰ „ हाला ने „
१८—त्रिभुवन के सुंचती „ देपाल ने „
१९—शोभनीपुर के कुलभद्रगौ „ नाथा ने „
२ —भालनपुर के करणाटगी „ नागदेव ने „
२१—खोडनपट्टन के लघु श्रेष्ठिगो॰ „ रामा ने „
२२—चोपावन के भ ट्टगौ „ पंचा ने „
२३—हनुमानपुर के बलाहगौ „ नेता ने „
२४—कल्याणी के कनोजियागौ „ पाता ने „
२४—मांड के प्राग्वट „ महादेव ने „
२५—अयोध्या के छत्रीवीर „ केल्हो ने „
२६—पाटलीपुत्र के प्राग्वटवंशी „ मोपल ने „
२७—मालवी के प्राग्वटवंशी , राजशोभा ने „
२८—सोमाणा के श्रीमालवंशी „ पदमा ने „
२९—कन्नौजी के सुचन्तिगौत्री „ विमलाश ने „
३०—कुन्तपुर के श्रेष्ठिगौत्री „ पारस ने
३१—वीरपुर के बाप्पनागगौ „ सोमाशा ने „
३२—मथुरा के श्रेष्ठिगौत्री „ माथुर ने „
३३—चंदेरी के सुचंतिगौ „ मोकल ने „

इन तो वंशावलियों से केवल एकेक नाम ही लिखा है पर इन एकेक भावुकों के साथ अनेक मुमुक्षुओं ने तथा कई महिलाएँ ने भी सूरिजी तथा आपके मुनिवरों के पास दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण किया था। यदि इन दीक्षा वालों का विवरण लिखा जाय तो एक अलग ग्रंथ बन जाता है कारण जैनों की करोड़ों की संख्या थी चौबीस वर्ष का समय में दो चारसौ दीक्षा हो गई हो तो कौन बड़ी बात है।

आचार्य श्री के शासन में तीर्थों के संघादि शुभ कार्य—

१—कोरंट पट्टन से श्रेष्ठिगौत्रीय शाह जेतसी ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला।
२—देवगिरि से मल्लगौ॰ शाह माला ने „
३—भरौंच नगर से प्राग्वट पेथा ने „
४—चन्द्रावती से मंत्री देवा ने „ „
५—नरवर से श्री श्रीमाल पेथा ने „ „

६—पोतनपुर से	बाप्पनाग०	माणा ने	,,	,,
७—उज्जैन से	भाद्रगो०	रघुवीर ने	,,	,,
८—चित्रकोट से	कुंभटगो०	टावा ने	,,	,,
९—चन्द्रावती से	करणावट गो०	डावर ने	,,	,,
१०—कन्याकुब्ज से	प्राग्वट	राणा ने	,,	,,
११—मथुरा से	श्रेष्टिगो०	जैतल ने	,,	,,

१२—उपकेशपुर के राव आल्हणने वि० स० ४१३ का दुकाल में शत्रुकारदिया
१३—चन्द्रावती के प्राग्वट मत्री नारायण ने सं० ४१२ ,, ,,
१४—शिवगढ़ के कुलभद्रगो० शाह क्षेमाने वि० स० ४२० कादु काल ,,
१५—भिन्नमाल के श्रीमल गुँगला ने एक वडा तलाव खुदाया
१६—करणावती के श्रीमाल देवाने २२ वर्ष की उमर में दम्पति चोथा व्रत लिया
१७—जिसमें श्रीसघ को सवासेर का लाड्डू और पांच पाच सोना मुहर पेरामणी दी
१८—खेतड़ी का मत्री मोहण युद्ध में काम आया।

१९—उपकेशपुर का श्रेष्टि मूम्फार युद्धमें काम आया ,,			,,	,,	,,
२०—नागपुरका	प्राग्वट	वीर हरदेव	,,	,,	,,
२१—जगालुका	वीरहरगो०	नानग	,,	,,	,,
२२—मेदनीपुरका	भूरिगो०	प्रह्लाद	,,	,,	,,
२३—पद्मावतीका	श्रेष्टिगो०	मोकल	,,	,,	,,
२४—सत्यपुरका	श्रेष्टिगो०	गोसल	,,	,,	,,
२५—वीरपुरका	भाद्रगौत्र	शार्दूल	,,	,,	,,
२६—हर्षपुरका	कनोजिया०	घटान	,,	,,	,,
२७—मुग्धपुरका	डिड्डुगो०	नरसिंह	,,	,,	,,
२८—पट्कुपका	प्राग्वट०	जिनदास	,,	,,	,,

इनके अलावा भी आचार्य श्री के शासनमें कई जानने योग्य पात हुई थी पर स्थान के अभाव उन सबको यह उद्धृत कर नहीं सकते हैं

सूरीश्वर जी के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ

१—पटहडी	के	प्राग्वटवशी	शाह	धर्मसीने	भ०	महावीर	म०	प्र०
२—मुधानगर	के	उकोशिया०	,,	कुकाने	,,	,,	,,	,,
३—केरलिया	के	मलगो०	,,	आल्हणने	,,	,,	,,	,,
४—डामरेलनगर	के	भूरिगो०	,,	ईंदाने	,,	पार्श्व	,,	,,
५—शालीपुर	के	चरड़गो०	,,	गोसलने	,,	,,	,,	,,
६—जाबोली	के	कुमटगो०	,,	पारसने	,,	,,	,,	,,

७—त्रिभुवनपुर	के	सुचंती०	शाह	सुरजणने	म	महावीर	म	म
८—विराटी	के	छुंगणी	,,	दोपाने	,,	,,	,,	,,
९—पुनाकोट	के	श्रेष्ठिगो०	,	करणाने	,,	,,	,,	,,
१ —ऐपुकोट	के	बाप्पनाग	,,	रामसने	,,	,,	,,	,,
११—नानाकोट	के	अदित्यनाग	,,	रामाने	,,	रिषभ	,,	,,
१२—परोली	के	कुंमटगौत्र –	,,	सांगणने	,,	धम	,,	,,
१३—मथुरा	के	मात्रगो०	,,	मैराने	,,	शान्ति	,,	,,
१४—कपीलवस्तु	के	कुम्मटगो		रोडाने	,,	सीमंधर	,,	,,
१५—विशाला	के	चिंचटगो०	,,	कानकने	,,	पद्मनाभ	,,	,,
१६—[illegible]गिरि	के	बाप्पनाग	,,	लाधाने	,,	महावीर	,,	,
१७—दोसली	के	श्रेष्ठिगो०	,,	धुमाने	,,	,,	,,	,,
१८—चाखोर	के	सुचंतिगो	,,	चोखिमने	,,	,,	,	,,
१९—मथोली	के	चिहुगो०	,,	नालाने	,,	पार्श्व	,,	,,
२ —बनारस	के	कनोजिया	,,	पेथाने	,,	,,	,,	,,
२१—शैलपुर	के	चिंचटगो०	,,	मगसुलाने	,,	,	,,	,,
२२—माण्डवगढ़	के	मोरखिया	,	चोलाने	,	,,	,,	,,
२३—हसपुर	के	चरडगो	,,	जोगाने	,,	,,	आदीश्वर	,,
२४—नागोरी	के	मंत्री		नारायणने	,,	,,	पार्श्व	,,
२५—सालोनी	के	आदित्य	,,	जालमणने	,,	,,	,,	,
२६—शाकम्भरी	के	श्रेष्ठिगो		भिखाने	,,	नेमि	,,	,,
२७—पालिका	के	बाप्पनाग	,	मोकमने	,,	मल्ली	,,	,,
२८—रत्नपुर	के	बलाहगो	,	देवाने	,,	महावीर	,,	,,
२९—रहासम	के	प्राग्वट	,	धुमाने	,,	सीमंधर	,,	,,
३०—चरपटनगर	के	प्राग्वट		धुवाने	,,	पार्श्व	,,	,,
३१—चन्द्रावती	के	श्रीमाल		कानाने	,,	चंद्र	,,	,,

इनके अलावा बहुत से घर देरासरों की भी प्रतिष्ठा करवाई थी जिनों का उल्लेख वंशावलियों पट्टावलियों वगैरह चरित्र ग्रन्थों में मिलता है पर स्थानाभाव से उन सबका उल्लेख करने में हम असमर्थ हैं केवल नमूना मात्र की नामावली लिख दी है पाठक अनुमोदन कर पुण्योपार्जन करें ।

एक तीस पट्टधर शिरोमणि, रत्नप्रभ उद्योत किया ।
षट् दर्शन के थे वे ज्ञाता, ज्ञान अपूर्व दान दिया ॥
सिद्ध हस्त अपने कामों में जैन ध्वजा फहराया था ।
देश-देश में धवल कीर्ति, गुणों का पार न पाया था ॥

इति श्री पार्श्वनाथ के ३१ वें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि महान् आचार्य हुए ।

३२—आचार्य श्री यक्षदेव सूरि (पञ्चम)

सूरि र्नायक यक्षदेव पमाक्कनौजियाख्यान्वये ।
त्राल्य बन्धुगण महाधन व्यया दुष्काल पीडा वहम् ॥
सोऽयं सूरिरनेक भव्य जनतोद्धारे रतो ग्रन्थकृत् ।
म्लेच्छात्नीतिपदातु रक्षण परो देवालया नाभयम् ॥

चार्य श्री यक्षदेव सूरीश्वरजी महाराज यक्षपूजित महा प्रतिभाशाली उग्रविहारी धर्मप्रचारी और सुविहितशिरोमणि आचार्य हुए आपश्री चन्द्र को भांति, शीतल, सूर्य सदृश तेजस्वी, मेरू की तरह अकम्प, धरनी के सदृश धीरे, एव सहनशील, मेघ की तरह चराचर जीवों के उपकारी, जन शासन के स्तम्भ, एक महान् आचार्य हुए है आप का जीवन जन कल्याणार्थ ही हुआ था पट्टावलीकारों ने आपका जीवन विस्तार से लिखा है तथापि पाठकों के कर्णपावन के लिये यहा पर संक्षप्त से लिख दिया जाता है। जिस समय का हाल हम लिख रहे है उस समय भारत के भूषण रूप करणावती नगरी अनेक जिनमन्दिरों से शोभायामन थी व्यापार का तो एक केन्द्र ही था वहाँ के व्यापारी लोग भारत के अलावा जल एव स्थल रास्ता से पाश्चात्य प्रदेशों में भी व्यापार किया करते थे जिसमें अधिक व्यापारी उपकेशवश के ही थे 'उपकेशे बहुत द्रव्य' इस वरदान के अनुसार उन व्यापारियों ने न्याय नीति एव सत्यता के कारण व्यापारमें बहुत द्रव्य पैदा किया था और वे लोग उस द्रव्यको आत्मकल्याणर्थ एव धर्म कार्य में व्यय कर पुन्यानुबन्धी पुन्य का भी सचय किया करते थे ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन सघ के जो आगे चल कर अठारह गौत्र हुए थे उसमें कन्नौजियागौत्र भी एक था । उस कन्नौजिया गौत्र में शाह सारंग नामका धनकुबेर सेठ था जिसकी धवलकीर्ति चारो ओर प्रसरी हुई थी शाह सारग बड़ा ही उदार एव धर्मज्ञ था पाच वार तीर्थों का सघ निकालकर सघ को सोना मुहरों और वस्त्रा की पेहरामणी दी थी सात बड़े यज्ञ जीमणवार किये थे याचकों को तो इतना दान दिया कि वे हर समय सारग के यशोगान गाया करते थे शाह सारग के गृहदेवी धर्म की प्रतिमूर्ति रोहणी नाम की स्त्री थी। माता रोहणी ने तेरह पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म देकर अपना जीवन को सफल बनाया था जिसमें पाता नामका पुत्र बड़ाही तेजस्व एव होनहार पुत्र था माता रोहणी ने भगवान् वासुपूज की आराधना अर्थ करणावती में एक आलीसान मन्दिर बनाकर वासपूजतीर्थङ्कर की प्रतिष्टा भी करवाई थी ।

जब पाता के माता पिता का स्वर्गवास हुआ तो घर का सब भार पाता के शिर आपड़ा । पाता व्यापार में बड़ाहीदक्ष था उसने अपना व्यापारक्षेत्र को इतना विशाल बना दिया कि पश्चात्य प्रदेश इरान मिश्र जावा जापान और चीनादि के साथ जल एव थलके रास्ते थोकबद्ध व्यापार किया करता था कई बन्दरों में तो आप अपनी दुकानें भी खोली थी। देवी सहायिका की आप पर बड़ी कृपा थी कि आपने व्यापार में

पुष्कल द्रव्य पैदा किया । शाह पाता जैसे द्रव्योपार्जन करने में दक्ष था इसी प्रकार न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने में भी निपुण था जिसमें भी साधर्मि भाइयों की ओर आपका विशेष लक्ष था आपको स्वदेश भी इसी विषय का मिलता था। व्यापार में भी अधिकतर साधर्मी भाइयों को ही दिया करता था एक ओर तो जैन धर्मों का उपदेश और दूसरी ओर इस प्रकार की सहायता यही कारण था कि जैनेतर लोगों को जैन बना कर सुविधास जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया जाता था शाह पाता बहुकुटुम्ब वाला होने पर भी उनके यहाँ सम्प यही कारण था कि लक्ष्मी बिना आमन्त्रण किये ही पाता के यहाँ स्थिर स्थान डालकर रहती थी।

जब वि० सं० ४२९ में एक जन संहारक भीषण दुष्काल पड़ा तो साधारण लोगों में हा हा कार मचगया मनुष्य अन्न के लिये और पशु घास के लिये महान् दुःखी हो रहे थे शाह पाता से अपने देशवासी भाइयों का और मूक पशुओं का दुःख देखा नहीं गया। उसने अपने कुटम्ब वालों की सम्मति लेकर दुष्काल पीड़ित जीवों के लिये अन्न और घास का भंडार खुल्ला रख दिया कि जिस किसी के अन्न घास की जरूरत हो बिना भेदभाव के ले जाओ फिर तो क्या था दुनियां उमड़ पड़ी पर इतना संग्रह कहा था कि पाता मुल्क को अन्न एवं घास दे सके ? जहां तक मूल्य से धान घास मिला वहां तक तो पाता ने जिस भाव मिला खरीद कर आया कर आये हुए लोगों को अन्न घास देता रहा। जब आस पास में धन देने पर भी अन्न नहीं मिला इसका तो ख्याल ही क्या था पर आये हुए दुःखी लोगों को ना कहना तो एक बड़ी शरम थी बात भी शाह पाता की औरत ने कहा कि इन दुःखियों का दुःख मेरे से भी देखा नहीं जाता है अतः मेरा जेवर है जाओ पर इन लोगों को अन्न दिया करो। पाता ने अपने भाइयों को और गुमास्तों को भेज दिया कि देश एवं प्रदेश में जहां मिले वहां से अन्न एवं घास लाओ। बस चारों ओर लोग गये और जिस भाव मिला उस भाव से देश और प्रदेशों से पुष्कल धान लाने पर दुष्काल की भयंकरता ने इतना उग्र रूप धारण किया कि शाह पाता के पास जितना द्रव्य था वह सब इस कार्य में लगा दिया पर दुष्काल का अन्त नहीं आया। औरतों का जेवर तक भी काल के चरणों में अर्पण कर दिया कारण पाता की उदारता से सब दुःखियां पाता के महमान बन गई थी अतः पाता ने अपनी लाख करोड़ों की सम्पत्ति को वह सब इस कार्य में लगा दी जिसका तो कुछ भी रंज नहीं था पर शेष थोड़ा समय के लिये आये हुए आश्रयजन को निराश करने का बड़ा भारी दुःख था। आखिर शाह पाता ने तीन उपवास कर अपनी कुलदेवी सच्चायिका से प्रार्थना की कि माता मुझे शक्ति दे कि शेष रहा हुआ दुष्काल को दुष्काल बना दूं। या इस संसार से विदा दे। देवी ने पाता की परोपकार परायणता पर प्रसन्न होकर एक अक्षयसी (थैली) दी कि जितना द्रव्य चाहिये उतना निकालते जाओ तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। बस देवी तो अदृश्य होगई शाह पाता ने पीड़ित दुःखी लोगों की सार संभाल की भार धारण किया अब तो पाता के पास अखूट खजाना आगया और शेष रहा हुआ दुष्काल का सिर फोड़ कर उसका निकाल दिया जब वर्षाद पानी हुआ तो जनता पाता को आशीर्वाद देकर अपने २ स्थान को चली गई। शाहपाता अपने कार्य में सफल हुआ और पुनः तीन उपवास कर देवी की आराधना की जब देवी आई तो पाता ने कहा भगवती यह आपकी थैली संभाल लीजिये। देवी ने कहा पाता में तुमे थैली दे चुकी हूं इसको तुम अपने काम में ल। पाता! तूं बड़ा ही भाग्यशाली है तेरे पुन्य से संतुष्ट हो यह थैली तुमे दी है इत्यादि। पाता ने कहा देवीजी आपने बड़ी भारी कृपा की पर

मेरा काम निकल गया अब इस थेली की जरूरत नहीं है "अत' आप अपनी थेली ले जाइये । पात्ता के निस्पृही शब्द सुन देवी वहुत खुश हुई और कहा कि पात्ता तेरे पास थेली रहगी तो इसका दुरुपयोग नहीं पर सद्उपयोग ही होगा । देवों की दी हुई प्रासादी वापिस नहीं ली जाति है इस थेली को तुँ खुशी से रख। इत्यादि देवी की अत्याग्रह से पाता ने थेली रखली पर उस थेली को अपने काम में नहीं ली। पाता ने पुन व्यापार करना शुरु किया थोड़े ही समय में पात्ता ने बहुत द्रव्य पैदा कर लिया और जवेरात वगैरह के व्यापार में धन बढ़ते क्या देर लगती है चाहिये मनुष्य के पुन्य खजाना में। पात्ता पहिले की तरह पुन कोटी धीश बनगया कहा है कि समय चला जाता है पर बात रह जाति है शाह पात्ता की धवल कीर्ति अमर होगई जो आकाश में चन्द्र सूर्य रहगा वहा तक पाता की यश पताका विश्व में फहराती रहगी किसी कवि ने ठीक कहा है कि

" माता जिणे तो ऐसा जीण, के दाता के शूर, नहीं तो रही जे बांझडी मती गमाजे नूर । "

धर्म प्राण लब्ध प्रतिष्ठित पूज्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरि अपने शिष्यमण्डल के साथ विहार करते हुए करणावती नगरी की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार करणावती के श्रीसघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। जनता आपके पुनीत दर्शनों की कई अर्सा मे अभिलाषा कर रही थी श्रीसघ ने बड़ा ही आलीसान महोत्सव कर सूरिजी को नगर प्रवेश कराया सूरिजी ने थोड़ी पर सार गर्भित देशना दी जिसमें त्रिलोक्य पूजनीय तीर्थङ्कर भगवान् दीक्षा के पूर्व दिया हुआ वर्षीदान का इस प्रकार वर्णन किया कि परिषदा पुन्यशाली पात्ता की ओर टीकटकी लगा कर देखने लगी। किसी एक व्यक्ति से रहा नहीं गया उसने कहा पूज्यवर । तीर्थङ्कर भगवान् तो एक अलौकिक पुरुष होते है उनकी माता विश्व भर में ऐसे एक पुत्र रत्न को ही जन्म देती हैं उनकी बरावरी तो कोई देव देवेन्द्र भी नहीं कर सकते है पर इस कलिकाल में हमारे नगरी का भूषण शाहपात्ता अद्वितीय दानेश्वरी है इसने भयकर दुकाल में करोड़ों रुपये नहीं पर अपनी औरतों का जेवर तक अपने देशवासी भाइयों के प्राण रक्षणार्थ वोच्छावर कर दिये ? इत्यादि सूरिजी ने भी नौ प्रकार का पुन्य वतला कर शाह पात्ता के उद्धारता की खूब ही प्रशंसा की बाद में सभा विसर्ज्जन हुई।

आचार्य श्री का व्याख्यान प्रति दिन होता था आप जिस समय वैराग्य की धून मे संसार की असारता का वर्णन करते थे तब जनता की यही भावना हो जाति थी कि इस घोर दु खमय ससार को तिलाञ्जली देकर सूरिजी के चरणों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया जाय तो अच्छा है। एक समय सूरिजी ने चक्रवर्ति की ऋद्धि का वर्णन करते हुए फरमाया कि महानुभावों ! मनुष्यों के अन्दर सब से बढ़िया ऋद्धि चक्रवर्ति की होती है जिनके चौदह रत्न और नवनिधान तथा इनके अधिष्टायिक पचवीस सहस्र देवता हाजरी में रहते हैं उन चौदह रत्नों में सात रत्न पाचेन्द्रिय है जैसे --

१ सेनापति—चक्रवर्ति की दिग्विजय में सैना का संचालन करता है ।
२ गाथापति—खान पान वगैरह तमाम आवश्यक पदार्थ की व्यवस्था करता है ।
३ वर्द्धाई रत्न—जहा जरूरत हुई वहा मकान वगैरह की व्यवस्था करे ।
४ पुरोहित—तुष्टि पुष्टि वगैरह शान्ति कार्य का करने वाला ।
५ गजरत्न—युद्ध एव सग्राम में विजय प्राप्त कराने वाला पाटवी हस्ति ।

६ अश्वरत्न—चक्रवर्ति के साथ सवारी करने के काम में आवे ।

७. स्त्री रत्न—चक्रवर्ति के भोग विलास के काम में आवे ।

ये सात पंचेन्द्रिय रत्न अब सात एकेन्द्रिय रत्न कहते हैं—

१ चक्ररत्न—षट् खण्ड विजय के समय मार्ग दर्शक ।

२. छत्ररत्न—चक्रवर्ति पर छत्र तथा बरसाद समय सैना का रक्षण करे ।

३ चर्मरत्न—नदी समुद्र स पार होने म काम आवे ।

४ दण्डरत्न—तमस्त्र गुफा के द्वार खोलने में काम आवे ।

५. खड्गरत्न—दुश्मनों का सिर काटने में काम आवे ।

६ मणिरत्न—अंधेरा में उद्योत करने के काम में आवे ।

७ काकिणिरत्न—तमस्र गुफा में ४९ मंडल करने के काम में आवे ।

इस प्रकार चौदह रत्न होते हैं तथा चक्रवर्ती के नौ निधान होते हैं उनके नाम और काम ।

१ नैसर्प निधान—नये नये ग्राम नगर पट्टनादि स्थान बसाने की विधि ।

२. पाण्डुक निधान—चौबीस जाति का धान्य उत्पन्न करना बीज बोनादि की विधि ।

३ पिंगल निधान—मौक्तिक विभव एवं सब प्रकार के व्यापार करने का विधान ।

४ सर्वरत्न निधान—सर्व जाति के रत्नों की परीक्षा पहचान विभव की विधि ।

५. महापद्म निधान—सर्व जाति के वस्त्र बुनना रंगना धोना वगैरह की विधि ।

६ काल निधान—भूत भविष्य वर्तमान काल का शुभाशुभ फल वगैरह की विधि तथा शिल्पादि हुनर उद्योग वगैरह स्त्री एवं पुरुषों की तमाम कलाएं ।

७ महाकाल निधान—लोहा चांदी सोना रूपा मणि मुक्ताफलादि की उत्पत्ति और भूषणादि की विधि।

८. माणवक निधान—शूरवीर योद्धा बनाना उनके सर्व प्रकार के शस्त्र बनाना चलाना की विधि ।

९. शंख निधान—सर्व प्रकार के नाटक नृत्य बजाना तथा धर्मार्थ काम मोक्ष एवं चारों पुरुषार्थ वगैरह की विधि । अतः इन नौ निधान में सब संसार के कार्यक्रम की विधि बतलाई है । और संसार में जितने न्याय नीति व्यापार हुन्नरकला खाने पीने भोग विलास उत्पादोत्पत्ति आदि के साधन वगैरह जितने कार्य हैं उन सब का विधान इन नौ निधान में आ जाता है ।

चक्रवर्ति के चौदहरत्न और नौनिधान तो आपने सुन लिया है पर इनके अलावा भी बहुतसी ऋद्धि है।

१—चौरासी लक्ष हस्ति इतने ही अश्व और रथ होते हैं ।

२—छन्नुवें करोड़ नाना प्रकार हथियार बद्ध पैदल सिपाई होते हैं ।

३—छत्तीस करोड़ ध्वज और तीन करोड़ ढोलिया मार बढ़ने वाले बजार ।

४—बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा चक्रवर्ति की सेवा में रहते हैं ।

५—चौसठ हजार अन्तेवर (रानियों) इनके साथ दो दो वारांगनाएं भी इन सब की गिनती की जाय तो एक लक्ष और बयानु हजार १९२ और इतने ही रूप चक्रवर्ति वैक्रय बनाया करते हैं कि कोई रानी का महल चक्रवर्ति शून्य नहीं रहे ।

६—बत्तीस हजार नाटक करने वाली मण्डलियां भी ।

७—देश ३२००० पट्टन ४८००० मण्डप २४००० सन्निवेश ३६००० और ग्राम ९६००००००० (एक ग्राम में कम से कम दशहजार घर होना लिखा है।)

८—गायों के गोकुल ३ करोड़। तीन करोड़ हल जमीन खड़ने के।

९—सेठ तीन करोड कोटवाल चौरासी लक्ष, वैद्य तीन करोड़, रसोइया ३६० मैला १४००० राजधानी ३६००० वाजा तीन लाख।

१०—सोने के आगार २०००० रूपा की २४००० रत्नों की १६०००।

११—चक्रवर्ति का लश्कर ४८ कोश में स्थापन होता था।

इत्यादि चक्रवर्ति की ऋद्धि ग्रन्थान्तर कही है हां वर्तमान अल्पऋद्धि वाले लोग इन ऋद्धि को सुनकर शायद् विश्वास नहीं करते होगें पर जब मनुष्य के पुन्योदय होता है तब ऐसी ऋद्धि प्राप्त होना कोई असंभव सी बात नहीं है यह तो अखिल भारत की ऋद्धि बतलाई है पर आज देश विदेशों में एक-एक प्रान्त एव राजधानी में भी देखी जाय तो बहुत सी ऋद्धि पाई जाति है तब असख्य काल पूर्व उपरोक्त ऋद्धि हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कई लोग चक्रवर्ति के हस्ती अश्व रथ पैदल वगैरह की सख्या सुन कर संदह करते है पर भरतक्षेत्र के छखण्डों का क्षेत्र फल का हिसाब लगा कर देखा जाय तो स्वयं समाधान हो सकता है। खैर इन ऋद्धि को भी चक्रवर्तियों ने असार समझी थी।

इस प्रकार की ऋद्धि एव सुख थे पर आत्मिक सुखों के सामने उन पद्गलिक सुखों की कुछ भी कीमत नहीं थी अत चक्रवर्तियों ने उन भौतिक सुखों पर लात मार कर दीक्षा लेली थी तब ही जाकर वे ससार भ्रमन एव जन्म मरण के दु खों से छुटकारा पाकर मोक्ष के अक्षय सुखों कों प्राप्त हुए थे और जिन चक्रवर्तियों ने आत्मा की ओर लक्ष नहीं दिया और पुद्गलिक सुखों कों ही सुख मान लिया वे सातवी नरक के महमान बनगये कहा है कि 'खीणमात सुखा बहुकाल दु खा' अर्थात् उस नरक के पल्योपम और सागरोंपम के आयुष्य के सामने मनुष्य की आयुः क्षण मात्र है अत क्षणमात्र सुखों के लिये दीर्घ काल के दु:ख सहन करना पड़ता है। अब इस पर आप लोग स्वय विचार कर सकते हो कि प्राप्त हुई शुभ सामग्री का उपयोग किस प्रकार करना चाहिये इत्यादि सूरिजी ने बड़े हो वैराग्योत्पादक व्याख्यान दिया।

यों तो सूरिजी की देशना सुन अनेक भावुकों का दिल संसार से हट गया था। परन्तु शाह पात्ता ने तो निश्चय ही कर लिया कि मिली हुई उत्तम सामग्री का सदुपयोग करना ही मेरे लिये कल्याण का कारण हो सकता है शाहपात्ता ने उसी व्याख्यान में खड़ा हो कर कहा पूज्यवर। आपने व्याख्यान देकर मोह निद्रा में सोये हुए हम लोगों को जागृत किया है दूसरों की म नहीं कह सकता हूँ पर मैं तो आपश्री जी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को तैयार हूँ। सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम' पर शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना कारण 'श्रेयसैबहुविघ्नानि' तथाऽस्तु बाद भगवान महावीर और सूरिजी की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। पर आज तो करणावती नगरी में जहां देखो वहा दीक्षा की ही बातें हो रही है जैसे कोई वरराज की बरात के लिये तयारियें होती हों इसी प्रकार शाह पात्ता के साथ शिवरमणी के लिये तैयारियें होने लग गयी। शाह पात्ता की उस समय ५० वर्ष की उमर थी और पाच पाण्डवों के सदृश पात्ता के पाच पुत्र थे पात्ता के बारह बन्धु और उनके पुत्रादि बहुत सा परिवार भी था सबको कह दिया कि ससार असार है एक दिन मरना अवश्य है परन्तु दीक्षा लेकर मरना समझदारों के लिये कल्याण का कारण है ? पात्ता के एक

भाग्यशाली है शासन के हितचिंतक एवं गच्छ का अभ्युदय करने वाले हैं पर यह पंचम आरा महाक्रूर है इनके प्रभाव से कोई भी बचना बडा ही मुश्किल है। पूज्यवर! आपके पूर्वजों ने महाजन संघ रूपी एक संस्था स्थापन करके जैनधर्म का महान् उपकार किया है अगर यह कह दिया जाय कि जैन धर्म को जीवित रक्खा है तो भी अतिशय युक्ति नहीं है और उनके सन्तान परम्परा में आज तक बड़ी सावधानी से महाजन संघ का रक्षण पोषण एवं वृद्धि की है इसका मुख्य कारण इस गच्छ में एक ही आचार्य की नायकता में चतुर्विध श्री संघ चलता आया है पर भविष्य में इस प्रकार व्यवस्था रहनी कठिन है तथापि आप भाग्यशाली है कि आप का शासन तो इसी प्रकार सुख शान्ति में रहेगा इत्यादि। सूरिजी ने कहा देवीजी आप का कहना सत्य है पूर्वाचार्यों ने इसी प्रकार महान उपकार किया है और इसमें आप लोगों की भी सहायता रही है इत्यादि वार्तालाप हुआ बाद वन्दन कर देविया तो चली गई पर सूरिजी को बड़ा भारी विचार हुआ कि देवियों ने भले खुल्लमखुल्ला नहीं कहा है पर उनके अभिप्रायों से कुछ न कुछ होने वाला अवश्य है पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है।

जिस समय आचार्य यक्षदेवसूरि आर्बुदाचल तीर्थ पर विराजते थे उस समय सौराष्ट्र में विहार करने वाले वीर सन्तानिये मुनि देवभद्रादि बहुत से साधुओं ने सुना कि आचार्य यक्षदेवसूरि आर्बुदाचल पर विराजते है अतः वे दर्शन करने को आये भगवान आदीश्वर के दर्शन कर सूरिजी के पास वन्दन करने को आये। सूरिजी ने उनका अच्छा सत्कार किया। देवभद्रादि ने कहा पूज्याचार्य देव आप बड़े ही उपकारी है आपके पूर्वजों ने अनेक कठनाइयों को सहन कर अनार्य जैसे वाममार्गियों के केन्द्र देशों में जैन धर्म रुपी कल्पवृक्ष लगाया और आप जैसे परोपकारी पुरुषों ने उनको नवपल्लव बनाया जिसके फल आज प्रत्यक्ष में दिखाई दे रहे है अब हम एवं जैन समाज आपके पूर्वजों एवं आपका जितना उपकार माने उतना ही थोड़ा है इत्यादि। सूरिजी ने कहा महानुभावों! आप और हम दो नहीं पर एक ही है उपकारी पुरुषों का उपकार मानना अपना खास कर्तव्य हैं साथ में उन पूज्य पुरुषों का अनुकरण अपने को ही करना चाहिये आप जानते हो कि आज बौद्धों का कितना प्रचार हो रहा हैं यदि आप लोग धर्म प्रचार के लिये कटिबद्ध होकर प्रत्येक प्रान्त में विहार नहीं करे तो उन पूर्वाचार्यों ने जिस जिस प्रान्त में धर्म के बीज बोये हैं वे फला फूला कैसे रह सकेंगे। इत्यादि वार्तालाप के पश्चात् जिन २ मुनियों के गोचरी करनी थी वे भिक्षा लाकर आहार पानी किया परन्तु अधिक साधुओं के तपस्या ही थी—

अहा हा पूर्व जमाना में साधुओं में कितनी वात्सल्यता कितनी विशाल उदारता और कितनी शासन एवं धर्म प्रचार की लग्न थी जहा कभी आपस में साधुओं का मिलाप होता वहा ज्ञान ध्यान एवं धर्म प्रचार की ही बातें होती थी आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने शिष्यों के साथ आये हुए मुनियों को भी आगमों की वाचनादि अनेक प्रकार से अध्ययन करवाया जिससे उन मुनियों को बड़ा भारी आनन्द हुआ तथा वे मुनि सूरिजी की सेवा में रहकर और भी ज्ञान प्राप्ति करने का निश्चय कर लिया। इतना ही क्यों पर वे सूरिजी के विहार में भी साथ ही रहे सूरिजी आर्बुदाचल से विहार कर शिवपुरी पधारे और वहा पर बाप्पनाग गौत्रीय शाह शोभन ने एक क्रोटी द्रव्य व्ययकर भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा करवा कर शाह शोभनादि कह नर नारियों को दीक्षा दी जिस समय सूरिजी महाराज आर्बुदाचल के आस पास में भ्रमन कर रहे थे ठीक उस समय कभी कभी विदेशी म्लेच्छा का भी भारत पर आक्रमण हुए करते थे वे

धर्मान्ध लोग धनमाल के साथ पवित्र मन्दिर मूर्ति पर भी दुष्ट परिणामों से हमले किया करते थे परन्तु वे धर्मज्ञ आचार्य मन्दिरों के लिये अपने प्राणों की न्योछावर करते देर नहीं करते थे कई स्थानों पे कई दिवस तक अन्न जलादि से और कभी कभी अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो जाते थे इससे पाठक समझ सकते है कि उस समय श्रीसंघ की मन्दिर मूर्तियों पर कैसी दृढ़ श्रद्धा और हृदय में कैसी भक्ति थी यदि सच पूछा जाय तो इन मन्दिर मूर्तियों के जरिये ही जैन धर्म जीवित रह सका है तो भी कुछ अतिशय युक्ति नहीं है। इतना ही क्यों पर आज हम देखते है कि जैन धर्म की प्राचीनता के लिए एक ही श्रेष्ठ साधन है तो एक प्राचीन मन्दिर मूर्तियों ही है पाश्चात्य प्रदेशों में एक समय जैन धर्म का अच्छा प्रचार था इसकी साबुति के लिये भी आज वहाँ के भूगर्भ से मिली हुई मूर्ति के अलावा और क्या साधन है। इत्यादि मन्दिर मूर्तियों धर्म का एक खास अंग ही समझा जाता था।

जिस समय सूरिजी महाराज मरुधर भूमि में विहार कर जैन धर्म का प्रचार बढ़ा रहे थे उस समय मेदपाट में कुछ बौद्धों के साधु आये और अपने धर्म का प्रचार बढ़ाने लगे क्रमशः वे आघाट नगर में पहुँचे और अपने धर्म की महिमा के साथ जैन धर्म की निन्दा भी कर रहे थे कारण आघाट नगर में प्रायः राजा प्रजा सब जैनधर्मोपासक ही थे। इस कारण से संघ अग्रेसरों ने मरुधर में जाकर आचार्यश्री कक्कदेवसूरि से प्रार्थना की कि पूज्यवर! आप शीघ्र ही मेदपाट में पधारें जिसका कारण भी बतला दिया सूरिजी ने बिना विलम्ब मेदपाट की ओर विहार कर दिया और क्रमशः आघाट नगर के नजदीक पधार गये जिसको सुनकर बौद्ध भिक्षु पलायन कर गये कारण पहिले कई बार सूरिजी के हाथों से वे पराजय हो चुके थे। श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिजी आघाटनगर में पधारे और अपने साथ के बहुत साधुओं को मेदपाट में विहार करने की आज्ञा देदी। धर्म का प्रचार एवं रक्षण केवल बातें करने से ही नहीं होता है पर परिश्रम एवं पुरुषार्थ करने से होता है हम उपकेशगच्छाचार्यों के विहार को देखते है तो ऐसा एक भी आचार्य नहीं था कि किसी एकादी प्रान्त में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त करदी हो। इसका एक कारण तो यह था कि उपकेशवंश प्राग्वटवंश और श्रीमालवंश आपके पूर्वजों के स्थापित किया हुआ था और इन वंशों की वृद्धि भी प्रायः उपकेशगच्छ के आचार्यों ने ही की थी उनका रक्षण पोषण और वृद्धि करना उनके नसों में कूट कूट कर भरा था दूसरे उपकेशवंशादि महाजन संघ भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में फैला हुआ था। क्योंकि इन वंशों में अधिकतर लोग व्यापारी थे और वे अपनी व्यापार सुविधा के कारण हरेक प्रान्त में जाकर बस जाते थे अतः उनको धर्मोपदेश देने के लिये मुनियों को एवं आचार्यों को भी उन प्रान्तों में विहार करना ही पड़ता था—

आचार्य कक्कदेवसूरि ने आघाट नगर में चतुर्मास करदिया और आस पास के क्षेत्रों में अपने साधुओं को भी चतुर्मास करवा दिया कि मेदपाट प्रान्त भर में जैन धर्म की अच्छी जागृति एवं उन्नति हुई कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई कई भावुकों को भगवती दीक्षा दी बाद चतुर्मास के मेदपाट आवंति और बुन्देलखण्ड में विहार करते हुए। आप मथुरानगरी में पधारे। वहां पर भी बौद्धों का जाल और जमा हुआ था और जैनों की भी अच्छी आबादी थी आचार्य कक्कदेवसूरि के पधारने से वहां के श्रीसंघ में बड़ी ही खूब जागृति हुई सूरिजी का व्याख्यान हमेशा तात्त्विक दार्शनिक एवं त्याग वैराग्य पर इस प्रकार होता था कि जैन जैनेतर जनता सुनकर बोधको प्राप्त होती थी—

आचार्य यक्षदेवसूरि की वादियों पर बड़ी भारी धाक जमी हुई थी मथुरा में बोद्धों का बड़ा भारी जोर होने पर भी आचार्यश्री एवं जैनधर्म के सामने वे चू तक भी नहीं करते थे।

जिस समय आचार्यश्री मथुरा में विराजमान थे उस समय काशी की ओर से एक कपालिक नाम का वेदान्तिकाचार्य अपने ५०० शिष्योंके साथ मथुरा में आया हुआ था उस समय वेदान्तिकों का जोर बहुत फीका पड़ चुका था तथापि आचार्य कपालिक बड़ा भारी विद्वान् था एव आडम्बर के साथ आया था अतः वहा के भक्त लोगों ने उनका अच्छा सत्कार किया उन्होंने भी अपने धर्म की प्रशसा करते हुए जैन और बोद्ध को हय बतलाया। इस पर बोधों ने तो कुच्छ नहीं कहां पर जैनों से कब सहन होता जिसमें भी आचार्य यक्षदेवसूरि का वहां विराजना। जैनों ने आव्हान कर दिया कि आचार्य कपालिक में अपने धर्म की सच्चाई बताने की ताकत हो तो शास्त्रार्थ करने को तैयार होजाय। इसको वेदान्तियों ने स्वीकार कर लिया और दोनों ओर से शास्त्रार्थ की तैयारी होने लगी। शर्त यह थी कि जिसका पक्ष पराजय होवे विजयिता का धर्म को स्वीकार करले।

ठीक समय पर मध्यस्थ विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ हुआ पूर्व पक्ष जैनाचार्य यक्षदेवसूरि ने लिया आपका ध्येय 'अहिंसा परमोधर्म' का था और यज्ञ में जो मुक् प्राणियों की बली दी जाती है ये धर्म नहीं पर एक क्रूर अधर्म एव नरक का ही कारण है विदान्तिक आचार्य ने यज्ञ की हिंसा वेद विहित होनेसे हिंसा नहीं पर अहिंसा ही है इसको सिद्ध करने को बहुत युक्तियें दी पर उनका प्रतिकार इस प्रकार किया गया कि शास्त्रार्थ की विजयमाल जैनों के शुभकण्ठ में ही पहनाई गयी। आचार्य कापालिक जैसा विद्वान् था वैसा ही सत्योपासक भी था आचार्य यक्षदेवसूरि के अकाट्य प्रमाणों ने उनपर इस प्रकार का प्रभाव डाला कि उसकी भद्रात्मा ने पलटा खाकर अहिंसा भगवती के चरणोंमें शिर झुका दिया और उसने अपने पाचसौ शिष्यों के साथ आचार्य यक्षदेवसूरि के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली जिससे जैन धर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई आचार्य श्री ने कपालिका को दीक्षा देकर कपालिक का नाम मुनि कुंकुद रख दिया इतना ही क्यों पर इस शास्त्रार्थ के बाद ३२ बौद्ध साधुओं को भी सूरिजी ने दीक्षा दी तत्पश्चात् मथुरा के सघ की ओर से बनाये हुए कई नूतन मन्दिरों की प्रतिष्टा करवाई और भाद्र गौत्रीय शाह सरवण ने पूर्व प्रान्त की यात्रार्थ एक विराट् सघ निकाला सूरिजी एव आपके मुनिगण जिसमें नूतन दीक्षित (वेदान्तिक एव बोध) सब साधु साथ में थे सघ पहले कलिंग के शत्रुञ्जय गिरनार अवतार की यात्र की बाद बगाल प्रान्त (हेमाचल) की यात्रा करते हुए विहार में राजगृह के पाच पहाड़ पावापुरी चम्पापुरी वगैरह तीर्थों की यात्रा कर बीस तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेशिखर तीर्थ के दर्शन स्पर्शन एव यात्रा की वहा से सघ भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याणभूमि काशी आया और बनारस तथा आस पास की कल्याणक भूमि की यात्रा की इन यात्राओं से सकल श्रीसघ को बड़ा ही आनन्द आया और सब ने अपना अहोभाग्य समझा।

सूरिजी हस्तनापुर होते हुए पंजाब में पधार गये शेष साधु वापिस सघ के साथ मथुरा आये। सूरिजी पजाब सिन्ध और कच्छ होते हुए सौराष्ट्र में आकर श्री शॅत्रुजय की यात्रा की इस विहार के अन्दर मुनि कुकुद जैनागमों का अध्यायपन कर धूरधर विद्वान हो गया था इतना ही क्यों पर पजाबादि प्रदेशों में अपने अहिंसा धर्म का खूब प्रचार भी किया था इस विषय मे तो आपकी खूब ही गति थी कारण आपके दोनूघर देखे हुए थे। सूरिजी महाराज ने मुनि कुकुदकों ५०० साधुओं के साथ कंकणादि प्रदेश में विहार की आज्ञा

देवी की और आप चीराप्रु एवं लाट प्रदेश में विहार करते हुए आर्बुदाचल यात्रार्थ पधारते होते हुए पाल्हिका नगरी में पधारे वहाँ के श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने वह चतुर्मास पाल्हिका नगरी में ही किया आप श्रीजी के विराजने से धर्म की अच्छी उन्नति हुई। चतुर्मास के पश्चात् एक संघ सभा भी की गई थी जिसमें बहुत से साधुसाध्वियों नजदीक एवं दूर से आये परन्तु मुनि ढुंढ़ण नहीं आया जिसका चतुर्मास घोघार पट्टन में था कि अधिक दूर नहीं था फिर भी सूरिजी ने इस पर अधिक विचार नहीं किया। संघ सभा के अन्दर धर्मप्रचार एवं मुनियों का विहार वगैरह विषय पर उपदेश दिया गया और कई योग्य मुनियों को पदवियों भी दी गई जिसमें मुनि सोमप्रभादि को उपाध्याय पद से विभूषित किए बाद मुनियों को योग्य क्षेत्रों में विहार की आज्ञा दी और सूरिजी मरुधर प्रान्त में विहार किया और क्रमशः आप उपकेशपुर पधारे श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया देवी सच्चायिका भी सूरिजी को वन्दन करने को आई सूरिजी ने देवी को धर्मलाभ दिया देवी की एवं वहाँ के श्रीसंघ की बहुत आग्रह से सूरिजी ने वह चतुर्मास उपकेशपुर में करना निश्चित कर दिया इधर तो सूरिजी का चतुर्मास उपकेशपुर में हुआ उधर मुनि ढुंढ़ण एक हजार मुनियों के परिवार से मरुधर में आ रहा था जब वे भिन्नमाल आये तो वहाँ के श्रीसंघ ने आग्रह से विनति की जिससे उन्होंने भिन्नमाल नगर में चतुर्मास कर दिया। कुछ मुनियों को आस पास के क्षेत्रों में चतुर्मास करवा दिया। मुनि ढुंढ़ण बड़ा भारी विद्वान एवं धर्मप्रचारक था आपने अनेक स्थानों पर वादियों से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी एवं असंख्य प्राणियों को सम्यक्ज्ञान पिलाया था इतना ही क्यों पर आप अपनी प्रज्ञा विशेष के कारण लोक प्रिय भी बन गये थे परन्तु कलिकाल की दुष्टप्रवृत्ति के कारण आपके दिल में ऐसी भावना ने जन्म ले लिया था कि मैं वैराग्यिक मतमें भी आचार्य था अब यहाँ भी आचार्य बनकर वैरागियों को बताता हूँ कि गुणीजन जहाँ जाते हैं वहाँ उनका सत्कार होता है इत्यादि आपकी भावना दिन ब दिन बढ़ती ही गई और इसके लिये आप कई प्रकार के उपाय भी सोचने लगे। और मुनि ढुंढ़ण भिन्नमाल में श्रीमान् [illegible] शाह देराम के महामहोत्सवपूर्वक श्री भगवतीजी सूत्र व्याख्यान में वाचना प्रारम्भ किया दिया था उस जमाना में बिना आचार्य की आज्ञा सामान्यसाधु व्याख्यान में श्री भगवती जी सूत्र नहीं बाच सकता था और श्रावक लोग भी इसके लिए आग्रह नहीं किया करते थे

भिन्नमाल और उपकेशपुर के लोगों में आपस का खासा सम्बन्ध था तथा व्यापारादि कारण से बहुत लोगों का आना जाना हुआ ही करता था जब आचार्य श्री ने सुना कि भिन्नमाल में मुनि ढुंढ़ण का चतुर्मास है और व्याख्यान में श्री भगवतीजी सूत्र बाच रहा है। उस समय आपको आर्बुदाचल में कही हुई देवियों की बात याद आई। फिर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है।

आचार्य श्री व्याख्यान में श्री स्थानांग जी सूत्र फरमा रहे थे जिसके आठवाँ स्थानक में आचार्य पद एवं आचार्य महाराज की आठ सम्पदाओं का वर्णन आया था जिसको सुनाने के पूर्व प्रसंगोपात सूरिजी ने कहा कि महानुभावों! आचार्य कोई साधारण पद नहीं है पर एक बड़ा भारी जुम्मावारी का पद है जैन जनता की जुम्मावारी राजा के शिर पर रहती है इस प्रकार शासन की एवं गच्छ की जुम्मावारी आचार्य के जुम्मा रहती है। यही कारण है कि तीर्थङ्कर देव एवं गणधर महाराज ने फरमाया है कि आचार्य पद प्रदान करने के पूर्व उसकी योग्यता देखनी चाहिये जिसके लिये सबसे पहिला—

१—जातिवान् माता का पक्ष निर्दोष एवं निष्कलंक होना चाहिये।

२—कुलवान्—पिता का पक्ष विशुद्ध होना चाहिये कारण मातपिता के वंश का असर उसकी सन्तान पर अवश्य पड़ता है। दूसरा जातीवान् कुलवान् होगा तो अकार्य नहीं करेगा। अकृत्य करते हुए को अपनी जातिकुल का विचार रहेगा अत. सबसे पहिला जातिवान् कुलवान् हो उसको ही आचार्य बनावे—

३—लज्जावान्—लोकीक एवं लोकोतर लज्जावान हो लज्जावान् अनुचित कार्य नहीं करेगा

४ - बलवान्—शरीर आरोग्य—तथा उत्साह और साहसीकता हो।

५—रूपवान्-शरीर की आकृति शोभनीक एवं सर्वांगसुन्दराकारहो

६—ज्ञानवान्–वर्तमान साहित्य यानि स्व-परमत के शास्त्रों का ज्ञाता है उत्पतिकादि बुद्धि हो कि पुच्छे हुए प्रश्नों के योग्य उत्तर शीघ्रता से दे सके

७—दर्शनवान्–षट्दर्शन के ज्ञाता और तत्त्वोंपर पूर्णश्रद्धा

८—चारित्रवान्–निरतिचार यानि अखण्ड चारित्रकों पालन करे

९—तेजस्वी–प्रताप नामकर्म का उदय हो कि आप शान्त होने पर भी दूसरों पर प्रभाव पड़े

१०—वचनस्वी—माघुर्यतादि वचन में रसहो जनता को प्रिय लगे वचन निः सफल न हो

११—ओजस्वी—क्रान्तिकारी स्पष्ट और प्रभावोत्पादक वचन हो।

१२—यशस्वी–यश नामकर्म का उदय हो कि प्रत्येककार्य में-यश मिले

१३—अप्रतिबद्ध–रागद्वेषरूप पक्षपात रहित निस्पृही-ममत्व मुक्त हो

१४—उदारवृति–ज्ञानदान करने में एवं साधु समुदाय कानिर्वाह करने में उदार हो

१५—धैर्य हो गाभिर्य हो विचारज्ञहो दीर्घदर्शी हो सहनशीलताहो।

इत्यादि गुण वाले को ही आचार्य पद दिया जा सकता है सामान साधुमें उपरोक्त गुण हो या उनसे न्यून हो तब भी वे अपना कल्याण कर सकता है क्योंकि उसके लिये इतनी जुम्मावारी नहीं है कि जितनी आचार्य के लिये होती है। अब आचार्य की आठ सम्प्रदाय बतलाते हैं कि आचार्य के अवश्य होनी चाहिये

१—आचार सम्प्रदाय—जिसके चार भेद हैं

१—पांच आचार "ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार तपाचार और वीर्याचार" पांच महाव्रत, पाच समिति, तीनगुप्ति, सतरह प्रकार सयम, बारह प्रकार तप दश प्रकार यति धर्म, आदि आचार में दृढ़ प्रतिज्ञा वाला हो और धारणा सारणा वारणा चोयणा प्रतिचोयणा करके चतुर्विध सघ को अच्छे आचार में चलावे अर्थात् आप अच्छा आचारी हो तब ही संघ को चला सके।

२—अष्ट प्रकार का मद और तीन प्रकार का गर्व रहीत हो अर्थात् बहुत लोग मानने से अहकार नहीं करे और न मानने से दीनता न लावे। यह भी आचार्य के खास आचार है।

३—अप्रतिबद्ध जैसे द्रव्य से वस्त्र पात्रादि उपकरण, क्षेत्र से ग्राम नगर देश और उपाश्रयादि मकान, काल से शीतोष्णादि और भाव से राग द्वेष इनका प्रतिबन्ध नहीं रखे।

४—चचलता, चपलता, अधैर्यता न रखे पर स्थिर चित से इन्द्रियोंका दमन एव त्यागवृति रक्खे।

२—सूत्र सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—बहुशास्त्रों के ज्ञाता-क्रमशा-पढ़ा हो-गुरु गम्यता से पढा हो। अपने शिष्यों को भी क्रमश सूत्र पढ़ावें।

४—ज्ञान वादी किस विषय का शास्त्रार्थ करना चाहता है मेरे में कितना ज्ञान है। यह समवाद है या विताड़ा वाद है। इत्यादि विचार पूर्वक ही शास्त्रार्थ करे।

८—संग्रह सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—क्षेत्रसग्रह-वृद्ध ग्लानी रोगी तपस्वी आदि साधुओं के लिये ऐसे क्षेत्र ध्यानमें रखे कि जहाँ स्थिरवास करने से साधुओं की संयमयात्रा सुख पूर्वक व्यतित हो और गृहस्थों को भी लाभ मिले। कारण आचार्य गच्छ के नायक होते हैं अत साधुओं को योग्य क्षेत्र में भेजें।

२—शय्या संस्तार संग्रह-आचार्यश्री के दर्शनार्थ दूरदूर से आने वाले मुनियों के लिये मकान पाट पा ले घास तृण वगैरह ध्यान में रखे कि आगुन्तुओं का स्वागत करने में तकलीफ उठानी नहीं पड़े। अतः पहिले से ही इस प्रकार काध्यान रखना आचार्य का कर्तव्य है।

३—ज्ञानसग्रह-नया नया ज्ञान का सग्रह करे क्योंकि शासनका आधार ज्ञान पर ही रहता है।

४—शिष्यसग्रह-विनयशील विद्वान शासन का उद्योत करने वाले शिष्यों का सग्रह करें

इत्यादि आचार्यपद के विषय में सूरिजी ने बहुत ही विस्तार से कहा कि सुयोग्याचार्य होने से ही शासन की प्रभावना एव धर्म का उद्योत होता है तीर्थङ्कर भगवान् अपने शासन की आदि में गणधर स्थापन करते हैं वे भी आचार्य ही थे तीर्थङ्करों के मोक्षपधार जाने के पश्चात् शासन आचार्य ही चलाते हैं। गच्छ नायक आचार्य एक ही होना चाहिये कि संघ का सगठन बल बना रहै हाँ किसी दूर प्रान्तों में विहार करना हो तो उपाचार्य बनासकते है पर गच्छ नायक आचार्य तो एक ही होना चाहिये। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में आज पर्यन्त एक ही आचार्य होता आया है हाँ आचार्यरत्नप्रभसूरि के समय आपके गुरुभाई कनकप्रभसूरि को कोरट संघ ने आचार्य बना दिया पर उस समय जैन श्रमणों में अहपद का जन्म नहीं हुआ था कि रत्नप्रभसूरि ने सुना कि कोरंट सघने कनकप्रभ को आचार्य बनादिया तब वे स्वय चलकर कोरटपुर गये परन्तु कनकप्रभसूरि भी इतने विनय वान् थे कि अपना आचार्य पद रत्नप्रभसूरि के चरणों में रख कर कहा कि मैं तो आपका अनुचर हूँ हमारे शिरपरनायक तो आप ही आचार्य हैं अहाह यह कैस विनय विवेक और शिष्टाचार। पर रत्नप्रभसूरि की उदारता भी कम नहीं थी वे अपने हाथों स कनकप्रभ को आचार्य बना कर कोरंट सघ का एव कनकप्रभ का मान रखा यही कारण है कि जिस बात को आज आठसौ से भी अधिक वर्ष होगया कि केवल गच्छ नाम दो कहलाया जाता है। पर वास्तव में वे एकही हैं दोनों गच्छ के आचार्य एवं श्रमण सघ मिलजुल कर रहते हैं एव शासन की सेवा और धर्म प्रचार करते हैं मरुधर में इतनी सभायें हुई पर एक भी सभा का इतिहास यह नहीं कहता है कि जहाँ कोरट गच्छ के आचार्य एव मुनिवर्ग सभामें आकर शामिल नहीं हुए हो ? साधुओं के बारह सभोग दोनोंगच्छ के साधुओं में परम्परा स चला आरहा है। यदि भविष्य में भी एक ही नहीं पर सब गच्छों के नायक इसी प्रकार चलता रहेगा तो वे अपनी आत्मा के साथ अनेक भव्य जीवों का कल्याण करने में सफलता प्राप्त कर सकेगा। इत्यादि सूरिजी महाराज का व्याख्यान श्रोताओं को बड़ाही हृदयग्राही हुआ।

एक समय देवी सच्चायिका सूरिजी को वन्दन करने के लिये आई थी सूरिजी ने कहा देवीजी अब मेरी वृद्धावस्था है आयुष्य का विश्वास नहीं है मैं मेरे पट्टपर आचार्य बनाना चाहता हूँ। मेरे साधुओं में

और जलती हुई चिता पर पुष्पों की वरसात हुई और आकाश में यह उद्घोषणाहुई कि अब इस भरतक्षेत्र में आचार्य रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि जैसे आचार्य नहीं होंगा। जिसको सुनकर श्रीसंघ के शोक में और भी वृद्धि हुई बाद श्रीसंघ चलकर आचार्य ककसूरि के पास आये और सूरिजी निरानन्द होने हुए भी श्रीसघ कों शान्ति का उपदेश देकर मगलिक सुनाया।

आचार्य यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक धर्म प्रचारी एव जिन शासन के एक सुदृढ़ स्तम्भ समान आचार्य हुए है आप अपने सोलह वर्ष के शासन में मरुधर मेदपाट आवति बुलेदखण्ड मत्स्य शूरसेन उड़ीसा बगाल विहार कुरू पचाल सिन्धु कच्छ सौराष्ट्र कोकण लाटादि प्रान्तों में विहार कर अनेक प्रकार से उपकार किये कइ स्थानों पर विधर्मियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजयपता का फहराई कई विषयों पर अनेक ग्रन्थों का निर्माण कर जैन धर्म को चिर स्थायी बनाया कइ नर-नारियों को दीक्षा देकर एवं कइएकों के मांस मदिरादि दुर्व्यसन छोड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित किये कइ मन्दिर मूत्तियों की प्रतिष्टा करवाई कइ तीर्थों के सघ निकला कर यात्राए की इत्यादि पट्टावलियों वशावलियों आदि में विस्तार से उल्लेख मिलते है तथापि मैं यहां पर कतीपय कार्यों की केवल नामावली ही लिख देता हूँ।

आचार्य श्री के शासन समय भावुकों की दीक्षा--

१—उपकेशपुर के भूरि गौत्रीय शाह नानगदि ने सूरि के पास दीक्षा ली
२—माडव्यपुर के श्रेष्टि ,, ,, दूघा ने ,, ,,
३—सुरपुर के डिङ्क ,, ,, आदू ने ,, ,,
४—शखपुर के ब्राह्मण ,, ,, शिवदेव ने ,, ,,
५-- खटकूम्प के राव ,, ,, मोत्रा ने ,, ,,
६ आसिका के अदित्य० ,, ,, शोभण ने ,, ,,
७—हालोड़ी के श्रेष्टि गौत्र ,, ,, गुणराज ने ,, ,,
८—हर्षपुर के भाद्र गौत्रीय शाह भाखर ने ,, ,,
९—नागपुर के बलाह गौत्रीय ,, भीमा ने ,, ,,
१०—मुग्धपुर के चरड ,, ,, नोंधण ने ,, ,,
११—चापट के चिंचट ,, ,, चाहड़ ने ,, ,,
१२—आघाट के लुग ,, ,, चणाटे ने ,, ,,
१३--नारायणपुर के कर्णाट ,, फागु ने ,, ,,
१४—बीनाड़ के घोहरा ,, ,, पारस ने ,, ,,
१५—दशपुर के मल्ल ,, ,, पद्मा ने ,, ,,
१६—डूगरील के समभट्ट ,, धन्ना ने ,, ,,
१७—मथुरा के बाप्पनाग ,, धोकल ने ,, ,,
१८—मरजड़ा के लघुश्रेष्टि ,, पर्वत ने ,, ,,
१९—गारोली के वीरहट गौत्रीय ,, खेतसी ने ,, ,,

इनके अलावा भी कई महानुभावों ने अपनी चंचल लक्ष्मी को जनकल्याणार्थ व्यय करके जैन शासन की प्रभावना के साथ अपना कल्याण साधन किया ।

आचार्यश्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं—

१—धनपुर में श्रेष्टि गो०	शाह खूमा ने	भ० पार्श्व०	म० प्र०
२—हर्षपुर में बलाह गो०	,, कल्हण ने	,,	,,
३—नागपुर में भाद्र गो०	,, करमण ने	महावीर	,,
४—जानपुर में चिंचट गो०	,, फूवा ने	,,	,,
५—देवपट्टन में चरड गो०	,, पद्मा ने	,,	,,
६—कुकुरवाडा में भूरि गो०	,, राणा ने	शांति	,,
७—गटवाल में कनोजिया०	,, नारा ने	,,	,,
८—गुगाणिया में कु ट गो०	,, रावल ने	आदीश्वर	,,
९—चन्द्रावती में आदित्य ना०	,, हाप्पा ने	नेमिनाथ	,,
१०—टेलीपुर में बाप्पनाग०	,, राजा ने	पार्श्व	,,
११—मारोटकोट में श्रेष्टि गो०	,, माला ने	,,	,,
१२—हापड़ा में लघु श्रेष्टि गो०	,, वागा ने	,,	,,
१३—कोमी में चरडा गो०	,, बाप्पा ने	विमल०	,,
१४—भोजपुर में मल्ल गो०	,, भैंसा ने	महावीर	,,
१५—राममण में लुग गौत्रीय	,, गेंदा ने	,,	
१६—आमानगरी में प्राग्वटवन्शी	,, करर्पि ने	,,	
१७—करकली में ,,	,, कांभण ने	,,	
१८—सेखरवाड़ा में भाद्र गौत्रीय	,, गोसल ने	पार्श्वनाथ	
१९—फेफावती में श्रीमाल वंशी	,, लाखण ने	,,	
२०—हर्षपुर में सुचवि गौत्रीय	,, फरहल ने	,,	
२१—मेदनीपुर में कुलभद्र ,,	,, अवड़ ने	महावीर	
२२—मथुरा में प्राग्वटवशी ,,	,, आसदेव ने	,,	

इनके अलावा दूसरे श्रावकों ने बहुत से मन्दिरों की एव घर देरासर की पतिष्टाए करवा कर कल्याणकारी पुन्योपार्जन किया था। जिन्हों का वशावलियों में खूब विस्तार से वर्णन है ।

पट्ट बतीसवें यक्षदेव गुरु, त्यागी वैरागी पुरे थे ।
वीर गंभिर उदार महा, फिर तप तपने में शूरे थे ॥
धर्म अन्ध म्लेच्छ मन्दिरों पर दुष्ट आक्रमण करते थे ।
उनके सामने कटिबद्ध हो, प्रण से रक्षा करते थे ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के ३२ वें पट्ट पर आचार्य यक्षदेवसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुए ।

३३—आचार्य कक्कसूरि (षष्टम्)

आचार्यस्तु स कक्कसूरिर भवदादित्य नागा न्वये ।
शाखा चोर डिया विपोऽप्य इस्तो योगासन कर्मन ॥
विद्योपेन सम स्वरोदय विचारे चापि नामीभ्मन ।
यान्वं पर्वत मार्बुदं तु मनता संघं सिषेवे अपात् ॥
नाम्नो ऽ स्यैवच सोमशार निगद रिछमः स्सोगच्छके ।
एकाचार्य मर्मु तु मागतवती देवी सुमचायिका ॥
सायाता कुकुरा मुने रनुरथा च्छारणा इकुरा पृथक् ।
प्ररपचा गमनं तु कार्य करणं देव्या स्वयं स्वीकृतम् ॥

आचार्य श्रीकक्कसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रतिभा शाली सुविहित शिरोमणि अनेक अलौकिक विद्या एवं लब्धियों के आगार योगासन स्वरोदय के मर्मज्ञ, तेजस्वी, ओजस्वी, वर्चस्वी, तपस्वी इत्यादि अनेक शुभ गुणों से विभूषित जैनधर्म के एक चमकता हुआ सितारा सदृश आचार्य हुये थे देवी सच्चायिका व चक्रेश्वरी तथा विजया पद्मावती अम्बिका मातुला लक्ष्मी और सरस्वती देवियों और कई देवता आपके गुणों से आकर्षित होकर दर्शनार्थ एवं सेवा में आते रहते थे। आपकी प्रतिभा का प्रभाव जनता पर अच्छा पड़ता था धर्मप्रचार करने में आप सिद्धहस्त थे अनेक मांस मदिरा सेवियों को आपने जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की वृद्धि की थी आपका जीवन जनता के कल्याण के लिये हुआ था जिसको श्रवण मात्र से ही जीवों का कल्याण होता है।

पट्टावली कारों ने आपका जीवन विस्तार से लिखा है पर यहाँ तो संक्षिप्त से ही लिखा जाता है एक समय शिवपुरी नाम की एक धन्यशालीन नगरी थी जिसको राजा जयसेन के लघु पुत्र शिव ने बसाई थी और प्रारम्भ में वहाँ राजाप्रजा सब जैनधर्मोपासक ही थे उसी नगरी में चारित्रनाग गोत्रीय एवं कोरंटिया राजा के कीर्तिमान मंत्री यशोदित्य नाम का एक प्रसिद्ध पुरुष बसता था आपके गृहदेवी का नाम सेना था आपका गृह जीवन सुख एवं शान्ति में व्यतीत होता था आपके घर में विपुल सम्पत्ति थी एवं लक्ष्मी की पूर्ण कृपा थी परन्तु आपके सन्तान न होने से सेठानी को कभी कभी आर्तध्यान सताया करता था एक दिन सेठानी ने अपने पतिदेव से अर्ज की कि अपने घर में इतनी सम्पत्ति है पर इसका संभालने वाला कौन ?

सेठजी ने कहाँ यह तो पूर्व जन्म के किये हुये कर्म है इसके लिये मनुष्य क्या कर सकते है।

सेठानी—हाँ पूर्व जन्म के कर्म तो है पर उद्यम करना भी तो मनुष्य का कर्तव्य है ?

सेठजी—आपही बतलाइये इसका क्या उपाय किया जाय।

सेठानी—मैं देखती हूँ कि लोग देव देवियों को मनाते है और कई लोग अपनी आशा को पूर्ण भी करते है आपको भी इस प्रकार करना चाहिये ।

सेठजी—आप हमेशाँ व्याख्यान सुनते हो सिवाय पूर्व कर्मों के कुच्छ नहीं हो सकता है । यदि देवदेवी कुच्छ दे सकते हो तो ससार नें कोई दु खी रह ही नहीं सके ? पर जो होता है वह सब पूर्व कर्मों के अनुसार ही होता है ।

सेठानी—हाँ कर्म तो है ही पर केवल कर्मों पर ही बैठ जाने से कार्य नहीं बनता है पर साथ में उद्यम भी तो करना चाहिये ?

सेठजी—मैंने अभी चतुर्थव्रत नहीं लिया है जो तकदीर में लिखा होगा वो होजायगा ।

सेठानी—पर देव देवियों कों मनाना भी तो एक प्रकार का उद्यम ही है ।

सेठजी—सेठानीजी देव देवी खुद नि सन्तान है उनके पास बेटा बेटी जमा नहीं पड़ा है कि मानता करने वालों को देंदे ।

सेठानी—मैंने कई लोगों कों देखा है कि देवताओं ने भक्त लोगों की आशा पूर्ण की है ।

सेठजी—मैं तो एक अरिहन्त देव कों ही देव समझता हूँ और उनके सिवाय किसी को भी शिर नहीं झुकाता हूँ ।

सेठानी—कहाँ जाता है कि अरिहन्त देव सर्व कार्य सिद्ध करने वाले है तो आप उनसे ही प्रार्थना क्यों नहीं करते हों ?

सेठजी—सेठानीजी आपने मन्दिर उपाश्रय जा जा कर वहां के पत्थर घीस दिये है पर अभी तक आप जैन धर्म के मर्म को नहीं समझे है । वीतराग देव की उपासना केवल जन्म मरण मिटा कर मोक्ष के लिये ही की जाति है । फिर भी वीतराग तो वीतराग ही है वे न कुच्छ देते है और न कुच्छ लेते है उनकी उपासना से अपने चित की विशुद्धी होती है, जिनसे कर्मों की निर्जरा होकर मोक्षको प्राप्ती होती है यदि कोई धर्म का मर्म न जान ने वाला वीतराग से धन पुत्र मांगता है उसे लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है इस बात को आप अच्छी तरह से समझ कर कभी भूल चूक से धर्म करनी करके लौकीक सुख की याचना तो क्या पर भावना तक भी नहीं करना ।

सेठानी—खैर वीतराग नहीं तो दूसरे भी तो अधिष्टायकादि बहुत देव देवियां है ।

सेठजी—मैंने कह दिया था कि विधर्मी देव देवियों को शिर झुकाने में मिथ्यात्व लगता है उस मिथ्यात्व से ससार में भ्रमन करना पड़ता है जिसको न तो पति बचा सकता है न पत्नि और न पुत्रादी कोई भी नहीं बचा सकता है अत आप कर्मों पर विश्वास कर सतोष ही रखे ।

सेठानी—परन्तु पुत्र बिना पिच्छे नाम कौन रखेगा । और इस सम्पति का क्या होगा ?

सेठजी—नाम है उसका एक दिन नाश भी है सेठानी जी । अपन तो किस गीनती मे है पर बड़े बड़े अवतारी पुरुष हुए है उनका भी वश नही रहा है यदि नाम रखना हो तो कोई ऐसा काम करों कि जिससे नाम अमर हो जाय और इसके लिये या तो भींतड़ा मन्दिर या गिवड़ा (ग्रन्थ) हैं । इन दो बातों से ही नाम रह सकता है ।

सेठानी—ठीक है मन्दिर बनाना और ग्रन्थ लिखाना ये तो अपने स्वाधीनता के काम है चाहे आज

ही प्रारम्भ कर दीजिये। परन्तु मेरे दिल में दुर्ध्यान आया करता है इसके लिये क्या करना चाहिये। आप नहीं तो मुझे आज्ञा दे मैं किसी देव देवी की आराधना कर आशा को पूर्ण करूँ ?

सेठजी—मैं जिसको हलाहल जहर (विष) समझता हूँ भला आप मेरे आत्मीय सज्जन है तो आपको इस मिथ्यात्व कर्म की आज्ञा कैसे दे सकता हूँ। आप इस बात पर निश्चय कर लीजिये कि बिना तकदीर में लिखे देवी देवता हम भी दे नहीं सकते है हां इधर तो कार्य बनने वाला हो और उधर देवादि का कहना हो तो कार्य बन सके और एक तो ऐसा कार्य बनगया हो तो मिथ्या श्रद्धा की मिथ्यात्व हो जाता है परन्तु निश्चय तो यही बात है कि पूर्व संचित कर्मानुसार ही कार्य होता हैं दूसरा जैनधर्म का यह मर्म है कि एक पूर्व जन्म की अन्तराय दूसरा मिथ्यात्व का सेवन इसमे अधिक कर्म बन्ध का कारण होता हैं यदि अन्तरायोदय के समय धर्म कार्य विशेष किया जाय तो स्वयं कर्मों की निर्जरा होकर वस्तु की प्राप्ति हो सकती है अतः आपको तो धर्म करनी विशेष करनी चाहिये। आप नाराज न हो जैसे अच्छा खानदान की स्त्री अपने पति को छोड़ कर घर घर में पति करती फिरे तो क्या उसकी शोभा पड़ सकती है। इसी प्रकार एक वीतराग देव को छोड़ कर अन्य देव देवियों की मान्यता करनेसे या सिर झुकाने से क्या इस लोक में और परलोक में भला हो सकता है ?

सेठानी—खैर मैं तो संतोष कर लूंगी पर आप से एक अर्ज है कि आप दूसरी शादी करलीजिये कि शायद उसके पुत्र हो जायगा तो भी पीछे नाम तो रह ही जायगा ?

सेठजी—वाह-वाह सेठानी जी ! आपने ठीक लगाया ही क्या यह भी कभी हो सकता है कि मैं मेरा हृदय एक को दे चुका हूँ फिर क्या कभी दूसरी को दिया जा सकता है जैसे स्त्री को पतिव्रत धर्म पालने का अधिकार है वैसे ही पति को भी पत्नीव्रत पालने का अधिकार है। और ऐसा होना ही चाहिये

सेठानी—स्त्रियों के तो एक ही पति है पर पुरुष तो अनेक पत्नियाँ कर सकते हैं ऐसा बहुत बार शास्त्रों में आता है तो आपको दूसरी शादी करने में क्या हर्ज है।

सेठजी—हाँ शास्त्रों में आता है और आजकल सुनते भी हैं इसके लिये मैं इन्कार नहीं करता हूँ पर इनसाफी कानून से देखा जाय तो यह पक्षपात के अलावा कुछ नहीं है जब स्त्रियों के लिये एक पति का नियम है तो पुरुषों के लिये भी ऐसा ही होना चाहिये अगर पुरुष एक से अधिक पत्नि करता है वह सरासर अन्याय करता हैं क्योंकि एक पुरुष पांच स्त्रियों से शादी करता है वह चार पुरुषों को कुंवारा रखता है। इससे संसार का पतन और व्यभिचार का प्रचार बढ़ता है। दूसरे संसार में मनुष्य पुरुषों की ही रह की उन्होंने स्वार्थ के वश मन मनि कानून बना दिये। यदि स्त्रियों की मनुष्य रहती तो क्या स्त्रियां यह कानून न बना देती कि स्त्रियां अनेक पति बना सकती है। पर पुरुष एक पत्नि से अधिक न बना सके या पुरुष मर जाने पर स्त्री एक दो बार विवाह कर सके पर पुरुष के पत्नि मर जाने पर वह तमाम जिन्दगी विधुर ही रहे पर दूसरी शादी नहीं कर सके जैसे पुरुषों ने स्त्रियों के लिये नियम बनाये हैं। सेठानी जी ! जैसे तो मेरा हृदय एक आपको दे चूका हूँ अब इस भव में तो दूसरी स्त्रियों को हर्गिज नहीं दिया जा सके सकते। आप सोचिये कि शायद कोई पुरुष अपना व्रत भंग कर दूसरी शादी कर भी ले तो क्या पुत्र होना

ऊसके हाथ की बात है पूर्व भव की अन्तराय हो तो एक क्यों पर दस पत्नियें कर लेने फिर भी पुत्र नहीं होता है। फिर व्रत भंग करने में क्या लाभ है ?

सेठानी—मैंने तो आज पर्यन्त ऐसा कोई पुरुष नहीं देखा है कि इस प्रकार का पत्निव्रत धर्म पालन किया एव करता हो जैसे आप फरमाते हो ?

सेठजी—आपने व्याख्यान में युगल मनुष्यों का अधिकार नहीं सुना है कि वे अपने दीर्घ जीवन और वज्रऋषभनाराज सहनन मे भी एक पत्नि के अलावा दूसरी पत्नी नहीं की थी। वे ही क्यों पर कर्म भूमि में भी ऐसे बहुत से पुरुष हुए हैं देखिये-मैंने सुना है एक सेठ दिसावर जाने का विचार किया तो उसकी पत्नि ने कहाकि अच्छा आप वापिस कब आवेंगे ? सेठजी ने कहा कि मैं तीन वर्ष के बाद आऊगा। सेठानी ने कहा कि मेरी युवावस्था है यदि तीन वर्ष के बाद भी आप नहीं पधारों तो मैं क्या करूं यह बतला जाओ ? सेठजी ने कहा यदि मैं तीन वर्ष तक में नहीं आऊँ तो नगर से दो माईल टटी जाने वाले के पास अपनी काम वासना शान्त कर सकती है। बस सेठजी दिसावर चले गये पर किसी जरूरी कार्य एव लोभ दसा के कारण सेठजी तीन वर्ष के बाद भी वापिस नहीं आये। सेठानी ने तीन वर्ष तो ठीकानि काल दिये क्योंकि उसके पति ने वायदा किया था। सेठानी ने अपनी दासी से कहा कि यदि कोई नगर से दो माईल भर दूरी टटी जाने वाला हो उसको अपने यहा ले आना। सेठानी ने स्नान मज्जनादि सोलह शृगार किया शय्या पलंगादि सब सजावट अच्छी तरह से की इधर दासी एक सेठ जो दूर जगल जाने वाला था उसकों बुलाकर ले आई सेठजी को इस बात की मालुम नहीं थी उन्होंने सोचा कि सेठजी बहुत दिनों से दिसावर गये हैं तो कोई पत्र लिखने वगैरह का काम होगा वे चले आये परन्तु मकान पर जाकर वहाँ का रंगढग देखा तो उन्होंने सोचा की मेरे तो पत्निव्रत है। सेठ ने अपने हाथ में जो मिट्टी का लोटा था उसको भूमि पर डाला कि वह फूट गया जिसको देख सेठजी बहुत पश्चाताप किया। कामातुर सेठानी ने कहा सेठजी इस मिट्टी का बरतन के लिये इतना बड़ा पश्चाताप क्यों करते हो मैं आपको चान्दी या सोना का लोटा देदूगी आप अन्दर पधारिये। सेठजी ने कहा कि मैं मिट्टी का बरतन के लिये ये दु ख नहीं करता हूँ पर मेरा गुप्तप्रदेश मेरी पत्नि या इस मिट्टी का लोटा ने ही देखा है यह फूट गया तब दूसरे को दीखाना पड़ेगा इस बात का मुझे बड़ा भारी दु ख एव लज्जाआति है। सेठानी ने सुनते ही विचार किया कि एक मर्द है वह भी अपना गुँज स्थान निर्जीव बरतन को दीखाने में इतनी लज्जा एवं दु ख करता है तो मैं एक कुलीनस्त्री मेरा गुँझ प्रदेश दूसरे पुरुष को कैसे दीखा सकती हूँ। बस सेठानी की अकल ठीकाने आगई और सेठजी को अपना पिता बना कर जाने की रजा दी। इस उदाहरण से आप ठीक समझ सकते हो कि ससार में पुरुष भी पत्निव्रत धर्म के पालने वाले होते है प्रिय सेठानी जी। आपतो विद्यमान है परन्तु कभी आपका देहान्त भी हो जाय तो मैं मन से भी दूसरी पत्नि की इच्छा नहीं करूँगा। सेठानी सेठजी की दृढ़ता देख बहुत खुशी हुई। और सेठजी प्रति उनका स्नेह और भी बढ़ गया। सेठानी ने कहा—पतिदेव आपके कहने से मुझे अच्छी तरह से सतोष हो गया है और मैं समझ भी गई हूँ कि पूर्व सचित कर्मों की अन्तराय है वहाँ तक कितने ही प्रयत्न करे कुछ भी नहीं होगा। खैर सेठानी ने सेठजी को कहा कि जो पिछे नाम रहने के लिए दो कार्य बतलाये है वे तो प्रारम्भ कर दीजिये कि इसके अन्दर थोड़ी बहुत लक्ष्मी लगाकर भवान्तर के

लिये जो कुछ पुन्य संचय किया जाय । और आपके कथनानुसार पिछे नाम भी रह जायगा बस । मैं इतना से ही संतोष करलूंगी —

सेठजी—बहुत खुशी की बात है मैं आज ही इस बात का प्रबन्ध कर दूंगा । मेरे दिल में मन्दिर बनाने की बहुत दिनों से अभिलाषा थी पर विचार हो विचार में इतने दिन निकल गये फिर भी मैं आपका उपकार समझता हूँ कि आपने मुझे इस काम में सहायता दी अर्थात् प्रेरणा की है बस । सेठजी ने अपने अनुचरों द्वारा शिल्प शास्त्र के जानकार कारीगरों को बुला कर कहा कि एक अच्छा मन्दिर का नकशा कर के बतलाओ मुझे एक अच्छा मन्दिर बनवाना है । कारीगरों ने कहा आपको द्रव्य कितना खर्च करना है ? सेठजी ने कहाँ द्रव्य का ख्याल नहीं है मन्दिर अच्छा से अच्छा बनना चाहिये बस । शिल्पज्ञ एकत्र होकर चौरासी देहरी वाले विशाल मन्दिर का नकशा बना कर सेठजी के सामने रखा जिसको देख कर सेठजी खुश हो गये अच्छा मुहूर्त में मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया । इधर ज्यों ज्यों मुनियों का पधारना होता गया त्यों-त्यों आगम लिखाना भी शुरू कर दिया एवं दोनों शुभ कार्य खूब वेग से चल रहे थे जिससे सेठ सेठानी दीलखुली से एवं खुल्ले हाथ द्रव्य व्ययकर रहे थे । नगरी में सेठजी की अच्छी प्रशंसा भी हो रही थी ।

एक समय सेठानी मैना अपने रंगमहल में सोरही थी अर्द्ध निद्रा में कुछ निद्रा कुछ जागृत अवस्थामें स्वप्न के अन्दर एक सिंह मुंहसे जिसका निकलता हुआ देखा । स्वप्नसे पहले सावधान होकर अपने पतिदेव के पास आई और अपने स्वप्न की बात सुनाई जिसपर सेठजी बड़ी खुशी मनाते हुए कहा सेठानीजी आपके मनोरथ सफल होगया है इस शुभ स्वप्न से पाया जाता है कि कोई भाग्यशाली जीव आपके गर्भ में अवतीर्ण हुआ है बस फिर क्या सेठ सेठानी के हर्ष का पार नहीं था मना ! जिस वस्तु की अत्याधिक उत्कण्ठा हो और अनायास वह वस्तु मिलजाय फिर तो हर्ष का कहना ही क्या है सुबह होते ही सेठजी ने सब मन्दिरों में स्नात्र महोत्सव किया–करवाया । ज्यों ज्यों गर्भ वृद्धि पाता गया त्यों त्यों सेठानी को अच्छे अच्छे दोहले उत्पन्न होता गया अर्थात् परमेश्वर की पूजा करना गुरुमहाराज का व्याख्यान सुनना सुपात्रमें दान साधर्मी भाई और बहिनों को घर घर बुलाकर मीष्टान्न से सत्कार करना गरीब अनाथों को सहायता और अनुकम्पादि जिसको सेठजी यथोचित सम्मान पूर्वक करता रहा जब गर्भ के दिन पूरे हुए तो शुभ रात्रि में सेठानी ने पुत्र रत्नको जन्म दिया जिसकी खबर मिलते ही सेठजी ने मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव व याचकों को दान सज्जनों को सन्मान दिया और महोत्सव पूर्वक पुत्र का नाम 'शोभन' रक्खा । इधर तो मन्दिरजी का काम खूब जाम से चलता जारहा था उधर शोभन लालन पालन से वृद्धि पाने लगा । सेठजी ने भगवान महावीर की सर्वधातुमय १०१ अंगुल प्रमाण की मूर्ति बनाई जिसके नेत्रों के स्थान दो माणिये लगवाई जाकि रात्रि को दिन बना देती थी तथा एक पार्श्वनाथ की मूर्ति पन्ना की चारीचार की हीरा की और शान्तिनाथ की माणक की मूर्तियें बनाई दूसरी भी पाषाण की मूर्तियों बनाई इस मन्दिर का काम में सोलह वर्ष लगगये इस सोलह वर्ष में माता मैना ने क्रमशः सात पुत्रों को जन्म देकर अपने जीवन को कृतार्थ बना दिया था । भर का नसीब किसने देखा है एक दिन वह था कि माता मैना पुत्र के लिये तरस रही थी आज सेठानी के सामने देव कुंवर के सदृश सात पुत्र खेल रहे हैं । अब तो सेठ सेठजी की भावना मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करवाने की ओर लग गई ।

सेठ कुंवर शोभन एक समय आबुदा चला गया था वहाँपर आचार्य यक्षदेव सूरि का दर्शन किये

सूरिजी ने शोभन की भाग्य रेखा देख उसको उपदेश दिया शोभन ने सूरिजी के उपदेश को शिरोधार्य कर शिवपुरि पधारने की प्रार्थना की सूरिजीने शोभन की विनती स्वीकार करली और अपनी योग साधना समाप्त होने के पश्चात् विहार कर क्रमश शिवपुरी पधारे वहा के श्री सघ एव मंत्री यशोदित्य एव शोभन ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत एव नगर प्रवेश का बड़ा भारी महोत्सव किया सूरिजी ने महामगलीक एव सारगर्भित देशनादी बाद सभा विसर्ज्जन हुई। आज तो शिवपुरी के घर-घरमें आनद एव हर्ष मनाया जा रहा है कारण गुरुमहाराज का पधारने के अलावा आनन्द ही क्या होता है।

आचार्य श्री का व्याख्यान हमेशा होताथा जिसमें ससार की असारता, लक्ष्मीकी चंचलता, कुटम्बकी स्वार्थता, शरीरकी क्षण भगुरता और आयुष्य की अस्थिरता पर अच्छा प्रकाश डाला जाता था आत्म कल्याण के लिये सब से बढिया साधन दीक्षा लेना अगर गृहस्थावास में रहकर कल्याण करने वालों के लिये यो तो पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य सामायिक प्रतिक्रमण उपवास व्रत पौषध वगैरह दैनिक क्रिया है पर विशेषता साधन सामग्री के होते हुए न्यायोपार्जित द्रव्यसे त्रिलोक्यपूजनीय तीर्थङ्करदेवों का मन्दिर बनाना चतुर्विध सघ को तीर्थों की यात्रा करने को सघ निकालना और महा प्रभाविक पचमाङ्ग भगवतीजी सूत्र का महोत्सव कर श्रीसघ को सूत्र सुनाना इत्यादि पुन्यकार्य करके दीक्षा ले तो सोना और सुगन्ध वाली कहावत चरतार्थ हो जाती है इत्यादि सूरिजी ने बड़ाही हृदयग्राही उपदेश दिया जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा क्यों नहीं हलुकर्मी जीवों के लिये तो केवल निमित्त कारण की ही जरूरत है

मत्री यशोदित्य और सेठानी मैना के मन्दिर की प्रतिष्टा करवानी ही थी उन्होंने सोचा की सूरिजी का व्याख्यान खास अपने लिये ही हुआ है तब शोभन के दिल में त्यागकी तरगें उठ रही थी उसने सोचा की आजका व्याख्यान खास मेरे लिये ही है एक समय मंत्री यशोदित्य सूरिजी के पास आया और प्रार्थना की कि पूज्यवर। मन्दिर तैयार हो गया है कृपा कर इसके मुहूर्त का निर्णय कर एव प्रतिष्ठा करवाकर हम लोगों को कृतार्थ बनावें। सूरिजी ने कहा यशोदित्य तुं बड़ा ही भाग्यशाली है। मन्दिर बनाने का शास्त्रों में बड़ा भारी पुन्य बतलाया है कारण एक पुन्यवान के बनाये मन्दिर से अनेक भावुक अनेक वर्षों तक अपनी आत्माका कल्याण कर सकते हैं। जब मन्दिर तैयार हो गया है तो प्रतिष्ठामें बिलकुल विलम्ब नहीं होना चाहिये। मुहूर्त के लिये मैं आजही निर्णय करदूंगा। मत्रीश्वर तो वन्दन कर चलागया। पर बादमें शोभन आया सूरिजी को वन्दन कर अर्ज की कि पूज्यवर। आपने व्याख्यान में फरमाया वह सोलह आना सत्य है मेरा विचार निश्चय हो गया है कि मैं आपके चरणार्विन्द में दीक्ष्य लूंगा। सूरिजी ने कहा शोभन मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री मिलने का यही सार है पूर्व जमाना में बड़े बड़े चक्रवर्तियोंने राजऋद्धि पर लात मार कर भगवती दीक्षा की शरण ली तब ही जाकर उनका उद्धार हुआ था यदि तुम्हारी भावना है तो विलम्ब नहीं करना। शोभन ने गुरु महाराज के वचन को 'तथाऽस्तु' कहकर अपने घर पर आया और अपने मातापिता को स्पष्टशब्दों में कह दिया कि मेरी इच्छा सूरिजी के पास दीक्षा लेने की है अत. प्रतिष्ठा के साथ मेरी दीक्षा भी हो जानी चाहिये। पुत्र के वचन सुनते ही माता पिता कोमूर्छा आगइ और वे भान भुलकर भूमिपर गिर पड़े। जब जल वायु का प्रयोग किया तो वे रोते हुए गद्-गद् शब्दों से कहने लगे कि बेटा! आज तो ऐसे शब्द निकाले है पर आईन्दा से हमारे जीते हुए कभी ऐसे शब्द न निकालना कारण हम ऐसे शब्द कानों में भी सुनना नहीं चाहते है। बेटा तुं मेरे सबसे बड़ा पुत्र है तेरे विवाह के लिए बड़ी उम्मेद है कह साहु-

कारों की लड़कियों के लिए प्रस्ताव आ रहे हैं अतः बेटा हम नहीं चाहते कि तू दीक्षा लेने की बात तक भी करे ? शोभन ने कहा कि माता संसार में मोह कर्म का ऐसा ही क्या है कि जिस कामको लोग अच्छे समझते हुए भी मोहकर्म के जोर से अन्तराय देने को तैयार हो जाते हैं। आप जानते हो कि इस संसार में जन्म मरण का महान् दुःख है और बिना दीक्षा लिये वे दुःख छूट नहीं सकते हैं। और दीक्षा भी अच्छी सामग्री हो तब आ सकती है। माता पिता अपने बाल बच्चों के हित चिंतक होते हैं अतः आप हमारे हित चिंतक हैं फिर हमारे हित में आप अन्तराय क्यों करते हो ? इत्यादि नम्रता से अर्ज की कि आप आज्ञा प्रदान करें कि मैं सूरिजी के पास दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ ?

माता ने कहा—बेटा अभी दीक्षा लेने का समय नहीं है अभी तो तुम विवाह करो माता पिताकी सेवा करो जब तुम्हारे बाल बच्चा हो जाय हम लोग अपनी संसार यात्रा पूर्ण करलें बाद दीक्षा लेकर अपना कल्याण करना इसमें तुमको कोई रोक टोक नहीं करेंगे।

बेटाने कहा—माताजी यह किसको मालूम है कि मातापिता पहले जावेंगे या पुत्र पहले जावेगा। माता ! विवाह शादी करना यह तो एक मोह पाश में बन्धना है और विषय भोग तो संसार में रुलाने वाले हैं जिन जिन पुरुषों ने विषय भोग सेवन किया है वे नरकादि गति में दुःख सहन किया है वे उनकी आत्माही जानती है। क्या ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिका व्याख्यान आपने नहीं सुना है ? अतः आप कृपा कर आज्ञा दे दिजिये—

माताने कहा—बेटा तुमको किसीने बहका दिया है अतः तू दीक्षा का नाम लेता है। पर दीक्षा पालन करना सहज नहीं है जिसमें भी तू इस प्रकार का सुकमाल है क्षुधा पीपासा शीत उष्णादि २२ परिसह सहन करना कठिन है जो तू सहन नहीं कर सकेंगा इत्यादि शोभन के माता पिता ने बहुत कुछ समझा दिया।

बेटाने कहा—माताजी नरक और तिर्यंच के दुःखोंकि सामने दीक्षा के परिसह किस गीनती में है जो प्रत्येक जीव अनंती अनंतीवार सहन कर आया है। जब दीक्षा में तो साधु उनसे परिरक्षा करके दुःख सहन करने की कोशिश करते हैं। माता देख सूरिजी के साथ पांचसौ साधु है और वे भी अपने २ नगरके देवता के जैसी सुख सम्पत्ती छोड़कर दीक्षा ली है और आपके सामने दीक्षा पालतेहैं। इतना ही क्यों पर वे सब साधुओं बाले मकानोंको छोड़कर पहाड़ों में जाकर कठोर तपस्या करते हैं तो क्या मेरे जैसी मदा के रतन पान कर वे बता मैं दीक्षा पालन नहीं कर सकूँगा अतः आप पूर्ण विश्वास रखे और कृपा कर आज्ञा दीजिये कि मैं दीक्षा लेकर अपना कल्याण करूँ।

इत्यादि बहुत प्रश्नोत्तर हुए अर्थात् माता पिता ने शोभन की कसोटी लगाकर खूब जाँच एवं परीक्षा की पर शोभन तो एक अपनी बात पर ही अडिग रहा। मंत्री करणोदित्य ने कहा कि तुम दोनों चुप रहो मैं कल सूरिजी के पास जाकर उनको कहदूगा कि शोभनको दीक्षा न दें। बस सब लोग चुप हो गये।

दूसरे दिन मंत्री सूरिजी के पास गया और वन्दन करके अर्ज की कि गुरु देव शोभन अभी बच्चा है किसी की बहकावट में आकर इस प्रकार किया है कि मैं दीक्षा लूँगा। पर हमारे सात पुत्रों में यह सब से बड़ा है इसकी शादी करनी है इसकी माता रोती है इत्यादि हमारे भविष्य कार्य में एक बड़ा भारी विघ्न खड़ा हो जायगा अतः आप शोभन को समझावें कि अभी दीक्षाकी बात न करे।

सूरिजी ने कहा करणोदित्य तुम्हारा घराना उपकेश गच्छ का उपासक है जिसमें भी तू हमारे धर्मेश्वर

भक्त श्रावक है तुम्हारी आज्ञा विनो तो हम शोभन को दीक्षा दे ही नहीं सकते हैं शोभन आज ही क्यों पर आर्बुदाचल आया था और मेरा उपदेश सुनाया था तब से ही कह रहा है कि मुझे दीक्षा लेनी है दूसरे आप यह भी सोच सकते हो कि इस कार्य में साधुओं को क्या स्वार्थ है मेरे साधुओं की कोई कमती नहीं है तथा शोभन बिना हमारा काम भी रुका हुआ नहीं है कि हम इस के लिये कोशीश करे। हाँ कई भी भव्य जीव अपना कल्याण करना चाहे तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसको दीक्षा देकर मोक्षमार्ग की आराधना करावे। मंत्रीश्वर बालाअवस्थामें दीक्षा लेना तो अमूल्य रत्नके तुँल्य हैं कारण एक तो इस अवस्था में दीक्षा लेने वाले के ब्रह्मचर्यगुण जबरदस्त होता है दूसरा पढ़ाई भी अच्छी होती है तीसरा चिरकाल संमय पालने से स्वपर आत्मा का अधिक से अधिक कल्याण कर सकता है। तथा शोभन की माता फिक्र क्यों करती है जब कि उसके एक भी पुत्र नहीं था आज सात पुत्र है उसमें एक पुत्र शासन का उद्धार के लिए देदे तो उसके कौनसा घाटा पड़ जाता है और शोभन जाता भी कहाँ है वहाँ तुम्हारे पासनहीं तो तुमारा गुरु के पास रहेंगे। मत्री-मुग्धपुर के श्रावको ने शासन शोभा के लिए अपने पुत्रों को आचार्य श्री की सेवा में अर्पण कर दिये थे यदि शोभन दीक्षा लेगा तो आपका कुल एवं माता मैना की कुक्षको उज्ज्वाल बना देगा अत शोभन की इच्छा हो तो तुम बिच में अन्तराय कर्म नहीं बान्धना इत्यादि। सूरिजी ने मधुर वचनों से ऐसा हितकारी उपदेश दिया कि यशोदित्य कुच्छ भी नहीं बोल सका। थोड़ी देर विचार कर कहा अच्छा गुरु महाराज मैं शोभन की माता को समझा दूगा और आप श्री व्याख्यान में ऐसा उपदेश दीरावे कि उसका चित शान्त हो जाय। मंत्रीश्वर सूरिजी को बन्दन कर अपने मकान पर आगया।

सेठानी ने पुछा कि आप सूरिजी को कह आयें हो न ? सेठजी ने कहा कि मैं सूरिजी के पास गया था पर सूरिजी ने कहा है कि यदि शोभन दीक्षा लेना चाहता हो तो तुम बिच में अन्तराय कर्म नहीं बन्धना शोभन दीक्षा लेगा तो तुम्हारा कुल और उसकी माता की कुक्ष को उज्ज्वल बना देगा और शोभन जाता कहाँ है तुम्हारे पास नहीं तो गुरु के पास रहेगा इत्यादि। सेठानी ने कहा कि फिर आपने क्या कहा? सेठजी ने कहा मैं गुरु महाराज के सामने क्या कह सकता। सेठानी ने कहा क्या गुरु महाराज शोभन को दीक्षा दे देंगे। सेठ ने कहा हाँ उनके तो यही काम हैं। सेठानी ने कहा उनके तो यही काम है पर आप इंकार क्यों नहीं किया। सेठजी ने कहा कि गुरु महाराज ने कहा था कि अन्तराय कर्म नही बान्धना। जब आप शोभन को दीक्षा लेने दोगे ? सेठजी—हाँ अपने छ पुत्र रहेगा यदि बटवार किया जायगा तो तीन तीन पुत्र दोनों के रह जायगा फिर अपने क्या चाहिये। जब कि तुम्हारे एक भी पुत्र नहीं था शोभन दीक्षा लेगा तो भी छ एव तीन पुत्र रह जायगा अत गुरु महाराज कह दिया दो लेने दो शोभन को दीक्षा सेठानी ने सोचा कि सूरिजी ने शोभन पर तो जादू डाल ही था परन्तु शोभन के बाप पर भी जादू डाल दिया ऐसा मालूम होता है तब मैं एकली कर ही क्या सकू।

मंत्रीश्वर ने मन्दिर की प्रतिष्ठा का मुहूर्त निकलवाया जो वैशाख शुक्ल ३ अक्षय तृतीय के दिन मुकर्रर हुआ और उस दिन ही शोभन की दीक्षा का मुहूर्त निकला बस। शिवपुरी में जहाँ देखो वहाँ शोभन के दीक्षा की ही बातें हो रही थीं तथा इनके अनुकरण में कई नर नारी दीक्षा की तैयारियाँ भी करने लगे इधर मन्त्रीश्वर ने प्रतिष्ठा एव पुत्र की दीक्षा के लिये आस पास ही नहीं पर बहुत दूर दूर आमन्त्रण पत्रिकाए भेजवादी जिससे क्या साधु साध्वियाँ और श्रावक श्राविकाएँ खुब गेहरी तादाद में शिवपुरी की

ओर आ रहे थे जिन मन्दिरों में अष्टाह्निका महोत्सव हो रहा था वैरागी सोमप्रभ वगैरह बंदोली जा रहे थे जिनके वैराग्य के बाजे चारों ओर बज रहे थे एक करोड़पति सेठके सोलह वर्ष का पुत्र दीक्षा ले जिसको देख किसके दिल में वैराग्य नहीं आता हो नगरी के तो क्या पर कई बाहर से आये हुए महमानों को देख वैराग्य हो आया कि वे भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये । ठीक मुहूर्त पर ४२ नर नारियों के साथ सोमप्रभ को दीक्षा देकर सूरिजी ने सोमप्रभ का नाम सोमप्रभ रख दिया बाद मूर्तियों की अंजनसिलाका एवं प्रतिष्ठा करवाई इस पुनीत कार्य में मंत्रीश्वर ने पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य और साधर्मीभाइयों को पेहरामणि वगैरह देने में एक करोड़ रुपये व्यय किया । इस पुनीत कार्य से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई थी मुनि सोमप्रभ क्रमशः धुरंधर विद्वान एवं सर्व गुण सम्पन्न हो गया आपके अखण्ड ब्रह्मचर्य और कठोर तपश्चर्या के प्रभाव से राजमहाराजा तो क्या पर कई देवदेवियों भी आपके चरणों की सेवा कर अपना जीवन को पवित्र बना रहे थे यही कारण है कि आचार्य यक्षदेवसूरि ने उपकेशपुर के श्रीसंघ के महा-महोत्सव पूर्वक आपको आचार्य पद से अलंकृत बनाया था ।

इस कलिकाल में सत्ययुग के सदृश कार्य बन जाना शायद ही देखा नहीं गया होगा । प्रभु महावीर के शासनकाल में करीब १०० वर्ष तक इस प्रकार का सम्प ऐक्यता के साथ हजारों साधु साध्वियों और करोड़ श्रावक श्राविकाएं एक आचार्य की आज्ञा में चलना यह क्या साधारण बात है ? कलि के लिये ये एक बड़ी भारी कलंक एवं ईर्षा की बात थी परन्तु इतने वर्षों तक उसका यहाँ पर ही जोर नहीं चल सका । वह अपना दाव पेच खेलता रहा और हमेशा देखता रहा पर कहाँ है कि दुष्टों का मनोरथ कभी कभी सफल हो ही जाता है यही कारण था कि भिन्नमाल में रहा हुआ मुनि कुंकुंद ने सुना कि उपकेशपुर में आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने पट्टपर उपाध्याय सोमप्रभ को आचार्य बना कर उसका नाम कक्कसूरि रखदिया और यक्षदेवसूरि का स्वर्गवास भी हो गया है अतः भिन्नमाल के संघ को इस प्रकार समझाया कि उन्होंने मुनि कुंकुंद को आचार्य पद देकर उपकेशगच्छ की चिरकाल से चली आई मर्यादा का भंग कर दिया । जब इधर आचार्य कक्कसूरि ने यह समाचार सुना कि भिन्नमाल में मुनि कुंकुंद आचार्य बनगया तो आपको बड़ा ही विचार हुआ कि पूर्वाचार्य कैसे ही भाग्यशाली हुए कि अपना शासन एक छत्र से ही चला कर शासन की उन्नति की अब मैं ही एक ऐसा निकला कि इस गच्छ में दो आचार्यों का नाम सुन रहा हूँ और भवितव्यता को कौन मिटा सकता है परन्तु अब इस मामले को किस प्रकार निपटाया जाय कि भविष्य में इसके बुरे फल का अनुभव नहीं करना पड़े और गच्छ को नुकसान न पहुंचे आचार्य कक्कसूरि ने अनेक ओर दृष्टि लगा कर देखा जिससे यह ज्ञात हुआ कि जब एक बड़ा नगर का संघ ने आचार्य बना दिया है वह अन्यथा तो हो ही नहीं सकेगा । यदि मैं इसका विरोध करूँगा या संघ को उपालंभ दूँगा तो यह नतीजा होगा कि मेरा उपदेश मानने वाले उनको आचार्य नहीं मानेगा पर इससे गच्छ में एवं संघ में फूट कुसम्प बढ़ने के अलावा कोई भी लाभ न होगा । कारण जब भिन्नमाल का संघ ने यह कार्य किया है तो वे उनके पक्ष में हो ही गये है दूसरा कुंकुंदमुनि विद्वान भी है और करीब एक हजार साधु भी उनके पक्ष में है इस हो यानी अवश्य बन जावेगी । इत्यादि शासन का हित के लिये आपने बहुत कुछ सोचा आखिर आपने आचार्य रत्नप्रभसूरि और कोरंट संघ एवं कनकप्रभसूरि का इतिहास की ओर अपना लक्ष पहुँचाया और यह निश्चय किया कि मुझे भिन्नमाल जाना चाहिये परन्तु इस विषय में देवी सच्चायिका की सम्मति लेना भी आपने

आवश्यक समझा अत आप ने देवी का स्मरण किया और देवी आकर सूरिजी को वन्दन किया सूरिजी ने धर्मलाभ देकर सब हाल देवी को निवेदन किया और अपना विचार भी कह सुनाया तथा आपकी इसमें क्या राय है। देवी ने कहा पूज्यवर ! भवितव्यता को कौन मिटा सकता है पर यह भी अच्छा हुआ कि यह झमेला आपके सामने आया यदि किसी दूसरे के सामने आता तो गच्छ में बड़ा भारी मत्तभेद खड़ा हो जाता पर आप भाग्यशाली एवं अतिशय प्रभावशाली है इस झमेला को आसानी से निपटा सकोंगे। यह ही कारण है आप अपने मान अपमान का खयाल न करके भिन्नमाल पधारने का विचार कर लिया है। इस लिये ही शास्त्रकारों ने कहा है कि जातिवान कुलवान दीर्घदर्शी एवं उच्च संस्कार वाले कों आचार्य बनाया जाय। प्रत्येक्ष में देख लीजिये कि यदि मुनि कुंकुन्द थोड़ा भी विचारज्ञ होता तो केवल अपनी थोड़ी सी महिमा के लिये पूर्वाचार्यों की मर्यादा का भग कर गच्छ एवं शासन में इस प्रकार फूट कुसम्प के बीज कभी नहीं बोते। खैर, पूज्यवर ! आपके इस शुभ विचारों से मैं सर्वथा सहमत्त हू और मैं आपको कोटीश धन्यवाद भी देती हूँ कि आपने धर्म एवं गच्छ के गौरव की रक्षा के लिये चल कर भिन्नमाल जाने का उत्तम विचार किया है। और आप अपने विचारों में सफलता भी पाओगें। देवी सूरिजी को वन्दन करके चली गई पर देवी को आश्चर्य इस बात का था कि इस युवक व्यय में नूतनाचार्य कितने दीर्घदर्शी है कितने धैर्य एव गर्भिर्य है ?

आचार्य ककसूरि अपने शिष्यों के साथ विहार कर विना विलम्ब चलते हुए भिन्नमाल की ओर पधार रहे थे। उस समय कोरटगच्छ के आचार्य नन्नप्रभसूरि भी भिन्नमाल में विराजते थे जिन्हों को भिन्नमाल का सघ आमन्त्रण करके बुलाये थे शायद् इसमें भी कुँकुन्दाचार्य की ही करामात हो कि कोरंट-गच्छ के आचार्यों को अपने पक्ष में ले ले कहा है कि विद्वान् जितना उपकार करता है उतना ही अपकार भी कर सकता है खैर भिन्नमाल का सघ एवं कोरटगच्छ के आचार्य नन्नप्रभसूरि ने सुना कि आचार्य ककसूरि भिन्नमाल पधार रहे है इससे तो प्रत्येक विचारज्ञ के हृदय में नाना प्रकार की कल्पनाएँ ने जन्म लेना शुरु कर दिया। कई विचार कर रहे थे कि ककसूरि यहां क्यों आ रहे है ? कइने सोचा कि मुनि कुंकुन्द को आचार्य बना कर पूर्वाचार्यों की मर्यादा का भग किया इसलिये ककसूरि आ रहा है कई यह भी विचार कर रहे थे कि यहा दोनों आचार्यों का बड़ा भारी क्लेश होगा ? इस प्रकार मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना एवं जितने मगज उतने ही विचार और जितने मुह उतनी बातें कहा है कि घर हानी और दुनियाँ का तमासा जब जैनों का यह हाल था वो जैनेत्तरों के लिये तो कहना ही क्या था पाठक पिछले प्रकरणों में पढ़ आये है कि मरुधर में एक भिन्नमाल ही ऐसा क्षेत्र था कि वहां के ब्राह्मण शुरु से ही जैनों के साथ द्वेष रखते आये हैं जब उनको ऐसी बात मिल गई तब तो कहना ही क्या था। वे लोग भी विचार करने लगे कि ठीक है आज जैनों के विरोध पक्ष के दो आचार्य यहा शामिल हो रहे है। देखते है क्या होगा—

आचार्य नन्नप्रभसूरि ने संघ को कहा कि आचार्य ककसूरि पधार रहे है हम स्वागत के लिये जावेंगे आपको और कुकुन्दाचार्य को भी सूरिजी का सत्कार एव स्वागत करना चाहिये। कारण ककसूरिजी आचार्य होने के बाद आपके यहां पहिले पहिल ही पधार रहे है। इस पर श्री सघ और कुंकुन्दाचार्य ने एकान्त में विचार किया जिसमें दो पार्टी बन गई एक पार्टी में कुकुन्दाचार्य और कुच्छ उनके दृष्टिरागी भक्त तब दूसरी

पाली में ठीक भी संघ था पर आचार्य कनकप्रभसूरि का अकेला संघ को ठीक लगा अतः सकल श्रीसंघ ने यह निश्चय किया कि आचार्य कक्कसूरि का खूब धूमधाम के साथ नगर प्रवेश का महोत्सव पूर्वक स्वागत करना चाहिये आखिर कुंकुमाचार्यको संघ के सहमत होना पड़ा कारण आपके लिये अभी तो केवल एक भिन्नमाल का संघ ही था दूसरे कोरंटगच्छाचार्य का मत स्थापित करने का ही था अतः सकल श्री संघ और आचार्य कनकप्रभसूरि एवं कुकुन्दाचार्य मिलकर आचार्य कक्कसूरि का महामहोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया आचार्य श्री भगवान महावीर की यात्रा कर धर्मशाला में पधारे तीनों आचार्य एक ही पाट पर विराजमान हुए उस समय उपस्थित जनता को यही भाँन हो रहा था कि ये तीनों आचार्य ज्ञान दर्शन चारित्र की प्रति-मूर्ति ही दीख रहे है। आचार्य कक्कसूरि ने आचार्य कनकप्रभसूरि से सविनय अर्ज की कि पूज्यवर! देशना दीरावे। इस पर कनकप्रभसूरि ने कहा सूरिजी महाराज श्री संघ और हम आपके मुखारविन्द की देशना के पीपासु है आप अपने ज्ञान समुद्र से सब लोगों को आस्वादन करावे। कक्कसूरि ने कहा कि आप हमारे वृद्ध एवं पूज्याचार्य है अतः आपको ही देशना देनी चाहिये ? मैं आपकी देशना का प्यासा हूँ पुन कनक सूरि ने कहा सूरिजी संसारी लोग कहते है कि 'परणी को सो गाईजे' आज तो सब लोग आपकी ही देशना सुनना चाहते है। इस पर कक्कसूरि ने कुकुन्दाचार्य को कहा सूरिजी आप फरमावे। कुकुन्दाचार्य लज्जा के मारे मुँह नीचा कर लिया और कहा कि पूज्यवर! आज की देशना तो आपकी ही होनी चाहिये इत्यादि। इस विनयमय प्रवृति देख दुनियाँ का दील सहसा आगया और उनके जो विचार पहिले थे वे नहीं रहे।

आचार्य कक्कसूरि ने अपनी ओजस्वी गिरा से देशना देनी प्रारम्भ की जिसमें मंगलाचरण के पश्चात् शासन का महत्व बतलाते हुए कहा कि भगवान महावीर का शासन २१ वर्ष पर्यन्त चलेगा। इसमें अनेक प्रभावशाली आचार्य हुए और होगा आचार्य का चुनाव भी संघ करता है एक आचार्य की आवश्य कता हो तो एक और अधिक आचार्यों की जरूरत हो तो अधिक आचार्य भी बना सकते हैं इसके लिये व्यवहारादि सूत्र में विस्तार से उल्लेख मिलता है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता है कि किसी ग्राम नगर का संघ स्वच्छन्दता पूर्व किसी को आचार्य बना कर शासन का संगठन का कटुकता उत्पन्न कर सके। पूर्वाचार्यों ने महाजन संघ स्थापन करने में तथा उस महाजन संघ की वृद्धि करने में जो सफलता पाई थी उसमें मुख्य कारण संगठन का ही था देखिये एक गृहस्थ के चार पुत्र हैं पर एक संगठन में मजबूत है वहाँ तक उनका प्रभाव कुछ और ही है यदि वे चारों पुत्र अलग अलग हो जाय तो उनका उतना प्रभाव नहीं रह है यही हाल शासन नायकों का समझ लेना चाहिये। एक समय कोरंट संघ ने पार्श्वनाथ संता-नियों में आचार्य रत्नप्रभसूरि जैसे प्रभावशाली आचार्य होते हुए भी वैसा ये आकर कनकप्रभसूरि को आचार्य बना दिया पर आचार्य रत्नप्रभसूरि इतने धीर्य वीर्य एवं शासन के शुभचिंतक थे कि वे चलाकर शीघ्र ही कोरंटपुर पधारे। इस बात की खबर मिलते ही कोरंटसंघ एवं कनकप्रभसूरि ने आपका स्वागत किया इतना ही क्यों पर कनकप्रभसूरिजी इतने योग्य एवं शासन के हितैषी थे कि कोरंटसंघ की दी हुई आचार्य पदवी रत्नप्रभसूरि के चरणों में रखदी परन्तु रत्नप्रभसूरि भी इतने धीर्य वीर्य थे कि अपने हाथों से कनकप्रभसूरि को आचार्य पद देकर कोरंटसंघ एवं कनकप्रभसूरि का मान रखा इस प्रकार दोनों ओर की विनयमय प्रवृति का मधुर फल यह हुआ कि केवल नाम मात्र के (उपकेशगच्छ-कोरंटगच्छ) दो गच्छ कहलाते हैं पर वास्तव में दोनों गच्छ एक ही है उस बात को करीब ८४ वर्ष ही गुजरा है पर इन दोनों गच्छ में इतना प्रेम स्नेह ऐक्यता

है कि कोई यह नहीं कह सकता है कि ये दो गच्छ हैं। इत्यादि मधुर एवं मार्मिक शब्दों में जनता पर इस कदर प्रभाव डाला कि कुन्कुन्दाचार्य पाट पर से उतर कर सबके समीक्षा कहाँ पूज्यवर ! मेरी गलती हुई है कि मैं अज्ञानता के कारण पूर्वाचार्यों की मर्यादा का उल्लंघन किया है जिसको तो आप क्षमा करावें और यह आचार्य पद में पूज्य के चरणों में रख देता हूँ। आप हमारे पूज्य हैं आचार्य हैं और गच्छ के नायक है। इत्यादि अहा हा आपके अलौकिक गुणों का मैं कहाँ तक वर्णन कर सकता हूँ—पूज्यवर ! आप वास्तविक शासन के शुभचिंतक एवं हितैषी हैं। साथ में भिन्नमाल के श्री संघ ने भी कहाँ पूज्यवर ! इस कार्य में अधिक गलती तो हमारी हुई है इस पर आचार्य कक्कसूरि ने कहा कि कुन्कुन्दाचार्य योग्य है विद्वान है इतना ही क्यों पर आप आचार्य पद के भी योग्य हैं और भिन्नमाल संघ ने भी जो कुछ किया है वह योग्य ही किया है गुणीजन की कदर करना यह श्री संघ का कर्तव्य भी है यदि यही कार्य हमारे पूज्याचार्य यक्षदेवसूरि एवं नन्नप्रभसूरि आदि की सम्मति से किया गया होता तो अधिक शोभनीय होता। खैर मैं कुन्कुन्दाचार्य कों कोटिश धन्यवाद देता हूँ कि इस कलिकाल में भी आपने सत्ययुग का कार्य कर बतलाया है यह कम महत्व का कार्य नहीं है साथ में भिन्नमाल का श्री संघ भी धन्यवाद का पात्र है कारण जैन धर्म का मर्म यही है कि अपनी भूल को आप स्वीकार करले। तत्पश्चात् आचार्य कक्कसूरि ने आचार्य नन्नप्रभसूरि कों प्रार्थना की कि पूज्याचार्य देव यह चतुर्विध श्री संघ विद्यमान है आपके वृद्ध हस्तकमलों से कुन्कुन्दाचार्य कों आचार्य पद अर्पण कर मेरे कन्धे का आधा वजन हलका कर दिरावे। कुन्कुन्दाचार्य ने कक्कसूरि से अर्ज की कि पूज्यवर ! आप हमारे प्रभावशाली आचार्य हैं और मैं आचार्य बनने के बजाय आचार्य का दास बन कर रहने में ही अपना गौरव समझता हूँ इत्यादि। कक्कसूरि ने कहा प्रिय आत्म बन्धु ! मैं भिन्नमाल श्रीसंघ की दी हुई आचार्य पदवी लेने को नहीं आया हूँ पर भिन्नमाल श्री संघ का किया हुआ कार्य का अनुमोदन कर अपनी सम्मति देने को ही आया हूँ भविष्य के लिए जनता यह नहीं कह दें कि उपकेश गच्छ मे बिना आचार्य की सम्मति आचार्य बन गये। अत. मैं आग्रह पूर्वक कहता हूँ कि आप आचार्य पद को स्वीकार कर लो। आचार्य नन्नप्रभसूरि और उपस्थित श्री संघ ने भी बहुत आग्रह किया अत. आचार्य नन्नसूरि एवं कक्कसूरि के वासक्षेप पूर्वक मुनि कुन्कुन्द कों आचार्य पद देकर कुन्कुन्दाचार्य बनाया उस समय श्री संघ ने भगवान महावीर की जयध्वनि से गगन कों गुंजाय दिया था। तत्पश्चात आचार्य कक्कसूरि ने कुन्कुन्दाचार्य और भिन्नमाल के श्रीसंघ को कहा कि संघ पचवीसवाँ तीर्थङ्कर होता है मगर आज मैंने 'छोटे मुँह बड़ी बात' वाली धृष्टता करता हुआ आपको उपालम्भ दिया हैं इसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। मुझे यह उम्मेद नहीं थी कि यहाँ इस प्रकार की शान्ति रहगा। आपके धैर्य एवं गाम्भिर्य और सहनशीलता का वर्णन मैं वाणिद्वारा कर ही नहीं सकता हूँ आपकी सम्यग्दृष्टि बड़ी अलौकीक है मुझे अधिक हर्ष तो महानुभाव कुकुदाचार्य के कोमलता पर है कि आपने कलिकाल के उन्नत हृदय पर लात मार कर साक्षात सत्युग का नमूना बतला दिया है सज्जनों अपनी भूल को भूल स्वीकार कर लेना इसके बराबर कोई गुण है ही नहीं इस गुण की जितनी महिमा की जाय उतनी ही थोड़ी है मैं तो यहा तक खयाल कर सकता हूं कि जितने जीव मोक्ष में गये हैं वे सब इस पुनित गुण से ही गये हैं क्योंकि जीव ससार में परिभ्रमन करता है वह अपनी भूल से ही करता है जब अपनी भूल को भूल समझता है तब उस जीव की मोक्ष हो जाती है। सद् गृहस्थों आपके लिये भी यह एक अमूल्य शिक्षा है जितना राग द्वेष क्लेश कदाग्रह होते हैं उसमें

योग्य लोग अपनी भूल स्वीकार नहीं करता ही है। एक तरफ का दोनों तरफ से भूल होने के कारण ही रा
द्वेष पैदा होता है यदि अपनी अपनी भूल को स्वीकार कर लेता है तब रागद्वेष चोरों की भाँति भाग छूटता है
इत्यादि सूरिजी ने अपने विचारों का जनता पर इस कदर प्रभाव डाला कि जिससे सबको संतोष हो गया।

कुंकुदाचार्य और भिन्नमाल के संघ ने कहा पूज्यवर! स्वर्गस्थ आचार्य यक्षदेवसूरि ने आपको आचार्य
पदार्पण कर गच्छ का सब भार आपको सुपुर्द किया है वह खूब दीर्घ विचार करके ही किया था और आपश्री
भी इस पद के पूर्ण योग्य भी है वैद्यराज की दवाई जैसे समय मले कटुक लगती हो परन्तु इस प्रकार की
कटुक दवाई बिना रोग भी तो नहीं जाता है यदि आप दीर्घ विचार कर यहाँ न पधारते तो न जाने भविष्य
में इनके कैसे जहरीले-विष फल लगते पर आपके पधारने से कितना अच्छा हुआ है कि सभी क्षेत्र बिलकुल
निष्कंटक बनगया है हमारे विशेष शुभकर्मों का उदय है कि इधर तो आचार्य सम्यप्रभसूरि का और इधर
से आपका पधारना हो गया। इत्यादि आपसमें विनय व्यवहार करके भगवान महावीर की जयध्वनि के
साथ सभा विसर्जन हुई

बस—तो—आज भिन्नमाल में जहाँ देखो वहाँ जैनाचार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा हो रही है। आज
जैनों के हर्ष का पार नहीं है परन्तु वादी लोग शास्त्रों के उसे अंगुलिये दबाकर निराश हो गये हैं उनके
चेहरे फिके पड़गये हैं उनके दिल में बूरी मायूसाइ थी जिसको जैनाचार्यों के मिथ्या साबित करती है और
जहाँ देखो वहाँ जैनधर्म के ही यशोगायन हो रहा है।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशाँ होता था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता
था। एक दिन भिन्नमाल के श्रीसंघ ने तीनों आचार्यों के चतुर्मास के लिये आचार्य सम्यप्रभसूरि से प्रार्थ
विनती की और कहा कि पूज्यवर! यहाँ के श्रीसंघ की यह अभिलाषा है कि आप तीनों आचार्यों का यह चतु-
र्मास भिन्नमाल में ही हो। इसकी मंजुरी फरमा कर यहाँ के श्रीसंघ के मनोरथ पूर्ण करावें। सूरिजी ने
कहाँ भाग्यशालियों! यदि तीनाचार्य तीनक्षेत्र में चतुर्मास करेंगे तो तीनक्षेत्रों का उपकार होगा अतः आपके यहाँ
कक्कसूरिजी का चतुर्मास होना अच्छा है। श्रीसंघ ने कहा पूज्यवर! आप जहाँ विराजे वहाँ उपकार ही है पर
यह चतुर्मास तो यहाँ ही होना चाहिए सूरिजी ने दोनों आचार्यों की सम्मति लेकर श्रीसंघ की प्रार्थना को
स्वीकार करली बस। फिर तो कहना ही क्या था भिन्नमाल के श्रीसंघ का उत्साह खूब बढ़ गया।

श्रमणसंघ में सर्वत्र धर्मस्नेह और सब में शान्ति का साम्राज्य छागया था कुंकुदाचार्य का यह चतु-
र्मास भिन्नमाल में ही था अतः मुनियों को वाचना का काम आपके सुपुर्द कर दिया कि तीनों आचार्यों के
योग्य साधुओं को आगम वाचना एवं वर्तमान साहित्य का अध्ययन करवाया करें आचार्य सम्यप्रभसूरि अवस्था
में वृद्ध थे वे मुनियों की सार संभाल एवं अपनी आलोचना में लगरहे थे तब आचार्य कक्कसूरि व्याख्यान
दे रहे थे। श्रीमाल वंशीय शाह दुर्गा ने महाप्रभाविक पंचमांग श्री भगवतीजी सूत्र को महामहोत्सव पूर्व अपने
मकान पर लेजाकर पूजा प्रभावना रात्रिजागरणादि कर हस्ति पर विराजमान कर वरघोड़ा चढ़ाया और
हीरा पन्ना माणक मुक्ताफल से पूजा कर सूरिजी के करकमलों में अर्पण किया जिसको सूरिजी ने व्याख्यान
में वाचना प्रारम्भ कर दिया जिसको सुनने के लिये केवल भिन्नमाल के लोग ही नहीं पर आस-पास एवं
दूर दूर ग्राम नगरों के जैन जैनेतर लोग आया करते थे सूरिजी महाराज की वाक्छटा विषय समझाने की
शैली इतनी सरल सरस और हृदयग्राही थी कि श्रोताजनों को बड़ा ही आनन्द आता था। किस प्रकार

आप त्याग वैराग्य की धून में संसार के दु खों का वर्णन करते थे तब अच्छे अच्छे लोग कांप उठते थे और उनकी भावना ससार त्याग ने की हो जाति थी । इतना ही क्यों पर कई महानुभावों ने तो सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने का भी निश्चय कर लिया ।

एक समय आचार्य ककसूरिजी आत्म ध्यान में रमणता के अन्त में जैनधर्म का प्चार के निमित विचार कर रहे थे ठीक उसी समय देवी सच्चायिक ने आकर वन्दन की उत्तर में सूरिजी ने धर्मलाभ दिया । देवी ने कहाँ पूज्यवर ! आप बड़े ही प्रभावशाली है आपके पूर्ण ब्रह्मचर्य और कठोर तपश्चर्य का तपतेज बड़ा ही जबर्दस्त है कि भिन्नमाल जैसे जटिल मामला को आपश्री ने बड़े ही शांति के स थ निपटा दिया यह आपके गच्छ का भावि अभ्युदय का ही सूचक है । पूज्यवर ! यह भी आपने अच्छा किया कि तीनों आचार्यों ने शामिल चतुर्मास कर दिया, इत्यादि । सूरिजी ने कहा देवीजी आप जैसी देवियों इस गच्छ की रक्षिका है फिर हमको फिक्र ही किस बात का हैं । आचार्य रत्नप्रभसूरि के पुन्यप्रताप से सब अच्छा ही होता हैं । देवी जी आज मेरी यह भावना हुई है कि मैं आज से पांचों विगई का त्याग कर छट छट पारण (आविल) करू कारण दुष्ट कर्मों की निर्जरा तप से ही होता है ?—देवी ने कहा प्रभो ! आपका विचार तो अत्युतम है पर आप पर अखिल गच्छ का उत्तरदायित्व हैं आपके विहार एव व्याख्यान से जनता का बहुत उपकार होता है यदि आप आहार करते हो तो भी आपके तो तपस्या ही है इत्यादि ! इसपर सूरिजी ने कहाँ देवीजी मेरी तपस्या में विहार और व्याख्यान की रुकावट नहीं होगा अत मेरी इच्छा है कि मैं आज से ही छट छट पारण करना प्रारम्भ करदूँ । देवीने कहाँ ठीक हैं गुरुदेव कर्म पुज जलाने के लिये तप अग्नि समान हैं हम लोग तो सिवाय अनुमोदन के क्या कर सकती है । पर आप अपने शरीर का हाल देख लिरावे सूरिजी ने कहा कि शरीर तो नाशमान है इसके अन्दर से जितना सार निकल जाय उतना ही अच्छा है देवी ने सूरिजी की खूब प्रशसा करती हुई वन्दन कर चली गई और आचार्य श्री ने उसी दिन से छट छट यानि दो दिन के अंतर पारण करना शुरु कर दिया । जिसको किसी को मालुम नहीं पड़ने दी । परन्तु बाद में आचार्य नत्नप्रभसूरि को मालुम हुआ तो सूरिजी ने फरमाया कि आप हमारे शासन एवं गच्छ के स्तम्भ है आपके तो हमेशाँ तप ही है यदि आप विहार कर भव्यों को उपदेश करेंगे तो अनेक जीवों का उद्धार कर सकोगे इत्यादि । कक-सूरि ने कहाँ कि आपका कहना बहुत अच्छा है मैं शिरोधार्य करने को तैयार हूँ पर जब तक मेरे विहार एवं व्याख्यान में हर्जा न पड़े वहाँ तक निश्चय किया हुआ तप करता रहूँगा । आचार्य ककसूरि तपके साथ योग आसन समाधि और स्वरोदय के भी अच्छे विद्वान थे इतना ही क्यों पर अपने साधुओं के अलावा दूसरे गच्छो के एव अन्य धर्म के मुमुक्षु लोक भी योग एव स्वरोदय ज्ञान के अभ्यास के लिये आपश्री की सेवा में रहा करते थे—जैसे आप ज्ञानी थे वैसे ज्ञान दान देने में बड़े ही उदार थे आये हुए महमानों का अच्छा मान पान रखते थे और उनके सब आवश्यकता को भी आपश्री अच्छी सुविधा से पूर्ण करते थे । अत आपके पास रहने से किसी को भी तकलीफ नही रहती थी । भिन्नमाल का श्रीसघ तीनों आचार्यों का चतुर्मास कर-वाने में खूब ही सफलता प्राप्त की थी पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य तप जपादि सद कार्यो से धर्म की एव शासन की खूब ही उन्नति की इतना ही क्यों पर सूरिजी का वैराग्य मय व्याख्यान सुनकर कइ १८ नर-नारी दीक्षा लेने को भी तैयार हो गया चतुर्मास समाप्त होते ही सूरिजी के कर कमलों से उन सबको भव भजनी दीक्षा देकर उनका उद्धार किया ।

तत्पश्चात् आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने कोरंटपुर की ओर विहार किया तब कुंकुंदाचार्य को उपकेशपुर की ओर विहार का आदेश दिया और आप स्वयं शिवपुरी चन्द्रावती की ओर विहार कर दिया। आसपास के ग्रामों में भ्रमण कर शिवपुरी पधार रहे थे यह आपके जन्म भूमि का स्थान था यों ही शिवपुरी शिव (मोक्ष) पुरी ही थी परन्तु आज तो आचार्य यक्षसूरि का शुभागमन हो रहा है ऐसा कौन हतभाग्य मनुष्य होगा कि जिसको अपने नगरी का गौरव न हो क्या राजा क्या प्रजा क्या जैन और क्या जैनेतर सब नागरी ही सूरिजी के स्वागत में सम्मिलित होकर महामहोत्सव पूर्वक सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया सूरिजी ने मन्दिरों के दर्शन कर धर्मशाला में पधारे और थोड़ी पर सारगर्भित भवभंजनी वैराग्यमयी मंत्री श्रवणोत्सव और आपके गृहदेवी सेठानी मैना अपने पुत्र का चरित्र प्रभाव देख परमानन्द को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् परिषद् विसर्जन हुई और मकान पर जाने के बाद मंत्री ने अपनी औरत को कहा देख लिया नी अपने पुत्र को। पुत्र को पूछो तो सही कि आप सुख में है या दुःख में। सेठानीजी आपके इस ६ इतने पुत्र हुए हैं पर आपकी कुक्ष और हमारा कुलको एक कोमल ने ही उज्वल बनाया है इत्यादि। जिसको सुनकर सेठानी को ही हर्ष एवं आनन्द में मग्न होगयी। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिस को जैन जैनेतर सुनकर सूरिजी नहीं पर मंत्री मंत्री का कुल और शिवपुर नगरी की प्रशंसा कर रहे थे। एक समय मंत्री अपनी स्त्री एवं पुत्रों को लेकर सूरिजी के पास आके वन्दन कर माता मैना ने कहा कि आप हम लोगों को छोड़ गये एवं भूल भी गये। आपके तो नये २ नगर हजारों शिष्य और लाखों भक्त है जहां जाते वहाँ जमा जमा होती है फिर हम लोग आपको याद ही क्यों आवें और अब थोड़ा बहुत रास्ता हमको भी बतलावें कि जिससे हमारा भी कल्याण हो ये आपके भाई हैं और ये इनकी स्त्रियाँ है ये सब आपको वन्दन कर सुख साता पूछती हैं सूरिजी ने उनको धर्मलाभ दिया और धर्म कार्य में उद्यमशील रहने का उपदेश दिया। अन्त में माता मैना को कहा कि अब आपकी वृद्धावस्था है घर और कुटुम्ब का मोह छोड़ दो और आत्म कल्याण करो कारण यह धन माल और कुटुम्ब सब यहीं रह जायगा और अकेला जीव पर भव जायगा इत्यादि। सेठानी मैना ने कहा कि इस समय आप अपने माता पिता को भी दीक्षा देदे तो हमारा भी उद्धार हो जाता ! सूरिजी ने कहाँ कि अब भी क्या हुआ है लीजिये दीक्षा मैं आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। सेठानी ने कहा अब तो हमारी अवस्था आगई है तथापि आप ऐसा रास्ता बतलावें कि घर में रह कर भी हम हमारा कल्याण कर सकें और सूरिजी ने गृहस्थों के करने काबिल कल्याण का मार्ग बतलाया जिसको मंत्री के कुटुम्ब ने स्वीकार किया। कुछ दिनों के बाद आप चन्द्रावती पधारे। वहाँ भी कई अर्से तक स्थिरता की सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर बहुत प्रभाव हुआ एवं लोगों की इच्छा हुई कि गरमी के दिन एवं जेठ का मास है आबुदाचलजी की यात्रा कर इस समय वहाँ ठहर कर निवृत्ति से ध्यान ध्यान करे अतः उन्होंने सूरिजी से प्रार्थना की और सूरिजी ने स्वीकार भी कर लिया चन्द्रावती में दिनों कि लाखों मनुष्यों की आबादी थी शिवपुरी पद्मावती कोरंट नगरों में नगर जितने से वे लोग ऐसा सुवर्ण अवसर हाथों से कब जाने देने वाले थे बस हजारों भावुक गुरु महाराज के साथ हो ली यात्रा करने को प्रस्थान कर दिया ‡ आबु का पहाड़ भी बारह कोस का था रास्ता भी

देनाश्र्वद मिरीसह्रो, ज्येष्ठ मासि, समास्थन । पिपासितः मत्स्युताः मारूत मौक्तफिना

विकट था इधर गरमी भी खूब पड़ती थी यात्री लोग साथ में पानी लिया वह बिच में ही पीकर खत्म कर दिया था। विशेषता, यह थी कि ऐसा गरमी का वायु चला कि पानी के विनों लोगों के प्राण जाने लगे जिभ्यातालुके चप गई उनकी बोलने तक की शक्ति नहीं रही। इस हालत में सघ अग्रेश्वरों ने आकर सूरीश्वरजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप जैसे जगम कल्पवृत्त के होते हुए भी श्रीसघ इस प्रकार अकाल में ही काल के कवलिये वन रहे हैं। पूर्व जमाना में आपके पूर्वजों ने अनेक स्थानों पर सघ के सकटों को दूर किया है आचार्य व्रज स्वामी ने दुकाल रूप सकट से बचाकर संघ को सुकाल में पहुँचा कर उनका रक्षण किया तो क्या आप जैसे प्रतिभाशालियों की विद्यमानता में सघ पानी बिना अपने प्राण छोड़ देंगे, इत्यादि। आचार्य कक्कसूरिजी ने संघ की इस प्रकार करूणामय प्रार्थना सुन कर अपने ज्ञान एव स्वरोदय बल से जान कर कहा कि महानुभावों! मैं यहां बैठकर समाधि लगाता हूँ यहाँ एक पाक्षी का सकेत होगा। वहाँ पर आपको पुष्कल जल मिल जायगा बस। इतना कह कर सूरिजी ने समाधि लगाई इतने में तो एक सुवेत पाखोंवाला पाची आकाश में गमन करता हुआ आया और एक वृक्ष पर बैठा जल की आशा से सघ के लोग इस संकेत को देखा और वहां जाकर भूमि खोदी तो स्वच्छ, शीतल, निर्मल पानी निकल आया वह पानी भी इतना था कि अखूट बस फिर तो था ही क्या सघ सघ ने पानी पीकर तरसा को शान्त की और आपके साथ जल पात्र थे वे सब पानी से भर लिये पर यह किसी ने भी परवाह न की कि सूरिजी समाधि समाप्त की या नहीं। इसी का ही नाम तो कलिकाल है। खैर सब काम निपट लेने के बाद सूरिजी ने अपनी समाधि समाप्त की। बाद सघ अग्रेश्वरों ने एकत्र होकर यह विचार किया कि यहाँ पर आज श्रीसंघ के प्राण बचे और सूरिजी की कृपा से सब लोग नूतन जन्म में आये हैं तो इस स्थान पर एक ऐसा स्मृति कार्य किया जाय कि हमेशों के लिये स्थायी बन जाय। अत सघ की सम्मति हुई कि यहाँ एक कुड और एक मन्दिर बनाया जाय और प्रति वर्ष वहाँ मेला भरा जाय। बस यह निश्चय कर लिया चरित्रकार लिखते हैं कि उस स्थान आज भी कुड है और प्रति वर्ष मेला भरता है खैर सघ आर्वुदा चल गया और भगवान् आदीश्वरजी की यात्रा की। आहाहा—पूर्व जमाने में जैनाचार्य कैसे करूणा के समुद्र थे और सघ रक्षा के लिये वे किस प्रकार प्रयत्न किया करते थे तब ही तो संघ हरा भरा गुल चमन रहता था और आचार्य श्री का हुक्म उठाने के लिये हर समय तत्पर था अस्तु। संघ यात्रा कर अपने २ स्थान को लौट गया और सूरिजी महाराज वहाँ से लाट प्रदेश की ओर पधार गये क्रमश विहार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधारे वहाँ का श्रीसघ सूरिजी का अच्छा स्वागत किया सूरिजी महाराज ने भरोंच नगर के संघाग्रह से वहाँ कुच्छ अर्सा स्थिरता की आपका व्याख्यान हमेशा होता था—

मारोटकोट नगर में उपकेशवशीय श्रावकों की बहुत अच्छी आबादी थी जिस में एक श्रेष्टिवर्य्य

पद्माऽधःस्थ वटस्याधो, दंर सन्दर्श्य वायुतम्। सर्वोऽप्युज्जी व्याश्चक्रे, किमसाध्यं तपस्विनाम्
सहस्रसंख्यै स्तल्लोकैः, पीयमान मनेकशः। जगाम न क्षयं वारि, सङ्घः स्वस्थः क्षणादभूत्
तत्कुण्ड वारि सम्पूर्णं, मद्याप्यस्ति तदाद्यपि। प्रत्यब्दंवासरे तस्मि नूकेश गणसेविनः
श्राद्धा श्चन्द्रावती सत्का, स्तत्र पद्मावटस्थिताः। साधर्मिकानां, वात्सल्यं कुर्वते भोजनैर्जलैः

"उपकेशगच्छ चरित्र"

सोमाशाह नाम का बड़ा सम्पन्न श्रावक भी बसता था आप धन में कुबेर और कुटम्ब में कौटुम्बिक ही कहलाते थे। जैन धर्म में तो आपकी हाड़ हाड़ की मींजी रंगी हुई थी आपने कई बार श्रावक की प्रतिमा का भी आराधन किया अतः आप सिवाय देवगुरु के किसी को सिर नहीं झुकाते थे फिर भी आप संसार में बैठे थे। बहु कुटम्बी भी थे। कहां ही जाना आना पड़ जाय तो अपने हाथ की मुद्रिका में आचार्य कक्कसूरि का छोटासा चित्र बनाकर मंडवा लिया था कभी कहीं सिर झुकाने का काम पड़ता तो उस मुद्रिका को आगे कर अपने गुरु देव को नमस्कार कर लेते थे। इस बात को प्रायः दूसरों को मालूम नहीं थी। कहा है कि कभी कभी सोना की परीक्षा के लिये उसको अग्नि में तपाया जाता है ताड़ना छेदना और घर्षण भी सहने पड़ते हैं। इसी प्रकार धर्मी पुरुषों की परीक्षा का समय भी उपस्थित होजाता है किसी छिद्रान्वेषी ने सोमाशाह की बात को जान ली और इस फिराक में समय देख रहा था कि कभी मौका मिले तो सोमाशाह की खबर लूं। मारोट कोट के शासनकर्ता के पुत्र नहीं था जिसका राजा और प्रजा सब को बड़ा भारी फिक्र था कई समय निकल चुका था अन्तराय टूट होने से पर्युषण की कृपा से राजा के पुत्र हुआ जिस बात की राज प्रजा में बड़ी खुशी हुई। नगर के सब लोग राजा के पास गये और राजा को नमस्कार कर अपनी अपनी भेट नजर की उस समय सोमाशाह भी गया उसने राजा को नमस्कार किया पर वह जिसकी मुद्रिका उसके हाथ में पहनी हुई थी अवसर पाकर वह छिद्रान्वेषी भी वहां हाजर था सब लोगों के जाने के बाद राजा को कहा कि आपके पुत्र होने की सब नगर वालों को खुशी है और सबने आपको भक्ति के साथ नमस्कार भी किया है पर एक सोमाशाह नाम का सेठ है जो तो वह बड़ा ही धर्मी कहलाता है पर उसके दिल में इतना घमंड है कि वह किसी को नमस्कार नहीं करता है दूसरों को तो क्या पर वह तो आपको भी नमस्कार नहीं करता है? राजा ने कहा कि तुम्हारा कहना गलत है कारण अभी सोमाशाह आया था और उसने मुझे नमस्कार भी किया था छिद्रान्वेषी ने कहा हजूर वह तो आपको धोखा दिया है नमस्कार आपको नहीं किया पर उसके हाथ में मुद्रिका है उसमें उनके गुरु का चित्र है उनको नमस्कार किया है आपको नहीं? यह सुनकर राजा को बड़ा ही गुस्सा आया तत्काल ही दूत भेज कर सोमाशाह को बुलाया। सोमाशाह समझ गया परन्तु वह धर्म का पक्का पाबंद था हाथ में मुंदरी पहन कर राजा के पास जाकर नमस्कार किया तो राजा ने मुंदरी देखी और पूछा कि सोमा तूं नमस्कार किसको किया? सोमाने कहा कि परम पूजनीय गुरु देव को। राजाने कहाँ कि क्या तूं तेरे गुरु के अलावा दूसरे को नमस्कार नहीं करता है? सोमा ने कहा नमस्कार करने योग्य एक गुरुदेव ही है। देखता हूं तुम्हारे गुरु तुम्हारी कैसी सहायता करता है राजाने अपने अनुचरों को हुक्म दिया कि इस सोमा को सात सांकलों से जकड़कर बन्ध दो और अंधेरी कोठरी में डालकर एक ताला लगादो। बस फिर तो क्या देर थी अनुचरों ने सोमाशाह को सात सांकलों से बन्ध कर अन्धेरी कोठरी में डाल कर कोठरी के एक बड़ा ताला लगा दिया और चाबी लाकर राजा के सामने रखदी। थोड़ी देर के लिये दुश्मनों के मनोरथ सफल हो गए धर्मी लोगों को बड़ा भारी रंज हुआ पर राजा के सामने किसका क्या चलने वाला था कारण उस जमाना के कानून तो सब सत्ताधारियों के मुँह में ही रहते थे अर्थात् वे जैसा मुंह को चाहते थे वे करगुजरते थे। और सोमाशाह कारागृह में बैठा हुआ यह सोच रहा था कि पूर्व भवों में संचित किये हुए शुभाशुभ कर्म भोगवते में तो मुझे तनक भी दुःख नहीं है पर मेरे कारण जैनधर्म की निंदा होगा इस बात का मुझे बड़ा ही दुःख है गुरुदेव बड़े ही चमत्कारवाले हैं इसमें किसी प्रकार का

सदेह नहीं पर वे निस्पही है उनको इन ससारी बातें से कुच्छ भी प्रयोजन नहीं है परन्तु सोमाशाह को गुरुवर्य्य कक्कसूरिजी महाराज का पक्का इष्ट था उसने कारागृह में रहा हुआ आचार्य कक्कसूरि के गुणों का एक अष्टक सरस कवितामय बनाया ज्यों ज्यों एक एक काव्य बनता गया और एक एक शांकल तुटती गई अत सात शाकलों सात काव्यों बनाने से तुट गई और आठवा काव्य बनाते ही कोठरी का ताला तुट पड़ा और द्वार के कपट स्वय खुल गये सोमाशाह राजा के सामने आकर खड़ा हुआ जिसको देख राजा और राज सभा के लोग आश्चर्य में मुग्ध बनगये और सोमाशाह के इष्ट की भूरि भूरि प्रशंसा कर सोमाशाह को लाख रुपयों का इनाम दिया । सोमाशाह राजा के पास से चलकर अपने घर पर नहीं आया पर सीधा ही भरोंच नगर की ओर रवाना होगया क्योंकि उसने पहिले ही प्रतिज्ञा करली थी कि मैं गुरु कृपा से इस उपसर्ग से बच जाउ तो पहिले गुरुदेव के चरणों का स्पर्श करके ही घर पर जाउगा । हां दुःख में प्रतिज्ञा करने वाले बहुत होते है पर दुःख जाने के बाद प्रतिज्ञा पालन करने वाले सोमाशाह जैसे विरले ही होते है। सोमाशाह अपनी प्रतिज्ञा को पालन करने के लिये चलकर भरोंचनगर आया जो मारोटकोट से बहुत दूर था परन्तु उस सकट को देखते वह कुच्छ भी दूर नहीं था—

पाठकों ! आप आचार्य रत्नप्रभसूरि के जीवन में पढ़ आये हैं कि आद्यचार्य रत्नप्रभसूरि ने दीक्षा ली थी उस समय आप एक पन्ना की मूर्त्ति साथ में लेकर ही दीक्षा ली थी और वह मूर्त्ति क्रमश आपके पटधरों के पास रहती आई है और जितने आचार्य उपकेशगच्छ में हुए है वे सब उस पार्श्वनाथमूर्त्ति की भाव पूजा अर्थात् उपासना करते आये हैं वह मूर्त्ति आज आचार्य कक्कसूरि के पास है जिस समय आचार्य श्री मूर्त्ति की उपासना करने को विराजते थे उस समय देवी सच्चायिका भी दर्शन करने को आया करती थी। भाग्य विसात् उधर तो सोमाशाह सूरिजी के दर्शन करनें को आता है और इधर भिक्षा का समय होने से साधु नगर में भिक्षार्थ जाते हैं देवी सच्चायिका एकान्त में सूरिजी के पास बैठी है और सूरिजी मूर्त्ति की उपासना कर रहा है सोमाशाह ने उपाश्रय साधुओं से शून्य देखा तथा एक ओर रूप योवन लावण्य सयुक्त युवा स्त्री के पास

"तत्पट्टे कक्कसूरि द्वादश वर्षयावत् पष्टतपं आचाम्ल सहितं कृतवान् तस्यस्मरण स्तेतिण मरोटकोटे सोमक श्रेष्टिस्य शृंखला त्रुटिता तेन चिंतितं यस्य गुरोनाम स्मरणेन वन्धन रहितो जातः एकवारं तस्य पादौ वन्दामि। स भरूकच्छे आगतः अटण वेलायां सर्वे मुनीश्वरा अटनार्थ गतास्ति। सचाका गुरु अग्रेस्थितास्ते द्वारो दतोस्ति तेने विकल्पं कृतं । सच्चायिका शिक्षा दत्ता मुखे रूधरो वमति । मुनीश्वरा आगता वृद्धगणेशेन ज्ञातं भगवन् द्वारे सोमक श्रेष्टि पतितोस्ति आचार्यैं ज्ञातं अयं सचिका कृत, सचिका आहुता । कथितं त्वया किं कृतं ? भगवान मया योग्यकृत रे पापिष्ट यस्य गुरू नाम ग्रहणे वन्धनोनि शृंखलानि त्रुटितानि सति स अनाचारे रतो न भविष्यति परं एतेन आत्मकृत लब्धं । गुरूणा प्रक्तो कोपं त्यज शान्ति कुरु ? तया कथितं यदि असौ शान्ति भविष्यति तदा अस्माक आगमन न भविष्यति मत्यक्षं। गुरुणार्चिंतित भवितव्यं भवत्येव स सज्जी कृतः सचायका वचनात् द्वयानाम भण्डारे कृतः श्री रत्नप्रभसूरि अपर श्री यक्षदेवसूरि एते सप्रभावा एतदने हासि

"उपकेशगच्छ पट्टावली"

आचार्य को एकान्तमें बैठे हुए देखे उसके परिणामोंमें पलटा खाया वह दिल में सोचने लगा कि मेरी समझ में भ्रांति है क्या एकान्तमें मुंहपत्ती लेकर बैठने वालों का इतना प्रभाव हो सकता है कि लोहा की शंका दूर जाय ? नहीं ! कदापि नहीं !! यह तो मेरे पुन्यका ही प्रभाव था कि शंका दूर गई। जैसे ही सोमाशाह वापिस लौटने के लिये कदम उठाया वैसे ही वह भूमि पर गिर पड़ा और उनके मुँहसे रक्त धारा बहने लग गयी और शाह मूर्छित सा हो गया। जब मुनि भिक्षा लेकर आये थे उपाश्रय के द्वार पर सोमाशाह बुरी हालत में पड़ा हुआ देखा मुनियों ने सब हाल सूरिजी से निवेदन किया इस पर सूरिजी ने सोचा की यह देवी का ही कोप है अतः सूरिजी ने देवी से कहा देवीजी सोमाशाह गच्छ का परम भक्त श्रावक है इस पर इतना कोप क्यों है ? देवीने कहा प्रभो ! इसकी मतिमें भ्रांति होगई है जिसके ही फल भुगत रहा है पूज्य वर ! इस दुष्टने आप जैसे महान् प्रभाविक आचार्य के लिये बिना विचार तुच्छ भाव ला आया तो दूसरों के लिये तो कहनाही क्या है ? सूरिजी ने कहा देवीजी ! आप इसका अपराध को माफ करो और इसको पुनः सावचेत करदो ? देवीने कहाँ पूज्य ! यह तुच्छ बुद्धि वाला मनुष्य सावचेत करने काबिल नहीं है इस दुर्मति को तो इससे भी अधिक सजा मिलनी चाहिये। सूरिजी ने सोमाशाह पर दया भाव लाकर देवीको पुनः आग्रह कहाँ देवीजी आप अपना क्रोध को शान्त करें और इस सोम को सावचेत करदो कारण उत्तम जनका यह कर्त्तव्य नहीं है कि तुच्छ की तुच्छता पर लक्ष कर उसके साथ तुच्छता का बरताव करे यदि ऐसा किया जाय तो तुच्छ और सज्जन में अन्तर ही क्या रह जाता है अतः आप मेरे कहने से ही शान्त होकर इसको सावचेत कर दो इत्यादि देवीने क्रोध में अपने आप को भूल कर कह दिया कि या तो आपकी सेवामें मैं ही प्रत्यक्ष रूप में आऊंगी या सोमाशाह। यदि आप सोमको सावचेत करावोगे तो मैं अब प्रत्यक्ष रूपमें नहीं आऊंगी अर्थात्

[1] "देवताऽवसरसीन, सूरीणां पुरतः स्थितम्। वीक्ष्य सत्यकादेवी, तीव्रा सापोन्न वर्तते॥
ध्याचिन्तय चा हा कष्टं यदेवं निधि सूरयः। अभूवन् यदया लीलं, पुर्यामपि स्त्रियामपि।
ईदृशं कर्म मन्यन्ते ते विचिन्त्येति न्य वर्तते। यावत्तावद् पपात सोम्यो, मुखेन रुधिरं वमन्॥
यतो मयूर पथिन रार टीविस्य कष्टतः मतः स्वाः सूरयः भुक्त्वा, सद्यो यति युता गताः
विलोक्य तं तथा यस्त, हेतु जिज्ञासागुरुः जाग्रद् दृष्योंश्री तावत् सत्यकागुरु मब्रवीद्
असौ दुरात्मा भारतीरश्या येन चिन्तित यान्तर। मर्यादी दर्शनी हो मारयिष्यामि मां भवम्
सत्यमेऽपि पौर लोके सम्यो यद्योऽस्ति योऽमितव् सोऽपि जिज्ञा पपमास देवी भून्यरप मस्तकः॥
प्रसीद देवी ! हे दासो मस्कोऽयं सर्वदाऽपि हि। कृताऽपराध मत्र स्तात् विदु न मगनस्य भ्रम्।
देवी मोपैन भुवामि यापिनं साम गामिन परं करोमि किं पूज्य देशो वाऽमेव वसाम्॥
इति प्ररिगिराद्देवी तुंमोष तमुपरसकम् सोऽपि नत्वागुरु पादौ, क्षमा माख सास सादरं।
अत प्रभृति सूरि तु ये सांप्रतं विषमयुगे। निपरी तं चित्तपतः ज्ञिमत क्षिवायिष्यसि॥
ततः मस्यक्ष रूपेण नागमिष्याम्य मतः परम कार्यं मादेश दानेन मोक्षाय्यं स्मृतय त्वया।
देवता यसरे तुभ्यं धर्म लाभं मुदा वयम् दास्याम दृष्टी दानी व्यवस्थाऽद्युत दाऽजयो॥
"उपकेश गच्छ चरित्र"

दोनों में से एक ही आवेगा ? सूरिजी ने सोचा कि अब दिन दिन गिरताकाल आ रहा है लोग तुच्छ बुद्धि और ओच्छाकोटावाले होंगे। जब मेरे लिये एक श्रद्धा सम्पन्न श्रावक के विचार बदल गये तो भविष्य में न जाने क्या होगा अत देवी को प्रत्यक्ष रूप में न आना ही अच्छा है बस सूरिजी ने कह दिया देवीजी आप प्रत्यक्ष रूप से आवे या न आवे पर सोमाशाह को तो सावचेत करना ही पड़ेगा। देवीने सूरिजी का आदेश को शिरोधार्य कर सोमा को सावचेत कर दिया। सोमाशाह ने आचार्य श्री के चरणों में शिर रख कर गद्गद् स्वर से अपने अपराध की माफी मागी साथ में देवी सचायिका से भी अपने अज्ञानता के बस कियाहुआ अपराध की क्षमा करने की बारबार प्रार्थना की। सूरिजी महाराज बड़े ही दयालु एव उदारवृति वाले थे सोमा को हित शिक्षा देते हुए उसके अपराध कि माफि बक्सीस की तथा देवी को भी कहा देवीजी ये सोमा आपका साधर्मी भाई है अज्ञानता से आपका अपराध किया है पर ये अपराध पहिली बार है अत. इसको क्षमा करना चाहिये अब सूरिजी के कहने से देवी शान्त होकर सोमाशाह को माफि दी। बाद सोमाशाह सूरिजी को वन्दन और देवी से शिष्टाचार कर अपने स्थान को गया और देवीने कहा पूज्यवर ! मैं हित भाग्यनी हूँ कि आवेश में आकर प्रतिज्ञा करली कि अब मैं प्रत्यक्ष में नहीं आउगी अत' मैं आपकी सेवा से वंचित रहूगी यह भी किसी भव के अन्तराय कर्म होगा। खैर प्रभो ! मैं आपकी तो सदा किंकरी ही हूँ प्रत्यक्ष में नहीं तो भी परोक्षपना में गच्छ का कार्य करती रहूँगा। सूरिजी ने कहा देवीजी यह लोक युक्ति ठीक है कि 'जो होवा है वह अच्छा के लिये ही होता है' अब गिरता काल आवेगा दुर्बुद्धिये और छेद्रगवेषी लोग अधिक होंगे। इस हालत में आपका प्रत्यक्षरुप में आना अच्छा भी नहीं है। आप परोक्षपने ही गच्छ का कार्य किया करो और मैं देवता के अवसर पर आपको धर्मलाभ देता रहूँगा। देवीने सूरिजी के वचनों को 'तथाऽस्तु' कहकर सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! आपके दीर्घदृष्टि के विचार बहुत उत्तम हैं भविष्य काल ऐसा ही आवेगा कारण यह हुन्डासर्पिणी काल है न होने वाली वाते होगा अत' मैं एक अर्ज और भी आपकी सेवा में कर देती हूँ कि अपने गच्छ में आचार्य रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि आज पर्यन्त महाप्रभाविक हुए हैं अब ऐसे प्रभाविक आचार्य होने बहुत मुश्किल हैं अत इन दोनों नामों को भंडार कर दिये जाय कि भविष्य में होने वाले आचार्यों के नाम रत्नप्रभसूरि एव यक्षदेवसूरि नहीं रक्खा जाय और दूसरा इस गच्छ में उपकेशवश में जन्मा हुआ योग्य मुनि को ही आचार्य बनाया जाय। देवी का कहना सूरिजी के भी जचगया और आपश्री ने कहाँ ठीक है देवीजी अपका कहना मैं स्वीकार करता हूँ और हमारे साधुओं तथा श्री संघ को सूचीन करदूँगा कि अब भविष्य में होने वाले आचार्यों के नाम रत्नप्रभसूरि एव यक्षदेवसूरि नहीं रखेगा। और उपकेश वश में जन्मेहुए योग्य मुनि को आचार्य बनाने का पूर्वाचार्यों से ही चला आ रहा है अब और भी विशेष नियम बना दिया जायगा तत्पश्चत् सूरिजी को वन्दन कर देवी अपने स्थान को चली गई बाद आचार्य श्री ने विचार किया--कि भगवान् महावीर का शासन २१००० वर्ष तक चलेगा जिसमें अभी तो पूरा १००० वर्ष भी नहीं हुआ है जिसमें भी शासन की यह हालत हो रही है जैसे एक ओर तो महावीर के सन्तानियों में कई गच्छ अलग अलग हो कर सगठन बल को छिन्न भिन्न कर रहा है दूसरी तरफ पार्श्वनाथ सन्तानियों की भी अलग अलग शाखाएँ निकल रही हैं जो उपकेश और कोरंट गच्छ ही था जिसमें कुकुदाचार्य नया आचार्य बन गया। भले वह विद्वान एव समझ दार है पर उनकी सन्तान में न जानने भविष्य में यह सम्प बना रहेगा या नहीं। इधर देवी प्रत्यक्ष में आना भी बन्ध हो गया है इत्यादि दिन भर आपने शासन का

हित चिन्तवन में ही व्यतीत किया। आखिर आपने सोचा कि "बंधं भगवया। जिम वंदं पवमि संति" इस पर ही संतोष करना पड़ा दूसरा तो उपाय ही क्या था ?

जिस समय कुंकुदाचार्य हुआ था उस समय आचार्य कक्कसूरि की आज्ञा में पांच हजार मुनि और पैंतीस सौ के करीबन साध्वियों थी और वे मुनि कई शाखाओं में विभक्त थे जैसे १—सुन्दर २ प्रभ ३ कनक ४ मेरु ५ चन्द्र ६ मूर्ति ७ सागर ८ हंस ९ तिलक १० कलश ११ रत्न १२ समुद्र १३ कल्लोल १४ रंग १५ शेखर १६ विशाल १७ भूषण १८ विनय १९ राज कुमार २१ आनन्द २२ रुची २३ कुम्भ २४ कीर्ति २५ कुशल २६ विजयादि। शाखा का मतलब यह है कि मुनियों के नाम के अन्त में यह विशेषण लगाया जाता है जैसे कि—

१ सोमसुन्दर	८ हीरहंस	१५ शान्तिशेखर	२२ विनयरुची
२ सुमति प्रभ	९ सागर तिलक	१६ धर्मविशाल	२३ मंगलकुम्भ
३ राज कनक	१० कीर्तिकलश	१७ ज्ञान भूषण	२४ धनकीर्ति
४ ज्ञानमेरु	११ क्षेमारत्न	१८ सुमतिविनय	२५ शान्तिकुशल
५ कुशलचन्द्र	१२ आर्य समुद्र	१९ धनराज	२६ कनकविजय
६ तपोमूर्ति	१३ चारित्र कल्लोल	२० सुमतिकुमार	
७ दर्शनसागर	१४ विजयरंग	२१ लोकानन्द	

इत्यादि नाम के साथ विशेषण को शाखा कहते हैं इस प्रकार मुनियों की विशाल संख्या होने से ही वे दूर दूर प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का प्रचार एवं जैन धर्मोपासकों को धर्मोपदेश देकर धर्म बगीचा को हराभरा एवं फला फूला रखते थे। जब से जैन श्रमणों का विहार क्षेत्र संकीर्ण हुआ तब से ही जैन संख्या घटने का श्रीगणेश होने लगा और उसका ज्वलन्त प्रमाण आज हमारी दृष्टि के सामने विद्यमान है। आचार्य कक्कसूरि व मुनियों का विहार पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक होता था इतना ही क्यों पर स्वयं आचार्यश्री एक बार पृथ्वी प्रदक्षिणा दिया ही करते थे इसका कारण उनके अंतरात्मा में जैन धर्म की लगनी।

मांडव में इस प्रकार की घटना घटने के बाद सूरिजी का विचार वहां से विहार करने का हुआ पर वहां का श्रीसंघ पर आई गंभ को कब जाने देने वाला था। उन्होंने चतुर्मास की विनति की पर सूरिजी का दिल वहां ठहरना नहीं चाहता था अतः वहां अन्य मुनियों को चतुर्मास का निर्देश कर आप विहार कर दिया और क्रमशः कोंकण प्रान्त में पधार कर सोपारपट्टन में आपने चतुर्मास किया आपके विराजने से वहां की जनता को बहुत लाभ हुआ पर आचार्य श्री के मनमंदिर में भविष्य के लिये कई प्रकार के विचार होता था। एक समय देवी सच्चायिका सूरिजी को वन्दन करने को आई परोक्ष पने रह कर वन्दन किया। सूरिजी धर्मलाभ देकर अपने दिल के विचार देवी को कहीं इस पर देवी ने कहा प्रभो! यह काल हुन्डावसर्पिणी है इसमें कई बार ऐसा प्रसंग हुआ करेगा। फिर भी आप जैसे शासन के शुभचिन्तक एवं शासन के स्तम्भ आचार्यों से शासन चलता ही रहेगा। अब आपका विहार दक्षिण एवं महाराष्ट्रीय की ओर हो तो विशेष लाभ का कारण होगा। इत्यादि वार्तालाप के अन्त देवी सूरिजी को वन्दन कर चली गई। सूरिजी ने सोचा कि ठीक है इधर तो बहुत मुनि विहार करते ही हैं कुंकुदाचार्य भी इधर ही हैं बहुत अर्सा हुआ दक्षिण में अभी कोई आचार्य नहीं गये हैं वहां पर बहुत से साधु भी विहार करते हैं अतः देवी का कथनानुसार मेरा विहार दक्षिण

ही में लाभ कारी है अतः चतुर्मास समाप्त होते ही आस पास के सब साधु एकत्र होगये ५०० मुनि तो आप अपने साथ में चलने वालों को रखलिये शेष साधुओं को कुंकुंदाचार्य के पास जाने की आज्ञा देदी और भी कुंकुंदाचार्य को समाचार कहलादिया कि सब साधुओं की सारसभाल का भार आपके आधीन है इत्यादि। बाद सूरिजी ने दक्षिण की ओर विहार कर दिया। आपके विहार की पद्धति ऐसी थी कि एक रास्ता से जाते थे तब वापिस लौटते समय दूसरे ही मार्ग आते थे कि इधर उधर के सब क्षेत्रों की स्पर्शना एवं जनता को उपदेश का लाभ मिल जाताथा पट्टावली कार लिखते हैं कि आचार्य श्री ने तीन वर्ष तक उधर विहार किया जिससे जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया और वहां विहारकरने वाले मुनियों का उत्साह भी बढगया। तत्पश्चात् आपने आवंति प्रदेश मे पधार कर उज्जैननगरी में चतुर्मास किया। वहाँ पर खटकुंपनगर का शाह राजसी और आपका पुत्रधवल आया और उसने प्रार्थना की कि प्रभो! आप मरुधर की ओर पधारें। सूरिजी ने कहाँ राजसी मरुधर में कुंकुंदाचार्य विहार करते हैं मेरी इच्छा पूर्व की यात्रा करने की है सब साधु भी पूर्व की यात्रा करने के इच्छुक हैं। राजसी ने कहा पूज्यवर। आपके इस लघु शिष्य ने मन्दिर बनाया है उसकी प्रतिष्ठा करवानी है हम लोगों ने कुंकुंदाचार्य से प्रार्थना की पर आपने फरमाया की मूर्तियों की अंजनसिलाका जैसा वृहद् कार्य तो हमारे गच्छ नायक सूरीश्वरजी ही करवा सकते हैं अत' हम आपश्री की सेवा में उपस्थित हुए हैं सूरिजी ने धवल की ओर देखा तो धवल की भाग्य रेखा होनहार की सूचना देरही थी। राजसी चारदिन ठहरकर सूरिजी का अमृत एव त्यागवैराग्य मय व्याख्यान सुना। पर सूरिजी के व्याख्यान का धवल पर तो इतना प्रभाव हुआ कि वह ससार से विरक्त होकर सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो! आप शीघ्रही खट्कूप पधारे जिससे हमलोगों को आत्मकल्याण का समय मिले। सूरिजी ने कहा क्यों धवल! हम लोग तुम्हारे वहा आवें तो सबही तुं आत्मकल्याण सम्पादन करेगा? धवल ने कहा पूज्य पाद! आपके पधारने की ही देरी है पास में बैठा राजसी भी सुन रहा था पर उसने कुछ भी नहीं कहाँ। तथा सूरिजी ने राजसी एव धवल को विश्वास दिलादिया कि क्षेत्र स्पर्शना हुइतो हम शीघ्रही मरुधर में आवेंगे।

राजसी एवं धवल सूरिजी को वन्दन कर वापिस लौटगये। बाद सूरिजी को कुंकुन्दाचार्य की विनयशीलता के लिये अच्छा संतोष हुआ। खैर उज्जैन का चतुर्मास से सूरिजी को अनेक प्रकार से लाभ हुआ चतुर्मास समाप्त होते ही आपने वहा से विहार कर दिया और रास्ते के ग्राम नगर में धर्मोपदश देते हुए। मरुधर एव पट्कूप नगर की ओर पधारे वहा का श्रीसघ एव शाह राजसी एव धवल ने सूरिजी का बड़ा भारी स्वगत किया। उधर से कुंकुन्दाचार्य ने सुना की गच्छनायक आचार्य कक्कसूरिजी महाराज खट्कूप पधार गये है अत' वे भी अपने शिष्यों के साथ सूरिजी को वन्दन करने को खटकूप नगर पधारे। सूरिजी ने आपका योग्य सत्कार किया और आपके कार्य कुशलता की सराहना कर आपका उत्साह में खूब वृद्धि की दोनों आचार्यों का मिलाप एव वात्सल्या जनता के दील को प्रफूल्लित कर रहा था। दोनों आचार्यों के अध्यक्षत्व में मुमुक्षु धवल को दीक्षा देकर उसका नाम राजहस रक्ख दिया बाद इधर उधर भ्रमण कर पुनः खटकुप पधार कर शाह राजसी के बनाये मन्दिर की एव मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा धाम धूम से करवाई तत्पश्चात कई अर्सा से दोनों आचार्य अपने शिष्यों के साथ उपकेशपुर पधारे। वहां के श्रीसघ को बड़ी खुशी हुई उन्होंने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया भगवान् महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा की। सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था। वहाँ पर भिन्नमाल का संघ दर्शनार्थ आया था और उन्होंने चतुर्मास की

विनति की पर उपकेशपुर का संघ पर आई गंगा को कब जाने देवे आशा था अतः कुंकुंदाचार्य को भिन्नमाल चतुर्मास की आज्ञा दी और आपने उपकेश पुर में चतुर्मास करने का निश्चय किया बात इतनी नहीं थी पर भवितव्यता बलवंती होती है भिन्नमाल संघ के दिल में इस द्वितीय भाव पैदा होगये । अतः उन्होंने सोचा कि कुंकुंदाचार्य को भिन्नमाल संघ ने आचार्य बनाये थे यह बात कक्कसूरिजी के दिल में अभी नहीं निकली है कि उनके लिये कुंकुंदाचार्य को आज्ञा मिली है । अतः वे इस विषय में ही चलकर उनके पास को गये । बाद कुंकुंदाचार्य भी विहार करने की आज्ञा मांगी तो कक्कसूरि ने कहा कि मेरा विहार पूर्व की ओर करने का है अतः जिन्हे साधुओं की सारसंभार आपके सुपुर्द करनी चाहती है कारण मेरी शक्ति भी नाश के समय भी आपने पीछे की व्यवस्था अच्छी रखी थी । कुंकुंदाचार्य ने कहाँ पूज्यवर । मैं इतना तो योग्य नहीं हूँ पर आपश्री का हुक्म शिरोधार्य कर मेरे से बनेगी मैं सेवा अवश्य करूँगा इस प्रकार वार्तालाप हुआ बाद सूरिजी की आज्ञा लेकर कुंकुंदाचार्य ने भिन्नमाल की ओर विहार कर दिया एवं वहाँ जाकर चतुर्मास भी करदिया । आचार्य कक्कसूरि का चतुर्मास उपकेशपुर में होगया जिससे धर्म की खूब जागृति एवं प्रभावनाहुई । बाद चतुर्मास के अपने पांचसौ शिष्यों के साथ पूर्व की तरफ विहार कर दिया । भिन्नमाल का संघ कुंकुंदाचार्य को आचार्य कक्कसूरी के विरुद्ध में कई उल्टा पुल्टा बातें कही पर कुंकुंदाचार्य ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं किया इतनाही क्यों पर उनको यहाँ तक समझाया कि इस प्रकार मतभेद करने से भविष्य में हितकी पर अहित होगा । मैंने आचार्य पद्वी लेकर बड़ी भारी भूल की थी पर गच्छनायक आचार्य कक्कसूरि ने अपनी गंभीरता से उसको सुधारली अतः अब वह भूल नहीं करना करलेना चाहिये कि इससे अभिवृद्धि जाय । और यही बात कुंकुंदाचार्य ने कक्कसूरि को कही थी कि मैं मेरे ऊपर कोई भी आचार्य नहीं बनाऊंगा कि यह मतभेद नहीं समाप्त होजाय । आखिर कुंकुंदाचार्य विद्वान था कहा है विद्वजन भी हो पर विद्वान हो । इत्यादि पर कुंकुंदाचार्य के कहने पर भिन्नमाल संघ को संतोष नहीं हुआ फिर भी उन्होंने अपना आग्रह को नहीं छोड़ा और चतुर्मास के बाद कुंकुंदाचार्य भिन्नमाल से विहार कर दिया और आस पास के प्रदेश में भ्रमन करने लगे । आपका प्रभाव जनता पर बहुत अच्छा पड़ा था । आपने कई भावुकों को दीक्षा भी दीथी । आपके साथ कई ९ साधु शामिल होगये थे । आप की अवस्था वृद्ध होगयी थी बाद कई चौमास करने के बाद पुनः भिन्नमाल पधारे तो भिन्नमाल का श्रीसंघ फिर सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो । अब आपकी वृद्धावस्था है तो हमारे लिये आपके हाथों से किसी योग्य मुनिको आचार्य बना दिजिये । कुंकुंदाचार्य ने कहाँ कि मैं आपसे पहिले ही कहचूका था कि मैं आचार्य कक्कसूरिजी को वचन देचूका हूँ कि मैं किसी को ऊपर नहीं बनाऊगा । अतः आप इस आग्रहको छोड़ दीजिये और एकही गच्छ नायक की आज्ञा का आराधन कीजिये । श्रीसंघ ने कहाँ पूज्यवर । आपश्री के आग्रह से यहाँ का श्रीसंघ गच्छ की परवाही छोड़कर आपको आचार्य बनाया और आपही इस गद्दी को खाली रखनी चाहते हो यह तो ऐक विश्वासघात जैसी बात है और । आप नहीं बनावोगे तो भी यहां का श्रीसंघ अपनी बातको कभी नहीं जाने देगा । किसी दूसरे को लाकर गादीधर तो अवश्य बनावेंगे । श्रीसंघ का कथन सुन सूरिजी को बहुत दुःख हुआ पर वे कर क्या सकते थे आखिर भवितव्यता पर संतोष कर अपनी अन्तिम संलेखना में लग गये और अन्त समय ११ दिन का अनसन कर स्वर्ग पधार गये

भिन्नमाल श्रीसंघने कुंकुंदाचार्य के कई मुनियों को अपने विचारों के शामिल बना कर उनके अन्दर

मुनि कल्याणसुन्दर को कुंकुंदाचार्य के पट्टपर आचार्य बनाकर उनका नाम देवगुप्तसूरि रक्खदिया जब जाकर उनकों सवोष हुआ। वहा रे कलिकाल तुमकों भी नमस्कार है एक अपनी बात के लिये धर्म शासन एव गच्छ के हिवाहित की कुछ भी परवाह नहीं की इतना ही क्यों पर स्वयं कुंकुंदाचार्य के कहने को भी ठुकरादिया इस शाखा के बीज तो कुकुदाचार्य ने ही वोये थे पर भिन्नमाल श्रीसघ ने उसमें जौंनडालकर चिरस्थायी बनाने का दुसाहस करके उपकेशगच्छ के दो टुकड़े करदिये जो परम्परा से चले आरहे थे वे उपकेशपुर की शाखा और कुकुंदाचार्य के अनुयायियों की भिन्नमाल शाखा नाम पड़ गये आगे चलकर इन दोनों शाखाओं के आचार्यों के नाम कक्कसूरि देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि रखेजाने लगे। जिससे पट्टावली में इतना मिश्रण एव गदबद हो गई कि जिसका पता लगाना कठिन होगया। कारण पिछले लेखकों ने उपकेशपुर शाखा में भिन्नमाल शाखा के आचार्यों की कई घटना लिखदी और कई भिन्नमाल शाखाकी पटावली में उपकेशपुर शाखा के आचार्यों की घटना लिखदी है इतना ही क्यों पर आगे चलकर एक सिद्धसूरिजी से खटकूँपनगर की और कक्कसूरिजी से चन्द्रावती शाखा निकाली उनके आचार्यों के भी वे ही तीननाम रखा गया कि जिससे मिश्रण की कठिनाइयों और भी बढ़गई जिसकों हम आगे चलकर बतावेंगे कि इस उलझनों को सुलझाने में अनेक प्रकार बारीकी से गवेषना करने पर भी पूर्ण सफलता मिलनी मुश्किल होगई है।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज पूर्व की यात्रा की जिसमें आपको पाच वर्ष व्यतीत होगया बाद वहा से बनारस हस्तनापुर वगैरह की यात्रा कर पचाल कुनाल होते हुए सिन्ध में पधारे वहाँ आपको खबर मिली कि कुंकुदाचार्य का स्वर्गवास होगया और भिन्नमाल संघ ने आपके पट्ट पर देवगुप्तसूरि नाम का आचार्य बना दिया है इत्यादि जिसको सुन कर आचार्यश्री को बहुत रज हुआ। पर आपकी पहिले से ही धारणा थी कि कुकुदाचार्य भले विद्वान हो पर पीछे शायद कोई ऐसा निकल जाय इत्यादि। आखिर आपकी धारणा सत्य ही निकली। सूरिजी ने भवितव्यता पर ही सतोष किया। आपश्री ने कच्छ भूमि की स्पर्शना करते हुए सौराष्ट्र में पधार कर तीर्थ श्रीशत्रुंजय की यात्रा की और वहा से मरुधर में पदार्पण किया और चन्द्रावती के श्रीसघ की आग्रह से चन्द्रावती में चतुर्मास कर दिया। चन्द्रावती का श्रीसघ शुरूसे ही उपकेशगच्छ का अनुरागी था सूरिजी वहा के श्रीसंघ से परामर्श किया कि उपकेशगच्छ की शाखा दो होगई यह तो एक होने की नहीं है पर भविष्य में जैसा उपकेशगच्छ और कोरटगच्छ में सम्प ऐक्यता रही इसी माफिक इन दोनों शाखा के आपस में सम्प ऐक्यता रहे तो अच्छी तरह मेल मिलाप मे शासन सेवा बन सके इत्यादि। सघ अग्रेस्वरों ने कहा पूज्यवर! आप शासन के हितचिंतक हैं आपकी उदारता का पार नहीं है हम लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि आप भिन्नमाल पधार के ऐक्यता बनी रहने के लिये बड़ा प्रयत्न किया पर वह कलि की क्रूरता को पसन्द नहीं हुआ आखिर उसने अपना प्रभाव डाल ही दिया। अब इसके लिए तो केवल एक ही मार्ग है कि चतुर्मास के बाद यहा पर एक श्रमण सभा की जाय और श्रमण सघ एकत्र हो उसको भविष्य का हित समझाया जाय इत्यादि। सूरिजी ने स्वीकार कर लिया। सूरिजी का चतुर्मास अच्छी तरह से होगया विशेष उपदेश सम्प ऐक्यता सगठन के विषय का दिया जाता था इधर श्रीसघ ने संघ सभा की तैयारियें करनी आरम्भ करदी। और आमन्त्रण पत्रिकाएँ नजदीक एव दूर दूर भेजवा दीं तथा मुनियों के लिये खास खास श्रावकों को भेजे गये थे वही माघ शुक्ल पूर्णिमा का शुभ दिन सभा के लिये मुकर्रर कर दिया जिससे नजदीक एव दूर दूर प्रान्तों से भी मुनियों के आने में सुविधा रहे। बहुत वर्ष हुए आचार्यश्री भ्रमण करने में

ही रहे थे कारण आपश्री का विश्वास कुकुदाचार्य पर था और उन्होंने गच्छ की सार सम्भाल भी अच्छी तरह से की थी पर अब तो सब व्यवस्था आपको ही करनी पड़ेगी ठीक समय पर उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ और सन्तानियों में सम्राट् नागेन्द्र निर्वृत्ति विद्याधर कुल के तथा अन्य भी आसपास में विहार करने वाले मुनिगण खूब गहरी तादाद में आये क्योंकि उस समय मुनियों की संख्या भी हजारों की थी पर कुकुदाचार्य के वृद्ध पर अपने कई साधुओं को लेकर पूर्व की ओर यात्रार्थ प्रस्थान कर दिया था। शेष रहे हुए मुनि अग्रा-वणी था भी गये थे इसी प्रकार भिन्नमाल का संघ भी खासा संख्या में हो आया था सूरिजी और अग्रगण्यों का संघ समझ गया कि इसमें अधिक कारण भिन्नमाल संघ का ही है खैर। ठीक समय पर सभा हुई जिसमें अन्योन्य मुनियों के व्याख्यान के पश्चात् आचार्य कक्कसूरि का व्याख्यान हुआ जिसमें आपने आचार्य स्वयंप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि के समय का इतिहास बड़े ही महत्त्व पूर्ण एवं मार्मिक शब्दों में कह कर यह बतलाया कि इन महापुरुषों ने हजारों कठिनाइयों को सहन कर अनेक प्रदेशों में धर्म के बीज बोये और जिससे आचार्यों ने पल्लवित किया जिसका महाजन संघ रूपी एक कल्पवृक्ष आज फला फूला एवं हराभरा विद्यमान है इसमें मुख्यकारण प्रेमस्नेह ऐक्यता का ही है आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय पार्श्वनाथ संतानियों की दो शाखाएं हो गई थी जो उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ के नाम से कहलाई जाती थी बाद में पूर्व प्रदेश में विहार करने वाले महावीर संतानियों का भी आवन्ति लाट सौराष्ट्र एवं मरुधर में प्रचार था हुआ पर इन सब गच्छों में धर्मस्नेह और ऐक्यता इस प्रकार की रही कि अन्य लोगों को यह ज्ञात नहीं हुआ कि वे दो पार्टी एवं दो गच्छ-समुदाय के साधु है। यही कारण है कि वे वाममार्गियों के मूल छोड़ दिये शास्त्रार्थ में बौद्धों को एवं वेदान्तियों को नतमस्तक कर दिये और लाखों करोड़ों अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित कर चारों ओर जैनधर्म का झंडा फहरा दिया। प्यारे श्रमणगण! अब आपश्री की कसोटी का समय है कलिकाल आपकी इस प्रकार की परीक्षा करेंगे व कई ऐसे कारण भी उपस्थित करेंगे जो आपस में फूट डालने के कारण होंगे। पर आपकी नसों में भगवान महावीर का खून है तो तुम उन की परवाह मत करो और कलिकाल के शिरपर लात मार कर कह दो कि हम सब जैन एक है हमारा कर्तव्य है कि हम किसी प्रकार की कठिनाई की परवाह न करके साम्यभाव से धर्मप्रचार में लग जावेंगे। इतना ही क्यों पर धर्म के लिये हम हमारे प्राणों की भी परवाह नहीं करेंगे। हमारे अन्दर गच्छ समुदाय शाखा भले नाममात्र से पृथक्पृथक हो पर हम सबका ध्येय एक है ! ध्येय एक है !! कार्य एक है !!! हम भगवान वीर की सन्तान एक है इत्यादि अतः हम सब एक सूत्र में ग्रथित रहेंगे तब ही शासन की सेवा कर सकेंगे।

प्यारे मुनि पुंगवों! पूर्व जमाना के अनेक चमत्कारिक युगपुरुष और विधर्मियों के संगठित आक्रमण एवं विरोधियों के कठोर अत्याचार का इतिहास पढ़ने से रोमाञ्च खड़े हो जाता है पर धन्य है उन शासन संरक्षकों को कि उस विकट समय में भी वे कटिबद्ध तैयार रह कर इतना ही क्यों पर उन्होंने जैनधर्म को जीवित रखा है अब आप के लिये तो समयानुकूल है सब साधन मौजूद है जहाँ देखो वहाँ आपका ही झंडा फहराता है अब आप लोगों को शीघ्रातिशीघ्र कमर कस कर तैयार हो जाना चाहिये मुझे आशा ही नहीं पर दृढ़ विश्वास है कि जैनधर्म का प्रचार के लिये आप एक कदम भी पीछे न हटकर उत्साह पूर्वक आगे बढ़ने की कोशिश करेंगे। बस सूरिजी की ओजस्वी वाणी का चतुर्विध श्रीसंघ और विशेष श्रमणसंघ पर इस कदर का प्रभाव पड़ा कि उनकी अन्तरात्मा में एक नयी बिजली का ही संचार हो

गया कहा है कि वीरों की सन्तान वीर ही हुआ करती है सिंह भले थोड़ी देर के लिये गुफा में बैठ जाय पर जब हाथ लपटक कर गर्जना करता है तब सबके दिल की विजली जगृत हो जाती है सैना का सचालक वीर होता है वह केवल अपने वीर शब्दों से ही सैनिकों के हृदय में वीरता का संचार कर देता है आज हमारे सूरीश्वरजी ने भी उपस्थित श्रमण गण के हृदय में धर्म प्रचार की विजली भर दी है यही कारण है कि उन लोगों ने उसी सभा में खड़े होकर अर्ज की कि पूज्यवर। आज आपश्री ने सोये हुए श्रमण सघ को ठीक जागृत कर दिया है आप विकट से विकट प्रदेश में जाने की आज्ञा फरमावे हम जाने को तैयार है। सूरिजी ने कहा महानुभावों विकट प्रदेश तो पूर्वाचार्यों ने रखा ही नहीं है फिर भी आपका उत्साह भावि अभ्युदय की बधाई दे रहा है आपके इन शब्दों से चन्द्रावती के संघ का यह भागीरथ कार्य सफल हो गया है। सूरिजी ने श्रमण सघ के साथ दो शब्द श्राद संघ के लिये भी कह दिया कि रथ चलता है वह दो पहियों से चलता है अत श्रमण सघ के साथ आपको भी तैयार हो जाना चाहिये तन मन और धन से शासन सेवा ही करना आपका भी कर्त्तव्य है कहाँ पर भी मुनि अजैनों को जैन बनावे तो आपका भी कर्त्तव्य है कि उनके साथ सहानुभूति एव सब प्रकार का व्यवहार और उनकी सहायता कर उनका उत्साह को बढावे इत्यादि श्राद्वर्ग ने सूरिजी का हुक्म शिरधार्य कर लिया बाद भगवान् महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

दूसरे दिन इधर तो श्रीसंघ की ओर से आगन्तुकों का बहुमान स्वामिवात्सल्य पहरामणि का अयोजन हो रहा था इधर आये हुए श्रमणसघ में योग्य मुनियों को पद प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न हो रहा था सूरिजी ने बिना किसी भेद भाव के योग्य मुनियों को पदवियो प्रधान कर उनको प्रत्येक प्रान्त में विहार की आज्ञा देदी जिसको उन्होंने बड़े ही हर्ष के साथ स्वीकार कर प्रस्थान कर दिया

यों तो प्रत्येक आचार्य के शासन में धर्मप्रचार के निमित सभाएँ होती ही आई थी पर इस सभा का प्रभाव कुछ अजब ही था। इसका कारण एक तो आचार्य श्री कई वर्षों से भ्रमण में लगे हुए थे यह बात स्वभाविक है कि बिना नायक के सेना में शिथिलता आ ही जाती है दूसरा सभा करने से सब साधुओं को उपदेश मिला अत वे अपने कर्त्तव्य को समझकर स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण एवं शासन की सेवा के कार्य में लग गये इत्यादि सभा होने स धर्म की बहुत जागृति हुई।

आचार्य कक्कसूरि एक महान् धर्म प्रचारक आचार्य हुए हैं आपके शासन में कलिकाल ने अनेक प्रकार से आक्रमण किये पर आपकी विद्वता एव कार्य कुशलता के सामने उनको हार खाकर नत्तमस्तक होना पड़ा। आपके सामने अनेकानेक कठिनाइयों उपस्थित हुई पर आपने उनकी थोड़ी भी परवाह न करते हुए अपने प्रचार कार्य को आगे बढ़ाते ही रहे हजारों नहीं पर लाखो अजैनों को जैन बनाकर तथा अनेक महानु भावों को जैन धर्म की दीक्षा दे कर चतुर्विध श्रीसघ की वृद्धि की कइ मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्टाएं करवा कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया आपने तीर्थ यात्रार्थ देशाटन भी बहुत किया एव आप श्री ने अपने ४० वर्ष के शासन में जैन धर्म की बहुत कीमती सेवा की अत' आपकी अमर कीर्ति और धवल यश इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्ण अक्षरों से लिखा हुआ चमक रहा हैं। जैन ससार पर आपका महान् उपकार हुआ है जिसको हम एक क्षण मात्र भी भूल नहीं सकते है। यदि हम हमारी अज्ञानतासे ऐसे परमोपकारी महा पुरुष के उपकार को एक क्षण भर भी भूल जाय तो हमारे जैसा कृतघ्नी संसार में कौन हो सकेगा। अब

जैन समाज का सबसे पहला कर्तव्य है कि ऐसे महान् उपकारी पुरुषों के उपकार को हमेशों स्मरण में रख और सालोंसाल उनकी जयन्तियां मनावे—

आचार्य श्रीकक्कसूरिजी महाराज अपनी वृद्धावस्था में उपकेशपुर के श्रेष्ठिगौत्रीय शाह मंगला के सत्याग्रह से प्रस्थान हुए श्रीशत्रुंजय के संघ में पधारे थे संघ श्रीशत्रुंजय पहुँचा उस समय रात्रि में देवी सच्चायिका ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! कहते बहुत दुःख होता है पर कहे बिना भी रहा नहीं जाता है कि आपका आयुष्य अब सिर्फ ३२ दिन का रहा है अतः आप अपने पट्टपर योग्य मुनि को आचार्य बनाकर अंतिम सलेखना करावे इत्यादि। सूरिजी ने कहा देवीजी आपने बड़ी भारी कृपा की है कि मुझे सावधान कर दिया है मैं आपका बड़ा भारी उपकार मानता हूँ। देवीने कहा पूज्यवर। इसमें उपकार की क्या बात है यह तो मेरा कर्तव्य ही था जिसमें भी आप जैसे निस्पृहोपकारी महात्मा की जितनी सेवा की जाय उतनी ही कम है आपका और आप के पूर्वजों का मरेपर जो उपकार हुआ है उसकी और देखाजाय तो उस कर्ज का व्याज भी मेरे से अदा नहीं होता है इत्यादि सूरिजी का अन्तिम 'धर्मलाभ' प्राप्त कर देवीतो अपने स्थान पर चलीगई और सुबह उपकेशपुर के संघ एवं उपस्थित सकल श्रीसंघ के समक्ष में महा पुनीत सिद्धगिरि की शीतल छाया में उपाध्याय राजहंस को अपने पट्टपर आचार्य बनाकर उनका सर्वाधिकार आचार्य देवगुप्तसूरि के सुपर्द कर दिया। अधिकार का अब इतना ही था कि जो आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा लेते समय स्वयंप्रभ पार्श्वमूर्ति थी और वह परम्परा से वंशानुक्रम आचार्य की उपासना के लिये रहती थी कक्कसूरि ने नूतनाचार्य देवगुप्तसूरि को देदी तत्पश्चात् समय जान कर कक्कसूरि ने अनशन कर दिया और २७ दिन के अन्त में पांच परमेष्ठीके ध्यानपूर्वक समाधि के साथ स्वर्गवास पधारगये। देवी सच्चायिका से श्री संघको ज्ञात हुआ कि आचार्य श्री दूसरे ईशान देवलोक में महर्द्धिक दो सागरोपम की स्थिति वाले देवता हुए हैं। आचार्यश्री के स्वर्गवास का समय पट्टावली कारने वि॰ सं॰ ४८० चैत्रशुक्ल चौदस का लिखा है, अतः चैत्रशुक्ल चौदस का दिन हमारे लिये उन परमोपकारी आचार्य के स्मृति का दिन है। पट्टावलियों एवं वंशावलियों में आपके ४० वर्ष के शासन के शुभ कार्यों को विस्तार से नोंध की है पर मैं मेरे उद्देशानुसार यहाँ पर संक्षिप्त ही नामावली लिखदेता हूँ—

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

१—उपकेशपुर-	के	श्रेष्ठि	शाह	देवाने	सूरिजी के पास	दीक्षाली
२—माडव्यपुर	के	बाप्पनागगौ	,,	जसाने	,,	,,
३—क्षत्रीपुरा	के	कलगौ	,,	सोमाकने	,,	,,
४—मारकपुर	के	चरडगौ	,,	भाखरने		,,
५—मेदपुर	के	अदित्यनाग	,,	करमणने	,,	,,
६—राजपुर	के	भूरिगौ	,,	धारणने	,,	,,
७—नराणी	के	सुचंती	,,	सहजपालने	,,	,,
८—चरपट	के	चोरडगौ	,,	हरपालने	,,	,,
९—नारदपुरी	के	कुंमट	,,	देपालने	,,	,,

१०—नारदपुरी	के	सुचंतिगो०	,,	राणाने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
११—पद्मोसी	के	श्री श्रीमाल	,,	जावड़ने	,,	,,
१२—कालोढी	के	प्राग्वटवंशी	,,	पेथाने	,,	,,
१३—मादरी	के	प्राग्वटवंशी	,,	पाताने	,,	,,
१४—कोरटपुर	के	श्रीमालवंशी	,,	जोधाने	,,	,,
१५—सिद्धपुर	के	ब्राह्मण	,,	शंकरने	,,	,,
१६—टेलीग्राम	के	लघुश्रेष्टि	,,	रूपणसीने	,,	,,
१७—शिवपुरी	के	करणाटगो०	,,	रावलने	,,	,,
१८—भरोंच नगर	के	कुमटगो०	,,	भारमने	,,	,,
१९—सोपार पट्टन	के	कनौजिया०	,,	भैराने	,,	,,
२०—हाकोड़ी	के	भाद्रगो०	,,	पाताने	,,	,,
२१—हर्षपुर	के	श्रेष्टिगो०	,,	कुबेराने	,,	,,
२२—उज्जैन	के	श्रेष्टिगो०	,,	सारंगने	,,	,,
२३—माहव्यपुर	के	चिंचटगो०	,,	सलखणने	,,	,,
२४—खटकूप नगर	के	पुष्करणागो०	,,	सरवणने	,,	,,
२५—मुग्धपुर	के	कुलभद्रगो०	,,	पृथुसेनने	,,	,,
२६—मेलसरा	के	विरहटगो०	,,	हावरने	,,	,,
२७—आशिका दुर्ग	के	भाद्रगो०	शाह	नागसेनने	,,	,,
२८—नागपुर	के	चिंचटगो०	,,	सुरजणने	,,	,,
२९—हमावली	के	डिड्डगोत्र०	,,	हाप्पाने	,,	,,
३०—शाकम्भरी	के	बाप्पनाग०	,,	हरराजने	,,	,,
३१—पद्मावती	के	श्रेष्टिगो०	,,	पोलाकने	,,	,,
३२—रोहडी	के	चोरलिया०	,,	मुकन्दने	,,	,,
३३—पुष्कर	के	भूरिगो०	,,	जोराने	,,	,,
३४—मथुरा	के	प्राग्वटगो०	,,	कुम्माने	,,	,,
३५—गरगेटी	के	कुमभट्ट०	,,	खेतसी ने	,,	,,

यहां केवल एक एक नाम देखके पाठक यह नहीं समझ ले कि उपरलिखी नामावली वाले एक एक व्यक्ति ने ही दीक्षा ली थी पर इनके साथ बहुत से भावुकों ने दीक्षाली थी पर यहाँ वंशावलियों के लेखानुसार मुख्य पुरुष का ही नाम लिखा है यदि सूरिजी और आपके मुनियों के हाथों से सेकड़ों नरनारियों की दीक्षा हुई उन सबका नाम लिखा जाय तो एक खासा ग्रन्थ उन नामावलियों से ही भर जाय अब यहां पर तो प्राय उपकेशवंशियों के ही नाम उल्लेख किये है अत. इस नमूने से पाठक स्वयं समझ लेंगे।

१३—श्रीनगर	के	चरडगो०	,,	नाराके	बनाये	महावीर	मं०	प्र०
१४—दुर्गापुर	के	भाद्रगो०	,,	गोल्हाके	,,	,,	,,	,,
१५—हाँसीपुर	के	लुगगो०	,,	सुखाके	,,	,,	,,	,
१६—कुन्तिनगरी	के	करणाटगो०	,,	धागाके	,,	नेमिनाथ	,,	,,
१७—सौपारपटन	के	कुलहटगो०	,,	भैरूके	,,	शान्तिनाथ	,,	,,
१८—चन्द्रावती	के	विरहटगो०	,,	विंजाके	,,	संभवनाथ	,,	,,
१९—धोलपुर	के	मोरक्षगो०	,,	नवलाके	,,	शीतलनाथ	,,	,,
२०—मादलिर	के	बलाहगो०	,,	पोकरके	,,	महावीर	,,	,,
२१—धघनेर	के	प्रागवटवशी	,,	नोंधणके	,,	,,	,,	,,
२२—पालापुर	के	प्राग्वट ,,	,,	साल्हाके	,,	पद्मनाभादि	,,	,,
२३—चम्पापुर	के	प्राग्वट	,,	करमणके	,,	सीमंधर	,,	,,
२४—चदेरी	के	श्रीश्रीमाल	,,	मदाके	,,	महावीर	,,	,,

इनके अलावा भी आपके आज्ञावर्त्ती मुनियों ने भी बहुत मन्दिरों की प्रतिष्टाए करवाई थी उस समय जनता की मन्दिर मूर्तियों पर अटल श्रद्धा एव अलौकिक भक्ति थी।

पट्ट तेतीसवे कक्कसूरि आदित्य नाग प्रभो बढ़ाई थी
कुंकुंद आचार्य बनके गच्छ में शाखा दोय बनाई थी
अर्बुदाचल जाते श्रीसंघ के जीवन आप बचाये थे
सोमाशाह के बंधन टूटे, सहायक आप कहलाये थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के ३३ वें पट्टधर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए

३४—आचार्य श्री देवगुप्तसूरि (षष्ठम)

आचार्यस्तु स देवगुप्त पदभृत् धीरो विशिष्टै गुणैः ।
गोत्रे स्वे करणाटनामकयुते ज्ञानप्रदानेन यः ॥
देवर्द्धिं च मुनिं क्षमाश्रमण नाम्ना भूषया मास च ।
संख्यातीत मुनीन् विधाय कुशलान् जातो यशस्वी सदा ॥

चार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वर—परम वैरागी, महान् विद्वान, उग्रतपस्वी अखिल प्रभावशाली क्रियाविहारी धर्मप्रचारी सुविहितशिरोमणि मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नाश करने में सूर्य की भांति प्रकाश करने वाले देवताओं से परिपूजित पूर्वधर एक युगप्रवर्त्तक महान् आचार्य हुए है आपश्री जैसे साहित्य समुद्र के पारगामी थे वैसे ही ज्ञानदान देने में कुबेर की भांति उदार भी थे आपके पुनीत जीवन के श्रवण मात्र से पापियों के पाप धूप हो जाते है । यों तो आपका जीवन महान् एवं अलौकिक है जिसका सम्पूर्ण वर्णन तो बृहस्पति भी करने में असमर्थ है तथापि मन्द जीवों के कल्याणार्थ पट्टावल्यादि ग्रन्थों के आधार पर संक्षिप्त से यहां पर लिख दिया जाता है ।

मरुधरदेश में करटकूप नाम का प्रसिद्ध नगर था वह नगर ऊँचे २ शिखर और सुवर्णमय दंडकलश वाले मन्दिरों से अच्छा शोभायमान था वहाँ पर महाजन संघ एवं उपकेशवंश के बहुत से धनवान एवं व्यापारी साहुकारों की घनी बसति थी वहां व्यापार की बहुलता होती है वहां सब लोग सुखी रहते है कारण मनुष्यों की उन्नति व्यापार पर ही निर्भर है करटकूप नगर के व्यापार सम्बन्ध भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य प्रदेशों के साथ भी था जिसमें वे पुष्कलद्रव्य पैदा करते थे जैसे वे द्रव्योपार्जन करने में कुशल थे वैसे ही उस न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने में भी दक्ष थे और उन पुन्य कार्यों से प्रसन्न होकर लक्ष्मीदेवी भी उनके घरो में स्थिर वास कर रहती थी । आचार्यरत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन संघ के अठारह गोत्रों में करणाट नाम का उन्नत गोत्र था उस में राजसी नाम का एक सेठ था आपके गृहदेवी का नाम रूकमणी था शाह राजसी के देवपुत्र और चार पुत्रियां थी जिसमें एक धवल नामका पुत्र अच्छा होनहार उदार एवं तेजस्वी, था बचपन स ही उसकी धवल कीर्ति चारो ओर पसरी हुई थी शाह राजसी के यों तो बहुत व्यापार था परन्तु देश में आप के घृत और तेल का पुष्कल व्यापार था राजसी के एक हजार गायों भैंसे वगैरह तो हमेशां रहती थी और उसके यहां खेती भी खूब विस्तृत प्रमाण में होती थी । उस जमाने में जितना महत्व व्यापार का था उतना ही खेती का भी था और गौ धन पालन करने का महत्व भी व्यापार से कम नहीं था इतना ही क्यों पर शास्त्रकारों ने तो व्यापार खेती और गौधनका पालन करना खास वैश्य का कर्तव्य ही बतलाया हैं क्योंकि खेती वैश्यवर्ग की उन्नति का मुख्य कारण है जबसे वैश्यवर्ग का खेती की ओर दुर्लक्ष हुआ तब स ही वैश्यवर्ग का पतन होने लगा था खेती करने वाला हजारो गायों का सुख पूर्वक निर्वाह कर सकता है और गायों को पालन करने से दूध दही घृत छास वगैरह प्रचुरता से मिलती है

जिससे शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता है दूसरा खेती से गृहस्थों के आवश्यकता की तमाम वस्तुओं सहज ही में पैदा हो सकती हैं जैसे गेहूँ बाजरी ज्वार मुग मोट चौवला चना तुवर गवार तिल सब तरह के शाक पात और कपास गुड़ वगैरह अब खेती करने वाले को गृहकार्य के लिये प्रायः एक पैसा काटने की जरूरत नहीं रहती है इतना ही क्यों पर दरजी सुथार नाई तेली धोबी ढोली वगैरह जितने काम करने वाले हैं उनको साल भर में धान के दिनों मे धान देदिया जाता था कि साल भर में तमाम काम कर दिया करते थे। यह तो हुई गौरक्षण और खेती की बात अब रहा व्यापार जब व्यापार में जितना द्रव्य पैदा किया जाता था वह सबका सब जमा होता था कि जिसको समझ दार आस्तिक लोग देश समाज एव धर्म जैसे परमार्थ के कार्यों में लगा कर भविष्य के लिये कल्याण कारी पुन्योपार्जन करते थे। अतः उनका जीवन बड़ा ही शान्ति मय गुजरता था। यही हाल राजसी का था शाह राजसी जैसे खेती और गौ रक्षण करता करवाता था वैसे व्यापार भी बड़े प्रमाण में करता था उसके व्यापार में मुख्य घृत तैल का व्यापार था और लाखों मण घृत तैल खरीद करके विदेशो में ले जाकर वेचता था इसका कारण यह था कि भारत में इतना गौधन था कि भारत की जनता पुष्कल दूध दही घृत काम में लेने पर भी लाखों मन घृत बच जाता था इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस जमाना में भारत में गौधन का रक्षण बहुत सख्या में होता था श्री उपासकदशागसूत्र मे भगवान महावीर के दश गाथापति (वैश्य) श्रावकों का वर्णन किया है जिसमें किसी के एक गौकुल, किसी के चार, किसी के छ, किसी के आठ गौकुल थे एक गौकुल में दश हजार गाये थी भले पिच्छले जमाना में काल दुकाल के कारण जैसे मनुष्यों की सख्या कम हुई वैसे गायों की सख्या भी कम हो गई होगी परन्तु वे कितनी कम हो सके ? मानों कि दश हजार गायों रखने वाला एक हजार तो रखता होगा या एक हजार नही तो भी एक सौ तो रखता ही होगी ? ×

+ एक अनुभवी का कहना है कि आधुनिक अर्थ शास्त्र के अनभिज्ञ लोगो ने खेती में पाप बतला कर वैश्यवर्गको खेती करने के त्याग करवा दिये है। और भद्रिक जनता पाप के डर से खेती से हाथ भी धो बैठी है। इससे पाप कम नहीं हुआ पर कइ गुणा बढ़ गया है एक तो शरीर से परिश्रम किया जाता था जिससे शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता था पर परिश्रम कम होने से शरीर अनेक प्रकार की व्यधियों का घर बन चुका है। इससे सन्तान भी कम हो गई। दूसरा गृह कार्य के लिये तमाम आवश्यक पदार्थ खेती से प्राप्त होता था वह बन्द हो जाने से पैसा काट कर मूल्य से खरीद करना पड़ता है इससे व्यापार से प्राप्त हुए पैसे जमा नहीं होते हैं बल्कि कभी कमी खर्च की पूर्ति न होने से आर्तध्यान करना पड़ता है और उस पूर्ति के लिये व्यापार में झूठ बोलना, माया कपटाई करना, धोखाबाजी, और विश्वासघातादि अनेक प्रकार से पाप एव अधर्म कार्य करना पड़ता है जिससे पापकर्मो का सचय तो होता ही है पर साथ में समाज एव धर्म पक्ष की निंदा भी होती है जब मनुष्य झूठ बोलता है तो आत्मिक धर्म को खो बैठता है। समझदार मनुष्य तो यहाँ तक कहते हैं कि एक ओर खेती का पाप और दूसरी ओर झूठ बोलने का पाप तराजु में रख कर तोले तो झूठ बोलने के सामने खेती का पाप कुछ गिनती में नहीं है कारण खेती करने वाला इरादा पूर्वक पाप नहीं करता है पर झूठ बोलने वाला इरादा पूर्वक झूट बोलता है इससे झूट बोलने वाला का पाप कई गुणा बढ़ जाता है तीसरा एक नुकसान और भी हुआ है कि जो खेती गौरक्षण और व्यापार एकही स्थान पर थे तब इन तीनों को आपस में मदद मिलती थी जैसे खेती करने से गौचर भूमि रह जाती तथा खेती में घास वगैरह हो जाता कि गायों को तकलीफ नहीं होती थी सब गायों का दूध दही घृत छास मनुष्यों को मिल जाता उनको भी किसी प्रकार की तकलीफ नहीं उठानी पड़ती और व्यापार में द्रव्योपार्जन होता था उससे खेती के सब साधनों की प्रचूरता रहती थी और शरीर अच्छा रहने से वे खेती एव व्यापार में चाहिये उतना परिश्रम तथा पुरुषार्थ कर सकते थे खेतों को पुष्कल खात मिल जाता

शोकरी बहुत खुश होकर गुड़ ले गई। बस सेठजी के भाग्य खुल गये इसमें मुख्य कारण सेठजी का पुत्र धवल ही था अत राजसी ने अपने पुत्र धवल को ब्रह्मचारी भाग्यशाली समझा और कहा बेटा तेरे पुन्य से यह चित्रावली अपने घरमें आई है। इसका कुछ सदुपयोग किया जाय तो अच्छा है वरना जैसे जगल में पड़ी थी वैसे ही अपने घर में पड़ी रहेगी। धवलने कहा पूज्य पिताजी आप ही पुन्यवान हैं और आपके पुन्य प्रताप से ही चित्रावली आई और आपका कहना भी अच्छा है कि इसका सदुपयोग करना ही कल्याणकारी है मेरा ख्याल से तो जिन मन्दिर बनाना तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकालना महाप्रभाविक भगवत्यादि सूत्र का महोत्सव कर सब को सुनाना साधर्मीभाइयों को सहायता देना और गरीब जीवों का उद्धार करना इसमें लक्ष्मी व्यय की जाय तो चित्रावल्ली का सदुपयोग हो सकता है। राजसी ने धवल के वचन सुनकर पूछा कि बेटा! तुझे यह किसने सिखाया? बेटे ने कहा कि गुरुमहाराज हमेशा व्याख्यान में फरमाते हैं कि श्रावक के करने योग्य ये कार्य हैं। पिताजी अब इन कार्यों में विलम्ब नहीं करना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक वस्तु की स्थिति होती है वह अपनी स्थिति से अधिक एक क्षण भर भी नहीं ठहरती है दूसरा मनुष्य का आयुष्य भी अनिश्चित होता है इसलिये साधन के होते हुए कार्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये। राजसी ने कहा ठीक है बेटा। पर इस बात को अभी किसी को भी नहीं कहना। बेटा ने कहा ठीक है पिताजी।

भाग्य वशात् इधर से धर्मप्राण लब्ध प्रतिष्ठित कुन्कुन्दाचार्य महाराज उपकेशपुर से विहार करते हुए खटकुंप नगर की ओर पधार रहे थे जिसके शुभ समाचार सुनते ही नगर भर में आनन्द, मगल और सर्वत्र हर्ष छा गया जिसमें भी शाहराजसी के तो हर्ष का पार नही था क्योंकि उनको इस समय आचार्य देवकी पूर्ण जरूरत थी शाह राजसी ने अपने शुभ कार्य के मगलाचरण में सूरिजी महाराज के नगर प्रवेश का महोत्सव किया जिसमें नौलाख रुपये व्यय कर दिये कारण साधर्मी भाईयों को सोना मुहरों एवं वस्त्रों की प्रभावना और याचकों को पुष्कल दान दिया। सूरिजी महाराज ने थोड़ी बहुत हृदय ग्राही देशनादी तत्पश्चात परिषदा विसर्जन हुई। एक समय शाहराजसी अपने पुत्र धवल को साथ लेकर सूरिजी के पास आया वन्दन कर अर्ज कि भगवान् धवल का इरादा है कि एक मन्दिर बनवाउं और तीर्थों की यात्रार्थ एक सघ निकालूँ अत इसके लिये खास आपकी सम्मति लेनी है कि आप हमको अच्छा रास्ता बतलावे सूरिजी ने कहा राजसी पहिले तो यह निर्णय हो जाना चाहिये कि तुमको इस शुभ कार्य में कितना द्रव्य व्यय करना है क्योंकि जितना द्रव्य व्यय करना हो उतना ही कार्य उठाया जाय। राजसी ने कहा प्रभो! आप गुरुदेवों की कृपा से सब आनन्द है कार्य अच्छा से अच्छा किया जाय उसमें जितने द्रव्य की आवश्यकता होगी उतना ही द्रव्य मैं लगा सकूगा। बस फिर तो था ही क्या। सूरिजी ने कहा राजसी तूं और तेरा पुत्र धवल बड़ा ही भाग्यशाली है ससार में जन्म लेकर मरजाने वाले तो बहुत हैं पर अपने कल्याण के साथ शासन का उद्योत करने वाले विरले मनुष्य होते हैं। मन्दिर बनाना एक जैनधर्म को स्थिर करना है जन सहार दुकाल और बड़ी बड़ी आफतों के समय जैनधर्म जीवित रह सका है इसमें मुख्य कारण मन्दिरों का ही है संघ निकाल कर सब को तीर्थों की यात्रा करवाना यह भी एक पुण्यानुबन्धी पुन्य का कारण है इसमें उत्कृष्ट भावना आने से तीर्थंङ्कर नाम कर्म भी उपार्जन कर सकता है तुमने इन दोनों पुनीत कार्यों का निश्चय किया है अत तुम बड़े ही पुन्यवान हो। राजसी ने कहा पूज्यवर! यह आप जैसे गुरुदेवों के उपदेश का ही फल है आचार्य रत्नप्रभसूरि ने हमारे पूर्वजों को मिथ्यात्व से बचाकर जैनधर्म में दीक्षित कर महान् उपकार किया है कि उनकी सन्तान परम्परा में आज हम इस स्थिति को प्राप्त हुए हैं। कृपा कर आप अच्छा दिन देखकर फरमायें कि किस तीर्थङ्कर का मंदिर बनाया जाय? और आपश्री यहां पर चतुर्मास करावें कि सघ निकालने का कार्य भी शीघ्र ही बन जाय? सूरिजी ने कहा चतुर्मास की तो क्षेत्र स्पर्शना है पर वैशाख शुक्ला तृतीया का शुभ दिन अच्छा है। शाह राजसी ने शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलाया और बढ़िया से बढ़िया मन्दिर का नकशा बनवा कर सूरिजी की सेवा में हाजिर किया जिसके पास हो जाने से मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् श्री संघ ने साग्रह चतुर्मास की विनती की और आचार्य श्री ने लाभ का कारण जान स्वीकार करली बस खटकुंप नगर में बड़ा ही हर्ष उमड़ उठा। शाह राजसी के मनोरथ सफल हो गये। सूरिजी

श्री ने फरमाया राजसी ! इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा वगैरह का कार्य तो हमारे गच्छ नायक आचार्य कक्कसूरिजी महाराज के कर कमलों से करवाना अच्छा है। राजसी ने कहा प्रभो ! पूज्याचार्य इस समय न जाने कहाँ पर विराजते होंगे हमारे लिये तो आप ही कक्कसूरिजी है कृपाकर आप ही प्रतिष्ठा करवा दिरावें ? सूरिजी ने कहा राजसी यह वृहद कार्य तो वृद्ध पुरुषों के वृहद् हाथों से ही होना विशेष शोभा देगा दूसरे नूतन मूर्तियों की अञ्जनशिलाका करवाना कोई साधारण काम नहीं है। आचार्यश्री जी दक्षिण की ओर पधारे थे जिन्हों को तीन वर्ष हो गया अब वे इधर पधारने वाले है यदि आप कोशिश करेंगे तो और भी जल्दी पधार जावेंगे और अभी तुम्हारे मन्दिर में काम भी बहुत शेष रहा है। इतनी जल्दी क्यों करते हो और हमारे गच्छ की मर्यादा भी है कि अञ्जनशिलादि कार्य गच्छ नायक ही करवा सकते है उस मर्यादा का मुझे और तुझे पालन करना ही चाहिये कारण तूँ भी गच्छ में अग्रसर एवं श्रद्धा सम्पन्न श्रावक है। सूरिजी का कहना राजसी के समझ में आ गया और उसके दिल में यह बात लग गई कि आचार्य कक्कसूरिजी की खबर मगानी चाहिये कि आप कहाँ पर विराजते हैं राजसी ने अपने आदमियों को इधर उधर भेज दिये उनमें से कई आवती प्रदेश की ओर गये थे उन्होंने सुना कि सूरीश्वरजी महाराज इस समय उज्जैन में विराजते हैं बस फिर तो क्या देरी थी शाह राजसी एवं धवल चल कर उज्जैन गया और वहाँ सूरिजी का दर्शन एवं वन्दन किया और खटकुंप नगर के सब हाल कह कर उधर पधारने की प्रार्थना की। जिसको सुनकर सूरिजी महाराज को बड़ा ही हर्ष हुआ विशेष कुंकुंदाचार्य की गच्छ मर्यादा का पालन और विनयमय प्रवृति पर प्रसन्नता हुई। सूरिजी ने कहा राजसी तूँ बड़ा ही भाग्यशाली है इस प्रकार शासन की प्रभावना करने से तेरी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। राजसी ने कहा पूज्यवर ! मैंने मेरे कर्तव्य के अलावा कुछ भी नहीं किया है जो किया है वह भी आप जैसे गुरुदेव की कृपा का ही कारण है आप साहिबजी मेहरबानी कर खटकुंप जल्दी पधारें और यह सब धर्म कार्य करवा कर मुझे कृतार्थ करें कारण आयुष्य का क्षणभर भी विश्वास नहीं है ? सूरिजी ने कहा राजसी ! हमारे साधु बहुत विहार कर आये हैं और खटकुंप नगर यहाँ से नजदीक भी नहीं है यह चतुर्मास तो हमारा इधर ही होगा चतुर्मासके बाद हम अवश्य अवसर देखेंगे ऐसी हमारी वर्तमान भावना है। राजसीने चार दिन सूरिजी का व्याख्यान सुना धवल पर सूरिजी का खूब ही प्रभाव पड़ा इतना ही क्यों पर वह संसार से विरक्त भी हो गया खैर, बाप बेटा सूरिजी को वन्दन कर वापिस लौट आये और सूरिजी ने यह चतुर्मास उज्जैन में कर दिया जिससे जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई बाद चतुर्मास के वहाँ से विहार कर छोटे-बड़े ग्राम नगरों में धर्मउपदेश करते हुए आचार्य श्री मेदपाट एवं चित्रकोट नगर के नजदीक पधार रहे थे वहा के श्री संघ को मालूम पड़ा तो हर्ष का पार नहीं रहा। सूरिजी महाराज बड़े ही अतिशयधारी थे जहां आप पधारते वहाँ बड़ा ही स्वागत होता ओर दर्शनार्थियों के लिये तो एक तीर्थ धाम ही बन जाता था चित्रकोट में कुछ दिन स्थिरता कर वहाँ से विहार कर मरुधर की ओर पधार रहे थे शाह राजसी नें मनुष्यों की डाक ही बैठा दी कि एक एक विहार की खबर आपके पास पहुँच जाती थी जैसे राजा कोणिक भगवान महावीर के विहार की खबर मगवा कर ही अन्न जल लेता था कलिकालमें राजसीने भी उसका एक अंशतो बतला ही दिया। क्रमशः सूरिजी महाराज खटकुंप नगर के नजदीक पधारे तो शाह राजसी ने सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव इस प्रकार किया कि राजा दर्शनभद्र के स्वागत को जनता याद करने लगी। श्रीमान् पूज्यवर सूरिजी महाराज मन्दिरजी के दर्शन करके धर्मशाला में पधारे और मंगलाचरण के पश्चात् थोड़ी पर सार गर्भित एवं प्रभावशाली देशना दी जिसका प्रभाव जनता पर बहुत ही अच्छा पड़ा। इधर कुंकुंदाचार्य जिसका चतुर्मास भिन्नमाल में था विहार करते हुए सुना कि आचार्य कक्कसूरि खटकुंप नगर में पधार गये है वे भी चलकर खटकुंप नगर पधार गये श्री संघ ने अच्छा स्वागत किया आचार्य कक्कसूरि ने कुंकुंदाचार्य का यथायोग्य सत्कार किया क्योंकि कमाऊ पुत्र किसको प्यारा नहीं लगता है दोनों आचार्य आपस में मिले आचार्य कक्कसूरि ने कुंकुंदाचार्य की खूब ही प्रशंसा की और कहा कि आपने जैनधर्म की अच्छी उन्नति की है लो अब राजसी के काम को संभालो। कुंकुंदाचार्य ने कहा पूज्यवर। मैं तो आपका अनुचर हूँ यह कार्य तो आप जैसे पूज्य पुरुषों का है। और जो मेरे योग्य कार्य हो आज्ञा दिरावें मैं करने को तैयार हूँ अर्थात् दोनों ओर से विनय भक्ति इस प्रकार से हुई कि जिससे जैनधर्म की शोभा, संघ में शान्ति, श्रमण संघ में प्रेम की वृद्धि आदि हुई।

तत्पश्चात् शाह राजसी एवं धवल चतुर शिल्पज्ञ कारीगरों को लेकर आचार्य सूरिजी से अपने धातु धर्म की मर्यादा में रह कर जो उपदेश देना था वह दे दिया राजसी की इच्छा ११ अंगुल की सुवर्णमय भगवान महावीर की मूर्ति बनाने की थी, परन्तु सूरिजी ने कहा राजसी तेरी भावना और तीर्थंकरोंके प्रति भक्ति तो बहुत अच्छी है पर दीर्घ दृष्टि से भविष्य का विचार किया जाय तो सुवर्णादि बहुमूल्य धातु की मूर्ति बनाना कभी आशातना का भी कारण हो सकती है कारण कई अज्ञानी जीव लोभ के वश मूर्तियों को ले जाकर तोडफोड के पैसे कर लेते हैं यही कारण है कि पूर्व महर्षियों ने भक्ति की मूर्तियों को मध्यकार कर सुवर्णादि धातुओं की मूर्तियां बनाई और इस पंचमआरे के लिये तो धातु पदार्थ को बंद कर पाषाण एवं काष्ठादि की मूर्तियाँ बनाने का रखा है। राजसी ! जैन लोग सुवर्ण पाषाणादि के उपासक नहीं पर वीतराग देव के उपासक है मूर्ति चाहे सुवर्ण पाषाण काष्ठादि की क्यों न हो पर उपासना करने वालों की भावना वीतराग की आराधना करने की रहती है हाँ कहीं कहीं भक्त लोग अपनी लक्ष्मी का ऐसे कार्यों में सदुपयोग करने की भावना से सुवर्णादि धातु पदार्थों की मूर्तियां बनाते भी हैं पर उनकी दृष्टि केवल भक्ति की ओर ही रहती है उनके भावों का लाभ तो उनको मिल ही जाता है पर भविष्य का विचार कम करते हैं एक तरफ भारत में मतमतान्तरों की हलचल दूसरे भारत पर विदेशियों का आक्रमण और तीसरा दिन-दिन विषम काल आ रहा है जो मन्दिर और मूर्तियों का प्रभाव एवं गौरव है वह अज्ञानी जीवों की समझ्यता से कम नहीं होता है पर बाल एवं भद्रिक जीवों के लिए श्रद्धा उतरने का कारण बन जाता है वे अपनी अल्पज्ञता से कह उठते हैं कि जिस देव ने अपनी रक्षा नहीं की वह दूसरों का क्या भला कर सकेगा ? यद्यपि यह कथन अज्ञान पूर्ण है कारण वीतराग की मूर्तियों रक्षा व रक्षण के लिये नहीं पर आत्म कल्याण के लिये ही स्थापित की जाती है इत्यादि सूरिजी ने भविष्य को लक्ष में रख राजसी का उपदेश दिया और यह बात राजसी एवं धवल के समझने भी आगई अतः उन्होंने अपने विचारों को मुल्तवी रख कर पाषाण की मूर्तियाँ बनाने का निश्चय कर लिया और चतुर शिल्पकारों को बुला कर सूरिजी की सम्मति लेकर मूल नायक शासनाधीश भगवान महावीर की ११ अंगुल की परकर अर्थात् अष्ट महाप्रतिहार्य संयुक्त मूर्ती बनाने का निश्चय कर लिया जो मूल गुम्भारा में एक ही मूर्ति रहे जिसको अरिहन्तों की मूर्ति कही जाती है बहुत सी मूर्तियां पहले से हो बन चुकी थीं। और भी जो शेष काम रहा था वह भी खूब जल्दी से होने लगा।

सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर होता था जिस समय सूरिजी जन्म मरण के एवं संसार के दुःखों का वर्णन करते थे उस समय श्रोतागण कांप उठते थे जिसमें शाह राजसी का पुत्र धवल के तो संसार से एक दम उदास होकर सूरिजी के चरण कमलोंमें दीक्षा लेने का विचार कर लिया उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ! आपका फरमाना सर्व सत्य है संसार दुःखों का घर है जब जीवों के स्वाधीन सामग्री होती है तब तो मोह में अन्धा बन जाता है जब अशुभ कर्मों का उदय होता है तब ऐसा नीचयोनि क्षेत्र में उत्पन्न कर्मोंपार्जन कर लेता है अतः इस चक्रवाल संसार का कभी अन्त नहीं होता है गुरुदेव मैंने तो निश्चय कर लिया है कि मैं पूज्य के चरणों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ जो वहिला उज्जैन में भी आपका भक्त थी तो सूरिजी ने कहा धवल तू बड़ा ही भाग्यशाली है तेरी विचार शक्ति एवं श्रद्धा बहुत अच्छी है धवल ! चाहे आज लो चाहे भवान्तर में लो पर बिना दीक्षा लिये सम्पूर्ण निवृत्ति मिल नहीं सकती है और बिना निवृत्ति आत्म कल्याण हो नहीं सकता है यही कारण है कि चक्रवर्ति जैसे

अतूल ऋद्धि वालों ने भी उस ऋद्धि पर लात मार कर दीक्षा ली है। अत तेरा विचार बहुत अच्छा है पर इस कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिये। धवल ने कहा 'तथाऽस्तु' गुरु म'राज मैं इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के पूर्व ही दीक्षा ग्रहण कर लूगा। बस सूरिजी को वन्दन कर धवल अपने मकान पर आया।

धवल और उसके माता पितादि में इस बात की खूब चर्चा एव जवाब सवाल हुए पर आखिर जिनको वैराग्य का सच्चा रंग लग गया है वह इस ससार रूपी कारागृह में कब रह सकता है उसने अपने माता पिताओं को बहुत समझाया पर वे अपने धवल जैसे सुयोग्य पुत्र को दीक्षा दीलाना कब चाहते थे राजसी ने कहा बेटा अपने घर में चित्रावल्ली है इसका धर्म कार्यों में सदुपयोग कर कल्याण करो। यह मन्दिर तैयार हो रहा है इसकी प्रतिष्ठा कराओ। श्रीसघ को अपने आगणे (घर पर) बुला कर उनका सत्कार पूजन कर खूब पहरामणीदों इत्यादि पर दीक्षा का नाम तो भूल चूक कर भी नहीं लेना। बेटा देख तेरी माता रो रही है इसने जब से तेरी दीक्षा की बात सुनी तब से ही अन्न जल का त्याग कर दिया है बेटा जैसा दीक्षा लेना धर्म है वैसा माता पिता की आज्ञा पालन करना भी धर्म है अतः तुँ दीक्षा की बात को छोड़ दे और मन्दिर की प्रतिष्ठा के कार्य में लग जाय ? धवल ने अपने पिता से विनय पूर्वक कहा पूज्य पिताजी मन्दिर बनाना, श्री संघ का सत्कार करना यह भी धर्म का अग है पर दीक्षा इससे भी विशेष है मैं क्षण भर भी संसार में रहना नहीं चाहता हूँ यदि आप लोग भी दीक्षा लें तो मैं आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। राजसी ने धवल के अन्त करण को जान लिया अत उन्होंने बड़े ही समारोह से दीक्षा महोत्सव किया और आचार्य कक्कसूरि ने धवल को उनके १४ साथियों के साथ भगवती जैनदीक्षा दे दी। सूरिजी ने धवल को दीक्षा देकर उसका नाम मुनि राजहस रख दिया अभी प्रतिष्ठा के कार्य में कुछ देर थी अतः सूरिजी आस पास के प्रदेश में विहार कर श्रीउपकेशपुर स्थित भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि के दर्शनार्थ उपकेशपुर पधार गये तब कुंकुदाचार्य ने सूरिजी की आज्ञा से नागपुर की ओर विहार कर दिया। इधर शाहराजसी अपना कार्य खूब जल्दी से करवा रहा था जिसके वहा चित्रावल्ली हो द्रव्य की खुले हाथों से छुट हो वहाँ कार्य होने में क्या देर लगती है जब कार्य सम्पूर्ण होने में आया तो शाह राजसी ने दोनों आचार्यों को आमन्त्रण भेज कर बुलाये और सूरिजी महाराज पधार भी गये शाह राजसी ने प्रतिष्ठाके लिये खूब बड़े प्रमाण में तैयारियों की थी आस पास ही नहीं पर बहुत दूर दूर के प्रदेशों में आमन्त्रण भेज चतुर्विध श्री सघ को बुलाया जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सव करवाया आचार्य कक्कसूरि के अध्य-क्षत्वमें नूतन मूर्तियों की अजनशिलाका करवाई और खूब धामधूम से मन्दिर की प्रतीष्टा भी करवादी शाह-राजसी ने सघ को सोने मुहरों और लड्डू एव वस्त्रों की पहरामणी दी और याचकों को मन इच्छित दान दिया। इधर चतुर्मास का समय भी नजदीक आगया था शाह राजसी एव खटकु प नगर के श्रीसघ ने मिल कर सूरिजी से विनती की अत कुंकुदाचार्य को नागपुर और दूसरे नगरों, में थोड़े थोड़े साधुओं को चतुर्मा का आदेश दे खुद सूरिजी महाराज ने खट कु प नगर में चतुर्मास करना स्वीकार कर लिया मुनि राजहस भी सूरिजी के साथ में ही थे।

यों तो खटकु पनगरमें बड़ेबड़े भाग्यशाली एव सम्पत्तिशाली श्रावक थे पर इस अवसर पर तो शाह राजसी ने ही लाभ उठाया महामहोत्सव एव हीरापन्ना माणकमुक्तफलादि से पूजन कर सूरिजी से व्याख्यान में महा प्रभावशाली स्थानायागजी सूत्र बचाया और भी अनेक प्रकार से बहुत सज्जनों ने लाभ लिया।

एक समय सूरिजी ने व्याख्यान में शत्रुंजय का माहात्म्य वर्णन इस प्रकार किया कि शाह राजसी की भावना श्रीशत्रुंजय तीर्थ का संघ निकालकर यात्रा करने की हुई अतः उसने सूरिजी की सम्मति ली तो सूरिजी ने फरमाया राजसी तेरे केवल शत्रुंजय का संघ निकालने का काम ही शेष रहा है कारण गृहस्थ के करने योग्य कार्य मन्दिर बनाना सूत्र वाचना और संघ निकालना ये तीनों कार्य तो तुं करही लिया है विशेषता में तेरे पुत्र ने दीक्षा भी ली है अतः तुं बड़ा ही भाग्यशाली है फिर यह एक संघ का कार्य शेष क्यों रखता है। राजसी ने शिरोधार्य लिया और संघकी सब तैयारियां करनी प्रारम्भ करदी चतुर्मास समाप्त होते ही सब प्रान्तों में आमन्त्रण पत्रिका भेजवादी। साल भर में एक दो संघ तो निकल ही जाता था तब भी धर्मज्ञ पुरुषों की तीर्थ यात्रा के लिये भावना कम नहीं पर बढ़ती ही जाती थी इस का कारण यह था कि उस समय गृहस्थों के बड़ा ही संतोष था समय बहुत मिलता था परिवार भी बहुत था और धर्म भावना भी विशेष थी। तीर्थ यात्रा के लिये बहुत से साधु साध्वियों और लाखों श्रावक श्रद्धिकाए खटकूप नगर को पावन बना रहे थे। आचार्य कक्कसूरि ने शाह राजसीको संघपति पद अर्पण कर दिया और मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा के शुभ मुहूर्तमें संघ ने प्रस्थान कर दिया रास्ते में भी बहुत से लोग मिलते गये और भावुकों के मन्दिरों के दर्शन करते हुए क्रमशः संघ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पहुँच गया दूर से तीर्थ का दर्शन करते ही मुक्ताफल से पूजन किया और कुमकुमके स्वस्तिक कर पावोंका प्रक्षालन किया। अष्टान्हिका महोत्सव ध्वज चढ़ाना पूजाप्रभावना स्वामिवात्सल्यादि शुभकार्यों में शाहराजसी ने पुष्कलद्रव्य व्यय किया वहाँ से संघ वापिस लौटने वाला था उस समय मुनि राजहंस ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! मेरी इच्छा है कि इस तीर्थ भूमिपर शाहराजसी और उनकी पत्नि को आप उपदेश दिरावें कि उन्होंनेप्रवृति कार्य तो सब कर लिया है अब निवृति कार्य कर अपने मनुष्य जन्म को विशेष उज्ज्वल बनावे। सूरिजी ने कहा मुनि राजहंस–तुं सच्चा कृतज्ञ है कि अपने मातापिता का कल्याण चाहता है।
सूरिजी ने संघपति राजसी और उसकी पत्नि को बुलाकर कहा कि संघपति तेरे पुत्र मुनि राजहंस की इच्छा है कि आप दोनों इस पुनीत तीर्थ पर दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करें। वास्तव में मुनि का कहना सत्य भी है जब गृहस्थों के करने योग्य सब कार्य तुमने कर लिया है तो अब निवृति मार्ग दीक्षा लेकर कल्याण करना चाहिये है इत्यादि साथमें मुनिराजहंसने भी जोर देकर कहाकि जिसने जन्म लिया है उसका मरना तो निश्चय ही है तो फिर शुभावसर को क्यों जाना देते हैं मेरा अनुभव से तो दीक्षा पालन कर मरना अच्छा है इत्यादि राजसी ने अपनी पत्नि के सामने देखा इतने में पुनः मुनि राजहंस बोलाकि इसमें विचार करने की क्या बात है यह तो अपने ही कल्याण का काम है अनन्तकाल हो गया जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है किसी भव के पुन्य से यह अवसर मिला है इत्यादि। जिन जीवों के मोक्ष नजदीक हो उनको अधिक उपदेश की आवश्यकता नहीं रहती है अतः बाग बैठे बैठे ही दम्पति ने सूरिजी एवं अपने पुत्र के कहने को स्वीकार कर लिया और संघपति की माला अपने पुत्र देवसी को पहना कर बाद राजसी और उसकी स्त्री ने सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा स्वीकार करली। भाग्यशाली बेटा हो तो ऐसा ही होकि आपतो तरेही पर साथ में अपने मातापिता को भी तार देवे और मातापिता हो तो भी ऐसा हो कि पुत्र के थोड़े से कहने पर घर कोड़पति राजसी ने घर और विपुलराशी जैसी अतुल लक्ष्मी को त्यागही भाव में त्याग कर दीक्षा ले ली—इस आश्चर्य जनक घटना को देख संघमें कई भावुकों की आत्मा संघपति का अनुकरण करने की होगई वहाँ आठ स्त्रियों ने १८ नरनारियोंने सूरिजी के हाथों से दीक्षा ग्रहण करली।

शाह खेतसी के सघपतित्व में संघ वापिस लौटकर खटकुंप आया और सूरिजी महाराज ने सौराष्ट्रप्रान्त में विहार कर सर्वत्र धर्म प्रचार बढ़ाया। बाद आपने कच्छ भूमि को पावन की वहाँ से सिन्ध भूमि में पदार्पण किया इस प्रकार अनेक प्रान्तों में भ्रमण करते हुए सूरिजी महाराज ने जैनधर्म की खूबही प्रभावना की जो आप श्री के जीवन में लिखा गया है और अन्त में श्री शत्रुंजय की शीतल छाया मे श्रेष्टिगौत्रीय शाह देवराज के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य कक्कसूरिने देवी सच्चायिका की सम्मति पूर्वक मुनि राजहंस को अपने पट्टपर अचार्य बनाकर आपका नाम देवगुप्तसूरि रखदिया बाद २७दिन का अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये

आचार्य देवगुप्तसूरि महान् प्रभाविक उगते सूर्य की भांति ज्ञानप्रकाश करने वाले धुरंधर आचार्य हुए आपने गच्छ नायकत्व का भार अपने सिर पर लेते ही विजयी सुभटकी भाँति चारों ओर विहारकर आपने विजय डका बजा दिया था आपश्री जी शत्रुंजय तीर्थ से ५०० मुनियों के साथ विहारकर क्रमश कई प्रान्तों में भ्रमन कर वापिस मरुधरको पावन बनाते हुए खटकुपनगर पधारे जो आपकी जन्म-भूमि थी वहाँ के राजा—प्रजा ने आपका अच्छा सन्मान किया कारण एक तो आप इस नगर के सुपुत्र थे दूसरे आप स्वमतपरमत के साहित्य का गहरा अभ्यास कर धुरधर विद्वान बनआयेथे तीसरा आचार्यपद मे शोभायमान थे भला नगर में ऐसा कौन हतभाग्य होगा कि जिसको अपने नगर का गौरव न हो अत' क्या राजा क्या प्रजा क्या जैन और क्या जैनतर सब लोग सूरिजी के स्वागत में शामिल थे जब सूरिजी ने नगर प्रवेश कर सबसे पहिले धर्म देशना दी तो सब लोग एक आवज से कहने लगे कि वाहरे धवल तूँ! इस नगरमें जन्म लिया ही प्रमाण है अरे धवल ने अपने मातापिता का कल्याण तो किया ही है पर इसने तो खटकुपनगर ही नहीं पर मरुधर भूमि को उज्जवल मुखी बनादी है

आचार्य देवगुप्तसूरि ने मारवाड़ के छोटे बड़े ग्राम नगरों में सर्वत्र विहार कर अपनी ज्ञानप्रभा का अच्छा प्रभाव डाला आपने कई मन्दिरों की प्रतिष्टाएँ करवाई कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की दीक्षादी और कई जैनेतरों को जैनधर्म की राहपर लगाकर महाजनसघ की भी खुब वृद्धि की इत्यादि आपश्री ने जैनधर्म की खूब ही तरक्की की। जिस समय आप श्री का चतुर्मास पद्मावती पुष्कर में हुआ उस समय वहाँ सन्यासियों की जमाव आई सूरिजी ने उनके साथ शास्त्रार्थ कर उनमें से कइ ३०० सन्यासियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर श्रमण सघमें वृद्धि की थी। इस प्रकार सन्यासियों की दीक्षा होने का मुख्य कारण वेदान्तियों की हिंसावृति ही थी कारण ज्यों ज्यों जैनोंने अहिंसाका प्रचार को खुब जोरों मे बढ़ाया त्यों त्यों ब्राह्मणों ने जहाँ वहाँ यज्ञादि में पशुबली देने रूप क्रिया काण्ड को इतना बढादिया था कि जनता को,अरुची एव घृणा आने लग गइ थी इतना ही क्यों पर सन्यासी लोग तो इस प्रकार की घोरहिंसा से चिरकाल से ही विरोध करते आये थे अत जहाँ जैनाचार्य का सयोग मिलता वे जैनधर्म की दीक्षा स्वीकार कर ही लेते थे। पिच्छले प्रकरण में आप पढ़आये है कि बहुत से सन्यासियों एव तापसों ने जैनदीक्षा स्वीकार कर अहिंसा एव जैनधर्म का खूब जोरो से प्रचार किया हैं। अस्तु।

आचार्यश्री ने एक समय कार्तिककृष्णाअमावस्या के दिन व्याख्यान में भगवान् महावीर के निर्वाण विषयक व्याख्यान करते हुए, पूर्व के पुनीत तीर्थों के वर्णन में बीसतीर्थङ्करों के निर्वाण भूमि तथा चम्पापुरी पावापुरी और राजग्रह नगर के पाच पहाड़ों का वर्णन खूब विस्तार से किया और वहाँ की यात्रा का महत्व

बतलाते हुए कहा कि पूर्व जमाने में इस मरुधर भूमि से कई भाग्यशालियों ने पूर्वकी यात्रार्थ बड़े बड़े संघ निकाल कर चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई और पुन्यानुबन्धी पुन्योपार्जन किया इत्यादि आपश्री के उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ और भावुकों की भावना तीर्थों की यात्रा करने की होगई। उसी सभा में श्रेष्टिगोत्रीय मंत्री अर्जुन भी था उसके दिलमें आई कि जब सूरिजी ने उपदेश दिया है तो यह लाभ क्यों जाने दिया जाय अतः उसने खड़े होकर प्रार्थना की कि पूज्यवर। यदि श्रीसंघ मुझे आदेश दिराने तो मेरी इच्छा पूर्व के तीर्थों की यात्रार्थ संघनिकालने की है। संघ निकालने का विचार तो और भी कई भावुकोंके थे पर वे इस विचार में थे कि घरवालों की सम्मति लेकर निर्णय करेंगे किन्तु मंत्रीश्वर इतना भाग्यशाली निकला कि सूरिजीका उपदेश होते ही हुक्म फरमादिया आखिर श्री संघने मंत्री अर्जुन को धन्यवाद के साथ आदेश दे दिया और भगवान महावीर एवं आचार्य देव की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

मंत्रीअर्जुन के अठारह पुत्र थे कई राज के उच्चपद पर कार्य करते थे तब कई व्यापार में लगे हुए भी थे उनको जबसब एकत्रित हुए तो मंत्रीने सबकी सम्मति ली पर उसमें एकभी पुत्र ऐसा नहीं निकला कि जिसने इस पुनीत कार्य के खिलाफ अपना मत प्रगट किया हो अर्थात् सबने बड़ी खुशी से अपनी सम्मति देदी। बस फिर तो था ही क्या मंत्री के सब काम हुक्म के साथ होने लग गये और दूर-दूर के श्रीसंघ को आमंत्रण भिजवा दिये। पूर्वका संघ कभी कभी ही निकलता था अतः जनता में उत्साह भी खूब बढ़ गया था। उस समय इस प्रकार के धार्मिक कार्यों में जनता की रुची भी बहुत थी अतः चतुर्विध श्रीसंघ के आने से उपकेशपुर नगरी एक यात्रा का धाम बन गयी। सूरीश्वरजी ने संघ प्रस्थान का मुहूर्त भी नजदीक ही दिया कारण मामला बहुत दूर का था और रास्ते में भी कई तीर्थ भूमियों आती है समयानुकूल हो तो स्थिरतापूर्वक यात्रा बड़े ही आनन्द से होसके। पट्टावलीकार लिखते है कि मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन मंत्री अर्जुन के संघपतित्व में संघ प्रस्थान कर तीनदिन तक संघ नगरी के बहार ठहर गया पूजा प्रभावना स्वामि वात्सल्य वगैरह संघपति की ओर से होता रहा और भी बहुत से लोग संघ में शामिल होगये तत्पश्चात् आचार्य देवगुप्तसूरि के नायकत्व में संघने प्रस्थान कर दिया रास्तों के मन्दिरों के दर्शन करते मथुरा सौरीपुर हस्तनापुर मिथुपुरी तीर्थों की यात्रा पूजा कर संघने बीसतीर्थंकरों की निर्वाण भूमि की स्पर्शना एवं दर्शन कर पूर्व संचित कर्मों के पातक का प्रक्षालन कर दिया। तीर्थ पर ध्वजा महापूजादिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि धर्म कार्यों में संघपति ने खूब खुल्ले दिल से द्रव्य व्यय कर पुन्योपार्जन किया। बाद वहाँ से चम्पापुरी पावापुरी राजगृह वगैरह पूर्व के सब तीर्थों की यात्राकर संघ वापिस लौटकर उपकेशपुर आया और मंत्रीश्वर ने सवासेर लड्डू के अन्दर पांच पांच सुवर्णमुद्रिकाएँ तथा वस्त्रादि की संघको पहिरामणी तथा याचकों को दान दिया बाद संघ विसर्जन हुआ— अहाहा उस जमाने में जनता के हृदय में धर्म का कितना उत्साह धर्म पर कितनी गहरा भक्ति थी वे जो द्रव्य समझते थे धर्म को ही समझते थे

कई मुनि तो संघ के साथ वापिस लौट आये थे परन्तु आचार्य देवगुप्त सूरि अपने पांचसौ मुनियों के साथ पूर्वमें धर्मप्रचार के निमित्त रह गये थे उन्होंने पूर्वमें श्रीसम्मेतशेखर के आसपास की भूमि में विहार कर जनता को धर्मोपदेश दिया और जैन श्रावकों की संख्या को खूब बढ़ाई जो आज सराक जाति के नाम से प्रसिद्ध है वहाँ से बंगाल की ओर विहार कर हेमाचल के मन्दिरों के दर्शन किया तत्पश्चात् आप विहार करते हुए कलिंग की ओर पधारे और कुमारगिरि कुमारीगिरि तीर्थ को शत्रुंजय गिरनार अवतारके नाम से खूब

मशहूर थे भगवान् पार्श्वनाथ और आपकी सन्तान परम्परा के आचार्यों ने वहां पर अनेक बार पधार कर धर्म का प्रचार किया था। वहां से विहार करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ के कल्याणक भूमि की स्पर्शना करते हुए कुरु-पंचाल और कुनाल प्रदेश में पधारे वहां पहले से ही उपकेश गच्छ के बहुत से मुनि गण विहार करते थे आपश्री ने उनके धर्म प्रचार पर खूब प्रसन्नता प्रगट की और कई अर्से तक वहां विहार कर जैन धर्म को खूब बढ़ाया वहां पर आप श्री ने कई मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्टा करवाई कई अजैनों को जैन बनाये और कई महानुभावों को दीक्षा भी दी। बाद वहां से आप ने सिन्ध भूमि की स्पर्शना की तो सिन्ध की जनता के हर्ष एव आनन्द का पार नहीं रहा उस समय सिन्ध में उपकेश वंशियों की घनी बस्ती थी बहुत से साधु साध्वियां विहार कर उपकेश रूपी बगीचे को धर्मोपदेश रूपी जल का सींचन भी करते थे सूरिजी के पधारने से सर्वत्र आनन्द का समुद्र ही उमड़ उठा था जहां जहां आपके कुंकुंम मय चरण होते थे वहा वहां दर्शनार्थियों का खूब जमघट लग जाता था सब लोग यही चाहते थे एव प्रार्थना करते थे कि गुरुदेव पहले हमारे नगर को पावन बनावें इत्यादि। सूरिजी ने सिन्धधरा में कई अर्से तक भ्रमण कर कई मन्दिरों की प्रतिष्टाए करवाई, कई भावकों को दीक्षा दी कई मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार करते हुए जैनों की संख्या में खूब गहरी वृद्धि की। वहाँ से आचार्य देव कच्छ भूमि की ओर पधारे वहां भी आपश्री के आज्ञावर्ती बहुत से मुनि विहार कर रहे थे प्राय: वहाँ की जनता उपकेशगच्छोपासक ही थी क्योंकि इन प्रान्तों में जैनधर्म के बीज उपकेशगच्छाचार्यों ने ही बोया था इतना ही क्यों पर उपकेशगच्छाचार्य एवं मुनियों ने इन प्रान्तों में बार बार विहार कर धर्मोपदेशरूपी जल से सिंचन कर खूब हराभरा गुलचमन बना दिया कि जैनधर्म रूपी बगीचा सदैव फलाफूला रहता था आचार्यश्री ने अपनी सुधा वारि से वहाँ की जनता को खूब जागृत कर दी थी। कई अर्से तक आपने कच्छ भूमि में विहार कर के जनता पर खूब उपकार किया बाद वहाँ से आपके चरण कमल सौराष्ट्र भूमि में हुए सर्वत्र उपदेश करते हुए आपने तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय तीर्थ के दर्शन एव यात्रा कर खूब लाभ कमाया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन परमोपकारी पूज्य आचार्य देव का जैन समाज पर कहाँ तक उपकार हुआ है कि जिसको न तो हम जिह्वा द्वारा वर्णन कर सकते हैं और न इस लोहे की तुच्छ लेखनी से लिख भी सकते हैं अर्थात् आपका उपकार अकथनीय हैं।

आचार्य देवगुप्तसूरि के शासन के समय जैन श्रमणों में एकादशांग के अलावा पूर्वों का भी ज्ञान विद्यमान था। स्वयं आचार्य देवगुप्तसूरि सार्थ दो पूर्व के पाठी एव मर्मज्ञ थे अत आपकी सेवा में स्वगच्छ एवं परगच्छ के अनेक ज्ञानपीपासु ज्ञानाध्ययन करने के लिये आया करते थे उनमें आर्य्य देव वाचक भी एक थे आपकी विनय शीलता और प्रज्ञा से सूरिजी सदैव प्रसन्न रहते थे। सूरिजी की इच्छा थी कि मैं मेरा सब ज्ञान आर्य देववाचक को दे जाऊ पर कुदरत इससे सहमत नहीं पर प्रतिकूल ही थी जब आर्य देववाचक डेढ पूर्व सार्थ पढ़ चुके तो उनको थकावट आगई। प्रमाद ने घेर लिया उन्होंने आचार्य श्री से प्रार्थना की कि पूज्यवर! अब शेष ज्ञान कितना रहा हैं। इस पर सूरिजी ने कहा कि वाचकजी आप पढ़ते रहें क्योंकि इस ज्ञान के लिये एक आप ही पात्र हैं इत्यादि पर वाचकजी अपने धैर्य को काबू में रख नहीं सके जिसका आचार्यश्री को बड़ा ही दुःख हुआ कि परम्परा से आया दृष्टिवाद एवं चतुर्दश पूर्व का ज्ञान

काल के प्रभाव से आचार्य अपने साथ ले गये और शेष दो पूर्व का ज्ञान रहा है इसको देने में भी वह देववाचक के अलावा कोई दीखता नहीं है तब देववाचक का भी यह हाल है तो मैं क्या कर सकता हूँ। इस हालत में आपके हस्तदीक्षित एक संगमकुम्भ नाम का बड़ा ही प्रभावशाली मुनि था उसको आप दो पूर्व मूल ज्ञान पढ़ा चुके थे पुनः उस संगमकुम्भ को उसका अर्थ, पढ़ाना प्रारम्भ किया तो देववाचक की आत्मा में ज्ञान की विशेष जिज्ञासा पैदा हुई अतः देववाचक को देढ़पूर्व सार्थ और आधापूर्व मूल एवं दो पूर्व का अध्ययन करवाया। बाद सूरिजी महाराज विहार करते हुए मरोट नगर में पधारे तो आपके उपदेश से वहां के श्रीसंघ ने वहां पर एक श्रमण सभा की जिसमें बहुत दूर दूर से श्रमण संघ तथा श्राद्ध वर्ग मरोट नगर में एकत्रित हुए थे ठीक समय पर सभा हुई आचार्य देवगुप्तसूरि ने आये हुए चतुर्विध श्रीसंघ को शासन हित धर्मप्रचार एवं ज्ञान वृद्धि के लिये खूब ही ओजस्वी वाणी से उपदेश दिया और पूर्वाचार्यों का इतिहास सुनाकर उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव डाला। तदनन्तर चतुर्विध श्रीसंघ की समक्ष मुनि संगमकुम्भादि ११ मुनियों को उपाध्याय पद, मुनिदेवकलशादि तीन मुनियों को गणिपद के साथ प्रमाणमय पद मुनि देवसुन्दरादि १५ मुनियों को पण्डितपद मुनि धर्मकलशादि १५ मुनियों को गणि एवं गणावच्छेक पद मुनिगुणविशालादि १५ मुनियों को वाचनाचार्य पद से विभूषित कर उनकी योग्यता की कदर कर उत्साह को विशेष बढ़ाया इत्यादि इस सभा से जैन धर्म की उन्नति श्रमण संघ में जागृति और स्वधर्म की रक्षा एवं प्रचार कार्य में अच्छी सफलता मिली तत्पश्चात् मरोट श्रीसंघ ने सम्मानपूर्वक श्रीसंघ को विसर्जित किया और सूरिजी के आदेशानुसार पदवीधरों ने भी प्रत्येक प्रान्तों की ओर विहार कर दिया और मरोटकी संघ की आग्रह पूर्ण विनंती से आचार्य देवगुप्तसूरि ने मरोट नगर में चातुर्मास करने का निश्चय कर लिया। जब सूरिजी ने मरोट नगर में चतुर्मास किया तो अन्य साधुओं को आस पास के ग्रामनगरों में चतुर्मास की आज्ञा देदी अतः उस प्रान्त में सर्वत्र जैनधर्म का विजय डंका बजने लग गया।

सूरिजी के विराजने से केवल एक मरोटनगर की जैन जनता को ही लाभ नहीं हुआ पर जैनेतर लोगों को भी बड़ा भारी लाभ मिला आपश्री के मुखारविन्द से तात्विक दार्शनिक अध्यात्म योग आदि वगैरह अनेक विषयों पर हमेशा व्याख्यान होता था कि जिसको श्रवण कर वहां के राजा एवं प्रजा अपना अहोभाग्य समझते थे और जैनधर्म की मुक्तकण्ठ से भूरि भूरि प्रशंसा करते थे जिस समय आप मरोट में विराजते थे उस समय वहाँ बोद्धों के भी कई भिक्षु ठहरे हुए थे पर सूरिजी के सूर्य प्रताप पर तेज के आगे वे चूं तक भी नहीं करते थे इतना ही क्यों पर एक विद्वान बौद्ध साधु ने सूरिजी के पास जैन दीक्षा भी स्वीकार करली थी जिससे बौद्धों में ठीक हलचल मच गई थी। सूरिजी ने जैनधर्म का प्रचार करते हुए मरोट से विहार कर आर्यवर्ति प्रदेश में पदार्पण किया तो वहाँ की जनता के हर्ष का पार नहीं रहा अनेक सावत्थाम मत्स्यमिका महेन्द्रपुर चन्द्रावतीपुर, पद्मपुर होते हुए मेद पाट में पधारे वहां पर भी चित्रकोट आघाट देवपट्टनादि नगरों में घूमते हुए आप मरुधर में पधारे और क्रमशः उपकेशपुर पधार रहे थे उस समय मरुधर वासियों के उत्साह का पार नहीं था उपकेशपुर के श्रीसंघ ने सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया सूरिजी ने भगवान महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर अपना अहो भाग्य समझा देवी सच्चायिका परोक्षपने आपकी सेवा में हाजर हो वन्दन किया करती थी श्रीसंघ की आग्रह भरी विनती से वह चतुर्मास सूरिजी ने उपकेशपुर में कर दिया जिससे जनता को बड़ा भारी लाभ मिला और धर्म

का भी अच्छा उद्योत हुआ। एक समय सूरिजी ने अपने आयुष्य के लिये देवी को पूछा तो देवी ने कहा पूज्यवर! कहते हुए बड़ा ही दुःख होता है कि आप की आयुष्य पाँच मास और तेरह दिन की रही है आप अपने शिष्य उपाध्याय मंगलकुम्भ को पट्टधर बना कर अन्तिम सलेखना में लग जाइये। सूरिजी ने देवी के वचन को 'तथाऽस्तु' कह कर उपाध्याय मंगलकुम्भ को पद प्रतिष्ठित करने का श्री संघ को सूचित कर दिया कि श्रीसंघ के आदेश से कुमटगौत्रीय शाह वरधा ने सूरिपद के महोत्सव में पाँच लक्ष द्रव्य खर्च कर उच्छव किया और आचार्यश्री ने चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय मंगलकुम्भ को अपने पट्टपर आचार्य बना कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया तथा उस अवसर पर और भी योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान की। बाद चातुर्मास के वहाँ से विहार कर आप खटकूंप नगर पधार रहे थे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया। विशेषता यह थी कि यह आपके जन्मभूमि का नगर था जनता में बहुत हर्ष एवं उत्साह था सूरिजी अन्तिम सँलेखना तो पहले से ही कर रहे थे पर जब देवी के कथनानुसार आपके आयुष्य के शेष ३२ दिन रहे तो सूरिजी ने चतुर्विध श्री संघ के सामने अनशन करने का कहा जिसको सुन कर संघ के हृदय को बड़ा ही आघात पहुँचा पर काल के सामने वे कर क्या सकते थे आखिर सूरिजी महाराजने आलोचना पूर्वक अनशन कर लिया और समाधि पूर्वक ३२ दिनों के अन्त में पांच परमेष्टी के स्मरण पूर्वक स्वर्ग धाम पधार गये। उस समय सकल श्री संघ में ही नहीं पर नगर भर में शोक के काले बादल छा गये थे श्री संघ ने निरानन्द होते हुए भी सूरिजी के शरीर का संस्कार किया जिस समय आपके शरीर का अग्नि संस्कार प्रारम्भ हुआ उस समय आकाश से केसर के रंग का थोड़ा थोड़ा बरसाद हुआ था तथा चिता पर कुछ पुष्प भी गिरे जिसकी सौरभ वायु से मिश्रित हो चारों ओर फैल गई थी श्री संघ के दुःख निवारणार्थ अदृश्य रहकर देवी ने कहा कि आचार्य देवगुप्त सूरि महान् प्रभावशाली हुए हैं आप सौधर्म देवलोक के सुदर्शन विमान में पधारे और एकभव करके मोक्ष पधार जायँगे। जिसको सुनकर श्रीसंघ में बड़ा ही आनन्द मनाया गया और आपके अग्निसंस्कार के स्थान एक सुन्दर बहुमूल्य स्तम्भ बनाया गया जो आपके गुणों की स्मृति करवा रहा था—

सूरीश्वरजी के शासन मे भावुकों की दीक्षाएँ

१—खटकूंपनगर	के	बाप्पनाग गौ०	शाह	माला ने	सूरि०	दीक्षा
२—राहोप	के	श्रेष्टि गौ०	,,	रामा ने	,,	,
३—रोहीग्राम	के	भूरि गौ०	,	काना ने	,,	,,
४—सिन्धोड़ी	के	भूरि गौ०	,,	कल्हण ने	,,	,,
५—मुग्धपुर	के	कुमट गौ०	,,	चुनड़ ने	,,	,,
६—गिलणी	के	कनोजिये ०	,,	चतराने	,,	,,
७—मुकनपुर	के	चोरड़िया०	,,	चुड़ा ने	,,	,,
८—नागपुर	के	नाहटा गौ०	,,	जैता ने	,,	,,
९—नेताड़ी	के	गोलेचा०	,,	जसा ने	,,	,,
१०—पद्मावती	के	तप्तभट्ट गौ०	,,	गेंदा ने	,,	,,

११—राजोली	के	बाप्पनाग	शाह	राजसी ने	सूरि	दीक्षा
१२—कनकावती	के	सुचंति गौ	"	रामा ने	"	"
१३—मेदनीपुर	के	विरहट गौ०	"	चंपा ने		"
१४—सोमपीपुर	के	श्रेष्ठि गौ	"	सारंग ने	"	"
१५—विराटपुर	के	कुलभद्र गौ०	"	सरवण ने	"	"
१६—गोविन्दपुर	के	श्री श्रीमाल	"	संगण ने	"	"
१७—चन्द्रावती	के	आदित्यनाग०	"	सारा ने	"	"
१८—शिवपुरी	के	चोरडिया	"	मोखा ने	"	"
१९—पालिका	के	भाद्र गौ	"	मेकरण ने	"	"
२०—नागपुर	के	करणाट गौ०	"	खेता ने	"	"
२१—मरोंठ	के	डिडू गौ	"	कानड़ ने	"	"
२२—वर्द्धमानपुर	के	सुंघ गौ	"	साला ने	"	"
२३—राजपुर	के	मल्ल गौ०	"	करमण ने	"	"
२४—करणावती	के	सुघड़ गौ	"	चन्ना ने	"	"
२५—सोपारपट्टन	के	लघुश्रेष्ठि	"	आसल ने	"	"
२६—माडपुर	के	विद्र गौ	"	धवल ने	"	"
२७—मोखपुर	के	प्राग्वटवंशी	"	पूरण ने	"	"
२८—खारकोट	के	" "	"	सावर ने	"	"
२९—वीरपुर	के	" "	"	आसल ने	"	"
३०—हाली	के	"	"	फागु ने	"	"
३१—वामरोल	के	श्रीमाल वंशी	"	भाखा ने	"	"
३२—नारदर	के	" "	"	रामा ने		"
३३—मारोटकोट	के	श्रीश्रीमाल गौ		भूता ने	"	"

उपकेशवंश एवं महाजन संघ के अलावा भी कई प्रान्तों में सूरिजी एवं आपके शिष्य समुदाय के साधु पुरुष एवं स्त्रियों ने बड़ी तादाद में दीक्षा ली थी यही कारण है कि आपके शासन में हजारों साधु साध्वियाँ अनेक प्रान्तों में विहार कर रहे थे ।

आचार्य देव के शासन में तीर्थों के संघादिसद् कार्य—

१—माडव्यपुर	से	विद्गौत्री	शाह	कालिदास ने	श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला
२—मेदनीपुर	से	करणाटगौत्री	शाह	पुनड़ ने	"
३—चन्द्रावती	से	चिंचटगौत्री	शाह	गुणपाल ने	"
४—विराटपुर	से	बलाहगौत्री	शाह	मुलना ने	"
५—पद्मावती	से	चाप्पनोत्री	शाह	नारा ने	"

६—देवपट्टन	से लुंगगौत्री	शाह	धरमण ने	श्री शत्रुंजय का	संघ निकाला
७—आघाट नगर	से श्रेष्टिगौत्री	शाह	फूवा ने	,,	,,
८—दशपुर	से बालनाग०	शाह	लाखण ने	,,	,,
९—चन्देरी	से बलादगौ०	शाह	भीमदेव ने	,,	,,
१०—हासारी	से सुचंती गौ	शाह	पूर्ण ने	,,	,,
११—वीरपुर	से मोरक्ष गौ०	शाह	मुकुन्द ने	,,	,,
१२—कीराटकूप	से कुमट गौ०	शाह	नागदेव ने	,,	,,
१३—सोपारपट्टन	से सुचंती गौ०	शाह	खेतसी ने	,,	,,
१४—मथुरा	से श्रीश्रीमाल गौ०	शाह	सहरण ने	,,	,,
१५—सजनपुर	से प्राग्वट वंशी	शाह	गोकल ने	,,	,,
१६—गगनपुर	से प्राग्वट वंशी	शाह	खीमसी ने	,,	,,
१७—सोनपुरा	से श्रीमाल वंशी	शाह	नाथा ने	,,	,,
१८—उपकेशपुर	से भाद्र गौत्रीय	शाह	नारायणने	,,	,,

१९—हर्षपुर का कुलचन्द्रगौत्री मंत्री लाला युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२०—क्षत्रीपुर का श्रेष्ठि गौत्री मत्री कानड़ ,, ,, ,, ,,
२१—राजपुर का मल्ल गौत्री शाह खुमाण ,, ,, ,, ,,
२२—चन्द्रावती का प्राग्वट वशी राजसी ,, ,, ,, ,,
२३—उपकेशपुर का बलाह गौत्री शाह राघो ,, ,, ,, ,,
२४—नारदपुरी का प्राग्वटवशी शाह जुजार ,, ,, ,, ,,
२५—शिवगढ़ का श्रेष्ठि गौत्री सलखण ,, ,, ,, ,,
२६—नागपुर का अदित्यनाग-मंत्री दूधा की स्त्री रेवती ने तलाव खुदाया
२७—विजयपुर का सुचति शाह वीरम की विधवा पुत्री ने तलाव खुदाया

इत्यादि जनोपयोगी कार्यों में जैन श्रावकों ने लाखों करोड़ों रूपये खर्च कर देश सेवा की जिनका उपकार कभी भूला नहीं जा सकता है।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—शाकम्भरी नगरी के डिड्डगौत्री	शाह	रूघा के	बनाये	मन्दिर की प्रतिष्ठा		करवाई
२—हसावली नगरी के बाप्पनाग०	,,	माल्ला के	,,	महावीर	,,	,,
३—पदमावती नगरी के श्रेष्टि गौ०	,,	खेमा के	,,	,,	,,	,,
४—रूपनेर के आदित्यनाग गौ०	,,	देशल के	,,	,,	,,	,,
५—हरनाई के चरड़ गौत्रीय	,,	गोपाल के	,,	,,	,,	,,
६—धोलापुर के लुंग गौत्रीय	,,	शांखला के	,,	पार्श्व	,,	,,
७—चन्द्रपुर के बाप्पनाग गौ०	,,	त्रिभुवन के	,,	,,	,,	,,

३५—आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी (पष्टम)

सिद्धाचार्य इहाभवद्विरहटे गौत्रे सुशोभायुत : ।
सम्मेतं निदधौ धनेन शिखिरं संघं तु कोट्यासुधीः ॥
निर्वाणालय नाके चम विहितो दीक्षायुतो यःस्वयं ।
नित्यं जैनमतं प्रचार्य वहुधा ख्यातोऽसकौ जातवान् ॥

चार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक प्रभावोत्पादक सिद्धपुरुष आचार्य थे आपश्री अपने कार्य में बड़ेही सिद्धहस्त एव जैनधर्म के प्रखर प्रचारक थे। आपश्री वर्तमान जैन साहित्य एव व्याकरण न्याय तर्क छन्द काव्य अलङ्कार ज्योतिष गणित और अष्टमहानिमित के पारगत थे आसन योग समाधी एव स्वरोदय तथा अनेक विद्या लब्धियों को आपने हस्तामलक की तरह कर रक्खी थी। आपश्रीजी जैसे ज्ञानके समुद्र थे वैसे ही ज्ञानदान करने में धनकुबेर भी थे यही कारण था कि स्वगच्छ परगच्छ के अलावे बहुत से जैनेतर विद्वान भी आपश्री की सेवा में रहकर रुचि पूर्वक ज्ञाना ध्ययन किया करते थे। शास्त्रार्थ में तो आपश्रीजी इतने निपुण थे कि कई राजा महाराजाओं की सभाओं में वादियों को परास्त कर ऐसी धाक जमादीथी कि वे सिद्धसूरि का नाम श्रवणमात्र से दूरदूर भागते थे। आपके पूर्वजों से स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन चलाने में तो आप चतुर ड्राइवर का ही काम करते थे, आपश्री का विहार क्षेत्र इतना विशाल था कि प्रत्येक प्रान्त में आपका विहार हुआ करता था आपने अनेक भावुकों को दीक्षा दी लाखों मांसमदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये और भविष्य की प्रजा के लिये कई ग्रन्थों की रचनाएं भी आपश्री ने की आचार्य सिद्धसूरि अपने समय के एक युगप्रवर्तक आचार्य हुए है आपका पुनीत जीवन पूर्णरहस्यमय एवं जनकल्याणार्थ ही हुआ था पट्टावलीकारों ने आपश्री का जीवन खूब विस्तार से लिखा है पर ग्रन्थ बढ़जाने के भय से मैं यहां पर केवल आपश्री के जीवन का संक्षिप्त दिग्दर्शन करवा देता हूँ।

भारत के विभूति रूप वीरप्रसूत मेदपाट भूमि के भूषण चित्रकोट नामका रम्य एव विशाल नगर था कवियों ने तो यहां तक ओपमा दे डाली है कि चित्रकोट सदैव स्वर्ग की ही स्पर्द्धा करता था परन्तु जहाँ अनेक प्रकार का रसवती खाद्यपदार्थ पैदाहोता हो व्यापार का केन्द्रहो और जहाँ के निवासी परद्रव्यग्रहण करने में पगु, पर रमणी देखने में प्रज्ञाचक्षु, पर निंदा करने में मूक और पर अपवाद सुनने में बेहरे हो वहाँ स्वर्ग क्या अधिकताइ रखता है कारण स्वर्ग में इन सब बातों का आस्तित्व विद्यमान है अत चित्रकोट की बराबरी स्वर्ग स्यात्ही करसके ? वहा के प्रजा जन अच्छे लिखेपढ़े उद्योगी एव परिश्रम जीवी अपना जीवन सुखशान्ति से व्यतीत कर रहे थे चित्रकोट की जनता के कल्याण के लिये उच्च २ शिखर व सोने के दडकलस वाले जिन-मन्दिर थे उनकी सेवा पूजा भक्ति करने वाले हजारों लाखोंभक्तलोग तनधन से समृद्धशाली बसते थे वे कई राजके मत्री महामत्री सेनापति वगैरह पद प्रतिष्ठित भी थे और अधिक लोग व्यापारी थे उनकाव्यापार केवल

भारत में ही नहीं पर पाश्चात्य प्रदेशों में अच्छाप्रमाण चलता था और उसमें वे पुष्कलद्रव्योपार्जन करते थे यही कारण है कि वे एक एक धर्म कार्य में लाखों करोड़ों द्रव्य लगाकर जैनधर्म की वृद्धि एवं प्रभावना किया करते थे उन व्यापारियों में विरहट गौत्री दिवाकर शाह कल्पा भी एक था आपका व्यवसाय बहुत विशाल था आप के १२ पुत्र और ८ पुत्रियां तथा और भी बहुतसा कुटम्ब परिवार था आपका व्यापार भारत के अलावा पाश्चात्य प्रदेशों में भी था कई द्वीपोंमें तो आपकी दुकानें भी थी कर्पोत शाह कल्पा एक प्रसिद्ध पुरुष था शाह कल्पाके गृहदेवी का नाम था भाबी शाहकल्पाके १२ पुत्रों में एक सारंग नाम का पुत्र बड़ाही भाग्यशाली एवं होनहार था सारंग व्यापारार्थ कई बार विदेशों की मुसाफरी कर आया था और उसने करोड़ों रुपये व्यापार में पैदा भी किये थे एकबार सारंगने जहाजों में करोड़ों रुपयों का माल लेकर विदेशमें जाने के लिये प्रस्थान करदिया जब उनकी जहाज समुद्र के बीचमें आई तो एक दम समुद्र तूफान पर आगया सारंगने सोचाकि वायु वगैरह का कोई भी कारण नहीं फिर यह उपद्रव क्यों हो रहा है ? सारंग अपने धर्म में सुदृढ़ श्रद्धावाला था देव गुरु धर्म पर उसका पूर्ण विश्वास था देवी सच्चायिका का आपको इष्ट भी था जहाजों के सब लोग घबराने लगे और वे चल कर सारंग के पास आये सारंग ने उन अधीर लोगों को धैर्य दिलाते हुए कहा महानुभावों ! आप जानते हो कि "यं यं भगवयादिट्ठं तं तं परिणमिस्सन्ति" इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो जो भगवान ने ज्ञान देखा है वह तो कुछ फिरने नहीं रहेगा फिर सोच फिक्र करने से क्या होने वाला है व्यर्थ आर्तध्यानकर कर्म क्यों बांधा जाय । जहाज के लोगों ने अपने अपने पिच्छे रहे हुए धन कुटुम्ब की चिन्ता का हाल सारंग को सुनाया । सारंग ने उन सब को पुनः धैर्य दिलाया और कहाकि 'जो होता है वह अच्छे के लिये होता है" किसी ने कहा सेठ साहिब आपका कहना सही ठीक हो परन्तु केवल निश्चय पर बैठ जाने से ही काम नहीं चलता है पर साथ में उपाय भी तो करना चाहिये । सारंग ने कहा कि उपाय भी तो निश्चय के पीछे ही होता है मैं ठीक कहता हूँ कि "जो होता है वह अच्छे के लिये ही होता है" सुनिये मैं आपको एक उदाहरण सुनाता हूँ वसन्तपुर नगर के राजा जयशत्रु की किसी समय हाथ की एक अंगुली कटगई जिसके लिये राज सभा के लोगों ने बहुत फिक्र किया परन्तु राजाके एक धर्मचिन्तक मंत्री के मुंहसे सहसा निकल गयाकि "जो होता है वह अच्छे के लिये" भी सभ्यों में एक दो दुर्जन भी मिल जाते हैं अतः एक दुर्जन ने राजा से कहा कि आपकी अंगुली कटजाने का सबको दुःख है पर आपके धर्मचिन्तक मंत्री को थोड़ा भी दुःख नहीं हुआ है इतना ही क्योंकर मंत्री तो आपकी अंगुली कटने को अच्छा बतलाता है इस पर राजा मंत्री पर नाराज हो गया किन्तु राजा के हृदय में मंत्री के लिए इतना स्थान अवश्य था कि मंत्री ज्ञानी है शास्त्रों का जानकार एवं धर्मीष्ट है अतः वह मंत्री को कुछ भी नहीं कहसका । एक समय राजा एवं मंत्री जंगल की ओर हवा खोरी के लिये गए थे वे एक पहाड़ में जा पड़े तो राजाको प्यास लगी मंत्री राजा को एक झाड़ की शीतल छाया में बैठाकर आप पानी लेने को गया । भाग्यवशात् उस ही दिन देवी की असन पूजा की कुछ लोग एक बत्तीस लक्षण वाले पुरुष की खोज में घूम रहे थे वे चलते चलते राजा के पास आये और राजा की सूरत देख निश्चय कर लिया कि यह बत्तीस लक्षण वाला पुरुष देवी को बलि देने योग्य है वह पापी लोग राजा को पकड़ कर देवी के मन्दिर पर ले गये उस जंगल में सैकड़ों निर्दय दैत्यों के सामने राजा कर भी तो क्या सकता था परन्तु पिच्छे से मंत्री ने आकर देखा तो राजा नहीं उसने तत्कालिक बुद्धि से सब हाल जान लिया उसने दूर ही वेश छोड़कर एक भीलका रूप बना कर देवी के मन्दिर में चला गया और

उन घातकी लोगों के साथ मिल गया। जब देवी के सामने राजा की बलि देने की तैयारी हुई तो सेना के वेश वाले मंत्री ने कहा कि जिसकी बलि दी जाती है उस के सब अंगोपाग तो देख लिये हैं या नहीं ? यदि कोई अगोपांग खण्डित हुआ तो देवी कोप कर सब को मार डालेगी। बस इतना सुनकर राजा का शरीर देखने लगे तो उसकी एक अंगुली कटी हुई पाई तब सबने कहा कि इस खण्डित पुरुष की बलि देवीको नहीं दी जा सकती है इसको जल्दी से निकाल दो। बस फिर तो क्या देरी थी राजा को शीघ्र ही हटा दिया। जब राजा अपनी जान बचाने की गरज से देवी के मन्दिर से चूपचाप चल पड़ा तथा अवसर का जान मंत्री भी किसी बहाने से वहाँ से निकल गया और आगे चल कर वे दोनों मिल गये। राजाने कहा मन्त्री तू ने आज मेरी जान बचाई है। मंत्री ने कहा नहीं हजूर 'जो होता है वह अच्छे के लिये ही होता है' राजाकी अकल ठीकाने आगई और नगर में आकर मन्त्री को एकलक्ष सुवर्णमुद्रिका इनाम में दी। ठीक है दुखी लोगों का समय ऐसी बातों में ही व्यतीत होता है। सारंग ने कहा महानुभावों ! आप ठीक समझ लीजिये कि 'जो होता है वह अच्छा के लिये है' इस पर आप विश्वास रक्खें यह आपकी—कसौटी परीक्षा का समय है। जहाज के सब लोगों ने सारंग के कहने पर विश्वास कर लिया और यह देखने की उत्कण्ठा लगने लगी कि देखें क्या होता है ?—

थोड़ी देर हुई कि उपद्रव ने और भी जोर पकड़ा अब तो लोग विशेष घबराये। सारग ने सोचा कि धन्य है ससार त्यागियों-साधुओं को कि जो ससार की तृष्णा त्यागकर व दीक्षा लेकर अपना कल्याण कर रहे है। यदि मैं भी दीक्षा ले लेता तो इस प्रकार का अनुभव मुझे क्यों करना पड़ता यद्यपि मुझे तो इस उपद्रव से कोई नुकसान नहीं है कारण यदि इस उपद्रव में धन या शरीर का नाश हो भी जाय तो यह मेरी निजी वस्तु नहीं है तथा इनका एक दिन नाश होना ही है परन्तु विचारे जहाज के लोग जो मेरे विश्वास पर आये हैं, आर्तध्यान कर कर्मोपार्जन कर रहे है यद्यपि इस प्रकार के आर्तध्यान से होना करना कुच्छ भी नहीं है पर अभी इनको इतना ज्ञान नहीं है। खैर मेरा कर्तव्य है कि मैं इनको ठीक समझाऊँ। अतः सारग ने उन लोगों को संसार की असारता एवं उपद्रव के समय मजबूती रखने के बारे में बहुत समझाया पर विपत्ति में धैर्य रखना भी तो बड़ा ही मुश्किल का काम है इतना ही क्यों पर इस विकटावस्था को देख सूर्यनारायण भी अस्ताचल की ओर शीघ्र पलायन करगया जब एक ओर तो रात्रि के समय अन्धकार ने अपना साम्राज्य चारों ओर फैला दिया तब दूसरी ओर जहाजों का कम्पना एवं चारों ओर गोता लगाना तीसरी ओर किसी अधार्मिक देव का अट्टहास्य करना इत्यादि की भयंकरता से सबके कलेजे काम्पने लग गये जब लोगों ने प्रार्थना की कि यदि कोई देव दानव हो तो हम उनके हुक्म उठाने को तैयार हैं ? इस पर देव ने कहा कि तुम लोगों ने जहाजों को चलाया परन्तु प्रस्थान के समय हमारे बल बाकुल नहीं दिया है अत तुम्हारी किसी की कुशल नहीं है अब तो सब लोग सारग के पास आये और बलि देने की प्रार्थना की इस पर सारग ने कहा हम अनेक बार जहाज को लाये और लेगये पर बलि कभी नहीं दी और अब भी नहीं दी जायगी हाँ जिसको बलि की आवश्यकता हो वह हमारे शरीर की बलि ले सकता है देव ने कहा तुम अनेक बार जहाजों को लाये होंगे पर इस रास्ते से जो कोई जहाजों को लाता या लेजाता है वह बिना बलि दिये कुशल नहीं जाता है अब अब भी समय है यदि तुम कुशल रहना चाहते हो तो बलि चढ़ादो। जहाज के लोगों ने कहा सारग ! यदि एक जीव की बलि के कारण सब जहाज के लोग सुखी होते हों तो आपको हट नहीं करना चाहिये और इस कार्य में आप लोगों को पाप लगने का भय हो तो

यह सब पाप हमको लगेगा आप बलि देकर हम सबको सुखी बनाइये। सारंग ने कहा कि आपको नहीं न तो तात्त्विक ज्ञान है और न पाप पुन्य का भी भान है। आपको केवल अपना स्वार्थ करना ही आता है भला मैं आपसे ही पूछता हूँ कि आपके अन्दर से अपने प्राणों की बलि देने को कौन २ तय्यार हैं ? सब सबने मुँह-मोड़ लिया। सारंग ने कहा देखिये जैसे आपको अपने प्राण प्रिय हैं वैसे ही सब जीवों के प्राण उनको भी प्रिय है भला केवल अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये दूसरों के प्राण नष्ट कर देना कितना अन्याय है इस प्रकार बातें हो रही थी इतने में वो देव हाथ में तलवार लेकर सारंग के पास आया और कहा कि—अरे मेरी आज्ञा का भंग करने वाला सारंग ! बोल तेरा कितना अपराध करूं ? और तेरे जहाज को अभी समुद्र में डुबा दूं गा, इत्यादि भयंकर शब्दों से सारंग पर जोरों से आक्रमण किया। सारंग ने कहा कि मेरा अंगअंग करदे इसका तो मुझे तनिक भी रंज नहीं है पर देव ! आपकी मुझे बड़ी दया आ रही है कि पूर्व जन्म में तो बहुत जीवों को आराम पहुँचाया है कि जिस पुन्य से तुमने देवयोनि को प्राप्त की है और इस देवयोनि में इस प्रकार क्रूर कर्म करते हो तो इसस न जाने आपकी क्या गति होगी ? मैं जानता हूँ कि देव शास्त्र इस प्रकार न तो बलि लेते हैं और न ऐसे घृणित पदार्थ देवताओं के काम ही आते हैं फिर समझ में नहीं आता है कि यह निरर्थक कर्म क्यों बान्धा जाता है इत्यादि मार्मिक शब्दों में ऐसा उपदेश दिया कि जिससे देव का भ्रम दूर हो गया और उसने कहा सारंग ! मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं किसी जीव की बलि नहीं लूं गा और आज से मैं आपको अपना गुरु समझूं गा। कृपा कर आप मुझे ऐसा कार्य बतावें मैं उसको करके आपके उपकार रूपी भार को थोड़ा हलका कर दूं। सारंग ने कहा देव ! आप स्वयं ज्ञानवान हैं फिर भी आप ने बलि न लेने की प्रतिज्ञा की है यह हमारा बड़ा से बड़ा काम किया है दूसरा तो मेरे निज के लिये कुच्छ भी ऐसा काम नहीं है कि आपसे करवाया जाय। तथापि देवता ने कृतार्थ बनने के लिये एक दिव्य हार सारंग को दे दिया और कहा सारंग इस हार के प्रभाव स जहाज समुद्र में डूबेगा नहीं और पास में आवेगा नहीं और संग्राम में कभी पराजित होगा नहीं बाद देवता सारंग को नमस्कार कर के चला गया। जहाज वाले सब लोग सारंग की दृढ़ता से उसकी विजय को देख खुश हो गये और सारंग के चरणों में नमन कर के उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। सारंग ने कहा कि आप लोग भी अपने धर्म पर इसी प्रकार दृढ़ता रखा करो कारण सब पदार्थ मिलते हैं पर एक धर्म मिलना मुश्किल है इत्यादि उपदेश समाप्त होने के बाद जहाजें चली सब लोग इच्छित स्थान पर पहुँच गये सब जहाजों के माल विक्रय से सारंग एवं अन्य व्यापारियों को बहुत मुनाफा रहा और क्रमशः सब लोग अपने नगर को पहुँच गये—एवं सुख से रहने लगे।

आचार्य देवगुप्तसूरि धर्मोपदेश करते हुए एक समय चित्रकोट की ओर पधार रहे थे वहाँ के श्री संघ को खबर मिली तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा क्रमशः श्रीसंघ की ओर से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव किया गया सूरिजी ने मंगलाचरण के बाद थोड़ी पर सार गर्भित देशना दी बाद सभा एवं सारंग वगैरह तो सूरिजी की सेवा मे रह कर अपना कल्याण सम्पादन करने लगे एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता लक्ष्मी की चंचलता कुटम्ब की स्वार्थता आयुष्य की अस्थिरता और शरीर की क्षण भंगुरता पर बड़ा ही प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया। साथ में यह भी बतलाया कि महानुभावों ! आत्म कल्याण के लिये जो इस सम। सामग्री मिली है यह बार बार मिलनी बहुत कठिन है। यदि उत्तम सामग्री

के होते हुए भी आत्महित न किया जाय तो लोहावनियें की भांति पश्चाताप करना पड़ेगा अत. समय जा रहा है जिस किसी को चेतना हो चेत लो हम लोग पुकार पुकार के कह रहे हैं इत्यादि। यों तो सूरिजी के उपदेश का बहुत भावुकों पर असर हुआ पर विशेष शाह ऊमा के पुत्र सारग पर तो इतना प्रभाव पडा कि ससार से विरक्त हो सूरिजी के चरणों में दीक्षा लेने का उसने निश्चय कर लिया। इधर शाह ऊमा को भी वैराग्य हो आया पर जब उसने कुटुम्ब की ओर दृष्टि डाली तो उसको मोह राजा के दूतों ने घार लिया। खैर व्याख्यान समाप्त होने पर सब लोग चले गये। सारंग भी अपने घर पर आया और अपने माता-पिता से कहा कि मेरी इच्छा सूरिजी के पास दीक्षा लेने की है यह देवदत्त हार वगैरह सब सभाले। ऊमा की आत्मा में पुन' वैराग्य की ज्योति जाग उठी और उसने कहा सारग ! मैं दीक्षा लूंगा तू घर में रह कर कुटुम्ब का पालन कर ? सारग ने कहा पूज्य पिताजी ! बहुत खुशी की बात है कि आप दीक्षा ले रहे हैं पर मेरा भी तो कर्त्तव्य है कि मैं आपकी सेवा में रहूँ। तथा आप कुटुब का फिक्र क्यों करते हो सब जीव अपने-अपने पुन्य साथ में लेकर ही आये हैं इनके लिये आपका मोह व्यर्थ है आप तो दीक्षा लेकर अपना कल्याण करे। बस शाह ऊमा और सारग ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया इस बात की खबर कुटुम्ब वालों को मिली तो वे कब चाहते थे कि शाह ऊमा एवं सारग जैसे हमको तथा हमारे सब कार्यों को छोड़ कर दीक्षा लेलें। सेठानीजी ने अपने पति एव पुत्र को समझाने की बहुत कोशिश की पर जिन्होंने ज्ञान दृष्टि से संसार को कारागृह जान लिया हो वे कब इस ससार रूपी जाल में फस कर अपना अहित कर सकते हैं, आखिर शाह ऊमा के चार पुत्र और स्त्री दीक्षा लेने को तैयार हो गये इतना ही क्यों पर कई ३७ नर-नारी और भी दीक्षा के लिये उम्मेदवार बन गये शाह ऊमा के पुत्र ने लाखों का द्रव्य व्यय कर दीक्षा का बड़ा ही समारोह से महोत्सव किया और शुभ मुहूर्त एव स्थिर लग्न में सारगादि ४२ नर-नारी को भगवती जैन दीक्षा देकर उन सबका उद्धार किया और सारग का नाम मुनि शेखरप्रभ रख दिया इस प्रभावशाली कार्य स जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई और इस प्रभावना का प्रभाव कई जैनेत्तर जनता पर भी हुआ कि बहुत से लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया उन सबको महाजन संघ में सम्मिलित कर दिया। अहा-हा वह कैसा जमाना था कि जैनाचार्य जिस प्रान्त में पदार्पण करते उसी प्रान्त में जैन धर्म का बड़ा भारी उद्योत होता था जैनेतरों को जैन बनाना तो उनके गुरु परम्परा ही से चला आ रहा था यही कारण है कि महाजन स घ की स ख्या लाखों की थीं वह करोड़ों तक पहुँच गई थी और श्रमण स घ की स ख्या भी बढ़ती गई कि कोई भी प्राँत ऐसा नहीं रहा कि जहाँ जैनश्रमणों का विहार नहीं होता हो क्या आज के सूरीश्वर इस बात को समझेंगे ?

जिस समय शाह ऊमा और सारग गृहस्थ वास में थे उस समय उनकी इच्छा श्रीसम्मेतशिखरजी का स घ निकाल यात्रा करने की थी परन्तु सूरिजी के उपदेश से उन्होंने वैराग्य की धून में दीक्षा ले ली फिरभी आपके दिल में यात्रा करने की उत्कृष्टता ज्यों की त्यों वृद्धि पा रही थी शाह ऊमा ने दीक्षा ली तो उसका नाम उत्तमविजय रखा गया था उसने अपने पुत्र पुनड़ को उपदेश दिया और उसने बड़ी खुशी के साथ सम्मेत शिखरजी का स घ निकालना अपना अहोभाग्य समझ कर स्वीकार कर लिया बस फिर तो कहना ही क्या था ? शाह पुनड़ बड़ा ही उदार दिल वाला था उसने आचार्य देवगुप्तसूरि की सम्मति लेकर स घ आमन्त्रण की पत्रिकाएँ खूब दूर-दूर भिजवादी पट्टावलीकार लिखते हैं कि शाह पुनड़ के स घ

में करीब डेढ़ लक्ष यात्री पच्चीस हस्ती, तीन राजा और चार हजार साधु-साध्वियें थी शाह पुनड़ ने इस संघ के निमित्त एक करोड़ द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की उन्नति के साथ आत्म कल्याण किया संघ सानंद यात्रा कर वापिस लौट आया और आचार्य देवगुप्तसूरि ने भी सम्मेतशिखर की यात्रा कर अपने मुनियों के साथ पूर्व बंगाल कलिंग में कई अर्से तक विहार किया जिससे जैनधर्म का प्रचार हुआ और कई जीवों को जैनधर्म की दीक्षा भी दी।

मुनि शेखरप्रभ ने सूरिजी की सेवा में रहकर वर्तमान साहित्य का गहरा अध्ययन कर लिया इतना ही क्यों पर आप सर्वगुण सम्पन्न हो गये यही कारण है कि आचार्य देवगुप्तसूरि भू भ्रमण करते हुए मथुरा में पधारे और वहां देवी सच्चायिका की सम्मति से एवं वहां के श्रीसंघ के अति आग्रह से मुनि शेखरप्रभ को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य सिद्धसूरि एक महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए आपके शासन समय में जैनधर्म अच्छी उन्नति पर था जैनों की संख्या भी करोड़ों की थी विशेषता यह थी कि आपके आज्ञावर्ती हजारों साधु-साध्वियें अनेक प्रान्तो में विहार कर धर्म-प्रचार बढ़ा रहे थे ऐसा प्रान्त शायद ही बचा हो कि जहाँ जैन साधु साध्वियों का विहार न होता हो। दूसरा उस समय के आचार्यों एवं साधुओं में गच्छभेद मतभेद क्रियाभेद भी नहीं था और किसी का लक्ष भेदभाव की ओर भी नहीं था वे आपस में मिल-जुल कर धर्म प्रचार को बढ़ा रहे थे वादियों को परास्त करने में वे सबके सब एक ही थे यही कारण है कि ऐसी विकट परिस्थिति में भी जैनधर्म जीवित रहकर गर्जना कर रहा था उस समय उपकेशगच्छाचार्यों का विहार क्षेत्र बहुत विशाल था मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध पंजाब शूरसेन पंचाल मत्स्य कुणालवत्स मालवी और मेदपाट तक उपकेशगच्छीय साधुओं का विहार होता था कभी-कभी महाराष्ट्र तिलंग विदर्भ और पूर्व तक भी उपकेशगच्छाचार्य विहार किया करते थे तब और सन्तानियों का विहार मारवाड़ सौराष्ट्र मेदपाट मरुधर कोंकण प्रदेशों में होता था और कोरंटगच्छाचार्यों का विहार आबू के आस-पास का प्रदेश और कभी कभी मथुरा तक भी होता था बहुत बार इन साधुओं की आपस में भेंट होती और परस्पर शामिल भी रहते थे परन्तु जनता यह नहीं जान पाती कि ये पृथक २ समुदाय के साधु हैं कारण उनके आपस की संभोग शामिल थे विनय भक्ति का व्यवहार तो इतना उत्तम था कि पृथक् पृथक् आचार्यों के शिष्य होने पर भी वे एक गुरु के शिष्य ही दीख पड़ते थे ठीक है जिस गच्छ समुदाय व्यक्ति के भाग्य के दिन आते हैं तब ऐसी ही सम्प ऐक्यता रहती है।

आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज धर्मप्रचार करते हुए एक समय चन्द्रावती की ओर पधार रहे थे यह खबर वहां के श्रीसंघ को मिला तो उनके उत्साह का पार नहीं रहा अतः उन्होंने सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़े ही समारोह से महोत्सव किया सूरिजी ने मन्दिरों के दर्शन कर सारगर्भित देशनादी जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ इस प्रकार सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था चन्द्रावती नगरी में एक सारंग नामका अपार सम्पत्ति का मालिक व्यापारी सेठ रहता था वह था वैदिकधर्मानुयायी। उसको ऐसी शिक्षा मिलती थी कि जैन धर्म नास्तिक धर्म है वैदिकधर्म की जड़ उखाड़ने में मशहूर है अतः जैनों की संगत करना भी नरक का मेहमान बनना है इत्यादि सेठ सारंग मलिक था पर उपदेशकों की भ्रान्ति में आकर वह जैनों से बहुत नफरत करता था। जब सिद्धसूरि नगरी में पधारे और उनकी प्रशंसा सर्वत्र फैल गई तब कई जैन व्यापारियों ने सेठ सारंग को कहा कि एक दिन चलकर व्याख्यान तो सुनो ! अतः उनकी सिफारिश से सेठ सारंग व्याख्यान में आया

[मथुरा में मुनिशेखर को सूरिपद

उसदिन सूरिजी खास तौर पर धर्मों के लिये ही व्याख्यान देरहे थे कि इस भरतक्षेत्र में धर्म की नाव चलाने वाले सबसे पहले भगवान् ऋषभदेव हुए हैं और उनकी शिक्षा को ग्रहनकर चक्रवर्ती भरत ने चारवेदों का निर्माण किया था और उन वेदोंका अधिकार निर्लोभी निरहकारी परोपकार परायण ब्राह्मणों को इस गरजसे दिया कि तुम इन वेदों की शिक्षा द्वारा जनता का कल्याण करो।

जबतक ब्राह्मणों के हृदय के अन्दर निस्पृहता और उपकार बुद्धि रही वहां तक तो उन वेदों द्वारा जनता का उपकार होता रहा पर जबसे ब्राह्मणों के मन मन्दिर में लोभ रूपी पिशाच घुसा उन दिनों से ही ब्राह्मणों ने उन पवित्र वेदों की श्रुतियों को रद्दबदल कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये दुनिया को लूटना शुरू करदिया इतना ही क्यों पर पूज्य परमात्मा के नाम से वेदों में यज्ञादि का ऐसा क्रियाकाण्ड रच लिया कि विचारे निरापराधी मूक प्राणियों के मास से अपनी उदर पूर्ति करना शुरू कर दिया परन्तु यह बात एक सादी और सरल है कि क्या परमात्मा ऐसा निष्ठुर हुक्म कभी देसकते हैंकि तुम इन प्राणधारी प्राणियों के मास से तुम्हारी उदरपूर्ति करो? नहीं,जब कोई दयावान् उन प्राणियों पर दया लाकर उन घातकी वृति का निषेध करते हैंतो अपनी आजीविका के द्वारबन्ध न होजाय इस हेतु से वे ब्राह्मण उन सत्यवक्ताओं को नास्तिक पापी पाखडी कह कर अपने भद्रिक भक्तों के हृदय में भय उत्पन्न कर देते हैं कि तुम जैनों की सगत ही मत करो। यही कारण है कि वह भद्रिक ऐसे पापाचारों में शामिल हो कर अथवा उन यज्ञकर्ता हिंसकों को मददकर अपना अहित कर डालते हैं पर जिनको परभव का डर है सत्य असत्य का निर्णय कर सत्य स्वीकार करना है वे पराधीन नहीं पर स्वतंत्र निर्णय कर आत्मा का कल्याण करने में समर्थ है अत. उनकों उसी धर्म को स्वीकार करलेना चाहिये जिससे अपना कल्याण हो ? प्यारे सज्जनों। सत्यधर्म स्वीकार करने में न तो परम्परा की परवाह रखनी चाहिये और न लोकापवाद का भय ही रखना चाहिये। चरम चक्षुवाला प्रत्यक्ष में देख सकता है कि आज जनता का अधिक भाग अहिंसा धर्म का उपासक बन चुका है और जहाँ देखो अहिंसा का ही प्रचार होरहा है और वे भी साधारण लोग नहीं पर चारवेद आठरह पुराण के पूर्णाभ्यासी बडेबडे विद्वान ब्राह्मण एव राजा महाराजा हैं दूर क्यों जातेहो आपके श्रीमालनगर का राजा जयसेन एव इसी चन्द्रावती नगरी को आबाद करनेवाला राजा चन्द्रसेनादि लाखो मनुष्यों ने धर्मका ठीक निर्णय कर अहिंसा भगवती के चरनों में सिरझुका दिया था अत प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वे आत्म कल्याणार्थ धर्मका निर्णय अवश्य करें इत्यादि सूरिजी ने वेद पुराण श्रुति स्मृति उपनिषदों की युक्तियों और आगमों के सबल प्रमाणों द्वारा उपस्थित जनता पर अहिंसा एव जैनधर्म का खूबही प्रभाव डाला सूरिजी की ओजस्वी वाणी में न जाने जादू सा ही प्रभाव था कि श्रवण करने वालों को घृणित हिंसा के प्रति अरुचि होगई और अहिंसा के प्रति उनकी अधिक रुचि बढ़ गई अस्तु।

सेठ सालग ने सूरिजी का व्याख्यान खूब ध्यान लगाकर सुना और अपने दिल में विचार किया कि शायद आजका व्याख्यान सूरिजी ने खास तौर पर मेरे लिये ही दिया होगा खैर कुच्छ भी हो पर महात्माजी का कहना तो सौलह आना सत्य है कि दयालु ईश्वर ने जिन जीवों को उत्पन्न किया है वे सब ईश्वर के पुत्रतुल्य हैं उनकी हिंसा कर हम ईश्वर को कैसे खुशकर सकते हैं और इस कार्य से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है। खैर जब कभी समय मिलेगा तब महात्माजी के पास आकर निर्णय करेंगे। सभा विसर्जन हुई और सेठ सालग भी अपने घर पर चला गया पर उसके दिलमें सूरि के व्याख्यान ने बड़ी हल चल मचा दी

सेठ सालग ब्राह्मणों के उपदेश से एक लाख रु० व्यय कर एक वृहद् यज्ञ करने वाला था। ब्राह्मण लोगों को बड़ी बड़ी आशाएं थी पर जब ब्राह्मणों ने सुना की सेठ सालग आज जैनों के व्याख्यान में गया है तो उनके दिल में कई प्रकार की शंकाएं उत्पन्न होने लगी कि सेठ जैनों के वहां जाकर कहीं नास्तिक न बन जाय अतः वे चल कर सेठ के यहाँ आये और आशीर्वाद देकर कहने लगे क्यों सेठजी ! आप आज जैनों के यहाँ व्याख्यान सुनने गये थे ?

सेठजी—हाँ महाराज ! मैं आज बहुत लोगों के आग्रह से वहाँ गया था—

ब्राह्मण—भला ! आप हमारे धर्म के अग्रेसर होकर उन नास्तिक जैनों के व्याख्यान में चले गये तब साधारण लोग वहाँ जावें इसमें तो कहना ही क्या है ? और वहाँ सिवाय वेदधर्म एवं यज्ञ की निंदाके अलावा है क्या ? जैन एक नास्तिक धर्म है अतः आप जैसे महासम्पन्न धर्मेश्वरों को नास्तिकों के पास जाना उचित नहीं है।

सेठजी—मैंने करीब दो घंटे तक महात्माजी का व्याख्यान सुना पर ऐसा एक भी शब्द नहीं सुनाकि जिसको निंदा कही जासके।

ब्राह्मण—यज्ञ में दी जाने वाली बलि को हिंसा बतलाकर उसका निषेध तो किया ही होगा ? यह वेद धर्म की निंदा नहीं तो और क्या है ? इसको ही आप जैसे महासम्पन्न ने कानों से सुनी।

सेठजी—प्राणियों की हिंसा का तो वेद पुराण भी निषेध करता है और 'अहिंसापरमोधर्मः' सब धर्मों का मुख्य सिद्धान्त है इसमें क्या वेद धर्म क्या जैनधर्म सब एकमत हैं।

ब्राह्मण—अहिंसा परमोधर्म के लिये कोई इन्कार नहीं करता है पर यज्ञ करना वेद विहित होने से उसमें जो बलि दी जाती है वह हिंसा नहीं परन्तु अहिंसा ही कही जाती है।

सेठजी—क्या यज्ञ में बलि दिये जानेवाले पशुओंको दुःख नहीं होता होगा ? तब ही तो उन जीवों की बलि देने पर भी हिंसा नहीं किन्तु अहिंसा ही कही जाती है ?

ब्राह्मण—ऐसी तर्क करने का आप लोगों को अधिकार नहीं है जैसे वेद पाठी ब्राह्मण कहे वैसा आप लोगों को स्वीकार करलेना चाहिये। बतलाइये आपका विचार अश्वमेध यज्ञ करने का था उसके लिये अब क्या देरी है समय जा रहा है जल्दी कीजिये—

सेठजी—महाराज अभी तो मैंने निश्चय नहीं किया है और भी विचार करूंगा—

ब्राह्मणों को जो पहिले से शंका थी वह आज सत्यसी होगई अतः उन्होंने कहा कि सेठजी आप कहते थे कि मैं एक लाख रुपये यज्ञ में खर्च करूंगा फिर आप फरमाते हैं कि निश्चय नहीं तथा विचार करूंगा तो क्या आपको नास्तिक जैनाचार्य से सलाह लेनी है ?

सेठजी—क्या जैनाचार्य की सलाह लेना लांछन की बात है कि आप ताना दे रहे हैं जैनाचार्य को राजा महाराजा और लाखों करोड़ों मनुष्य पूज्यदृष्टि से देखते हैं और मान रहे हैं।

ब्राह्मण—पर इससे क्या हुआ वे है तो वेद निंदक एवं यज्ञ विध्वंसक; उनकी सलाह लेने पर वे कब कहेंगे कि तुम यज्ञ करवाओ। यदि आपको यज्ञ करवाना हो तो विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं हमारे कहने मुताबिक यज्ञ का कार्य प्रारंभ कर देना चाहिये।

सेठजी—ठीक है महाराज । इसके लिये मैं विचार कर आपको जवाब दूंगा ।

ब्राह्मण—निराश होकर वहाँ से चले गये—

सेठजी—समय पा कर सूरिजी के पास गये और नमस्कार कर पूछा कि महात्माजी ! आत्मकल्याण के लिये धर्म दुनियां में एक है या अनेक—?

सूरिजी—महानुभाव ! आत्म कल्याण के लिये धर्म एक ही होता है अनेक नहीं । हाँ एक धर्म की आराधना के कारण अनेक हुआ करते हैं ।

सेठजी—फिर आज संसार में अनेक धर्म, दृष्टि गोचर हो रहे हैं जिसमें भी प्रत्येक धर्म वाले अपने धर्म को सच्चा और दूसरे धर्म को झूठा वतलाते हैं फिर हम किस धर्म पर विश्वास रख कर अपना कल्याण करें?

सूरिजी—अनेक धर्म एक धर्म की शाखारूप है और अपने अपने स्वार्थ के लिये शुरु से तो थोड़ा थोड़ा भेद डाल कर अलग अखाड़े जमाये पर बाद में कई लोगों ने बिलकुल उल्टा रस्ता पकड लिया और धर्म के नामपर अधर्म और पाखण्ड चलादिये जैसे वाममार्गियों का एव यज्ञ हवनादि । खैर दूसरी तरह से कहा जाय तो इसमें आप जैसों की कसोटी भी है कहा है कि "बुद्धि फलं तत्त्व विचारणच" आप स्वय विचार कर सकते है कि अनेक धर्मों में से कौनसा धर्म कल्याण करने में समर्थ है । खैर जैन धर्म के विषय में आप जानते ही होंगे नही तो मैं सक्षिप्त में परिचय करवा देता हूँ । जैन साधुओं में सव से विशेषता तो त्याग वैराग्य की है वे कनक और कामिनी से बिलकुल मुक्त है ककर पत्थर उनके काम आ सकते है पर रुपया पैसा उनके काम में नही आते हैं छमास की लड़की को भी वे नहीं छूते हैं किसी भी जीवकों वे कष्ट नही पहुँचाते हैं अर्थात् आप स्वयं कठिनाइयों को सहन जो करलेते हैं पर दूसरे चराचर जीवों को कष्ट नहीं पहुँचाते हैं अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अकिंचन धर्म को वे मन वचन काया से करण करावण और अनुमोदन एवं नौकोटी परिविशुद्ध पालन करते हैं तप तपने में वे बड़े ही शूरवीर होते हैं परोपकार के लिये तो वे अपना जीवन अर्पण कर चुके हैं । संसार की उपाधि से वे सर्वथा मुक्त है अपने कर्त्तव्य पालन में वे किसी प्रकार का मान अपमान एव सुख दुःख का खयाल नहीं करते हैं किसी पदार्थ का संचय एवं प्रतिबन्ध नहीं रखते हैं उनके पास राजा रक कोई भी आवे धर्मोपदेश देने में थोड़ा भी भेद भाव नहीं रखते हैं इत्यादि यह तो उनका आचार व्यवहार है । तत्त्वज्ञान में उनका स्याद्वाद नयवाद प्रमाणवाद कर्मवाद आत्मावाद क्रियावाद सृष्टिवाद परमाणुवाद योग आसन समाधि वगैरह सर्वोत्कृष्ट है कि दूसरे कहीं पर वैसे नहीं मिल सकेंगे अत. आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म की आराधना करना ही सर्व श्रेष्ठ है । महानुभाव ! जैनधर्म किसी साधारण व्यक्ति का चलाया हुआ धर्म नहीं है पर यह धर्म अनादि अनन्त है । इस धर्म के प्रचारक बड़े बड़े तीर्थङ्कर हुए हैं एक समय जैनधर्म एक विश्व धर्म था और आज भी यह सर्व प्रान्तों में प्रसरित है हाँ जिस प्रान्त में जैन मुनियों का विहार एव उपदेश नहीं हुआ है वहाँ स्वार्थी लोगों ने अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये विचारे भद्रिक लोगों को धर्म के नाम उल्टे रास्ते लगा दिये हैं आप स्वय सोच सकते हैं कि एक यज्ञ करने में ब्राह्मणों का थोड़ा सा स्वार्थ है पर लाखों प्राणियों की निर्दयता पूर्वक बलि चढ़ाकर हजारों लाखों जीवों के कर्म बन्धका कारण कर डालते हैं इत्यादिसूरिजी ने सेठ को अच्छी तरह समझाया ।

सेठजी—महात्माजी ! आपका कहना बहुत ठीक एव अपक्षपात पूर्ण भी है पर मेरे वंश परम्परा से

चले आये धर्म का त्याग कैसे किया जाय इससे मेरी मान प्रतिष्ठा का भी भंग होता है ? फिर भी मैं आत्म कल्याण तो करना चाहता हूँ ।

सूरिजी—सेठजी ! मुझे यह उम्मेद नहीं है कि आप जैसे विचारज्ञ पुरुष केवल मान प्रतिष्ठा एवं वंश परम्परा की रूढ़िबद्धता से अपना अहित करने को तैयार है जैसे शास्त्रों में लोहा वणिया का उदाहरण बतलाया है वह भी सुन लीजिये—एक नगर से कई व्यापारियों ने किराये के गाडे भर कर व्यापारार्थ अन्य दिशावर के लिये प्रस्थान किया वे सब चलते जा रहे थे कि रास्ते में अतिशय लोहे की खानें आई तो सब व्यापारियों ने लाभ जान कर किराया वहां डाल दिया और लोहे से गाडे भर लिये फिर आगे चाँदी की खाने आई तो एक वणिये के अलावा सब ने लोहा डाल कर चांदी लेली । जिस एक वणिये ने लोहा नहीं डाला उसको सबने कहा भाई लोहा कम मूल्य वाला है अतः इसको यहां डाल कर बहुमूल्य चांदी ले ले । हम सबके ही है तू हमारे साथ आया है अतः तेरे हित के लिये ही हम कहते हैं लोहावणिया ने जवाब दिया कि मैं आपके जैसा अस्थिर मन वाला नहीं कि बार बार बदलता रहूँ । मैंने तो जो लिया वह ले लिया और आगे चलने पर सुवर्ण की खाने आई तो सबने चांदी डाल कर सुवर्ण ले लिया । लोहा वणिये को और भी समझाया गया पर वह तो था वंश परम्परा वाली उसने एक की भी नहीं सुनी फिर आगे चलने पर हीरे पन्ने की खाने देखी तो सब गाड़े वालों ने सोने को डाल कर हीरे पन्ने भर लिये । और लोहा वणिया को बहुत समझाया कि अभी तक तो कुछ नहीं बिगड़ा है अब भी आप इस तुच्छ लोहे को डाल दो और इन हीरे पन्ने को लेलो कि जनम भर एक से हो जाय वरना तुमको बहुत पश्चाताप करना पड़ेगा । पर लोहा वणिया ने एक की भी नहीं सुनी और जिस लोहा को पहले ग्रहण किया उसको ही पकड़ रखा और सब व्यापारी चल कर अपने खास स्थान पर आये उनने रत्न बेच कर अच्छे मकान और सब सामग्री खरीद कर देवताओं के सदृश आनन्द से सुख भोगवने लगे तब लोहावणिया उसी हालत में रहा कि जैसी पहिले थी अब दूसरे व्यापारियों के वे अलौकिक सुख देख कर पश्चाताप करने लगा और अपनी की हुई भूल से सूख कर रोने लगा पर अब क्या हो सकता ? सेठजी कभी आपको भी लोहा वणिया की भाँति पश्चाताप न करना पड़े ?

सेठ सारंग तो सूरिजी के पहिले ही व्याख्यान में समझ गया था पर सूरिजी के उपदेश एवं उदाहरण ने तो इतना प्रभाव डाला कि वह जैनधर्म स्वीकार करने को तैयार हो गया और कहा पूज्य गुरुदेव ! मैं मेरे सब कुटुम्ब वालों को लेकर कल व्याख्यान में आकर आप श्रीमान् के पास जैन धर्म स्वीकार करूँगा कि मेरे कुटुम्ब में दो मत न हो सके ? सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्'

सेठजी अपने मकान पर आये और रात्रि के समय अपने सब कुटुम्ब वालों को एकत्रित किया और उनको यह समझाया कि मनुष्यभव और लक्ष्मी तो अनेक बार मिली और मिलेगी ही पर धर्म की आराधना बिना जीव का कल्याण नहीं होता है अतः मैंने धर्म का अच्छी तरह से निर्णय कर के जैनधर्म को पसंद किया है और कल सुबह जैन धर्म स्वीकार करने का भी निश्चय कर लिया है अतः आप लोगों का क्या विचार है ? इस पर बहुत लोगों ने तो सेठजी का अनुकरण किया पर कई लोग परम्परा धर्म को कैसे छोड़ा जाय भी कहा पर सेठजी ने हेतु युक्ति से उनको समझा बुझा कर अपने सहमत कर लिया और सुबह होते ही बड़े ही समारोह से सकुटुम्ब सेठजी चल कर आचार्य श्री की सभा में उपस्थित हो गये इधर नगर,

भर में बड़ी भारी हलचल मच गई हजारों नहीं बल्कि लाखों मनुष्य सेठजी को देखने के लिये उपस्थित हो गये। कारण एक कोट्याधीश सेठ अपने विशाल परिवार के साथ एक धर्म छोड़ कर दूसरे धर्म को स्वीकार करता है यह कोई साधारण बात नहीं थी ब्राह्मणों के तो पैरों तले से भूमि खिसक रही थी उनके आसन चलायमान होगये उन्होंने दौड़ धूप करने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कहा कि सौ वर्ष का गुमास्ता और बारह वर्ष का घर धणी। आखिर सूरिजी महाराज ने उस विशाल समुदाय में अपने मन्त्रों द्वारा इन विशाल कुटुम्ब के साथ सेठ सालग को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बना लिये इस प्रकार सेठजी के धर्म परिवर्तन को देख अन्य भी बहुत से लोगों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन सबकी सख्या पट्टावलीकारों ने ५००० नरनारी की बतलाई है वहां के उपकेशवंशी संघ ने सेठ सालगादि सबको अपने साथ मिला लिया और उनके साथ उसी दिन से रोटी बेटी व्यवहार शुरू कर दिया।

जिस दिन से सेठ सालगादि को जैनधर्म की दिक्षा दी उस दिन से ही ब्राह्मणों का जैनों के प्रति अधिक द्वेष भभक उठा था पर इससे होना करना क्या था जैनों की शान्ति ने और भी ब्राह्मण धर्म पर प्रभाव डाला था कि और लोग और भी जैनधर्म स्वीकार करते गये इस कार्य में विशेष प्रेरणा सेठ सालग की ही थी। सेठ सालग था भी बड़ा भारी व्यापारी एवं कोटीध्वज इनका व्यापार भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य सब देशों के साथ था। एक बड़े आदमी का इस प्रकार प्रभाव पड़ता हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यों तो आचार्य सिद्धसूरि बड़े ही प्रभावशाली थे ही पर इस घटना से आपका प्रभाव और भी बढ़ गया चन्द्रावती और उसके आसपास के प्रदेश में जैनधर्म का बड़ा भारी प्रचार हुआ।

एक समय परम भक्त सालग ने सूरिजी की सेवा में अर्ज की कि गुरुदेव! मैंने यज्ञ के लिये एक करोड़ द्रव्य व्यय करने का संकल्प किया था पर आपकी कृपा से मैं उस अनर्थ से तो बच गया पर अब वह संकल्प किया हुआ द्रव्य किस कार्य में लगाना चाहिये। कारण कि संकल्प किया हुआ द्रव्य मैं मेरे काम में तो लगा ही नहीं सकता हूँ अतः आप आज्ञा फरमावें उसी कार्य में लगाकर सकल्प के विकल्प से मुक्त हो सकूं।

सूरिजी ने कहा सालग तू बड़ा ही भाग्यशाली है तेरे शुभ कर्मों का उदय है सकल्प किये हुये द्रव्य के लिये या तो त्रिलोक पूज्य तीर्थङ्करदेव का मन्दिर बनाने में या तीर्थयात्रार्थ सघ निकालने में या आगमवाचना आगम लिखाने एव विद्या प्रचार करने में लगाना ही कल्याण का कारण हो सकता है जैनधर्म का प्रचार बढ़ाना स्वधर्मी भाइयों को सहायता पहुँचाना भी शासन के कार्य का एक अग है पर संकल्प किया हुआ द्रव्य पुन गृहस्थ के काम नहीं आता है अब जिस कार्य में तुम्हारी रुची हो उसमें ही द्रव्य व्यय करके लाभ उठाना चाहिये इत्यादि—

सालग ने सोचा कि सूरिजी कितने निर्लोभी, कितने परोपकारी है कि करोड़ रुपयों से एक पैसा भी अपने काम या अपने शिष्यों के लिये नहीं बतलाया क्या पुस्तक पन्ने या वस्त्र पात्र की इनको जरूरत नहीं होगी पर परोपकारी महात्माओं का यह खास तौर से लक्षण हुआ करते है कि "परोपकारायसतां विभूतय"। यदि सूरिजी महाराज यहा चतुर्मास करदें तो मैं तीनों कार्य कर सकता हूँ अत शाह सालागादि सकल श्री सघ ने सामह सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्येश्वर! आपके विराजने से शासन का अच्छा उद्योत हुआ है पर कृपाकर यह चतुर्मास यहा करावे कि शाह सालगादि कई लोग लाभ उठा सकें। सूरिजी

ने लाभालाभ का कारण जान चतुर्मास की स्वीकृति देदी बस फिर तो कहना ही क्या था सब का उत्साह खूब बढ़ गया । शाह सारंग ने चतुर शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलाकर भगवान महावीर का बावन देहरी वाला आलीशान मन्दिर बनाना शुरू कर दिया दूसरी तरफ लिपीकारों को बुलाकर आगम लिखाना प्रारम्भ कर दिया और चतुर्मास की आदि में महा महोत्सव पूर्वक पंचमांग श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में बंचवाना शुरू करवा दिया । सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्मिक कल्याण पर ही होता था जिससे जनता को बड़ा भारी आनन्द आया करता था शाह सारंग तो सूरिजी का इतना भक्त बन गया कि उसका मन भ्रमरा सूरिजी के चरणों से एक क्षण भर भी पृथक रहना नहीं चाहता था उसके लिये केवल एक तीर्थों का संघ निकालना ही शेष कार्य रह गया तो एक दिन सारंग ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! हमारे दो काम तो हो रहे हैं पर कृपाकर संघ के लिये बतलाइये क्या किया जाय सूरिजी ने कहा सारंग "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" अच्छे कार्य में कई विघ्न आया करते हैं इसलिये शास्त्रकारों ने कहा है कि "धर्मस्य त्वरितागति" धर्म कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये अतः पहिले यह विचार करले कि संघ शत्रुञ्जय का निकालना है या सम्मेत शिखरजी का, इसपर सारंग ने कहा यदि दोनों तीर्थों की यात्रा हो जाय तो अच्छा है सूरिजी ने कहा सारंग एक साथ दोनों तीर्थों की यात्रा होना तो असंभव है कारण इन दोनों तीर्थों में अन्तर विशेष होने से साधु लोग पहुँच नहीं सकते हैं हाँ एक बार एक तीर्थ की और दूसरी बार दूसरे तीर्थ की यात्रा हो सकती है फिलहाल एक तीर्थ की यात्रा का निर्णय करलें! सारंग ने कहा कि पहिले सम्मेत शिखर की यात्रा करनी ठीक होगी सूरिजी ने अपनी सम्मति दे दी और सारंग ने अपने १९ पुत्रों को बुलाकर संघ सामग्री एकत्रित करने का आदेश दे दिया और चातुर्मास समाप्त होने के पूर्व ही सब प्रान्तों में आमन्त्रण भेज दिया साधु साध्वियों को भी विनती करली जब चातुर्मास समाप्त हुआ तो मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को सारंग को संघपति पदार्पण कर आचार्य सिद्धसूरि के अध्यक्षत्व में संघने प्रस्थान कर दिया संघ बड़ा ही विशाल था कई पांच हजार साधु साध्वियों एक लक्ष से अधिक नरनारी ८४ देरासर चौदह हस्ती ११ आचार्य सोमजी दिगम्बर साधु ७० अन्य मत के साधु इत्यादि क्रमशः रास्ते के तीर्थों की यात्रा करता हुआ संघ सम्मेतशिखरजी पहुँचा वहाँ की यात्रा कर सबको बड़ा ही आनन्द हुआ । एक समय सूरिजी ने कहा सारंग अब अवसर आगया है यह बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि है चेतना हो तो चेतलो जो समय गया वापिस नहीं आता है बस । सारंग की आत्मा पहिले से ही निर्मल थी अब पर भी सूरिजी का संकेत फिर तो कहना ही क्या सारंग ने अपने सब पुत्रों को बुलाकर कह दिया कि मेरा विचार तो दीक्षा लेने का है पुत्रों ने बहुत कहा कि आपको दीक्षा ही लेना है तो पुनः संघ सहित चन्द्रावती पधारें वहाँ दीक्षा लीरावें पर सारंग का आग्रह तीर्थ पर ही था सारंग के बड़े पुत्र समरथ को सब घर का भार एवं संघपति की माला देकर शाह सारंग ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करली अहाहा— मनुष्य के शुभ कर्मों का उदय होता है तब किस प्रकार कल्याण हो जाता है, एक वह करोड़ वाला एवम बड़ा सेठ जिसकी भावना बदल जाने से कितने के कल्याण का कारण बना है ।

संघपति समरथ के अध्यक्षत्व में पूर्व के तीर्थों की यात्रा करते हुए बहुत से साधु साध्वियों के साथ संघ लौटकर पुनः मरुधर एवं चन्द्रावती आया और समरथ ने स्वामिवात्सल्य करके संघ को प्रत्येक साह के पांच-पांच सुवर्ण मुद्रिका और बढ़िया वस्त्रों की प्रभावना देकर विसर्जन किया।

आचार्य सिद्धसूरि अपने ५०० शिष्यों के साथ जिसमें नूतन मुनिराज शेखरहस (सालग) भी शामिल थे, पूर्व प्रान्त में रहकर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देने लगे तीर्थ श्रीसम्मेतशिखरजी के आस-पास के प्रदेश में बहुत जैनों की बसती थी आपके पूर्वजो ने कई बार वहाँ घूम घूम कर उन लोगों को धर्म में स्थिर किये थे उन लोगो ने कई जैन मदिर बनाये जिसकी प्रतिष्ठाएं आचार्य सिद्ध सूरिने करवाई कइबार सघ निकाळ कर वीस तीर्थंकरो के निर्वाण भूमि की यात्रा की। इत्यादि

जिस समय सूरि जी का विहार पूर्वप्रान्त में हो रहा था उस समय बोद्धोंका प्रचार भी हो रहा था पर सूरिजी के प्रचार कार्य के सामने बौद्धों की कुछ भी चल नही सकती थी आप श्री ने तीन चातुर्मास पूर्व में करके जैनधर्म के प्रभाव को खूब बढ़ाया था बाद कलिंग की कुमार कुमारी तीर्थों की यात्रा करते हुए पुनः भगवान् पार्श्वनाथ के कल्याणक भूमि काशी पधार कर वहाँ तथा उनके आस पास के तीर्थों की यात्रा की और वह चातुर्मास बनारस नगरी में किया आपके विराजने से जैनधर्म की अच्छी उन्नति एवं प्रभावना हुई इतना ही क्यों पर वहा दो ब्राह्मण और ५ श्रावकों को दीक्षा भी दी जिसका महोत्सव श्रेष्टिगौत्रीय शाह सलखणने सवालक्ष रुपये व्यय करकेइस प्रकार किया कि जिसका प्रभाव वहाँकी जनता पर काफी हुआ था।

वहाँ से सूरिजी महाराज बिहार कर पजाब की ओर पधारे आपके मुनिगण पहले से ही वहाँ विहार करते थे जब उन्होंने सुनाकि आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज पजाब में पधार रहे है तो उनका दीलहर्ष के मारा उमड़ उठा बस सूरिजी महाराज जहाँ पधारते वह चतुर्विध श्रीसंघका का एक खासा मेला ही लगजाता था क्रमश आप लोहाकोट पधारे वहाँ के श्री सघके आग्रह से सूरिजी ने वहाँ चतुर्मास भी कर दिया बाद चतुर्मास के वहाँ एक सघ सभा की गई जिसमें उसके बहुत से साधु साध्वियों तथा श्राद्ध वर्ग उपस्थित हुए। सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणि से जैनधर्म की परिस्थिति और प्रचार के विषय में बडा ही जोशीला व्याख्यान दिया कि जिससे उपस्थित जनता के हृदय में धर्म प्रचार की एक नयी बिजली पैदा हो गई यों तो पजाब पहिले से ही वीर प्रसूत भूमि थी फिर सूरिजी जैसे धर्म प्रचारक के वीरता का उपदेश तब तो कहना ही क्या था ? वीरों की सन्तान वीर हुआ ही करती हैं मुनियों ने सूरिजी के उपदेश को शिरोधार्य कर कर्तव्य-मार्ग में कटिबद्ध होगये सूरिजीने वहाँ से विहार करने वाले योग्य मुनियों को पदविया प्रदान कर उनके उत्साह में और भी वृद्धि कर दी तत्पश्चात सघ बिसर्जन हुआ सूरिजी महाराज दो वर्ष पजाब में घूमकर सिंध की ओर पधारे सिन्ध में भी आपके बहुत से मुनि विहार कर रहे थे एक चतुर्मास डामरेल नगर में किया वहाँ भी धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। ७ नर नारियों को दीक्षा दी ओर कई अजैनों को जैन बनाये बाद आपके चरण कमल कच्छ भूमि मे हुए वहाँ भद्रेश्वरतीर्थ की यात्रा कर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश दिया वहाँ भी आपके कई मुनि विहार करते थे उनकी सार समाल की बाद सरोष्ट्र प्रदेश में पदार्पण कर तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की यात्रा की तदानन्तर सौराष्ट्र में भ्रमन करते हुए भरोंच नगर में पधार कर वह चतुर्मास वहीं किया जिससे वहाँ कि जनता में धर्म की खूब ही जागृति हुई बाद चतुर्मास के अर्बुदाचल की स्पर्शना की इस बात की खबर चन्द्रावती, पद्मावती, शिवपुरी में मिलते ही हजारों लोग देवगुरू के दर्शनार्थ अर्बुदाचल पर आये और अपने अपने नगर की ओर पधारने की विनती की सूरिजी वहाँ से विहार कर सघ के साथ एक मकान जल-कुण्ड पर किया कि जहाँ आचार्य कक्कसूरिजी द्वारा संघ के प्राणों की रक्षा हुइ थी वहाँ पर एक महावीर देव का मदिर भी बनाया गया था आचार्य श्री जब चन्द्रावती नगरी की ओर पधार रहे थे तो वहाँ के श्रीसघ

में इतना उत्साह एवं हर्ष छा गया था कि जिसका तुच्छ लेखनी द्वारा वर्णन ही नहीं किया जा सकता कारण एक तो सूरिजी का पधारना दूसरा मुनि शेखरहंस साथ में था कि चन्द्रावती नगरी का श्रेष्ठगोत्रीय सेठ सालग के नाम से मशहूर था। चन्द्रावती नगरी के श्रीसंघ और विशेष में सेठ सांगण ने नगर-प्रवेश का इस प्रकार से महोत्सव किया कि जिसमें उन्होंने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर दिया। इससे पाठक समझ सकते हैं कि उस समय की जनता के हृदय में धर्म भावना कहाँ तक बढ़ी हुई थी।

आचार्य सिद्धसूरि का धाराप्रवाही व्याख्यान हमेशा होता था, जिसमें दार्शनिक तात्त्विक आध्यात्मिक विषय के साथ में अधिक जोर त्याग वैराग्य पर दिया जाता था जिसका प्रभाव जनता पर इस प्रकार पड़ता था कि वे क्षणिक संसार से विरक्त बन सूरिजी के चरणों में दीक्षा ले अपना कल्याण करने की भावना किया करते थे सूरिजी के व्याख्यान का लाभ केवल साधारण जनता ही नहीं लेती थी पर वहाँ के राजा एवं राजकर्मचारीगण भी उपस्थित होते थे और वे सूरिजी के व्याख्यान की सदैव भूरि भूरि प्रशंसा भी किया करते थे।

सेठ सालग के द्वारा प्रारंभ किया गया बावन देहरी वाला विशाल मन्दिर तैयार होने आया अतः सेठ सांगण ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! पूज्य पिताजी का प्रारम्भ किया मन्दिर तैयार हो गया है अतः इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनावें हमें विशेष हर्ष इस बात का है कि इस समय हमारे पूज्य पिताजी (शेखर हंस मुनि) आपकी सेवा में यहां विद्यमान हैं और यह हमारा अहोभाग्य है कि इनके हाथों से प्रारम्भ किये हुए मन्दिर की इनके ही हाथों से प्रतिष्ठा हो जाय? सूरिजी ने कहा सांगण तुम्हारे पिता तो भाग्यशाली हैं ही पर तू भी बड़ा ही पुण्यशाली है कि पिता का आरम्भ किया कार्य को ही उदार दिल से सम्पूर्ण करवा कर प्रतिष्ठा करवा रहा है। सांगण! मन्दिर बनाना यह साधारण कार्य नहीं है यह एक विशाल कार्य है शास्त्रकारों ने कहा है कि मंदिर बनाने वाला बारहवाँ स्वर्ग तक पहुँच कर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है कारण एक महानुभाव के बनाए मन्दिर से अनेक भव्य अपना कल्याण कर सकते हैं जैसे एक मनुष्य कूप बनाता है उस समय उसको कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं पर जब कूप में पानी निकल आता है तब उसका सब कष्ट दूर हो जाता है, बल्कि उदार जाती है और उस कूवे का पानी हजारों लोग पीकर अपनी तृषा रूपी आत्मा को शान्त करते हैं, इतना ही नहीं पर कूप बनाने वाले को आशीर्वाद भी दिया करते हैं इसी प्रकार मंदिर को भी समझ लीजिये कि मन्दिर बनाने में जल पत्थर चूना वगैरह लगते हैं पर जब भगवान की मूर्ति उसमें विराजमान होती है तब वे सब आरम्भ एक प्रकार की भावना से विशुद्ध बना देते हैं और जहां तक वह मंदिर विद्यमान रहता है हजारों लाखों और करोड़ों भावुक उस मन्दिर से भी अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है इसलिये मंदिर बनाने वाला शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर सकता है यदि तुम्हारी भावना है तो धर्मकार्य में विलम्ब नहीं करना।

सेठ सांगण ने कहा पूज्यवर! आप इस कार्य के लिये शुभ मुहूर्त दिरावें इतना ही विलम्ब है शेष सब कार्य तैयार हैं सूरिजी ने माघ शुक्ला पंचमी का मुहूर्त दे दिया जिसको सेठ सांगण ने बड़े ही हर्ष के साथ बधा कर ले लिया और करने लगा प्रतिष्ठा की तैयारियाँ सेठ सांगण को बड़ा ही उत्साह था उसने नजदीक और दूर दूर प्रदेशों में आमंत्रण पत्रिकाएं भिजवा दी। उस समय का चन्द्रावती एक बड़ा धनाढ्य नगरी थी। राजा प्रजा प्रायः जैनधर्मोपासक थे आस पास के प्रदेशों में भी जैनों का ही साम्राज्य था और

सिद्धसूरि जैसे प्रभावशाली आचार्य के अध्यक्षत्व में प्रतिष्ठा का होना जिसमें भी विशेषता यह कि एक कोट्याधीश जैनेतर जैन बन कर तत्काल ही जैन मदिर की प्रतिष्ठा करवाना फिर तो कहना ही क्या था।

मुनि शेखरहंस के उपदेश से सेठ सांगण ने एक घर देरासर भी बनवाया था। उनके लिये माणक की पार्श्वमूर्ति तथा नगर मन्दिर के लिये १२० अंगुल प्रमाण सुवर्ण की महावीर मूर्ति बनाई इस मूर्ति के नेत्रों के स्थान दो बढ़िया मणिया लगवाई वे रात्रिको भी दिन बना देती थी शेष सर्व धातु एव पाषण की मूर्तियां भी तैयार करवा ली थी इस प्रतिष्टा एव स्वधर्मी भाइयों को पहरामणि में सेठ सांगणने एककोटि द्रव्य व्ययकर खूब पुन्यानुबन्धी पुन्योपार्जन किया प्रतिष्टा बड़े ही धाम धूम के साथ हो गई जिससे जैनधर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ

सूरिजी चन्द्रावती से विहार कर शिवपुरी कोरंटपुर, भिन्नमाल, सत्यपुर, शिवगढ़, पाल्हिक, धोलगढ़ घरपट माडव्यपुर होते हुए जब उपकेशपुर पधार रहे थे तब इस खबर को सुन उपकेशपुर संघ के हर्ष का पार नहीं रहा। आदित्य नाग गौत्रीय गुलेच्छा शाखा के शाह पुरा ने तीनलाख द्रव्य व्ययकर सूरिजी के नगर प्रवेश का महोत्सव किया।

"आधुनिक श्रद्धा विहीन साधुओं के सामने आधा मील भी नहीं जाने वाले यह सवाल कर बैठते हैं कि एक नगर प्रवेश के महोत्सव में एक दो और तीन लक्ष रूपैये क्यों और किसमें खर्च किया होगा। यदि इतना ही द्रव्य किसी अन्य कार्य एव साधर्मी भाइयों की सहायता में लगाया होता तो कितना उपकार होता ? इत्यादि।

"इस निर्धनता के युग में ऐसा सवाल उत्पन्न होना स्वाभाविक है पर उस समय का इतिहास पढ़ने से मालुम होगा कि उस समय ऐसा कोई क्षेत्र ही नहीं था कि जिसके लिये किसी से याचना की जाय तथा ऐसा कोई साधर्मी भाई भी नही था कि वह दूसरों की आशा पर अपना जीवन गुजारता हो और न कोई साधर्मी भाईयों को इस प्रकार मंगता बनाना ही चाहता था यदि कोई किसी निर्बल साधर्मी भाई को देखते तो उसको धंधे रुजगार में लगा कर अपनी बराबरी का बना लेते थे। मन्दिरों का निर्माण एव जीर्णोद्धार एक एक व्यक्ति करवा देता था विद्या एवं ज्ञान प्रचार भी एक एक भावुक करता था तीर्थों की यात्रार्थ एक एक धर्म प्रेमी बड़े बड़े संघनिकाल कर यात्रा करवा देता था कालदुकाल में भी एक एक धनाढ्य करोड़ों द्रव्य व्यय कर देते थे फिर ऐसा कौनसा क्षेत्र रह जाता कि जिसमें वे अपना द्रव्य का सदुपयोग करें। आचार्यों के नगर प्रवेश महोत्सव में दो तीन लक्ष द्रव्य व्यय करना तो उनके लिये एक मामूली बात थी पर इस प्रकार की उदारता से उस समय के धर्मज्ञों के अंदर रही हुई देवगुरु धर्म पर श्रद्धा का पता चल सकता है कि उनकी देवगुरु धर्म पर कितनी श्रद्धा थी कि मामूली बात में वे लाखों रुपये व्यय कर देते थे—यही कारण था कि इस प्रकार शुभ भावना से उनके घरों मे लक्ष्मी दासी बन कर रहती थी व अपने विदेशी व्यापार में इतना द्रव्य पैदा करते थे। इस प्रकार धन व्यय करते हुए भी उनके खजाने भरे हुए रहते थे उन लोगों के पुन्य कितने जबर्दस्त थे आप पिछले प्रकरणों में पढ़ आये हो कि किसी को पारस मिला तो किसी को चित्रावली मिली किसी को तेजमतुरी मिली तो किसी को सुवर्ण रस मिला किसी को देवताने निधान बतलाया तो किसी को देवी ने अखूट थेली देदी। इसपर भी वे कितने निस्पृही थे कि अपना जीवन सादा और सरल रखते थे

जितना द्रव्य देव गुरुधर्म की भक्ति में लगाते उतने को ही वे अपना समझते थे वे विशेष कुटुम्ब के लिये न तो इतना फिक्र करते थे और न इतना संचय ही करते थे कारण उनको यह विश्वास था कि जीव पुन अपने २ पुन्य लेकर आते हैं 'पूत सपूतो क्या धनसंचय पूत कपूतो क्यों धनसंचे ? इस सिद्धान्त पर उनकी अटल श्रद्धा थी इतना ही क्या पर उस जमाने के पुत्रादि कुटुम्ब भी निःस्पृह वाले थे वे अपने पूर्वजों की सम्पति पर ममत्व या आशा तक नहीं रखते थे पर अपने तकदीर पर विश्वास रखते थे । हमने सैकड़ों दानेश्वरियों के जीवन पढ़े हैं पर एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला कि किसी दानेश्वर पिता का अपना द्रव्य शुभकार्य में व्यय करते समय पुत्र ने इन्कार किया हो इतना ही क्यों पर ऐसे बहुत से पुत्र थे कि अपने पिता को दान करने में उत्साहित करते थे इत्यादि वह जमाना ही ऐसा था कि जनता अपने कल्याण की ओर अधिक लक्ष दिया करती थी ।"

आचार्य श्री ने चतुर्विध श्री संघ के साथ भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी जिसका उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ जिस समय सूरिजी उपकेशपुर नगर में पधारे थे उस समय उपकेशपुर का शासन कर्त्ता महाराजा उत्पलदेव की सन्तान परम्परा में राव हुल्ला राजा था रावहुल्ला के पिता दृढ़ जैनधर्म का उपासक था पर वाममार्गियों के संसर्ग से रावहुल्ला वाममार्गियों की उपासना कर मांस मदिरा एवं व्यभिचार सेवी बन गया था बहुत से लोगों ने समझाया पर उसने किसकी भी नहीं सुनी एक जवानी दूसरी राज सत्ता तीसरा सदैव वाममार्गियों का परिचय ।

उपकेशपुर के अग्रेश्वर लोगों ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! उपकेशपुर का राजवंश शुरू से जैन धर्मोपासक था और इससे यहाँ के जैनों को जैनधर्म की आराधना में बड़ी ही सुविधा थी पर राव हुल्ला वाममार्गियों के अधिक परिचय से आकर मांस मदिरा सेवी बन गया अभी तो वह जैनधर्म से विरोध खिलाफ नहीं है पर भविष्य में न जाने इनकी संतान जैनधर्म के साथ कैसा बर्ताव रखेगी अतः आप राव हुल्ला को कभी व्याख्यान में उपदेश दीरावें इत्यादि ।

सूरिजी ने कहा ठीक है कभी राजजी आवेंगे तो मैं अवश्य उपदेश करूँगा । पर वाममार्गी इस बात को ठीक समझते थे कि राजजी जैनाचार्य के पास जावेंगे तो न जाने वे जादूगर राजजी पर जादूकर अपना बना हमारा काम मिट्टी में न मिला दे ? अतः उन्होंने राजजी पर ऐसा पहरा रखा कि उनको क्षण भर अकेला नहीं छोड़ते कभी रमत गम्मत तो कभी शिकार कभी ऐश चमनों में साथ ही साथ में रखते यथा राजा तथा प्रजा । राव हुल्ला का थोड़ा थोड़ा प्रभाव जनता पर भी पड़ने लगा राजा के मुख्य कार्यकर्त्ता (दीवान) आदित्यनाग गोत्रीय शाह मालदेव था और भी राजकर्मचारी सब महाजन ही थे पर वे राजजी को समझा नहीं सकते थे ।

एक समय किसी म्लेच्छ लोगों की सेना देश में लूट मार करती हुई उपकेशपुर की ओर आ रही थी जिसको सुन कर राजजी घबराये वाममार्गियों से परामर्श किया तो उन्होंने समय पाकर कहा राजजी आप शाक भाजी के खाने वाले महाजनों के भरोसे पर राज को छोड़ दिया है पर सिवाय कलम चलाने के वे लोग क्या कर सकते हैं आपको राज्य की रक्षा के लिये मांस भोजी वीरों को अच्छे पदों पर

नियुक्त करना चाहिये तब ही राज्य की रक्षा हो सकेगी। बस राजा कानों के कच्चे तो होते ही हैं उन वाममार्गियों के कहने से तमाम महाजनों को हटा कर मांस भोगी अर्थात् वाममार्गियों को उच्च उच्च पदो पर नियुक्त कर दिये बस वाममार्गियों के मनोरथ सफल हो गये। पर महाजनों को इसबात का तनिक भी दुःख नहीं हुआ वे सूरिजी की सेवा में अधिक अवकाश मिलने से अपना अहोभाग्य समझने लगे।

म्लेच्छों की सेना ने नजदीक आकर उपकेशपुर पर धावा बोल दिया इधर रावहुल्ला की ओर से भी सेना तैयार कर म्लेच्छों का सामना किया गया पर वे उसमें सफल न हो सके क्योंकि पहला तो उनमें शिक्षा का अभाव था दूसरे सेना का संचालन करने वाला भी इतना बुद्धिमान नहीं था पहिला दिन तो ज्यों त्यों कर बिताया पर रावहुल्ला घबरा गया और उसको विजय की आशा भी नहीं रही अत' वह हताश होकर विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये जब रावजी ने वाममार्गियों से परामर्श किया तो वे विचारे क्या करने वाले थे फिर भी उनके कहने से उत्साहित हो दूसरे दिन स्वय रावजी सेना के संचालक बन म्लेच्छों से लड़ने लगे पर उसमें भी म्लेच्छों की पराजय नही हुई जब रावजी रनवासमें गये तो उनके चेहरे पर गहरी उदासीनता थी। रानियों ने पूछा तो रावजी ने सब हाल सुनाया इस पर एक रानी जो 'जैनधर्मोपासिका थी उसने कहा कि आपने महाजनों को रजा देकर बड़ी भारी भूल की है जिसका ही परिणाम है कि आज आपको हताश होना पड़ा है मेरा तो खयाल है कि अब भी आप महाजनों को बुलवाकर यह कार्य उनके सुपर्द कर दीजिये ? रावजी ने कहा कि महाजन लोग शाकभाजी के खाने वाले युद्ध में क्या कर सकेंगे वे केवल हुकूमत की बातें कर जानते हैं। रानी ने कहा खावन्दों! यह तो आप का व्यर्थ भ्रम है महाजन लोग खास तो राजपूत ही हैं साथ में कार्य कुशल भी हैं दूसरे मांस भोजियों में ताकत होना और शाकभोजियों में न होना यह भी भ्रम ही है। समय पर बल काम नहीं देता है उतना काम अकल बुद्धि दे सकती है अतः आप महाजनों को बुलाकर यह कार्य उनको सौंप दीजिये इत्यादि। रावजी ने रानी के कहने पर ध्यान देकर महाजनों को बुलाकर कहा कि नगर पर आफत आ पड़ी है इसमें आप लोग क्या मदद कर सकते हो ? महाजनों ने कहा कि हमारी नशों मे जैसे राजपूती का खून भरा है वैसे राज का अन्नजळ भी हमारी नशों में भरा हुआ है आपने तो हम लोगो को बुलाकर कहा है पर हम लोगों ने कल के लिये तैयारियां कर रखी हैं इत्यादि।महाजनों के कथन को सुनकर रावजी को बड़ी खुशी हुई और वामियों के कहने से महाजनों को रजा देने का बड़ा पश्चाताप करना पड़ा खैर रावजी ने कहा आप स्वामी धर्मी है आप पर हमारे परम्परा गत पूर्वजों का पूर्ण विश्वास भी था और कईबार आपके पूर्वजों ने रण भूमि में वीरता पूर्वक विजय भी प्राप्त की थी अब आप अपने २ आसन को संभालो और यह राज आपके ही भरोसे है इत्यादि सन्मान पूर्वक महाजनों को पुन अधिकार सुपुर्द किया। बस फिर तो था ही क्या महाजन मुत्सद्दियों ने अपनी सेना को सज-धज कर मोरचा बाधा और आप उसके सचालन बन गये सूर्योदय होते ही एक ओर मन्दिरों में रावजी की ओर से स्नात्र महोत्सव शुरू करवा दिया और दूसरी ओर अमल की गीरणिये चढ़ा दी बस सैनिक लोग खूब अमल पान कर केशरिया जामा पहन कर रणभूमि में इस प्रकार टूट पड़े पड़े कि जैसे बाज़ के ऊपर तीतर टूट पड़ता है इधर रणभेरी और युद्ध के झूझाओं बाजा बाज रहे और उधर चारण भाट जोशीले शब्दों में विरुदावली बोल रहे थे महाजनों के हाथों से जैसी कलम जोर से चलती थी आज रणभूमि में तलवार एवं बाण चल रहे थे बस देखते देखते में दुश्मनों के पैर छुड़ा दिये कितनेक भाग

इन्हें तब चित्तौड़ को जबरन कर बांध लिया उनका सब सरंजाम छीन लिया बस चारों ओर से विजय भेरी बाजने लगी जिसको देखकर रावजी को बहुत हर्ष हुआ और यह विश्वास हो गया कि क्षत्रियों वीरता एवं धर्म दृढ़ता महाजनों में है उतनी क्षत्रियों में नहीं है जिन म्लेच्छों को पकड़ लिये थे वे दांतों में तृण लेकर हिन्दुओं की गऊ बन गये कि उनको बन्धन मुक्त कर छोड़ दिये। तत्पश्चात महाजनों की वीरता के उपलक्ष में रावदुल्ला ने कईएकों को जागीरियों और कईएकों को इनाम देकर उनको ऊंचे पद पर नियुक्त कर दिये।

एक समय रावदुल्ला आचार्य सिद्धसूरि के व्याख्यान में आया था सूरिजी पहले ही समय से आपने महाराजा उत्पलदेव मंत्री ऊहड़ादि का इतिहास सुनाते हुए उन की परम्परा के भूपतियों मंत्रियों द्वारा की हुई जैनधर्म की सेवा का खूब ओजस्वी वाणी द्वारा वर्णन किया और साथ में यह भी फरमाया कि जैनधर्म वीरों का धर्म है और वीर ही मोहनीय कर्म रूपी पिशाच का पराजय कर मोक्ष रूपी अक्षय स्थान को प्राप्त कर सकते हैं इत्यादि रावदुल्ला समझ गया कि मेरी भूल हुई है मैंने वाममार्गियों के धोखे में आकर अपना ही अहित किया है और जो हुआ सो हुआ पर अब तो उस भूल को सुधार लेनी चाहिये उसी व्याख्यान में उठ कर रावदुल्ला ने सूरिजी के सामने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि पूज्य गुरुदेव आप श्री का फरमाना सत्य है कि संगत से जीव सुधरता है और संगत से जीव बिगड़ता है इसमें मैं भी एक हूं आपके पूर्वजों ने हमारे पूर्वजों को सत्यमार्ग की राह पर लगाये पर मेरे जैसे मोहित ने उस राह को छोड़ अन्य पन्थ का अवलम्बन कर सचमुच ही भूल की है और फिर भी आप जैसे परोपकार परायण महात्मा जगत के और विशेष मेरे भले के लिये ही यहाँ पधारे यह मेरा अहोभाग्य है। कृपा कर मुझको घोर नरक में पड़ते हुए को आप बचा लीजिये, अर्थात् मुझे जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दीजिये।

सूरिजी ने कहा कि शास्त्रकार फरमाते हैं कि 'वत्थु सहावोधम्मो' वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहा जाता है थोड़ी देर के लिये उसमें भले विकार हो जाय पर आखिर वस्तु अपने धर्म को प्राप्त किये बिना नहीं रहती है आप भी उन वीरों की सन्तान हो कि जिन्होंने पूर्ण शोध खोज के पश्चात् आत्मकल्याण के लिये न रूढ़ी परम्परा की परवाह करती लोकमत्वाद की दाक्षिण्यता और न रखा वाममार्गियों का लिहाज उन्होंने तो निडरता के साथ जैनधर्म को स्वीकार कर लिया था इतना ही क्योंकर उन्होंने तो चारों ओर डंके की चोट जैन धर्म का प्रचार भी किया था जिसका ही फल है कि आज मरुधर सदाचार एवं शुद्ध सात्विक और अहिंसा में पूर्ण बन गया है इतना ही क्यों पर मरुधर के आस पास के प्रदेशों में भी महाजनों का काफी प्रचार हुआ है मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आप बिना प्रयत्न कोशिश के अपनी आत्मा का कल्याण करने को निडरता पूर्वक तैयार हो रहा हूं।

रावजी ! पूज्यवर ! इसमें कोशिश की तो जरूरत ही क्या है दूसरा आपका उपदेश ही इतना प्रभावोत्पादक है कि सुनने वाला कैसा भी पत्थर हृदय हो तो भी पिघले बिना नहीं रहता है यदि कोई सहृदय व्यक्ति तुलनात्मिक दृष्टि से देखे तो उसको भी भू आसमान सा अन्तर मालूम होगा कि कहाँ अहिंसा प्रधान धर्म और कहाँ मांस मदिरा एवं व्यभिचार रूप घृणित धर्म अब ऐसा कौन मूर्ख होगा कि अमूल्य रत्न मिलने पर भी कंकर को पकड़ रखता हो ? अब आपश्री कृपा कर मेरे जैसे पामरप्राणी का उद्धार करावें।

सूरिजी ने उस आम सभा के अन्दर रावहुल्ला और उनके कई साथियों को पूर्व सेवित मिथ्यात्व की आलोचना करवा कर देवगुरुधर्म का स्वरूप बतला कर वासक्षेप के विधि विधान से जैन धर्म की दीक्षा दे दी। इससे जैनधर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ और जो पाखण्डियों का प्रचार बढ़ता जा रहा था वह रुक गया। इतना ही क्यों पर रावहुल्ला ने तो अपने राज में कोई जीव की हिंसा न करे ऐसा अमर पड़हा भी पिटवा दिया। अहा-हा एक सेवाघंश को प्रतिबोध करने से कितने जीवों का कल्याण हो सकता है जिसके लिये रावहुल्ला का उदाहरण हमारे सामने विद्यमान है।

रावहुल्ला सूरिजी का परम भक्त बन गया एक समय श्रीसंघ के साथ रावहुल्ला ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! अब आप की वृद्धावस्था है कृपा कर यह चतुर्मास यहीं करावें और बाद भी आप यहीं स्थिरवास करावें कि आप के विराजने से हम लोगों को बड़ा भारी लाभ होगा ? इस पर सूरिजी ने फरमाया कि आपकी इतनी आग्रह है तो इस चर्तुमास की स्वीकृति मैं दे सकता हूँ आगे के लिये जैसी क्षेत्र स्पर्शना। खैर अभी तो श्रीसघ ने इतने से ही संतोष कर लिया।

सूरिजी का चतुर्मास उपकेशपुर में मुकर्रर होने से यों तो सकल श्रीसंघ को बड़ा ही हर्ष था पर रावहुल्ला के तो हर्ष एवं उत्साह का पार तक नहीं था और वे हर प्रकार से जैनधर्म की उन्नति एवं प्रचार के लिये कोशिस कर रहे थे। पर कुदरत कुछ और ही घटना घड़ रही थी जिसकी सूचना देने के लिये देवी सच्चायिका ने एक समय सूरिजी की सेवा में आकर परोक्षपने वन्दना के साथ अर्ज की कि प्रभो! आप शासन के बड़े ही प्रभाविक आचार्य हैं। आपने अपने परोपकारी जीवन में बहुत उपकार किया है विशेष इस उपकेशपुर पर तो आपका महान उपकार हुआ है परन्तु कहते हुए दुःख होता है कि अब आपका आयुष्य केवल एक मास और १३ दिन का है अतः आप अपने पट्टधर बना दीजिये। देवी के वचन सुन कर सूरिजी ने कहा देवीजी आप ने मुझे सावचेत कर बड़ा ही उपकार किया है मेरे शिष्यों में उपाध्याय विनय सुन्दर इस पद के योग्य है और उसको ही मैं मेरे पद पर सूरि बनाना चाहता हूँ इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा पूज्यवर! आपने जो निश्चय किया वह बहुत ही अच्छा है उ० विनय सुन्दर सर्वगुण सम्पन्न एव इस पद की जुम्मेवारी सभालने के लिये समर्थ भी है कृपा कर आप तो इनको ही सूरि बना दीजिये। बस दूसरे दिन सूरिजी ने श्रीसघ को सूचित कर दिया कि मेरी इच्छा विनयसुदर को सूरि बनाने की है। श्रीसंघ इतना तो जानता ही था कि इस गच्छ में आचार्य बनाया जाता है वह प्राय. देवी की सम्मति से ही बनाया जाता है पर देवी ने इस चतुर्मास के अन्दर यह सम्मति क्यों दी होगी अत संघ ने प्रार्थना की कि गुरुदेव! उ० विनयसुन्दर को आचार्य पद दिया जाय इसमे तो श्रीसघ को बहुत खुशी है पर इस प्रकार चतुर्मास के अन्दर इतनी जल्दी से कार्य होना कुछ विचारणीय है अत. चतुर्मास के पश्चात् किया जाय तो हम लोगों को विशेष लाभ मिलेगा ? सूरिजी ने फरमा दिया कि मेरा आयुष्य नजदीक है अत यह कार्य मेरे हाथों से शीघ्र ही हो जाना चाहिये। श्रीसंघ और रावहुल्ला बहुत उदास हो गये पर इसका उपाय भी तो क्या था श्रीसघ ने जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सवादि जो इस कार्य मे किया जाय वह सब विधान किया और श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन मे उ विनयसुन्दर को आचार्य पद तथा अन्यमुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित वगैरह पदवियें प्रदान की। उ० विनयसुन्दर का नाम कक्क

सूरि रखा गया तत्पश्चात् सूरिजी ने संलेखना एवं अनसन व्रत धारण कर लिया और वि० सं० ५५८ की भाद्रपद शुक्ला एकादशी के दिन नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया—

सूरिजी के स्वर्गवास से उपकेशपुर में सर्वत्र शोक के बादल छा गये थे श्रीसंघ निरानन्द हो गया था राजपुत्रा की ओर से सूरिजी के शरीर को विमान में बैठा कर शानदार जुलूस निकाला गया केवल चन्दन एवं अगर तगर के काष्ठ से अग्निसंस्कार किया और उपाश्रया वगैरह में पांचलाख द्रव्य व्यय किया था सूरिजी के शरीर के अग्नि संस्कार के समय सर्वत्र केशर की बरसात हुई और जलती हुई चिता पर पंच वर्ण के पुष्पों की वर्षा भी हुई थी दैवी चमत्कारिक द्वारा श्रीसंघ को यह भी ज्ञात हो गया कि सूरीश्वरजी का जीव सौधर्म देवलोक में महाऋद्धिवान् दो सागरोपम की स्थिति वाला देवता हुआ है।

जब आचार्य श्री के मृत शरीर का अग्नि संस्कार कर सकल श्रीसंघ आचार्य कक्कसूरि के पास आये उस समय आचार्य कक्कसूरि बड़े ही उदासावस्था में बैठे हुए थे कि उनको संघके आने की खबर तक न रही। साधु यद्यपि विरागी एवं निस्नेही होते हैं पर गुरुभक्तों का स्वभाव होता है कि वे गुरु विरह को सहन नहीं करते हैं मुनि सिंहा को महावीर के बीमारी की खबर मिलते ही वह रोने लग गया गौतम स्वामी का महावीर निर्वाण समय कई प्रकार के विलापात करना यह कालकाचार्य; साध्वी सरस्वती के कारण पागल से बन गये इसी प्रकार आचार्य कक्कसूरि का अपने गुरु के विरह से उदासीन बन जाना स्वाभाविक ही था बादमें तो श्रीसंघ ने आचार्य कक्कसूरि को कहा गुरु महाराज आप इस समय का एक बालकपन विचार रहे बैठे हैं जिसका महान् दुःख है और यही दुःख आपको भी है परन्तु यह पथ निठोर है इसमें किसी की भी चल नहीं सकती है तीर्थंकर महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि जैसे महापुरुष भी चले गये काल ऐसा निर्दय है कि इसको किसी की भी दया नहीं आती है इत्यादि श्रीसंघ के शब्द सुन सूरिजी सावधान होकर श्रीसंघ को धैर्य एवं शान्ति का उपदेश देकर अन्त में मंगलीक सुनाया और संघ उदास बदने अपने स्थान पर चला गया।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज के शासन में एक सिंहलकुमार नामक प्रभाविक उपाध्याय थे आचार्य देवगुप्त सूरि ने आपको उपाध्याय पदार्पण किया था आपके शिष्य समुदाय में वीरकुशल और राजकुशल नाम के दो धुरंधर विद्वान और विद्याबली मुनिये आपकी योग्यता पर मुग्ध होकर आचार्य सिद्धसूरिने आप दोनों को पण्डित पद से भूषित किये थे आपका विहार क्षेत्र प्रायः सिन्ध भूमि था इस प्रांत में आपका जबर्दस्त प्रभाव भी था क्या राजा और क्या प्रजा आपको अपना गुरु मान कर अच्छा सत्कार किया करते थे बात भी ठीक है चमत्कार को सर्वत्र नमस्कार हुआ ही करता है। इन युगल मुनिवरों ने सिन्ध धरा में भ्रमन कर अनेक मांस मदिरा सेवियों को उपदेश एवं चमत्कारों से जैन धर्म के उपासक बना कर जैनों की संख्या में वृद्धि की।

जिस समय पंडितजी रेणुकोट नगर में विराजते थे उस समय महाराष्ट्र प्रान्त का वादी कुन्भर केसरी विरुद धारक एक वादी विजय पताका के चिन्ह को लेकर सिन्ध धरा में पहुँचा और घूमता घूमता रेणुकोट में आया उसके साथ में ठाठ आडम्बर भी था राजा ने आपका अच्छा स्वागत किया। वादी ने राजा से कहा कि आपके नगर में यदि कोई वादी हो तो सामने उसके साथ वाद विनोद करें जिससे आपको महाराष्ट्र के सर्व श्रेष्ठ वादियों का ज्ञान हो जाय। राजा ने अपने गुरु वीर कुशल व राजकुशल से प्रार्थना

भी की परिडतजी ने कहा—नरेश ! हम शास्त्रार्थ करने को तैय्यार हैं पर याद रहे कि वाद का विषय धर्म से सम्बन्ध रखने वाला हो कारण इससे उभयपक्ष को तत्व निर्णय ही का समय मिलता है और सब तरह से हितावही सिद्ध होता है। राजा ने कहा—ठीक है, मैं जाकर उनसे निर्णय कर लूँगा। राजा वहाँ से उठकर वादी के यहा आया और कहने लगा—यहा पर वाद करने वाले परिडतजी तैय्यार हैं, पर वे शुष्कवाद न करके धार्मिक वाद ही करेंगे। वादी ने पहिले तो कुछ आनाकानी की पर आखिर उन्होंने धर्मवाद करना स्वीकार कर लिया। इस शास्त्रार्थ निर्णय के लिये कई योग्य पुरुषों को मध्यस्थ मुकर्रर किये गये।

राजा ने दोनों ओर सम्मान पूर्वक आमन्त्रण पत्र भेज दिया। इधर वादी, प्रतिवादी, के आने के पूर्व ही नागरिकों एव दर्शकों से सभा खचाखच भर गई कारण, जनता को वादियों की विद्वत्ता एवं वाद विवाद की कुशलता देखने की पूर्ण उत्कण्ठा थी।

इधर तो पं० वीरकुशल, राज कुशल अपने शिष्यों एव भक्तों के साथ और उधर वादी ने अपने आडम्बर के साथ राज सभा में प्रवेश किया और पूर्व निर्दिष्ट स्थानों पर अपने २ आसन लगाकर बैठ गये।

वादी ने मगलाचरण में ही शुष्कवाद करना प्रारम्भ किया, इस पर पं० राजकुशल ने कहा—ऐसे शुष्कवाद से आपका क्या प्रयोजन और क्या लाभ सिद्ध होने वाला है ? वाद ऐसा कीजिये जिससे जनता को तत्त्ववाद का ज्ञान हो एवं सब ओर से लाभ पहुँचे। अत' शास्त्रार्थ में इस विषय की चर्चा की जाय कि आत्मा से परमात्मा कैसे हो सकते हैं ?

वादी ने कहा—आत्मा है या नहीं हम इस विषय का शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते हैं हम तो केवल चमत्कार वाद ही करना चाहते हैं। या तो आप इसको स्वीकार करो या अपनी पराजय मान लो।

प० राजकुशल ने कहा—कि हम पहिले ही बता चुके हैं कि धार्मिक विषय के विवाद से जन समाज सत्य धर्म की ओर प्रवृत्त होता है जिससे जनता का कल्याण और धर्म का मान बढ़ता है। इन्द्र-जालियों की भांति भौतिक चमत्कार बतला कर जनता को खुश करना उनसे मानपत्र लेना या कौतुक बता कर द्रव्य एकत्रित करना, इनमें आत्मिक क्या लाभ है ?

वादी—यह तो आपकी कमजोरी है। मालुम होता है आप जनता के लिये भारभूत ही हैं, यदि ऐसा ही है तो आप स्पष्ट शब्दों में क्यों नहीं कह देते हो कि हम वाद विवाद करने को तैय्यार नहीं है। शायद आप अपनी पराजय स्वीकार करने में शरमाते हैं ?

प० राजकुशल—हम कमजोर नहीं हैं, हमारे पास सब कुछ है पर हमें आप पर दया आती है। कारण, आज तक छल, प्रपञ्च द्वारा जनता को धोखा देकर जिस द्रव्य को लूटा है व भौतिक चमत्कारों से जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, उस आजीविका का भंग हो जाने से कहीं दुःखी न हो जाओ इसका हमें भय है।

वादी ने कहा—ऐसा वितण्डावाद करना विद्वानों के लिये उचित नहीं है। यह तो केवल धर्म की आड़ में भद्रिक जनता को अपनी जाल में फंसाने का एक मात्र सरल उपाय है। हम तो दावे के साथ कहते हैं कि न तो आत्मा है और न आत्मा से परमात्मा ही बनता है। दूसरी बात, इस विषय के विपवाद से जनता को लाभ ही क्या है ? यह तो भिन्न भिन्न मत वालों ने अपनी २ दुकानदारी जमाने के लिये

भिन्न भिन्न कल्पना कर वाली है । यदि आपके अन्दर थोड़ी भी योग्यता हो तो जनता के सामने इस चमत्कार बतलाइये ।

पं० राजकुशल ने कहा—बड़ा ही अफसोस है कि आप जैसे विद्वानों की ऐसी मान्यता कि न आत्मा है और न आत्मा से परमात्मा ही बनता है फिर आत्मा को स्वीकार किये बिना चमत्कार की आशा रखना आकाश कुसुम वत् ही समझना चाहिये । कारण 'मूलं नास्ति कुत: शाखा' चमत्कार आत्मा से भी होता है, जब आत्मा ही नहीं तो चमत्कार कैसे हो सकता है ? महाशयजी ! या तो आपको आत्मा के विषय में पर्याप्त ज्ञान नहीं है या जान बूझ कर बोल रहे हैं । यदि ऐसे शब्द किसी मूर्ख एवं अज्ञानी के मुंह से निकल जावे तो क्षम्य है पर आप जैसे विश्वव्यापी विद्वानों के मुंह से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते हैं । इस प्रकार पण्डितजी के निडरता पूर्वक वचनों को सुनकर सब लोग पण्डितजी के सामने टकटकी लगाकर देखने लगे । इतना ही क्या ? वादी स्वयं विचार सागर में निमग्न हो गया । शायद वादी के लिये यह एक भीषण समस्या बन गई होगी कि इसका क्या उत्तर दिया जाय ?

कुछ समय के पश्चात् मौन त्याग कर वादी ने कहा—मुझे दुःख इस बात का है कि स्वयं विचार के लिये अयोग्य होते हुए भी दूसरों की मीमांसा करने जा रहे हैं । महात्माजी ! केवल वाक्‌पटुता से ही मनुष्य को विजय नहीं मिलती है पर संसार में कुछ करके बतलाने से ही दुनियां को विश्वास होता है । यदि आप में कुछ योग्यता हो तो लीजिये मैं आप का प्रथम प्रयोग करता हूँ । आप इसका प्रतिकार कीजिये । ऐसा कहकर वादी ने सभा में जितना अवकाश था उतने स्थान पर बिच्छुओं का ढेर कर दिया । इसको देखकर सभा आश्चर्य के साथ भय भ्रान्त हो गई ।

पण्डितजी ने अपनी विद्या से मयूर बनाये कि बिच्छू को पकड़ २ कर आकाश में ले गये जिसको देख वादी को कोप हुआ उसने सर्प बनाये पण्डितजी ने नकुल बनाये कि सर्पों का संहार कर दिया । वादी ने मूषक बनाये पण्डितजी ने मंजार बनाये । वादी ने व्याघ्र बनाये पण्डितजी ने सिंह बनाये इत्यादि वादी ने जितने प्रयोग किये पण्डितजी ने उन सब का प्रतिकार कर दिया जिसको देख वादी का मान गल गया और राजा प्रजा को शुभ्मनागान के लिये बड़ी खुशी हुई कि हमारे देश में एवं हमारे धर्म में ऐसे-ऐसे विद्वान विद्यमान हैं कि विदेशी वादियों का पराजय कर सकते हैं ।

बस ! सभा का समय था गया पण्डितजी की विजय घोषणा के साथ सभा विसर्जन हुई । वादी के दिल में कुछ भी हो पर ऊपर से पण्डितजी का सत्कार करने के लिये पण्डितजी के उपाश्रय तक पहुँचाने को गया पण्डित श्रीराजकुशल ने वादी का सत्कार किया और साथ में आत्म कल्याण के लिये उपदेश भी दिया कि इस प्रकार की विद्याओं से जन मन रंजन के अलावा कुछ भी लाभ नहीं है यदि जितना परिश्रम इन कार्यों में किया जाता है उतना आत्म कल्याण के लिये किया जाय तो जीव सदैव के लिये पूर्ण सुखी बन जाता है इत्यादि । वादी कई अर्से तक देवपट्टन में ठहर कर पण्डितजी के पास से आत्मीय ज्ञान प्राप्त कर आखिर अपने शिष्यों के साथ पण्डितजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली जिसका नाम वस्तुकुशल रखा तदनन्तर पण्डितजी को लेकर महाराष्ट्रीय प्रान्त में पधारे

और अपनी विद्या एवं जैनधर्म के सिद्धान्त का उपदेश कर अनेक भव्यों को जैन धर्म की दीक्षा दी सूरिजी के शासन में ऐसे अनेक मुनि रत्न थे वे सदैव शासोन्नति किया करते थे ।

आचार्य सिद्धसूरि ने अपने ३८ वर्ष के शासन में जैनधर्म की कीमती सेवा की उन्होंने पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया अनेक भावुकों को दीक्षा दी कई अजैनों को जैन बनाये जिसमें सेठ सालग और रामहुल्ला का वर्णन पाठक पढ़ चुके हैं फिर साधारण जनता की तो संख्या ही कितनी होगी । तथा कई बार यात्रार्थ तीर्थों के संघ और अनेक मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई इन सब बातों का पट्टावली आदि ग्रन्थों के विस्तार से वर्णन मिलता है उनके अन्दर से मैं यहाँ कतिपय नामोल्लेख कर देता हूँ जिससे पाठक आसानी से समझ सकेंगे कि पूर्वाचार्य के मन मन्दिर में जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति करने की कितनी लग्न थी क्या वर्तमान के सूरीश्वर उनका थोड़ा भी अनुकरण करेंगे ?

आचार्य श्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ ।

१—उपकेशपुर	के	श्रेष्टिगोत्र	शाह	जेहल ने	सूरिजी०	दीक्षा
२—माडव्यपुर	के	विरहटगौ०	,,	खुमाण ने	,,	,,
३—क्षत्रीपुरा	के	भूरिगौ०	,,	देशल	,,	,,
४—आसिकादुर्ग	के	श्रेष्टिगौ०	,,	नारा ने	,,	,,
५—खटकुप नगर	के	आदित्यनाग	शाह	नारद ने	,,	,,
६—मुग्धपुर	के	बाप्पनाग०	,,	रावल ने	,,	,,
७—नागपुर	के	चोरलिया०	,,	पुरा ने	,,	,,
८—पद्मावती	के	सुचंतिगौ०	,,	खूमा ने	,,	,,
९—हर्षपुर	के	मल्लगौ०	,,	देदा ने	,,	,,
१०—कुर्चपुर	के	चरडगौ०	,,	नाथा ने	,,	,,
११—शाकम्भरी	के	बलहागौ०	,,	दुधा ने	,,	,,
१२—मेदनीपुर	के	सुघड़ गौ०	,,	चोला ने	,,	,,
१३—फळ वृद्धि	के	रांका जाति	,,	हीरा ने	,,	,,
१४—विराटनगर	के	ततभट्टगौ०	,,	लाला ने	,,	,,
१५—मथुरापुरी	के	करणाट्टगौ०	,,	कुंभा ने	,,	,,
१६—बनारस	के	पोकरणा जाति	,,	काल्हण ने	,,	,,
१७—वाकोली	के	कुलभद्रगौ०	,,	नागदेव ने	,,	,,
१८—जावोसी	के	श्रीश्रीमाल	,,	चाम्पा ने	,,	,,
१९—लोहाकोट	के	श्रेष्टिगौ०	,,	वीरदेव ने	,,	,,
२०—शालीपुर	के	भाद्र गौत्र	,,	कानड़ ने	,,	,,
२१—डामरेल	के	चिंचटगौ०	,,	नागड़ ने	,,	,,

७—उज्जैन नगरी से बाप्पनाग गौ० गोकल ने ,, , ,, ,,
८—आघाट नगर से चिंचट गौ० पेथा ने ,, ,, ,, ,,
९—कीराटकुंप से श्रेष्टि गौ० शाह सुधा ने ,, ,, ,, ,,
१० - खटकुंप से सुचंती गौ० शाह चैना ने ,, ,, ,, ,,
११—वीरपुर नगर से भाद्र गौ० शाह सांकला ने ,, ,, ,, ,,
१२—स्तम्भनपुर से श्रीमाल शाह पूरण ने ,, ,, ,, ,,
१३—उपकेशपुर के श्रेष्टि गौत्रीय रावनारायण ने दुकाल में शत्रुकार दिया
१४—चन्द्रावती का प्राग्वट काना ने दुकाल में शत्रुकार दिया
१५—सत्यपुर के भूरि गौ० भावडा ने दुकाल में शत्रुकार दिया
१६—भिन्नमाल के श्रीमाल केरा की पुत्री हाला ने एक तालाब खुदाया
१७—नागपुर के आदित्यनाग चाहड की स्त्री चहाडी ने एक तालाब बनाया
१८—उपकेशपुर के बाप्पनाग ऊमा युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१९—माडव्यपुर के छिद्र गौ० देपाल संग्राम में काम आया ,, ,, ,,
२०—मुग्धपुर के सुचती गौ० मंत्री मोकल ,, ,, ,, ,,
२१—कोरंटपुर के प्राग्वट० टावा ,, ,, ,, ,,
२२—भिन्नमाल के चरड़ गौ० लादृक ,, ,, ,, ,,
२३—चन्द्रावती के भाद्र गौ० लेवा ,, ,, ,, ,,
२४—चित्रकोट के कुमट गौ० कूकार ,, ,, ,, ,,
२५—आघाट नगर के बलाह गौ० शाह मादू ,, ,, ,, ,,
२६—जावलीपुर के श्रेष्टि गौ० शाह नोंधण ,, ,, ,, ,,
२७—नारदपुरी के प्राग्वट मन्त्री जिनदास ,,

इत्यादि पट्टावलीकारो ने अनेक उदार नररत्नों की उदारता और वीर योद्धों की वीरता का पूर्ण परिचय करवाया है इससे पाठक समझ सकेंगे कि पूर्व जमाने का जैनसमाज वर्तमान जैनसमाज के जैसा नहीं था पर वे जिस काम को हाथ में लेते थे उसको सर्वांग सुन्दर बना देते थे धन में तो वे कुबेरही कहलाते थे तब युद्ध में राम लक्षमण का कार्य कर वतलाते थे व्यापार में तो वे इतने सिद्ध हस्त थे कि उनकी बराबरी करने वाला ससार भर में खोजने पर भी शायद ही मिला सकता था ? यही कारण है कि उस व्यापार में न्यायोपार्जित द्रव्य को वे सद्कार्य में खुल्ले दिलसे व्यय किया करते थे–उस समय धर्म कार्यो में मन्दिर बनाना, संघ निकालना, दुकाल आदि में देश वासी भाइयों की सहायता करना ही विशेष समझा जाता था अब यहां पर उन उदार पुरुपों की उदारता का थोड़ा परिचय करवा दिया जाता है।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ—

१—शाकम्भरी के भाद्रगौत्रीय शाह अमर के बनाये महावीर० की प्रतिष्ठा करवाई
२—पोवनपुर के श्रेष्टिगौ० ,, सुरजन के बनाये पार्श्व० ,, ,,

भगवान महावीर की परम्परा—

२१ आचार्य मानतुग सूरि के पट्ट पर आचार्य वीर सूरि हुए। आप श्री के जीवन के विषय का विशेष विवरण पट्टावलियों एव प्रबंधों में नहीं मिलता। हा, इतना अवश्य उल्लेख है कि आचार्य वीर सूरि ने नागपुर में भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवा कर अपनी धवल यश चन्द्रिका को चतुर्दिक में विस्तृत की। इस घटना का समय वीर वंशावली में विक्रम स० ३०० का लिखा है।

नागपुरे नमिभवने-प्रतिष्ठया महित पाणि सौभाग्यः
अभवद्वीराचार्य स्त्रीभिःशतैः साधिके राज्ञः ॥ १ ॥

इस प्रतिष्ठा के समय आपके द्वारा बहुत से अजैनों को जैन बना कर उपकेश वंश में मिलाने का भी उल्लेख है, इससे पाया जाता है कि, आचार्य वीरसूरि जैन धर्म के प्रचारक महाप्रभाविक आचार्य हुए थे।

२२ आचार्य वीर सूरि के पट्ट पर आचार्य जयदेवसूरि हुए। आप श्री बड़े ही प्रतिभाशाली एवं जैन धर्म के प्रखर प्रचारक थे। आचार्य श्री ने रणस्थमोर नगर के उत्तुंगगिरि पर भगवान् पद्मप्रभ तीर्थंकर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई, तथा देवी पद्मावती की मूर्ति की भी स्थापना की। आपका विहार क्षेत्र प्रायः मरुधर ही था। आपश्री ने अपने प्रभावशाली उपदेशामृत से बहुत से क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उपकेशवंश में सम्मिलित किये। उस समय जैसे उपकेशगच्छाचार्य एव कोरंटगच्छाचार्य अजैनों की शुद्धि कर, जैन धर्म की दीक्षा देकर उपकेश वंश की संख्या बढ़ा रहे थे वैसे ही, वीर सवानिये भी उनमें सतत प्रयत्नों द्वारा हाथ बटा रहे थे ऐसा, उपरोक्त आचार्यों के संक्षिप्त जीवन से स्पष्ट ज्ञात होजाता है।

२३ आचार्य जयदेव सूरि के पट्टधर आचार्य देवानंद सूरि हुए। आप श्री अतिशय प्रभावशाली थे। आपके चरण कमलों की सेवा कई राजा महाराजा ही नहीं अपितु कई देवी देवता भी किया करते थे। आपश्री ने देव (की) पट्टन में श्रीसघ के आग्रह से भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई साथ ही ही कच्छ सुथरी ग्राम के जैन मंदिर की प्रतिष्ठा भी बड़े ही समारोह के साथ करवाई। इन सुअवसरों पर बहुत से क्षत्रिय वगैरह को जैन बना कर उपकेशवश में सम्मिलित किये।

२४ आचार्य देवानद सूरि के पट्ट पर आचार्य विक्रम सूरि हुए। आप धर्म प्रचार करने में विक्रमशाली अर्थात् मिथ्यात्व, अज्ञान और कुरूढियों का उन्मूलन करने में बड़े ही वीर थे। आप श्री का विहार क्षेत्र मरुधर, मेदपाट, आवंती, लाट और सौराष्ट्र था। एक समय आप गुर्जर प्रान्त में विहार करते हुए खरसाड़ी ग्राम जो सरस्वती नदी के किनारे था, पधारे। वहा अच्छे निर्वृत्ति के स्थान में रह कर सरस्वती देवी का आराधन प्रारम्भ किया। उक्त आराधन काल में आप श्री ने पानी रहित चौविहार तप पूरे दो मास तक किया। जिससे देवी सरस्वती ने प्रसन्न हो आचार्य श्री के चरणों में नमस्कार किया और कहा आचार्य देव। आपकी भक्ति पूर्ण आराधना से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ और आपको वरदान देती हूँ कि ज्ञान में आपकी सदैव विजय होगी। आचार्य श्री ने देवी के वरदान को तथास्तु कह कर स्वीकार कर लिया। आचार्य श्री के तप प्रभाव से समीपस्थ पीपल का वृक्ष जो-कई अर्से से शुष्क प्राय था हरा भरा नव पल्लवित होगया। इससे जन समाज में आचार्य श्री के चमत्कार की खूब प्रशंसा एवं कीर्ति फैल गई। तत्पश्चात् आचार्य श्री ने भलधार गोढ आदि कई स्थानों में विहार कर, अनेक जैनेतरों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा

देकर, उपकेशवंश (महाजन संघ) में मिला कर जैनियों की संख्या में खूब वृद्धि की। आप श्री ने अपने ज्ञान रूपी किरणों का प्रकाश चारों ओर फैलाते हुए, अज्ञानान्धकार का नाश कर धर्म के प्रचार क्षेत्र को सुविशाल बनाया। आप श्री के इतने प्रभावशाली होने पर भी आपके जीवन के विषय के साहित्य का तो अभाव ही है। इस (साहित्याभाव) का कारण (मुसलमानों की धर्मान्धता रूप) हम ऊपर लिख आये हैं।

२५ आचार्य विक्रम सूरि के पट्ट पर आचार्य नरसिंह सूरि धुरंधर आचार्य हुए। आप श्री ने कई प्रान्तों में विहार कर जैन धर्म का खूब प्रचार किया। एक समय आप नरसिंहपुर नगर में पधारे। वहां पर एक मिथ्यात्वी यक्ष भैंसे बकरों की बलि लिया करता था। और वहां ग्रामवासी भी अज्ञानता से भयभीत हो इस प्रकार की जीव हिंसा किया करते थे। अस्तु, आचार्य नरसिंहसूरि एक समय यक्षालय में रात्रि पर्यन्त रहे जिससे यक्ष कुपित हो सूरिजी को उपसर्ग करने के लिये उद्यत हुआ। पर आचार्य श्री ने यक्ष को इस प्रकार उपदेश दिया कि उसने अपनी आदत छोड़कर जीवहिंसा छोड़ दी। इस प्रवृत्ति पर यक्ष आचार्य श्री का अनुचर होकर उपकार कार्य में सहायता पहुँचाने लगा। इस चमत्कार को देख बहुत से क्षत्रिय वगैरह अजैन लोग सूरिजी के भक्त बन गये। सूरिजी ने भी इन सबको जैनधर्म की दीक्षा देकर उपकेश वंश में मिला लिये। इसके सिवाय भी सूरिजी ने अनेक स्थानों में विहार कर क्षत्रियों को जैन बनाये। इनमें कुमार्य कुल के क्षत्रीय भी थे। इतना ही क्यों पर वहां राज्य कुलीन समुद्रनाम के क्षत्रिय को होनहार समझ अपना शिष्य बनाया और अपने पट्टधर आचार्य बनाकर अपना सर्वाधिकार उसके सुपुर्द किया। आचार्य नरसिंहसूरि ने 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत को चरितार्थ कर अपना नाम सार्थक कर दिया।

२६ आचार्य नरसिंह सूरि के पट्ट पर आचार्य समुद्र सूरि बड़े ही चमत्कारी आचार्य हुए। आप एक तो क्षत्रिय कुल के थे दूसरे कठोर तपके करने वाले। तपस्या से अनेक लब्धियां प्राप्त होती हैं तथा देवी देव प्रसन्न हो तपस्वी महात्मा की सेवा में रहने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। तपस्वी का प्रभाव साधारण जनता पर ही नहीं पर बड़े २ राजा महाराजाओं पर भी पड़ता है। आचार्य समुद्रसूरि जैसे तपस्वी थे वैसे साहित्य के व ज्ञान के समुद्र भी थे। आपश्री ने अनेक ग्राम नगरों में विहार कर जैनधर्म का अच्छा उद्योत किया। भैंसे और बकरे की बलि लेने वाली चामुण्डा देवी को प्रतिबोध देकर मूक प्राणियों को अभयदान दिलाया। जिस समय आचार्य समुद्रसूरि का शासन था उस समय दिगम्बरों का भी जोर २ ओर बढ़ गया था पर आचार्य समुद्रसूरि ने तो कई स्थानों पर शास्त्रार्थ कर, दिगम्बरों को पराजित कर श्वेताम्बर संघ के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। इतना ही क्यों पर श्वेताम्बरों के नागह्रद नाम के तीर्थ जिसको कि दिगम्बरों ने दबा लिया था; आचार्य समुद्रसूरि ने पुनः (उस तीर्थ को) श्वेताम्बरों के कब्जे में करवा दिया। आचार्य समुद्रसूरि ने अपने शासन समय में जैनधर्म की अच्छी उन्नति की।

"खोमाण राजकुलजोऽपि समुद्रसूरि र्गच्छे शशास किल यः प्रवणः प्रमादी ।
जित्वा तदा क्षपणकान् स्ववशं वितेने नागह्रदे भुजगनाथ नमस्यतीर्थे ।"

२७ आचार्य समुद्रसूरि के पट्टधर आचार्य मानदेवसूरि (द्वितीय) हुए। आप श्री बड़े ही

प्रतिभाशाली थे। आपने अनेक ग्राम नगरों में विहार कर जैन धर्म की खूब प्रभावना की। आपके शासन के समय का हाल जानने के लिये भी साहित्य का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। केवल पट्टावलियों में थोड़ा सा उल्लेख मिलता है तदनुसार—आप अपने शरीर की अस्वस्थता के कारण सूरि मन्त्र को विस्मृत कर चुके थे। पर जब आपका स्वास्थ्य अच्छा हुआ तो आपको बड़ा ही पश्चाताप हुआ। अत पुन सूरि मन्त्र प्राप्ति के लिये आप श्री ने गिरनार तीर्थ पर जाकर चौविहार तपश्चर्या करना प्रारम्भ किया। पूरे दो मास व्यतीत होने के पश्चात् आप श्री के तप' प्रभाव से वहा की अधिष्ठात्री देवी अम्बिका ने आपकी प्रशसा की व सूरि मन्त्र की पुन स्मृति करवादी। वीर शासन परम्परा में आप प्रभाविक आचार्य हुए हैं।

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा एव उपकेशगच्छाचार्यो के साथ सम्बन्ध रखने वाले वीर परम्परा के २७ आचार्यों के जीवन क्रमश. लिखे हैं। पर इससे पाठक यह न समझलें कि महावीर की परम्परा में केवल ये सत्तावीस ही पट्टधर आचार्य हुए हैं। कारण, हम ऊपर लिख आये हैं कि, गणधर सौधर्म से आर्य भद्रबाहु तक तो ठीक एक ही गच्छ चला आया था पर आर्यभद्रबाहु के शासन समय से पृथक २ गच्छ निकलने प्रारम्भ हो गये। तथापि–आर्य सभूति विजय और भद्रबाहु के पट्टधर स्थूलभद्राचार्य हुए पर उसी समय आर्य भद्रबाहु के एक शिष्य गौदास से गौदास नामक एक गच्छ पृथक निकला था अस उस गच्छ की शाखा कहा तक चली यह तो अभी अज्ञात ही है। आगे चलकर आर्य स्थूलभद्र के पट्टधर भी दो आचार्य हुए (१) महागिरी (२) सुहस्ती। महागिरि शाखा के आचार्य बलिस्सह हुए। इनकी परम्परा हम आगे चलकर लिखेंगे। दूसरे आर्य सुहस्ती—इनके शिष्यों की सख्या बहुत अधिक थी अत इनके शाखारूप बहुत से पृथक २ गच्छ भी निकले जो आप श्री के जीवन के साथ ऊपर लिखे जा चुके हैं। आर्य सुहस्ती के पट्टधर दो मुख्य आचार्य हुए (१) आर्य सुस्थी (२) आर्य सुप्रतिबुद्ध। एवं क्रमश आर्य वज्रसेन के चार शिष्यों से चार शाखाए निकली और बाद चद्रादि चार शिष्यों से चद्रादि चार कुल स्थापित हुए। इसमें ऊपर जो २७ पट्टधरों का जीवन हम लिख आये हैं वे केवल एक चद्रकुल की परम्परा के ही हैं। इनके अलावा नागेन्द्र, निर्वृत्ति, विद्याधर ये तीन कुल तो वज्रसेन के शिष्यों के ही थे तथा, आर्य सुस्थी की जो गच्छ शाखाए निकली उनका परिवार तथा आर्य महागिरि एवं गौदास गच्छ का परिवार कितना होगा, इसके जानने के लिये जितना चाहिये उतना साधन नहीं मिलता है। खैर, मेरी शोध खोज से एतद्विषयक जितना साहित्य मुझे हस्तगत हुआ वह यहा सग्रहित कर लिखा जा चुका है।

आर्य देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः— आप आगमों को पुस्तकारूढ़ करने वाले के नाम से जैन संसार में मशहूर हैं। आप श्री ने नदीसूत्र और नदीसूत्र की स्थविरावली की रचना भी की थी। उक्त स्थविरावली के आधार पर कई लेखकों ने आपको आर्य दुष्य गणि के शिष्य लिखा है तब कई लोगों ने आपको लोहित्याचार्य के शिष्य बताये हैं। पर वास्तव में आप आर्य सडिल्य के शिष्य थे ऐसा कल्प सूत्र की स्थविरावली से प्रतीत होता है। इस प्रकार की विभिन्नता का खास कारण हमारी पट्टावलिया स्थविरा-वलिया ही है। कारण, ये सब दो परम्परा को लक्ष्य में रखकर लिखी गई हैं। जैसे (१) गुरु शिष्य परम्परा (२) युगप्रधान परम्परा। गुरु शिष्य परम्परा में क्रमश' गण कुल शाखा और गुरु शिष्य का ही नियम है तब युगप्रधान स्थविरावली में गणकुल एव गुरु शिष्य का नियम नहीं है किन्तु जिस किसी गण कुल शाखा में युग प्रवर्तक प्रभाविक आचार्य हुए हों उनकी ही क्रमश नामावली आती है। नन्दी सूत्र की स्थविरावली गुरुक्रम

की नहीं पर युग प्रधान क्रम की स्थविरावली है। इसमें एक शाखा के नहीं पर कई शाखाएँ के आचार्यों के नाम हैं। यही कारण है कि नंदी स्थविरावली में दुष्य गणि के बाद देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण का नाम आता है। वह युग प्रधान क्रम की गणना से ही है। कल्प स्थविरावली में आपको संडिल्याचार्य के शिष्य कहा है। दूसरे आचार्य मलयागिरि वगैरह के तो आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जी को आर्य महागिरि की परम्परा के स्थविर बतलाते हैं पर, आप न आर्य सुहस्ती की परम्परा के। आपश्री से करीब १५ वर्ष पूर्व आगम वाचना हुई थी एक मथुरा में आर्य स्कंदिल के अध्यक्षत्व में दूसरी वल्लभी नगरी में आर्य नागार्जुन के अध्यक्ष में। आप स्कंदिल आर्य सुहस्ती की परम्परा में थे तब आर्य नागार्जुन, आर्य महागिरि की परम्परा के आचार्य थे। इन दोनों स्थविरों ने दो स्थानों पर आगमवाचना की पर वृद्धावस्था के कारण कहीं १ अंतर रह गया बाद न तो वे दोनों आचार्य आपस में मिल सके और न उसका समाधान हो सका अतः उन पाठान्तरों के समाधान के लिये ही पुनः वल्लभी नगरी में संघ सभा की गई और सभा में दोनों ओर के श्रमणों को एकत्रित किये गये। आर्य सुहस्ती एवं स्कंदिलाचार्य की संतान के मुख्य स्थविर थे आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण और आर्य महागिरि एवं आर्य नागार्जुन की परम्परा के श्रमणों में मुख्य आर्य कालकाचार्य थे। इन दोनों परम्पराओं में आगम वाचना के अन्तर के सिवाय एक दूसरा भी अन्तर था वह, भगवान् महावीर के निर्वाण के समय का। आप देवर्द्धिगणि की परम्परा में अपने समय (आर्य देवर्द्धि गणि के समय) तक महावीर निर्वाण को ९८० वर्ष हुए ऐसी मान्यता थी तब कालकाचार्य की मान्यता ९९३ वर्ष की थी। अतः ये दोनों स्थविर पृथक पृथक् शाखा के ही थे।

तीसरा—आचार्य मेरुतुङ्गसूरि ने अपनी स्थविरावली में आर्य देवर्द्धिगणि को आर्य महागिरि की परम्परा के स्थविर कहकर वीरात् सत्तावीसवें पट्टधर लिखा है। जैसे—

"सूरि बलिस्सह साई सामज्जो संडिलोय जीयधरो अज्ज समुद्दो मंगु नंदिल्लो नागहत्थि य
रेवइसिंहो खंदिल हिमवं नागज्जुणा य गोविंद। सिरिभूइदिन्न—लोहिच्च दूसगणिणोय देवड्ढी॥"

असौ च श्री वीरात्सप्तविंशतितमः पुरुषो देवर्द्धिगणिः सिद्धान्तान् अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढानकार्षीत्।

—मेरुतुंग स्थविरावली [illegible]

अर्थात्—(सौधर्म१ जम्बु२, प्रभव३ शय्यंभव४ यशोभद्र५ संभूति६ स्थूलभद्र७ महागिरि८ बलिस्सह९, स्वाति१० श्यामाचार्य११ संडिल्य१२ जीतधर१३ समुद्र१४, मंगू१५, नंदिल१६ नागहस्ति १७ रेवति१८, सिंह१९, स्कंदिल२०, हेमवंत२१ नागार्जुन२२ गोविंद२३, भूतदिन्न२४ लोहित२५ दुष्यगणि२६ और देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण २७।

आर्य देवर्द्धिगणि ने नंदी स्थविरावली लिखी उसमें दुष्यगणि को ३१ वां पट्टधर लिखा है इससे देवर्द्धि ३२ वें स्थविर थे। तथाहि—

(१) आर्य सुधर्मा, (२) जम्बु, (३) प्रभव (४) शय्यंभव (५) यशोभद्र, (६) संभूतविजय, (७) भद्रबाहु, (८) स्थूलभद्र, (९) महागिरि (१०) सुहस्ति (११) बलिस्सह (१२) स्वाति (१३) श्यामाचार्य (१४), संडिल्य (१५) समुद्र (१६) मंगु (१७) आर्य धर्म, (१८) भद्रगुप्त (१९) वज्र (२०) रक्षित (२१) आर्यनंदिल,

(२१) नागहस्ति (२३) रेवति नक्षत्र (२४) ब्रह्मद्वीपसिंह (२५) स्कंदिलाचार्य (२६) हिमवत (२७) नागार्जुन (२८) गोविंद (२९) भूतदिन्न (३०) लौहित्य (३) दुष्य गणि (३२) देवर्द्धिगणि।

इन दोनों स्थविरावलियों में गुरु शिष्य की नामावली नहीं पर युग प्रधान पट्टक्रम है। यही कारण है कि, उपरोक्त स्थविरावलियों में आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति नामक दोनों परम्परा के जो युग प्रधान स्थविर हुए हैं, उन्हीं का समावेश दृष्टिगोचर होता है। जैसे नंदी स्थाविरावली में आर्य नागहस्ति का नाम आया है पर वे विद्याधर शाखा के आचार्य थे-यथाहि—

आसीत्कालिक सूरिः श्री श्रुताम्भोनिधि पारगः। गच्छे विद्याधराख्ये आर्य नागहस्ति सूरयः ॥

प्रभावक चरित्र पादलिप्त प्रबंध ४८

विद्याधर शाखा आर्य सुहस्ति के परम्परा की है जो आर्य विद्याधर गोपाल से प्रचलित हुई थी। दूसरा आर्य आनंदिल का नाम भी उपरोक्त नंदीसूत्र स्थविरावली में आता है वे भी सुहस्ति की परम्परा के आचार्य थे—

"आर्य रक्षित वंशीयः स श्रीमानार्यनंदिलः। संसारारण्य निर्वाह सार्थवाहः पुनातु वः ॥

'प्रभावक चरित्र

आगे नं० २४ में ब्रह्मद्वीपीसिंह का नाम आया है। ब्रह्माद्वीपी शाखा आर्य सुहस्ति की परम्परा के श्री सिंहगिरि के शिष्य समिति से निकली थी। अतः आप भी सुहस्ति की परम्परा के आचार्य (स्थविर) थे। इसी प्रकार आर्य स्कंदिल और भूतदिन्न भी आर्य सुहस्ति की परम्परा के आचार्य थे।

उपरोक्त परम्परा से नंदी सूत्र की स्थविरावली न तो आर्य महागिरि के परम्परा की स्थविरावली है और न आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण आर्य महागिरि की परम्परा के स्थविर ही थे। नंदीसूत्र की स्थविरावली तो युगप्रधान आचार्यों की स्थविरावली है। स्वयं क्षमाश्रमणजी ने नंदी सूत्र में अपनी गुरु परम्परा का नहीं किन्तु अनुयोगधर युगप्रधान परम्परा का ही वर्णन किया है। देखिये स्थविरावली के अंतिम शब्द—

जे अन्ने भगवन्ते कालिअ सुअ अणुयोगधरा धीरे। ते पणिमिऊण सिरसा नाणस्स परूवण वोच्छं॥

इस गाथा से पाया जाता है कि आपने अनुयोगधारक युगप्रधानों को नमस्कार करने के लिये ही स्थविरावली लिखी है।

आर्य देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण आर्य सुहस्ति की परम्परा के आर्यवज्र के तीसरे शिष्य आर्यरथ से निकली हुई जयंती शाखा के आचार्य थे। इसका उल्लेख स्वयं क्षमाश्रमणजी ने कल्पसूत्र की स्थविरावली में किया है। यद्यपि उस स्थविरावली में क्षमाश्रमणजी का नाम निर्देश नहीं है पर उस गद्य के अन्त की एक गाथा किसी क्षमाश्रमणजी के शिष्य या अनुयायी की लिखी हुई पाई जाती है। जैसे—

"सुत्तत्थरयणभरिए, खमदमभद्दवगुणेहिं संपन्ने। देवड्ढि खमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥

इस (कल्पसूत्र) स्थविरावली से क्षमाश्रमणजी भगवान् महावीर के २७ वें पट्टधर नहीं किन्तु ३४ वें साबित होते हैं। जैसे—

(१) आर्य सुधर्मा (२) जम्बू (३) प्रभव (४) शय्यंभव (५) यशोभद्र (६) सभूति विजय-भद्रबाहु (७) स्थुलभद्र (८) सुहस्ति (९) आर्य सुस्थित सुप्रति बुद्ध (१०) इन्द्रदिन्न (११) दिन्न (१२) सिंहगिरि (१३)

वज्र (१४) रथ (१५) पुष्यगिरि (१६) फल्गुमित्र (१७) धनगिरि (१८) शिवभूति (१९) भद्र (२०) नक्षत्र (२१) दक्ष (२२) नाग (२३) जेहिल (२४) विष्णु (२५) कालक (२६) संपपलित भद्र (२७) वृद्ध (२८) संघपालित (२९) हस्ति (३०) धर्म (३१) सिंह (३२) धर्म (३३) शांडिल्य (३४) स्वातिमति।

इस गुरु क्रमावली के अनुसार देवर्द्धि गणि ३४ वें पुरुष थे और आर्य शांडिल्य के शिष्य थे।

श्री क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य के आपस में मतभेद था। जब क्षमाश्रमणजी आर्य सुहस्ति एवं सुस्थिताचार्य की परम्परा के थे तो कालकाचार्य किसी दूसरी परम्परा के होने चाहिये। पट्टावलियों से पता पाया है कि कालकाचार्य आर्य महागिरि एवं नागार्जुन की परम्परा के आचार्य थे। पट्टावली निम्नलिखित है

(१) आर्य सुधर्मा (२) जम्बू (३) प्रभव (४) शय्यंभव (५) यशोभद्र (६) संभूतविजय (७) भद्रबाहु (८) स्थूलभद्र (९) महागिरि (१) सुहस्ति (११) गुप्त सुंदर (१२) कालकाचार्य (१३) स्कंदिलाचार्य (१४) रेवतिमित्र (१५) आर्यमंगु (१६) धर्म (१७) भद्रगुप्त (१८) वज्र (१९) रक्षित (२) पुष्यमित्र (२१) वज्रसेन (२२) नागहस्ति (२३) रेवतिमित्र (२४) सिंहसूरि (२५) नागार्जुन (२६) भूतदिन्न (२७) कालकाचार्य।

कालकाचार्य भगवान् महावीर के २७ वें पट्टधर होने से; आपके समकालीन क्षमाश्रमणजी को भी सत्ताईसवां पट्टधर लिख दिया गया है। पर ऊपर की तालिका से क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य के समकालीन होने पर भी श्रमणजी चौंतीसवें और कालकाचार्य सत्ताईसवें पट्टधर थे।

क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य के परस्पर ऊपर बताये हुये मुख्य दो बातों का ही मतभेद था। एक आगम वाचना में रहा हुआ अन्तर दूसरा भगवान् महावीर के निर्वाण समय (९८०—९९३) में। उन दोनों विषयों में परस्पर पर्याप्त वाद विवाद भी हुआ होगा अन्यथा अपनी २ परम्परा के पक्ष की मान्यताओं को सहसा छोड़ देना जरा असम्भावसा ज्ञात होता है। जब वर्तमान में भी छोटी २ निर्जीव बातों के लिये वाद नहीं पर वितंडा वाद मच जाता है और सच्ची बात के समझने जाने पर भी मत दुरा ग्रह के कारण पकड़ी हुई बात को नहीं छोड़ी जा सकती है तो उस समय के उक्त दोनों मत तो अत्यन्त पेचीदे एवं विकट महत्पूर्ण समस्या को लिए हुए खड़े थे। अतः बिना वाद विवाद के सहज में ही मतों का हल होना माना जाना जरा असम्भावित सा ही ज्ञात होता है जब कि उस समय के स्थविरों का हृदय अत्यन्त निर्मल एवं शासन हित की महत्पूर्ण भावनाओं से भरा हुआ होता था। यही कारण है कि वे अपनी बात को पकड़ने या छोड़ने के पहिले शासन के हित का गम्भीरता पूर्वक विचार करते थे।

दो व्यक्तियों के पारस्परिक मतभेद के समाधान के लिये एक तीसरे मध्यस्थ पुरुष की भी आवश्यकता रहती है। तदनुसार हमारे कुशल पाठकों के लिये मध्यवर्ती गंधर्व शान्तिसूरि का मध्यस्थ बन कर समाधान करवाने का उल्लेख मिलता है। जैसे

"वालब्भसंघकज्जे, उज्जमियं जुगप्पहाण तुल्लेहिं।
गन्धव्ववाइवेयाल संतिसूरीहिं वलहीए।"

इसका भाव यह है कि युग प्रधान तुल्य गन्धर्ववादी वेताल शांतिसूरि ने वालभ्य संघ के कार्य के लिये वल्लभी नगरी में उद्यम किया ।

गन्धर्व वादी शान्तिसूरि ने किस तरह समाधान करवाया इस विषय का तो कुछ भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता है परन्तु अनुमान से पाया जाता है कि इस मतभेद में क्षमाश्रमणजी का पक्ष बलवान रहा था। यही कारण है कि, दोनों वाचना को एक करने में मुख्यता माथुरी वाचना की रक्खी गई। जो वल्लभी वाचना मे माथुरी वाचना से पृथक् पाठ थे उनमें जो-जो समाधान होने काबिल थे उनको तो माथुरी वाचना में मिला दिये और शेष विशेष पाठ थे उनको वाचनान्तर के नाम से टीका में और कहीं मूल में रख दिये। इसके कुछ उदाहरण मैंने इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४५८ पर उद्धृत कर दिये हैं। इससे वाचना सम्बन्धी दोनों पक्षों का समाधान हो गया। श्री वीर निर्वाण के समय के मतभेद का समाधान तो नहीं किया जा सका फिर क्षमाश्रमणजी का पक्ष बलवान होने से ९८० को मूल सूत्र में और ९९३ को वाचनान्तर में लिखकर इसका भी समाधान कर दिया गया। जैसे:

"समणस्सभगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स नववाससायइं वइक्कंताइं, दसमस्स वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।" इति मूल पाठः ।

"वायणांतरे पुणं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ ।"

इस प्रकार वीर निर्वाण सम्बन्धी मतभेद का समाधान कर शासन मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर दिया। बस, उस समय से ही माथुरी वाचना को अग्रस्थान मिला। यही कारण है कि क्षमाश्रमणजी ने अपने नन्दी सूत्र की स्थाविरावली में माथुरी वाचना के नायक स्कंदिलाचार्य को नमस्कार करते हुए लेखा है कि आज उनकी वाचना के आगम अर्ध भारत में प्रसरित हैं यथा

"जेसि इमो अणुओगो पयरइ अज्जवि अड्ढभारहम्मि । बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए।।"

—"निमित्त वेत्ता आचार्य भद्रबाहु स्वामीः और वराहमिहिर"

चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली भद्रबाहुके वर्णन में हम लिख आये हैं कि कई लोगों ने वराहमिहिर के लघुभ्राता निमित्तवेत्ता आचार्य भद्रबाहु को ही श्रुत केवली भद्रबाहु स्वीकार कर लिया है पर श्रुतकेवली और निमित्त वेत्ता दोनों पृथक २ भद्रबाहु नाम के आचार्य हुए। श्रुतकेवली भद्रबाहु का अस्तित्व वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी का है तब वराह मिहिर के लघु भ्राता भद्रबाहु का समय विक्रम की छट्ठी शताब्दी का है अत यहा में वराहमिहिर और भद्रबाहु के विषय में उल्लेख कर देता हूँ—

प्रतिष्ठितपुर नामक नगर के रहने वाले विप्रवंशीय वराहमिहिर व भद्रबाहु नामक दो सहोदरों ने आर्य यशोभद्र के उपदेश से प्रतिबोध पाकर भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की थी। ये युगल बन्धु वेद, वेदांग पुराण, ज्योतिषादि विप्रधर्मीय शास्त्रों के तो पहिले से ही परम विचक्षण ज्ञाता थे। जैन दीक्षा अङ्गीकार करने के पश्चात् जैन शास्त्रों का अभ्यास भी बहुत मनन पूर्वक करने लगे अत कुछ ही समय में जैन दर्शन के भी अनन्य विद्वान् हो गये। इतना होने पर भी वराहमिहिर की प्रकृति चचल, अधीर एव अभिमान पूर्ण थी और भद्रबाहु की शान्त, धैर्य्य, गम्भीर्य, दूरदर्शिता गुणों से युक्त थी अत गुरु महाराज ने वय में लघु किन्तु गुणों में वृद्ध भद्रबाहु मुनि को ही आचार्य पद दिया। यह बात अभिमान के पुतले वराहमिहिर

मुनि को कब सहन होने वाली थी ? वे तो क्रोध एवं अभिमान के वश में भविष्य का भी भान भूल गये। जैन दीक्षा का त्याग कर पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त हो अपने महान् उपकारी गुरु एवं भद्रबाहुसूरि की मनमानी निन्दा करने लगे एवं आचार्यश्री को द्वेष बुद्धि पूर्वक नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न करने लगे पर आचार्य श्री की प्रतिभा के सामने उनकी निन्दा से जन समाज पर उतना असर नहीं पड़ा। क्रमशः अपनी पूर्वीय व सांसारिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिये वराहमिहिर ने एक वराही संहिता नामक ज्योतिष विषयक ग्रन्थ बनाया। इस तरह निमित्त विद्या बल से अपनी पूर्ति व कुछ प्रतिष्ठा के पात्र भी बन गये। वराहमिहिर के ज्योतिष विषयक अगाध पाण्डित्य को देख कर कई लोग उनसे पूछते महाराज! आपने ज्योतिष का इतना ज्ञान किस तरह से प्राप्त किया है? उत्तर में महाराज एक ऐसी कल्पित बात कहते कि एक दिन मैं नगर के बाहिर गया। वहां भूमि पर मैंने एक कुण्डली को लिखी। पर नगर में आते समय उस कुण्डली को मिटाना मैं भूल गया। जब मुझे उस कुण्डली को नहीं मिटाने की स्मृति आई तो मैं तत्काल वहां गया। वहां जाते ही सिंह लग्न पर साक्षात् सिंह को बैठा देखा। मैंने भी निडरता पूर्वक या भक्तिवश सिंह के पास जाकर सिंह के नीचे की कुण्डली को मिटा दिया। इससे प्रसन्न हो सिंह के स्वामी सूर्य ने मुझे कहा—मैं तेरी इस कार्य पर बहुत ही सन्तुष्ट हूँ तेरी इच्छा के अनुसार तू कुछ भी मांग मैं तेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण करूंगा। मैंने कहा मुझे आपके ज्योतिष मण्डल की गति-चाल देखनी है। बस, सूर्य देव मुझे अपने ज्योतिष मंडल में ले गये। और क्रमशः सब ग्रह नक्षत्रों को मुझे बतला दिये। इसलिये अब मैं तीनों कालों की बातों को हस्तामलक वत् स्पष्ट रूपेण जानता हूँ। बिचारे भद्रिक लोग वराहमिहिर की बात पर विश्वास कर पूजा करने लगे। यह बात क्रमशः फैलती हुई नगर के राजा के पास भी पहुँच गई और राजा भी उनका अच्छी तरह से सत्कार करने लगा।

एक समय आचार्य भद्रबाहु स्वामी विहार करते हुए उसी नगर में पधार गये जहां पर वराहमिहिर रहता था। श्रावक समुदाय ने बड़े ही उत्साह से नगर प्रवेश महोत्सव किया। इसको देख वराहमिहिर की ईर्षाग्नि पुनः भभक उठी। भद्रबाहु स्वामी को अपमानित करने की इच्छा से वह एक दिन राजा के पास जाकर कहने लगा—राजन्! आज से पांचवें दिन पूर्व दिशा से वर्षा आवेगी। तीसरे प्रहर में वर्षा का प्रारम्भ होगा। इसके साथ मैं यहां कुण्डली करता हूँ इसमें ५२ पल का एक मच्छ भी पड़ेगा मेरे इस निमित्त को आप ध्यान में रखने की कृपा करें। इतना कह कर वराहमिहिर स्वस्थान चला गया जब यही बात क्रमशः आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी के कर्ण गोचर हुई तो आपने स्पष्ट फरमाया कि वराहमिहिर का कथन सर्वथा सत्य नहीं है कारण, वर्षा पूर्व दिशा से नहीं पर ईशान कोने से आवेगी। तीसरे प्रहर नहीं पर दिन अर्द्ध दिन शेष रहेगा तब बरसेगी। मच्छ ५२ पल का नहीं पर ५१॥ पल का गिरेगा। बस श्रावकों ने भद्रबाहु स्वामी के भविष्य को व वराहमिहिर व आपके निमित्त के पारस्परिक अन्तर को [illegible] के साथ में जाकर सुना दिया। राजा ने भी परीक्षार्थ दोनों के भविष्य को अपनी बही में लिखवा लिया। क्रमशः पांचवां दिन आया तो आर्य भद्रबाहु स्वामी का सब कथन यथावत् सत्य हो गया और वराहमिहिर का निमित्त झूठा निकल गया। इससे नगर भर में वराहमिहिर की भर्त्सना एवं निन्दा होने लगी। राजा के हृदय में भी वराहमिहिर के प्रति उतना सम्मान का स्थान नहीं रहा। आर्य भद्रबाहु की जग विश्रुत सत्य वाणी ने वराहमिहिर के प्रतिष्ठा मार्ग को एक दम अवरुद्ध कर दिया। वास्तव में बात भी ठीक ही है सूर्य

पर थूकने वाले का थूंक उसी के मुह पर गिरता है, बुरा करने वाले का ही बुरा होता है। जो दूसरों के लिये कूप खोदता है उसके लिये खाई अपने आप तैय्यार मिलती है।

जब राजा के पुत्र हुआ तो वराहमिहर ने नवजात शिशु की जन्म-पत्रिका बना कर उसका आयुष्य सौ वर्ष का बतलाया इससे राजा को बहुत ही प्रसन्नता हुई। इधर राजा के पुत्र होने से नागरिक लोग भेंट लेकर राजा के पास गये; ब्राह्मणादि आशीर्वाद देने गये पर आर्य भद्रबाहु स्वामी जैन शास्त्र के नियमानुसार कहीं पर भी नहीं गये। वराहमिहर तो ईर्ष्या के कारण पहिले से ही छिद्रान्वेषण कर रहा था अत उस को यह अच्छा मौका हाथ लग गया। उसने एकान्त में राजा को विशेष भ्रम में डालते हुए कहा—राजन्! आप श्री के पुत्र जन्मोत्सव की सब नागरिकों को खुशी है पर एक जैन साधु भद्रबाहुस्वामी को प्रसन्नता नहीं है। वह आप के नगर में रहता हुआ भी अभिमान के वश शुभाशीर्वाद देने के लिये राज सभा में नहीं आया। राजा ने भी वराहमिहिर की बात सुनली पर कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। जब यह बात क्रमश श्रावकों के द्वारा भद्रबाहु स्वामी को ज्ञात हुई तो आर्य भद्रबाहु ने कहा—राजकुमार का आयुष्य सात दिन का है। सातवें दिन वह बिल्ली (मंजारी) से मर जायगा। इसलिये मैं राजा के पास नहीं गया। श्रावकों ने इस बात को भी राजा के कानों तक पहुँचा दी अतः राजा को इस विषय की बहुत ही चिन्ता होने लगी। राजा ने कुमार को सुरक्षित रखने के लिये सब मार्जारों को शहर से बाहिर कर दिया और राजकुमार को ऐसे सुरक्षित मकान में रख दिया कि मजारी आ ही नहीं सके। मकान के बाहिर पहिरेदारों को बैठा दिये जिससे मंजारी के आने का किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं रहा। पर भावी प्रबल है, ज्ञानियों का निमित्त कभी झूठा नहीं होता अतः भद्रबाहु स्वामी के कथनानुसार ही सातवें दिन दरवाजे के किवाड़ की अर्गल नूतन राजकुमार के मस्तक पर पड़ी और वह तत्काल मर गया। इस पर वराहमिहर ने कहा—मेरी बात सच्ची नहीं है पर भद्रबाहु की बात भी तो सच्ची नहीं है कारण उसने भी कहा था कि कुँवर बिलाड़ी (मंजारी) के योग से मरेगा—पर ऐसा तो हुआ नहीं। तब भद्रबाहु ने कहा—जिस लकड़ी के योग से कुवर की मृत्यु हुई है उस पर बिलाड़ी का मुंह खुदा हुआ है देख कर निर्णय करलीजिये। बस, भद्रबाहु स्वामी का कहना सत्य होगया। बेचारा वराहमिहिर लज्जित हो वहा से चला गया। बाद में तापस हो, कठोर तपश्चर्या करके नियाणे सहित मर कर वराहमिहर व्यन्तर देव हुआ पर संस्कार तो भवान्तर में भी साथ ही चलता है अत. अपने दुष्ट स्वभावानुसार व्यन्तर देव के रूप में भी वराह मिहर ने जैन संघ पर द्वेष कर सर्वत्र मरकी का रोग फैला दिया। सघ ने जाकर भद्रबाहु स्वामी से प्रार्थना की तो आचार्य श्री ने रोग निवारणार्थ "उवसग्गहरं" छ गाथा (कहीं पर सात गाथा भी लिखी है) का एक स्तोत्र बनाया जिसको पढ़ने से सब उपद्रव शान्त हो गया। पर थोड़े समय के पश्चात तो जन समुदाय ने उसका दुरुप योग करना प्रारम्भ कर दिया। जब किसी को छोटा बड़ा जरासा काम पड़ा—झट उवसग्गहरं को स्मरण कर अपना काम निकालने लग गया। किसी की गाय ने दूध नहीं दिया कि पढ़ा उवसग्गहर स्तोत्र। किसी को जगल में काष्ट का भारा उठाने वाला नहीं मिला कि—पढ़ा उवसग्गहरं स्तोत्र। ऐसे अनेक काम श्री धरणेन्द्र देवता से करवाने लग गये। स्तोत्र के वास्तविक उच्चतम महत्त्व को स्मृति से विस्मृत कर धरणेन्द्र देवता को बुलाने में शिशु क्रीड़ावत् बालकौतूहल करने लग गये।

एक समय की बात है एक स्त्री रसोई बना रही थी। इतने में उसका छोटा बच्चा टट्टी गया और

मुक्ति को कब सहन होने वाली थी ? वे तो क्रोध एवं अभिमान के वश में भविष्य का भी भान भूल गये। जैन दीक्षा का त्याग कर पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त हो अपने महान् उपकारी गुरु एवं भद्रबाहुसूरि की सतत निन्दा करने लगे एवं आचार्यश्री को द्वेष बुद्धि पूर्वक नुकसान पहुँचाने का साहस करने लगे पर आचार्य श्री की प्रतिभा के सामने उनकी निन्दा से जन समाज पर उतना असर नहीं पड़ा। क्रमशः उदर पूर्त्यर्थ व सांसारिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए वराहमिहिर ने एक वाराही संहिता नामक ज्योतिष विषयक ग्रन्थ बनाया। इस तरह निमित्त विद्या बल से उदर पूर्ति व कुछ प्रतिष्ठा के पात्र भी बन गये। वराहमिहिर के ज्योतिष विषयक अगाध पाण्डित्य को देख कर कई लोग उनसे पूछते महर्षी! आपने ज्योतिष का इतना ज्ञान किस तरह से प्राप्त किया है उत्तर में महर्षी एक ऐसी कल्पित बात कहते कि एक दिन मैं नगर के बाहिर गया। वहाँ भूमि पर मैंने एक कुण्डली को लिखी। पर नगर में आते समय उस कुण्डली को मिटाना मैं भूल गया। जब मुझे उस कुण्डली को नहीं मिटाने की स्मृति आई तो मैं तत्काल वहाँ गया। वहाँ जाते ही सिंह लग्न पर साक्षात् सिंह को खड़ा देखा। मैंने भी निडरता पूर्वक या भक्तिवश सिंह के पास जाकर सिंह के नीचे की कुण्डली को मिटा दिया। इससे प्रसन्न हो सिंह के स्वामी सूर्य ने मुझे कहा—मैं तेरी इस भक्ति पर बहुत ही सन्तुष्ट हूँ तेरी इच्छा के अनुसार तू कुछ भी मांग, मैं तेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण करूँगा। मैंने कहा मुझे आपके ज्योतिष मण्डल की गति-चाल देखनी है। बस, सूर्य देव मुझे अपने ज्योतिष मंडल में ले गये। और क्रमशः सब ग्रह नक्षत्रों को मुझे बतला दिये। इसलिये अब मैं तीनों कालों की बातों को हस्तामलक वत् स्पष्ट रूपेण जानता हूँ। बिचारे भद्रिक लोग वराहमिहिर की बात पर विश्वास कर पूजा करने लगे। यह बात क्रमशः फैलती हुई नगर के राजा के पास भी पहुँच गई और राजा भी उसका अच्छी तरह से सत्कार करने लगा।

एक समय आचार्य भद्रबाहु स्वामी फिरते हुए उसी नगर में पधार गये जहाँ पर वराहमिहिर रहता था। श्रावक समुदाय ने बड़े ही उत्साह से नगर प्रवेश महोत्सव किया। इसको देख वराहमिहिर की दुर्भाव पुनः भभक उठी। भद्रबाहु स्वामी को अपमानित करने की इच्छा से वह एक दिन राजा के पास जाकर कहने लगा—राजन्! आज से पाँचवें दिन पूर्व दिशा से वर्षा आवेगी। तीसरे प्रहर में वर्षा का प्रारम्भ होगा। इसके साथ मैं यहाँ कुण्डली करता हूँ इसमें ५१ पल का एक मत्स्य भी पड़ेगा मेरे इस निमित्त को आप स्मरण में रखने की कृपा करें। इतना कह कर वराह मिहिर स्वस्थान चला गया जब यही बात क्रमशः आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी के कर्णगोचर हुई तो आपने स्पष्ट फरमाया कि वराहमिहिर का कथन सर्वथा सत्य नहीं है कारण, वर्षा पूर्व दिशा से नहीं पर ईशान कोने से आवेगी। तीसरे प्रहर नहीं पर तीन सूर्य दिन शेष रहेगा तब बरसेगी। मत्स्य ५२ पल का नहीं पर ५१॥ पल का गिरेगा। बस श्रावकों ने भद्रबाहु स्वामी के भविष्य को व वराहमिहिर व आपके निमित्त के पारस्परिक अन्तर को नगराधीश के पास में जाकर सुना दिया। राजा ने भी परीक्षार्थ दोनों के भविष्य को अपने पास में लिखवा लिया। क्रमशः पाँचवाँ दिन आया तो आर्य भद्रबाहु स्वामी का सब कथन यथावत् सत्य हो गया और वराहमिहिर का निमित्त झूठा निकल गया। इस प्रकार नगर भर में वराहमिहिर की भर्त्सना एवं निन्दा होने लगी। राजा के हृदय में भी वराहमिहिर के प्रति उतना सम्मान का स्थान नहीं रहा। आर्य भद्रबाहु की इस विशुद्ध सत्य वाणी ने वराहमिहिर के प्रतिष्ठा मार्ग को एक दम अवरुद्ध कर दिया। वास्तव में बात भी ठीक ही है सूर्य

"सिरि दुसमा काल समण संघ थुयं"

(दुषमा काल श्री श्रमण संघ स्तोत्रम्)

[कर्ता—श्री धर्मघोप सूरिः]

वीरजिण भुवण विस्सुअ पवयण गयणिकदिणमणि समाणो ।
वट्टन्त सुअनिहाणे थुणामि सूरि जुगप्पहाणे ॥ १ ॥
वीस तिवीस इनवई अडसयरी पञ्च सयरी गुण नवई। सउ सगसी पणनउइ सगसी छयस्सरी अडसयरी२
चउनवइ अठ तिअ सग चउ पन्नुरुत्तरसयं। तित्तिससयं सउ पणनउई नवनवई चत्त तेवीसुदय सूरी॥३
अह उदयाणं पढमे,जुगपवरे पणिवयामि तेवीसं। सिरिसुहम्म वयर पडिवय हरिस्सयं नदिमित्त च ॥४॥
सिरि सूरसेण रविमित्त सिरिपहं मणिरहं च जसमित्तं। धणसिंहं सच्चमित्तं धम्मिल्लं सिरिविजयाणंदं५
वंदामि सुमंगल धम्मसिंह जयदेवसूरि सूरदिन्नं । वइसाहं कोडिलं माहुर वणिपुत्त सिरिदत्तं ॥६॥
उदयांतिम सूरी पुसमित्त मरहमित्त वइसाह । वंदे सुकीत्ति थावर रहसुअ जयमगलमुणिंदं ॥ ७ ॥
सिद्धत्थं ईसाणं रहमित्तं मरणिमित्तं दढ़मित्तं। सिरिसंगयमित्तं सिरिधरं च मागह ममरसूरिं॥८॥
सिरि रेवइमित्तं कित्तिमित्तं सुरमित्तं फग्गुमित्तं च।कल्लाण देवमित्तं णमामि दुप्पसह मुणिवसहं९
वंदे सुहम्मं जवूं पभवं सिज्जंभवं च जसभद्दं । संभूय विजय सिरिभद्द-बाहु सिरिथूलभद्दं च १०
महगिरि सुहत्थि गुणसुंदरं च सामज्ज खंदिलायरिउ। रेवइमित्तं धम्मं च भद्दगुत्त सिरिगुत्तं ॥११॥
सिरिवयरमज्जरक्खिअ सूरिं पणामामि पूसमित्तं च। इअ सत्तकोडिनाभे पढमम्मुदए वीस जुग पवरे॥१२॥
वीए तिवीस वइरं च नागहत्थिं च रेवइमित्तं । सीहं नागज्जुण भूइदिन्नियं कालयं वंदे ॥१३॥
सिरिसच्चमित हारिलं जिणमद्दं वंदिमो उमासाइं । पुसमित्तं सभूइं माढ़र संभूइ धम्मरिसिं ॥१४॥
जिट्ठंग फग्गुमित्तं धम्मघोसंच विणयमित च। सिरि सीलमितरेवइमित्तं सूरि सुमिणमित्तंहरिमित्तं१५
इय सव्वोदय जुगपवर सूरिणो चरणसंजूए वदे । चउतर दुसहस्सा दुप्पसहंते सुहम्माइ ॥ १६ ॥
इय सुहम्म जंबू तब्भवसिद्धा एगावयारिणो सेसा । सड्ढ़दुजोअणमज्झे जयंतु दुभिक्खडमरहरा ॥१७
जुगपवर सरिस सूरी दुरीकय भवियमोह तमपसरे । वंदामि सोल सुत्तर इगदस लक्खे महस्सेय ॥१८॥
पंचमअरम्मि पणवन्नलक्ख पणभन्न सहस कोडीणं । पंचसयकोडिपन्ना नमामि सुचरण सयलसूरी१९
तह मतरिकोडिलक्खा नवकोडिसय वारकोडियं। छप्पन लक्ख बत्तीस सहस्स एगूण दुन्निसया॥२०॥
तहसोल कोडिलक्खा,तियकोडिसहस्सा तिन्निकोडिसया। सतरस कोडिचुलसी लक्खा सुसावगाणं तु २१
पणतीसकोडिलक्खा सुसाविया कोडिसहस्स बाणउई । पणकोडिसया वतीस कोडि तह वारब्भहिया२२
एवं देविंदनयं सिरिविजयाणंद धम्मकीतिपयं। वीरजिण पवयण ठिइ दूसमसंघं णमह निच्चं ॥२३॥

॥ इय दुसमा काल सिरि समण संघ थुयं ॥

रोने लगा। स्त्री ने सोचा—यदि इस समय मैं जाऊँगी तो रोती बाल जावेगा अतः उसने बैठे बैठे ही उपसर्गहर स्तोत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। स्तोत्र के प्रारम्भ होते ही धरणेन्द्र देवता अपनी प्रतिज्ञानुसार उसके यहाँ पर उपस्थित हुये और कहने लगे—कहो क्या काम है! स्त्री ने कहा—क्या तुम्हें दीखता नहीं है—मेरा बच्चा रो रहा है। इन्द्र ने बच्चे को शीघ्र क्रिया से निवृत्त कर उसके रोने को बन्द किया। पश्चात् धरणेन्द्र देव आचार्य श्री के पास में आकर निवेदन करने लगे—प्रभो! अब तो मैं बहुत ही तंग हो चुका हूँ। इस स्तोत्र के वास्तविक महत्व का दुरुपयोग कर जन समाज अवश्य से अवश्य कार्य को करवाने के लिये इस मंत्र का स्मरण करती है अतः मैं न तो एक मिनिट ही देव भवन में ठहर सकता हूँ और न अन्य भी महत्ता ही रहती है। मनुष्यों के तुच्छ से तुच्छ काम भी मुझे करने पड़ते हैं। इन्द्र की इस वास्तविक बात को स्मरण कर आचार्य श्री ने उपसर्गहर स्तोत्र को उपसंहरण करने को कहा पर इन्द्र ने कहा—पूर्व की पांच गाथा तो रहने दीजिये सिर्फ एक छट्ठी गाथा ही भण्डार कर दीजिये कि—जिससे जरूरी काम होने पर मैं समयानुकूल उपस्थित हो सकूंगा। भद्रबाहु स्वामी ने भी ऐसा ही किया।

इस प्रकार आर्य भद्रबाहु स्वामी जैन संसार में परम प्रभावक निमित्त वेत्ता आचार्य हुए। आपका समय विक्रम की छट्ठी शताब्दी का कहा जाता है।

इस ग्रन्थ में जिन २ प्रभाविक आचार्यों का जीवन चरित्र लिखा गया है उनमें कई एक ऐसे भी आचार्य हैं कि जिन के नाम के कई आचार्य हो गये हैं। इन सभी के समय में पृथक्ता होने पर भी पूर्व लेखकों ने जो आचार्य विशेष प्रसिद्ध थे उनके नाम पर अन्याचार्यों (तन्नाम राशियों) की घटनायें वर्णित करदी हैं। जैसे—भद्रबाहु नाम के तीन आचार्य हुए। एक वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी में दूसरे दिगम्बर मतानुसार विक्रम की दूसरी शताब्दी में तीसरे भद्रबाहु विक्रम की छट्ठी शताब्दी में हुए। किन्तु पिछले लेखकों ने इन तीनों भद्रबाहु की पृथक् २ घटना को एक ही भद्रबाहु के साथ वर्णित करदी। इसी प्रकार कालिकाचार्य मानदेव मानतुंग मल्लवादी, वगैरह आचार्यों की विषमता का समय निर्णय एक बड़ी विकट समस्या सा दृष्टि गोचर होता है। मैंने पूर्वोक्त आचार्यों के जीवन लिखते समय जिन आचार्यों का ठीक निर्णय था उनका समय तो वहीं समय लिख दिया। किन्तु जिनके विषय में विशेष शोध खोज करने की जरूरत थी उनको छोड़ दिया था। कारण उस समय न तो इतना समय था और न वे इतने साधन ही अतः शेष रहे हुए आचार्यों का समय यहां लिख दिया जाता है।

सबसे पहिले तो हम युगप्रधान आचार्यों का समय जो, युगप्रधान समय संवादि नामक पुस्तक में लिखा मिलता है, यंत्र द्वारा लिख देते हैं। जिससे, शेष आचार्यों के समय निर्णय में सुविधा हो जाय

"सिरि दुसमा काल समण संघ थुयं"

(दुषमा काल श्री श्रमण संघ स्तोत्रम्)

[कर्ता—श्री धर्मघोष सूरिः]

वीरजिण भुवण विस्सुअ पवयण गयणिकदिणमणि समाणो ।
वट्टन्त सुअनिहाणे थुणामि सूरि जुगप्पहाणे ॥ १ ॥
वीस तिवीस छनवई अडसयरी पञ्चसयरी गुण नवई। सउ सगमी पणनउइ सगसी छयस्सरी अडसयरी२
चउनवइ अठ तिअ सग चउ पन्नुरुत्तरसयं। तित्तिससयं सउ पणनउई नवनवई चत्त तेवीसुदय सूरी॥३
अह उदयाण पढमे,जुगपवरे पणिवयामि तेवीसं। सिरिसुहम्म वयर पडिवय हरिस्सयं नदिमित्तं च ॥४॥
सिरि सूरसेण रविमित्त सिरिपहं मणिरहं च जसमित्तं। घणसिंहं सच्चमित्तं धम्मिल्लं सिरिविजयाणंदं५
वंदामि सुमंगल धम्मसिंह जयदेवसूरि सूरदिन्नं । वइसाहं कोडिलं माहुर वणिपुत्त सिरिदत्तं ॥६॥
उदयांतिम सूरी पुसमित्त मरहमित्त वइसाहं । वंदे सुकीत्ति थावर रहसुअ जयमगलमुणिदं ॥ ७ ॥
सिद्धत्थं ईसाणं रहमित्तं भरणिमित्तं दढमित्तं। सिरिसंगयमित्तं सिरिधरं च मागह ममरसूरिं॥८॥
सिरि रेवइमित्तं कित्तिमित्तं सुरमित्तं फग्गुमित्तं च।कल्लाण देवमित्तं णमामि दुप्पसह मुणिवसहं९
वंदे सुहम्मं जबूं पभवं सिज्जंभवं च जसभद्दं । संभूय विजय सिरिभद्द-बाहु सिरिथूलभद्दं च १०
महगिरि सुहत्थि गुणसुंदरं च सामज्ज संदिलायरिउ। रेवइमित्तं धम्मं च भद्दगुत्तं सिरिगुत्तं ॥११॥
सिरिवयरमज्जरक्खिअ सूरिं पणामामि पूसमित्तं च। इअ सत्तकोडिनामे पढमम्मुदए वीस जुग पवरे॥१२॥
बीए तिवीस वइरं च नागहत्थिं च रेवइमित्तं । सीहं नागज्जुण भूइदिन्नियं कालयं वंदे ॥१३॥
सिरिसच्चमित हारिलं जिणभद्द वंदिमो उमासाइं । पुसमित्तं संभूइं माढर संभूइ धम्मरिसिं ॥१४॥
जिट्ठंग फग्गुमित्तं धम्मधोसंच विणयमितं च। सिरि सीलमितरेवइमित्तं सूरि सुमिणमित्तंहरिमित्तं१५
इय सव्वोदय जुगपवर सूरिणो चरणसंजूए वदे । चउतर दुसहस्सा दुप्पसहते सुहम्माइ ॥ १६ ॥
इय सुहम्म जंबू तब्भवसिद्धा एगावयारिणो सेसा । सड्ढदुजोअणमज्झे जयंतु दुभिक्खडमरहरा ॥१७
जुगपवर सरिस सूरी दुरीकय भवियमोह तमपसरे । वंदामि सोल सुत्तर इगदस लक्खे सहस्सेय ॥१८॥
पंचमअरम्मि पणवन्नलक्ख पणवन्न सहस कोडीयं । पंचसयकोडिपन्ना नमामि सुचरण सयलसूरी१९
तह सतरिकोडिलक्खा नवकोडिसय चारकोडियं । छप्पन लक्ख बत्तीस सहस्स एगूण दुन्निसया॥२०॥
तहसोल कोडिलक्खा,तियकोडिसहस्सा तिन्निकोडिसया। सतरस कोडिचुलसी लक्खा सुसावगाणं तु २१
पणतीसकोडिलक्खा सुसाविया कोडिसहस्स बाणउई । पणकोडिसया वतीस कोडि तह बारब्भहिया२२
एवं देविंदनयं सिरिविजयाणंद धम्मकीतिपयं। वीरजिण पवयण ठिइं दूसमसंघं णमह निच्चं ॥२३॥

॥ इय दुसमा काल सिरि समण संघ थुयं ॥

'उदयादिम २३ युगप्रधान-यंत्र'

स०	आद्यसूरिनामानि	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान काल	सर्वायु
१	सुधर्मा स्वामी	५०	४२	८	१००
२	वयर सेन	९	११६	३	१२८
३	पाडिचय	९	८२	६	१००
४	हरिस्सह	६	६०	१३	८२
५	नंदिमित्र	१३	३०	२४	६७
६	सूरसेन	१३	४०	१०	६३
७	रविमित्र	१३	४०	१०	६३
८	श्रीमम	१३	४२	८	६३
६	मणिरथ	१३	४२	८	६३
१०	यशोमित्र	१४	४१	८	६३
११	धणसिंह	१४	४०	१०	६४
१२	सत्यमित्र	१४	४०	१२	६६
१३	धम्मिल	२०	३०	१२	६२
१४	विजयानन्द	१२	३०	१४	५६
१५	सुमगंल	१२	२०	२४	५६
१६	धर्मसिंह	१२	२०	१८	५०
१७	जयदेव	१२	२० ÷	१८ ❁	५०
१८	सुरदिन्न	१७	२७	१०	५४
१६	वैशाख	१०	२०	२०	५०
२०	कौडिल्य	१० ×	२१	१६ +	५०
२१	माथुर	१०	२५	१५	५०
२२	वाणिपुत्त	१०	२०	१७	४७
२३	श्री दत्त	१०	१५	२५	५०

× ११ भी है ÷ २७ भी है ❁ ११ भी है + १८

उदयान्तिम युगप्रधान २३-यंत्रम्

क्रम	सूरि नामानि—	गृह वास	व्रत पर्याय	युग प्रधान काल	सर्वायु
१	दुर्बलिका पुष्पमित्र	१०	३०	१३	६०
२	धरह मित्र	२०	१६	२५	६१
३	वैधास्व	२५	१०	१६	५४
४	सत्यकीर्ति	११	२२	१८	५१
५	धावर	१३	२०	१७	५०
६	रहसुत	१३	२८	१३	५४
७	जय मंगल	१५	२०	१३	४८
८	सिद्धार्थ	१५	२०	१३	४८
९	ईशान	१५	३०	१०	५५
१०	रथमित्र	२१	२०	८	५
११	भरथिमित्र	१	२०	२०	५०
१२	दृढ मित्र	१४	१५	२६	५५
१३	संगत मित्र	१९	१५	२२	६९
१४	श्रीधर	१८	१०	१८	४६
१५	मागध	११	११	९	३२
१६	अमर	१५	२४	१३	५२
१७	रेवति मित्र	२२	१९	१८	५९
१८	कीर्ति मित्र	२	१०	१	४
१९	सिंह मित्र	२	१४	६	४
२	फल्गु मित्र	११	१०	७	३
२१	कल्याण मित्र	८	१६	१४	३८
२२	देव मित्र	१२	१२	१२	३६
२३	पुष्पसह सूरि	१२	४	४	२

२ भी है, ६९ भी है, १० भी है, २ भी है, २९ भी है, ४० भी है, ८। भी है, ४ भी है, ५९ भी हैं, ६९ भी है।

प्रथमोदय युगप्रधान-यंत्रम्

उदय	प्रथमोदय युग प्रधान	गृहवास	व्रतपर्याय	युग प्रधान	सर्वायुः	मास	दिन
१	सुधर्मा स्वामी	५०	४२	८	१००	३	३
२	जंबु स्वामी	१६	२०	४४	८०	५	५
३	प्रभव ,,	३०	४४ [1]	११	८५ [12]	२	२
४	शयंभव सूरि	२८	११	२३	६२	३	३
५	यशोभद्र	२२	१४	५०	८६	४	४
६	संभूति विजय	४२	४०	८	९०	५	५
७	भद्रबाहु	४५	१७	१४	७६	७	७
८	स्थूलभद्र	३०	२४	४५	९९	५	५
९	महागिरि	३०	४०	३०	१००	५	५
१०	सुहस्ति	३० [3]	२४ [4]	४६	१००	६	६
११	गुणसुंदरसूरि	२४	३२	४४	१००	२	२
१२	श्यामाचार्य	२०	३५	४१	९६	१	१
१३	स्कंदिल	२२ [5]	४८ [6]	३६ [7]	१०६ [8]	५	५
१४	रेवतिमित्र	१४	४८	३६	९८	५	५
१५	धर्मसूरि	१४ [9]	४० [10]	४४	१०२	५	५
१६	भद्रगुप्त	२१	४५	३९	१०५	४	४
१७	श्रीगुप्त	३५	५०	१५	१००	७	७
१८	वज्रस्वामी	८	४४	३६	८८	७	७
१९	आर्य रक्षित	२२ [11]	४० [12]	१३	७५	७	७
२०	दुर्वालिका पुष्पमित्र	१७	३०	१३ [13]	६० [14]	७	७

१ ६४ भी है १२ १०५ भी है ३ २४ भी है ४ ३० भी है ५ १२ भी है ६ ५८ भी है ७ ३८ भी है ८ १०८ भी है ९ १८ भी है १० ४४ भी है ११, ११ भी है १२ ५१ भी है १३ २० भी है १४ ६७ भी है !

द्वितीयोदय युगप्रधान-यंत्रम्

क्रम	द्वितीयोदय युग प्रधान	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान	सर्वायु	मास	दिन
१	वयरसेन	९	११६	३	१२८	३	३
२	नागहस्ति	१९	२८	६९	११६	५	५
३	रेवतीमित्र	२०	३०	५९	१०९	३	३
४	सिंहसूरि (ब्रह्मदीपक)	१८	२०	७८	११६	३	३
५	नागार्जुन	१४	११	७८	१११	५	५
६	भूति दिन्न	१८	२२	७९	११९	४	४
७	कालिकाचार्य	१२	६०	११	८३	७	७
८	सत्य मित्र	१	३०	७	४७	५	५
९	हारिल	२७●	३११†	५४	११२+	५	५
१०	जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण	१४	३०	६	१ ४	६	६
११	उमास्वाति वाचक	२	१५	७५	११०	२	३
१२	पुष्य मित्र	८	३०	६०	९८	०	०
१३	संभूति	१०	११	४९‡	७८×	२	३
१४	माढर संभूति गुप्त	१	३०	६	१	५	५
१५	धर्म ऋषि (रक्षित)	१५	२०	४	७५	४	४
१६	ज्येष्ठांगगणि	१२	१८	७१	१ १	३	३
१७	फल्गुमित्र	१४	११	४९	७६	७	७
१८	धर्मघोष	८	१५	७८	१ १	७	७
१९	विनय मित्र	१०	११	८६	११५	७	७
२०	शीलमित्र	११	२	८९	११	७	७
२१	रेवति मित्र	९	११	७८	१ ३	०	०
२२	सुमिणमित्र	१२	१८	७८	१०८		०
२३	हरि मित्र	२	११	४१	८१		

● १७ भी है † ३ भी है ‡ १५ भी है × ७९ भी है + १०१ भी है।

युगप्रधान समय

सं०	युग प्रधान	समय	कहां से	कहा तक
	गौतम	१२		
१	श्री सुधर्मा स्वामी	८	१२	२०
२	,, जम्बु ,,	४४	२०	६४
३	,, प्रभवाचार्य	११	६४	७५
४	,, शय्यंभवाचार्य	२३	७५	९८
५	,, यशोभद्राचार्य	५०	९८	१४८
६	,, संभूतिविजय	८	१४८	१५६
७	,, भद्रबाहु	१४	१५६	१७०
८	,, स्थूलभद्र	४५	१७०	२१५
९	, महागिरि	३०	२१५	२४५
१०	,, सुहस्ति	४६	२४५	२९१
११	,, गुणसुन्दर	४४	२९१	३३५
१२	,, श्यामाचार्य	४१	३३५	३७६
१३	,, स्कंदिलाचार्य	३८	३७६	४१४
१४	,, रेवतीमित्र	३६	४१४	४५०
१५	,, धर्माचार्य	४४	४५०	४९४
१६	,, भद्रगुप्ताचार्य	३९	४९४	५३३
१७	,, गुप्ताचार्य	१५	५३३	५४८
१८	,, वज्राचार्य	३६	५४८	५८४
१९	,, आर्यरक्षित	१३	५८४	५९७
२०	,, दुर्बलिकापुण्य	२०	५९७	६१७

युगप्रधान समय

२१	श्री वज्रसेन	३	६१७	६२
२२	,, नागहस्ति	६९	६२०	६८९
२३	,, रेवतीमित्र	५९	६८९	७४८
२४	,, सिंहसूरि	७८	७४८	८२६
२५	,, नागार्जुन	७८	८२६	९ ४
२६	,, भूतदिन्न	७९	९ ४	९८३
२७	,, कालकाचार्य	११	९८३	९९४
२८	,, सत्यमित्र	७	९९४	१ ०१
२९	,, हरिलाचार्य	५४	१ १	१०५५
३०	,, जिनभद्राच र्य	६०	१०५५	१११५
३१	,, उमास्वाति	७५	१११५	११९
३२	,, पुष्पमित्र	६	११९	१२५
३३	,, संभूति	५	१२५	१३
३४	,, संभूतिगुप्त	६	१३	१३६
३५	,, धर्मरक्षि	४	१३६	१४
३६	,, ज्येष्ठांगण	७१	१४	१४७१
३७	,, फल्गुमित्र	४९	१४७१	१५२
३८	,, धर्मघोष	७८	१५२	१५९८
३९	,, विनयाचार्य	८६	१५९८	१६८४
४	,, शीलाचार्य	७९	१६८४	१७६३
४१	,, रेवती	७८	१७६३	१८४१
४२	,, सुमिण	७८	१८४१	१९१९
४३	,, हरिभद्राचार्य	४५	१९१९	१९६४

आचार्य उमास्वाति—नाम के दो आचार्य हुए हैं। एक आर्य महागिरि के शिष्य बलिस्सह और बलिस्सह के शिष्य उमास्वाति। दूसरे युगप्रधान पट्टावली के दूसरे उदय के आठवें आचार्य उमास्वाति जो आर्य जिनभद्र के बाद और पुष्पमित्र के पहिले हुए हैं। यहां पर तो बलिस्सह के शिष्य उमास्वाति के लिए ही लिखा गया है। पट्टावली में आपका समय नहीं बताया गया है तथापि, आर्य महागिरि का समय वीरात् २१५ से २४५ तक का है तब आपके शिष्य श्यामाचार्य का समय वीरात् ३३५ से ३७६ का लिखा है। २४५ से ३३५ के बीच ९० वर्ष का अन्तर है। और इसी बीच बलिस्सह एवं उमास्वाति नाम के दो आचार्य हुए हैं। यदि ४५ वर्ष का समय बलिस्सह का मान लिया जाय तो २९० बलिस्सह और ३३५ तक उमास्वाति का समय माना जा सकता है। यह तो केवल मेरा अनुमान है पर इतना तो निश्चय है कि वीर नि० २४५ से ३३५ तक में दो आचार्य हुए हैं।

श्यामाचार्यः—आप आचार्य गुण सुन्दर के बाद और स्कांदिलाचार्य के पूर्व युगप्रधानाचार्य हुए। आपका समय वीर नि० ३३५ से ३७६ तक का है। आपका अपर नाम कालकाचार्य भी है।

आचार्य विमलसूरि—आपने विक्रम स० ६० में "पउम चरियं" पद्म चरित्र की रचना की थी।

आचार्य सुस्थी और सुमतिबुद्ध—आप दोनों आचार्य, आर्य सुहस्ति के पट्टधर थे। आपका समय भी पट्टावलीकारों ने नहीं लिखा है किन्तु कलिंगपति राजा खारबल के जीवन में लिखा है कि उसने अपने राज्य के बारहवें वर्ष में मगध पर आक्रमण किया व कलिंग से नन्द राजा के द्वारा ले जाई गई जिनप्रतिमा को पुन, लाकार आर्य सुप्रतिबद्ध के द्वारा प्रतिष्ठा करवाई। अस्तु राजा खारबल का समय वीर नि० ३३० से ३६७ तक का है इससे यह कहा जा सकता है कि वीर नि० ३६७ में आर्य सुप्रतिबुद्ध विद्यमान थे। आर्य सुहस्ति का समय वीर नि० २९१ का है इससे, आर्य सुस्थी का समय वीर नि २९२ से प्रारम्भ होता है। जैसे स्थुलभद्र के पट्टधर दो आचार्य हुए और सुस्थी के गच्छ नायक हो जाने के बाद सुप्रतिबुद्ध नायक हुए इन्होंने ३६६ में मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई हो तो आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध का समय वीर नि० २९२ से ३६६ तक का माना युक्तियुक्त ही है।

आचार्य इन्द्रदिन्न—आप आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध के पट्टधर थे।

आर्यदिन्न—आप आर्य दिन्न के पट्टधर थे।

आर्य सिंहगिरिः—आप आर्य दिन्न के पट्टधर थे।

आर्य वज्र—आप आर्य सिंहगिरि के पट्टधर थे और आपका समय वीर निर्वाण स० ५४८ से ५८४ तक बतलाया जाता है।

आचार्य वज्र—के पूर्व और आर्य सुप्रतिबुद्ध के बाद में १८२ वर्षों में उक्त तीन आचार्य हुए पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि कौन से आचार्य कितने वर्षों तक आचार्य पद पर रहे।

आर्य समिति और धनगिरि—इन दोनों का समय आर्य सिंहगिरि और आर्य वज्र के समय के अंतर्गत ही है।

के प्राप्त होने का भी पट्टावलियों में उल्लेख मिलता है तब खपटाचार्य का स्वर्गवास तो वीर निर्वाण ४८४ में ही हो गया था। इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि खपटाचार्य से विद्या हासिल करने वाले पादलिप्तसूरि पहले हुए हैं और नागहस्ति के शिष्य पादलिप्त बाद में हुए। एक ही नामके अनेक आचार्यों के होने से, उन आचार्यों के नामों के साम्य को लक्ष्य में रख पिछले लेखकों ने दोनों पादलिप्तसूरि को एक ही लिख दिया हो जैसे कि भद्रबाहु के लिये हुआ है—

नागहस्तिसूरि के पट्टधर पादलिप्तसूरि का समय विक्रम की दूसरी या तीसरी शताब्दी मानना ही ठीक है। कारण, खपटाचार्य के समय पादलिप्त के गुरु नागहस्ति का भी अस्तित्व नहीं था तो पादलिप्त का तो माना ही कैसे जाय ?

नागार्जुन—ये पादलिप्तसूरि के गृहस्थ शिष्य थे। जब पादलिप्तसूरि वि० की तीसरी शताब्दी के आचार्य थे तो नागार्जुन के लिये स्वत. सिद्ध है कि वे भी तीसरी शताब्दी के एक सिद्ध पुरुष थे।

आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेनदिवाकर—वृद्धवादी के गुरु आर्यस्कंदिल थे और आप पादलिप्तसूरि की परम्परा में विद्याधर शाखा के थे। इससे पाया जाता है कि आप पादलिप्तसूरि के बाद के आचार्य हैं। स्कंदिल नाम के भी तीन आचार्य हुए हैं जिनमें सब से पहिले के स्कंदिलाचार्य युगप्रधान के प्रथमोदय के २० आचार्यों में १३ वें युगप्रधान माने जाते हैं। ये श्यामाचार्य के बाद और रेवतिमित्र के पूर्व के आचार्य हैं अत इनका समय ३७६ से ४१४ का है।

दूसरे स्कंदिलाचार्य का उल्लेख हेमवत पट्टावली में है। इनका स्वर्गवास वि० २०२ में होना लिखा है अत. ये भी वृद्धवादी के गुरु नहीं हो सकते हैं कारण, स्कंदिल पादलिप्त के पूर्व हो गये थे।

माथुरी वाचना के नायक तीसरे स्कंदिलाचार्य का समय वि० ३५७ से ३७० तक का है। ये विद्याधर शाखा तथा पादलिप्तसूरि की परम्परा में थे। इन स्कंदिलाचार्य को ही वृद्धवादी के गुरु मान लिया जाय तो और तो सब व्यवस्था ठीक हो जाती है पर हमारी पट्टावलियों, चरित्रों, प्रबन्धों तथा खासकर वृद्धवादी के जीवन पर जिसको कि विक्रम के समकालीन होना लिखा है—कुछ आघात पहुँचता है। साथ ही परम्परा से चले आया उल्लेख में—

"पंचसय वरिसंसि सिद्धसेणो दिवायरो जाओ"

अर्थात्—वीर नि० सं० पांचसौ में सिद्धसेन दिवाकर हुए—अवश्य विचारणीय बन जाता है।

इन सबका समाधान तब ही हो सकता है जब कि हम राजा विक्रम के स्थान दूसरे विक्रम की चौथी शताब्दी में होना मान लें तदनुसार गुप्तवंशीय राजा चंद्रगुप्त बड़ा पराक्रमी राजा हुआ और उसको विक्रम की उपाधि भी प्राप्त थी अत इस समय में (चंद्रगुप्त विक्रम के वक्त में) सिद्धसेन दिवाकर को समझ लिया जाय तो उक्त विरोध का प्रतिकार सुगमतया हो सकता है।

सम्वत्सर प्रवर्तक राजा विक्रम के लिए देखा जाय तो—इतिहासकारों का मत है कि उस समय न कोई विक्रम नाम का राजा ही हुआ और न विक्रम ने संवत ही चलाया। इसका विशद उल्लेख हमने इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४६७ में किया है।

संभव सिद्धसेन नाम के और भी कई आचार्य हुए हैं अतः समान नामधारी आचार्यों को परस्पर और वृद्धवादी के शिष्य सिद्धसेनदिवाकर की घटनाओं का एकीकरण कर दिया गया हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। कारण भरौंच और उज्जैन नगरी में बलमित्र भानुमित्र नाम के बड़े ही वीर पराक्रमी विक्रम राजा हुए थे कालिकाचार्य के भानेज और कट्टर जैन थे। आर्य खपट एवं अन्य बहुत से आचार्य भरौंच उज्जैन नगर में रहते थे। बौद्धाचार्यों की पराजय भी उन्हीं के राज्य में हुई थी। उस समय भी कोई सिद्धसेनाचार्य हुए हों जिन्होंने कि, बलमित्र भानुमित्र को उपदेश देकर शत्रुंजय का संघ का निकलवाया हो और धर्म की उन्नति करवाई हो। परन्तु इस विषय का कोई ठोस साहित्य हस्तगत न हो जाय वहाँ तक जोर देकर कुछ नहीं कहा जा सकता है। उपरोक्त प्रमाणों से यह तो निश्चित ही है कि आचार्य वृद्धवादी एवं सिद्धसेन दिवाकर विक्रम की चौथी शताब्दी के आचार्य माने जा सकते हैं।

जीवदेवसूरि—प्रबन्धकार लिखते हैं कि राजा विक्रम के मंत्री लिम्बा शाह ने वायट नगर के महावीर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था और वि० सं० ७ में जीवदेवसूरि ने उस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। इससे पाया जाता है कि जीवदेवसूरि विक्रम के समकालीन हुए होंगे। जीवदेवसूरि की प्राथमिक दीक्षा क्षपण (दिगम्बराचार्य) के पास हुई थी और उस समय आपका नाम सुवर्णकीर्ति रक्खा गया था।

जब हम देखते हैं कि दिगम्बर मत की उत्पत्ति ही विक्रम की दूसरी शताब्दी में हुई तो जीवदेव की दीक्षा उस समय के बाद ही हुई होगी। इतना ही क्यों पर दिगम्बर समुदाय में सुवर्णकीर्ति या सुवर्णकीर्ति जैसे नाम भी पिछले समय में रक्खे जाने लगे थे। दूसरा यह भी कारण है कि प्रबन्धकार के लेखानुसार जीवदेवसूरि के समय यज्ञोपवीत धारण कर अभिषेक की विधि से आचार्य पद दिया जाता था। इससे पाया जाता है कि उस समय जैन श्रमणों में शिथिलाचार का प्रवेश हो गया था। इस प्रकार शिथिलाचार का समय विक्रम की चौथी पांचवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इन सब बातों का विचार करते हुए हम इस निर्णय पर आसकते हैं कि आचार्य जीवदेवसूरि का समय विक्रम की चौथी पांचवी शताब्दी का होना चाहिये। विक्रम के समय मन्दिर की प्रतिष्ठा करने वाले जीवदेवसूरि अन्य जीवदेवसूरि होंगे।

श्री वज्रसेन सूरि का समय वीर निर्वाण से ६२ का है।
श्री चंद्रसूरि का समय वीर निर्वाण ६२०-६४२ तक का है।
श्री सामंतभद्र ,, ,, ६४२-६७५ तक का है।
श्री प्रद्योतन सूरि ,, ,, ६७५-७२८ तक का है।
लघुशान्तिकर्त्ता श्रीमानदेवसूरि का समय वीर निर्वाण से ७२८-७५ तक का है।
भक्तामर कर्त्ता मानतुङ्गसूरि का ,, , ,, ८११ तक का है।

मल्लवादी सूरि—आचार्य मल्लवादी का समय मैंने विक्रम की ६ ठी शताब्दी लिखा है पर अन्यान्य देखने व अन्य ग्रन्थों के अवलोकन से पाया जाता है कि मल्लवादी का समय ठीक विक्रम की पांचवी शताब्दी का ही था। कारण आचार्य जिनसिंह सूरि प्रबन्ध में इसका उल्लेख मिलता है कि—

श्री वीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीति संयुक्ते। जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद् व्यंतरांश्चापि॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य मल्लवादी ने वीर निर्वाण सं० ८८४ में शास्त्रार्थ कर बौद्धों को

पराजित किया था। अतः आपका समय वीर निर्वाण की नवमी शताब्दी और विक्रम की पांचवी शताब्दी मानना युक्ति संगत है। प्रस्तुत मल्लवादी सूरि ने ही नयचक्र ग्रन्थ की रचना की थी। यद्यपि वह ग्रन्थ वर्तमान में कहीं नहीं मिलता है पर उस पर लिखी हुई टीका तो आज भी मिलती है। आचार्य हरिभद्र सूरि ने भी अपने ग्रन्थों में मल्लवादी का नामोल्लेख किया है।

एक मल्लवादी विक्रम की दसवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने बौद्धग्रन्थ धम्मोत्तर पर टीका रची थी। शायद बाद में और भी मल्लवादी नाम के आचार्य हुए होंगे पर यहा पर तो पहिले मल्लवादी का समय लिखना है अतः आपका समय विक्रम की पांचवी शताब्दी है। शेष के लिये आगे—

जैनागमों को पुस्तकों पर लिखना—

पूर्व जमाने में आगमों को पुस्तक पर लिखने की परिपाटी के विषय में हमने आगम वाचना प्रकरण में बहुत कुछ स्पष्टीकरण कर दिया है पर वे जितने आगम लिखे गये थे, एक तरफ की वाचना के अनुसार ही लिखे गये थे। जब श्री क्षमाश्रमणजी एवं कालकाचार्य के आपस के मतभेद का समाधान हो गया तो उन दोनों वाचना को एक करके पुनः आगमों को पुस्तक रूप में लिखवा दिये गये। यह वृहद् कार्य कितने समय पर्यन्त चला होगा इसके लिए निश्चयात्मक तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता पर अनुमानत कई वर्षों तक चला होगा। यह कार्य केवल श्रमणों द्वारा ही नहीं पर वैतनी लहियों के द्वारा भी करवाया गया होगा। पर दु ख है कि उस समय का लिखा हुआ एक आगम या एक पत्र भी आज उपलब्ध नहीं होता है। इसका एक मात्र कारण यही हो सकता है कि मुसलमानों ने धर्मान्धता के कारण भारत का अमूल्य साहित्य नष्टभ्रष्ट कर डाला। इससे भी अधिक दु.ख तो इस बात का है कि कितना हमारा उपयोगी प्राचीन साहित्य हम लोगों की बेपरवाही के कारण ज्ञान भण्डारों में ही सड़ गया। जो कुछ हुआ सो वो हो गया पर अब भी रहे हुए साहित्य की सम्भाल रखें तो हमारे लिये इतना ही पर्याप्त होगा।

"णमो सुयदेव या भगवईए"

अहाहा! उन शासन शुभचिन्तकों की कितनी दीर्घ दृष्टि थी कि सैकड़ों वर्षों से चले आये जटिल मतभेद को मिटा कर पृथक २ हुए दो पक्षों को मिनटों में एक कर दिये। यों तो हम दोनों अधिनायकों का हृदय से अभिनन्दन करते हैं। पर विशेष ये पूज्य कालकाचार्य की क्षमावृत्ति को कोटि २ वदन करते हैं। यदि इसी तरह के उदार क्षमाभावों का हमारे पामरप्राणियों के हृदय में थोड़ा भी संचार हो जाय तो शासन का कितना हित हो सके ? जो आज हम थोड़ी २ बातों में मतभेद दिखाकर शासन के टुकड़े २ करने में अपना गौरव समझ बैठे हैं शासन देव कभी हमको भी सद्बुद्धि प्रदान कर उन महापुरुषों के चरण रज का स्थान बक्सीस करें—यही आन्तरिक मनोभावना है।

"जैन श्रमणों ने पुस्तकें रखना कब से प्रारम्भ किया"

यों तो आगम वाचना प्रकरण में इस विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है पर कुछ जानने योग्य ऐसी बातें भी शेष रह गई हैं कि पाठकों की जानकारी के लिये नीचे लिखी जाती है।

जैन निर्ग्रन्थ निस्पृही एवं निर्मोही होते हैं, अतः न तो उनको पुस्तकें रखने की आवश्यकता ही थी

इन सब के ऊपर एक सघवार्थ होते थे। उन आचार्यों की आज्ञा से कुछ साधुओं को लेकर पृथक् विहार करने वाले गणावच्छेदक कहे जाते थे। गणावच्छेदक पद भी किसी गीतार्थ साधुको ही दिया जाता था और वे कम से कम दो साधुओं के साथ विहार करते थे और साथ में रहने वाले साधु को ज्ञान पढ़ा सकते थे।

दूसरा कारण यह भी था कि दीक्षा जैसी पवित्र वस्तु की जिम्मेवारी किसी चलते फिरते व्यक्ति को नहीं दी जाती थी किन्तु आत्मकल्याण की उत्कृष्ट भावना वाले एवं साधुत्वावस्था के लिये आवश्यक ज्ञान को करने वाले व्यक्ति को ही दीक्षा दी जाती थी। अत. उनको पुस्तकें लिखने या रखने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती थी।

आर्य भद्रबाहु के समय द्वादश वर्षीय दुष्कालान्तर पाटलीपुत्र में एक श्रमण सभा की गई जिससे, आगत मुनियों के अवशिष्ट कठस्थ ज्ञान का सग्रह कर एकादशांग की सकलना की गई। दिष्टिवाद नामक बारहवां अग किसी को कंठस्थ नहीं था अत. साधुओं के एक सिंघाड़े को नैपाल भेज भद्रबाहु स्वामी को बुलाया गया। * आर्य भद्रबाहु ने स्थूलभद्र को दश पूर्व सार्थ एवं चार पूर्व मूल ऐसे चौदह पूर्व का अभ्यास करवाया। यहां तक तो जैन साधुओं को सब ज्ञान कण्ठस्थ ही रहता था अत पुस्तकादिक साधनों की जरूरत ही नहीं थी।

आगे चलकर आर्य महागिरि एवं सुहस्ति के समय तथा उनके बाद आर्य वज्रसूरि † एव वज्रसेन के समय ऊपरोपरि दुष्काल पड़ने से साधुओं को भिक्षा मिलनी भी दुष्कर हो गई थी तो उस हालत में शास्त्रों का पठन पाठन बंद हो जाना तो स्वाभाविक बात ही थी। इतना ही नहीं पर बहुत से गीतार्थ एव अनुयोग धर भी इस कराल दुष्काल-काल के कवल बन गये थे। तथापि दुष्कालों के अन्त में सुकाल के समय आगमों की वाचना बराबर होती रही।

श्री आर्य रक्षित ने अवशिष्ट आगमों को चार विभागों में विभक्त किये, ‡ तथाहि—१ द्रव्यानुयोग २ गणितानुयोग ३ चरण करणानुयोग ४ धर्मकथानुयोग। इनके पूर्व एक ही सूत्र के अर्थ में चारों अनुयोगों का अर्थ हो सकता था पर अल्पज्ञों की प्रज्ञा मंदता को ध्यान में रख श्रमणों की अर्थ सुलभता के लिये चारों अनुयोग पृथक २ कर दिये जो अद्यावधि विद्यमान हैं। युगप्रधान पट्टावली के अनुसार आपका समय वीरात ५८४ से ५९७ का है।

आपश्री के पूर्व भी कहीं २ पर आगम लिखने का उल्लेख मिलता है। जैसे आचार्य यक्षदेवसूरि के समय आगम वाचना और पुस्तक लिखने का उल्लेख मिलता है। यही नहीं पट्टावलियों के लेखानुसार

† वीर स्वामिनो मोक्षंगतस्य दुष्कालो महान् सभृत। तत सर्वोऽपि साधुवर्ग एकत्र मिलित। भणित च परस्पर कस्य किमागच्छति सूत्र ? यावन्न कस्यापि पूर्वाणि समागच्छान्ति। ततः श्रावकै र्विज्ञाते भणित तै यथा कुत्र साम्प्रत पूर्वाणि सति ? तैर्भणितम्—भद्रय हु स्वामिनि। तत सर्वं सव समुदायेन पर्यालोच्य प्रेपित तत्समीपे साधु सघाटक इत्यादि ॥

"जीवानुशासन गाया ८४ की टीकासं पृष्ठ ४५

‡ इतोय वइरसामी दक्खिणावहे विहरति। दुब्भिक्खच जाय बारस वरिसग। सव्वतो समताछिन्नपथा। निराधार जात। ताहे वइरसामी विज्जाए आहड पिंड तद्दिवस आणोति।

आवश्यक चूर्णी भाग १ ला

* ततश्चतुर्विधेः कार्योऽनुयोगोऽतः परंमप। त सौंगोपांग मूलाख्य प्रयच्छेद् कृतागम ॥

आर्य पादलिप्त सूरि एवं सिद्धसेनदिवाकर को आर्यरक्षित के पूर्व माना जाय तो इनके समय में लिखी हुई पुस्तकें मिलने का प्रमाण मिल सकता है जैसे सिद्धसेन दिवाकर जब चित्तौड़ गये तब वहाँ के एक स्तम्भ में आपने बहुतसी पुस्तकें देखी। उसके अन्दर से एक पुस्तक आपने पढ़ी तथा आर्य पादलिप्तसूरि की तरंग लोला नाम की कथा का थोड़ा २ भाग कवि पंचाल ने राजा को सुनाया इसका उल्लेख पादलिप्त के जीवन से मिलता है। इससे पाया जाता है कि उस समय पुस्तकों पर लिखना प्रारम्भ हो गया था।

हेमवंत थूरावली के अनुसार आर्य स्कंदिल के उपदेश से ओसवंशीय पोलाक नामक श्रावक ने गंध हस्ति विवरण सहित आगमों की प्रतियें लिखकर जैन श्रमणों को भेंट की। इसका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी है, अतः यह ठीक है तो मानना चाहिये कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में जैनागमों को पुस्तक रूप में लिखना प्रारम्भ हो गया था।

अन्तिम द्वादशवर्षीय दुष्काल विक्रम की चौथी शताब्दी में पड़ा था। जब दुष्काल के अंत में सुकाल हुआ तो आर्य स्कंदिल सूरि ने मथुरा में और आर्य नागार्जुन ने वल्लभी में श्रमणों को आगमों की वाचना दी। उस समय भी आगमों को पुस्तकों पर लिखा गया था।

आर्य देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमणजी और कालिकाचार्य के समय पुनः वल्लभी नगरी में माथुरी और वल्लभी वाचना के अंदर जो-जो पाठान्तर रह गये थे, उनको ठीक व्यवस्थित करने के लिये सभा की गई।

एक समय वह था जब कि जैन श्रमण पुस्तकों को लिखने एवं रखने में संयम विराधना रूप पाप समझते थे परन्तु समय ने पलटा खाया और क्रमशः बुद्धि की मंदता होने लगी। अतः ज्ञान को स्थिर रखने के लिये पुस्तक लिखना एवं रखना अनिवार्य समझाने लगा। इतना ही क्यों पर पुस्तकें संयम की रक्षा के अंग बन गये थे। १।

जब पुस्तकें लिखने रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इन्हें ज्ञान का साधन व संयम का अंग समझ लिया तब यह सवाल पैदा हुआ कि पुस्तकें किस लिपि में किन साधनों द्वारा लिखी गई ? तब ही इस विषय का शास्त्रों में कहाँ २ उल्लेख है ?

---

१ [illegible] (१) [illegible]

१—[illegible] ।
[illegible] ॥

१ (क) घेप्पति पोत्थग पणगं, कालियनिज्जुत्ति कोसट्ठा ॥ निशीथ भाष्य—? ११

(ख) मेहा ओगहण धारणादि परिहाणिं जाणिऊण कालियसुयनिज्जुत्तिनिमित्तं वा पोत्थग पणगं घेप्पति ।
[illegible] ॥ निशीथ चूर्णी

(ग) कालं पुण पडुच्च चरणकरणट्ठा अव्वोच्छित्तिनिमित्तं गेण्हमाणस्स पोत्थए संजमो भवइ ।
दशवैकालिक चूर्णी

इसके लिये सबसे पहले हम श्रीराजप्रश्नीयसूत्र को देखते हैं । उसमें सूर्याभदेव के अधिकार में पुस्तक रत्न और उनके साधन निम्न बतलाये हैं ।

"तस्सेणं पोत्थरयणस्स इमेया रूवे वण्ण वासे पण्णत्ते तंजहा रयणामयाइंपत्तगाइं, रिट्ठामइओकंबिआओ, तवणिज्जमएदोरे, नाणामणिमएगंठी, वेरुलियमणिलिप्पासणे, रिट्ठामए छंदणे; तवणिज्जमइसंकला, रिट्ठामइमसी, वइरामइलेहणी, रिट्ठामयाइंअक्खराइं धम्मिए सत्थे

"श्रीराज प्रश्नी सूत्र"

प्रस्तुत उल्लेख से लेखन कला के साथ सम्बन्ध रखने वाले साधनों में से पत्र कम्भिका (कात्री) डोरा, गाठ, दवात, दवात का ढक्कन, साकल, स्याही, लेखनी आदि प्रमुख साधन बतलाये हैं। इन्हीं साधनों को जैनश्रमणों ने पुस्तक लिखने के उपयोग में लिये ।

जैसे आज मुद्रित पुस्तकों की साइज रोयल सुपरवाइल, डेमीइल, क्राउन है वैसे ही हस्त लिखित पुस्तकों की साइज के लिये निम्न पाठ है —

"पोत्थगपणगं—दीहोवाहल्लपुहजेण तुल्लो चउरंसो गंडीपोत्थगो अंतेसुतणुओ मज्झे पिहुलो, अप्पवाहल्लो कच्छ भी, चउरंगुलो दीहोवावत्ता कति मुट्ठि पोत्थगो, अहवा चउरंगल दीहो चउरंसो मुट्ठिपोत्थगो । दुमादि फलगा सपुडगं । दीहो हस्सो वा पिहुलो अप्पबाहुल्लो छिवाड़ी, अहवातणु पत्तेहिं उस्सिओ छिवाडी"

गंडी पुस्तक—जो पुस्तक जाड़ाई और चौड़ाई में सरीखी अर्थात चौखुंटी लम्बी हो वह गंडी पुस्तक।

कच्छपी पुस्तक—जो पुस्तक दो बाजू से सकड़ी और बीच में चौड़ी हो वह कच्छपी पुस्तक ।

मुष्टि पुस्तकः—जो पुस्तक चार अगुल लम्बी होकर गोल हो चौड़ी वह मुष्टि पुस्तक ।

संपुट फलकः—लकड़ी के पटियों पर लिखी हुई पुस्तक का नाम सपुट फलक है ।

छेदपाटी :—जिस पुस्तक के पत्र थोड़े हों ऊचे भी थोड़े हों वह छेदपाटी पुस्तक है ।

इन पांचों के अलावे भी कई प्रकार के साइज में पुस्तकें लिखी गई थी ।

पुस्तकों की लिपि—ऐसे तो अक्षर लिखने की बहुत सी लिपिया हैं परन्तु जैन शास्त्र लिखने में प्राय ब्राह्मी लिपि ही काम में ली गई थी । यही कारण है कि श्रीभगवतीसूत्र के आदि मे ग्रन्थ कर्ता ने 'नमो बंभीए लिवीए" अर्थात् ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया है । श्री समवायागजी सूत्र में ब्राह्मी लिपि के १८ भेद बतलाये हैं । यथा —

"बंभण्णं लिवीए अट्ठारस विहेलेख विहाणे पं० तं—बंभी, जवणालिया (जवणाणिया), दोसाउरिया, खरोट्ठिआ, पुक्खरसारिआ, पराहइया (पहाराइया), उच्चत्तरिया, अक्खरपुट्ठिया, भोगवयता, वेणतिया, णिण्हइया, अंकलिवी, गणिअलिवी, गंधव्व लवी, भूअलिवी आदसलिवी, माहेसरी लिवी, दामिलीलिवी पोलिंदीलिवी " " समवायाग १८ समवायें "

इस सूत्र की टीका में आचार्य अभयदेवसूरि ने ब्राह्मी लिपि का अर्थ निम्न प्रकारेण किया है —

'तथा बंभिलि—भगवती आर्यिकायाः भगवतो पुत्रिका ब्राह्मी वा संस्कारविशेषा ब्राह्मी तामाश्रित्य तेनैवा दर्शिता अक्षर लेखन प्रक्रिया सा ब्राह्मी लिपि ।'

उक्त लेख से सिद्ध होता है कि जैन शास्त्र ब्राह्मी लिपि में ही लिखे गये थे ।

जैन शास्त्र किस पर लिखे गये ? इसके लिये भोजपत्र, ताड़पत्र, कागज, कपड़ा, काष्ठ फलक, पत्थर आदि पर लिखे जाते थे के प्रमाण मिलते हैं । यथा—

भोजपत्र :—इसका उपयोग अधिकतर यन्त्र मन्त्रादि में ही हुआ परन्तु शास्त्र लिखा हुआ कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है । हां हेमवन्त पट्टावली में उल्लेख मिलता है कि कलिंगाधिपति महाराजा खारवेल ने भोजपत्र पर शास्त्र लिखवाये थे ।

ताड़पत्र :—इसके दो प्रकार होते हैं (१) खरताड़ (२) श्री ताड़ । खरताड़ पुस्तकादि लेखन कार्य में नहीं आता है क्योंकि वह परत होने से जल्दी टूट जाता है । दूसरा श्रीताड़ नरम और चिकना होता है इसको संकुचित करने में (मरोड़ने में) भी टूटता नहीं है अतः वह ही पुस्तक लिखने में काम में आता है । ताड़पत्र पर लिखना कब से प्रारम्भ हुआ ? इसके लिये निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है और न कोई प्राचीन लिखी हुई ही प्रति ही हस्तगत होती है ।—परन्तु जब पुस्तक लिखना विक्रम की १—२ शताब्दी से प्रारम्भ होता है तो वह ताड़ पत्र पर ही लिखा गया होगा । भारतीय प्राचीन लिपिमाला के कर्ता श्रीमान् ओझाजी लिखते हैं कि—'ताड़पत्र पर लिखी हुई एक त्रुटक नाटक की प्रति मिली है वह ईस्वी सन् दूसरी शताब्दी के आस पास की है ।"

भारत की प्राचीन लिपि माला में श्रीमान् ओझाजी लिखते हैं कि भोजपत्र पर लिखा हुआ 'धम्मपद व संयुक्त गम' नामक बौद्ध ग्रंथ मिले हैं वे क्रमशः ई० स० की दूसरी तीसरी और तीसरी चोथी शताब्दी के हैं—

ताड़ पत्र एक प्रकार का झाड़ के पत्ते होते हैं । वे लम्बाई में खूब लम्बे होते हैं पर चोड़ाई में बहुत कम होते हैं । वर्तमान जैन ज्ञान भंडारों में कई ताड़ पत्र पर लिखी हुई प्रतियां हैं जिनमें कई कई तो १७ इंच लम्बी और ५ इंच चोड़ी है पर ऐसी बहुत कम संख्या में मिलती हैं । छोटी से छोटी चार पांच इन्च लम्बी और तीन इन्च चोड़ी पुस्तक भी मिलती है ।

ताड़पत्र पर बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें लिखी जाती थी चीनी यात्री फाहियान ई० स० चौथी सदी में भारत की यात्रा के लिये आया था । वह १५२ प्रतियाँ ताड़पत्र पर लिखी हुई भारत से चीन जाते समय ले गया था । ई० स० की सातवी सदी में चीनी यात्री हुएनसंग भी १५ प्रतियें ताड़पत्र की भारत से लेगया इनके अलावा जर्मनी एवं यूरोप के विद्वान कैसी हजारों ताड़पत्र पर एवं कागजों पर लिखी हुई प्रतियां ले गये थे और वह प्रतियां यथावधि उन देशों में विद्यमान हैं ।

ताड़ पत्र लिखने का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक तो अच्छी तरह रहा किन्तु बाद में कागजों की बहुलता से ताड़पत्र पर लिखना कम होगया । फिर भी थोड़ा बहुत लिखना पन्द्रहवी शताब्दी तक

* लुप्तिर्वं हर्षं तथाविधलिपित्र लिखितं ते जैन तथैकादश्योप्येतस्य पुस्तका हेतु लिखितं तत्र च लिखितं । म० प०

(क) इह भगवती प्रज्ञापनादौ ब्राह्मीमि इत्यत्र लिपिस्त्वाद् पुस्तकं ज्ञानमित्यभ्युपगमे ।

अनुयोगद्वार सूत्र हारिभद्री टीका

रहा था। पाटण के ज्ञान भन्डार में चौदहवीं शताब्दी का एक टूटा हुआ ताड़पत्र का पाना है जिसमें ताड़पत्र का हिसाब लिखा है कि उस समय एक ताड़पत्र के पाने पर छ आने का खर्च लगता था। यही कारण है कि ताड़पत्र का लिखना कम होगया। पाटण, खम्भात, लिम्बड़ी, अहमदाबाद, जेसलमेर आदि के जैन ज्ञान भण्डारों में ताड़पत्र की प्रतियें हैं, उन में विक्रम की बारहवीं शताब्दी से प्राचीन कोई प्रति नहीं मिलती है। इसका कारण शायद मुसलमानों की धर्मांधता ही होनी चाहिये।

आचार्य मल्लवादी ने जो विक्रम की पाचवीं शताब्दी में हुए, नयचक्र ग्रन्थ बनाया था। उस ग्रन्थ को हस्ति पर स्थापन कर जुलूस के साथ नगर प्रवेश करवाया, इसका उल्लेख प्रभाविक चरित्रादि में—मिलता है इससे पाया जाता है कि उस समय या उसके पूर्व भी ग्रन्थ लेखन कार्य प्रारम्भ हो गया था।

कागज —इस विषय में निआर्कस, और मेगस्थनिस वे इंडिया नामक प्रत्येक पुस्तक में लिखते हैं कि भारत में ईसा से तीन सो वर्ष पूर्व रुई और पुराने कपड़ों को (चिथड़ों को) कूट कूट कर कागज बनाना प्रारम्भ हो गया था। दूसरा जब अरबों ने ईस्वी सन् ७०४ में समरकद नगर विजय किया तब रुई और चिथड़ों से कागज बनाना सीखा। परन्तु इसका प्रचार सर्वत्र न होने से जैनों ने पुस्तक लिखने में इसका उपयोग नहीं किया। कागज पर लिखना जैनियों में विक्रम की बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ परन्तु उक्त समय की तो कोई भी पुस्तक ज्ञान भण्डार में उपलब्ध नहीं होती है। हां चौदहवीं शताब्दी की कई २ प्रतियें मिलती हैं। प्राचीन भारतीय लिपि के कर्ता श्रीमान् ओझाजी लिखते हैं कि—डा० वेबर को कागज पर लिखी हुई ४ प्रतियें मिली वे ईसा की पांचवीशताब्दी की लिखी हुई हैं। परन्तु जैन ग्रन्थों के लिये श्रीजिनमण्डन गणि कृत कुमारपाल प्रबन्ध जो स० १४९२ में उल्लेख मिलता है कि आचार्य हेमचंद सूरि ने कागजों पर ग्रन्थ लिखाये थे। जैसेकि —

'एकदा प्रातर्गुरून सर्व साधूश्चं वंदित्वा लेखक शालाविलोकनाय गतः लेखकाः कागद पत्राणि लिखंतो दृष्टाः। ततो गुरु पार्श्वे पृच्छा—गुरुभिरूचे श्रीचौलुक्यदेव! सम्प्रति श्री ताड़-पत्राणां त्रुटिरस्ति ज्ञान कोशे, अतः कागद पत्रेषु ग्रन्थ लेखन मिति।

इसी प्रकार श्री रत्नमन्दिर गणि ने उपदेश तरङ्गिनी ग्रन्थ में वस्तुपाल तेजपाल के लिये लिखा है कि उन्होंने कागज पर शास्त्र लिखवाये। तथाहि.—

'-श्री वस्तुपाल मन्त्रिणा सौवर्णमसिमयाक्षरा एका सिद्धान्त प्रतिर्लेखितः अपरास्तु श्री ताड़ कागद पत्रेषु मषीवर्णाञ्चिताः ६ प्रतयः। एवं सप्त कोटिद्रव्य व्ययने सप्त सरस्वती कोशाः लेखिताः।'

"उ० त० पत्र १४२"

कपड़ाः—यद्यपि शास्त्र लिखने के कार्य में इसका विशेष उपयोग नहीं हुआ तथापि निशीथ सूत्र उद्देशा ११ की चूर्णी में लिखा है कि "पुस्तकेषु वस्त्रेषु वा पोर्त्य" इससे पाया जाता है कि कभी २ वस्त्रों पर भी पुस्तक लेखन कार्य किया जाता था। सम्प्रति, पाटण में वखताजी की शेरी में जो जैन ज्ञान भण्डार है उसमें "धर्मविधिप्रकरण" वृत्ति सहित, कच्छुली रास और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (आठवां पर्व) ये तीन पुस्तकें विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी की कपड़े पर लिखी हुई पायी जाती हैं जिनका साइज २५ × ५ इंच की है। प्रत्येक पाने में सौलह २ लकीरे हैं। इनके सिवाय कपड़े पर अढ़ाईद्वीप, जम्बुद्वीप, नदीश्वर

दीप मयपत्र हींकार, भक्तामर, एवं यंत्र, मंत्र, विजयपट वगैरह भी लिखे गये हैं; जो कई ज्ञान भण्डारों में मिलते हैं।

काष्ट फलक— काष्ठ फलक अर्थात् लकड़े की पाटी पर ग्रन्थ लिखा हो यह तो असम्भव है फिर भी निशीथ सूत्र की चूर्णी में 'पुस्तक(?) संपुडग' का उल्लेख मिलता है, इससे पाया जाता है कि कभी कभी साधारण कार्यों में—यंत्र मंत्र लिखावटों में लकड़े की पाटियां काम में ली गई हैं।

पाषाण—पूर्व जमाने में बड़ी २ शिलाओं पर ग्रन्थ लिखे जाते थे। जैसे चित्तौड़ के महावीर मंदिर के द्वार पर दोनों बाजू जिनवल्लभसूरि ने संघ पट्टक व धर्मशिक्षा नाम के ग्रंथ पत्थरों पर खुदवाये थे। इनके सिवाय शिलालेख तथा पट्टक, कल्याणक भी पत्थरों पर खुदे हुए मिलते हैं। इसके प्रारंभ काल के लिये कहा जा सकता है कि सम्राट सम्प्रति एवं खारवेल के समय के शिलालेख इसके प्रारम्भ हैं।

इसके सिवाय ताम्रपत्र रौप्यपत्र, स्वर्णपत्र भी लिखने के काम में लिये जाते थे। जैसे वसुदेव हिंडि प्रथम खण्ड में ताम्र पत्र पर लिखने का उल्लेख मिलता है—"इयरेण तंबपत्तेसु तणुगेसु रायलक्खणं रएऊण तिहलारसेण तिम्मेऊण तंब भायणे पोत्थओ पक्खित्तो निक्खित्तो, य नयरस्स दुवारे भूमीए मज्झे"

प्रभास पाटण में खुदाई का काम करते समय भूगर्भ से एक ताम्र पत्र मिला है वह ईस्वी सन् पूर्व शताब्दी का बतलाया जाता है। उसकी लिपि इतनी दुर्गम्य है कि साधारण विद्वान व्यक्ति तो ठीक तौर से पढ़ ही नहीं सकते तथापि हिन्दू विश्व विद्यालय के बनारस प्रकांड भाषा शास्त्री श्रीमान् प्राणनाथजी ने बड़े ही परिश्रम पूर्वक पढ़ कर यह बतलाया है कि रेवा नगर के राज्य का स्वामी सु 'जाति के देव ने बुशनेज्जर हुए वे यदुराज (कृष्ण) के स्थान (द्वारिका) आया। उसने एक मंदिर सूर्य देव 'नेमि' जो स्वर्ग समान रैवत पर्वत का देव है। उनके मन्दिर बनाकर सदैव के लिए अर्पण किया।

इसके सिवाय रौप्य स्वर्ण पत्र प्रायः यंत्र मंत्र लिखने के काम में आते थे।

स्याही—वर्तमान में स्याही के सिवाय होल्डर निब पर कच्ची स्याही बनाई जाती है, वह न तो बहुत चमकदार ही होती है और न टिकाऊ ही। इसके अक्षरों पर वह थोड़े वर्षों के बाद फीकी पड़ जाती है। तब आठ सात सौ वर्ष पूर्व की ताड़पत्रादि पर लिखी हुई स्याही बहुत चमकदार एवं ताजी दिखाई पड़ती है अतः यह जानने की जिज्ञासा अवश्य होती है कि पूर्व जमाने में स्याही किन २ पदार्थों से बनाई जाती होगी ? इसके लिए प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि—

(क) "निर्यासात् पिचुमंदजात् द्विगुणितो बोलस्ततः कज्जलं,
संजातं तिलतैलतो हुतवहे तीव्रातपे मर्दितम् ।।
पात्रे शुल्बमये तथा शन (?) शनैर्लेखार्थ सैर्मोसितः ।
सद्भल्लातक भृङ्ग राजरसयुक् सम्यग् रसोऽयं मषी ।।
(ख) मष्यर्थे क्षिप सद्गुदं गुन्दार्थे बोलमेव च । लाक्षाबीयारसेनोच्चैर्मर्दयेत् ताम्रभाजने ।।
(ग) जितना काजल उतना बोल, तेथी दूना गूंद झकोल ।
जो रस भांगरानो पड़े, तो अक्षरे अक्षरे दीवा बळे ।।

(घ) बीआबोल अनई लक्खारस कज्जल वज्जल (?) नई अंबारस ।
'भोजराज' मिसी निपाई, पानऊ फाटई मिसी न विजाई ।

(ङ) लाख टांक बीस मेल स्वाग टांक पाच मेल, नीर टांक दो सो लेई हांडी में चढ़ाइये ।
ज्यों लों आग दीजे त्योंलो ओर खार सब लीजे,, लोदर खार वाल वाल, पीस के रखाइये ॥
मीठा तेल दीप जाल काजल सो ले उतार, नीकी विधि पिछानी के ऐसे ही बनाइये ॥
चाहक चतुर नर, लिख के अनूप ग्रन्थ, बांच बांच बांच रिझ, रिझ भोज पाइये ॥

(च) बोलस्य द्विगुणो गुन्दो गुंदस्य द्विगुणा मषी । मर्दयेद् यामयुग्मंतु मषी वज्रसमाभवेत् ॥

"सोनेरी (सुनहली) रूपेरी स्याही"

सोने की अथवा चादी की स्याही बनाने के लिये सोनेरी रूपेरी बरक लेकर खरल में डालने चाहिये । फिर उसमें अत्यन्त स्वच्छ बिना धूळ कचरे का बब के गोंद का पानी डालकर खूब घोटना चाहिये जिससे बरक बटाकर के चूर्णवत हो जावे । इस प्रकर हुए भूके में शक्कर का पानी डालकर खूब हिलाना चाहिये । जबभूका बराबर ठहर कर नीचे बैठ जावे तब ऊपर के पानी को धीरे २ बाहर फेंक देना चाहिये किन्तु पानी फेंकते हुए यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि पानी के साथ सोने चांदी का भूका न निकल जाय । इस प्रकार तीन चार वार करने से गोंदा धोया जाकर सोना चादी का भूका रह जावे उसे क्रमश' सोनेरी रूपेरी स्याही समझना ।

किसी को अनुभव के लिये थोड़ी सोनेरी रूपेरी स्याही बनानी हो तो काच की रकाबी में बबके गोंद का पानी चोपड़ कर उस पर छूटे बरक डाल अगुली मे घोट कर उक्त प्रकारेण धोने से सोनेरी रूपेरी स्याही हो जायगी ।

लाल स्याही—अच्छे से अच्छा हिंगलू, जो गागड़े जैसा हो और जिसमें पारे का अंश रहा हुआ हो उसको खरल में डाल कर शक्कर के पानी के साथ खूब घोटना चाहिये। पीछे हिंगलू के ठहर जाने पर जो पीला पड़ा हुआ पानी ऊपर तैर कर आजावे उसको शनै' शनै बाहर फेंकना चाहिये । यहां भी पानी फेंकते हुए यह ध्यान रखना चाहिये कि पानी के साथ हिंगलू का अश नहीं चला जावे । उसके बाद उसमें फिर मे शक्कर का पानी डालकर घोटना और ठहरने के बाद ऊपर आये हुए पीले पानी को पूर्ववत् बाहिर फेंक देना । इस प्रकार जबतक पीलापन दृष्टिगोचर होता रहे तब करते रहना चाहिये । दस पद्रह बार ऐसा करने से शुद्ध लाल सूर्ख हिंगलू तैयार हो जायगा । फिर उक्त स्वच्छ हिंगलू में शक्कर और गोंद का पानी डालते जाना और घोटते जाना चाहिये । बराबर एकरस होने के पश्चात् हिंगलू तैयार हो जाता है ।

अष्ट गंधः—१ अगर २ तगर ३ गोरोचन ४ कस्तूरी ५ रक्त चदन ६ चदन ७ सिंदूर ८ केशर । इन आठ द्रव्यों के सम्मिश्रण से यह अष्टगध स्याही बनती है । अथवा, कपूर २ कस्तूरी ३ गोरोचन ४ सघरफ ५ केसर ६ चदन ७ अगर और ८ गेहुला इन आठ द्रव्यों के सम्मिश्रण भी अष्टगध बते हैं ।

यक्ष कर्दमः—चंदन १ केसर २ अगर ३ बरास ४ कस्तूरी ५ मरचकंकोल ६ गोरोचन ७ हिंगलोक ८ रतञ्जणी ९ सोनेरी बरक १० और अंबर ११ इन ग्यारह सुगंधी द्रव्यों के मिश्रण से यक्षकर्दम स्याही बनती है।

इन स्याहियों के सिवाय चित्र कार्यों में पीली स्याही के लिये हरताल सफेद के लिये सफेदा तथा हरा रंग भी बनाया जाता था। वर्तमान में कल्पसूत्र आदि में उक्त स्याही के चित्र पाये जाते हैं।

दवातः—स्याही रखने के भाजन (मषि पात्र) दवात (कुप्पिका) के नाम से प्रसिद्ध है। पहले के जमाने में मषि भाजन पीतल, ताम्र और मिट्टी के होते थे। कोई २ डिब्बियों में भी स्याही रखते थे। इस मषिभाजन के एक ढक्कन भी होता है तथा दवात के अन्दर एक सोकल भी डाली जाती है कि इधर उधर लाने ले जाने में और ऊपर लटकाने में सुविधा रहे।

लेखनी:—लिखने के लिये लेखनी बरू (बेना) बांस-दालचीनी, ताम्र आदि की बनाई जाती थी। किन्तु इसमें भी लेखनी कैसी होनी? कितनी लम्बी होनी? और किस प्रकार से लिखना? इसमें भी शुभाशुभपना रहा हुआ है। यथा हि—

ब्राह्मणी श्वेतवर्णा च रक्तवर्णा च क्षत्रिणी। वैश्यवी पीतवर्णा च आसुरी श्याम लेखनी ॥१॥
श्वेते सुखं विजानीयात् रक्ते दरिद्रता भवेत्। पीते च पुष्कला लक्ष्मीः आसुरी क्षय कारिणी ॥२॥
चिताग्रे हरते पुत्रं अधोमुखी हरते धनम्। वामे च हरते विद्यां दक्षिणा लेखनी लिखेत् ॥३॥
अग्रग्रन्थिर्हरेदायुः मध्यग्रन्थिर्हरेद्धनम्। पृष्ठग्रन्थिर्हरेत् सर्वं निर्ग्रन्थिर्लेखनी लिखेत् ॥४॥
नवांगुल मिता श्रेष्ठा अष्टौ वा यदि वाधिका। लेखिनी लेखयेन्नित्यं धनधान्य समागमः ॥५॥

इनके अलावा जुजबल आकार और कम्बिका भी होती थी कि जो चांदिया पाड़ने में या चित्र कार्य में काम आते थे।

डोरा:—ताड़ पत्र की पुस्तकों के बीच छिद्र कर दोनों ओर लकड़े की पट्टी लगा कर एक डोरा बांधा जाता कि जिससे वे पत्र पृथक न हो सकें और क्रमशः बराबर रहें।

इनके अलावा पुस्तक लिखने वाले लहिये के पास निम्न सामग्री भी रहती थी—

कुंपी १ कज्जल २ केश ३ कम्बल मध्ये ४ मध्येच कुशकुर्श ५।
कम्बी ६ कलम ७ कृपाणिका ८ कतरणी ९ काष्ठं १ तथा कागलं ११
कीकी १२ कोटरि १३ कलमदान १४ क्रमणे १५ कटि १६ स्तथा कांकरो १७,
एते रम्यक ककारैश सहिताः शास्त्रं च नित्यं लिखेत् ॥

ये सतरह ककार लेखक के पास रहने से लिखने में अच्छी सुविधा रहती है।

लिपि और लेखक के आदर्श गुणः—

अक्षराणि समशीर्षाणि वर्तुलानि घनानिच । परस्पर मलग्नानि यो लिखेत् सहि लेखकः ॥ १ ॥
समानि शमशीर्षाणि वर्तुलानि घनानिच । मात्रासु मति बद्धानि यो जानाति स लेखकः ॥ २ ॥
शीर्षोपेतान् सुसंपूर्णान् शुभश्रोणिगतान् समान । अक्षरान् वै लिखेद् यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः ॥ ३ ॥
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्व भाषाविविशारदः । लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै ॥ ४ ॥
मेधावी वाक्पटुर्धीरो लघुहस्तो जितेन्द्रियः । परशास्त्र परिज्ञाता एष लेखक उच्यते ॥ ५ ॥

लेखक के दोष —

ढ़लिया य मसिभग्गा य लेहिणी खरडियं चतलवट्टं । धिद्धित्ति कूड लेहय ! अज्ज विलेहत्तणे तण्हा,,
पिहुलं मसि भायणयं अत्थि मसी वित्थयं सितलवट्टं । अम्हारिसाण कज्जे तए लेहय ! लेहिणी भग्गा"
मसिगहिऊण न जाणसि लेहणगहणेण मुद्ध ! कलिओसि । ओसरसु कूडलेहय ! सुलणिये पत्ते विणासेसि,,

जो लेखक स्याही ढ़ोलता हो, लेखनी तोड़ता हो, आसपास की जमीन बिगाड़ता हो, खडिया का बड़ा मुंह होने पर भी जो उसमें डालते हुए लेखनी को तोड़ डालता हो, कलम पकड़ना व दवात में पढ़वि-सर डालना न जानता हो फिर भी, लेखनी लेकर लिखने बैठ जाते हो तो उसे कूट लेखक अर्थात् अपलक्षण वाला लेखक जानना । यह लेखक तो केवल सुंदर पानों को बिगाड़ने वाला ही है ।

लिपि लेखन प्रकारः लिपि दो प्रकार से लिखी जाती है १ अग्र मात्रा २ पड़ी मात्रा । अग्र मात्रा—परमेश्वर । पड़ी मात्रा—परामश्वर ।

लेखक—जैसे जैन श्रमणों ने पुस्तकें लिखी है वैसे कायस्थ, ब्राह्मण, वगैरह वेतनदारों ने भी लिखी है । उनका वेतन श्रावकों ने देकर अपना नाम अमर किया है । यथाः—

श्री कायस्थ विशालवंश गगनादित्योऽत्र जानामिधः ।
सजातः सचिवाग्रणीगुरुयशाः श्रीस्तम्भनतीर्थे पुरे ॥
तत्सूनुर्लिखन क्रियैककुशलो भीमाभिधो मंत्रीराट् ।
तेनायं लिखितो बुधावलिमनः प्रीतिप्रदः पुस्तकः ॥ श्रीसूयघडाग प्रशस्ति

अणहिल पाटक नगरे, सौवर्णिक नेमिचन्द्र सत्कायाम् । वर पौषध शालायाँ राजे जयसिंह भूपस्य" (पाक्षिक सूत्र टीका यशोदेवीय ११८० वर्षेकृत)

"अणहिल पाटक नगरे, श्रीमज्जयसिंहदेव नृप राज्ये । आशधर सौवर्णि वसतौ विहित"
(बन्ध स्वामित्व हरिभद्रीय कृति.)

"अणहिल वाडपुरम्मी, सिरि कन्न नराहिवम्मि विजयन्ते । दोहट्टिकारियाए वसहीए संठिए पांच"
(महावीर चरित्र प्राकृत ११४१ वर्षेकृतम्)

"श्रीमदणहिल पाटक नगरे, केशीय वीर जिन भुवने । रचियतमदः, श्री जयसिंह देव नृपतेश्च सौराज्जे"
(नवतत्त्व भाष्य विवरण यशोदेवीय ११७४ वर्षे)

"अणहिल वडापवने, तयपु जिणवीर मन्दिरे। सिरि सिद्धराय जयसिंह देव रज्जे विजय मासे"
(चन्द्रप्रभ चरित्र प्राकृत जयदेवीय ११७८ वर्षे)

"अणहिल पाटक नगरे, दोहट्टि मच्छेहि ससकवसतौच। संविग्नाश्रेयं नव कर शरस्मरे ११२६ वर्षे कृतम्"
(उत्तरा० लघु टीका देवि चन्द्रीय)

"अणहिल्ल पाटकपुरे, श्रीमज्जयसिंहदेवनृप राज्ये। आशापुर वसत्यां वृत्ति स्तेनव मारचित"
(आगमिक वस्तुविचार सार प्रकरण हरिभद्रीय ११७२ वर्षे)

"सप्तविंशति युक्ते, वर्षे सहस्रे शतेनचाभ्यधिके। अणहिल पाटक नगरे, कृतेस सच्छुम धनि वसतौ"
(न्यायती वृत्ति अभय देवीय)

(ग) कामहदीयगच्छे, वंशे विद्याधरे सद्गुणप्रभ सद्गुण। विमल गुरुः सूरि श्री सुमति विख्यातः॥
तस्यास्ति पादसेवी सुमाधुजन सेवितो विनीतश्च। धीमानुपाधिपुरुः सद्गुणः पण्डितो वीरः॥
कर्मचयस्य हेतोः, तस्यच्छिष्यी (?) मता विनीतेन। मदनाग श्रावकेणैषा लिखिता चारुपुस्तिका॥
कर्मस्तव कर्मविपाक टीका।

(घ) विदुषाजयदेवेनेदं जिनपालाम्नुजासिना। अस्मार्द लिखितं शास्त्रं वर्षे कर्मचय मवद्॥
पञ्चाशक वार्ष कल्पवृत्ति।

लेखक की निर्दोषता—
अदृष्टदोषान्मति विभ्रमाद् वा यदर्थहीनं लिखितं मयाऽत्र।
तत्सर्वमार्यैः परिशोधनीयं कोपं न कुर्यात् खलु लेखकस्य॥
यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते॥
भग्नपृष्टि कटि ग्रीवा वक्रदृष्टिरधोमुखम्। कष्टेन लिख्यते शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत्॥
बद्धमुष्टि कटिग्रीवा मंददृष्टिरधोमुखम्। कष्टेन लिख्यते शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत्॥
लेखनी पुस्तकं रामा परहस्ते गता गता। कदाचित् पुनरायाता भ्रष्टा मृष्टा च चुम्बिता॥
लघु दीर्घ पद हीण, वंजणहीण लखाणु हुइ। अजाण पणइ मूढपणइ, पंडित गुरु त सुधकर मयाम्यो॥

इसके सिवाय जैन लेखन कला के विषय में बहुतसी जानने योग्य बातें हैं वे भारतीय जैन श्रमण संस्कृति और लेखनकला नामक पुस्तक जो, कि विद्वान पुरातत्ववेत्ता मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म० सा० के द्वारा सम्पादित है—विस्तार से जान सकते हैं। यह लेख भी उस पुस्तक के आधार पर ही लिखा गया है।

राज्य—प्रकरण

इस ग्रन्थ के पूर्व प्रकरणों में शिशुनागवंशीय, नन्दवंशीय, मौर्यवशीय, चेटकवंशीय चेदीवंशीय राजाओं का वर्णन कर आया हूँ। उनके जीवन वृत्तान्त व घटनाओं को पढ़ने से यह सुष्ठु प्रकारेण ज्ञात हो जाता है कि वे सबके सब अहिंसा धर्म के परमोपासक व जैन धर्म के प्रखर प्रचारक थे। उन्होंने केवल भारत में ही नही अपितु पाश्चात्य प्रदेशों में भी जैनधर्म का पर्याप्त प्रचार किया था पाश्चात्य प्रदेशों में भूगर्भ से प्राप्त मन्दिर मूर्तियों के खण्डहर आज भी पुकार २ कर इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि वे जिन धर्मानुयाई परम भक्त के करवाये हुए और एक समय वहां जैनों की काफी वसति थी।

जब मौर्यवंशीय राजा वृहद्रथ के सेनापति सुंगुवशीय पुष्यमित्र ने अपने स्वामी को धोके से मार कर राजसिंहासन ले लिया तब से ही जैन और बौद्धों पर घोर अत्याचार प्रारम्भ होने लगा। राजा पुण्यमित्र वेदानुयायी था। उसने धर्मान्धता के कारण अन्य धर्मावलम्बियों पर जुल्म ढोना शुरु कर दिया। अपने सम्पूर्ण राज्य में यह घोषणा करवा दी कि " जैन और बौद्ध श्रमणों के सिर को काट कर लाने वाले बहादुर (!) व्यक्ति को एक मस्तक के पीछे १०० सौ-स्वर्ण दीनारें प्रदान की जांयगी " इस निर्दयता पूर्ण घोषणा ने या रुपयों के क्षणिक लोभ ने कई निर्दोष जैन, बौद्ध भिक्षुओं को मस्तक विहीन कर दिये।

क्रमश इस अत्याचार का पता महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल को मिला तो उन्होंने मगध पर चढ़ाई कर पुष्यमित्र के दारुण पापो का बदला बहुत जोरों से चुकाया। उसे नतमस्तक बना कर माफी मंगवाई। इससे पुष्य मित्र खारवेल की शक्ति के सन्मुख कुछ समय तक तो मौन अवश्य रहा पर उसके मानस में उक्त दोनो धर्मों के प्रति रहे हुए द्वेष को वह त्याग नहीं सका। उसका क्रोध अन्दर ही अन्दर प्रज्जवलित होता रहता पर चक्रवर्त्ती खारवेल की सैन्यशक्ति की स्मृति ही पुन उसके क्रोध को एक दम दबा देती। क्रमश द्वेषाग्नि की भयङ्कर ज्वाला ज्यादा समय तक दबी न रह सकी और पुष्यमित्र ने अपना पूर्व का कार्य क्रम पुन प्रारम्भ कर दिया। महामेघवाहन चक्रवर्ति महाराजा खारवेल ने भी दूसरी वार फिर मगध पर आक्रमण किया। राजा पुष्यमित्र को पराजित कर मगध प्रान्त को खूब लूटा। राजानन्द द्वारा कलिङ्ग से लाई हुई जिन प्रतिमा को उठाकर वह वह पुन कलिङ्ग में लाया। इस आक्रमण के पश्चात् राजा खारवेल एक वर्ष से ज्यादा जीवित नहीं रह सका यही कारण था कि पुष्पमित्र का अत्याचार अब तो निर्भयता पूर्वक होने लग गया। इस अत्याचार की भयङ्करता एवं निर्दयता के कारण जैन एव बौद्ध भिक्षुओं को विवश, पूर्व प्रदेश का त्याग करना पड़ा।

पश्चिम उत्तर और दक्षिण में पहिले से ही जैनधर्म का पर्याप्त प्रचार था। हजारों जैन श्रमण उन प्रान्तों में विचरण कर जैनधर्म की नींव को दृढ भी बना रहे थे। राजपुताना-मरुभूमि में आचार्य स्वयं प्रभसूरि और रत्नप्रभ सुरि ने जैनधर्म की नींव डाल कर इसका खूब प्रचार किया था। महाराष्ट्र प्रान्त में लोहित्याचार्य ने जैनधर्म के बीजारोपण कर ही दिये थे। सम्राट् सम्प्रति और खारवेल के समय भारत के अधिकांश—या सबके सब प्रदेश प्राय जैन धर्मानुयायी थे अत पूर्व प्रान्तीय मुनिवर्ग, पुष्पमित्र के यमराज को कंपाने वाले अत्याचारों से—जहा अनुकूलता दृष्टिगोचर हुई, चले गये। यद्यपि उन्होंने पूर्व प्रदेश का

की वंश परम्परा विशेष उल्लेखनीय है। इनप्रान्तों में जैनश्रमणों का विहार भी अधिक था और जैनधर्म के पवित्र सिद्धान्तों का उपदेश भी बराबर मिलता रहता था अतः इन प्रान्तों में जैनधर्म एक राज धर्म बनचुका था।

खेद है कि एतद्विषयक जितने ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाण चाहिये थे उतने सम्प्रति, उपलब्ध नहीं हो सके तथापि जो कुछ हमें प्राप्त हुए हैं उन्हीं के आधार पर यत्किञ्चित रूप में यह लिखा जा रहा है। हमारी वंशावलियों एवं पट्टावलियों में यत्र तत्र कुछ प्रमाण अवश्य मिलते हैं पर वे विशेष प्राचीन नहीं किन्तु अर्वाचीन समय के होने कारण उन पर इतना भार नहीं दिया जा सकता है। वे विद्वानों की दृष्टि से कम विश्वासनीय है फिर भी वंशालियां पट्टावलियां सर्वथा निराधार भी नहीं है। उसमें पूर्व परम्परा, गुरु कथन और धारणा से जो कण्ठस्थ ज्ञान चला आया था वह ही लिपिवद्ध किया गया है अतः ये सर्वथा सत्य से पराङ्मुख या युक्ति शून्य भी नहीं है।

वर्तमान में गवर्नमेण्ट सरकार के पुरातत्त्व शोध-खोज विभाग ने भूमि को खोद कर प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुओं को प्राप्त करने का एक परमावश्यक कार्य प्रारम्भ किया है। इस खोद काम की प्रामाणिकता एव सफलता स्वरूप भूगर्भ से अनेक ताम्रपत्र, दानपत्र, सिक्के, मूर्तिया, खण्डहर तथा कई प्राचीन नगर भी मिले हैं। इस सूक्ष्म अन्वेषण कार्य से ऐतिहासिक क्षेत्र एव प्राचीनता को शोध निकालने के कार्य में बड़ी ही सहायता मिली है। इतनाही नहीं हमारी वंशावलियों एवं पट्टावलियों पर भी प्रामाणिकता की खासी छाप पड़गई है। जिनपट्टावलियों के प्रमाणिक कथन पर अर्वाचीनता के कारण सदेह करते थे, आज वे प्राय निस्सदेह बन गये हैं। उदाहरणार्थ दिखिये।

(१) हमारी पट्टावलियों में कलिङ्ग पति भिक्षुराज का वर्णन विस्तार से मिलता है पर, विद्वानों का उस पर (भिक्षुराज के जीवन वृत्त पर) उतना ही विश्वास था जितना कि उनका इन पट्टावलियों पर था अर्थात् उन्हें ऐतिहासिक मनीषी प्राय' अप्रामाणिक एवं युक्ति शुन्य समझते थे पर जब कलिङ्ग की उदयगिरि, खण्डगिरी पहाड़िया पर महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल (भिक्षुराज) का शिलालेख जो १५ फीट लम्बा ५ फीट चौड़ा है—प्राप्त हुआ तो उसमें वहीं बात पाई गई जो हमारी गुरु परम्परा से आई पट्टावलियों में वर्तमान है।

(२) हमारी पट्टावलियों बतला रही थी कि मथुरा में सैकड़ों जैन मन्दिर एव जैन स्तूप थे अनेक वार जैनाचार्यों ने मथुरा में चतुर्मास किये थे इतनाही क्यों पर जैनागमों की वाचना भी मथुरा नगरी में हुई थी पर वर्तमान में कोइ भी चिन्ह नही पाने से वंशावलियों में शका की जाति थी परन्तु मथुरा के कंकाली टीले के खोद काम से वहा अनेक प्रतिमाए एव आयग पट्टादि निकले इससे सिद्ध हुआ कि मथुरा और उसके आस पास के प्रदेशों में जैनधर्म का पर्याप्त प्रचार था।

(३) अजमेर के पास बर्ली नामक ग्राम में भगवान् महावीर के निर्वाण के ८४ वर्ष के पश्चात् का शिला लेख मिला है, इससे पाया जाता है कि, वीरात् ८४ वर्ष मे इस प्रदेश में जैनधर्म का बहुत प्रचार था। हमारी पट्टावलियां भी बताती है कि वीरात् ७० वर्ष में आचार्य रत्नप्रभ सूरिने मरुधर में जैनधर्म की नींव डाली और वीरात् ८४ वें वर्ष में आचार्य श्री का स्वर्गवास हुआ। शायद् उनकी स्मृति का ही यह शिलालेख हो।

कालकाचार्य की घटना दूसरे कालकाचार्य के साथ जोड़ दी है। वास्तव में तो चतुर्थी को सम्वत्सरी करने वाले कालकाचार्य विक्रम के समकालीन हुए हैं पर पीछे के लेखकों ने वीरात् ९९३ वर्ष में हुए कालकाचार्य के साथ उक्त घटना को जोड़ दी है तथा आचार्य मानतुंग मल्लवादी जीवदेव हरिभद्रादि के समय में भी बहुत सा अन्तर है।

इस प्रकार नामों की समानता से घटनाओं की सत्यता एक दूसरे नाम वालों के साथ अवश्य जोड़ दी गई है पर घटनाएं सर्वथा असत्य नहीं है। नाम के साम्य के कारण इस प्रकार की उलझन में पड़ जाना नैसर्गिक ही था अतः ऐसी त्रुटियों के आधार पर पट्टावलियों के महान् उपयोगी साहित्य का अनादर व अवहेलना कर, अप्रमाणिक कह देना तो कर्तव्य पराङ् मुख होना ही है। पर हमारा यह फर्ज है कि ऐसी त्रुटियों के लिए अन्यान्य साधनों द्वारा घटनाओं का सम्वत निश्चित कर एतद्विषयक ठीक संशोधन करें न कि इतिहास के एक प्रामाणिक पुष्ट अंग को ही काट दें। मेरा तो यहां तक खयाल है कि पट्टावली आदि साहित्य को अप्रामाणिक कह कर उसको अलग रख दिया जायगा तो हमारा इतिहास सदैव के लिये अधूरा ही रह जायगा। जब ऐतिहासिक समय में या विशिष्ट घटनाओं में झमेला पड़ता है तब उन उलझनों को सुलझाने के लिये हमको उन पटावलियों एवं वंशावलियों की ही शरण लेनी पड़ती है। अभी तक जैन समाज के प्राचीन इतिहास या भारतवर्ष के इतिहास को ढूंढने के लिये जितने प्रबल साधनों की आवश्यकता है उनमें से एक शतांश भी उपलब्ध नहीं हुए हैं जो कुछ प्राप्त हुए हैं वे भी सिलसिलेवार—क्रमानुकूल नहीं है अतः इन त्रुटियों की पूर्ति तो पटावलियां ही कर सकती हैं।

अब जरा इतिहास की ओर भी आंख उठा कर देखिये। पट्टावलियों के समान इतिहासों में भी पर्याप्त मतभेद है। एक ऐतिहासिक व्यक्ति बड़ी शोध खोज के साथ इतिहास लिखता है तब दूसरा उसके सामने विरोध के रूप में खड़ा हो ही जाता है उदाहरणार्थ—मौर्य्यवंशी सम्राटचन्द्रगुप्त के राज्यारोहण के विषय में जो समय का मतभेद है वह अभी तक मिट नहीं सका है। इसी तरह अशोक के शिलालेखों एवं धर्मलेखों के विषय में भी मतभेद है—कोई इन धर्मलेखों को सम्राट अशोक के बतलाते हैं तो कोई सम्राट सम्प्रति के एवमेव इरानी बादशाह ने जिस समय भारत पर आक्रमण करके पाटलीपुत्र के पास अपनी छावनी डाली उस समय रात्रि के वक्त एक युवक छावनी में जाकर इरानी बादशाह से मिला था। मिलने वाला युवक चन्द्रगुप्त था तब कोई इतिहास कार कहते हैं कि वह अशोक था। ऐसे एक दो ही नहीं पर परस्पर विरोध प्रदर्शक हजारों उदाहरण विद्यमान हैं।

उक्त उदाहरणों को लिखने से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि—ऐतिहासिक साधन एकदम निरुपयोगी ही हैं। प्राप्त साधन भारत के लिये बड़े उपयोगी एवं गौरव के हैं, पर ऐतिहासिक साधनों में रही हुई त्रुटियां जैसे अन्य साधनों से सुधारी जाती है उसी तरह प्रमाणों के आधार पर पट्टावली साहित्य में रही हुई त्रुटियां भी सुधारते रहना चाहिये। देखिये पुरातत्त्व मर्मज्ञ रा० ब० प० गौरीशंकरजी ओझा कहते हैं कि—

"इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं × × तथा जैनों की कई एक पट्टावलियां आदि मिलती है, ये भी इतिहास के साधन हैं।"

राजपूताने का इतिहास पृ० १०

श्रीमान् ओझाजी के मतानुसार इतिहास लिखने के अन्यान्य साधनों में जैन पट्टावलियों एवं वंशावलियाँ भी एक प्रमुख साधन हैं।

जैनाचार्यों ने अनेक प्रान्तों में विहार कर कई छोटे बड़े राजाओं को उपदेश देकर मांस मदिरादि छुड़ाये एवं जैन धर्म के उपासक एवं जैनधर्म के प्रचारक बनाये इसी प्रकार यथा राजास्तथा प्रजा इस न्याय से जहाँ राजा धर्मिष्ठ होते हैं वहाँ प्रजा भी उसी धर्म की विशेषतया आराधना करती है और यह बात संभव भी है कि जिस धर्म के उपासक राजा हैं वह धर्म प्रजा में खूब फैल जाता है। यही कारण था कि एक समय जैनधर्म की आराधना करने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी इसका मुख्य कारण राजाओं ने जैनधर्म को खूब अपनाया एवं प्रचार बढ़ाया था बाद में राजाओं ने जैनधर्म से किनारा ले लिया तब से ही जैनों की संख्या कम होने लगी और क्रमशः आज बहुत अल्प संख्या रह गई। हमारी पट्टावलियों वंशावलियों में ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं कि पूर्व जमाने में अनेक राजा महाराजा जैनधर्म के उपासक एवं प्रचारक थे इतना ही क्यों पर कई राजाओं की संतान परम्परा तक भी जैनधर्म पालन किया है जिन्हों का चरित्र बहुत विस्तृत है पर मैं यहाँ पर संक्षिप्त से ही लिख देता हूँ।

१—राजा उत्पलदेव—आप सूर्यवंशी महाराजा भीमसेन के पुत्र एवं उपकेशपुर आबाद आपने ही किया था आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपदेश देकर आपके साथ लाखों क्षत्रियों एवं हजारों ब्राह्मणों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दी थी और आपके शासनकाल में ही महाजन संघ की स्थापना की थी। राजा उत्पलदेव ने जैन धर्म का प्रचार करने में खूब मदद की थी। आपने महामंत्री ऊहड़ के साथ से शत्रुंजय तीर्थ की यात्रार्थ विराट् संघ निकाल तीर्थयात्रा का लाभ लिया था शहर के नजदीक पहाड़ी पर भगवान् पार्श्वनाथ का उत्तुंग जिनालय बना कर उसकी प्रतिष्ठा बड़ी ही धाम धूम से करवा कर जनता में भक्ति भाव उत्पन्न किया था इतना ही क्यों पर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि जिस समय सिन्ध धरा में पधारने का विचार किया उस समय भी आपकी ही सलाह एवं सहायता दी थी इत्यादि आप अपना शेष जीवन जैन धर्म का प्रचार करने में व्यतीत किया था।

महाराजा उत्पलदेव के प्रधान मंत्री चन्द्रवंशीय ऊहड़ थे राजा के धर्म प्रचार कार्य में आपकी विशेष मदद थी आपका जीवन राजा के जीवन के साथ लिखा गया है आपके जीवन में विशेष बात यह बनी थी कि उपकेशपुर की जनता पर श्रीमाल के ब्राह्मणों के शासन-बाधा का जबर्दस्त टेक्स था उसको हटा कर उपकेशपुर के लोगों को उस दुःखी टेक्स से मुक्त कर दिया जो आज उपकेश वंशी (ओसवाल जाति) स्वतंत्र एवं सुख से जीवन व्यतीत कर रहा है मंत्री ऊहड़ देव ने भी जैन धर्म का प्रचार कार्य में पूज्याचार्य देव एवं राजा का हाथ बँटाया था मंत्रीश्वर ने उपकेशपुर में भगवान् महावीर का मंदिर बनवा कर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवा कर अपनी धवल कीर्ति को अमर बना दी जिस मन्दिर की आज सेवा पूजा कर अनेक भावुक अपना कल्याण कर रहे हैं। जिसका विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में हम कर आये हैं मंत्री ऊहड़ के पुत्रों में से जिस समय एक पुत्र ने आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा ली थी उस समय मंत्रीश्वर ने बड़े ही समारोह कर लाखों रुपये व्यय कर दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया था यही कारण था कि मंत्रीश्वर को धर्म का सच्चा रंग था।

(अनुसंधान इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ७३५ (ख) से आया है)

नं०	राज का नाम	समय कहां से कहां तक	राजकाल	
१	विक्रमादित्य	ई० स० पूर्व ५७ से ई० सं० ३	६०	वंशावली का समय त्रि० ले० शाह के पुस्तकानुसार दिया है ।
२	धर्मादित्य	,, ३ ,, ४३	४०	
३	भाइल	,, ४३ ,, ५४	११	
४	नाइल	,, ५४ ,, ६८	२४	
५	नाइड	,, ६८ ,, ७८	१०	

आवंती प्रदेश पर विक्रमवंशी राजाओं के पश्चात् चष्टानवंशी राजाओं का समय आता है चष्टानवशी राजाओं को क्षत्रप महाक्षत्रप की उपाधि थी और तक्षशिला मथुरा और उज्जैन में इनका राज रहा था यद्यपि जितना चाहिये उतना इतिहास इन वंश का नहीं मिलता है तथापि इन राजाओं का कतिपय शिलालेख और कई सिक्के जरूर मिलते हैं जिससे पाया जाता है कि इस जाति के लोग बाहर से भारत में आये थे और अपने भुजबल से भारत में राज किया था इनके सिक्काओं पर बहुत से ऐसे चिन्ह पाया गया कि जिससे वे जैनधर्म पालन करना साबित हो सकते हैं डाक्टर सर केनिंगहोम ने भी उन चिन्हों को बौद्धों का होने में शका अवश्य की है तथापि कई विद्वानों की यह भी राय है कि चष्टानवंशी राजा बौद्ध धर्मी थे इसका कारण कई पाश्चात्य विद्वान बौद्ध धर्म और जैनधर्म को एक ही समझते तथा कई लोग जैनों को एक बौद्धों की शाखा ही समझती थी यद्यपि बहुत विद्वानों का यह भ्रम दूर हो गया है और वे नि शक मानने लग गये हैं कि जैनधर्म एक स्वतन्त्र एवं बहुत प्राचीनधर्म है तथापि अभी ऐसे लोगों का भी अभाव नहीं है कि उन पुराणी लकीर के फकीर बन बैठे है इस विषय में सिक्का प्रकरण में खुलासा किया जायगा यहाँ तो सिर्फ इतना ही लिखा जाता है कि मथुरा का स्तूप को विद्वानों से जैनधर्म का स्तूप होने की उद्घोषना की है उस स्तूप की प्रतिष्ठा महाक्षत्रप राजा राजुबुल की पट्टराणी ने करवाई थी और उसमें महाक्षत्रप भूमक नहपाण वगैरह सब शामिल होकर प्रतिष्ठा महोत्सव किया था यदि क्षत्रिप महाक्षत्रिप बौद्ध ह ते तो इतना विशाल जैन स्तूप बना कर वे प्रतिष्ठा कब करवाते ? दूसरा उनके सिक्कों पर भी जो चिन्ह है वे सब जैनधर्म से ही सम्बन्ध रखते हैं न कि बौद्ध धर्म के साथ । अतः यहां पर उन चष्टान वशी क्षत्रिप महाक्षत्रिप राजाओं की वशावली देदी जाती है ।

नं०	राजाओं के नाम	ई० स० समम		वर्ष
१	श्री गुप्तराजा			
२	घटोत्कचछ	३००	३२०	२०
३	चन्द्रगुप्त	३२०	३३०	१०
४	समुद्रगुप्त	३३०	३७५	४५
५	चन्द्रगुप्त (२)	३७५	४१३	३८
६	कुमार गुप्त	४१३	४५५	४२
७	स्कन्द गुप्त	४५५	४८०	२५
८	कुमार गुप्त (२)	४८०	४९०	१०
९	बुद्ध गुप्त			
१०	भानु गुप्त			

इस समयावली के साथ श्रीमान् प० गौरीशंकरजी ओमा की दी हुई समयावलि का मिलान करने में बहुत अन्तर आता है शायद शाह ने अनुमान से समयावलि लिखी होगी विद्वान वर्ग इस पर विचार करेगा।

गुप्तों के बाद आवंती प्रदेश पर हूणों ने भी राज किया था।

१—हूण राजा तोरमाण ई० स० ४९० ५२०

२— ,, ,, मिहिरकुल ,, ५२० ५३०

हूणों के पश्चात आवती पर प्रदेशियों की हुकूमत बिलकुल उठ गई और परमार जाति के राजपूतों ने सिंहासन को समाला वे वर्तमान समय तक राज करते ही आये हैं जिन्हों की वंशावली फिर आगे के पृष्ठों पर दी जायगी।

१—गुप्तवंशी राजाओं ने अपना संवत् भी चलाया था विद्वानों का मत है कि ई० स० ३१९२० में गुप्तों ने अपना संवत् चलाया डा० बुलर ।। कहना है कि गुप्तवंश के राजाओं के तीन लेख मिला है जिसमें एक शिलालेख मथुरा की जैनमूर्ति पर है जिसका भावार्थ यह है कि "जय हो कोटियगण विद्याधर शाखा के हस्तिलाचार्य के उपदेश से वर्ष ११३ महान शासक विख्यात चक्रवर्ती राजा कुमारगुप्त के राजकाल के बीसवें दिन कार्तिक मास के दिन भट्टी भवांनो की पुत्री और सारबा गृह मित्र हालीत की पत्नि समाढचा ने यह प्रतिमा पधराई थी" दूसरे लेखों की स्थिति ऐसी नहीं कि वह साफ पढ़ा जाय तथापि उसमें मन्दिर बनाने का तथा जीर्णोद्धार करने का उल्लेख है।

२—गुप्तवंश के राजा हरिगुप्त और देवगुप्त के सिक्के मिले हैं हरिगुप्त-देवगुप्त ने जैनधर्म की श्रमण दीक्षा ली थी और हरिगुप्तसूरि के उपदेश से हूण तोरमण जैनधर्म का अनुरागी बना था तथा देवगुप्ताचार्य एक बड़ा भारी विद्वान एवं कवि था इनके लिये कुवलयमाला कथा में उल्लेख मिलता है—

४—अंगदेश इस देश की राजधानी चम्पा नगरी कही जाती है जहा बारहवें तीर्थंकर भ० वासपूज्य का निर्वाण कल्याणक हुआ था पर वर्तमान में कई लोगों ने मगद देश की चम्पा नगरी को ही अग देश की चम्पा नगरी मानली है वास्तव में मगद देश की चम्पा नगरी अलग है और अग देश की चम्पा नगरी अलग है अत यह कल्पना की गई है और इस प्रकार अपनी सुविधा के लिये स्थापना नगरिया मानली जाती है वरना अंग देश मगद से पृथक एव मगद के पड़ोस में आया हुआ है और अग देश की चम्पा नगरी के स्थान वर्तमान में भारहूत नाम का एक छोटा सा ग्राम है जहा पर जैनों के बहुत से स्तूप वर्तमान में भी विद्यमान है कई लोगों का मत है कि भारहूत स्तूप बौद्ध धर्म का है पर श्रीमान् शाह ने

बहुत प्रमाणों से उस स्तूप को जैन स्तूप साबित किया है इतना ही क्यों पर डाक्टर ने तो यहां तक बतलाया है कि भ० महावीर को केवल ज्ञान इसी स्थान पर उत्पन्न हुआ था और उसकी स्मृति के लिये ही भक्त भावुकों ने यह स्तूप बनाया था राजा प्रसेनजित और सम्राट कूणिक ने वहां पर स्तम्भ बना कर शिला लेख खुदवाया था वह आज भी विद्यमान है अतः उस स्तूप को जैन स्तूप मानने में किसी प्रकार की शंका नहीं रह जाती है इस स्तूप के विषय में हम आगे चलकर स्तूप प्रकरण में विशेष उल्लेख करेंगे।

राजा श्रेणिक ने अपनी राजधानी राजगृह नगर में स्थापन की थी जब राजा कूणिक मगध पति बना तब उसने अपनी राजधानी चम्पा नगरी में ले आया था इसका कारण राजा कूणिक के जरिये राजा श्रेणिक की मृत्यु बहुत बुरी हालत में हुई थी अतः कूणिक का दिल राजगृह नगर में नहीं लगता था दूसरा चम्पा नगरी एक तीर्थ रूप भी था कारण भ० वासुपूज्य का निर्वाण कल्याणक तो था ही पर कूणिक के समय में भ० महावीर का कैवल्य कल्याणक भी यहीं हुआ था अतः उसने अपनी राजधानी के लिये चम्पा नगरी को ही पसन्द की पर उस समय चम्पा नगरी एक भव्य नगर के आकार के रूप में थी इसका कारण यह था कि—

चम्पा नगरी में राजा दधिवाहन राज करता था उसका विवाह भी वैशाला नगरी के राजा चेटक की पुत्री पद्मावती के साथ हुआ था जब रानी पद्मावती गर्भवती हुई तो उसको दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं राजा के साथ हस्ती की अंबाड़ी पर बैठ कर जंगल की सैर करूं। जब रानी ने अपने दोहला का हाल राजा को कहा तो राजा ने सब तरह से तैयारी करवा कर रानी के साथ हस्ती पर बैठ कर जंगल की सैर करने को गये पर न जाने क्या भवितव्यता थी कि हस्ती मद में आकर जंगल में इस प्रकार दौड़ना शुरू किया कि उसने महावत के अंकुश की भी परवाह नहीं की और खूब जोरों से दौड़ने लगा जब एक वृक्ष आया तो राजा ने उसकी शाखा पकड़ कर हस्ती से उतर गया पर रानी तो हस्ती की अंबाड़ी में बैठी ही रही और हस्ती ज्यों का त्यों मद में दौड़ता ही रहा—

जब अंग देश की सीमा को उल्लंघ हस्ती कलिंगदेश की सीमा में पहुँच गया तो अकस्मात् से याप हस्ती स्वयं खड़ा रह गया रानी उतर कर पीछे आई तो भयंकर जंगल ही जंगल दीखने लगा थोड़ी दूर गई तो तापसों के आश्रम आये रानी तापसों के पास जाकर अपनी सब हालत सुनाई इस पर तापसों ने रानी को नेक सलाह दी कि बाई तुम यहां से दन्त देश की राजधानी दन्तीपुर नगर चली जाओ वहां से कलिंगदेश जाने में आपको सुविधा रहेगी। रानी तापसों के कहने पर उसी रास्ते रवाना हो गई भाग्यवशात रास्ते में साध्वियां मिली रानी ने उनको भक्ति के साथ वन्दन किया बाद रानी को योग्य जानके धर्म साध्वी ने उपदेश दिया जिसमें संसार का असारत्व और दीक्षा की आवश्यकता बतलाया जिसका प्रभाव रानी की आत्मा पर इस कदर हुआ कि उसने उसी समय साध्वियों के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली और साध्वियों के साथ विहार कर दिया पर कुछ समय से साध्वी पद्मावती के शरीर में गर्भ के चिन्ह प्रकट होने लगे तब गुरुणी ने उसे पूछा साध्वी ने अपनी सब हिस्ट्री कह सुनाई इस पर गुरुणी ने कहा कि बहिन ! ऐसा ही था तो हमको पहले कहना था ? पद्मावती ने कहा कि यदि मैं पहले कह देती तो आप मुझे दीक्षा कब दे देते यदि मुझे दीक्षा नहीं देते तो मेरे जैसी निराधार का सम्बन्ध तुम्हारी क्या हाल होता इत्यादि। और गुरुणी अच्छी समझती थी कि किसी योग्य पुरुष को सूचित कर उसका प्रबन्ध करना

दिया जब पद्मावती ने गर्भ के दिन पूरा होने से पुत्र को जन्म दिया तथा उसका कुछ पालन कर उसके साथ कुछ चिन्ह रख उसको श्मशान में रख दिया और पद्मावती ने पुन दीक्षा ले ली और अन्यत्र विहार कर दिया ।

इधर जब स्मशानरक्षक स्मशान में आकर देखा तो महान क्रान्ति वाला देव कुंवर सदृश बच्चा उसकी नजर आया वह भी बड़ी खुशी से उसे उठा कर अपनी औरत को सौंप दिया चण्डाल अपुत्रिया होने से उस नवजात पुत्र को अपना पुत्र समझ कर पालनपोषण किया और उसका नाम करकण्डु रख दिया जब वह बड़ा हुआ तो एक समय जगल में अन्य बालकों के साथ खेल रहा था उस समय दो विद्वान भविष्यवेत्ता उस रास्ते से निकल आये उन्होंने लड़कों को कहा कि इस वश जाल को छेदने वाला भविष्य में राजा होगा ? बस राज की आकांक्षा से वे लड़के वंश जाल छेदने की कोशिश की जिसमें करकण्डु ने वश जाल छेदन करदी पर दूसरे भी सब लड़के बोल उठे कि वश जाल मैंने छेदी २ इससे आपस में लड़ाइया होने लगी यहा तक कि उन लड़कों के वारस भी लड़ने लग गये मामला राजा के पास गया तो राजा ने फैसला दिया कि यदि करकण्डु राजा हो तो एक ग्राम ब्राह्मणों के लड़के को दें। ब्राह्मणों के लड़के करकण्डु चडाल के लड़के से ग्राम मांगने लगे करकण्डु ने कहा कि मुझे राज मिलेगा तब मैं तुमको ग्राम दूंगा ? पर अन्य लड़के तो ग्राम का तकाजा करते ही रहे इस कारण चण्डाल सकुटुम्ब दन्तिपुर का त्याग कर अन्यत्र वास करने को रवाना हो गये चलते २ काचनपुर के पास आये वहाँ काचनपुर में अपुत्रिया राजा मर गया जिसके पीछे राजा बनाने के लिये एक हस्तिनी की सूँड में वर माला डाल घूम रहे थे भाग्यवसात हस्तिनी ने आता हुआ करकण्डु के गले में वर माला डाल उसको सूँड में उठा कर अपनी पीठ पर बैठा लिया बस फिर तो था ही क्या राज कर्मचारी और नागरिक मिल कर करकण्डु का राजाभिषेक कर दिया अब तो करकण्डु कांचनपुर का राजा होकर राज करने लगा। इस बात की खबर जब दान्तिपुर के ब्राह्मणों को मिली तब पहिले तो उन्होंने कांचनपुर के लोगों को कहलाया कि करकण्डु जाति का चाण्डाल है जिससे नगर में काफी चर्चा फैल गई पर देवता ने आकाश में रह कर कहा अरे नगर के लोगों तुम व्यर्थ ही क्यों चर्चा करते हो करकण्डु राज के सर्व गुण सम्पन्न है इत्यादि जिससे लोगों को सतोष हो गया। फिर दान्तिपुर के ब्राह्मण राजा करकण्डु के पास आकर ग्राम की याचना की उस समय राजा करकण्डू ने ब्राह्मणों को कहा कि तुम चम्पा नगरी में जाकर राजा दधिवाहन को मेरा नाम लेकर कहो जिससे तुमको एक ग्राम देदेगा। ब्राह्मण चम्पा नगरी में जाकर राजा से ग्राम मांगा इस पर राजा दधिवाहन को बहुत गुस्सा आया और कहने लगा कि एक चाण्डाल का लड़का चलता फिरता राज बन कर मेरे पर हुक्म चलाता है जाओ ब्राह्मणों तुम उस चाण्डाल को कह देना कि ग्राम लेना हो तो सग्राम करने को तैयार हो जाना ? ब्राह्मण कांचनपुर आकर सब हाल राजा करकण्डु को कह दिया जिससे करकंडु क्रोधित हो अपनी सेना लेकर चम्पा नगरी पर धावा बोल दिया। उधर से दधिवाहन राजा भी सेना लेकर सामने आ गया—

साध्वी पद्मावती ने दोनों राजाओं की बातें सुन कर सोचा कि बिना ही कारण पिता पुत्र युद्ध कर लाखों के प्राण गवा देगा अब साध्वी गुरुणीजी से आज्ञा लेकर पहले करकण्डु के पास गई और उनको अपना सब हाल कह सुनाया और कहा कि तुम किसके साथ युद्ध करने को तैयार हुए हो ? करकण्डु साध्वी एव अपनी माता के वचन सुन कर पश्चाताप करने लगा और कहा कि मैं पिता से मिलूँ पर साध्वी ने कहा

कि आप ठहर जाइये महल में जाकर राजा से मिलूँ । साध्वी चल कर राजा दधिवाहन के पास गई और राजा से भी सब हाल कहा राजा अपनी राणी को पहचान भी ली । बस । फिर तो था ही क्या दोनों राजा अर्थात् पिता पुत्र का मिलाप हुआ जिससे दोनों को बड़ा ही हर्ष हुआ दोनों ओर के सैनिकों एवं नागरिकों का भय दूर हुआ और हर्ष का पार नहीं रहा तत्पश्चात सब लोग चम्पा नगरी में गए। राजा ने अपने राज का उत्तराधिकारी करकंडु को बना दिया कारण दूसरा पुत्र राजा के था नहीं और कुछ वर्षों बाद कर करकंडु कांचनपुर आ गया ।

तदनन्तर कौशम्बी नगरी का राजा शतानिक चंपा पर चढ़ आया दोनों राजाओं में घोर युद्ध हुआ दधिवाहन राजा मारा गया नगर को ध्वंस किया और धन माल लूट लिया । साथ में रानी धारणी और उसकी पुत्री वसुमती को भी पकड़ली रानी धारणी तो अपनी शील की रक्षा के लिए जबान निकाल कर प्राणों की आहुती दे दी और वसुमति को कौशंबी नगरी में ले आये और उसको बाजार में पशु की भाँति बेच दी जिसको एक धन्ना सेठ ने खरीद की और अपने घर पर लाकर पुत्री की तरह रखी। पर धन्ना सेठ के मूला नाम की भार्या थी उसने कुँवारी कन्या वसुमति का रूप लावण्य देखकर विचार किया कि सेठजी इसको अपनी अर्द्धांगनी बना लेगा तो मेरा मानपान नहीं रहेगा इस गरज से एक दिन सेठजी किसी कारण वशात बाहर ग्राम गये थे पीछे सेठानी ने वसुमति का सिरमुंडन करा के कछोटा पहना हाथों पावों में बेड़ियाँ डाल कर एक गुप्त घर में बंद कर आप अपने पीहर चली गई जिसको तीन दिन व्यतीत हो गए जब सेठजी ग्राम से आए तो घर में सेठानी नहीं व वसुमति नहीं पाई इस हालत में इधर उधर देखा तो एक बंद मकान में वसुमति के रुदन का शब्द सुना बस सेठजी ने मकान का कपाट खोल वसुमति को बाहर निकाल कर हाल पूछा तो उसने कहा मैं तीन दिन की भूखी प्यासी हूँ मुझे कुछ खाने को दो फिर पूछना सेठजी ने इधर उधर देखा पर खाने के लिए कुछ भी नहीं मिला सिर्फ तत्काल के सिजे उड़दों के बाकुल देने पर बरतन तो कोई पर तन ख्याल था सेठजी ने सूपड़ा में उड़दों के बाकुले डाल वसुमति को दिया कि बेटी । तूँ इसे खा मैं तेरी बेड़ियाँ काटने के लिए लुहार को ले आता हूँ । सेठजी लुहार को लाने के लिए गए पीछे वसुमति ने सोचा कि मैंने पूर्वभव में कुछ सुकृत नहीं किया अतः आज कोई महात्मा आ जाय तो मैं उसे दान देकर ही भोजन करूँ । इसलिए दरवाजे के एक पैर अन्दर एक पैर बाहर खड़ी रह कर महात्मा की प्रतीक्षा करने लगी इधर भ० महावीर ने ऐसा अभिग्रह किया था कि जिसको पाँच दिन कम छः मास व्यतीत हो गया उसका नहीं हुआ वह अभिग्रह ऐसा था कि जिसका मैं आहार लेऊ कि—१ सुन्दर की स्वरूप हो २ राजकन्या हो ३ तीन दिन की भूखी प्यासी हो ४ सिर मुंडा हो ५ कछोटा पहना हुआ हो ६ हाथों में हथकड़ी हो ७ पैरों में बेड़ियाँ हो ८ हाथ का सीका में ९ उड़दों के बाकुल हो १० एक पैर दरवाजे के अंदर हो ११ दूसरा पैर दरवाजे के बाहर हो १२ एक आँख में हर्ष हो १३ दूसरी आँख में रुदन के आँसू पड़ते हो ऐसी हालत से मैं आहार ले सकता हूँ । वसुमति के नसीब से भ० आये भ० महावीर को देख लाए भ० महावीर के उक्त अभिग्रह के १२ बोल तो मिल गए पर एक आँख में आँसू नहीं पाये कारण वह बहुत खुश हो रही थी भ० महावीर के ध्यान की तुटी थी जब अभिग्रह पूरा नहीं देखा तो भ० महावीर वापिस लौट गए जिसने वसुमति को इतना दुःख हुआ कि आँखों में आँसू पड़ने लगी फिर भी वसुमति रुदन करती बोली कि प्रभु आये हुए खाली क्यों जाते हो एक बार मेरी ओर देखो तो सही भगवान फिर के वसुमति की ओर देखा तो

एक आँख में आँसू गिर रहे दूसरी आँख में हर्ष याजो भगवान पुनः पधारे बस भगवान ने वसुमति से उड़दों के बाकुले ले लिया कवि ने अपनी युक्ति लगाई कि वसुमति कन्या होने पर भी कितनी हुशियार निकली कि भगवान ने तो सादा बारह वर्ष घोर उपसर्ग सहन किया तब मोक्ष मिली तब वसुमति ने एक मुट्ठी भर उड़दों के बाकुले देकर भगवान से मुक्ति ले ली। खैर भगवान तो बाकुला लेकर चल दिया पर पास ही में रहने वाले देवताओं ने सादा बारह करोड़ सोनइयों की तथा पच वर्ण पुष्प और सुगन्धी जल वस्त्रों की वृष्टी की और आकाश में उद्घोषना कर दान और वसुमति के यश गान गाये। इतने में इधर तो सेठजी आये उधर से मूला को तथा राजा प्रजा को खबर हुई कि सेठ धन्ना के यहाँ सोनइयों वगैरह की वृष्टि हुई सब लोग आकर देखा तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ देवताओं ने कहा अरे लोगों ? यह वसुमति सती है दीर्घ तपस्वी भ० महावीर को दान दिया है यह वसुमति चन्दनबाला भगवान् की पहले शिष्यनी होगी यह सोनइया इनके दीक्षा के महोत्सव में लगाना इत्यादि नगर भर में अति मंगल हो गए।

जब भगवान् महावीर को कैवल्य ज्ञान हुआ तो उधर तो इन्द्रभूति आदि ११ गणधर और ४४०० ब्राह्मणों को दीक्षा दी और इधर चंदनबालादि को दीक्षा दी तथा श्रावक श्राविका मिल कर चतुर्विधसंघ की स्थापना की उस चंदनबाला साध्वी के मृगावत्यादि ३६००० शिष्यणियाँ हुई जिसमें १४०० साध्वियाँ तो उसी भव में मोक्ष हो गई थी।

इस प्रकार राजा दधिवाहन की चंपानगरी का ध्वंस हुआ था बाद जब मगद का राजमुकट कूणिक के सिर चमकने लगा तब राजा कूणिक ने पुनः चंपानगरी को आबाद कर अपनी राजधानी का नगर बनाया जैन शास्त्रों में चंपानगरी का बार बार वर्णन आता है। इसके कई कारण हैं अवल तो भगवान वासुपूज्य के निर्वाण कल्याण हुआ दूसरा भगवान् महावीर को यहाँ केवल ज्ञान होने से वहाँ एक विशाल स्तूप बनाया था और राजा प्रसेनजित - अजात शत्रु वगैरह वह रथ यात्रादि महोत्सव करते थे तथा उन्होंने अपनी ओर से स्तम्भ वगैरह बनाये थे तथा भगवान् महावीर भी यहाँ अनेक बार पधार कर उस भूमि को अपने चरण कमल से पवित्र बनाई थी और राजा श्रेणिक की कालि आदि रानियों ने इसी नगरी में भ० महावीर के पास दीक्षा ली थी इत्यादि कारणों से चंपानगरी जैनों के लिए एक धाम तीर्थ माना जाता था।

५- वत्सदेश-इस देश की राजधानी कौसुंबी नगरी में थी इस देश पर भी जैन राजाओं ने राज किया था जिसमें राजा सहस्रानिक, सतानिक और उदाइ राजा जैन शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। राजा संतानिक का विवाह विशाल के राजा चेटक की पुत्री मृगावती के साथ हुआ था राजा सतानिक की बहिन का नाम जयती था और वह जैन श्रमणों की परम उपासिका भी थी उसने अपना एक मकान श्रमणों के ठहरने के लिए ही रख छोड़ा था यही कारण है कि जैन शास्त्रों में जयती को प्रथम सेज्जातरी अर्थात् साधुओं को पहला मकान देने वाली बतलाया है बाई जयती विधवा थी और अच्छी धर्म तत्व जानकर विदुषी श्राविका भी थी भगवान महावीर देव के पास आकर कई प्रकार के प्रश्न पूछा करती थी और अन्त में उसने भगवान महावीर के पास श्रमण दीक्षा भी ले ली थी। राजा सतानिक की राणी मृगावती बड़ी सती साध्वी थी उसका रूप लावण्य पर उज्जैन का राजा चण्डप्रद्योतन मोहित हो उसको प्राप्त करने के लिए कई षट्यन्त्र रचा था पर उसमें वह सफल नहीं हुवा। मृगावती का पति राजा सतानिक का देहान्त हुआ था उस समय उसका पुत्र उदाइ बालक ही था अतः राज का सब प्रबन्ध राणी मृगावती ही किया करती थी। राजा संतानिक अपनी

त्मिक कुछ भी नहीं कहा जाता है पर यह अनुमान किया जा सकता है कि जिसके पाड़ोस में काशी देश का राजकुमार पार्श्वनाथ ने दीक्षा लेकर तीर्थङ्कर पद को प्राप्त किया था तो उनके उपदेश का प्रभाव कौशल राजाओं पर अवश्य हुआ होगा अतः वे भी जैन धर्मोपासक ही होगा कौशल नरेशों की वंशावली निम्नलिखित है

न०	राजावली	समय	ई० सं० पूर्व	वर्ष
१	राजापुत-शंक	७९०	७३०	६०
२	,, रत्नजय	७३०	६९०	४०
३	,, दिवसेन	६९०	६४०	५०
४	,, संजय	६४०	५८५	५५
५	,, प्रसेनजित	५८५	५२६	५९
६	,, विदुरथ	५२६	४९०	३६
७	,, कुसुलिक	४९०	४७०	२०
८	,, सुरथ	४७०	४६०	१०
९	,, सुमित्र	४६०	४५०	१०

कौशलदेश एक समय जैनों के तीर्थ धाम कहलाता था और खूब दूर दूर से लोग यात्रार्थ आया करते थे दूसरा व्यापार के लिए भी यह देश बहुत प्रसिद्ध था अतः जैन साहित्य में कौशल का भी अच्छा स्थान है ।

प्रस्तुत कौशलदेश की राजधानी के समय समयान्तर कई नाम रहे हैं कुरयल के अलावा अयोध्या श्रवस्ति नाम भी रहे हैं वर्तमान में सहेट महेट का किल्ला के नाम से प्रसिद्ध है इसका इतिहास यत्र तत्र कई स्थानों पर छापा गया है पर उन सबको एक स्थान सकलित करने की आवश्यकता है । वहाँ की भूमि खोद काम से कई स्मारक चिन्ह प्राप्त हुए हैं जिसमें कई ई० सं० पूर्व के हैं तथा अभी कई शताब्दियों की मूर्तियाँ भी मिली हैं उसमें पाँच मूर्तियों पर शिलालेख है जिसमें निम्न लिखित सवत् है –

जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ

१ म० विमलनाथ की मूर्ति सं० ११२३
२ म० ,, ,, ११८२
३ म० नेमिनाथ की मूर्ति स० ११२५
४ स्पष्ट नहीं मालुम हुआ स० १११२
५ म० ऋषभदेव की मूर्ति स० ११२४

जैन राजाओं के नाम

१ मयूरध्वज स० ९००
२ हसध्वज सं० ९२५
३ मकरध्वज स० ९५०
४ सुधानध्वज स० ९७५
५ सुहरीलध्वज सं० १०००

यह नामावली जैन सत्य प्रकाश वर्ष ७ अंक ४ से लिखी गई है ।

भूगर्भ से मिली हुई मूर्तियां—

७—सिन्धु सौवीर देश—इस देश की राजधानी वीतभय पट्टन में थी और राजा उदाई यहाँ पर राज करता था राजा उदाई का विवाह भी विशाला नगरी के राजा चेटक की पुत्री प्रभावती के साथ हुआ था रानी प्रभावती बालपने से ही जैनधर्म की उपासना करने में सदैव तल्लीन रहती थी रानी प्रभावती के अन्तेवर गृह में एक जैन मन्दिर था जिसके अन्दर देवकृत भगवान महावीर की गोशीष चन्दन मय मूर्ति थी इस मूर्ति के विषय एक चमत्कारी कथा मिली है वह अन्यत्र लिखी गई है यहाँ तो इतना ही कह दिया जाता है कि राजा उदाइ और रानी प्रभावती उस महावीर मूर्ति की त्रिकाल सेवा पूजा किया करते थे कभी कभी रानी नृत्य करती और राजा वीणा बजाया करता था रानी प्रभावती के एक कुब्जा दासी थी जिसका रूप तो ऐसा सुन्दर नहीं था पर उसके अन्दर गुण अच्छे सुन्दर थे विशेष में कुब्जा दासी जिन प्रतिमा की भक्ति तन मन से करती थी भाग्यवसात् एक श्रावक ने साधर्मीपने के नाते उस दासी को देव चमत्कृत ऐसी गुटका (गोलियाँ) दी कि जिसके खाने से दासी का रूप देवांगना जैसा हो गया था।

राजा उदाइ और रानी प्रभावती के एक अभीच नाम का कुँवर था तथा राजा उदाइ के बहिन का पुत्र केशीकुमार नाम का भानेज भी था। जब रानी प्रभावती ने भगवान महावीर के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली तब महावीर मूर्ति की सेवा पूजा कुब्जा दासी किया करती थी जब उसका रूप सुंदर हो गया तो उसका नाम बदल कर सुवर्णगुलिका रख दिया था—

उज्जैन का राजा चन्ड प्रद्योतन ने सुवर्ण गुलिका दासी के रूप की बहुत प्रशंसा सुनी तो उसका दिल दासी को अपने यहाँ बुलाने का हुआ राजा ने किसी दूती के साथ कहलाया तो दासी ने कहा कि राजा स्वयं यहाँ आवे तो मैं उससे वार्तालाप करूँ। और गर्जवान् दर्दवान् क्या क्या नहीं करता है। राजा चन्ड प्रद्योत हस्ती पर सवार हो गुप्त रूप से वीतभय पट्टन गया और संकेत किया स्थान पर दासी से मिला राजा ने दासी का रूप देख विशेष मोहित हो गया और उससे उज्जैन चलने के लिये प्रार्थना की दासी ने राजा की बात तो स्वीकार करली कारण राजा उदाई को तो दासी अपने पिता तुल्य समझती थी पर चन्ड प्रद्योतन जैसा राजा प्रार्थना करे दासी को ऐसा लाभ। कब मिलने का था फिर भी दासी ने कहा मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ पर मैं भगवान महावीर की मूर्ति की पूजा करती हूँ और मुझे अटल नियम भी है अतः मैं मूर्ति को छोड़ कर कैसे चल सकूँ ? इस पर राजा ने कहा कि मूर्ति को भी साथ में लेलो। नहीं साथ न लेने से तत्काल ही राजा उदाई को मालूम हो जायगा अतः इस मूर्ति के सदृश दूसरी मूर्ति बनवाई जाय कि इस असली मूर्ति के स्थान नकली मूर्ति रखदी जाय राजा ने दासी का कहना स्वीकार कर वापिस उज्जैन आया और चन्दन मय महावीर मूर्ति बना कर हस्ती पर लेकर पुनः वीतभयपट्टन आया असली मूर्ति के स्थान नकली मूर्ति रख दासी और मूर्ति को लेकर उज्जैन आ गये। पीछे दूसरे दिन राजा दर्शन करने को गया तो मूर्ति के कण्ठ में पुष्पों की माला कुमलाई हुई देखी तो उसे मालूम हुआ कि यह मूर्ति असली नहीं है जब दासी को बुलाया तो वह भी न मिली राजा उदाई ने सोचा कि सिवाय चन्डप्रद्योत राजा के दासी एवं मूर्ति को लेजा नहीं सके और राजा उदाई ने इसकी खबर मंगाई तो उनकी धारणा सत्य ही निकली राजा उदाई अपनी सेना तथा दश मुकुटबन्ध राजा जो उनके अधिकार में थे उनके साथ उज्जैन नगरी पर चढ़ाई करदी। राजा चन्ड को खबर हुई तो वह भी अपनी सैना लेकर सामना किया दोनों

राजाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ आखिर राजा उदाई के योद्धों ने राजा चण्ड को जीवित पकड़ लिया बाद मूर्ति और दासी को लेकर वापिस अपने देश को आ रहे थे पर वर्षा ऋतु होने के कारण रास्ते में जीवों की उत्पत्ति बहुत हो गई तथा वर्षा भी बरस रही थी जहाँ पर आज मन्दसौर नगर है यहाँ आये कि राजा ने चलना बन्द कर जंगल में पड़ाव कर दिया दश राजाओं ने पृथक् २ अपनी छावनिया डालदी और वर्षाकाल वही व्यतीत करने लगे।

जब वार्षिक पर्व सवत्सरी का दिन आया तो राजा वगैरह सब लोगों ने सवत्सरी का उपवास किया हालत में रसोइया ने राजा चण्ड जो नजर कैद में था को जाकर पूछा कि आपके लिये आज क्या भोजन इस बनाऊ ? राजा ने पूछा कि इतने दिनों में कभी नहीं पूछा आज ही क्यो पूछा जा रहा है ? रसोईया ने कहा कि आज हमारे सवत्सरिक पर्व है सबके उपवास व्रत हैं केवल आप ही भोजन करने वाले हैं इससे आपको पूछा है इस पर राजा ने सोचा कि हमेशा राजा उदाई के साथ बैठकर भोजन करते थे अत किसी प्रकार का अविश्वास नहीं था पर आज तो केवल मेरे ही लिए भोजन बनेगा शायद रसोइया भोजन में कुछ विषादि न मिला दे इत्यादि विचार कर राजा चण्ड ने कहा कि जब सबके पर्व का व्रत है तो मैं भी व्रत कर लूंगा मेरे लिये रसोई बनाने की जरूरत नहीं है। रसोइया ने जाकर राजा उदाइ को समाचार कह दिया जब सावत्सरिक प्रतिक्रमण का समय हुआ तो राजा चण्ड को भी बुलाया और क्षमापना के समय राजा उदाइ राजा चण्ड को क्षमापना करने को कहा पर उसने कहा मैं आपसे क्षमापना नहीं करूगा। यदि आप दासी और मूर्ति देकर मुझे छोड़दे तो मैं क्षमापना कर सकता हूँ। राजा उदाइ ने सोचा कि यदि राजा चण्ड क्षमापना न करेगा तो इसका पाप तो मुझे नहीं लगेगा पर राजा चण्ड आज पर्व का व्रत किया है जिससे यह मेरा साधर्मी भाई बन गया है केवल मेरे ही कारण इसके कर्म बन्धन का कारण होता है तो मुझे दासी और मूर्ति देकर इसको बन्धन मुक्त करके भी क्षमापना करवा लेना चाहिये—दूसरा राजा उदाई ने निमित्तिया से यह भी सुन रखा था कि पट्टन दट्टन होने वाली है, फिर उस हालत में मूर्ति कैसे सुरक्षित रह सकेगा। तीसरा जब दासी अपनी इच्छा से राजा चण्ड के साथ आई है। यह बात पाठक पहले पढ आये हैं कि राजा उदाइ और चण्ड दोनों राजा, राजा चेटक की पुत्रियों के साथ लग्न किया। अत वे आपस में साढु भी लगते थे। इत्यादि कारणों में विशेष साधर्मी भाई के कारण को लक्ष में रख बड़ा युद्ध कर दासी और मूर्ति को लाया था पर अपनी उदारता से राजा चण्ड को देकर क्षमापना करवाया। 'सगपण मोटो साधर्मीवणो' इस कहवत को राजा उदाइ ने ठीक चरितार्थ कर बतलाया। राजा चण्ड दासी और मूर्ति को लेकर उज्जैन गया और राजा उदाइ अपने नगर आया।

राज उदाइ संसार से उदास रहता हुआ धर्म कार्य साधन की ओर विशेष लक्ष दिया करता था। एक बार राजा उदाइ अष्टम तप कर पौषध किया था, उसमें राजा की भावना ऐसी हुई कि यदि भगवान् महावीर यहाँ पधार जाय तो मैं दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करू। भगवान महावीर ने अपने केवल ज्ञान से राजा उदाइ के भावों को जानकर एक रात्रि में पन्द्रह योजन का विहार कर सुबह वीतभयपट्टन के उद्यान में पधार गये। राजा उदाइ को खबर मिली तो उसने पारणा नहीं किया और भगवान को वन्दन करने को आया। भगवान महावीर ऐसी देशना दी कि जिससे राजा की भावना कार्य रूप में परिणित होगई और दीक्षा लेने का अटल निश्चय कर लिया। जब राजा भगवान को वन्दन कर वापिस नगर में आ रहा था,

तो उनको विचार हुआ कि अभीच कुँवर मेरे एक ही पुत्र है, यदि इसको राज दे दिया जाय तो वह भोग-विलास एवं राज में मूर्छित होकर संसार में परिभ्रमण करेगा इससे तो उचित है कि मेरे भानेज केशीकुमार को राज देकर मैं भगवान महावीर के पास दीक्षा ले लूँ । यदि इस बात का खुलासा कर देता तब तो कुछ भी नहीं था पर बिना किसी को कहे अपने स्थान पर केशीकुमार को राज देकर राजा उदाई बड़े ही समारोह से भगवान महावीर के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली । यह बात राजकुमार अभीच को पसन्द न हुई । कारण जब राजा का पुत्र हकदार तो बैठा रहे और जिसका राज के लिए कुछ भी हक नहीं वह राजा बन जाय । पर अभीचकुमार विनयवान पुत्र था, उस समय कुछ भी नहीं कहा । बाद में भी जब उससे देखा नहीं गया तो वह अपना कुटुम्बादि उनको लेकर अंग देश की चम्पा नगरी जहाँ अपनी मासी का बेटा राजा कणिक राज कर रहा था, वहाँ चला गया । कूणिक ने अभीचकुमार का अच्छा स्वागत किया और आदर सत्कार के साथ अपने पास रख लिया । अभीचकुमार कणिक के साथ आनन्द में रहता था, जैनधर्म में उसकी अटल श्रद्धा थी पर राजर्षि उदाई के साथ उसका रोष भी उपशान्त नहीं रहा । यों भी कहा जाता है कि अभीचकुमार जब नवकार मन्त्र का जाप करता था तब कहता था कि "नमोलोए सव्व साहूँण" उदाई साधु को वर्ज कर सब साधुओं को नमस्कार हो । चौथा आरा में भी पंचम आरा की छाया पड़ गई थी कि उपकार के बदले में अपकार से पेश आता । क्योंकि राजर्षि उदाई सिद्ध होजाने पर भी अभीच का उनके प्रति द्वेष कम नहीं हुआ । वह सिद्धों को नमस्कार करते समय भी उदाई सिद्ध को वर्ज कर ही सब सिद्धों को नमस्कार करता था । यही कारण था कि अभीचकुमार को असोमी देव का भव करना पड़ा । बाद में वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष को जायगा ।

राजर्षि उदाई दीक्षा लेकर अन्यत्र विहार कर दिया कितनेक समय के बाद राजा उदाई के शरीर में बीमारी हो गई और वह चल कर पुनः वीतभय पट्टन में आकर एक कुम्भकार के मकान में ठहरा राजा केशी आदि वन्दन करने को आये और प्रार्थना की कि आप राज मकान में पधार जाइये आपके बीमारी का भी इलाज करवाया जायगा वैद्य हकीमों को भी ले गया वैद्यों ने राजा की बीमारी देख कर दही का उपयोग बतलाया पर कई धर्म द्वेषी लोगों ने राजर्षि उदाई को मरवा देने का दुष्टविचार कर के राजा केशी के पास आकर कहा कि राजर्षि दुष्कर संयम पालन करने से पराङ्मुख हो वापिस राज लेने के लिये आये हैं अतः इनको मरवा देना ही अच्छा है ! इस पर राजा केशी ने कहा कि ऐसा हो नहीं सकता है इस पर भी यदि राज लेना चाहे तो यह राज उनका ही है खुशी से ले कर मुझे दिया था करता तो क्या पर कानों में सुनने से भी पाप लगता है अतः ऐसी बात मेरे सामने कभी नहीं करना तथापि उन द्वेषियों ने दही के अन्दर विष दिला देने की कोशिश कर डाली जब राजर्षि उदाई दही लाकर खाया तो उसके सब शरीर में विष व्याप्त हो गया उस समय देवता ने आकर राजर्षि को कहा कि आप इसके लिये प्रयोग करें कि विष असर नहीं करे पर राजर्षि ने इसको स्वीकार न कर अपने कर्म भोगने के लिये उस परिसह को सम्यक् प्रकार सहन कर शेष कर्मों की निर्जरा करते हुए नाशमान शरीर को छोड़ मोक्ष में पधार गये—

इस अकृत्य कार्य से देवता कुपित हो ऐसी धूल की वृष्टि की कि एक कुम्भकार का घर छोड़ कर सब नगर धूल के नीचे दब गया जिसको पट्टन दट्टन कहते हैं । जब पट्टन दट्टन हो गई तो सिन्धु सौवीर का राज राजा कूणिक ने अपने नगर साम्राज्य में मिला लिया ।

कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्र सूरि के समय राजा कुमारपाल सिन्धु सौ वीर के भूमि गर्भ से एक मूर्ति प्राप्त की थी जिसको हेमचन्द्र सूरि ने राजा उदाई के मन्दिर की महावीर मूर्ति बतलाई थी। तथा वर्तमान सरकार के पुरातत्त्व विभाग की ओर से भूमि का खोद काम हुआ जिसमें सिन्धु सौवार की भूमि से एक नगर निकला है। जिसका नाम मोहनजादरा एव दूसरा नगर का नाव 'हराप्पा' रक्खा है यह वही नगर है जो राजा उदाइ के बाद देवताओं की धूल वृष्टि से भूमि में दब गये थे विद्वानों ने उन नगरों को ई० सं० पूर्व कई पाँच हजार पूर्व जितने प्राचीन बतलाये हैं। उन नगरों के अन्दर से निकलते हुए प्राचीन अनेक पदार्थों ने भारत की सभ्यता पर अच्छा प्रकाश डाला है विशेष में उन नगरों का हाल पढ़ने की सूचना कर इस लेख को समाप्त कर देता हूँ।

८--शूरसेन देश—इस देश की राजधानी मथुरा नगरी में थी मथुरा भी एक समय जैनों का बड़ा भारी केन्द्र था कई जैनाचार्यों ने मथुरा में चतुर्मास किये थे और मथुरा नगरी में जैन मन्दिर एव स्तूप सैकड़ों की सख्या में थे जिनकी यात्रार्थ कई आचार्य बड़े २ संघ लेकर आते थे। मथुरा नगरी में एक समय बौद्धों के भी बहुत से सघाराम थे और सैकड़ों बौद्ध साधु वहाँ रहते थे कई बार जैनों और बौद्धों के बीच शास्त्रार्थ होना भी जैन पट्टावलियों में उल्लेख मिलते हैं दिगम्बर जैनों में एक माथुर नाम का सघ है और श्वेताम्बर समाज में मथुरा नाम का गच्छ भी है जैन श्वेताम्बर में आगम वाचना मथुरा में हुई थी और आज भी मह माथुरी वाचना के नाम से मशहूर है। मथुरा में क्षत्रप और महाक्षत्रप राजाओं ने भी राज किया था उनके बनाया हुआ जैन स्तूप आज भी विद्यमान है और उन राजाओं के कई सिक्के भी मिले हैं उन पर भी जैन चिन्ह विद्यमान है जिसको हम स्तूप एवं सिक्का प्रकरण में लिखेंगे। मथुरा पर गुप्तवंशियों का भी राज रहा है उनका शिलालेख एक जैन मूर्ति पर मिला है। मथुरा पर कुशान वंशियों का भी शासन रहा है उनके शिलालेख एवं सिक्के भी मिले हैं उनके सिक्कों पर भी जैन चिन्ह खुदे हुए पाये जाते हैं पर खेद है कि कई विद्वानों ने जैन और बौद्धों को एक ही समझ कर उन स्तूप एव सिक्कों को बौद्धों के ठहरा दिये हैं पर वास्तव में उनके चिन्हों से वे जैनों के ही सिद्ध होते हैं मथुरापति महाक्षत्रप राजुवुल की पट्टरानी में जैन स्तूप की बड़ा ही समारोह से प्रतिष्ठा करवाई थी जिसमें भूमिक महाक्षत्रिप को भी आमंत्रण किया था और नहपाण वगैरह भी उस प्रतिष्ठा में शामिल हुए थे फिर समझ में नहीं आता है कि यह सूर्य जैसा प्रकाश होते हुये भी उन जैन स्तूप एव सिक्कों को बौद्धों का कैसे बनाये जाते हैं खैर इस विषय में हम अगले पृष्ठों पर लिखेंगे यहाँ पर तो केवल मथुरा के कुशानवंशियों की वंशावली दी देदी जाती है।

नं०	राजाओं के नाम	समय ई० सं०	वर्ष	नं०	राजाओं के नाम	समय ई० सं०	वर्ष
१	कडफसीस (१)	३१ से ७१	४०	५	हुविष्क	१३२ से १४३	११
२	कडफसीस (२)	७१ से १०३	३२	६	कनिष्क (२)	१४३ से १९६	५३
३	कनिष्क	१०३ से १२६	२३	७	वासुदेव	९६ से २३४	३८
४	वसिष्क	१२६ से १३२	६	८	सात राजों का	२३४ से २८०	४६

श्रीमान् त्रि० ले० शाह के प्राचीन भारतवर्ष पुस्तक के आधार पर।

शिलालेख में भी आँध्र के राजा शतकरणी का उल्लेख आया है इनके अलावा आँध्र देश के राजाओं के शिला लेख तथा सिक्के भी मिले हैं जिसके कुछ ब्लॉक यह दे दिये गये हैं इस देश का आदि राजा श्रीमुख नन्दवंशी था जब नन्दवंशी राजा जैन थे तो राजा श्रीमुख जैन होने में किसी प्रकार की शंका को स्थान ही नहीं मिलता है और उनकी वंश परम्परा में भी जैन धर्म चला ही आरहा था जो उनके शिलालेखों और सिक्कों से पाया जाता है दूसरा दक्षिण देश में राजा श्रीमुख से पूर्व कई शताब्दियों से जैन धर्म का प्रचार हो चुका था जिसके प्रचारक भ० पार्श्वनाथ के परम्परा में लोहित्याचार्य्य थे। इन आँध्र वंशी राजाओं के पश्चात् भी दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचार बहुत लम्बा समय तक चला आया था वहाँ के राजवंश जैसे कदम वंश कलचूरीवंश गंगवंश, पल्लववंश पाड्यवंश राष्ट्रकूटवंश वगैरह भी जैन धर्म पालन करने वाले थे जो उनके शिला लेखों दान पत्रों एवं सिक्कों से स्पष्ट पाये जाते हैं जिनकी नामावली आगे के पृष्ठों पर दी जायगी यहाँ पर तो पहले आँध्र वंश के राजाओं की वंशावली दी जाती है।—

नं०	राजा	समय (ई० स० पूर्व)	वर्ष
१	श्रीमुख	४२--४१४	१३
२	गोत्रमीपुत्र यज्ञश्री	४१४ ३८३	३१
३	कृष्ण-वशिष्ठ पुत्र	३८२-३७३	९
४	मल्लिकश्री	३५३-३१७	५६
५	पूर्णोत्संग	३१७-२९९	१८
६	स्कन्द स्तभ	२९९-२८१	१८
७	वस्टिपुत्र (शतकरणी)	२८१-२२५	५६
८	लम्बोदर	२२५-२०७	२८
९	आपिलिक	२०७-१९५	१२
१०	आवि	१९५-१८३	१२
११	मेघस्वाति	१८३-१४५	३८
१२	सौदास-सघस्वाति	१४५-११५	२९
१३	मेघ स्वाति (२)	११५-११२	३
१४	मृगेन्द्र	११३- ९२	२१
१५	स्वाति कर्ण	९२-७५	१७
१६	महेन्द्र	७५-७२	३

नं०	राजा	समय	वर्ष
१७	अरिष्ट कर्ण	७२-४७	२५
१८	हाल सालिवाहन	४७-१८	६५
१९	मंतलक	१८-२५	६
२०	पुरिंद्रसेन	२६-३२	६
२१	सुन्दर	३२ ३२॥	५
२२	चकोर	३२-३५	३
२३	शिवस्वाति	३५-७८	४३
२४	गौतमीपुत्र (शतकरणी)	७८ ९९	२१
२५	चन्द्रपण	९९-१२२	२३
२६	पुलुमावी	१२२-१५३	३१
२७	शिवश्री	१५३-१८०	२७
२८	शिव स्कन्द	१८०-१८७	७
२९	यज्ञश्री	१८७-२१७	३०
३०, ३१, ३२	तीन राजा	२१७-२५२	४५

अंतिम राजा को क्षत्रिय सरदार आमिर ईश्वर दत्त ने हरा कर दक्षिण की ओर निकाल दिया उसने विजयनगर में अपनी सत्ता जमाई।

११ वल्लभी नगरी के राजाओं की वंशावली—वल्लभी नगरी के राजाओं का जैनधर्म के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा है, जैनधर्म के कई महत्त्वपूर्ण कार्य इसी वल्लभी नगरी में हुए हैं। वल्लभी नगरी तीर्थधिराज श्री शत्रुञ्जय के बहुत निकट आई हुई है। किसी समय वल्लभी नगरी शत्रुञ्जय की तलेटी भी मानी जाती

४ चटभट-पुलिस सिपाही
५ ध्रुव-ग्रास का हिसाब रखने वाला नवंशज अधिकारी वलटीया कुलकरणी के समान
६ अधिकरणिक-मुख्य जज
७ दंड पासिक-मुख्य पुलिस सआफिर
८ चौरद्धर्णिक-चोर पकड़ने वाला
९ राजस्थानिय-विदेशी राजमंत्री
१० अमात्य-राज मंत्री
११ अनुत्पन्ना समुद्रमहक-पिच्छला कर वसूल करने वाला
१२ शौल्किक-चुंगी आफिसर
१३ भोगिक या भोगोद्धर्णिक-आमदनी या कर वसूल करने वाला
१४ वर्त्मपाल-मार्ग निरीक्षक सवार
१५ प्रतिसरक-क्षेत्र या ग्रामों के निरीक्षक
१६ विषयपति-प्रान्त का आफिसर
१७ राष्ट्र पति-जिला का अफसर
१८ ग्रामकूट-ग्राम का मुखिया

इससे अनुभव लगाया जा सकता है कि उस समय राज व्यवस्था कितनी अच्छी थी।

वल्लभी राजवंश की नामावली—

इन राजाओं का चिन्ह वृषभ का है तथा ई० सं० ३१९ से वल्लभी सवत् भी चलाया था।

१ सेनापति भट्टारक	ई० स०	५०९-५२०	(छः वर्ष का पता नहीं)
२ ध्रुवसेन (१)	,,	५२६-५३५	(चार वर्ष का पता नहीं)
३ महसेन	,,	५३९-५६९	
४ धारसेन	,,	५६९-५८९	नं० ३ का पुत्र
५ शिलादित्य (१)	,,	५९०-६०९	नं० ४ का पुत्र
६ खरग्रह	,,	६१०-६१५	नं० ५ का भाई
७ धारसेन (३)	,,	६१५-६२०	नं० ६ का पुत्र
८ ध्रुवसेन (२)	,,	६२०-६४०	नं० ७ का भाई
९ धारसेन (४)	,,	६४०-६४९	नं० ८ का पुत्र
१० ध्रुवसेन (३)	,,	६५०-६५६	देरा भट्ट का पुत्र
११ खरग्रह (२)	,,	६५६-६६५	नं० १० का भाई
१२ शिलादित्य (३)	,,	६६६-६७५	नं० ११ का भाई
१३ शिलादित्य (४)	,,	६७५ ६९१	नं० १२ का पुत्र
१४ शिलादित्य (५)	,,	६९१-७२२	नं० १३ का पुत्र

१५ शिलालेख (६)	,,	७११-७६०	नं० १४ का पुत्र
१६ शिलालेख (७)	,,	७६०-७६६	नं० १५ का पुत्र

मरुधर देश के जैन नरेश—

मरुधर प्रदेश में आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज ने पदार्पण कर जैन धर्म की नींव डाली तब से ही वहाँ के नरेशों पर जैन धर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा सब से पहला उपकेशपुर के राजा उत्पलदेव ने जैन धर्म को स्वीकार किया बाद तो क्रमशः अन्य नरेश भी जैन धर्म को अपनाते गये और तत्पश्चात् सिन्ध कच्छ सौराष्ट्र लाट मेदपाट आवंती शूरसेन और पांचालादि देशों में भी उन आचार्यों ने घूम घूम कर सर्वत्र जैन ध प्रचार का खूब बढ़ाया जिसका उल्लेख वंशावलियों एवं पट्टावलियों में विस्तार से मिलता है।

उपकेशपुर के राजाओं की नामावली

१—राव उत्पलदेव—आप श्रीमाल नगर के राजा भीमसेन के पुत्र थे आपने ही उपकेशपुर को आबाद किया था आचार्य रत्नप्रभसूरि ने सब से पहला आप को ही वासक्षेप के विधि विधान से जैन बनाये थे और जैन धर्म के प्रचार में भी आप का ही सहयोग था आपने उपकेशपुर की पहाड़ी पर भ पार्श्वनाथ का विशाल एवं उतंग मन्दिर बनाया तथा मरुभूमि से सबसे पहला तीर्थ श्रीशत्रुंजय का संघ भी निकाला था इत्यादि मरुधर में यह सबसे पहला जैन नरेश हुआ।

२—राव धोमदेव—आप राव उत्पलदेव के पांच पुत्रों में बड़ा पुत्र है इसने भी जैन धर्म की उन्नति एवं प्रचार के लिये बड़ा ही भागीरथ प्रयत्न किया था।

३—राव कसदेव—यह राव धोमदेव का पुत्र है आपने जैन धर्म की प्रभावना बढ़ाते हुए उपकेशपुर में भ ऋषभदेव का मन्दिर बनाया था।

४—राव विजयदेव—यह राव कसदेव का लघु पुत्र है इसने उपकेशपुर से एक विराट् संघ तीर्थों को आचार्य सिद्धसूरि कर शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा की थी।

५—राव सारंगदेव—यह राव विजयदेव का पुत्र है इसके शासनकाल में उपकेशपुर में एक श्रमण एवं संघ सभा हुई थी जिसमें जैन धर्म का प्रचार के लिये खूब जोरों से उत्तेजना एवं प्रयत्न किया गया था।

६—राव धर्मदेव—यह राव सारंग का छोटा भाई था और बड़ा ही वीर था जैन धर्म का प्रचार के लिये आचार्य एवं श्रमणों का खूब हाथ बटाया था।

७—राव देवसी—आप राव धर्मदेव के पुत्र हैं इसने भी जैन धर्म की उन्नति के लिये तन मन और धन से खूब कोशिश की थी अंत में आप अपने छोटा पुत्र के साथ आचार्य कक्कसूरि के पास जैन दीक्षा स्वीकार की थी।

८—राव भैंससी—आप राव देवसी के पुत्र थे आपने अपने पिता का प्रारंभ किया भ महावीर के मन्दिर को पूरा करवा कर प्रतिष्ठा करवाई थी।

९—राव मोहनसी—आप राव भैंससी के पुत्र हैं आपके शासन समय एक जन संहार दुष्काल पड़ा था राजजी के प्रयत्न से उपकेशपुर के महाजनों ने एक एक दिन का खर्चा देकर देशवासी मनुष्यों और पशुओं का पालन किया।

१०—राव रत्नसी—आप राव मोहणसी के पुत्र हैं आपके शासनकाल में कई विदेशियों के आक्रमण हुए थे आपके सेनापति आदित्यनाग गौत्रीय वीर भाडू था और उनकी वीरता से ही आप विजयी हुये थे।

११—राव नाडसी—आप राव रत्नसी के लघु पुत्र हैं आपके शासन समय जैन धर्म अच्छी उन्नति पर था आप के एक पुत्र दो पुत्रियों ने जैन दीक्षा ली थी।

१२—राव हुला—यह राव नाडसी के पुत्र हैं आपके परम्परासे चला आया धर्म में आशका करके पाखंडियों के अधिक परिचय के कारण जैन धर्मसे परांमुख होगये थे पर आचार्य सिद्धसूरि के सद् उपदेश से पुन' जैन धर्म में स्थिर हो जैन धर्म की खूब प्रभावना की आपके एक पुत्र ने जैन दीक्षा भी ली थी।

१३—राव लाखो—आप राव हूल्ला के पुत्र और बड़े ही प्रतापी राजा थे।

१४—राव भ्रुम—आप राव लाखा के पुत्र हैं आपके समय एक देशव्यापी दु काल पड़ा था जिसमें आपने बहुत द्रव्य व्ययकर अपनी प्रजा के प्राण बचाये थे और बहुत लोगों को जैनधर्म में स्थिर रखे।

१५—राव केतु—आप राव भ्रुम के पुत्र हैं आप बड़े ही धर्मात्मा थे जैन श्रमणों की उपासना में आप हमेशा उपस्थित रहते थे आपने तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर यात्रा की तथा वहाँ पर एक जैन मन्दिर बनवाया और सधर्मी भाइयों को एक एक लड्डू में पांच पांच सोना मुहरों की प्रभावना दी थी

१६—राजा मूलदेव—आप राव केतु के पुत्र हैं आपने जैनधर्म का प्रचारार्थ उपकेशपुर में एक श्रमण सभा बुलाकर बड़ा ही स्वागत किया था एव परामणी दी थी।

१७—राजा करणदेव—आप मूलदेव के लघु बान्धव थे आपके प्रधान मत्री श्रेष्टि गौत्रीय वीर राजसी था और सेनापति बाप्पनाग गोत्रीय शाह सुरजन थे इनके प्रयत्नों से आप अपने राज की सीमा बहुत बढ़ायी और जैनधर्म का भी काफी प्रचार बढ़ाया था।

१८—राजा जिनदेव—आप करणदेव के पुत्र थे आपका शासन बड़ा ही शान्तमय था। आपका लक्ष राजकी अपेक्षा धर्म की ओर अधिक झुका हुआ था।

१९—राज भीमदेव—आप जिनदेव के पुत्र थे। आपने संघ के साथ शत्रुंजय गिरनार की यात्रा की और बारहग्राम तीर्थ खर्च के लिये भेंट किये थे।

२०—राव भोपाल—आप भीमदेव के पुत्र थे। आपके शासन समय विदेशियों के देश पर हमले होते थे एक जत्था उपकेशपुर पर भी आक्रमण किया किन्तु राव भोपाल उसका सामना कर भगा दिया था जैसे राव भोपाल वीर था वैसे ही उसकी सेना भी बडी लड़ाकू थी सेना में अधिक सिपाही उपकेसवश के ही थे। इतना ही क्यों पर सेनापति वगैरह भी उपकेशवश के वीर रहे थे।

२१—राव त्रिभुवनपाल—आप राव भोपाल के पुत्र थे आप भी जैनधर्म के प्रचारक थे आपने आचार्यदेव को बहुत आग्रह से उपकेशपुर में चतुर्मास करवाया था और आपने खूब मन तन और धन से लाभ उठाया आपका सधर्मी भाइयों की ओर बहुत अधिक लक्ष था।

२५—राव रेखो—आप राव त्रिभुवनपाल के पुत्र थे। आपकी माता वाममार्गियों की उपासका थी जिससे आप पर भी थोड़ा बहुत असर होगया था पर उपकेशपुर के राजा प्रजा का भाव धर्म एक

जैनधर्मी ही था वे कब चाहते कि हमारे राजा वाममार्गी हो पर राजा के सामने चलती भी किसकी थी एक बार विहार करते आचार्य रत्नप्रभ सूरि का पधारना उपकेशपुर में हुआ और लोगों ने राजा से विनती भी की। इधर वाममार्गियों का भी उपकेशपुर में आना होगया। बस फिर तो था ही क्या उन्होंने राज्याश्रय लेकर अपना प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न करना प्रारंभ किया इस बात विवाद ने इतना जोर पकड़ा कि जिसका निर्णय राजा की राजसभा में होना निर्धारित हुआ राजा ने भी दोनों पक्ष के अग्रेसर नेताओं को आमंत्रण कर सभा में बुलाया और उन दोनों का आपसी शास्त्रार्थ करवाया जिसमें विजय माला जैनों के ही कण्ठ में शोभायमान हुई और राजजी अपना लघु पुत्र—धवलसेन के साथ जैन धर्म को स्वीकार किया फिर तो था ही क्या राजा ने जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया।

२३—राव सिंहो—आप राव देवा के पुत्र थे आप भी बड़े ही धर्मात्मा राजा हुए आपने उपकेशपुर में एक शान्तिनाथ का मन्दिर बनाकर सातसाम पूजा के लिये भेंट देते थे और आपके जिनदेव की पूजा का अटल नियम था।

२४—राव मूलदेव (१) आप सिंहदेव के पुत्र थे आपके सात पुत्रियां होने पर भी कोई पुत्र नहीं था। आपके सच्चायिका देवी का पूर्ण इष्ट था पुत्र चिन्ता के कारण आप देवी के सामने प्राणों का भी दान देने को तैयार हो गये तब देवी अपने ज्ञान बल से जानकर वरदान दिया कि हे भक्त! तेरे एक वर्षों पर सात पुत्र होंगे पर कोई दीक्षा ले तो रुकावट न करना फिर तो था ही क्या राजा के क्रमशः सात पुत्र होगये जिसमें पांच पुत्रों ने जैन दीक्षा ले ली थी राजा मूलदेव ने पांच लाख द्रव्य व्यय कर अपने पांचों पुत्रों को जैन दीक्षा दिलाई थी।

२५—राव भीमदेव (२) आप राजा मूलदेव के सात पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र थे आप दीक्षा के रंग में रंगे हुए थे। भोगावली कर्म शेष रह जाने के कारण आप दीक्षा तो नहीं ले सके पर वे राज करते हुए भी जैन धर्म के अभ्युदय के लिये ठीक प्रयत्न किया आपने आचार्य कक्कसूरि का उपकेशपुर में चतुर्मास करवाकर एक विराट् श्री संघ सभा करवाई जिससे जैन धर्म की बहुत बड़ी उन्नति हुई।

२६—राव अक्षयदेव—आप राव भीमदेव के पुत्र थे आप बड़े ही शान्ति प्रिय थे।

२७—राव-समास—आप अक्षयदेव के पुत्र थे आपकी वीरता की बड़ी भारी धाक जमी हुई थी आपने कई युद्धों में अपनी वीरता का परिचय दिया था दानेश्वरी तो आप इतने थे कि दान देते वक्त आगे पीछे का कोई विचार नहीं करते थे।

२८—राव-माली—यह राव नूपाल के पुत्र थे आप जैन धर्म पालन एवं प्रचार करने में अपने जीवन का अधिक हिस्सा दिया था। वंशावलियों में आचार्य सिद्धसूरि के समय तक उपकेशपुर के राजाओं की वंशावली राव मालदेव तक दी है जिसको हमने यहाँ दर्ज कर दी है हाँ वंशावलियों में इन राजाओं का विस्तार से वर्णन किया है परन्तु बढ़ जाने के भय से मैंने यह संक्षिप्त में नामावली ही लिखा है।

चन्द्रावती के राजाओं की वंशावली—

१—राजा चन्द्रसेन—आप राजा जयसेन के पुत्र थे पाठक ! पूर्व प्रकरणों में पढ़ आये हैं कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर के राजा जयसेन को प्रतिबोध देकर जैन धर्मी बनाया राजा जयसेन के दो पु

थे भीमसेन-चन्द्रसेन भीमसेन ने श्रीमाल का राज किया और चन्द्रसेन ने चन्द्रावती नगरी बसा कर वहाँ का राज किया इन नया राज आबाद करने का कारण आपस में धर्म भेद ही था राजा चन्द्रसेन जैन धर्म का उपासक था तब भीमसेन ब्राह्मण धर्मी एवं वाममार्गी था भीमसेन जैनों पर अत्याचार करने के कारण चन्द्रसेन ने जैनों के लिये नया नगर को आबाद कर उसका नाम चन्द्रावती रख वहा का राज किया चन्द्रावती में उस समय राजा प्रजा जैन ही थे और बाद में भी जैनों का ही अग्रेश्वर बना रहा था राजा चन्द्रसेन ने जैन धर्म का प्रचार के लिये खूब भागीरथ प्रयत्न किया आपने नूतन नगर के साथ भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर भी बनवाया इतना ही क्यों पर उस नगर के जितने वास—मुहल बसाया प्रत्येक वास में रहने वाले सेठ साहुकारों की ओर से एक एक जैन मन्दिर बना दिया था।

२—धर्मसेन—आप राजा चन्द्रसेन के पुत्र थे—आपने अपने पिता की तरह जैन धर्म की खूब सेवा की इस धर्म भावना के ही कारण आपका नाम धर्मसेन पड़ा है।

३—अर्जुनसेन—आप राजा धर्मसेन के पुत्र थे आपने चन्द्रावती से शत्रुँजय की यात्रार्थ एक विराट् सघ निकाला था और साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रकाएं की परामणी तथा वस्त्रों की लेन दी थी

४—ऋषभसेन—आप राजा अर्जुनसेन के पुत्र थे

५ रुपसेन—आप राजा ऋषभसेन के पुत्र थे

६—आनन्दसेन—आप राजा रूपसेन के पुत्र थे आपने चन्द्रावती के पास एक तालाब खुदाया था जिसका नाम आनन्द सागर था—

७—वीरसेन—आप राजा आनन्दसेन के पुत्र थे

८—भीमसेन—आप राजा वीरसेन के पुत्र थे आपने यात्रार्थ तीर्थों का संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों का सुवर्ण मुद्रिकाओं से सत्कार किया था।

९—विजयसेन—आप राजा भीमसेन के पुत्र थे। आपने आबू पर्वत पर भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाई

१०—जिनसेन—आप राजा विजयसेन के पुत्र थे आपने आबु के मन्दिर के लिये चार ग्राम दान में दिया तथा कुछ व्यापार पर भी लगान लगाया था

११—सज्जनसेन—आप राजा जिनसेन के पुत्र थे आपने तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला और प्रत्येक यात्री को पांच पाच तोला की कटोरी भावना में दी थी

१२—देवसेन—आप राजा सज्जनसेन के पुत्र थे

१३—केतुसेन—आप राजा देवसेन के पुत्र थे आपके प्रयत्न से सघ सभा हुई थी

१४—मदनसेन—आप राजा केतुसेन के पुत्र थे आपने एक मन्दिर बनवाया था

१५—भीमसेन (२) आप राजा मदनसेन के पुत्र थे आप बड़े ही दानेश्वरी थे

१६—कनकसेन—आप राजा भीमसेन के पुत्र थे आपने तीर्थ यात्रार्थ एक विराट संघ निकला जिसमें कई पांच लाख गृहस्थ थे १५२ देरासर १००० साधु आचार्यादि सघ बड़ा ठाठ से निकला साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिकाए की परामणी दी आपने और भी जैन धर्म के चोखे और अनोखे कार्य किये थे

१७—गुणसेन—आप राजा कनकसेन के पुत्र थे आपके दो पुत्र आचार्य के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में आपने पुष्कल द्रव्य व्यय कर जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की थी

१८—दुर्लभसेन—आप राजा गुणसेन के पुत्र थे आपके शासन समय में एक जबरदस्त दुकाल पड़ा था जिसमें आपने लाखों रुपये व्यय किये और प्रजा का पालन किया

१९—छत्रसेन—आप दुर्लभसेन के पुत्र और शांत प्रकृति के थे

२०—राजसेन—आप राजा छत्रसेन के पुत्र थे

२१—पृथुसेन—आप राजा राजसेन के पुत्र थे

२२—अजितसेन—आप राजा पृथुसेन के पुत्र थे

२३—देवसेन—(२) आप राजा अजितसेन के पुत्र थे

२४—मुकसेन—आप राजा देवसेन के पुत्र थे

२५—राव नोडा—आप राजा मुकसेन के पुत्र थे

२६—राव मोरा—आप रावनोडा के पुत्र थे

२७—रावनारायण—आप रावमोरा के पुत्र थे

२८—राव दुरजन—आप रावनारायण के पुत्र थे

मांडव्यपुर की राज वंशावली

श्रीमाल का राजकुमार उत्पलदेव ने उपकेशपुर को आबाद किया था उस समय मांडव्यपुर (मंडोवर) में राव मांडा का राज था और राव मांडा ने उत्पलदेव को आपकी पुत्री परणाई थी जिससे उसके आपस में सम्बन्ध होगया था राव मांडा ने उत्पलदेव को अच्छी मदद दी और कुछ भूमि भी दी थी जिससे राव उत्पलदेव अपना नया राज बसाने में अच्छी सफलता प्राप्त करली थी मांडव्यपुर के राजघराना पर भी आचार्य रत्नप्रभसूरि का अच्छा प्रभाव पड़ा था उस समय की जनता एक ओर तो वाममार्गियों के अत्याचारों से व्यथित थी दूसरी ओर ऊँच नीचके जातीयभेद भावों से दुःख करती थी उस समय जैनाचार्यों का उपदेश ने उन पर जादू से प्रभाव डाल दिया था कुछ एक दूसरों के सम्बन्ध का भी कारण हुआ करता है कुछ भी हो पर उस समय जैन धर्म का प्रभाव जनता पर जबरदस्त पड़ा था।

१—राव मांडो—इसने मांडव्यपुर में सब से प्रथम म० महावीर का मन्दिर बनाया।

२—सुरह—इसने शत्रुंजयादि तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला।

३—सुपडा—

४—करमण—इसने आचार्य के नगर प्रवेश महोत्सव में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

५—भालण—यात्रार्थ तीर्थों का संघ निकाला।

७—कालु—यह जैन धर्म का प्रचार करने में तत्पर रहता था।

८—दुर्गदेव—इसने तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला था।

९—चोहड—इसने किला के अन्दर २ मंजिल का मंदिर बनवाया था।

१—राणो—इसका मंत्री जैति रायमल था वह बड़ा ही वीर था।

११—हाना—इसके शासन में एक श्रमण सभा हुई थी।
१२—करणदेव—इसने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया था।
१३—महीपाल—इसने दुकाल में पुष्कल द्रव्य व्यय कर शत्रुकार दिया था।
१४—दे दो—इसने तीर्थों का संघ निकाल यात्रा की थी।
१५—कानड़—इसने सूरिजी के प्रवेश महोत्सव में नौ लाख द्रव्य खर्च किया।
१६—लाखो—राव लाखा के पुत्र पुनड़ ने बड़े ही समारोह से दीक्षा ली थी।
१७—घुहड़—इसने बारह व्रत एवं चतुर्थ व्रत ग्रहण किया था।
१८—राजल—राव राजल बड़ा ही वीर शासक था।
१९—मुकन्द—इसने जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की थी।

भीन्नमाल के राजाओं की वंशावली

१—राजा जयसेन—स्वयं प्रभसूरि के उपदेश से जैन बना।
२—राजा भीमसेन - ब्राह्मणों का पक्षकार वाममार्गी रहा।
३—अजितसेन—(युवराजपद के समय इसका नाम श्री पूँज था)
४—शत्रुसेन—इसने शिव मन्दिर बनाया था।
५—कुम्भसेन—यह जैन श्रमणों से द्वेष रखता था।
६—शिवसेन—इसने एक वृहद् यज्ञ करवाया था।
७—पृथुसेन—इसके शासन में जैन और ब्राह्मणों के बीच शास्त्रार्थ हुआ था।
८— गगसेन—इसने आचार्य के उपदेश से जैन धर्म स्वीकार किया।
९—रणमल्ल—इसने शत्रुंजय का संघ निकाला।
१०—जगमाल - इसने श्रीमाल में भ० महावीर का मन्दिर बनाया।
११—सारंगदेव—इसने पुनः ब्राह्मणों को स्थान दिया था।
१२—चणोट—यह राजा कट्टर जैनधर्मी था और जैन धर्म का खूब प्रचार किया।
१३—जोगड़—इसने तीर्थों का विराट संघ निकाला
१४—कानड—इसके शासन में विदेशिया का हमला श्रीमालपुर पर हुए
१५—रावल—इसने भ० महावीर का मन्दिर बनाया
१६—दोहड़ इसने आबुर्दाचल का संघ निकाल यात्रा की थी
१७—अजितदेव—इनके समय चन्द्रावती के राजा गुणसेन के साथ लड़ाई हुई
१८—मुजल—यह बड़ा ही वीर राजा था और जैनधर्म का कट्टर अनुयायी भी था
१९—मालदेव— .. ..
२०—भीमदेव—
२१—झुंजार—इसके समय गुजरो ने भीलमाल पर आक्रमण कर राज छीन लिया बाद गुजरों ने राज किया—

४—पुनड़—इसके पुत्र रामाने जैन दीक्षाली थी।
५—धुवड़— इसने अपने राज में अमर पडहा की उद्घोषणा की।
६—शाहड़—... ....
७—कानड़—इसने शत्रुंजय पर मन्दिर बनाया।
८—कक्क— इसने शंखपुर में महावीर का मन्दिर बनाया।
९—जहेल—यह बड़ा ही वीर राजा हुआ था।
१०—नाहड़ (२) यह राजा विलासी था।

राव नाहड़ का राजा उपकेशपुर का राव रत्नसी ने छीन कर उसक ोउपकेशपुर की सीमा में मिला लिया उस समय से ही शंखपुर के राज की गणना उपकेशपुर में होने लगी—उपकेशपुर का राव रत्नसी बड़ा ही वीर राजा हुआ और वह था भी बड़ा ही विचार दक्ष उसने यह सोचा होगा कि इस समय विदेशिया के आक्रमण भारतपर हुआ करते हैं अतः आपस में भिन्न भिन्न शक्तियों को एकत्र कर अपना संगठन बल मजबूत करने की आवश्यकता है।

वीरपुर के राजाओं की वंशावली—

विक्रम की दूसरी शताब्दी में आचार्य रत्नप्रभसूरि (सोलहवें पट्टधर) ने वीरपुर में पदार्पण कर वाम मार्गियों के साथ राज सभा में शास्त्रार्थ करके उनको पराजय कर वहाँ के राजा वीरधवल राजपुत्र वीरसेनादि राजा प्रजा को जैन धर्म की दीक्षा दी थी इस शुभ कार्य में विशेष निमित कारण उपकेशपुर की राज कन्या सोनलदेवी का ही था उसने पहले से ही क्षेत्र साफ कर रखा था कि आचार्यश्री का धर्म बीज तत्काल फल दात बन गया इतना ही क्यों पर राजपुत्र वीरसेन अपने कुटुम्ब के साथ सूरीश्वरजी के चरणार्विन्द में जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी राजाओं की नामावली—

१ राजा वीरधवल—आपके बड़े पुत्र वीरसेन ने जैन दीक्षा ली थी
२ देवसेन—इसने वीरपुर मे जैन मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाई थी
३ केतुसेन—इसके पुत्र हाल्ड ने मुनि वीरसेन के पास दीक्षा ली थी
४ रायसेन—इसने तीर्थों का सघ निकाला था
५ धर्मसेन—इसने वीरपुर में महावीर का मन्दिर बनवाया था
६ दुर्लभसेन—दुर्लभसेन-ब्राह्मणों का परिचय से जैन धर्म को छोड़ वाममर्गियों के पक्ष में हो गया था वह भी यहा तक कि विना ही कारण जैनों को तकलीफ देने में तत्पर हो गया जब इस बात का पता उपकेशपुर के नरेश को मिला तो उसने तत्काल ही वीरपुर पर चढ़ाई कर दी और युद्ध कर राव दुर्लभ को पकड़ कर उपकेशपुर ले आया और वीरपुर पर अपनी हकूमत कायम कर दी

नागपुर के राजाओं की—वंशावली

नागपुर—जिसको आज नागोर कहते हैं मरुधर प्रदेश में एक समय नागपुर भी स्वतंत्र राज का नगर था इस नगर को उपकेशपुर के राजा के सेनापति शिवनाग ने आबाद किया था। शिवनाग—आदित्य-नाग की सन्तान परम्परा में थे आपकी रण कौशल्य से प्रसन्न हो राव हुल्ला ने यह प्रदेश शिवनाग को बक-

सिक्का-प्रकरण

जब से अंग्रेज सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा शोध खोज एवं खुदाई का कार्य प्रारम्भ हुआ तब से ही भूगर्भ में रहे हुए भारतीय बहुमूल्य साधन एवं विपुल सामग्री उपलब्ध होने लगी है जिसमें प्राचीन मन्दिर मूर्त्तियों स्तूप स्तम्भ शिलालेख आज्ञालेख खण्डगलेख ताम्रपत्र दानपत्र और प्राचीन सिक्के मुख्य माने जाते हैं और इतिहास के लिये तो ये अपूर्व साधन समझे जाते हैं इन साधनों द्वारा प्राचीन समय की राजनैतिक सामाजिक धार्मिक एवं राष्ट्रीय तथा उस समय के रीति रिवाज हुन्नरोद्योग शिल्प वगैरह २ और किस किस राष्ट्रीय का पतन एवं उत्थान का पता हम सहज ही लगा सकते हैं इन साधनों के अभाव कई कई देशों के राजाओं का नाम निशान तक भी हम नहीं जान सकते थे हम यह भी नहीं जानते थे कि कौन कौन जाति या बाहर से आकर अपनी राजसता जमा कर राज किया था। पर उपरोक्त साधनों के आधार पर विद्वानों ने अनेक वंशों के राजाओं के इतिहास की इमारतें खड़ी करदी है। फिर भी वे साधन पर्याप्त न होने के कारण विद्वानों ने अपना अनुभव एवं कई प्रकार के अनुमानों का मिश्रण करके इतिहास लिखक जनता के सामने रक्खा है हाँ उन विद्वान लेखकों के आपस में कहीं कहीं मतभेद भी दृष्टि गोचर होता है इसका मुख्य कारण साधनों की त्रुटी ही समझना चाहिये कारण इतना स्वल्प साधनो पर प्राचीन समय का इतिहास लिखना कोई साधारण बात नहीं है खैर विद्वानों के आपस में कितना ही मतभेद हो पर हमारे लिये तो उन्हों का लिखा इतिहास एक पथ प्रदर्शक एवं महान् उपकारिक ही है जिसका हम हार्दिक स्वागत करते हैं।

उपरोक्त प्राचीन साधनों के अन्दर से हम यहाँ पर प्राचीन सिक्कों के विषय ही कुछ लिखना चाहते हैं जो इतिहास के लिये परमोपयोगी साधन समझा जाता है। प्रथम तो यह कहा जाता है कि सिक्काओं की उत्पत्ति कब से हुई ? इस विषय में विद्वानों का मत है कि सिक्काओं की शुरुआत शिशु नाग-वंशी सम्राट् बिंबसार के शासन समय में हुई थी और इस मान्यता की साबूति के लिये यह भी कहा जाता है कि भारत के चारों ओर की शोध खोज करने पर हजारों सिक्के मिले हैं जिसमें इ० स० की छटी शताब्दी के पूर्व का एक भी सिक्का नहीं मिला है अत अनुमान करनेवालों को कारण मिलता है कि सिक्का की शुरुआत इ० स० पूर्व की छटी शताब्दी में ही हुई हो साथ में यह भी कहा जाता है कि सम्राट् बिंब-सार ने अपने शासन में व्यापार की सुविधा के लिये पृथक २ व्यापार की श्रेणियां बना दी थी—जैसे-वणिक, सुनार, लुहार, सुथार, ठठेरा, दर्जी, बनकर तेली, तबोली, नाई गान्धी वगैरह २ वे श्रेणियां अपना अपना कार्य किया करे इस प्रकार श्रेणिया बनाने के कारण ही राजा बिंबसार का अपर नाम श्रेणिक पड़ गया था और जैनशास्त्रों में तो विशेष इस नाम का ही प्रयोग हुआ दृष्टिगोचर होता है कई पश्चात्य विद्वानों का भी यही मत है कि सबसे पहले सिक्का व्यापारियों ने अपने व्यापार की सुविधा के लिये ही बनाये थे बाद में जब सिक्काओं का प्रचार बढ़ने लगा तब उस पर राज ने अपनी प्रभुत्व जमानी शुरू करदी

१ 'Wealth in those early times being computed in cattle, it was only natural, the ox or cow should be employed for this purpose, In Europe then, and also in India, the cow stood as the higher unit of Barter. (Barter exchang in kind) At

खैर ! यह मान लिया जाय कि सिक्काओं का चलाना सम्राट् श्रेणिक के समय से ही प्रारम्भ हुआ था पर एक सवाल यह पैदा होगा कि उस समय के पूर्व वाणिज्य व्यापार तथा माल का लेना देना कैसे होता था तथा शास्त्रों में यह भी कहा जाता है कि अमुक सेठ इतने करोड़ की अमुक ५ करोड़ की आसामी था सिक्का बिना यह गिनती कैसे लगाई गई होगी ? इसके लिये कहा जाता है कि प्रथम माल का लेन देन तो माल के बदले माल ही दिया जाता था जैसे धान देकर गुड़ लेना घृत देकर कपड़ा लेना तथा पशु बदला देकर माल लेना और विशेष व्यापार तथा दूर दूर देशों में थोक बद्ध माल बेचना उसके लिये हेममुद्री तथा रत्न मोतियों से भी व्यापार किया जाता था और उस सोना रत्न माणक मोतियों की वजन से अनुमान किया जाता था कि इस व्यक्ति के पास इतना द्रव्य है और आज भी जहाँ पाश्चात्य शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं है वहाँ के किसान लोग धान गाय बकरा देकर माल खरीद किया करते हैं तथा जैन शास्त्रों में धन्ना सेठ [illegible] वगैरह बहुत व्यापारियों के वर्णन में हेममुद्री का उल्लेख मिलता है कि वे हेममुद्री देकर लाखों का माल खरीद किया था। इससे पाया जाता है कि सिक्का का चलन सम्राट् श्रेणिक के शासन में ही प्रारम्भ हुआ होगा। दूसरा अभी थोड़े समय में सिन्ध एवं पंजाब देश के बीच में भूगर्भ से दो नगर निकले हैं वे नगर ई० सं० पूर्व कई पांच हजार वर्ष जितने प्राचीन होने बतलाये जाते हैं उन नगरों के अन्दर बहुत प्राचीन पदार्थ निकले हैं पर प्राचीन एक भी सिक्का नहीं मिला यदि प्राचीन काल में सिक्का का चलन होता तो थोड़ी बहुत संख्या में सिक्के अवश्य मिलते ! जब तक कोई प्राचीन सिक्का नहीं मिल जाय तब तक तो विद्वानों की यही धारणा है कि सिक्काओं की शुरुआत ई० सं० पूर्व छठी शताब्दी में हुई थी फिर भी अनुमान वाला विश्वासनिक नहीं कह सकता है

वर्तमान में जितने सिक्के मिले हैं वे तीन प्रकार के हैं १—धातु के काटे हुए टुकड़े जिस पर पेन्च और हथोड़ा से सिक्का की छाप पड़ी हुई २—धातु को गाल कर भूमि पर छोटे-छोटे सिक्काकार खाड़ा कर उसमें गाला हुआ धातुरस डाल कर सिक्का बनाना ३—टकसाल के जरिये सिक्का पड़ना। इन तीन प्रकार के सिक्कों में पहला धातु के काटे हुए टुकड़ों को पेन्च हथोड़ा से छाप लगाना सम्राट् बिम्बसार के समय के तथा धातु का रस बना कर भूमि पर डाल कर सिक्का बनाना नंदवंश, एवं मौर्यवंश के राजाओं के समय के हैं और सम्राट् सम्प्रति के समय सम्राट ने टकसालों का निर्माण कर उन टकसालों द्वारा सिक्के चाले गये थे तथा राजा संप्रति के समय के बाद भी जहां पर टकसालें स्थापित नहीं हुई थी वहां पर डाल में सिक्के ही चलाये जाते थे। वर्तमान में मिले हुए सिक्काओं में कई सिक्के तो ऐसे हैं कि जिसके एक ओर छाप है और दूसरी ओर साफ चीकने हैं वे सिक्के सम्राट् श्रेणिक के समय के हैं कारण पेन्च हथोड़ा से सिक्क बनाने में एक ही ओर छाप पड़ सकती है दूसरी ओर साफ ही रहते हैं। जो

the lower end of the scale, for smaller purchases stood another unit which took various forms among different peoples. Shells, beads, knives and where those metals were discovered. Bars of Copper and Iron"

(See the Book of Coins of India" of "the Heritage of India Series written by C. J Brown M A Printed in 1922, P 13)

કોશાંબી, અવંતી, મગધ તથા પરચુરણ.
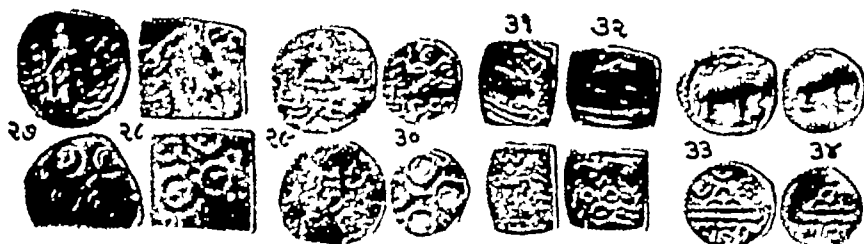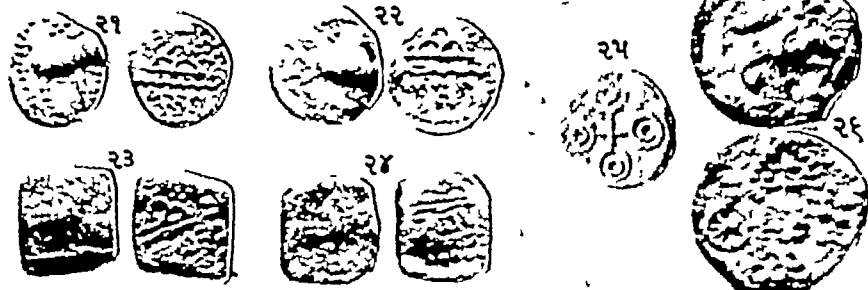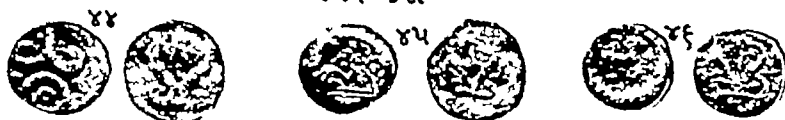
भूगर्भ से ... प्राचीन सिक्के

... कान्त एण्ड कम्पनी बड़ौदा के सौ.

सिक्के ऐसे भी हैं कि दो सिक्के साथ में जुड़े हुए हैं वे ढाल में सिक्के हैं कारण जिस भूमि पर धातु रस ढाले थे उस भूमि में दो सिक्कों के बीच जो थोड़ी सी भूमि रखी गई थी उस भूमि में थोथी—खालसी जमीन रह गई हो कि वे दो सिक्के साथ में ढल गये और साथ में ही रह गये शेष सिक्के दोनों ओर छाप खुदी हुई और एक-एक जुदा २ है जिसमें टंकसालों और ढाल में दोनों प्रकार के सिक्के हैं।

प्राप्त हुए सिक्काओं पर चिन्ह के लिए शायद उस जमाने में आत्माश्लाघा के भय से अपना नाम नहीं खुदवाते होंगे ? यही कारण है कि अधिक सिक्काओं पर नरेशों का नाम एवं संवत् नहीं पाया जाता है पर उन सिक्काओं पर राजाओं के वंश या धर्म के चिन्ह खुदवाये जाते थे शायद वे लोग अपने नाम की बजाय वंश एवं धर्म का ही अधिक गौरव समझते थे। उदाहरण के तौर पर कतिपय नरेशों के सिक्काओं पर अंकित किये जाने वाले चिन्हों का उल्लेख कर दिया जाता है कि जिससे यह सुविधा हो जायगी कि अमुक चिन्ह वाला सिक्का अमुक देश एवं अमुक वंश के राजाओं का चलाया हुआ सिक्का है तथा वे राजा किस धर्म की आराधना करने वाले थे।

१ शिशु नागवंशी राजाओं का चिन्ह नाग (सर्प) था तथा नन्दवंशी राजा भी शिशुनाग वंश की एक छोटी शाखा होने से उनका चिन्ह भी नाग का ही था विशेष इतना ही था कि शिशुनाग वंश बड़ी शाखा होने से बड़ा नाग अथवा दो सर्प और नन्दवंशी लघु शाखा होने से छोटा नाग तथा एक नाग का चिन्ह खुदाते थे। इन दोनों शाखाओं के सिक्के मिल गये और उनके ऊपर बतलाये हुए चिन्ह भी हैं।

२—मौर्यवंश के राजाओं के सिक्कों पर वीरता सूचक अश्व तथा अश्व के मयूर की कलगी का भी चिन्ह होता था।

३—सम्राट् सम्प्रति था तो मौर्यवंशी पर आपकी माता को हस्ती का स्वप्न आया था अतः सम्राट् ने अपना चिन्ह हस्ती का रखा और ऐसे बहुत से सिक्के मिल भी गये हैं।

४ तक्षशिल के राजाओं का चिन्ह धर्म चक्र का था ऐसे भी सिक्के उपलब्ध हुए हैं।

५ अंगदेश के नरेशों का चिन्ह स्वास्तिक का था।

६ वत्सदेश के राजाओं का चिन्ह छोटा बच्छड़ा का था।

७ आवंति-उज्जैन नगरी के भूपतियों के सिक्के पर एक चिन्ह नहीं कारण इस देश पर अनेक नरेशों ने राज किया और वे अपने अपने चिन्ह खुदाये थे तथापि राजा चण्डप्रद्योतन के सिक्काओं पर

१—C. J B P 18—The earliest of there copper coins, some of which may be as early as fifth centuary B C were cast P. 19 We find such cast coins being issued at the close of the third centuary by kingdoms of kaushambi, Ayodhya and Mathura

२—C J. B. P 18:—The earliest diestruch coins with a device of the coin only, have been assigned to the end of the & 4th Century B C Some of these with a lion device, were certainly struck at Taxilla where there are chiefly found P 19—The method of striking these early coins was peculiar, in that the die was impressed on the metal when hot So that a deep square incure which contains the device, appears on the coin

कुमार का चिन्ह कहा जाता है जो वीरता का चिन्ह था ।

८ कोशल देश के राजाओं का चिन्ह वृषभ तथा तालवृक्ष का था ।

९ पंचाल देश के नरेशों का चिन्ह एक देह के पांच मस्तक कारण इस देश में राज कन्या द्रौपदी ने पांच पाण्डवों को वर किये थे ।

१० आयुधम देश के राजाओं का चिन्ह शूरवीर का था ।

११ गर्दभ भील्लवंशी का चिन्ह लक्ष्मी का जो उनको सिद्धसिद्ध थी ।

१२ चक्रवर्ती राजाओं का चिन्ह चैत्य सूर्य चन्द्र था उनके नाम

१३ कुशान वंशी नरेशों का चिन्ह चैत्य या हस्ती सिंह का था ।

१४ गुप्तवंशी राजाओं का चिन्ह-स्वस्तिक एवं चैत्य का था ।

१५ आंध्रवंशी नरेशों का चिन्ह तीर कमान का था ।

इनके अलावा छोटे बड़े राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर लौकिक तथा अपने अपने धर्म का चिन्ह खुदाया करते थे । इससे पाया जाता है कि उस समय के राजाओं को अपने नाम की अपेक्षा अपने धर्म का गौरव विशेष था । जब हम जैनधर्म का इतिहास का अवलोकन करते हैं तो ई० स० की छठी शताब्दी से ई० स० की तीसरी चतुर्थी शताब्दी तक थोड़ा सा अपवाद छोड़ के सब के सब राजा जैन धर्म पालन करने वाले ही दृष्टि गोचर होते हैं । और उन नरेशों ने अपने २ सिक्काओं पर जो चिन्ह खुदाये हैं वे सब जैन धर्म से ही सम्बन्ध रखते हैं जैन धर्म के मुख्य चिन्हों के लिये कहा जाय तो वर्तमान का पिछा चौवीस तीर्थङ्कर हुए उन तीर्थङ्करों की जंघा पर एक एक शुभ लक्षण होता है जिसको लंछन एवं चिन्ह कहा जाता है और वर्तमान में जैनों की मूर्तियों भी पर वे ही चिन्ह अंकित हैं जैसे तीर्थङ्करों के क्रमशः १ वृषभ २ हस्ती ३ अश्व ४ बंदर ५ क्रौंच पक्षी ६ पद्मकमल ७ स्वस्तिक ८ चन्द्र ९ मगर १० श्रीवत्स ११ गैंडा १२ भैंसा १३ वराह १४ सिंचाणक १५ वज्र १६ मृग १७ बकरा १८ नन्दावर्त १९ कलश २० काछप २१ कमल २२ शंख २३ सर्प २४ सिंह जिसमें वृषभ हस्ती अश्व स्वस्तिक चन्द्र और सिंह का बहुत प्रसिद्ध हैं इनके अलावा तीर्थंकरदेव की माता को गर्भ समय चौदह स्वप्न के दर्शन भी होते हैं जैसे—वृषभ, सिंह, हस्ती, पुष्पमाला लक्ष्मीदेवी सूर्य चन्द्र, ध्वज कलश पद्मसरोवर विमान क्षीरसमुद्र रत्नों की राशी और निधूम अग्नि । अतः जैनधर्म के भक्त राजा उपरोक्त चिन्हों से चाहा उसी कोई भी चिन्ह अपने सिक्काओं पर अंकित करवा सकते थे और ऐसा ही उन्होंने किया है ।

वर्तमान समय जितने सिक्के मिले हैं उनमें से बहुत से सिक्काओं पर उपर बतलाये हुए चिन्ह मिलते हैं इससे पाया जाता है कि वे नरेश प्रायः जैनधर्म के ही उपासक थे और अपने धर्म गौरव के कारण ही अपने सिक्कों पर धर्म की पहचान के लिये वे चिन्ह खुदाये गए थे । पर हुआ है कि कई विद्वानों ने उन सिक्काओं को बौद्ध धर्मोपासक नरेशों का लिख दिये । इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने जैनधर्म के साहित्य का पूर्णतया अध्ययन नहीं किया था । पर बाद में जब उन विद्वानों ने जैनधर्म के साहित्य का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया तो उनका भ्रम कुछ अंश में दूर हो गया जैसे मथुरा का सिंह स्तम्भ को पहला पाश्चात्य विद्वानों ने बौद्धधर्म का ठहरा दिया था पर बाद में उसको जैनधर्म का साबित कर दिया । इस

प्रकार अनेक गलतियां रह गई हैं जिसको मैं यहां पर युक्ति एवं प्रमाणों द्वारा साबित कर बतलाऊंगा कि वे निर्पक्ष विद्वान किस कारण से भ्रांति में पड़ कर जैनों के लिये इस प्रकार अन्याय किया होगा ?

भारतीय धर्मों में केवल दो धर्म ही प्राचीन माने जाते हैं १--जैनधर्म २ वेदान्तिक धर्म। और ई० सं० पूर्व छटी शताब्दी में एक धर्म और उत्पन्न हुआ जिसका नाम बौद्धधर्म था जिसके जन्मदाता थे महात्मा बुद्ध। इन तीनों धर्मों में जैन और बौद्ध धर्म के आपस में तात्विक दृष्टि से तो बहुत अन्तर है पर बाह्य रूप से इन दोनों धर्म का उपदेश मिलता जुलता ही था इन दोनों धर्म के महात्माओं ने यज्ञ में दी जाने वाली पशु बली का खूब जोरों से विरोध किया था इतना ही क्यों पर उन दोनों महापुरुषों ने यज्ञ जैसी कुप्रथा को जड़ामूल से उखेड़ देने के लिये भागीरथ परिश्रम किया था और उसमें उनको सफलता भीअच्छी मिली थी यही कारण है कि उन महापुरुषों ने भारत के चारों ओर 'अहिंसा परमोधर्म' का खूब प्रचार किया अत वेदान्तिक मत वाले इन दोनों धर्मों जैन बोद्ध को नास्तिक कह कर पुकारते थे इतना ही क्यों पर उन ब्राह्मणों ने अपने धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर जैन और बौद्धों को नास्तिक होना भी लिख दिया और अपने धर्मानुयायियों को तो यहां तक आदेश दे दिया कि जहां जहां धर्म का प्रबल्यता है वहाँ ब्राह्मणों को सिवाय यात्रा के जाना ही नहीं चाहिये देखो 'प्रबन्ध चन्द्रोदय का ८७ वाँ श्लोक की उसमें स्पष्ट लिखा है कि अग बंग कलिंग सौराष्ट्र एवं मगद देश में जाने वाला ब्राह्मण को प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना होगा। पद्म पुराण में लिखा है कि कलिंग में जाने वाले ब्राह्मणों को पतित समझा जायगा। महाभारत का अनुशासन पर्व में गुजर्र (सौराष्ट्र) प्रान्तों को म्लेच्छों का निवास स्थान बतलाया है इत्यादि। इससे पाया जाता है कि इन देशों में जैन राजाओं का राज एव जैन धर्म की ही प्रबल्यता थी। दूसरा एक यह भी कारण था कि ब्राह्मणों ने वर्ण जाति उपजाति आदि उच्च नीच की ऐसी बड़ा बन्धी जमा रक्खी थी जिसमें विचारे शूद्रों की तो घास फूस जितनी भी कीमत नहीं थी धर्म शास्त्र सुनने का तो उनको किसी हालत में अधिकार ही नहीं था यदि कभी भूल चूक के भी धर्म शास्त्र सुनले तो उनको प्राणदंड दिया जाता था और इन बातों का केवल जबानी जमा खर्च ही नहीं रखा था पर सताधारी ब्राह्मणों ने अपने धार्मिक ग्रन्थ में भी लिख दिया था देखिये नमूना।

"अथ हास्य वेदमुप शृण्व तस्त्र पुजुतुभ्यां श्रोतप्रति पुरण मुदारणे जिह्वाच्छेदो धारणे भेदः

"गौतम धर्मं सूत्रम् १९५"

अर्थात् वेद सुनने वाले शूद्र के कानों में सीसा और लाख भर दिये जांय, तथा वेद का उच्चारण करने वाले शूद्र की जबान काट ली जाय और वेदों को याद करने एव छूने वाला शूद्र का शरीर काट दिया जाय।

न शुद्राय मति दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्, नचास्योपदियेद्धर्मं न चास्यव्रतमादिशेत्॥१४॥

"वाशिसधर्मं सूत्र"

अर्थात् शूद्र को बुद्धि न दें उसे यज्ञ का प्रसाद न दें और उसे धर्म तथा व्रत का उपदेश भी न दें।

इससे क्या अधिक कठोरता हो सकती है इसका अर्थ यह हुआ कि विचारे शूद्र लोग मनुष्य जन्म लेकर भी अपनी आत्मा का थोड़ा भी विकाश नहीं कर सके ? परन्तु भला हो भगवान महावीर एवं

महात्मा बुद्ध का कि उन्होंने उच्च नीच वर्ण जातियों उपजातियों का फैला हुआ विष वृक्ष को जड़ा मूल से उखेड़ कर फेंक दिया और धर्म मोक्ष के लिये सबको सम भागी बनाकर सबके लिये धर्म का द्वार खोल दिया। यह केवल कहने मात्र की ही बात नहीं थी पर उन महात्माओं का प्रभाव उनके भक्तों पर इतना गहरा एवं जबर्दस्त पड़ा कि सम्राट् श्रेणिक ने अपनी शादी एक वैश्य कन्या के साथ की तथा अपनी एक पुत्री को वैश्य के साथ एवं दूसरी पुत्री को शूद्र के साथ परणाई थी यह प्रथा केवल राजा श्रेणिक के समय प्रचलित होकर बन्द नहीं हो गई पर बाद में भी दोनों ने खूब जोर से जारी रक्खी थी जैसे नन्द राजा ने तो शूद्र कन्या के साथ विवाह किया, मौर्य चन्द्रगुप्त ने यूनानी बादशाह की कन्या के साथ शादी की सम्राट् अशोक विदेश नगरी के वैश्य कन्या से विवाह किया आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के क्षत्रियों और ब्राह्मणों को प्रतिबोध कर जैन बनाये उन्होंने भी ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता को उन्मूलन कर सबको समभागी बना दिये इसकी नींव डालने वाले भगवान महावीर ही थे और यह कार्य ब्राह्मण धर्म के खिलाफ ही था अतः वे ब्राह्मण जैन और बौद्धों को नास्तिक माने एवं लिख दें तो इसमें आश्चर्य जैसी बात ही क्या हो सकती है उस समय एक ओर तो ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता तथा यज्ञादि क्रिया काण्ड में असंख्य मूक प्राणियों की बली से जनता त्रासित हो उठी थी तब दूसरी ओर जैन एवं बौद्धों की शान्ति एवं समभाव का उपदेश फिर तो क्या देरी थी केवल साधारण जनता ही नहीं पर बड़े बड़े राजा महाराजा भगवान् महावीर के शान्ति झंडा के नीचे आकर शान्ति का श्वास लिया जिसमें भी महात्मा बुद्ध की बजाय जनता का झुकाव महावीर की ओर अधिक रहा था इसका कारण एक तो जैन धर्म प्राचीन समय से चला आता था भगवान् महावीर के पूर्व भ० पार्श्वनाथ के संतानिये केशीश्रमणाचार्य ने बहुत सा क्षेत्र साफ कर दिया था तब महात्मा बुद्ध जैन धर्म की दीक्षा छोड़ अपना नया मत निकाला था अतः जनता का झुकाव उनकी ओर कम होना स्वाभाविक था और कुछ भी हो पर उस समय वेदान्तिक धर्म बहुत कमजोर हो चुका था विद्वानों का कहना है कि यदि शुंगवंशी पुष्पमित्र ने जन्म नहीं लिया होता तो संसार में वैदिक धर्म का नाम शेष ही रह जाता यही कारण है कि जितने प्राचीन स्मारक जैन एवं बौद्धों के मिलते हैं वेदान्तियों के नहीं मिलते हैं।

मेरे इस लेख का आशय यह है कि उपरोक्त कथनानुसार ब्राह्मण धर्म वाले जैन और बौद्ध को अपने प्रतिपक्षी एक से ही समझते थे अतः उन्होंने अपने विरोध में जैन और बौद्धों को एक ही समझ कर जहाँ जैनों की बरबादी की वह उनको बौद्धों के नाम पर करना ही अर्थात् बौद्ध धर्म के पक्षपात से जैनों की प्राचीनता को प्रकट करने में रोक दिया फल यह हुआ कि पाश्चात्य विद्वानों ने वेदान्तियों का अनुकरण कर उन्होंने भी ऐसी ही भूल कर डाली और बहुत से जैनों के स्मारक भी उनकी बौद्धों के बता दिये।

अब जैन और बौद्धों के विषय में भी जरा ध्यान लगाकर देखें कि जैन एवं बौद्धों का अहिंसा के विषय में उपदेश तो मिलता जुलता ही था पर जैन जैसा अहिंसा का उपदेश देते थे वैसे ही आचरण में वर्त्ताव भी करते थे पर बौद्धों ने ऐसा नहीं किया बाद में वे अहिंसा का उपदेश करते हुए भी मांसाहारी बन गये यही कारण है कि जिस भारत भूमि पर बुद्ध धर्म का जन्म हुआ था उस भारत को छोड़ बौद्धों को पाश्चात्य प्रदेशों में जाना पड़ा। हाँ बौद्ध धर्म के नियम पाश्चात्यों के सब तरह से अनुकूल होने से वहाँ के लोगों ने

उनको शीघ्र ही अपनालिया अतः पाश्चात्य देशों में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार बढ़ गया। हाँ जैन श्रमण भी पाश्चात्य देशों में अपने धर्म प्रचारार्थ सम्राट् सम्प्रति की सहायता से गये थे और अपने धर्म का प्रचार भी किया था जिसकी साबूति में आज भी वहाँ जैन धर्म के स्मारक रूप मन्दिर मूर्तियों उपलब्ध होती है पर जैन धर्म खास त्यागमय धर्म है इस धर्म के नियम बहुत शक्त होने से संसार लुब्ध जीवों से पलने कठिन है। यही कारण है कि पाश्चात्य लोग जितने बौद्ध धर्म से परिचित थे उतने जैन धर्म से नहीं थे इतना ही क्यों पर कई कई विद्वानों ने तो यहाँ तक भूल कर डाली कि जैन धर्म एक बौद्ध की शाखा है तथा जैन धर्म बौद्ध धर्म से निकला हुआ नूतन धर्म है। दूसरा पाश्चात्य विद्वानों को जितना सहित्य बौद्ध धर्म का देखने को मिला उतना जैन धर्म का नहीं मिला था अतः भारत में जितने प्राचीन स्तूप सिक्के मिले उनको बौद्धों के ही ठहरा दिया। फिर वे स्मारक चाहे बौद्धों के हों चाहे जैनों के हों। और सिक्कों पर खुदे हुए चिन्हों के लिये भी चाहे वे जैन धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले भी क्यों न हों पर उन विद्वानों के तो पहले से ही संस्कार जमे हुए थे कि वे युक्ति सगति एव प्रमाण मिले या न मिले। सीधा अर्थ होता हो या इधर उधर की युक्ति लगाकर ही उन सबको बौद्धों का ही ठहराने की चेष्टा १ कर डाली। एक और भी कारण मिल गया है कि इ० स० की पांचवी शताब्दी से सातवीं आठवीं शताब्दी तक के समय में जितने चीनी यात्री भारत में आये और उन्होंने भारत में भ्रमण कर अपनी नोंध डायरी में जो हाल लिखा वे भी इसी प्रकार से काम लिया कि बहुत से जैन स्मारकों को बौद्ध के लिख दिये वे पुस्तकों के रूप में प्रकाशित होने से पाश्चात्य विद्वानों को ओर भी पुष्टी मिल गई। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने यह भूल जान बूझ एवं पक्षपात से नहीं की थी पर इस भूल में अधिक कारण जैनों का ही है कि उन्होंने अपने साहित्य को भंडारो की चार दीवारों में बान्ध कर रखा था कि उन विद्वानों को देखने का अवसर ही नहीं मिला बस उन्होंने जो इन्साफ दिया वह सब एक तरफी ही था—

जब से कुदरत ने अपना रुख जैनों की ओर बदला और विद्वानों की सूक्ष्म शोध (खोज) एवं जैन धर्म का प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात हुआ जिससे वे ही विद्वान लोग अपनी भूल का पश्चाताप करते हुए इस निर्णय पर आये कि जैन धर्म न तो बौद्ध धर्म से पैदा हुआ न जैन धर्म बौद्ध धर्म की एक शाखा ही है प्रत्युत जैन धर्म एक स्वतंत्र एवं प्राचीन धर्म है इतना ही क्यों पर बुद्ध धर्म के पूर्व भी जैन धर्म के तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ होगये थे और महात्मा बुद्धदेव के माता पिता भ० पार्श्वनाथसंतानियों के उपासक अर्थात् जैन धर्म का पालन करते थे विशेषत महात्मा बुद्ध को वैराग्योत्पन्न होने का कारण ही पार्श्वनाथ संतानिये थे और बुद्ध ने सबसे पहली दीक्षा जैन श्रमणों के पास ही ली थी और करीबन् ७ वर्ष आपने जैन दीक्षा पाली थी बाद जब उनका तप करने से मन हट गया तो उन्होंने अपना नया धर्म निकाला अत बौद्ध धर्म का जन्म जैन धर्म से हुआ कह दिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कही जाती है।

इधर उड़ीसा प्रान्त की खण्डगिरि उदयगिरि पहाड़ियों की गुफाओं का शोध कार्य करने पर महामेघ-

१—The gains appear to have originated in sixth or seventh century of our era to have become conspicuous in the eight or ninth century, got the highest prosperity in the eleventh and declined after the twelth"

(Elphistone History of India page 121)

महात्मा बुद्ध का कि उन्होंने उच्च नीच वर्ण जातियों उपजातियों का फैला हुआ विष वृक्ष को जड़ मूल से उखेड़ कर फेंक दिया और धर्म मोक्ष के लिये सबको सम भागी बनाकर सबके लिये धर्म का द्वार खोल दिया। यह केवल कहने मात्र की ही बात नहीं थी पर उन महात्माओं का प्रभाव उनके भक्तों पर इतना जबरी एवं जबर्दस्त पड़ा कि सम्राट् श्रेणिक ने अपनी शादी एक वैश्य कन्या के साथ की तथा अपनी एक पुत्री को वैश्य के साथ तथा दूसरी पुत्री को शूद्र के साथ परणाई थी यह प्रथा केवल राजा श्रेणिक के ऊपर प्रचलित होकर बन्द नहीं हो गई पर बाद में भी जैनों ने खूब जोर से चलाई रक्खी थी जैसे दूसरा नंदो राजा ने तो शूद्र कन्या के साथ विवाह किया, मौर्य चन्द्रगुप्त ने यूनानी बादशाह की कन्या के साथ शादी की सम्राट् अशोक विदिशा नगरी के वैश्य कन्या से विवाह किया आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के क्षत्रियों और ब्राह्मणों को प्रतिबोध कर जैन बनाये उन्होंने भी ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता को उन्मूलन कर सबको समभागी बना दिये इसकी नींव डालने वाले भगवान महावीर ही थे और यह कार्य ब्राह्मण धर्म के खिलाफ ही थे अतः वे ब्राह्मण जैन और बौद्धों को नास्तिक माने एवं लिख दें तो इसमें आश्चर्य जैसी बात ही क्या हो सकती है उस समय एक ओर तो ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता तथा यज्ञादि क्रिया काण्ड में असंख्य मूक प्राणियों की बली से जनता त्रासित हो उठी थी तब दूसरी ओर जैन एवं बौद्धों की शान्ति एवं समभाव का उपदेश फिर तो क्या देरी थी केवल साधारण जनता ही नहीं पर बड़े बड़े राजा महाराजा भगवान् महावीर के शान्ति झंडा के नीचे आकर शान्ति का श्वास लिया जिसमें भी महात्मा बुद्ध की बजाय जनता का झुकाव महावीर की ओर अधिक रहा था इसका कारण एक तो जैन धर्म प्राचीन समय से ही चलता आया था भगवान् महावीर के पूर्व भ० पार्श्वनाथ के सन्तानिय केशीश्रमणाचार्य ने बहुत सा क्षेत्र साफ कर दिया था तब महात्मा बुद्ध जैन धर्म की दीक्षा छोड़ अपना नया मत निकाला था अतः उनका का अनुयाय कमती और कम होना स्वाभाविक था और कुछ भी हो पर उस समय वेदान्तिक धर्म बहुत कम-जोर हो चुका था विद्वानों का कहना है कि यदि शुंगवंशी पुष्यमित्र ने जन्म नहीं लिया होता तो संसार में वैदिक धर्म का नाम शेष ही रह जाता यही कारण है कि जितने प्राचीन स्मारक जैन एवं बौद्धों के मिलते हैं वेदान्तियों के नहीं मिलते हैं।

मेरे इस लेख का सारांश यह है कि उपरोक्त कथनानुसार ब्राह्मण धर्म वाले जैन और बौद्ध को अपने प्रतिपक्षी एक से ही समझते थे अतः उन्होंने अपने विरोध में जैन और बौद्धों को एक ही समझ कर जहाँ जैनों की बदनाम की वह उनको बौद्धों के नाम पर चढ़ा दी अर्थात् बौद्ध धर्म के पक्षपात ने जैनों की प्राचीनता को प्रकट करने से रोक दिया अतः यह हुआ कि पाश्चात्य विद्वानों ने वेदान्तियों का अनुकरण कर उन्होंने भी ऐसी ही भूल कर डाली और बहुत से जैनों के स्मारक थे उनको बौद्धों के बतला दिये।

अब जैन और बौद्धों के विषय में भी जरा ध्यान लगाकर देखें कि जैन एवं बौद्धों का अहिंसा के विषय में उपदेश तो मिलता जुलता ही था पर जैन जैसा अहिंसा का उपदेश देते थे वैसे ही आचरण में बरताव भी करते थे पर बौद्धों ने ऐसा नहीं किया बाद में वे अहिंसा का उपदेश करते हुए भी मांसाहारी बन गये यही कारण है कि जिस भारत भूमि पर बुद्ध धर्म का जन्म हुआ था उस भारत को छोड़ बौद्धों को पाश्चात्य प्रदेशों में जाना पड़ा। हाँ बौद्ध धर्म के नियम गृहस्थों के उन प्रदेश के अनुकूल होने से वहाँ के लोगों ने

उनको शीघ्र ही अपनालिया अतः पाश्चात्य देशों में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार बढ़ गया। हाँ जैन श्रमण भी पाश्चात्य देशों में अपने धर्म प्रचारार्थ सम्राट् सम्प्रति की सहायता से गये थे और अपने धर्म का प्रचार भी किया था जिसकी साबूति में आज भी वहाँ जैन धर्म के स्मारक रूप मन्दिर मूर्तियों उपलब्ध होती है पर जैन धर्म खास त्यागमय धर्म है इस धर्म के नियम बहुत शक्त होने से संसार लुब्ध जीवों से पलने कठिन है। यही कारण है कि पाश्चात्य लोग जितने बौद्ध धर्म से परिचित थे उतने जैन धर्म से नहीं थे इतना ही क्यों पर कई कई विद्वानों ने तो यहाँ तक भूल कर डाली कि जैन धर्म एक बौद्ध की शाखा है तथा जैन धर्म बौद्ध धर्म से निकला हुआ नूतन धर्म है। दूसरा पाश्चात्य विद्वानों को जितना साहित्य बौद्ध धर्म का देखने को मिला उतना जैन धर्म का नहीं मिला था अतः भारत में जितने प्राचीन स्तूप सिक्के मिले उनको बौद्धों के ही ठहरा दिया। फिर वे स्मारक चाहे बौद्धों के हों चाहे जैनों के हों। और सिक्कों पर खुदे हुए चिन्हों के लिये भी चाहे वे जैन धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले भी क्यों न हों पर उन विद्वानों के तो पहले से ही संस्कार जमे हुए थे कि वे युक्ति संगति एवं प्रमाण मिले या न मिले। सीधा अर्थ होता हो या इधर उधर की युक्ति लगाकर ही उन सबको बौद्धों का ही ठहराने की चेष्टा १ कर डाली। एक और भी कारण मिल गया है कि ई० सं० की पांचवी शताब्दी से सातवीं आठवीं शताब्दी तक के समय में जितने चीनी यात्री भारत में आये और उन्होंने भारत में भ्रमण कर अपनी नोंध डायरी में जो हाल लिखा वे भी इसी प्रकार से काम लिया कि बहुत से जैन स्मारकों को बौद्ध के लिख दिये वे पुस्तकों के रूप में प्रकाशित होने से पाश्चात्य विद्वानों को और भी पुष्टी मिल गई। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने यह भूल जान बूझ एवं पक्षपात से नहीं की थी पर इस भूल में अधिक कारण जैनों का ही है कि उन्होंने अपने साहित्य को भंडारो की चार दीवारों में बान्ध कर रखा था कि उन विद्वानों को देखने का अवसर ही नहीं मिला बस उन्होंने जो इन्साफ दिया वह सब एक तरफी ही था—

जब से कुदरत ने अपना रुख जैनों की ओर बदला और विद्वानों की सूक्ष्म शोध (खोज) एवं जैन धर्म का प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात हुआ जिससे वे ही विद्वान लोग अपनी भूल का पश्चाताप करते हुए इस निर्णय पर आये कि जैन धर्म न तो बौद्ध धर्म से पैदा हुआ न जैन धर्म बौद्ध धर्म की एक शाखा ही है प्रत्युत जैन धर्म एक स्वतंत्र एवं प्राचीन धर्म है इतना ही क्यों पर बुद्ध धर्म के पूर्व भी जैन धर्म के तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ होगये थे और महात्मा बुद्धदेव के माता पिता भ० पार्श्वनाथसतानियों के उपासक अर्थात् जैन धर्म का पालन करते थे विशेषतः महात्मा बुद्ध को वैराग्योत्पन्न होने का कारण ही पार्श्वनाथ सतानिये थे और बुद्ध ने सबसे पहली दीक्षा जैन श्रमणों के पास ही ली थी और करीबन् ७ वर्ष आपने जैन दीक्षा पाली थी बाद जब उनका तप करने से मन हट गया तो उन्होंने अपना नया धर्म निकाला अतः बौद्ध धर्म का जन्म जैन धर्म से हुआ कह दिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कही जाती है।

इधर उड़ीसा प्रान्त की खण्डगिरि उदयगिरि पहाड़ियों की गुफाओं का शोध कार्य करने पर महामेघ-

१—The gains appear to have originated in sixth or seventh century of our era to have become conspicuous in the eight or ninth century, got the highest prosperity in the eleventh and declined after the twelth"

(Elphistone History of India page 121)

[illegible] चक्रवर्ति महाराजा खारवेल का एक विस्तृत शिलालेख मिल गया जिसको एक शताब्दि के पूरे परिश्रम द्वारा पढ़ा गया तो मालूम हुआ कि कलिंगपति खारवेल राजा जैन धर्मोपासक एवं प्रचारक था साथ में यह भी निर्णय होगया कि मगध के नन्दवंशी राजा भी जैन थे क्योंकि शिलालेख में ऐसा भी उल्लेख है कि मगध का राजा नन्द कलिंग देश से जिन मूर्ति लेगया था वह मूर्ति पुनः राजा खारवेल कलिंग में ले आया था आगे उसी पहाड़ी की एक गुफा में एक पत्थर पर भगवान् पार्श्वनाथ का चरित्र भी खुदा हुआ मिला जिससे यह भी सिद्ध होगया कि भ० महावीर के पूर्वगामी भ० पार्श्वनाथ हुए थे अतः जैन धर्म बौद्ध धर्म से बहुत प्राचीन एवं स्वतंत्र धर्म है।

अब आगे चल कर हम राजाओं की ओर देखते हैं कि ई० सं० पूर्व की छठी शताब्दि से लेकर ई० सं० की तीसरी चतुर्थी शताब्दि तक थोड़े से अपवाद को छोड़ कर जितने राजा हुए वे सब के सब जैन धर्मी ही थे केवल अशोक बौद्ध और शुंगवंशी पुष्यमित्र वेदधर्मी थे जब राजा जैन धर्मी थे तब उनके बनाये स्मारक एवं सिक्के दूसरे धर्म के कैसे हो सकते हैं ? विद्वानों का तो यहां तक मत है कि क्या मन्दिर मूर्तियों, क्या स्तूप-स्तम्भ और क्या सिक्के इन सब की शुरूआत जैनों की ओर से ही हुई है दूसरे धर्म वालों ने तो जैनों की देखा-देखी ही किया है। अतः उपलब्ध सिक्काओं में अधिकांश सिक्के जैन धर्मोपासक राजाओं के बनाये हुए हैं और इस बात की साबूती अलग-अलग सिक्काओं पर के चिन्ह ही दे रहे हैं। पाठकों की जानकारी के लिये कतिपय सिक्कों का ब्लॉक यहाँ पर दे दिये जाते हैं जिससे जिज्ञासु पाठक स्वयं निर्णय कर सकेंगे।

स्तूप-प्रकरण

पिछले प्रकरण में हम सिक्काओं के विषय में संक्षिप्त से लिख आये हैं अब इस प्रकरण में प्राचीन स्तूपों के लिये उल्लेख करेंगे। पर पहले यह कह देना ठीक होगा कि—पाश्चात्य विद्वानों ने जैन साहित्य के अभाव प्राचीन सिक्काओं के निर्णय करने में भूल की थी इसी प्रकार स्तूपों के विषय भी वे धोखा खा गये हैं और इस भूल का कारण हमें सिक्का प्रकरण में विस्तार से बतला दिया है अतः यहाँ पर पीष्ट पेषण करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी अन्धकार कम करना ही पड़ता है बादल कितने ही घन क्यों नहीं हो पर उसमें सूर्य छीपा नहीं रह सकता है इसी प्रकार कितनी ही कल्पना की जाय पर सत्य कदापि छीपा नहीं रह सकता है।

वर्त्तमान की शोध खोज से जैसे अन्योन्य प्राचीन स्मारक उपलब्ध हुए हैं वैसे प्राचीन स्तूप भी मिले हैं पर पाश्चात्य विद्वानों ने उन सब स्तूपों को बौद्ध धर्म के ठहरा दिये हैं किन्तु वास्तव में अधिक स्तूप जैन धर्म के ही थे। हाँ बौद्ध धर्मियों ने भी कई स्तूपों का निर्माण करवाया था पर पाश्चात्य विद्वानों के पास जैन साहित्य का अभाव होने से उन्होंने जितने स्तूप उनकी दृष्टि में आये उन सब को ही बौद्ध धर्म के ठहरा दिये। यह एक जैनों के लिये बड़ा से बड़ा अन्याय कहा जा सकता है। फिर भी हम इतना कह सकते हैं कि उन विद्वानों ने यह अन्याय जानबूझ एवं पक्षपात से नहीं किया था पर जैन धर्म के विषय जितने साधन आज उनको मिले हैं उतने उस समय नहीं मिले थे यही कारण है कि आज कई विद्वानों ने उनसे हुई भूल का पश्चाताप करते हैं और जो जो स्तूप जैनों के हैं उनको स्वीकार भी करते हैं। पाठकों की

जानकारी के लिये एव हिन्दी भाषा भाषियों के लिये कतिपय प्राचीन स्तूपों के लिये यहाँ पर उल्लेख कर दिया जाता है ।

१—मथुरा का—सिंह स्तूप जिसको विद्वानों ने 'लाइन केपीटल पीलर' नाम से ओलखाया हैं पहले तो इस स्तूप को विद्वानों ने बोद्धधर्म का ठहरा दिया था पर बाद में सूक्षम दृष्टि से शोध खोज की तो उनका ध्यान जैनधर्म की ओर पहुँचा और उन्होंने यह उद्घोषना कर दी कि यह प्राचीन स्तूप जैन धर्म का है इतना ही क्यां पर विद्वानों ने यहाँ तक पता लगाया कि इस स्तूप की प्रतिष्ठा मथुरापति महाक्षत्रय राजुवाल की एक पट्टराणी ने बड़े ही समारोह से करवाइ थी और उस प्रतिष्टा महोत्सव में क्षत्रय नहपाण और महाक्षत्रय राजा भूमक को भी आमन्त्रण दिया था और उस महोत्सव में सभापति का आसन नहपाण ने ग्रहण किया था पाठक समझ सकते हैं कि यदि प्रस्तुत स्तूप बौद्धों का होता या क्षत्रय महाक्षत्रय राजा बौद्ध धर्मी होते तो जैनधर्म का इतना विशाल स्तूप बना कर वे कब प्रतिष्ठा करवाते ? अत. अब इस कथन में किसी प्रकार का सदेह नहीं रह जाता कि क्षत्रप-महाक्षत्रप वश के राजा जैनधर्मोपासक थे और उन्होंने अपने धर्म के गौरव को बढ़ाने के लिये ही स्तूप बना कर बड़े ही महोत्सव के साथ प्रतिष्टा करवाई थी । *

यहाँ पर मैं एक दो पाश्चात्य विद्वानों के शब्द ज्यों के त्यों उध्धृत कर देता हूँ ।

डा—फ्लट साब ने कहा है कि

The prejudice that all stipes and stone railings, must necessarily be Buddhist has probably prevented the recognition of Jain sfructures as such, and up to the present only two undonbted Jain stupas have been recorded

अर्थात् समस्त स्तूप और पाषाण के कटघरे अवश्य बोद्ध ही होना चाहिये इस पक्षपात ने जैनियों द्वारा निर्मापित स्तूपों आदि को जैनों के नाम से प्रसिद्ध होने से रोका और इसलिये अब तक नि.सन्देह रूप में केवल दो ही जैनस्तूपों का उल्लेख किया जा सकता है। पर मथुरा के स्तूप ने निरसदेह उनके भ्रम को दूर कर दिया है ।

स्मिथ साहब लिखते हैं ।

In some cases, monument which are really Jain, have been erroneously deseri ted as Buddhist

---

By Doctor phoorer Sahib

* The Stupa was so ancient that at the time when the inscription was incised, its origin had been forgotten On the evidence of the characters, the date of the inscription may be referred with certainty to the Indo Scythian era and is equivalent to A D 156

* The Stupa must therefore have been built several centuries before the begining of the Christian era, for the name of its builders would assuredly have been known if it had been erected during the period when the Jains of Mathura carefully kept record of their donations" (Mesum Report 1890-91)

अर्थात् कहीं कहीं अजायबघरों में जैन स्मारक गलती से बौद्ध घोषित किये गये हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विद्वानों ने कई जैनों के स्मारकों को बौद्धों के ठहरा दिये गये थे पर एक दिन आवे हैं कि सत्य छीपा नहीं रहता है। मथुरा में यह एक ही स्तूप जैनों का नहीं था पर जैन शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि एक समय मथुरा में जैनों के सैंकड़ों स्तूप एवं जैन मंदिर थे और जैनाचार्य बड़े बड़े संघ लेकर मथुरा की यात्रा करते थे जैनाचार्यों ने मथुरा में कई बार चतुर्मास भी किये थे और कई बार वादियों से शास्त्रार्थ कर विजय भी प्राप्त की थी। जैनों में आगम वाचना का बड़ा ही गौरव है और एक वाचना मथुरा में भी हुई थी जो वर्तमान में जैनागम है वह मथुरा वाचना के नाम से खूब प्रसिद्ध है जैनों के अनेक गच्छ हैं उनमें मथुरा गच्छ भी एक है इससे पाया जाता है कि एक समय मथुरा में जैनों की बहुत अच्छी आबादी थी और उस समय मथुरा एक जैनों का केन्द्र समझा जाता था वर्तमान मथुरा का कंकाली टीला का खुदाई काम से बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ स्तूप आयागपट्ट आदि स्मारक चिन्ह-अवशेष मिले हैं अतः मथुरा से मिला हुआ प्राचीन स्तूप जैन धर्मियों के बनाया हुआ अर्थात् जैनों का गौरव प्रगट करने वाला स्तूप है। मथुरा के लिये पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

२—सांचीपुर स्तूप—यह स्थान मालवा प्रान्त में आया हुआ है। मालव (मालवा) प्रान्त दो विभागों में विभाजित है १—पूर्वावंती २—पश्चिमावंती। जिसमें पश्चिम की राजधानी उज्जैन नगरी पर पूर्व की राजधानी विदिशा नगरी थी। विदिशा नगरी उस समय खूब धन धान्य समृद्ध एवं व्यापार की मंडी गिनी जाती थी विदिशा के पास में ही सांचीपुरी आ गई है जहाँ पर जैनों के १०—१२ स्तूप हैं जिनमें बड़ा से बड़ा स्तूप ८० फिट लम्बा ७० फिट चौड़ा तथा छोटा से छोटा स्तूप १ फिट लम्बा और १ चौड़ा इतने विशाल संख्या में एवं विशाल स्तूप होने से ही इसका नाम स्तूपपुरी सांचीपुर हुआ था और एक समय इस सांचीपुरी को जैन अपना नाम तीर्थ भी मानते थे पास में ही विदिशानगरी थी और उस विदिशा नगरी में भ० महावीर के मौजूद समय की महावीर मूर्ति भी थी जिसकी यात्रार्थ साधारण जैन ही नहीं पर बड़े बड़े आचार्य महाराज भी पधार कर यात्रा करते थे इस विषय के जैन शास्त्रों में कई जगह उल्लेख भी मिलते हैं एवं एक समय आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तिसूरि विदिशा नगरी में उन स्तूप और जीवित भगवान की मूर्ति के दर्शनार्थ पधारे थे जैसे—

"दो वि जण पत्तिदिसं गया तत्थ जियपडिमं वंदिता, अन्नया महागिरी एलकच्छ गया, गयग्गपयं वंदिया, तस्स एलकच्छं नामं तं पूर्वं दसण्णपुरं नयर आसी, + + + ताहे दसण्ण-पुरस्स एलकच्छ नामजायं तत्थ गयग्गपयमो पव्वओ + + + तत्थ महागिरी भत्तं पच्चक्ख देवत्तगया + × सुहत्थी वि उज्जेणि जियपडिमं वंदिया" आवश्यक सूत्र चूर्णि

इस कथन से पाया जाता है कि विदिशा एवं सांचीपुरी जैनों का एक धाम तीर्थ था। उज्जैन नगरी से पूर्वदिशा करीब ८०-९० मील के फासले पर विदिशानगरी थी और उज्जैनी नगरी से विदिशा का महत्व कम नहीं पर किसी अपेक्षा अधिक था यही कारण है कि सम्राट् सम्प्रति का जन्म उज्जैनी में हुआ कई वर्षों तक उज्जैन में रहकर राजतंत्र चलाया पर बाद में उसने अपनी राजधानी उज्जैनी से उठा कर विदिशा में

साची में भगवान् महावीर के मूल स्तूभ का दृश्य

सांची में महावीर स्तूभ का मूल सिंह द्वार का दृश्य

(शशि कान्त एण्ड कम्पनी बडोदा के सौजन्य से)

ले गया था और कई जैन शास्त्रों में तो यहां तक भी लिखा मिलते है कि आचार्य सुहस्तिसूरि ने राजा सम्प्रति को जैनधर्म की दीक्षा विदिशा नगरी में ही दी थी जैसे कि —

"अण्णाय आयरिय वितिदिसं जियपडिम वंदिया गतः तत्थ रहणुज्जाते रण्णा घरं रहवरि अंचति सपतिरण्णो अलइय गएण अज्जसुहत्थी दिट्ठो जाइसरण जातं आगच्छे पडितो पच्च-ट्टिओ विणओणओ भणंति भयव अहंतेहिं दिट्ठो ? सुमरह । आयरिया उनउत अमंदिठो तुमं मम सिसो आसी पूव्व भवो कहीतो आउठो धम्म पडिवणो अतिव परप्परंणे जातो" "निशीथ चूर्णि"

इस लेख से पाया जाता है कि आचार्य सुहस्तिसूरि ने सम्राट् सम्प्रति को सबसे पहला जैनधर्म की दीक्षा विदिशा नगरी में ही दी थी। पर कई-कई स्थानों पर उज्जैनी नगरी भी लिखी मिलती है। इसका कारण यह हो सकता है कि राजा सम्प्रति का वर्णन बहुत करके उज्जैन नगरी के साथ ही आया करता है अतः लेखकों ने उज्जैन नगरी का ही उल्लेख कर दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अब इस बात को देखना चाहिये कि राजा सम्प्रति उज्जैन नगरी को छोड़ अपनी राजधानी विदिशा क्यों लेगया होगा ? कारण बिना कोई खास कारण के उज्जैनी जैसी प्रसिद्ध नगरी छोड़ी नहीं जा सकती है। जिसमें भी राजा सम्प्रति का जन्म उज्जैनी में तथा उज्जैन में रहकर सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र जैसे देशों पर विजय की और भी भारत का राजतन्त्र चलाने में उज्जैन नगरी सर्व प्रकार से अनुकूल होने पर भी विदिशा नगरी में राजधानी क्यों ले गया था ? इसके लिये कोई जबरदस्त कारण अवश्य होना चाहिये ? इन सब बातों का विशेष कारण सांचीपुरी के स्तूपों का सचय एव भ० महावीर का सिंह स्तूप ही हो सकता है। इस विषय में डा० त्रिभुवनदास लेहरचन्द शाह बड़ोदा वाला अपना 'प्राचीन भारत वर्ष' नामक पुस्तक में अनेक दलीलों और प्रमाण एव युक्तियों के साथ लिखा है कि भ० महावीर का निर्वाण इसी स्थान पर हुआ था और आपके शरीर का अग्नि सस्कार के स्थान पर ही यहां भक्त भावुकों ने सिंहस्तूप बनाया था और यह स्तूप स्थल विदिशा नगरी के ठीक पास में आने से विदिशा का एक पूरा एव खास तरीके समझा जाता था जैसे विदिशानगरी के नाम वेशनगर पुष्पपुरनाम थे वैसे ही सांचीपुर भी एक नाम था और इस धाम तीर्थ की यात्रार्थ बड़े २ जैनाचार्य यात्रार्थ आया करते थे जैसे आर्य्य महागिरी और सुहस्तीसूरि आये थे इनके अलावा शाह यह भी लिखता है कि-सर कनिंगहोम के मतानुसार मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने साचीपुर के स्तूप में दीपकमाल हमेशा होती रहे उसके लिये पचवीस हजार ❀ सोना मुहरों का दान दिया था जिसके करीबन पांच लक्ष रुपये हो सकते हैं इस रकम के ब्याज में उस स्तूप में हमेशा दीपक किये जाय इससे पाया जाता है कि वहां कितनी बड़ी सख्या में दीपक होते होंगे ? यही बात हमारे कल्पसूत्र और दीपमालका कल्पादि ग्रथों में लिखी हुई मिलती है कि भगवान् महावीर का कार्तिक अमावस्या की रात्रि में निर्वाण हुआ था उस समय भक्त लोग ने सोचा कि आज भाव उद्योत चला गया है अतः हम दीपकमाला करके द्रव्य उद्योत करेंगे और ऐसा ही उन्होंने किया तथा यह प्रवृति एक दिन के लिए तो अद्यावधि भी चली आ रही है यदि उस समय भक्त लोगों ने हमेशा के लिये दीपक करते हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है सम्राट् चन्द्रगुप्त ने इतनी बड़ी रकम सदैव दीपक के लिये ही दी होगी। यदि वर्तमान में मानी जाने वाली मगद देश की पावापुरी में ही भ० महावीर का निर्वाण हुआ होता तो मगद का सम्राट् मगद देश

की पावापुरी को छोड़ अति दूर कर्णाटक प्रदेश में जाकर इतना बड़ा दान केवल बौद्धों के लिए कभी नहीं देता । दूसरी बात यह एक बात और भी मिलती है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने विदिशा नगरी के पास सांचीपुर में एक राजमहल बनाया था और वर्ष भर में कुछ समय इस निवृत्ति स्थान में आकर रहता भी था इससे भी यही सिद्ध होता है कि सांचीपुर के स्तूप जैनों के लिये एक तीर्थधाम अवश्य माना जाता था कारण मगध जैसे दूर देश में रह कर भारत का राजतंत्र चलाने वाला एक सम्राट् राजमहल बना कर निवृत्ति स्थान में रहे वह विशेष तीर्थ धाम अवश्य होना चाहिये इतिहास से यह भी पता मिलता है कि सम्राट् अशोक भी सांचीपुर की यात्रार्थ आया था उस समय विदिशा नगरी धन धान्य से सम्पन्न एवं व्यापार की बड़ी मंडी थी इतना ही क्यों पर विदिशा के एक व्यापारी सेठ की कन्या के साथ सम्राट् अशोक ने विवाह भी किया था शायद कोई व्यक्ति यह सवाल करे कि अशोक बौद्ध धर्मी था वह जैन तीर्थ की यात्रार्थ कैसे आया होगा ? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सम्राट् अशोक के पिता बिन्दुसार और पितामह सम्राट् चन्द्रगुप्त कट्टर जैन धर्मोपासक थे अतः उनके घर में जन्म लेने वाला पुत्र जैन हो इसमें नई बात नहीं समझी जाती है हाँ बाद में अशोक बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था यदि बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पूर्व अशोक सांचीपुरी यात्रार्थ गया हो तब तो कोई सवाल ही नहीं है यदि बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद भी गये हो तो भी उनके पिता पितामहा का धर्म तीर्थ पर जाना इसमें कोई विरोध की बात नहीं तथा अशोक बौद्ध होने पर भी जैन श्रमणों का अच्छा आदर सत्कार करता था अतः अशोक का सांचीपुर यात्रार्थ जाना यथार्थ ही था । देखिये—

प्रोफेसर कर्न लिखते हैं ।

His (Asoka s) ordinances concerning the sparing of animal life agree much more closely with the ideas of heretiocl gams than those of the Buddhist.

१—कल्हण कवि जो बारहवीं शताब्दी का विद्वान था उसने संस्कृत भाषा की राजतरंगिणि नामक ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में लिखा है कि अशोक ने कश्मीर में जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया

'य शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नोजिनशासनम्, शुष्कलेत्र वितस्तात्रो तस्तार स्तूप मण्डले"

The Bhilsa topes P 154 —

His (Chandragupta s gift to the Sanchi tope for its regular illumination and for the perpetual service of the sharamans or ascetices was no less a sum then twenty five thousand Dinnars (£ 25000 is equal to two lacs and a half rupees) Chandragupta was a member of the Jain community (from B A. S. 1897 P 175 fn —

आगे चल कर यह भी कहा गया है कि 'जगचिन्तामणि' चैत्यवन्दन में 'जय वीर सच्चउरि मण्डण' ऐसा उल्लेख आता है 'जगचिन्तामणि' का चैत्यवन्दन गणधर गौतम स्वामी ने अष्टापद की यात्रा के समय निर्माण किया था शायद 'जयवीरसच्चउरि' वाला पाठ पीछे से मिलाया हो तो भी उसके प्राचीन होने में तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता है इस चैत्यवन्दन में सच्चउरि मण्डन महावीर का तीर्थ को नमस्कार किया है उस सच्चउरि को मारवाड़ का साचौर ही समझा जाता था । कारण वहाँ महावीर का मंदिर है और चौदहवीं शताब्दी के आचार्य जिनप्रभसूरि ने अपना विविध तीर्थ कल्प में मारवाड़ के साचौर का

चमत्कारिक वर्णन भी किया है पर पट्टावलियादि ग्रंथों से यह भी ज्ञात होता है कि साचौर में महावीर का मन्दिर कोरंटपुर का मन्त्री नाहड़ ने वीर की छटी शताब्दी में बनाया था और जिस समय यह मन्दिर बनाया था उस समय तो यह एक ग्राम का मन्दिर ही कहा जाता था यदि साचौर का मन्दिर को ही तीर्थ रूप समझा जाय तो उससे भी प्राचीन समय में ओसियां और कोरंटपुर के महावीर मन्दिर चमत्कार से बने हुए थे उनको भी तीर्थों की गनती में गि ते ?, अत जग चिन्तामणि का चैत्यवन्दन में 'जयउवीर 'सच्चउरि' मण्डण वाला स्थान मारवाड़ का साचौर नहीं पर विदिशानगरी का सांचीपुर ही होना चाहिये और इसके लिये उपर बतलाये हुए प्रमाणों में आर्य्य महागिरी और सुहस्तीसूरि का यात्रार्थ जाना, सम्राट चन्द्रगुप्त का वहाँ दीपक के लिये बड़ा भारी दान देना तथा वहाँ राज महल बना कर कुच्छ समय निर्वृति से रहना। सम्राट् अशोक का भी यात्रार्थ जाना, सम्राट् सम्प्रति का उज्जैन को छोड़ अपनी राजधानी विदिशा में ले जाना इत्यादि ऐसे कारण है कि विदिशा एवं सांचीपुर को सहज ही में एक धाम तीर्थ होना साबित करते हैं।

धारानगरी का महा कवि धनपाल एक जैनधर्म का परम भक्त श्रावक था जब धनपाल और धरापति राजा भोज के आपस में मनमल्यनता हो गई तो धनपाल धारा का त्याग कर सांचौर—सत्यपुर में जाकर महावीर की भक्ति की और वहाँ पर इस विषय के ग्रन्थ भी बनाया। इसके लिये भी बहुत लोगों की यही मान्यता है कि धनपाल मारवाड़ के साचौर में रहा था पर अब इस बात में भी विद्वानों को शका होने लगी है कारण धनपाल मालवा का रहने वाला और मालवा में सांचीपुरी भ० महावीर का एक प्रसिद्ध तीर्थ जिसको छोड़ वह मारवाड़ के साचौर में जाय यह सभव नहीं होता है जब कि मगद देश में राज करने वाला सम्राट् चन्द्रगुप्त निर्वृति के लिया सांचीपुरी आया था तब पं० धनपाल के तो पास ही में सांचीपुरी थी वह वीर तीर्थ सांचीपुरी को छोड़कर मारवाड़ के सांचौर में कैसे जा सकते। इस समय रेल्वा तथा पोस्ट वगैरह के साधनों से मारवाड़ का साचौर भले प्रसिद्ध हो पर पहले जमाना में तो इसकी प्रसिद्धि भी शायद ही मालवा प्रान्त तक हो खैर कुच्छ भी हो पर पं० धनपाल मारवाड़ की अपेक्षा मालवा की साची-पुरी जाना विशेष प्रमाणित हो सकता है।

विशेष में एक यह भी बतलाया गया है कि भारत में कई विदेशी लोग यात्रार्थ आये करते थे जिसमें चीनी लोगों के लिये अधिक प्रमाण मिलते हैं क्योंकि १—चीनी फहियन (इ० सं० ४११) २—सँगयुन (इ० स० ५१८) ३—इत्सग (इ० सं० ६७१) ४—हुयत्सग (इ सं० ६७५) में भारत में आये थे और ये चारों चीनी बोद्ध धर्म को मानने वाले थे और इनका आना भी बोद्ध धर्म के प्राचीन स्मारकों की शोध खोज करने का ही था और उन्होंने अपने २ समय भारत में भ्रमन कर जो कुछ बोद्ध धर्म सम्बन्धी उनको जानने योग्य मिला उनकी उन्होंने अपनी डायरी में नोंध करली थी और बाद अपने देश में जाकर उन लब्ध पदार्थों को एकस्थान लिपिबद्ध करने को पुस्तक के रूप में लिख ली थी और वे पुस्तकें वर्तमान में मुद्रित भी होगई उनकी पुस्तकों में बहुत कुछ वर्णन मिलता है, पर सांची स्तूप के लिये थोड़ा भी ईशारा नहीं मिलता हैं कि साची में बोद्ध धर्म का कोई भी स्तूप है। यदि सांची के स्तूप बोद्ध धर्म के होते तो वे चीनी मुशाफिर अपनी डायरी में नोट करने से कभी नहीं चूकते ? शायद कोई सज्जन यह सवाल करें कि वे चीनी यात्रु सांची एवं मालवा में भ्रमन नहीं किया हो ? भला

यह कब हो सकता है तथा मालवा कोई भारत के एक कोने में छिपा हुआ प्रान्त नहीं है तथा सांची में कोई एक दो छोटा बड़ा स्तूप नहीं कि उनके कानों तक खबरें न पहुँची हो। इसके सिवाय उनकी पुस्तकों में मालवा प्रान्त के बौद्ध स्तूपों का उल्लेख भी मिलता है पर सांची स्तूप के लिये थोड़ी भी जिक्र नहीं मिलती है इससे स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म को मानने वाले मालवा प्रान्त में गये थे पर सांची के स्तूपों को उन्होंने बौद्धधर्म के नहीं पर जैनधर्म के समझ कर अपनी डायरी में नोंध नहीं की थी इससे सांची के स्तूप जैनधर्म के होने ही स्पष्ट सिद्ध होते हैं। इसके अलावा सांची स्तूप के कई पत्थरों पर 'महाकाश्यप' नाम भी खुदे हुए मिलते हैं वह भ० महावीर के गोत्र को सूचित करता रहे हैं भ० महावीर का काश्यपगोत्र था तब समान पुरुषों के लिये काश्यप शब्द काम में लिया जाता तब महापुरुषों के लिये महा काश्यप लिखा ही हो यह यथार्थ ही कहा जा सकता है।

इत्यादि प्रमाणों एवं सबल युक्तियों द्वारा श्रीमान् शाह ने अपनी मान्यता को परिपुष्ट कर बतलाई है। और आपका विश्वास है कि भ० महावीर का निर्वाण इसी प्रदेश में हुआ था और आपके मृत शरीर का अग्नि संस्कार के स्थान भक्त लोगों ने जो स्तूप बनाया था वही मूल स्तूप सिद्ध स्तूप के नाम से बोला जाता है।

श्रीमान् शाह के कथन में कई लोग यह सवाल पैदा करते हैं कि यदि भ० महावीर का निर्वाण भिलसा नगरी में हुआ माना जाय तो फिर वर्तमान जैन समाज की मान्यता पूर्वदेश की पावापुरी की है वह क्यों और कब से हुई ? जब कि कल्पसूत्र जैसे प्राचीन ग्रंथों में लिखा मिलता है कि पावापुरी के हस्तपाल राजा की रजुकशाला में भगवान महावीर ने अन्तिम चतुर्मास किया और वहीं पर आपका निर्वाण हुआ तथा विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी के विद्वानों ने भी यही कहा कि "पूर्वदिशि पावापुरी, ऋद्धि भरी रे, मुक्ति गये महावीर तीर्थ ते जयूरे" इत्यादि इस सवाल के उत्तर में शाह समाधान करता है कि पूर्व दिशा का मतलब पूर्व देश से नहीं पर उज्जैन नगरी से है कारण भिलसा नगरी उज्जैन से पूर्व दिशा में है और भगवान् महावीर जैसे महान पुरुष के देह का दहन होने से उस नगरी को पावापुरी कही है (शायद उस समय वहाँ हस्तपाल नाम का कोई राजा राज करता हो) अब वर्तमान की मान्यता के लिये यह समझना कठिन नहीं है कि भारत में कई बार ऐसे ऐसे महा भयंकर जन संहारक दुष्काल पड़े थे कि कई नगर स्मशान बन गये थे और बाद में कई नये नगरों का निर्माण हो गये थे और साधु लोगों की सुविधा के लिये कई स्थापना नगरियों भी मान ली गई थी जैसे भ० वासुपूज्य का निर्वाण अंगदेश की चम्पानगरी में हुआ था पर वर्तमान में मगध देश की चम्पानगरी को बारहवें वासुपूज्य तीर्थंकर की कल्याणक भूमि समझ कर यात्रा करते हैं जब कल्याणक भूमि का तीर्थ था अंगदेश की चम्पानगरी में परन्तु साधु लोगों की सुविधा के लिये मगध देश की चम्पा को ही अंगदेश की चम्पानगरी मान ली है इसी प्रकार भ० ऋषभदेव का जन्म कल्याणक अयोध्या नगरी में हुआ था और उस अयोध्या के पास अष्टापद तीर्थ होना शास्त्र में लिखा है पर वर्तमान में पूर्व देश की अयोध्या को ही ऋषभदेव के जन्म कल्याणक मान लिया गया है इसी प्रकार नाम की साम्यता के कारण भिलसा की पावापुरी के स्थान पूर्वदेश की पावापुरी को भ० महावीर का निर्वाण कल्याणक भूमि मान ली हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है और सोलहवीं शताब्दी में रची गई कविता में उस समय का प्रचलित स्थान को ही तीर्थ लिखा हो तो यह भी संभव

सम्राट् अजातशत्रु का बनाया स्तम्भ

भगवान् महावीर के भक्त
कोशलपति

राजा प्रसेनजित

राजा प्रसेनजित का बनाया स्तम्भ

(शांति कान्त एण्ड कम्पनी बड़ोदा के सौजन्य से)

हो सकता है अत उस पर इतना जोर नहीं दिया जा सकता है पर ऐतिहासिक प्रमाणों की ओर देखा जाय तो भ० महावीर की निवार्ण भूमि के लिये जितने प्रमाण विदिशा एवं सांची नगरी के लिये मिलते हैं उतने पूर्व दिशा की पावापुरी के लिये नहीं मिलते हैं। श्रीमान् शाह की उपरोक्त मान्यता अभी तक जैन समाज में सर्वमान्य नहीं हुई इतना ही क्यों पर कई लोग उपरोक्त मान्यता का विरोध भी करते हैं और ऐसा होना किसी अपेक्षा से ठीक भी है कारण चिरकाल से चली आई मान्यता एवं जमे हुए सस्कारों को एकदम बदल देना कोई साधारण बात नहीं है पर शाह की शोध खोज ने इतिहास क्षेत्र पर एक जबर्दस्त प्रकाश डाला है। इसमें किसी प्रकार का सदेह नहीं है फिर भी इस बात को में भ० महावीर के अन्तिम विहार पर ही छोड़ देता हूँ कि वे अपने अन्तिम वर्ष का विहार किस ओर किया था जिससे पता लग जायगा कि आपका अतिम चतुर्मास तथा निर्वाण पूर्व देश की पावापुरी में हुआ था या आवती प्रदेश की विदिशा नगरी की पावापुर में ?

सांची स्तूप—के विषय चाहे भ० महावीर का निर्माण विदिशा की पावापुरी में हुआ हो चाहे पूर्व देश की पावापुरी में हुआ हो पर वे स्तूप भ० महावीर के नाम पर बनाये गये हैं इसमें किसी प्रकार का सदेह नहीं है कारण एक पूज्य पुरुष की स्मृति के लिये एक स्थान पर ही नहीं पर अनेक स्थानों पर स्मारक खड़े कराये जा सकते हैं।

३—भारहूत स्तूप—यह स्तूप अगदेश की राजधानी चम्पा नगरी के पास इस समय खड़ा है परन्तु चम्पा नगरी के स्थान इस समय भारहूत नाम का छोटा सा ग्राम ही रह गया है इस कारण से उस स्तूप का नाम भारहूत रखा गया है और इस स्तूप के लिये डॉ—सर कनिंगहोम ने एक पुस्तक लिखकर खुब विस्तार से अच्छा प्रकाश डाला है पर सर कनिंगहोम ने भारहूत स्तूप को भी बोद्ध धर्म का स्तूप होना लिख दिया है जो वास्तव में वह स्तूप जैन धर्म का है। इसके लिये यह प्रश्न होना स्वभाविक ही है कि जब स्तूप जैन धर्म का है तब निर्पक्ष पाश्चात्यों ने उस स्तूप को बौद्धों का होना क्यों लिख दिया होगा ? इसके लिये मैंने सिक्का-प्रकरण में ठीक विस्तार से खुल्लासा कर दिया है कि पाश्चात्य विद्वानों की इस भूल का खास कारण उनके पास उस समयजैनधर्म के साहित्य का अभाव ही था और बोद्धधर्म केलिये उनके मनमन्दिर में पहले से ही सजड़ सस्कार जमे हुए थे अत उन्होंने एक भारहूत स्तूप ही क्यों पर जितने प्राचीन स्तूपादि जो कुछ स्मारक मिला उन सेवकों बोद्धों क ही ठहराय दिये—पर खयाल करके देखा जाय तो प्रस्तुत स्तूप के साथ बौद्धों का थोड़ा भी सम्बन्ध नहीं था पर जैनधर्म का घनीष्ट सम्बन्ध पाया जाता है जैसे प्रथम तो चम्पानगरी जैनों के बारहवों तीर्थङ्कर की निर्वाण कल्याणक भूमि एक धाम तीर्थ रूप है जैसे, अष्टापद शिखर गिरनार पावापुरी यात्रा के धाम है वैसे चम्पानगरी भी है। दूसरा श्रीमान् शाह के कथनानुसार भ० महावीर को केवल ज्ञान भी इसी प्रदेश में हुआ था यही कारण है कि सम्राट् अजातशत्रु आपनी राजधानी मगद देश से उठाकर चम्पानगरी में लाया था इतना ही क्यों पर इतिहास से यह भी पता मिलता है कि कौशल पति राजा प्रसेनजित चम्पानगरी में आकर भ० महावीर की रथयात्रा का महोत्सव किया था जिसमें भ० महावीर की सवारी निकाली उस समय रथ के अश्व एव बलद न जोत कर भक्ति से आप स्वय रथ को खेंचा था और राजा ने अपनी ओर से एक स्तम्भ भी बनाया था सम्राट कूणिक ने भी इस धाम तीर्थ की भक्ति भावना कर वहां पर एक स्तम्भ आपने भी बनाया जिस पर अपने नाम का शिलालेख भी खुदवाया जो आज भी "भगवान वदे. अजातशत्रु:' विद्यमान है अत. चम्पानगरी जैनों का एक धाम तीर्थ होने में

किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है जब उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से चम्पानगरी जैन तीर्थ सिद्ध हो गया तो वहाँ का स्तूप किसका हो सकता है ? पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं जब बौद्ध साहित्य में चम्पा नगरी के प्रति कोई भी ऐसा सम्बन्ध नहीं पाया जाता है कि जिसके जरिये भारहुत स्तूप का बौद्ध स्तूप प्रमाणित हो सके ? इत्यादि कारणों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि चम्पापुरी जैनों का एक धाम तीर्थ है और जैन लोग प्राचीन समय से अद्यावधि चम्पानगरी को तीर्थों की गणना में गिनते भी है जैसे जैन लोग हमेशा तीर्थों का वन्दन करते हैं जिसमें बोलते हैं कि

"अष्टापद श्री आदि जिनवर, वीर पावापुरी वरो वासपूज्य चम्पानगरी सिद्धा, नेम रेवा गिरिवरो सम्मेत शिखरे बीस जिनवर, मोक्ष पहुंता मुनिवरो, चौवीस जिनवर नित्यवन्दु सकल संघ सुख करो"

इस कथनानुसार चम्पापुरी तीर्थ होने से जैन स्तूप ही हो सकता है । चम्पापुरी भ० महावीर को केवल कल्याणक की भूमि होने में श्रीमान् शाह का कथन सर्वमान्य नहीं हुआ है पर इसमें किसी का भी मतभेद नहीं है कि चम्पापुरी जैनधर्म का एक तीर्थ है यदि शाह का कथन प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो जाय तो यह विशेषता समझी जायगी । कुछ भी हो पर चम्पानगरी के पास पाया हुआ भारहुतादि स्तूप जैनों के होने में किसी प्रकार की शंका नहीं है ।

४—अमरावती स्तूप—यह स्तूप बड़ा ही विशाल है और महाराष्ट्र प्रान्त अर्थात् दक्षिण भारत में पाया हुआ है जहाँ चेदिवंश की राजधानी अमरावती थी और सम्राट् महामेघवाहन चक्रवर्ती राजा खारवेल ने अपनी दक्षिण विजय के उपलक्ष में अड़तीस लक्ष द्रव्य व्यय करके विजय महा चैत्य बनवाया था इन विजय का उल्लेख सम्राट् का खुदाया हुआ विशाल शिलालेख में भी मिलता है जो खण्डगिरि की उदयगिरि पहाड़ी की हस्ती गुफा से प्राप्त हुआ था सम्राट् खारवेल के जैन होने में तो अब किसी विद्वानों में दो मत नहीं हैं वे एक ही स्वर से स्वीकार करते हैं कि सम्राट् खारवेल जैन नरेश था उसका बनाया हुआ महाविजय चैत्य (स्तूप) दूसरा धर्म का हो ही नहीं सकता है तथापि कई विद्वानों ने इस स्तूप को भी बौद्धधर्म का ठोक दिया है इसका मूल कारण हम पिछला प्रकरण में लिख आये हैं कि उन विद्वानों के पास जैनधर्म सम्बन्धी साहित्य का ही अभाव था और उन्होंने वेदान्तियों के कहना जितने स्मारक मिले उन सबको बौद्धों का ठप्पा देने का अपना ध्येय ही बना लिया था फिर वे दूसरे धर्म की खोज-बीन ही क्यों करे जब कि वे उस समय जैनधर्म का स्वतंत्र अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते थे तब जैनधर्म के स्मारकों का होना वे मान ही कैसे सकते । खैर, वर्तमान में तो सूर्य के उदय प्रकाश हो चुका है कि एक समय भारत के पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक जैनधर्मी राजाओं का ही राज था तब उनके बनाये स्तूप एवं उनके बनाये शिल्प जैनधर्म का गौरव बढ़ाने वाला हो तो इसमें थोड़ा भी आश्चर्य करने की क्या बात है ।

इस प्रकार भारत में जैन धर्मी राजाओं के कराये बहुत से स्तूप एवं मन्दिर मूर्तियों अवशेष स्तम्भो एवं शिलालेखों वगैरह बहुत प्राचीन साधन उपलब्ध हुए हैं पर स्थानाभाव इन सब का उल्लेख कर नहीं सकते हैं पर यहाँ पर तो केवल नमूना के तौर पर केवल चार स्तूप के विषय में ही संक्षिप्त से उल्लेख कर दिया है अतः पाठक अपना अभ्यास बढ़ा कर इस प्रकार ऐतिहासिक पदार्थों की खोज बीन कर जैनधर्म के गौरव को बढ़ावें—इत्यादि

वर्तमान समय में इतिहास युग है विद्वान् वर्ग इस कार्य के लिये तन मन और धन का व्यय कर पूरे

सम्राट् सम्प्रति का
बनाया हुआ सिंह स्तम्भ
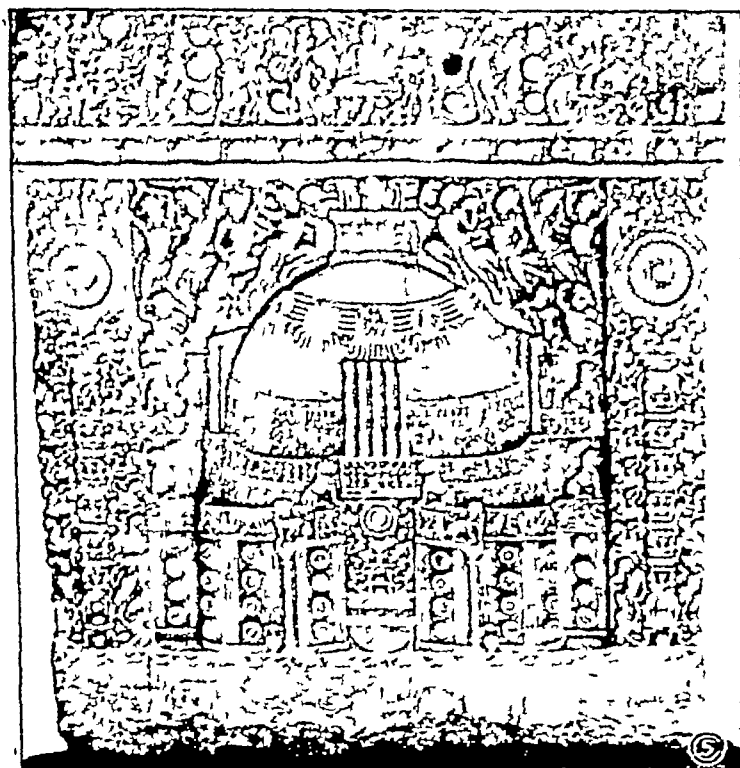
सम्राट खारवेल का बनाया हुआ अमरावती का महाविजय चैत्य

(शशि कान्त एण्ड कम्पनी बड़ोदा के सौजन्य से)

जोश के साथ इतिहास का कार्य कर रहे हैं और इतिहास के साधनों से इन्होंने अनेक नयी नयी बातों को जानी है पर जैन समाज का इतिहास की ओर बहुत कम लक्ष है और इस कार्य में बहुत कम सज्जन दिलचस्पी रखते हैं अधिक लोग प्राचीन समय से चली आई परम्पार एवं रूढ़ीवाद को ही मानने वाला है यदि ऐतिहासिक प्रमाण भी मिल जाय तो भी अपनी मान्यता में थोड़ा भी परिवर्तन करना नहीं चाहते हैं श्रीमान् शाह ने अभी 'प्राचीन भारतवर्ष नामक ग्रन्थ के ५ भाग लिखे हैं जिसमें अपने कई वर्ष से बहुत परिश्रम किया है अन्य मत आलंम्बियों ने आपके इस परिश्रमों की बहुत बहुत तारीफ एवं प्रशंसा की है। पर जैन समाज में कई लोग ऐसे ही कहमद एवं अथाहणुत रखनेवाले हैं कि आपके कार्य का अनुमोदन करना तो दूर किनारे रहा पर उसमें रोड़ा डालने को तैयार हो जाते हैं। हाँ इतिहास का काम ही ऐसा है कि पहले पहल लिखने में अनेक त्रुटियाँ रह जाती हैं पर ऐसी त्रुटियों को सामने रख लेखक का उत्साह भंग कर देना कितना अनुचित है ? यदि त्रुटियों के सामने रखने वाला इतिहास विषय का ग्रन्थ लिख कर देखें कि इतिहास लिखने में कितनी मगजमारी करनी पड़ती है एक छोटा सा इतिहास लिखने में कितने ग्रन्थों का अवलोकन करना पड़ता है और उस देखी हुई विषय को किस तरह से सिलसिलेवार व्यवस्थित करनी पड़ती है पर इन बातों पर लक्ष देता है कौन ? आज तो यह एक रोजगार बन गया है कि इधर-उधर के पांच पचीस स्तवन या प्रतिक्रमण के पाठ रख एक दो किताब छपवा दी कि वह लेखक बन जाता है मेरे ख्याल से तो जैन समाज में आज वही काम कर सकता है कि अपने हृदय को वज्र समान बनाले और किसी के कहने की तनक भी परवाह न रखे और अपना काम करता रहे। मैंने तो श्रीमान शाह का ग्रंथ पढ़ कर बहुत खुशी मनाई है और आपके ग्रंथों से बहुत सी बातें जानने काबिल भी मिली है इन प्रकरणों का अधिक मसाला शाह की पुस्तकों से ही लिया गया है अत: ऐसे ग्रंथों का स्वागत करना मैं मेरा कर्तव्य समझता हूँ।

गुफा—प्रकरण

भारतीय श्रमण संस्कृति का अस्तित्व इतिहास काल का प्रारम्भ से पूर्व भी विद्यमान था यही कारण है कि आज विद्वान वर्ग की अटल मान्यता है कि भारत की संस्कृति आध्यात्मता का केन्द्र है और यह प्राचीन समय से ही चली आ रही है। पूर्व जमाने में भारतीय किसी धर्म के श्रमण क्यों न हो पर वे सब के सब जंगलों में रहकर अध्यात्म विद्या का अभ्यास किया करते थे और इसी अध्यात्मता से उनकी आत्मा का सर्व विकाश भी हो जाता था। कारण जंगलों में रहने वाले श्रमणों को प्रथम तो गृहस्थों के परिचय का सर्वथा अभाव ही रहता था दूसरा जंगलों की आबहवा स्वच्छ जिसमें ज्ञान-ध्यान तत्त्व चिन्तन पठन पाठन मनन निधिध्यासन करने में मन का एकाग्रहपना रहता है आसन समाधि और योगाभ्यास करने में सब साधन अनुकूल रहते थे और पूर्व संचित कर्मों की निर्ज्जरा करने को कर्मों की उदिरण करने में शीतकाल में ठण्डा-ठार सहन करना ग्रिष्मकाल में आतापनादि कई प्रकार के परिसहों को जान बूझकर सहन करने का सुअवसर हाथ लग जाता तथा इन कार्यों में बाद पहुँचने का कोई कारण जंगलों में उपस्थित नहीं होता था इत्यादि जंगलों में रहने वाले श्रमणों से अनेक प्रकार के आत्मिक लब्धियां एवं विविध प्रकार के चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त हो सकती थी इतना सब कुछ होने पर भी बरसात के समय उनको अच्छादित स्थान की अपेक्षा अवश्य रहती थी इसके लिये वृक्षों का ही आश्रय लिया जाता था पर संख्या की अधिकता के

कारण सब साधुओं का निर्वाह वृक्षों के नीचे नहीं होता था अतः कोई कोई श्रमण पर्वत की गुफाओं का भी आश्रय लिया करते थे पर वह केवल उस बरसात के पानी से बचने के ही लिये । जब जंगल में रहने वाले श्रमण की संख्या बढ़ने लगी तो उनके भक्त राजा महाराजा एवं सेठ साहूकार लोग उन पर्वतों के अन्दर पत्थरों को खुदा खुदाकर गुफाएं भी बनाने लगे और श्रमण वर्ग उन गुफाओं के सहारे से निर्विघ्नतया आत्म ध्यान एवं तप संयम की आराधना करने लगे पर आत्मा हमेशा निमित्त वासी है समयान्तर एक दूसरे की स्पर्द्धा में मूल उद्देश को भूलकर एक दूसरे से आगे बढ़ने में लग जाते हैं यही हाल गुफाओं के विषय में हुए कई राजा महाराजाओं ने पुष्कल द्रव्य व्यय कर बड़ी नक्काशीदार जिस का बहुत बढ़िया काम करवाने लगे किसी किसी स्थान पर दो दो दो तीन तीन मंजिल की गुफाएं भी बनाई गई और कहीं कहीं उन गुफाओं में दर्शनार्थ मन्दिर भी बनवा दिये गये । कहीं कहीं बढ़िया चित्र काम भी करवाये गये और एवं वीर भक्तों पर शिलालेख भी अंकित करवा दिये कि यह गुफा अमुक श्रमण के लिये अमुक भक्त ने अमुक संवत् मिति में बनवाई थी । ज्यों ज्यों साधन बढ़ते गये त्यों-त्यों जंगल में रहने वाले श्रमणों की संख्या भी बढ़ती गई इससे जंगलों में हजारों गुफाएं भी बन गई जिससे अब जंगलों में रहने वाले श्रमणों को इतना कष्ट नहीं रहा कि जितना पहले था कारण पहले शीतोष्ण काल में वे कर्मों की निर्जरा के लिए जो कष्ट सहन करते थे वे अब सुख से गुफाओं में रहने लगे—अब गुफाओं में देव मन्दिर और देव मूर्तियों की भी स्थापना हो गई तथा पर्वत में कोर कर निकाली हुई भींतों पर भी देवों की मूर्तियां खुदा दी गई अब तो मूर्तियों के दर्शन करने वाले संघ भी प्रसंगोपात आने जाने लगे इत्यादि ये सब कारण श्रमणों के ध्यान के साधक नहीं पर बाधक ही सिद्ध हुए फिर भी जंगलों में एवं गुफाओं में रहने वालों को निर्वृत्ति के लिए काफी समय मिलता था वे गुफाएं किसी एक ही धर्म के श्रमणों के लिये नहीं थी पर सब धर्म के श्रमणों के भक्तों ने अपने २ गुरुओं के लिये बनाई थी जो वर्तमान शिलालेखों से सिद्ध होता है गुफाओं का आरम्भ का समय तो बहुत पुराना है पर विक्रम की आठवीं नौवीं और दसवीं शताब्दी तक तो गुफाओं का बनना जारी रहा था और उस समय तक बहुत से साधु गुफाओं में रहते भी थे ।

इतिहास से यह भी पता लगता है कि भारत में कई बार संहारक महा भयंकर दुष्काल भी पड़े थे वे भी एक दो वर्ष नहीं पर बारह २ वर्ष तक लगातार पड़ते ही रहे उस समय गृहस्थ लोगों को मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलना मुश्किल हो गया था कहीं कहीं तो ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि कोई गृहस्थ अपने घर से भोजन कर तत्काल घर बाहर निकल जाय तो भुखमरे मंगते उसका उदर चीर कर उसके अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे हां ! भूखे मरते क्या नहीं करें ? भूख सबसे बुरी वस्तु है जब गृहस्थों का यह हाल था तो जंगल में रहने वालों को भिक्षा मिलना तो कितना कठिन था आखिर अपने प्राणों की रक्षा के लिए उन जंगल वासी साधुओं का नगर का आश्रय लेना पड़ा पर इसका यह अर्थ नहीं है कि जंगल में रहने वाले सबके सब साधु नगरों में आ गये थे ? नहीं जिन्हों का गुजारा जंगलों में होता रहा वे जंगलों में ही रहे और ऐसे भी हजारों साधु थे पर उस भयानकता से उनके आचार-विचारों में अवश्य परिवर्तन हो गया था जब कि दुष्काल के अन्त में सुभिक्ष हुआ तब भी नगरों में रहने वाले श्रमण पुनः गुफाओं में रहने को नहीं गये कारण जंगलों की अपेक्षा अब नगरों में उनको

अधिक सुविधा रहने लगी मैं ऊपर लिख आया हूँ कि आत्मा निमित बासी हुआ करता है जैसे आत्मा को निमित मिलता रहता है वैसे ही उनको मानस उसमें लिप्त हो जाता है। अत. उनके रहने की गुफाएं पशु पक्षियों के काम आने लगी और उन गुफाओं की किसी ने सार समाल तक भी नहीं की यही कारण है कि कई गुफाएं तो भूआश्रित हो गई कई टूट-फूट कर खण्डहर का रूप धारण किया हुआ आज भी दृष्टिगोचर होता हैं।

वर्तमान पुरातत्व की शीघ्र खोज करने वालों का लक्ष इन प्राचीन गुफाओं की ओर भी पहुँचा और उन लोगों ने भारत की चारों ओर शोध-खोज की तो हजारों गुफाओं का पता लगा है उन गुफाओं के अन्दर मन्दिर मूर्त्तियां तथा चित्रकाल शिल्पकाला तथा बहुत से प्राचीन समय के शिलालेख भी मिले हैं जो इतिहास के लिये बड़े ही अमूल्य साधन माना जा रहा है उदाहरण के तौर पर उड़ीसा प्रान्त की उदयगिरि खण्डगिरि पहाड़ियों के अन्दर जैन श्रमणों के ध्यान के लिये सहस्त्रों गुफायें बनाई थी जिसके अन्दर से सैकड़ों गुफाएं आज भी विद्यमान है कई कई गुफायें तो नष्ट भी हो गई हैं पर कई कई अभी अच्छी स्थिति में हैं तथा कई कई गुफायें दो दो मंजिल की भी है और उन गुफायों से बहुत से शिलालेख भी मिले हैं जिसमें दो शिलालेख तो इतिहास के लिये बहुत ही उपयोगी हैं १—महामेघवाहन चक्रवर्ति राजा खारवेल का २—भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन विषय का। इनके अलावा भी बहुत से शिलालेख मिले हैं इस विषय में हमने कलिंग देश के इतिहास में विस्तृत वर्णन लिख दिया है अत. यह पीष्टपेषण करना उचित नहीं समझा गया है यहाँ पर तो शेष कतिपय गुफा का ही सक्षिप्त से उल्लेख किया जायगा कारण भारतीय गुफाओं के लिये बड़े बड़े विद्वानों ने कई ग्रन्थ लिख निर्माण करवा दिये हैं तथा कई हिन्दी भाषा भाषियों के लिये मेरा यह सक्षिप्त लेख भी उपकारी होगा ?

१—उड़ीसा प्रान्त की खण्डगिरि उदयगिरि एक समय कुमार एवं कुमारी पर्वत के नाम से तथा वही पहाड़ियाँ जैन समार में शत्रुंजय गिरनावतार के नाम से मशहूर थी वर्तमान की शोध खोज से कई ७०० छोटी बड़ी गुफाओं का पता लगा है इस विषय इसी ग्रन्थ के पिछले पृष्ठों में कलिंग देश के इतिहास में विस्तार से लिख आये हैं अत पुनावृति करना उचित नहीं समझा गया है पाठक वहाँ से देखें।

२—बिहार प्रदेश (पूर्व में) में बरबरा पहाड़ की कन्दराओं में नागार्जुन के नाम से प्रसिद्ध है वहाँ भी बहुत सी गुफाएं हैं जिसमें अधिक गुफाएं जैनों की हैं और वहाँ जैन श्रमण रह कर आत्म कल्याण साधन किया करते थे इन गुफाओं का विस्तृत वर्णन 'जैन सत्य प्रकाश मासिक पत्र के वर्ष ३ अक ३-४-५ में किया है अत स्थानाभाव यहाँ मात्र नाम निर्देश ही कर दिया है।

३—पाच पाण्डवों की गुफाएं—यह गुफाए आवती (मालवा) प्रदेश में आई हुई है गुफाएं बहुत विस्तार में हैं शिल्प एवं चित्र का बहुत ही सुन्दर काम किया हुआ है इन गुफाओं का वर्णन भी प्रस्तुत जैन सत्य प्रकाश मासिक वर्ष ४ अक ३ में विस्तार से किया है

४—गिरनार की गुफाए—गिरनार जैनियों के तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमियों में एक है यहा पर अनेक महात्माओं ने ज्ञान ध्यान योग समाधि आसनादि की साधना करके मोक्ष रूपी अक्षय धाम सिधाये थे। एक गुफा में मुनि रहनेमि ध्यान किया था उसी गुफा में सती राजमति वरसाद के कारण विश्राम लेकर अपने चीर सुखा रही थी इत्यादि जैन शास्त्रों में गिरनार पर्वत की बहुत सी गुफाओं का वर्णन आता है।

५—श्री शत्रुंजय पर्वत की केशरा में भी बहुत गुफाए थी और वहाँ पर श्रमण वर्ग समय समय विविध आसनों से ध्यान कायोत्सर्ग किये करते थे। पूर्वाचार्यों की पुस्तकों में भी अधिकार आता है—

६—इसी प्रकार मरुधर देश की पर्वत श्रेणियों में भी बहुतसी गुफाए थी वर्तमान शोध खोज से बहुतसी गुफाए का पता भी लगा है जैसे—मामेर ताल्लुके कि बीकानेर जो एक समय बड़ा नगर था कि पास बहुतसी प्रमाण गुफाए विद्यमान है तथा पालनखेड़ा-खालीस गाँव के पास भी बीकानेर तथा जावड़ी ग्राम की गुफाए हैं।

७—अजन्ता की गुफाए-वहाँ की गुफाए बहुत प्रसिद्ध है और इन गुफाएं के लिये कई विद्वानों ने बड़ी बड़ी पुस्तकें एवं लेख भी लिखे हैं वहाँ की गुफाओं में कई तो ई०-ई० पूर्व ५० दो शताब्दी की है शिल्प कला तथा चित्र कला बड़ी सुन्दर है इन गुफाओं ने इतिहास क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डाला है गुफाओं की संख्या १०-१२ की कही जाती है।

८—अंकाई की गुफाएं—यह स्थान नासिक से १४ मील तथा त्रिम्बक से भी १४ मील है वहाँ एक पहाड़ी भूमि से ४२९५ फुट ऊ ची है वहाँ एक छोटी गुफा है जिसमें एक पद्मासन मूर्ति एवं नीचे की चट्टान में एक दूसरी गुफा है जिसके द्वार पर भ० पार्श्वनाथ की, खड़ी मूर्ति है।

९—अंकाई की गुफाएं-यह स्थान ताल्लुका येवला में है वहाँ दो पहाड़ियें साथ साथ मिली हुई हैं भूमि से ३१४१ फुट ऊ ची है अंकाई की दक्षिण दिशा में जैनों की ७ गुफाए है जिस में बहुत बारीक नक्शी का काम हुआ है।

(१) एक गुफा दो मंजिल की है स्तम्भ के नीचे द्वार पाल बने हुए हैं

(२) दूसरी गुफा भी दो मंजिल की है नीचे के कमरे में लगभग २६–१२ का है द्वार पर छोटी छोटी जैन मूर्तियाँ है जिसकी कला की सुन्दरता दर्शनीय है

(३) तीसरी गुफा एक मंजिल की है तथा कई जैन मूर्तियाँ भी है

(४) चौथी गुफा भी एक मंजिल की है इसके स्तम्भ १०-१ फुट के हैं

(५) पांचवी गुफामें भी स्तम्भ है और जैन मूर्तियाँ भी है

(६) छट्ठी गुफा भी एक मंजिल की है इसमें भी कई जैन मूर्तियाँ है

(७) सातवीं गुफा छोटी है भग्न दशा हर के रूप में है खण्डित मूर्तियें भी है

१०—चांदोर-की गुफाए-यह स्थान नासिक से ३ मील तथा लासलगांव स्टेशन से बीस मील है नगर पहाड़ी के नीचे बसा है पहाड़ी भूमि से ३५ फुट ऊंची है पहाड़ी पर रेणुका देवी का मन्दिर है वहाँ कई जैन गुफाए थी है नगर के किल्ला की चट्टान में जैन गुफाओं में जैन मूर्तियाँ भी है जिनमें मुख्य मूर्ति चन्द्रप्रभ जिनकी है।

११—त्रिंगल वाड़ी की गुफाए—ताल्लुका इगतपुरी से ६ मील पहाड़ी पर गाँव बसा हुआ है वहाँ की गुफाए है जिसमें एक गुफा में कई जैन मूर्तियाँ है

१२—नासिक शहर-वहाँ की पंचवटी से एक मील तपोवन है जहाँ एक गुफा है जिसमें भ० चन्द्र का मन्दिर है पश्चिम की ओर ६ मील पर गोवर्धन या गंगापुर की प्राचीन बस्ती है वहाँ जैन चमार लेन गुफा है दूसरी एक बौद्धों की भी गुफा है तथा पाडुलेन में नं० ११ की गुफा है जिसमें जिनवरों का

ऋषभदेव की मूर्ति है वहाँ पर दिगम्बर जैनों का किसी समय प्रमुख रहा होगा इस नासिक नगर का नाम पुराने जमाने में पद्मपुर नाम था यहाँ रामचन्द्र और सुर्पनखा का मिलाप हुआ था

१३—चमारलेन—यहा की पहाड़ी ६०० फुट ऊंची है यहा पर एक प्राचीन जैन गुफा है यहां दिगम्बर जैनों का गजपथ नामक तीर्थ था।

१४—मागी तुंगी—यह भी दिगम्बर जैनों का सिद्धक्षेत्र नाम का तीर्थ है मनमाड़ स्टेशन से कई ५० मील दूर है यहां दो पहाड़िया साथ में मिली हुई हैं और ५-६ गुफाए' भी हैं।

१५—पूना शहर के आसपास में भी कई पहाड़ियां और जैन गुफाए हैं जैसे वेडसा के पास सुपाइ पहाड़ी भूमि से ३००० फुट ऊंची है वहां दो गुफाए' हैं उनमें कई शिलालेख भी हैं। भाजणावा की पहाड़ी के आसपास बौद्धों की १८ गुफाएं हैं उनमें कई गुफाए तो जैनों की हैं। करली ग्राम के पास भी कई जैन गुफाएं हैं तथा एक रामचन्द्र गुफा भी जैनों की गुफा है।

१६—सितारा जिला में भी कई पहाड़ियां और कई गुफाएं आ गई हैं जैसे कराद नगर के आस-पास ५४ गुफाए हैं जिसमें कई बौद्धों की और कई जैनों की हैं तथा लोहारी ग्राम के पास भी बहुत सी गुफाएं आई हुई हैं संशोधन करने की खास जरूर।

१७—धूमलवाडी—यह स्थान सितारा स्टेशन से नजदीक कोरेगांव तालुका यहा एक गुफा है जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति है और कई गुफाए धूल से भर गई हैं।

"इस सितारा जिला के लिए 'कम्पीरियल गजटियर बम्बई प्रान्त भाग' (सन् १९०९) सफा ५३९ पर लिखा है कि

"The gains in satara dist represent a survival of early gainish which was ance the religion of the rulers of the kingdom of Carnateo"

१७—ऐवल्ली (राहोली) यहाँ की पहाड़ियों में बहुत सी जैन गुफायें हैं वे गुफायें बहुत प्राचीन हैं उनके अन्दर बहुत सुन्दर नकशी का काम हुआ पाया जाता है तथा कई गुफाओं में जैन मूर्तियां भी हैं इन सबों को देखते विद्वानों ने यही अनुमान लगाया है कि किसी समय इस प्रान्त में जैन धर्म की बड़ी भारी जाहुजलाली थी और हजारों जैन श्रमण इन गुफाओं में रह कर तप संयम की आराधना करते होंगे एवं यहाँ के राजा प्रजा सब के सब जैन ही होंगे।

१८—बादामी की गुफायें—यहाँ की प्राचीन गुफायें बहुत प्रसिद्ध हैं इस बादामी की गुफाओं के लिये बहुत विद्वानों ने कई लेख भी लिखे थे वहाँ की गुफा बहुत करके जैनों की ही है कारण इन गुफाओं में वर्तमान भी जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्त्तियां विराजमान हैं बहुत से यूरोपियन विद्वानों ने यहाँ की गुफा का निरीक्षण करके यही अभिप्राय वक्त किये थे कि शिल्प कला के लिये तो वह गुफायें अपनी शान ही रखती हैं कहा जाता है कि विक्रमीय छटी सातवीं शताब्दी में यहाँ के जैन राजा जिन राज की भक्ति से प्रेरित हो जैन श्रमणों के लिये गुफायें एव मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई होगी।

१९—हेंनुसग—यहा भी एक पहाड़ी और जैन गुफा जिसमें जैनमूर्ति है।

२०—जोलावा—यहां भी एक प्राचीन गुफा और दो खण्डित मुर्तियां हैं।

२१—धारासिब—वर्तमान में इसका नाम उस्मानाबाद है और बारसी रेलवे लाइन का एखसी स्टेशन

१४ मील के फैसले पर नागलिंग है और वहां से २ ३ मील जाने पर जैनों की सात गुफाएं आती हैं जिसमें एक गुफा बहुत बड़ी है उसमें बहुत अच्छा नकशी का काम हुआ है और भ॰ पार्श्वनाथ की एक फण वाली मूर्ति विराजमान है यह भ॰ पार्श्वनाथ के शरीर प्रमाण स्याम-वर्ण की है इसके अलावा दोनों बड़ी सब गुफाओं में तीर्थङ्करों की मूर्तियां है

२२—पाण्डुरा की गुफाएं यह स्थान सोलापुर से १२ मील की दूरी पर आया हुआ है। यहां की पहाड़ी पर जैनों की १२ १३ गुफाएं आई हुई है जिसमें पांच गुफाएं बहुत ही बड़ी है पुराने जमाने की शिल्प कला यहीं की दर्शनीय है इन गुफाएं के विषय बहुत से पौर्वात्य पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत कुछ प्रसिद्ध कर चुके हैं। अतः यहाँ स्थानाभाव अधिक नहीं लिखा गया है।

२३—ओमाला यहाँ पर एक पहाड़ी भूमि से २१४९ फुट ऊंची है और तीन बड़ी गुफाएं है जिसमें एक तो दो मंजिल की है जिसके ऊपर के भाग में भ॰ महावीर की मूर्ति है नीचे की दो गुफाओं में एक में पार्श्वनाथ की दूसरी में एक देवी की खण्डित मूर्ति है।

२४—चूनाला-यहाँ जैनों की एक गुफा है जिसमें एक खण्डित जैन मूर्ति है।

२५—रामपुर के पास पहाड़ों में भी जैनों की दो बड़ी गुफाएं है जिसमें एक का नाम खारख दूसरी का सोनभद्रा इन गुफाओं के विषय डॉ॰ सरकनिंघहोम ने विस्तृत लेख लिखा था उसी इन गुफाओं में एक शिलालेख भी मिला है जिससे पाया जाता है कि प्रस्तुत गुफाएं ईसा की दूसरी शताब्दी में मुनि वीरदेव के लिये बनवाई गई थी।

इसके अलावा भी भारत के अन्योन्य प्रान्तों में सेकड़ों नहीं पर हजारों गुफाएं इस समय भी विद्यमान हैं जो शोध खोज करने से पत्ता मिल सकता है हाँ उन गुफाओं में इस समय साधु तो रहते ही नहीं हो पर इतिहास के लिये बड़ी काम की एवं उपयोगी है इन गुफाएं का निरीक्षण करने से यह पता लग जाता है कि एक समय भारतीय सब धर्मों के साधु जंगलों की गुफाओं में रह कर अपना जीवन परम शान्ति एवं आध्यात्म चिन्तन करने में व्यतीत करते थे और इस पवित्रता के कारण उन्हों को अनेक चमत्कारिक विद्याएं एवं लब्धियों भी प्राप्त हो जाती थी और उन लब्धियों द्वारा वे संसार का कल्याण कर सकते थे क्या कभी फिर भी ऐसा जमाना आवेगा कि हमारे भारतीय श्रमण जंगलों में रह कर उन विद्याओं को हासिल कर संसार का कल्याण करेगा।

३६-आचार्य श्री कक्कसूरिजी महाराज (सप्तम)

श्रेष्ठ्याख्यान्वयसंभवः सुविदितः श्रीकक्कसूरिर्महान् ।
विद्याज्ञान् समुन्द्र एष नृपतिं चित्राङ्गदं वै सुधीः ॥
जैन दीक्षितवान् तथा च कृतवान् श्रीकान्यकुब्जेपुरे ।
मूर्तिं स्वर्णमयीं विधाय भवने देवस्य संपूजकम् ॥
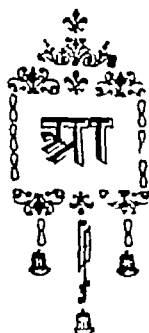
आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज महाप्रभाविक एवं प्रखर धर्मप्रचारक आचार्य हुए हैं। आप श्री ने पूर्व परम्परागत अजैनों को जैन बनाकर शुद्धि करने की मशीन से व अपने पीयूष रस प्लावित अमूल्योपदेशामृत से अनेक हिंसानुयायी वाममार्गियों को व मांसाहारी क्षत्रियादिकों को पवित्र जैनधर्म के पावन संस्कार से सुसस्कृत कर उन्हें उपकेश वंश (महाजन सघ) में सम्मिलित कर उपकेश वंश की आशातीत वृद्धि की। आप श्री की कठोर तपश्चर्या एवं सच्चरित्रतादि सविशेष गुणों से आकर्षित हो साधारण जनता ही नहीं अपितु बड़े २ राजा महाराजा भी आपकी सेवा का लाभ लेने में अपना अहोभाग्य धन्य दिवस समझते थे। शास्त्रीय मर्म के प्रकाण्ड पण्डित श्रीआचार्यदेव शास्त्रार्थ में तो इतने सिद्धहस्त-कुशल थे कि कई राज सभाओं के वादी कई बार आपसे पराजित हो चुके थे। वादी मानमर्दक श्रीसूरीश्वरजी ने कई वादियों को पवित्र जैनधर्म की दीक्षा से दीक्षित कर उन्हें सत्पथानुगामी बनाया। भ्रम से भूलकर अज्ञानता के निविड़ तिमिरमय मार्ग की ओर प्रवृत्ति करने वाले अज्ञानियों के लिये सत्पथप्रदर्शक बन सूरिजी ने उनको कण्टकाकीर्ण मार्ग से विलग कर, चारु पथ के पथिक बनाये। इस तरह चतुर्दिक में पवित्र जैनधर्म की उत्तुंग पताका को फहरा कर आचार्यश्री ने शब्दतोऽवर्णनीय यश सम्पादन किया।

दुष्काल के बुरे असर से जो श्रमणों में शिथिलता आगई थी उसको जगह २ श्रमण सभाओं से मिटाकर सूरीश्वरजी ने शिथिलाचारी मुनियों को उग्रविहारी बनाये। श्रमणों के आवागमन के अभाव से जो क्षेत्र सद्धर्म–पराङ्मुख बन गये थे, उन क्षेत्रों में आचार्यश्री ने स्वय विहार कर पुन. धर्मांकुर अङ्कुरित किया। अत यदि यह कह दिया जाय कि आपका जीवन ही जैनधर्म की प्रभावना के लिये हुआ तो, कोई अत्युक्ति न होगी। पाठकों की जानकारी के लिये आपश्री का जीवन सक्षिप्त रूपमें लिख दिया जाता है।

मरुधर भूमि के लिये अलकार स्वरूप, अमरपुर से स्पर्धा करने वाला अनेक उपवन, वाटिका, कूप, सरोवर व विविध पादपों के विचित्र सौंदर्य को धारण किये हुए अत्यन्त रमणीय उत्तम नभस्पर्शी अट्टालिकाओं समन्वित सुवर्ण कलस ध्वज दण्ड वाले अनेक जिनालय व धर्मशालाए से सुशोभित मेदिनीपुर नामक नगर था। यह नगर उपकेश वश की विशेष आबादी (विशेष सख्या) से भरा हुआ था। उपकेश वंशीय जन समाज-जैसे राज्य कार्य को चलाने में राज्यनीति निष्णात था वैसे ही व्यापारिक श्रेणी में भी सबसे आगे कदम बढ़ाया हुआ था। इन उपकेश वशियों का व्यापार क्षेत्र भारत के परिमित सकुचित क्षेत्र के ही लिये हुए नहीं था अपितु इनके व्यापार क्षेत्र का सम्बन्ध भारत से बहुत दूर पाश्चात्य प्रदेशों से भी था। ये लोग

मेदनीपुर नगर

जलमार्ग एवं स्थल मार्ग दोनों ही मार्ग से व्यापार किया करते थे । इन्हीं व्यापारियों में श्रेष्टिगोत्रीय शाह करमण नाम के एक नामाङ्कित व्यापारी थे । आप पर लक्ष्मी की अपार कृपा होने से आप धन कुबेर के नाम से भी जग विख्यात थे ।

शाह करमण के पुन्य पावनी पतिव्रत धर्म परायणा, परम सुशीला मैना नामकी स्त्री थी । इसी देवी ने अपनी रत्न कुक्षि से ११ पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म देकर, अपने जीवन को कृतार्थ बनाया था । माता मैना इतने विशाल कुटुम्ब वाली होने परभी अपने धर्म कार्य सम्पादन करने में सदैव तत्पर रहती थी । उस जमाने में एक तो जीव लघुकर्मी ही होते व दूसरा निस्पृही निर्ग्रन्थों का उपदेश ही ऐसा मिलता था कि वे एक मात्र धर्म को ही उभयतः श्रेयस्कर आदरणीय, एवं उपादेय समझते थे । माता मैना के कई पुत्र पुत्रियों की शादियां भी हो गई थी । इनमें से श्री विमल नाम का पुत्र भी एक था । विमल, व्यापार कला का विशेषज्ञ एवं धर्म कार्य का परम अनुरागी, दृढ़ श्रद्धालु था । प्रत्येक कार्य के लिए शा करमण विमल से परामर्श किया करते थे ।

एक समय विमल किसी कार्यवशात् नागपुर गया था वहां पर उपाध्याय श्रीसोमप्रभ के उपदेश से *मुर्धनिर्धनमूल्य शा. गोसा ने शत्रुञ्जय का संघ निकालने का निश्चय किया एवं संघ निकालनेके* शुभ मुहूर्त का भी निश्चय हो चुका था अतः उक्त अवसर पर सम्मिलित होने के लिये शा. गोसाने शा विमल से प्रार्थना की कि कृपा कर संघ में पधार कर संघ का लाभ मुझे प्रदान करें । इस पर विमल ने उत्तर दिया कि आप बड़े ही *भाग्यशाली हैं कि संघ निकालने रूप इतर पुन्योपार्जन कर रहे हैं किन्तु यदि पांच दिन मुहूर्त को* आगे टाल दो तो हम कुटुम्ब साथ चल कर यात्रा के अपूर्व लाभ एवं अतुल पुन्य को सम्पादन कर सकेंगे । इन पांच दिनों में तो हमारे जरूरी काम होने से यकायक आना नहीं बन सकता है । इस पर शाह गोसा ने तो कुछ भी जवाब नहीं दिया पर पास में ही बैठे हुए गोसा के पुत्र देपा ने कहा कि निर्धारित मुहूर्त में कुछ भी रद्दोबदल नहीं हो सकता है यदि आपके जरूरी कार्य होने से इस संघ में न पधारें तो भी आप समर्थ हैं कि आप स्वयं संघ निकाल कर यात्रा कर सकते हैं । शाह देपा ने किसी भी आशय से कहा हो पर विमल ने उसका वाक्य समझ कर उत्तर में कुछ भी नहीं कहा चुप चाप वह यों ही चल पड़ा पर उसकी अन्तरात्मा में संघ निकालने की नवीन उत्कट भावना ने जन्म ले लिया अतः तत्काल वहां से रवाना हो विमल, मेदिनीपुर आया और अपने सब कुटुम्बियों के समक्ष स्वहृदयान्तर्हित नवीन भावना को कह सुनाया । ऐसी परमसुखमय सुन्दर योजना को सुन सभी के हृदयों में अपरिमित आनंद का अनुभव होने लगा और उसी दिन से वे संघ निकालने के लिए आवश्यक साधनों को जुटाने में संलग्न बन गये ।

विमल की इच्छा थी कि अपने माता पिता की मौजूदगी में ही यात्रार्थ संघ निकाल कर यात्रा करे पर दुरदैव कुछ और ही भाव बता रही थी । शाह करमण की अवस्था वृद्ध थी उसने अपने शरीर की हालत देखकर अपने स्थान पर शा विमलको स्थापन कर घर का सब कारोबार विमल के अधिकार में कर दिया और आप परम निवृत्ति में जैन धर्म की आराधना में संलग्न हो गये यही हाल माता मैना का था ।

आहा-हा उस जमाने के गृहस्थ एवं लघुकर्मी लोग आत्मकल्याण करने में किस प्रकार तत्पर रहते थे जिसका यह एक उदाहरण है थोड़ा ही समय में शाह करमण समाधी पूर्वक एवं पंच परमेष्ठी का स्मरण के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया । जिससे विमल को बड़ा भारी रंज हुआ वह सोचने लगा कि मैं इस

भाग्य हूँ कि पिताजी की मौजुदगी में सघ नहीं निकाल सका तथापि विमल के हृदय में सघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा करने की भावना बढ़ती ही गई ।

इधर मेदिनीपुर के प्रबल पुन्योदय से शासन शृ गार धर्मप्राण, श्रद्धेय, पूज्याचार्यश्री सिद्धसूरि का शुभागमन मेदिनीपुर में हुआ । स्वर्गस्थ करमण के विमलादि पुत्रों ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया ।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग, वैराग्य एव आत्म कल्याण के विषय में होता था । अतः सर्व श्रोतागण ऐसे तो सूरिजी के व्याख्यान से लाभ उठाते ही थे किन्तु विमल पर इन व्यायखानों का सविशेष प्रभाव पड़ा । एक दिन विमल ने सूरिजी से प्रार्थना की कि भगवान ! यदि इस वर्ष के चातुर्मास की कृपा हमारे पर हो जाय तो मैं चातुर्मासानतर शत्रुञ्जय का संघ निकालू प्रत्युतर में सूरीश्वरजी ने फरमाया कि विमल ! तेरी भावना अत्युत्तम है । यात्रा के लिये संघ निकाल कर पुण्य सम्पादन करने रूप कार्य साधारण नहीं किन्तु, अत्यन्त महत्व का है । चातुर्मास के लिये निश्चित तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता, पर जैसी क्षेत्र स्पर्शना होगी वैसा कार्य बनेगा ।

विमल के दिल में पूरी लगन थी । वह अच्छी तरह से समझता था कि गच्छनायक सूरिजी के विराजने से ही मेरा हृदयान्तर्हित कार्य बड़ी सुगम रीति से सफल हो जायगा इत्यादि खैर । पुनः एक समय मेदिनीपुर श्रीसघ एकत्र मिलकर सूरिजी से चातुर्मास के लिये आग्रह भरी प्रार्थना की । सूरिजी ने भी भविष्य के लाभालाभ का कारण जानकर मेदिनीपुर के श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करली । बस फिर तो था ही क्या ? केवल विमल के लिये ही क्यों पर आज तो मेदिनीपुर के घर घर में हर्ष की तरगे उछलने लगी ।

चातुर्मास में पर्याप्त समय होने से सूरिजी ने इधर उधर के समीपस्थ क्षेत्रों में परिभ्रमण कर अर्ध निद्रित समाज को जागृत किया । चातुर्मास के समय के नजदीक आने पर सूरिजी ने पुन मेदिनीपुर पधार कर चातुर्मास कर दिया । बस विमल के हृदयान्तर्हित मनोरथ भी सफल होगया । उसने सूरिजी से परा मर्शकर सघ के लिये और भी विशेष सामग्री जुटाना प्रारम्भ कर दिया ।

इधर चातुर्मास में सूरिजी के व्याख्यान हमेशा तात्विक, दार्शनिक, एव सामाजिक विषयों पर होते थे । जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए त्याग, वैराग एव आत्म कल्याण के विषयों का भी समन्वय कर दिया जाता जिससे, श्रोताओं का हृदय ससारावस्था में रहते हुए भी वैराग्य के सन्निकट ही रहा करता था । आचार्यश्री के विराजने से इत' उत सर्वत्र प्रबल परिमाण में धार्मिक क्रान्ति का बीजारोपण हुआ और जनता ने खूब लाभ उठाया ।

जब चातुर्मास के अवसान का समय सन्निकट आ गया तो विमल ने सूरिजी से प्राथना की कि— पूज्यवर ! कृपा कर सघ प्रस्थान के लिए परम शान्तिमय, कल्याण दायक, सौख्य प्रद शुभ मुहूर्त प्रदान करें जिससे सर्व कार्याराधन निर्विघ्नतया, परमानन्द पूर्वक हो सके । आचार्यश्री ने माह सुद पञ्चमी के मंगल मय दिवस का शुभ मुहूर्त प्रदान किया जिसको, विमल ने अत्यन्त विनयपूर्वक शिरोधार्य कर बधाया । सूरि-प्रदत्त शुभमुहूर्त पर यथा समय उपस्थित होने के लिये स्थान २ पर निमन्त्रण पत्रिकाए भेजी गई । सदेश वाहकों से शुभ सदेश दिलवाये गये । गुरुदेवों (साधु, साध्वियों) की विनती के लिये योग्य पुरुषों व अपने भ्राता एव पुत्रों को भेजे ।

एक खास उल्लेखनीय घटना यह बनी कि शाह विमल चम्पापुर जा कर शाह मोखा संघेशी को संघ में पधारने का आमन्त्रण किया कि उस समय शाह मोखा का पुत्र देवा भी पास में बैठा था उसने कहा विमल शाह आप बड़े ही भाग्यशाली हैं कि इस प्रकार आत्मकल्याणार्थ धार्मिक कार्यों में लक्ष्मी का सदुपयोग करते हैं। शाह विमल ने कहा यह आप साहिबों की अनुग्रह का ही सुन्दर फल है जैनधर्म में आरम्भ से ऐसे कार्यों का होना बतलाया है शाह देवा समझ गया कि मेरा कहना शायद शाह विमल को ताना का हुआ हो और उस कारण को लेकर ही आपने संघ की योजना की हो ? पर ऐसा तो ताना ही अच्छा है कि जिसमें हजारों जीवों के पुन्य बन्ध का कारण बन जाता हो और शाह देवा ने कहा विमल शाह यदि आप पांच सात दिन मुहूर्त बदल दें तो हम सब कुटुम्ब के साथ आपके संघ में चल कर तीर्थयात्रा करें। विमल ने कहा बहुत खुशी की बात है यदि आपके जैसे भाग्यशाली मेरे पर इस प्रकार कृपा करते हों तो मुझे पांच सात तो क्या पर अधिक समय भी ठहरना पड़े तो भी इन्कार नहीं है। इस पर विमल की विशालता की कसौटी हो गई और उसी मुहूर्त के समय शाह मोखा-देवा संघ में चलने के लिये तैयार हो गये। अहाहा कैसा निरभिमान का जमाना था और लोगों के दिल कैसे उदार सरल विशाल थे ? जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है इससे ही धर्म की प्रभावना एवं उन्नति होती थी—

ठीक समय पर मेदिनीपुर चतुर्विध श्रीसंघ से भर गया तब सूरीश्वरजी ने शाह विमल को संघपति पद प्रदान किया। इस तरह आचार्यदेव के नायकत्व एवं विमल के संघपतित्व में भारी धामक संघ ने शुभ मुहूर्त में वहां से प्रस्थान कर दिया। आचार्य देव के साथ में प्रायः सकल संघ पाद विहारी बन तीर्थ यात्रा के परम सुकृत का लाभ उठाने लगा। चतुर्विध श्रीसंघ से सजा हुआ वह संघ इतनी विशाल संख्या में था कि देखने वालों को मास्वनिक राजा के इतर सैनिक समूह का भ्रम हो जाता था।

जब क्रमशः शत्रुञ्जय तीन मुकाम दूर रहा तो सकल जनता के हृदय में तीर्थ दर्शन की तीव्र भावना प्रबल रूप से जागृत होने लगी। अतः प्रातःकाल संघ ने शीघ्र ही उस स्थान से प्रस्थान कर दिया। संघपतिजी तो सूरीश्वरजी के साथ में थे इस लिये सूर्योदय के होने पर आचार्य देव के साथ ही रवाना हुए चलते हुए मार्ग में पड़े हुए एक ऐसे बैल को देखा जिसके कि शरीर में कीड़े कलबला रहे थे। स्थान २ से रुधिर धारा प्रवाहित हो रही थी। पक्षी पग चोंच से खोंच कर मांस निकाल उसे विशेष पीड़ित कर रहे थे। वह इस प्रकार से छट पटा रहा था कि मानों देह त्याग की ही आन्तरिक भावना प्रदर्शित कर रहा था। इस प्रकार सर्वथैवाऽवर्णनीय दारुण वेदना से दुःखित बैल को संघपति ने देखा और उसने सूरिजी से कहा—भगवन्। ये भी किसी पूर्वभव कृत अशुभ कर्मोदय से ही पशु होंगे ? सूरिजी ने कहा विमल ! इससे ही क्यों पर अपना यह जीव भी इससे अधिक भीम भयम् नारकीय यातनाओं को अनेक बार सहन कर आया है। बैल की पीड़ा के देखने मात्र से ही अपनी दयनीय स्थिति होती है किन्तु जिसके सामने यह कष्ट आपन्न सा है ऐसा परमाधार्मिककृत उपसर्ग यातनाओं को बलात् सहन करना पड़ता है। इस तरह सूरिजी ने विमल के नरकों के समस्त नारकीय दुःखों का अनावृत चित्र चित्रित करदिया तब पाप से डरपोक विमल ने कहा—भगवन् ! ऐसा भी कोई अमोघ उपाय है कि जिससे कभी किसी भी प्रकार के दुःखों को सहन न करना पड़े ? सूरिजी ने कहा—इन दुःखों से छूटने का एक मात्र उपाय जिन प्रणीत यमनियमों (महाव्रतों) को स्वीकार कर योगाभ्यास से सम्यक्त्वादि रत्न त्रय

की आराधना करना है। विमल ! साधारण मनुष्य तो क्या ? किन्तु चक्रवर्ती जैसे चतुर्दिशा के स्वामी भी स्वाधीन सुखों पर लात मार कर सयम रूप अमूल्य रत्न को यावज्जीवन सुरक्षित रख अनादिकाल से सम्बन्धित जन्म मरण के दुक्खों से छूट कर आत्मशांति परम सुख का अनुभव करते हैं। विमल ने कहा—पूज्यवर ! दीक्षापालन करना भी तो महादुष्कर एवं लोहे के चने चबाना है ? सूरिजी ने कहा विमल ! देख,यह बैल की दारुण यातना असह्य है या दीक्षा पालन दुष्कर है ? विमल ने कहा—यहतो परवश होकर भोग रहा है। सूरिजी ने कहा—जब परवश होकर भी वेदना भोगनी पड़ती है तो सबसे अच्छा यही है कि स्वाधीनपने ही वेदना भोगलें जिससे बलात्‌दसह्य वेदना न सहन करनी पड़े। विमल ने कहा—भगवन् मेरी इच्छा सब प्रकार के सांसारिक दुःखों से मुक्त होने की है। सूरिजी ने कहा—विमल ! खूब गहरा विचार करले। देख वैराग्य चार प्रकार के होते हैं।

(१) वियोग वैराग्य– किसी के मृतक शरीर को जलाते हुए देखकर मनुष्य को श्मसानीया वैराग्य आता है परन्तु, वह मृत देह को जलाने के पश्चात् स्नान करने के साथ ही साथ धुप जाता है।

(२) दुःख वैराग्य—जब कभी असह्य दुःख आपड़ता है तब वैराग्योत्पन्न होजाता है। पर वह, दुःख की स्थिरता तक ही सीमित रहता है।

(३) स्नेह वैराग्य—पिता पुत्रादि के स्नेह से जो वैराग्य होता है वह भी अधिक समय तक स्थायी नहीं रहता।

(४) आत्म वैराग्य—आत्मा के भावों से सांसारिक स्वरूप को समझ कर जन्म मरण के दुःख से मुक्त होने के लिये जो वैराग्य होता है वह सच्चा वैराग्य है।

सूरिजी—विमल ! तेरा वैराग्य इन चारमें से कौनसा है।

विमल— पूज्यवर ! मेरे वैराग्य में कारण तो इस बैल का दुःख ही है अतः मेरा वैराग्य दुःखजन्य वैराग्य है किन्तु मुझे दृढ़, स्थायी तथा सच्चा वैराग्य है।

सूरिजी—तब तेरे दीक्षा लेने के भाव कब हैं ?

विमल—आप आज्ञा फरमावें तब ही।

सूरिजी—शीघ्रमत सिद्ध क्षेत्र में ही तेरी दीक्षा हो जाय तो .

विमल—बहुत खुशी की बात है गुरुदेव ! मैं भी तैय्यार हूँ।

सूरिजी—तुम्हारा शीघ्र ही कल्याण हो।

इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण निर्णय के पश्चात् सूरिजी और सघपतिजी क्रमशः संघ में आकर मिलगये। विमल केसाथ में उनकी धर्मपत्नी,आठ पुत्र तीन पुत्रिया एव भाइ आदि बहुत सा परिवार भी यात्रा निमित्त आया था किन्तु, विमल ने सिद्ध क्षेत्र पहुँच ने के पूर्व अपने मनोगत भावों की किसको सूचना भी न की और क्रमशः चलता हुआ सघ तीर्थ स्थान पर सकुशल आ गया। सब ने दादा के दर्शन, स्पर्शनकर अपने मनोरथों को सफल बनाने में भाग्यशाली बने। पूजा प्रभावना, स्वामीवात्सल्य' धाजामहोत्सवादि पावन कार्यों में उदार दील से पुष्कल द्रव्य व्यय कर अपूर्व पुण्यमय लाभ उपार्जन किया।

जब सघपति सूरिजी को वंदन करनगये तब सूरीजी ने कहा कि पुण्य शाली ! क्या विचार है ? विमल ने कहा वे ही दीक्षा गृहण करने के दृढ़ विचार हैं सूरिजी ने कहा-तब क्या देर है ? विमल-भगवान् ! देर कुछ

नहीं, सब कार्य तो कर चुका हूँ, केवल दीक्षा का काम रहा है सो वह भी कल तक हो जायगा। सूरिजी ने कहा—'जहासुखं'।

सूरीश्वरजी के चरण कमलों में वंदन करने के पश्चात् विमल अपने निर्दिष्ट स्थान पर आया। अपने सकल परिवार को एवं कौटुम्बिक सम्बन्धियों को बुला कर कहने लगा—मेरी भावना कल आचार्यश्री के पास में दीक्षा लेने की है अतः आप सबकी अनुमति चाहता हूँ। विमल के उक्त हृदय स्पर्शी वचनों को श्रवण कर सब के सब अवाक् रहगये। अन्त में विमल की पत्नी ने विनय पूर्वक कहा प्राणेश्वर! यदि आपको दीक्षा लेना ही है तो कम से कम संघ को लेकर पुनः अपने घर पधार जाइये। वहाँ मैं भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करलूँगी। विमल ने कहा—जब दीक्षा लेनी ही है तो ऐसे पावन तीर्थ स्थल को छोड़ कर घर जाकर दीक्षा अङ्गीकार करने में क्या विशेष लाभ है ? कुछ भी हो, मैं तो इसी स्थान पर कल दीक्षा ग्रहण करूंगा। इस विषय में विमल के पुत्रों ने भी बहुत कुछ कहा किन्तु विमल, अपने दृढ़ निश्चय पर अविचल रहा। आखिर विमल ने, अपनी पत्नी सहित ११ श्रावक श्राविकाओं के साथ सिद्धाचल के पवित्र आदीश्वर स्थान में सूरीश्वरजी के कर कमलों से परमवैराग्य पूर्वक दीक्षा स्वीकार की। उस ही दिन से विमल का नाम विनयसुंदर रख दिया गया।

संघपति के स्वर्ण खचित की माला विमल के ज्येष्ठ पुत्र श्रीपाल को पहिनाई गई। क्रमशः संघ चलकर पुनः मेदिनीपुर आया। संघपति श्रीपाल ने संघ को स्वामी वात्सल्य व प्रभावनोत्सव में पांच स्वर्ण मुद्रिकायें डालकर स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी दी। याचकों को प्रचुर परिमाण में दान दे संघ को इस प्रकारेण विसर्जित किया।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी ने मरुधर में विहार कर स्थान २ पर जैनधर्म का उद्योत किया। मुनि विनयसुन्दर भी इस समय पूज्य गुरुदेव की सेवा का लाभ लेता हुआ नम्रता पूर्वक शास्त्रों का अभ्यास करने लगा। विमल ऐसे तो स्वाभावतः ही कुशाग्र बुद्धि वाला था फिर गुरुदेव का संयोग तो स्वर्ण में सुगंध का सा काम करने लगा। परिणाम स्वरूप थोड़े ही समय में विनयसुन्दर न्याय, व्याकरण तर्क छन्द, काव्य, अलंकार, निमित्तादि शास्त्रों का अभ्यास कर धुरन्धर-धुरंधर विद्वान् होगया। विद्वत्ता के साथ ही साथ उस समय के लिये परमावश्यक वाद विवाद की शक्ति संचय में भी अनवरत गति से वृद्धि करने लगे। इतना ही नहीं, कई राज सभाओं के दिग्गज वादियों को नत मस्तक कर उन्हें जिनधर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त के अनुयायी बनाये। इसप्रकार सर्वत्र जैनधर्म की विजयपताका फहराते रहे।

अन्त में योग्य शिष्य को अपना उत्तराधिकारी जान सिद्धसूरि ने अपने अन्तिम समय मालपुर के चतुर्विध संघ के बीच देवी सच्चायिका के परामर्शानुसार, भाद्र गौत्रीय शाह गोसल के महा महोत्सव पूर्वक विनय सुंदर मुनि को सूरि पद से विभूषित किया। परम्परानुसार आपका नाम कक्क सूरि रखदिया गया। सिद्ध सूरिजी तो उसी दिन से अपनी अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये।

उपकेशगच्छाचार्यों में क्रमशः रत्नप्रभसूरि यक्षदेवसूरि, कक्कसूरि देवगुप्तसूरि सिद्धसूरि। इन पांच नामों की परम्परा चली आ रही थी किन्तु काल दोष से किंवा इसी के कारण से रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि, ये दोनाम भण्डार (बंद) कर देने पड़े। अतः तब से कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि ये तीन नाम ही क्रमशः रक्खे जाने लगे। इसी के अनुसार सिद्धसूरि के पट्ट पर आचार्य कक्कसूरि हुए।

आचार्य ककसूरि एक महान् प्रतिभाशाली, तेजस्वी आचार्य हुए। आपके आज्ञानुवर्ती हजारों साधु साध्वी पृथक् २ क्षेत्रों में विचर कर जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे किन्तु काल दोष से कुच्छ श्रमण मण्डली में साधु वृत्ति विषयक यम नियमों में कुछ शिथिलता आचुकी थी। श्री सूरिजी से संयम वृत्ति विघातक शिथिलता सहन न हो सकी। उन्हें इसका प्रारम्भिक चिकित्सोपचार ही हितकर ज्ञात हुआ। वे विचारने लगे कि जिन सुविहितों ने चैत्यवास करते हुए भी शासन की महती प्रभावना की उन्हीं में आज कलिकाल की क्रूरता से चरित्र विराधक वृत्ति ने आश्रय कर लिया है अत: इसका प्रथम स्टेप में अन्तकर देना भविष्य के लिये विशेष श्रेयस्कर है अन्यथा यही शिथिलता भयंकर रूप धारण कर परिष्कृत मार्ग को भी अवरुद्ध कर देगी। बस, उक्त विचार धारानुसार वे शीघ्र ही जावलीपुर पधार गये। वहा के श्रीसंघ को उपदेश से जागृत कर, प्राविष्ट होती हुई शिथिलता को रोकने के लिये, निकट भविष्य में ही श्रमण सभा करने के लिये प्रेरित किया। श्रीसघने भी धर्मह्रास की दीर्घदृष्टि का विचार कर आचार्यश्री के वचनों को शिरोधार्य किया तत्काल एक सुन्दर योजना बनाकर आचार्यश्री की सेवा में रखदी गई।

उक्त निश्चयानुसार बहुत दूर दूर के प्रदेशों में आमत्रण पत्रिकाएं भेजी गई। सर्व साधुओं को जावलीपुर में एकत्रित होने के लिये प्रार्थना की गई। आमन्त्रण पत्रिकाओं को प्राप्त कर धर्म प्रेम के पावन रस में लीन हुए, उपकेशगच्छीय, कोरटगच्छीय, और वीर परम्परागत मुनिवर्ग, एवं श्राद्ध समुदाय ठीक दिन जावलीपुर में एकत्रित हुए। निर्धारित समयानुसार सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम श्रमण सभा-योजना के उद्देश्यों का जन समाज के समक्ष सविशद् दिग्दर्शन कराया गया। तत्पश्चात् आचार्यश्रीकक्क-सूरिजी ने ओजस्वी वाणी द्वारा सकल जन समुदाय को अपनी ओर चुम्बक वत् आकर्षित करते हुए प्रेम, सगठन, आचार व्यवहार, समयोचित कर्तव्यादि के अनुकूल विषयों पर सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपदेश देना प्रारम्भ किया। सूरिजी ने फरमाया कि महानुभावों! आज हम सब किसी एक विशेष शासन के कार्य के लिये एकत्रित हुए हैं। हम सबों में पारस्परिक गच्छ-समुदाय का भेद होने पर भी वीतराग देवोपासक आचार व्यवहारों की समानता से जैनत्व का दृढ़ रंग सभी में सरीखा ही है हम सब एक पथ के पथिक हैं। भगवान् महावीर के शासन की रक्षा एव वृद्धि करना ही सब का परम ध्येय है। किन्तु, वर्तमान में हमारे शासन की क्या दशा होगई है? यह किसी समयज्ञ से प्रच्छन्न नहीं है। जब कि एक ओर अन्य लोग अपना प्रचार कार्य अनवरत गति पूर्वक बढ़ा रहे हैं तब दूसरी ओर हमारे में कहीं कहीं शिथिलता ने प्रवेश कर दिया है। मृत तुल्य वाममार्गियों में पुन: जीवन आ रहा है। वेदान्तियों में हिंसा जनक विधानों के यज्ञ कार्य प्राय लुप्त सा होगया तथापि देवदेवियों के नाम पर उत्तेजना मिल रही है तब, हमारे में नये नये गच्छ, मतमतान्तर एव समुदायों का प्रादुर्भाव होकर संगठित शक्ति का ह्रास किया जा रहा है। श्रमण वर्ग भी साधुत्व वृत्ति साधक आचार व्यवहार की ओर विशेष ध्यान नहीं देते है। बन्धुओं! अपने पूर्वजों ने जैनेतरों पर जैनधर्म का जो स्थायी प्रभाव डाला था, उसमें मुख्य उनके आचार विचार विषयक उत्कृष्टता, अनेकान्त सिद्धान्त ज्ञान की गम्भीरता ही कारण हैं जैन श्रमणों के आचार का तुलनात्मक दृष्टि से इतर कोई दर्शन साम्य नहीं कर सकता है। साधारण जनता में जो साधुओं के प्रति, एवं धर्म के प्रति श्रद्धा है उसमें अपने क्रिया काण्डों की दुष्करता एव आत्म कल्याण की अभीप्सित भावनाओं की सुगमता ही प्रधान हेतु है। अत: अपने आचार विचारों में, यम नियमों में, शास्त्रीय विधानों में किञ्चिन्मात्र भी शिथिलता ने प्रवेश किया नहीं कि

भविष्य का उन्नति मार्ग दो प्रकार से अवरुद्ध होजायगा । एक तो स्वयं भी आत्मकल्याण की उत्कृष्ट भावनाओं से मुक्ति एवं परम निर्वृत्तिमय धाम से सैकड़ों कोस दूर हो जावेंगे और दूसरा भक्ति श्रद्धा के लिये स्वाभाविक अवज्ञा के कारण बन जावेंगे ।

प्यारे श्रमणवर्गो ! वीरों की सन्तान वीर होती है न कि कायर । जो कायर हैं वे वीर पुत्र कहलाने के अधिकारी नहीं । हमारा इस अवस्था में (साधुवृत्ति में रहते हुए) क्या कर्तव्य है, यह आप लोगों से प्रच्छन्न नहीं कारण हमने सांसारिक एवं पौद्गलिक अस्थिर, क्षणभंगुर सुखों पर लात मार कर, मुक्ति मार्ग की आराधना को परम लक्ष्य बना, परम कल्याणमय चारित्र का स्वीकार किया है । अतः अपने कर्त्तव्य लक्ष्य को विस्मृत न करते हुए शासनोन्नति करने के साथ ही साथ आत्मोन्नति ध्येय को भी अपनी उन्नति का मुख्य अङ्ग मानकर तन मन से शासन कार्य में जुट जाना चाहिये । इसी में स्वपरोन्नति सन्निहित है ।

मैं जानता हूँ कि सिंह थोड़ी देर के लिये तंद्रावस्था हो निर्भीकतया गिरिकन्दरा में सो जाता है तो क्षुद्र मक्षिकाएं भी उसके मुखपर बैठजाती हैं किन्तु जब वह दूसरे ही क्षण हाथ उठाकर गगन भेदी गर्जना करता है तब मक्षिकाएं तो क्या पर, मद से मदोन्मत्त बनी हुई गजराशि भी शक्ति विहीन निश्चेष्ट होजाती है । उदाहरणार्थ—जब उपाध्याय देवचंद्र मुनि ने चैत्यव्यवस्था के कार्य में अपने वास्तविक श्रमणत्व को विस्मृत कर दिया तब, सर्वदेव सूरि की सिंह गर्जना ने उन्हें पुनः जागृतकर उग्रविहारी बना दिया ।

श्रमणों ! आज मैं आपके बन्धुओं में कुछ शिथिलता का अंश देख रहा हूँ । अतः इसको निवारण करने के लिये ही श्रमण सभा का आयोजन किया गया है । मुझे पूर्ण आशा है कि इस लोग आई हुई शिथिलता को दूर कर शीघ्र ही शासनोन्नति के कार्यों में संलग्न हो जावेंगे । कारण शिथिलता एक ऐसी रोग है, इसको फैलाने में देर नहीं लगती है । अतः इसके अंकुरों को नहीं होने देने में ही अपना गौरव है । दूसरा शिथिलता का एक कारण यह भी है कि—हमारे अन्दर शिष्य पिपासा बढ़ गई है दीक्षेच्छुओं के त्याग वैराग्य की भी परीक्षा नहीं करते हैं, न उनकी योग्यता को दीक्षा की कसौटी पर ही कसते हैं । इस शिष्य लालसा की पिपासा की धुन में शासन हित की महत्व पूर्ण जिम्मेवारी को भूल नहीं करने योग्य कार्य को भी कर्तव्य रूप बना देते हैं । अन्त में परिणाम स्वरूप शासन के भारभूत वे अयोग्य दीक्षित स्वच्छंदी लोलुपी इन्द्रिय पोषक, सुखशीलिये बनकर अपने साथ में अनेकों का अहित कर शासन को भारी हानि पहुँचाते हैं । पहिले जो दीक्षाएं दी जा ती थी वे स्व परकल्याण की उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर के ही किन्तु, सम्प्रति कहीं कहीं इससे विरुद्ध सा ही दृष्टि गोचर हो रहा है । हम लोग अपनी जमात बढ़ाने के लिये योग्यायोग्य का विचार किये बिना प्रत्येक को—चाहे वैराग्य के रंग से रंगा हुआ न भी हो—दीक्षा देते जा रहे हैं । इस प्रकार जबर्दस्ती शिष्य बढ़ाने की अभिलाषा भी तब ही उत्पन्न होती है जबकि हम अपने गुरु को छोड़ कर पृथक् होने का प्रयत्न करते हैं ।

यदि गुरुकुलवास में रहने में ही गौरव समझा जाता हो तो न तो अलग जमात बांधने की जरूरत है और न अयोग्य को दीक्षा देने की आवश्यकता है । प्यारे श्रमणो ! आप दीर्घ दृष्टि से सोच लीजिये कि न इस कुप्रवृत्ति से शासन का हित है और न आत्म कल्याण ही ।

प्रिय आत्म बन्धुओ ! शासन का प्रचार एवं प्रसार आप जैसे श्रमण वीरों ने किया और भविष्य में भी आप जैसे साहसी ही कर सकेंगे । अतः आचार विचार विषयक शिथिलता को छोड़कर शासन प्रभावना में

स्वहित (आत्म कल्याण) के लिये कटिबद्ध हो जाइये। अपने पूर्वजों ने तो हजारों लाखों दुस्सह यातनाओं एवं कठिनाइयों को सहन कर 'महाजनसंघ' रूप एक बृहद् सस्था संस्थापन की है तो क्या हम इतने गये बीते हैं कि—पूर्वाचार्यों के बनाये महाजनसघ की वृद्धि न कर सकें तो-रक्षा भी न कर सकें ? नहा, कदापि नहीं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि अत्रागत श्रमण वर्ग अवश्य ही अपने कर्त्तव्य को पहिचान कर शासनोन्नति के कार्य में सलग्न हो जावेंगे।

साथ ही दो शब्द श्राद्ध वर्ग के लिये प्रसङ्गोपेत कह देना भी अनुचित न होगा। कारण, तीर्थङ्कर भगवान् ने चतुर्विध श्रीसघ में आपका भी बराबरी का आसन रक्खा है। पूर्वाचार्यों ने इत उत सर्वत्र देश विदेशों में जो जैनधर्म का प्रचार किया है उसमें, आपके पूर्वजों का भी तन, मन, एवं धन से यथानुकूल सहयोग पर्याप्त मात्रा में था। आपका कर्त्तव्य मार्ग तो इतना विशाल है कि यदि कभी साधु अपनी साधुत्व वृत्ति से विचलित हो जाय तो आप उसे पुनः भक्ति से कर्तव्य मार्गारूढ़ बनाकर शासनोन्नति में परम सहायक बन सकते हैं।

श्रमण संघ में जो शिथिलता आती है वह भी, श्राद्ध वर्ग की उपेक्षा वृत्ति से ही। जब तीर्थङ्कर, गणधरों ने साधुओं के लिये शीतोष्ण काल में एक मास और चातुर्मास में चार मास की मर्यादा का समय बांध दिया है तथा वस्त्र, पात्र वगैरह हर एक उपकरणों के कल्पाकल्प का नियम बना दिया हैं तो क्यों कर श्राद्ध वर्ग उक्त नियम विघातक साधुओं को उत्तेजना देकर शिथिलता फैलाते हैं ? इन नियमों का अतिक्रमण कर स्वच्छंद विचरने वाले साधु को श्रावक, हरएक तरह से सन्मार्ग पर ले आने के लिए स्वतंत्र है। यों तो श्रावक, साधुओं के—संयम वृत्ति निर्वाहकों को पूज्य भाव से वंदन करता है पर फिरभी शास्त्रकारों ने इन्हें माता पिता की उपमादी है। रत्नों की माला में साधु, श्रावक को एकसा ही बतलाया है अर्थात्-साधु, श्रावक भगवान् के पुत्र तुल्य हैं। उदाहरणार्थ एक पिता के दो पुत्रों में एक भाई के घर में नुक्सान हो तो क्या दूसरा भाई उसकी अवहेलना कर खड़े खड़े देखा करे ? नहीं कदापि नहीं, तो यही बात साधु श्रावकके लिये समझ लीजिये।

सूरिजी के उक्त प्रभावोत्पादक वक्तृत्व ने श्रमण एवं श्राद्धवर्ग की सुप्त आत्माओंमें अपूर्व शक्ति संचालन करदी। वे सब प्रोत्साहित हो सूरिजी से अर्ज करने लगे--भगवन्! आपका कहना सोलह आना सत्य है। आप शासन के शुभ चिंतक हैं। आपकी आज्ञा हम शिरोधार्य करते हैं। हम आज से ही अपना कर्त्तव्य अदा करने में सदा कटिबद्ध रहेंगे।

यों तो पूज्य गुरुदेवों ने आत्म कल्याण के लिये पौद्गलिक सुखों का त्याग करके ही संयम वृत्ति को स्वीकार की है तो फिर वे अपना या शासन का अहित कैसे करेंगे ? फिर भी कोई शिथिल होगा तो हम अर्ज कर के या संघ सत्ता से उसे उग्रविहारी बनाने का प्रयत्न करेंगे।

इस तरह सूरिजी महाराज का परमोपकार मानते हुए वीर जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई। आज क्या श्रावकों में और क्या साधुओं में—जहां देखो वहां ही सूरिजी के व्याख्यान की प्रशसा हो रही थी। विशेष प्रसन्नता तो जावलीपुर के श्रीसघ को थी कि सर्व कार्य निर्विघ्नतया, सानद, सोत्साह सम्पन्न होगया।

दूसरे दिन एक श्रमण सभा हुई। इसमें आये हुए साधुओं के खास खास आचार्यों को एकत्रित कर जैनधर्म का व्यापक प्रचार करने एव वादियों से शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की सुयशःपताका चतुर्दिक फहराने की

नवीन स्कीम (योजना) बनाई गई । योग्य मुनियों को पदवी प्रदान कर उनके उत्साह को बढ़ाया गया। प्रत्येक प्रान्त में सुयोग्य पदवीधरों को अलग २ विचरने की आज्ञा प्रदान की गई।

अहा हा, उन पूर्वाचार्यों के हृदय में शासन के प्रति कितनी उन्नत एवं उत्तम भावनाएं थी ! वे शासन का थोड़ा भी अहित अपनी आंखों से नहीं देख सकते थे । जहां कहीं भी जरासी गड़बड़ दृष्टिगोचर होती—तुरत उसे रोकने का हर तरह से प्रयत्न किया जाता । विशेषता तो यह थी कि उस समय भी कई गच्छ, शाखा कुल एवं गण विद्यमान थे परन्तु सामाचारिक भेद होने पर भी शासन के हित कार्य में वे सब एक थे । एक दूसरे को हर तरह से सहायता देकर शासन के विशेष महात्म्य को बढ़ाने के लिये उनके हृदय में अपूर्व क्रान्ति की लहर विद्यमान थी । वे आपसी मतभेद खेंचातानी एवं मैं मैं, तूं तूं, में अपनी संघ शौर्य-शक्ति का अपव्यय नहीं करते थे । यही कारण था कि उस समय करोड़ों की संख्या में विद्यमान जैन जनता संगठन के एक दृढ़ सूत्र में बंधी हुई थी । चारों ओर जैन धर्म का ही पवित्र झंडा फहराता हुआ दिखाई देता था । ये सब हमारे पूर्वाचार्यों की कार्य कुशलता के सुंदर परिणाम थे ।

आचार्य कक्कसूरिजी जावलीपुर से विहार करने वाले थे पर जावलीपुर का संघ इस पद के लिये कब सहमत था ? वह घर आई पवित्र गङ्गा को पूर्ण लाभ लिये बिना कैसे जाने देता ? अतः उसने भी संघने परमोत्साह पूर्वक चातुर्मास की विनती की । श्रीसूरिजी ने भी भविष्य के लाभालाभ का कारण जान कर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करली । अब तो श्रीसंघ का उत्साह और भी बढ़ गया । घर घर में आनंद की अपूर्व रेखा फैल गई ।

सूरिजी ने चातुर्मास के पूर्व का समय सत्यपुर, भिन्नमालादि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करने में बिताया। पुनः चातुर्मास के ठीक समय पर जावलीपुर में पधार कर चातुर्मास कर दिया ।

आचार्यश्री के चातुर्मास में श्रीसंघ को जो जो आशाएं थी वे सब सानंद पूर्ण हुई, सूरिजी का व्याख्यान हमेशा तात्विक, दार्शनिक आध्यात्मिक त्याग वैराग्य पर हुआ करता था । विशेष लक्ष्य आत्म कल्याण की ओर दिया जाता था । यही कारण था कि चातुर्मास समाप्त होते ही सात पुरुषों और ग्यारह महिलाओं ने सूरिजी के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर आत्म भेद सम्पादन किया । चातुर्मासानंतर सूरिजी ने विहार कर कोरंटपुर महावीर की यात्रा की और क्रमशः पालिका को पावन बनाया । पालिका में कुछ समय तक स्थिरता कर जनता को धर्मोपदेश द्वारा लाभ पहुंचाते रहे। जब उपकेशपुर के श्रीसंघ को यह शुभ समाचार ज्ञात हुए कि—आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० पालिका में विराजमान हैं तो वहां का श्रीसंघ अविलम्ब आचार्य देव के दर्शनार्थ आया और उपकेशपुर पधारने की प्रार्थना की। सूरिजी जानते थे कि उपकेशपुर जाने पर तो चातुर्मास वहीं करना ही पड़ेगा अतः चातुर्मास के पूर्व, वीरपुर, शंखपुर, हंसावली पद्मावती मेदिनीपुर, चन्द्रावती, माण्डपुर, दुर्गपुर, कन्नौर आदि, इत्यादि छोटे बड़े ग्रामों में परिभ्रमणकर धर्म जागृति द्वारा जैन जनता में नवीन स्फूर्ति का संचार करना विशेष श्रेयस्कर होगा । अतः आगत श्रीसंघ को तो वैसी ही क्षेत्र स्पर्शना—कहकर विदा किया, इधर आचार्यश्री भी उक्त ग्राम नगरों में होते हुए जब माण्डव्यपुर पधारे तब तो उपकेशपुर श्रीसंघ ने, माण्डव्यपुर और उपकेशपुर के बीच चातुर्मास की प्रार्थना के लिये आने जाने का तांता सा बांध दिया । उपकेशपुरीय श्रीसंघ की प्रार्थना को मान दे सूरीश्वरजी जब उपकेशपुर पधारे तो श्रीसंघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत

किया । कुमट गोत्रीय शा. भोजा ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव कराया । स्वधर्मी भाइयों को प्रभावना और याचकों को उदार वृत्ति से सन्तोष पूर्ण दान दिया ।

भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि के दर्शन कर सूरिजी ने संक्षिप्त किन्तु, सारगर्भित देशना दी । सर्व श्रोतावर्ग आनन्दोद्रेकसे ओत प्रोत हो गये । क्रमशः सभा विसर्जन हुई पर धर्म के परम अनुरागियों के हृदय में नवीन क्रान्ति एवं स्फूर्ति दृष्टि गोचर होने लगी । संघ ने विशेष लाभ प्राप्त करने की इच्छा से आचार्यश्री की सेवा में चातुर्मास की जोरदार विनती की । सूरिजी ने भी लाभ का कारण जान उक्त प्रार्थना को स्वीकार करली । बस फिर तो था ही क्या ? लोगों का उत्साह एवं धर्मानुराग खूब ही बढ़ गया । सूरिजी के इस चातुर्मास से उपकेशपुर और आस पास के लोगों को भी बहुत लाभ हुआ ।

उपकेश पुर में चरड़ गोत्रीय कांकरिया शाखा के शा. थेरु के पुत्र लिंबा की विधवा नानी बहिन अपने घर में एकाएक थी । सूरिजीके वैराग्योत्पाद व्याख्यान से उसे असार संसारसे अरुचि होगई । उसने सूरिजी की सेवा में अपने मनोगत भावों को प्रदर्शित किया और नम्रता पूर्वक अर्ज की कि-भगवान् ! मेरे पास जो अवशिष्ट द्रव्य है उसके सदुपयोग का भी कोई उत्तम मार्ग बतावें । सूरिजी ने फरमाया बहिन शास्त्रों में अत्यन्त पुन्योपार्जन साधन एवं कर्म निर्जरा के हेतुभूत सात क्षेत्र दान के लिए उत्तम बताये हैं इन क्षेत्रों में जहां आवश्यकता ज्ञात हो वहां इस द्रव्य का सदुपयोग कर पुण्य सम्पादन किया जा सकता है । पर मेरे ध्यान से तो यह कार्य प्रामाणिक संघ के अग्रेश्वर को सोंप दिया जाय तो समीचीन होगा । नानी बाई को भी सूरिजी का कहना यथार्थ प्रतीत हुआ और तत्क्षण ही आदित्यनागगोत्रिय सलक्खण, श्रेष्टिगोत्रीय नागदेव, चरड़ गोत्रीय पुनड़ और सुचति गोत्रीय निम्बा इन चार संघ के अग्रगण्य व्यक्तियों को बुलाकर करीब एक करोड़ रूपयों का स्टेट सुपुर्द कर दिया गया । सुपुर्द करते हुए नानी बाई ने कहा कि-इन रूपयों का आपको जैसा उचित ज्ञात हो उस तरह से सदुपयोग करें । मुझे तो अब दीक्षा लेने की है । उन चारों शुभचिन्तकों ने सूरिजी से परामर्श कर उपकेशपुर में एक ज्ञान भण्डार की स्थापना करदी और वर्तमान में मौजूद आगमों को लिखाना प्रारम्भ कर दिया । कुछ द्रव्य दीक्षा महोत्सव पूजा-प्रभावना-स्वामीवात्सल्यादि कार्यों में भी व्यय किया गया । अवशिष्ट द्रव्य के सदुपयोग की सन्तोष पूर्ण व्यवस्था कर दी ।

नानी बाई के साथ आठ बहिनें और तीन पुरुष भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये । चातुर्मास के पश्चात् सूरिजी ने शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न में उन दीक्षा के उम्मेदवारों को दीक्षा देदी । कुम्मट गोत्रीय शाह मेघा के बनवाये हुए भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की भी प्रतिष्ठा करवाई । कुछ समय के पश्चात् वहां से विहार कर सूरिजी महाराज मेदपाट, अवन्ति, चेदी, बुंदेलखण्ड, शौरसेन, कुरु पञ्चाल, कुनाल सिंध कच्छादि प्रदेशों में परिभ्रमण करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पदार्पण कर तीर्थेश्वर श्री शत्रुञ्जय की यात्रा की । इस विहार के अन्तर्गत आपने कई भावुकों को दीक्षा दी, कई मांस, मदिरा सेवियों को जैनधर्म की शिक्षा देकर अहिंसा धर्म के परमोपासक बनाये । महाजन संघ में सम्मिलित कर महाजन संघ की वृद्धि की । कई मन्दिर, मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म की नींव को सुदृढ़तम की । इस तरह आपश्री ने जैनधर्म की खूब ही प्रभावना एवं उन्नति की ।

जब आप स्तम्भनपुर का चातुर्मास समाप्त करके क्रमश मरुधर में पर्यटन करते हुए चन्द्रावती में पधारे उस समय आपकी वृद्धावस्था हो चुकी थी । अत. यहां के श्रीसंघ ने प्रार्थना की कि—पूज्यवर !

१५—गोधाणी	के चिंचट	गोत्रीय शाह	भैरो	सूरिजी के पास दीक्षा ली
१६—बाघुला	के डिडु	,, ,,	हरदेव	,,
१७—हथुड़ी	के प्राग्वट	,, ,,	पातो	,,
१८—माकोली	के श्रीश्रीमाल	,, ,,	फूश्रो	,,
१९—रूणावती	के मोरख	,, ,,	जैतसी	,,
२०—चोराणी	के भटेवरा	,, ,,	मुकनो	,,
२१—शान्तिपुर	के वप्पभट	,, ,,	पेथो	,,
२२—ढागाणी	के प्राग्वट	,, ,,	जागो	,,
२३—शाकम्भरी	के प्राग्वट	,, ,,	सुरजण	,,
२४—एहतवाड़	के करणाट	,, ,,	थोलो	,,
२५—वीरपुर	के चोरलिया	,, ,,	खीवसी	,,
२६—बामरेल	के पल्लीवाल	,, ,,	जोगो	,,
२७—कथोली	के कुलहट	,, ,,	देवो	,,
२८—बुलोल	के श्रीमाल	,, ,,	धरमण	,,
२९—गटोली	के नाहटा	,, ,,	नाथो	,,
३०—जेतपुर	के भूरि	,, ,,	कान्हण	,,
३१—गुडकी	के श्रीमाल	,, ,,	सेल्हो	,,
३२—धरगाव	के प्राग्वट	,, ,,	मुंधण	,,
३३—टेलीग्राम	के वीरहट	,, ,,	भीमण	,,
३४—माण्डलपुर	के प्राग्वट	,, ,,	रोड़ो	,,

इनके अलावा भी कई इनके साथियों ने तथा महिलाए ने भी दीक्षा ली परन्तु ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से उपलब्ध नामों से थोड़े नाम यहां पर लिख दिये है। इससे पाठक ! समझ सकते हैं कि वह जमाना कैसे सस्कारी था कि वे बात की बात में आत्मकल्याणार्थ घर का त्याग कर निकल जाते थे।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाए

१—नागपुर	के आदित्य भीमाशाह ने	भगवान् पार्श्व०	मन्दिर की	प्रतिष्ठा
२—भावाणी	,, श्रेष्ठि० करमण ने	,, महावीर	,,	,,
३—आजोड़ी	,, भाद्र० पैराशाहने	,, ,,	,,	,,
४—मुग्धपुर	,, सुचवि० नानग ने	,, ,,	,,	,,
५—खटकूंप	,, बप्प नाग० सांगा ने	,, पार्श्वनाथ	,,	,,
६—चोराट	,, चोरलिया चतराने	,, ,,	,,	,,
७—आसिका	,, डिडु० गोमाने	,, आदिनाथ	,,	,,
८—अघाट	,, चिंचट० नारायण ने	,,	,,	,,

१०—नागपुर से अदित्य नाग० नोंधण ने शत्रुंजय का संघ निकाला
११—भद्रेसर से श्रीमाल हाप्पाने „ „ „
१२—धोलपुर के प्राग्वट पोमा की विधवा स्त्री ने गाव के पूर्व दिशा में तलाव खुदायो
१३—पद्मावती के प्राग्वट जैता की पुत्री रूकमणी ने पग वाव खुदाई
१४—शखपुर में श्रेष्टि साचा की पुत्री धनी ने एक तलाव खुदायो
१५—कोरंटपुर का प्राग्वट जैमल युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१६—रामसेण में भूरि अर्जुन की विधवा पुत्री तालाब खुदायो
१७—शिवगढमें श्रेष्टि नागदेव युद्ध में काम आयो उसकी स्त्री सती हुई
१८—उपकेशपुर का वीर वीरम युद्ध के काम आया „ „ „
१९—भोजपुर का भाद्र गौत्रीय सगण „ „ „ „ „
२०—नागपुरका मत्री भोजा „ „ „ „ „
२१—मेदनीपुर का डिड्डू० काल्हण „ „ „ „ „

उस जमाना में जैन लोग सर्व जनिक उपयोगी कार्य तालाब कुवा वापियों भी खुदाते थे तथा उस जमाने में छोटे छोटे राज थे और थोड़े थोड़े कारण से आपस में युद्ध करने लग जाते थे उनके सेनापति वगैरह भी उपकेश वंशीय ही होते थे। और वे युद्ध में वीरता के साथ युद्ध कर देवत्व को प्राप्त हो जाते थे तो उनकी स्त्रिया अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त उनके पीछे सतीयो बन जाती थी जिन्हों के स्मृति के किये चौतरे वगैरह भी बनाये जाते थे कई स्थानों पर तो अभी तक चौतरे विद्यमान भी है और बहुत से समयाधिकता के कारण नष्ट भी हो गये है। सतियों का होना खास कर तो अंग्रेजों का भारत में राज होने के बाद इस प्रथा का अन्त हो गया यद्यपि ऐसा मरण प्राय: बाल मरण ही कहा जाता प्रशंसा करने योग्य नहीं है पर उस समय की वंशावलियों में इस बाते को उल्लेख किया है अत: मैंने भी यहाँ दर्ज कर दिया है इससे यह ज्ञान हो जायगा कि किस समय तक यह प्रथा चलती रही थी।

पूज्याचार्यदेव के शासन में यात्रार्थ संघ एवं शुभ कार्य्य

१—उपकेशपुर से श्रेष्टि० रावल ने शत्रुंजय का संघ निकाला
२—नागपुर से अदित्य० चांपा ने „ „ „
३—शाकम्भरी से पल्ली० जैता ने „ „ „
४—पल्हिका से प्राग्वट० हाप्पा ने „ „ „
५—नारदपुरी से श्रीमाल० दुर्गा ने „ „ „
६—वीरपुर से भूरिगौ० राजा ने „ „ „
७—चन्द्रावती से समदड़िया सहसकरण „ „ „
८—डमरेल से श्रेष्टि० देपाल ने „ „ „
९—मालपुरा से बाप्प नाग० रूपण ने „ „ „
१०—सोपार पट्टन से सुचति धरमण ने „ „ „

११—स्तम्भनपुर से श्रीमाल० सहारण ने शत्रुंजय का संघ निकाला
१२—कनकपुर से प्राग्वट० भोजा ने ,, ,, ,,
१३—मथुरा से श्रीश्रीमाल० नारायणने सम्मेत शिखर का ,,
१४—मेदिनीपुर से कुम्भट० रघुदेव ने शत्रुंजय का ,, ,,
१५—राजपुर से देसरडा० माना ने ,, ,, ,,
१६—माडव्यपुर से श्रेष्ठि० नारायण ने ,, ,, ,,
इनके अलावा भी बहुत से लोगों के संघ निकाले

१—वि० सं० ५६४ में जन संहार दुष्काल पड़ा महाजन संघ ने असंख्य द्रव्य व्यय
२—वि० सं० ५७१ में सर्व देशी दुष्काल० मारवाड़ के महाजन संघ ने ,, ,, ,,
३—वि० सं० ५८१ में मारवाड़ में दुकाल पड़ा उपकेशपुर के महाजनों ने ,, ,, ,,
४—वि० सं० ५९३ में बड़ा भारी दुष्काल पड़ा महाजनों ने असंख्य द्रव्य व्यय किये
५—वि० सं० ५९९ में भयंकर दुष्काल पड़ा ,, ,, ,, ,,
६—उपकेशपुर का श्रेष्ठि पृथ्वीधर युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सतीहुई
७—नागपुर का आदित्य मंत्री भेरू युद्ध में ,, ,, ,,
८—चन्द्रावती प्राग्वट सोमो युद्ध में काम आयो ,, ,, ,,
९—पद्मावती का प्राग्वट मंत्री कोला ,, ,, ,, ,,
१०—सोजाली का विदु दोनो ,, ,, ,, ,, ,,
११—भाद्रगौत्र रूपाकरण की विधवा पुत्री सत्रीपुर में वापी बनाइ
१२—बलाहगौत्र रामा की विधवा स्त्री राजपुर में तालाब खोदाया
१३—वीरपुर के सुचंति नारायण की स्त्री ने एक कुवा खोदायो
१४—शिवपुर के चरड़-कांकरिया पेथाने तलाव खुदायो
१५—कोरंटी के लसभट्ट मापरेषी की पत्नी जोजी ने तलाव खोदाया

इनके अलावा भी महाजनों ने अनेक जनोपयोगी कार्य कर देश भाइयों की सेवा कर अपनी उदार चित्त परिचय करवाया

पट्ट छत्तीसवें कक्कसूरि हुए, श्रेष्ठिगौत्र के भूषण थे
करे कौन स्पर्द्धा उनकी, समुद्र में भी दूषण थे
प्रभाव आपका था अति भारी, भूपति शिर झुकाते थे
तप संयम उत्कृष्ट क्रिया सुरनर मिल गुण गाते थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के छत्तीसवें पट्ट पर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रभाविक हुए

जैनधर्म पर विधर्मियों के आक्रमण विक्रम की छटी शता में हूण जाति का वीर विजयी राजा तोरमण भारत में आया और पंजाब में विजय कर अपनी राजधानी कायम की। जैनाचार्य हरिगुप्त सूरि ने तोरमण को उपदेश देकर जैनधर्म का अनुरागी बनाया तथा तोरमण ने अपनी ओर से भ० ऋषभदेव का मन्दिर बना कर अपनी भक्ति का परिचय दिया इस विषय का उल्लेख कुवलयमाल कथा में मिलता है।

तोरमण के उत्तराधिकारी उसका पुत्र मिहिरकुल हुआ मिहिरकुल कट्टर शिवधर्मी था और साथ में बौद्ध व जैनधर्म के साथ द्वेष भी रखता था अतः मिहिरकुल के हाथ में राजसत्ता आते ही जैन एवं बौद्धों के दिन बदल गये। मिहिरकुल ने जैनों एव बौद्धों पर इस प्रकार क्रूरतापूर्वक अत्याचार गुजारना शुरू किया कि मरुधर के जैनों को अपने प्राणों एव धनमाल की रक्षार्थ जननी जन्म भूमि का परित्याग कर अन्यत्र (लाटा सौराष्ट्र) की ओर जाकर अपने प्राण बचाने पड़े।

उपकेशवशियों की उत्पत्ति का मूल स्थान मरुधर भूमि ही है पर बाद में कई लोग अपनी व्यापार सुविधा के लिये तथा कई लोग विधर्मियों के अत्याचार के कारण अन्योन्य प्रान्तों में जाकर अपना निवास स्थान बनालिया और अद्यावधि वे लोग उन्हीं प्रान्तों में बसते हैं।

विक्रम की सातवी आठवी शताब्दी में कुमारेल भट्ट नामक आचार्य हुए वे शुरू से जैन एवं बौद्धाचार्यों के पास ज्ञानाभ्यास किया था पर बाद में जैन एवं बौद्धों से खिलाप होकर उनके धर्म का खण्डन भी किया था पर जब आपको जैनाचार्य का समागम हुआ और उपकारी पुरुषों का बदला किस प्रकार दिया जाय इस विषय में कृतज्ञ और कृतघ्नीत्व के स्वरूप को समझाया गया तो आपको अपनी भूल पर बहुत पश्चाताप हुआ। आखिर आपको अपनी भूल का प्रायश्चित करना पड़ा। श्रीमान् शंकराचार्य भी आपके समकालीन ही हुए थे। जब शकराचार्य को मालूम हुआ कि कुमारेल भट्ट इस प्रकार का प्रायश्चित कर रहे हैं तब शंकराचार्य चल कर कुमारेल भट्ट के पास आये और उनको बहुत समझाये पर भट्टजी ने अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये अपने किया हुआ निश्चय से विचलीत नहीं हुए।

श्री शकराचार्य और कुमारेल भट्ट के समय जैन एव बौद्धों का सतारा तेज था इन दोनों धर्मों का काफी प्रचार था महाराष्ट्र प्रान्त में तो जैन धर्म राष्ट्र धर्म ही माना जाता था किन्तु शकराचार्य से यह कब सहन हो सकता था उन्होंने जैन एव बौद्धों के खिलाफ भरसक प्रयत्न किया। यद्यपि वे अपनी मौजुदगी में जैन धर्म को इतना नुकसान नहीं पहुचा सके तथापि वे अपने कार्य में सर्वथा निष्फल भी नहीं हुए उन्होंने जो बीज बोये थे आगे चल कर जैनों के लिये अहित कारी ही सिद्ध हुए। शकराचार्य बड़े ही समयज्ञ थे जिस वेदों की हिंसा एव हिंसामय यज्ञादि क्रिया काण्ड से जनता घृणा करती थी नये भाष्यादि रचकर उसका रूप बदल दिया था और कलिकालकी आड लेकर कई विधानों का निषेध भी कर दिया था जैसे कि—

"अग्नि होत्रंगवालम्भं सन्यासं पल पैतृकम्। देवराच्चसुतोत्पति : कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥"

ऐसी ऐसी बहुत युक्तियों से जनता को अपनी ओर आकर्षित कर मृत प्राय धर्म में पुन. जान डालने का सफल प्रयत्न किया। यद्यपि उस समय जैनाचार्य एव विशेषत उपकेशगच्छाचार्य खड़े कदम थे उन्होंने जैनधर्म को विशेष हानी नहीं पहुँचने दी यदि किसी प्रान्त में जैनों की सख्या कम होती तो भी उनकी

पू० प श्रीकल्याण विजयजी के म० कथनानुसार।

क्षति जरूर पहुंचती ही रहती थी वे दूसरे प्रान्त में नये जैन बना कर उस क्षति की पूर्ति कर ही डालते थे। फिर भी जैनों के लिए यह समय बड़ा ही विकट समय था क्योंकि एक ओर तो जैन श्रमणों में आचार शिथिलता एवं चैत्यवास के नाम पर नामोनाम श्रमणों का स्थिरवास और दूसरी ओर विधर्मियों का संगठन आक्रमण तथापि शुभचिन्तक सुविहित एवं उग्रविहारी आचार्यों शासन की रक्षा करने को कटिबद्ध रहते थे पाठक उन आचार्यों का जीवन पढ़कर अवगत होगये होंगे कि वे अपनी विद्वतापूर्ण एवं धर्म कुशलता से धर्म की रक्षा किया करते थे।

विक्रम की सातवीं शताब्दी में पांड्य देश में सुन्दर नामक पांड्यवंश का राजा राज करता था और वह कट्टर जैनधर्मोपासक था किन्तु उसकी रानी और मंत्री शिवधर्मी थे उन्होंने पांड्य देश में शिव धर्म का प्रचुरता स्थापन करने का निश्चय किया और ज्ञानसम्भव नामक शिव साधु को बुलाकर राज सभा में कुछ चमत्कार बतलाकर जैनों को पराजय कर राजा को शिवधर्मी बना लिया। बस, फिर तो कहना ही क्या था धर्म मदमद के मदांध बन कर कोई आठ हजार जैन मुनियों को मौत के घाट उतार दिये।

इसी प्रकार पल्लव देश के राजा महेन्द्रवर्मा को शिवसाधु द्वारा जैनधर्म छोड़ा कर शिवधर्मी बनाया गया और जैनधर्म को इतनी ही क्षति पहुंचाई गई कि जितनी पांड्य राजा ने पहुंचाई थी जिसका वर्णन 'पेरिया पुराणम्" ग्रंथ में है।

इसी समय वैष्णव लोगों ने अपना धर्म प्रचार करना प्रारम्भ किया और जैन धर्म को बड़ी भारी हानि पहुँचाई। मदुराके मीनाक्षी मन्दिर के मण्डप की दीवाल की चित्रकारी में जैनियों पर शिव और वैष्णवों द्वारा किये गये अत्याचारों की कथा अंकित है जिसको पढ़ने से अत्यंत दुःख होता है।

धारवाड़ नगर के पुस्तकालय में जैनियों की एक पुस्तक के दो चित्र हैं जिसमें एकचित्र में अनेक जैनों को घाणी पर डालकर मारने का दृश्य है तब दूसरे चित्र में शूली पर चढ़ा कर लोहा के सिलाये व धूंसे हाथन से मारने का दृश्य दिखाया गया है।

लिंगायत मत का स्थापक वासवदेव ने विज्जल की सहायता से दस हजार श्रमणों को शूली चढ़ा कर उनकी लाशें काग और कुत्तों को खिलादी थी इसका रोमांच कारी वर्णन हलस्यमाहात्म्य नाम का ग्रन्थ में है।

राजा गणपति देव ब्राह्मणों की प्रेरणा में आकर निरपराध जैनों को तेल का कोल्हुओं में डाल कर बुरी तरह मरवाये—तथा किसी समय जैनों और ब्राह्मणों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ जिसमें ब्राह्मणों के मंत्री द्वारा जैनियों को पराजयकर-जैनों की कत्ल करवादी इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान है

इनके अलावा भी शिव वैष्णव और रामानुजादि धर्म वालों ने जैनधर्म पर बड़े २ अत्याचार कर बहुत क्षति पहुँचाई पर जैनधर्म अपनी सच्चाई के नाते जीवित रहा और रहेगा। जैनधर्म की यह एक बड़ी भारी विशेषता है कि अपने उत्कर्ष के समय किसी दूसरे धर्म पर अत्याचार नहीं किया था यदि जैन चाहते तो सम्राट् सम्प्रति के समय सम्पूर्ण भारत को जैन बना सकते तथा राजा कुमारपालके समय १८ देशों को जैनधर्मी बना सकते थे पर न तो जैनों ने कभी जबरदस्ती से किसी को जैन बनाया और न जैनधर्म ऐसी शिक्षा ही देते हैं। जैनों ने जो कुछ किया है। यह अपने धर्म के मौलिक तत्त्वों का उपदेश देकर ही किया है और मर्मोपेमय हुए राजाओं के साथ ऐसा सलूक किया है।

३७—आचार्य श्री देवगुप्त सूरि (सप्तम)

श्रेष्ठयाख्यान्वय एप राजसचिवः श्रीदेवगुप्ताविधो
भव्यः स्वापरधर्मपारगतयाऽनेकान् जनान् निर्ममे ।
जैनान् ग्रन्थगणं स वै विहितवान् रम्याश्च देवालयाम्
धीरोऽभीप्टफलमदो विजयतामाचार्य चूडामणिः ॥
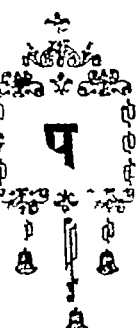
परमोपकारी, पूज्यपाद आचार्य श्री देवगुप्त सूरीश्वर जी महाराज विश्व विश्रुत, संसारोपकारी, प्रखर धर्म प्रचारक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। आपका शासन समय जैनधर्म के लिए एक विकट समय था तथापि, आप जैसे शासन शुभचिंतक आचार्य के विद्यमान होने से शासन के हित साधन विरुद्ध किञ्चिन्मात्र भी क्षति नहीं पहुँच सकी। आपका जीवन अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाओं से ओतप्रोत है। पट्टावलीकारों ने आपके जीवन की प्रत्येक घटना को बड़े ही विस्तार पूर्वक लिखी है किन्तु, मैं अपने उद्देश्यानुसार यहां पर आपके जीवन का संक्षिप्त दिग्दर्शन करवा देता हूँ।

परमपवित्र, अनेक भावों की पातक राशि को प्रक्षालन करने में समर्थ, श्री अर्बुदाचल तीर्थ की पवित्र छाया या आश्रय लेने वाली अमरापुरी से भी स्पर्धा करने वाली, गगनचुम्बी जिनालयों से सुशोभित चन्द्रावती नाम की नगरी थी। पाठक, इस नगरी के विषय में पहले भी पढ़ चुके हैं कि श्रीमाल नगर के राजा जयसेन के पुत्र चन्द्रसेन ने इस नगरी को आबाद की थी। यहां का रहने वाला प्रायः सकल जनवर्ग (राजा और प्रजा) जैन धर्म का ही उपासक था। यहां के राजघराने ने तो जैनधर्म के प्रचार में तन, मन, धन, एवं देहिक, मानसिक शक्ति से पूर्ण सहयोग दिया था। यही कारण था कि उस समय जहां कहीं भी दृष्टि डाली जाती थी सर्वत्र जैनधर्म ही जैनधर्म दीख पड़ता था। जैसे चन्द्रावती नरेश जैन था वैसे ही वहां के सकल कार्यकर्त्ता भी जैनधर्म के परमानुयायी, परम प्रचारक थे।

चन्द्रावती नगरी उस समय लक्ष्मी का निवास स्थान ही बन चुकी थी। 'उपकेशे बहुल द्रव्य' यह कहावत चन्द्रावती के लिये भी सदैव चरितार्थ होती थी। लक्ष्मी के स्थिरवास में—'व्यापारे वसति लक्ष्मी.' की लोकोक्तिअनुसार चन्द्रावती के व्यापारिक क्षेत्र की उन्नति ही मुख्य कारण था। वहां के व्यापारियों का व्यापारिक सम्बन्ध आसपास के क्षेत्रों तक या भारत पर्यंत ही सीमित नहीं था अपितु पाश्चात्य देशों के साथ भी था। कई व्यापारियों की विदेशों में पेढिया (दुकानें) थी जल एवं स्थल-दोनों ही मार्ग व्यापारियों के व्यापार के केन्द्र बन गये थे। उस समय चन्द्रावती में कोट्याधीश ही नहीं किन्तु बहुत से अब्जपति भी निवास करते थे। बेचारे लक्षाधीश तो साधारण गृहस्थ की गिनती में ही गिने जाते थे।

चन्द्रावती नगरी में साधर्मी भाइयों का वात्सल्यता खूब दूर दूर मशहूर था कारण कोई भी नया साधर्मी भाई चन्द्रावती में व्यापारार्थ आता था तब चन्द्रावती के धनाढ्य साधर्मी उस आया हुआ साधर्मी भाई को एक एक मुद्रिका और एक एक इट उपहारमें दिया करता था कि आने वाला सहज ही में धनवान

मंत्री यशोवीर ने अपने पुत्रों के लिये क्रमशः राजकीय एवं व्यापारिक शिक्षा का प्रबन्ध कर रक्खा था अत. अपनी विद्यमानता में ही अपने ज्येष्ट पुत्र मंडन को अपनेपद (मन्त्रीपद) पर और खेता खेत्रसी को व्यापारिक क्षेत्रमें लगादिये। इस तरह अपने पद का उत्तर दायित्व अपने पुत्रों को सौंप कर यशोवीर आत्म-कल्याण के मार्ग में सलग्न हो गया।

मंत्री यशोवीर ने पद्मावती नगरी के बाहिर विविध पादपलताओं से समन्वित, नाना प्रकार के पुष्पों की मन मोहक सौरभ से सौरभशील, नयनाभिराम एक उपवन लगवाया था। उक्त उपवन में भगवान् महावीर का अत्यन्त कमनीय, जिनालय बनवा आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० के कर कमलों से प्रतिष्ठा कर-वाई थी। उसी समय से आपने चतुर्थव्रत (ब्रह्मचर्य व्रत) ले लिया था। सांसारिक प्रवृत्तियों में रहते हुए भी जल कमल वत् निर्लेप हो साधु, वृत्ति के अनुरूप ही शान्तिमय जीवन व्यतित करता था। बस उपवन के एकान्त निर्विघ्न स्थान में शान्तिपूर्वक अवशिष्ट आयुष्य को धर्माराधन में लगा दिया। वास्तव में उस समय के जीव बहुत ही लघुकर्मी होते थे। सासारिक कार्यों में आत्म कल्याण के परम निवृत्ति मार्ग को नहीं भूलते थे।

मंत्री मंडन की वय पचास वर्ष की हो चुकी थी। आपके इस समय में सात पुत्र और दो पुत्रियां भी विद्यमान थीं। एक समय मण्डन अपने घर में सोया हुआ था कि पास ही के किसी घर में एक युवक की मृत्यु होजाने से उसकी वृद्धा माता और तरुण पत्नी का करुण क्रन्दन उसके कानों में सुनाई पड़ा। इस रुदन को सुन पहले तो उसे बहुत ही कर्ण कटु एवं सुख में खलल पहुँचाने वाला विघ्न भूतसा लगा पर जब उसने गहरे मननपूर्वक अपनी आत्मा की ओर देखा तो उसे निश्चय होगया कि—ससार में जन्म लेने वालों को इसी तरह मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ता है। जब उक्त युवक के मरजाने से इनके कुटुम्बियों को इतने दुख का अनुभव करना पड़ रहा है तो मरने वाले को तो मृत्यु के समय कैसा भीषण दु.ख सहना पड़ता होगा ? अरे ये कौटुम्बिक लोग तो अपने स्वार्थ के लिये रो रहे हैं पर इस मृत जीव ने तो न मालूम कैसे निकाचित कर्म बांधे हैं और न जाने किस गति का अनुभव किया है। अच्छा है कि—मेरे माता पिता सांसारिक, कौटुम्बिक मिथ्या मोह-प्रपञ्च से विरक्त हो एकान्त में धर्माराधन पूर्वक आत्म कल्याण-सम्पादन कर रहे हैं। वे इस जन्म मरण के अनादि सम्बन्धित दु.खों को मिटाने के लिये ही ऐसा करते होंगे पर धर्म कृत्याराधन-विहीन मेरे जीवन की क्या हकीकत होगी ? अरे! मैं तो रात दिन राजकीय प्रपञ्चों में उलझा हुआ उसी को सुलझाने में अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ रहा हूँ पर मृत्यु के पश्चात न मालूम किन २ यतनाओं का अनुभव करना होगा ? मेरी तो इसमें केवल उदरपूर्ति का स्वार्थ के सिवाय अन्य कोई भी स्वार्थ (आत्म) सिद्धि नहीं होने का है। अहो! मेरे जैसा इस ससार में कौन मूर्ख शिरोमणि होगा कि एक तुच्छ, निस्सार पदार्थ के लिये अमूल्य, सुरदुर्लभ मानव देह को मिट्टी में मिला रहा हूँ। बस मण्डन ने शेष रात्रि आत्म विचारों में ही व्यतीत करदी। प्रात:काल नियमानुसार उठकर नित्य क्रिया से निवृत्ति पा मन्दिर गया और सेवा, पूजाकर समीपस्थ उपाश्रय में विराजमान गुरु महाराज को वंदन कर उनके अभि-मुख शान्त चित्त, विचार मग्न हो बैठ गया।

गुरु महाराज ने मण्डन को स्थिरता पूर्वक बैठा हुआ देख विचार किया कि—जिस मण्डन को राजकीय कार्यों से मिनिट भर भी फुरसत नहीं मिलती, आज वही मण्डन इस प्रकार स्थिरता पूर्वक क्यों

बैठा हुआ है ? इसके चेहरे पर भी उदासीनता की स्पष्ट रेखा झलक रही है, अतः इसका कोई न कोई गम्भीर कारण अवश्य ही होना चाहिये। चिन्तित मण्डन को चिन्तामग्न देख गुरु महाराज ने कहा—मण्डन! आज क्या ध्यान लगा रहे हो ?

मण्डन— गुरुदेव ! आप बड़े ही सुखी हैं।

गुरु— हाँ संयमी तो सदैव ही सुखी रहते हैं। वे इस लोक में ही नहीं किन्तु पर लोक में भी वे सुखी रहते हैं। क्या तू भी सुखी होना चाहता है ?

मण्डन— गुरुदेव ! सुखी होना कौन नहीं चाहता ?

गुरु— तब तो निर्वृत्ति मार्ग के लिये सत्वर तत्पर होजाइये।

मण्डन— भगवान् ! मैं तो तैयार हो बैठा हूँ।

गुरु— क्या अपने राजा और माता पिता की अनुमति ले आया है ?

मण्डन— राजा की अनुमति की तो आवश्यकता ही क्या है ? माता पिता तो स्वयमेव आत्म कल्याण में संलग्न हैं, वे मुझे क्यों कर रोकेंगे ?

गुरु— आश्चर्य करते हुए कहा मण्डन अनुमति की आवश्यकता तो रहती है।

मण्डन— अच्छा-गुरुदेव मैं अनुमति ले आता हूँ।

उक्त वचन कह मण्डन ने गुरु महाराज को सविधि वन्दन किया और गुरु महाराज ने भी उसे वन्दे में परम कल्याणकारी धर्मलाभ-शुभाशीर्वाद दिया। मण्डन घर चला गया।

आचार्य कक्कसूरिजी म सविधि बिहार कर वापिस आये तो सकल साधुओं ने अपने आसन से उठकर आचार्यश्री का अभिनन्दन किया। कई मुनियों ने आचार्यश्री के पादप्रमार्जन किये। अनन्तर सूरिजी भी ईर्यावही का पाठ करते हुए पट्ट पर विराजमान हुए परस्पर अपने सकल शिष्य समुदाय को मंत्री मण्डन के दीक्षा की बात कही तो सब को आश्चर्योत्पन्न हुआ कि—कक्कक राजा का मंत्री दीक्षा लेने को कैसे तैय्यार होगया ? सूरिजी ने कहा—श्रमण वर्ग ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? कर्म विचित्र प्रकार के होते हैं। क्या नृत्य करते हुए ऐलापुत्र को केवल ज्ञान नहीं हुआ ? माता मरुदेवी, और चक्रवर्तित्व दुर्योधन पृथ्वीचंद्र, गुणसागरादिकों को गृहस्थ वेष में केवल ज्ञान नहीं हुआ ? तो फिर मण्डन की दीक्षा की बात में आश्चर्य ही क्या ?

संसार के पौद्गलिक सुखों में फंसे हुए मनुष्य की दीक्षा विषयक आत्म कल्याण भावना को श्रवण कर श्रमण समुदाय में भी खुशी होरहीथी। वास्तव में—"पर कल्याणे संतुष्टा साधव"

इधर मंत्री मण्डन अपने मातापिता के पास आकर दीक्षा की अनुमति मांगने लगा। पर माता पिताओं को भी अचानक दीक्षा का नाम श्रवण कर आश्चर्य व व कौतूहल होने लगा। जब कि सारा ही सांसारिक भार राजकीय व्यापार कुटुम्ब पालन का कार्य मण्डन को सौंप दिया गया तो फिर वह अचानक इन सांसारिक कार्यों से मुक्त होकर दीक्षा के लिये किन कारणों से उद्यत हुआ ? यह गम्भीर समस्या उनको गहरे विचारों में गर्क करने वाली और असमंजस में डालने वाली हुई। कुछ ही क्षणों के पश्चात् मण्डन के मुख से ही मण्डन के वैराग्य का कारण व पौद्गलिक पदार्थों की क्षण भंगुरता के विषय को श्रवण किया तो माता पिताओं का वैराग्य भी द्विगुणित होगया। वे अपनी वृद्धावस्था में भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। अब

राजा ने सुना कि मंत्री यशोवीर और मण्डन दीक्षा के लिये उद्यत हो गये हैं; तो वह भी स्वधर्मी पना के नाते चल कर मन्त्री के घर आया और उनकी हरएक तरह परीक्षा की। परीक्षा में वे सबके सब सौंटंच का स्वर्ण की भांति उत्तीर्ण होगये। राजा ने मन्त्री मण्डन के ज्येष्ठ पुत्र रावल को मन्त्री पद अर्पण कर स्वयं ने उन सबों की दीक्षा का शानदार महोत्सव किया। आचार्य ककसूरि ने मंत्री यशोवीर, सेठानी रामा और मण्डन व उन के साथसंसार से विरक्त हुए१७अन्य नर नारियों को भगवती दीक्षा देकर मण्डन का नाम मेरुप्रभ रख दिया।

सूरिजी के चरण कमलों की सेवा करते हुए मुनि मेरुप्रभ ने थोड़े ही समय में वर्त्तमान जैन साहित्य का, एवं आगमों का, लक्षण विद्याओं का अध्ययन कर लिया। सूरिजी ने भी जावलीपुर में मेरुप्रभमुनि को उपाध्याय पद और चन्द्रावती में सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया।

आचार्य देवगुप्तसूरि महान् प्रभाविक, तेजस्वी आचार्य हुए हैं। आपकी विद्वत्ता का प्रकाश सूर्य की भांति सर्वत्र विस्तृत था। आप जैसे मंत्री पद पर रह कर पर पक्षियों को परास्त करने में प्रवीण थे वैसे ही षट्दर्शन के मर्मज्ञ होने से परदर्शनियों का पराजय करने में भी प्रखर पण्डित थे। चन्द्रावती चातुर्मास के समाप्त होने पर वहां से विहार कर आसपास के प्रदेशों में परिभ्रमन करते हुए आप श्री ने क्रमश लाट देश में पदार्पण किया। जिस समय आचार्यश्री स्तम्भनपुर में विराजते थे उस समय भरोंच में बौद्धभिक्षु अपने धर्म प्रचार के स्वप्न देख रहे थे। जब भरोंच के अग्रेसरों ने सुना कि वादी चक्रवर्ती आचार्यश्री देवगुप्तसूरि स्तम्भनपुर में विराजते हैं तो वे तुरत एक डेपुटेशन लेकर आचार्यश्री की सेवा में आये। भरोंच नगर की वर्तमान परिस्थिति का वर्णन करते हुए संघ ने आचार्यश्री को पधारने के लिये जोर दार प्रार्थना की। सूरीश्वरजी ने भी भावी अभ्युदय का कारण जान, धर्म प्रभावना से प्रेरित हो तुरत भरोंच की ओर विहार कर दिया। श्रीसंघ ने बड़े उत्साह से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। बस, सूरिजी के पधारने मात्र से वहां की जैन समाज में नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव एवं नव क्रान्ति का अङ्कुर अङ्कुरित हुआ।

सूरिजी का व्याख्यान प्राय. दार्शनिक एवं तात्त्विक (स्याद्वाद, कर्मवाद, साम्यवादादि) विषयों पर होता था। षट्दर्शनों के परम ज्ञाता होने से दार्शनिक विषयों का स्पष्टीकरण तो इतना रुचिकर होता था कि श्रोतावर्ग मंत्रमुग्ध हो वहां से उठने की इच्छा ही नहीं करता।

बौद्धों के दिलों में उम्मेद थी कि जैनाचार्यों के अभाव में हम लोग अपने प्रचार कार्य में पूर्ण सफल होवेंगे किन्तु आचार्यश्री का पदार्पण सुनते ही उनके हृदय में सफलता विफलता का विचित्र द्वन्द्व मच गया। नवीन२ शकाओं ने नव २ स्थान बनालिये पर इससे वे एकदम हतोत्साह नहीं हुए। वे बड़े चालाक एवं कपट विद्या निपुण थे। एक समय उन्होंने शास्त्रार्थ के लिये जैनों को आह्वान किया जिसको सूरिजी महाराज ने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। बस भरोंच पत्तन के राजसभा के मध्यस्थों के बीच जैन और बौद्धों का शास्त्रार्थ हुआ पर, स्याद्वाद सिद्धान्त के सामने बेचारे क्षणिक वादी कितने समय तक स्थिर रह सकते ? जैसे सिंह की गर्जना को सुन कर किंवा प्रत्यक्षावलोकन कर मदोन्मत्त हाथी हताश हो पलायन कर जाते हैं, वैसा ही हाल आचार्यश्री के सामने बौद्धों का हुआ।

भरोंच में बौद्धों की यह पहली ही,पराजय नहीं थी किन्तु इसके पूर्व भी कई बार वे जैनाचार्यों से पराजित हो चुके थे। उपकेशगच्छाचार्यों के हाथों से तो वे स्थान २ पर पराजित ही होते रहे कारण, उस समय एक तो उपकेशगच्छाचार्यों के पास साधुओं की संख्या अधिक थी दूसरा उनमें कई ऐसे भी वादी

रहते थे कि जिनको गुरु से ऐसी शिक्षा की प्राप्ति थी । दूसरा उनका विहार क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत था । बौद्धों का भ्रमन भी इन्हीं क्षेत्रों में अधिक था अतः जहाँ जहाँ शास्त्रार्थ का प्रसंग हाथ आता वहाँ २ उन्हें पराजित होना पड़ता था कई पक्षों को जैन दीक्षा से दीक्षित किया । उनकी उन्नति की नींव को एकदम कमजोर एवं खोखली बनादी । अतः बौद्ध भिक्षु आचार्यश्री का नाम श्रवण करते ही एक स्थान से दूसरे स्थानान्तर पलायन करते रहते थे ।

जब मरोंच में बौद्धों का पराजय हुआ तो वे वहां से शीघ्र ही भाग गये इससे मरोंच श्रीसंघ का उत्साह और भी बढ़ गया और वे आचार्यश्री की सेवा में अत्यन्त आग्रह पूर्वक चातुर्मास के लिये प्रार्थना करने लगे । आचार्य देवगुप्तसूरि ने भी लाभ का कारण जान वह चातुर्मास मरोंच नगर में ही कर दिया। बस, आचार्यश्री के चातुर्मास निश्चय के शुभ समाचार श्रवण कर सब के आनंद रसका समुद्र ही उमड़ने लगा।

चातुर्मास की दीर्घ अवधि में सूरिजी का व्याख्यान क्रमशः दार्शनिक तात्त्विक अध्यात्म, योग, समाधि एवं त्याग वैराग्य पर हुआ करता था । आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ जैन जैनेतर विशाल संख्या में लेते थे । कई वादी प्रतिवादी जिज्ञासा दृष्टि से किंवा शंका समाधान की प्रवृत्ति से व्याख्यान के बीच व्याख्यानोद्भूत शंका विषयक प्रश्न पूछते थे जिनका समाधान सूरिजी शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा इस प्रकार करते थे कि, सकल जनसमुदाय एक दम उनकी ओर आकर्षित होजाता । वह निर्निमेष दृष्टि पूर्वक अवलोकन करते हुए आचार्य श्री की शान्त मुद्रा का परम शान्तिपूर्वक पान किया करते थे । सूरीश के चातुर्मास से जैन जनता को लाभ पहुंचना तो स्वाभाविक प्रकृति सिद्ध था ही किन्तु, जैनेतर समाज पर भी इसका अद्भुत प्रभाव पड़ा वह तो सर्वतोऽवर्णनीय है । कई सज्जन तो सूरीश्वरजी के भक्त बन गये ।

सूरिजी, मरोंचनगर का चातुर्मास समाप्त कर सोपारपट्टन की ओर पधारे । वहाँ आपने कई दिनों तक स्थिरता की । इसी दीर्घ स्थिरता के बीच एक जैन व्यापारी के द्वारा आपने सुना कि—महाराष्ट्र प्रान्त में इस समय विधर्मियों की प्रबलता बढ़ती जाती है । जैनियों को हर तरह से दबाया जा रहा है । साधुओं के विहार के अभाव में वहां धर्म के प्रति पर्याप्त शिथिलता आगई है—बस इन हृदय विदारक समाचारों को श्रवण कर आचार्यश्री एकदम चौंक उठे । वास्तव में जिनकी नसों में जैनधर्म के प्रति अमित अनुराग है, उनको जैनधर्म के हानि विषयक किंचित् समाचार भी असह्य से होजाते हैं । धर्म प्रभावना के परम इच्छुक आचार्य देवका भी यही हाल हुआ उन्होंने अपने शिष्य मधुराज को बुलाकर अत्यन्त दर्दनाक शब्दों में महाराष्ट्र प्रान्तकी धार्मिक अवस्था का वर्णन किया और उधर विहार कर धर्मप्रचार करने की उत्कट भावना को स्पष्ट रूप में व्यक्त की । आचार्यश्री के कथन को सुनकर शिष्य मधुराज ने अत्यन्त हर्ष पूर्वक कहा—भगवन् । आपके आदेशानुसार हम सब आपकी सेवा के लिये तैय्यार हैं । आप खुशी से विहार करें । इसका कारण एकतो सब साधु गुरुआज्ञा के पालक थे दूसरा सब ही नये २ प्रदेशों में विहार करने के इच्छुक थे । वास्तव में भगवान् की आज्ञाराधना पूर्वक सतत विचरते रहने से ही चारित्र की विशुद्धता, धर्मका प्रचार तीर्थों की यात्रा और ज्ञानका विकास होता है ।

यदि साधु अपनी सुविधा देख एकही प्रान्त में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त करदे तो उसे साधुत्व के कर्तव्य से बहुत दूर समझना चाहिये । इस प्रकार प्रान्तीय मोह से वह न तो जैनधर्म को व्यापक कर सकता है और न अपने चारित्र गुण को भी शुद्ध रख सकता है । यही नहीं उसी प्रान्त में बार २ विहार करने

रहने से साधुओं के प्रति श्रद्धा में भी कुछ अन्तर होजाता है। वास्तव में नीति का यह निम्न कथन—

अतिपरिचयादवज्ञा सततगमनादनादरोभवति । मलये भिल्लपुरंध्री चंदनतरुकाष्ठानिन्धनं कुरुते ॥

सत्य ही है यदि प्रान्तीय मोह का त्याग कर साधु-विहीन क्षेत्रों में साधु, धर्म प्रचार करते रहे तो इससे शीघ्र ही धर्मोन्नति होसकती है और चारित्र भी निर्मल रीति से पाला जा सकता है। किन्तु, चाहिये इसके लिये प्रान्तीय व्यामोह का त्याग और जिनशासन की उन्नति की उच्चत्तम—उत्कर्षभावना।

शास्त्रकारों ने ऐसे शिथिलाचारियों को, ग्रामपडोलिये, नगरपडोलिये, देशपडोलिये कह कर पासत्थों की गिनती में गिना है।

हम ऊपर पढ आये हैं कि उपकेशगच्छ में एक भी ऐसे आचार्य नहीं हुए जो कि, सूरि होने के बाद एकाध प्रान्त में ही विचरते रहे हो। उन्होंने अपने जीवन का विहार क्रम भी इस प्रकार बना लिया कि वे अपने क्रमानुसार प्रत्येक प्रान्त को सम्भालते ही रहे। कम से कम एक बार तो प्रत्येक प्रान्त में विचर कर वे जैन समाज की सच्ची परिस्थिति का अनुभव कर ही लेते थे। यही कारण था कि उस समय का जैनधर्म एवं जैनसमाज धन, जन, सत्यादि सर्व बातों में उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ था। आचार्य देव व अन्य श्रमण वर्ग भी, पूर्वाचार्यों द्वारा स्थापित महाजनसंघ की वृद्धि एवं जैनधर्म की उन्नति, जैन धर्म का प्रचार चतुर्दिक पर्यटन करते हुए—किया करते थे।

जब व्यापारी वर्ग व्यापार निमित्त इतर प्रान्तों में अपना व्यापारिक क्षेत्र कायम करते थे तब श्रमण समुदाय भी यदाकदा उन प्रान्तों में विचर कर उन श्रावकों की धर्मभावना को जागृत कर अन्य-धर्मावलम्बियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्मावलम्बी बनने का श्रेय सम्पादन करते रहते थे। यही कारण था कि प्रत्येक प्रान्त में जैनियों की विशाल संख्या होगई थी। पिछले आचार्यों ने तो सर्वत्र विहार करना—अपना कर्त्तव्य ही बना लिया था। इसी विहार कर्त्तव्य के कारण वे लाखों की संख्या में स्थित महाजनसंघ को करोड़ों की संख्या में ले आये थे। अस्तु

आचार्य देवगुप्त सूरिने अपने शिष्यों के साथ महाराष्ट्र प्रान्त की ओर विहार कर दिया। आप क्रमशः छोटे बड़े ग्रामों को स्पर्शते हुए सर्वत्र धर्मोपदेश द्वारा नव जागृति का बीज बोते हुए आगे बढ़ते रहे। ऐसी दीर्घ अपरिचित क्षेत्रों की यात्रा में मुनियों को थोड़ी बहुत तकलीफ का अनुभव तो अवश्य ही करना पड़ा होगा पर, जिन्होंने अपना जीवन ही शासन सेवा के लिये अर्पण कर दिया उनके लिये कठिनाइयां क्या विघ्न उपस्थित कर सकती हैं ? वास्तव में—

"मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुक्खं न च सुखम्"

वे तो अपना धर्म प्रचार रूप पावन कर्त्तव्य को अपने जीवन का अङ्ग बनाते हुए परिषहों की परवाह किये बिना शासन को उन्नत बनाने के लिये अपने क्षणविनाशी देह को अर्पण करने को उद्यत थे। उनके नशों में जैन धर्म के प्रति बाह्य या कृत्रिम अनुराग नहीं था किन्तु उन्होंने जैन धर्म की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझ्जी थी।

महाराष्ट्र प्रान्त में स्वनामधन्य, पूज्यपाद, लोहित्याचार्य के द्वारा सर्व प्रथम धर्म की नींव डाली गई थी। अतः उस समय से ही महाराष्ट्र प्रान्त में आपके साधु समुदाय का विहार होता रहता था। समय २

पर आचार्यों का विहार तो अवश्य भगवती के धर्म प्रचार में भी बरसाद वर्षक सिद्ध होगा इसके सिवाय महाराष्ट्र प्रान्त में यत्र तत्र दिगम्बराचार्यों का भी भ्रमण प्रारम्भ हो चुका था। यह लिखना भी अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि दिगम्बरों के लिये भी महाराष्ट्र प्रान्त एक विहार क्षेत्र बन गया था। संख्या में दिगम्बर समुदाय के कारण बहुत कम थे और जो थे वे भी प्रायः महाराष्ट्र प्रान्त में ही विचरते थे।

आचार्य देवगुप्तसूरि दो वर्ष तक महाराष्ट्र प्रान्तों में सर्वत्र अनवरत गति से, धर्म प्रचार की तीव्रेच्छा पूर्वक भ्रमण करते रहे। परिणाम-स्वरूप आपकी प्रखर प्रतिभा सम्पन्न विद्वत्ता द्वारा वादी इनके पीछे पड़ गये जैसे दिन-सहस्र रश्मिधारक सूर्य की दीप्ति के समक्ष खद्योत। जैनियों की क्षीण शक्तियों में पुनः सजीवनता का प्रादुर्भाव हुआ। सब ब (जिधर दृष्टि फैलाये उधर) जैनधर्म की विजय पताका फहराने लग गई। एक समय जैन समाज पुनः चमक उठा। वास्तव में इन धर्म वीरों ने अपनी कार्य दक्षता से संसार में जो जैन धर्म की प्रभावना की है वह; जैन इतिहास में स्वर्णाक्षरों से सदा ही अंकित रहेगी।

आचार्य देवगुप्त सूरिने श्रमण समुदाय एवं श्रावकवर्ग (श्रमण संघ) को सविशेष प्रोत्साहित करने के लिये मथुरा में एक श्रमण सभा करने का आयोजन किया। स्थान २ पर हीरो एवं पत्रिकायें भेजी जाने लगी। महाराष्ट्र (दक्षिण) प्रान्त में विचरते मुनियों में से अग्रगण्य मुनिवर्ग जिनकी कि खास आवश्यकता प्रतीत हुई-निमंत्रण द्वारा बुलाये गये। जब निर्धारित समय पर चतुर्विध (साधु, श्रावकसमुदाय) की विशाल संख्या उपस्थित होगई तो आचार्यश्री के अध्यक्षत्व में सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ।

आचार्य देवने, वर्तमान में श्रमण सभा करने की आवश्यकता का संक्षिप्त दिग्दर्शन करते हुए महाराष्ट्र प्रान्त में विहार कर धर्म प्रचार करने का शुभ श्रेय सम्पादन करने वाले मुनियों को यथा योग्य सम्मान से सम्मानित किया। उनकी—कार्यक्षेत्र में विशेष उत्साह बढ़ानेवाली उनकी प्रशंसा की। भविष्य के लिये जोरदार शब्दों में प्राचीन आचार्यों के ऐतिहासिक उदाहरणों से उन्हें प्रोत्साहित किया। योग्यतानुसार उन्हें पदवियां प्रदान की। बाबत् अपने साधुओं में से बहुत से साधुओं को धर्म प्रचार के लिये अन्यान्य प्रान्त में विचरने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार श्रमण सभा के कार्य को सफलता पूर्वक समाप्त करने के पश्चात् कालान्तर में आचार्यश्री ने वहाँ से विहार कर आवन्तिप्रदेश की ओर पदार्पण किया। मांडवगढ़ के श्रीसंघ के विशेष आग्रह से वह चातुर्मास भी सूरीश्वर जी ने मांडवगढ़ में कर दिया। आपश्री के विराजने से चातुर्मास में अच्छा धर्मोद्योत हुआ। क्रमशः वहां से कुदेशस्पर्श होते हुए शूरसेन की ओर पधारे। जब आप मथुरा के नजदीक पहुँचे तो वहां के श्रीसंघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा। उन्होंने आचार्यश्री का स्वागत एवं नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह पूर्वक किया। उस समय मथुरा में जैनों के सैकड़ों मन्दिर एवं स्तूप विद्यमान थे।

आपश्री का व्याख्यान हमेशा ही होता था। व्याख्यान श्रवण का लाभ जैन व जैनेतर समाज बड़े ही हर्ष पूर्वक लेती थी कारण एकतो आपकी विषय प्रतिपादन शैली इतनी सरल थी कि विद्वान् व साधारण व्यक्ति भी इसका आनंद अच्छी तरह से उठा सकते थे दूसरा बोलने की प्रकृति मधु की तरह बड़ा प्रभाव से जनता अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। अतः जिस व्यक्ति ने एक बार भी आचार्यश्री का व्याख्यान श्रवण किया वह प्रतिदिन ही तीव्र उत्कण्ठा पूर्वक व्याख्यान श्रवण का लाभ लेता।

उस समय जैसे मथुरा में जैनियों का जोर था उसी तरह से बौद्धों का भी यथोचित प्रभाव था।

उनके भी सैकड़ों साधु मथुरा में धर्मप्रचारार्थ स्थिरवास कर, रहते थे। पर आचार्य देवगुप्तसूरि एवं अन्य जैनाचार्यों का भी उन पर इतना प्रभाव पड़ा हुआ था कि वे यनते प्रयत्न उनके सामने सिर उठाने का दुस्साहसही नहीं करते। महाराष्ट्र प्रान्त में बौद्धों के धर्म प्रचार का मार्ग अवरुद्ध होजाने का कारण एक मात्र पूज्यपाद, आचार्य देवगुप्त सूरि ही थे। बौद्ध श्रमणसमुदाय आचार्यश्री की विद्वत्ता से अनभिज्ञ नहीं थे। अत वे मौन रहने में ही अपना मान समझने लगे।

मथुरा के श्रीसघ के अत्याग्रह होने से यह चातुर्मास आचार्यश्री ने मथुरा में ही करने का निश्चय कर लिया इससे जैन जनता में अच्छी जागृति और धर्म की खूब प्रभावना हुई। आपश्री के त्याग वैराग्य के व्याख्यानों का जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और चातुर्मास के उतरते ही पांच पुरुष और तीन बहिनों ने असार ससार से विरक्त होकर महा महोत्सव पूर्वक आचार्यश्री के पास में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली। उक्त दीक्षाओं का महोत्सव श्रेष्टिगोत्रीय शाः हरदेव ने किया जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया गया।

इस अवधि के बीच आपश्री ने बप्पनाग गोत्रीय शा चांचग के बनवाये हुए पार्श्वनाथ भगवान् के मदिर की प्रतिष्ठा भी महा महोत्सव पूर्वक करवाई। बाद में आपने भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याण भूमि की स्पर्शना के लिये काशी की ओर विहार किया। कुछ समय तक काशी एव काशी के आस पास के तीर्थों की यात्रा करते हुए धर्मोपदेश देते रहे।

काशी की तीर्थ यात्रा के पश्चात् आपश्री का विहार कुनाल और पंजाब प्रांत की ओर हुआ। उक्त प्रान्तों में आपके आज्ञानुयायी कई मुनि पहले से ही आपश्री के आदेश से धर्म प्रचार करही रहे थे जब उक्त प्रचारक श्रमण मण्डली ने आचार्यश्री का आगमन सुना तबतो दूने वेग से एवं दूनी रफ्तार से उन्होंने अपने प्रचार कार्य को बढाया। आचार्यश्री भी स्थान २ पर उनको सन्मान देते हुए, प्रशंसा करते हुए उनके उत्साह में खूब वृद्धि करते रहे। उस समय पञ्जाब प्रान्त का जैन समाज तो बहुत ही उन्नत हो चुका था। हमारे उन पूर्वाचार्यों ने धर्मविहीन इस पञ्जाब क्षेत्र में क्षुधा पिपासा व ताड़ना, तर्जनादि वाममार्गियों के परिषहों को सहन करते हुए अत्यन्त लगन पूर्वक धर्म प्रचार किया था।

इधर सिंध प्रान्त में विचरने की आवश्यकता ज्ञात होने से आचार्यश्री ने पञ्जाब प्रांतीय श्रमण मण्डली को उसके क्षेत्रावश्यक सकेत करते हुए शीघ्र ही सिंध प्रान्त की ओर पदार्पण कर दिया। सिंध प्रान्त में वे दो वर्ष पर्यन्त लगातार भ्रमन करते रहे। स्थान २ पर सुप्त समाज को जागृति कर उन्हें धर्म के अभिमुख बनाया। उक्त प्रान्त में विचरने वाले मुनियों की एक सभा की जिससे तत्प्रान्तीय सकल साधु समुदाय को एकत्रित कर उनके धर्म प्रचार के कार्य को प्रोत्साहन दिया गया। योग्य मुनियों को उपाध्याय वाचक, गणि, गणावच्छेदक पदवियों से विभूषित किया गया। आचार्यश्री के आगमन से एव सहयोग से मुनियों में भी धर्म प्रचार करने का अलौकिक साहस उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पूर्व के कार्य को और भी उत्साह पूर्वक तीव्र गति से करना प्रारम्भ किया। वास्तव में पूर्वाचार्यों के आदर्श को अभिमुख रखकर जैनजाति को उन्नत करने के लिये वर्तमान कालीन आचार्यो उपाध्याय श्रमणवर्ग प्रान्तीय विभागानुसार धर्म प्रचार के कार्य के लिये कमर कसलें तो अब भी पूर्वाचार्यों का वह स्वर्ण समय हम से दूर नहीं है। पर इसके लिये चाहिये धर्म प्रचार की उत्कट अभिलाषा, स्वार्थ का बलिदान, मान पिपासा की होली,

अत्यन्त समारोह पूर्वक सूरिजी के पास दीक्षा ली। डिडू गौत्रीय शा. नोढ़ा के बनाये महावीर मंदिर की भी प्रतिष्ठा इसी बीच हुई।

चातुर्मासानंतर वहां से विहार कर चन्द्रावती शिवपुरी वगैरह छोटे बड़े ग्रामों में होते हुए आचार्यश्री कोरंटपुर पधारे। उस समय वहां कोरंटगच्छीय आचार्यश्री सर्वदेवसूरिजी विराज मान थे। उन्होंने जब आचार्यश्रीदेवगुप्तसूरि का शुभ आगमन सुना तो वे, अपने शिष्यों सहितसूरिजी का सत्कार करने के लिये उनके समुखगये। श्रीसघ ने भी बड़े ही समारोह से सूरिजी का नगर प्रवशमहोत्सव किया। इसमें श्रीमाल-वशीय शाह खुमाण ने सवालक्ष द्रव्य व्यय किया। सूरिजी ने चतुर्विध श्रीसघ के साथ भगवान् महावीर की यात्रा की। बाद में दोनों आचार्य देवों ने एक तख्त पर विराजमन होकरथोड़ी किन्तु समयानुकूल सारगर्भित देशना दी। जनता पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

कोरंटपुर में विराजते हुए सूरीश्वरजी का एक दिन यकायक स्वास्थ्य खराब होगया। रात्रि को सोते हुए उन्होंने विचार किया कि—मेरी वृद्धावस्था हो चुकी है और स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं है। हो न हो मेरा मृत्युकाल ही नजदीक हो अतः इस समय किसी गच्छ के योग्य मुनि को पट्टभार दे देना ही समीचीन होगा। वे इसी विचारधारा में प्रवाहित हो रहे थे कि देवी सच्चायिका ने भी यकायक वहां परोक्षपने प्रवेश कर सूरिजी को वंदन किया। सूरिजी ने देवी को धर्मलाभ दिया। धर्मलाभ आशीष को प्राप्त करने के पश्चात् देवी ने प्रार्थना की कि भगवन्! आप किसी तरह की चिन्ता न करें। अभी तो आप आठ वर्ष पर्यंत और जनकल्याण करेंगे। प्रभो, एतद्विषयक विशेष विचार की आवश्यकता नहीं फिर भी यदि आपको जल्दी पट्टधर बनाना ही है तो कृपया उक्त कार्य को उपकेशपुर पधार कर ही करें। पूज्यवर! इससे मुझे भी आपकी परोक्ष सेवा का यत्किञ्चित लाभ भी हस्तगत होगा। सूरिजी ने भी क्षेत्र स्पर्शनानुसार देवी के वचनों को स्वीकृत किया और देवी भी सूरिजी को वंदन कर यथास्थान चली गई।

देवी के कथनानुसार आचार्यश्री के स्वास्थ में थोड़े ही समय में सन्तोष जनक सुधार हो गया। अत' शरीर के पूर्ण स्वस्थ होने पर आचार्यश्री ने तुरत ही कोरंटपुर से विहार कर दिया। क्रमश सूरिजी सत्यपुर, भिन्नमाल, जावलीपुर, श्रीनगर आदि ग्रामों में विचरते हुए माण्डव्यपुर पधारे माण्डव्यपुर श्रीसघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। जब उपकेशपुर श्रीसघ को ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री माडव्यपुर पर्यन्त पधार गये हैं तो उपकेशपुर और मांडव्यपुर के बीच आने जाने का तातांसा लगा दिया। वे लोग उपकेशपुर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना करने लगे। पर माडव्यपुर के भक्तगण सूरिजी को कब विहार करने देने वाले थे।

उस समय मांडव्यपुर, उपकेशपुर की सत्ता के नीचे था। उपकेशपुर के रावगोपाल ने श्रेष्टिगौत्रीय राव शोभा को वहां के प्रबन्ध एवं समुचित व्यवस्था के लिये नियुक्त किया था। उसने सूरिजी से बहुत आग्रहपूर्ण प्रार्थना की कि, पूज्यगुरुदेव! आपके विराजने से और भावुकों को तो लाभ होगा ही पर मेरी आत्मा का कल्याण तो अवश्य ही होगा। भगवन्! मैं एक मात्र अपना आत्म कल्याण चाहता हूँ। आप जैसे पूज्य पुरुषों के निमित्त (कृपा) की आवश्यकता थी वह भी गुरुदेव की कृपा से सहज ही हस्तगत होगया है। अत. आप यहां पर ही चातुर्मास करने की कृपा करें।

इधर उपकेशपुर का रावगोपाल, श्रीसंघ को साथ में लेकर सूरिजी की प्रार्थना के लिये माण्डव्यपुर में

आया। सूरीश्वरजी की इच्छा में उपकेशपुर पधारने की अत्यन्त आग्रहपूर्ण प्रार्थना करने लगा पर आखिर माडव्यपुर का श्रीसंघ ही भाग्यशाली रहा। सूरिजी ने माडव्यपुर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार कर, माडव्यपुर में चातुर्मास कर दिया। उपकेशपुरीय राजगोत्रज ने माडव्यपुर के श्रीसंघ और विशेष करके राव शोभा को धन्यवाद दिया। सबके समक्ष अपने हृदय के शुभ उद्गार प्रगट किये कि माडव्यपुर श्रीसंघ अत्यन्त पुण्यशाली है, यही कारण है कि सकल मनोकामना को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष समान, प्रभावक योगी आचार्यश्री ने माडव्यपुर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार कर यहां पर चतुर्मास करने का निश्चय कर लिया है। इसके प्रत्युत्तर में आचार्यश्री का कृपापूर्ण उपकार मानते हुए सहर्ष हृदय से राव शोभा ने कहा कि—राजन्! आचार्य देव के साथ ही साथ आपश्रीमानों की परम कृपा का ही यह मधुर फल है। इस प्रकार न जाने समय तक स्नेहपूर्ण वार्तालाप होता रहा। आह! उस समय का जमाना कैसी धर्मभावना वाला था। पारस्परिक स्नेह का कैसा आदर्श आदर्श था? वे लोग अखूट सम्पत्ति के स्वामी होने पर भी कितने निरभिमानता एवं भद्रिक परिणामी थे। वे पापक व भीरु एवं धर्म के परमभक्त सम्यक् नियम निष्ठ श्रावक थे। बस, धर्मभावना के अस्तित्व से ही उस समय का समाज धन, जन, एवं कौटुम्बिक सुखों से सुखी था। आत्म कल्याण के निरुपद्रव मार्ग का आराधक था।

माडव्यपुर में सूरिजी के चातुर्मास होने से आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रबल क्रान्ति मची। सबके हृदय, धर्म भावनाओं से ओतप्रोत होगये माडव्यपुर के श्रेष्ठि गोत्रीय राव शोभा ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर श्री भगवतीजी सूत्र का महोत्सव किया श्रीगौतमस्वामी द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका आदि से पूजा की। उस द्रव्य से जैनागम लिखवा कर स्थान २ पर ज्ञान भण्डार स्थापित किये एवं जैनधर्म को स्थिर बनाया इस तरह राव शोभा इस सर्वोत्तम अवसर का तन, मन एवं धन से लाभ लेता रहा।

श्रीआचार्यदेव की वृद्धावस्था जन्य अशक्तता के कारण कभी २ व्याख्यान उपाध्याय पद विभूषित मुनिश्री ज्ञानकलशजी फरमाया करते थे। आपश्री की व्याख्यान शैली भी अत्यन्त रुचिकर एवं चित्ताकर्षक थी। जनता चातक पक्षी की तरह आप श्री के मुखारविंद से शास्त्रीय पीयूष धारा का अनवरत पान किया करती थी।

इधर श्री राव शोभा की वय ५६ वर्ष की हो चुकी थी। इस समय आपके ११ (ग्यारह) पुत्र और पौत्रादि का, विशाल परिवार था। आपकी पत्नी श्रेष्ठ सतियों में की जाती थी। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम कल्याण। आप जैसे राज्य संचालन करने में नीति दक्ष थे वैसे ही व्यापार निपुण भी थे तथा धर्मिष्ठ, उदारता गम्भीरता, शूरवीरता आदि गुणों से भी अलंकृत थे। राजकीय सत्ता के उच्चाधिकारी पद पर आसीन होते हुए भी आपमें निजी गुणोंसे अमर ख्याति प्राप्त करली थी। माडव्यपुर निवासियों को आपके शान्तिपूर्ण राज्य संचालन वृत्ति से पूर्ण संतोष था। आपश्री की धर्म पत्नी का देहावसान होने के पश्चात् आप एक दम संसार से विरक्त हो गये थे। इतने में ही पुण्य की प्रबलता से किंवा पूर्व कृत शुभ पुण्य के संचित होने से, भवभ्रमनिवारक योग रूप आचार्यदेव का भी संयोग होगया। अतः वैराग्योत्पादक आत्मभावना रूप हृदय में अंकुर, अंकुरित आचार्य देव के उपदेश रूप जल से शीघ्र गति पूर्वक पल्लवित होने लगा। ऐसे तो आपश्री आत्मकल्याण की कई समय से भावना थी ही किन्तु आचार्यश्री के संयोग ने उन भावनाओं को एक दम ताजी एवं दृढ़ बना दी।

प्रसङ्गानुसार एक दिन सूरीश्वरजी की सेवा में आकर राव शोभा ने अर्जकी कि—भगवान्! अब मुझे ऐसा मार्ग बतलावें कि जिससे, शीघ्र ही आत्म कल्याण हो जाय। सूरिजीने कहा—शोभा! कल्याण का एक दम निर्विघ्न, सुखदायक मार्ग संसार का त्याग करना ही है कारण, संसारिक अवस्था में रहते हुए मनुष्य को धन कुटुम्ब का सर्वथा मोह छूटना अशक्य है। वह अनिच्छा पूर्वक भी एक बार कौटाम्बिक पाश में फंस जाता है तो पुनः उससे मुक्त होना महादुष्कर सा ज्ञात हो जाता है। फिर तुम्हरा तो यह आत्म-कल्याण का ही समय है तुमने सांसारिक करने योग्य सर्व कार्यों को शांतिपूर्वक कर लिये हैं अतः निवृत्ति मार्ग में विलम्ब करना तुम जैसे मेधावी के लिये जरा विचारणीय है।

शोभा—गुरुदेव! मेरे पास करोड़ो रुपयों का द्रव्य है। यदि उसमें से आधा द्रव्य सुकृत में लगादूं तो आत्मकल्याण नहीं हो सकेगा?

सूरिजी—शोभा! सप्तक्षेत्रों में द्रव्य का सदुपयोग कर अनंत पुण्योपार्जन करना आत्मकल्याण के मार्ग का एक अंग अवश्य है पर तुम जिस आत्मकल्याण को चाहते हो वह उससे बहुत दूर है। कारण, द्रव्य का शुभ कार्यों में सदुपयोग करना भिन्न बात है और आत्मकल्याण का एकान्त निवृत्तिमय मार्ग अङ्गीकार करना एक दूसरी बात है। द्रव्य व्यय करने में तो कई प्रकार की आकांक्षाएं एवं भावनाए होती है किन्तु निवृत्ति मार्ग के अनुयायी बनने में एक मात्र आत्मोन्नति का ही उच्चतम ध्येय रहता है।। प्रवृत्ति कार्यों से (द्रव्य व्यय वगैरह से) शुभ कर्म सञ्चय होता है जो भविष्य के कल्याण के लिये सहायक बन जाता है पर प्रवृत्ति मार्ग कारण है तब, निवृत्ति मार्ग कार्य है। प्रवृत्ति से आगे बढ़ कर निवृत्ति मार्ग को स्वीकार करना ही पड़ता है। शोभा! चक्रवर्तियों के तो हीरे, पन्ने माणिक, मोती, सोने, चांदी की खानें थी पर आत्मकल्याण के लिये तो उनको भी उक्त सर्व वस्तुओं का त्याग कर विशुद्ध चरित्र का शरण लेना पड़ा। यदि वे चाहते तो अपने पास स्थित अक्षय धन राशि का शास्त्रीय सप्तक्षेत्रों में सदुपयोग कर पुण्य राशि का संचय कर सकते थे किन्तु, एकान्त आत्मकल्याण की परम भावना वाले उन व्यक्तियों ने इस प्रवृत्ति कार्य के साथ ही साथ निवृत्ति कार्य को आत्म कल्याण के लिये विशेषावश्यक समझ स्वीकृत किया और उसी भव में मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बने। अतः कल्याण के लिये निवृत्ति सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। चाहे आज इस भव में या परभव में—आत्मकल्याण की भावना वाले को दीक्षा अङ्गीकार करनी होगी। पर यह सोच लेना चाहिये कि पूर्व जन्मोपार्जित पुण्यराशि के अक्षय प्रभाव से जो आज हमको अनुकूल साधन मिले हैं वे परभव में मिल सकेंगे या नहीं? परभव की आशा से हस्तागत स्वर्णावसर को त्याग देना बड़ी भारी भूल है। अरे शोभा! जरा मानव भव की दुर्लभता एवं सांसारिक सुखों की अस्थिरता का तो विचार करो

,, पूर्वजन्म कृत सुकृतं सहस्त्रों जब होते हैं एकीतीर।
पाता है तब मनुक्ष मनोहर मानव का यह रुचिर शरीर ॥,,

यही नहीं शास्त्रकारो ने फरमाया है

चत्तारि परमङ्गाणि दुल्लहाणि य जन्तुणो।
माणुसत्तं सुइ सद्धा संजमम्मिय वीरियं ॥,,

अरे ! मनुष्य जीवन के साथ तदनुरूप सुयोग्यसामग्री, इत्यादि मिलने पर शास्त्रीय कर्मों को कार्यान्वित करना इस जीव के लिये महादुष्कर है। अनादि के मिथ्यात्व, अज्ञान, राग द्वेष, के वशवर्ती हुआ प्राणी इन पौद्गलिक वस्तुओं को उभयपक्ष (इस लोक और परलोक के लिये) श्रेयस्कर समझ कर अत्यन्त कटु परिणाम वाले कर्मों का उपार्जन करता रहता है पर सन्मार्ग प्रवृत्ति की ओर उसकी अभिरुचि ही नहीं होती। पर अन्त में परिणाम स्वरूप मृत्यु के समय किंवा नारकीय यातनाओं को सहन करते हुए अपने कृत कर्मों पर खेद होता है, किन्तु उस परिणाम शून्य किंवा गौणमात्र रहता है क्यों कि—

"अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत"

सूरिजी के पीयूष रस सम्मिश्रित वैराग्योत्पादक उपदेश को श्रवण कर राव शोमा का वैराग्य द्विगुणित होगया एवं दीक्षा के लिये कटिबद्ध होगया, तत्काल सूरिजी को वंदन कर कुटुम्बवर्ग की सम्मति प्राप्त करने के लिये घर पर गया। कौटुम्बिक सकल समुदाय को एकत्रित कर राव शोमा ने कहा—मैं मेरा आत्म कल्याण करना चाहता हूँ ?

कुटुम्बवर्ग—आप प्रसन्नतापूर्वक आत्मकल्याण करावें।

शोमा—मैं कुछ द्रव्य का सात क्षेत्रों में सदुपयोग करना चाहता हूँ ?

कुटुम्बवर्ग—आपकी इच्छा हो इस तरह आप द्रव्य का सदुपयोग कर सकते हैं ऐसे पुण्य के कार्यों में द्रव्य व्यय करना तो अपने सब का कर्तव्य है फिर आपके द्वारा उपार्जित द्रव्य पर तो हमारा अधिकार ही क्या ? कि हमें पूछने की आवश्यकता हो

शोमा मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

कुटुम्ब वर्ग—आपकी अवस्था दीक्षा स्वीकार करने योग्य नहीं है। आप घर में रह कर ही निवृत्ति में (आत्म कल्याण साधक मार्गों में) प्रवृत्ति करें, हम सब आपकी सेवा का लाभ लेने के लिये तत्पर हैं।

शोमा—आचार्यश्री फरमाते हैं कि घर में रह कर आरम्भ परिग्रह एवं मोह से सर्वथा विमुक्त होना, बड़ा कठिन है। अतः मेरी इच्छा दीक्षा लेने की है।

कुटुम्ब वर्ग—आचार्य महाराज के तो यही काम है क्या लाखों करोड़ों मनुष्य दीक्षा लेकर ही आत्म कल्याण करते होंगे ? क्या घर में रह कर आत्म कल्याण नहीं कर सकते हैं ?

शोमा—यह कहना आप लोगों की भूल है। करोड़ों मनुष्यों में कल्याण करने की भावना वाले बहुत थोड़े मनुष्य होते हैं। उनमें भी दीक्षा को स्वीकार करने वाले तो विरले ही होते हैं।

इत्यादि प्रश्नोत्तर के पश्चात् पचास लक्ष रुपयों से भावरत्नपुर के किल्ले में एक मंदिर तथा पास में उपाश्रय बनाने का निश्चय कर अपने मनोगत भावों को अपने पुत्रों के समक्ष प्रगट किये पितृभक्तिपरायण पुत्रों ने भी पिताजी के आदेशानुसार काम करवाना प्रारम्भ कर दिया।

इधर चातुर्मास के समाप्त होते ही सात मानुषों के साथ में राव शोमा ने, सूरिजी के चरण कमलों में भगवती आत्मसाधिका दीक्षा स्वीकार करली बाद में श्रीआचार्यदेव भी वहां से क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर पधार गये। वहां के श्रीसंघने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। श्रीमान् सूरिजी ने भी भगवान् महावीर एवं आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरिकी यात्रा कर श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया।

एक दिन रात्रिगोष्ठी समय, वहां के प्रमुख श्रीसंघने प्रार्थना की कि भगवन् ! आपश्री ने सर्वत्र विहार

कर जैनधर्म का जो उद्योत किया वह, अनुपम है। इसके लिये अखिल जैन समाज आपका चिरऋणी है। हमें बड़ा गौरव एवं अभिमान है कि हमारे धर्म के अधिपति श्रीआचार्यदेव वर्तमान साधु समाज में अनन्य हैं आपकी विद्वता का पार मनुष्य तो क्या पर बृहस्पति भी पाने में असमर्थ हैं। आप का चमत्कार एवं धर्म प्रचार का उत्साह अतुल है। किन्तु, गुरु देव अब आपकी वृद्धावस्था हो चुकी है। यदि आप यहीं पर स्थिरवास करने का लाभ उपकेशपुर श्रीसंघ को प्रदान करेंगे तो हम अवर्णनीय कृपा के भागी बनेंगे। आपश्री के चरणों की सेवा भक्ति कर हम लोग भी आपश्री के किये असीम उपकारों का कुछ ऋण अदा करने में समर्थ होंगे। सूरिजी शान्त एवं स्थिर चित्त से श्रीसंघ की प्रार्थना को श्रवण करते रहे। क्षेत्र स्पर्शना का सन्तोषजनक प्रत्युत्तर दे सूरिजी ने संघ को विदा किया। इधर रात्रि में सूरिजी के पास परोक्ष रूप से देवीसच्चायिका ने आकर सूरिजी को वंदन किया। सूरिजी ने देवी को धर्मलाभ दिया। देवी ने प्रर्थना की कि भगवान्! आप अपने पट्टपर उपाध्याय ज्ञानकलश को स्थापित कर यहीं पर स्थिरवास कर लीजिए। सूरिजी ने भी देवी की प्रार्थना को स्वीकार कर ली।

प्रातःकाल आचार्यश्री ने सकलसंघ के समक्ष अपने हृदय की इच्छा जाहिर की बस श्रीसंघ तो पहले से ही लाभ लेने को उत्सुक था ही अतः संघको आचार्यश्री के आनन्ददायक वचनों से बहुत ही आनन्द हुआ आदित्यनाग गौत्रीय चोरलियाशाखा के शा रावल ने सूरिपद के योग्य महोत्सव किया। सूरिजीने भ० महावीर के मंदिर में चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय ज्ञानकलश को सूरिपद से विभूषित कर दिया। सूरिपद के साथ ही साथ अन्य योग्य मुनियों को भी योग्य पदवियां प्रदान की। नूतनाचार्य का नाम परम्परानुसार सिद्धसूरि रख दिया तदान्तर वृद्धसूरिजी ने कहा कि—मैं तो वृद्धावस्था जन्य कमजोरी के कारण यहां पर ही स्थिरवास करूं गा और आप शिष्य मण्डली के साथ विहार कर धर्म प्रचार करें श्रीसिद्ध सूरिजी ने अर्ज की कि—पूज्यगुरुदेव! मैं क्षण भर भी आपकेचरणों की सेवा को छोड़ना नहीं चाहता हूँ। इस वृद्धावस्था में भी आपश्री की सेवा का लाभ न लूं तो मुझे आपश्री की सेवा का सौभाग्य प्राप्त ही कब होगा? अत दोनों सूरीश्वरों ने यह चातुर्मास उपकेशपुर में ही स्थिर कर दिया व्याख्यान नूतनाचार्य सिद्धसूरि ही देते थे। वृद्ध सूरिजी तो अपनी अन्तिम सलेखना एवं आराधना में सलग्न थे।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने शेष समय उपकेशपुर में ही व्यतीत किया। अन्त में समाधिपूर्वक १७ दिन के अनशन की आराधना कर परम पवित्र पञ्चपरमेष्टि के स्मरण पूर्वक स्वर्ग धाम पधारगये।

आचार्य देवगुप्तसूरि एक महान् प्रभावशाली आचार्य हुए। आपने अपने ३० वर्ष के शासन में अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर जैनधर्म की अमूल्य सेवा की। आपश्री की धवलकीर्ति का इतिहास जैन साहित्य में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। एसे महापुरुषों का जितना सम्मान करें उतना ही थोड़ा है। आचार्य आचार्यश्री ने अपना सारा ही समय धर्म प्रचार के महत्व पूर्ण कार्य में व्यतीत किया अत. आचार्यश्री कृत सम्पूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराने के लिये तो एक पृथक खासा इतिहास तैयार किया जासकता है किन्तु मैं अपने उद्देश्यानुसार कतिपय उदाहरणों को उद्धृत कर देता हूँ.—

चित्रकोट का किल्ला के विषयमें वंशावलीकार लिखते हैं कि चित्रकोट का महामंत्री श्रेष्टिवर्य सारंग शाह थे आप एक समय घुड़सवार हो जंगल से फिर कर शाम के समय वापिस लौट कर नगर में आ रहे थे उस समय एक कटहारा भारी लेकर आगे चल रहा था उसके कंधे पर कुहाड़ा था जिसकी

१३—जेवपुरा	,, सुचंति	,,	राहूल ने	,,
१४—दान्तिपुर	,, पल्लीवाल	,,	गोमाने	,,
१५—मारसोढी	,, बलाह	,,	गोल्हा ने	,,
१६—इरथुड़ी	,, करणावट	,,	धरण ने	,,
१७—चन्द्रावती	,, श्री श्रीमाल	,,	रावल ने	,,
१८—दुर्गपुर	,, प्राग्वट	वंश	चोलाने	,,
१९—जाकोड़ी	,, प्राग्वट	,,	नारद ने	,,
२०—शालीपुर	,, श्रीमाल	,,	रासा ने	,,
२१—धोलपुरा	,, लुग	,,	काना ने	,,
२२—चोराग्राम	,, दूधड़	,,	खुमाण ने	,,
२३—करणावती	,, श्रीमाल	,,	माना ने	,,
२४—खेटकपुर	,, प्राग्वट	,,	पतराने	,,
२५—भरोंच	,, लघुश्रेष्टि	,,	पुनहा ने	,,
२६—स्तमनपुर	,, प्राग्वट	,,	पाताने	,,
२७—सोपार	,, कुम्मट	,,	खेमा ने	,,
२८—सेसली	,, पल्लीवाल	,,	रघुवीर ने	,,
२९—आघाट	,, अग्रवाल	,,	सांडा ने	,,
३०—कापसी	,, अग्रवाल	,,	केहराने	,,
३१—दशपुर	,, मोरख	,,	राजसी ने	,,
३२—नागदा	,, प्राग्वट	,,	राणा ने	,,
३३—रेणी	,, प्राग्वट	,,	मोकल ने	,,
३४—उज्जैन	,, श्रीमाली	,,	देपाल ने	,,
३५—मान्डव	,, श्रीमाल	,,	जैसल ने	,,

सूरीश्वरजी ने अपने ३० वर्षों के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्टाए

१—डामरेल	के	नागवशी भूपाल ने	भा०	पारश्वेनाथ का	मन्दिर
२—नरवर	के	बप्प० गौत्रीय वीसाने	,,	,,	,,
३—डाबोली	के	भूरी गौत्रीय नोढ़ाने	,,	,,	,,
४—सोजाली	के	चरड गौत्रीय डाप्पाने	,,	आदीश्वर	,,
५—धारटी	के	लुंग गौत्रीय चांपसीने	,,	,,	,,
६—विजापुर	के	अग्रवाल वशीय फागुने	,,	महावीर	,,
७—नाडुजी	के	भाद्र गौत्रीय भारणनेणा	,,	,,	,,
८—जगालु	के	चिंचट गौत्रीय महीधरने	,,	,,	,,

७—वीरपुर	के	चरड़	,,	दोलाने	,,	,,
८—नाणापुर	के	प्राग्वट	,,	पद्माने	,,	,,
९—मांडव्यपुर	के	भाद्र	,,	मोकलने	सम्मेत शिखर का	
१०—सोपारपट्टन	के	करणावट	,,	लुवाने	शत्रुँजय का संघ	
११—चित्रकोट	के	सुचंति	,,	करमणने	,,	,,
१२—घोलपुरा	के	लुंग	,,	आमदेवने	,,	,,
१३—पद्मावती	के	प्राग्वट	,,	लालाने	,,	,,
१४—मथाणी	के	कनोजिया	,,	वीरम की पत्नी ने तलाब खोदाया		
१५—पासोडी	के	प्राग्वट	,,	खूमाण की पुत्री भूरीने एक वापी खुदाई		
१६—शिवपुर	के	प्राग्वट	,,	देदा की विधवा पुत्री सुखीने तलाव खुदाया		
१७—चन्द्रावती	के	पोरवाल	,,	वीरअजड़ युद्ध में काम आया० सती हुई		
१८—हरखुडी	के	श्रीमाल	,,	ओटो युद्ध में काम आया		,,
१९—पद्मावती	के	प्राग्वट	,,	मंत्रीवीरम युद्धमें काम ,,		,,

२०—वि० स० ६१२ मारवाड़ में भयकर दुकाल पड़ा था जिसके लिये उपकेशपुर के श्रेष्टिवर्य्यों ने चन्दा कर करोड़ों द्रव्य से देशवासी भाइयों एवं पशुओं के लिए अन्न एवं घास देकर प्राण बचाये।

२१ वि० स० ६२३ में भारत में एक जबर्दस्त दुष्काल पड़ा जिसके लिये चन्द्रावती आदि नगरों के धनाढ्य लोगों ने कई नगरों में फिर कर महाजन सघ से चन्दा एकत्र कर उस दुकाल को भी सुकाल बना दिया था जहाँ मिला वहाँ से धान घास मंगवा कर देशवासी भाइयों के एव मुक् पशुओं के प्राण बचाये—

२२—वि० स० ६२९ में भी एक साधारण दुकाल पड़ा था जिसमें नागपुर के आदित्यनाग गौत्रीय शाह गोसल ने एक करोड़ रूपये व्ययकर मनुष्यों को अन्न जौर पशुओं को घास उदार दील से दियाथा

इत्यादि महाजन सघ ने अपनी उदारता से अनेक ऐसे २ चोखे और अनोखे काम किये थे कि जिन्हों की उज्वल कीर्ति और धवल यश' आज भी अमर है

पट्ट सेतीसवें हुए सूरीश्वर, श्रेष्टिकुल शृँगार थे।
देवगुप्त था नाम आपका, क्षमादि गुण भण्डार थे॥
प्रतिबोध करके सद् जीवों का, उद्धार हमेशों करते थे।
सुनकर महिमा गुरुवर की, पाखण्डी नित्य जरते थे॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के सेतीसवे पट्ट पर देवगुप्त सूरि नामक महा प्रभाविक आचार्य हुए

पौत्रादिक विशाल कुटुम्ब था पर, घर के कार्य को सम्भालने के लिये स्तम्भवत् आधार भूत, पद्धु अवलम्बन देने वाला आसल नामका पुत्र था।

शाह देदा ने व्यापारिक क्षेत्र में प्रवृत्ति कर बहुत द्रव्योपार्जन किया था और समयानुकूल उस द्रव्य का शास्त्रवर्णित सप्तक्षेत्रों में सदुपयोग कर पुण्य सम्पादन भी किया था। मालपुर में चरमतीर्थंकर, शासननायक भगवान् महावीर स्वामी के मन्दिर का निर्माण कर आचार्यश्री के हाथों से मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई सम्मेत शिखरादि पूर्व, तथा शत्रुञ्जय गिरनारादि दक्षिण के तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर, संघपति के पदपर आसीन हो तीर्थ यात्रा का अनन्त पुण्य सम्पादन क ने के लिये भी भाग्यशाली बना था। पूजा, प्रभावना स्वामीवात्सल्यादि धार्मिक क्रियाए तो आपकी साधारण क्रियाओं के अन्तर्गत थी। जब शाह देदा का देहान्त हुआ तब आप अखूट लक्ष्मी अपने पुत्र आसल के लिये जमा छोड़ गये। पर—

"पूतसपूत तो क्यों धन सचय, पूतकपूत तो क्यों धन सञ्चय"

लक्ष्मी की भी अवधि होती है। इसका स्वभाव चंचल एवं कच्चे रंग की तरह क्षणभङ्गुर है जब तक पुण्य राशि की प्रबलता रहती है तब तक सर्व प्रकार के सुखोपभोग के पौद्गलिक साधन अपना अस्तित्व कायम रखते हुए मनुष्य के स्वभाव एवं रहन सहन में अलौकिक विचित्रता का प्रादुर्भाव कर देते हैं किन्तु, पुण्य सामग्री के समाप्त होते ही पुण्य के साथ ही साथ सब उपलब्ध साधन भी अदृश्य—लुप्त हो जाते हैं। बस यही हाल देदा के सुपुत्र आसल का भी हुआ। शा देदा के द्वारा संचित किया हुआ द्रव्य आसल के तकदीर में नहीं था। शा. देदा के बाद लक्ष्मी भी न जाने आसल से क्यों अप्रसन्न होगई? देखते २ लक्ष्मी ने अपना किनारा लेना प्रारम्भ कर दिया। जिस लक्ष्मी को एकत्रित करने में कई वर्ष व्यतीत हुए थे वही लक्ष्मी आज क्षणभर में आसल के घर से विदा होगई। वास्तव में इसकी अनित्यता को जानकर के ही तीर्थंकरों ने शाश्वत सुख प्राप्ति के लिये धर्म को ही मुख्य एवं श्रेयस्कर साधन बताया है। इस तरह पुण्य के अभाव से आसल क्रमश घर खर्च चलाने में भी असमर्थ बनगया। जैसे तैसे बड़ी ही मुश्किल से विचारा घर का गुजारा चलाने लगा। जिसके घरों से संघ जैसे वृहद् कार्य व मन्दिर जैसे परम पवित्र कार्य हुए आज वही कोटाधीश पूर्व जन्मोपार्जित पापकर्म के उदय से लक्षाधीश के बदले रक्षाधीश बनगया।

दरिद्रता के इतने विकट प्रवाह में प्रवाहित होते हुए भी आसल ने अपनी धर्मक्रिया में किञ्चित् भी न्यूनता न आने दी। वह तो इस दारुण परिस्थिति में और भी अधिक मनन पूर्वक परमात्मा का नाम स्मरण करने लगा। ज्यों २ व्यापारिक स्थिति की कमजोरी के कारण, समय मिलता गया त्यों २ वह अपने नित्य नियमादि—नित्यनैमेत्तिक-कृत्यों में भी वृद्धि करता गया। आसल जैन दर्शन के कर्मवाद सिद्धान्त का अच्छा ज्ञानी था। वह जानता था कि ये सब पौद्गलिक पदार्थ तद्दन निस्सार एवं क्षण विनाशी हैं। ससार, शुभाशुभ संचित कर्मों का नाटक है। जब तक मेरे पुण्य का उदय था मैं परम सुखी था। आज पाप के उदय से ही मुझे धनाभाव जन्य कष्ट का मुकाबिला करना पड़ रहा है। आज दुःख है तो, पुण्योदय से पुन सुख का दिवस भी उपलब्ध होगा। इस तरह कर्म के विचित्र इतिहास का एवं कर्म की क्रूरता से प्राप्त हुए अनेक महापुरुषों के जीवन के कष्टों का स्मरण करते हुए वह इस दु खमय जीवन को भी क्षण मात्र के लिये सुखमय बना रहा था। वास्तव में—

कहा है—"धर्मरहित चक्रवर्ती की समृद्धियां भी निकम्मी है और धर्म सहित निर्धनता जन्य आपत्तियां भी अच्छी है।" इस लोकोक्तिमें शब्द तो अगम्य रहस्य भरा हुआ है। कारण, धर्म रहित मनुष्य को पूर्व सुकृतोदय से धन जनादि पदार्थ प्राप्त होगये तो वह उनका उपयोग कर्मवन्धन मार्गों में ही करेगा। पशआराम व पोद्गलिक सुखों तक प्रयत्न कराने में सहायक होगा। द्रव्य का क्षणिक भोग विलासों में दुरुपयोग कर निकाचित कर्मों का बधन करेगा अत धर्म रहित मनुष्य की समृद्धिया भी भविष्य के लिए खतरनाक दुर्गति दायक होती है। इसके विपरित धार्मिक भावना से ओतप्रोत निर्धन धनाभाव के कारण दरिद्र व्यक्ति का जीवन धर्म भावनाओं की प्रबलता से पूर्वोपार्जित दुष्कर्मों की निर्जरा का हेतु और भविष्य के पातक बधन का बाधक होगा। वह कर्म फिलोसॉफी का अभ्यासी जीव निर्धनताजन्य दु.खों में भी कर्मों की विचित्रता का स्मरण कर शान्ति का अनन्योपासक रहेगा। यावत् उसकी निर्धनता भी कर्म निर्जरा का कारण बन जायगी। अत मनुष्य के जीवन की मुख्य सामग्री धन नहीं किन्तु—धर्म है। इसकी आराधना से ही जीव इस लोक और परलोक में परम सुखी हुआ है और होगा। इस प्रकार सूरिजी ने कर्मों कि विचित्रता एवं धर्म की महत्ता के विषय में लम्बा चौड़ा सारगर्भित, उपदेशप्रद प्रभावोत्पादक वक्तृत्व दिया। इसका उपस्थित जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

व्याख्यान में शा आसल भी विद्यमान था। उसने सूरीश्वरजी के एक एक वाक्य को यावत् अक्षर को बहुत ही एकाग्रचित्त से श्रवण किया उसको ऐसा आभास होनेलगा कि मनो आचार्यश्री ने खास मेरे लिये ही आज कर्म की फिलोसॉफी को प्रकाशित की है। क्षण भर के लिये आसल के नेत्रों के सामने बाल्य काळ से लगाकरके आज तक के इतिहास का चित्र, सुख दु ख का स्मरण धन की अधिकता एव निर्धनता की क्रूरता ज्यों की त्यों अंकित हो गई। सूरिजी का कथन उसे, सौलह आना सत्य ज्ञात होने लगा। वह विचारने लगा कि अवश्य ही मैंने पूर्व जन्म में धर्म के प्रति उदासिनता—उपेक्षा दृष्टि रक्खी। धर्म मय जीवन बिताने वालों को कष्ट दिया। उन्हें तरह तरह की अंतराय देकर ऐसे निकाचित कर्मों का बध किया है कि आज प्रत्यक्ष ही उसके कटु फलों का मैं आस्वादन कर रहा हूँ। निर्धनता जन्य दुखों को भोग रहा हुँ। अस्तु,

एक समय शा आसल सूरीजी की सेवा में हाजिर हुआ और वदन करके बैठ गया। सूरिजी जानते थे कि आसल के पिता परम धर्म परायण व्यक्ति थे। उन्होंने लाखों रुपया व्यय करके धर्म कार्यों कर पुण्य सम्पादन किया। धार्मिक पिता का पुत्र आसल भी धर्म के रग में रगा हुआ ही होना चाहिये अत आचार्य श्री, आसल को अमृत मय वाणी द्वारा ससार की असारता के विषय उपदेश दिया जिसको सुनकर आसल ने कहा–भगवान्! मेरा दिल ससार से तो सर्वथा विरक्त हैं। यदि मैं, मेरे निर्धारित कार्य को करलू तो जनता मेरी निर्धनता के साथ धर्म की भी अवहेलना करने लग जायगी। धर्म व साधुत्व-वृत्ति उनके लिये साधारण व्यक्तियों का आश्रय स्थान बन जायगी। सब लोगों के हृदय में भावनाएं जागृत होजायेंगी कि दारिद्रय जन्य कष्टों से पीड़ित हो कमाने में असमर्थ आसल ने साधुत्व वृत्तिको स्वीकार कर अपने आपको निर्धनता के दु ख से मुक्त किया। भगवन्! इन अपवाद मय शब्दों में धर्मावहेलना का भी रहस्य प्रच्छन्न है जिसका स्मरण कर दीक्षा के लिये उद्यत मेरा मन मुझे पुन आगे बढ़ाने के बजाय पीछे की ओर खेंच रहा है। पूज्यवर! यदि मैं पुन पूर्ववत् स्थिति को प्राप्त होजाऊं तो शीघ्र ही ससार को तिलाञ्जली देकर आपके करकमलों में एवं आपकी सेवा में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करलूं।

सूरिजी ने कहा—श्रावक ! एक ही भव में कर्मों की विचित्रता के कारण मनुष्य अनेक परिस्थितियों का अनुभव करता है। कभी पुण्यपुञ्ज से अकस्मात् राजा बन जाता है तो दूसरे ही क्षण पापोदय से घर २ के टुकड़े की याचना करने वाला याचक बन जाता है। राजा हरिश्चंद्र, मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र जैसे नरेशों एवं महावीर जैसे तीर्थंकरों को भी इस कर्म ने नहीं छोड़ा तो हम तुम जैसे साधारण व्यक्तियों के लिये तो कहना ही क्या ? ये तो अपने हाथों के किये हुए ही शुभाशुभ कर्म हैं। इसमें किंचित् मात्र भी आर्त्तध्यान न करते हुए धर्म मार्ग की आराधना करते रहना ही श्रेयस्कर है। अब रही आत्म कल्याण की बात सो आत्म कल्याण, गृहस्थावस्था को त्याग कर साधुत्व वृत्ति को स्वीकार करने में ही नहीं पर गृहस्थावस्था में रहते हुए भी हो सकता है। हां दीक्षा की उत्कृष्ट भावना रखनी एवं समयानुकूल दीक्षा को अङ्गीकार कर शीघ्र आत्म कल्याण करना तो आवश्यक है ही पर दीक्षा की भावना को भावते हुए सांसारिक अवस्था में भी यथा शक्य निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन लेते रहना चाहिये। श्रावक ! कई एक व्यक्ति तो ऐसे भी देखे गये कि वे निर्धनावस्था में जितना धर्मोपार्जन कर आत्म श्रेय सम्पादन कर सकते हैं, उतना धनिकावस्था में नहीं कर सकते हैं। उनके पीछे उस समय इतनी उपाधियां लग जाती हैं कि वे धर्म कर्म को सर्वथा विसर जाते हैं। निर्धनावस्था में की हुई प्रतिज्ञाओं का पालन उनके लिये विचारणीय हो जाता है उदाहरणार्थ-एक निर्धन मनुष्य थोड़े श्रम परिश्रम से अपना गुजारा करते हुए आठ पहर हमेशा धर्म सम्पादन करने में व्यतीत करता था। किसी समय पुण्योदय से एक सिद्ध पुरुष उसको मिलगया। निर्धन ने उस सिद्ध पुरुष की तन, मन, एवं शक्त्यनुसार धन से बहुत ही सेवा भक्ति की। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो सिद्ध पुरुष ने पूछा—भक्त ! तेरे पास कितना द्रव्य है ? उसको कहते हुए शरम आई अतः हाथ पर १) आंक लिख कर सिद्ध पुरुष के सामने रक्खा। सिद्ध पुरुष को भक्त की निर्धनता पर बहुत ही करुणा उत्पन्न हुई उसने १) पर बिंदी लगादी जिससे झट ही निर्धन के पास दस रुपये हो गये। अब वह निर्धन एक रुपये का किराणा लाकर बाजार में बेचने जाता था उस समय उसको पूजा सामायिकादि धार्मिक कृत्य करने के लिये बहुत समय मिलता था अब दश रुपयों का माल लेकर आस पास के ग्रामों में बेचने को जाने लगा तो उसे आठ पहर के बजाय छ पहर ही धर्म-कार्य के लिये मिलने लगे। पर जो परिणामों की स्थिरता एवं पवित्रता आठ पहर धर्म ध्यान करते समय थी वह इन छ पहरों के अल्प समय में न रह सकी। उसके हृदय में लोभ ने प्रवेश कर लिया। वह विचारने लगा कि यदि सिद्ध पुरुष एक शून्य की और कृपा कर दे तो ग्रामों में बेचने जाने की तकलीफ का अनुभव नहीं करना पड़े और यहां पर ही छोटी मोटी दुकान करके बैठ जाऊं। बस उक्त विचार से प्रेरित हो वह पुनः सिद्ध पुरुष के पास गया। सिद्ध पुरुष ने भी तथास्तु एक शून्य और लगा दी निर्धन के पास अब १००) होगये।

क्रमशः निर्धन ने दुकान कर तो ली पर इसका नतीजा यह हुआ कि दुकान पर बैठे हुए ग्राहक की राह देखने में तथा व्यापार निमित्त रुकते हुए छ पहरों में से दो पहर और भी कम हो गये। इसकी इससे बहुत चिन्ता हुई अतः समय पाकर पुनः सिद्ध पुरुष के पास गया और प्रार्थना की कि भगवन् ! एक बिंदी और लगादें तो बड़ी ही कृपा होगी। तथास्तु सिद्ध पुरुषने भी एक बिन्दी और लगा दी जिससे सेठ के पास १०००) होगये। अब तो सेठ ने एक नौकर और रख लिया। व्यापार, धंधा बड़े जोर से चलने लग गया। देशान्तरों से माल मंगाना बेचना प्रारम्भ कर दिया पर इधर धर्म के चार पहर में से दो पहर का समय भी मुश्किल से मिलने लगा। उस धर्म ध्यान के समय को बढ़ाने के लिये सेठ ने बहुत से उपाय सोचे पर, उसके एक उपाय

उसको उसकी दृष्टि में निष्फल ज्ञात हुए। वह चल कर पुन. सिद्ध पुरुष के पास आया। उसकी करुणा पूर्ण प्रार्थना पर सिद्ध पुरुष ने एक नहीं पर दो बिंदू और लगा दिये अब तो वह लक्षाधिपति बनगया। इस लक्षाधिपति की अवस्था में अवशिष्ट रहे धर्म कार्य के दो घटे भी रफूचक्कर हो गये धन के मद में लोलुप बन गया। धर्म के प्रति उपेक्षा करने लगा। इतना ही नहीं पर उपकारी सिद्ध पुरुष के दर्शन करना भी सर्वथा भूल गया। एक दिन वह सिद्ध पुरुष बाहर परिभ्रमन करने के लिये उस गाव से रवाना हुआ इस समय नगर के सब लोग उसे पहुँचाने के लिये आये किन्तु वह भक्त जिसको लक्षाधिपति बनाया था कहीं दृष्टि-गोचर नहीं हुआ।

सिद्ध पुरुष इधर उधर घूमकर पुनः उस नगर में आया। स्वागत के लिये सब नगर निवासी सम्मुख गये पर बिन्दु बढाने वाले सेठ का उस समय भी पता नहीं था। क्रमश सिद्ध पुरुष अपने आश्रम में पहुँच गये। कई दिवस व्यतीत होगये पर उस नवीन लक्षाधिपति के दर्शन भी दुर्लभ होगये इससे सिद्ध पुरुष आश्चर्य चकित हुआ अवश्य किन्तु धन के अहमत्व का विचार कर सिद्ध पुरुष को विशेष नवीनता नहीं लगी। एक समय सिद्ध पुरुष भिक्षार्थ उस नगर की छोटी सी गली से गुजर रहा था कि सेठ की अकस्मात भेंट होगई। धन के घमण्डी सेठ ने अपने मुंह पर कपड़ा डाल दिया और एक शब्द बोले बिना ही अपने चलने का क्रम प्रारम्भ रक्खा। सिद्ध पुरुष उसे अच्छी तरह से पहिचान गया अत. व्यगमय शब्दों में बोला कि—सेठजी। और बिन्दी की जरूरत हो तो आश्रम में आजाना। सेठ तो धर्म कर्म को तिलाञ्जली देकर तृष्णा का दास बन गया था अत. कार्य से निवृत्ति पाकर तुरत सिद्ध पुरुष के आश्रम में चला गया। सिद्ध पुरुष ने कहा—सेठजी। इस समय तुम्हारे पास कितना द्रव्य है। सेठने १००० ० बड़े २ अक लिख दिये। अकों को इतने बड़े अक्षरों में लिखे कि नवीन शून्य लिखने के लिये भी हाथ में स्थान न रहा। सिद्ध ने कहा—सेठजी। क्या किया जाय ? अब बिन्दी लिखने का भी हाथ में स्थान नहीं है। सेठ ने कहा—यदि आगे स्थान नहीं तो क्या हुआ ? पृष्ठ भाग में तो जगह है उधर ही बिन्दी लगा दीजिये। उसके विशेषाग्रह से सिद्ध पुरुष ने पीछे बिंदी लगादी। बस, फिर तो था ही क्या ? स्वप्न की माया स्वप्नवत् ही नष्ट होने लगी। थोड़े ही समय में सेठ अपनी मूल स्थिति पर आगया। केवल उसके पास उसकी मूल पुञ्जी १) ही रही। अब उस पर ही अपना निर्वाह करने लगा। इधर इतने प्रपञ्चों एव उपाधियों से मुक्त होजाने के कारण आठ घटा समय धर्म कार्य के लिये भी मिलने लग गया। अब सिद्ध पुरुष के पास जाकर सेठ ने अर्ज की कि गुरुदेव। ससार को डुबाने एव तारने की चाबी आपके पास में हैं पर जैसे मेरे पर दया भाव लाकर बिंदियें लगाकर मेरे धर्म कर्म को छुड़वाया वैसे दूसरे का नियम न छुड़वाना। मुझे इस हा ्त में ही आनद है। आठ घटे धर्म कार्य के लिये तो मिलते हैं। इस बीच ही आसल ने प्रश्न किया—गुरुदेव। सिद्ध पुरुष इस प्रकार किसी को द्रव्य दे सकता है ?

गुरु महाराज—आसल। जैनधर्म एकान्तवाद को अपनाये हुए नहीं है। वह तो अनेकान्त वाद का परम अनुयायी है। यदि एकान्त ऐसा मान लिया जाय तो ससार में कोई दुखी एव निर्धन रह ही नहीं सके और इसके साथ ही साथ सुकृत (पुण्य) दुष्कृत (पाप) के शुभाशुभ का फल भी नष्ट होजाय। पर ऐसा सबके लिये सम्भव नहीं है। सिद्ध पुरुषों का सयोग व ऐसे कोई दूसरे साधन तो पूर्वजन्म के सम्बन्ध से किंवा पुण्योदय से मनुष्यों के लिये निमित्त बन जाते हैं। जैन शास्त्रों में कारण, दो प्रकार के कहे हैं— एक

से नहीं किये किन्तु, अपना पवित्र कर्तव्य समझ कर मानवता के ध्येय हृदयङ्गम कर उक्त कार्यों में भाग लिया।

शा आसल आज पूर्ण समृद्ध एवं सुखी था। लक्ष्मी आज उसकी चरण सेविका बन चुकी थी पर धन के थोथे मद में वह मदोन्मत्त नहीं हुआ। उसे अपने पहिले की जीवन की दुःख मय कथा याद थी। आचार्यश्री के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा की उसके हृदय पर छाप थी। उसकी यही मनोगत भावना थी कि मैं पूज्यआचार्य देव को बुलाकर अपनी मनोकामना को सफल बनाऊ। बस, उक्त भावना से प्रेरित हो उसने आचार्यश्री की खबर मगवाई तो मालूम हुआ कि आचार्यदेव इस समय डामरेल में विराजमान हैं। सूरीश्वरजी के विराजने के निश्चित समाचारों से उसके हृदय में नवीन स्फूर्ति एवं क्रान्ति की जागृति हुई। वह तत्काल कई भावुकों को लेकर प्रार्थना के लिये डामरेल गया। सूरीश्वरजी की कृपा पूर्ण दृष्टि की कृतज्ञता को प्रगट करते हुए आसल, उनके चरण कमलों में गिर पड़ा। मालपुर पधारने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना करने लगा। सूरिजी को अब तक यह मालूम नहीं था कि निर्धन आसल आज श्रीमत शिरोमणि बना हुआ है किन्तु जब सायके मनुष्यों से आसल के अथ से इति तक वृत्तान्त सुने तो सूरिजी को भी पूरा सतोष एव आनंद हुआ।

सूरिजी ने आसल के सामने देखते हुए कहा कैसे हो भाग्यशाली! आसल—गुरुदेव! आपकी कृपा एव अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से पहला भी आनन्द था, अभी भी आनद है और भविष्य में भी आनद ही आनद रहगा। प्रभो! कृपाकर अब शीघ्र ही मालपुर पधार कर मेरी प्रतिज्ञा को सफल बनावें। आसल के इस कथन से तो सूरिजी की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उनके हृदय में यह कल्पना थी कि आसल धनावेश में अपने कर्तव्य को विस्मृत कर चुका होगा पर आसल को इस अवस्था में कर्तव्य पराङ्मुख होने के बदले कर्तव्याभिमुख देख कर उन्हें बहुत सतोष हुआ।

सूरिजी ने आसल की प्रार्थना को स्वीकृत कर डामरेल नगर से विहार कर दिया। क्रमश छोटे बड़े ग्रामों में होते हुए आचार्य देव मालपुर पधार गये। शा. आसल ने नव लक्ष रुपया व्यय कर आचार्य देव का शानदार नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। ऐसा अवसर एवं ऐसा उत्सव आज मालपुर के लिये सर्व प्रथम ही था। साधर्मी भाइयों को पहरामणी एव याचकों को पुष्कल दान दिया।

एक समय आसल सूरिजी के पास गया और वदन करके अर्ज करने लगा—भगवन्! आपके सामने की हुई प्रतिज्ञा को मैं विस्मृत नहा कर सकता हूँ पर, मेरी यह आन्तरिक इच्छा है कि आपश्री का चातुर्मास मालपुर में होजाय तो मैं कुछ द्रव्य का शुभ कार्यों में व्यय कर हस्तागत द्रव्य का सदुपयोग करू श्री शत्रुञ्जय तीर्थेश का एक सघ निकाल कर, यात्रा करूं। प्रारम्भ करवाये हुए जिनालय की प्रतिष्ठा करवा कर गृहस्थ धर्म की आराधना करते हुए पूज्यश्री के चरण कमलों में भगवती दीक्षा को ग्रहण कर अपनी की हुई प्रतिज्ञा को सफल बनाऊ। सूरिजी ने कहा—आसल! तू बड़ा ही भाग्यशाली है। तेरी ये योजनाए भी अच्छी हैं। शासन की उन्नति एव प्रभावना करना, यह भी आत्मोन्नति का एक मुख्य अङ्ग है। धर्म प्रभावना करना एव वीतराग प्रणीत धर्म में अटूट श्रद्धा रखना तीर्थङ्कर नाम गोत्रोपार्जन के कारण हैं अतः तेरे उक्त विचार समयानुकूल आदरणीय हैं।

सूरिजी का व्याख्यान नित्यनियमानुसार हमेशा होता ही था। व्याख्यान श्रवण से जनता पर उसका

क्योंकि प्रभाव पड़ा के ओसवाल चाहते थे कि यदि किसी तरह से चातुर्मास का अवसर हाथ लग जाय तो हम अपनी व्याख्यान श्रवण से अतृप्त प्यास को आगम श्रवण जल से शांत कर सकें। अस्तु, समयानुसार एक दिन राव काकूआदि सकल श्रीसंघ ने सूरीश्वरजी की सेवा में चातुर्मास की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। आचार्यश्री ने भी भविष्य के लाभ का कारण को सोचकर श्रीसंघकृत प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार करली। बस हर्ष के वादित्र बजने लगे। जो कोई आचार्यश्री के चातुर्मास के निश्चय को सुनता हर्षोन्मत्त होजाता। शा. भाखला की प्रसन्नता तो अवर्णनीय थी। उसको तो अपनी भावना सफल करने का अच्छा अवसर ही हस्तगत हुआ था। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव स्नात्र पूजा, प्रभावनादि कार्य भी बड़े उत्साह पूर्वक प्रारम्भ कर दिये गये।

शाह भाखला, महा प्रभावक पञ्चमाङ्ग श्रीभगवती सूत्र बड़े ही समारोह पूर्वक बंचाने का लेना। पूजा, प्रभावना स्वामी वात्सल्यादि उत्सवों को करते हुए सूत्र को हस्ति पर आरूढ़ कर बड़े ही जुलूस के साथ सवारी चढ़ाकर श्रीआचार्यश्री को अर्पण किया। शाह भाखला एवं मालपुर के सकल संघ ने हीरा पन्ना, माणिक, मुक्ताफलादि से ज्ञान पूजा की। इस ज्ञान पूजा में एक करोड़ रुपयों का द्रव्य जमा हुआ था। इस द्रव्य में गुरु गौतम स्वामी के द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न की स्वर्ण मुद्रिका से पूजा की गई वह भी शामिल था। इसप्रकार ज्ञान खाते के एकत्रित द्रव्य का सदुपयोग करने के लिये वर्तमान जैन साहित्य एवं आगमों को लिखवाकर मालपुर में ज्ञान भण्डार स्थापित कर देने का निश्चय किया गया।

सूरिजी के व्याख्यान की छटा और तत्त्व समझाने की शैली इतनी रोचक, सरल एवं उत्तम थी कि साधारण जनता भी सुनकर बोध को प्राप्त हो जाती। राव काकू तो सूरिजी का इतना भक्त होगया कि वह एक दिन भी व्याख्यान श्रवण से वञ्चित न रह सका। वह तो आचार्य देव की व्याख्यान शैली से इतना प्रभावित हुआ कि उसे वाममार्गियों के अत्याचार एवं आचार व्यवहार की पोपलीला से घृणा आने लगी। शुद्ध पवित्र एवं आत्मकल्याण में साधनभूत जैन धर्म ही उसे सारभूत तत्त्व मालूम होने लगा। बाद जैनधर्म को स्वीकार कर उसके प्रचार में वह यथाशक्य प्रयत्न शील भी हुआ 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्त्यनुसार बहुत से लोगों ने मिथ्या मतों का त्याग कर जैनधर्म स्वीकार किया। इस तरह सूरिजी महाराज के विराजने से मालपुर में जैनधर्म की आशातीत प्रभावना हुई।

इधर अक्षय निधि के स्वामी शाह भाखला की ओर से द्रव्य व्यय की खुल्ले हाथों से छूट थी। भाखला की ओर से ही पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि विशेष परिमाण में होरहे थे। इधर मन्दिर का कार्य भी अविरत गति से प्रारम्भ था। कारीगरों एवं मजदूरों की संख्या में कार्य शीघ्रता के लिये खूब वृद्धि कर दीगई कारण, भाखला को जल्दी ही पूर्ण धर्माराधन पूर्वक संसार का त्याग करना था।

अब सिर्फ एक संघ निकालने का कार्य ही रहा था। इसके लिये भी सूरिजी से परामर्श कर एक सुंदर योजना तैय्यार करली। चातुर्मासानन्तर तत्काल श्रीसंघ से अनुमति लेली और बहुत दूर दूर तक आमंत्रण भेजकर विशाल संख्या में चतुर्विध संघ को मालपुरा में बुलाया कर उनका पूजा सत्कार किया एवं विशाल संख्या में आचार्य देव के नेतृत्व एवं शा. भाखला के संघपतित्व में शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा के लिये संघ रवाना हुआ। क्रमशः यात्राओं को करके संघ पुनः मालपुर आगया। संघ के वापिस आते ही तत्काल मन्दिर की प्रतिष्ठा का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। मन्दिर की प्रतिष्ठानंतर स्वामीवात्सल्य

एव स्वधर्मी भाइयों में पुरुषों को सुवर्ण माला और बहिनों को सुवर्ण चूड़ा तथा मुद्रिकाए की परामणी एवं याचकों को पुष्कल द्रव्य का दान दिया तथा सात क्षेत्रों में भी बहुत धन देकर कल्याण कारी पुन्योपार्जन किया। जिससे आसल की धवल कीर्ति दिगान्त व्यापक होगई। इन सब कामों में आसल ने तीन करोड़ रुपये व्यय कर दिये।

अन्त में अपने पुत्र पोलाक को घर का भार सौंप कर आचार्य श्री देवगुप्तसूरिजी के पास ४२ नर नारियों के साथ शाह आसल ने भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली। सूरिजी ने आसल का नाम ज्ञान कलश रख दिया। मुनि ज्ञानकलश आचार्य देव की सेवा में रहते हुए ज्ञान सम्पादन करने में सलग्न हो गया। आपके ससार में जैसे द्र य की अन्तराय टूट गई थी वैसे दीक्षा के पश्चात् ज्ञानान्तराय एवं तपस्या करने की भी अन्तराय टूटी हुई थी। बस; कुशाग्र बुद्धि की प्रबलता के कारण, मुनि ज्ञानकलश थोड़े ही समय में विविध भाषा विशारद, नाना शास्त्रविचक्षण-अजोड़ विद्वान बन गये। जैन साहित्य के अनन्य विद्वान होने पर आपने, कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। तप कर्म की दुष्करता के साथ ही अभिग्रह भी ऐसे धारण करते रहे कि आपको कई दिनों तक पारणा करने का अवसर ही नहीं मिला। पट्टावली निर्माताओं ने आपके अभिग्रह के बहुत से उदाहरण बताये हैं-तथाहि—

एक समय मुनि श्री ज्ञानकलशजी ने अभिग्रह किया कि लाल वस्त्र धारण करने वाली कोई सौभाग्यवती स्त्री मुझे तिरस्कार करती हुई भिक्षा देवे तो ही पारण करना। भला—ऐसे तपस्वी, ज्ञानी एव क्रिया पात्र मुनि का तिरस्कार करने का दुस्साहस किस पातकी का होता ? फिर इनकी किर्ति भी इतनी फैली हुई थी कि उनका तिरस्कार किसी के द्वारा होना सम्भव ही नहीं था। मुनीश्री हमेशा भिक्षार्थ भटन करते और विहार भी करते जाते किन्तु तिरस्कार के बदले सर्वत्र प्रशसा ही के वाक्य सुनते बस भिक्षार्थ गये हुए मुनि ज्यों के त्यों पुन लौट आते। इस तरह चौवीस दिन व्यतीत हो गये। एक दिन नित्य क्रमानुसार मुनीश्री एक ग्राम में भिक्षा के लिये गये। सौभाग्य वश किसी जैनेतर के घर पर आ निकले। पहिले तो घर की लालवस्त्र धारण की हुई सौभाग्यवती बाई ने मुनीश्री का तिरस्कार किया किन्तु मुनिश्री को शान्त एव स्थिर चित्त से वहीं खड़ा हुआ देखा तो उसने भावना पूर्वक भिक्षा प्रदान की। मुनि ने भी भिक्षा को स्वीकार कर पारणा किया।

एक समय अभिग्रह किया कि कोई राजा आकरआमन्त्रण करे तो पारण करू इस अभिग्रह को करीब ४५ दिन व्यतीत होगये पर कोई राजा के निमन्त्रण करने का अवसर ही हस्तगत नहीं हुआ। आपभी उपवास का क्रम चालू रखते हुए आचार्य देव के साथ परिभ्रमण करते रहे एक दिन मार्ग में मुनिजी ने एक तालाब के किनारे पर कुछ घोड़ों को खड़े हुए देखे। पास ही कुछ मुसाफिर भोजन के लिये बैठे हुए ज्ञात हुए। उक्त अवसर को देख मुनिश्री जीने पास जाकर पूछा कि आप कौन हैं। पास में बैठे हुए व्यक्तियों ने कहा—हम हमारे राजा के साथ में आये हुए आदमी हैं। हमारे स्वामी भी यहीं पर बैठे हुए हैं। राजा ने यह आवाज सुनी और मुनिराज को अपने यहां आया हुआ देखा तो उसको बहुत खुशी हुई उसने तुरत-आहार पानी के लाभ की भावना भाई। मुनिश्री ने भी अपने अभिग्रह को पूरा होते देख भिक्षाग्रहण की एवं पारणा कर लिया। कुछ ही क्षणों के पश्चात राजा को मालूम हुआ कि मुनिश्री के तपस्या का आज ४५ वा दिन था। उनके अभिग्रह था कि कोई राजा अपने हाथों से आहार पानी देवे तो पारणा करना

सिंध, पञ्जाब, कुनाल, कुरु, शूरसेन, मत्स्य आदि प्रान्तों में परिभ्रमण करते रहे। समयानुकूल शेषे काल एव चातुर्मास के योग्य क्षेत्रो में ज्यादा ठहरते हुए व अवशिष्ट स्थानों में तत् स्थान योग्य निवास करते हुए आचार्यश्री ने धर्म प्रचारार्थ अपना परिभ्रमन प्रारम्भ रक्खा। आपके पूर्वजों द्वारा सस्थापित शुद्धिकी मशीन को आपने द्रुतगति से चलाना प्रारम्भ किया। और पूर्वाचर्यों के आदर्श का अनुसरण करते हुए अनेक मांस भक्षियों को मांस त्याग का सच्चा पाठ पढ़ाया। हम पढ़ चुके हैं कि पूज्य आचार्यदेव न तो देहिक कष्टों की परवाह करते थे और न सुख दुख' का ही विचार करते थे। वे तो जैन धर्म की प्रभावना एव महाजन संघ की रक्षा एवं वृद्धि करने में सलगन थे। उनकी नस नस में जैन धर्म के प्रति अनुराग भरा हुआ था और इसीसे प्रेरित हो आपश्री ने अपने विहार में अनेकों को जैनानुयायी वनाये। ईस गच्छ के आचार्य शुरु से ही अजैनों को जैन वना कर महाजनसंघ की वृद्धि करने में सलग्न थे उन आचार्यों के भक्त राजा महाराजा एव सेठ साहूकारों को भी यही शिक्षा मिलती थी कि नूतन जैनों के साथ प्रेम रखे उनकों सब प्रकार की सहायता पहुँचावे और जैनेत्तरों से जैन बनते ही उनके साथ विना किसी भेद भाव के रोटी और बेटी व्यवहार करलें और ऐसा ही वे करते थे तथा इस उदारता से ही महाजनसघ करोड़ों की सख्या तक पहुच गया था।

उस समय के पूज्याचार्यों की व्यवहार दक्षता कार्य कुशलता हृदय की उदारता एव विहार की विशालता ने जैन एवं जैनेतर समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाला था। तथा जैन श्रमणो का त्याग वैराग्य निस्पृहिता एव आचार व्यवहार की जटिलता ने भी जैनेत्तर लोगों को अपनी और अकर्पित कर लिये थे। कारण उनके गुरुओं में प्रायः इस प्रकार कठोर आचार का अभाव ही था अतः उनकों नतमस्तक होना प्रकृति सिद्ध ही था।

फिर भी कई लोग जैनधर्म को उपादाय समझते हुए भी स्वीकार नहीं कर सकते थे इसका कारण ससार लुब्ध जीवों से जैनधर्म के कठोर नियम पालन करना दु'साध्य थे साथ में इतर धर्म के कहलाने वाले गुरु स्वय त्याग मार्ग से पराङ्मुख होकर अपने भक्तों को किसी तरह की रोक टोक न कर सब तरह की घूट देकर भी धर्म बतलाते थे अतः पुदगलानदी जीव धर्म के नाम पर अपनी इन्द्रियों का पोपण करने में स्वच्छन्दाचारी बने रहते थे तथापि उस समय सत्य धर्म को कसोटी पर कस कर आत्म दर्शियों की भी कमी नहीं थी जैनाचार्य आप जनता में एव राजसभाओं में निर्डरता पूर्व सत्योपदेश कर सहस्रों एव लक्षो जीवों का उद्धार कर जैन धर्म की वृद्धि करने में सदैव कटी बद्ध रहते थे और उन्होंने अपने कार्य में सफलता भी प्राप्त प्रमाण में करली थी।

जैनाचार्य और आपके आज्ञा वृति श्रमणगण सिवाय चतुर्मास के भ्रमन करते रहते थे जहां थोड़ी बहुत जैनों की वस्ती हो उस प्रदेश को श्रमणों से वंचित नहीं रखते थे अर्थात् जिस बगीचा को हमेशा जल सचन मिलता रहता हो वह हराभरा गुलझार रहे यह एक स्वाभाविक बात है।

उस समय जैन शासन में गच्छों एव समुदायों का प्रादुर्भाव हो चुका था पृथक् २ गच्छ होने पर भी जैन धर्म का प्रचार के लिये वे सब एक ही थे एक दूसरे के कार्य में मदद करते थे जैन धर्म की उन्नति में ही वे अपनी उन्नति समझते थे वे लोग गच्छ, समुदायों के भेद से धर्म का ह्रास करना नहीं चाहते थे आपसी वाद विवाद एव वितण्डवाद में अपना अमूल्य समय नष्ट नहीं करते थे। इतना ही क्यों पर उस समय चैत्यवास के नाम पर कई श्रमण शिथिलचारी भी बन बैठते थे और बहुत से उग्र बिहारी भी थे पर वे आपस

में निंदा अवहिलना करना नहीं जानते थे किसी ने किसी के विरोध में कमान नहीं खड़ी की किसी के प्रति अवज्ञ भी नहीं करवाते थे फूट कुसम्प का बीज नहीं डाला जाता था अर्थात् वे सब सिद्धान्त के अनु- गामी थे । जिन जिन जीवों के जितना २ क्षयोपसम होता है वे उतना उतना ही पालन कर सकते हैं अतः सुविहित आचार्य शिथिलाचारियों को सुविहित बनाने की कोशीश करते रहते थे । यदि किसी व्यक्ति के अपदेस निंदा किया जाय तो वे लोग छीप छुपकर माया कपटाइ करके अधिक कर्म बन्ध करेंगे । अतः उनका जिन सूत्र कर ही शासन सेवा करना करवाना श्रेयस्कर समझते थे यदि वे आज के साधुओं की तरह मत्सरता भाव से एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृति कर डालते तो उनको इतनी सफलता मिलनी असंभव थी कि जितनी उन्होंने प्राप्त की थी इत्यादि उस समय के महापुरुषों को आज हम समझे तो उन्नति हमारे से दूर नहीं है ।

आचार्य सिद्धसूरीजी म० मरुधर में भ्रमण करते हुए एक समय नारदपुरी में पधारे वहाँ के श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया एवं नगर प्रवेश का महोत्सव में पल्लीवाल ज्ञातिय शाह मैकरण ने उदार द्रव्य व्यय किया । सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिसको श्रवण कर जनता बहुत आनन्द का अनुभव करती थी । एक समय शाह मैकरण पल्लीवाल ने सूरिजी से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य मैंने स्वर्गीय आचार्य देवगुप्तसूरि के समीप व्रतग्रहन किये थे जिसमें परिग्रह का प्रमाण किया था जिससे अब मेरे पास गुरु अधिक द्रव्य जमा हो गया है अब मैं उस द्रव्य को किस काम में लगाऊँ कृपा कर रास्ता बतलावें । सूरीजी ने कहा मैंकरण तु भाग्यशाली है अपने व्रतों की रक्षा के निमित द्रव्य का मोह छोड़ रहा है । यों तो शास्त्रकारों ने सात क्षेत्रों का निर्देश किया है पर विशेषता यह है कि जिस समय जिस क्षेत्र में अधिक जरूरत हो उस क्षेत्र में द्रव्य व्यय करना विशेष लाभ का कारण होता है मेरा अनुभव से तो तुं तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा करवाने का लाभ ले इत्यादि । सूरिजी के वचनों को मैंकरण ने तथाऽस्तु कह कर शिरोधार्य कर लिया बाद सूरिजी को वन्दन कर अपने घर पर आया और अपने पुत्रों पौत्रों को एकत्र कर सब हाल कहा कि मैं मेरे प्रमाण से अधिक द्रव्य को सूरिजी के कथनानुसार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने में लगाना चाहता हूं इसमें तुम्हारी क्या इच्छा है ? पुत्रों ने कहाँ पूज्य पिताजी आपके उपार्जन किया द्रव्य आप अपनी इच्छानुसार व्यय करें इसमें हमारा क्या अधिकार है कि हम हस्त- क्षेप करे ? हम लोग तो बड़े ही खुश है हम स बनेगा यह कार्य कर पुन्योपार्जन करेंगे आपतो अवश्य अपना निर्धारित कार्य कर पुन्य हाँसिल करावे ।

अहा-हा कैसा जमाना था कि साधारण रकम नहीं पर लाखों करोड़ो द्रव्य पिता शुभ कार्य में लगाना चाहे जिसमें पुत्र चू तक भी न करे और उल्टा अनुमोदन करते है यह कितनी आसेच्छा ! कितना धन्य था वह जमा !! कितना निःस्वार्थ !!! बस मैंकरण ने अपने आज्ञा कारी पुत्रों को संघ सामग्री एकत्र करने का आदेश दे दिया और संघ के लिये आमन्त्रण पत्रिकाए देश विदेश में तथा मुनियों के लिये भी योग्य पुरुषों को स्थान स्थान पर भेजवा दिये ।

फाल्गुन शुक्ल पंचमी का शुभमुहूर्त निश्चय किया ठीक समय पर सैकड़ों हजारों मुनि—साध्वियों एवं लाखों श्रावक श्राविकाएँ नारदपुरी में जमा हो जाने से नारदपुरी एक यात्रा का धाम ही बन गया शाह मैंकरण को संघपति पद अर्पण कर आचार्यश्री की नायकत्व में संघ प्रस्थान कर दिया रास्ता के

मन्दिरों के दर्शन करते हुए या स्थान स्थान के संघों से सम्मान पाते हुए जीर्णोद्धार एव जीव दया के लिये सघपति मैंकरण खुल्ले हाथों से पुष्कळ द्रव्य व्यय करता हुआ सघ तीर्थ धिराज श्रीशत्रुंजय पर पहुँचे भावुकों ने परम प्रभु ऋषभदेव के दर्शन स्पर्शन या पूजा कर अपने जीवन को सफल बनाया आठ दिन तक तीर्थ पर रह कर अष्टान्हिक महोत्सव धजारोहणादि शुभ कार्य किये बाद रेवताचलादि तीर्थों की यात्रा कर संघ पुन' नारदपुरी में आया शाह मेकरण ने पुरुषों के लिये सोना की कठियों और स्त्रियों के लिये सोना के कांकण (चुड़ियों) तथा उमदा वस्त्र एवं लड्डुओं की प्रभावना देकर सघ को विसर्जन किया इन सब कार्य्यों में शा मकरण ने तीन करोड रुपये व्यय किया जो उनको करणा ही था यह एक उदाहरण बतलाया है पर उस समय ऐसे तो बहुत से धर्मज्ञ भावुक भक्त थे और उनको पुन्य के उदय से लक्ष्मी भी उनके घर पर दाशी होकर रहती थी ज्यों ज्यों शुभ कार्यों में लक्ष्मी का सदुपयोग करते थे त्यों त्यो अधिक से अधिक लक्ष्मी बढ़ती जाती थी उस समय के भद्रिक लोगों की देव गुरु धर्म पर अटल श्रद्धा एव विश्वास था छल प्रपंच माया कपटाइ में तो वे लोग प्रायः समझते ही नहीं थे गुरु वचन पर उनको पूर्ण श्रद्धा थी येही उनके पुन्य-बढ़ने के मुख्य कारण थे।

वशावलियों पट्टावलियों में अनेक उदार नर पुगवों के उल्लेख किया गया है पर ग्रन्थ बढजाने से मैंने केवल नमूना के तौर पर एक शाह मैंकरण का ही उल्लेख किया है और शेष हमारे लेखन पद्धति के अनुसार नामावली आगे देदी जायगी जिससे पाठक ठीक अवगत हो सकेंगे।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज अपने २९ वर्ष के शासन समय में जैनधर्म की महिति सेवा की और जैनधर्म का उत्कर्ष को खुब जोरों से बढ़ाया आपके शासन में हजारों मुनि आर्याए प्रत्येक प्रान्त में विहार कर अपने सयम कों शोभाय मान कर भव्य जीवों पर महान् उपकार करते थे कोरट गच्छ कुंकुंन्द शाखा एव वीर परम्परा के अनेक गण कुल शाखाए के हजारों मुनि आपस' में भाइ भाव एव मेल मिलाप के साथ जैनधर्म का प्रचार बढ़ा रहे थे उस समय आचार्य सिद्धसूरि सर्वोपरी धर्म प्रचारक आचार्य समझे जाते थे और आपका प्रभाव सब पर एकसा पड़ता था अत. ऐसे महान् प्रभाविक आचार्य के चरण कमलों में मैं कोटी कोटी नमस्कार कर अपने जीवन को सफल हुआ समझता हूँ:—

आचार्य भगवान् के २९ वर्ष के शासन में भावुकों की दीक्षाए

१—धारोजा	के	ब्राह्मण		सीताराम ने	दीक्षली
२—कुपल	के	चंडालिया	गौत्रीय	माला ने	"
३—क्षत्रीपुरा	"	चोरड़िया	"	भाबू ने	"
४—हापड़	"	छुग	"	काळा ने	"
५—खटोली	"	दूधड़	"	घना ने	"
६—पृथ्वीपुरा	"	श्रेष्टि	"	पुनड़ ने	"
७—गोधाण	"	बोहरा	"	पन्ना ने	"
८—नागपुर	"	सुचंति	"	नारायण ने	"
९—उतरसाणी	"	प्राग्वट	"	सखला ने	"

११—जैसाली	,,	प्राग्वट	,,	अज्जने	म०	महावीर
१२—ब्रह्मपुर	,,	वीरहट	,,	रावलने	,,	,,
१३—लोद्रवापुर	,,	श्री श्री माल	,,	सादरने	,,	,,
१४—भवराणी	,,	श्री माल	,,	नोढ़ाने	मा०	पार्श्वनाथ
१५—भोजपुर	,,	प्राग्वट	,,	लुम्बो	,,	,,
१६—देवाटी	,,	प्राग्वट	,,	लाला	,,	,,
१७—गुडगीरी	,,	प्राग्वट	,,	हरदेव	,,	नेमिनाथ
१८—चोलसी	,,	श्रीमाल	,,	सहजपाल	,,	,,
१९—फरजण	,,	रांका	,,	मोहन	,,	शान्तिनाथ
२०—भीमाली	,,	चोरलिया	,,	देसल	,,	,,
२१—आलोट	,,	चरड	,,	भासल	,,	,,
२२—डामरेल	,,	दूघड	,,	नोंघण	,,	महावीर
२३—वुराटी	,,	तप्ताभट्ट	,,	खेमो	,,	,,
२४—मथुरा	,,	बाप्पनाग	,,	हाप्पो	,,	,,
२५—सोजाली	,,	प्राग्वट	,,	वेदो	,,	,,
२६—दादोली	,,	अग्रवाल	,,	शंकर	,,	पार्श्वनाथ

सूरीश्वरजी के २६ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य—

१—कोरंटपुर	के श्रीमाल नंदा ने	शत्रुंजय का संघ निकाला	
२—चन्द्रावती	के प्राग्वट भोलाने	,,	,,
३—डामरेल	के श्रेष्टि गौ० नारायण ने	,,	,,
४—लोहाकोट	के मंत्री ठाकुरसी ने	सम्मेत शिखर का संघ	
५—मथुरा	के बप्पनाग टीलाने	शत्रुंजय का संघ	
६—आघट	के सुचंति लाखणने	उपकेशपुर का संघ	
७—उज्जैन	के श्री श्रीमाल मालाने	शत्रुंजय का संघ	
८—मद्रेसर	के श्रीमाल अजसी ने	,,	,,
९—उपकेशपुर	के भद्र नरसीने	,,	,,
१०—शाकम्भरी	के पल्लीवाल कुम्भाने	,,	,,
११—मालपुर	के पल्लीवाल हंसाने	,,	,,
१२—सोपार	के लघुश्रेष्टि थेराने	,,	,,
१३—चर्पट	के चरड दुर्गा की पत्नी ने तलाव खुदाया		
१४—शालपुर	के दूघड अज्ज की विधवापुत्री राजीने तलाव		
१५—क्षत्रीपुर	के चोरडिया रणदेव युद्ध में काम आय.... सती		

१६—देवपट्टन के भूरि सोम की स्त्री सती हुई

१७—नेमापुर के आदित्य मोढा की स्त्री सती हुई

१८—जावलीपुर के श्रेष्ठि० धर्मसी की विधवा पुत्री पेमी ने नजदीक में एक तालाब बनाया

१९—वि० सं० ४४५ में एक भयंकर दुकाल पड़ा जिसमें उपकेशपुर के महाजन संघ ने अपने नगर से करीब तीन करोड़ का चन्दा किया और शेष अन्य स्थानों से सात करोड़ का चन्दा करके मनुष्यों को अन्न और पशुओं को घास पानी वगैरह की सहायता कर उस जन संहारक दुकाल को सुकाल बना दिया यही कारण है कि साधारण जनता महाजनों को माँ बाप कह कर पुकार मानती है और महाजनों की इसी उदारता के कारण राजा महाराजा भी उनको मान और सम्मान दिया करते थे। इसी प्रकार और भी कई छोटे बड़े दुकाल पड़ा जिसको एक एक नाम के महाजनों ने ही देश निकाला देकर भगा दिया था।

अठारहवें पे पट विराजे, सिद्धसूरि अतिशय धारी थे
शुद्ध संयमी और कठिन तपस्वी, आप बड़े उपकारी थे
प्रचारक थे अहिंसा के, शिष्यों की संख्या अपार थी
सिद्ध हस्त थे अपने कामों में, अतुल सफलता पाई थी

इति भगवान् पार्श्वनाथ के १८ वें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुए।

३६ आचार्य श्री ककसूरि (अष्टम)

धन्यः कक्कमुनीश्वरो बुधवरो यो दीक्षितः शैशवे
निष्ठां प्राप्य च ब्रह्मचर्य चरणे वाक् सिद्धिविद्योतितः ।
लब्धीनां परमास्पदं समुदितः श्रीतप्तभट्टान्वये
अन्यान् जैनमतावलम्बितजनानस्थापयच्छ्रेयसे ॥
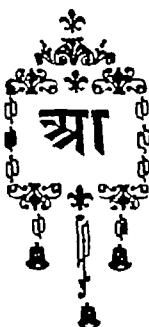
आचार्य श्री ककसूरिजी महाराज बड़े ही क्रान्तिकारी एवं जबरदस्त प्रचारक आचार्य हुए। आपके मौलिक गुणों का वर्णन करने में साधारण व्यक्ति तो क्या, पर बृहस्पति भी असमर्थ है भारत भर में चारों ओर आपका ही लोहा थी। जैसे आपका विहार क्षेत्र विशाल था वैसे आपकी आज्ञावर्ती श्रमण मण्डल भी विशाल था। आपका समय विकट परीक्षा का समय था। भयकर दुष्काल के क्रूर आक्रमण ने जनता में त्राहि २ मचादी थी। धर्म में चारों ओर शिथिलता दृष्टि गोचर होने लगी थी पर, आचार्य श्रीककसूरिजी महाराज की विद्यमानता में वह अपना ज्यादा प्रभाव न डाल सकी। आपके जीवन को पट्टावली निर्मोताओं ने खूब विस्तार पूर्वक लिखा है। आपके जीवन वृत्त के साथ ही साथ उस समय के जैनियों की गौरव गाथा का भी स्थान २ पर उल्लेख किया है। पाठकों की जानकारी के लिये यहा आपश्री का संक्षिप्त जीवन लिख दिया जाता है।

अर्बुदाचल की शीतल छाया में पद्मावती नाम की सुरम्य नगरी थी। उस समय पद्मावती एक समृद्धिशाली व्यापारिक केन्द्र स्थान को प्राप्त किये हुए सर्व प्रकार से उन्नत थी। आचार्यश्री स्वयप्रभसूरि के उपदेश से प्राग्वट वंश की उत्पत्ति इसी पद्मावती नगरी से हुई थी। पद्मावती उस समय चंद्रावती के अधिकार में थी और चंद्रावती के सूर्यवंशीय राजा कल्हण देव की ओर से एक भीम नामक वीर क्षत्री पद्मावती में प्रबन्ध कर्ता हाकिम के पद के तौर पर रहते थे। राव भीम परम्परा से जैन धर्म के उपासक, श्रद्धालु श्रावक थे।

पद्मावती नगरी में तप्तभट्ट गौत्रीय शा० सलखण नाम के एक प्रतिष्ठित और लोकमान्य व्यापारी रहते थे। आपकी पत्नी का नाम सरजू था। सेठजी पर लक्ष्मी की पूर्ण कृपा होने पर आपके पुत्र भी नहीं था। सेठानी सरजू पुत्र के विना महान् दुखी थी। वह अपने जीवन को पुत्र के अभाव में शून्य समझती थी। संसार के सकल सुखोपभोग के साधन उसे आनद दायक प्रतीत नहीं होते थे। वास्तव में नीतिका यह कथन 'अपुत्रस्य गृहं शून्य' युक्ति युक्त ज्ञात हो रहा था। सेठानी हमेशा उदास रहती थी। अत कालान्तर से सेठजी ने सेठानी को उदास रहने का कारण पूछा। सेठजी के बहुत आग्रह करने से सेठानी ने अपने पतिदेव को सच्ची हकीकत कह सुनाई। सेठानी की दुःखद स्थिति से सेठजी अज्ञात थे अत कुछ हँस कर कहा—क्या आपने नहीं सुना है कि—देवताओं के पुत्र नहीं होने से वे परम सुखी रहते हैं यही नहीं मैंने तो यहां तक सुना है कि—महाविदेह क्षेत्र में कोई मनुष्य किसी का नुक्सान कर देता है तो नुक्सान करने वाले को जिसका नुक्सान हुआ वह, यह गाली देता है कि रे शठ ! तुम भारत क्षेत्र में उत्पन्न होकर बहुत परिवार वाला और बहुत धनवान होना। महाविदेह क्षेत्र वाले तो आपस में एक दूसरे का अहित इस तरह इच्छते हैं। अर्थात्

उनके आपस में इसी तरह की गाली देने का तात्पर्य यही कि मनुष्य बहुत धनी किंवा विपुल परिवार वाला होने पर कुछ भी धर्माराधन नहीं कर सकेगा अतः धर्म मय जीवन के अभाव में वह अपने आप चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। अब महाविदेह क्षेत्रवालों की दृष्टि से भी भरत क्षेत्र में बहुत पुत्र वाला होना भाग्यरूप है तो पुत्र के अभाव में अपने को तो परम आनंद मनाना चाहिये की जिससे हम धर्म ध्यान करने में एक दम स्वतंत्र हैं सेठानी जी! आपका इस तरह उदास रहना सर्वथा अस्वाभाविक है अपने को तो अनवरत भक्तिपूर्वक धर्म ध्यान में संलग्न होना चाहिये। पतिदेव के इस प्रकार हृदय विदारक एवं साक्षात् उपेक्षा वृत्ति प्रदर्शक वचनों को सुनकर सेठानीजी के दुःख में और भी वृद्धि हुई। सेठजी ने कई उपायों से समझाने का प्रयत्न किया किन्तु सेठानीजी को किसी भी तरह से संतोष नहीं हुआ इस पर सेठजी के अनेकानेक उपाय निष्फल ही होते रहे। एक दिन विवश हो अष्टम तप कर सेठानीजी ने अपनी कुल देवी चक्रेश्वरी का ध्यान किया। तीसरे दिन देवी ने स्वप्न में सेठानी को कहा—तुम्हारे पुत्र तो होगा पर वह १५ वर्ष की वय में दीक्षित हो जायगा। तुम उसे किसी तरह से रोकना नहीं इतना कह कर देवी अदृश्य हो गई। अब सेठानी की आँखें खुल गई। वह अपने पति के पास आकर स्वप्न का साद्यन्त वृत्तान्त कह सुनाये। देवी कथित वचनों को श्रवण कर प्रसन्न हो सेठ जी बोले—सेठानीजी! आप बड़े भाग्यशाली हो की देवकी आप पर पूरी कृपा दृष्टि है। सेठानी ने कहा—पूज्यवर! देवी की कृपा तो है पर पुत्र होकर १५ वर्ष की अल्प वय में ही दीक्षा लेलेगा तब मैं क्या करूंगी?

सेठजी—तुम्हारी कुक्षि से पैदा हुआ पुत्र दीक्षित होकर अपनी आत्मा के साथ अन्य अनेक आत्माओं को तारे यह तो आपके लिये परमानन्द गौरव की बात है। इससे तो उसकी आत्मा का भी उद्धार होगा और कुल का नाम भी समुज्वल होगा। यदि इतने पर भी पुत्र पर ज्यादा प्रेम हो तो तुम भी साथ में दीक्षा ले लेना। इससे दोनों की ही आत्मा का कल्याण हो जायगा।

सेठानी—मैं दीक्षा लूंगी तब आप क्या करेंगे?

सेठजी—मैं भी दीक्षा ले लूंगा।

सेठानीजी—फिर घर को कौन सम्भालेगा?

सेठजी—घर है किसका?

सेठानीजी—क्या आप नहीं जानते कि घर अपना है।

सेठजी—अरे अपना तो शरीर ही नहीं है फिर घर कैसे अपना हो सकता है? इस तरह सेठ, सेठानी के परस्पर विनोद की बातें चलती रहीं। कालान्तर से सेठानी ने गर्भ धारण किया और गर्भ के प्रभाव से सेठानी को अच्छे २ दोहले (गर्भ के जीव के प्रभाव माता के हृदय के मनोरथ) उत्पन्न होने लगे। पूजा, प्रभावना, स्वामी वात्सल्य जिन दर्शन, सुपात्रदान जिन महोत्सव अष्टाह्निका उत्सव इत्यादि धर्म गर्भ के प्रभाव से उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहे। सेठजी भी पुत्र जन्म की भावी खुशी से सर्व मनोरथ सत्वर पूर्ण करते थे। सेठजी ऐसे भी उदार चित्त के व्यक्ति थे और लक्ष्मी की भी कमी नहीं थी अतः धार्मिक कार्यों में द्रव्य को व्यय कर पुण्य सम्पादन करना उन्हें रुचिकर प्रतीत होता था।

सेठानी ने, पूर्णमास होने के पश्चात् पुत्र रत्न को जन्म दिया। अनेक महोत्सवों के करते हुए पुत्र का नाम क्षेम रख दिया। जब क्षेमा ७ वर्ष का हुआ तब ही से उसकी माता सेठानी, गुरुणीजी के उप-

भय में प्रतिक्रमण करने को जाया करती थी। खेमा भी साथ जाता था एक दिन खेमा दरवाजे पर बैठा था इधर महिला समुदायको गुरुणीजी अत्यन्त उच्च स्वर से प्रतिक्रमण करवा रही थी। साध्वीजी का उच्चारण स्पष्ट और मधुर था। साध्वी के प्रत्येक शब्द खेमा को बहुत ही कर्ण प्रिय लगे। ज्यों ज्यों साध्वी जी प्रतिक्रमण करवाती गई त्यों त्यों वह ७ वर्ष की अल्पवय में एक वक्त के श्रवण मात्र से खेमा कण्ठस्थ कर लेता गया। बाद में वह भी अपनी माता के साथ में प्रतिक्रमण के समाप्त होने पर पुनः अपने घर लौट आया। दूसरे दिन प्रतिक्रमण के समय कुछ २ वर्षा प्रारम्भ होगई थी फिर भी नित्य नियम में निष्ठ सेठानी ने अपने पुत्र खेमा को कहा-खेमा ! प्रतिक्रमण करने उपाश्रय में चलना है ? खेमा ने कहा मां इस वर्षा में उपाश्रय में जाकर क्या करोगी ? लो मैं यहां पर ही आपको प्रतिक्रमण करवा देता हूँ। माता ने खेमा की बाल चपलता को देख कर उसकी बात को यों ही हसी में उड़ादी और हसते २ कहने लगी जा जल्दी गुरणीजी को सूचना देआ कि आज वर्षा आ रही है मा नहीं आवेगी क्यों कि गुरुणीजी मेरी राह देखते होंगे। पर वर्षा के कारण मेरे प्रतिक्रमण तो आज यों ही रह जायगा। खेमा ने फिर से कहा मां ! आप निश्चिन्त रहो मैं सत्य कहता हूँ कि आपको यहा पर ही निर्विघ्न प्रतिक्रमण क्रिया सहित करवा दूगा। माता को खेमा की बोली पर व स्वाभाविक वाचालता पर कुछ हसी तो आगई पर पुत्र के आग्रह से वह सामायिक लेकर बैठ गई। सातवर्ष के बच्चे खेमा ने गुरुणीजी के मुख से जैसा प्रतिक्रमण सुना था वैसा का वैसा माता को करवा दिया। माता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने बड़ी प्रसन्नता से पूछा—खेमा ! तूँ ने यह प्रतिक्रमण कहा कब व किससे सीखा ? खेमाने कहा—मां ! कल मैं तेरे साथ उपाश्रय में गया था और गुरुणी जी ने प्रतिक्रमण करवाया बस मैं ने भी याद कर लिया। माता सरजू भद्रिक परिमाणी वाचाल बालक पर तुष्ट होती हुई देवी के वचनों का स्मरण करने लगी की खेमा कहीं दीक्षा न ले ले ? इसके लिये मुझे पहले से ही ठीक प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

सेठानी दूसरे दिन वंदन करने उपाश्रय में गई। गुरुणीजी ने उसे उपालम्भ दिया—सरजू ! हमने तेरी कितनी राह देखी। कल तू ने प्रतिक्रमण नहीं किया ? सरजू ने कहा—गुरुणीजी ! कल वर्षा आरही थी अत मैंने घर पर ही प्रतिक्रमण कर लिया। गुरुणी जी—परन्तु घर पर प्रतिक्रमण तुमको करवाया किसने। सेठानी—खेमा ने। गुरुणीजी—क्या कहते हो ? खेमा जैसे नादान बालक को प्रतिक्रमण आता है ? सेठानी—हां आता है। कल ही आपश्री के मुखारविंद से सुना था। गुरुणीजी—वह कैसे ! सेठानी—आपने कल हम सब को उच्चस्वर में बोलते हुए प्रतिक्रमण करवाया था बस खेमा तो आपश्री के मुख से सुनता २ ही कण्ठस्थ करता गया। साध्वी सरजू की बात को सुन कर आश्चर्य विभोर हो गई। बस वहा से जल्दी ही उपाध्यायश्री राजकुशलजी म के उपाश्रय में आकर साध्वी ने अथ से इति तक खेमा का सारा वृत्तान्त एवं बुद्धिकुशलता उपाध्यायजी को कह सुनायी।

साध्वीजी के जाने के बाद शाह सलखण, अपने पुत्र खेमा को लेकर उपाध्यायजी को वन्दन करने के लिये उपाश्रयमें आये। वंदन करने के पश्चात् उपाध्यायजी ने पूछा—खेमा ! तुझे प्रतिक्रमण आता है ? खेमा के बोलने के पहले ही सलखण बोल उठे—नहीं गुरुमहाराज, अभी तक खेमा को प्रतिक्रमण नहीं करवाया। उपाध्यायजी ने कहा—नहीं मैं तो खेमा को पूछता हूँ। खेमा ने कहा—हां गुरुदेव आपकी कृपा से मुझे प्रतिक्रमण आता है। गुरुजी—क्या कल तू ने तेरी मां को प्रतिक्रमण करवाया ? खेमा—जी हां।

उत्पलदेव सुन कर मुग्ध होगये। उनको मालूम नहीं था कि खेमा केवल गुरुजी के शब्दोच्चारण मात्र को एक बार सुनने मात्र से ही प्रतिक्रमण सीख चुका है।

गुरु—उत्पलदेव ! यदि खेमा दीक्षा अङ्गीकार करेगा तो जैनधर्म का बहुत ही उद्योत करेगा।

उत्पलदेव गुरुदेव ! खेमा को आपके चरणों में अर्पण करने का निश्चय इसके जन्म के पहले ही किया जा चुका है। खेमा हमारा नहीं पर आपका है। उत्पलदेव के इन वचनों को सुन कर सूरिजी को बहुत आनंद हुआ।

उत्पलदेव घर पर आया और खेमा के लिये अपनी स्त्री को सर्व बातें कही। सेठानी ने कहा—पतिदेव ! खेमा का विवाह जल्दी ही कर देना चाहिये। सेठानी की इच्छा खेमा को मोह पाश में जकड़ कर घर में रखने की थी। उसने भविष्य का विचार किया कि यदि खेमा शादी के बंधन में बंध गया तो सांसारिक भोग विलासों से मुक्त होना उसके लिये कठिन सा होजायगा अतः जितना जल्दी विवाह होजाने उतना ही वह अच्छा समझती थी।

सेठजी—क्या इस प्रकार के विचारों से देवी के वचनों को असत्य करना चाहती हो ? मैंने तो गुरु महाराज को भी कह दिया कि—खेमा को आपश्री के चरणों में अर्पण करूंगा।

सेठानी—आपतो मेरे हृदय की महत्वाकांक्षाओं को मिट्टी में मिलाना चाहते पर क्षेम दीक्षा के लिये तैय्यार होवे तब न ?

सेठजी—प्रिये ! दीक्षा, कोई जबर्दस्ती का सौदा नहीं है। यह तो आत्मिक-आन्तरिक भावनाओं का परिणाम है। मैंने तो देवी के वचनों पर विश्वास करके ही गुरु महाराज को कहा था। हां, शादी के लिये क्षेमा १५ वर्ष का हो जायगा फिर इसकी शादी कर दूंगा।

सेठानी—क्या ११ वर्ष की वय में विवाह नहीं किया जा सकता है ?

सेठजी—क्षेमा को पूछ लिया जायगा। यदि उसकी इच्छा विवाह करने की होगी तो ११ वर्ष की अवस्था में ही विवाह कर दिया जायगा अभी तो क्षेमा सात वर्ष का है। अतः इस विषय के विचारों में अभी से उलझने से क्या लाभ ?

इस प्रकार दम्पति में परस्पर वार्तालाप हो रहा था। क्षेमा भी इधर उधर खेलता हुआ सुन रहा था पर वह कुछ भी नहीं बोला। क्षेमा की बाल चेष्टाएं भावि की सूचना दे रही थी।

वि. सं. ६२९ में एक साधारण दुष्काल पड़ा। कई लोगों के पास धान एवं घास का संग्रह था, अतः गरीब लोगों के निर्वाह के लिये धनाढ्य व्यक्तियों ने स्थान २ पर दानशालायें खोल दी थी। इससे उस दुष्काल का जन समाज पर इतना बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। नये वर्ष की आशा पर लोगों ने जैसे तैसे उस दुष्काल के समय को व्यतीत किया किन्तु दुर्भाग्यवशात् ६३१ में तो सार्वभौमिक भयंकर पड़ा। जनता में त्राहि त्राहि मच गई। अन्न, जल एवं घास के अभाव में मनुष्य एवं पशुओं को तड़फ तड़फ कर प्राण छोड़ते हुए देख क्षेमा का दिल दया से उमड़ने लगा। उसने अपने पिता के पास आकर कहा—पूज्य पिताजी अपना यह द्रव्य यदि इस विकट परिस्थिति में भी जन समाज के लिये उपयोगी न हो तो इस द्रव्य का सद्भाव एवं अभाव दोनों समान ही हैं। अपना तो अहिंसा परमोधर्मः सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त है फिर ऐसा समय देशवासी भाइयों की सेवा में काम न आवे तो उस द्रव्य की सफलता ही क्या है ? पिताजी ! देवी की

यही आन्तरिक इच्छा है कि इस भयंकर समय में उदारता से स्वोपार्जित द्रव्य का उपयोग करें । पुत्र के ऐसे वचनों को सुन कर सलखण को भी अलौकिक हर्ष का अनुभव हुआ कारण वे प्रारम्भ से ही सहृदयी, दानी एवं दयालु पुरुष थे । पुत्र के कथनानुसार सलखण ने अपने योग्य मनुष्यों के द्वारा स्थान२ पर अन्न एव घास का ऐसा प्रबध करवा दिया कि—विना किसी भेद भाव के खुल्ले दिल से जन समाज को अन्न एवं पशुओं के लिये घास दिया जाने लगा । जहा जिस भाव मिले वहां से—उस भाव अन्न एवं घास मंगवा कर देश वासी भाइयों के प्राण बचाना उन्होंने अपना कर्तव्य बना लिया । यह कार्य कोई साधारण कार्य नहीं था । इसमें पुष्कल द्रव्य का व्यय, उत्कृष्ट उदारता, और कुशल कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता थी । शा० सलखण के पास वो सब ही साधन विद्यमान थे फिर वे पुन्योपार्जन करने में कब चूकने वाले थे ? साथ ही खेमा जैसे दयावान पुत्र की जबर्दस्त प्रेरणा—फिर तो कहना ही क्या ? सलखण ने लाखों नहीं पर करोड़ों रुपयों को व्यय करके महाभयकर, दारुण, जन सहारक दुष्काल को सुकाल बना दिया । मनुष्य एवं पशु भी अन्त'करण पूर्वक सलखण एव खेमा को आशीर्वाद देने लगे । राजा एव प्रजा, सलखण और खेमा की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगी और उनको नगर सेठादि कई उपाधियाँ भी प्रदान की ।

कहावत है—'समय चला जाता है पर बात रह जाती है ।' लक्ष्मी का स्वभाव चचल है, वह किसी के साथ न चली है और न चलने वाली ही है जिन महानुभावों ने साधनों के होते हुए इस प्रकार देश सेवा कर अमर यश कमाया है उन्हीं की धवलकीर्ति कोटि कल्प लौं अमर बन जाती है । इन्हीं महा-पुरुषों में ये हमारे चरित्र नायक शा सलखण और खेमा एक हैं । इनका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं । इस महाजनसघ में एक सलखण ही क्या पर ऐसे अनेकों नर रत्न होगये हैं कि जिन्होंने समय२ पर इस प्रकार देश सेवा करने का अमर यश सम्पादन किया है । इन्हीं कारणों से प्रेरित हो तत्तद्देशीय राजा, महा-राजा एव नागरिकों ने ऐसे नरपुङ्गवों को नगरसेठ, पच चोवटिया एवं टीकायत आदि पद प्रदान किये । ये सब पद तो उनके साधारण जीवन के दैनिक कृत्यों के ही सूचक थे पर इन सब कार्यों से भी कई गुने महत्वपूर्ण कार्य उनके द्वारा किये गये कि उनके द्वारा प्राप्त वे पद आज भी उनकी सतान के लिये यथावत् विद्यमान हैं ।

खेमा ज्यों ज्यों बड़ा होता जाता था । त्यों२ सेठानी सरजू के हृदय का अधैर्य बढ़ता जाता था । कभी २ मोह के वश अधैर्य हो वह सेठजी को कहदेती कि—क्या खेमा की शादी नहीं करनी है ? सेठानी के इन वचनों का उत्तर सेठजी इन्हीं शब्दों में देते कि खेमा की शादी १५ वर्ष की वय के पश्चात् की जायगी । सेठानीजी ! क्यादेवी के कथन को आप भूल गये हैं ! देवी के वचनों का स्मरण करते ही सेठानी काप उठती । उसके हृदय में नाना प्रकार की तर्क वितर्कणाए प्रादुर्भूत होती । आशा निराशा का भयंकर द्वन्द्व मच जाता । उसके हृदय क्षेत्र में दो अलौकिक शक्तियों का तुमुल सग्राम प्रारम्भ होता । वह अपने विचारों को स्थिर नहीं कर पाती । फिर भी दवे हुए शब्दों में कहती—भले ही खेमा का विवाह सौलह वर्ष की वय में करना पर खेमा अब बड़ा हो गया है अत वाग्दान- सम्बन्ध (सगाई) तो कर लीजिये । इससे पुत्र बधु के मुह देख नव मास के थाके ले को दूर करूं । सेठानी की इन सब बातों को सुनते हुए भी वे इन मोह पोषक बातों से सर्वथा उदासीन थे । उनको देवी कथित वचन सदा स्मृति में ताजे ही रहते थे । वे स्वय ससार से निर्लेप एव विरक्त थे । देवी के वचनों पर अटल विश्वासी थे ।

एक समय धर्मप्रचार करते हुए धर्मप्राण आचार्य श्रीसिद्धसूरि के चरण कमल, चन्द्रावती की ओर हुए। इस बात की खबर मिलते ही जनता के हर्ष का पार नहीं रहा। शा॰ धनदेव ने सवालक्ष द्रव्य व्ययकर सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने मङ्गलाचरण के पश्चात् धर्म पर वैराग्यगर्भित देशना दी। जनता पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार सूरिजी का व्याख्यान क्रम प्रारम्भ ही था। इधर खेमा को भी व्यापार वर्ष पूर्ण होने वाला ही था अतः पठानी ने खेमा को सूरिजी के यहाँ आ जाने की सख्त मनाई कर दी थी। पर खेमा को आचार्यदेव के पास आना, जाना, व्याख्यान श्रवण करना बहुत ही रुचिकर प्रतीत होता था अतः बार बार के मना करने पर भी उसने अपने आने जाने का क्रम बंद नहीं किया। सूरिजी ने भी खेमा की भाग्य रेखा को देखकर यह अनुमान कर लिया था कि—खेमा बड़ा ही होनहार, भाग्यशाली एवं दीक्षा लेने पर शासन का उद्योत करने वाला होगा।

एक समय सूरीश्वरजी ने वैराग्य की धुन में संसार परिभ्रमण एवं नारकीय दुःखों का वर्णन करते हुए फरमाया कि—जिन लोगों ने सांसारिक पौद्गलिक सुखों में सुख माना है; वे लोग स्वल्पकालीन सुखों में मोहित हो दीर्घकालीन दुःखों को खरीद कर लेते हैं। महानुभावों! मनुष्य एवं तिर्यञ्च के दुःखों को तो हम प्रत्यक्ष में देख ही रहे हैं पर इससे भी अनंत गुणे दुःख नरक में प्राप्त हुए जीव को सहन करने पड़ते हैं। उन दुःखों के वर्णन का साक्षात् चित्र तो केवल ज्ञानी भगवान् किंवा अतिशय ज्ञानवाली आत्मा ही खेंच सकते हैं। हां उनके कथनानुसार अल्पज्ञ व्यक्ति भी स्वमत्यनुसार परिस्थित रूप में उन भावों को कथन कर सकते हैं परन्तु वे साक्षात् ज्ञानियों के समान उनका वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ ही हैं। देखिये अनुभवी पुरुषों ने अपने उद्गार किस प्रकार व्यक्त किये हैं—

जरामरणकन्तारे चाउरन्ते भयागरे। मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥१॥
जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणंतगुणे तहिं। नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥२॥
जहा इमं इहं सीयं एत्तोऽणन्तगुणे तहिं। नरएसु वेयणा सीया अस्साया वेइया मए ॥३॥
कन्दन्तो कंदुकुम्भीसु उड्ढपाओ अहोसिरो। हुयासणे जलंतम्मि पक्कपुव्वो अणन्तसो ॥४॥
महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए। कलम्बवालुयाए य दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥५॥
रसन्तो कंदुकुम्भीसु उड्ढं बद्धो अबंधवो। करवत्तकरकयाईहिं छिन्नपुव्वो अणंतसो ॥६॥
अइतिक्खकंटगाइण्णे तुंगे सिंबलिपायवे। खेवियं पासबद्धेणं कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं ॥७॥
महाजन्तेसु उच्छू वा आरसन्तो सुभेरवं। पीडिओमि सकम्मेहिं पावकम्मो अणंतसो ॥८॥
कूवंतो कोलसुणएहिं सामेहिं सबलेहि य। फाडिओ फालिओ छिन्नो विप्फुरन्तो अणेगसो ॥९॥
असीहिं अयसिवण्णाहिं भल्लीहिं पट्टिसेहि य। छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य ओइण्णो पावकम्मुणा ॥१०॥
अवसो लोहरहे जुत्तो, जलन्ते समिलाजुए। चोइओ तुत्तजोत्तेहिं रोज्झो वा जह पाडिओ ॥११॥
हुयासणे जलंतम्मि चियासु महिसो विव। दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥१२॥
बला संडासतुण्डेहिं लोहतुण्डेहिं पक्खिहिं। विलुत्तो विलवंतोऽहं ढंकगिद्धेहिंऽणन्तसो ॥१३॥

तण्हा किलन्तो धावन्तो पत्तोवेयरणीनइं । जलं पाहिंत्तिचिन्तन्तो खुरधाराहिं विवाइओ ॥१४॥
उण्हाभित्तचो संपत्तो असिपत्तं महावण, असिपत्तेहिं पडन्तेहिं छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥१५॥
मुग्गरेहिं मुसतीहिं सूलेहिं मुसलेहिय । गयासंभग्ग गत्तेहिं पत्तं दुक्खं अणतसो ॥१६॥
खुरेहिं तिक्खधारेहिं, छूरियाहिं कप्पणीहिय । कप्पिओ फालिओ छिन्नो उक्कित्तो यअणेगसो ॥१७॥
पासेहिं कूडजालेहिं मिओवा अवसो अहं । वाहिओ बद्धरुद्धोवा, बहुसो चेव विवाइओ ॥१८॥
गलेहिं मगर जालेहिं, मच्छोवा अवसो अहं । उल्लिओ फालिओ गहिओ मारिओयअणंतसो ॥१९॥
वीदंसएहिं जालेहिं लेप्पाहिं सउणोविव । गहिओ लग्गोबद्धोय मारिओय अणंतसो ॥१०॥
कुहाडफरसुमाइहिं वढ्ढईहिं डमो विव । कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओय अणंतसो ॥२१॥

उक्त रोमाञ्चकारी नारकीय वर्णन को श्रवण कर उपस्थित जन समाज के रोंगटे खडे हो गये । एक-दम सहसा सब के सब कुछ क्षणों के लिये वैराग्य के प्रवाह में प्रवाहित हो गये । आचार्यश्री ने इसका रौद्र एवं विभत्स रस परिपूर्ण सजीवचित्र उपस्थित श्रोतावर्ग के वक्षस्थलपर अंकित करते हुआ फरमाया कि—महानुभावो ! जब हम दीक्षा का उपदेश देते हैं तब दीक्षा के बावीसपरिषहों की दुष्करता को स्मरण करके साधारण जन समाज भयभीत हो जाता है किन्तु, विचारने की बात है कि—नारकीय दु खों के सामने परिषह जन्य यातनाएं नगण्य सी है । बन्धुओं ! हमने अनंतबार ऐसी २ दारुण तकलीफें सहन की है तो फिर चारित्र में नरक से ज्यादा क्या कष्ट हैं ? यदि सम्यग्दृष्टि पूर्वक विचार किया जाय तो दीक्षा के जैसा निवृत्ति मय सुख तीनों लोक में कहीं पर भी नहीं है । शास्त्रकार फरमाते हैं कि—मनुष्य की उत्कृष्ट ऋद्धि से देवताओं के सुख अनत गुणे हैं तथापि—

१ जितना सुख १५ दिन की दीक्षा वाले को है उतना व्यतर देवों को नहीं ।

२	,,	,, एक मास	,,	,,	,, ,,	नागादि नवनिकायों के देवों को नहीं			
३	,,	,, दो	,,	,,	,,	,, ,,	असुर कुमार देवों को नहीं ।			
४	,,	,, तीन	,,	,,	,,	,, ,,	ज्योतिषी	,,	,,	,,
५	,,	,, चार	,,	,,	,,	,, ,,	पहले दूसरे देवलोक के देवों को नहीं ।			
६	,,	,, पांच	,,	,,	,,	,, ,,	तीसरे चौथे देव लोक के देवों को नहीं ।			
७	,,	,, छ	,,	,,	,,	,, ,,	पांचवे, छट्टे	,,	,,	,,
८	,,	,, सात	,,	,,	,,	,, ,,	सातवें, आठवे	,,	,,	,,
९	,,	,, आठ	,,	,,	,,	,, ,,	नवमें, दसमें	,,	,,	,,
१०	,,	,, नव	,,	,,	,,	,, ,,	ग्यारहमें, बारहमें	,,	,,	,,
११	,,	,, दस	,,	,,	,,	,, ,,	नवग्रेवेयक	,,	,,	,,
१२	,,	,, ग्यारह	,,	,,	,,	,, ,,	चार अनुत्तरविमान के		,,	,,
१३	,,	,, बारह	,,	,,	,,	,, ,,	सर्वार्थ सिद्धविमानके देवोंको		,,	,,

पौद्गलीक सुखों में देवता जैसा और उसमें भी अनुत्तर विमान निवासी देवों जैसा सुख तो अन्य है ही नहीं । पर सयमाराम में विचरण करने वाले मुनियों के सामने वह सुख भी शास्त्रकारों ने नगण्य सा

बतलाया है। अतः ऐहिक, पारलौकिक, आत्मिक सुखों के अभिलाषियों को सुख प्राप्त करने के लिये निर्मल चारित्र की आराधना करना चाहिये। यह तो आत्मिक सुखों की बात रही पर बाह्य भावों से दीक्षा ग्रहण करने वाले जीव भी संसारी जीवों की अपेक्षा हजार गुने सुखी हैं। देखिये—

१ संसार में किसी के एक, दो या दश, बीस पुत्र होते हैं। इतने पर भी गृहस्थी को उन पुत्रों के आश्रय ही सुख हो कारण, गार्हस्थ्य सम्बन्धी चिन्ताएं एवं पुत्र का कपूत पना उसे सदा ही चिन्तातुर बना रहता है पर साधु अवस्था में सैकड़ों पुत्र आमोद्यम प्राप्त हो जाते हैं, वे भी विनयी और आज्ञा पालक।

२ संसार में तो चार शाक किंवा किसी दिन मिष्टान्न भोजन की प्राप्ति हो जाती है पर मुनिवृत्ति में तो सकड़ों घरों की गोचरी और सैकड़ों ही विविध पदार्थ प्राप्त होते हैं। चाहे हुए आहार को ग्रहण करे।

३ संसार में रहते हुए संसारी जीव अपना जीवन एकही ग्राम किंवा एक घर में समाप्त कर देते हैं किन्तु साधुत्व जीवन में सैकड़ों ग्राम नगर में पर्यटन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। नवीन २ मनुष्यों के एवं नवीन २ नगरों के संसर्ग में अनेक नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं।

४ संसारावस्था में रहते हुए तो कोई किसी का हुक्म माने या न माने पर चारित्र वृत्ति की आराधना करते हुए तो हजारों, लाखों भक्त लोग खमा—खमा करके स्वयं मुनियों के आदेश को शिरोधार्य करते हैं।

५ संसार में तो राजा आदि हर एक व्यक्ति की गुलामी में पराधीन रहना पड़ता है पर संयमित जीवन में तो राजाओं के भी गुरु कहलाते हुए निवृत्ति मार्ग में सदा स्वतंत्र रहते हैं।

६ संसार में धनाभाव के कारण उसकी प्राप्ति एवं रक्षा के लिये सदा चिंतन करना पड़ता है, कहा है—"पुष्णाति रंय नश्यापि दयता" तब इसके विपरीत दीक्षा में निश्चिन्त एवं संतोष पूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

७ संसार में व्यय होता है—कुटुम्बादि का पालन पोषण करके कर्मोपार्जन करने का तब, दीक्षा में हजारों जीवों का आत्म कल्याण करने के साथ अपनी आत्मा का उद्धार करने का प्रमुख लक्ष्य होता है।

बन्धुओ! अब आप स्वयं समझलें कि सुख संसार में है या दीक्षा में। इस तरह सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा विस्तार से उपदेश दिया। इसका असर उपस्थित जनता पर तो हुआ ही किन्तु देमा पर इसका विचित्र ही प्रभाव पड़ा वह निद्रा में से जागृत होते हुए व्यक्ति के समान एक दम सचेतन होगया। व्याख्यान समाप्त होते ही देमा ने घर आकर अपने माता पिताओं को कहा—कृपा कर मुझे आज्ञा प्रदान करें कि मैं सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण करूं। पुत्र के वैराग्य मय शब्दों को सुनकर माता मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ी जब जल और वायु के उपचार से जब सचेतन किया तब रती के कहे हुए वचन रट २ कर उसके दुःख के वेग को बढ़ाने लगे। उसने देमा को समझाने का बहुत ही प्रयत्न किया किन्तु प्रयत्न सब निष्फल रहा। देमा तो आज्ञा के प्रश्न को और भी वेग पूर्वक बढ़ाने लगा। माता देवी के वचनों के द्वारा आजसी थी किन्तु माहसी कर्मी रट २ कर रहे, देमा को संसार में रखवाने के लिए बाधित करने लगा।

इधर से सेठजी भी वहां आगये। अपनी स्त्री को पुत्र के भावी वियोग के कारण विलाप करते हुए देख उन्होंने भी देमा को बहुत समझाया वे कहने लगे—बेटा! अभी तो तेरा विवाह करना है। अभी से दीक्षा लेने से कुछ लाभ नहीं है। फिर कुछ भोगी ही कर दीक्षा लेना जो, तरे साथ ही साथ हम भी अपना

आत्म कल्याण कर सकेंगे। पर जिसको वैराग्य का दृढ़ रंग लग गया उसको ऐसी बातें कैसे रुचिकर हों ? खेमा की भी यही हालत हुई। उसने सेठजी के एक वचन को भी स्वीकार नहीं किया अनन्योपाय, सेठ जी ने अपनी पत्नी से कहा—प्रिये। क्या देवी के कहे हुए वचनों को भूल गई हो ? सेठानी ने कहा—नहीं। सेठ ने कहा फिर रोने की क्या बात है ? यदि पुत्र मोह छूटता नहीं है तो तुम भी पुत्र के साथ दीक्षित होकर आत्मकल्याण करो। मैं भी दीक्षा के लिए तैय्यार ही हूँ। बस बातों ही बातों में सेठजी व सेठानीजी पुत्र के साथ दीक्षा लेने के लिये उद्यत होगये। जब यह बात नगरी में हवा के साथ फैलती गई तो सकल नगर निवासियों को अत्यन्त आश्चर्य एवं हर्ष हुआ कई लोगों ने सेठजी को धन्यवाद दिया और कई लोग तो सूरिजी के व्याख्यान एवं सेठ जी के त्याग से प्रभावित हो दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गये। सेठ सलखण ने अपने द्रव्य से नव लक्ष रुपये अपनी दीक्षा महोत्सव के लिये रखकर अवशिष्ट द्रव्य को स्वधर्मी भाईयों की सेवा तथा सात क्षेत्रों में जहाँ आवश्यकता देखी वहाँ सदुपयोग किया।

शुभ मुहूर्त में सेठ, सेठानी, खेमा और दूसरे भी २७ नर नारियों ने आचार्यदेव के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की। सूरिजी ने उन मुमुक्षुओं को दीक्षित कर खेमा का नाम मुनिदयारत्न रख दिया। मुनि दयारत्न पर सरस्वती देवी की तो पहिले से ही कृपा थी। पूर्व जन्म में ज्ञान की अच्छी आराधना भी की होगी यही कारण था कि—मुनि दयारत्न ने कुछ ही समय में जैनागमों का अच्छा अध्ययन कर लिया। वे जैन साहित्य के प्रकाण्ड—अनन्य विद्वान् हो गये। जैनागमों के अध्ययन के साथ ही न्याय, व्याकरण, काव्य, छंद, अलंकारादि वाङ्मय साहित्य का भी गहरा अभ्यास करते रहे अतः नाना शास्त्र विचक्षण होने में कुछ भी देर न लगी। विद्वत्ता के साथ ही साथ आपके मुखमण्डल पर ब्रह्मचर्य का भी अपूर्व तेज दीखने लगा। बाल ब्रह्मचारी होने से आपके अखण्ड ब्रह्मचर्य की कांति एवं तपस्तेज की भव्य-प्रभा सूर्य के किरणों की तरह प्रकाशमान होने लगी। यही कारण है कि आचार्य सिद्धसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में मुनि दयारत्न को आचार्यपद से सुशोभित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया।

आचार्य कक्कसूरिजी महान् विद्वान् प्रौढ़ प्रतापी एवं धर्मवीर आचार्य हुए हैं। आपकी प्रतिभा सम्पन्न विद्वता की छाप सर्वत्र विस्तृत था। आपका विहार क्षेत्र अत्यन्त विशाल था। एक समय सूरीश्वरजी ने नागपुर से विहार कर सपादलक्ष प्रदेश में पर्यटन कर, सर्वत्र धर्मोपदेश करते हुए क्रमश शाकम्भरी नगरी की ओर पदार्पण किया जब शाकम्भरी श्रीसंघ को ये शुभ समाचार मिले कि आचार्य देव, शाकम्भरी पधार रहे रहे हैं तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। श्रेष्टि गोत्रीय शा गोपाल ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने मंदिरों के दर्शन कर धर्मशाला में पधारे वहां आगत जन समाज को संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित देशना दी। उपस्थित जनता पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। इसी तरह प्रतिदिन आचार्य देव के व्याख्यान का क्रम प्रारम्भ रहा। सर्वत्र आपके व्याख्यान शैली की प्रशंसा फैल गई कारण, आपके व्याख्यान बाचने का ढंग इतना सरस, अलौकिक, एवं प्रभावोत्पादक था कि साधारण समाज व विद्वद् समाज समान रूपसे उसका लाभ उठा सकती। जैन व जैनेतर आपके व्याख्यान को श्रवण कर मन्त्र मुग्ध हो रहजाते थे।

एक दिन वहां के शासन कर्ता राव गोंदा, अपने मन्त्री जैसल से सूरिजी के उपदेश की तारीफ सुनकर—व्याख्यान सुनने की प्रबलइच्छा से सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हुए। सूरिजी बड़े समयज्ञ थे

बाद आपने षट् दर्शन की तुलनात्मक आलोचना करते हुए जैन दर्शन के तत्वों एवं आचार व्यवहार के विषयों का खण्डन मण्डनात्मक दृष्टि से नहीं किन्तु, विषय प्रतिपादन शैली की दृष्टि से इस ढंग की पादन किया कि—श्रोतावर्ग की आत्माओं पर गम्भीर असर हुए बिना नहीं रहा। आगे सूरीश्वरजी ने 'जैन दर्शन माहात्म्य' विषय का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि—विवेक विकल जैन दर्शन के वास्तविक सिद्धान्तों से अनभिज्ञ व्यक्ति जैनधर्म को नास्तिक एवं अनीश्वर वादी कह कर भद्रिक लोगों को भरमा अब भी पाप के भागी होते हैं किन्तु जैन दर्शन का सूक्ष्म, गम्भीरता पूर्वक अवलोकन करने वाले इस बात को भली प्रकार से जानते हैं कि जैनधर्म न तो नास्तिक धर्म है और न अनीश्वर वादी ही है। मेधावी व्यक्ति स्वयं समझ सकते हैं कि जैनधर्म ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने वालों में अग्रेश्वर है यदि जैन ईश्वर को ही नहीं मानता तो प्रत्येक में लाखों करोड़ों रुपयों का व्यय कर भारत भूमि पर आसमोलंघन मन्दिरों का निर्माण कर ईश्वर की मूर्तियों स्थापन कर प्रतिदिन श्रद्धा एवं नियम से ईश्वर की सेवा पूजा क्यों करते? मैं तो यहाँ तक कहने का दावा करता हूँ कि जैसा जैनों ने ईश्वर को माना है वैसा शायद ही किसी दर्शन वाले ने माना है राग द्वेष मोह अज्ञान काम क्रोध से बिल्कुल मुक्त सच्चिदानन्द अनंत ज्ञान दर्शन संयुक्त ईश्वर को जैन ईश्वर मानते है हाँ कई मतानुयायी ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता हर्त्ता एवं जीवों के पुन्य पाप के फलदेनेवाला माना है जैन ऐसे ईश्वर को ईश्वर नहीं मानते है कारण ईश्वर को सृष्टि के कर्त्ता हर्त्ता एवं पुन्य पाप के फल भुगताने वाला मानने से अनेक आपत्तियाँ आती है और ईश्वर पर अन्यायी अत्याचारी अल्पज्ञादि का दोष लागु हो जाते है अतः जैन परमेश्वर वादी नहीं पर ज़रूर ईश्वर वादी है नास्तिकों की मान्यता है कि स्वर्ग नर्क पुन्य पापादि कोई पदार्थ नहीं है और न वे स्वीकार ही करते है जब जैन स्वर्ग नर्क पुन्य पाप और भविष्य में पुन्य पापों का फलों को भी मानते है फिर समझ में नहीं आता है कि ईश्वर वादी आस्तिक जैनों को नास्तिक क्यों कहा जाता है। यह तो पक्षपात की अग्नि में जलने वाले व्यक्तियों का व्यर्थ प्रलाप है कि जैन तत्वों की वास्तविकता से अनभिज्ञ वे लोग जब तब अपनी अज्ञानता पूर्ण पक्ष पात का परिचय देते रहते हैं। मैं तो दावे के साथ कहता हूँ कि आस्तिकता का दम भरने वाले अन्य धर्मों की अपेक्षा जैनधर्म सर्वोत्कृष्ट आत्म कल्याण साधक धर्म है। जैनधर्म के वास्तविक सिद्धान्तों का यत्किंचि त्कम बताने मात्र से आपको अपने आप उपरोक्त बातों का स्पष्टी करण हो जायगा यथा—

१ सृष्टिवाद—जैन दर्शन सृष्टि को अनादि काल से शाश्वत् मानता है। वह स्वर्ग नरक और मृत्यु लोक के अस्तित्व को स्वीकार करता है। स्वर्ग में देवों के निवास स्थान या नरक में नारकी के जीवों के रहने का और मृत्यु लोक में मनुष्य तिर्यंच का वास है इन सबका अनेक आगम प्रत्यक्ष परोक्ष अनुमानादि प्रमाण से स्पष्टी करण होता है। जब दुनिया में पाप का आधिक्य एवं पुन्य का क्षय होता जाता है तब संसार अप-कर्षावस्था को प्राप्त होता है। इसके विपरीत पुन्य की प्रबलता एवं पाप की कमी से जगत की उन्नतता एवं वृद्धि को प्राप्त होता है। इस तरह यह अनादिकाल का चक्र अनंत काल पर्यन्त चलता ही रहता है। जैन दर्शन ने इस तरह के काल विभाग को दो विभागों में विभक्त किया है एक उत्सर्पिणी काल—इसको उन्नतिकाल कहा है और दूसरा अवसर्पिणी काल इसको अवनति काल कहा है। उत्सर्पिणी काल में धन जन, कुटुम्ब, धर्मादि सकल कार्यों की उन्नति होती जाती है और अवसर्पिणी काल में इन सबका अपकर्ष होना प्रारम्भ होता है। अवसर्पिणी काल के छ विभाग है जिसको छ आरा भी कहते हैं जैसे

१ सुषमासुषमा—आरा	चार कोड़ा कोड़ सागरोंपम	
२ सुषमा—आरा	तीन ,, ,,	
३ सुषम दुःखम—आरा	दो ,, ,,	
४ दु'खम सुषमा—आरा	एक ,, ,,	में ४२००० वर्ष कम
५—दुखम—आरा		२१००० वर्षों का
६—दु'खमादु'खम—आरा		२१००० वर्षों का

उत्सर्पिणी काल के भी छ आरा है

१—दुःखम दुःखमा आरा	२१००० वर्षों का
२—दु खम आरा	२१००० वर्षों का
३—दु'खम सुषम आरा	एक कोड़ा कोड़ सागरोपम ४२००० वर्ष कम
४—सुषम दु खम आरा	दो कोड़ा कोड़ सागरोपम का
५—सुषम आरा	तीन ,, ,, ,,
६—सुषम सुषम आरा	चार ,, ,, ,,

अवसर्पिणी काल का पहला दूसरा और उत्सर्पिणी काल का पाँचवा छटा आर के मनुष्य भोगभूमि (युगल मनुष्य) होते हैं। अवसर्पिण का तीसरा आरा के पिच्छला भाग में और उत्सर्पिण का चतुर्थ आरा के प्रारम्भ भाग में भोगभूमि मनुष्य काल दोष से कर्मभूमि बन जाते हैं तथा अवसर्पिणी का चतुर्थ पंचम और छटा आरा तथा उत्सर्पिणी का तीसरा दूसरा और पहला आरा के मनुष्य कर्मभूमि होते हैं

भोगभूमि मनुष्य—इनके अन्दर असी मीसी कसी कर्म नहीं होता है इन मनुष्यों का शरीर लम्बा और आयुष्य दीर्घ होती है उनके आवश्यकता के सब पदार्थ कल्पवृक्षों द्वारा मिलते हैं अपनी जिन्दगी के अन्त समय एक बार स्त्री संभोग कर एक युगल पैदा कर पहला या छटा आरा में ४९ दिन दूसरा या पांचवा आरा में ६४ दिन तीसरा या चोथा आरा में ८१ दिन की प्रति पालना कर वे स्वर्ग चले जाते हैं।

कर्मभूमि मनुष्य—इनके अन्दर असी (तलवार-क्षत्री) मीसी (साही वैश्य) कसी (किसान) हुन्नर उद्योग कला कौशल वगैरह सब कुच्छ होते हैं इनके शरीर आयुष्य क्रमशः कम होते जाते हैं धर्म कर्म करते हुए चार गति या मोक्ष भी जाते हैं तीर्थंकर चक्रवर्ति वासुदेव बलदेव वगैरह उत्तम पुरुष या साधु साध्वियों वगैरह इन कर्मभूमि में ही होते हैं इस प्रकार उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के बारह आरा को एक काल चक्र कहते हैं और ऐसे अनन्त काल चक्रकों एक पुद्गल परावर्तन कहते हैं ऐसे अनन्त पुद्गल परावर्तन भूत काल में हो गया है और भविष्य में भी अंनत पुद्गल परावर्तन होंगा जिसका आदि व अन्त कोई बतला ही नहीं सकता है कारण काल का एवं सृष्टि का आदि अनत है ही नहीं।

किसी ने सवाल किया कि आप फरमाते हो कि केवली सर्वज्ञ होते हैं और वे भूत भविष्य और वर्तमान एव तीनों काल को हस्तामल की तरह जानते हैं तो क्या केवली-सर्वज्ञ भी काल की एव सृष्टि की आदि अन्त नहीं बतला सकते हैं ?

केवली—अस्ति पदार्थ को अस्ति कहते हैं और नास्ति पदार्थ को नास्ति कहते हैं पर नास्ति पदार्थ

को अस्ति और नास्ति पदार्थ को नास्ति नहीं कहते हैं। जैसे कि सर्वोपरी विद्वान को एक चूड़ी दे कर पूछे कि इसका छोर (अन्त) कहां है ? इस पर वह विद्वान यही कहेगा कि इस चूड़ी की छोर नहीं है इसपर कोई अज्ञ कहे कि आप कहां के विद्वान जबकि हमारी चूड़ी का अन्त ही नहीं बता सके ? विद्वान ने कहा कि मैं अच्छी तरह से जान गया हूँ कि इस चूड़ी का अन्त है ही नहीं। इससे आप लोग अच्छी तरह से समझ गये होंगे कि काल और सृष्टि की न तो आदि है और न अन्त ही है।

(२) आत्मवाद—जीवात्मा सच्चिदानन्द की अपेक्षा तो एक सदृश ही है पर व्यवहारापेक्षा दो प्रकार के हैं—एक कर्ममुक्त—जो ईश्वर परमात्मा कहलाते हैं। कर्ममुक्त जीवों ने तप संयम से आत्मा के साथ में लगे हुए अनादि काल से कर्म पुद्गलों का नाश कर जन्म मरण के भयंकर चक्र रहित आत्मोत्कर्ष की चरमसीमा रूप मोक्षगति को प्राप्त करके ईश्वरीय दशा को प्राप्त की है। संसार में परिभ्रमण करने के मूल कारण कर्म रूप बीज को वे जला चुकते हैं अतः जले हुए बीज के समान वे संसार में जन्म मरण नहीं करते हैं। इसको कर्ममुक्त मोक्ष आत्मा कहते हैं। दूसरे संसारी जीव हैं वे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देव, ऐसे चतुर्गति रूप संसार की चौरासी लक्ष जीवयोनि में स्वकृत कर्मानुसार परिभ्रमन करते रहते हैं। आत्म कल्याण की अनुकूल सामग्री तो इन चार गतियों में से एक मनुष्य गति में ही प्राप्त हो सकती है। पर साधनों की अनुकूलता का सद्भाव होने पर भी जो मनुष्य, सदुपयोग नहीं करे तो अन्त में उसको पश्चाताप परिताप होता ही है किन्तु पापोदय से व निकाचित कर्म बंधन के तीव्र आवरण से विवेक हीन, इन्द्रियों के वशीभूत हो शिकार मांस, मदिरादि हेय पदार्थों का उपयोग कर व्यभिचारादि अनेक दोषों का सेवन करते हैं। और अन्त में कर्मोदय की भांति पाप का भार लाद कर नरक तिर्यञ्च के अनन्त दुःखों का अनुभव करते हैं। यद्यपि पूर्व कृत पुण्यातिरेक से विवेक पुण्यशाली जीवों को इस भव में उनके किये हुए कर्मों का फल भी तत्काल नहीं मिलता है किन्तु उनको उस समय ऐसा सोचना चाहिये कि—संसार में जो हम धन जन व्याधि वगैरह अनेक प्रकार के दुःख से संतापित मनुष्य दृष्टिगोचर होते हैं वे भी अवश्य ही उनके किये हुए दुष्कर्मों का परिणाम है अतः पाप करने वाले पापी जीव को तथा अन्य दुःखी जीवों से पाप नहीं करने की शिक्षा लेनी चाहिये। पापी जीव को इस भवपरभव सर्वत्र दुःख ही दुःख है। धर्म मार्ग का अनुसरण करने वाले को सदा आनंद ही आनंद है।

कर्मवाद—संसार के चराचर जीव कर्मों की पाश में बंधे हुए हैं। अनादि काल से उपार्जित कर्म उनको जन्म मरण के भयंकर चक्र में अनवरत फिराते रहते हैं। अच्छे कर्म करने वाले को भव भव में सुख एवं आराम प्राप्त होता है और इसके विपरीत बुरे कर्म उभय लोक में दुःख के कारण बनते हैं। अतः कर्मोपार्जन से भीरु बनकर जीव को धर्म मार्ग में प्रवृत्ति करने के लिये कटिबद्ध रहना चाहिये। इस विषय को तो सूरिजी ने खूब ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया।

४ क्रियावाद—अशुभ क्रिया से अलग रहते हुए शुभ क्रिया में यथावत प्रवृत्ति करना मनुष्य मात्र का परम कर्त्तव्य है। इसके भी कई भेदानुभेद बताये। और बहुत ही सूक्ष्म क्रिया वाद का विवरण किया।

५. धर्मवाद—मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि वह खूब बारीकी से परीक्षा करे। कारण—"बुद्धिफलं तत्त्व विचारणं च" परन्तु आज कल धर्म के विषय में भिन्न २ लोगों की भिन्न २ धारणायें होगई है। कोई तो कुल-प्रवृत्ति को ही धर्म मान बैठे हैं और कई परम्परा से चले आये धर्म को ही धर्म मार्ग, लौकिक किये

हुए हैं। किसी ने अपने गृहण किये हुए धर्म को धर्म माना है तो किसी ने किसी दूसरे को। यह सब ठीक नहीं क्योंकि इन सबों को स्वीकार करते हुए आत्मीय हिताहित का पूर्ण एवं सूक्ष्म विचार नहीं करते हैं। धर्म के मुख्य लक्षणों में अहिंसा का सर्व प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट स्थान होना चाहिये। धर्म के नाम पर हिंसा विधायक विधानों का विधान कर उनसे स्वर्ग प्राप्ति की आशा रखना सत्य से नितान्त पराङ्मुख होना है। धर्म-धर्म है उसे अधर्म का रूप देकर धर्म मानना निरी अज्ञानता है। धर्म सुखमय एवं मङ्गलमय है। अत. धर्म के नाम पर असंख्य मूक प्राणियों का खून करके उसे सद्धर्म का अङ्ग मानना कहां तक युक्ति युक्त है ? बुद्धिमान मनुष्य स्थिर चित्त से विचार करें कि यह धर्म है या अधर्म है। जब अपने शरीर में एक कंटक भी प्रविष्ट हो जाता है तो असह्य पीड़ा का अनुभव होने लगता है फिर उन मूक प्राणियों को जीवन से पृथक कर धर्म का ढोंग मचाना साक्षात् अन्याय है महानुभावों। सद्धर्म को स्वीकार करो इससे ही सर्वत्र जय है। दुनियां में जो इतनी विचित्रताए दृष्टिगोचर होती है वे सब धर्म एवं अधर्म के आधार पर ही स्थित हैं। रंक का राजा और राजा का रंक होना तो दुनियां में चला ही आया है पर किसी भी अवस्था में क्यों न हो परन्तु कृतकर्म का बदला चुकाना तो सबके लिये आवश्यक ही होता है। अत बुद्धिमानों को चाहिये कि धर्म के तत्वों का ठीक २ निर्णयकर उसका ही उपासक बने।

इस तरह सूरिजी ने जैन दर्शन के विशिष्ट तत्व को अन्यान्य दर्शनों के साथ तुलना करते हुए निर्भीकता पूर्वक मार्मिक शब्दों में समझाया कि श्रोतागण एक दम स्तब्ध रहगये। रावगोंदा तो सीधे सादे सरल स्वभावी धर्म के तत्वों को जिज्ञासा दृष्टि से निर्णय करने के इच्छुक थे। उनकी अन्तरात्मा पर सूरीश्वरजी के व्याख्यान का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। ऐसे तो वे हिंसा—जीव वध से पहले से ही घृणा करते थे किन्तु हिंसकों के संसर्ग से कभी २ अनुचित प्रवृत्ति भी हो जाया करती थी। कारण—

"काजल की कोठरी मां कैसो हु संयानो जाय, काजल की एकलीक लागी है पे लागी है ॥"

आज आचार्य देव के प्रभावोत्पादक वक्तृत्व से उनके हृदय में पुन हिंसा के विरुद्ध नवीन आंदोलन मचाया। उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें आचार्य देव व परमात्मा की साक्षी पूर्वक निरपराध प्राणियों के वध की शपथ करने के लिये प्रेरित किया। वे समझने लग गये कि—जिन जीवों की शिकार करके हम मांस भक्षण करते हैं उनका इसी तरह से या उससे भी ज्यादा बुरीतरह से बदला देकर मुक्त होना पड़ेगा। अत इस तरह की इसभव परभव में यातना सहने के बदले एतद्विषयक शपथ कर लेना ही उभय लोक के लिये श्रेयस्कर है। बस, उक्त विचारों के निश्चित निश्चयानुसार उन्होंने सभा में खड़े होकर कहा—महात्मन ! आज मैं ईश्वर की साक्षी पूर्वक आप सबके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरी अवशिष्ट जिन्दगी में न तो शिकार खेलूंगा और न मांस मदिरा का भक्षण ही करूंगा। रावजी की उक्त प्रतिज्ञा को सुन सूरिजी ही नहीं अपितु आगत सकल श्रोतागण एक दम चकित हो गये। सब लोग रावजी के इस कर्तव्य के लिये उन्हें धन्यवाद देने लगे। विशेष में सूरिजी ने उनके उत्साह को बढ़ते हुए कहा—रावजी ! आप बड़े ही भाग्यशाली हो। यह अहिंसा धर्म तो आपके पूर्वजों का ही है। जब तक क्षत्रियवर्ग अहिंसा के उपासक एवं प्रचारक रहे वहा तक जनसमाज में अपूर्व शांति का अखण्ड साम्राज्य रहा। पर कुसंग के बुरे असर ने जीवों के रक्षक क्षत्रियों को जीव भक्षक बना दिये। संसार के पतन का श्रीगणेश भी इसी तरह के हिंसा जन्य पाप से होने लगा मैं तो चाहता हूँ कि क्षत्रियवर्ग आज भी अपनी पूर्व स्थिति को, तीर्थङ्कर प्रणीत

लोगों ने भी ज्ञानार्चना का लाभ लेकर अतुल पुण्य सम्पादन किया। उक्त द्रव्य से आगम व जैनसाहित्य के अमूल्य ग्रन्थों को लिखवा कर ज्ञान भण्डार में स्थापित किया। इस प्रकार ज्ञान के महात्म्य को देख जनता वेद पुराणों के महोत्सव को भूल गई थी।

व्याख्यान में श्रीभगवतीसूत्र प्रारम्भ हुआ। श्रोतागण बड़ी रुचि के साथ वीरवाणी के अमृत रस का आस्वादन करने में अतृप्त की भांति उत्कंठित एवं लालायित रहते थे। आचार्यदेव ने श्रीभगवतीजी के आदि सूत्र 'चलमाणे चलिए' का उच्चारण किया और उसी के विवेचन में चातुर्मास समाप्त कर दिया पर 'चलमाणे चलिए' का अर्थ पूरा नहीं हो सका। कारण सूरिजी कर्म सिद्धान्त के प्रौढ़ विद्वान एव मर्मज्ञ थे अत वस्तुत्व का निरुपण करने में परम कुशल या सिद्धहस्त थे। आपश्री ने कर्म की व्याख्या करते हुए कर्म के परमाणु और उसके अन्दर रहे हुए वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श की मदता, तीव्रता, कर्मों की वर्गणा, फड्डक, स्पर्द्ध, निसर्ग, कर्म बंधके हेतु कारण, परिणामों की शुभाशुभ धारा, लेश्या, के अध्यवसाय से रस व स्थिति, निधंस, निकाचित अबाधाकाल, कर्मों का उदय (विपाकोदय—प्रदेशोदय) कर्मों का उद्वर्तन, अपवर्तन, कर्मों की उदीरणा, कर्मों का वेदना (भोगना), परिणामों की विशुद्धता, आत्म प्रदेशों से कर्मों का चलना, इसकी अकाम वेदना सकाम निर्जरा होना, ऊर्ध्वमुखी, अधोमुखी अकाम तथा देश या सर्व सकाम निर्जरा वगैरह का इसकदर वर्णन किया कि शाकम्भरी नरेश को ही नहीं अपितु व्याख्यान का लाभ लेने वाली सकल जन मण्डली को जैन दर्शन के एक मुख्य सिद्धान्त कर्मवाद का अपूर्व ज्ञान हासिल हो गया जैनधर्म के कर्म सिद्धान्त की उनके ऊपर स्थायी एव अमिट छाप पड़ गई। वास्तव में बात भी ठीक है कि जब तक कर्मों का स्वरूप एव उसके साथ सबन्ध रखने वाली सकल भावों का सविशद ज्ञान न हो जाय वहां तक कर्म बन्धन से डरने एव पूर्व कृत कर्मों की निर्जरा करने के भावों का प्रादुर्भाव होना नितान्त असम्भव है। अस्तु, आचार्यश्री ने चातुर्मास की इस दीर्घ अवधि में कर्म सिद्धान्त का ऐसा मार्मिक विवेचन किया कि उपस्थित लोगों के हृदय में एकदम वैराग्य का सञ्चय हो गया। उन्होंने तत्क्षण ही आचार्यश्री से स्वशक्त्यनुकूल त्याग प्रत्याख्यान किये।

शास्त्रों में श्रद्धा मूल ज्ञान बतलाया है, यह ठीक एवं यथार्थ ही है। केवल चरित्रानुवाद (कथानक या किसी का चरित्र) सुन लेने से जैन दर्शन के तात्त्विक सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता है, उसके लिये तो आवश्यकता है गहरे अभ्यास, मनन एव चिन्तवन की। अत जब तक ज्ञान का सद्भाव नहीं तब तक श्रद्धा का अंकुर नहीं और श्रद्धा के अभाव में जन्म मरण से छूटना भी असम्भव अत' सबसे पहले आवश्यकता है ज्ञान की प्रौढ़ताकी, कारण—शास्त्रकार भी फरमाते हैं कि—

"पढ़मं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्व सजए। अन्नाणी किं काही किंवा नाही सेय पावगं ॥"

ज्ञानाभाव में कर्तव्याकर्तव्य का दीर्घ विचार अज्ञानी जीव कर ही नहीं सकता है अत' ज्ञानाराधन करके ही दर्शनाराधना की जा सकती है। इस तरह के व्याख्यान प्रवाह में प्रवाहित जनता में से कितनेक सत्यग्रहण पटुव्यक्तियों ने एव राव गेंदा वगैरह आत्म कल्याण इच्छुक भावुकों ने जैनधर्म को स्वीकार कर अपने आपको कृतकृत्य किया। सूरिजी के तो ये सबके सब परम भक्त बन गये।

गुरु, धर्म पर अटूट श्रद्धा थी इसका पता भी सहज ही में लग जाता है वे बात ही बात में देव, गुरु, धर्म के निमित्त लाखों रुपये नहीं अपना सर्वस्व हो अर्पण कर देते थे। आज तो उन पुण्यात्माओं के कार्यों का अनुमोदन करने मात्र से ही अनुमोदन कर्ता की आत्मा का कल्याण हो जाता है।

चातुर्मास समाप्त होते ही सूरिजी ने विहार कर दिया। यद्यपि शाकम्भरी निवासियों के लिये आचार्य देव का विहार असह्य अवश्य था किन्तु, निस्पृही, निर्ग्रन्थों के आचार व्यवहार विषयक विहार नियमों में अड़चन पहुँचा कर जबर्दस्ती रोकना भी कर्त्तव्य विमुख था अतः भक्ति से प्रेरित हो कितनेक व्यक्तियों ने बहुत दूर तक आचार्यश्री की साथ रह कर अपूर्व सेवा का अपूर्व लाभ लिया।

पट्टावली कारों ने आचार्यदेव के प्रत्येक चातुर्मास का इसी तरह विशद विवेचन किया है किन्तु ग्रंथ कलेवर की वृद्धि के भय से हम इतना विस्तृत विवेचन नहीं करते हुए इतना लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं कि आप का विहार मरुधर से गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ सिंध, पंजाब कुरु, शूरसेन, वत्स बुंदेलखंड, मालवा और मेदपाट होता था। आप क्रमशः हर एक प्रान्तों में विहार करते हुए प्रचार के लिये प्रान्त २ में भेजे हुए शिष्यों को प्रोत्साहित करते रहते थे। जगह जगह पर आपश्री के चमत्कारिक जीवन का प्रभाव जैन, जैनेतर समाज पर बहुत ही पड़ता था। बाल ब्रह्मचारी होने से अखण्ड ब्रह्मचर्य के तेज के साथ ही साथ तप संयम एवं ज्ञान की प्रखर दीप्ति दर्शकों के नेत्रों में चकाचौंध सी पैदा कर देती थी। वे आचार्य श्री के आगमन को सुनते ही हतोत्साहित हो इत उत पलायन कर देते थे। आपश्री इस प्रकार प्रतिभा सम्पन्न प्रौढ़ विद्वत्ता ने कई राजा महाराजाओं को आकर्षित किया। उन लोगों ने भी सूरिजी के व्याख्यान श्रवण मात्र से प्रभावित हो, जैनधर्म के रहस्य को समझ जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। इस तरह सूरिजी ने जैनधर्म का खूब विस्तृत प्रचार किया।

आपने अपने बीस वर्ष के शासनकाल में १ से भी अधिक नर नारियों को श्रमण दीक्षा दे स्वपरकल्याण के निवृत्तिमय पथ के पथिक बनाये। लाखों मांस मदिरा सेवियों का उद्धार कर जैनियों की एवं महाजन संघ की संख्या में वृद्धि की। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा कर जैनधर्म की नींव को दृढ़ एवं जैन इतिहास को अमर किया। आपश्री के जीवन की विशेषता यह थी कि उस समय के चैत्यवासियों के साम्राज्य में भी आपने अपने श्रमण संघ में आचार विचार विषयक किसी भी प्रकार की शिथिलता रूप चोर का प्रवेश नहीं होने दिया। नियम विधायक वृत्ति की न चलने से साथ अपना आपश्री ने विहार क्षेत्र की विशालता एवं मुनियों को मुनित्व जीवन के कर्त्तव्य की ओर हमेशा आकर्षित करते रहने की कुशलता ही थी। विहारकी व्यवस्था व साधु समाज के चारित्र में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई और कोई क्षेत्र भी मुनियों के व्याख्यान श्रवण के लाभ से वंचित नहीं रहा। आचार्यश्री प्रायः २ दो मुनियों को इधर उधर प्रान्तों में प्रचारार्थ परिवर्तित कर देते कि जिससे उनको प्रान्तीय मोह व ममत्व-बुद्धिकता की इच्छा जागृत न हो सकती थी। आपके इस कठोर निरीक्षण ने मुनियों के जीवन को एक एक आदर्श बना दिया था।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० युगप्रधान एवं युगप्रवर्तक आचार्य थे। उस समय आपश्री के पास जितनी श्रमण संख्या थी उतनी विशाल संख्या किसी दूसरे गच्छ या सम्प्रदाय में नहीं थी। जितना दीर्घ विहार आपका और आपके आज्ञानुयायी साधुओं का था उतना विशाल विहार क्षेत्र व उग्रविहार दूसरों का नहीं था। जन समाज पर जितना प्रभाव आप का पड़ता था उतना अन्य का नहीं।

जब हम कल्पसूत्र के भस्मग्रह की ओर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि 'श्रमणों की उदय उदय पूजा न होगी' यह वीर परम्परा के श्रमणों पर पूरा २ प्रभाव डाल चुकी थी परन्तु आचार्य कक्कसूरि तो वे भग-

वान् पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य अतः भस्मग्रह का किञ्चित मात्र भी प्रभाव उन पर न पड़ सका। पाठक ! वृन्द अभी तक बराबर पढ़ते ही आरहे हैं कि रत्नप्रभ सूरिसे, उपकेशगच्छाचार्यों ने शासन की उत्तरोत्तर वृद्धि ही की है। जितने इस परम्परा के आचार्यों ने जैनेतरों को जैन बनाने का श्रेय सम्पादन किया है। उतना अन्य किसी भी गच्छ के आचार्यों ने नहीं किया। इतना होने पर भी विशेषता तो यह थी कि ये लोग कभी भी वर्तमान साधु समाज के समान अहमत्व का दम नहीं भरते थे। पार्श्वनाथ सन्तानियों एवं वीर सन्तानियों में नाम मात्र की विभिन्नता तो अवश्य थी पर पारस्परिक दोनों सम्प्रदायों का प्रेम सराहनीय आदरणीय एव स्तुत्य था। जिस किसी भी स्थान पर आपस में एक दूसरे का समागम होता वहां पार्श्वनाथ सतानिये वीरसंतानियों का आदर, सत्कार एव विनय व्यवहार करते थे और वीरसतानिये पार्श्वनाथ सन्तानियों को सम्मान वन्दनादि शास्त्रीय व्यवहारों से आदर करते थे। कारण एकतो पार्श्वनाथ सतानिये परम्परानुसार वीर संतानियों से वृद्ध थे दूसरा वे चारों ओर भ्रमन कर नये जैनों को बनाकर जैन संख्या में वृद्धि करने में अग्रसर थे अत. पार्श्व सन्तानियों का वीर सन्तानिये २ बहुत ही सत्कार वगैरह करते थे। उदाहरणार्थ उत्तराध्ययनजी के तैवीसवें अध्ययन में वर्णित है--कि श्रीगौतमस्वामी श्रीकेशीश्रमण को बड़ा जानकर वदन करने के लिये केशीश्रमण के उद्यान में गये और श्रीकेशीश्रमण भी श्रीगौतमस्वामी का स्वागत करने के लिये सम्मुख गये यह प्रवृत्ति भगवान महावीर के समय से अक्षुण रूप से चली आ रही थी प्रसङ्गोपात यह लिख देना भी अनुपयुक्त न होगा कि--हमारे चारित्र नायक आचार्य कक्कसूरिजी के समय ही क्या पर आज पर्यन्त के इतिहास में हम देखते आये हैं कि—हमें एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है कि किसी भी स्थान पर किसी भी समय में पार्श्वसतानियों एव वीर सतानियों के परस्पर मतभेद खड़ा हुआ हो जैसे कि श्वेताम्बर, दिगम्बर तथा अन्यगच्छों के आपस में हुआ था। उस समय के लिये यह बात भी नहीं कही जासकती है कि —उपकेशगच्छ में साधु साध्वियों की सख्या कम थी। विक्रम की तैरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक तो इस गच्छ के हजारों साधुसाध्वी विद्यमान थे। उदाहरणार्थ विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में केवल एक सिंध प्रान्त में ही उपकेशगच्छ के ५०० मंदिर थे। चौदहवीं शताब्दी में गुरुचक्रवर्ती आचार्यश्रीसिद्धसूरि के अध्यक्षत्त्व में शाह देसल व शाह समरसिंह ने, अलाउद्दीन से उच्छेद किये हुए श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार करवाकर आचार्यश्री सिद्धसूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्टा करवाई थी। उस समय अन्य गच्छों के अनेक आचार्य भी वहां उपस्थित थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में पाटण में उपकेशगच्छीयाचार्य देवगुप्तसूरि के अध्यक्षत्व में जो श्रमण सभा हुई उसमें १००० साधुसाध्वी विद्यमान थे। इससे सिद्ध होता है कि भस्मगृह की विद्यमानता में भी उपकेशगच्छ के आचार्यों की उदय उदय पूजा होती थी। उपकेशगच्छीय आचार्यों का तो जैन समाज पर अवर्णनीय उपकार है। आप महापुरुषों ने तो दारुण परिषहों का बिजयी सुभट की भांति सामना कर लाखों नहीं पर करोड़ों अजैनों को जैन बनाये। पर दु ख है कि कइ मत्तधारियों ने आपस में अलग २ गच्छ, मत, पन्थ सम्प्रदाय को स्थापित कर सुसगठित शक्ति का एक दम ह्रास कर दिया। इस बिषय के स्पष्टी करण की आवश्यकता नहीं यह तो सर्वप्रत्यक्ष ही है।

गृहस्थ लोगों में व्यवहार है कि बड़े ही परिश्रम पूर्वक अपने हाथों से कमाये हुए द्रव्य में से किञ्चित भी व्यर्थ चला जाय तो बहुत दुःख होता है परन्तु दूसरे का धन यों ही चला जाता हो तो उन्हें परवाह ही नहीं रहती यही हाल हमारे मतधारियों का हुआ। बिना ही परिश्रम किये उनके हाथ महाजन सघ लग गया

१६—चन्द्रावती	,,	प्राग्वट	,,	गोमा ने	दीक्षाली
१७—शिवपुरी	,,	प्राग्वट	,,	गणपत ने	,,
१८—सोनारी	,,	प्राग्वट	,,	हंसा ने	,,
१९—क्षत्रीपुर	,,	प्राग्वट	,,	सगण ने	,,
२०—धोलपुर	,,	प्राग्वट	,,	रावण ने	,,
२१—अर्जुनपुरी	,,	श्रीमाल	,,	यशोदित्य ने	,,
२२—रत्नपुरा	,,	श्रीमाल	,,	धोकलाने	,,
२३—मुजपुर	,,	श्रीमाल	,,	पेथा ने	,,
२४—करणावती	,,	श्रीमाल	,,	चाहा ने	,,
२५—मालपुर	,,	ब्राह्मण	,,	सदासुख ने	,,
२६—धीरपुर	,,	क्षत्रिय	,,	जैता ने	,,
२७—रेणुकोट	,,	बलाहा वश	,,	रामा ने	,,
२८—मारोट	,,	श्रेष्ठि	,,	काला ने	,,
२९—कराटकुप	,,	श्रीमाल	,,	बरदा ने	,,

आचार्य श्री के २० वर्षों के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं

१—चंदेरी	के श्रेष्टि	गौत्रीय	रामा ने	भ० महावीर	मन्दिर	की प्र०
२—खुधाणी	के बप्पनाग	,,	देवलने	,, ,,	,,	
३—देवपट्टन	के बावलिया	,,	हीराने	,, ,,	,,	
४—पुरणो	के चरड़	,,	खुमाणने	,, पार्श्वनाथ	,,	
५—कीराट कूंप	के मोरख	,,	अउजने	,, ,,	,,	
६—अरहट	के सुचंति	,,	गोसलने	,, ,,	,,	
७—आसलपुर	के बोहरा	,,	आसलने	,, ,,	,,	
८—उग्र नगर	के ततभट	,,	रोड़ा	,, महावीर	,,	
९—कालेजड़ा	के बलाह	,,	सादाने	,, ,,	,,	
१०—डोकर	के प्राग्वट	,,	दादाने	,, ,,	,,	
११—सुसाटी	के कुम्मट	,,	दुर्गाने	,, आदिनाथ	,,	
१२—गोलुगाव	के गुदिया	,,	कालाने	,, ,,	,,	
१३—जाथलीपुर	के चौधरी	,,	मुरारने	,, ,,	,,	
१४—टाकाणी	के भूरि	,,	भाखरने	,, अजितनाथ	,,	
१५—ढेढियाग्राम	के भाद्र	,,	जैसींगने	,, नेमिनाथ	,,	
१६—शान्तिपुर	के कामदार	,,	पर्वतने	,, शान्तिनाथ	,,	
१७—बायर	के लघुश्रेष्टि	,,	भीमाने	,, पार्श्वनाथ	,,	

१८—पंपोलिया	के ढिंडु	,,	अमराने	भ० पार्श्वनाथ	मन्दिर	प्र०
१९—माडुवी	के पल्लीवाल	,,	नागदेवने	,,	,,	,,
२०—नागपुर	के केसरिया	,,	भर्जुन ने	,,	,,	,,
२१—अजमेर	के चोरडिया	,,	धनाने	,,	महावीर	,,
२२—माण्डवपुर	के गान्धी	,,	कवराने	,,	,,	,,
२३—सेलवावाड़ा	के मोरख	,,	छुड़ाने	,,	,,	,,
२४—आनन्दपुर	के विंचट	,,	कानडाने	,,	,,	,,
२५—पालिका	के प्राग्वट	,,	वेसने	,,	धर्मनाथ	,,
२६—पावडी	के प्राग्वट	,,	कुम्भराने	,,	मल्लिनाथ	,,
२७—चन्द्रावती	के प्राग्वट	,,	महराने	,,	विमलनाथ	,,
२८—रत्नपुर	के प्राग्वट	,,	पुनडाने	,,	महावीर	
२९—कोरंट	के श्रीमाल	,,	धायाने	,,	पार्श्वनाथ	

सूरीश्वरजी के २० वर्ष का शासन में संघादि शुभ कार्य

१—विजयपट्टन	के	बप्पनाग	गौत्रीय	मंडणने	शत्रुंजय का संघ
२—वर्द्धनकार	,,	चामड़	,,	पद्मने	,, ,,
३—वीरमपुर	,,	श्रेष्ठि	,,	वर्धलने	,, ,,
४—कन्नपुर	,,	कुम्मट	,,	चाहड़ने	,, ,,
५—सोनाणी	,,	विंचट	,,	मेघसीने	,, ,,
६—सारंगपुर	,,	नागरिया	,,	कल्हणने	,, ,,
७—चन्द्रावती	,,	पोकरणा	,,	सोढ़ाने	सम्मेत शिखर का संघ
८—भिन्नमाल	,,	चौरड़िया	,,	सालगने	शत्रुंजय का संघ
९—आमेर	,,	पंपोलिया	,,	देवाने	,, ,,
१०—विराटपुर	,,	श्री श्रीमाल	,,	चैनसीने	,, ,,
११—मर्जुनपुरी	,,	श्रीमाल	,,	पारसने	,,
१२—लाडुवी	,,	प्राग्वट	,,	चाहड़ने	,,
१३—मेदनीपुर	,,	चोरडिया	,,	लाखणने	,, ,,
१४—कुरची	,,	गोलेच्छा	,,	भारमलने	,, ,,
१५—माण्डपुर	,,	प्राग्वट	,,	धोरीदासने	,, ,,
१६—राजपुर	,,	प्राग्वट	,,	विमलदासने	,, ,,
१७—कोरंटीपुर	,,	बलाह-रांका	,,	मालाने	,,
१८—खेमगिरी	,,	चौरड़िया	,,	पाताने	,, ,,
१९—खंभोर	,,	कुम्मट	,,	नारायणे	,, ,,

१ कोई भाई यह ख़याल न करे कि २० वर्षों के शासन में १९ बार तीर्थों के संघ निकलवाये तो क्या यही काम किया करते थे ? नहीं यह संघों की संख्या केवल आचार्यश्री के नायकत्व की नहीं पर आपके शासन समय में उपाध्यायजी पण्डित वाचनाचार्य एवं मुनियों ने भी संघ निकलवा कर यात्रा की उनकी संख्या भी शामिल है यह इनके लिये ही नहीं पर सर्वत्र समझ लेना चाहिए।

कितनेक जैनशास्त्रों एवं इतिहास के अनभिज्ञ लोग जनता में मिथ्या भ्रमना फैला देते हैं कि–जैन धर्मावलम्बी लोग तलाव कुवे बनाने में पाप बतला कर मनाई करते हैं अतः जैन तलावादि नहीं बनाते हैं इस पर ज्ञाता सूत्र के अन्दर आया हुआ नन्दन मिनीयार का उदाहरण भी देते हैं कि जिसने तलाव कुवे एवं बगेचा बनाने से देडका (मींडक) हुआ था। इत्यादि। पर यह बात ऐसी नहीं है जैन गृहस्थों के लिये जनोपयोगी कार्य करने की न तो मनाई है और न ऐसे जनोपयोगी कार्यों में एकान्त पाप ही बतलाया है हाँ कोई व्यक्ति इन कार्यों के लिये मुनियों से आदेश लेना चाहे तो वे आदेश के समय मौन रखे पर निषेध एवं मनाई तो मुनि भी नहीं कर सके। इससे पाठक समझ सकते हैं, कि तलावादि कार्य एकान्त पाप के ही कार्य होते तो मुनि निषेध अवश्य कर सकते थे हाँ इन कार्य में जीवहिंसा होने से मुनि आदेश नहीं देते हैं पर जब मुनि नौ प्रकार के पुण्य का उपदेश करते हैं तब अन्न देने से पुन्य, पाणी पीलाने से पुन्य इत्यादि कह सकते हैं तथा आवश्यक निर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने मन्दिर बनाने वाले के लिए कुवा का दृष्टान्त दिया है जैसे कुवा खोदने वाला का शरीर मिट्टी से लिप्त होजाता है पर जब कुवा खोदने पर पानी निकलता है तब वह मिट्टी वगैरह उसी पानी से साफ होजाती है और विशेषता यह कि वह कूप का पानी जहाँ तक रहेगा वहाँ तक अनेक प्राणधारी जीव उस पानी को पीकर अपने तप्त हृदय को शान्त किया करेंगे। इसी प्रकार मन्दिर बनाने में आरंभ सारभ होता है, पर जब उस मन्दिर में देव मूर्ति की प्राण प्रतिष्टा होजाती है तब उस भावना से आरभ सारभ का सब मैला साफ होकर जब तक वह मन्दिर रहेगा तब तक अनेक ससारी जीव मोघादि से अपना तप्त हृदय को उत्तम भावना व शान्त कर सकेगा इस उदाहरण से पाठक ! समझ सकते हैं कि कुवा तलाव खुदाने में जो आरभादि होता है पर अनेक तप्त हृदय वाले उसका पानी पी कर शान्ति भी प्राप्त कर सकेगा उसका पुन्य भी तो होगा।

अब रही नन्दन मिनियार की बात इसके लिये शास्त्र मे यह नहीं कहा है कि वह कुवादि बनाने से दंडक योनिको प्राप्त हुआ पर वहाँ तो स्पष्ट लिखा है कि उसने रात्रि समय आर्तध्यान में ही देडक योनिका आयुष्य बन्धा था यदि आरंभादि के कारण ही तलाव कुवा की मनाई की जाती हो तब तो पशुओं को घास पानी दुकाल में अन्नादि बहुत से कार्य ऐसे हैं कि जिसमें भी आरभ होता है और मुनिजन ऐसे कार्यों का आदेश भी नहीं देते हैं फिर भी गृहस्थ लोग पुन्य होने की गर्ज से वे सब कार्य करते हैं और मुनिजन उसका निषेध भी नहीं करते हैं तब एक तलावादि के लिये ऐसा क्यों कहा जाता है कि जैन श्रावक तलाव कुवे नहीं खुदाते हैं ?

यदि यह कहा जाय कि पन्द्रह कर्मादान में भूमि खुदाना भी कर्मादान है इस व्रत की रक्षा के लिये श्रावक तलावादि नहीं खुदा सकते है ? यह भी अनभिज्ञता ही है कारण कर्मादान का अर्थ अपने स्वार्थ एवं आजीविका के निमित्त उक्त १५ प्रकार के व्यापार श्रावक नहीं कर सकते हैं पर अपने जरूरी काम की मनाई नहीं है जैसे श्रावक अपने रहने को मकान बनाता है उसमें भी दो दो तीन तीन गज नीवें खुदानी

४०—आचार्यश्री देवगुप्तसूरि (अष्टम)

धर्माचारविचारकः कुलहटे श्रीदेवगुप्तो व्रती
वादिव्रातपराजयस्य करणे यःकोऽपि कोपेऽभवत् ।
तस्यैवायमिहे हितः सुदमने माने मदे नो रतः
जातिं स्वां शिथिलां समीक्ष्य विदधे मन्यां तदीयोन्नतिम् ॥

परमपूज्य आचार्यश्री देवगुप्त सूरीश्वरजी म० बाल ब्रह्मचारी, प्रखर विद्वान्, महान् तपस्वी, कर्त्तव्यनिष्ठ, कार्यकुशल, मध्यान्ह के सूर्य के समान मिथ्यात्वान्धकारको विध्वंस करने में समर्थ, धर्म प्रचारक, युगप्रवर्त्तक आचार्य हुए। आप मरुभूमि के चमकते सितारे थे। उस विकट समय में भी जैनधर्म को यथावत् सुरक्षित रख, अनेकानेक अचिन्तनीय उपायों के प्रयत्नों से अनेक कठिनाईयों, परिषहों को सहन कर शासन की उत्कृष्ट मान मर्यादा बढ़ाने का अक्षय यशः एवं अदम्य उत्साह आप जैसे उत्कृष्ट क्रिया पालक आचार्य देव को ही प्राप्त था। इस विषय में आप श्री का व आपके पूर्वाचार्यों का जितना उपकार मानें उतना ही कम है। हम किसी भी प्रकार से आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकते। आपश्री का जीवन शान्ति, क्षमा, परोपकार आदि गुणों से ओत प्रोत था।

प्राचीनग्रन्थों, वंशावलियों, पट्टावलियों तथा गुरु परम्परा से सुनते हुए संग्रह करने वाले संग्रहकर्ताओं के द्वारा निर्मित एतद्विषयक ग्रन्थों से आपश्री के जीवन का जो कुछ यत्किञ्चित् आभास मिलता है उसी को पाठकों के कल्याणार्थ यहां लिख दिया जाता है।

मरुधरभूमि के वक्षस्थल पर अतीव रमणीय, प्राकार परियुक्त, धनधान्य सम्पन्न, नानातरुलतो-पवनवाटिका सर कूप परिशोभित, नभस्पर्शी, श्वेत वर्ण वर्णित धवल क्रांति सयुक्त जिनप्रासाद श्रेणि से कमनीय, चित्ताकर्षक, व्यापारिक केन्द्र स्थान रूप मरुभूमि भूषण नारदपुरी नामक अवर्णनीय शोभा समन्वित नगरी थी। परम्परागत चली आई कथाओं से ज्ञात होता है कि इस नगरी को महर्षि नारदजी ने बसाई थी अतः इससे तो इस नगरी की प्राचीनता एवं सुंदरता और भी अधिक अभिवृद्धि को प्राप्त होती है। सम्राट् सम्प्रति ने भगवान् पद्मप्रभस्वामी का जिनालय बनवाकर तो इस नगरी की शोभा में और भी वृद्धि कर दी। इस नगरी को अनेक महापुरुषों को पैदा करने का परम यशः सौभाग्य प्राप्त होचुका है यह पिछले प्रकरणों को मनन पूर्वक पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। इन्हीं नरपुङ्गव-नररत्नों ने जैनधर्म की जो अमूल्य सेवाएं की हैं वे इतिहासज्ञ मनीषियों से प्रच्छन्न नहीं है। जैन इतिहास में इन महापुरुषों के शासनोन्नति विषयक विशेष कार्य स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने योग्य हैं। "रत्नों की खान से रत्न ही निकलते हैं "इस लोकोक्त्य-नुसार उपकेशवंश सुचन्ति गौत्रीय, धनजन सम्पन्न, ऋद्धि समृद्धि समन्वित, क्रय विक्रय आदि वाणिज्य कला दक्ष बीजा नामके महर्द्धिवन्त श्रेष्ठिवर्य रहते थे। आपकी धर्मपरायणा, परमसुशीला, गृहिणी का नाम सरजू

था। यों तो माता भरत् ने छ पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म देकर अपने जीवन को कृतार्थ बनाया था पर इन सब सन्ततियों में एक पुनड़ नामक सबका अत्यन्त भाग्यशाली वर्चस्वी तेजस्वी, एवं होनहार था। उसकी जन्म पत्रिका एवं जन्म नक्षत्र शुभ व तेज स्वाभाविक चपलता, धर्म कर्म कुशलता धर्मानुराग उसके भावी जीवन के अभ्युदय का सूचन करते हुए हर एक दर्शक को एक बार उस की ओर चुम्बक की तरह आकर्षित कर रहे थे पुनड़ की भाग्य रेखा रह रह कर यह बात बतला रही थी कि—पुनड़, निकट भविष्य में ही अपने युग का अनन्य महापुरुष होगा। संसार में अपने जीवन के साथ ही साथ अन्य अनेक प्राणियों की आत्मा का उद्धार करने वाला, अपने कुल एवं माता पिता के नाम को उज्ज्वल कर मारवपुरी का ही नहीं प्रत्युत मरुभूमि मात्र का मान बढ़ाने वाला होगा। "होनहार विरवान के होत चिकने पात" की कहावत के अनुसार पुनड़ के प्रत्येक कार्य चमत्कार पूर्ण, आश्चर्योत्पादक, अतीव प्रभावक होने लगे।

क्रमशः पुनड़ जब आठ वर्ष का हुआ तब विद्योपार्जन करने के लिये उसे स्कूल में प्रविष्ट किया गया। पूर्व जन्म की ज्ञानाराधना की प्रबलता से पुनड़ अपने सहपाठियों से पढ़ने में कितने ही कदम आगे बढ़ गया था। परिणाम स्वरूप उसने बारह वर्ष की अल्पवय में ही व्यवहारिक, व्यापारिक एवं धार्मिक ज्ञान सम्पादित कर लिया। बाद पुनड़ व्यापार क्षेत्र में प्रवेश होने लगा और अपने पिता के बोझ को हलका कर दिया था तो पुनड़ की शादी के लिये भी रह रह कर प्रस्ताव आने लगे पर पुनड़ की वय १६ वर्ष की ही थी अतः इतनी अल्पवय में विवाह करना शा. भीमा को उचित नहीं ज्ञात हुआ। शा. भीमा का निश्चय अनुसार तो पुत्र की बीस वर्ष की परिपक्व वय में ही गृहस्थादि गार्हस्थ्य-जीवन सम्बन्धी भार उसके शिर पर डालने का था पर माता भरत् को इतना विलम्ब कैसे सह्य हो सकता? स्त्रियाँ स्वाभाविक ही अधीर एवं किसी भी कार्य को जल्दी करने के दुराग्रह वाली होती हैं अतः वह अहर्निश अपने पतिदेव को इस विषय में कोसती। पुत्र के विवाह को जल्दी करने के लिये प्रेरित करती किन्तु गम्भीर हृदय के स्वामी शा. भीमा तो, बात में समय व्यतीत करते ही जाते। उनको अपने पुत्र के भविष्य का पूर्ण ध्यान था अतः प्रकृतिसिद्ध नियमों की परम्परानुसार एकदम गृहस्थाश्रम का भार बालक को सौंप देना उचित नहीं ज्ञात हुआ। इधर तो दम्पति अपने पुत्र के विवाह के शुभ स्वप्न देख रहे थे और उधर पुनड़ अपना विलक्षण ही मनोरथ कर रहा था। उसकी विवाह सम्बन्धी हलचल होने पर भी उसने शिशु जन्य वात्सल्य गुण से अपनी भावनाओं को अभी से प्रकट कर माता पिता के भविष्य के इरादों को निर्मूल कर संचालित करना उचित नहीं समझा इस तरह करीब दो वर्ष व्यतीत हो गये।

एक समय धर्म प्राण प्रदेश, पूज्याचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का शुभागमन मारवपुरी की ओर हो रहा था। जब मारवपुरी के श्रीसंघ को आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचार ज्ञात हुए तो हर्ष के मारे उन लोगों के रोम रोम फूल उठे। धर्मानुराग की शुभमय भावनाएं उनके हृदय में नवीन कौतुक का प्रादुर्भाव करने लगी। गुरु आगमन की खुशी में उन लोगों का हृदय सागर धर्म भावना की ऊर्मियों से ओत प्रोत हो गया। क्रमशः सूरीश्वरजी के पधारते ही श्रेष्ठि-गौत्रीय शा. देवा ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर आचार्य देव के नगर प्रवेश का शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने नगर प्रवेश करते ही मंदिरों के दर्शन किये और उपाश्रय में आकर आगत जन मण्डली को थोड़ी सी धर्म देशना दी। आचार्यश्री की देशना श्रवण कर

श्रोताओं ने अपना अहोभाग्य समझा। इस तरह सूरिजी का व्याख्यान हमेशा ही होने लगा। आचार्य देव की विचित्र एव सरस व्याख्यान शैली से चुम्बक की तरह आकर्षित हो क्या जैन और क्या जैनेतर ? क्या राजा क्या प्रजा ? व्याख्यान में स्त्री पुरुषों का ठाठ रहने लगा सूरिजी साहित्य, दर्शन, न्याय, योग आदि अनेक शास्त्रों के अनन्य विद्वान् थे अतः कभी दार्शनिक, कभी तात्त्विक, कभी योग, आसन समाधिस्वरोदय तो कभी आचार व्यवहार कभी साधुत्व जीवन का तो भी गृहस्थाश्रम के आचार विचारों का—इस तरह भिन्न २ विषयों का व्याख्यान दिया करते थे। इन सभी विषयों का विवेचन करते हुए त्याग, वैराग्य एवं आत्म कल्याण के विषयों का प्रतिपादन करना नहीं भूलते। इन सभी तात्त्विक, दार्शनिक विवेचनों में वैराग्य की भावनाएं ओतप्रोत रहती थी, कारण उस समय के महात्माओं का जीवन ही दृढ़ वैराग्य मय होता था। अतः आपश्री के व्याख्यान पुष्पों की जनानद कारी सौरभ, जन मण्डली की प्रशसा वायु से शहर की इस छोर से उस छोर तक विस्तृत होगई थी। आचार्य देव की देशना सौरभ से प्रभावित हो मधुकर की भाँति श्रोतावर्ग अपने आप ही सुवास को ग्रहण करने के लिये सूरिजी के व्याख्यान का लाभ लेता। क्योंकि

यस्य येच गुणाः सन्ति विक सन्त्येव ते स्वयम्। नहि कस्तूरिकामोहः शयथेन निवार्यते।

अस्तु, जन समाज, विशाल सख्या में आचार्यदेव के व्याख्यान को श्रवण कर अपने आपको कृत कृत्य बना रहा था। एक दिन सूरिजी ने खासकर त्याग वैराग्य के विषय का विशद विवेचन करते हुए मानव जीवन की महत्ता एवं प्राप्त अलभ्य मानव देह से धर्माराधन नहीं करने वाले मनुष्यों के मानव जीवन की निरर्थकता का दिग्दर्शन कराते हुए मानव मण्डली को उपदेश दिया कि—जो मनुष्य सुर दुर्लभ मानव देह को प्राप्त करके किञ्चत् भी धर्म साधन नहीं करते वे मानों इच्छापूरक कल्पवृक्ष को काट कर धतूरे का वृक्ष बो रहे हैं। ऐरावत हाथी को बेच कर रासभ (गर्दभ) की खरीदी कर रहे हैं। चिन्तामणि रत्न को फेंक कर ककरों को जोड़ रहे हैं। कारण मोक्ष रूप लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये भी एक मात्र कर्म भूमि में प्राप्त मानव देह ही समर्थ हैं। धर्म नहीं करने वाले को मनुष्य गति में भी अनेक दु.खों का अनुभव करना पड़ता है—१—माता की कुक्षि में जन्म लेना और उंधा लटकना, सकुचित स्थान में रहना, माता का मल मूत्र शरीर पर से बहना, प्रसूत समय की महावेदना, बाल्यावस्था के अनेक कष्ट, यौवनावस्था जन्य विषय तृष्णा का प्रादुर्भाव होना, उसकी पूर्ति के लिये सैकड़ों कष्टों को सहन कर द्रव्योपार्जन करना और वृद्धावस्था में व्याधियों का घर बन जाना शारीरिक शक्तियों का ह्रास होना, इन्द्रियों की निर्बलता, कुटुम्ब की ओर से अनादर, मृत्यु के समय असह्य अनंत वेदना का अनुभव करने रूप दुःख मय जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् पुन. मनुष्य का जन्म मिलना कितना दुर्लभ है ? अत यकायक प्राप्त हुए अवसर का सदुपयोग करना ही बुद्धिमता है। मनुष्य भव की प्राप्ति के लिये निम्न कारणों की खास आवश्यकता है तथाहि—प्रकृति का भद्रिकपना, प्रकृति की नम्रता। अमात्सर्य और दया के विशिष्ट परिणामादि अनेक आवश्यक उपादान और निमित कारणों के एकी करण होने के पश्चात् ही हमें कहीं मानव देह की प्राप्ति होना सम्भव है। अत. महानुभावों! अपने हृदय पर हाथ रख कर आप ही सोचें कि उक्त मनुष्य भव योग्य सामग्री के लिये आवश्यक गुणों में से सम्प्रति, आपके पास कितने गुण वर्तमान हैं कि जिससे पुनः मनुष्य भव प्राप्त करने की आशा रक्खी जाय।

महानुभावों! यह अलभ्य मानव योनि बहुत ही कठिनाइयों से प्राप्त हुई है। इसके द्वारा मोक्षाराधना

की जा सकती है। मानव देह के सिवाय अन्य देव, नरक, तिर्यंच आदि गतियों में मोक्ष का साधन नहीं किया जा सकता है। पर इसकी अमूल्यता को सोचे बिना कितने ही अज्ञानी जीव व्यर्थ इसे व्यर्थ में खोते हुए, संसारिक पौद्गलिक भोगों में लुब्ध हो इसमें अपने को भाग्यशाली समझते हैं पर, वे यह नहीं सोचते हैं कि सोने की थाल में मिट्टी भर कर सोने की थाल का मूल्य कम कर रहे हैं, अत्यन्त नितान्त दुरुपयोग कर रहे हैं। अथवा अमृत रस से पैरों को धोकर मूर्खता का परिचय दे रहे हैं। हाथी जैसी उत्तम सवारी पर लकड़े का भार लाद कर अकर्त्तव्य कार्य कर रहे हैं। चिन्तामणि रत्न को कंकर की तरह फैंक रहे हैं। इन मनुष्यों की इससे अधिक और अज्ञानता हो ही क्या सकती है? इस प्रकार भोग विलास एवं प्रमाद में मनुष्य जन्म को खोदेना कहां तक युक्तियुक्त है। देखिये मनुष्य जन्म की दुर्लभता के लिये शास्त्रकारों ने एक उदाहरण भी दिया है कि—

वसन्तपुर में राजा अजितशत्रु राज्य कर रहा था। उसके एक शत्रुदमन नामक पुत्र था। पिता की मौजूदगी में ही राज्य प्राप्त करने की गर्हित अभिलाषा ने उसके मन में जन्म लिया। उसने विचार कर लिया कि जब तक पिताजी मौजूद हैं तब तक मुझे राज्य मिलना असम्भव नहीं तो दुष्कर तो अवश्य ही है अतः राज्य पिपासा की बढ़ती हुई कुत्सित इच्छा ने उसके हृदय में अपने पिता को मार कर राज्य गादी पर आसीन होने की मलीन अनन्निन्दित अनादरणीय भावना को जन्म दिया। वह अपने पिता—राजा को मारने के लिये छिद्र यावत् अवसर को देखता हुआ विचरने लगा। पर—

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग्य, दाबी दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग

के अनुसार राजा को गुप्त चरों के द्वारा पुत्र की कुत्सित इच्छा की जानकारी होगई। बस उसने तुरत अपने अनुभवी वृद्ध अमात्य को बुलाकर पुत्र की आन्तरिक इच्छा को बतलाते हुए अपने हृदय के उद्गार प्रगट किये कि—मैं पुत्र को राज्य देना नहीं चाहता हूँ और अपने जीवन रक्षण को भी एक दम सुरक्षित रखना चाहता हूँ अतः इस विषय में आप अपनी अगाध बुद्धि से ऐसा सफल उपाय सोचें कि मेरी अभीष्ट सिद्धि हो सके। मंत्री ने कहा—आप कल एक सार्वजनिक सभा करें और सब के समक्ष यह कहें कि—मैं जरा जर्जरित (वृद्ध) होगया हूँ। मैं मेरा राज्य कार्य अपने पुत्र को देकर निवृत्ति पाना चाहता हूँ अतः इस विषय का कोई उचित विधि विधान किया जाय। बस आपके द्वारा इतना कहने पर ऐसा विधान बतलाऊंगा कि आप का राज्य भी आपके हाथ ही में रहेगा और जीवन रक्षण में भी किसी तरह के खतरे विघ्न की सम्भावना भी न होगी। राजा ने मंत्री के कथनानुसार नगर भर में घोषणा करवा दी कि मैं मेरा राज्य पुत्र को देना चाहता हूँ। अतः कल की सभा में सभी नागरिक उचित समय पर सभा स्थान में हाजिर हो जावें। जब-युव राजकुमार ने यह समाचार सुना तो उसको अपने किये हुए विचारों के लिये बहुत ही पश्चाताप होने लगा। वह सोचने लगा कि—अहो! मेरा पिताजी तो राज्य का मोहत्याग कर मुझे राज्य देना चाहते हैं और मैं ऐसे दुष्ट अधम निकला कि पिता जैसे पूजनीय पिता की विनय भक्ति करने के बदले हत्या करने का विचार किया।

दूसरे दिन सभा हुई जिसमें नागरिक, अमात्य मुत्सद्दी राजकुमार, मन्त्री वगैरह सब लोग उपस्थित हुए। राजा ने उपस्थित प्रजा के सामने कहा कि—मेरी वृद्धावस्था है अतः मैं मेरे पद पर पुत्र को नियुक्त

कर निवृत्ति पाना चाहता हूँ पर इसका विधिविधान शास्त्रानुकूल हो कि जिससे भविष्य में राज्यमें सब प्रकार से सुख शांति वर्तती रहे।

पण्डितों एवं ब्राह्मणों ने कहा—देव ! राजा के स्वर्गवास के बाद तो पुत्र को राज्य देने की विधि हमारे शास्त्रों में है किन्तु जीवित राजा अपने पुत्र को राज्य दे, इसकी विधि न तो हमारे शास्त्रों में है और न हम जानते ही हैं। इस पर राजा ने वृद्ध मन्त्री के सामने देखा कर कहा—मन्त्री जी ! आप तो वृद्ध एव अनुभवी हैं अत: आपकी दृष्टि में जो योग्य विधि हो, वह बतलाइये। मन्त्री ने कहा—राजन् ! मैंने मेरे पूर्वजों से सुना है कि १०८ स्तम्भ का महल बनाया जावे और एक २ स्तम्भ के १०८ पहलु हो और एक २ स्तम्भ के पास राजा और राजकुमार बैठ कर शत्तरंज खेले। स्मरण रहे कि—१०७ स्तम्भ के खेल में कुंवर जीत गया हो और एक खेल में भी राजा जीत जाय तो खेल पुन. प्रारम्भ कर दिया जावे। जब सब स्थानों पर कुंवर जीतता चला जाय तो उसी दिन कुंवर के राज तिलक कर दिया जाय। मंत्री की बुद्धिमत्ता पूर्ण यह विधि उपस्थित नागरिकों को पसद आगई और सबकी सम्मति से राजा ने तुरत महल बनवाने का आदेश दिया।

श्रोतागण ! आप सोच सकते हैं कि इस विधि से क्या कुंवर, राजा को कभी जीत सकता है ? कारण १०८ को १०८ से गुणा करने से ११६६४ की बाजी में क्या एक बार भी राजा न जीत सके ? यदि एक बार भी जीत जाय तो खेल पुन प्रारम्भ हो जाय। अत: न तो ऐसा हो और न कुंवर को राज्य ही मिले फिर भी ऐसा होना तो कदाचित् देवयोग से सम्भव भी है पर हारा हुआ मनुष्य जन्म मिलना तो देवयोग से ही असम्भव है। अस्तु, दुर्लभता से मिले हुए मनुष्य भव को मोक्ष मार्ग की आराधना कर सफल बनाना चाहिये।

सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर खूब प्रभाव पड़ा पर पुनड़ पर तो न मालूम आचार्यश्री ने उपदेश रूपी जादू ही डाल दिया ! उसने व्याख्यानान्तर्गत ही निश्चय कर लिया कि मैं सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर मनुष्य भव को अवश्य सफल बनाऊंगा। हाथ में आये हुए स्वर्णावसर को खोकर पश्चाताप करना निरी अज्ञानता है। सांसारिक सर्व मोह जन्य अनुरागान्वित सम्बन्ध निकाचित कर्मों के बन्ध के कारण भूत हैं अत मोह में मोहित होकर आत्म स्वरूप का विचार नहीं करना बुद्धिमन्ता नहीं। इत्यादि विचारों के उत्कर्ष में आचार्यदेव का व्याख्यान भी भगवान महावीर स्वामी की जयध्वनि के साथ समाप्त हुआ। क्रमश. व्याख्यान से आगत मण्डली भी स्वस्थान गई।

पुनड़ अपने घर पर गया और अपने माता पिताओं को स्पष्ट शब्दों में कहने लगा—मैं गुरुमहाराज के पास में दीक्षित होकर आत्म कल्याण करूगा—आप, आज्ञा प्रदान करें। पुनड़ की शादी का विचारमय स्वप्न देखने वाली माता पुनड़ के मुख से वैराग्य के और तत्काल की दीक्षा के शब्द कब सुन सकती थी ? वह तत्काल अचेतनावस्था को प्राप्त हुई जब जल हवा के उपचार पुन से चैतन्यता को प्राप्त हुई।

जब जल व हवा के उपचार.से चैतन्य दशा को प्राप्त हुई तो पुनड़ को अनुकूल व प्रतिकूल शब्दों से बहुत समझाने लगी परन्तु मातके सर्व प्रयत्न पानी में लकीर खेंचने के समान एक दम निष्फल हुए। पुनड़ के पिता ने पुनड़ को समझाने में कमी नहीं रक्खी किन्तु पुनड़ के वैराग्य का रंग कोई हल्दी के रग के समान अस्थिर नहीं था कि धोते ही एक दम उतर जाय। उसके हृदय में सूरीश्वरजी का व्याख्यान अच्छी तरह

रमण करता रहा था । उसने तो अपने माता पिताओं को भी आचार्यश्री का सुना हुआ व्याख्यान पुनः सुनाना प्रारम्भ कर दिया । माता ने कहा – पुनड़ ! तेरा व्याख्यान हमें पास ही रखने दे । हमने तो बड़े २ आचार्यों का व्याख्यान सुना है । पुनड़ ने कहा—बहुत से आचार्यों का व्याख्यान सुना होगा यह सत्य है, किन्तु उन व्याख्यानों से लाभ क्या उठाया ? आप स्वयं मुक्ति मार्गी होने पर भी आरम्भ अभ्यास करना नहीं चाहते हैं और जो दूसरा उसके लिये उद्यत होता है तो आप स्वयं उसके मार्ग में कंटक रूप—विघ्न भूत होजाते हैं। क्या दूसरे के निवृत्ति मार्ग में अन्तराय डालना ही आपके व्याख्यान श्रवण का सच्चा लाभ है ? इस तरह माँ बेटे और पिता पुत्र में बहुत प्रश्नोत्तर होते रहे पर पुनड़ तो अपने निश्चय में सुमेरुवत् अचल रहा। विवश, हो माता पिताओं को भगवती दीक्षा की आज्ञा देनी पड़ी । शा. धींगा ने अपने पुत्र की दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया और आचार्यश्री ने भी शुभमुहूर्त और स्थिरलग्न में १६ नर नारियों के साथ पुनड़ को भगवती जैन दीक्षा देकर पुनड़ का नाम मुनि विमलप्रभ रख दिया । विमलप्रभ में नाम के अनुसार ही गुण, तपस्तेज की अलौकिकता बुद्धि की कुशाग्रता, गम्भीरता क्षमतादि गुण भी वर्तमान थे ।

मुनि विमलप्रभ पर आचार्यदेव की अनुग्रह पूर्ण कृपादृष्टि थी मुनि विमलप्रभ भी गुरुकुल वास में रह कर विनय भक्ति, वैयावृत्य से सूरीश्वरजी को सदा संतुष्ट रखने वाला था । गुरु देव की विनय भक्ति पूर्वक वह आगमों का अभ्यास करने में संलग्न हो गया । मुनि विमलप्रभ तो पहले से ही योग्य व बुद्धिमान था ही किन्तु गुरुकृपा ही ऐसी होती है कि—"पारस ने परस भावे" अर्थात्—पत्थर पर भी अपना रंग चढ़ा देती है। मूर्ख शिरोमणि को पंडितशिरोमणि बना देती है। अस्तु, इधर तो गुरुदेव की कृपा और इधर विनय पूर्ण व्यवहार की अधिकता से मुनि विमलप्रभ को थोड़े ही समय में आगम मर्मज्ञ बना दिया। आगमों के विशिष्ट पाण्डित्य के साथ ही साथ व्याकरण, न्याय, काव्य, तर्क छंद, अलंकार, ज्योतिष, अष्टांग महानिमित्त आदि शास्त्रों की कुशलता—दक्षता को प्राप्त करने में भी किसी प्रकार की कसर नहीं रखते थे। मुनि विमलप्रभ ने अनवरत परिश्रम, कर तत्कालीन सकल शास्त्रों भाषाओं एवं विद्याओं में—विमल आकाश में शोभायमान षोडश कला से परिपूर्ण कलानिधि के समान पूर्णता प्राप्त करली । १४ वर्ष के गुरुकुल वास में ही वह अनन्य अमोघ विद्वान हो गया यही कारण है कि आचार्य कक्कसूरिजी ने उपकेशपुर में मुनि विमलप्रभ को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर अपने पट्टपर विभूषित किया । सूरि पद महोत्सव में विरहु गौत्री शा [illegible] ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किये । पश्चात् आपका नाम परम्परागत क्रमानुसार श्री देवगुप्त सूरि रख दिया ।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि सूर्य के सदृश तेजस्वी एवं चंद्र की भांति शीतल व सौम्य गुण युक्त थे । सूरिपद के समय की २० वर्ष की वय—जो तरुणावस्था कही जा सकती है—अलौकिक दीप्ति से देदीप्यमान थी अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन की दीप्त आभा व उसमें मिली हुई तपस्तेज की प्रखरता उनके सूरि पद को और भी अधिक शोभायमान कर रही थी । उस समय की आचार्यदेव की प्रभा सहस्र रश्मिधारक प्रभाकर की प्रभा को भी लज्जित कर रही थी । आपश्री के उपदेश शैली की सरसता रोचकता जनता की अन्तरात्मा को स्पर्श करने वाली व श्रोताओं के मनको हर्षित करने वाली थी । षड् द्रव्य एवं षड् दर्शन के तो आप परम ज्ञाता थे । आपके व्याख्यान में साधारण जनता ही नहीं अपितु बड़े २ राजा महाराजा एवं धुरंधर पण्डित भी उपस्थित होते थे । सब आचार्यदेव के व्याख्यान की मुक्तकण्ठ से भूरि २ प्रशंसा करते थे ।

आचार्य देवगुप्तसूरि मरुधर में विहार करते हुए और जैन जनता में धर्मप्रेम की अपूर्व, अलौकिक

विचित्र क्रान्ति पैदा करते हुए माण्डव्यपुर, शत्पुर, असिकादुर्ग, खटकूप, मुग्धपुर, नागपुर, कुर्चपुर, मेदिनीपुर, पलीपुर, पाल्हिकापुर नारदपुरी, शिवपुरी, होते हुए चन्द्रावती पधारे। सर्व स्थानों पर आपश्री का श्रीसंघ द्वारा अच्छा सत्कार हुआ। आपश्री ने भी क्षेत्रानुकूल कुछ २ दिनों की स्थिरता कर धर्म से शिथिल बने हुए व्यक्तियों को पुन. कर्तव्य मार्ग पर आरूढ़ किया। नवीन जैन बनाने के प्रयत्नों में पूर्ण सफलता प्राप्त की। धर्म प्रचारार्थ विचरते हुए अन्य शिष्यों के उत्साह में वृद्धि की। इस तरह धर्म क्रान्ति की चिनगारियां बिखरते हुए जब चन्द्रावती में पधारे तो वहां के जन समाज के हर्ष का पारावार नहीं रहा। सबके मुख पर हर्ष की नवीन ज्योति चमकने लगी। श्रीसंघ ने अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यदेव का नगर प्रवेश महोत्सव किया। अन्त में श्रीसंघ के अत्याग्रह से चातुर्मास भी चन्द्रावती में ही करने का निश्चय किया। इस चातुर्मास के लम्बे अवसर में चन्द्रावती धर्मपुरी बनगई। एक दिन आचार्यश्री ने अपने व्याख्यान में शत्रुञ्जय तीर्थ के महात्म्य का व तीर्थयात्रा के लिये निकाले हुए संघ से प्राप्त हुए पुण्य का बहुत ही प्रभावोत्पादक वर्णन किया। अत प्राग्वट्ट वंशीय शा रोढ़ा ने शत्रुञ्जय का संघ निकालने के लिये उद्यत हो गया और व्याख्यान में ही चतुर्विध श्रीसंघ से संघ निकालने के लिये आदेश मांगने लगा। संघ ने सहर्ष आदेश प्रदान किया और चातुर्मास के बाद आचार्यदेव के नेतृत्त्व और शा रोढ़ा के संघपतित्व में शत्रुञ्जय की यात्रा के लिये शुभमुहूर्त में संघ ने प्रस्थान कर दिया। क्रमश तीर्थयात्रा के अक्षय पुण्य को सम्पादन करके संघ पुन' स्वस्थान लौट आया और सूरीश्वरजी वहां से विहार कर सौराष्ट्र प्रान्त में होते हुए कच्छ में पधार गये। वहां की जनता को जागृत करते हुए क्रमश आपने सिंध प्रान्त में प्रवेश किया। सिंधधारा में तो आपके आगमन के पूर्व भी बहुत से आपश्री के शिष्य धर्म प्रचार कर रहे थे अब. यकायक आचार्य श्री के आगमन के शुभ समाचार श्रवण कर तत्रस्थ शिष्य मण्डली के उत्साह एवं हर्ष का पारावार नहीं रहा। वे लोग अपने प्रचार कार्य को और भी उत्साह एवं साहस के साथ सम्पन्न करने लगे।

एक समय सूरिजी महाराज जंगल की उन्नत भूमि पर अपनी शिष्य मण्डली के साथ विहार करते हुए जारहे थे। मार्ग में एक शेर के साथ एक बकरे को बड़ी वीरता से सामना करते हुए देखा। इसको देख सूरिजी ने विचार किया कि—यह कैसी वीर भूमि है कि शेर जैसे विकराल, हिंसक पशु के साथ इस भूमि पर बकरा भी सामना करने में किञ्चित भी हिचकिचाता नहीं। बस सूरिजी भी वहा पर बैठ कर कुछ समय विश्रान्ति लेने लगे। उसी समय सामने से कुछ घुड़ सवार आते हुए दिखाई दिये। वे संख्या में इतने थे कि उनके घोड़ो की रज से सूर्य का तेज भी प्रच्छन्न हो गया था। दिशाएं रज रञ्जित हो गई। उनके पीछे कितने मनुष्य थे इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। जब घुड़ सवार सूरिजी के नजदीक आये तो मुख्य सवार के मुख पर अलौकिक तेज पुञ्ज चमकता हुआ दिखाई दिया। नृपोचित राजतेज ने सूरिजी के हृदय में अपने आप इन भावनाओं का प्रादुर्भाव कर दिया कि ये अवश्य ही किसी प्रान्त के नरेश हैं। इधर उस आचार्यदेव को देख कर अश्व से उतर कर नमस्कार किया। सूरीश्वरजी ने उच्च स्वर से उन्हे आर्य्य शब्द से संबोधन कर धर्मलाभ दिया। सवार को स्थिरता से खड़ा हुआ देख कर सूरिजीने धर्मोपदेश सुनने का इच्छुक समझ कर कहा—महानुभाव आर्य! आप कुछ धर्मोपदेश सुनना चाहते हो। सवार ने कहा—जी हां। बाद ज्यों ज्यों सवार आते गये त्यों त्यों मुख्य पुरुष का अनुकरण करउनके पास बैठते गये इस प्रकार १००० पुरुष सूरिजी के सामने होगये। और सब यथा स्थान बैठ गये।

सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे। उस समय पंजाब में म्लेच्छों का आना जाना एवं आक्रमण प्रारम्भ था अतः आचार्यदेव ने अपना धर्मोपदेश मानव जन्म की दुर्लभता से प्रारम्भ करते हुए कहा कि—महानुभाव ! इस चक्रवाल रूप संसार में जितने जीव दृष्टि गोचर होते हैं वे सब अपने २ किये हुए शुभा शुभ कर्मों के फल स्वरूप उनका संवेदन करने के लिए अनेक योनियों में परिभ्रमण करते रहते हैं। इन सब ८४ लक्ष जीव योनियों में एक मनुष्य योनि ही ऐसी है कि जिसमें कुछ आत्म साधन करने योग्य धर्म कर्म किया जा सकता है। मनुष्य योनि में भी दो प्रकार के मनुष्य हैं एक आर्य दूसरा अनार्य। इनमें आर्य व्यक्तियों के रहन सहन, खान पान, आचार विचार, दृढ़ नियम, धर्म, कर्म अच्छे होते हैं। उनमें हिताहित सोचने की बुद्धि होती है वे दयावान होते हैं। बिना अपराध किसी भी जीव को तकलीफ नहीं देते हैं। दुःखी जीवों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ—यदुवंशावतंस भगवान् नेमिनाथजी—जो श्रीकृष्ण के लघुभ्राता थे—अपने विवाह के कारण एकत्र किये हुए पशुओं को दुःखी देख उनको दुःख मुक्त करने के लिये बिना विवाह किये ही तोरण पर से पुनः लौट गये। वीर क्षत्रियों की दया के विषय में इनके सिवाय भी अनेकानेक उदाहरण विद्यमान हैं। पर अनार्य इनसे विपरीत होते हैं। उनके हृदय में दया को अणु भी स्थान नहीं होता धन की तृष्णा में मनुष्य को—मनुष्य नहीं समझते हैं। मनुष्य को क्या पर छोटे २ बच्चों एवं आक्रंदन करती हुई औरतों को जो हिन्दुओं के लिये शास्त्र दृष्टि से अवध्य कहे गये हैं। उन्हें निर्दयता से बिना किसी संकोच के मार डालते हैं उनके सतीत्व को लूट लेते हैं अस्तु, म्लेच्छों जैसा मनुष्यत्व प्राप्त करना तो पशुओं से भी हलके दर्जे का है। अर्थात्—इन अनार्य पुरुषों की अपेक्षा तो पशु भी अच्छे हैं कि जिनके हृदय में कुछ दया होती है।

अनार्य का नाम सुनते ही सवार का चेहरा तमतमा गया। उसके मुख पर हार्दिकोद्दीप्त तात्कालिक आवेश के भाव दृष्टिगोचर होने लगे। उसमें कुछ वीरत्व उमड़ आया। निर्दय अनार्यों के प्रति घृणा एवं द्वेष की स्पष्ट झलक, झलकने लगी। म्लेच्छों की निष्ठुरता उसके नेत्रों के सामने मानो चित्रित होगई। वह व्याख्यानों के बीच में ही आवेश में बोल उठा—गुरुदेव ! आपका कथन सर्वथा सत्य है अनार्य निर्दय निष्ठुर क्रूर, पापी, विश्वासघाती स्त्रियों के सतीत्व के लूटने वाले होते हैं। मनुष्य कहलाते हुए भी [illegible] तीव्र कर्मों से पराङ्मुख अधर्म के कर्ता होते हैं। महात्मन् ! उनकी इसी निर्दयता के कारण हम लोग इधर उधर भटक रहे हैं। हम पंजाब से आये और आत्मरक्षा के लिए आगे बढ़ रहे हैं। प्रभो ! न जाने भविष्य में क्या होगा ? आप महात्मा हैं अतः आशीर्वाद दें जिससे कि हम सुखी बनें। इस तरह वह सूरीश्वरजी की सभा में अपने मनोगत भावों का वर्णन एवं आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगा।

उसके ही पास में बैठे हुए दूसरे आदमियों ने मुख्य सवार का परिचय कराते हुए कहा कि—महात्मन् ! ये यदुवंशी राव गोसल हैं और म्लेच्छों के भय से हम सब इधर आये हैं। हमारा अहोभाग्य है कि आप जैसे महात्माओं के दर्शन हो गये। महात्माओं के लिये सकल परिवार है। महात्मा देख कर बता सकते हैं। अतः आप आशीर्वाद दीजिये कि सब तरह का आनंद मंगल हो जाय। विघ्न की शांति हो जाय अर्थात् विघ्न शांति हो दुःख सुख में परिवर्तित हो जाय।

सूरिजी—आप घबराते क्यों हो ? धर्म के प्रभाव से सब अच्छा ही होगा आगे तो आप ही स्वयं राजा राव ही बनेंगे। महानुभावों ! आप तो इस सनातन अहिंसामय धर्म की शरण लो। धर्म एक ऐसी

वस्तु है कि जिसकी आराधना एवं उपासना से इस लोक और परलोक में जीव को सुख शान्ति एवं आनद मिलता है। नीति कारों का कथन है कि—

चला लक्ष्मीश्चलाःप्राणाश्चले जीवित मन्दिरे। चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥

अर्थात्— लक्ष्मी चचल है। प्राण, जीवन और घर भी अस्थिर है। इस विनश्वर एवं क्षण भंगुर ससार में धर्म ही एक निश्चल है।

धर्मः शर्म परत्रेचह च नृणां धर्मोन्धकारे रविः। सर्वापत्तिशमक्षमः सुमनसां धर्माभिधानोनिधिः ॥
धर्मो बन्धुरबान्धवः पृथुपथे धर्मः सुहन्निश्चलः। संसारोरुमरूस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात्परः ॥

मनुष्यों को धर्म ही इस लोक और परलोक में (उभयलोक में) सुख देने वाला है। धर्म ही अज्ञानान्धकार के लिये सूर्य के समान है। धर्म नामक वृहन्निधि सज्जनों की सर्व आपत्तियों को शमन करने में समर्थ है धर्म ही दीर्घ अरण्यमय मार्ग में बन्धुरूप है और धर्म ही निश्चल मित्र है। ससार रूपी मारवाड़ की भूमि के लिये धर्म के सिवाय अन्य कोई कल्पवृक्ष नहीं। धर्म ही कल्पवृक्ष है

धर्मो दुःख दवानलस्य जलदः सौख्येक चिन्तामणिः। धर्मं शोक महोरगस्य गरुडो धर्मो विपत्त्रायकः।
धर्मः प्रौढ़ पदप्रदर्शन पटुर्धर्मोऽद्वितीयः सख्य। धर्मो जन्मजरा मृतिक्षय करो, धर्मो हि मोक्ष प्रदः।

अर्थात्— धर्म ही दुःख रूप दावानल को शान्त करने में मेघ के समान है। धर्म प्राणियों को सुख देने में चिन्तामणि रत्न के समान है। धर्म शोक रूप महासर्प के लिये गरुड़ के समान है। धर्म विपत्ति से रक्षण करने वाला अर्थात् विपत्ति का नाश करने वाला है। धर्म उच्च स्थान को दिखलाने में कुशल है। धर्म अद्वितीय मित्र समान है। धर्म जन्म, जरा और मृत्यु को क्षय करने वाला है तथा धर्म ही मोक्ष को देने वाला है। अस्तु,

राजन्! धर्म की शरण ही उत्तम एव माङ्गलिक रूप है। महाभारत जैसे शास्त्रों में भी धर्म के विषय में कहा है कि—

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। एष संक्षेपतो धर्मः, कामादन्यः प्रवर्तते ॥

जो कार्य अपनी आत्मा से प्रति कूल हो अर्थात्—जिन कार्यों से अपनी आत्मा को दुःख पहुँचता हो वे कार्य दूसरे प्राणियों के लिये भी उसी प्रकार दुःखोत्पादक होते हैं ऐसा सोच कर वैसे कार्य नहीं करना ही सक्षेप में धर्म का श्रेष्ठ स्वरूप है। इसके सिवाय दूसरे धर्म तो अपनी २ इच्छा से प्रवर्तीये हुए हैं। धर्म का सक्षिप्त से सार समझाया—

सूरिजी ने बड़े ही मधुर वचनों से धर्म का महत्त्व बतलाया और कहा कि—प्रकृतितः मनुष्य को आत्म कल्याण की अपेक्षा भौतिक सुखों की पिपासा अधिक रहती है किन्तु ये पौद्गलिक पदार्थ अस्थिर एव सड़न, पड़न, गलन, विध्वसन स्वभाव वाले हैं अत. इनसे मोह जोड़ना अपनी आत्मा को अपने आप धोखा देना है। सूरिजी की इस व्याख्यान शैली एव समय सूचकता ने उनको इतना प्रभावित किया कि उन्होंने तत्काल ही अपने सब साथियों के साथ आचार्यदेव के पास में जैनधर्म अर्थात अहिंसाधर्म को स्वीकार कर लिया। एव सूरिजी ने वर्द्धमान विद्या से सिद्ध किया ऋद्धि सिद्धि संयुक्त वासक्षेप दे कर उन वीर क्षत्रियों का उद्धार किया। तत्पश्चात् सूरिजी ने राव गोशलादि से पूछा कि महानुभावों अब आप किस ओर जावेंगे। वीर क्षत्रियों ने कहा पूज्यवर! हमको तो आज चिन्तामणि से भी अधिक गुरुदेव का शरणा मिल

गया है हम सब आपके चरणारविन्द में निर्भय हैं आप भक्तवत्सल हैं ऐसी कृपा करावे कि हम हमारी पूर्वावस्था को पाकर सुखी बनें ? इस पर सूरिजी ने अपनी आँखों से देखी हुई भूमि की ओर संकेत किया और कहा कि रावजी यदि इस भूमि को आप अपना लें तो आपका अभ्युदय होगा। बस फिर तो कहना ही क्या था राव गोसल ने उस वीर भूमि पर नगर बसाने के लिये वहीं रोप दी एवं दृढ़ संकल्प करके कार्य प्रारम्भ कर दिया सूरिजी ने राव गोसल से कहा रावजी आप अपने इष्ट को सदैव स्मरण में रखना रावजी ने सूरीजी का आशीर्वाद रूप वचन को तथाऽस्तु कह कर शिरोधार्य कर लिया इधर तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ रवाने हुए और इधर रावजी ने अपने वीर क्षत्रियों को नया नगर निर्माण करने का आदेश दे दिया साथ में यह भी कह दिया कि उसस पहले भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की नींव खोदनी चाहिये बस! उन लोगों ने ऐसा ही किया उस समय मन्दिर की नींव खोदते समय भूमि से अक्षय निधान निकला आप जिसको देख कर राव गोसलादि सब के हर्ष का पार नहीं रहा और आचार्य देवगुप्तसूरिजी पर उन सबकी इतनी श्रद्धा होगई कि एक सिद्ध पुरुष पर होजाती है बस फिर तो कहना ही क्या था बहुत ही शीघ्रता के साथ नगर बसाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। कई क्षत्रियों को पुनः पंजाब भेजकर अपने सब कुटुम्ब को वहाँ बुला लिया क्रमशः उस नगर का नाम गोसलपुर रख दिया। गोसलपुर का राजा रावगोसल को ही बनाया गया। राव गोसल सूरिजी महाराज के वचनों को एक सिद्ध पुरुष की भांति मान करते रहे। इस तरह समय के जाते हुए वह नगर इधर उधर की दूसरी आबादी से हर एक बातों में समृद्ध, व्यापारी एवं सम्पन्न हो गया। उपकेशवंशियों के साथ रावजी की जाति 'आर्य' कहलाने लगी क्योंकि आचार्य देव ने उन सबों को पहले आर्य शब्द से सम्बोधित किया था। तथा उपकेश वंशियों के साथ रोटी बेटी व्यवहार भी प्रारम्भ होगया। अभी तक क्षत्रियों से नवीन ही मिलते हुए होने के कारण उनके उपकेशवंशियों के सिवाय राजपूतों से भी खान पान, शादी वगैरह व्यवहार चालू थे। पूर्वाचार्यों की कुछ ये भी यही मान्यता थी कि किसी क्षेत्र को संकुचित करना पतन का कारण है—उन लोगों को मांस मदिरादि पाप व्यसनों के त्याग मुकर्रर करवा दिया था।

राव गोसल के १४ पुत्र पंजाब में रहे और आठ पुत्र उनके पास गोसलपुर में रहे। गोसलपुर में रहने वाले पुत्रों के नाम वंशावली कारों ने निम्न लिखे हैं— १ आसल २ पासल, ३ रामा, ४ सुमन, ५ रामपाल, ६ भीम ७ छांगड़, और ८ ठेमार।

आचार्य देवगुप्तसूरि एक बार विहार करते हुए गोसलपुर पधारे। रावगोसल ने सूरिजी का बड़े ही उत्साह से स्वागत किया। सूरिजी ने रावजी को धर्मोपदेश दिया। रावजी ने सूरिजी का परमोपकार माना! आनन्द गद्गद् स्वर में प्रार्थना की—भगवन्! आपके उपकार से मैं इस भव में तो क्या ? पर भव २ में भी उऋण नहीं होसकूँगा फिर भी कृपा कर मेरे लायक कुछ कार्य फरमावें। सूरिजी ने कहा—राजन्! हम निस्पृही निर्ग्रन्थों के काम ही क्या हो सकता है ? हम उपदेशक हैं, हमारा काम तो संसारी जीवों को सद् बोध देकर उनका उद्धार करने का है।

● वंशावलियों एवं पट्टावलियों में ऐसा लिखा है कि राव गोसल का बेटी व्यवहार उपकेशवंशियों के अलावा ११ पुश्त तक राजपूतों के साथ भी रहा पर १२ पीढ़ी के बाद में किसी विशेष कारण से राजपूतों के साथ उनका बेटी व्यवहार बंद होगया तथापि वे विक्रम की सोलहवीं शताब्दी पर्यंत वीरता के साथ राजतंत्र चलाते रहे।

राजा ने बड़ी नम्रता के अर्ज की कि—भगवन् ! आपने मुझ निराश्रित को आशीर्वाद देकर राजा बनाया यह तो आपका परमोपकार है ही पर मुझे अज्ञान से बचाकर धर्म की राह में लगादिया इस उपकार को वर्णों से व्यक्त करना अशक्य है। मैं भव भव में आपका इस उपकार के लिए ऋणी रहूँगा। प्रभो! केवल मैं ही नहीं पर मेरी सन्तान परम्परा भी आपके उपकार को समझेगी एवं मानती रहेगी।

पूज्य गुरुदेव ! भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर तैयार हो गया है। अत: इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ करें। विशेष में आपश्री यहां चातुर्मास कर हमारे सबके मनोरथों को सफल करें। यद्यपि गोसलपुर की नींव डाले को अभी पूरे पांच वर्ष भी नहीं हुये किन्तु कई प्रकार सुविधाओं के कारण बहुत से मनुष्य आकर उक्त नूतन नगर में बस गये थे अत देवगुप्तसूरि के चातुर्मास करने योग्य नगर बनगया था।

जिस समय सूरिजी गोसलपुर में पधारे थे उस समय गोसलपुर में न तो आलीशान उपाश्रय थे और न सुदर धर्मशालाए ही थी। घास एव बांस से बने हुए झोपड़ों की हरमाल दृष्टिगोचर हो रहीं थी इन सब घरों की सख्या करीब करीब ४ ५ हजार की थी। यद्यपि एक नूतनता के कारण, चाहिये उतने साधन उपलब्ध न हो सके फिर भी गोसलपुर की जनता की श्रद्धा भरी भक्ती ने सूरिजी को इतना आकर्षित किया कि उन्हें; यह चातुर्मास गोसलपुर में करना ही पड़ा। गोसलपुर के चातुर्मास निश्चय के पश्चात आचार्य देवने अपने अन्य साधुओं को तो आस पास के क्षेत्रों में विहार करने एव धर्म प्रचार करते हुए योग्य स्थलों पर योग्य मुनियों के साथ चातुर्मास करने के लिये भेज दिये और आप स्वय १०० तपस्वी साधुओं के साथ गोसलपुर में ठहर गये। बस सूरिजी के विराजने से जगल में भी मगल हो गया सर्वत्र आनद की एक अलौकिक एव अपूर्व रेखा दृष्टिगोचर होने लगी। आसपास के क्षेत्र वालों ने जब आचार्यश्री का गोसलपुर चातुर्मास करने के निश्चय को सुना तो उनमें से बहुतसों ने चातुर्मास में आचार्यश्री की सेवा का लाभ लेने के लिये गोसलपुर में आकर चातुर्मास पर्यन्त स्थिर वास कर लिया। गोसलपुर राज्य की सुव्यवस्था, एवं गोसलपुर नरेश की दयालुता तथा सर्व प्रकार की सुविधाओं से आकर्षित हो बहुत से मनुष्यों ने तो अपना सर्वदा के लिये सर्वथा स्थायी निवास बना लिया। सारांश यह कि—दिन प्रतिदिन गोसलपुर ग्राम्यावस्था को त्याग कर भव्य शहर का रूप धारण कर रहा था।

ऐसे तो गोसलपुर का प्राकृतिक दृश्य—पहाड़ी स्थान होने से एकदम चित्ताकर्षक था ही किन्तु आसपास की इस नवीन एवं घनी आबादी ने उन स्थानों पर यत्र तत्र झोपड़े बनाकर प्रकृतिक सौन्दर्य गुण में कृत्रिम सुन्दरता की अभिवृद्धि की। चारों तरफ हरी २ हरियाली की अधिकता, विविध प्रकार के वृक्षों की आड़ीटेढ़ी एव सम श्रेणिया लताओं की विस्तृतता, विचित्र २ पुष्पों की सौरभ एवं वहां पर निवास करने वाले मनुष्यों के भद्रिक हृदय एकबार तो जन-मनको स्वभाविक आकर्षित करलेते। आचार्यदेव के विराजने से नूतन नगर वनस्थली—धर्मपुरी बनगई। जगली पन का गुण धर्मरूप में परिणित हो गया। नवीन आगन्तुकों वृद्धि ने गोसलपुर की शोभा एव वहां के निवासियों के उत्साह में वृद्धि करदी।

सूरीश्वरजी के विराजने से ऐसे तो सबको ही लाभ मिला पर, रावगोसल को कुछ विशेष धर्मलाभ प्राप्त हुआ। जैनधर्म का प्रचार * करना तो उन महात्माओं के नसों में ही नहीं अपितु रोम रोम में

* जैन धर्म का प्रचार करना यह कोई साधारण शिशुक्रीडा किंवा गुड़ियाओं का खेल नहीं है। इसके लिये प्रचारकों के हृदय में आत्मसमर्पण की उदार भावनाए होनी चाहिये। उनको अपनी सुविधा, असुविधा, सुख दु:ख, प्रवास,

को बुला कर आदेश दे दिया। पित्राज्ञा पालक वे पुत्र भी उनकी आदेशनानुसार संघ के लिये आवश्यक सामग्री को एकत्रित करने में संलग्न बन गये। सब कार्य के लिये ठीक प्रबन्ध होने पर राव गोसल ने चारों ओर आमत्रण पत्रिकाए भेज दी। शुभमुहूर्त पर संघ गोसलपुर में विशाल संख्या में एकत्रित हो गया। आचार्यश्री ने भी समय पर राव गोसल को वासक्षेप एवं मंत्रों द्वारा संघपति बना दिया। शुभमुहूर्त में आचार्यश्री के नायकत्व और राव गोसल के संघपतित्व में संघ ने तीर्थश्री शत्रुँजय की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। क्रमशः संघ ने तीर्थश्री शत्रुञ्जय का दर्शन स्पर्शन पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि शुभकार्य कर अपने को भाग्य शाली बनाया। अष्टान्हिका महोत्सव एव ध्वजारोहणादि उत्सव करके अपने जीवन को सफल बनाया। राव गोसल प्रभृति नूतनश्रावकों ने तो श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर खूब ही आनन्द मनाया। कई साधुओं के साथ यात्रा कर श्रीसंघ, वापिस स्वस्थान लौट आया और आचार्यदेव अपने शिष्यों के साथ कई दिनों के लिये तीर्थ की शीतल एव पवित्र छाया में ठहर गये। वहां पर कुछ दिनों के पश्चात् कई वीर सन्तानिये मुनिवर्ग पृथक् २ स्थानों से संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये आये जब उनको आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी के शत्रुञ्जय तीर्थ पर विराजने के समाचार ज्ञात हुए तो वे तत्काल सूरीश्वरजी की सेवा में वन्दनार्थ आये। उन्होंने आचार्य श्री की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए कहा कि—पूज्यवर! आपश्री के पूर्वाचार्य ने तथा आपने अनेक उपसर्गों एव परिषहों को सहन कर जो जैन शासन की सेवा की एवं कर रहे है, उसके लिये समाज आपका चिरऋणी है। ऐसे तो जैनेतरों को जैन बनाकर महाजन संघ की सतत वृद्धि करते रहने का श्रेय आपश्री के पूर्वाचार्यों ने सम्पादन किया ही हैं किन्तु, महापुरुषों के अनुपम आदर्श का अनुसरण कर आपश्री ने जैनधर्म की प्रभावना करने में कुछ भी कसर नहीं रक्खी। एतदर्थ आपका जितना आभार माना जाय उतना ही थोड़ा है। जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही अल्प है। इसके प्रत्युत्तर में सूरीश्वरजी ने फरमाया—बन्धुओं! इसमें धन्यवाद की एव आभार स्वीकार करने की जरूरत ही क्या है? यह तो मुनित्व जीवन को अपनाने के पश्चात् मुनियों के लिये खास कर्तव्य रूप हो जाता है। सुखोपभोग की अभिलाषाओं को तिलाञ्जली देकर पौद्गलिक सुखों पर लात मार सम्पन्न घर को छोड़ आत्म कल्याण के लिये निकलने वाले मुनिवर्ग यदि अपने उक्त कर्तव्य को विस्मृत कर पुन. सांसारिक प्रपञ्चों के समान मुनित्व जीवन में नवीन प्रपञ्च उपस्थित करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं तो वे साधुत्ववृत्ति के नियमों एव कर्तव्यों से कोसा दूर हैं श्रमण बन्धुओं! अपनी तो शक्ति ही क्या है? किन्तु अपने से पूर्व पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्यों एव भगवान् महावीर के आचार्यों ने जो जैनधर्म की अमूल्य सेवा की है उसका हम वर्णों से वर्णन करने में भी असमर्थ हैं। उन महापुरुषों ने लाखों ही नहीं पर करोड़ो जैनेतरों को सद्धर्म का बोध देकर जैन बनाया। अनेकों का आत्मकल्याण किया। अनेक शासन प्रभावक अलौकिक कार्य किये किन्तु उन्होंने इन सब महत्व पूर्ण कार्यों में मान का एव महत्त्व का छत्र प्राप्त करने की किञ्चित् भी भावना नहीं रक्खी। यदि वे प्रशसा एव सम्मान के ही भूखे होते तो इतना कार्य कभी नहीं कर सकते। कार्य करने की विशालता आत्मा के आन्तरिक भावों की उत्कर्षता पर अवलम्बित है। एव प्रशसा प्राप्ति की कुत्सित इच्छा उन्नति मार्ग की बाधिका है। अत मानापमान, सुख, दुःख की परवाह किये विना अपने कर्तव्य मार्ग में संलग्न रहना साधुत्व जीवन को उन्नत बनाना है। जितना कार्य मनुष्य सादगी को अपना कर कर सकता है उतना कार्य बनावटी आडम्बरों एव मान महत्त्व के गुलामों से नहीं हो सकता है। आचार्यश्री स्वयंप्रभ

को बुला कर आदेश दे दिया। पित्राज्ञा पालक वे पुत्र भी उनकी आदेशनानुसार संघ के लिये आवश्यक सामग्री को एकत्रित करने में सलग्न बन गये। सब कार्य के लिये ठीक प्रबन्ध होने पर राव गोसल ने चारों ओर आमन्त्रण पत्रिकाएं भेज दी। शुभमुहूर्त पर संघ गोसलपुर में विशाल संख्या में एकत्रित हो गया। आचार्यश्री ने भी समय पर राव गोसल को वासक्षेप एवं मंत्रों द्वारा सघपति बना दिया। शुभमुहूर्त में आचार्यश्री के नायकत्व और राव गोसल के संघपतित्व में सघ ने तीर्थश्री शत्रुँजय की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। क्रमशः सघ ने तीर्थश्री शत्रुञ्जय का दर्शन स्पर्शन पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि शुभकार्य कर अपने को भाग्य शाली बनाया। अष्टान्हिका महोत्सव एव ध्वजारोहणादि उत्सव करके अपने जीवन को सफल बनाया। राव गोसल प्रभृति नूतनश्रावकों ने तो श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर खूब ही आनन्द मनाया। कई साधुओंके साथ यात्रा कर श्रीसंघ, वापिस स्वस्थान लौट आया और आचार्यदेव अपने शिष्यों के साथकई दिनों के लिये तीर्थ की शीतल एवं पवित्र छाया में ठहर गये। वहां पर कुछ दिनों के पश्चात् कई वीर सन्तानिये मुनिवर्ग पृथक् २ स्थानों से संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये आये जब उनको आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी के शत्रुञ्जय तीर्थ पर विराजने के समाचार ज्ञात हुए तो वे तत्काल सूरीश्वरजी की सेवा में वन्दनार्थ आये। उन्होंने आचार्य श्री की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए कहा कि—पूज्यवर! आपश्री के पूर्वाचार्य ने तथा आपने अनेक उपसर्गों एव परिषहों को सहन कर जो जैन शासन की सेवा की एव कर रहे है, उसके लिये समाज आपका चिरऋणी है। ऐसे तो जैनेतरों को जैन बनाकर महाजन संघ की सतत वृद्धि करते रहने का श्रेय आपश्री के पूर्वाचार्यों ने सम्पादन किया ही हैं किन्तु, महापुरुषों के अनुपम आदर्श का अनुसरण कर आपश्री ने जैनधर्म की प्रभावना करने में कुछ भी कसर नहीं रक्खी। एतदर्थ आपका जितना आभार माना जाय उतना ही थोड़ा है। जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही अल्प है। इसके प्रत्युत्तर में सूरीश्वरजी ने फरमाया—बन्धुओं! इसमें धन्यवाद की एव आभार स्वीकार करने की जरूरत ही क्या है? यह तो मुनित्व जीवन को अपनाने के पश्चात् मुनियों के लिये खास कर्तव्य रूप हो जाता है। सुखोपभोग की अभिलाषाओं को तिलाञ्जली देकर पौद्गलिक सुखों पर लात मार सम्पन्न घर को छोड़ आत्म कल्याण के लिये निकलने वाले मुनिवर्ग यदि अपने उक्त कर्तव्य को विस्मृत कर पुन' सांसारिक प्रपञ्चों के समान मुनित्व जीवन में नवीन प्रपञ्च उपस्थित करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं तो वे साधुत्ववृत्ति के नियमों एव कर्तव्यों से कोसों दूर हैं श्रमण बन्धुओं! अपनी तो शक्ति ही क्या है? किन्तु अपने से पूव पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्यों एवं भगवान् महावीर के आचार्यों ने जो जैनधर्म की अमूल्य सेवा की है उसका हम वर्णों से वर्णन करने में भी असमर्थ हैं। उन महापुरुषों ने लाखों ही नहीं पर करोड़ो जैनेतरों को सद्धर्म का बोध देकर जैन बनाया। अनेकों का आत्मकल्याण किया। अनेक शासन प्रभावक अलौकिक कार्य किये किन्तु उन्होंने इन सब महत्व पूर्ण कार्यों में मान का एव महत्त्व का छत्र प्राप्त करने की किञ्चत् भी भावना नहीं रक्खी। यदि वे प्रशसा एवं सम्मान के ही भूखे होते तो इतना कार्य कभी नहीं कर सकते। कार्य करने की विशालता आत्मा के आन्तरिक भावों की उत्कर्षता पर अवलम्बित है। एव प्रशसा प्राप्ति की कुत्सित इच्छा उन्नति मार्ग की बाधिका है। अतः मानापमान, सुख, दु ख की परवाह किये बिना अपने कर्तव्य मार्ग में संलग्न रहना साधुत्व जीवन को उन्नत बनाना है। जितना कार्य मनुष्य सादगी को अपना कर कर सकता है उतना कार्य बनावटी आडम्बरों एव मान महत्त्व के गुलामों से नहीं हो सकता है। आचार्यश्री स्वयंप्रभ

भरा हुआ था। वे धर्म की प्रभावना एवं उन्नति में अपनी व मुनि समाज की सुखाभिवृद्धि को भी [illegible] समझते थे। यही कारण था कि गोसलपुर की नवीन आबादी । को जैनधर्म का असली एवं स्थायी पाठ पढ़ाने के लिये आचार्यदेव ने अपने भौतिक सुखों की परवाह किये बिना ही वहां पर चातुर्मास कर दिया। एक ओर तो सूरीश्वरजी का व्याख्यान हमेशा होता था और दूसरी ओर शेष मुनि गोसलपुर की जनता के श्रावकों को नित्य क्रिया एवं आचार विचार की शिक्षा देकर जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धावान् बना रहे थे।

इस तरह चातुर्मास सानंद धर्मोराधना पूर्वक समाप्त होगया। चातुर्मास के समाप्त होते ही भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही धूमधाम से करवाई गई। राव गोसल के लिये मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठा करवाने का जैनधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् पहिला ही मौका था अतः उनके उत्साह एवं हर्ष का पारावार नहीं रहा। उन्होंने पुष्कल द्रव्य का व्यय कर आये हुए स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी में एक सुवर्ण मुद्रिका और सवा सेर का मोदक दिया। याचकों को तो मधुर परिमाण में दान दिया था। उन्होंने आर्य जाति के यशोगान से गगन गुंजा दिया।

इस तरह आचार्यदेव की परम कृपा से जिनालय की प्रतिष्ठा का कार्य होते ही राव गोसल ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक सूरीश्वरजी के चरण कमलों में अर्ज की कि—भगवन्! कृपा कर और भी मेरे करने योग्य धर्म कार्योपाय के लिये फरमावें। सूरिजी ने कहा—गोसल! गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में मंदिर बना कर दर्शन साधना करना और तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाल कर अक्षय पुण्य सम्पादन करना गृहस्थों के करने योग्य धर्म कार्यों में मुख्य कार्य हैं। उक्त कार्यों में से मन्दिर का निर्माण करना प्रतिष्ठा कराने का कार्य तो सानंद सम्पन्न हो गया। अब रहा एक संघ निकालने का कार्य सो भी समय की अनुकूलता होने पर कभी कर लेना। गोसल ने कहा—पूज्यवर! आपकी कृपा से सब अनुकूलता ही है। मेरे लिये आपश्री के विराजने एवं आपके अध्यक्षत्व में संघ निकालने का आत्मन्द अवसर न मालूम कब प्राप्त होगा। अतः आपकी उपस्थिति में ही यह काम निर्विघ्न हो जाय तो अपने आपको कृतकृत्य हुआ समझूं। मनुष्य के शरीर का किंचित भी विश्वास नहीं इसलिये आप जैसे महापुरुषों के समागम का सौभाग्य प्राप्त होने पर भी यदि धर्म कार्य में शिथिलता की जाय शक्ति के होने पर भी विलम्ब प्रमाद की जाय तो उसके जैसा दुर्भाग्यशाली ही दुनियां में कौन होगा प्रभो! आप कुछ समय की स्थिरता कर इस दास को कृतार्थ करें। आपके इन उपकार भार से उऋण होने की तो मेरे में किञ्चित् भी शक्ति नहीं किन्तु दयानिधान! आपका तो सद्भाव सभी दान देना का अपूर्व गुण ही है। इस अनभिज्ञ क्षेत्र में कुछ समय तक और विराजने से हम लोगों को धर्मलाभ का शुभावसर प्राप्त होगा एवं आपकी कृपा से संघ निकालने में सफल हो सकूंगा। आचार्यश्री ने गोसल की प्रार्थना को स्वीकार करली। गोसल ने भी अपने कर्मों पुरो

पर्वोत्सव की खटपट किये बिना धर्म प्रचार के उद्योग में [illegible] की तरह खूब आगे बढ़ना, [illegible] को करते हुए बिजली चीता की तरह अपने मार्ग में बढ़ते ही रहना चाहिये। अपने प्रचार कार्य में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि करना चाहिये पर दुःख है कि आज [illegible] की सन्तान हम लोग ऐसे अशक्त हैं कि हमारे द्वारा नये जैन बनाना तो दूर किनारे रहा पर हमारे आचार्यों के द्वारा बनाये गये जैनों का रक्षण करने में भी हम समर्थ नहीं। [illegible] हमारी समझ यही बड़ी कारण है कि हमारी संख्या दिन पर दिन कम रही है और हम [illegible] निद्रा में सोये हुए हैं।

को बुला कर आदेश दे दिया। पित्ताज्ञा पालक वे पुत्र भी उनकी आदेशनानुसार संघ के लिये आवश्यक सामग्री को एकत्रित करने में सलग्न बन गये। सब कार्य के लिये ठीक प्रबन्ध होने पर राव गोसल ने चारों ओर आमत्रण पत्रिकाएं भेज दी। शुभमुहूर्त पर संघ गोसलपुर में विशाल सख्या में एकत्रित हो गया। आचार्यश्री ने भी समय पर राव गोसल को वासक्षेप एवं मंत्रों द्वारा संघपति बना दिया। शुभमुहूर्त में आचार्यश्री के नायकत्व और राव गोसल के संघपतित्व में सघ ने तीर्थश्री शत्रुँजय की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। क्रमशः सघ ने तीर्थश्री शत्रुञ्जय का दर्शन स्पर्शन पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि शुभकार्य कर अपने को भाग्य शाली बनाया। अष्टान्हिका महोत्सव एव ध्वजारोहणादि उत्सव करके अपने जीवन को सफल बनाया। राव गोसल प्रभृति नूतनश्रावकों ने तो श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर खूब ही आनन्द मनाया। कई साधुओं के साथ यात्रा कर श्रीसंघ, वापिस स्वस्थान लौट आया और आचार्यदेव अपने शिष्यों के साथ कई दिनों के लिये तीर्थ की शीतल एव पवित्र छाया में ठहर गये। वहां पर कुछ दिनों के पश्चात् कई वीर सन्तानिये मुनिवर्ग पृथक् २ स्थानों से संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये आये जब उनको आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी के शत्रुञ्जय तीर्थ पर विराजने के समाचार ज्ञात हुए तो वे तत्काल सूरीश्वरजी की सेवा में वन्दनार्थ आये। उन्होंने आचार्य श्री की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए कहा कि—पूज्यवर! आपश्री के पूर्वाचार्य ने तथा आपने अनेक उपसर्गों एव परिषहों को सहन कर जो जैन शासन की सेवा की एवं कर रहे है, उसके लिये समाज आपका चिरऋणी है। ऐसे तो जैनेतरों को जैन बनाकर महाजन संघ की सतत वृद्धि करते रहने का श्रेय आपश्री के पूर्वाचार्यों ने सम्पादन किया ही हैं किन्तु, महापुरुषों के अनुपम आदर्श का अनुसरण कर आपश्री ने जैनधर्म की प्रभावना करने में कुछ भी कसर नहीं रक्खी। एतदर्थ आपका जितना आभार माना जाय उतना ही थोड़ा है। जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही अल्प है। इसके प्रत्युत्तर में सूरीश्वरजी ने फरमाया—बन्धुओं! इसमें धन्यवाद की एवं आभार स्वीकार करने की जरूरत ही क्या है? यह तो मुनित्व जीवन को अपनाने के पश्चात् मुनियों के लिये खास कर्तव्य रूप हो जाता है। सुखोपभोग की अभिलापाओं को तिलाञ्जली देकर पौदगलिक सुखों पर लात मार सम्पन्न घर को छोड़ आत्म कल्याण के लिये निकलने वाले मुनिवर्ग यदि अपने उक्त कर्तव्य को विस्मृत कर पुनः सांसारिक प्रपञ्चों के समान मुनित्व जीवन में नवीन प्रपञ्च उपस्थित करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं तो वे साधुत्ववृत्ति के नियमों एव कर्तव्यों से कोसों दूर हैं श्रमण बन्धुओं! अपनी तो शक्ति ही क्या है? किन्तु अपने से पूव पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्यों एव भगवान् महावीर के आचार्यों ने जो जैनधर्म की अमूल्य सेवा की है उसका हम वर्णो से वर्णन करने में भी असमर्थ हैं। उन महापुरुषों ने लाखों ही नहीं पर करोड़ो जैनेतरों को सद्धर्म का बोध देकर जैन बनाया। अनेकों का आत्मकल्याण किया। अनेक शासन प्रभावक अलौकिक कार्य किये किन्तु उन्होंने इन सब महत्व पूर्ण कार्यों में मान का एवं महत्त्व का छत्र प्राप्त करने की किञ्चत् भी भावना नहीं रक्खी। यदि वे प्रशसा एव सम्मान के ही भूखे होते तो इतना कार्य कभी नहीं कर सकते। कार्य करने की विशालता आत्मा के आन्तरिक भावों की उत्कर्षता पर अवलम्बित है। एव प्रशसा प्राप्ति की कुत्सित इच्छा उन्नति मार्ग की बाधिका है। अत मानापमान, सुख, दु ख की परवाह किये बिना अपने कर्तव्य मार्ग में सलग्न रहना साधुत्व जीवन को उन्नत बनाना है। जितना कार्य मनुष्य सादगी को अपना कर कर सकता है उतना कार्य बनावटी आडम्बरों एव मान महत्त्व के गुलामों से नहीं हो सकता है। आचार्यश्री स्वयंप्रभ

भरा हुआ था। वे धर्म की प्रभावना एवं उन्नति में श्रावकों व मुनि समाज की सुचारित्रवृत्ति को कारण ही समझते थे। यही कारण था कि गोसलपुर की श्रीमद् आचार्यश्री ने जैनधर्म का असली एवं स्थायी पाठ पढ़ाने के लिये आचार्यदेव ने अपने भौतिक सुखों की परवाह किये बिना ही वहां पर चातुर्मास कर दिया। एक ओर तो सूरीश्वरजी का व्याख्यान हमेशा होता था और दूसरी ओर शेष मुनि गोसलपुर की जनता को श्रावकों की नित्य क्रिया एवं आचार विचार की शिक्षा देकर जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धावान् बना रहे थे।

इस तरह चातुर्मास सानंद धर्माराधना पूर्वक समाप्त होगया। चातुर्मास के समाप्त होते ही भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही धूमधाम से करवाई गई। राव गोसल के लिये मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठा करवाने का जैनधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् पहिला ही मौका था अतः उनके उत्साह एवं हर्ष का पारावार नहीं रहा। उन्होंने पुष्कल द्रव्य का व्यय कर आये हुए स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी में एक एक सुवर्ण मुद्रिका और सवा सेर का मोदक दिया। याचकों को तो प्रचुर परिमाण में दान दिया गया। उन्होंने आर्य जाति के यशोगान से गगन गुंजा दिया।

इस तरह आचार्यदेव की परम कृपा से जिनालय की प्रतिष्ठा का कार्य होते ही राव गोसल ने नम्रता पूर्वक सूरीश्वरजी के चरण कमलों में अर्ज की कि—भगवन्! कृपा कर और भी मेरे करने योग्य धर्म कार्याराधन के लिये फरमावें। सूरिजी ने कहा—गोसल! गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में मंदिर बना कर दर्शन साधना करना और तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाल कर अक्षय पुण्य सम्पादन करना इत्यादि करने योग्य धर्म कार्यों में प्रमुख कार्य हैं। उक्त कार्यों में से मन्दिर का निर्माण करना प्रतिष्ठा करवाने का कार्य तो सानंद सम्पन्न हो गया। अब रहा एक संघ निकालने का कार्य सो भी समय की अनुकूलता देख कर कभी कर लेना। गोसल ने कहा—पूज्यवर! आपकी कृपा से सब अनुकूलता ही है। मेरे लिये आपश्री के विराजने एवं आपके अध्यक्षत्व में संघ निकालने का आनन्द अवसर व मासूम कब प्राप्त होगा। अतः आपकी उपस्थिति में ही यह काम निर्विघ्न हो जाय तो अपने आपको कृतकृत्य हुआ समझूं। प्रभुवर एवं शरीर का किञ्चित् भी विश्वास नहीं इसलिये आप जैसे महापुरुषों के समागम का सौभाग्य प्राप्त होने पर भी यदि धर्म कार्य में शिथिलता की जाय शक्ति के होने पर भी निरुत्साह प्रगट की जाय तो उसके जैसा दुर्भाग्यशाली ही दुनियां में कौन होगा प्रभो! आप कुछ समय की स्थिरता कर इस दास को कृतार्थ करें। आपके इस उपकार ऋण से उऋण होने की तो मेरे में किञ्चित् भी शक्ति नहीं किन्तु दयानिधान! आपका तो स्वभाव इसी दान देने का अपूर्व गुण ही है। इस अनभिज्ञ क्षेत्र में कुछ समय तक और विराजने से हम लोगों को धर्मलाभ का शुभावसर प्राप्त होगा एवं आपकी कृपा से संघ निकालने में भाग्यशाली बन सकूंगा। आचार्यश्री ने गोसल की प्रार्थना को स्वीकार करली। गोसल ने भी अपने कार्यों द्वारा

उपदेश को हृदय में लिये बिना यह प्रचार के स्थान हैं निर्बोधों की तरह दूर करके तापस, दर्शनादि का ज्ञान करें के करते हुए किसी योद्धा की तरह अपने धर्म में लगे ही रहना चाहिये। अपने प्रचार कार्य में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि करना चाहिये पर हुआ है कि, आज हमारी की सन्तान हम लोग ऐसे बन गए हैं कि हमसे द्वारा नये जैन बनाने तो दूर रहा पर हमारे आचार्यों के द्वारा बनाये गये जैनों का रक्षण करने में भी हम समर्थ नहीं। एक इसी का कारण है कि हमारी संख्या दिन पर दिन घट रही है और हम इस अप्रमाद में सोये हुए हैं।

को बुला कर आदेश दे दिया। पित्ताज्ञा पालक वे पुत्र भी उनकी आदेशनानुसार संघ के लिये आवश्यक सामग्री को एकत्रित करने में सलग्न बन गये। सब कार्य के लिये ठीक प्रबन्ध होने पर राव गोसल ने चारों ओर आमत्रण पत्रिकाएं भेज दी। शुभमुहूर्त पर संघ गोसलपुर में विशाल संख्या में एकत्रित हो गया। आचार्यश्री ने भी समय पर राव गोसल को वासक्षेप एवं मन्त्रों द्वारा संघपति बना दिया। शुभमुहूर्त में आचार्यश्री के नायकत्व और राव गोसल के संघपतित्व में सघ ने तीर्थश्री शत्रुँजय की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। क्रमश. सघ ने तीर्थश्री शत्रुञ्जय का दर्शन स्पर्शन पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि शुभकार्य कर अपने को भाग्य शाली बनाया। अष्टान्हिका महोत्सव एव ध्वजारोहणादि उत्सव करके अपने जीवन को सफल बनाया। राव गोसल प्रभृति नूतनश्रावकों ने तो श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर खूब ही आनन्द मनाया। कई साधुओंके साथ यात्रा कर श्रीसघ, वापिस स्वस्थान लौट आया और आचार्यदेव अपने शिष्यों के साथकई दिनों के लिये तीर्थ की शीतल एवं पवित्र छाया में ठहर गये। वहां पर कुछ दिनों के पश्चात् कई वीर सन्तानिये मुनिवर्ग पृथक् २ स्थानों से संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये आये जब उनको आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी के शत्रुञ्जय तीर्थ पर विराजने के समाचार ज्ञात हुए तो वे तत्काल सूरीश्वरजी की सेवा में वन्दनार्थ आये। उन्होंने आचार्य श्री की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए कहा कि—पूज्यवर! आपश्री के पूर्वाचार्य ने तथा आपने अनेक उपसर्गों एवं परिषहों को सहन कर जो जैन शासन की सेवा की एव कर रहे है, उसके लिये समाज आपका चिरऋणी है। ऐसे तो जैनेतरों को जैन बनाकर महाजन संघ की सतत वृद्धि करते रहने का श्रेय आपश्री के पूर्वाचार्यों ने सम्पादन किया ही हैं किन्तु, महापुरुषों के अनुपम आदर्श का अनुसरण कर आपश्री ने जैनधर्म की प्रभावना करने में कुछ भी कसर नहीं रक्खी। एतदर्थ आपका जितना आभार माना जाय उतना ही थोड़ा है। जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही अल्प है। इसके प्रत्युत्तर में सूरीश्वरजी ने फरमाया—बन्धुओं! इसमें धन्यवाद की एव आभार स्वीकार करने की जरूरत ही क्या है? यह तो मुनित्व जीवन को अपनाने के पश्चात् मुनियों के लिये खास कर्तव्य रूप हो जाता है। सुखोपभोग की अभिलाषाओं को तिलाञ्जली देकर पौदगलिक सुखों पर लात मार सम्पन्न घर को छोड़ आत्म कल्याण के लिये निकलने वाले मुनिवर्ग यदि अपने उक्त कर्तव्य को विस्मृत कर पुन. सांसारिक प्रपञ्चों के समान मुनित्व जीवन में नवीन प्रपञ्च उपस्थित करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं तो वे साधुत्ववृत्ति के नियमों एव कर्तव्यों से कोसों दूर हैं श्रमण बन्धुओं! अपनी तो शक्ति ही क्या है? किन्तु अपने से पूर्व पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्यों एव भगवान् महावीर के आचार्यों ने जो जैनधर्म की अमूल्य सेवा की है उसका हम वर्णों से वर्णन करने में भी असमर्थ हैं। उन महापुरुषों ने लाखों ही नहीं पर करोड़ो जैनेतरों को सद्धर्म का बोध देकर जैन बनाया। अनेकों का आत्मकल्याण किया। अनेक शासन प्रभावक अलौकिक कार्य किये किन्तु उन्होंने इन सब महत्व पूर्ण कार्यों में मान का एव महत्त्व का छत्र प्राप्त करने की किञ्चत् भी भावना नहीं रक्खी। यदि वे प्रशसा एव सम्मान के ही भूखे होवे तो इतना कार्य कभी नहीं कर सकते। कार्य करने की विशालता आत्मा के आन्तरिक भावों की उत्कर्षता पर अवलम्बित है। एव प्रशसा प्राप्ति की कुत्सित इच्छा उन्नति मार्ग की बाधिका है। अत. मानापमान, सुख, दु ख की परवाह किये विना अपने कर्तव्य मार्ग में संलग्न रहना साधुत्व जीवन को उन्नत बनाना है। जितना कार्य मनुष्य सादगी को अपना कर कर सकता है उतना कार्य बनावटी आडम्बरों एव मान महत्त्व के गुलामों से नहीं हो सकता है। आचार्यश्री स्वयप्रभ

सूरि आचार्यरत्नप्रभसूरि, यक्षदेवसूरि, आर्यश्रीसुहस्तिसूरि और सुस्थीसूरि आदि महापुरुष अपने धर्म की मोहर्र कहां लेने गये थे ? अरे ! गुण कभी छिपे नहीं रहते। कुसुमों की भीनी सौरभ अपने आप मधुकरों को आकर्षित कर लेती है। रत्न अपने मुंह से अपनी लाख रुपये की कीमत नहीं कहता किन्तु उसके गुणों से आकर्षित हो दुनियां अपने आप उनके गुणों को अपना लेती है। अतः मान एवं थोथी प्रतिष्ठा के लोभ को तिलाञ्जली देकर कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होते रहने की परमावश्यकता है।

आर्यों ! आजका समय बड़ा ही विकट समय है। एक ओर तो देश पर यवनों के बर्बरतापूर्ण भयंकर आक्रमण हो रहे हैं और दूसरी ओर बौद्धों, वेदान्तियों एवं वाममार्गियों के द्वारा व्यापक जैन धर्म को विचित्र परिस्थिति में उपस्थित कर रहे हैं। इस विकट संघर्ष काल में यदि जैनश्रमण प्रथम अपनी प्रतिष्ठाजमाने के लिए बने बनाये श्रावकों को भिक्षा पर तथा उनके सामने उसी गोरख धंधा में लगे रहे तो जैन 'समाज का अस्तित्व अधिक समय तक स्थिर रहना असम्भव है अतः अपना कर्तव्य है कि मान इज्जत की किञ्चित भी परवाह नहीं करते हुए अपने कर्तव्य पथ में हम सब लोग कटिबद्ध होकर आगे बढ़ें। यदि पूर्वाचार्यों के समान मूल पूंजी को (श्रावक संख्या को) बढ़ाने की हममें शक्ति नहीं है तो भी कम से कम मूल पुञ्जी को खो देने जितनी अयोग्यता भी तो नहीं होनी चाहिये। मूल पुञ्जी को बढ़ाना तो भाग्य का लक्षण है किन्तु खोना अज्ञानता का सूचक है। बन्धुओं ! क्या जनकोपार्जित सम्पत्ति का व्यय कर व्यापारादि स्वकीय कार्य कुशलता से उसमें वृद्धि करना पुत्र का कर्तव्य नहीं है ? यदि है तो अपने ही बैठे स्वस्थ क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिए बैठकर अपनी प्रतिष्ठा खोना कहां तक समीचीन है ! क्या उन्हीं तेजस्वी आचार्यों की सन्तान उनके (पूर्वाचार्यों) द्वारा उपार्जित किये हुए द्रव्य का रक्षण करने में समर्थ नहीं है ? समय डंका की चोट कह रहा है कि—अब तो हमें इस संघर्ष युग में अपने कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होते हुए जैनत्व की विशालता को विश्वभर में विस्तृत करने की दृढ़ भावना रखनी चाहिये।

प्यारे श्रमण गण ! आप और हम अलग २ नहीं हैं पर भगवान् महावीर की छत्रछाया में विचरने वाले और उनके द्वारा निर्धारित पताका को सर्वत्र फहराने वाले—नामों की विभिन्नता से भी एक ही हैं। अपना परम कर्तव्य है कि पारस्परिक स्नेहभाव को बढ़ाते हुए शासन की खूब प्रभावना एवं सेवा करें। एक दूसरे के कार्य में मददगार बनें। श्रीसंघ का संगठन बल बढ़ावें। मुनियों के विहार क्षेत्र को विस्तृत बनावें। गृहस्थों के हृदय को उदार बना गच्छकदाग्रह की वाड़ा बन्दी आदि की दुर्गंधि को जड़मूल से निकाल दें। नये पुराने श्रावकों के भेदभाव की दुर्भावना की हवा न लगने दें। चाहे किसी भी वर्ण एवं जाति का क्यों न हो ! पर जिसने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया उसको वीर पुत्र अर्थात् अपने भाई के समान या श्रीसंघ के व्यक्ति के अधिकार के समान उसका अधिकार रक्खें। बन्धुओं ! एक गृहस्थ के दस रुपये मासिक खर्च है और पंद्रह रुपये की आमदनी है तो दस रुपयों का खर्च अवश्य किया जावे पर कम में काम नहीं हो सकता है इसी प्रकार कभी जैन संख्या में किसी कारण से कमी हो पर अजैनों को जैन बनाकर उस घाटे की पूर्ति करती जाय तो कमी घटे का अनुभव नहीं हो सकता है पर उस की आय और व्यय समय के अनुसार का आदरण हमारे सामने आ जाय तब तो अत्यन्त विचारणीय एवं आश्चर्य जनक ही है ! अब इन सब कार्यों की जुम्मेवारी आप हम सब श्रमणों पर रही हुई है इत्यादि।

आचार्यश्री ने आये हुए वीर परम्परा के श्रमणों को अपने कर्तव्य मार्ग

ऐसा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया कि उनकी आत्मा में भी नवीन चैतन्य स्फुरित होने लगा। धर्म प्रचार की बिजली भभक उठी। वे सब आचार्यदेव का आभार मानते हुए कहने लगे—भगवान्! आपका कहना अक्षरश सत्य है। जिधर दृष्टि डाले उधर ही जैनधर्म पर भयकर आक्रमण हो रहे हैं। इधर श्रमण सघ भी अपने कर्तव्य मार्ग से कुछ स्खलित होता जा रहा है। शिथिलता हमारे में चोरों की भांति प्रविष्ट हो रही है। आपसी फूट एवं कुसम्प ने वाड़ाबंदी की ओर अपना पग पसारा है। गच्छ की मर्यादा एवं अपने कर्तव्य को हम विस्मृत कर चुके हैं पर धन्य है आप जैसे शासक शुभ चिन्तकों को जिनकी-कार्य कुशलता, विहार पद्धति की विशालता और नये जैन बनाने की प्रवृत्ति ने जैन संस्था को ऐसे भयंकर मृत्युकाल में भी घाटे में नहीं आने दी। इसके लिये हम आपके इस असीम उपकार को भूल नहीं सकते और आपको धन्य-वाद दिये विना रह नहीं सकते। पूज्यवर! आपके हितकारी उपदेश से हमने निश्चय कर लिया है कि जैन शासन के उन्नति के कार्य में यथा साधन प्रयत्न करते रहेंगे। इस प्रकार उनकी आचार्यश्री के साथ वर्तालाप करके वीर सन्तानियों को अपरिमित आनन्द का अनुभव होने लगा। दूसरे दिन सब श्रमणों ने सूरिजी के साथ में शत्रुञ्जय पहाड़ पर जाकर आदीश्वर भगवान् की यात्रा की।

कालान्तर में सूरिजी सौराष्ट्र की ओर विहार करते हुए आगे कोकंण में पधार गये और वह चातुर्मास देवपट्टनपुर में कर दिया। आपके विराजने से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री के उपदेश से वनाये गये तीन भक्तों के तीन मन्दिरों की प्रतिष्ठाए की। करीब १३ नरनारियों ने परम वैराग्य से आचार्यदेव के पास दीक्षा अङ्गीकार करके आत्म कल्याण किया। कई जैनेतरों ने जैन धर्म को स्वीकार कर सत्यत्त्व का परिचय दिया।

तत्पश्चात् सूरिजीने आगे दक्षिण की ओर विहार किया। सर्वत्र धर्मोपदेश करते हुए विदर्भ देश को मालपुर नगर में चातुर्मास किया। आपके पधारने से उस प्रान्त में भी खूब धर्म जागृति हुई। वहा भी आपने ११ भावुकों को दीक्षा दी। ठीक है, व्यापारी लोगों को लाभ होता है तब वे आगे बढ़ते ही जाते हैं इसी प्रकार हमारे आचार्यदेव ने भी महाराष्ट्र प्रान्त के इस छोर से उस छोर पर्यन्त अपना विहार क्षेत्र विशाल बना दिया। जब महाराष्ट्र प्रान्तीय साधुओं को शुभ समाचार मिले कि आचार्यदेवगुप्तसूरि जी म० इधर ही पधार रहे। तब उनके हर्ष का पार नहीं रहा। वे दर्शनों के लिये उत्कण्ठित बन गये कई वर्षों से सूरीश्वरजी म० के दर्शनों का लाभ हस्तगत नहीं होने के कारण आचार्यश्री के दर्शनों के लिये चकोर बन गये। आसपास के क्षेत्रों में धर्म प्रचार का कार्य अत्यन्त उत्साह से करते हुए सूरीश्वरजी के स्वागत के लिये सम्मुख जाने लगे। क्रमश मदुरा नगरी में सूरीश्वरजी के दर्शन हुए जिससे श्रमण वर्ग को अत्यन्त आनद हुआ। आगन्तुक श्रमणों से आचार्यश्री ने महाराष्ट्र प्रान्त की ठीक हालत जानली। तत्पश्चात् महाराष्ट्र प्रान्त में विहार कर जैनधर्म का प्रचार करने वाले साधुओं को यथा योग्य सत्कार एवं पदविया प्रदान कर उनके उत्साह को वर्धित किया। उक्त श्रमणमण्डली में से अधिक साधु महाराष्ट्र प्रान्त के ही जन्मे हुए थे अत. महाराष्ट्र प्रान्तीय भाषा की जानकारी के कारण लोग धर्म प्रचार के महत्व पूर्ण कार्य में स्थूल परिमाण में सफल हुए।

सूरिजी महाराज ने तीन चातुर्मास महाराष्ट्र प्रान्त के भिन्न २ नगरों में करके धर्म का अच्छा उद्योत किया। महाराष्ट्र प्रान्त में आचार्यश्री के आगमन से साधु समाज एव श्राद्धवर्ग में धर्मानुराग की प्रबल वृद्धि हुई। नायक की उपस्थिति में सैनिकों का उत्साह बढ़ना प्रकृति सिद्ध ही है अत उस प्रान्त में धर्म प्रचार के

कार्य में आशातीत सफलता हस्तगत हुई। यद्यपि इस दीर्घ अवधि के बीच कई दिगम्बर आचार्यों ने इर्षा के वशीभूत हो शास्त्रार्थ किया किन्तु उसमें वे सफलता प्राप्त नहीं कर सके अपितु उन्हें पराजित होना पड़ा।

आचार्यश्री जैसे विद्वान थे वैसे समयज्ञ भी थे। अतः समय सूचकता के साथ विद्वत्ता ही की कुशलता से आपको चारों ओर विजयी बनाया। महाराष्ट्र प्रान्त में आपका अखण्ड विजय डंका बजने लगा आपने महाराष्ट्र प्रान्त के छोटे बड़े ग्रामों एवं नगरों में परिभ्रमण कर धर्म का अंकुर अङ्कुरित कर दिया। करीब ५८ नर नारियों को दीक्षा देकर उन्हें मोक्ष मार्गाराधक बनाये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाकर जैनेतरों को जैन बनाने की संस्कृति को दृढ़ किया। इन सभी महत्व पूर्ण कार्यों के साथ ही साथ पांच दिगम्बर मुनियों को भी श्वेताम्बर आम्नाय की दीक्षा दी।

एक समय आप मान्यखेटनगर में विराजते थे। प्रतिदिन के व्याख्यानानुसार एक दिन आपने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ के माहात्म्य एवं तीर्थ यात्रा से सम्पादन करने योग्य पुण्यों का तथा गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में से आवश्यक कार्यों का दिग्दर्शन कराते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ का बहुत ही विशद एवं प्रभावोत्पादक वर्णन किया। शत्रुञ्जय तीर्थ के इतिहास ने आगत श्रोतावर्ग पर अमिट प्रभाव डाला। उस नगर के मंत्री रघुवीर पर तो उस व्याख्यान का आशातीत असर हुआ। फलस्वरूप व्याख्यान में ही शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के लिये संघ निकालने का चतुर्विध श्रीसंघ से आदेश मांगने के लिये एक दम खड़े हो गये और कहने लगे कि—यदि आप लोग आज्ञा प्रदान करें तो मैं तीर्थ यात्रा के लिये संघ निकालने का लाभ प्राप्त कर सकूं। श्रीसंघ ने सहर्ष आदेश प्रदान किया और आचार्यश्री ने भी—'जहासुखं' कह कर उनके उत्साह को वर्धित कर दिया। बस ! फिर तो था ही क्या ? स्थान २ पर संघ में पधारने के लिये आमन्त्रण पत्रिकायें भेज दी गईं। साधु साध्वियों की प्रार्थना करने के लिये योग्य पुरुष भेजे गये। क्रमशः निश्चित दिन इस संघ में ५० श्वेताम्बरमुनि १२५ दिगम्बर साधु, और १५००० गृहस्थ सम्मिलित हुए। सूरीश्वरजी ने मंत्री रघुवीर को संघपति पद अर्पित किया। क्रमशः आचार्यश्री के नेतृत्व और मंत्री रघुवीर के संचालकत्व में संघ ने शुभशकुनों के साथ शुभमुहूर्त में शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थान किया। मार्ग के मन्दिरों एवं छोटे मोटे तीर्थों की यात्रा करते हुए शत्रुञ्जय पहुँचे। तीर्थ के दूर से दर्शन होते ही मुक्ताफल से बधाया और चैत्य वंदनादि क्रिया कर क्रमशः तीर्थ पर पहुँच गये। भगवान् आदीश्वर के चरण कमलों का स्पर्शन और द्रव्य एवं भाव पूजन कर संघ में आगत भावुकों ने अपने पापों का प्रक्षालन किया। महाराष्ट्र प्रान्त में संघ का निकालने से अतः इस अपूर्व अवसर का सदुपयोग कर सब ने अपना अहोभाग्य समझा। महाराष्ट्रीय जैनेतर जनतों एवं नये जैनों ने तो यह पहिली ही तीर्थ यात्रा की अतः सबके हृदयों में हर्ष एवं आनन्द की अलौकिक लहरें लहराने लगीं। दक्षिण विहारी साधुओं के साथ संघ तीर्थ यात्रा करके पुनः स्वस्थान लौट आया।

सूरिजी तीर्थ यात्रा करके खेटकपुर, करणावती वटपुर स्तम्भन तीर्थ भरौंच आदि विविध क्षेत्रों में विहार करते हुए श्री संघ के अत्याग्रह से भरौंच नगर में चातुर्मास कर दिया। चातुर्मास की दीर्घ अवधि में अच्छा धर्मोद्योत एवं धर्म प्रचार हुआ। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री का विहार आवन्तिका प्रदेश की ओर हुआ। करीब मांडवगढ़ अवन्तिका महीपुर रत्नपुर और दशपुर होते हुए आप चित्रकूट पधार गये। वहां की जनता ने आपका शानदार स्वागत एवं अभिनंदन किया। श्रीसंघ के अत्याग्रह से आपने चातुर्मास चित्रकूट में ही करने का निश्चय किया। चित्रकूट में जैनों की घनी आबादी—विशाल संख्या थी

और वे सब भी प्राय' उपकेशवशीय श्रावक ही थे । पूर्वाचार्यों के जीवन चरित्रों में अभी तक पाठक वृन्द बराबर पढ़ते आये हैं कि उपकेश गच्छीय आचार्यों का व उनके आज्ञानुयायी मुनियों का विहार क्षेत्र बहुत ही लम्बा चौड़ा था अत उपकेशवशीय श्राद्धवर्ग की सख्या विशाल हो इसमें आश्चर्य ही क्या ? इसीके अनुसार चित्रकूट भी उपकेशवशियों का प्राचीन क्षेत्र था । उपकेश गच्छीय मुनियों का आवागमन प्राय प्रारम्भ ही था अत' चित्रकूटस्थ श्रावक समाज का धर्मानुराग अत्यन्त सराहनीय और स्तुत्य था । सूरीश्वरजी के आगमन से व यकायक चातुर्मास के अप्राप्य अवसर के हस्तगत होने से तो श्रावक समाज के धर्म प्रेम में सविशेष अभिवृद्धि हुई । मोक्षमार्ग की आराधना के लिये सूरीश्वरजी का आगमन निमित्त बढ़िया से बढ़िया निमित्त कारण होगया ।

बलाह गौत्रीय रांका शाखा के श्रावक शिरोमणि, देवगुरु—भक्ति कारक, पञ्चपरमेष्टि महामंत्र स्मारक, श्राद्धगुण सम्पन्न, निर्ग्रन्थ प्रवचनोपासक सुश्रावक शाह दुर्गा ने परम पवित्र, जयकुञ्जर, पातक राशिप्रक्षालन समर्थ, पञ्चमाङ्ग श्रीभगवतीजीसूत्र का महोत्सव किया जिसमें पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य, प्रभु सवारी और स्वधर्मी भाइयों की पहिरावणी आदि धार्मिक कार्यों में नव लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी से श्रीभगवतीसूत्र बचवाया । ज्ञान की पूजा माणिक, मुक्ताफल, हीरा, पन्ना एवं स्वर्ण पुष्प से की । इतना ही नहीं प्रत्येक दिन गहुली पर एक सुवर्ण मुद्रिका रखने तथा श्रीगौतमस्वामी के द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न का सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करने का निश्चय किया । यह बात तो प्रकृवित सिद्ध है कि जितनी बहुमूल्य वस्तु होती है उतना ही उस पर अधिक भाव बढ़ता है । श्रीभगवतीजीसूत्र का इतना बड़ा महोत्सव करने में मुख्य दो कारण थे । एक तो जन समाज के उत्साह को बढ़ाना, और श्रोताओं की अभिरुचि श्रुताराधना और ज्ञानश्रवण की ओर करना दूसरा उस समय आगम लिखवाकर ज्ञानभण्डार स्थापित करने की आवश्यकता को पूर्ण कर जैन साहित्य को अमर करना । हम पहले के प्रकरणों में इस बात को स्पष्ट कर आये हैं कि उस समय प्रेस वगैरह के सुयोग्य साधन वर्तमान वत् वर्तमान नहीं थे अत. ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें आगम लिखवाने एवं ज्ञान पूजा के द्रव्य का सदुपयोग करने के लिये ज्ञानभण्डार स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत होती थी । बस, उक्त कारणों से प्रेरित हो उस समय के श्राद्धवर्ग दोनों कार्यों का भार बड़ी सुगमता से अपने सिर पर उठा लेते । इससे उन्हें अनेक तरह के लाभ होते और शासन सेवा का भी अपूर्व अवसर प्राप्त होता । जैन समाज के स्थानीय उत्सवों के महात्म्य को देख इतर समाज भी सहसा हमारी ओर आकर्षित होजाती इससे शासन की प्रभावना एव जैनियों की महत्ता बढ़ती थी । इसके सिवाय उस समय के जैनों के पुण्योदय ही ऐसा था कि वे न्याय, नीति और सत्य से द्रव्योपार्जन कर ऐसे शुभकार्यों में द्रव्य का सदुपयोग करने में अपने को परम भाग्यशाली समझते थे । श्रावकों की इतनी उदारता, श्रद्धा एव प्रेम पूर्ण भक्ति का कारण जैन श्रमणों का निर्मल चरित्र एव विशुद्ध निर्गन्थपना ही था उस समय के त्यागी वर्ग के पास में न तो अपने अधिकार के उपाश्रय थे और न ज्ञान कोष ही थे । न जमावदिये थी और न गृहस्थों से भी ज्यादा प्रपञ्च था । वे तो एकान्त निस्पृही, परम मुमुक्षु, विशुद्ध चारित्राराधक एव श्रीसघ के बनवाये हुए चैत्य, पौसाल, धर्मशाला या उपाश्रय में मर्यादित समय पर्यन्त स्थिरता कर विश्राम करने वाले थे । उनके हाथों में आज के सेठियों से हजारो गुने अधिक श्रीमन्त भक्त थे वे चाहते तो आज के साधुओं से भी अपने पास अधिक आडम्बर रख सकते थे परन्तु उन महापुरुषों ने इसमें एकान्त शासन

कार्य में आशातीत सफलता हस्तगत हुई। यद्यपि इस दीर्घ अवधि के बीच कई दिगम्बर आचार्यों ने ईर्षा के वशीभूत हो शास्त्रार्थ किया किन्तु उसमें वे सफलता प्राप्त नहीं कर सके अतएव उन्हें पराजित होना पड़ा।

आचार्यश्री जैसे विद्वान थे वैसे समयज्ञ भी थे। अतः समय सूचकता के साथ विद्वत्ता ही की कुशलता से आपने चारों ओर विजयी बनाया। महाराष्ट्र प्रान्त में आपका अखण्ड विजय डंका बजने लग गया। महाराष्ट्र प्रान्त के छोटे बड़े ग्रामों एवं नगरों में परिभ्रमन कर धर्म का नवांकुर अङ्कुरित कर दिया। करीब १८ नर नारियों को दीक्षा देकर उन्हें मोक्ष मार्गोपासक बनाये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाकर जैनेतरों को जैन बनाने की संस्कृति को दृढ़ किया। इन सभी महत्व पूर्ण कार्यों के साथ ही साथ पांच दिगम्बर मुनियों को भी श्वेताम्बर आम्नाय की दीक्षा दी।

एक समय आप मानखेटनगर में विराजते थे। प्रतिदिन के व्याख्यानानुसार एक दिन आपने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ के माहात्म्य एवं तीर्थ यात्रा से सम्पादन करने योग्य पुण्यों का तथा गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में से आवश्यक कार्यों का दिग्दर्शन कराते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ का बहुत ही विशद एवं प्रभावोत्पादक वर्णन किया। शत्रुञ्जय तीर्थ के इतिहास ने आगत श्रोतावर्ग पर पर्याप्त प्रभाव डाला। उस नगर के मंत्री रघुवीर पर तो उस व्याख्यान का आशातीत असर हुआ। फलस्वरूप व्याख्यान में ही शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के लिये संघ निकालने का चतुर्विध श्रीसंघ से आदेश मांगने के लिये एक दम खड़े हो गये और अर्ज करने लगे कि—यदि आप लोग आज्ञा प्रदान करें तो मैं तीर्थ यात्रा के लिये संघ निकालने का लाभ प्राप्त कर सकूं। श्रीसंघ ने सहर्ष आदेश प्रदान किया और आचार्यश्री ने भी—यथासुखं कह कर उसके उत्साह वर्धक वचन कहे। बस! फिर तो था ही क्या? स्थान २ पर संघ में पधारने के लिये आमन्त्रण पत्रिकाएं भेज दी गई। साधु साध्वियों की प्रार्थना करने के लिये योग्य पुरुष भेजे गये। क्रमशः निश्चित दिन इस संघ में ९ श्वेताम्बरमुनि १२५ दिगम्बर साधु, और १५ गृहस्थ सम्मिलित हुए। सूरीश्वरजी ने मंत्री रघुवीर को संघपति पद अर्पित किया। क्रमशः आचार्यश्री के नेतृत्व और मंत्री रघुवीर के संघपतित्व में संघ ने शुभशकुनों के साथ शुभमुहूर्त में शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थान किया। मार्ग के मन्दिरों एवं छोटे मोटे तीर्थों की यात्रा करते हुए शत्रुञ्जय पहुंचे। तीर्थ के दूर से दर्शन होते ही शुभभावना से बधाना और जैन संघभक्ति किया कर क्रमशः तीर्थ पर पहुंच गये। भगवान् आदीश्वर के चरण कमलों का स्पर्शन और द्रव्य एवं भाव पूजन कर संघ में आगत भावुकों ने अपने पापों का प्रक्षालन किया। महा राष्ट्र प्रान्त में संघ का निकालने के अतः इस अपूर्व अवसर का सदुपयोग कर सब ने अनन्त अहोभाग्य मनाया। महाराष्ट्रीय श्रमणों एवं वहां जैनों ने तो यह पहिली ही तीर्थ यात्रा की अतः सबके हृदयों में हर्ष एवं आनन्द की अलौकिक लहरें लहराने लगी। दक्षिण विहारी साधुओं के साथ संघ तीर्थ यात्रा करके पुनः स्वस्थान लौट आया।

सूरिजी तीर्थ यात्रा करके वेणकपुर, करणावती, वडपुर, स्तम्भन तीर्थ, भरोंच आदि विविध क्षेत्रों में विहार करते हुए श्री संघ के आग्रह से भरोंच नगर में चातुर्मास कर दिया। चातुर्मास की दीर्घ अवधि में अच्छा धर्मोद्योत एवं धर्म प्रचार हुआ। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री का विहार आवन्तिका प्रदेश की ओर हुआ। उज्जैन, मांडवगढ़ माध्यमिका, महीरपुर रत्नपुर और दशपुर होते हुए आप चित्रकूट पधारे। वहां की जनता ने आपका शानदार स्वागत एवं अभिनन्दन किया। श्रीसंघ के अत्याग्रह से वह चातुर्मास चित्रकूट में ही करने का निश्चय किया। चित्रकूट में जैनों की बड़ी आबादी—विशाल संख्या थी

और वे सब भी प्राय उपकेशवंशीय श्रावक ही थे। पूर्वाचार्यों के जीवन चरित्रों में अभी तक पाठक वृन्द बराबर पढ़ते आये हैं कि उपकेश गच्छीय आचार्यों का व उनके आज्ञानुयायी मुनियों का विहार क्षेत्र बहुत ही लम्बा चौड़ा था अत. उपकेशवंशीय श्राद्धवर्ग की संख्या विशाल हो इसमें आश्चर्य ही क्या ? इसीके अनुसार चित्रकूट भी उपकेशवंशियों का प्राचीन क्षेत्र था। उपकेश गच्छीय मुनियों का आवागमन प्राय प्रारम्भ ही था अत' चित्रकूटस्थ श्रावक समाज का धर्मानुराग अत्यन्त सराहनीय और स्तुत्य था। सूरीश्वरजी के आगमन से व यकायक चातुर्मास के अप्राप्य अवसर के हस्तगत होने से तो श्रावक समाज के धर्म प्रेम में सविशेष अभिवृद्धि हुई। मोक्षमार्ग की आराधना के लिये सूरीश्वरजी का आगमन निमित्त बढ़िया से बढ़िया निमित्त कारण होगया।

बलाह गौत्रीय रांका शाखा के श्रावक शिरोमणि, देवगुरु—भक्ति कारक, पञ्चपरमेष्टि महामंत्र स्मारक, श्राद्धगुण सम्पन्न, निर्ग्रन्थ प्रवचनोपासक सुश्रावक शाह दुर्गा ने परम पवित्र, जयकुञ्जर, पातक राशिप्रक्षालन समर्थ, पञ्चमाङ्ग श्रीभगवतीजीसूत्र का महोत्सव किया जिसमें पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य, प्रभु सवारी और स्वधर्मी भाइयों की पहिरावणी आदि धार्मिक कार्यों में नव लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी से श्रीभगवतीसूत्र बंचवाया। ज्ञान की पूजा माणिक, मुक्ताफल, हीरा, पन्ना एव स्वर्ण पुष्प से की। इतना ही नहीं प्रत्येक दिन गहुली पर एक सुवर्ण मुद्रिका रखने तथा श्रीगौतमस्वामी के द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न का सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करने का निश्चय किया। यह बात तो प्रकृतित' सिद्ध है कि जितनी बहुमूल्य वस्तु होती है उतना ही उस पर अधिक भाव बढ़ता है। श्रीभगवतीजीसूत्र का इतना बड़ा महोत्सव करने में मुख्य दो कारण थे। एक तो जन समाज के उत्साह को बढ़ाना, और श्रोताओं की अभिरुचि श्रुताराधना और ज्ञानश्रवण की ओर करना दूसरा उस समय आगम लिखवाकर ज्ञानभण्डार स्थापित करने की आवश्यकता को पूर्ण कर जैन साहित्य को अमर करना। हम पहले के प्रकरणों में इस बात को स्पष्ट कर आये हैं कि उस समय प्रेस वगैरह के सुयोग्य साधन वर्तमान वत् वर्तमान नहीं थे अत' ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें आगम लिखवाने एवं ज्ञान पूजा के द्रव्य का सदुपयोग करने के लिये ज्ञानभण्डार स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत होती थी। बस, उक्त कारणों से प्रेरित हो उस समय के श्राद्धवर्ग दोनों कार्यों का भार बड़ी सुगमता से अपने सिर पर उठा लेते। इससे उन्हें अनेक तरह के लाभ होते और शासन सेवा का भी अपूर्व अवसर प्राप्त होता। जैन समाज के स्थानीय उत्सवों के महात्म्य को देख इतर समाज भी सहसा हमारी ओर आकर्षित होजाती इससे शासन की प्रभावना एव जैनियों की महत्ता बढ़ती थी। इसके सिवाय उस समय के जैनों के पुण्योदय ही ऐसा था कि वे न्याय, नीति और सत्य से द्रव्योंपार्जन कर ऐसे शुभकार्यों में द्रव्य का सदुपयोग करने में अपने को परम भाग्यशाली समझते थे। श्रावकों की इतनी उदारता, श्रद्धा एव प्रेम पूर्ण भक्ति का कारण जैन श्रमणों का निर्मल चरित्र एव विशुद्ध निर्गन्थपना ही था उस समय के त्यागी वर्ग के पास में न तो अपने अधिकार के उपाश्रय थे और न ज्ञान कोष ही थे। न जमावदिये थी और न गृहस्थों से भी ज्यादा प्रपञ्च था। वे तो एकान्त निस्पृही, परम मुमुक्षु, विशुद्ध चारित्राराधक एव श्रीसंघ के बनवाये हुए चैत्य, पौसाल, धर्मशाला या उपाश्रय में मर्यादित समय पर्यन्त स्थिरता कर विश्राम करने वाले थे। उनके हाथों में आज के सेठियों से हजारो गुने अधिक श्रीमन्त भक्त थे वे चाहते तो आज के साधुओं से भी अपने पास अधिक आडम्बर रख सकते थे परन्तु उन महापुरुषों ने इसमें एकान्त शासन

प्रभावना होने के बदले हानि ही समझी—लाखों रुपयों की सम्पत्ति एवं पौद्गलिक सुखों का त्याग कर आत्म कल्याण के लिये स्वीकृत की हुई मोक्षाराधक चारित्र वृत्ति का विघातक ही समझा है ।

सूरिजी महाराज के विराजने से केवल एक शाह कुटुम्ब को ही लाभ मिला ऐसी बात नहीं पर अन्य बहुत से श्रावकों ने भी अपनी २ शक्त्यनुकूल लाभ लिया । जैन लोग हस्तगत सर्वोत्सव का लाभ उठावें इसमें तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं पर जैनेतर लोग भी सूरीश्वर जी के व्याख्यान में जैनागमों को सुनकर जैन धर्म के परम अनुरागी बन गये । इस प्रकार इस चातुर्मास में उपकार वर्णनोऽवर्णनीय हुआ ।

चातुर्मास समाप्त होते ही ७ मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर मेदपाट प्रान्त के छोटे बड़े ग्रामों में जैनधर्म का उद्योत करते हुए आघाट, करहेड़, देवपट्टनादि, तीर्थों की स्पर्शना करते क्रमशः सूरीश्वरजी ने मरुभूमि की ओर पदार्पण किया । आचार्यश्री के आगमन के शुभ समाचार एवं मनमुग्धकारी व्याख्यानों को श्रवण कर मरुभूमिनिवासियों के हर्ष का पार नहीं रहा । आचार्यश्री शाकम्भरी पद्मावती, हंसावली होते हुए नागपुर पधारे । आपके दर्शन एवं स्वागत के लिये जनता उमड़ पड़ी । सपादलक्ष प्रान्त में खासी चहल पहल मच गई । आपके आगमन महोत्सव ने सर्वत्र धूम मचादी । मरुधरवासी आनंद सागर में निमग्न होगये । सब के हृदय में धर्म प्रेम की पवित्र लहरें लहराने लगी । वास्तव में उस समय देव गुरु धर्म पर जनता की कितनी भक्ति थी, यह तो सूरिजी के जीवन चरित्र पढ़ने से सहज ही ज्ञात होजाता है । आज का जीवन मात्र दुःख भी पढ़े पर हमतो अनुभव करते हुए आते हैं कि—जहां धर्म पर श्रद्धा, भक्ति, विश्वास अधिक होता है वहां सर्वत्र सुख और आनंद ही फैला हुआ होता है । 'यतोधर्मस्ततो जय' नीति के इस वाक्यानुसार भी इहलोक की सुख प्राप्ति के लिये किंवा मोक्ष का अक्षय आत्मिकानंद प्राप्त करने के लिये धर्म ही सर्वोत्तम कारण है । जब जन लोगों की धर्म में अटूट श्रद्धा थी तब वे लोग परम सुखी एवं संसार में रहते हुए भी निस्पृही थे और आज इसके सर्वथा विपरीत ही दृष्टिगोचर होता है अस्तु, सुख प्राप्ति के ध्येय का प्रमुखतम धर्म ही होना चाहिये । धर्म ही परम मङ्गल रूप है ।

नागपुर में सूरिजी के पधारने की खुशियां घर २ मनाई जा रही थी । नागपुर में जैनियों की विशाल संख्या थी और वह इस लाभ को यों ही खोना नहीं चाहती थी अतः सबने मिलकर आचार्यश्री के पास में चातुर्मास के लिए जोरदार प्रार्थना की । सूरीश्वरजी ने भी धर्म प्रभावना का कारण जानकर तुरन्त स्वीकार करली । पूर्व जमाने में न तो इतनी लम्बी चौड़ी विज्ञप्तियों की जरूरत थी और न आचार्य देव चातुर्मास की विनती के भाव किसी भी गृहस्थ के ऊपर व्यर्थ के भार डालने रूप शर्तें ही रखते थे । न वे किसी धनाढ्य धनेश्वर की चापलूसी-खुशामद करते थे और न वे किसी प्रकार के आत्मगुण विघातक प्रपञ्च करने में अपने मान की महत्ता ही समझते थे । वे तो थे एकान्त निस्पृही निर्ग्रन्थ । त्याग का अनुशीलन बढ़ाने वाले संसार के अपूर्व शिक्षक । सब प्रकार की आधि-व्याधि एवं उपाधि से विमुक्त आत्मिक सुख का सुखमय जीवन व्यतीत करने वाले सच्चे श्रमण । वे अपने लिए तो किसी प्रकार का खर्चा कराते ही नहीं थे जो कुछ खर्चा देकर कार्य करवाते थे एक दम पारमार्थिक किंवा चतुर्विध संघ के हितको लक्ष्य में रखकर ही । इसमें इनका किञ्चित् भी स्वार्थ किंवा शासन को हानि पहुँचाने का लक्ष्य ही नहीं था । वे तो आपसी विवाद एवं कलह को भी दूर करके शासनोन्नति में ही अपने अमूल्य जीवन की सार्थकता समझते थे । संघ के कार्य के लिये वे खर्चा अवश्य कराते थे । किन्तु किसी के ऊपर भार डालकर जबर्दस्ती चन्दा

सूरिजी का नागपुर में प्रवेश

नहीं करते थे। उस समय के श्रावक लोग भी इतने भावुक थे कि यदि आचार्य श्री शासन के कार्य के लिये थोड़ा सा भी इशारा करते तो वे अपना अहोभाग्य समझते। शासन की अलभ्य सेवा का लाभ समझ चतुर्विधश्रीसंघ के हित के लिये वे भी अपना तन, मन एवं धन अर्पित कर देते। आचार्यश्री के उपदेश से शासन के एक कार्य को दस, वीस भावुक श्रावक करने को तयार हो जाते हैं। कहा भी है कि—

"ले लो करतां लेवे नहीं और मांग्या न आपेजी कोय"

ठीक है जितना हर्ष एवं उत्साह से कार्य किया जाता है उतना ही लाभ है। चतुर्विध संघ तो पच्चीसवा तीर्थङ्कर रूपही है अत. संघ के हित की रक्षा एवं उन्नति करना, शासन की प्रभावना कर इतर धर्मावलम्बियों के हृदय में श्रद्धा के बीज अङ्कुरित करना श्रावक समाज का भी परम कर्तव्य हो जाता है। इस पर सूरिजी तो बड़े ही समयज्ञ एवं काल मर्मज्ञ थे।

आचार्यश्री का बहुत वर्षों के पश्चात् पुन मरुधर में पधारना, और पहला चातुर्मास नागपुर में होना वहां की जनता को और भी धर्म मार्ग की ओर प्रोत्साहित कर रहा था। चातुर्मास के दीर्घ समय में सूरिजी का व्याख्यान हमेशा ही होता था। व्याख्यान में जैनों के शिवाय जैनेतर—ब्राह्मण, क्षत्रियादि भी उपस्थित होकर ज्ञान का लाभ उठाने मे अपने को भाग्यशाली समझते थे। आचार्यश्री एक निर्भीक वक्ता एवं तेजस्वी उपदेशक थे। दर्शन और आचार विषय का तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रकार विवेचन करते कि सुनने वालों को व्याख्यान बड़ा ही रूचिकर लगता था। जो लोग जैनों को नास्तिक कहते थे। और उससे घृणा करते थे वे ही लोग आचार्य श्री की ओर प्रभावित हो जैनधर्म की भूरि २ प्रशंसा करने लगे। करीब ४०० ब्राह्मणों ने तो मिथ्यात्व का वमन कर जैनधर्म को स्वीकार किया। सूरिजीने कहा भूदेव। केवल आपने पहले पहल ही जैनधर्म को स्वीकार नहीं किया है। किन्तु आप लोगों के पूर्व भी श्री गौतमादि ४४०० और शय्यंभव, यशोभद्र, भद्रबाहु, आर्य रक्षित, वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर—जो ससार में अनन्य—अजोड़ धुरधर विद्वान थे, चारवेद, अष्टांग निमित्त, अष्टादश पुराणादि अपने धर्म के शास्त्रों के पारङ्गत थे तुलनात्मक निष्पक्षपात दृष्टि से विचार किया तो आत्मकल्याण के लिये उन्हें भी जैनधर्म ही उपादेय मालूम हुआ अत. मिथ्या कदाग्रहको छोड़ वे तत्काल जैनधर्म में दीक्षित होगये। उन्होंने अपनी कार्य दक्षता से यज्ञों में एवं देव देविया के नामपर हजारों मूक पशुवों का बलिदान करने वाले याज्ञकों को अहिंसा धर्मानुयायी जैनधर्मी बनाये। उनका इतिहास आज भी हमारे हृदय में नवीन रोशनी एवं कान्ति को स्फुरित करने वाला है। सूरिजी द्वारा दिये गये उक्त उदाहरणों से उनकी श्रद्धा और भी अधिक दृढ़ होगई।

सूरिजी महाराज का आत्म कल्याण की ओर अधिक लक्ष्य था अत जब आप उपदेश देते तब त्याग वैराग्य के विषय को सुनकर श्रोताओं की इच्छा ससार को तिलाञ्जली देने की होजाती किन्तु चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम नहीं होने के कारण सब तो ऐसा करने में असमर्थ रहते फिरभी बहुत से भावुक दीक्षा के उम्मेदवार हो ही जाते। इसी के अनुसार चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् उन दिक्षार्थियों को दीक्षा दे आचार्य श्री वहां से विहार कर—मुग्धपुर, हर्षपुर, खटकुपपुर आदि छोटे बड़े ग्रामों में परिभ्रमन करते हुए उपकेशपुर पधार गये। वहां के श्रीसंघ ने बड़े ही हर्ष से आपका स्वागत किया। आचार्यश्री ने भगवान् महावीर और आचार्यश्री रत्नप्रभसूरीश्वर जी की यात्रा कर स्वागतार्थ आगत श्रावक मण्डली को किञ्चित् धर्मोपदेश दिया।

प्रभावना होने के बदले हानि ही समझी—लाखों रुपयों की सम्पत्ति एवं पौद्गलिक सुखों का त्याग कर आत्म कल्याण के लिये स्वीकृत की हुई मोक्षाराधक चारित्र वृत्ति का विघातक ही समझा है।

सूरिजी महाराज के विराजने से केवल एक धर्म बन्धुओं को ही लाभ मिला ऐसी बात नहीं थी पर अन्य बहुत से श्रावकों ने भी अपनी २ शक्त्यनुकूल लाभ लिया। जैन लोग इस्वक्त व्याख्यान का लाभ उठावें इसमें तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं पर जैनेतर लोग भी सूरीश्वर जी के व्याख्यान में जैनधर्म के प्रति जैन धर्म के परम अनुरागी बन गये। इस प्रकार इस चातुर्मास में बहुतर धर्मोद्योतकर्त्तंजीव हुआ।

चातुर्मास समाप्त होते ही ७ मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर मेदपाट प्रान्त के छोटे बड़े ग्रामों में जैनधर्म का उद्योत करते हुए आघाट, करहेड़, देवपट्टनादि, क्षेत्रों की स्पर्शना करते क्रमशः सूरीश्वरजी ने मरुभूमि की ओर पदार्पण किया। आचार्यश्री के आगमन के कर्णे सुखद एवं चमत्कारपूर्ण समाचारों को श्रवण कर मरुभूमिवासियों के हर्ष का पार नहीं रहा। आचार्यश्री शाकम्भरी पद्मावती, ईसावती होते हुए नाग पुर पधारे। आपके दर्शन एवं स्वागत के लिये जनता उमड़ पड़ी। सकलसंघ प्रान्त में खासी चहल पहल मचगई। आपके आगमन महोत्सव ने सर्वत्र धूम मचादी। मरुधरवासी आनंद सागर में निमग्न होगये। सब के हृदय में धर्म प्रेम की पवित्र लहरें लहराने लगीं। वास्तव में उस समय उन गुरुवर्य पर जनता की कितनी भक्ति थी, यह तो सूरिजी के जीवन चरित्र पढ़ने से सहज ही ज्ञात होजाता है। आज तो इतिहास कुछ भी कहे पर हमतो अनुभव करते हुए आप हैं कि—जहां धर्म पर श्रद्धा, भक्ति, विशाल श्रद्धा होती है वहां सर्वत्र सुख और आनंद ही फैला हुआ होता है। 'यतोधर्मस्ततो जयः' गीता के इस वाक्यानुसार भी इहलोक की सुख प्राप्ति के लिये किंवा मोक्ष का अक्षय आत्यिकानंद प्राप्त करने के लिये धर्म ही सामञ्जस्य कारण है। जब उन लोगों की धर्म में अटूट श्रद्धा थी तब वे लोग परम सुखी एवं संसार में रहते हुए भी निस्पृही थे और आज इसके सर्वथा विपरीत ही दृष्टिगोचर होता है अस्तु, सुख प्राप्ति के बीज का प्रमुख स्थान धर्म ही होना चाहिये। धर्म ही परम मङ्गल रूप है।

नागपुर में सूरिजी के पधारने की खुशियां घर २ मनाई जा रही थी। नागपुर में श्रेष्ठियों की विशाल संख्या थी और वह इस लाभ को यों ही खोना नहीं चाहती थी: अतः सबने मिलकर आचार्यश्री के पास में चातुर्मास के लिए जोरदार प्रार्थना की। सूरीश्वरजी ने भी धर्म प्रभावना का कारण जानकर तुरन्त स्वीकार करली। पूर्व जमाने में न तो इतनी लम्बी चौड़ी विनतियों की जरूरत थी और न आचार्य देव चातुर्मास की विनती के साथ किसी भी गृहस्थ के ऊपर खर्च के भार लादने रूप शर्तें ही रखते थे। न वे किसी धनाढ्य अमीरवर की खुशामदी-खुशामद करते थे और न वे किसी प्रकार के आत्मगुण विघातक प्रपञ्च रचने में अपने मान की महत्ता ही समझते थे। वे तो थे एकान्त निस्पृही निर्ग्रन्थ। त्याग का आदर्श बताने वाले संसार के अपूर्व शिक्षक। सब प्रकार की आधि-व्याधि एवं उपाधि से विमुक्त आत्मिक सुख का सुखमय जीवन व्यतीत करने वाले सच्चे श्रमण। वे अपने लिए तो किसी प्रकार का खर्चा कराते ही नहीं थे जो कुछ उपदेश देकर कार्य करवाते थे एक दम पारमार्थिक किंवा चतुर्विध संघ के हितको लक्ष्य में रखकर ही। इसमें इनका किञ्चित् भी स्वार्थ किंवा शासन को हानि पहुँचाने का लक्ष्य ही नहीं था। वे तो आपसी विवाद एवं झगड़ा को भी दूर करके शासनोन्नति में ही अपने समग्र जीवन की सार्थकता समझते थे। संघ के कार्य के लिये वे उपदेश अवश्य करते थे। किन्तु किसी के ऊपर भार डालकर जबर्दस्ती काम

खूब जोरों से बढ़ाया। अनेक महानुभावों को श्रमण दीक्षा दी। लाखों मांसाहारियों को जैनधर्म में संस्कारित किया। अनेक मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाई। आपका समय चैत्यवासियों की शिथिलता का समय होने से आपने कई स्थानों पर श्रमण सभा कर शिथिलता को मिटाने का खूब प्रयत्न किया। इसमें आपको पर्याप्त सफलता भी हस्तगत हुई। वादी, प्रतिवादी तो आपका नाम सुनते ही घबरा उठते थे। आपके व्याख्यानों की छाप बड़े२ राजा महाराजाओं पर पड़ती थी अत. कई बार आपका व्याख्यान राजाओं की सभा में हुआ करता था। आप जीवन इस तरह जन कल्याण के कार्यों में व्यतीत हुआ।

अन्त में आपश्री ने शत्रुन्जय तीर्थ पर देवी सच्चायिका की सम्मति और नारदपुरी के प्राग्वट वंशीय शा दावर के महा महोत्सव पूर्वक उपाध्याय चन्द्रशेखर को सूरिपद प्रदान किया। आप तब ही से अपनी अन्तिम सलेखना में लग गये। चंद्रशेखर मुनि का नाम परम्परागत क्रमानुसार सिद्धसूरि रख दिया श्रीदेवगुप्तसूरि ने ११ दिन के अनशन के पश्चात् समाधि पूर्वक पञ्च परमेष्टी का स्मरण करते हुए स्वर्ग पुरी की ओर पदार्पण किया जैन धर्म की उन्नति करने वाले ऐसे महापुरुषों के चरण कमलों में कोटिश. वंदन ! आपके समय में हुए तीर्थादि कार्यों की संक्षिप्त नामावली निम्न प्रकारेण है।

आचार्य भगवान् के ४४ वर्ष के शासन में भावुकों की दीक्षाए

१—चन्द्रावती	के प्राग्वट	गोत्रीय	छुम्बाने	दीक्षाली
२—शिवपुरी	,, भाद्र	,,	चादणाने	,,
३—नादुली	,, प्राग्वट	,,	खेमने	,,
४—पालिहका	,, श्रीमाल	,,	नाथोंने	,,
५ कोरटपुर	,, गुलेच्छा	,,	गोमोने	,,
६—आशिका	,, पाटणी	,,	देदाने	,,
७—हर्षपुर	,, कोठारिया	,,	पेथाने	,,
८—मावणी	,, कुम्मट	,,	सेणाने	,,
९—देवाड़ी	,, लघुश्रेष्टि	,,	जोजाने	,,
१०—चत्रिपुरा	,, सुचेति	,,	डावरने	,,
११—कोसण	,, पल्लीवाल	,,	फूआने	,,
१२—धुगाड़ी	,, पावेचा	,,	वीराने	,,
१३—लाछोड़ी	, समदड़िया	,,	देपाने	,,
१४—जाबलीपुर	,, चौहान	,,	चुनाने	,,
१५—बालापुर	,, चोरड़िया	,,	जेकरणाने	,,
१६—शिवगढ़	,, तप्तभट्ट	,,	कुम्माने	,,
१७—देवाली	,, बप्पनाग	,,	बोटसने	,,
१८—सत्यपुरी	,, पोकरणा	,,	करनाने	,,
१९—टेलीग्राम	,, प्राग्वट	,,	सांगणने	,,

सूरिजी के आगमन से पूर्व संघ में कुछ मनों मालिन्य किंवा आपसी वैमनस्य पैदा हो गया था पर आचार्यश्री के एक व्याख्यान से ही वह चोरों की भांति सदा के लिये पलायन कर गया। श्रीसंघ में शांति, प्रेम एवं संगठन का अपूर्व उत्साह प्रादुर्भूत हो गया। इससे पाया जाता है कि उस समय संघ में आचार्यों का पूरा ही प्रभाव था। संघ के आग्रह से वह चातुर्मास सूरिजी ने उपकेशपुर में ही कर दिया। उपकेशपुर की जनता में पहिले से ही धर्म का गौरव था, कल्याण की भावना थी, स्वधर्मी भाइयों के प्रति अपूर्व वात्सल्य एवं जैन श्रमणों के प्रति अपूर्व श्रद्धा एवं भक्ति थी फिर आचार्यश्री के चातुर्मास होने से तो वे सबके सब द्विगुणित होगये।

सूरिजी का व्याख्यान नित्य नियमानुसार प्रारम्भ ही था। जैन व जैनेतर महानुभाव बड़ी ही रुचि पूर्वक व्याख्यान श्रवण कर कल्याण साधन में संलग्न थे। सूरिजी के विराजने से धर्मोद्योत प्रचुर परिमाण में हुआ। आपके व्याख्यान का प्रभाव जनता पर आशातीत हुआ। चोरडिया जाति के मंत्री मनुष्य का पुत्र करण जो कोट्याधीश था—छ मास की विवाहित पत्नी का त्याग कर आचार्यश्री के पास में भगवती दीक्षा स्वीकार करने के लिए उद्यत हुआ। उसका अनुकरण कर चार पुरुष और सात बहिनों ने भी चातुर्मास समाप्त होते ही करण के साथ दीक्षा ले ली। दीक्षा का कार्य सानंद सम्पन्न होने के पश्चात् आचार्यश्री ने कुमट गौत्रीय देवा के बनाये पार्श्वनाथ भगवान् के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से की। तदनन्तर में वहां से विहार कर माण्डव्यपुर, पद्मावति आदि ग्रामों में होते हुए आचार्यश्री मारवपुरी पधारे। मारवपुरी वैसे तो भावुकों से भरी हुई ही थी पर आपका जन्म स्थान मारवपुरी ही होने से वहां की जनता के उत्साह में कुछ विलक्षणता, एवं विशेषता के साथ अलौकिकता दृष्टिगोचर होती थी। कोई आचार्य श्री से सम्बोधित कर आपके गुणगानों से अपनी जिह्वा को पावन करने लगा तो कोई प्रेमवश बचपन के पुरा नाम से ही आपकी सच्ची प्रशंसा कर अपने जीवन का सच्चा लाभ लेने लगा। कोई कहता कि धन्य है ऐसी माता को जिस ने अपनी कुक्षि से ऐसा पुत्र रत्न उत्पन्न किया कि इसमें मारवपुरी को ही नहीं किन्तु सारी मरुभूमि को उज्वल मुखी बना दिया। इस प्रकार कितने ही उच्ची बातें करते हुए आचार्यश्री के गुणगान किये जा रहे थे। इस प्रकार की निर्मल भक्ति पूर्ण प्रशंसा से मारवपुरी की जनता अपने को गौरवान्वित बना रही थी। अस्तु, सूरिजी के आगमन के साथ ही सूरिजी का खूब समारोह के साथ स्वागत किया गया। नगर प्रवेश के पश्चात् मंगल रूप में दी गई धर्म प्रधान देशना को श्रवण करके जनता दंग रह गई। अखिल जन समाज अपने भाग्य की सराहने लग गया। आचार्यश्री का मारवपुरी जन्म स्थान होने से वहां के लोगों ने आग्रह पूर्ण प्रार्थना करते हुए कहा—प्रभो ! इस मारवपुरी में तो आपने जन्म लेकर हम सब को कृतार्थ किया ही है किन्तु एक चातुर्मास करके और हमें कृतार्थ करें तो हम आपके चिरऋणी रहेंगे। एक चातुर्मास का लाभ तो हमें अवश्य मिलना ही चाहिए। सूरिजी ने संघकी भावना को स्वीकार कर वह चातुर्मास मारवपुरी में ही करना निश्चित कर लिया। चातुर्मास में अभी कुछ अवकाश था अतः चातुर्मास के पूर्व २ आपश्री कोरंटपुर, सत्यपुर, भिन्नमालादि प्रदेश में परिभ्रमण कर धर्मप्रचार करने लगे। चातुर्मास के ठीक समय पर मारवपुरी में पधार कर चातुर्मास कर दिया। इस तरह आचार्यश्री ने अपनी अवशिष्ट आयु मरुधर के उद्धार में ही व्यतीत की।

आपने अपने इस वर्ष के उन्नत शासन काल में प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैनधर्म के उत्कर्ष को

१७—वारापुर	के	समदड़िया गौत्रिय	काना ने	भ०	महावीर	भ०
१८—पेसियाली	,,	श्री श्रीमाल ,,	जेकरण ने	,,	,,	,,
१९—मोतीसरा	,,	श्रीमाल ,,	देपाल ने	,,	,,	,,
२०—कोठरा	,,	श्रीमाल ,,	मोकल ने	,,	वासपूज्य	,,
२१—गोविंदपुर	,,	श्रीमाल ,,	सेनीने	,,	विमलनाथ	,,
२२—भालुगाव	,,	चिंभट ,,	महादेवने	,,	नेमीनाथ	,,
२३—राजपुरा	,,	कुमट ,,	सेजपालने।	,,	मल्लीनाथ	,,
२४—राणकपुर	,,	राका ,,	अवड़ने	,,	महावीर	,,
२५—सल्लोग	,,	करणावट ,,	सालगनें	,,	,,	,,
२६—विदांमी	,,	प्राग्वट ,,	रामाने	,,	पार्श्वनाथ	,,
२७—त्रिभुवनपुरा	,,	प्राग्वट ,,	भुजारने	,,	,,	,,
२८—खेड़ीपुर	,,	श्रीमाल ,,	सवलाने	,,	,,	,,
२९—पुलासिया	,,	ब्राह्मण ,,	जगदेव	,,	,,	,,
३०—रायनगर	,,	तप्तभट ,,	बोसटने	,,	अजित	,,
३१—खुखाली	,,	मोरख ,,	धनाने	,,	नेमिनाथ	,,
३२—कलालीपुर	,,	श्रीमाल ,,	वाघाने	,,	महावीर	,,
३३—रायटी	,,	श्रीमाल ,,	राणाने	,,	,,	,,
३४—पतजड़ी	,,	सुचवि ,,	रांमाने	,,	पार्श्वनाथ	,,

सूरीश्वरजी के ४४ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—जावलीपुर	के	सोढियाणी	गो०	जिनदासने	शत्रुंजयका संघ
२—वाम्रपुर	,,	कोठारी	,,	धन्ना ने	,,
३—नदावली	,,	चोरडिया	,,	सघदास ने	,,
४—सत्यपुरी	,,	बलाह-रांका	,,	नेतसी ने	,,
५—उपकेशपुर	,,	सुचंति	,,	मोहण ने	,,
६—मालीवाड़ा	,,	प्राग्वट	,,	फूश्रो ने	,,
७—दान्तिपुर	,,	श्री श्रीमल	,,	जैतसी ने	,,
८—आशिका	,,	भूरि	,,	राजसी ने	,,
९—खाखाणी	,,	श्रीमाल	,,	गुणाद ने	,,
१०—मारोटकोट	,,	भाद्र	,,	बावर ने	,,
११—त्रिभुवनगढ़	,,	श्रेष्टि	,,	माला ने	,,
१२—दर्शनपुर	,,	श्रीमल	,,	पूर्ण ने	,,
१३—नारदपुरी	,,	पल्लीवाल	,,	दुर्गा ने	,,

१७—तारापुर	के समदड़िया गौत्रिय	काना ने	भ० महावीर		म०
१८—पेसियाली	,, श्री श्रीमाल,,	जेकरण ने	,,	,,	,,
१९—मोतीसरा	,, श्रीमाल ,,	देपाल ने	,,	,,	,,
२०—कोठरा	,, श्रीमाल ,,	मोकल ने	,,	वासपूज्य	,,
२१—गोविंदपुर	,, श्रीमाल ,,	सेनीने	,,	विमलनाथ	,,
२२—मालुगाव	,, चिंचट ,,	महादेवने	,,	नेमीनाथ	,,
२३—राजपुरा	,, कुमट ,,	सेजपालने	,,	मल्लीनाथ	,,
२४—राणकपुर	,, राका ,,	श्रवड़ने	,,	महावीर	,,
२५—वल्लोग	,, करणावट ,,	सालगने	,,	,,	,,
२६—विद्यामी	,, प्राग्वट ,,	रामाने	,,	पार्श्वनाथ	,,
२७—त्रिभुवनपुरा	,, प्राग्वट ,,	कुम्भारने	,,	,,	,,
२८—सेट्टीपुर	,, श्रीमाल ,,	सवलाने	,,	,,	,,
२९—पुलासिया	,, ब्राह्मण ,,	जगदेव	,,	,,	,,
३०—रायनगर	,, वप्पनट ,,	योसटने	,,	अजित	,,
३१—खुस्वाली	,, मोरख ,,	धनाने	,,	नेमिनाथ	,,
३२—कलालीपुर	,, श्रीमाल ,,	वाघाने	,,	महावीर	,,
३३—रायटी	,, श्रीमाल ,,	राणाने	,,	,,	,,
३४—पवजड़ी	,, सुचंति ,,	रामाने	,,	पार्श्वनाथ	,,

सूरीश्वरजी के ४४ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—जाबलीपुर	के	बोडियाणी	गो०	जिनदासने	शत्रुंजयका संघ
२—वाघ्रपुर	,,	कोठारी	,,	धन्ना ने	,,
३—नंदावती	,,	चोरड़िया	,,	सघदास ने	,,
४—सत्यपुरी	,,	बलाह-रांका	,,	नेतसी ने	,,
५—उपकेशपुर	,,	सुचंति	,,	मोहण ने	,,
६—कालीवाड़ा	,,	प्राग्वट	,,	फूश्रो ने	,,
७—शान्तिपुर	,,	श्री श्रीमल	,,	जैतसी ने	,,
८—आशिका	,,	भूरि	,,	राजसी ने	,,
९—खाखांणी	,,	श्रीमाल	,,	गुणाद ने	,,
१०—मारोटकोट	,,	भाद्र	,,	डावर ने	,,
११—त्रिभुवनगढ़	,,	श्रेष्टि	,,	माला ने	,,
१२—दर्शनपुर	,,	श्रीमल	,,	पूर्णा ने	,,
१३—नारदपुरी	,,	पल्लीवाल	,,	दुर्गा ने	,,

४१—आचार्य श्री सिद्धसूरि (अष्टम)

सिद्धाचार्य इति स्तुतो मुनिवरश्चादित्यनागान्वये ।
शाखां पारखनामधेयविदितां भूपासमोऽभूपयत् ॥
शत्रोर्मानविमर्दको धृतबलो जैनान् विधातुं क्षमः ।
देवस्थानविधानतो जिनमतस्थैर्यं चकारात्मनो ॥

परम पूज्य, आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज बाल ब्रह्मचारी, महान तपस्वी, सकल शास्त्र पारङ्गत, युगप्रधान कल्प, प्रत्यूषप्रार्थ्य, महा शासन प्रभावक, शास्त्रार्थ निष्णात उग्रविहारी, तपोधनी, सुविहित शिरोमणि, धर्मप्रचारक, धर्मोपदेशक, श्रमणार्चित साक्षात् सिद्ध पुरुष के अनुरूप अनेक गुणालङ्कारालकृत आचार्य प्रवर हुए । आपश्री के ब्रह्मचर्य का व कठोर तपश्चर्या का अखण्ड तपतेज और पूर्ण प्रभाव भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक विस्तृत था । आपश्री के परोपकारमय जीवन का पट्टावलियों, वशावलियों में सविशद वर्णन है किन्तु ग्रंथ विस्तार के भय से हम उतना विस्तृत न बनाते हुए हमारे उद्देश्यानुसार संक्षेप में आपके जीवन की मुख्य २ घटनाओं का उल्लेख करेंगे जिससे पाठकों को अच्छी तरह से ज्ञात हो जायगा कि पूर्वाचार्यों का जैन समाज पर कितना उपकार है ? उन महापुरुषों ने कितनी तरह की तकलीफें सहन करके भी अपने कर्तव्य पथ को नहीं छोड़ा । उन्होंने किस तरह की कार्यकुशलता से जैनधर्म का इतना सुदूर प्रान्तों तक प्रचार किया ? और उस उपकार ऋण से उऋण होने के लिये हमारा उनके प्रति क्या कर्तव्य है ? अस्तु,

जैसे मेघादि की कलंकमय कालिमा विहीन, निर्मल एवं शुभ्र आकाश में ग्रह, नक्षत्र, तारादि परिवारों की समृद्धि से समृद्धिशाली, षोडश कला परिपूर्ण कलानिधि शोभित होता है उसी तरह इस भूमण्डल पर व्यापारादि समृद्धिवर्धक साधनों की प्रबलता से, श्वेत वर्णीय प्रासाद शिखरों की उत्तुंगता से, एवं महावीर मन्दिर की उच्चैशिखर के ध्वज दंड और सुवर्ण कलश सुशोभित तथा नानोपवन कूपवाटिकादि प्राकृतिक सौंदर्य से शोभायमान महाजन संघ का आद्योत्पादक क्षेत्र श्री उपकेशपुर नाम का चित्ताकर्षक, मनोरंजक, आल्हादकारी, रमणीय नगर था । यों तो यह नगर छत्तीस प्रकार की कौम का आश्रय स्थान था किन्तु मुख्यता में उपकेशवंशियों की विशालता थी । देवी सच्चायिका के वरदानानुसार 'उपकेशे बहुलद्रव्य' उपकेशपुरीय महाजन संघ जैसे तन से एवं जन से कुटुम्ब परिवार से परिपूर्ण था वैसे धन में भी कुबेर से स्पर्धा करने वाला था । उपकेशवंशियों की जैसे राज्य कर्मचारियों के मंत्री, सेनापति आदि पदों से विशेष सत्ता थी वैसे नागरिकों में भी नगरसेठ, पंच चौधरी आदि मानवर्धक, सम्मान बोधक पदों से प्रतिष्ठा थी । उपकेशवंशियों में आदित्यनाग नाम का प्रसिद्ध गौत्र है जो, एक आदित्यनाग नाम के महापुरुष के स्मृतिरूप ही है । इसी आदित्यनाग गौत्र की शाखा प्रशाखादि के रूप में इतनी वृद्धि हुई कि भारत के अधिक प्रान्तों में आदित्यनाग गौत्रीय शाखाएं ही दृष्टिगोचर होने लगी थी । इनकी शाखाओं मुख्य २ चोरलिया, गोलेचा

१४—रत्नपुरा के कुम्मट गो० दीपाने शत्रुंजय का संघ
१५—उपकेशपुर ,, आदित्य० ,, करमी ने ,,
१६—नागपुर ,, चिंचट ,, खेमा ने ,,
१७—चम्पावती ,, प्राग्वट ,, करण ने ,,
१८—उपकेशपुर के कुम्मट रावल युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सती हुई।
१९—मेदिनीपुर के श्रेष्ठि हरदेव ,, ,, ,,
२०—शिवगढ़ के चोरड़िया अर्जुन ,, ,, ,,
२१—मुग्धपुर के प्राग्वट महाराव ,, ,, ,,
२२—चन्द्रावती में बप्पनाग देदा की पत्नी ने एक लक्ष द्रव्य से बावड़ी कराई।
२३—छत्रीपुर के श्रेष्ठि गोसल की पुत्री रामी ने तलाव बनाया।
२४—मोकपुर के प्राग्वट कुम्मट की धर्म पत्नी ने एक कुंवा बनवाया।
२५—पाल्हिका के मल्लीवाल काना ने दुकाल में एक क्रोड़ी द्रव्य दिया।

दुकाल—आचार्य देव के शासन में महाजन संघ बड़ा ही आबाद दशा को भोग रहा था तब साथ पद पुजारी परिवार ये धनाढ्यतायी था वे लोग अच्छी तरह से समझते थे कि इस धनाढ्यता होने का मुख्य कारण देव गुरु और धर्म पर अटूट श्रद्धा है अत वे लोग गुरु महाराज के उपदेश एवं आदेश को देव वाक्य की तरह शिरोधार्य करते थे गुरु आदेश से एक एक शुभ कार्य में लाखों करोड़ों द्रव्य क्षण मात्र में व्यय कर डालते थे इतना ही क्यों पर वे जनोपयोगी कार्यों में भी पीछे नहीं रहते थे आचार्य श्री के शासन समय तीन बार दुकाल पड़ा था जिसमें भी महाजन संघ ने करोड़ों द्रव्य खर्च किये।

उपकेशवंशकी उदारता—नागपुर के अदित्यनाग देदा के पुत्र खींवसी की बरात सत्यपुरी के हुलेरामा के वहाँ जाती थी रास्ता में भोजन के लिये शक्कर (खांड) की १५० बोरियों साथ में थी बरात ने एक ग्राम के बाहर बावड़ी पर डेरा डाल कर रसोई बनाई जब भोजन करने की तैयारी हुई तो ग्राम वालों से मालूम हुआ कि बावड़ी का पानी कुछ खारा है तो सब लोग कहने लगे कि क्या देदाशाह हमें खारा पानी पिलावेगा ? इस पर देदाशाह ने नौकरों को हुक्म दिया कि अपने साथ में जितनी खांड है वह सब बावड़ी में डालदो। बस वे १५० बोरियों खोल कर सब खांड बावड़ी में डलवादी और ग्राम वालों को कहा कि आप सब सरदार मीठा पानी पीवोगे। बस था, लोगों ने देदाशाह की उदारता की बहुत प्रशंसा की तथा ग्राम वालों भी मिठा पानी पिया और एक कवि ने देदाशाह की उदारता का कवित्त भी बनाया।

चालीसवें पट्ट देवगुप्त हुए, जिनकी महिमा भारी थी।
आत्मबल अरु तप संयम से कीर्ति खूब विस्तारी थी॥
शिथिलाचारी दूर निवारी, आप उग्र विहारी थे।
गुण गाते सुर गुरु भी थाके, शासन धर्म प्रचारी थे॥

इति भगवान् पार्श्व नाथ के चालीसवे पट्टधर आचार्य देवगुप्त सूरि परमप्रभाविक आचार्य हुए।

गृह में गया और उसके साथ एक ही शैय्या पर सो गया किन्तु विजयकुंवर, विजयकुंवरी के दृष्टान्त को स्मरण में रख उसने अपनी प्रतिज्ञा में किञ्चित् भी बाधा नहीं उपस्थित होने दी। करण की पत्नी ने भी प्रथम संयोग में लज्जावश कुछभी नहीं कहाकि थोड़े दिनों के पश्चात् वह अपने पितृगृह को भी चली गई। जब चार मास के पश्चात् वह पुनः अपने सुसराल में आई और करण की आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालने की कठोर, हृदय विदारक प्रतिज्ञा को सुनी तो उसने अपने पतिदेव से प्रार्थना की कि—पूज्यवर ! यदि आपकी प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य व्रत पालने की इच्छा थी तब शादी ही क्यों की ?

करण—मेरी इच्छा तो बिलकुल ही नहीं थी परन्तु कुटुम्ब वालों ने जबर्दस्ती शादी करवादी।

पत्नी—कुटुम्ब वालों ने तो जरूर ऐसा किया होगा पर जब आप स्वयं दृढ़ निश्चय कर चुके थे फिर शादी करने का क्या कारण था ?

करण—मेरी इच्छा यह भी थी कि यदि मेरे कारण किसी दूसरे जीव का उद्धार होने का हो तो कौन कह सकता है ?

पत्नी—दूसरा जीव तो मैं ही हूँ न ?

करण—हाँ आप ही हैं।

पत्नी—तो क्या आप मेरा कल्याण करना चाहते हैं ?

करण—तब ही तो संयोग मिला है। क्या आपने विजयकुंवर विजयकुंवरी का व्याख्यान नहीं सुना है कि उन दोनों ने एक ही शैय्या पर सोकर के भी अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत पाला था ?

पत्नी—तो क्या आप विजयकुंवर बनना चाहते हैं ?

करण—विजयकुंवर तो महापुरुष थे। उनके समय संहनन, शक्ति वगैरह कुछ और ही थी और आज के समय की संहनन शक्ति कुछ और ही है।

पत्नी—जब संहनन वगैरह वे नहीं हैं तो आप मुझे विजयकुंवरी कैसे बना सकेंगे ? मेरी इच्छा रुक नहीं सकेगी तो आप मुझे ऐसा कौनसा सुखमय मार्ग बतलाओगे ?

करण—यह मुझे स्वप्न में भी उम्मेद नहीं है कि मैं ब्रह्मचर्य्य व्रत पालू और आप किसी दूसरे मार्ग का मन से भी अनुसरण करें। प्रत्येक प्राणी में अपने खानदान का खून और आत्मीय गौरव हुआ करता है अत. मुझे विश्वास है कि मेरे साथ आप भी ब्रह्मचर्य पालेंगी ही।

पत्नी—पर काम देव तो एक दुर्जय पिशाच है मेरी जैसी अबला उसको कैसे जीत सकेगी ? आप जरा विचार तो करिये ?

करण—पुरुषों की अपेक्षा इस कार्य में अबला—अबला नहीं किन्तु सबला होती हैं। द्रौपदी, मदन रेखा का चरित्र आपने नहीं सुना है ? वे भी आपके जैसी अबलाएं ही थी पर मौका आने पर उन सतियों ने अबला जन्य निर्बलता को तिलाञ्जली दे पुरुषों को भी लज्जित करने वाले सबलाओं के कार्य किये।

आपने सुना होगा कि शास्त्रकारों ने काम भोग को मलमूत्र की उपमा देकर काम भोगों का तिरस्कार किया है। इसको सर्वथा हेय बता कर इसके भोगने वाले को अनन्त संसारी बताया है। विचारने जैसी बात है कि इस मनुष्य भव की अल्प आयु में या किञ्चित विषय सुख में देवतासम्बन्धी या मोक्ष के अक्षय सुख को हार जाना हमारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है ? यदि इस क्षणिक अवस्था को हमने धर्माराधन में

कारण बनेरह हैं। पूर्वकाल के महाजनों को इधर से उधर, और उधर से इधर स्थान परिवर्तन करने पड़े के मुख्य दो कारण थे। एक व्यापार के लिये और दूसरा राज्य विप्लव की अव्यवस्था के कारण। उधर आदि—वर्तमान में भी बम्बई, कलकत्ता, करांची, ब्यावर, रांची, समीरपुर आदि नगर—जो नये २ बसते के रूप में दृष्टि गोचर हो रहे हैं—केवल व्यापारिक क्षेत्र की प्रबलता एवं विशालता के कारण से ही हैं। इसके विपरीत, कलिंग बाड़मी, सिंध और पञ्जाब के होने से राज्य क्रांति एवं आक्रमण की अधिकता के कारण इधर उधर—जिधर सुरक्षित स्थान मिले—जाकर अपने सुरक्षित स्थान बना लिये। इसके सिवाय भी कई वक्त राजा लोग अपने नये राज्य का निर्माण कर, महाजनों को सम्मान पूर्वक आमन्त्रित कर उन्हें कई प्रकार की सुव्यवस्था प्रदान कर अपने नये राज्य में ले गये। अतः महाजन लोगों का एक प्रांत से दूसरे प्रांत में जाकर रहना या वहां निवास करना स्वाभाविक सा ही होगया था। इसका पुष्ट एवं सबल प्रमाण आज भी हमारी आंखों के सामने है कि बरार, खानदेश, यू० पी०, सी० पी० बिहार, बंगाल आदि राजपूति प्रान्तों में हमारे स्वधर्मी भाइयों की पेढ़ियें यथावत प्रचलित हैं। हमारी आंखों की सामने में इन प्रान्तों में व्यापार निमित्त मारवाड़ से गये हुए मारवाड़ी भाइयों के दर्शन हो सकेंगे। अस्तु,

उपकेशपुर में आदित्यनाग गोत्र की पारख शाखा के अलङ्कार, धर्मज्ञ एवं नितिवान, परम धार्मिक उदारवृत्तिवाले श्रीअर्जुन नाम के सेठ रहते थे। आप तीन बार संघ निकाल कर समाज तीर्थों की यात्रा कर स्वधर्मी भाइयों को स्वर्ण मुद्रिका एवं वस्त्रों की प्रभावना देकर संघपति पद को प्राप्त करने में भाग्यशाली बने थे। तीन बार तीर्थयात्रा के लिए संघ निकालने के परमपुण्य को सम्पादन करने के पश्चात् दर्शन पद की वि आराधना के लिए उपकेशपुर में भगवान आदिनाथ का एक आलीशान मंदिर बनवाया था। आपके चार पुत्र और सात पुत्रियें थीं जिनमें एक करण नामक पुत्र बड़ा ही होनहार था। यह बचपन से ही धर्मक्रिया की ओर अभिरुचि रखने वाला व आत्मकल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत था। मुनि, महात्माओं की सत्संगति एवं उनकी सेवा के लिए सदा तत्पर रहता था। उसके जीवन में निष्पृहता की पराकाष्ठा की अद्भुतता थी। महात्माओं की भक्ति एवं धर्म कार्य में विशेष प्रेम उसके भावी जीवन के अभ्युदय के सूचक थे। अवस्था के बढ़ने के साथ ही साथ ज्यों ही अर्जुन अपने पुत्र का विवाह करने के लिये उपस्थित हुए तो इसके विपरीत करण उनका प्रबल विरोध करने लगा। क्रमशः इसी खींचतान में १५ वर्ष व्यतीत हो गये। अन्त में करण की इच्छा न होने पर भी कुटुम्ब वालों के आग्रह से वा अर्जुन ने करण की सगाई कर ही दी। समय पर विवाह करने के लिये उस पर बहुत अधिक दबाव डाला गया पर करण तो आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत पालने की प्रतिज्ञा ले चुका था अतः विवाह के प्रस्ताव को सुन कर वह एक दम पेशोपेश में पड़ गया। उसके सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो गई कि वह शादी के प्रस्ताव को स्वीकार करे या अपनी कृत प्रतिज्ञा पर स्थिर रहे। अन्त में उसने निश्चय किया कि मेरे निमित्त से एक जीव का और भी कल्याण होने वाला हो तो क्या मालूम अतः परिवार वालों को प्रसन्नता के निमित्त और अपनी इच्छा व प्रतिज्ञा के विरुद्ध भी शादी कर लेना समीचीन होगा। इस विचार के साथ में ही उसके वचनों के सामने विजयकुंवर, विजयसेठ के एक होनहार पर खोने पर भी मार्ग, सहित के समान अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने का रास्ता निष्कण्टक उपस्थित हो गया।

बस, करण ने शादी करली। विवाह कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् वह अपनी पत्नी के साथ

विदित ही है कि आचार्यश्री बाल ब्रह्मचारी, तेजस्वी—तपस्वी थे अतः आप, अपने व्याख्यान में ब्रह्मचर्य की महत्ता का विशेष वर्णन करते थे। एक दिन प्रसङ्गानुसार आपने फरमाया कि—

देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा। बंभयारी नमसंति, दुकरं जे करेन्ति ते ॥

अर्थात्—जो निष्ठ-अखण्ड ब्रह्मचर्य पालते हैं उनको देवता, दानव, गन्धर्व यक्ष, भूत पिशाच, राक्षस किन्नरादि देव भी नमस्कार करते हैं। उन महा पुरुषों की सेवा करने में वे अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं। अत. ब्रह्मचर्य में किसी भी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होने देने के लिये किंवा निरतिचार ब्रह्मचर्य व्रत को पालन करने के लिये श्रमण जीवन ही उत्तम साधन है। इसके बिना शुद्ध ब्रह्मचर्य पालना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है कारण, मन की दुर्बलता से कभी न कभी अपनी प्रतिज्ञा में भांगा लगने की संभावना रहती है। आचार्यश्री के उक्त व्याख्यान को करण और करण की पत्नी ने ध्यान पूर्वक सुना। व्याख्यानानंतर अपने मकान पर आकर माता पिता (सासू, श्वसुर) से दोनों जने दीक्षा के लिये एक साथ आज्ञा मांगने लगे। वे कहने लगे—कि हम जल्दी ही आचार्यदेव के पास में दीक्षित होना चाहते हैं अतः कृपा कर आप अविलम्ब आज्ञा प्रदान करें।

सेठ अर्जुन और आपकी पत्नी फागु को यह मालूम नहीं था कि पुत्र और पुत्र वधु दोनों आजपर्यन्त बालब्रह्मचारी हैं। अत उन्होंने करण को घर में रखने के लिये खूब प्रपञ्च एवं प्रयत्न किया पर जब इस बात की खबर पड़ी कि करण और करण की पत्नी अखण्ड ब्रह्मचारी हैं और दोनों ही दीक्षा के इच्छुक हैं तो उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा शनै. २ यह बात नगर वासियों के कानों तक पहुँची तो सब ही उक्त उदाहरण से विजयकुंवर विजयकुंवरी की स्मृति करने लगे। सब नगर निवासी उनके आदर्श त्याग की प्रशंसा करने लगे और कोटिशः धन्यवाद देने लगे। नगर में थोड़े समय के लिये इस विषय की बड़ी भारी क्रान्ति मच गई। विषयाभिलाषियों को भी विषयों से वैराग्य होने लगा। इधर सूरिजी महाराज के त्यागमय उपदेश ने जनता पर इतना प्रभाव डाला कि १३ पुरुष और १८ महिलाएं दीक्षा के लिये और तैयार हो गये। शा अर्जुन ने सात लक्ष द्रव्य व्ययकर दीक्षा का महोत्सव किया और सूरिजी ने करण और शेष उम्मेदवारों को शुभमुहूर्त और स्थिरलग्न में भगवती दीक्षा देदी। करण का नाम मुनि चन्द्रशेखर रख दिया।

वर्तमान काल में प्रकृतितः मनुष्य पाप के कार्यों की देखा देखी करते हैं वैसे पूर्व जमाने में धर्म के कार्य की देखा देखी भी करते थे। इसका ज्वलत उदाहरण आप हर एक आचार्य के जीवन में पढ़ते ही आ रहे हैं। वास्तव में उस समय के जीव ही लघुकर्मी और धार्मिक होते थे। उनके लिये मोक्ष बहुत ही नजदीक था अत' उनका सारा ही जीवन सीधा सादा, सरल एवं सांसारिक स्पृहा रहित था। जैसे मनुष्यों को मरने में देर नहीं लगती है वैसे उन लोगों को घर छोड़ने में भी देर नहीं लगती थी। वे लोग तो अपने जीवन का ध्येय आत्म कल्याण ही समझते थे।

मुनि चन्द्रशेखर बड़े ही प्रज्ञावान् थे। शायद उन्होंने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की बहुत ही आराधना एवं ज्ञान दान की परम उदारता की होगी। यही कारण था कि, अन्य साधुओं की अपेक्षा आप हर एक विषय का शीघ्र ही पाठ कर लेते। अभ्यासक्रम की उक्त विलक्षणता ने उन्हें अल्प समय में ही एकादशांगी तथा उपांगादि शास्त्रों के विचक्षण ज्ञाता बना दिये। शास्त्रीय पाण्डित्य के साथ ही साथ तत्समयोपयोगी न्याय, व्याकरण, काव्य, छन्दादि शास्त्रों में भी असाधारण विद्वत्ता प्राप्त कर ली। १४ वर्ष के गुरुकुल

लगाती तो निश्चय ही हमारे लिये देवताओं के भोग किंवा मोक्ष का अक्षय सुख तैयार है किन्तु इसके विपरीत भविष्य का विचार न करके थोड़े से सुखों के लिये बहुत की हानि की तो मधुलिप्त खड्ग को चाटने वाले जिह्वालोलुपी की जिह्वा कटने के दुःख के समान हमको भी अनन्त नरक, तिर्यञ्च, निगोद के दुखों को सहन करना पड़ेगा जहां से कि अनन्त पुनरुद्धार होना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य ही हो जायगा। शास्त्रों में कहा है—

सल्लं कामा विसंकामा कामा आसी विसोवमा। कामे य पत्थेमाणा अकामा जन्ति दुग्गइं॥
जहा किम्पाग फलाणं परिणामो न सुंदरो। एवं भुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो॥

अर्थात्—ये काम भोग शल्य—कंटक स्वरूप हैं। साक्षात् विष से भी भयंकर हैं आशीविष सर्प से भी अधिक एवं हानिकर हैं। यह जीव इन पौद्गलिक सुखों में मोहित हो इनकी प्राप्ति के प्रयत्न करता रहता है और काम भोग को भोगने की तीव्र इच्छा वाला होकर के भी अन्तराय कर्म के [illegible] न [illegible] करता हुआ इच्छा से ही दुर्गति को प्राप्त हो जाता है। कहां तक कहें। इन काम भोगों को शास्त्रकारों ने किम्पाक फल की उपमा दी है जैसे किम्पाक फल खाने में अत्यन्त स्वादु एवं मन को आनन्द बढ़ाने वाला होता है किन्तु कुछ ही क्षणों के पश्चात् वह आनन्द मृत्यु के ही रूप में परिणत हो जाता है उसी तरह ये काम भोग भी भोगते हुए कुछ क्षणों के लिये सुखप्रद अवश्य हैं। ये कामभोग तो हमारे बाह्यशत्रुओं की अपेक्षा भी अधिक हानि पहुंचाने वाले शत्रु हैं। कारण अपना प्रतिपक्षी-द्वेषी सिंह, हाथी, सर्प वगैरह तो प्रसंग के आवेश में आकर अधिक से अधिक एक भव के नाशवान शरीर का ही नाश कर सकते हैं किन्तु ये कामभोग भव भव के आत्मिक गुणों का एक क्षण में ही विनाश कर देते हैं। अतः किञ्चित्काल के क्षणिक विषय सुखभोगों को भोगकर चिरकाल के दुःखों को मोल लेना—"खणमेत्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा" कहां की समझदारी है! अतः आप भी दृढ़ता पूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत की आराधना करें इसी में आत्मा का कल्याण है।

पत्नी—जब मनुष्य के सामने खाने योग्य पदार्थ रहते हैं तब वह कदाचित् किन्हीं कठोर प्रतिबन्धों के कारण न भी खाता हो किन्तु उसकी इच्छा तो खा जाने की रहती है अतः उस पदार्थ से और दूर रहना ही अच्छा है जिससे कभी अभिलाषा जन्य पाप के भागी तो न हो सकें।

करण—तो क्या आपकी इच्छा उस पदार्थ से सदैव के लिये दूर रहने की है? यदि ऐसा ही है तो एक बार पुनः दृढ़ निश्चय कर लें।

पत्नी—अब तो ख्याल हो गया है।

करण—यदि ऐसा ही है तो बड़ी खुशी की बात है कि आप और हम एक वय के पवित्र बनकर आत्मकल्याण के परमपीयूष को प्राप्त करेंगे।

बस उन पवित्र आत्माओं ने रात्रि में आपस में वार्तालाप से ही दृढ़ निश्चय कर लिया कि समय आने पर अपन दोनों एक साथ में दीक्षा ग्रहण कर निवृत्ति मार्ग के अनुसरण करेंगे। समय की प्रतीक्षा में दोनों विजयकुंवर, विजयकुंवरी के समान एक शैय्या पर सोते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत को पालन करने लगे।

इधर संयोगवशात् पुण्योदय से शासनोद्धारक, जिनमन्दिर यम नियम निष्ठ, शास्त्रमर्मज्ञ, अनेक तीर्थ भ्रमण, धर्मप्रचारक आचार्य सिद्धसूरि का चन्द्रावतीपुर में पदार्पण हुआ। पूर्व प्रकरण से पाठकों को अच्छी तरह से

किये । व्रत, नियम लिये, भैरु, चण्डिकादि देवी देवताओं की मानताएं मनाई, बाबा, योगी सन्यासियों, को जादू, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र इत्यादि सैंकड़ों अनुकूल उपाय किये किन्तु प्रकृति एवं कर्मों की प्रतिकूलता के कारण वे सब अनुकूल यत्न भी प्रतिकूल शत्रु के समान दुःखदायी ही प्रतीत होने लगे । इस तरह सेठजी एक दम पुत्र की आशा से निराश बन गये थे और यह निराशाही उनके कोमल हृदय को कण्टक की तरह भेद रही थी । सम्पूर्ण आनन्द को किरकिरा कर रही थी ।

एक दिन सेठजी ने सुना कि शहर में एक जैनाचार्य महात्मा आये हैं वे बड़े ही तपस्वी, योगी एवं सिद्ध महापुरुष हैं । सूरीश्वरजी की उक्त प्रशंसा सुनकर सेठजी तुरत अपनी मनोकामना को पूर्ण करने मंत्र यंत्रादि की आशा से आचार्यश्री के पास में आये और अपने गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी सम्पूर्ण हालत को अथ से इति पर्यन्त सुनाना प्रारम्भ किया । अन्त में मृत्युपुत्रों के होने रूप मनोगत दुःख को निवेदन कर सेठजी आखों में अश्रु ले आये । सूरिजी ने सोचा कि यह बेचारा कर्म सिद्धान्त से अज्ञात है अवश्य, पर हृदय का अत्यन्त सरल एवं भद्रिक स्वभावी है । यदि इसको उपदेश दिया जाय तो अवश्य ही एक आत्मा का सहज ही में कल्याण हो सकता है । इसी आदर्श एवं उच्चतम भावना को लक्ष्य में रख कर आचार्यश्री ने सेठ मुकुन्द को कर्म सिद्धान्त का तात्त्विक एवं मार्मिक उपदेश देना प्रारम्भ किया । वे कहने लगे—महानुभाव ! प्रत्येक जीव अपने शुभाशुभ कर्मों का फल इसभव में या परभवमें अनुभव करता ही रहता है । शास्त्रीयकथनानुसार "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" अर्थात् पूर्व जन्मोपार्जित शुभ-सुखरूप और अशुभ—दुःख रूप कर्मों के फल को आस्वादन किये बिना उनसे मुक्त होना अशक्य है । पूर्वकृत कर्मों के दुःख को जब अभी भी इस तरह के अश्रुपात के रूप में उसको प्रकाशित कर रहे हो तो भविष्य के लिये तो अवश्य ही इस प्रकार का उपाय करना चाहिये कि जिससे किसी भी प्रकार के दुःख का अनुभव न करना पड़े । यह तो अपने ही पहले के जन्म के पापोदय हैं ऐसा समझकर पुत्र के लिये आर्तध्यान करना छोड़ दो । इसकी चिन्ता ही चिन्ता में नवीन कर्मों का बंधन कर भविष्य के जीवन को दुःखमय बनाना और वर्तमान में प्राप्त नरदेह को यों ही खो देना कहां की बुद्धिमत्ता है आपको तो इस नरदेह की अमूल्यता पर विचार करके आर्तध्यान को छोड़ आत्मकल्याण के एकान्त सुखमय मार्ग के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये । इस मार्ग में किसी भी प्रकार के दुःख एवं विघ्न की आशंका ही नहीं है । यह इस भव और परभव—उभयभव में आनन्द दायी है । सेठजी ! जरा शान्त चित्त से विचार करो—यदि किसी के एक, दो यावत सौ पुत्र भी होजाय तो क्या ये पुत्र वगैरह परिवार एवं धन वगैरह पौद्गलिक पदार्थ परभव में किसी भी प्रकार के सहायक हो सकते हैं ! या किसी तरह के नरक तिर्यञ्च के दुःखों से मुक्त करा सकते हैं ? नहीं—तो फिर व्यर्थ ही इस प्रकार चिन्ताओं में गल कर एवं आर्तध्यान के वशीभूत हो कर कर्म बंधन करना कहां तक युक्तियुक्त है ? इस पर आप और भी गहरी दृष्टि से विचार करें ।

देवानुप्रिय ! धर्म एक ऐसा कल्पवृक्ष है कि इसके आराधन से जीव को मनोवाञ्छित पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है । जीव, धर्मानुमार्ग का अनुसरण करके इसलोक परलोक में सुखी होता है और ईश्वरी सत्ता को क्रमशः प्राप्त करके जन्म, जरा, मरण के भयङ्कर दुःखों से मुक्त हो जाता है । इसके लिये धर्म पर अटूट श्रद्धा एवं भक्ति होनी चाहिये । देखो, परम्परागत एक ऐसी कथा सुनने में आती है कि—किसी नगर में हरदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था । उसके पास द्रव्य की अधिकता एवं पौद्गलिक पदार्थों की विशिष्ट

किये। व्रत, नियम लिये, भेरु, चण्डिकादि देवी देवताओं की मानताए मनाई, बाबा, योगी सन्यासियों, को जादू,, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र इत्यादि सैंकड़ों अनुकूल उपाय किये किन्तु प्रकृति एवं कर्मो की प्रतिकूलता के कारण वे सब अनुकूल यत्न भी प्रतिकूल शत्रु के समान दुःखदायी ही प्रतीत होने लगे। इस तरह सेठजी एक दम पुत्र की आशा से निराश बन गये थे और यह निराशाही उनके कोमल हृदय को कण्टक की तरह भेद रही थी। सम्पूर्ण आनन्द को किरकिरा कर रही थी।

एक दिन सेठजी ने सुना कि शहर में एक जैनाचार्य महात्मा आये हैं वे बड़े ही तपस्वी, योगी एवं सिद्ध महापुरुष हैं। सूरीश्वरजी की उक्त प्रशंसा सुनकर सेठजी तुरत अपनी मनोकामना को पूर्ण करने मंत्र यन्त्रादि की आशा से आचार्यश्री के पास में आये और अपने गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी सम्पूर्ण हालत को अथ से इति पर्यन्त सुनाना प्रारम्भ किया। अन्त में मृत्युपुत्रों के होने रूप मनोगत दुःख को निवेदन कर सेठजी आखों में अशुले आये। सूरिजी ने सोचा कि यह वेचारा कर्म सिद्धान्त से अज्ञात है अवश्य, पर हृदय का अत्यन्त सरल एव भद्रिक स्वभावी है। यदि इसको उपदेश दिया जाय तो अवश्य ही एक आत्मा का सहज ही में कल्याण हो सकता है। इसी आदर्श एवं उच्चतम भावना को लक्ष्य में रख कर आचार्यश्री ने सेठ मुकुन्द को कर्म सिद्धान्त का तात्त्विक एवं मार्मिक उपदेश देना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे—महानुभाव! प्रत्येक जीव अपने शुभाशुभ कर्मों का फल इसभव में या परभवमें अनुभव करता ही रहता है। शास्त्रीयकथनानुसार "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" अर्थात् पूर्व जन्मोपार्जित शुभ-सुखरूप और अशुभ—दुःख रूप कर्मों के फल को आस्वादन किये विना उनसे मुक्त होना अशक्य है। पूर्वकृत कर्मों के दुःख को जब अभी भी इस तरह के अश्रुपात के रूप में उसको प्रकाशित कर रहे हो तो भविष्य के लिये तो अवश्य ही इस प्रकार का उपाय करना चाहिये कि जिससे किसी भी प्रकार के दुःख का अनुभव न करना पड़े। यह तो अपने ही पहले के जन्म के पापोदय हैं ऐसा समझकर पुत्र के लिये आर्तध्यान करना छोड़ दो। इसकी चिन्ता ही चिन्ता में नवीन कर्मों का बंधन कर भविष्य के जीवन को दुःखमय बनाना और वर्तमान में प्राप्त नरदेह को यो ही खो देना कहां की बुद्धिमत्ता है आपको तो इस नरदेह की अमूल्यता पर विचार करके आर्तध्यान को छोड़ आत्मकल्याण के एकान्त सुखमय मार्ग के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। इस मार्ग में किसी भी प्रकार के दुःख एवं विघ्न की आशंका ही नहीं है। यह इस भव और परभव—उभयभव में आनन्द दायी है। सेठजी! जरा शान्त चित्त से विचार करो—यदि किसी के एक, दो यावत सौ पुत्र भी होजाय तो क्या ये पुत्र वगैरह परिवार एवं धन वगैरह पौद्गलिक पदार्थ परभव में किसी भी प्रकार के सहायक हो सकते हैं! या किसी तरह के नरक तिर्यञ्च के दुःखों से मुक्त करा सकते हैं? नहीं—तो फिर व्यर्थ ही इस प्रकार चिन्ताओं में गल कर एव आर्तध्यान के वशीभूत हो कर कर्म बंधन करना कहां तक युक्तियुक्त है? इस पर आप और भी गहरी दृष्टि से विचार करें।

देवानुप्रिय! धर्म एक ऐसा कल्पवृक्ष है कि इसके आराधन से जीव को मनोवाञ्छित पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है। जीव, धर्मानुमार्ग का अनुसरण करके इसलोक परलोक में सुखी होता है और ईश्वरी सता को क्रमशः प्राप्त करके जन्म, जरा, मरण के भयङ्कर दुःखों से मुक्त हो जाता है। इसके लिये धर्म पर अटूट श्रद्धा एवं भक्ति होनी चाहिये। देखो, परम्परागत एक ऐसी कथा सुनने में आती है कि—किसी नगर में इष्टदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके पास द्रव्य की अधिकता एवं पौद्गलिक पदार्थों की विशिष्ट

विविधताओं के होने पर भी सन्तानाभाव रूप भयंकर चिन्ता उसे रात दिन अतीव संताप से संतप्त करती रहती। उसने अपने सार्थक जीवन को एक दम निरर्थक मृत्यु तुल्य समझ लिया। एक दिन पुण्य संयोग से उसकी भेंट एक जैन मुनि के साथ होगई तब उसने अपने पुत्र दुःख का सम्पूर्ण हाल मुनि को कहा और उस दुःख से विमुक्त होने का मुनि से कोई उपाय मांगने लगा। मुनि ने संसार एवं कुटुम्ब की अनित्यता बतला कर धर्माराधन करने का उपदेश दिया। हरदेव ने भी उनकी मुनि के कथनानुसार जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। कुछ समय के पश्चात् संसार के स्वरूप एवं कर्मों की विचित्रता का विचार करते हुए हरदेव इतना संतोषी बन गया कि सन्तति की चिन्ता भी उसके हृदय से निकल गई। कहा है—"संतोष ही परम सुख है।" वास्तव में यह प्रकृति एवं अनुभव सिद्ध बात है कि जिस पदार्थ पर जितनी अधिक तृष्णा एवं मोह बुद्धि होती है वह पदार्थ अपने से उतना ही दूर भागता जाता है और जिस पदार्थ की हृदय में इच्छा नहीं, उसको वही वह अनायास ही अपने आप उपलब्ध हो जाता है। प्रकृति के इस अटल एवं निरपवाद नियमानुसार सन्तति इच्छा से विरक्त हरदेव ब्राह्मण के कुछ समय के पश्चात् एक पुत्र होगया।

इधर जैनेतर ब्राह्मण उनसे घृणा करने लगे। वे हरदेव की भर्त्सना करते हुए कहने लगे—हरदेव धर्म से और विशुद्ध वैदिक धर्म से पतित होकर जैनी बन गया है अतः उसके साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार करना ठीक नहीं। यह जाति से ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणों का शत्रु है, धार्मिक एवं लोकोत्तर नास्तिक है। निर्लज्ज है और भर्त्सना करने योग्य है। उसके साथ किसी भी प्रकार का जातीय व्यवहार करना अपने आपको स्वधर्म से पतित करना है। इस प्रकार के उनके लिये निर्लज्ज वचनों को सुनकर जैनों में चतुर ब्राह्मण की पत्नी ने कहा—ब्राह्मणत्व का दम भरने वाले ब्राह्मणों! जरा मन शान्त कर सूक्ष्म दृष्टि से धर्म की गम्भीरता पर विचार करो। आपके इन बाह्याडम्बरों एवं यान्त्रिक यज्ञयज्ञों से आत्मा के किसी प्रकार की अर्थ सिद्धि नहीं होने की है। प्रत्येक धर्म का मूल तत्त्व अहिंसापरमधर्म को तुम्हारा भी लिये हुए है अतः यद्यपि हिंसा प्रतिपादक, किन्तु आपकी दृष्टि में जुगुप्सनीय कर्मों को करते हुए भी "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का मूल दम भरना कहां तक न्याय सम्मत है? यदि हमने हिंसाधर्म को छोड़कर विशुद्ध अहिंसामय धर्म स्वीकार किया तो इसमें क्या बुरा किया? हमने ही क्यों? पर हमारे पूर्वजों ने हमारे शास्त्रों की आधार में इस पवित्र आत्मकल्याण करने में समर्थ धर्म का पालन कर संसार भर में प्रचार किया। जब शिवरात्रि, भीमसेन, सर्वज्ञ कल्याणी एवं गौतमादि हजारों चतुर्वेदशास्त्रपुराणपारंगत विज्ञ ब्राह्मणों ने भी ज्ञान दृष्टि से यज्ञादि क्रिया कांड को आत्मगुण विघातक समझ ब्राह्मण धर्म का त्याग कर श्रेष्ठ जैनत्व को अंगीकार किया तो हमारी निरर्थक निंदा करने से आप लोगों को क्या लाभ मिलेगा? हम तो अनुभव सिद्ध एवं शास्त्रानुकूल आप लोगों को भी राय देती हूँ कि आप लोग भी पारलौकिक मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध, आत्मकल्याण कारक जैनधर्म को स्वीकार करें।

सेठजी! इस उदाहरण से आप समझ सकते हैं कि धर्म सचमुच कल्याणप्रद ही है अतः आप भी अपनी मिथ्यातृष्णा का त्याग कर शुद्ध, सनातन एवं पुनीत जैनधर्म को स्वीकार कर आत्म कल्याण करें। आचार्यश्री के इस निःस्पृह धार्मिक उपदेश ने सेठजी के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने सहर्ष जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और अपनी धर्मपत्नी को भी जैन धर्मोपासिका एवं परमार्थिका बना दी। वे तो सेठ सूरीश्वरजी के परमभक्त बन गये। हमेशा व्याख्यान श्रवण करना उन्हें बहुत ही रुचिकर मालूम

होने लगा अतः व्याख्यान के समय तथा उन व्याख्यान के सिवाय अन्य समय में भी जैन धर्मके उत्कृष्ट तत्वों को समझने के लिये वे सूरीश्वरजी के पास आने जाने लगे।

कहा है पत्रावलियों से सघन, बने हुए बड़े वृक्ष की छाया भी वृक्ष के आकार के अनुरूप विस्तृत ही होती है। उसके विस्तृत एवं उदार आश्रय में सैकड़ों जीव सुखपूर्वक आश्रय ले सकते हैं। तदनुसार सेठ मुकुन्द भी मरोंच शहर के एक नामाङ्कित कोट्याधीश पुरुष थे। उनके आश्रित हजारों और भी व्यक्ति थे जो व्यापार आदि कार्यों में सेठजी की सहायता से अपना, स्वार्थ साधन करते थे। उन्होंने भी अपने आश्रय-दाता सेठश्रीमुकुन्द के मार्ग का अनुसरण कर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

जिस दिन से सेठ मुकुन्द ने जैनधर्म स्वीकार किया उस दिन से ही ब्राह्मणों के मानस में चूहे कूदने लगे। वे सेठजी को वार २ यही व्यङ्ग करते कि—पुत्राभाव के कारण व पुत्र प्राप्ति की आशा से सेठजी ने जैनधर्म स्वीकार किया है किन्तु हम देखते हैं कि जैनाचार्य सेठजी को कितने पुत्र देते हैं ? सेठजी इसका स्पष्टी करण करते हुए स्पष्ट कहते – जब तक मुझे कर्म सिद्धान्त का ज्ञान नहीं था, मैं पुत्र प्राप्ति की अभि-लाषा रखता था और अनेकों से इस विषय में परामर्श कर मनस्तुष्टि करना चाहता था पर किसी ने भी मुझे मन संतोषकारक जवाब नहीं दिया पर, जब मैंने जैनाचार्यों से कर्म सिद्धान्त के मर्म को सुना तो मुझे विश्वास होगया कि एक पुत्र ही क्या पर संसार में जो कुछ भी दृष्टि गोचर होरहा है वह सब कर्मों की विचित्रता के कारण से ही है। कोई सुखी हैं तो कोई दुःखी हैं। कोई राजमहलों के अनुपम सुखों का उप-भोग कर रहे हैं तो कोई दर २ के याचक बने हुये हैं ये सब पूर्व कृतकर्मों के ही प्रत्यक्ष फल हैं। इसमें सदेह करना आत्मवचना है। फिर मेरा जैनधर्म स्वीकार करना भी तो कर्मों के क्षयोपशम का ही कारण है अत' आप लोगों की स्वार्थ विघातक निंदा मेरी अभीष्ट सिद्ध में किञ्चित् भी बाधक नहीं हो सकती। आप लोगों के द्वारा की गई निंदा, मेरी उत्तरोत्तर श्रद्धावृद्धि का ही कारण बनेगी। एव कर्मों का नाश करने में परम सहायक बनेगी मैं तो आप लोगों के एकान्त आत्म कल्याण के लिये आप लोगों को भी सम्मति देताहूँ आप, जैनाचार्यों के पास में आकर जैनधर्म के सूक्ष्म एव गम्भीर स्वरूप को सूक्ष्मता पूर्वक समझें। जैनधर्म ब्राह्मण धर्म से पृथक नहीं है किन्तु ब्राह्मण धर्म के उपदेशकों में-साधुओं में आचार विचार एवं मान्यताओं के विषय की सविशेष विकृति होजाने के कारण, उनके लोभी, लालची, सारम्भी, सपरिग्रही, लोलुपी होजाने से धर्म का दृढ़ अग भी पङ्गु होगया है। बहुत अन्वेषण करने पर भी उसकी वास्तविकता का अनुसधान करना असक्य होगया है। मांसप्रेमियों से परिचालित इस विभत्स यज्ञ परिपाटी ने ब्राह्मणों को सनातन अहिंसा धर्म से एक दम पराङ्मुख बना दिया है। उक्त कारणों से धर्म का इसमें सत्यत्व का अश मिलना दुर्लभ होगया है। बन्धुओं! इसी ऊपरी बनावटी मिलावट ने ब्राह्मण धर्म का नाम मात्र शेष रख दिया है इसके विपरीत जैनधर्म व बौद्धधर्म भारत के ही नहीं अपितु ससार भर के आदरणीय धर्म बनते जारहे हैं। अहिंसादि सात्विक तत्वों की प्रधानता ने इन धर्मों को मनुष्य मात्र के आत्म कल्याण के लिये परमो-पयोगी बना दिया है। यद्यपि बौद्ध क्षणिकवादी होने के कारण जैनधर्म की समानता नहीं कर सकता है पर अहिंसादि के सिद्धान्तों की प्रबलता के कारण ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा आज दुनिया में इसका बहुत कुछ महत्-त्व है। जैनधर्म तो अहिंसा के साथ ही साथ वस्तुतत्त्व के प्राकृतिक गुण 'उत्पाद व्यय ध्रोव्ययुक्तंसत्' का एव अनेकान्तवाद का परमानुयायी होने के कारण जन समाज के लिये विशेष हितकारक एवं आत्म कल्याण के

लिये परमोत्कृष्ट साधन है । इस तरह वे माहणों की शंकाओं का समाधान किया करते थे ।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी कुछ समय के पश्चात् अपने स्वकीय कल्पानुसार मरोट नगर से विहार कर धर्म प्रचार करते हुए क्रमशः मरुधर प्रान्त एवं चंद्रावती में पदार्पण किया ।

इधर कालान्तर में पुण्योदय के प्रभाव से सेठजी के देव प्रभा जैसा सुन्दर एवं कुल को सुशोभित करने वाला एक पुत्र हुआ । सेठजी को पुत्रोत्पत्ति जितना हर्ष नहीं हुआ उतना जैनधर्म की महिमा एवं प्रभावना का हर्ष हुआ । कारण सेठजी धर्म विश्वास के मर्म को जानते थे माहणों को लज्जित करने का एवं सत्य धर्म की परीक्षा का यह प्रत्यक्ष उदाहरण था अतः उनके हृदय में धर्म के प्रति जो अनुराग था वह और भी दृढ़ हो गया । माहण लोग लज्जा के मारे म्लानमुख हो गये कारण वे बड़ा भारी समयानुकूल व्यंग्य ही सेठजी को करते थे कि—"हमारे मन्त्रों से तो सेठजी के सन्तान नहीं हुई पर जैनधर्म स्वीकार कर लेने के कारण अब जैनधर्म इनको पुत्र ही पुत्र दे देगा ।" आज वह व्यंग्य करने वाले वे ही माहण अधोमुख बन गये । सेठजी के यहां तो पुत्रोत्पत्ति हर्ष, माहणों को लज्जित करने का आनन्द एवं धर्म की भावना का अभ्युदय एवं इन तीनों का त्रिवेणी संगम हो गया । आचार्यश्री के इस असीम उपकार को वे रह रह कर मरोट में स्मृति करने लगे । उनके नीति का यह वाक्य—"परोपकाराय सतां विभूतय" याद आने लगा । वे आचार्यश्री का हृदय से आभार मानने लगे । इतने से ही उनको सन्तोष नहीं रहा । सेठ मुकुन्द को तो इसी बात की लग गई कि एकबार सूरीश्वरजी को पुनः मरोट में लाना चाहिये जिससे मेरे समान अन्य के दूसरे लोगों को भी धर्म लाभ हो सके । बस, इस भावना से प्रेरित हो उन्होंने अपने आदमियों को भेज कर खबर करवाई कि— वर्तमान में आचार्यश्री कहाँ पर विराजते हैं ? यह तो पहिले से ही मालूम था कि सिद्धसूरिजी का चातुर्मास चंद्रावती में निश्चित हो चुका है अतः वे वर्तमान में भी चंद्रावती के आस पास ही विराजित होने चाहिये । उक्त निश्चयानुसार उन्होंने अपने आदमियों को मरुधर भेजे और कोरंटपुर में उन लोगों को आचार्यश्री के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । आये हुए आदमियों ने सेठजी की ओर से वंदन करके मरोट की ओर पधारने की प्रार्थना की । इस पर आचार्यश्री ने फरमाया कि- अभी तो कुछ समय तक हमारा विचार मरुभूमि में ही धर्म प्रचार करने का है और चातुर्मास के पश्चात् उपकेशपुर की यात्रार्थ जाने का है फिर तो जैसी क्षेत्र स्पर्शना हो—कौन कह सकता है ?

आदमियों ने मरोट आकर सेठजी को सूरिजी के फर्मान के साथ सब हाल सुना दिये । आचार्यश्री के आगमन के अभाव में सेठजी को स्वयं ही उपकेशपुर की यात्रार्थ जाना उचित ज्ञात हुआ और उन्होंने अपने उक्त विचारानुकूल उपाध्यायजी श्री मेरुप्रभजी के अध्यक्षत्व में मरोट से उपकेशपुर की यात्रार्थ एक संघ निकाला । इस संघ में सेठ, सेठानी उनका शिशु तथा सेठजी का कौटुम्बिक परिवार, एक हजार साधु साध्वी और बीस हजार अन्य गृहस्थ सम्मिलित थे । उ. श्रीमेरुप्रभादि मुनियों ने शुभ मुहूर्त में सेठ मुकुन्द को संघपति पद प्रदान किया व शुभ शकुनों को लेकर संघ ने उपकेशपुर की यात्रार्थ प्रस्थान किया मार्ग के मन्दिरों के दर्शन, ध्वजारोपण, अष्टाह्निका महोत्सव, स्वामीवात्सल्यादि धर्म प्रभावना के कार्यों को करते हुए संघ क्रमशः उपकेशपुर पहुँचा । श्रीसिद्धसूरीश्वरजी म. उपकेशपुर में पहिले से ही विराजित थे । उपकेशपुर के संघ ने मरोट से आये हुए संघ का आचार्यश्री के नायकत्व में अच्छा स्वागत किया । सेठ मुकुन्द ने सूरिजी को वंदन किया और भगवान् महावीर की यात्रा कर अपने को महाभाग्य समझा ।

सेठ मुकुन्द सूरिजी के परमोपकार को कृतज्ञतापूर्वक मानते हुए आचार्यश्री की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगा और कहने लगा—प्रभो ! आपने मुझे संसार में डूबते हुए बचाया है। आपके इस असीम उपकार रूपी ऋण से इस भव में तो क्या पर भवोभव में उऋण होना असम्भव है। गुरुदेव ! मेरे योग्य कुछ धर्म कार्य फरमाकर इस दास को कृतार्थ करें। सूरिजी ने कहा—महानुभाव ! प्रत्येक—प्राणी को धर्मोपदेश देकर सत्य मार्ग के अनुगामी बनाना तो हमारा कर्तव्य ही है। इसमें कोई नवीन या विशेष बात तो है ही नहीं। दूसरा हम निर्ग्रन्थों की क्या आशा हो सकती है ? आपको पूर्व पुण्य के सयोग से मनुष्य भव योग्य सम्पन्न सामग्री प्राप्त हुई है तो इसका जैन शासन की सेवा एव प्रभावना जन कल्याणार्थ में सदुपयोग कर अपना जीवन सफल बनाओ। श्रावकों के करने योग्य ये ही कार्य है कि—जहां अपनी खासी आबादी हो वहां आवश्यकतानुकूल जिन मन्दिर का निर्माण करवा कर दर्शन पदाराधन का सुयोग्य पुण्य सम्पादन करना, तीर्थयात्रार्थ सघ निकालना, जैनागमों को लिखवा कर ज्ञान भण्डार की स्थापना करना तथा ज्ञान प्रचार के पुण्यमय कार्यों में सहयोग देना, स्वधर्मी भाइयों की हर तरह से सहायता करना, नये जैन बना करके जैनधर्म का विस्तृत प्रचार करना इत्यादि। इन्हीं कार्यों से आपकी भी आत्मशुद्धि होगी व जिन शासन की सच्ची सेवा का लाभ भी मिल सकेगा। सेठजी ने सूरीश्वरजी के उक्त उपदेश को शिरोधार्य्य कर लिया। वे अत्यन्त आश्चर्य में पड़े हुए विचारने लगे कि—धन्य है ऐसे महापुरुषों को जिनके उपदेश में भी परमार्थ के सिवाय स्वार्थ की किञ्चित भी गन्ध नहीं। अहा कितना पवित्र जीवन ? कितना उच्चतम आदर्श ? कैसा अपूर्व त्याग ? व जन कल्याण की कैसी आदर्श भावना ? अरे आचार्यश्री के सैकड़ों शिष्य वर्तमान हैं उनमें से बहुतसों के कम्बल, वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि श्रमण जीवन योग्य भण्डोपकरण की आवश्यकता होगी पर वे तो इसके लिये भी प्रेरित नहीं करते !! अहा कैसा सादगी पूर्ण त्याग मय जीवन है। इस प्रकार की आचार्यश्री के प्रति उच्चभावनाओं को भावते हुए सेठजी ने पुन. विनय पूर्वक प्रार्थना की भगवन् ! मेरे योग्य आपको सेवा का उचित आदेश फरमाने की कृपा करें। इस पर सूरिजी ने कहा श्रेष्टिवर्य। जैनमुनि निर्ग्रन्थ एवं निस्पृही होते हैं। किसी भी वस्तु का शास्त्र मर्यादा से अधिक सग्रह करना उनके श्रमण वृत्ति का विघातक है। वे अपनी सयम यात्रा के निर्वाह के लिये शास्त्रानुकूल स्वल्प उपकरण रखते हैं और आवश्यकता होने पर गृहस्थियों के घरों से याचना करके ले आते हैं। उनके लिये खास करके बनाई हुई या मोल लाई हुई वस्तु का वे लोग उपयोग नहीं करते हैं। इस प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करने वाले तो श्रमण होने पर भी गृहस्थ ही हैं। वर्तमान में हमारे मुनियों के लिये किसी भी प्रकार की वस्तु की आवश्यकता नहीं है फिर भी आपकी भावनाएं अत्यन्त उत्तम हैं। गृहस्थों को सदा ही ऐसे उच्च विचार रखने चाहिये ये भावनाए मेरे ऊपर रक्खो—ऐसा नहीं किन्तु जो कोई भी पञ्चमहाव्रतधारी वीरधर्मोपासक श्रमण निर्ग्रन्थ हों—सबके लिये रखनी चाहिये। सेठ मुकुंद को आचार्य देव की निस्पृहता देख कर पहले के ब्राह्मण और गुरुओं की याद आगई। वे दोनों की तुलनात्मक दृष्टि से तुलना करने लगे—कहां तो वे लोभी, लालची और लोलुपी गुरु जो रात दिन लाओ—लाओ करते हुए थकते ही नहीं हैं और कहा ये निर्ग्रन्थ महात्मा जो, मेरे बार २ प्रार्थना करने पर भी अपनी पारमार्थिक वृत्ति का ही परिचय दे रहे हैं। विशेष में सेठजी ने निश्चय कर लिया कि ससार में यदि कोई तारक साधु हैं तो, जैन निर्ग्रन्थ मुनि ही।

कज्जल नाम का भावुक, अत्यन्त होनहार एवं तेजस्वी था। सूरीश्वरजी ने दीक्षानंतर कज्जल का नाम मूर्तिविशाल रख दिया। कालान्तर वहां से विहार कर एक चतुर्मास डमरेलपुर, दूसरा वीरपुर तीसरी उच्च-कोट; इस प्रकार कुल चार् चातुर्मास सिंध प्रान्त में करके आचार्यश्री ने सिंध की जनता में धर्म का खूब उत्साह फैलाया। इस प्रान्त में विहार करने वाले मुनियों की सराहना करते हुए उनको धर्मप्रचार के कार्यों में और भी अधिक प्रोत्साहित किया। योग्य मुनियों को योग्य पदवियों से सम्मानित कर उन की कदर की। पश्चात् आपने कच्छधरा में प्रवेश किया। एक चातुर्मास भद्रावती में सानन्द सम्पन्न करके आपने सौराष्ट्र प्रान्त की ओर पदार्पण किया क्रमशः विहार एवं धर्मोपदेश करते हुए तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की तीर्थयात्रा की। और आत्म शान्ति के परम निर्वृत्तिमय परमानंद का अनुभव करने के लिये आचार्यश्री ने कुछ समय तक यहां पर स्थिरता की। पश्चात गुर्जर भूमि को पावन करते हुए क्रमशः भरोंच नगर की ओर पदार्पण करना प्रारम्भ किया।

भरोंच पट्टन में आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचारों ने श्रीसंघ के हृदयों में धर्मोत्साह की पावरफुल बिजली का प्रादुर्भाव कर दिया। सेठ मुकुन्द तो आचार्यश्री के दर्शन के लिये बहुत ही उत्कण्ठित एवं लालायित था अत' सूरिजी के नगर प्रवेश महोत्सव में ही नव लक्ष द्रव्य व्यय कर शासन की प्रभावना का वास्तविक लाभ उठाया। पश्चात् सेठ मुकुन्दजी अपनी पत्नी एवं पांच पुत्रों को साथ में लेकर सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हुए। आचार्यश्री के अतुल उपकार को व्यक्त करते हुए सेठजी ने कहा-प्रभो! यह आपका लघु श्रावक है। इन्होंने व्यवहारिक एवं धार्मिक विद्या का भी आपकी कृपासे अभ्यास शुरू कर दिया है है। धर्म कार्यों में मेरे साथ अत्यन्त प्रेम पूर्वक भाग लेता है। प्रभु पूजा किये बिना तो इसकी मां भी अन्न, जल ग्रहण नहीं करती है। पूज्य गुरुदेव! आपकी इस अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से ही यह चरण सेवक धन, जन, पुत्र परिवारादि से पूर्ण सुखी है। भगवान्! आपने हमें अन्धकारमय मार्ग से पृथक कर सुखमय सड़क के मार्ग पर लगाया। आपके इस असीम उपकार का बदला हम कैसे दे सकेंगे! यदि हम इस ऋण से कुछ अंशों में भी उऋण हो सकें तो अपने जीवन को सार्थक समझेंगे। सूरिजीने कहा—महानुभाव! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। ये सब पूर्वभव के सचय किये हुए पुण्य के पुद्गलों का ही उदय कालीन प्रभाव है। वे उदय तो होने वाले ही थे पर जैनधर्म की पवित्र शरण में आने के पश्चात ही। श्रेष्टिवर्य! इस प्रबल पुण्यो-दय से जो पुण्यानुबन्धी पुण्य का सञ्चय हो रहा है उसमें मैं तो केवल निमित्त कारण ही हूँ। उपादान कारण तो आपके ही उपार्जित किये हुए पुण्य हैं फिर भी आपके इन कृतज्ञता सूचक भावों से आपको धन्यवाद देता हूँ और शास्त्रानुकूल सप्त क्षेत्रों में द्रव्य का सदुपयोग कर लाभ लेते रहने के लिये प्रेरित करता हूँ। पुण्यात्मन्! यदि यही पुण्य राशि अन्य अवस्था में उदय होती तो पुण्योपार्जन के बदले मिथ्या-त्व सञ्चय का कारण बनकर आपको अनंत ससारी बना देती किन्तु मुक्ति—मोक्ष नजदीक होने से अपने आप जैनधर्म ग्रहण करने की पवित्र भावनाओं का उदय किया और आपके जीवन को एकदम आदर्श बना दिया। मुकुन्द! मैंने आपको उपदेशपुर में जो उपदेश दिया था—याद है! मुकन्द ने कहा—पूज्यवर आपके उपदेश को भी कभी भूला जा सकता है? मन्दिर तो मैंने कबका ही तैय्यार करवा दिया है। जिनायल की प्रतिष्ठा के लिये आपश्री की बहुत ही प्रतीक्षा की किन्तु आप तो परोपकारी महात्मा ठहरे अतः धर्म प्रचार में संलग्न आपश्री के दर्शनों का लाभ बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् भी न मिल सकने के कारण उपाध्याय-

सेठ सुखदेव ने आठ दिन तक उपकेशपुर में स्थिरता कर अष्टाह्निका महोत्सव, ध्वजारोहण, पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि धार्मिक कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया। तदनन्तर सूरिजी को मरोट पधारने की प्रार्थना कर संघ को वापिस लेकर मरोट लौट आया। इस प्रकार आचार्य श्री ने अनेक भव्यों को धर्म मार्ग में आरूढ़ कर जैनधर्म का गौरव बढ़ाया।

उपकेशपुरीय श्रीसंघ के आग्रह से सूरीश्वरजी ने वह चातुर्मास उपकेशपुर में करना निश्चित किया। इस चातुर्मास से उपकेशपुर में पर्याप्त धर्म प्रभावना हुई। पश्चात् आचार्यश्री मरुधर के छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोद्योत करते हुए मत्स्य प्रदेश की ओर पधारे। वंशावलीकार लिखते हैं कि—देवपट्टन के आस पास एक हजार क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उन नूतन श्रावकों के लिए आपने पहला चातुर्मास देवपट्टन में किया। इससे उन क्षत्रियों की भावनाएं जो अभी नवीन जैन हुए थे दृढ़ हो गई। दूसरा चित्रकूट नगर में चातुर्मास किया जिसमें जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। नूतन क्षत्रिय जैन भी, जैनधर्म के पक्के रंग में रंग गये। तदनन्तर आवन्तिका प्रान्त की ओर विहार कर आपने एक चातुर्मास उज्जैन में किया और क्रमशः कुन्तलपुर और चन्देरीनगरी के चातुर्मासों को समाप्त करके मथुरा की ओर पदार्पण किया। मथुरा में बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया और श्रीसंघ के आग्रह से वह चातुर्मास भी मथुरा में ही कर दिया। चातुर्मासानंतर वहाँ से विहार कर भगवान् पार्श्वनाथ के कल्याणकभूमि की स्पर्शना करने को अतः काशी की ओर पदार्पण किया। आस पास के तीर्थों की यात्रा करके वह चातुर्मास बनारस में ही कर दिया। आपके विराजने से वहाँ जैनधर्म की अच्छी जागृति हुई। चातुर्मासानंतर वहाँ के कई एक ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त कर ११ की पुरुषों को भगवती जैन दीक्षा दी। फिर आपने पंजाब की ओर प्रवेश किया। पञ्जाब प्रान्त में आपके बहुत से साधु पहिले से ही धर्म प्रचार करते थे अतः उनको आचार्यश्री के आगमन के हर्ष पूर्ण समाचारों से बहुत ही प्रसन्नता हुई। इधर आचार्यश्री ने भी श्रावस्ती नगरी में पदार्पण कर पञ्जाब प्रान्त में विचरण करने वाले सब साधुओं की श्रमण सभा की। उक्त सभा में पंजाब प्रान्तीय श्रमण वर्ग एकत्रित हुआ और आचार्यश्री ने आये हुए साधुओं के धर्मप्रचार की प्रशंसा करते हुए उनके उत्साह वर्द्धन के लिये योग्य मुनियों को योग्य पदवियाँ प्रदान की। इस प्रकार उनके उत्साह को विशेष बढ़ाने के लिये स्वयं आचार्यश्री ने भी दो चातुर्मास पञ्जाब प्रान्त में ही कर दिये। एक तो श्रावस्ती और दूसरा शालीपुर। इस प्रकार पाञ्चाल प्रान्त में दो चातुर्मास करके आचार्यश्री सिन्ध की ओर पधारे। सिन्ध प्रान्त में भी आपके शिष्य बहुसंख्यक धर्मप्रचार कर रहे थे अतः आचार्यश्री के आगमन के समाचारों से उनके हृदय में नवीन क्रान्ति एवं स्फूर्ति पैदा होगई। क्रमशः विहार करते हुए सूरीश्वरजी जब गोसलपुर पधारे तो वहाँ की जनता के हर्ष का पार नहीं रहा। राव गोसल के पुत्र राव आसलजी ने सूरीश्वरजी का बड़े ही समारोह पूर्वक स्वागत किया। राव आसल बड़ा ही कृतज्ञ था, वह जानता था कि आज हम जो इस उच्च स्थिति पर पहुँचे हैं वह सब स्वर्गीय आचार्यश्री देवगुप्तसूरि का ही प्रताप है। अतः राव आसल ने अत्यन्त कृतज्ञता एवं विनय पूर्ण शब्दों में प्रार्थना की—प्रभो! एक चातुर्मास का लाभ इन मरुभूमियों को देकर कृतार्थ करें! आचार्यश्री ने स्वीकार करके वहीं विराजने से गोसलपुरीय जन समाज में धर्म प्रेम की अपूर्व लगन लग गई। कई भावुक मुमुक्षु तो आचार्यश्री के पास में दीक्षा लेने को तैयार होगये। चातुर्मासानंतर उन दीक्षार्थियों को आचार्यश्री ने भागवती दीक्षा दी। उन दीक्षार्थियों में एक

कज्जल नाम का भावुक, अत्यन्त होनहार एवं तेजस्वी था। सूरीश्वरजी ने दीक्षानंतर कज्जल का नाम मूर्तिविशाल रख दिया। कालान्तर वहां से विहार कर एक चतुर्मास डमरेलपुर, दूसरा वीरपुर तीसरी उच्च-कोट, इस प्रकार कुल चार् चातुर्मास सिंध प्रान्त में करके आचार्यश्री ने सिंध की जनता में धर्म का खूब उत्साह फैलाया। इस प्रान्त में विहार करने वाले मुनियों की सराहना करते हुए उनको धर्मप्रचार के कार्यों में और भी अधिक प्रोत्साहित किया। योग्य मुनियों को योग्य पदवियों से सम्मानित कर उन की कद्र की। पश्चात् आपने कच्छधरा में प्रवेश किया। एक चातुर्मास भद्रावती में सानन्द सम्पन्न करके आपने सौराष्ट्र प्रान्त की ओर पदार्पण किया क्रमशः विहार एवं धर्मोपदेश करते हुए तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की तीर्थयात्रा की। और आत्म शान्ति के परम निर्वृत्तिमय परमानंद का अनुभव करने के लिये आचार्यश्री ने कुछ समय तक यहां पर स्थिरता थी। पश्चात गुर्जर भूमि को पावन करते हुए क्रमशः भरोंच नगर की ओर पदार्पण करना प्रारम्भ किया।

भरोंच पट्टन में आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचारों ने श्रीसंघ के हृदयों में धर्मोत्साह की पावरफुल बिजली का प्रादुर्भाव कर दिया। सेठ मुकुन्द तो आचार्यश्री के दर्शन के लिये बहुत ही उत्कण्ठित एवं लालायित था अतः सूरिजी के नगर प्रवेश महोत्सव में ही नव लक्ष द्रव्य व्यय कर शासन की प्रभावना का वास्तविक लाभ उठाया। पश्चात् सेठ मुकुन्दजी अपनी पत्नी एवं पांच पुत्रों को साथ में लेकर सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हुए। आचार्यश्री के अतुल उपकार को व्यक्त करते हुए सेठजी ने कहा-प्रभो! यह आपका लघु श्रावक है। इन्होंने व्यवहारिक एवं धार्मिक विद्या का भी आपकी कृपासे अभ्यास शुरू कर दिया है है। धर्म कार्यों में मेरे साथ अत्यन्त प्रेम पूर्वक भाग लेता है। प्रभु पूजा किये बिना तो इसकी मां भी अन्न, जल ग्रहण नहीं करती है। पूज्य गुरुदेव! आपकी इस अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से ही यह चरण सेवक धन, जन, पुत्र परिवारादि से पूर्ण सुखी है। भगवान्! आपने हमें अन्धकारमय मार्ग से पृथक कर सुखमय सड़क के मार्ग पर लगाया। आपके इस असीम उपकार का बदला हम कैसे दे सकेंगे! यदि हम इस ऋण से कुछ अंशों में भी उऋण हो सकें तो अपने जीवन को सार्थक समझेंगे। सूरिजीने कहा—महानुभाव! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। ये सब पूर्वभव के संचय किये हुए पुण्य के पुद्गलों का ही उदय कालीन प्रभाव है। वे उदय तो होने वाले ही थे पर जैनधर्म की पवित्र शरण में आने के पश्चात ही। श्रेष्टिवर्य! इस प्रबल पुण्यो-दय से जो पुण्यानुबन्धी पुण्य का सञ्चय हो रहा है उसमें मैं तो केवल निमित्त कारण ही हूँ। उपादान कारण तो आपके ही उपार्जित किये हुए पुण्य हैं फिर भी आपके इन कृतज्ञता सूचक भावों से आपको धन्यवाद देता हूँ और शास्त्रानुकूल सप्त क्षेत्रों में द्रव्य का सदुपयोग कर लाभ लेते रहने के लिये प्रेरित करता हूँ। पुण्यात्मन्! यदि यही पुण्य राशि अन्य अवस्था में उदय होती तो पुण्योपार्जन के बदले मिथ्या-त्व सञ्चय का कारण बनकर आपको अनंत ससारी बना देती किन्तु मुक्ति–मोक्ष नजदीक होने से अपने आप जैनधर्म ग्रहण करने की पवित्र भावनाओं का उदय किया और आपके जीवन को एकदम आदर्श बना दिया। मुकुन्द! मैंने आपको उपदेशापुर में जो उपदेश दिया था—याद है! मुकुन्द ने कहा–पूज्यवर आपके उपदेश को भी कभी भुला जा सकता है? मन्दिर तो मैंने कबका ही तैय्यार करवा दिया है। जिनायल की प्रतिष्ठा के लिये आपश्री की बहुत ही प्रतीक्षा की किन्तु आप तो परोपकारी महात्मा ठहरे अत धर्म प्रचार में सलग्न आपश्री के दर्शनों का लाभ बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् भी न मिल सकने के कारण उपाध्याय-

की अनुकम्पा से मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाल कर यात्रा की। पैंतालीस आगमों को लिखवा कर ज्ञान भण्डार की स्थापना की। पूज्य गुरुदेव ! अब आपश्री के पधारने से भी मेरे मन के मनोरथ सफल ही होंगे।

सूरिजी—फरमाइये, आपकी क्या मनो भावना है।

मुकुन्द—प्रभो ! एकतो मैंने सम्मेतशिखर की यात्रा का संघ निकालने के लिये एक करोड़ रुपये निकाल रक्खे हैं उनका सदुपयोग होना और दूसरा मेरे इन पांच पुत्रों में से किसी एक की आत्मा का कल्याण करना।

सूरिजी—तो क्या पुत्र को दीक्षा दिलाना चाहते और आप स्वयं नहीं लेना चाहते।

मुकुन्द—पूज्यवर ! मैं वृद्ध हो गया हूँ अतः अन्तराय कर्मोदय से किंवा वृद्धावस्था जन्य अशक्तता से दीक्षा का सच्चा लाभ उठाने में असमर्थ हूँ।

सूरिजी—दीक्षा में कौनसा सिर पर भार लादना है ? दीक्षा का एक मात्र ध्येय तो आत्मकल्याण करने का ही है और वह आपसे इस अवस्था में भी हो सकेगा। कारण, कहा है कि—

पच्छावि ते पयाया खिप्पं गच्छन्ति अमर भवणाइं ।
जेसिं पिओ तवो संजमो खंति अ बम्भचेरं च ॥"

जब वृद्ध हुए हो तो एक दिन मरना तो अवश्य ही है फिर चारित्रावस्था में मरना तो आत्मा के लिये विशेष हितकर ही है। शास्त्रकार तो यहाँ तक फरमाते हैं कि—जिनको तप, संयम, क्षमा, ब्रह्मचर्यादि गुण प्रिय हों ऐसे व्यक्ति वृद्धावस्था में भी दीक्षित हों तो देवलोक तो स्वल्प ही में प्राप्त कर सकते हैं। मुकुन्द ! पूर्व जमाने में भी एक मुकुन्द नाम के ब्राह्मण ने अपनी वृद्धावस्था में जैन दीक्षा ली थी और वे वृद्धवादीसूरि के नाम से जैन संसार में विश्रुत हुए। उन्होंने अनेक राज सभाओं में वादियों को परास्त करने से ही वादी कहलाये। जब उन्होंने अपनी इस अवस्था में भी पठन पाठन का क्रम प्रारम्भ रक्खा तो एक मुनि ने उपहास जनक शब्दों में उन्हें व्यङ्ग किया—"इस वृद्धावस्था में पढ़ करके क्या तुम मूशल फूलाओगे ?" इस अपमान जनक शब्दों से अपमानित हो उन्होंने सरस्वती का आराधन प्रारम्भ किया और कुछ अर्से में मूशल को सजीव पल्लवों से पल्लवित कर उन्हें (तानामारनेवालेमुनिको) प्रत्यक्ष में लज्जित कर दिया। अतः वृद्धावस्था का विचार करके आत्मकल्याण के मार्ग से वंचित रहना आत्म गुण विघातक है। मुकुन्द ! मुकुन्द इस नाम में ही बड़ा चमत्कार भरा हुआ है अतः अपने मुकुन्द नाम को सार्थक कर आत्मकल्याण के वास्तविक ध्येय को सम्पादन करें।

मुकुन्द—ठीक है गुरुदेव ! इस पर तो मैं गम्भीरता पूर्वक विचार करूँगा ही किन्तु पहले मेरे उक्त दोनों मनोरथों को तो सार्थक कर दीजिये।

पास ही मुकुन्द की पत्नी एवं पांचों पुत्र बैठे हुए सेठजी के एवं आचार्यश्री के वार्तालाप को स्थिर चित्त से सुन रहे थे। सब लोग निस्तब्ध एवं मौन थे किन्तु उन सबों के चेहरे पर अलौकिक प्रभा की प्रत्यक्ष रेखा उनके मानसिक आनन्द की सूचना कर रही थी। सूरिजी ने सेठजी के उक्त वाक्य का "जहा सुहं" शब्द से प्रत्युत्तर दिया। मुकुन्द आदि आचार्यश्री के चरण कमलों में वंदना कर अपने घर चले गये।

कुछ दिनों के पश्चात् सेठ मुकुन्द एवं मरोट नगर के श्रीसंघ ने चातुर्मास की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने भी अनुकूलता एवं लाभ का कारण देख कर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार कर ली। बस उसकी

प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। बड़े उत्साह पूर्वक सब धर्म कार्य में भाग लेने लगे। सूरीश्वरजी के व्याख्यान का ठाठ तो अपूर्व था। हो सकता है आज के भांति उस समय विशेष आडम्बर वगैरह उतना नहीं होता होगा पर जनता के हृदय पटल पर आत्मकल्याण का तो जबर्दस्त प्रभाव पड़ता। वे लोग संसार में रहते हुए संसार के माया जन्य, प्रपञ्चों से विरक्त के समान काल क्षेप करते थे। द्रव्यादि की अधिकता होने पर भी सांसारिक उदासीनता का एक मात्र कारण हमारे पूर्वाचार्यों का आदर्श त्याग, सयम और सदाचार था। उनका उपदेश भी सदा ज्ञान दर्शन की शुद्धि एव विषय कषाय की निवृत्ति के लिये ही हुआ करता था अतः श्रोताओं के हृदय पर भी उसका गहरा असर पड़ता वे सांसारिक प्रपञ्चों में प्रवृत्ति करने के बजाय निर्वृत्ति प्राप्त करने में ही एक दम सलग्न रहते।

एक दिन प्रसङ्गानुसार आचार्यश्री ने बीस तीर्थङ्करों की कल्याण भूमि श्रीसम्मेतशिखरजी का, व्याख्यान में इस प्रकार महत्त्व बताया कि उपस्थित श्रोताजनों की भावना उक्त कथित तीर्थ की यात्रा कर पुण्य सम्पादन करने की होगई। इधर सेठ मुकुन्द भी अपना मनोरथ सफल होते हुए देख आचार्यश्री को हृदय से धन्यवाद देते हुए अत्यन्त कृतज्ञता सूचक शब्दों में सघ से आदेश मांगने के लिये खड़े हुए। संघने भी सेठजी को धन्यवाद के साथ सहर्ष आदेश दे दिया। श्रीसघ से आदेश प्राप्त करके कृतार्थ हुए सेठजी व आपके पुत्रों ने तीर्थ यात्रार्थ सघ के लिये समुचित सामग्री का प्रबन्ध करना प्रारम्भ किया। सुदूर प्रान्तों में संघ में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रण पत्रिकाए भेजी गई। मुनि महात्माओं की प्रार्थना के लिये योग्य पुरुष भेजे गये। इस प्रकार मिगसर वद एकादशी के निर्धारित दिवस को यात्रा का इच्छुक सकल जनसमुदाय भरोंच में एकत्रित होगया। आचार्यश्री ने सेठ मुकुन्द को सघपति पद अर्पित किया। क्रमशः सूरीश्वरजी के अध्यक्षत्व और सेठ मुकुंद के संघपतित्व में शुभ शकुनों के साथ सम्मेतशिखर की यात्रा के लिये सघने भरोंच से प्रस्थान किया। प्रारम्भ में तो करीब २००० साधु और २५००० गृहस्थ ही थे किन्तु मार्ग में उक्त संख्या में बहुत ही वृद्धि होगई। पट्टावलि कार लिखते हैं—इस सघ में सम्मिलित हो कर ५००० साधु साध्वियों और लक्ष भावुको ने तीर्थयात्रा का लाभ लिया। रास्ते के तीर्थों की यात्रा एव अष्टान्हिका, पूजा, प्रभावनादि महोत्सवों को करते हुए संघ ठीक समय पर सम्मेतशिखरजी पहुँचा सम्मेतशिखरजी की यात्रा का पुण्य सम्पादन करने में संघने किसी भी प्रकार की कसर नहीं रक्खी। सघपतिजी ने खूब उदार वृत्ति से द्रव्य व्यय कर सघ यात्रा का सच्चा लाभ लिया।

सूरीजी ने संघपति मुकुन्द को कहा—गृहस्थोचित सकल धार्मिक कृत्य तो हो चुके हैं, अब केवल आत्म कल्याण का निवृत्ति मार्ग स्वीकार करना ही अवशिष्टरहा है अत पुण्यारम्भन्। यदि आत्मोद्धार करने की सच्ची इच्छा है तो सावधान होजावें सघपतिजी आचार्यश्री के शब्दों के भावों को ताड़ गये। उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्रों को बुलाकर एतद्विषयक परामर्श किया तो सबके सब दीक्षार्थ तैय्यार होगये। सेठानीजी कहने लगी मैंने तो इस विषय में उस ही दिन से निश्चय कर लिया था पुत्र बोलने लगे–पिताजी! हम आपकी सेवा में तैय्यार है। सेठजी समझ गये कि मेरे पुत्र विनयवान है और मेरी लाज से ही ये दीक्षा के लिये भी तैयार होगये हैं अत इनकी आन्तरिक इच्छा के बिना दीक्षा देना सर्वथा अनुचित है ऐसा सोचकर लल्ल और कल्ल नामक दो पुत्रों को उत्कृष्ट वैराग्य वाला देख अपने साथ में ले लिया और शेष को गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी भार सौंप दिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र नाकुल को सघ पतित्व की माला

भावना हो और आपने अपनी पत्नी, दो पुत्र तथा १० दूसरे स्त्री पुरुषों के साथ में परम वैराग्य पूर्वक दीक्षा स्वीकार करली। इन सब भावुकों की दीक्षा के पश्चात् शुभमुहूर्त में संघ पुनः मथुरा के संघपतित्व में लौट गया। मथुरा तक तो आचार्यश्री भी स्वयं संघ के साथ में रहे पर बाद में आप मथुरा में ही ठहर गये। संघ अन्य मुनियों के साथ सकुशल निर्विघ्न मरोट नगर आगया। संघपति मोक्षण ने स्वधर्मी भाइयों को एक एक स्वर्णमुद्रा एवं वस्त्रों की पहिरावणी देकर संघ को विसर्जित किया। सेठ मोक्षण ने इस संघ के लिये एक कोटि द्रव्य का सद्व्यय किया था वह व्यय होगया।

महानुभाव ! आत्मकल्याण के लिये यह अवसर कितना उत्तम था ? बात-तो उस समय भी पैसा था ही किन्तु जैनाचार्यों के त्याग वैराग्यमय उच्च जीवन ने उसे पैसा बारा बना दिया।

आचार्यश्रीसिद्धसूरिने अपना शेष जीवन जैनधर्म के अभ्युदय एवं शासन प्रभावना के ही कार्यों में व्यतीत किया। आप जैनधर्म के सुदृढस्तम्भ, जैनसमाज के परम शुभचिंतक महाजनसंघ के रक्षक, पोषक एवं वृद्धिकर्ता, बाल ब्रह्मचारी, प्रतिभाशाली धर्म प्रचारक, वीराचार्य थे। आपने ५२ वर्ष के शासन में अधिक से अधिक धर्मप्रचार किया। आपके समय वीरसम्प्रदाय के बहुत से आचार्यवर्तमान थे किन्तु आपका उन सभी आचार्यों के साथ मातृभाव एवं वात्सल्यता थी। सबके साथ हिलमिल कर संगठित सम्मीलित शक्ति से शासन सेवा करने का आपका प्रमुख गुण था। आपने जैनश्रमण संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि की उसी तरह महाजनसंघ की भी आशातीत उन्नति की। अन्त में आपने मरुधर के मेदिनीपुर नगर के श्रेष्ठिगोत्रीय शाह सोमा के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय मूर्तिविशाल को सूरिपद से विभूषित कर परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। पश्चात् परम निवृत्ति में संलग्न हो गये। २० दिन के अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्ग सिधार गये।

ऐसे प्रभाविक आचार्यों के चरणकमलों में कोटिशः वंदन हो आपश्री के द्वारा किये गये शासन के शुभ २ कार्यों की नामावली निम्न प्रकारेण है—

पूज्याचार्य देव के ५२ वर्ष का शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएं

१—कन्हेयापुर	के श्रेष्ठि	गौत्रीय	रघुदेव ने	दीक्षाली
२—पल्हिकापुरा	,, भलासी		बालचंद ने	,,
३—हर्षपुरी	,, बप्पनाग	,,	नारायण ने	,,
४—कानाणी	,, सुंघडी	,,	आसाने	,,
५—उपकेशपुर	,, भाद्र	,,	देवाने	,,
६—मरोटी	,, भाद्र	,,	देवाने	,,
७—नारायणी	,, श्री श्रीमाल	,,	करमण	,,
८—भवानीपुर	,, कम्माल	,,	भीमा ने	,,
९—चन्द्रावती	,, प्राग्वट	,,	वीरम ने	,,
१०—नारदपुरी	,, सूरि	,,	रावली ने	,,
११—मेदनीपुर	,, बलीसारा	,,	खिमसा ने	,,

१२—हर्षपुरा	के ब्राह्मण	गौत्रीय	भाजू ने	दीक्षाली
१३—गोशाणी	,, भाद्र	,,	जेता ने	,,
१४—पाटली	,, चिंचट	,,	सुजल ने	,,
१५—वैराटपुर	,, कुम्मट	,,	पादाह ने	,,
१६—पालिइका	,, कन्नोजिया	,,	रोगा ने	,,
१७—पर्वटि	,, प्राग्वट	,,	मजन ने	,,
१८—राजपुर	,, प्राग्वट	,,	हरपाल ने	,,
१९—वीरमी	,, श्रीमाल	,,	नागदेव ने	,,
२०—गुंदिया	,, सुचंति	,,	ईसर ने	,,
२१—लोद्रवापुर	,, राका	,,	रासा ने	,,
२२—हर्षीयाणा	,, देसरड़ा	,,	पुनड़ ने	,,
२३—देवपट्टण	,, पाकरणा	,,	पदमा ने	,,
२४—वासासर	,, प्राग्वट	,,	सांगण ने	,,
२५—पाणोट	,, गोलेचा	,,	लीखमण ने	,,
२६—सोपार	,, वप्रभट्ट	,,	तेजाने	,,
२७—मथुरा	,, बप्पनाग	,,	टावर ने	,,
२८—मोदली	,, आर्य	,,	हरजी ने	,,
२९—खेदकपुर	,, विरहट	,,	सारंग ने	,,
३०—करणावाती	,, प्राग्वट	,,	भाणा ने	,,
३१—नागांणी	,, श्रीमाल	,,	सोमा ने	,,
३२—टीबाणी	,, कुलहट	,,	नरवद ने	,,
३३—करोली	,, लघुश्रेष्टि	,,	कक्क ने	,,
३४—मथोरा	,, प्राग्वट	,,	अजड़ ने	,,
३५—सोजाली	,, आदित्य०	,,	छज्ज ने	,,

आचार्य श्री के ५४ वर्षों का शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं

१—आसलपुर	के मंत्री	घोरीदास ने	पारर्श्वनाथ का	म०	प्र०
२—ईठरिया	,, भाद्र गो	जेहलने	,,	,,	,,
३—अचलपुर	,, चिंचट ,,	दाहड़ने	,,	,,	,,
४—उच्चाडी	,, श्रेष्टि ,,	लाखणने	महावीर	,,	,,
५—उन्नतनगर	,, वप्र भट्ट	भावोने	,,	,,	,,
६—उच्चकोट	,, भूरि	मुकनाने	पार्श्वनाथ	,,	,,
७—कांटोली	,,	रेखाने	,,	,,	,,

ग्रहण की और आपने अपनी पत्नी, दो पुत्र तथा १० दूसरे स्त्री पुरुषों के साथ में परम वैराग्य पूर्वक दीक्षा स्वीकार करली । इन सब भावुकों की दीक्षा के पश्चात् शुभमुहूर्त में संघ पुनः मादुल के संघपतित्व में लौट गया । मथुरा तक तो आचार्यश्री भी स्वयं संघ के साथ में रहे पर बाद में आप मथुरा में ही ठहर गये । संघ अन्य मुनियों के साथ सकुशल निर्विघ्न मरोट नगर आगया । संघपति मादुल ने स्वधर्मी भाइयों को एक एक स्वर्णमुद्रा एवं वस्त्रों की पहिरावणी देकर संघ को विसर्जित किया । सेठ मादुल ने इस संघ के लिये ९८ कोटि द्रव्य का संकल्प किया था वह व्यय होगया ।

अहा-हा ! आत्मकल्याण के लिये यह कैसा विचित्र उपाय था ! था-तो उस समय भी पंचम आरा ही किन्तु जैनाचार्यों के त्याग वैराग्यमय उपदेश जीवन ने उसे चौथा आरा बना दिया ।

आचार्यश्रीसिद्धसूरिने अपना शेष जीवन जैनधर्म के अभ्युदय एवं शासन प्रभावना के ही कार्यों में व्यतीत किया । आप जैनधर्म के सुदृढ़स्तम्भ, जैनसमाज के परम शुभचिंतक, महाजनसंघ के रक्षक, पोषक एवं वृद्धिकर्ता, वादी विजयी, प्रतिभाशाली, धर्म प्रचारक, वीराचार्य थे । आपने ५४ वर्ष के शासन में अधिक से अधिक धर्मप्रचार किया । आपके वक्त वीरसंतानों के बहुत से आचार्यवर्गमान थे किन्तु आपका सब सभी आचार्यों के साथ मातृभाव एवं वात्सल्यता थी । सबके साथ हिलमिल कर संगठित सम्मीलित शक्ति से शासन सेवा करने का आपका प्रमुख गुण था । आपने जैनसमाज संख्या में उत्तोत्तर वृद्धि की उसी तरह महाजनसंघ की भी आशातीत उन्नति की । अन्त में आपने मरुधर के मेदिनीपुर नगर के श्रेष्ठिगोत्रीय शा. लौम्बा के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय मूर्तिमिश्र को सूरिपद से विभूषित कर परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया । पश्चात् परम निवृत्ति में संलग्न हो गये । १० दिन के अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्ग सिधार गये ।

ऐसे प्रभाविक आचार्यों के चरणकमलों में कोटिशः वंदन हो आपश्री के द्वारा किये गये शासन के मुख्य २ कार्यों की नामावली निम्न प्रकारेण है—

पूज्याचार्य देव के ५४ वर्ष का शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएं

१—उपकेशपुर	के श्रेष्ठि	गोत्रीय	सहदेव ने	दीक्षाली
२—नसिरणपुर	„ कालाणी	„	आसल ने	„
३—शिवपुरी	„ पल्लीवाल	„	नारायण ने	„
४—कराणी	„ संचेती	„	जसाने	„
५—पालीपुर	„ प्राग्वट	„	पेथाने	„
६—मरोटी	„ प्राग्वट	„	देदाने	„
७—नारावी	„ श्री श्रीमाल	„	करमण	„
८—भवानीपुर	„ चमधाल	„	भीमा ने	„
९—चन्द्रावती	„ प्राग्वट	„	वीरम ने	„
१०—आरावती	„ भूरि	„	राजसी ने	„
११—मेदनीपुर	„ पल्लीवाल	„	विमल ने	„

५—मेदनीपुर	के श्रेष्टि गो०	कुम्बाने	शत्रुंजय का सघ
६—मथुरा	,, भूरि गो०	कोग्पाल ने	,, ,,
७—लोहाकोट	,, श्री श्रीमाल गौ०	भैरूशाह ने	सम्मेत शिखर का संघ,
८—गोसलपुर	,, आर्य गौ०	शाहरांणा ने	शत्रुंजय का सघ
९— भरोंच	,, प्राग्वट"	साढाशाह ने	,, ,,
१०—सोपार	,, श्रीमाल	घालाशाह ने	,, ,,
११—उज्जैन	,, सुचति गो०	देसल ने	,, ,,
१२—कीराटकूप	,, श्रेष्टि गौ०	रघुवीर ने	,, ,,
१३—सत्यपुरी	,, भाद्र गौत्रीय	मत्री आसुने	,, ,,
१४—चदेरी	,, वीरहट गौ०	शाह अजड़ ने	,, ,,
१५—आभानगरी	,, आदित्य गो०	शाहमौरा ने	,, ,,
१६—हसावली	,, चिंचट गो०	शाही पुराने	,, ,,
१७—शाकम्भरी	,, कुलहट गो०	शाह नौंबाने	,, ,,
१८—लोद्रवपुर	,, डिडु गौत्र	शाह छाप्पा ने	,, ,,

१९ —नारदपुरी के पल्लीवाल कैसाने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर तलाव खोदाया
२०—रत्नपुर के अग्रवाल नेता ने दुष्काल में एक करोड़ द्रव्य व्यय किये
२१—जंगालु के गाधी दुर्गो युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई (छत्री)

इनके अलावा भी वशावलियों में महाजन सघ के वीर उदार नर रत्नों के अनेक देश समाज के लिये शुभ कार्यों के उल्लेख मिलते हैं पर स्थानाभाव केवल नमूना के तौर पर ही कतिपय नामोल्लेख करदिये हैं।

एकचालीसवें पट्ट पारख पुरे, सिद्धसूरि संघ नायक थे।
उज्जल गुण छत्तीस विराजे, सूरि पद के वे लायक थे ॥
घूम घूम कर जैनधर्म का विजय डंका बजवाया था।
जिन मन्दिरों की करी प्रतिष्ठा, संघ सकल हरखाया था ॥

इति एक चालीसवें पट्ट पर सिद्धसूरिजी म महान् अतिशय धारी आचार्य हुए।

था। कज्जल इतना भाग्यशाली एवं पुण्यवंत जीव था कि इसके होने के पश्चात् उसकी माता सेणी ने चार पुत्रों को और जन्म दिया। जब कज्जल की वय २२ वर्ष की हुई तो भीमदेव ने उसका वाग्दानसम्बन्ध कर दिया था। विवाह होने में अभी दो तीन वर्ष की देरी थी तथापि सबने बड़ी २ आशाएं बांध रक्खी थी।

इधर यकायक पुण्योदय से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज का पधारना गोसलपुर में हुआ तब राव आसल वगैरह श्रीसंघ की प्रार्थना से सूरिजी ने गोसलपुर में चातुर्मास कर दिया। चातुर्मास की इस दीर्घ अवधि में आचार्यश्री के व्याख्यानों ने जन समाज पर बहुत ही गहरा प्रभाव डाला। आप अपने व्याख्यानों में त्याग वैराग्य तथा आत्मकल्याण के विषयों पर अधिक जोर देते थे अतः कईभावुकों का मन संसार से उद्विग्न एवं विरक्त हो गया था। कज्जल भी उन्हीं विरक्त एवं उदासीन मनुष्यों में से एक था। सूरीश्वरजी के वैराग्यमय उपदेश ने कज्जल के युवावस्था जन्य मद को वैराग्य के रूप में परिणत कर दिया। वह दीर्घ दृष्टि से विचार करने लगा कि-जितना परिश्रम संसारावस्था में रह कर उदर पूर्ति के लिये किया जाता है उतना ही मुनिवृत्ति की अवस्था में रह कर आत्मकल्याण के लिये किया जाय तो सांसारिक जन्म जन्मान्तर के प्रपञ्च ही नष्ट हो जाय एवं अक्षय सुख मिल जाय मेरी इस युवावस्था का उपयोग संसार वर्धक विषय कषायों में न कर तप, संयम एवं चारित्र की आराधना में किया जाय तो कितना उत्तम हो? ऐसा कौन मूर्ख होगा कि जो पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हस्ति का दुरुपयोग लकड़े के भार को लादकर करे, सोने की थाल में मिट्टी व कचरा भरे, स्वर्ण रस से पैर धोवे, चिन्तामणि रत्न को कौवे उड़ाने में इधर उधर फेंक दें? अतः मुझे प्राप्त हुई इस मानव भव योग्य उत्तम सामग्री का सदुपयोग आत्मकल्याण मार्ग में प्रवृत्ति करके करना चाहिये। इस प्रकार का मन में दृढ़ निश्चय कर कज्जल समय पाकरसूरिजी की सेवा में उपस्थित हुआ और वंदन करने के पश्चात् विनयपूर्ण शब्दों में अपने मनोगत भावों को प्रदर्शित करते हुए कहा-भगवन्! मुझे आत्मकल्याण करना है। मुझे संसार से सर्वथा अरुचि एवं घृणा होने लगी है। गुरुदेव मुझे संसार के दुखों से भय लगता है इस क्षणभंगुर जीवन के लिये रोरव नरक का पापोपार्जन करके अपनी आत्मा कलुषित नहीं बनाना चाहता हूँ। प्रभो! मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये। इस प्रकार कज्जल के वैराग्य मय वचनों को श्रवण कर सूरीश्वरजी ने उसके वैराग्य को और दृढ़ करते हुए कहा—कज्जल! तेरे विचार अत्युत्तम एवं आदरणीय हैं कारण, संसार असार है; कौटुम्बिक मोह स्वार्थ जन्य प्रेम परिपूर्ण है, यौवन हस्ति कर्णवत् चचल है, भोग विलास एवं पौद्गलिक सुखमय साधन भुजग सदृश विषव्यापक, क्षण विनाशी एवं दुःखमय ही है। सम्पत्ति—आकाश के गन्धर्व-नगर की भांति अस्थिर है, आयुष्य अञ्जलीगतनीरवत् अनित्य है। शरीरक्षणभङ्गुर है और अनेक आधिव्याधि उपाधि का स्थान है अतःमनुष्यभव और उत्तमसामग्री का एकमात्र सार आत्मकल्याण करना ही है। कज्जल! तू तो एक साधारण गृहस्थ ही है पर, बड़े २ चक्रवर्तियों ने चक्रवर्तीऋद्धि एवं ऐश्वर्य का त्याग कर भगवती दीक्षा की शरण स्वीकार की है कारण उक्त सब ठाठ दुःख मिश्रित क्षणिक सुखरूप है तब चारित्रवृत्ति एकान्त सुखावह है, इस भव और परभव दोनों में ही कल्याणकारी है। इसके विपरीत जिन चक्रवर्तियों ने संसार में रह कर सांसारिक भोगों को ही उभयत श्रेयस्कर जाना है वे आज भी सातवीं नरक की असह्य यातनाओं को भोग रहे हैं। कज्जल! वर्तमान में तो तेरे पास ब्रह्मचर्य रूप अखण्ड रत्न वर्तमान है अत. इसके साथ तप संयम या ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रत्नत्रिय का समागम हो जायगा तो सोने में सुगंध की लोकोक्त्यनुसार तू अक्षय ऋद्धि का स्वामी हो जायगा कारण, सर्व गुणों में ब्रह्मचर्य ही उत्तम एवं प्रधान गुण है।

४२—आचार्य श्री कक्कसूरि (नवम्)

जातस्तार्यकुले दिवाकरनिभः श्रीकक्कसूरिः सुधीः
दीक्षामाप्तवान् कुमारवयसि प्राप्तस्तपस्यारतः ।
लोके जैनमतं प्रचार्य बहुधाऽनेकान् जनान् दीक्षया
कीर्त्याऽद्यापि विराजते बहुमतो मान्योऽमरो भूतले ॥

पूज्यपाद, परम त्यागी, उत्कृष्ट वैरागी, शान्त, दान्त तपस्वी, चन्द्रवत् निर्मल तथा सौम्य सूर्यवत् तेजस्वी, समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरुपर्वतवत् अकम्प, पृथ्वीवत् क्षमावान्, धैर्यवान् कांसी पात्रवत् निर्लेप, शंखवत् निरंजन, चंदन समान शीतल, भारण्ड पक्षीवत् अप्रमत्त, कमलवत् निर्लेप, वृषभवत् धोरी सिंहवत् पराक्रमी, गजवत् अजय, पुष्करवत् परोपकार निमग्न, सत्तरह प्रकार के संयम के धारक, बारह प्रकार के तपके आराधक, दश प्रकार के यति धर्म के पालक, अष्टप्रवचन माता के पालक व प्रचारक, सूरी की आठ सम्पदा एवं छत्तीस गुण के धारक आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज एक महान् प्रभावक, युग प्रवर्तक, धर्म प्रचारक आचार्य हुए हैं। आपका जीवन चरित्र पट्टावलियों में बहुत विस्तृत रूप में वर्णित है परन्तु हमारा उद्देश एवं पाठकों की जानकारी के लिये यहां संक्षेप में ही लिख दिया जाता है।

पाठक पूर्व बावीसवें प्रकरण आचार्यश्री देवगुप्तसूरि के जीवन में पढ़ आये हैं कि स्वर्गीय देवगुप्त सूरि ने चतुर्थवंशीय आर्य गोसल को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। इसी राव गोसल ने सिंध धरा में गोसलपुर की स्थापना की थी। आचार्यश्री ने भी गोसलपुर नरेश की प्रार्थना से एक चतुर्मास करके पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा भी करवाई। इसी गोसलपुर में चतुर्थवंशीय भीमदेव नाम के आर्य जाति के एक शासक रहते थे। भीमदेव के जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात् उनकी शादी श्रेष्ठि चोरलियावंश ओसवा की पुत्री मेवी के साथ हुई थी। भीमदेव बड़े ही पराक्रमी क्षत्रिय थे। उन्होंने कई बार म्लेच्छों के साथ युद्ध में डटकर लोहा और उन्हें पराजय किये। भीमदेव के ७ पुत्रियों के पश्चात् एक पुत्र हुआ। वह देखने में देव कुमार के समान बहुत ही रूपवान् गुणवान् एवं धार्मिक था। दीर्घायु न होने के कारण उसका नाम कज्जल रख दिया था। आर्य भीमदेव के प्रभुपूजा का अटल नियम था वे संग्राम में जाते तब भी प्रभु प्रतिमा को साथ में रखते। बिना अर्चना, पूजन किये मुंह में अन्न जल भी नहीं लेते। माहेश्वरी देवी का लक्ष्य भी इसी तरह धर्म कार्यों में था। वह अपने घर धर्म में नित्य नियमानुसार सदैव तत्पर रहती। कभी भी अपने नियम व दिनचर्या में किसी भी तरह का स्खलन-विघ्न नहीं होने देती। जब माता पिता धर्मज्ञ होते हैं तो उनके बाल बच्चों पर भी धर्म के वैसी तरह के स्थायी संस्कार जम जाते हैं। प्रकृति के इस प्राकृतिक नियमानुसार कज्जल का ध्यान भी धर्मकार्य की ओर विशेष था। वह भी अपने बाल्यावस्था में बहुत कुछ नियमों को रखता था। विद्याध्ययन में तो आप अपने सब सहपाठियों से हमेशा अग्रसर रहा

था। कज्जल इतना भाग्यशाली एव पुण्यवंत जीव था कि इसके होने के पश्चात् उसकी माता सेणी ने चार पुत्रों को और जन्म दिया। जब कज्जल की वय २२ वर्ष की हुई तो भीमदेव ने उसका वाग्दानसम्बन्ध कर दिया था। विवाह होने में अभी दो तीन वर्ष की देरी थी तथापि सबने बड़ी २ आशाएं बांध रक्खी थी।

इधर यकायक पुण्योदय से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज का पधारना गोसलपुर में हुआ तब राव आसल वगैरह श्रीसघ की प्रार्थना से सूरिजी ने गोसलपुर में चातुर्मास कर दिया। चातुर्मास की इस दीर्घ अवधि में आचार्यश्री के व्याख्यानों ने जन समाज पर बहुत ही गहरा प्रभाव डाला। आप अपने व्याख्यानों में त्याग वैराग्य तथा आत्मकल्याण के विषयों पर अधिक जोर देते थे अतः कईभावुकों का मन संसार से उद्विग्न एवं विरक्त हो गया था। कज्जल भी उन्हीं विरक्त एव उदासीन मनुष्यों में से एक था। सूरीश्वरजी के वैराग्यमय उपदेश ने कज्जल के युवावस्था जन्य मद को वैराग्य के रूप में परिणत कर दिया। वह दीर्घ दृष्टि से विचार करने लगा कि-जितना परिश्रम ससारावस्था में रह कर उदर पूर्ति के लिये किया जाता है उतना ही मुनिवृत्ति की अवस्था में रह कर आत्मकल्याण के लिये किया जाय तो सांसारिक जन्म जन्मान्तर के प्रपञ्च ही नष्ट हो जाय एवं अक्षय सुख मिल जाय मेरी इस युवावस्था का उपयोग संसार वर्धक विषय कषायों में न कर तप, सयम एव चारित्र की आराधना में किया जाय तो कितना उत्तम हो ? ऐसा कौन मूर्ख होगा कि जो पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हस्ति का दुरुपयोग लकड़े के भार को लादकर करे, सोने की थाल में मिट्टी व कचरा भरे, स्वर्ण रस से पैर धोवे, चिन्तामणि रत्न को कौवे उडाने में इस इधर उधर फेंक दें ? अतः मुझे प्राप्त हुई इस मानव भव योग्य उत्तम सामग्री का सदुपयोग आत्मकल्याण मार्ग में प्रवृत्ति करके करना चाहिये। इस प्रकार का मन में दृढ़ निश्चय कर कज्जल समय पाकरसूरिजी की सेवा में उपस्थित हुआ और वंदन करने के पश्चात् विनयपूर्ण शब्दों में अपने मनोगत भावों को प्रदर्शित करते हुए कहा-भगवन् ! मुझे आत्मकल्याण करना है। मुझे संसार से सर्वथा अरुचि एव घृणा होने लगी है। गुरुदेव मुझे ससार के दुखों से भय लगता है इस क्षणभंगुर जीवन के लिये रोरव नरक का पापोपार्जन करके अपनी आत्मा कलुषित नहीं बनाना चाहता हूँ। प्रभो ! मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये। इस प्रकार कज्जल के वैराग्य मय वचनों को श्रवण कर सूरीश्वरजी ने उसके वैराग्य को और दृढ़ करते हुए कहा—कज्जल ! तेरे विचार अत्युत्तम एवं आदरणीय हैं कारण, ससार असार है, कौटुम्बिक मोह स्वार्थ जन्य प्रेम परिपूर्ण है, यौवन हस्ति कर्णवत् चंचल है, भोग विलास एव पौद्गलिक सुखमय साधन भुजग सदृश विषव्यापक, क्षण विनाशी एवं दु खमय ही है। सम्पत्ति—आकाश के गन्धर्व-नगर की भांति अस्थिरहै, आयुष्य अञ्जलीगतनीरवत् अनित्य है। शरीरक्षणभङ्गुर है और अनेक आधिव्याधि उपाधि का स्थान है अत.मनुष्यभव और उत्तमसामग्री का एकमात्र सार आत्मकल्याण करना ही है। कज्जल ! तू तो एक साधारण गृहस्थ ही है पर, बड़े २ चक्रवर्तियों ने चक्रवर्तीऋद्धि एव ऐश्वर्य का त्याग कर भगवती दीक्षा की शरण स्वीकार की है कारण उक्त सब ठाठ दु'ख मिश्रित क्षणिक सुखरूप है तब चारित्रवृत्ति एकान्त सुखावह है, इस भव और परभव दोनों में ही कल्याणकारी है। इसके विपरीत जिन चक्रवर्तियों ने ससार में रह कर सांसारिक भोगों को ही उभयत श्रेयस्कर जाना है वे आज भी सातवीं नरक की असह्य यातनाओं को भोग रहे हैं। कज्जल ! वर्तमान में तो तेरे पास ब्रह्मचर्य रूप अखण्ड रत्न वर्तमान है अतः इसके साथ तप सयम या ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रत्नत्रिय का समागम हो जायगा तो सोने में सुंगध की लोकोक्त्यनुसार तू अक्षय ऋद्धि का स्वामी हो जायगा कारण, सर्व गुणों में ब्रह्मचर्य ही उत्तम एवं प्रधान गुण है।

दूसरों को वारे ऐसा है। जब तुम को बिना आज्ञा दीक्षा देकर हम हमारे मत का खण्डन करें तो इससे तुम तो तिरे पर हम तो संसार के पात्र ही बने। इससे तो हमारा शिष्य मोह और माया कपट दोष जो मिथ्यात्व के पाये हैं—बढ़ते रहेंगे। परिणाम स्वरूप जिस आशा एवं विश्वास पर पौद्गलिक पदार्थों का त्याग कर चारित्र वृत्ति की शरण ली है वह तो हमारे लिये निरर्थक ही सिद्ध होगी। संसारावस्था को छोड़ करके भी संसारिक प्रवृत्ति के अनुरूप ही हमारा चारित्र रहेगा। कज्जल ! जरा गम्भीरता पूर्वक जैन दर्शन के सिद्धान्तों का मनन करो। यदि कदाचित तुम्हारे अत्याग्रह से माता पिता की बिना आज्ञा हमने तुमको दीक्षा दे भी दी तो आगे तुम भी इसी तरह की प्रवृत्ति का प्रदुर्भाव कर देंगे जिससे संसार से तैरने का रास्ता तो एक दम बंद हो जायगा और मोह, माया, कपट, मिथ्यात्व एवं तृष्णा का आधिक्य ही वृद्धिगत होता रहेगा अतः अपने किञ्चित् स्वार्थ के लिये धर्म पर कुठाराघात करना निरी अज्ञानता है। कज्जल ! तुम्हारा यह भ्रममात्र है कि तुम्हारे कहने पर भी माता पिता तुम्हें आज्ञा न दें। भला—जाते—और मरते हुए को दुनियां में कौन रोक सकता है ? पर इसके लिये चाहिये दिल की दृढ़ भावना, सच्चा वैराग्य, आत्म विश्वास विचारों की दृढ़ता एवं मन का परिपक्वपना। कज्जल ! देख, हम और हमारे इतने साधु हैं। क्या हमारे और इनके माता पिता नहीं थे ? या हम से किसी के माता पिता ने उसे निर्मोही की तरह आज्ञा दे दिया ? यदि नहीं तो माता पिताओं को समझना और उन्हें निवृत्ति पथ के पथिक बनाना तुम जैसे मेधावियों का काम है। आज हमारे पास वर्तमान इन साधुओं के माता पिता जब अपने पुत्र को ज्ञान, ध्यान, चारित्र आदि में उत्कृष्ट वृतिकों देखते हैं तो उनके हर्ष का पारावार नहीं रहता है। वे अपना अहोभाग्य समझ कर उन साधुओं के चरणों में मुहुर्मुहु वंदन करते हैं अत. यदि तुम्हारी दीक्षा लेने की सच्ची भावना है तो तुम्हें माता पिताओं की सर्व प्रथम आज्ञा प्राप्त करनी ही होगी। तब ही हम दीक्षा देंगे ?

कज्जल—पूज्यपाद गुरुदेव ! आपको कोटिश. नमस्कार हो। आप जैसे निस्पृही एवं विरक्त महात्मा संसार में विरलेही होंगे। धन्य है इस परमपवित्र जैनधर्म को कि जिसके संचालक तीर्थङ्कर देवों ने धर्म के ऐसे दृढ़ एवं आदरणीय नियम बनाये हैं। वास्तव में इन्हीं नियमों की कठोरता के कारण ही जैनधर्म का अन्यधर्मों की अपेक्षा दुनियां में विशेष स्थान है। जैनश्रमणों का चारित्र, आचार व्यवहार अन्य साधुनामधारियों की अपेक्षा सहस्रगुना उत्कृष्ट है इससे नतो जैनधर्म की निंदा होती है और न जैनधर्म कि धुरा को धारण करने वाले श्रमणों पर अविश्वास ही। न अनीति को मदद मिल सकती है और न मिथ्यात्व का पोषण हो सकता है। वास्तव में संसार में वर्तमान धर्मोंमें जैनधर्म ही वास्तविक 'तिन्नाणं तारयाणं' है। गुरुदेव ! आपकी आज्ञा को मस्तक पर चढ़ाता हूं। प्रभो मातापिता की आज्ञा लेकर दीक्षा स्वीकार करुंगा !

सूरिजी—कज्जल ! इसमें तेरा और हमारा दोनों का ही कल्याण सन्निहित है। धर्म की मान मर्यादा भी इसी में ही है।

कज्जल—जी हां ! कह कर सूरिजी के चरणकमलों में वंदन किया और माता-पिता से आदेश प्राप्त करने के लिये अपने घर पर चालकर आया। घर पर आते ही मातापिताओं के सम्मुख दीक्षा के लिये आग्रह करने लगा व सूरिजी के साथ में हुई वार्तालाप का सकलवृत्तान्त कहने लगा। माता पिताओं को बहुत ही आश्चर्य एवं दुःख हुआ कारण, वे कज्जल को अपने से विमुक्त नहीं देखना चाहते थे पर कज्जल का निश्चय तो अचल था। बहुत अनुकूल, प्रतिकूल कथनों से समझाने पर भी जब कज्जल ने अपना

निश्चय नहीं छोड़ा तो माता पिताओं को दीक्षा के लिये आज्ञा देनी ही पड़ी। आखिर कमला ने अपने ७ साथियों के साथ सूरीश्वर जी म. सा. के पास दीक्षा ग्रहण कर ही ली। दीक्षानंतर आपका नाम मूर्तिविशाल रख दिया। मुनि मूर्तिविशाल जिनधर्म के सुपुत्र थे अतः उन्होंने चारित्रवृत्ति को जिन आदर्शभावनाओं से प्रेरित हो अङ्गीकार की उनका निर्वाह करने के लिये वे स्थविरों की विनय, भक्ति वैयावृत्य व तपस्या करते हुए ज्ञान सम्पादन करने में संलग्न हो गये। वह गुरुकुल वास का जमाना था पवित्र एवं आदर्श था कि उस समय आज के जैसे स्वेच्छाचारियों व मुनिवृत्ति-घातक मुनियों का अस्तित्व ही नहीं रहने पाता था। वे गुरु के पास में रह कर ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि करने में संसार त्याग की महत्ता समझते थे। इसमें मुख्य कारण तो उनके विनय व वैराग्य की दृढ़ता थी। आज के जैसे ऐरे गैरे को वे मुखिया नहीं करते थे क्योंकि शासन की लघुता में तो वे अपनी लघुता समझते थे। उनके हृदय में इस बात का गौरव था कि हम ने संसार का त्याग आत्मकल्याण के लिये किया है फिर आरम्भजन्य निन्दाजनक वृत्तियों का पोषण एवं रक्षण कर आत्मकल्याण का बड़ा पाप सिर पर कैसे लादें ? इन्हीं सब कारणों से दीक्षा के पश्चात् ज्ञानार्जन करने को वे अपने जीवन का एक मुख्य अंग ही बना लेते थे। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमानुसार वे गुरुदेव की सेवा करते हुए भ्रमर की भांति ज्ञानाभ्यास किया ही करते थे। यद्यपि उस समय चैत्यवासियों के आचार विचार एवं व्यवहार में यत् किञ्चित् शिथिलता का प्रवेश हो गया था तथापि, गुरु की आज्ञा का पालन करना और ज्ञान पढ़ना तो उनमें भी मुख्य समझा गया था।

मुनि मूर्तिविशाल ने आचार्यश्री की सेवा में १९ वर्ष पर्यंत रह कर अनवरत परिश्रम पूर्वक वर्तमान जैन साहित्य का सांगोपांग अध्ययन किया। स्वकीय ज्ञान के साथ ही साथ उस समय के लिए आवश्यक न्याय, व्याकरण, और ज्योतिष शास्त्रों का भी खूब सूक्ष्मता पूर्वक मनन किया था। इन विद्याओं के सिवाय गुरु परम्परा से प्राप्त विद्या आम्नाय, सूरि मंत्र की साधना करके सूरिपद के योग्य सर्व योग्यताएं हासिल कर ली। यही कारण है कि आचार्यश्रीसिद्धसूरिजी अपने अन्तिम समय में मेदनीपुर नगर में श्रेष्ठिगोत्रीय की भोजकशाला व वर्धमान आदि के महामहोत्सव जिसमें पूजाप्रभावना स्वामिवात्सल्य और साधर्मी नर नारियों को पहरावणी आदि में लाखों द्रव्य शुभ कार्यों में व्यय करके पुण्य सम्पादन किया और सूरिजी महाराजने मुनिमूर्तिविशाल को बड़े ही समारोह के साथ सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम परम्परानुसार कक्कसूरि रख दिया।

आचार्यश्रीकक्कसूरिजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली आचार्य थे। आपका तपतेज एवं ब्रह्मचर्य का प्रचण्ड प्रताप मध्याह्न के सूर्य की भांति सर्वत्र प्रकाशमान था। एक ओर तो जैनधर्म से द्वेष रखने वाले वादियों के संगठित हमले रह २ कर जैनधर्म पर वज्र प्रहार कर रहे थे। और दूसरी ओर चैत्यवासियों के आचार विचार एवं क्रियाओं की कुछ शिथिलता समाज की जड़ को खोखली कर रही थी अतः आपश्री को शासन का गौरव बढ़ाने के लिये विपक्ष विद्वानों का सामने शास्त्रार्थ करना पड़ता और जैनश्रमणों के जीवन को पवित्र एवं निर्दोष रखने के लिये पुनः पुनः उन्हें प्रोत्साहित करना पड़ता। ऐसे विकट समय में जैनशासन की आपश्री ने जिस तरह रक्षा एवं वृद्धि की वह सचमुच आश्चर्योत्पादक ही है।

यह तो हम पहिले ही लिख आए हैं कि—कारणवश से कई चैत्यवासियों के आचार विचार एवं व्यवहार में कुछ शिथिलता अवश्य आगई थी पर उनके गोत्र २ में जैनधर्म के प्रति दृढ़ अनुराग बना हुआ

था वे शासन की उन्नति में ही अपनी उन्नति एवं गौरव समझते थे। यद्यपि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से वे चारित्र को निर्दोष नहीं पाल सके तथापि जैनशासन की हर तरह से उन्नति एव प्रभावना करने में उन्होंने कुछ भी कसर नहीं रक्खी। उस समय जैनधर्म की धवल यशः पताका यत्र तत्र सर्वत्र फहरा रही थी। आचार्यबप्पभट्टसूरि और शीलगुणसूरि जैसे जैनधर्म के स्तम्भ उस समय विद्यमान थे। इनका विशद जीवन चरित्र वीर परम्परा के प्रकरण में लिखा जायगा।

आचार्यश्री कक्कसूरिने सर्व प्रथम घर की बिगड़ी हालत को सुधारने का प्रयत्न किया कारण, उन्होंने सोचा कि श्रमणवर्ग की शिथिलता दूर होकर उनमें उत्साह एवं धर्मप्रेम की नवीन स्फूर्ति का सञ्चार होजाय तो जैनधर्म का विस्तृत प्रचार उनके जरिए स्थानों २ पर कराया जा सकता है। बस, उक्त भावनाओं से प्रेरित हो आपश्री ने स्थान २ पर श्रमण सभाएं करवाई उनमें से एक सभा चंद्रावती में भरवाई जिसमें आगत श्रमण मण्डली का तिरस्कार करने के बजाय उनके कर्तव्य की स्मृति करवाते हुए अत्यन्त मधुर उपालम्भ देते हुए समझाया कि—श्रमण बन्धुओं! भगवान महावीर ने अपने शासन की डोर आप लोगों के हाथ में दी है। यदि इसका सञ्चालन एवं रक्षण अपना कर्तव्य समझते अपन नकरें तो सचमुच हम लोग अपनी श्रमणवृत्ति के पवित्र जीवन से कोसों दूर हैं। शासन के प्रति विश्वासघाव करके निकाचित कर्मों के बध कर्ता है। भला सोचने की बात है कि—वीरभगवान् के बाद भी दीर्घदर्शी पूर्वाचार्यों ने हमारी सहूलियत के लिये नये जैन बनाकर महाजनसघ रूप एक सुदृढ़ सस्था की स्थापना का हमारे ऊपर कितना उपकार किया है? उन पूर्वाचार्यों ने जिन कष्टों एवं परिषहों को सहन करके सुदूर प्रान्तों में धर्म प्रचार किया उनमें से हमको जो किञ्चित भी धर्मप्रचार में संकट सहन नहीं करने पड़ते कारण उन्होंने कण्टकाकीर्ण मार्ग को सुसस्कृत एवं परिष्कृत कर दिया फिर भी यदि हम लोग शास्त्रीय नियमों की परवाह किये बिना कर्तव्य पराङ्मुख बन जावें तो हमारे जैसे कृतघ्न एवं शासन द्रोही और कौन होसकते हैं? हमारे उन आदर्श पूर्वाचार्यों के समय तो द्वादशवर्षीय जनसहारक महा भीषण दुष्काल पड़े फिर भी उन्होंने ऐसे विकट समय में जैन संस्कृति की अपनी सम्पूर्ण शक्ति सत्ता से रक्षा की तो क्या उनके द्वारा बनाये हुए करोड़ों की ताद'द आज अपने भरोसे पर है तो अपने कर्तव्य का आप लोग अपने ही आप विचार करलें।

जैसे एक पिता अपने पुत्रों के विश्वास पर करोड़ों की सम्पत्ति को छोड़ जाता है तो पुत्रों का कर्तव्य जनकोपार्जित लक्ष्मी की न्याय पूर्वक वृद्धि करने का ही होजाता है। यदि बढ़ाने जितनी योग्याता उनमें नहीं है तो कम से कम रक्षण करना तो उसका परम कर्तव्य ही होजाता है। अस्तु, उक्त कर्तव्य की स्मृति पूर्वक जब तक वह इस द्रव्य को उतने ही परिमाण में रहने देता है तब तक तो ससार में उसकी कुछ मान मर्य्यादा एवं प्रतिष्ठा रहती है परन्तु पुत्रों के प्रमाद, बे परवाही एवं विलासी जीवन का लाभ उठाकर कोई दूसरे प्रतिपक्षी उस धन को हड़प कर लेवे और समर्थ पुत्र अपनी आखों से उसको देखता रहे तो इसमें न तो पुत्र की शोभा ही रहती है और न संसार में मान मर्य्यादा ही बढ़ती है। न वह अपना सांसारिक जीवन सुखमय व्यतीत कर सकता है और न किसी योग्य कार्य के काबिल ही रहता है। इतना ही क्या पर प्रतिपक्षियों की प्रबलता के कारण उसका अस्तित्व रहना भी कालान्तर में दुष्कर होजाता है। यही हाल आज अपने शासन का होरहा है। यदि आप लोग शासन की रक्षा के लिये कमर कसकर तैय्यार न होवेंगे तो निश्चित् ही एक समय ऐसा आवेगा कि जैनधर्म का नाम संसार में पुस्तकों की शोभा रूप ही हो जायगा।

चन्द्रावती में श्रमण सभा—

निश्चय नहीं होता तो माता पिताओं को दीक्षा के लिये आज्ञा देनी ही पड़ी । आखिर कलश ने अपने ४ साथियों के साथ सूरीश्वर जी म. सा. के पास दीक्षा ग्रहण कर ही ली । दीक्षानंतर आपका नाम मूर्तिविशाल रख दिया । मुनि मूर्तिविशाल सिंहप्रीत के सुपुत्र थे अतः उन्होंने चारित्रवृत्ति को सिंह आर्द्रभावनाओं से प्रेरित हो स्वीकार की अतएव निर्वाह करने के लिये वे त्यागियों की विनय, भक्ति वैयावृत्य व उपासना करते हुए ज्ञान सम्पादन करने में संलग्न हो गये । वह गुरुकुल वास का जमाना था पवित्र एवं आदर्श था कि उस समय आज के जैसे स्वेच्छाचारियों व गुरुद्रोही विघातक मुनियों का अस्तित्व ही नहीं रहने पाया था । वे गुरु के पास में रह कर ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि करने में संसार त्याग की महत्ता समझते थे । इसमें मुख्य कारण तो उनके विनय व वैराग्य की दृढ़ता थी । आज के जैसे ऐरे गैरे को वे मुनिपद नहीं करते थे क्योंकि शासन की लघुता में तो वे अपनी लघुता समझते थे । उनके हृदय में इस बात का गौरव था कि हम ने संसार का त्याग आत्मकल्याण के लिये किया है फिर आत्मगुण विघातक वृत्तियों का पोषण कर आत्मकल्याण का भार सिर पर कैसे लादें ? इन्हीं सब कारणों से दीक्षा के पश्चात् ज्ञानाध्ययन करने को वे अपने जीवन का एक मुख्य अंग ही बना लेते थे । ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमानुसार वे गुरुदेव की सेवा करते हुए अहर्निश की भांति ज्ञानाभ्यास किया ही करते थे । यद्यपि उस समय चैत्यवासियों के आचार विचार एवं व्यवहार में कुछ किञ्चित् शिथिलता का प्रवेश हो गया था तथापि, गुरु की आज्ञा का पालन करना और ज्ञान पढ़ना तो उनमें भी मुख्य समझा गया था ।

मुनि मूर्तिविशाल ने आचार्यश्री की सेवा में १९ वर्ष पर्यंत रह कर अनवरत परिश्रम पूर्वक वर्तमान जैन साहित्य का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया । शास्त्रीय ज्ञान के साथ ही साथ उस समय के लिए आवश्यक न्याय, व्याकरण और काव्यादि ग्रन्थों का भी खूब सूक्ष्मता पूर्वक मनन किया था । इन विद्याओं के सिवाय गुरु परम्परा से प्राप्त विद्या, आम्नाय, सूरि मंत्र की साधना वगैरह २ सूरिपद के योग्य सर्व योग्यताएं हासिल कर ली । यही कारण है कि आचार्यश्रीसिद्धसूरिजी अपने अन्तिम समय में मेदपाटपुर नगर के श्रेष्ठिगोत्रीय की गोत्रीयसमाज के धर्मवीर शाह आदू के महामहोत्सव जिसमें पुष्कल द्रव्य व्यय किया और स्वधर्मी भाइयों को पहरावणी आदि में सवा लक्ष द्रव्य शुभ कार्यों में एव याचकों को पुष्कल दान देने में व्यय किया और सूरिजी महाराजने मुनिमूर्तिविशाल को बड़े ही समारोह के साथ सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम परम्परानुसार कक्कसूरि रख दिया ।

आचार्यश्रीकक्कसूरिजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली आचार्य थे । आपका तपतेज एवं ब्रह्मचर्य का प्रबल प्रताप मध्याह्न के सूर्य के भांति सर्वत्र प्रकाशमान था । एक ओर तो जैनधर्म से ईर्ष्या रखने वाले वादियों के संगठित हमले रह २ कर जैनधर्म पर वज्र प्रहार कर रहे थे । और दूसरी ओर चैत्यवासियों के आचार विचार एवं नियमों की कुछ शिथिलता समाज की जड़ को खोखली कर रही थी अतः आपश्री को शासन का गौरव बढ़ाने के लिये दिग्गज विद्वानों का सामने शास्त्रार्थ करना पड़ता और जैनश्रमणों के जीवन को पवित्र एवं निर्दोष रखने के लिये पुनः पुनः उन्हें प्रोत्साहित करना पड़ता । ऐसे विकट समय में जैनसमाज की आपश्री ने किस तरह रक्षा एवं वृद्धि की वह सचमुच आश्चर्योत्पादक ही है ।

यह तो हम पहिले ही लिख आये हैं कि—कालदोष से कई चैत्यवासियों के आचार विचार एवं व्यवहार में कुछ शिथिलता अवश्य आगई थी पर उनके रोम २ में जैनधर्म के प्रति दृढ़ अनुराग भरा हुआ

एक वृद्ध किसान का नदी के किनारे पर गेहूँ का खेत था। किसान की सम्भाल से खेत में आशातीत गेहूँ की उत्पत्ति हुई। सारा ही खेत गेहूँ से हरा भरा दीखने लगा। जब धान्य पक गया किसान मजदूरों से गेहूँ कटवाने लगा पर किसान को सूर्यास्त होने के बाद दीखता नहीं था कारण वह रातान्ध था, अत' उसने मजदूरों से कहा—भाई! तुम दिन अस्त होने के पूर्व ही अपना काम निपटा कर चले जाओ। मजदूरों ने इसका कारण पूछा तो किसान ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—मुझे सञ्जा (सूर्यास्त के समय) का बड़ा भारी भय लगता है। सब मजदूरों को सुनाने के लिये उसने इसी बात को दो तीन बार कहा। कि मुझे जितनासिंह से भय नहीं उत्तना संज्ञा से भय लगता है। इधर नदी की एक ओर खोखाल में एक सिंह पड़ा हुआ था। उसने किसान के शब्दों को सुनकर सोचा कि सञ्जा भी कोई मेरे से अधिक शक्तिशाली जानवर होगा इसीसे इन लोगों को मेरे नाम का जितना भय नहीं उतना सज्जा के नाम का भय मालूम पड़ रहा है। इस तरह सिंह के हृदय में भी सञ्जा विषयक संशय—भय होगया। उसी गांव में एक वृद्ध धोबी भी रहता था, वह नागरिकों के कपड़े धोकर अपना गुजारा करता था। ग्राम से दो माईल की दूरी पर कपड़े धोने का एक घाट था अतः कपड़े ले जाने के लिये एक मोटा ताजा गधा रख लेना पड़ा था। गधा शरीर में खूब मोटा, तगड़ा एवं तन्दुरुस्त था। एक दिन सूर्यास्त होने पर भी गधा नहीं आया तो धोबी मारे गुस्से के हाथ में लट्ठ लेकर उसे खोजने को गया। भाग्यवशात् धोबी को भी रात्रि में कम दीखता था अत' जब वह ढूढते २ नदी पर आया तो नदी के किनारे पर एक सिंह पड़ा हुआ देखा। कम दीखने के कारण उसको सिंह में ही गधे की भ्रान्ति होगई और क्रोध के आवेश में पांच सात लट्ठ सिंह के जमा दिये। इधर सिंह ने सोचा कि—सञ्जा नाम के जो मैंने मेरे से बलवान प्राणी के विषय में सुना था—हो-न हो वह यही सञ्जा है। बस इसी भय और शका के कारण उसने धोबी के सामने चूं तक भी नहीं किया। धोबी भी उसे गधा समझ उसके गले में रस्सा डाल अपने घर पर ले आया। रात्रि में भी सञ्जा के भय से सिंह चुपचाप ही रहा। जब आधा घटा रात शेष रही तब धोबी ने ग्राम के सब कपड़े सिंह पर लाद कर घाट पर जाने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में सूर्योदय होते ही पहाड़ पर से एक सिंह का बच्चा आया। उस अपने जातीय वृद्ध सिंह की इस प्रकार की दुर्दशा देखी नहीं गई। उसे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ कि सिंह जैसा पराक्रमी पशु गधे के रूप में कपड़े लादने रूप भार का वहन करने वाला कैसे दृष्टिगोचर हो रहा है? उसने पास में आकर वृद्ध सिंह को पूछा—बाबा यह क्या हालत है? वृद्ध शेर ने कहा—तू अभी बचा है मत बोल, देख-यह सञ्जा नाम का अपने से भी पराक्रमी जीव है। इसने मुझे तो ऐसा पीटा है कि—मेरी कमर ही टूट गई है। अगर तू भी चुप रहने के बदले कुछ बोलना प्रारम्भ करेगा तो तुझे भी इसी तरह पीटेगा— मारेगा अतः जैसे आया वैसे चले जाना ही अच्छा है। यह सुन शेर का बच्चा सोचने लगा- ससार में सिंह से शक्ति शाली तो दूसरा कोई जीव वर्तमान नहीं फिर सञ्जा का नाम भी कभी सुनने में भी नहीं आया अत. अवश्य ही बाबा के हृदय में एक तरह भय प्रविष्ट हो गया है। बस इस संशय को निकालने के लिये मुझे किसी न किसी तरह प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिये। यद्यपि मैं बच्चा हूँ,—बाबा को शिक्षा या उपदेश देने का अधिकारी नहीं पर मौका ऐसा ही आ गया है अत अपनी जातीय गौरव खोना युक्ति युक्त नहीं। इस तरह मन में संकल्प विकल्प कर सिंह को कहा बाबा! सञ्जा तो कोई जानवर ही नहीं है। आप व्यर्थ ही भ्रम में पड़े हुए हैं। यदि मेरे कहने पर आपको विश्वास न हो तो आप एक

प्रिय आत्म बन्धुओं ! जिन सुविहित शिरोमणियों ने चैत्यवास प्रारम्भ किया था—उन्होंने वज्र कर्मी मकान के पाप के भय से ही किया था । उनको तो स्वप्न मात्र में भी यह कल्पना नहीं थी कि आज के हमारे चैत्यवास का परिणाम भविष्य में इतना भयङ्कर होगा । उन्होंने तो पापभय से व शिथिलता की जड़ निमित्त ही चैत्यवास को स्वीकृत किया था । उनके हृदय में यह कल्पना तक नहीं थी कि हमारे पीछे हमारी सन्तान इस चैत्यवास के कारण शिथिल होकर मठवासियों की तरह परिग्रही बन जावेगी यदि उन्हें भयङ्करता के विषमय विषम परिणाम की कल्पना होती तो उस समय के लिये परमोपयोगी चैत्यवास प्रारम्भ ही नहीं करते । बन्धुओं ! जिस समय हम लोग संसारावस्था का त्याग कर चारित्र वृत्ति लेते हैं उस समय हमारे हृदय में शासन के प्रति एवं चारित्र के प्रति कितनी उत्कृष्ट भावनाएं रहती हैं ! यदि भावनाओं की उच्चता एवं विचारों की आदर्शता चरम समय पर्यन्त उत्कृष्ट न रहे तो निश्चित ही वस्तु स्थिति साधुवृत्ति के नाम से निर्दिष्ट हो जावेगी । यदि साधुवृत्ति के पवित्र जीवन में भी गृहस्थ जीवन के समान मलीन गृह की निर्मोही भावना रहती हो पौद्गलिक मन मोहक पदार्थों में मोह रहता हो तो हमारा संसार छोड़ना और न छोड़ना दोनों ही समान है । मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि इस प्रकार के शिथिल एवं आचार विहीन साधुओं से तो गृहस्थों का गार्हस्थ्य जीवन ही सुखमय है जो अपने थोड़े बहुत नियमों को यथाशक्ति पर्यन्त सुख से निभाते हैं । बन्धुओं इस प्रकार की शासनमर्यादा का अतिक्रमण करने से अपने दोषों ही भवविराधक बनेंगे । उच्छृंखलता एवं विश्वास घात के महा पाप से भी अपने आप को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे । कारण, इस समय जो अपने को सुविधायें निर्बाधक आवश्यकतानुसार उपलब्ध होते हैं । वे सब भगवान महावीर के नाम पर ही । अतः इसके बदले में हम शासन की सेवा रक्षा एवं अपने आचार विचार में पवित्रता न रक्खें तो निश्चित ही हम शासन द्रोही कहलाते हैं । जनता का आपके ऊपर पूर्ण विश्वास है । वे समझते हैं कि हमारे गुरुओं का जीवन अत्यन्त निर्मल एवं त्यागमय है अतः उनकी हर तरह की सेवा का लाभ लेना हमारा कर्त्तव्य है अस्तु । अपनी जीवनचर्या में इस प्रकार की शिथिलता रख कर तो उनके साथ भी विश्वासघात ही कमाते कारण वे अपने को त्यागी समझ कर अपने साथ शासन मर्यादा बराबर निभाते आ रहे हैं तो अपना कर्त्तव्य भी उनके अंतरङ्गानुसार आचार विचार को पवित्र रखना होजाता है । इसीमें अपनी जीवन की उन्नति आत्म कल्याण की पराकाष्ठा एवं मोक्षसाधन की उत्तम क्रिया अन्तर्हित है । शासन की प्रभावना एवं सेवा भी इसीमें शामिल है । इत्यादि ।

इस प्रकार आचार्यश्री ने परम निर्भीकता पूर्वक सजीव, दुःखी हृदय का दर्द समस्त सभा में स्पष्ट वक्ता के समान स्पष्ट प्रगट कर दिया । अन्त में आपने फरमाया कि मैंने मेरे दग्ध हृदय के कुछ अनुचित उद्गार भी आप लोगों के लिये कहे हैं पर क्या किया जाय ? शासन का पतन देखा नहीं जाता है । अपने लोगों की शिथिलता समाज की जड़ को खोखली बनाकर समाज को पतन प्राय बना रही है अतः अपने जीवन की पवित्रता शासनोत्थान के लिये सर्व प्रथम आवश्यक है । मुझे उम्मेद है कि वीर की सन्तान वीर ही हुआ करती है अतः आप लोग भी भगवान् महावीर की सन्तान होने का दावा करते हैं तो शीघ्र ही वीर पताका को पुनः चतुर्दिक में लहरा दीजिये । सिंह भले ही थोड़ी देर के लिये प्रमादावस्था में पड़ा रहे पर सिंह शृगाल नहीं हो सकता सिंहोचित स्वाभाविक प्रतिभा तो उसके मुख पर सदा झलकती ही रहती है । देखिये—शास्त्रों में एक उदाहरण बतलाया है ।

एक वृद्ध किसान का नदी के किनारे पर गेहूँ का खेत था। किसान की सम्भाल से खेत में आशा तीत गेहूँ की उत्पत्ति हुई। सारा ही खेत गेहूँ से हरा भरा दीखने लगा। जब धान्य पक गया किसान मजदूरों से गेहूँ कटवाने लगा पर किसान को सूर्यास्त होने के बाद दीखता नहीं था कारण वह रातान्ध था, अत' उसने मजदूरों से कहा—भाई! तुम दिन अस्त होने के पूर्व ही अपना काम निपटा कर चले जाओ। मजदूरों ने इसका कारण पूछा तो किसान ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—मुझे सञ्जा (सूर्यास्त के समय) का बड़ा भारी भय लगता है। सब मजदूरों को सुनाने के लिये उसने इसी बात को दो तीन बार कहा। कि मुझे जितनासिंह से भय नहीं उत्तना संञ्जा से भय लगता है। इधर नदी की एक ओर खोखाल में एक सिंह पड़ा हुआ था। उसने किसान के शब्दों को सुनकर सोचा कि सञ्जा भी कोई मेरे से अधिक शक्तिशाली जानवर होगा इसीसे इन लोगों को मेरे नाम का जितना भय नहीं उतना सञ्जा के नाम का भय मालूम पड़ रहा है। इस तरह सिंह के हृदय में भी सञ्जा विषयक संशय—भय होगया। उसी गाव में एक वृद्ध धोबी भी रहता था, वह नागरिकों के कपड़े धोकर अपना गुजारा करता था। ग्राम से दो माईल की दूरी पर कपड़े धोने का एक घाट था अतः कपड़े ले जाने के लिये एक मोटा माता गधा रख लेना पड़ा था। गधा शरीर में खूब मोटा, तगड़ा एव तन्दुरुस्त था। एक दिन सूर्यास्त होने पर भी गधा नहीं आया तो धोबी मारे गुस्से के हाथ में लट्ठ लेकर उसे खोजने को गया। भाग्यवशात् धोबी को भी रात्रि में कम दीखता था अत जब वह ढूढते २ नदी पर आया तो नदी के किनारे पर एक सिंह पड़ा हुआ देखा। कम दीखने के कारण उसको सिंह में ही गधे की भ्रान्ति होगई और क्रोध के आवेश में पांच सात लट्ठ सिंह के जमा दिये। इधर सिंह ने सोचा कि—सञ्जा नाम के जो मैंने मेरे से बलवान प्राणी के विषय में सुना था—हो-न हो वह यही सञ्जा है। बस इसी भय और शका के कारण उसने धोबी के सामने चूं तक भी नहीं किया। धोबी भी उसे गधा समझ उसके गले में रस्सा डाल अपने घर पर ले आया। रात्रि में भी सञ्जा के भय से सिंह चुपचाप ही रहा। जब आधा घटा रात शेष रही तब धोबी ने ग्राम के सब कपड़े सिंह पर लाद कर घाट पर जाने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में सूर्योदय होते ही पहाड़ पर से एक सिंह का बच्चा आया। उस अपने जातीय वृद्ध सिंह की इस प्रकार की दुर्दशा देखी नहीं गई। उसे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ कि सिंह जैसा पराक्रमी पशु गधे के रूप में कपड़े लादने रूप भार का वहन करने वाला कैसे दृष्टिगोचर हो रहा है? उसने पास में आकर वृद्ध सिंह को पूछा—बाबा यह क्या हालत है? वृद्ध शेर ने कहा—तू अभी बच्चा है मत बोल, देख-यह सञ्जा नाम का अपने से भी पराक्रमी जीव है। इसने मुझे तो ऐसा पीटा है कि—मेरी कमर ही टूट गई हैं। अगर तू भी चुप रहने के बदले कुछ बोलना प्रारम्भ करेगा तो तुझे भी इसी तरह पीटेगा— मारेगा अतः जैसे आया वैसे चले जाना ही अच्छा है। यह सुन शेर का बच्चा सोचने लगा- ससार में सिंह से शक्ति शाली तो दूसरा कोई जीव वर्तमान नहीं फिर सञ्जा का नाम भी कभी सुनने में भी नहीं आया अत' अवश्य ही बाबा के हृदय में एक तरह भय प्रविष्ट हो गया है। बस इस संशय को निकालने के लिये मुझे किसी न किसी तरह प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिये। यद्यपि मैं बच्चा हूँ,—बाबा को शिक्षा या उपदेश देने का अधिकारी नहीं पर मौका ऐसा ही आ गया है अत अपनी जातीय गौरव खोना युक्ति युक्त नहीं। इस तरह मन में सकल्प विकल्प कर सिंह को कहा बाबा! सञ्जा तो कोई जानवर ही नहीं है। आप व्यर्थ ही भ्रम में पड़े हुए हैं। यदि मेरे कहने पर आपको विश्वास न हो तो आप एक

किसान का उदाहरण—

बार गर्जना करके देख लेवें। शिशु सिंह के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर भी वृद्ध सिंह की गर्जना करने की या सत्ता का सामना करने की हिम्मत नहीं हुई पर, बच्चे अत्याग्रह से वृद्ध शेर इतना जोर से सिंहोचित गर्जन शुरू किया। बिचारा धोबी भी आपत्ति आजाने से घबरा गया। बस उसी क्षण ही शिशु वृद्ध सिंह ने अपना असली स्वरूप पहिचानने में उस बच्चे का उपकार और अहसान माना। और धोबी के बन्धन में से छूट कर निडरता पूर्वक पहाड़ों की कंदरा में स्वतन्त्र होकर विचरने लगा।

सूरिजी के वक्तव्य ने तो मुनियों के हृदय पर गहरी छाप डाली। आगत श्रमण सज्जनों में नवीन चैतन्य स्फूर्ति होने लगी। धर्म प्रचार का अपूर्वोत्साह जागृत हो गया। वे समझ गये कि—हम सच्चे शेर ही हैं पर प्रमाद रूपी धोबी ने हमारे मानस में व्यर्थ ही संशय भर दिया है। परिषहों के भय से हम कायर एवं अकर्मण्य बने बैठे हैं। श्रमण जीवन रूप सिंहत्व को पवित्र पराक्रमशील रूप अवस्था को प्राप्त करके भी दुनियां भर के शिथिलता रूप मैल को हमने सिर पर लाद रक्खा है। आचार्यश्री कक्कसूरिजी म यद्यपि लघु आचार्य हैं पर शेर के बच्चे की तरह अपने को हमको पकड़ कर गर्जना करने की सलाह दे रहे हैं। अपने को सत्कर्तव्य का भान करवा रहे हैं। श्रमण जीवन की पवित्रता जिम्मेवारियों की ओर अपने को अभिमुख कर जीवन के वास्तविक ध्येय की एवं गुरु स्वामी के कर्तव्य की अपने को स्मृति करवा रहे हैं। वास्तव में आचार्यश्री के कथनानुसार व मुनिवृत्ति के पवित्र आचारविचारानुसार हमने हमारे जीवन में आचार विचार विषयक विशिष्ट परिवर्तन न किया तो निश्चय ही हम शासन द्रोही एवं विश्वासघाती के नाम से निर्दिष्ट किये जावेंगे। शनै २ संसार में अन्यधर्मियों के साधु के समान हमारी भी कीमत नहीं रहेगी। अतः हमारे पवित्र जीवन का हमें ही खयाल करना चाहिये। आचार्यश्री के उपदेश ने आगत श्रमण सज्जनों की भावनाओं में इतना विचित्र परिवर्तन कर दिया कि एक बार वे पुनः धर्म प्रचार के लिये कमर कसकर तैय्यार हो गये।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने जहां २ शिथिलता देखी वहां २ इस प्रकार की श्रमण सभायें करवाकर श्रमण जीवन में नवीन शक्ति का सञ्चार करने का आशातीत प्रयत्न किया। मुनियों को मोक्षाभिमुख कर उनके कर्तव्य का भान करवाया। धर्म प्रचार की ओर उन्हें प्रेरित कर शासन का गौरव बढ़ाया। यद्यपि उस समय का चैत्यवास सर्वत्र विस्तृत होगया था और दुष्कालादि की भयंकर मजबूरता ने उनके आचार विचारों में स्वाभाविक शिथिलता लादी थी तथापि सूरिजी के प्रयत्न से इस विषय में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। वर्षों से शिथिलता के कीचड़ में फंसे हुए श्रमणों का एक दम उठ जाना था उसमें आचार विचार की दृढ़ता रूप निर्मलता लाना असम्भव नहीं तो दुष्कर तो अवश्य ही था पर सूरिजी का प्रयत्न सर्वथा निष्फल नहीं हुआ। उन्हें बहुत अंशों में सफलता हस्तगत हुई और तदनुसार मुनिगण भी अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर हुए।

यह ध्यान रखने की बात है कि-उस समय के सब ही चैत्यवासी शिथिल नहीं थे पर उनमें बहुत सुविहित, क्रियापात्र, उग्रविहारी, तपस्वी एवं ज्ञानी भी थे। जो शिथिलाचारी थे उनमें भी ऐसे कई असा-धारण गुण विद्यमान थे कि उन गुणों से समाज पर उनकी अच्छी छाप एवं धाक थी। समाज उनके हृदय में जैनधर्म के प्रति गौरव व मान था। वे शासन की लघुता को अपनी आंखों से नहीं देख सकते थे। यही कारण था कि शिथिलता के शिकारी होने पर भी जैनधर्म व गौरव को [illegible] करने के लिये उन चैत्य-वासियों ने जो २ कार्य किये वे मात्र क्रिया उद्धारकों से एवं आचार वि[illegible] शिथिलता का दूर करने वाले

में

साधुओं से नहीं किया जा सकते हैं। काम पड़ने पर वे धर्म के उत्कर्ष के लिये अपने प्राणों का बलिदान करने में भी हिचकिचाहट नहीं करते थे। यद्यपि वे राजशाही शान शौकत मे रहने होंगे तथापि माया कपट रूप मिथ्यात्व के मूल कारणों का तो स्वप्न में भी स्पर्श नहीं करते। जो कुछ वे करते लोक प्रत्यक्ष ही करते लुक छिप कर मुनिगुण विघातक कृत्यकर समाज के सामने पवित्रता का दम भरना उन्हें पसन्द नहीं था। यदि वे चाहते तो आज के साधु समाज के समान बाह्य पवित्रता को रख कर समाज को अपनी पवित्रता का धोखा देते ही रहते परन्तु ऐसा करना उन्हें मिथ्यात्व का पोषण करना ही प्रतीत हुआ। दूसरे वे शिथिल थे वो जैनधर्म के सख्त नियमों की अपेक्षा से ही न कि दूसरे मतावलम्बी साधु सन्यासियों की अपेक्षा से। इन साधु नाम धारियों की अपेक्षा तो उनका त्याग सहस्रगुना उत्कृष्ट एवं उत्तम था। उनके पूर्वाचार्यों का तो जैनसमाज पर अपार उपकार था अतः उनकी परम्परानुसार व उनके गुणों की उत्कर्षता के कारण चैत्यवासियों का उस समय तक अच्छा मान था।

उस समय की यह तो एक अलौकिक विशेषता ही थी कि सुविहित एवं शिथिलाचारी दोनों श्रमणों के विद्यमान होने पर भी परस्पर एक दूसरे के साथ द्वेष रखने, निंदाकरने, खण्डनमण्डन करने, उत्सूत्र प्ररूपित कर नया पन्थ निकालने या एक दूसरे को हीन बताकर समाज में फूट एवं कलह के बीज बोने के स्वप्न भी किसी को नहीं आते थे। उग्रविहारी श्रमण—शिथिलाचारियों को मार्ग स्खलित बन्धु ही समझते थे। यही कारण था कि, यदा कदा समयानुकूल सदा ही वे उन्हें आचार विचार की दृढ़ता के विषय में प्रेरित करते रहते पर समाज के एक आवश्यक अङ्ग को काटने का साहस नहीं करते; जैसा कि आज थोड़े बहुत मतभेदों में भी प्रत्येक्ष देखने में आता है। वे लोग स्थान २ पर श्रमण सभाएं कर उनको उनके कर्तव्य की ओर अभिमुख करते जिसको चैत्यवासी (शिथिलाचारी) भी हितकारक ही समझते। इन सभी कारणों से ही शासन की अपूर्व सगठित शक्ति विधर्मी वादियों से छिन्न भिन्न नहीं की जा सकी।

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी म. के शासन के समय जैन की सख्या करोड़ों की थी। छोटे, बड़े, सब ग्राम नगरों में सर्वत्र चैत्यवासियों का ही साम्राज्य था। क्या सुविहित और क्या शिथिलाचारी? प्रायः सब चैत्य में ही ठहरते थे। यदि किसी चैत्य में अनुकूल सुविधा न होने के कारण पौषधशाला या उपाश्रय में भी ठहरते तो भी किसी प्रकार का आपस में विरोध नहीं था। इस प्रकार के ऐक्य के ही कारण वे समाज का रक्षण, पोषण एव वर्धन कर सके थे। वादी, प्रतिवादियों को पराजित कर विजयी बने थे। राजा महाराजाओं पर अपना प्रभाव जमा कर जैनधर्म की सुयश. पताका को सर्वत्र फहरा सके थे। यदि ऐसा नहीं करके वर्तमान साधु समाज के समान अपने गौरव एवं महत्त्व के लिये आपस में ही लड़ मरते तो समाज की आज न मालूम क्या अवस्था होती?

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म. बालब्रह्मचारी थे। आपकी कठोर तपश्चर्या एवं अखण्ड ब्रह्मचर्य के प्रभाव से जया, विजया, सच्चायिका, सिद्धायिका, अम्बिका, पद्मावती, लक्ष्मी, और सरस्वती देविया प्रभावित हो आपश्री की उपासना एवं सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझती थी। इस तरह आपका प्रभाव चतुर्दिक में चन्द्र चन्द्रिका वत् विस्तृत होगया था। साधारण जनता ही क्या? बड़े २ राजा महाराजा भी आपके चरणों की सेवा लाभ ले अपने को भाग्यशाली समझते थे।

आपका विहार क्षेत्र बहुत विशाल था। मरुधर, मेदपाट, आवन्तिका, बुंदेलखण्ड, मत्स्य, शूरसेन,

आचार्य श्री के कई गुने अधिक गुण प्रकाशित कर दिये। वास्तव में कक्कसूरीश्वरजी जैनसमाज के आधार स्तम्भ है। शासन के चमकते हुए सूर्य हैं। जिन शासन हितैषी एवं शासनोद्धारक हैं। इस प्रकार आचार्य श्री की आचार्य बप्पभट्टसूरि ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की पश्चात् महावीर जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई। गोपाचल के घर घर में आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म. की खूब ही प्रशंसा होने लगी सब के हृदय में अनुपम भक्ति की अद्भुत भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ।

श्रमणसंघ में परस्पर इतनी वत्सल्यता, विनय, भक्ति प्रेम एवं धर्म स्नेह था कि पार्श्वनाथ परम्परा एव वीरपरम्परा नामक दो विभिन्न गच्छों के मुनि होने पर भी किसी के हृदय में पारस्परिक विभिन्नता जन्य भावों का जन्म ही नहीं हुआ एक दूसरे का आपसी अनुरागान्वित व्यवहार देखकर किसी के हृदय में यह कल्पना भी नहीं होती थी कि अत्रस्थ श्रमण वर्ग में पृथक २ दो गच्छों के साधु वर्तमान है। स्थानीय श्रमण वर्ग ने तो आगन्तुक निर्ग्रन्थों की आहार पानी आदि से खूब ही वैयावच्च की। वास्तव में इसी प्रेम ने ही जैनसमाज को उस समय उन्नति के उन्नत शिखर पर आरूढ़ कर रक्खा था।

दोपहर को आचार्यश्रीकक्कसूरि, एवं आचार्य बप्पभट्टसूरि ने अपने विद्वान शिष्यों के साथ एकान्त में बैठ कर वर्तमान शासनोन्नति के विषय में बहुत ही वार्तालाप किया। दोनों आचार्यों की प्रत्येक बात में शासन के हित एव उद्धार की ध्वनि झलक रही थी। धर्मोत्कर्ष के उपाय चिन्तवन किये जा रहे थे। साधु समजा में आई हुई शिथिलता के निवारण के लिये नियम निर्माण किये जा रहे थे। उस समय के आचार्यों को शासन की उन्नति के सिवाय वर्तमान कालीन साधुओं के समान आपसी कलह, कदाग्रह एव वितण्डावाद में समय गुजारना आता ही नहीं था। उनके रोम २ में शासन के प्रति गौरव, मान एव प्रेम था अत. धर्म की लघुता, वे किसी भी प्रकार से सहन कर नहीं सकते थे।

आचार्यश्रीकक्कसूरि ने चैत्यवासियों की शिथिलता के विषय में सवाल किया उस पर श्रीबप्पभट्ट सूरि ने फरमाया—सूरिजी! आप और हम सब चैत्यवासी ही हैं। अपने पूर्वज भी सदियों से चैत्यवास के रूप में चले आरहे हैं। चैत्यवास कोई बुरी या अनादरणीय वस्तु नहीं है। भगवान् महावीर के निर्वाण को करीब तेरह सौ वर्ष होगये हैं पर आज पर्यन्त किसी ने भी इस विषय का कुछ भी सवाल नहीं उठाया। जिसकी इच्छा चैत्य में ठहरने की हो वह चैत्य में ठहरे और जिसकी इच्छा पौषधशाला या उपाश्रय में रहने की हो वह पौषधशाला या उपाश्रय का आश्रय ले। इस विषय में विशेष तनातनी—खेंचातानी करना एकदम अयुक्त है कारण, वर्तमान में हम क्रान्ति मचा कर किन्हीं प्रयत्नों से मुनियों का चैत्यवास छुड़वा भी दें तो अपने खातिर गृहस्थों को नये २ मकान बधवाने पड़ेंगे। फलस्वरूप समाज के लाखोंरुपये यों ही पानी की तरह बरबाद होजावेंगे। दूसरी बात आरम, समारम्भ के भय व करना, करवाना और अनुमोदना के पाप से बचने के लिये तो उन्होंने चैत्यवास का आश्रय लिया था पर आज उसी को छुड़वाने में हमें उन्ही पापों का आश्रय लना पड़ेगा। इतनी चारित्र वृत्ति में बाधा पहुँचाने के पश्चात भी अगर भविष्य को लक्ष्य में रख कर हमने चैत्यवास को छुड़वाने का अनुचित साहस किया तो निश्चित ही आपसी खेंचातानी में दो पक्ष होजावेंगे। एक चैत्यवास का जोरदार समर्थक और एक चैत्यवास की जड़ामूल से जड़ काटनेवाला विरोधी दल। इस प्रकार के आपसी विरोधी मण्डलों के स्थापन होने से शासन की सगठित शक्ति का ह्रास हो जायगा। स्वधर्मी भाइयों का पारस्परिक प्रेम सूत्र छिन्नभिन्न

कुरु, पाञ्चाल, कुनाल, सिन्ध कच्छ, सौराष्ट्र लाट, कोकण, और कभी २ इधर दक्षिण ओर उधर पूर्व तक भी आपने विहार किया ऐसा आपके जीवन चरित्र से ज्ञात होता है। आपके आज्ञानुवर्ती श्रमणों की संख्या भी अधिक होने से प्रत्येक प्रान्त में धर्म प्रचार करने के लिये योग्य २ अधिकारियों के साथ योग्य २ साधुओं को भेज दिये गये जिससे मुनियों के अभाव से वे क्षेत्र धर्म से वंचित न रह सकें। यह तो हम पहिले ही लिख आये हैं कि उपकेश वंशीय महाजनसंघने सुदूर प्रान्तों तक अपना निवास बना लिया था अतः साधुओं को भी धर्म की दृढ़ता के लिये व नये जैन बनाने के लिये उन प्रान्तों में विचरना अत्यन्त ही आवश्यक था किन्तु महाजनों को व्यापार निमित्त परदेश में रहना। ऐसा करने से ही धर्म का अस्तित्व, एवं श्रद्धा का मार्ग स्थायी रह सकता था अतः आचार्यश्री ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये ऐसे नियमों का निर्माण किया कि जिसके आधार पर जैनधर्म का सुगमता पूर्वक प्रचार हो सके। विविध २ प्रान्तों में मुनियों को भेजकर आवश्यकतानुकूल उनमें परिवर्तन करते रहना व समयानुकूल सर्वत्र विहार कर धर्म प्रचारक मुनियों को प्रोत्साहित कर उनके प्रचार में उत्साह वर्धन करते रहना यह आचार्यश्री ने अपना कर्तव्य बना लिया। इससे कई लाभ होने लगे—एक तो उस प्रान्त के निवासियों पर धर्म के स्थायी संस्कार जमने लगे, दूसरा मुनियों में आचार विचार विषयक पवित्रता आने लगी। तीसरा आचार्यश्री के परिभ्रमण से उनके प्रचार कार्य में नवीन उत्साह व आचार्यश्री के सहयोग का अपूर्व लाभ प्राप्त होने लगा इस तरह की नवीन २ स्कीमों से आचार्यश्री ने शिथिलता व्याधि विनाशक नूतन २ उपचार चिकित्सा प्रारम्भ की।

आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म० एक समय विहार करते हुए कान्यकुब्ज प्रान्त की ओर पधारे। उस समय गोपगिरि में आचार्यबप्पभट्टसूरिजी विराजमान थे। आपश्री ने जब सुना कि आचार्यश्रीकक्कसूरि जी म० पधार रहे हैं तो वहां के राजा आम एवं सकल श्रीसंघ को उपदेश दिया कि आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० महान् प्रतिभाशाली आचार्य हैं। अपने भाग्योदय से ही आपका इधर पधारना हो रहा है अतएव कर्तव्य हो जाता है कि आचार्यश्री का बड़े ही समारोह एवं धामधूम पूर्वक स्वागत करे। आचार्यश्रीबप्पभट्टसूरि के उक्त कथन को श्रवण कर क्या राजा और क्या प्रजा, क्या जैन और क्या जैनेतर—सबके सब स्वागत के लिये धर्मोत्साह पूर्वक तत्पर हो गये। उन्होंने मिल कर आचार्यश्री का शानदार जुलूस पूर्वक नगर प्रवेश महोत्सव किया। आचार्यश्री बप्पभट्टसूरि स्वयं अपने शिष्य मण्डली सहित सूरिजी के सम्मुख आये। और कक्कसूरीश्वरजी ने भी आपको समुचित सम्मान एवं बहुमान से सम्मानित किया। दोनों आचार्यों ने साथ ही में नगर में प्रवेश किया और दोनों ही आचार्य स्थानीय मन्दिरों के दर्शन कर एक ही पट्ट पर विराजमान हुए। उन दोनों तेजस्वी आचार्यों के मुख मण्डल के प्रतिभापुञ्ज को देख यही भान होता था कि नभ मण्डल से सूर्य और चंद्र उतर कर मर्त्युलोक में आगये हैं। धर्म देशना के लिये भी आपस में विनय प्रार्थना करने के पश्चात् आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने महत्वपूर्ण धर्म देशना देनी प्रारम्भ की। समय के अधिक होजाने के कारण विषय को विस्तृत नहीं करते हुए आचार्यश्री ने संक्षिप्त किन्तु हृदय ग्राही उपदेश दिया जिसका उपस्थित जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आचार्यश्री बप्पभट्टसूरिजी म० जैन संसार के एक असाधारण विद्वान थे पर आचार्यश्रीकक्कसूरि प्रदत्त व्याख्यान को श्रवण कर कुछ समय के लिये आप भी विस्मय में पड़ गये। वे विचारने लगे कि—हमने जिस सर्वज्ञ तो आचार्यश्री कक्कसूरिजी की महिमा केवल कानों से ही सुनता था पर आपके प्रत्यक्ष मिलाप ने तो कानों से सुनी हुई [illegible]

आचार्य श्री के कई गुने अधिक गुण प्रकाशित कर दिये। वास्तव में कक्कसूरीश्वरजी जैनसमाज के आधार स्तम्भ है। शासन के चमकते हुए सूर्य हैं। जिन शासन हितैपी एव शासनोद्धारक हैं। इस प्रकार आचार्य श्री की आचार्य बप्पभट्टसूरि ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशसा की पश्चात् महावीर जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई। गोपाचल के घर घर में आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म. की खूब ही प्रशंसा होने लगी सब के हृदय में अनुपम भक्ति की अद्भुत भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ।

श्रमणसघ में परस्पर इतनी वत्सल्यता, विनय, भक्ति प्रेम एवं धर्म स्नेह था कि पार्श्वनाथ परम्परा एवं वीरपरम्परा नामक दो विभिन्न गच्छों के मुनि होने पर भी किसी के हृदय में पारस्परिक विभिन्नता जन्य भावों का जन्म ही नहीं हुआ एक दूसरे का आपसी अनुरागान्वित व्यवहार देखकर किसी के हृदय में यह कल्पना भी नहीं होती थी कि अत्रस्थ श्रमण वर्ग में पृथक २ दो गच्छों के साधु वर्तमान है। स्थानीय श्रमण वर्ग ने तो आगन्तुक निर्ग्रन्थों की आहार पानी आदि से खूब ही वैयावच्च की। वास्तव में इसी प्रेम ने ही जैनसमाज को उस समय उन्नति के उन्नत शिखर पर आरूढ़ कर रक्खा था।

दोपहर को आचार्यश्रीकक्कसूरि, एवं आचार्य बप्पभट्टसूरि ने अपने विद्वान शिष्यों के साथ एकान्त में बैठ कर वर्तमान शासनोन्नति के विषय में बहुत ही वार्तालाप किया। दोनों आचार्यों की प्रत्येक बात में शासन के हित एव उद्धार की ध्वनि झलक रही थी। धर्मोत्कर्ष के उपाय चिन्तवन किये जा रहे थे। साधु समजा में आई हुई शिथिलता के निवारण के लिये नियम निर्माण किये जा रहे थे। उस समय के आचार्यों को शासन की उन्नति के सिवाय वर्तमान कालीन साधुओं के समान आपसी कलह, कदाग्रह एवं वितण्डावाद में समय गुजारना आता ही नहीं था। उनके रोम २ में शासन के प्रति गौरव, मान एव प्रेम था अत. धर्म की लघुता, वे किसी भी प्रकार से सहन कर नहीं सकते थे।

आचार्यश्रीकक्कसूरि ने चैत्यवासियों की शिथिलता के विषय में सवाल किया उस पर श्रीबप्पभट्ट सूरि ने फरमाया—सूरिजी! आप और हम सब चैत्यवासी ही हैं। अपने पूर्वज भी सदियों से चैत्यवास के रूप में चले आरहे हैं। चैत्यवास कोई बुरी या अनादरणीय वस्तु नहीं है। भगवान् महावीर के निर्वाण को करीब तेरह सौ वर्ष होगये हैं पर आज पर्यन्त किसी ने भी इस विषय का कुछ भी सवाल नहीं उठाया। जिसकी इच्छा चैत्य में ठहरने की हो वह चैत्य में ठहरे और जिसकी इच्छा पौषधशाला या उपाश्रय में रहने की हो वह पौषधशाला या उपाश्रय का आश्रय ले। इस विषय में विशेष तनातनी—खेंचातानी करना एकदम अयुक्त है कारण, वर्तमान में हम क्रान्ति मचा कर किन्ही प्रयत्नों से मुनियों का चैत्यवास छुड़वा भी दें तो अपने खातिर गृहस्थों को नये २ मकान बधवाने पड़ेंगे। फलस्वरूप समाज के लाखोंरुपये यों ही पानी की तरह बरबाद होजावेंगे। दूसरी बात आरभ, समारम्भ के भय व करना, करवाना और अनुमोदना के पाप से बचने के लिये तो उन्होंने चैत्यवास का आश्रय लिया था पर आज उसी को छुड़वाने में हमें उन्ही पापों का आश्रय लना पड़ेगा। इतनी चारित्र वृत्ति में बाधा पहुँचाने के पश्चात भी अगर भविष्य को लक्ष्य में रख कर हमने चैत्यवास को छुड़वाने का अनुचित साहस किया तो निश्चित ही आपसी खेंचातानी में दो पक्ष होजावेंगे। एक चैत्यवास का जोरदार समर्थक और एक चैत्यवास की जड़ामूल से जड़ काटनेवाला विरोधी दल। इस प्रकार के आपसी विरोधी मण्डलों के स्थापन होने से शासन की सगठित शक्ति का ह्रास हो जायगा। स्वधर्मी भाइयों का पारस्परिक प्रेम सूत्र छिन्नभिन्न

कुरु, पाञ्चाल, कुनाल सिन्ध कच्छ, सौराष्ट्र लाट, कोंकण, और कभी २ इधर दक्षिण ओर उधर पूर्व तक भी आपने विहार किया ऐसा आपके जीवन चरित्र से ज्ञात पड़ता है। आपके आज्ञानुयायी श्रमणों की संख्या भी अधिक होने स प्रत्येक प्रान्त में धर्म प्रचार करने के लिये योग्य २ गीतार्थों के साथ योग्य २ साधुओं को भेज दिये गये जिससे मुनियों के अभाव में वे क्षेत्र धर्म से वंचित न रह सकें। हम तो इस पहिले ही लिख आये हैं कि व्यापार निमित्त महाजनसंघने सुदूर प्रान्तों तक अपना निवास बना लिया था अतः साधुओं को भी धर्म की दृढ़ता के लिये व नये जैन बनाने के लिये उन प्रान्तों में विचरना आवश्यक हो आवश्यक था जितना महाजनों को व्यापार निमित्त परदेश में रहना। ऐसा करने से ही धर्म का अस्तित्व, एवं श्रद्धा का मार्ग स्थायी रह सकता था अतः आचार्यश्री ने अपनी बुद्धिमता से उस समय के लिए ऐसे नियमों का निर्माण किया कि जिनके आधार पर जैनधर्म का सुगमता पूर्वक प्रचार हो सके। विविध २ प्रान्तों में मुनियों को भेजकर आवश्यकतानुकूल उनमें परिवर्तन करते रहना व समयानुकूल सर्वत्र विहार कर धर्म प्रचारक मुनियों को प्रोत्साहित कर उनके प्रचार में उत्साह वर्धन करते रहना यह आचार्यश्री ने अपना कर्तव्य बना लिया। इससे कई लाभ होने लगे—एक तो उस प्रान्त के निवासियों पर धर्मके स्थायी संस्कार जमाने लगे, दूसरा मुनियों में आचार विचार विषयक पवित्रता आने लगी। तीसरा आचार्यश्री के परिभ्रमण से उनके प्रचार कार्य में नवीन उत्साह व आचार्यश्री के सहयोग का अपूर्व लाभ प्राप्त होने लगा इस तरह की नवीन २ स्कीमों से आचार्यश्री ने शिथिलता व्याधि विनाशक नूतन २ उपचार चिकित्सा प्रारम्भ की।

आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म. एक समय विहार करते हुए कान्यकुब्ज प्रान्त की ओर पधारे। उस समय गोपगिरि में आचार्यबप्पभट्टसूरिजी विराजमान थे। आपश्री ने जब सुना कि आचार्यश्रीकक्कसूरि जी म पधार रहे हैं तो वहां के राजा आम एवं सकल श्रीसंघ को उपदेश दिया कि आचार्यश्री कक्कसूरि म महान् प्रतिभाशाली आचार्य हैं। अपने सौभाग्य से ही आपका इधर पधारना हो गया है अपना कर्तव्य हो जाता है कि आचार्यश्री का बड़े ही समारोह एवं धामधूम पूर्वक स्वागत करे। आचार्यश्रीबप्पभट्टसूरि के उक्त कथन को श्रवण कर क्या राजा और क्या प्रजा, क्या जैन और क्या जैनेतर—सबके सब स्वागत के लिये हर्षोत्साह पूर्वक तत्पर हो गये। सबने मिल कर आचार्यश्री का शानदार जुलूस पूर्वक नगर प्रवेश महोत्सव किया। आचार्यश्री बप्पभट्टसूरि स्वयं अपने शिष्य मण्डली सहित सूरिजी के सम्मुख आये। और कक्कसूरीश्वरजी ने भी आपको समुचित सम्मान एवं बहुमान से सम्मानित किया। दोनों आचार्यों ने साथ ही में नगर में प्रवेश किया और दोनों ही आचार्य स्थानीय मन्दिरों के दर्शन कर एक ही पट्ट पर विराजमान हुए। उन दोनों तेजस्वी आचार्यों के मुख मण्डल के प्रतिभापुञ्ज को देख यही ज्ञात होता था कि नभ मण्डल से सूर्य और चंद्र उतर कर मृत्युलोक में आगये हैं। धर्म देशना के लिये भी आपस में विनय प्रार्थना करने के पश्चात् आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने मङ्गलमय धर्म देशना देनी प्रारम्भ की। समय के अधिक होजाने के कारण विषय को विस्तृत नहीं करते हुए आचार्यश्री ने संक्षिप्त किन्तु हृदय ग्राही व्याख्यान दिया जिसका उपस्थित जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आचार्यश्री बप्पभट्टसूरिजी म० जैन संसार के एक अप्रतिम विद्वान थे पर आचार्यश्रीकक्कसूरि प्रदत्त व्याख्यान को श्रवण कर कुछ समय के लिये आप भी विस्मय में पड़ गये। वे विचारने लगे कि—इतने दिवस पर्यन्त तो आचार्यश्री कक्कसूरिजी की महिमा केवल कानों से ही सुनता था पर आपके प्रत्यक्ष मिलन से तो कानों से सुनी हुई प्रशंसापेक्षा

से नहीं हो सकता है। इस से तो शासन में द्वेष एव कलह की अपूर्व अग्नि ही प्रज्वलित होती है जिसमें धर्माचित सर्वगुण नष्ट हो जाते हैं। अत: इस विषय का सफल उपाय जो अभी आप उपयोग में ला रहे हैं—सर्वथा उपयुक्त है। इस प्रकार शासन हित की बातें होने के पश्चात् वादी कुञ्जर केशरी आचार्य बप्प भट्टसूरि ने कहा—सूरिजी महाराज! जैन समाज पर आपके पूर्वजों का व आपका महान उपकार है। आज प्रत्येक प्रान्त में जो महाजनसघ दृष्टि गोचर हो रहा है वह सब उन्ही पूज्याचार्य स्वयप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि जैसे धुरंधर, युगप्रवर्तक, समयज्ञ आचार्यों की कृपा का फल है। उनके पश्चात् उपकेशगच्छ के जितने आचार्य हुए उन सबों ने भी प्रत्येक प्रान्त में परिभ्रमन कर महाजनसघ का रक्षण, पोषण एवं वर्धन किया है। इस प्रदेश में भी आचार्यश्रीदेवगुप्तसूरि का ही महान् उपकार हुआ है। यहां के राजा चित्रांगद को उन्होंने जैन बनाकर जैनधर्म का इस प्रान्त में खूब ही प्रचार करवाया था। सूरीश्वरजी के उपदेश से ही राजा चित्रागद ने एक विशाल जैनमन्दिर बनवा कर सुवर्णमय प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी। प्रतिमाजी के नेत्रों के स्थान पर बहुमूल्य दो ऐसे मणि लगवाये गये कि वे अपनी चमक से रात को भी दिन बना रहे हैं वह मन्दिर आज भी आचार्यश्री के गुणों की रह २ कर स्मृति करवा रहा है। सूरीश्वरजी के उपदेश से प्रभावित हो राजा ने ही जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब प्रजा उसके मार्ग का अनुसरण करे इसमें आश्चर्य ही क्या।

इस के प्रत्युत्तर में आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने कहा—आपका कहना सर्वथा सत्य है। पूर्वाचार्यों के उपकार ऋण से उऋण होने जितनी शक्ति तो हम में है ही नहीं। उनके कार्यों की स्मृति आज भी हमारे हृदय में नवीन उत्साह एव नूतन क्रान्ति को पैदा कर देती है। उन्होंने शासनोत्कर्ष के लिये जो कुछ कार्य किया वह इस जिह्वा से सर्वथा अवर्णनीय ही है। आप जैसे प्रभाविक तो आज भी पूर्वाचार्यों के मार्ग का अनुसरण कर जैन शासन की प्रभावना कर रहे हैं। क्या आपने राजा आम को प्रतिबोध देकर जैनधर्म के विशाल प्रचार में सहयोग नहीं दिया ? आचार्य प्रवर! आपके नाम को श्रवण करके तो आज भी वादी लोग धूजते हैं। यदि आप जैसे वादी कुञ्जर केशरी जिन शासन स्तम्भ का आविर्भाव नहीं हुआ होता तो विधर्मी लोग जैन शासन की नाव को कमजोर बना देते। आपश्री ने इन्हीं सब वादियों के सम्मुख जिन शासन की उन्नत सुयश पताका को उन्नत रक्खी। इस प्रकार आचार्य देव परस्पर गुणों का अनुमोदन करते हुए शासन के हित की विचारणा किया करते थे जैसे आचार्यश्री कक्कसूरिजी म प्रभाविक थे वैसा बप्पभट्टसूरिजी भी प्रतिभाशाली थे। दोनों आचार्यों का एक स्थान पर मिलाप होने से वहा के राजा एव जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने गोपगिरि में एक मास की स्थिरता की इस अवधि में आचार्यश्री बप्पभट्टसूरि के सत्सग समागम से उनका काल बहुत ही आनद पूर्वक व्यतीत हुआ आचार्यश्रीकक्कसूरिजी को यह निश्चय होगया कि वर्तमान जैनाचार्यों में आचार्य बप्पभट्टसूरि वादियों का सामना करने में अनन्य ही हैं। यदि मैं अन्य प्रान्तों में विचार करू तो भी इधर के प्रान्तों के लिये कोई भी विचारणीय प्रश्न नहीं कारण आचार्यबप्पभट्टसूरि स्वय विचक्षण, उत्साही एव समयज्ञ हैं। इस प्रकार गोपगिरि आने से आपके हृदय में परम सतोष एवं आनंद हुआ।

इधर आचार्यबप्पभट्टसूरि को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। वादी कुञ्जर केशरी सूरीश्वरजी के हृदय

होजायगा। जिन विचार धाराओं को लक्ष्य में रख कर हम चैत्यवास का विच्छेद करना चाहते हैं वे भावनायें तो एक ओर धरी रह जायेंगी किन्तु संघ में कलह एवं द्वेष के अंकुर, अंकुरित होने लग जावेंगे। भविष्य के परिणाम को तो ज्ञानी महाराज ही जानते हैं पर अभी ही इस का ऐसा कटुफल हमको सहन करना पड़ेगा कि हमें हमारे किये कृत्य का घोर पश्चाताप करना होगा। सूरीश्वरजी! आप स्वयं विचारज्ञ, समयज्ञ, सर्वज्ञ, एवं मनीषी हैं। आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि साधुओं के चैत्य में रहने से ही यवनों, म्लेच्छों एवं धर्मान्ध विधर्मियों के भीषण आक्रमणों से चैत्य की भलीभांति रक्षा हो सकती है। यदि श्रमणवर्ग चैत्य में रहना छोड़दें तो गृहस्थों से चैत्य की रक्षा होना असम्भव है कारण गृहस्थों को अपने घर के गोरखधन्धों से ही फुरसत नहीं मिलती है तो वे चैत्य की रक्षा किस तरह कर सकते हैं अतः मेरे दृष्टि कोण से तो चैत्यवास में भी जैन समाज का हित ही अन्तर्हित है।

आचार्य कक्कसूरी ने श्रीपद्मप्रभसूरि की आन्तरिक, हृदयग्राही चैत्यवास विषयकभावनाओं को श्रवण करने के पश्चात् आचार्यश्रीपद्मसूरिजी से कहा—सूरिजी! मेरे कहने का अभिप्राय चैत्यवास को तोड़ने का सूचक नहीं है पर चैत्यवास में व्याप्त शिथिलता को दूर करने के उपायों के विषय में स्पष्टीकरण करने का है। श्रमण्य में सब ही शिथिल एवं क्रियाहीन नहीं हैं; आप जैसे त्यागी, विरागी शासनोद्धारकों की भी समाज में कमी नहीं है पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार नहीं करने वाले चैत्यवासी मुनियों की भी अल्पता नहीं है।

पद्मप्रभसूरि—सूरिजी! आपका कहना सर्वांश में सत्य है; वास्तव में जैसे निर्मल वस्त्र एवं स्वच्छ वस्त्राभूषणों से ही शरीर की शोभा है वैसे ही आचार विचार की निर्मलता एवं क्रिया की पवित्रता ही साधु जीवन का शृंगार है। पर इसके साथ ही साथ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि साहुकार की बड़ी दुकान में सब तरह का माल रहता ही है। दुकान दार किसी अल्प मूल्य वाले माल को या कम समय के लिये निरुपयोगी मालूम होने योग्य वस्तु को यों ही नहीं फेंक देता है वह समझता है आज हलके से हलकी ज्ञात होने वाली वस्तु भी कालांतर में कीमती हो सकती है अतः सब वस्तुओं को पूर्ण सम्मान के साथ अपने पास रखना ही श्रेयस्कर है। इन्हीं विचारों से वह अपनी दुकान को सदा ही भरीपूरी रखता है। इसी तरह सूरीश्वरजी! चारित्र पालन करना या आचार, व्यवहार विषयक नियमों में दृढ़ता रखना भी जीवों के कर्माधीन है। जिन जीवों के जितना चारित्र मोहनीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है उतना ही वह निर्मल चारित्र पाल सकता है। चारित्र के पर्याय अनंत और संयम के स्थान असंख्य कहे हैं। एक छेदोपस्थापनीय चारित्र और दूसरे छेदोपस्थापनीय व चारित्र के पर्याय में षट्गुणी हानी वृद्धि होती है। शास्त्रकारों ने पांच प्रकार के पासत्थे बतलाये हैं पर उनमें भी चारित्र का सर्वथा अभाव नहीं कहा है। हां, जहां शिथिलाचार एवं क्रिया हीनता दृष्टि गोचर हो वहां हितकारी मधु वचनों व प्रेम पूर्ण व्यवहार का उपयोग कर उन्हें क्रियोद्धारी व कर्तव्यनिष्ठ मुनि बनाना अपना परम कर्तव्य है पर उनको समाज बहिष्कृत कर समाज के एक मुख्य अङ्ग को काटना सर्वथा अनुचित है। सूरीश्वरजी! मैंने पहिले पहिल आपकी की श्रमण सभा करवा करवा कर शिथिलाचार को मिटाने की प्रवृत्ति को सुना, वह मुझे बहुत ही हितकर एवं श्रेयस्कर ज्ञात हुई। आपकी इस कार्य शैली की मैं हृदय से सराहना करता हूँ। मैं भी यथाशक्य आपके इस शासनोत्कर्ष के कार्य में सहयोग देकर शासन सेवा का लाभ लेने के लिए कटिबद्ध हूँ। वास्तव में जितना उपकार इस प्रकार के प्रेम स्नेह, वात्सल्य, एवं नम्रता से हो सकता है उतना द्वेष निंदा एवं अपने आचार की उत्कृष्टता सिद्ध करके दूसरे को लघुता बताने

से नहीं हो सकता है। इस से तो शासन में द्वेष एवं कलह की अपूर्व अग्नि ही प्रज्वलित होती है जिसमें धर्मोचित सर्वगुण नष्ट हो जाते हैं। अतः इस विषय का सफल उपाय जो अभी आप उपयोग में ला रहे हैं—सर्वथा उपयुक्त है। इस प्रकार शासन हित की बातें होने के पश्चात् वादी कुञ्जर केशरी आचार्य बप्प भट्टसूरि ने कहा—सूरिजी महाराज ! जैन समाज पर आपके पूर्वजों का व आपका महान उपकार है। आज प्रत्येक प्रान्त में जो महाजनसंघ दृष्टि गोचर हो रहा है वह सब उन्हीं पूज्याचार्य स्वयप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि जैसे धुरंधर, युगप्रवर्तक, समयज्ञ आचार्यों की कृपा का फल है। उनके पश्चात् उपकेशगच्छ के जितने आचार्य हुए उन सबों ने भी प्रत्येक प्रान्त में परिभ्रमन कर महाजनसंघ का रक्षण, पोषण एवं वर्धन किया है। इस प्रदेश में भी आचार्यश्रीदेवगुप्तसूरि का ही महान् उपकार हुआ है। यहा के राजा चित्रांगद को उन्होंने जैन बनाकर जैनधर्म का इस प्रान्त में खूब ही प्रचार करवाया था। सूरीश्वरजी के उपदेश से ही राजा चित्रागद ने एक विशाल जैनमन्दिर बनवा कर सुवर्णमय प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी। प्रतिमाजी के नेत्रों के स्थान पर बहुमूल्य दो ऐसे मणि लगवाये गये कि वे अपनी चमक से रात को भी दिन बना रहे हैं वह मन्दिर आज भी आचार्यश्री के गुणों की रह २ कर स्मृति करवा रहा है। सूरीश्वरजी के उपदेश से प्रभावित हो राजा ने ही जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब प्रजा उसके मार्ग का अनुसरण करे इसमें आश्चर्य ही क्या।

इस के प्रत्युत्तर में आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने कहा—आपका कहना सर्वथा सत्य है। पूर्वाचार्यों के उपकार ऋण से उऋण होने जितनी शक्ति तो हम में है ही नहीं। उनके कार्यों की स्मृति आज भी हमारे हृदय में नवीन उत्साह एव नूतन क्रान्ति को पैदा कर देती है। उन्होंने शासनोत्कर्ष के लिये जो कुछ कार्य किया वह इस जिह्वा से सर्वथा अवर्णनीय ही है। आप जैसे प्रभाविक तो आज भी पूर्वाचार्यों के मार्ग का अनुसरण कर जैन शासन की प्रभावना कर रहे हैं। क्या आपने राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन-धर्म के विशाल प्रचार में सहयोग नहीं दिया ? आचार्य प्रवर ! आपके नाम को श्रवण करके तो आज भी वादी लोग धूजते हैं। यदि आप जैसे वादी कुञ्जर केशरी जिन शासन स्तम्भ का आविर्भाव नहीं हुआ होता तो विधर्मी लोग जैन शासन की नाव को कमजोर बना देते। आपश्री ने इन्हीं सब वादियों के सम्मुख जिन शासन की उन्नत सुयश पताका को उन्नत रक्खी। इस प्रकार आचार्य देव परस्पर गुणों का अनुमोदन करते हुए शासन के हित की विचारणा किया करते थे जैसे आचार्यश्री कक्कसूरिजी म. प्रभाविक थे वैसा बप्पभट्टसूरिजी भी प्रतिभाशाली थे। दोनों आचार्यों का एक स्थान पर मिलाप होने से वहा के राजा एव जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने गोपगिरि में एक मास की स्थिरता की इस अवधि में आचार्यश्री बप्पभट्टसूरि के सत्सग समागम से उनका काल बहुत ही आनद पूर्वक व्यतीत हुआ आचार्यश्रीकक्क-सूरिजी को यह निश्चय होगया कि वर्तमान जैनाचार्यों में आचार्य बप्पभट्टसूरि वादियों का सामना करने में अनन्य ही हैं। यदि मैं अन्य प्रान्तों में विचार करू तो भी इधर के प्रान्तों के लिये कोई भी विचारणीय प्रश्न नहीं कारण आचार्यबप्पभट्टसूरि स्वयं विचक्षण, उत्साही एव समयज्ञ हैं। इस प्रकार गोपगिरि आने से आपके हृदय में परम सतोष एव आनंद हुआ।

इधर आचार्यबप्पभट्टसूरि को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। वादी कुञ्जर केशरी सूरीश्वरजी के हृदय

में भी आचार्यकक्कसूरि के प्रति नवीन स्थान होगया । वे विचारने लगे कि जैसा मैं श्रीकक्कसूरिजी के लिए सुनता था वह सोलह आना सत्य ही निकला । आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म० शासन के दृढ़ स्तम्भ हैं । वे जैसे विद्वान् हैं वैसे ही प्रचार करने में शूरवीर हैं । शासन के हित की भावना से तो आपका रोम २ ओत प्रोत है यही कारण है कि आप यत्र तत्र सर्वत्र ही वादियों की दाल को नहीं गलने देते हैं । इस प्रकार पारस्परिक गुणानुवाद को करते हुए कई दिनों तक दोनों आचार्य भी साथ में ही रहे ।

कालान्तर के पश्चात् आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी ने सुना कि वादियों का जोर पूर्व की ओर बढ़ रहा है अतः आचार्य बप्पभट्टिसूरि से समयानुकूल परामर्श कर आपने अपने विद्वान् शिष्यों के साथ पूर्व की ओर प्रस्थान कर दिया । उद्योगी एवं कर्मशील पुरुषों के लिये कौनसा कार्य दुष्कर होता है ? वे जहाँ जहाँ जाते हैं वहां ही अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से नवीन सृष्टि का निर्माण कर देते हैं । मनस्वी, कर्मवीरों के लिये संसार में कोई भी मार्ग दुरूह नहीं है । वे तो अपनी कार्य शक्ति की प्रबलता से दुर्गम मार्ग को सुगम एवं रमणीय बना देते हैं । तदनुसार हमारे आचार्यश्री विस मार्गजन्य नाना परिषहों एवं बाधाओं को सहन करते हुए धर्म प्रचार की उत्कट अभीप्सित भावनाओं से प्रेरित हो क्रमशः लक्षणावती के नजदीक पहुँचे । उस समय लक्षणावती में राजा धर्मपाल राज्य करता था । लक्षणावती नरेश को भी वादी कुन्जर केसरी आचार्यश्रीबप्पभट्टसूरि ही ने प्रतिबोध देकर जैन बनाया था । राजा धर्मपाल ने कक्कसूरीश्वरजी का आगमन सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की । आचार्यश्री की दिग्दिगन्त प्रशंसा को राजा धर्मपाल कई समय से सुनता आ रहा था अतः आज उनके प्रत्यक्ष दर्शन एवं चरण सेवा का लाभ लेकर अपने को कृतकृत्य बनाने के लिये वह उत्कण्ठित हो गया । जब आचार्यश्री लक्षणावती के बिल्कुल समीप में पधार गये तब राजा धर्मपाल अपनी सामग्री लेकर श्रीसंघ के साथ सूरीश्वरजी के स्वागतार्थ सम्मुख गया । क्रमशः आचार्यश्री का नगर प्रवेश महोत्सव भी लक्षणावती नरेश ने बड़े ही शानदार जुलूस के साथ में किया । नगर प्रवेशानंतर स्थानीय मन्दिरों के दर्शन का लाभ लेकर आचार्यश्री उपाश्रय में पधारे । स्वागतार्थ आगत जनता को प्रथम माङ्गलिक बाद हृदय स्पर्शिनी देशना दी । सूरीश्वरजी के उपदेश एवं बोलने की सविशेष पटुता का श्रोताओं के हृदय पर जादू सा प्रभाव पड़ा । आचार्यश्री की प्रतिभायुक्त वाणी से प्रभावित हो राजा धर्मपाल एवं लक्षणावती श्रीसंघ ने चातुर्मास का परम लाभ प्रदान करने के लिये सूरिजी की सेवा में आग्रह भरी प्रार्थना की । आचार्यश्री ने भी उनका अधिक आग्रह देख धर्मोन्नति रूप लाभ को लक्ष्य में रख वह चातुर्मास लक्षणावती में ही कर दिया । इस चातुर्मास के निश्चय से श्रीसंघ की भावना में और भी दृढ़ता आगई । राजा धर्मपाल तो सूरीश्वरजी के सत्संग से जैन-धर्म के रंग में रंग गया । उसको जैनधर्म के सिवाय अन्य धर्म नीरस एवं सारहीन प्रतीत होने लगे । जैनधर्म का स्याद्वाद सिद्धान्त तो उन्हें बहुत ही रुचिकर व्यवस्थित एवं उपयोगी ज्ञात होने लगा । इस प्रकार राजा के संस्कारों को जैन धर्म में सविशेष स्थायी एवं दृढ़ करके श्रीसंघ के धर्मोत्साह में भी उपदेश के द्वारा आशातीत वृद्धि की । चातुर्मास के सुदीर्घकाल में अष्टाह्निका महोत्सव मास क्षमण, पूजा प्रभावना, स्वामीवात्सल्य, सामायिक, प्रतिक्रमणादि धार्मिक कार्यों के आधिक्य से आचार्यश्री ने लक्षणावती को धर्मपुरी बना दिया । इस प्रकार धर्मोद्योत करते हुए चातुर्मासानंतर आचार्यश्री विहार करते हुए क्रमशः वैशाली राजगृह प्रभृति प्रदेशों में घूमते हुए पाटलीपुत्र पधारे । आपके आगमन के समाचार आपके पहले ही पहुँच चुके थे अतः आचार्यश्री के नाम श्रवण मात्र से वादियों

की मुखाकृति कान्ति विहीन निस्तेज हो गई। जैन मुनियों के आगमन के अभाव में जो उन्होंने अपना मिथ्या गौरव इत उत थोड़े बहुत रूप में प्रसारित किया था उसके नष्ट होने के समय को नजदीक आया समझ उनके हृदय में नवीन खलबली मच गई। जैसा सहस्त्ररश्मि प्रचण्ड ताप को धारण करने वाले मार्तण्डोदय मात्र से निबिडतम तिमिर राशि अपना-साम मुँह बनाये भगजाती है वैसे वादी लोग सूरीश्वरजी के आगमन के समाचारों से इत उत पलायन करने लग गये।

पाटलीपुत्र आते ही सूरिजी म० ने स्पष्ट रूप में अहिंसा की उपादेयता एव हिंसा जन्य कटु फलों की कटुता के कारण देव देवियों को दी जाने वाली पशुबली व यज्ञयागादि कृत्यों की निरर्थकता का प्रतिपादन किया किन्तु किसी भी वादी की हिम्मत आचार्यश्री का सामना करने की न हो सकी। अपने मत का खडन सुनते हुए भी अपनी स्वाभाविक कमजोरी के कारण वे आचार्यश्री से वाद विवाद करने में सर्वथा हिचकिचाहट ही करते रहे। आचार्यश्री ने भी दो वर्ष पर्यन्त पूर्व के प्रान्तों में परिभ्रमण कर वाम-मार्गियों की नींव को एक दम खोखली कर डाली। पश्चात् बीस तीर्थङ्करों की परम पवित्र निर्वाण भूमि श्री सम्मेत शिखर आदि पूर्व के तीर्थों की यात्रा के बाद आपश्री ने कलिंग की ओर पदार्पण किया। कलिङ्ग प्रान्त के खण्डगिरी-उदयगिरी जो कु मार कुमारी पर्वत या शत्रुञ्जय गिरनार अवतार नामक जैन तीर्थो के नाम से प्रसिद्ध थे—आचार्यश्री ने यात्रा की। कलिङ्गवासियों को उपदेश सञ्जीवनी जड़ी से धर्म कार्य में चैतन्य शील किया इस प्रकार कलिङ्ग के सफल चातुर्मास के पश्चात् विकट प्रदेशों में परिभ्रमण करते हुए दक्षिण प्रान्त से क्रमश. महाराष्ट्र प्रान्त की ओर सूरीश्वरजी ने पदार्पण किया। आचार्यश्री के विहार की विशालता, धर्म प्रचार की उत्कण्ट भावनाओं की आदर्शता एवं क्रिया की पवित्रता आचार्यश्री के परिभ्रमन, कार्य ढग एव आचार विचार की दृढता से जानी जा सकती है। अस्तु, महाराष्ट्र प्रान्त में आचार्य श्री के शिष्य समुदाय पहिले से ही धर्म प्रचार कर रहे थे। हम पहिले ही लिख आये हैं कि महाराष्ट्र प्रांत श्वेतांबर दिगम्बर—दोनों साधुओं का केन्द्र स्थान था और समय २ पर बाह्य सिद्धान्तों के साधारण मतभेद के कारण कुछ मनोमालिन्य भी आपस में चलता था—ठीक यही हाल इस समय भी वर्तमान था। इधर श्वेताम्बर दिगम्बर साधुओं में कुछ आपसी मलीनता थी और उधर शिवोपासक पण्डितों ने जैन शासन को बहुत धक्का पहुँचा दिया था ठीक उसी समय पुण्य योग से आचार्यश्री का विहार भी महाराष्ट्र प्रान्त में हो गया। आचार्यश्री ने पहिले दिगम्बर श्रमण बन्धुओं को समझाया—बन्धुओं! घर के आपसी क्लेश में हम अपने शासन मात्र को निर्जीव बना देंगे। अभी तो हमारा कर्तव्य है कि हम श्वेतम्बर और दिगम्बर एक पिता के पुत्र होने के कारण आपस में मिलकर वादियों के द्वारा शासन पर होते हुए सफल आक्रमणों को रोकें और जैन शासन की रक्षा करें। भाइयों! आपसी कलह में न आपको लाभ होने वाला है और न हमको ही। बीच में तीसरे विधर्मी ही अपना महाराष्ट्र प्रान्त में डका बजा देवेंगे। इससे जैन शासनमात्र की लघुता होगी और हमारी अज्ञानता एव अकर्मण्यता विश्व विश्रुत होजायगी। इस समय तो शासन की रक्षा के लिये आपसी बाह्य मतभेद को तिलाञ्जली दे अपने को एक हो जाना चाहिये। आचार्यश्री का उक्त कथन दिगम्बर श्रमणों को भी शासन के लिये हितकारक एवं मन को रुचि कर प्रतीत हुआ। वे भी आपसी कलह का त्याग कर जैनत्व का प्रचार करने में कटिबद्ध होगये।

इधर आचार्यश्री ने उन शिव धर्मियों का पीछा किया। वे जहां २ जाकर जैनधर्म का खण्डन और

स धर्म का प्रचार करते थे आचार्यश्री तत्काल वहां जाकर शास्त्रीय युक्तियों के युक्तियुक्त प्रमाणों से वहां का जन समाज को पुनः अपनी ओर आकर्षित कर लेते। इस प्रकार होते रहने के कारण शिव पण्डित के हृदय में जो २ आशाएं थी वे अब शनैः शनैः निराशा के रूप में परिवर्तित होने लगी। अन्त में परिभ्रमन करते हुए सूरिजी और शिवे दोनों का एक स्थान पर मिलाप होगया। आचार्य ने शिव पण्डित को शास्त्रार्थ करने के लिये चेलेन्ज दिया। उसने पण्डित के अभिमान में उसे स्वीकार कर राज सभा में वाद विवाद करने का निश्चय किया। निर्धारित किये हुए दिन को राज सभा में दोनों का पक्ष-समर्थन एवं बक्रोत्तापन विषय में शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में पण्डितजी को अहिंसा देवी की पवित्र गोद का आश्रय लेना ही पड़ा। उनके हृदय में स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति अपूर्व गौरव पैदा हो गया। अपने किये हुए अपराध का उन्हें पद २ पर पश्चाताप होना लगा। आचार्य श्री कक्कसूरिजी प्रतिमा के सामने उन्हें भी एकदम नतमस्तक होना पड़ा। इससे सूरीश्वरजी की प्रतिष्ठा महाराष्ट्र प्रान्त में बहुत दूर तक फैल गई। इस प्रकार दक्षिण में पधारने से शासन प्रभावना रूप महान्लाभ आचार्यश्री को प्राप्त हुआ। आपने तीन चातुर्मास्य महाराष्ट्र प्रान्त में किये। इस दीर्घ अवधि के बीच आपश्री ने कई महानुभावों को दीक्षा देकर उनकी आत्माओं का कल्याण किया। कई मंदिरों की प्रतिष्ठाएं करवा कर जैनधर्म को दृढ़ एवं स्थिर किया। मांसाहारियों को अहिंसा धर्मानुयायी बना जैन धर्म की खूब ही प्रभावना की।

तत्पश्चात् वहां से विहार कर क्रमशः विदर्भ प्रान्त में परिभ्रमन करते हुए आचार्य श्री ने कोकण में गमन किया। वहां की जनता को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनधर्म का आशातीत उद्योत किया। सोपार पट्टन में चातुर्मास करके धर्म की नींव को दृढ़ एवं स्थायी बना दिया। चातुर्मास के बाद लाट प्रान्त में सूरीश्वरजी पधारे भरोंच स्तम्भपुर, कर्पूर करणावती, खेटकपुरादि नगरों में परिभ्रमन करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पधार कर आपश्री ने परम पावन सिद्धगिरि की यात्रा की। आत्म शान्ति का अनुपम आनंद प्राप्त करने के लिये आपने कुछ समय तक वहां पर विश्रान्ति ली। इस अवधि के बीच मरुधर प्रान्त से सिद्धगिरि की यात्रा के लिये एक संघ आया और एक ओर कच्छ के मुमुक्षु भी आचार्य संघ लेकर आये। दोनों प्रान्तों के श्रीसंघों ने आचार्यश्री को अपने २ प्रान्तों में पधारने के लिये आग्रह भरी प्रार्थना की। इस हालत में सूरीश्वरजी असमंजस में पड़ गये कि कच्छ की ओर विहार करूं या मरुभूमि की ओर ? इसी विचार में निमग्न बने हुए आचार्यश्री के पास में रात्रि को देवी सच्चायिका ने आकर परोक्ष रूप से वंदन किया। आचार्यश्री ने धर्म लाभ देकर अपने विहार के लिये देवी से उचित सलाह मांगी। देवी ने कहा आचार्य देव ! मरुभूमि में पधारने से हम तो कृतार्थ अवश्य होवेंगे पर आपको ज्यादा लाभ कच्छ भूमि की ओर पधारने से ही प्राप्त होवेगा। सूरिजी ने भी देवी के परामर्शानुसार कच्छ प्रान्त की ओर विहार करने का निर्णय कर लिया। बस, दूसरे दिन कच्छ संघ की विनती को स्वीकार आचार्यश्री ने उधर ही विहार कर दिया। क्रमशः सौराष्ट्र में भ्रमन करते हुए आप कच्छ में पधारे। उस प्रदेश में परिभ्रमन कर आप भद्रेश्वर में पधारे। आपका चातुर्मास भी वहीं पर हुआ। आपके त्याग वैराग्य मय व्याख्यान से प्रभावित हो कई महानुभाव संसार से विरक्त हो गये। उन वैरागियों में एक श्रेष्ठि गौत्रीय शाह सातूक के पुत्र देवसी जो कोट्याधीश था—दस दश मास की विवाहित पत्नी का त्याग कर दीक्षा के लिये उद्यत हो गया। चातुर्मास के बाद शा०-देवसी आदि दश नर नारियों ने दीक्षा लेकर सूरीश्वरजी के पास में आत्म कल्याण किया। बाद

में आप सिंध प्रदेश में पधारे। दो चातुर्मास सिंध में करके सर्वत्र आपने धर्म प्रचार को बढ़ाया बाद में पंजाब को पावन बना कर दो चातुर्मास पञ्जाब में भी कर दिये। पश्चात् आप कुरु की ओर पधारे। हस्तनापुर की स्पर्शना कर वह चातुर्मास आपने माथुरा में आकर किया। उस समय मथुरा में जैसे जैनियों की घनी आबादी थी वैसे बौद्धों की भी बहुत से मन्दिर, सघाराम और मठ थे। उक्त मठों में सैंकड़ों बौद्ध-भिक्षु वर्तमान रहते थे।

आचार्यश्री कक्कसूरि ने मथुरा में चातुर्मास कर जैनधर्म की विजय वैजन्ती सर्वत्र फहराई। सूरिश्वरजी ने वहाँ शा. करमण के बनवाये हुए महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कर वाई। ११ नर नारियों को जैन धर्म में दीक्षित कर करके जैन धर्म की खूब प्रभावना की।

तत्पश्चात् सूरीश्वरजी म. मथुरा से बिहार कर क्रमशः ग्राम नगरों में होते हुए अजयपुर नगर में पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आपका अच्छा सत्कार किया। वहाँ से अपने मरुभूमि की ओर पदार्पण किया। शाकम्भरी, मेदिनीपुर हंसावली, पद्मावती, नागपुर, मुग्धपुर होते हुए आप रुनावती नगरी मे पधारे। वहाँ सुचन्ति गौत्रीय शा. गोल्हा के पुत्र नारा को दीक्षा दी। वहा से आप खटकुम्प नगर पधारे। वहाँ के श्री संघ ने आपका शानदार जुलूस के साथ स्वागत किया। संघ के सत्याग्रह से चातुर्मास भी आपने वहीं पर कर दिया। खटकुम्प नगर के चातुर्मास में धर्म का खूब उद्योत हुआ। बाद आप बिहार कर माण्डव्य पुर होते हुए उपकेशपुर पधारे। सूरिजी महाराज को इस भ्रमन में करीब बीस वर्ष लग चुके थे। इस भ्रमन काल में आपने जैन धर्म की आशातीत प्रभावना की। आपने अपने जीवन काल में अनेक दिग्गज वादियों से भेंट कर उन पर अमिट प्रभाव जमा दिया। इतना ही क्या पर जिस अहिंसा का प्रचार अनेक उपदेशकों से होना मुश्किल था उसी अहिंसा का प्रचार हिंसा के कट्टर हिमायतियों के हाथ से हो जाना क्या कम महत्त्व की बात है? इसका सम्पूर्ण श्रेय हमारे आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी म को ही है।

आचार्यश्री कक्कसूरि जिस समय कोंकण में विहार कर रहे थे उस समय सौपारपट्टन में एक यक्ष का महान् उपद्रव हो रहा था। इस उपद्रव के कारण नगर भर में त्राहि २ मच गई वहाँ के राजा जयकेतु ने एक सभा की और कहा—सुख शान्ति के समय तो प्रत्येक धर्म वाले, धर्म गुरु जाप जप करवाते हैं, वरणी बैठाते हैं, शान्ति करवाते हैं तब इस प्रकार की अशान्ति के समय वे धर्म और धर्म गुरु कहाँ चले गये हैं? शान्ति पाठ व जाप जप कहाँ चले गये हैं? मैं तो यह सब धर्म का ढोंग ही समझता हूँ। यदि किसी धर्म में सचाई एवं चमत्कार हो तो इस उपद्रव के समय में वह बचावे—मैं उसी धर्म को स्वीकार कर उस धर्म का परमोपासक बन कर उसी धर्म का प्रचार बढाऊँगा।

बस, प्रत्येक धर्म वाले अपने २ महात्माओं को बुलवा कर धर्मानुष्ठान करवाने लगे। जैन लोग इस दौड धूप में कब पीछे रहने वाले थे, उन्होंने भी अपने महान् प्रतापी आचार्यश्री कक्कसूरि को बुलाया कक्क सूरीश्वरजी का बड़े ही समारोह पूर्वक नगर प्रवेश महोत्सव किया। जब ब्राह्मणादि वर्गों के जप, जाप, यज्ञानुष्ठान वगैरह कार्य समाप्त हुए तब जैनियों की ओर से भी अष्टान्हिका महोत्सव के अन्त में बृहत् शान्ति स्नात्र पढ़ाई गई। इसका जुलूस इतना जोरदार निकाला गया कि सब लोग आश्चर्यान्वित होगये। राजा जयकेतु वगैरह भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। सूरिजी के यशः कर्म का उदय था अतः इधर शान्ति स्नात्र पढ़ाई और उधर रात्रि में यक्ष, आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर कहने लगा—पूज्य

माता पिता कह लाते है अतः आप भी दु खी एव दीन प्राणियों को सुखी बनावें अन्याय पूर्वक जनता से कर न ले विना अपराध किसी को दण्ड न दे अपुत्रियों का द्रव्य वगैरह हरण नहीं करें । सर्व साधारण के हितार्थ भव्य मन्दिर बनवावें। तीर्थ यात्रार्थ सघ निकावें । अमरी पड़हा फिरावें जिससे इस भव और परभव में आपका कल्याण हो । राजा ने सूरिजी के हितकारी वचन सुनकर यह प्रतिज्ञा करली की—मैं जान बुझ कर किसी पर भी अन्याय नहीं करू गा । अपुत्रियों का द्रव्य नहीं लूगा । इस प्रतिज्ञा के साथ ही साथ मन्दिर बनवाने व तीर्थ यात्रार्थ सघ निकालने का भी निश्चय कर लिया ।

श्रीसंघ व राजा के अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चातुर्मास सौपारपट्टन में ही कर दिया । इससे राजा की धर्म भावना और भी बढ़ गई । राजाने चौरासी देहरी वाला मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया । श्री शत्रुञ्जय यात्रार्थ सघ निकालने के लिये भी तैय्यारियाँ करना शुरू कर दिया । चातुर्मास समाप्त होते ही राजा जयकेतु के संघपतित्व में संघ ने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की । पश्चात् मन्दिर के तैयार होजाने पर जिना लय की प्रतिष्ठा भी सूरिजी से करवाई । आचार्य कक्कसूरि महा प्रभावशाली आचार्य हुए । इस प्रकार आपका प्रभाव कई राजाओं पर हुआ। इससे जैन शासन की अधिकाधिक उन्नति एवं प्रभावना हुई ।

एक समय आचार्य कक्क सूरि विहार करते हुए जंगल से पधार रहे थे । मार्ग में उन्हे कई अश्वारूढ़ व्यक्ति मिले । उनके कमरों में तलवारें लटक रही थी । हाथों में तीर कमान थे । एक दो व्यक्तियों ने बन्दूकें भी हाथों में ले रक्खी थी । उनके चेहरे पर भव्याकृति के साथ ही साथ कुछ क्रूरता भी झलक रही थी । घोड़ों के पीछे २ कई शीघ्र गामी ऊट भी आरहे थे । क्रमश. वे सवार सूरिजी के नजदीक आगये तो उनकी क्रूरता से भयभीत हो क्षुद्र वनचर जीव शृगाल, हिरन वगैरह इधर उधर अपने प्राणों की रक्षा के लिये छुपते छिपते हुए दौड़ कर रहे थे सूरीश्वरजी के हृदय में अश्वारूढ़ सवारों की अज्ञानता व निर्दयता पूर्ण व्यवहारों पर व भगते हुए शृगाल, कुरंगादि वनचर जीवों की प्राण रक्षा निमित्त विशेष दया के अंकुर अंकुरित हो गये । उन्होंने तुरन्त ही आगत अश्वारूढ़ सवारों को उद्देश्य कर कहा - महानुभावों ! ठहरिये । सवारों ने सूरीश्वरजी की ओर दृष्टि करके कहा—हमें ठहराने का आपका क्या प्रयोजन है ? आप हमें क्या कहना चाहते हैं, शीघ्र कह दीजिये। हमारा शिकार हमारे हाथों से जारहा है अतः किञ्चिन्मात्र भी विलम्ब मत कीजिये ।

सूरिजी—आपके चेहरे की भव्यता व मुखाकृति की अनुपम सुन्दरता से अनुमान किया जाता है कि अवश्य ही आप लोग अच्छे खानदान के हैं । उच्च खानदान व कुलीन घराने के होकर के भी शृगाल, कुरंगादि दयनीय जीवों को मारने रूप जघन्य कार्य को करने के लिये आप लोग कैसे उद्यत हुए हो, समझ में नहीं आता ? देखिये आप लोगों की निर्दयता जन्य क्रूर प्रकृति के कारण ये वनचर प्राणी कितने भय भ्रान्त हो रहे हैं ? आपका क्षत्रियोचित कर्तव्य तो यही है कि आप लोग दया करने योग्य इन दीन जीवों पर दया करके इनके रक्षण रूप स्वकर्तव्य का पालन करें । जरा धर्म शास्त्र के सूक्ष्म तत्त्वों का मनन पूर्वक मन्थन कीजिये, आपको सहज ही ज्ञात होजाय कि निरपराधी जीवों को तो मारना क्या पर थोड़ा कष्ट पहुँचाना भी भयकर पाप है । अभी आप इस प्रकार के कुत्सित कार्य को करके आनन्दानुभव करें पर परभव में इस का बदला तो इससे भी भयङ्कर रूप में आपको देना पड़ेगा । "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" अपने किये—शुभ-सुख रूप, अशुभ-दुक्ख रूप कर्मों के फल को भोगे बिना कर्मों से छुटकारा नहीं मिलता

गुरुदेव ! इस नगर के राजा बड़े ही अन्यायी हैं। बिना इन्साफ किये ही मुझे मृत्यु दण्ड दिया उस समय में एक मुनि के सिखाये हुए नवकार मन्त्र का ध्यान करने से मैं मरकर यक्षयोनि में पैदा हुआ। इस योनि में पैदा होने के पश्चात् मुझे बहुत ही क्रोध आया और उसी का बदला मैंने इस रूप में लिया। आपने हम सब देवों का सत्कार किया है इसलिये मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यह देव योनि भी आप महात्माओं की कृपा से मिली है अब आप आज्ञा फरमावें—मैं क्या करूँ ? सूरिजी ने कहा—देव ! नवकार मंत्र का ऐसा ही प्रभाव है। जो इस पर श्रद्धा विश्वास रक्खे तो देवयोनि ही क्या ? मोक्ष का सुख भी सम्पादन किया जा सकता है। दूसरा किसी व्यक्ति ने अज्ञानता से किसी का बुरा भी किया हो तो उसका बदला लेने में गौरव नहीं अपितु उसको क्षमा करने में ही गौरव है। तीसरा—एक व्यक्ति के अज्ञानपूर्ण अपराध के लिये सारे नगर के नागरिकों को कष्ट देना बिलकुल अनर्गल अन्याय है ! खैर, अब आप शान्त होकर उपद्रव को शान्त करें। यदि आप अपनी देवयोनि का सदुपयोग करना चाहते हो तो पर्व पर्व पर होने वाले इन देवियों के नाम पर हजारों जीवों के वध को रोकें। उन जीवों के शुभाशीर्वाद एवं दया धर्म के प्रभाव से आपका भवान्तर में भी आपका कल्याण हो।

सूरिजी का उक्त हितकर उपदेश यक्ष को बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ। उसने आचार्यश्री के वचनों को शिरोधार्य कर आगे से ऐसे अकार्य नहीं करने का सूरिजी को विश्वास दिलाया। पश्चात् वह सूरीश्वरजी को वन्दन कर स्व स्थान चला गया। और कह गये कि जब आप याद करेंगे सेवा में हाजिर हूँगा।

प्रातःकाल सूरीश्वरजी ने अपने व्याख्यान की विशाल परिषदा में राजा प्रजा को इस प्रकार कहा—इस उपद्रव का मुख्य कारण राजा का प्रमाद ही है कारण, वे बिना परीक्षा किये हुए अपने अनुचरों के विश्वास पर कभी २ निर्दोषी को दोषी बना कर प्राण दण्ड जैसे भयङ्कर दण्ड भी दे देते हैं। आपके यहाँ के उपद्रव का भी यही कारण है इस लिये भविष्य के लिये न्याय होना चाहिये। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि आज से ही यह उपद्रव शान्त हो जायगा। बस, सूरीश्वरजी के उक्त शान्ति प्रदायक वचनों को सुन कर सब के हृदय में शान्ति का अपूर्व प्रवाह, प्रवाहित होने लगा। राजा ने भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सूरीश्वरजी के चरण कमलों में जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' की युक्त्यनुसार और भी कई व्यक्तियों ने आत्मकल्याण की उत्तम अभिलाषा से जैनधर्म को अङ्गीकार किया। इस तरह आचार्यश्री के अपूर्व प्रभाव से जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई।

एक दिन राजा जयबन्धु ने सूरिजी की सेवा में आकर निवेदन किया—पूज्य गुरुदेव ! आपने जो सभा में फरमाया था कि उपद्रव का कारण निर्दोषी को दोषी समझ कर दण्ड देने का है—सो ठीक है। मुझे उस अपराध की अब यथावत् स्मृति हो गई है पर मेरे इस जीवन में इस प्रकार की कितनी ही भूलें हुई होंगी। प्रभो ! अब उसके लिये ऐसा कोई उत्तम उपाय बतलाइये जिससे, मैं इन पापों से बच जाऊँ। वास्तव में राज्यसत्ता नरकगामी ही है ! इस पर सूरिजी ने कहा—राजेश्वरी होना बुरा नहीं है पर उसमें जागरूक रहना नितान्त आवश्यक है। यदि राजा चाहें तो अपनी आत्मा के साथ अनेक अन्यात्माओं का भी कल्याण कर सकता है। पूर्वकालीन अनेक ऐसे राजा हुए हैं कि जिन्होंने राज्यतन्त्र चलाते हुए अपनी आत्मा के साथ अनेक दूसरों की आत्माओं का भी कल्याण किया है। अब आपके लिये भी यही उपाय है कि आप जनता की भलाई और धर्म की प्रभावना के लिये जी जान से प्रयत्न करें। राजा प्रजा का पालन करने वाले

माता पिता कह लाते है अतः आप भी दुःखी एव दीन प्राणियों को सुखी बनावें अन्याय पूर्वक जनता से कर न ले विना अपराघ किसी को दयड न दे अपुत्रियों का द्रव्य वगैरह हरण नहीं करें। सर्व साधारण के हितार्थ भव्य मन्दिर बनवावें। तीर्थ यात्रार्थ सघ निकावें। अमरी पडहा फिरावें जिससे इस भव और परभव में आपका कल्याण हो। राजा ने सूरिजी के हितकारी वचन सुनकर यह प्रतिज्ञा करली की—मैं जान बुझ कर किसी पर भी अन्याय नहीं करूगा। अपुत्रियों का द्रव्य नहीं लूगा। इस प्रतिज्ञा के साथ ही साथ मन्दिर बनवाने व तीर्थ यात्रार्थ सघ निकालने का भी निश्चय कर लिया।

श्रीसंघ व राजा के अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चातुर्मास सौपारपट्टन में ही कर दिया। इससे राजा की धर्म भावना और भी बढ़ गई। राजाने चौरासी देहरी वाला मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया। श्री शत्रुञ्जय यात्रार्थ सघ निकालने के लिये भी तैय्यारियाँ करना शुरू कर दिया। चातुर्मास समाप्त होते ही राजा जयकेतु के संघपतित्व में संघ ने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। पश्चात् मन्दिर के तैयार होजाने पर जिनालय की प्रतिष्ठा भी सूरिजी से करवाई। आचार्य कक्कसूरि महा प्रभावशाली आचार्य हुए। इस प्रकार आपका प्रभाव कई राजाओं पर हुआ। इससे जैन शासन की अधिकाधिक उन्नति एवं प्रभावना हुई।

एक समय आचार्य कक्क सूरि विहार करते हुए जंगल से पधार रहे थे। मार्ग में उन्हें कई अश्वारूढ़ व्यक्ति मिले। उनके कमरों में तलवारें लटक रही थी। हाथों में तीर कमान थे। एक दो व्यक्तियों ने बन्दूकें भी हाथों में ले रक्खी थी। उनके चेहरे पर भव्याकृति के साथ ही साथ कुछ क्रूरता भी झलक रही थी। घोड़ों के पीछे २ कई शीघ्र गामी ऊट भी आरहे थे। क्रमश. वे सवार सूरिजी के नजदीक आगये तो उनकी क्रूरता से भयभीत हो क्षुद्र वनचर जीव शृगाल, हिरन वगैरह इधर उधर अपने प्राणों की रक्षा के लिये छुकते छिपते हुए दौड़ कर रहे थे सूरीश्वरजी के हृदय में अश्वारूढ़ सवारों की अज्ञानता व निर्दयता पूर्ण व्यवहारों पर व भगते हुए शृगाल, कुरगादि वनचर जीवों की प्राण रक्षा निमित्त विशेष दया के अंकुर अंकुरित हो गये। उन्होंने तुरन्त ही आगत अश्वारूढ़ सवारों को उद्देश्य कर कहा - महानुभावों! ठहरिये। सवारों ने सूरीश्वरजी की ओर दृष्टि करके कहा—हमें ठहराने का आपका क्या प्रयोजन है? आप हमें क्या कहना चाहते हैं, शीघ्र कह दीजिये। हमारा शिकार हमारे हाथों से जारहा है अतः किञ्चिन्मात्र भी विलम्ब मत कीजिये।

सूरिजी—आपके चेहरे की भव्यता व मुखाकृति की अनुपम सुन्दरता से अनुमान किया जाता है कि अवश्य ही आप लोग अच्छे खानदान के हैं। उच्च खानदान व कुलीन घराने के होकर के भी शृगाल, कुरंगादि दयनीय जीवों को मारने रूप जघन्य कार्य को करने के लिये आप लोग कैसे उद्यत हुए हो, समझ में नहीं आता? देखिये आप लोगों की निर्दयता जन्य क्रूर प्रकृति के कारण ये वनचर प्राणी कितने भय भ्रान्त हो रहे हैं? आपका क्षत्रियोचित कर्तव्य तो यही है कि आप लोग दया करने योग्य इन दीन जीवों पर दया करके इनके रक्षण रूप स्वकर्तव्य का पालन करें। जरा धर्म शास्त्र के सूक्ष्म तत्वों का मनन पूर्वक मन्थन कीजिये, आपको सहज ही ज्ञात होजाय कि निरपराधी जीवों को तो मारना क्या पर थोड़ा कष्ट पहुँचाना भी भयकर पाप है। अभी आप इस प्रकार के कुत्सित कार्य को करके आनन्दानुभव करें पर परभव में इस का बदला तो इससे भी भयङ्कर रूप में आपको देना पड़ेगा। "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" अपने किये—शुभ-सुख रूप, अशुभ-दुःख रूप कर्मों के फल को भोगे बिना कर्मों से छुटकारा नहीं मिलता

मेदित हो गये हैं—ऐसे दुःखी नारकी के जीवों को होते हैं ।

छिद्यन्ते कृपणाः कृतान्त परशोस्तीक्ष्णेन धारासिना ।
क्रन्दन्तो विपवीचिभिः परिवृत्ताः सम्भक्षण व्यावृत्तेः ॥
पाट्यन्ते क्रकचेन दारुवदसिन प्रच्छन्न वाहुद्रमा ।
कुम्भीपु त्रपुपान दग्ध तनवो भूपासु चान्तर्गताः ॥

अर्थात्—गरीब बेचारे नारकी के जीव भयकर कुल्हाड़ियों से छेदे जाते हैं । तीक्ष्णधार वाली तलवारों को देखकर बूम मारते हैं—चिल्लाते हैं । खाजाने के लिये उद्यत बने हुए सर्पों से आक्रान्त करते हैं । दोनों हाथ ढ़का गये हों वैसे लकड़े के मुआफिक करवत से काटे जाते हैं । कुम्भी तथा सोना वगैरह गलाने की कुलड़ी में गरम किये हुए सीसे के रस को रह २ कर पीलाने से नरक के जीवों का शरीर जला हुआ होता है ।

इसके सिवाय विष्णु पुराण में नरक में विषय में उल्लेख करते हुए लिखा है—कि

"नरके यानि दुःखानि पाप हेतुभवानि वै । प्राप्यन्ते नारकैर्विप्र ! तेषां संख्या न विद्यते ॥"

अर्थात्—हे ब्राह्मण ! नरक में पाप की अधिकता के कारण उत्पन्न हुए नरक के जीवों को जो दुःख प्राप्त होते हैं उसकी सख्या नहीं कही जा सकती है ।

सूरीश्वरजी के उक्त हृदय भेदी मार्मिक शब्दों के उपदेश ने उनके हृदय पर पर्याप्त प्रभाव डाला । उनके मानस क्षेत्र में सत्वर दया के अकुर अकुरित हो गये । वे लोग आचार्यश्री की विद्वत्ता एवं समझाने की अपूर्व शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे । कुछ क्षणों के मौन के पश्चात उन सवारों के मुख्य पुरुष ने कृतज्ञता पूर्ण शब्दों में कहा—महात्मन् ! आपने हमारे ऊपर बड़ा ही उपकार किया है । हम लोगों ने अज्ञानता से अज्ञानियों के बताये हुए दुर्गति प्रदायक मार्ग को पकड़ रक्खा था पर आपने आज हमारे ऊपर अपरिमित कृपा करके हमको चारुपथ के पथिक बना दिये हैं । इस प्रकार मुख्य पुरुषों के शब्दों के समाप्त होते ही पास में बैठे हुए एक सैनिक सवार ने कहा—महात्मन् ! आप माण्डव्यपुर के नरेश महाबली हैं । इस प्रकार पारस्परिक परिचय की घनिष्टता होने पर माण्डव्यपुर के राजा महाबली आचार्य श्री को साथ में लेकर अपने नगर में आये । वहा के श्रीसघ ने भी सूरीश्वरजी का समारोह पूर्वक स्वागत किया । सूरीश्वरजी ने भी उन लोगों पर स्थायी प्रभाव डालने के लिये अपना व्याख्यान क्रम यथावत् प्रारम्भ रक्खा ।

राजा महाबली वगैरह क्षत्रिय सैनिक वर्ग भी आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ हमेशा लेने लग गये । क्रमशः जैनधर्म के सम्पूर्ण तत्वों को सूक्ष्मता पूर्वक समझ करके राजा वगैरह क्षत्रियों ने मिथ्यात्व का त्याग कर आचार्यश्री के पास में शुद्ध पवित्र जैन धर्म को स्वीकार कर लिया ।

माण्डव्यपुर नरेश श्रीमहाबली के मन्त्री, डिडू गौत्रीय शा-चदा ने सूरिजी से अर्ज की—गुरुदेव ! आपने राजा को जैन धर्मानुयायी बनाकर हम लोगों पर बड़ा ही उपकार किया । इसका वर्णन हम लोग अपनी तुच्छ जबान से करने में सर्वथा असमर्थ हैं किन्तु एक चातुर्मास आप यहीं पर करने की कृपा करेंगे तो राजा वगैरह नये बने हुए जैनियों की श्रद्धा भी जैनधर्म में दृढ़—अमिट हो जावेगी । इतना ही क्या पर राजा के पुत्रादि भी जैनधर्म को स्वीकार कर जैनधर्म के विस्तृत प्रचार में विशेष सहायक बनेंगे ।

है। चाहे सुख के विशेषोदय से आपको अपने दुष्कर्मों की कटुता का विशेषानुभव अभी नहीं होता होगा पर सांसारिक जीवों को अनेक दुःखों व सुखों व पौद्गलिक-सांसारिक सुखों से सुखी देख कर यह अनुमान तो सहज ही में लगाया जा सकता है—ये सब उनके पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मों के ही परिणाम हैं। इस प्रकार की सांसारिक विचित्रता को देख कर आप शान्ति पूर्वक अपने मन में विचार कीजिये कि आपका यह शिकार रूप कार्य कहां तक आदरणीय है ?

सूरीश्वरजी के द्वारा कहे हुए इन मार्मिक शब्दों का उन तत्कालीन मनुष्यों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा कारण उनकी परम्परागत प्रवृत्ति ही ऐसी थी कि वे धर्म बंधक इस जघन्य कार्य को भी धर्मवर्द्धक और यश सूचक कार्य समझते थे। अस्तु वे सब एक साथ बोल उठे—महात्मन् ! शिकार करना तो हम क्षत्रिय लोगों का परम्परागत धर्म है। और हमारे गुरु भी हमें यही सिखाते हैं अतः इसमें विचार करने जैसी बात ही क्या है ?

सूरिजी—यह कर्तव्य आपको किसने बतलाया ? यदि किसी स्वार्थ लोलुप व्यक्ति ने इसे आपका धर्म कर्तव्य बताया है तो निश्चित ही वह मनुष्य आपका सच्चा मार्गदर्शक नहीं अपितु शत्रुवत् दुष्कर्मों के उपार्जित करने वाला, दुर्गति योग्य कार्यों को करवाने वाला शत्रु से भी भयङ्कर शत्रु है। उस व्यक्ति ने तो अपने तुच्छ स्वार्थ की सिद्धि के लिये आप लोगों को सीधा नरक का अथवा पतनगामी रूप मार्ग बतलाया है। धर्म शास्त्रों ने तो हिंसा को धर्म नहीं किन्तु दुर्गति प्रदायक पाप कहा है। शास्त्रों में उल्लेख है कि—महारम्भी (बहुत आरम्भ समारम्भ करने वाला) महा परिग्रही (महा ममत्वी) पंचेन्द्रिय घातक और मांसाहारी—इन चार कार्यों को करने वाला मनुष्य अवश्य ही नरक का पात्र होता है। फिर आप इस प्रकार जुगुप्सनीय पाप कर्म को करके पारलौकिक जीवन से कैसे बच सकोगे ? महानुभावों ! नरक में ऐसी घोर वेदना भोगनी पड़ती है जो साधारण मनुष्य तो कहनेमें ही असमर्थ है पर ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि—

श्रवण लवनं नेत्रोद्धारं करक्रमपाटनं, हृदय दहनं नासाच्छेदं प्रतिदिन दारुणम् ।
कटविदहनं तीक्ष्णाघातत्रिशूल विभेदनं, दहन वदनैः कंकैर्घोरैः समन्तविभक्षणम् ॥

अर्थात्—कान के टुकड़े करना आँखों को खींच खींच कर बाहिर निकालना हाथ पैरों को चीरना, हृदय को जलाना पल पल में नाक को काटना, कमर को जलाना, तीक्ष्ण धार वाले त्रिशूल से भेदना। अग्नि जैसे मुख वाले अति भयंकर कंक पक्षियों से चारों बाजु को खिलवाना, (यह सब नरक के भयंकर दुःख हैं।)

'तीक्ष्णैरसिभिर्दीप्तैः कुन्तैर्विषमैः परश्वधैश्चक्रैः । परशुत्रिशूल मुद्गरतोमरवासी मुषण्ढीभिः ॥

अर्थात्—तीक्ष्ण धारवाली, चमकती हुई तलवारों से भयंकर बरछियों से, फरसों से, चक्रों से, त्रिशूलों से, कुठारों से, मुग्दरों से, भालाओं से, वसिलों से (नरक के जीवों को दुःख देते हैं)

"संभिन्नतालुशिरसश्छिन्नभुजाश्छिन्नकर्णनासौष्ठाः ।
भिन्न हृदयोदरान्त्रा भिन्नाक्षिपुटाः सुदुःखार्त्ताः ॥"

अर्थात्—जिनके तालु और मस्तक विदीर्ण हो गये हैं जिनके हाथ टूट गये हैं जिनके कान, नाक और होठ (ओष्ठ) छेदित हो गये हैं जिनके हृदय और आन्तड़िये टूट गई हैं जिनके चक्षुपुट भी टूटों से

भेदित हो गये हैं—ऐसे दुःखी नारकी के जीवों को होते हैं ।

छिद्यन्ते कृपणाः कृतान्त परशोस्तीक्ष्णेन धारासिना ।
क्रन्दन्तो विषवीचिभिः परिवृत्ताः सम्भक्षण व्यावृत्तेः ॥
पाट्यन्ते क्रकचेन दारुवदसिन प्रच्छन्न बाहुद्वमा ।
कुम्भीषु त्रपुपान दग्ध तनवो भूषासु चान्तर्गताः ॥

अर्थात्—गरीब बेचारे नारकी के जीव भयकर कुल्हाड़ियों से छेदे जाते हैं । तीक्ष्णधार वाली तलवारों को देखकर बूम मारते हैं—चिल्लाते हैं । खाजाने के लिये उद्यत बने हुए सर्पों से आक्रान्त करते हैं । दोनों हाथ ढका गये हों वैसे लकड़े के मुआफिक करवत से काटे जाते हैं । कुम्भी तथा सोना वगैरह गलाने की कुलड़ी में गरम किये हुए सीसे के रस को रह २ कर पीलाने से नरक के जीवों का शरीर जला हुआ होता है ।

इसके सिवाय विष्णु पुराण में नरक में विषय में उल्लेख करते हुए लिखा है—कि

"नरके यानि दुःखानि पाप हेतुभवानि वै । प्राप्यन्ते नारकैर्विप्र ! तेषां संख्या न विद्यते ॥"

अर्थात्—हे ब्राह्मण ! नरक में पाप की अधिकता के कारण उत्पन्न हुए नरक के जीवों को जो दुःख प्राप्त होते हैं उसकी संख्या नहीं कही जा सकती है ।

सूरीश्वरजी के उक्त हृदय भेदी मामक शब्दों के उपदेश ने उनके हृदय पर पर्याप्त प्रभाव डाला । उनके मानस क्षेत्र में सत्वर दया के अकुर अकुरित हो गये । वे लोग आचार्यश्री की विद्वत्ता एवं समझाने की अपूर्व शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे । कुछ क्षणों के मौन के पश्चात उन सवारों के मुख्य पुरुष ने कृतज्ञता पूर्ण शब्दों में कहा—महात्मन् ! आपने हमारे ऊपर बड़ा ही उपकार किया है । हम लोगों ने अज्ञानता से अज्ञानियों के बताये हुए दुर्गति प्रदायक मार्ग को पकड़ रक्खा था पर आपने आज हमारे ऊपर अपरिमित कृपा करके हमको चारुपथ के पथिक बना दिये हैं । इस प्रकार मुख्य पुरुषों के शब्दों के समाप्त होते ही पास में बैठे हुए एक सैनिक सवार ने कहा—महात्मन् ! आप माण्डव्यपुर के नरेश महाबली हैं । इस प्रकार पारस्परिक परिचय की घनिष्टता होने पर माण्डव्यपुर के राजा महाबली आचार्य श्री को साथ में लेकर अपने नगर में आये । वहां के श्रीसघ ने भी सूरीश्वरजी का समारोह पूर्वक स्वागत किया । सूरीश्वरजी ने भी उन लोगों पर स्थायी प्रभाव डालने के लिये अपना व्याख्यान क्रम यथावत् प्रारम्भ रक्खा ।

राजा महाबली वगैरह क्षत्रिय सैनिक वर्ग भी आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ हमेशा लेने लग गये । क्रमशः जैनधर्म के सम्पूर्ण तत्त्वों को सूक्ष्मता पूर्वक समझ करके राजा वगैरह क्षत्रियों ने मिथ्यात्व का त्याग कर आचार्यश्री के पास में शुद्ध पवित्र जैन धर्म को स्वीकार कर लिया ।

माण्डव्यपुर नरेश श्रीमहाबली के मन्त्री, डिड्डू गौत्रीय शा-उदा ने सूरिजी से अर्ज की—गुरुदेव ! आपने राजा को जैन धर्मानुयायी बनाकर हम लोगों पर बड़ा ही उपकार किया । इसका वर्णन हम लोग अपनी तुच्छ जबान से करने में सर्वथा असमर्थ हैं किन्तु एक चातुर्मास आप यहीं पर करने की कृपा करेंगे तो राजा वगैरह नये बने हुए जैनियों की श्रद्धा भी जैनधर्म में दृढ़-अमिट हो जावेगी । इतना ही क्या पर राजा के पुत्रादि भी जैनधर्म को स्वीकार कर जैनधर्म के विस्तृत प्रचार में विशेष सहायक बनेंगे ।

राज धराने के जैन हो जाने के पश्चात् तो नागरिक लोगों को जैन बनाने में विशेष सुगमता रहेगी। पूज्यवर! स्वयं राजा के मुंह से मैंने आपकी बहुत ही प्रशंसा सुनी। उनकी भी यही इच्छा है कि गुरुदेव का यह चातुर्मास यहीं होना चाहिये। इस प्रकार मंत्री वर्ग की प्रार्थना को सुनकर सूरिजीने कहा—जैसी-क्षेत्र स्पर्शना।

राजा के जैन धर्म स्वीकार करने के बाद वाममार्गियों ने बहुत कुछ उपद्रव मचाया पर राजा ने तो जान बूझ कर मांस मदिरा और व्यभिचार का त्याग किया था और तत्वों को समझ करके जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः राजा पर उन पाखण्डियों का ज़्यादा असर नहीं हो सका। राजा के सात पुत्र थे और वे भी अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करने वाले बिनयवान् ही थे। फिर भी पाखण्डियों ने अपना जाल कई पुत्रों को फँसाने के लिये फैलाया पर राजा की धार्मिक चतुरता के कारण उनके पुत्रों पर भी पाखण्डियों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका जब राजा को पाखण्डियों के विषय में मालूम हुआ तो उन्होंने अपने सातों पुत्रों को बुलाकर कहा—मैंने जो जैनधर्म स्वीकार किया है वह न अज्ञानता से किया है और न स्वार्थ सिद्धि के लिये ही। मैंने तो दोनों धर्मों के तत्वों को समझ कर अच्छी तरह कसौटी पर कस कर जैनधर्म को पवित्र व कल्याण कारी समझ कर के ही स्वीकार किया है। यदि तुम को मेरे पर विश्वास हो तो ठीक वहीं तो तुम लोग भी सूरीश्वर जी के पास जाकर इसके तत्वों को समझो। अन्यथा तुम को गुमराह करने वाले ब्राह्मणों से कहो कि वे आचार्यजी के साथ धर्म विषयक शास्त्रार्थ करें। अपने घर में दो पृथक् २ धर्मों का होना व पारस्परिक धार्मिक समस्या के कारण मनोमालिन्य रहना भविष्य के लिये हानिकर है।

राजा के पुत्र भी समझ गये कि हमारे पिताजी की जो प्रवृत्ति से जैनधर्म स्वीकार करने में आग्रह दर्शन करा रहा है और यह सब धर्म का ही प्रभाव है अतः उन्होंने अपने पिता से विनय पूर्वक कहा—पिताजी! आप हमारी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहें। हमें आप पर और जिनधर्म पर दृढ़ विश्वास है। हम तन, मन, धन से जैनधर्म का पालन व प्रचार करने के लिये कटिबद्ध हैं। राजा, राजा की पत्नी, राजा के पुत्र वगैरह सब सूरीजी के व्याख्यान में नियमानुसार हाजिर हो ध्यान पूर्वक व्याख्यान श्रवण का लाभ उठाते। व्याख्यान श्रवण एवं मुनि सत्संग में उन्हें इतना रस आया कि उन्होंने चातुर्मास के लिये आग्रह पूर्वक सूरीश्वर जी की सेवा में प्रार्थना की। आचार्यजी ने भी धर्म विषयक संस्कारों को विशेष स्थायी बनाने के लिये वहीं चातुर्मास कर दिया। अब तो राजा का सकल परिवार जैनधर्म का परम उपासक बन गया। इसके साथ ही इनका अनुसरण कर सैंकड़ों नर नारी जैन धर्म के भक्त बन गये। इससे शासन की पर्याप्त प्रभावना हुई। राजा ने चांदन्यपुर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी का एक मन्दिर बनवाया। उसके तैयार हो जाने पर जिनालयों की प्रतिष्ठा भी सूरीश्वरजी के कर कमलों से ही करवाई थी। वंशावलीकारों ने राजा का परिवार इस प्रकार लिखा है—
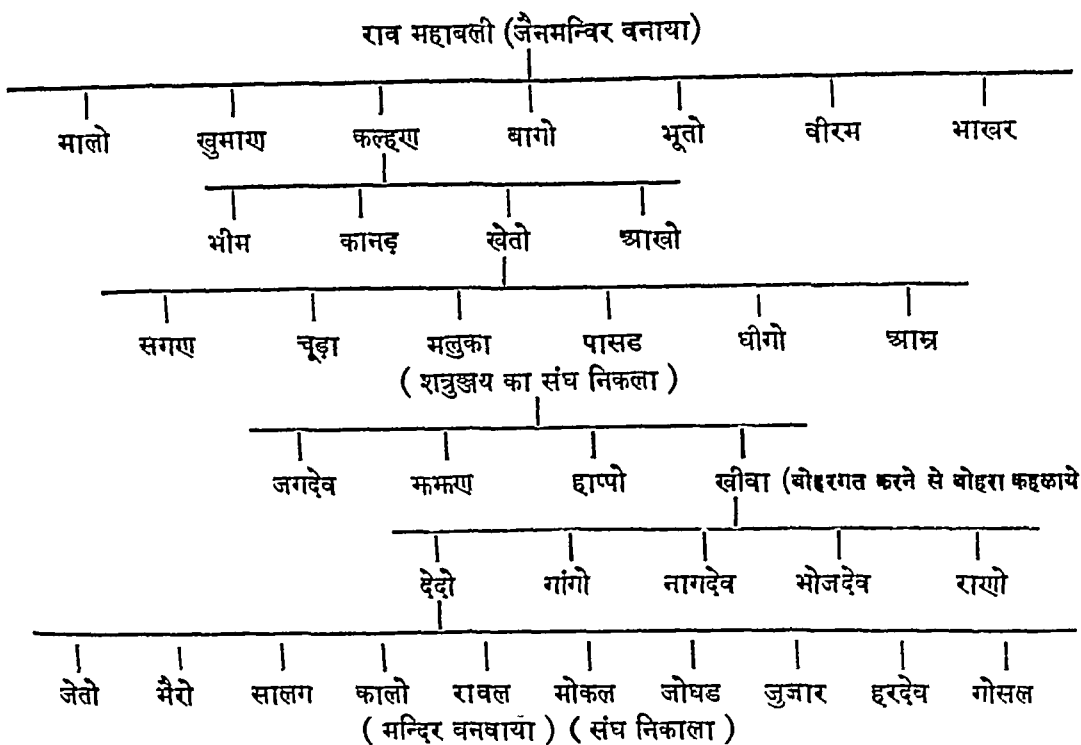
(इस प्रकार विस्तार से वशावली लिखी हुई है ।)

आचार्यश्री कक्कसूरि ने अपना शेष जीवन वृद्धावस्था के कारण मरुभूमि और मरुभूमि के आस पास के प्रदेशों में विताना ही उचित ज्ञात हुआ । तदनुसार आप मरुभूमि में ही विहार करते रहे ।

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी म. ने अपने ५९ वर्ष के शासन में अनेक प्रान्तों में परिभ्रमण कर जैन धर्म का विस्तृत प्रचार किया । भारत में शायद ही ऐसा कोई प्रांत रह गया हो जहा पूज्याचार्यदेव के कुकुम्ममयचरण न हुए हों ? आपने अपने जीवन में २०० पुरुष ३०० बाइयों को दीक्षा दी । लाखों मांसाहारियों को जैन बनाये । सैंकड़ों मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई । कई संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की । विशेष में आपने उस समय के चैत्यवास के विकार में बहुत सुधार किया । अनेक वादियों के सगठित आक्रमणों से शासन की रक्षा की और उन्हीं के द्वारा अहिंसा का प्रचार करवाया अस्तु आपश्री का जैनसमाज पर ही नहीं अपितु भारतवर्ष पर महा उपकार है ।

आपश्री जी ने कई अर्से तक उपकेशपुर में ही स्थिरवास कर दिया । जब देवी सच्चायिका के द्वारा आपको अपने आयुष्य की अल्पता ज्ञात हुई तो आपने अपने योग्य शिष्य उपाध्याय ध्यानसुन्दर को सूरि मत्र की आराधना करवा कर, भाद्र गोत्रीय शाह लुणा के महामहोत्सव पूर्वक श्रीसघ के समक्ष महावीरचैत्य में उपाध्याय ध्यानसुन्दर को सूरि पद से विभूषित कर दिया और परम्परा के क्रमानुसार आप का नाम श्री देव गुप्तसूरि रख दिया और आपश्री अन्तिम सलेखना में सलग्न हो गये

अन्त में आपने अपने अन्तिम समय में २२ दिवस का अनशन किया। अन्ततः समाधि पूर्वक पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए स्वर्ग सिधार गये।

आपश्री की कार्यावली का संक्षिप्त दिग्दर्शन निम्नप्रकारेण है।

आचार्यदेव के ५६ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएं

१—मालपुरा	के श्रेष्ठिगोत्रीय	माला ने	दीक्षाली
२—डंगोरी	,, वप्पनाग	के भाखर ने	,,
३—चन्द्रावती	,, सुरि	,, भूंगार ने	,,
४—भाखेर	,, श्रेष्ठि	,, पोलाक ने	,,
५—नारदपुर	,, बप्पनाग	,, पेथा ने	,,
६—रेणुकोट	,, भद्र	,, धरमण ने	,,
७—मड़ेसर	,, बलाहा	, सुरजण ने	,,
८—भीन्नपुर	,, चारण	, सहरण ने	,,
९—मंडप	,, प्राग्वट	,, चरण ने	,,
१०—जाबोर	,, प्राग्वट	,, कानो ने	,,
११—मथुरा	,, श्रीमाल	,, मंगु ने	,,
१२—वर्द्धमानपुर	,, चिंचट	,, झुमाने	,,
१३—चम्पा	, प्राग्वट	,, कालण	,,
१४—धारापद्र	,, प्राग्वट	,, देसा ने	,,
१५—सारंगपुर	,, प्राग्वट	,, भाग् ने	,,
१६—चकोलिया	,, श्रीमाल	,, नारायण ने	,,
१७—कोसुबा	,, डिडु	,, सोमाने	,,
१८—डींडोली	,, लघुश्रेष्ठि	बोत्था ने	,,
१९—पलावी	,, प्राग्वट	,, गोसल ने	,,
२०—तारावती	,, श्रीमाल	,, रूपा ने	,,
२१—करणावती	,, चोरडिया	,, दुरग ने	
२२—गंधार	प्राग्वट	,, पेंतो ने	,,
२३—अमरपुर	,, श्री श्रीमाल	,, रामाजी ने	,,
२४—चन्द्रावती	, प्राग्वट	,, सोमरा ने	,,
२५—शिवपुरी	,, पावार	,, भागदेव ने	,
२६—श्रीमालपुर	, प्राग्वट	,, भारम ने	,,
२७—मथुरी	,, विरहट	,, समरा ने	,,
२८—दसपुरी	,, पोकरणा	,, वेहरा ने	,,

कुल वर्ण-वंश-गौत्र और जातियां

इस भारतभूमि पर दो प्रकार का काल अनादिकाल से चला आ रहा है। एक उत्सर्पिणी काल, दूसरा अवसर्पिणी काल। उत्सर्पिणी काल का अर्थ है अवनीति की चरम सीमा तक पहुँची हुई जनता को क्रमशः उन्नति के ऊचे शिखर पर पहुँचा देना और अवसर्पिणी का मतलब है उन्नति की चरम सीमा से क्रमशः अवनति के गहरे गर्त में डाल देना। इन उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के विभाग रूप छ' छ आरे हैं और बारह आरों का एक कालचक्र होता है और एक कालचक्र का मान बीस कोड़ाकोड़ सागरोपम का बतलाया है, जिसमें कुछ न्यून अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल में तो केवल भोगभूमि मनुष्य ही होते हैं वे भद्रिक, परिणामी, अल्पकषायी, या अल्पममत्व वाले होवे हैं उनको युगलिया भी कहते हैं कारण वे स्त्री पुरुष एक साथ में पैदा होवे एवं मरते हैं उनका शरीर बहुत लम्बा दृढ़ सहनन और आयु बहुत दीर्घ होती है। उनके जीवन सबधी तमाम पदार्थ कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं। उन मनुष्यों में असी, मसी, कसी, रूप कर्म व्यापार नहीं होते हैं। जिन्दगी भर में अपनी अन्तिम अवस्था में एकबार ही स्त्री संग करते हैं जिससे उनके एक युगल संतति पैदा होती है, उसकी ४९, ६४, ८१ दिन—पालन पोषण कर दोनों एक साथ ही देहत्याग कर स्वर्ग में अवतीर्ण हो जाते हैं, जो युगल सतति पैदा होती है। वह भी अपनी अतिम अवस्था में आपस में दम्पत्ति रूप में एकबार विषय सेवन कर एक युगल सतति पैदा कर स्वर्ग चले जाते हैं। इस प्रकार असख्य काल व्यतीत कर देते हैं, तदन्तर कर्म भूमि का समय आता है, साधिक दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम कर्म भूमि का व्यवहार चलता है पुन भोगभूमि का समय आता है इस प्रकार घटमाल की तरह अनत कालचक्र व्यतीत हो गया है, जिसकी न तो आदि है और न अन्त है। न केवलज्ञानी ही बतला सकते हैं। अर्थात् आदि अन्त है ही नहीं।

वर्तमान काल अवसर्पिणी काल है इसका स्वभाव उन्नति से गिराकर अवनति तक पहुँचा देने का है। समय-समय वर्ण गध, रस, स्पर्श, आयु. बल सहननादि पदार्थों में अनति २ हानि पहुँचाने का है। पहले यहा भी भोगभूमि मनुष्य थे पर भगवान् ऋषभदेव के समय से वे कर्मभूमि बन गए, जो वर्तमान समय में भी विद्यमान हैं। यही कारण है कि भगवान् ऋषभदेव को जैन लोग आदि तीर्थङ्कर एव आदिनाथ मानते हैं। वेदक मतावलंबियों ने भी भगवान् ऋषभदेव को अपने अवतारों में स्थान दिया है तथा मुसलामान भी आदिमबाबा के नाम से उन्हीं भगवान् ऋषभदेव को मानते हैं। भगवान् ऋषभदेव के अस्तित्व का समय जैनों ने जितना प्राचीन माना है उतना न तो वेदान्तियों ने माना है और न इस्लाम धर्म वालों ने ही माना है इससे सिद्ध होता है कि वेदान्तियों एवं मुसलमानों ने जैनों का ही अनुकरण किया है। जैनों में भगवान् ऋषभदेव की मूर्तियां बहुत प्राचीन काल से ही मानी गई हैं। तब वेदान्तिकमत के प्राचीन ग्रंथ वेदों में भगवान् ऋषभदेव को अवतार होना कहीं पर नहीं लिखा है, केवल अर्वाचीन ग्रथों के लेखक ने ही भगवान् ऋषभदेव का चरित्र लिखा एवं उनको अवतार माना है। खेर, कुछ भी हो आज तो भगवान् ऋषभदेव को प्राय. समस्त भारतीय लोग पूज्य भाव से मानते हैं। इस विषय में शास्त्रकार फरमाते हैं कि —

[1] पहले आरे में ४९ दिन, दूसरे आरे में ६४, और तीसरे आरे में ८१ दिन

इधर काल के बुरे प्रभाव से जब भोगभूमि मनुष्यों को कल्पवृक्षों से फलादि साधन कम मिलने लगे तब वे लोग आपस में क्लेश करने लगे इस हालत में उन क्लेश पीड़ित मनुष्यों को समझाने एवं इन्साफ देने वालों की आवश्यकता होने लगी। अतः कुलकरों की स्थापना हुई। और उन कुलकरों ने क्रमशः हकार मकार और धिकार दंडनीति कायम की। पर काल के सामने किसकी चल सके युगल मनुष्यों में वैमनस्य बढ़ता ही गया। इस हालत में अन्तिम कुलकर नाभी के मरुदेवी पत्नि की कुक्षीसे ऋषभ नामक पुत्र का जन्म हुआ जिसका जन्म महोत्सव देव देवीन्द्रों ने किया था। जब ऋषभ माता के गर्भ में आया था तो तीन ज्ञान साथ में ही लेकर आया था जिनसे भूत, भविष्य और वर्तमान का ठीक हस्तामल की भांति जाने एवं देख सके थे। योग्यावस्था में आने पर नाभी कुलकर ने युगल मनुष्यों के लिये ऋषभ को राजा मुकर्रर कर दिया। ऋषभ देव ने काल का स्वरूप जानकर उन दुःख पीड़ित युगल मनुष्य को असी (क्षत्रिय कर्म) मसी (वैश्य कर्म) कसी (कृषी कर्म) कुम्भकार, कला-कौशल्य अर्थात् पुरुषों को ७२ कलाओं का और महीलाओं को ६४ कलाओं का बोध कराया जिससे युगल मनुष्य अपने आवश्यकता के सब पदार्थ स्वयं पैदा कर अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सके और ऐसा ही वे करने लगें।

इधर इन्द्र के आदेश से देवताओं ने एक, बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी अमरपुरी सदृश विनीता नगरीका निर्माण किया और शुभ मुहूर्त में ऋषभ का राज्याभिषेक भी कर दिया। ऋषभ के विवाह के लिये एक कन्या आपके साथ युगल रूप में ही उत्पन्न हुई थी। तब दूसरा एक नूतन कन्या हुआ युगल स्त्री पुरुष एक तालवृक्ष के नीचे खड़े थे। काल के क्रूर प्रभाव से ताड़ का फल अकस्मात् टूट कर युगल मनुष्य के कोमल अंग पर पड़ा जिसकी चोट से वह युगल मनुष्य मर गया। तब उसकी नारिय अकेली रह गई। अन्य युगलियों ने उसे लाकर नाभी के सुपुर्द की और नाभी ने कहा कि—यह कन्या हमारे ऋषभकी पत्नि होगी। बस इन्द्रने सुनन्दा और सुमंगला इन दोनों युगल कन्याओं का विवाह ऋषभ के साथ कर दिया। यह पहिला ही विधि संयुक्त विवाह था जिसमें वर पक्ष का सब कार्यविधान इन्द्रने किया और वधूपक्ष का कार्य इन्द्राणी ने किया था ऐसे उन मनुष्यों में विवाह पद्धति प्रचलित हुई। इस प्रकार युगल धर्म को वे मनुष्य भूलते गये और कर्मभूमि की प्रवृति सर्वत्र प्रचलित होती गई। ऐसी दशा में ऋषभदेव ने उन मनुष्यों की सुविधा के लिये चार कुल स्थापनकर उस समय के मनुष्यो को चार विभागों में विभाजित कर दिये जैसे कि—

१—उग्रकुल-जिन मनुष्यों की उग्रप्रकृति और जनता का रक्षण करने में समर्थ थे वे उग्रकुली।

२—भोगकुल-जिन मनुष्यों में शान्ति, तुष्टि, पुष्टि और विद्या प्रचार करने की योग्यता थी वे भोगकुली

३—राजन्यकुल-जिन मनुष्यों में राज करने की योग्यता थी (खास ऋषभ का घराना) वे राजन्य कुली।

४—क्षत्रीयकुल शेष जितने मनुष्य रहे उन सब का क्षत्रिय कुल स्थापन कर दिया।

इस प्रकार चार कुलों की व्यवस्था होने से उस समय के मनुष्यों की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई इस प्रकार संसार सुधार के लिये भ० ऋषभदेवने अपने जीवन का अधिक समय लगादिया अर्थात् भगवान् ऋषभदेव का ८४ लक्ष पूर्व का सब आयुष्य था जिसमें २० लक्षपूर्व कुमारपद ६३ लक्षपूर्व राजपदपर रह कर संसार सुधार किया। आपके भरत बाहुबलादी १०० पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी दो पुत्रियाँ हुई तत्पश्चात् भ० ऋषभदेवने दीक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त कर मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। इस प्रकार ऋषभदेव ने चार कुलों की स्थापना हुई।

१—धर्म-भगवान्ऋषभदेवने जनकल्याणार्थ धर्मोपदेश दिया जिसका सारांश मान-सेवा कर अरव

नरेश ने चार वेदों का निर्माण किया । जिनकेनाम १ समारदर्शनवेद, २ सत्थापनपरामर्शवेद ३ तत्त्वावबोध और ४ विद्याप्रबोध । इन चारों वेदों को वृद्ध एव अनुभवी श्रावकों को दे दिया और यह भी कह दिया कि मैं जब राजकार्य में लगा रहता हूँ तब मेरे मकानके द्वार पर बैठ कर ये वेद मुझे सुनाया करो, जिससे भगवान ऋषभदेव के उपदेश का असर मेरे ऊपर होता रहे और इनके अलावा जितना समय मिले उसमें आम जनता में इन वेदों के उपदेशों का प्रचार किया करो । भगवान् ऋषभदेव के उपदेश रूपी ज्ञान वेदों द्वारा वृद्ध श्रावक सुनाने लगे। इस गर्ज से भरतराजा उनका आदर सत्कार एव पूजा बहुमान करने लगे। 'यथाराजा स्तथा प्रजा' जो कार्य राजा करता है उसका अनुकरण रूप में प्रजा भी किया करती है । कारण एक तो वे वृद्ध श्रावक पहले से ही पूजनकि थे । दूसरा भगवान् ऋषभदेव के उपदेश को सुनावे इससे तो विशेष पूजनिक बन गये। उन उपदेशक श्रावकों की पहचान के लिये चक्रवर्ती भरतने कक्नीरत्न मे उनके हृदयपटल पर तीन लकीर खेंच दीकि वे भरत नरेशके रसोड़े में भोजन करले और उन वृद्ध श्रावकों को दूसरी भी कोई भी आवश्यकता होतो राजाके खजाने से द्रव्य ले आया करे । इस प्रकार भरत राजा की शुभ योजना से जनता में धर्म प्रचार एव आत्म कल्याण की भावना उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगी और वृद्ध श्रावकों की प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी इतना ही क्यों पर उन वृद्ध श्रावकों का नाम 'महाण' भी होगया जो उनके महाण महाण उपदेश का ही द्योतक था ।

भरतराजा के बाद दृढवीर्य राजा हुआ । उसके पास कक्नीरत्न न होने से उसने उन महाणों को सुवर्ण की जनेऊ दी बाद में कई राजाओं ने रजत (रूपा) की और कई एक ने सूत की दी । अत. महाण अपनी पहचान के लिए जनेऊ अवश्य रखते थे।

इस प्रकार असंख्य काल तक उन महाणों द्वारा जनता का महान् उपकार हुआ पर काल के बुरे प्रभाव से इधर तो भ० सुबुद्धिनाथ का शासन विच्छेद हो गया और ऊधर उन महाणों के मगज में स्वार्थ का कीड़ा आ घुसा । उन्होंने वेदों के उपदेशों में रद्दोबदल करना शुरू कर दिया । परामर्थ के स्थान में स्वार्थ का राज्य स्थापित कर दिया । यहाँ तक कि आप अपने को ब्रह्म का रूप कहलाकर अपना नाम ब्राह्मण रख कर जगत् के गुरू होने का दावा करने लग गये । भगवान् ऋषभदेव ने उग्र भोग राजन कुल के अलावा सब संसार को क्षत्रिय कुल में स्थापन किया था जिसमें नीच ऊच एवं हलके भारी की थोड़ी सी भावना नहीं रखी थी । पर ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के वश किसी को ऊचा और किसी को नीचा बना कर ऐसे जहरीले बीज बो दिये कि ससार क्लेश का झोंपड़ा बन गया । विधि विधान एवं अनेक क्रिया कांड रच कर जनता को अपने पैरों के तले दबा रखी थी जिसके फल स्वरूप उन भूदेवों के सामने कोई चू तक भी नहीं कर सके। कारण राज्यसत्ता एव अग्रगण्य नेतातो उनके बाए हाथ की कठपूतलियों बन चुकी थी । इस प्रकारउन स्वार्थप्रिय ब्राह्मणोंने ससारभरमें त्राहि त्राहि मचा दी । पर जब दशवें भगवान् शीतलनाथके शासनका उदय हुआ तब उन स्वार्थी ब्राह्मणों की पोल खुलने लगी । इतना ही क्यों पर, उनके खिलाफ में एक पार्टी ऐसी खड़ी होगई कि वह प्राय ब्राह्मणों के स्वार्थ का हमेशा विरोध करती थी । पर, प्रकृति उनके अनुकूल नहीं थी । भगवान शीतलनाथ का शासन भी कुछ समय चल कर विच्छेद होता गया और ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता प्रबल बढ़ती गई । सर्वत्र दुनियांमें त्राहि त्राहि मच गई चित्कार कारुणनाद सर्वत्र सुनाई देने लगा । ऊच नीचके भेद भाव से जहर की सर्वत्र भट्टियां धधकने लगी इत्यादि । खैर कैसीभी परिस्थिति क्योंन हो अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाती है तब उनका उद्धार होना भी अनिवार्य होजाता है । जैसेअन्धकार में प्रतिपदासे अमावस्या आजाती है, फिर तो

कुछ काल के बुरे प्रभाव से जब भोगभूमि मनुष्यों को कल्पवृक्षों से पदार्थ साधन कम मिलने लगे तब वे लोग आपस में क्लेश करने लगे इस हालत में उन क्लेश पीड़ित मनुष्यों को समझाने एवं इन्साफ देने वालों की आवश्यकता होने लगी। अतः कुलकरों की स्थापना हुई। और उन कुलकरों ने क्रमशः हकार मकार और धिक्कार दंडनीति कायम की। पर काल के सामने किसकी चल सके युगल मनुष्यों में वैमनस्य बढ़ता ही गया। इस हालत में अन्तिम कुलकर नाभी के मरुदेवी पत्नी की कुक्षी से ऋषभ नामक पुत्र का जन्म हुआ जिसका जन्म महोत्सव देव देवीयों ने किया था। जब ऋषभ माता के गर्भ में आया था तो तीन ज्ञान साथ में ही लेकर आया था जिससे भूत, भविष्य और वर्तमान को ठीक हस्तामल की माफिक जाने एवं देख सकते थे। यौवनावस्था में आने पर नाभी कुलकर ने युगल मनुष्यों के लिये ऋषभ को राजा मुकर्रर कर दिया। ऋषभ देव ने समय का स्वरूप जानकर उन दुःख पीड़ित युगल मनुष्य को असी (क्षत्रिय कर्म) मसी (वैश्य कर्म) कृषी (कृषी कर्म) इत्यादि, कला-कौशल्य अर्थात् पुरुषों को ७२ कलाओं का और महिलाओं को ६४ कलाओं का बोध करवाया जिससे युगल मनुष्य अपने आवश्यकता के सब पदार्थ स्वयं पैदा कर अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सके और ऐसा ही वे करने लगें।

इधर इन्द्र के आदेश से देवताओं ने एक, बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी अलकापुरी सदृश विनीता नगरी का निर्माण किया और शुभ मुहूर्त में ऋषभ का राज्याभिषेक भी कर दिया। ऋषभ के विवाह के लिये एक कन्या आपके साथ युगल रूप में ही उत्पन्न हुई थी। तब दूसरा एक नूतन घटना हुआ युगल मनुष्य एक ताड़वृक्ष के नीचे बैठे थे। काल के क्रूर प्रभाव से ताड़ का फल अकस्मात् टूट कर युगल मनुष्य के कोमल अंग पर पड़ा जिसकी चोट से वह युगल मनुष्य मर गया। तब उसकी बहिन अकेली रह गई। अन्य युगलियों ने उसे लाकर नाभी के सुपुर्द की और नाभी ने कहा कि—यह कन्या हमारे ऋषभकी पत्नि होगी। बस इन्द्रने सुनन्दा और सुमंगला इन दोनों युगल कन्याओं का विवाह ऋषभ के साथ कर दिया। यह पहिला ही विधि संयुक्त विवाह था जिसमें वर पक्ष का सब कार्यविधान इन्द्रने किया और वधूपक्ष का कार्य इन्द्राणी ने किया तब से उन मनुष्यों में विवाह पद्धति प्रचलित हुई। इस प्रकार युगल धर्म को वे मनुष्य भूलते गये और कर्मभूमी की प्रवृति सर्वत्र प्रचलित होती गई। ऐसी दशा में ऋषभदेव ने उन मनुष्यों की सुविधा के लिये चार कुल स्थापनकर उस समय के मनुष्यों को चार विभागों में विभाजित कर दिये जैसे कि—

१—उग्रकुल-जिन मनुष्यों की उग्रप्रकृति और जनता का रक्षण करने में समर्थ थे वे उग्रकुली।

२—भोगकुल-जिन मनुष्यों में शान्ति, तुष्टि, पुष्टि और विघ्न प्रचार करने की योग्यता थी वे भोगकुली

३—राजन्यकुल जिन मनुष्यों में राज करने की योग्यता थी (खास ऋषभ का बयस्या) वे राजन्य कुली।

४—क्षत्रियकुल-शेष जितने मनुष्य रहे उन सब का क्षत्रिय कुल स्थापन कर दिया।

इस प्रकार चार कुलों की व्यवस्था होने से उस समय के मनुष्यों की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई एवं प्रकार संसार सुधार के लिये भ० ऋषभदेवने अपने जीवन का अधिक समय व्यतीत किया अर्थात् भगवान् ऋषभदेव का ८४ लक्ष पूर्व का सब आयुष्य था जिसमें २० लक्षपूर्व कुमारपद ६३ लक्षपूर्व राजपद पर रह कर संसार सुधार किया। आपके भरत बाहुबलादि १०० पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी दो पुत्रियाँ हुईं तत्पश्चात् भ० ऋषभदेवने दीक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त कर मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। इस प्रकार ऋषभदेव से चार कुलों की स्थापना हुई।

१—वर्ष-भगवान् ऋषभदेवने जनकल्याणार्थ धर्मोपदेश दिया जिसका सारांश मान-संसार कर भरत

इनको न मानने वाला नास्तिक, पापी, अधर्मी और नरक गामी होगा। बस फिर तो कहना ही क्या था, क्षत्रियों को धर्मके नामपर मांसमदिरा की छूट मिल गई। वे अपने धर्म को बिलकुल भूल गये। वैश्य वर्ण के लिये ब्राह्मणों इतने कर्म कांड एवं मंत्र, तंत्र और मुहूर्त रच डाले कि थोड़ा सा भी काम वेबिना ब्राह्मणों के स्वतंत्र रूप से कर ही नहीं सकते और यदि वे ब्राह्मणों के बिना कोई काम कर डाले तो उनको न्याति जाति तो क्या पर, संसार मण्डल से अलग कर देने की धमकी दी जाती थी। वे किसी हालत में ब्राह्मणों से बच ही नहीं सकते थे। जब दोनों वर्ण ब्राह्मणों के पूरे २ आज्ञा पालक बने गये तो शुद्रों पर होने वाले ब्राह्मणों के अत्याचार के लिये तो कहना ही क्या था। शुद्रों को न तो धर्म करने का अधिकार था न शास्त्रके श्रवण करने का और न यज्ञादि का प्रसाद२ पाने का। यदि उपरोक्त अनुशासन में भूल चूक हो जाय तो उनको प्राण दंड दिया जाता था इत्यादि। उस समय विचारे शूद्रों की तो घास फूस के बराबर भी कीमत नहीं थी औ' उनको अछूत ठहरा दिये गये थे, वे पग-पग पर ठुकराये जाने लगे। यही कारण है कि जब ब्राह्मणों की अनीति बहुत बढ़ गई और जनता उन्हों से घृणा करने लग गई तब उन ब्राह्मणों के खिलाफ में भी साहित्य सृष्टि का सरजन होने लगा। धर्म ग्रन्थों में यह भी कहा गया कि संसार के चराचर प्राणि एक ही वर्ण६ के समझने चाहिये। पर कर्म की अपेक्षा से चार वर्ण बनाये गये हैं। जिनमें सब से ऊंचा नंबर क्षत्रियों का और सबसे नीचा नंबर शूद्रों का रखा गया है। पर यदि शूद्र लोग गुणवान् क्रियावान शीलवान् परोपकारी सेवा भावी आदि शुभ कार्य करने वाले हो तो उनको शूद्र क्यों पर ब्राह्मण७ वर्ण में समझ कर उनकी पूजा सत्कार किया जाय और ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेकर नीच एवं चाण्डाल कर्म करता हो वे शूद्रों की ही गिनती में गिने जाते हैं। यदि कोई ब्राह्मण व्यसनरूप चार वेदों को पढ़ लिया पर ब्रह्म८ कर्म एवं शुक्ल धर्म को नहीं करता है तब तो केवल उनके लिये वेद भार भूत ही हैं और वे मूर्ख शिरोमणि ब्राह्मण संसार मण्डल में गर्दभ रूप ही समझना चाहिये। इत्यादि जनता ठीक समझने लग गई कि कल्याण केवल जातिकुल या वर्ण से ही नहीं है पर कल्याण होता है गुणों से अत किसी भी वर्ण जाति का क्यों न हो पर कई गुणी है तो वे सर्वत्रपूज्यमान है। इत्यादि

७—यज्ञ सिद्धयर्थं मनयन्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजन् असृजत्क्षत्रियान्बाह्वो ।
वैश्यनप्यूरु देशात् शूद्रांश्चपाद योसृष्टा तेषां चैवानु पूर्वश ॥ "ह० सू० ॥६३॥

१—अथ हास्य वेदनुपश्टण्व तस्य पुत्रु तुष्य, श्रोत्र प्रति पुरण मुदा हरणे, जिह्वा पच्छेदो धारणे भेद। "गोतम सूत्र १९५॥

२—न शुद्रस्य मति दद्यान्नोच्छिष्ठ नह विष्कृतम्। न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ वशिष्ट सूत्र ॥

४—यजुर्वेद में अश्वमेध, गजमेध, नरमेध, मातृ पितृ मेध, अजामेधादि यज्ञों के नाम लिखे हैं।

५—नियुक्तस्तु यदा श्राद्ध दैवे च मांस मृत् सृजेत्। यावत् पशु रोमाणि तावन्नरक मृच्छन्ति ॥ (वशिष्ट स्मृति)

६—एक वर्ण मिद सर्व, पूर्वमासी यु धिष्टिर। क्रियकर्म विभागेन, चातुर्वर्णं व्यवस्थितम् ॥

७—शुद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान्ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मण ऽपि क्रिया भ्रष्ट शूद्राऽपत्यसमोभवेत् ॥

८—चतुर्वेदोऽपियो विप्र शुक्लं धर्म न सेवते। वेदभारधरोमूर्खः स वै ब्राह्मण गर्दभ ॥
शूद्राप्रेष्य कारिण, ब्राह्मणस्य युधिष्टर। भूमावन्न प्रदातव्य यथा श्वान स्तथै व स ॥
न जातिर्दृश्यते राजन्। गुणा कल्याण कारकाः। वृत्तस्थमपि चाण्डलं तमेव ब्राह्मणं विदु ॥
"वेद अकुश ग्रन्थ से"

दुःखप्रद का आगमन एवं अशांत होने वाला ही समझा जाता है। यही हाल संसार का हुआ जनता एक ऐसे सुधारक की प्रतीक्षा कर रही थी कि जो अशांति को मिटा कर शांति स्थापन करें।

ठीक उसी समय कई बुद्धिमानों की दीर्घदृष्टि दुःख से पीड़ित संसार की ओर पड़ी और उन्होंने किसी भी प्रकार से संसार का सुधार करने का निश्चय किया पर उस समय ब्राह्मणों के विरोध में खड़ा होना एक टेढ़ी खीर थी। अतः उन बुद्धिमानों ने ब्राह्मणों को ध्यान में रख कर तथा इनका मान महत्व कायम रख कर संसार को पुनः चार विभागों में विभाजित करना उचित समझा। और उन्होंने ऐसाही किया जिसको लोग वर्णव्यवस्था भी कहते हैं। जैसे कि:—

१—ब्राह्मण वर्ण—बुद्धि, शुद्धि और शांति एवं विद्या प्रचार से संसार की सेवा करने वाला
२—क्षत्रिय वर्ण—जनता के सदाचार एवं जानमाल की वीरता पूर्वक रक्षा करने वाला क्षत्रिय वर्ण।
३—वैश्य वर्ण—क्रय विक्रय एवं धर्म से संसार की सेवा करने वाला वैश्य वर्ण।
४—शूद्र वर्ण—शारीरिक श्रम द्वारा संसार की सेवा करने वाला शूद्र वर्ण।

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था कर पुनः शांति स्थापना की। परन्तु इस वर्ण व्यवस्था में ऊंच नीच एवं छुआछूत भावों को थोड़ा भी स्थान नहीं दिया था। मुख्य उद्देश तो सेवा भाव का ही था अपने अपने निर्दिष्ट किए हुए कार्यों द्वारा संसार की सेवा की जाय उस वक्त हुकूमत की अपेक्षा सेवा की ही विशेष कीमत थी। फिर भी उन चारों वर्ण वालों के लिए पारितोषिक रूप में ब्राह्मणों को पूजा, बहुमान क्षत्रियों को हुकूमत वैश्यों को विलास और शूद्रों को निश्चिन्तता प्रदान की गई थी। इससे कार्य एवं सेवा करने वालों का उत्साह बढ़ता रहे। इस प्रकार संसारपरमार्थपुण्य शान्ति स्थापना करदी पर वह शान्ति चिरस्थायी नहीं रह सकी। कारण ब्राह्मणों का दिल साफ नहीं था। यही कारण था कि आगे चल कर ब्राह्मणों ने चारों वर्णों की ऐसी भद्दी कल्पना कर डाली कि ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय उदर से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। अतः संसार में जो कुछ है वह हम ही हैं हमारे शरीर से निकले हुए शब्दों को तीनों वर्ण वाले शिरोधार्य करें। "त्रिवर्णो ब्राह्मणस्य वशवर्तेरन्।" अर्थात् तीनों वर्ण के लोग हमारे ही आधीन रहें हमारी सेवा करें। एवं हमारी आज्ञा का पालन करें। बसफिरतो ब्राह्मण अपनी मनमानी करनेमें कमी रखते ही क्यों ? यज्ञ यागादि के नाम पर आप स्वयं मांस भक्षण करना और क्षत्रियों को शिकार खेलना, मांस भक्षण करना तो उनके लिये साधारण कर्तव्य ही बना दिया गया। औरेर यज्ञोंमें ब्राह्मणोंने लाखों मूक प्राणियोंके कोमलकंठ पर छुरा चला कर अहिंसा प्रधान देश में खून की नदी बहाने लग गये और इस हिंसा कर्म से संसार में सुख शांति राज्य का धन देव और पशुओं की मुक्ति एवं स्वर्ग पहुँचाने का रास्ता बतलाया। यह भी केवल जबानी जमाखर्च नहीं वरन् इनकार्योंके लिये शास्त्रों में श्रुतियां भी रच डीइक्या ही क्यों पर भगवत्पादा के वेदोंके नामभी बदलदिये गये। और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नाम रख कर यह दिया की ये चारों वेद ईश्वर कृत हैं।

१—[illegible] ब्राह्मण कुल सर्वशास्त्र [illegible] पठन [illegible]।
२—क्षत्रियत्व विशेषण प्रजानां परिपालनम्।
३—कृषि गौरक्षा वाणिज्य वैश्यकाय परि कीर्तितम्।
४—[illegible]

इनको न मानने वाला नास्तिक, पापी, अधर्मी और नरक गामी होगा। बस फिर तो कहना ही क्या था, क्षत्रियों को धर्मके नामपर मांसमदिरा की छूट मिल गई। वे अपने धर्म को बिलकुल भूल गये। वैश्य वर्ण के लिये ब्राह्मणों इतने कर्म कांड एव मंत्र, तंत्र और मुहूर्त रच डाले कि थोड़ा सा भी काम वेबिना ब्राह्मणों के स्वतत्र रूप से कर ही नहीं सकते और यदि वे ब्राह्मणों के बिना कोई काम कर डाले तो उनको न्याति जाति तो क्या पर, संसार मडल से अलग कर देने की धमकी दी जाती थी। वे किसी हालत में ब्राह्मणों से बच ही नहीं सकते थे। जब दोनों वर्ण ब्राह्मणों के पूरे २ आज्ञा पालक बने गये तो शुद्रों पर होने वाले ब्राह्मणों के अत्याचार के लिये तो कहना ही क्या था। शुद्रों को न तो धर्म करने का अधिकार था न शास्त्र१ श्रवण करने का और न यज्ञादि का प्रसाद२ पाने का। यदि उपरोक्त अनुशासन में भूल चूक हो जाय तो उनको प्राण दड दिया जाता था इत्यादि। उस समय विचारे शूद्रों की तो घास फूस के बराबर भी कीमत नहीं थी और उनको अछूत ठहरा दिये गये थे, वे पग-पग पर ठुकराये जाने लगे। यही कारण है कि जब ब्राह्मणों की अनीति बहुत बढ़ गई और जनता उन्हों से घृणा करने लग गई तब उन ब्राह्मणों के खिलाप में भी साहित्य सृष्टि का सरजन होने लगा। धर्म ग्रन्थों में यह भी कहा गया कि ससार के चराचर प्राणि एक ही वर्ण६ के समझने चाहिये। पर कर्म की अपेक्षा से चार वर्ण बनाये गये हैं। जिनमें सब से उच्चा नंबर क्षत्रिया का और सबसे नीचा नबर शूद्रों का रखा गया है। पर यदि शूद्र लोग गुणवान् क्रियावान शीलवान् परोपकारी सेवा भावी आदि शुभ कार्य करने वाले हो तो उनको शूद्र क्यों पर ब्राह्मण७ वर्ण में समझ कर उनकी पूजा सत्कार किया जाय और ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेकर नीच एव चाण्डाल कर्म करता हो वे शूद्रों की ही गिनती में गिने जाते हैं। यदि कोई ब्राह्मण व्यसनरूप चार वेदों को पढ़ लिया पर ब्रह्म८ कर्म एव शुक्ल धर्म को नहीं करता है तब तो केवल उनके लिये वेद भार भूत ही हैं और वे मूर्ख शिरोमणि ब्राह्मण ससार मण्डल में गर्दभ रूप ही समझना चाहिये। इत्यादि जनता ठीक समझने लग गई कि कल्याण केवल जातिकुल या वर्ण से ही नहीं है पर कल्याण होता है गुणों से अत किसी भी वर्ण जाति का क्यों न हो पर कई गुणी है तो वे सर्वत्रपूज्यमान है। इत्यादि

* —यज्ञ सिद्धयर्थं मनथन्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजन् असृजत्क्षत्रियान्बाह्वो ।
वैश्यमप्यूरु देशात् शूद्रांश्चपाद योसृष्टा तेषां चैवानु पूर्वशः ॥ "ह० सृ० ॥६३॥

१—अथ हास्य वेदनुपश्रृण्व तस्त्र पुत्र तुल्यं, श्रोत्र प्रति पुरण मुदा हरणे, जिह्वा पच्छेदो धारणे भेद। "गोतम सूत्र १२५॥

२—न शुद्रस्य मति दद्यान्नोच्छिष्ठ नह विष्कृतम्। न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्॥ वशिष्ट सूत्र॥

४—यजुर्वेद में अश्वमेघ, गजमेघ, नरमेघ, मातृ पितृ मेघ, अजामेधादि यज्ञों के नाम लिखे हैं।

५—नियुक्तस्तु यथा श्राद्ध दैवे य मांस मृत् सृजेत्। यावत् पशु रोमाणि तावन्नरक मृच्छन्ति ॥ (वशिष्ट स्मृति)

६—एक वर्ण मिद सर्वं, पूर्वमासी यु धिष्टिर। क्रियकर्म विभागेन, चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम् ॥

७—शुद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान्ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मण ऽपि क्रिया भ्रष्ट शूद्राऽपत्यसमोभवेत् ॥

८—चतुर्वेदोऽपियो विप्र शुक्ल धर्मं न सेवते। वेदभारधरोमूर्खं स वै ब्राह्मण गर्दभ ॥
शूद्रात्प्रेष्य कारिण, ब्राह्मणस्य युधिष्टर। भूमावन्न प्रदातव्य यथा श्वान स्तथै व स ॥
न जातिर्दृश्यते राजन्। गुणा कल्याण कारकाः। वृत्तस्थमपि चाण्डल तमेव ब्राह्मणं विदु ॥
"वेद अंकुश ग्रन्थ से"

इसी प्रकार आपस में संघर्ष बढ़ने से पुनः संसार क्लेशमय बन गया । फूट कुसम्प, भी अपने पैर पसारने लगी । इस विषम काल में ब्राह्मणों ने वर्ण गोत्र जाति, उपजातियाँ और ऊंच-नीच की दीवारें भी बना डाली । जिससे जनता का संगठन चूर-चूर हो गया और जन समाज में छोटे-छोटे पक्षपात बन गये । प्रेम ऐक्य का स्थान शत्रुता ने धारण कर लिया । मनुष्य-मनुष्य के बीच में वैमनस्य दृष्टिगोचर होने लगा । क्या राजनीति, क्या सामाजिक क्या धार्मिक अर्थात् सर्वत्र छिन्न भिन्न हो इसी प्रकार की अव्यवस्था होगई थी । संसार पतन के पथ पर अग्रसर हो रहा था । जनता शान्ति प्राप्ति के लिए पुनः किसी एक ऐसी शक्ति की प्रतीक्षा कर रही थी कि पुनः संसार में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित करे । इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का संक्षिप्त हाल लिख दिया है । आगे क्या हुआ वह आगे पढ़ें ।

३—वंश—वंशों की उत्पत्ति नामांकित महापुरुषों से हुई है जैसे भगवान् ऋषभदेव से इक्ष्वाकुवंश भरत के पुत्र सूर्ययश से सूर्यवंश, बाहुबल के पुत्र चन्द्रयश से चन्द्रवंश, हरिवासयुगलियों के द्वारा हरिसेन से हरिवंश, कौरवों से कुरुवंश, पांडवों से पांडुवंश, यदुराजा से यादववंश, शिशुनाग राजा से शिशुनाग वंश, नन्दराजाओं से नन्दवंश मौर्य राजाओं से मौर्यवंश विक्रम राजा से विक्रम वंश इत्यादि अनेक नामांकित पुरुष हुए और उन्होंने जनता की भलाई करने से उनकी संतान उसी पुरुष के नाम पर ओलखाने लगी और आगे चलकर वही उनका वंश बन गया । इस समय के बाद तो बहुत से वंश अस्तित्व में आये ।

४—गोत्र—गोत्रों की उत्पत्ति ऋषियों के क्रियाकांड से हुई थी । भिन्न-भिन्न लोगों के संस्कार विधि एवं क्रियाकांड भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों ने एवं ऋषियों ने करवाये उन उन लोगों पर उन ऋषियों की छाप लग गई और उन उन ऋषियों के नाम पर उनके गोत्र बन गये । बाद में परम्परा से उन गोत्रवालों की संतान पर उन ऋषियों की संतान परम्परा का हक कायम हो गया । इस प्रकार गोत्रों की सृष्टि उत्पत्ति हुई यह कल्पना के लिये कहा जाता है कि जितने ऋषि ब्राह्मण क्रियाकांड करवाने वाले हुए हैं उतने ही गोत्र बन गए थे आज भी ब्राह्मणों के स्वार्थ पूर्ण रजिस्टरों में दर्ज है और कतिपय गोत्रों के नाम जैनधर्म के प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलते हैं जैसे कल्पसूत्र में उल्लेख मिलता है कि काश्यपगोत्र भारद्वाजगोत्र अग्निवेश्यायनगोत्र, वाशिष्ठगोत्र, गौतमगोत्र, हारितगोत्र, कौडिन्यगोत्र कात्यायनगोत्र, वत्सगोत्र, तुंगिकायनगोत्र, मढरगोत्र, माठरगोत्र, पाराशरगोत्र, व्याघ्रगोत्र कौशिकगोत्र, उत्कौशिकगोत्र, वासुलगोत्र इत्यादि ।

यदि यह सवाल किया जाय कि जैन गोत्रों को नहीं मानते हैं फिर उनके शास्त्रों में गोत्रों के नाम क्यों आए ? इसका कारण यह है कि ऋषियों के गोत्रों वालों ने जैनधर्म स्वीकार कर जैनश्रमण दीक्षा स्वीकार करली थी उनकी पहचान के लिए जैनशास्त्रकारों ने उनके गोत्रों का उल्लेख जैनशास्त्रों में किया है । दूसरा जैनधर्म ब्राह्मणों के गोत्र मानने को तैयार नहीं है । पर यह भी नहीं है कि जैन गोत्रों को बिलकुल नहीं मानते हैं कारण जैनागमों में गोत्र नामक एक कर्म है वह भी उच्चगोत्र नीचगोत्र दो प्रकार से है इनके अलावा आर्यवंशी कुलवंशी, उच्चगोत्र, नीचगोत्र इत्यादि । जैनों ने क्या वर्ण क्या गोत्र और क्या कुल सब इस मान्य है परन्तु जीव के भेद भावों से नहीं किन्तु पूर्व संचित कर्मानुसार ही मान्य है जैसे कहा है कि—

कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणोहोइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ उत्तरा० प्र० अ० २५ ॥

तथा जाति मदादि करने से नीचगौत्र और मदादि न करने से उच्चगौत्र में उत्पन्न होता है। और व्यवहारों में भी गौत्र मानने से जैन इन्कार नहीं करते हैं पर सगठन के टुकड़े टुकड़े करने वाड़ाबन्दी के गौत्र मानने को जैन तैयार नहीं है जोकि ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए बनाए थे।

५—जातियाँ-जातियों की सृष्टि भी हमारे ऋषियों के मस्तिष्क की उपज है जब कि ब्राह्मण देवों को वर्ण, गौत्रों से पूर्ण सतोष नहीं हुआ तब उन्होंने जातियों की सृष्टि की रचना प्रारम्भ कर दी तो इतनी जातियों रच डाली की जनता के लिये एक बड़ी जाल ही सिद्ध हुई और मकड़ी की तरह जनता उन जातियों के जाल में बुरी तरह फस गई कि कभी उस जाल से मुक्त हो ही नहीं सकती। पाठक! एक औसनार्षि की 'औसनस्मृति' को उठा कर देखिये कि उसमें जातियों की उत्पत्ति किस भाँति बतलाई है, नमूने के बतौर पर कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

१—क्षत्री से ब्राह्म कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह सूत जाति कहलाती है।
२—सूत से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह वेणुक जाति कहलाती है।
३—सूत से क्षत्रीय कन्यों का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह चमार जाति कहलाती है।
४—क्षत्री चौरीसे ब्राह्मण कन्याका विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्नहो वह रथकार सुथार जाति कहलाती है।
५—वैश्य से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह भाट जाति कहलाती है।
६- शूद्र से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न वह चाण्डाल जाति कहलाती है।
७—चाण्डाल से वैश्य का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह श्वापच जाति कहलाती है।
८—वैश्य से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह जुलाहा जाति कहलाती है।
९—जुलाहा से ब्राह्मण कन्या का विवाहहो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह ठठेरा जाति कहलाती है।
१०—जुलाहा से क्षत्री की कन्या का विवाह हो उससे प्रजा उत्पन्न हो वह सुनार जाति कहलाती है।
११—सुनार से क्षत्री की कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न वह उद्धवक जाति कहलाती है।
१२—वैश्य जार से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह पुलद जाति कहलाती है।
१३—शुद्र से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह कलाल जाति कहलाती है।
१४—पुलद से वैश्या कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह रजक जाति कहलाती है।
१५—शुद्र जार से क्षत्री कन्या का विवाह हो उससे प्रजा उत्पन्न हो वह रंगरेज जाति कहलाती है।
१६—रजक से वैश्य की कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह नट जाति कहलाति है।
१७—शुद्र से वैश्य कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह गडरिया जाति कहलाती है।
१८—गडरिये से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो चर्मोपजीवी जाति कहलाती है।
१९—गडरिये से क्षत्रिय कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह दरजी जाति कहलाती है।
२०—शुद्र जार से वैश्य कन्या का विवाह हो प्रजा उत्पन्न हो वह तेली जाति कहलाती है।
२१—ब्राह्मण विधीसे क्षत्रीय कन्याका विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न होवह सेनापति जाति कहलाती है।
२२—ब्राह्मण जार क्षत्रिय कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह भेषज् जाति कहलाति है।
२३—ब्राह्मण विधि० क्षत्रिय कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह नृप जाति कहलाती है।
२४—राजा से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह गूढ़ जाति कहलाती है।

२५—ब्राह्मण पिता० वैश्य कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह अंबष्ट जाति कहलाती है।

२६—ब्राह्मण जार से वैश्य कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न वह कुम्हार जाति कहलाती है।

इसके अलावा नाई,कायस्थ,गांधी,निषाद,भिल्ल चमार,धीवर (कहार) इत्यादि। अनेक जातियों की उत्पत्ति कही है जिसमें भी श्रीमनुर्षि फरमाते हैं कि मैंने जातियों का वर्णन संक्षेप में किया है अगर वे विस्तृत रूप से कहते तो न जाने कितनी जातियों के हाल कह डालते। इसी प्रकार अन्योन्य जातियों की उत्पत्ति लिखी जायें तो एक स्वतंत्र ग्रंथ ही बन जाय। ग्रंथ बढ़ जाने के भय से स्मृति के मूल श्लोक नहीं दिये जिज्ञासुओं को स्मृति मंगवा कर पढ़ लेना चाहिये। इस समय मेरे पास मौजुद है।

नीतिकार फरमाते हैं कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्।" कोई भी वस्तु क्यों न हो पर वह अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर जाती है तब अप्रिय लगने लग जाती है और उसका विनाश अनिवार्य बन जाता है जैसे कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अन्धकार प्रारम्भ होता है वह क्रमशः अमावस्या तक बढ़ता ही जाता है पर वह अन्धकार की चरम सीमा है। अतः अन्धकार के विनाश के लिए शुक्लपक्ष का आगमन अवश्य होता है। यही हाल संसार का हुआ कि वर्ण मिश्र जातियों द्वारा संसार का इतना पतन हो गया कि अब इसका उद्धार होना भी अनिवार्य हो गया। हम ऊपर लिख आए हैं कि जनता एक ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा कर रही थी कि इस बिगड़ी को सुधार कर सब जनता को शांति प्रदान कर सके ठीक उसी समय जगदुद्धारक भगवान् महावीर का शांति मय शासन प्रवृत्तमान हुआ।

भगवान् महावीर ने सब से पहले संसार को परमशांति का उपदेश दिया और संसार के चराचर सर्व प्राणियों को सुख अनुकूल और दुःख प्रतिकूल है। अतः किसी को यह अधिकार नहीं है कि अपने स्वार्थ के लिए किसी जीव को दुःख पहुँचावे अतः इस उपदेश का सबसे पहले प्रभाव यज्ञवादियों पर इस प्रकार हुआ कि पहले ही दिन के उपदेश से इन्द्रभूति आदि एकादश ब्राह्मण तथा उनके ४४ ० छात्रों ने भगवान् महावीर के पास श्रमण दीक्षा स्वीकार करली फिर तो कहना ही क्या था लाखों निरपराध मूक प्राणियों को अभयदान मिला इतना ही क्यों पर भाव सर्वत्र इस घृणित कार्य से जनता को नफरत होने लगी इधर भगवान्ने वर्ण, गौत्र और जातियों के ऊंच नीच रूपी बाड़ाबंदी भेद भाव को मिटाकर सबको समाचारी एवं समभावी बनाते हुए कहा कि जीवात्मा कोई ऊंच नीच नहीं है पूर्व संचित कर्मों से ही वे अपने किए कर्मों द्वारा सुख दुःख का अनुभव करते हैं। अतः मनुष्य को कर्म करने में ही सावधानी रखनी चाहिए इत्यादि भगवान् के उपदेश का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं वरन् बड़े बड़े राजा महाराजाओं और खास कर ब्राह्मणों पर भी हुआ। और वे पाखण्डियों को छोड़कर भगवान् महावीर के शांतिमय झंडे के नीचे आकर शांति का स्वाद लेने में भाग्यशाली बने। जिसमें शिशुनागवंशी सम्राट् बिंबसार अजातशत्रु राजावेन, चण्डप्रद्योतन, उदाई चेटक, शतानिक, दधीवाहन, काशी कौशल के अठारह गण राज, मल्लवी, लच्छवी, चंपा के नृपति शाल और भूपति प्रदेशी आदि मुख्य थे। 'यथाराजास्तथाप्रजा' इस युक्ति अनुसार जब राजा महाराजा भगवान् महावीर के उपासक बन गये तब साधारण-जनता तो पहले से ही शांति के लिये उत्सुक थी। भगवान् महावीर ने धर्मोपदेश के लिए क्या ब्राह्मण, क्या शूद्र, क्या क्षत्री, क्या वैश्य सबके लिए धर्म के दरवाजे खोल दिये। सम्राट् बिंबसार व राजावेन ने वर्ण व्यवस्था तोड़ दी और वर्णान्तर विवाह करना शुरू कर दिया। राजा श्रेणिक ने स्वयं एक वैश्य कन्या के साथ विवाह किया तथा अपनी एक पुत्री सेठ [illegible] और दूसरी

पुत्री अंतव्य-शूद्र मैतार्य को परणाई थी। फिर तो यह प्रथा आम जनता में प्रायः सर्वत्र प्रचलित हो गई। साधारण जनता के आर्थिक सकट दूर करने के लिए एव व्यापार के विकास के लिए भी बिंबसार राजा ने व्यापार की श्रेणियां बनादी यही कारण था कि आपका अपरनाम श्रेणिक प्रसिद्ध हुआ। तथा लेने देने के लिये सिक्काओं का चलन शुरू कर दिया कि जिससे जनता को अच्छी सुविधा हो गई। उस समय भगवान् महावीर के अलावा महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा का प्रचार करने में प्रयत्न किया था। महात्मा बुद्ध का घराना शुरु से ही भगवान् पार्श्वनाथ के परम्परा शिष्यों का उपासक था। और बुद्ध को वैराग्य का कारण भी पार्श्वसतानियों के उपदेश और अधिक ससर्ग का ही कारण था। बुद्ध ने सब से पहली दीक्षा भी उन ही निर्ग्रन्थों के पास ली थी और कुछ ज्ञान भी प्राप्त किया था। पर बाद में कई कारणों से वे निर्ग्रन्थों से अलग हो अपने नाम पर बुद्धधर्म चलाया। पर, आपके हृदय में अहिंसादेवी का प्रभाव तो शुरु से जैन अवस्था से ही प्रसारित था और उसका ही आपने प्रचार किया, बस इन दोनों महारथियों ने संसार का उद्धार कर सर्वत्र शांति की स्थापना करदी जिसके सामने ब्राह्मणों की सत्ता मृत्यु कलेवर सी रह गई। इतना ही क्यों पर बहुत स ब्राह्मण तो भगवान् महावीर के अनुयायी बन गये थे इतना ही नहीं बल्कि भगवान् महावीर के धर्म के अनुयायी चारों वर्ण वाले थे। जैसे कि—

१—क्षत्रिय वर्ण-राजा श्रेणिक, उदाई, सतानिक, प्रदेशी वगैरह २।

२—ब्राह्मण वर्ण-इन्द्रभूति, ऋषभदत्त, भृगुपुरोहितादि।

३—वैश्य वर्ण-आनद, कामदेव, शक्ख, पोक्खली, ऋषिभद्रादि।

४—शूद्रवर्ण- मैतार्य, हरकेशी, चाण्डाल,—सकडाल कुम्हारादि।

भगवान् महावीर के धर्म का प्रचार बहुत प्रान्तों में हो गया था तथापि विशाल भारत में कई ऐसी भी प्रान्त रह गई थी कि अभी तक वहां महावीर का सदेश नहीं पहुँच सका था। पर भगवान् महावीर निर्वाण के पश्चात् थोड़े ही समय में प्रभु पार्श्वनाथ के पाचवे पट्टधर आचार्य स्वयप्रभसूरि ने पूर्व प्रान्त से विहार कर सिद्धगिरी की यात्रा की और बाद में अपने पाच सौ शिष्यों के साथ अर्बुदाचल की यात्रा कर देवी चक्रेश्वरी की प्रेरणा से श्रीमालनगर में पधारे। उस समय वहां एक बृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा था, जिसमें बलीदान के लिए लाखों मूक पशु एकत्र किये गये थे। पर, उन दया के दरियाव सूरीश्वरजी को इस बात की खबर मिलते ही वे राज सभा में जाकर ऐसा सचोट उपदेश दिया कि वहा का राजा जयसेनादि ९०००० घर वालों ने हिंसा से घृणा कर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और उन निरपराध मूक प्राणियों को अभयदान दिया और नूतन श्रावकों के आत्म कल्याण के लिये भगवान् ऋषभदेव का उत्तंग मदिर बना कर समय पर उस की प्रतिष्ठा भी करवाई। बाद में ऐसा ही एक मामला पद्मावती नगरी में भी बना वहा भी आचार्यश्री पधारे और यज्ञ में बली दी जाने वाले लाखों मूक प्राणियों को निर्भय करके ४५००० घर वालों (राजा-प्रजा) को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा दी तथा वहां भगवान् शातिनाथ के मदिर की प्रतिष्ठा भी करवाई। आचार्यस्वयप्रभसूरि एक ऐसे मशीनगिर की तपास में थे कि मेरा अधूरा कार्य पूरा कर सके। उन्हों को ठीक ऐसा ही मशीनगिरी मिल भी गया जो विद्याधरवश में अवतार धारण कर राजऋद्धि का त्याग कर स्वयप्रभसूरि के पास दीक्षा ली थी जिनको वीराब्द ५२ वर्ष आचार्य पदार्पण किया जिनका नाम था रत्नप्रभसूरि देवी चक्रेश्वरी की प्रेरणा से आप अपने ५०० शिष्यों के साथ आगे बढ़कर मरुधर भूमि में पधारे। पर वहा जाना किसी साधारण व्यक्ति

का काम नहीं था । कारण वाममार्गियों के अखाड़े मानों प्रायः जन किले की भांति मजबूत बने हुवे थे उनके खिलाफ में खड़ा होना टेढ़ी खीर थी पर आचार्यश्री ने जब सेवा के लिये अपना जीवन अर्पण कर चुके थे वे अनेक परिषह और सैकड़ों कठिनाइयों की तनिक भी परवाह नहीं रखते हुए दो-दो चार चार मास भूखे प्यासे रह कर उन अधर्मों के वहना वर्जना को सहन करते हुए आखिर क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर नगर में पहुँच गये पर वहां तो स्वागत सम्मेलन और वहां ठहरने को मकान । वहां दो-दो चार-चार मास के भूखे प्यासे के लिये पारणा एवं आहार पानी । फिर भी वे न आया व्याकुलता और न किया व्याख्यान । वे सिंह की तरह निरावलंबन नगर के समीप लौणाद्री पहाड़ी पर ध्यान लगा दिया । उन परोपकारी आचार्यों के तप तेज, ब्रह्मचर्य और सद्भावना का जनता पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि साधारण जनता से राजा प्रजा तक तथा पर इच्छाओंवालों की चरित देने वाली चामुण्डा देवी को जैन धर्म की दीक्षा देकर एक पृथक् २ सब पंथ के लोगों को समभावी बनाकर अपने दिव्यज्ञान द्वारा भविष्य का लाभ जानकर 'महाजनसंघ' नामक एक सुदृढ़ संस्था स्थापन कर दी जिसके अंदर लाखों और पुत्री तथा अनेक न तथ परिवार पवित्र हो गये ।

जब आचार्य रत्नप्रभसूरि को अपने निर्धारित कार्य में सफलता मिल गई तो आपका तथा आपके और साधुओं का उत्साह खूब ही बढ़ गया । क्योंकि तथा उन्हों की परम्परा के आचार्यों ने एक ही प्रान्त एवं एक ही मठधर में बैठकर टुकड़े खाना स्वीकार नहीं किया था पर वे सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, लाट, अवंती, मेदपाट, शूरसेन, मत्स्य, कुरु, पांचालादि प्रान्तों में भ्रमण कर सर्वत्र जैन धर्म एवं अहिंसा का झंडा फहराया था । इस से जिन महाजनों की संख्या लाखों की उनको बढ़ाकर करोड़ों तक पहुँचादी लोक युक्ति में कहा करते हैं कि श्रम बिना लाभ नहीं ।' 'दुःख बिना सुख नहीं" इत्यादि । यदि वे महा पुरुष इतना कष्ट नहीं उठाते तो उनको इतना लाभ भी कहां से होता दूसरा वह समय भी उनके खूब ही अनुकूल था ।

इतिहास से पता चलता है कि इ० पू० के पांच छः शताब्दियों पूर्व से इ० सं० की तीसरी शताब्दी तक भारत के पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक चौतरफ्फ अधिकार जोर का सर्वत्र जैन राजाओं का ही राजा था केवल सम्राट् अशोक पहले जैन था पर बाद में बौद्ध धर्म का प्रचार किया और वृ. पुत्र ने पुष्यमित्र ने वेदानुयायी होकर वेद धर्म को जीवित रखा । शेष सर्वत्र जैन राजाओं की ही हुकूमत चलती थी उस समय जैनाचार्य भी चुपचाप नहीं बैठ गये थे पर वे अनुकूल समय में अपने धर्म के प्रचार में संलग्न थे और उन्होंने भारत में ही नहीं पर सम्राट् बिंबसार चन्द्रगुप्त और सम्प्रति की सहायता से भारत के बाहर पाश्चात्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचार किया था । जिसके स्मृति चिन्ह आज भी अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि जैनधर्म का आर्य अनार्य देशों में भी प्रचार था और जैनधर्म के अनुयायी करोड़ों की संख्या में थे और उन सब का रोटी बेटी व्यवहार प्रायः शामिल था । किसी भाई को ऊंच नीच नहीं समझा जाता था निर्बलों को सहायता पहुँचा कर अपनी बराबरी का बना लेने में अपना गौरव समझते थे । व्यापारादि में सब से पहला स्थान स्वधर्मी भाइयों को ही दिया जाता था । इत्यादि सुविधाओं के कारण ही दीगर लोग जैन धर्म खुशी से अपना लेते थे । और जब तक जैनों में साधर्मियों के प्रति सद्भावनाएं रही वहां तक तो जैन धर्म की उन्नति व जैन अनुयायियों की वृद्धि होती रही थी यही कारण है कि उस समय जैन धर्मियों की जन संख्या ४० चालीस क्रोड़ थी । इस बात के लिये आज भी इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् लेखक स्वीकार करते हैं ।

जैनधर्म की यह एक विशेषता है कि वे अपने उन्नति के समय में एवं सर्वत्र जैन राजाओं की हुकुमत में भी किसी अन्य धर्मियों पर किसी प्रकार जोर जुल्म नहीं किया था। बलात्कार से न तो किसी को जैन बनाया था और न किसी की जायदाद ही छीन थी। पर अन्य धर्मियों में यह समभाव नहीं था। उन्होंने अपनी सत्ता में जैनों को बहुत सताया। यहां तक की पुष्पमित्र ने हुक्म नामा निकाला कि जैन- बौद्ध साधुओं का शिर काट कर लावेगा १०० मोहरें उसको पुरस्कार स्वरूप दी जावेंगी। दहाड़ राजा ने हुक्म निकाला कि त्यागी साधु—सारंभी ब्राह्मणों को नमस्कार करे। महाराष्ट्र प्रांत में हजारों जैन साधुओं को मौत के घाट उतार, दिये, वह भी एक बार ही नहीं, पर दो तीन बार। कलिंग में भी जैनों पर अत्याचार कर कलिंग को जैनों से निर्वासित कर दिया। श्वेतदूत राजा तोरमण आचार्यश्री हरिगुप्तसूरि के उपदेश से जैनधर्म का अनुरागी बन गया था और उसने भ० ऋषभदेव का जैनमंदिर भी बनवाया था पर उसका ही पुत्र मिहिरकुल शिव धर्म को अपनाकर जैनो पर इतना अत्याचार किया कि कई जैनों को जननी जन्म भूमि (मरुभूमि) का त्याग कर अन्य प्रान्तों में जाकर वसना पड़ा इत्यादि। अनेक उदाहरण विद्यमान है और जैनों के मंदिर तो सैकड़ों की संख्या में जैनोत्तरों ने हजम कर लिये जो आज भी विद्यमान हैं। खैर, प्रसंगोपात इतना लिख कर अब हम मूल विषय पर आते हैं।

जैनाचार्यों ने जिस वर्ण, जाति, गौत्रादि, ऊंच नीच रूपी जहरीले भेदभाव एवं वाड़ाबन्धी को समूल नष्ट कर तथा मांसाहारी एवं व्यभिचारी जैसी राक्षसी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की शुद्धि कर सदाचारी एवं सयमावी बनाए थे और उनके आपस में रोटी बेटी का व्यवहार खूब खुले दिल से होता था। इस सहृदयता ने जैनों की संख्या को बढ़ा कर उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँचा दिया। जैन केवल स्वार्थी ही नहीं थे पर वे परमार्थी भी थे उन्होने देशवासी भाइयों के लिये काल, दुकाल एवं राज संकट के समय प्राण प्रण से एवं असंख्य द्रव्य व्यय करके अपने स्वार्थ त्याग द्वारा जन समाज की बड़ी २ सेवाएं की थीं। समाज और धर्म के लिये तो कहना ही क्या था। आज भी इतिहास पुकार-पुकार कर कहता है कि जैनों ने देश से बाकी है शायद ही दूसरे किसी ने की हो। प्रत्यक्ष प्रमाण में भी भारत में जगतसेठ, नगरसेठ, टीकायत, चौवटिया, पंच, बोहरा, साहुकार, शाह आदि ऊंचे २ पदों पर जैनों को ही सन्मान मिला था। इससे भी पाठक। अनुमान कर सकते हैं।

जैनों की वह उन्नति स्थायी रूप में नहीं टिक सकी जब से जैनों में आपस का प्रेम गया, पर उपकार की बुद्धि गई, साधर्मियों की वात्सल्यता गयी, धर्म का गौरव गया और स्वार्थ जैनों पर छापा मारा इधर ब्राह्मणों के संसर्ग से पुनः जातियों की सृष्टि शुरू हुई छोटे-छोटे बाड़े बंधने लगे जाति मच्छर्ता का भूत जैनों पर सवार हुआ। ऊंच नीच भावना ने हृदय में जन्म लिया, जाति मच्छरता ने अहपद पैदा किया। मत, पन्थ गच्छों की बाड़े बन्धी होने लगी, शुद्धि की मिशन के कष्ट आकर वेकार बन गई। राज्य सत्ता ने जैनों से किनार लिया बस, जैनों की अवनति ने उनको गहरे गर्त में डाल दिया जिसको आज हम अपनी आंखों से देख रहे हैं।

एक ही महावीर के उपासकों में सब से पहले श्वेताम्बर और दिगम्बर दो पार्टियां बनीं। फिर दिगम्बरों में संघ भेद होकर अनेक टुकड़े हो गए और श्वेताम्बरियों में चैत्यवास, वस्तीवास, दो बड़ी पार्टिया हो गई तदन्तर गच्छों के भेद हुए जिनमें ८४ गच्छ तो केवल कहने मात्र के हैं पर नामावली लिखी जाय तो

तीन सौ से अधिक गच्छों की संख्या आती है इसमें बहुत से गच्छ तो सब समाचारी वाले हैं और कई क्रिया भेद के गच्छ भी हैं और वे सब अपनी-अपनी पार्टी की रक्षा में एवं वृद्धि में अपनी सब शक्ति को खर्च करने में ही अपना गौरव समझा । पर इससे जैन धर्म को क्या लाभ होता इस बात को भगवान् महावीर की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले भूल गए । आगे चल कर कई मत पैदा हुए जिन्होंने जैन धर्म के संगठन को चूर चूर कर डाला और समाज को फूट व कुसम्प का अखाड़ा बना डाला और कई क्रियाएं भी ऐसी कर डाली कि जिससे जैन धर्म दुनिया की नजर में गौण भी क्या कारण साधारण जनता तत्त्व पर लक्ष्य न देकर वर्तमान कार्य किया पर ही अपना मत बांध लेती है जैसे जैनों की अहिंसा ने जगत् उद्धार किया था और सर्वत्र इसके गुण गाए जाते थे । पर उसके आचरण में इतना परिवर्तन कर दिया कि आज सर्वत्र उन उसकी हंसी करने लग गये । ऐसी ही वेश परिवर्तन का कारण हुआ । जैनों ने देश समाज और जन साधारण के हित के लिए लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय किया पर कई असमझ लोग मनुष्य को अन्न जल पशुओं को घास डालने में भी पाप समझने लगे तथा मरते हुए जीव को बचाने में भी पाप की प्ररूपणा करने लग गए । जो अज्ञानी लोग केवल ऐसे मनुष्यों के परिचय में आते हैं वे जैन धर्म के प्रति कैसे भाव रखते हैं पाठक ! स्वयं समझ सकते हैं ।

अब जातियों की संख्या को भी कुछ लीजिये । भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरी ने पृथक २ वर्ण गोत्र, जातियों के भेदभाव मिटाकर सब को समभावी जैन बनाए थे । कालान्तर में उनके तीन नाम निर्माण हुए । श्रीमालनगरवालोंका श्रीमाल पद्मावतीनगरवालोंका प्राग्वट और उपकेशनगरवालोंका उपकेश । केवल नाम पृथक हुए पर इनका रोटी बेटी का व्यवहारादि सब शामिल ही थे इतना ही क्यों पर बाद में भी जैनाचार्यों ने मांस, मदिरासेवी क्षत्रियोंको जैनधर्म की दीक्षादी । उन नव दीक्षित क्षत्रियोंका रोटी बेटीका व्यवहार उसी समय से शामिल कर लिया गया था पर किसी समय एक जाति वाले के हृदय में अहंपद आया और वहां अपनी लड़की थी दूसरे को कह दिया कि आगे हम तुमको बेटी नहीं देंगे । तो दूसरे स्थान दूसरे की लड़की थी वहां उन्होंने कह दिया कि हम तुमको बेटी नहीं देंगे । बस बेटी व्यवहार बन्द होजाना किसी-केवल को संकीर्ण करना यह स्वल्प ही कारण है । इसी प्रकारएक भौगोलिक कारणसे लघु साजन, जो उसमें से भेद बन गए । आधुनी जैनोंकी एक कहावत लगी है कि वे दीवाली सब जानते हैं पर बोलना नहीं जानते जैसे उपर बतलाया गया है । कि जैन धर्म के पालन करने वाले श्रीमाल प्राग्वट, उपकेश बड़ा एवं लघु हुए—समानके आपसमें बेटी व्यवहार था पर वह टूट गया फिर उसको जोड़ नहीं सके इन जातियों के अग्रेसर नेता अपने दिल में समझते हैं कि इन संकुचित विचारों से हमें हानि पहुंची और पहुंचती जा रही है फिर भी इसके लिए आज तक किसी ने प्रयत्न नहीं किया । इसमें अहंपद के अलावा कुछ नहीं है प्रत्येक यही बात समझती है कि मैं कुछ करूंगा तो कमजोर कहलाऊंगा मेरे क्या गरज पड़ी है कि मैं आगे होकर झगड़ा करूं इससे पाया जाता है कि जैनधर्म की हानि लाभ की किसी को परवाह नहीं है केवल अपने २ अहंपद की रक्षा करना उनके हित में है । इसी प्रकारअग्रवाल खंडेलवाल पेढ़िया, बरदोनिया पौष्कोत्या पंचा हूमड़, मालसार, मोढ गुर्जर, देस लाडादि । बहुत जातियां जैनधर्म पालन करने वाली थी परन्तु उनके अन्दर से किसी एक का भी बेटी व्यवहार दूसरे के साथ नहीं है इतना ही नहीं पर एक जाति दूसरी जातिका खानपान तक भी नहीं रखती । जैसे देखो मारवाड़ के ओसवाल मेवाड़, मालवा, पंजाब, गुजरातादि अन्य प्रान्त वालों ओसवालों को बेटी नहीं

देते तब अन्य प्रान्त वाले मारवाड़ मालवा वालों को बेटी नहीं देते। यही कारण है कि एक प्रान्त के जैनों का दूसरे प्रान्त के जैनों के साथ कुछ भी सम्बन्धनहीं है और धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में एक दूसरे की मदद भी नहीं करते। इतना ही क्यों पर अकेले मारवाड़ के ओसवालों मे भी राजवर्गी, मुशदी लोग बाजार का साथ अर्थात् व्यापार करने वालों के यहां बेटी देने में सकोच करते हैं धनवान लोग साधारण स्थिति वालों को अपनी पुत्री देना नहीं चाहते यही कारण है कि आज समाज में कुजोड़ एव बाल-वृद्ध विवाह और कन्या विक्रय, वर विक्रय का भूत सर्वत्र ताडवनृत्य कर रहा है विधवा विदूर और कुवारों की दशा इनसे भी शोचनीय है यदि यही परिस्थिति रही तो एक शताब्दी में ही इस समाज की इतिश्री होने में कोई सदेह नही है। खैर, प्रसगोपात इतना कह कर पुन जातियों के विषय पर आते हैं कि जैनाचार्यों ने वर्ण, जाति, गौत्रादि को एक कर सगठन को मजबूत बनाया था। उसी महाजन सघ की तीन शाखा हुई जिसमें एक उपकेवंश एव ओसवाल जाति के अन्दर कितने गौत्र एवं जातिया बन गई थी और पृथक् २ जातियां बनने के कारण भी बड़े ही अजब थे जिसको पढ़ कर पाठक आश्चार्य अवश्य करेंगे। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महाजन सघ की स्थापना की थी बाद उसके अन्दर नामांकित पुरुष हुए। जैसे—

१ नागवशी आदित्यनाग नामक पुरुषने सामाजिक एव धार्मिक ऐसे-ऐसे काम किए कि उनकी सतान, आदित्यनाग के नामसे प्रसिद्ध हुई और आगे चल कर यही इनका गौत्र बन गया। तथा चौरड़िया, गुलेच्छा, पारख, गदइया, आदि ८४ जातियों इसी गौत्र से उत्पन्न हो गई इससे हम इतना जरूर समझा सकते हैं कि किसी समय इस जाति की बड़ी भारी उन्नति थी और इस जाति में इतने ही नामांकित पुरुष हुए उन के नाम एवं काम से ही पृथक २ जातियां बन गई। पर उन जातियों के छोटे छोटे वाड़े बन जाने से लाभ के बदले हानि के कारण बन गये थे। इस पतन के समय में भले ही आज वे ८४ जातियां नहीं रही हो पर वंशावलियों से हम देख सकते हैं कि एक समय एक ही गौत्र की ८४ जातियां बन गई थी

२—बप्पनाग नामक महापुरुष की सतान बप्पनाग गौत्र के नाम से मशहूर हुई इनकी भी आगे चल कर ५२ जातियां बन गई थी।

३—महाराजा उत्पलदेव की सन्तान ने समाज में अति श्रेष्ठ कार्य कर बतलाने से वे श्रेष्ठिकहलाये आगे चल उनकी भी कई जातियां बन गई थी।

४—तप्तभट्ट पुरुष की सतान तप्तभट्ट कहलाई।

५—बलाह नामक भाग्यशाली की सतान बलाहगौत्र कहलाई।

६—कुम्मट का व्यापार करने वाले कुम्मट कहलाये।

७—कर्णाट से आये हुए लोग कर्णाट कहलाये।

८—कन्नौज से आये हुए समूह कन्नोजिये कहलाए।

९—डिडुनगर से आए हुए लोग डिडु कहलाए।

१०—भादा की सतान भाद्र गौत्र के नाम से मशहूर हुई।

इत्यादि अनेक गौत्रों की सृष्टि बन गई। यह बात तो स्वयं सिद्ध है कि ओसवाल जाति में अधिक लोग राजपूत ही हैं और राजपूतों में 'दारुड़ा पिना और मारूड़ा गाना' इसके साथ हासी मश्करी करने का रिवाज था। जैनाचार्यों ने उनके मासमदिरादि सेवन की कुप्रथा छुड़ा कर जैन तो बना दिये गये थे पर उनकी

हर्पोत, वालोत, जसोत्, ललाणी सीपाणी, आसाणी, वेगाणी, राखाणी, देदाणी रासाणी जीवाणी, रूपाणी, सानोणी, घमाणी, वेजाणी, दुघाणी, वागाणी जीनाणी, सोनाणी, घोघाणी, कर्माणी, हंसाणी, जैताणी भेराणी, मालाणी, भोमाणी, सलखाणी, सूजाणी, मीदाणी इत्यादि ।

इस प्रकार से श्रोसवाल जाति की अनेकोनेक जातिया बन गई जिसकी गिनती लगाना मुश्किल है कारण श्रोसवाल जाति भारत के चारों ओर फैली हुई है तथापि वि. सं० १७७० की साल में एक सेवग प्रतिज्ञा करके निकला कि मैं तमाम श्रोसवालों की जातियों को गिन कर ही घर पर आऊंगा। उसने दस वर्ष तक भ्रमण करके श्रोसवालों की १४४४ जातियां गिन कर दक्षिणा में दस हजार रुपया लेकर घर पर आया तब सेवक की औरत ने सवाल किया, कि आपने श्रोसवालों की तमाम जातियों के नाम लिख लाए है पर उसमें मेरे पीयर वाले श्रोसवालों की जाति लिखी है या नही ? इस पर सेवक ने पूछा कि तुम्हारे पीयर वाले ओसवालों की क्या जाति है ? औरत ने कहा कि 'दोसी' इस पर सेवक ने निराश होकर कहा कि यह जाति तो मेरे लिखने में नहीं आई है तब औरत ने कहा कि एक दोसी ही क्यों पर और भी अनेक जातियां होसी। सेवग ने कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है, श्रोसवाल, भोपाल एक रत्नाकर हैं उनमें जातियां रूपी इतना रत्न है कि जिसकी गिनती लगाना ही मुश्किल है। इससे पाया जाता है कि एक समय श्रोसवाल जाति उन्नति के उच्चे शिखर पर थी।

मुझे भी जितनी जातियों की उत्पत्ति का इतिहास उपलब्ध हुआ है प्रस्तुत ग्रंथ में यथा स्थान दर्ज कर दिया है। अन्त में इस लघु लेख से पाठक कुल, वर्ण, गोत्र, और जातियों की उत्पत्ति का इतिहास से अवगत हो गये होंगे कि जिन महापुरुषों ने पृथक् २ गोत्र जातियों को समभावी बनाकर एक ही सगठन में ग्रन्थित कर उनको उन्नति के उच्चे स्थान पर पहुँचा दी थी पर भवितव्यता बलवान होती है कि उन सगठन का चूर चूर कर पुन. वडा वन्धी में टुकड़े टुकड़े कर डाले विशेष आश्चर्य की बात है कि आज भ्रातृभाव का जमाना में हम देख रहे हैं कि दूसरे को तो क्या पर एक ही धर्म पालन करनेवाला मानव समाज में भोजन व्यवहार शामिल है वहाँ वेटी व्यवहार नहीं है इसपर जरा सोचा जाय कि जब भोजन व्यवहार कर लिया तब उसके साथ वेटी व्यवहार करने में क्या हर्जा है। यदि हम दूसरों को हलके समझे तब उनके साथ में बैठकर भोजन व्यवहार कैसे कर सके आदि भोजन व्यवहार करते समय हम दूसरे को हलका नहीं समझे तब वेटी व्यवहार करने में क्या सकीर्णता—बस। हमारे पत्तन का मुख्य कारण यही हुआ कि हमारा सगठन छीन्न भिन्न होकर अनेक विभागों में विभाजित हो गया है। दूसरा हम हमारे पूर्वजो के गौरव पूर्ण इतिहास से अनभिज्ञ है। जब तक अपने पूर्वजों का इतिहास का हमको ज्ञान नहीं है वहां तक हमारी नशों में कभी खून उबलेगा ही नहीं जब हमारा खून न उबलेगा तब हम आगे बढ ही नहीं सकेंगे यही हमारे पतन के दो मुख्य कारण है।

अन्त में हम शासन देव से प्रार्थना करेंगे कि हमारे पूज्य मुनिवरों को सावधान करे कि वे समाज को जोरों से उपदेश कर पुन. उस स्थिति पर ले आवे कि हमारे पूर्वाचार्यों के समय में थी और समाज नेताओं को भी अपने हृदय को विशाल एव उदार बनाकर संकीर्णता सूचक वाड़ा बन्धी को जड़ मूल से नष्ट कर अपनी समाज का प्रत्येक क्षेत्र को विशाल बनाले कि हम पुन' विशाल बन जावें। इति शुभम्॥

हाँसी मस्करी की इतनी पर्याप्त नहीं हुई थी कि इस समय नमूना तो आज भी हम देख सकते हैं जैसे कि ओसवालों के यहाँ जब कि महमान आते हैं तब उनके स्वागत में गीत गाते हैं उसमें भी वही रस्म चला करते हैं अतः आपस की हाँसी मस्करी से भी कई जातियां बन गई, कई राज का काम करते थे, कई व्यापार से, कई नगरों के नाम से, कई धार्मिक कार्य करने से और कई नामांकित पुरुषों के नाम से नमूने के तौर पर कतिपय जातियों के नाम यहाँ दर्ज कर दिये जाते हैं। जिसस पाठक स्वयं समझ सकेंगे।

१—हाँसी मस्करी से बनी हुई जातियों के नाम—खांड, सियाल, मच्छा ढेंढ़ा, चील, काग मुर्गीया, माहर, गधा बाघमार, छुंछ चुगला, मिन्नी बापनार गाधिया, कंठलिया, मरड़, हीरण, नाहरेचा, बछाविरा, चीकणिया, देसरिया, घोला बांगड़ा, दोढ़ियाणी, घोड़ावत नक्खा चिपड़, बकरा, आदि २।

२—व्यापार करने स जातियों के नाम—घीया, तेलिया केसरिया, कपूरिया, गुगलिया, नालसा, मदरिया चूनिया, कोठारिया पाँची, हरियाणा कपड़ा बम्बक, सोनी, मीनारा, बजिया जौहरी, कसिरिया, कपड़ मोहरा मणियारा गुंदिया, चीकणिया संखेसरिया हलदिया, पालड़ा सेठिया बजाज कापड़िया, संघवि पारख, कुम्भट कंसारिया, सुपारिया मोदिया, चौपड़ा सुवरिया पूंगलिया, समुद्रीया, हुंडीवाल, सेठीया गोलछिया, मोरी, सिन्धोविय गुलशेचिया, बजरिया, घोमचिया शानिय, इत्यादि इत्यादि।

३—नगरों के नाम पर भी कोई जातियां बन गई थी—जैसे हथुण्डिया, खाचीया, भादानी, बाफणा रामपुरिया, पीपाड़ा, फलोदीया सीरोहिया, भिन्नमाला मेड़तिया, नागौरी, कुचेरिया, हरसोरा श्रीश्रीमाल मोरखिया रामसेना, महाजन गुदेचा, कांमी जयपुरिया, जैसलमेरा, बीकपुरिया मारवाड़ा, बंबोरा सोर-बना सूरपुरिया गांधीरा सीतलिया, संघरिया, मकवाणा सौनाया माथुरा मुकेमिया, मरहेचा, बाफिणा, रणिकथडिया बड़ोदाला मेरवाड़ा हरखा कांमसिया, रोजीवाल नागौरिया देविया, नागीरिया। संघविया शान्तिया, भीनमाल रत्नपुरा खीरा, पीलचरा पुंगलिया, भीमाल झुथोड़ा, पोकरणा, समदड़िया, इत्यादि

४ राज का काम करने वालों की भी कई जातियां बन गई जैसे—भंडारी कोठारी, कामदार, खजांची, फौजदार चौधरी पोतदार मेहता, कानूंगा, दफ्तरी सूरवा रणधीरा, पोकरणा, मोदिया बोहरा दोशीदार चौधरा नगरसेठ, दीवान मोहणा, राजकोठी सिसोदिया राठौड़, चौहाण, परमार सोलंकिया।

५—कई जातियां वकार अन्त की भी बन गई जैसे — कोठेचा, कांकरेचा, भेमरेचा महेचा, नाहरेचा कांकरेचा मालेचा पामेचा पालेचा मालेचा डागरेचा, पासरेचा संखलेचा संगीचा मारेचा, मलीचा, गुदेचा, गुलसेचा काठेचा, मुगेचा, राबेचा सखेचा पुगेचा, कुमेचा, बाफरेचा जालोचा, सोलेचा, भुंगेचा सालेचादि।

६—धार्मिक कार्यों स भी कई जातियां बन गई जैसे—संघी, चौपरिया, धोकावत, पुजारा, हुमबाहर नवकारसिया धर्मीधाई बारसलिया भीलड़ा दादा, चूनिया केसरिया, दीवरिया, धीलावरिया सियारिया, माथुरा, मालसिया मालविया। इत्यादि।

७—कई जातियां चिढ़ने चिढ़ाने से भी बन गई जैसे—ढालिया मूलेचा कुरकिया, सिहुरिया, रूपायत, बठखड़ा, चिढ़वरिया। इत्यादि।

८—कई जातियां अपने पूर्वजों के नाम पर बन गई जैसे—सिंहावत, बाबावत, नाहावत, बोघरा मालावत, भाग्यावत सोनावत, नगावत, करमोत, सदावत, नानावत, दुधावत खेतावत, पूनावत, सालेचा, देसलोत भमोत, राजोत, रामावत, सूजावत, खेतावत, गजावत मूलावत मीनावत झूठावत, नाथोत,

हर्षोत, धालोत, जसोत्, ललाणी सीपाणी, आसाणी, वेगाणी, राखाणी, देदाणी रांताणी जीवाणी, रूपाणी, सानोणी, धमाणी, तेजाणी, दुधाणी, वागाणी जीनाणी, सोनाणी, मोपाणी, कर्माणी, हंसाणी, जैताणी भेराणी, मालाणी, भोमाणी, सलखाणी, सूजाणी, भीदाणी इत्यादि।

इस प्रकार से ओसवाल जाति की अनेकोनेक जातियां बन गई जिसकी गिनती लगाना मुश्किल है कारण ओसवाल जाति भारत के चारों ओर फैली हुई है तथापि वि. सं० १७७० की साल में एक सेवग प्रतिज्ञा करके निकला कि मैं तमाम ओसवालों की जातियों को गिन कर ही घर पर आऊंगा। उसने दस वर्ष तक भ्रमण करके ओसवालों की १४४४ जातियां गिन कर दक्षिणा में दस हजार रुपया लेकर घर पर आया तब सेवक की औरत ने सवाल किया, कि आपने ओसवालों की तमाम जातियों के नाम लिख लाए है पर उसमें मेरे पीयर वाले ओसवालों की जाति लिखी है या नहीं ? इस पर सेवक ने पूछा कि तुम्हारे पीयर वाले ओसवालों की क्या जाति है ? औरत ने कहा कि 'दोसी' इस पर सेवक ने निराश होकर कहा कि यह जाति तो मेरे लिखने में नहीं आई है तब औरत ने कहा कि एक दोसी ही क्यों पर और भी अनेक जातियां होसी। सेवग ने कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है, ओसवाल, भोपाल एक रत्नाकर हैं उनमें जातियां रूपी इतना रत्न है कि जिसकी गिनती लगाना ही मुश्किल है। इससे पाया जाता है कि एक समय ओसवाल जाति उन्नति के उच्चे शिखर पर थी।

मुझे भी जितनी जातियों की उत्पत्ति का इतिहास उपलब्ध हुआ है प्रस्तुत ग्रंथ में यथा स्थान दर्ज कर दिया है। अन्त में इस लघु लेख से पाठक कुल, वर्ण, गोत्र, और जातियों की उत्पत्ति का इतिहास से अवगत हो गये होंगे कि जिन महापुरुषों ने पृथक् २ गोत्र जातियों को समभावी बनाकर एक ही सगठन में ग्रन्थित कर उनको उन्नति के उच्चे स्थान पर पहुँचा दी थी पर भवितव्यता बलवान होती है कि उन सगठन का चूर चूर कर पुन. बड़ा बन्धी में टुकड़े टुकड़े कर डाले विशेष आश्चर्य की बात है कि आज भ्रातृभाव का जमाना में हम देख रहे हैं कि दूसरे को तो क्या पर एक ही धर्म पालन करनेवाला मानव समाज में भोजन व्यवहार शामिल है वहाँ बेटी व्यवहार नहीं है इसपर जरा सोचा जाय कि जब भोजन व्यवहार कर लिया तब उसके साथ बेटी व्यवहार करने में क्या हर्जा है। यदि हम दूसरों को हलके समझे तब उनके साथ में बैठकर भोजन व्यवहार कैसे कर सके आदि भोजन व्यवहार करते समय हम दूसरे को हलका नहीं समझे तब बेटी व्यवहार करने में क्या सकीर्णता—बस। हमारे पतन का मुख्य कारण यही हुआ कि हमारा सगठन छीन्न भिन्न होकर अनेक विभागों में विभाजित हो गया है। दूसरा हम हमारे पूर्वजो के गौरव पूर्ण इतिहास से अनभिज्ञ है। जब तक अपने पूर्वजों का इतिहास का हमको ज्ञान नहीं है वहां तक हमारी नशों में कभी खून उबलेगा ही नहीं जब हमारा खून न उबलेगा तब हम आगे बढ ही नहीं सकेंगे यही हमारे पतन के दो मुख्य कारण है।

अन्त में हम शासन देव से प्रार्थना करेंगे कि हमारे पूज्य मुनिवरों को सावधान करे कि वे समाज को जोरों से उपदेश कर पुन. उस स्थिति पर ले आवे कि हमारे पूर्वाचार्यों के समय में थी और समाज नेताओं को भी अपने हृदय को विशाल एव उदार बनाकर संकीर्णता सूचक वाड़ा बन्धी को जड़ मूल से नष्ट कर अपनी समाज का प्रत्येक क्षेत्र को विशाल बनाले कि हम पुन विशाल बन जावें। इति शुभम्॥

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष की एक शाखा

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष के बीज तो वीरात् ७० वर्षे आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि ने मरुधर देश के उपकेशपुर नगर में बोकर कल्पवृक्ष लगा दिया था तत्पश्चात् उन आचार्यों ने स्वयं एवं आपके पट्ट परम्परा के आचार्यों ने जल सिंचन करके पोषण किया और अनुकूल जल वायु मिलता रहने से वह कल्पवृक्ष खूब फला फूला कि जिसकी शीतल छाया में लाखों नहीं पर करोड़ों मनुष्य—सुख शांति का अनुभव करने लगे। फिर तो ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों उस कल्पवृक्ष की शाखाएं भी प्रसरित होती गई। जैसे आत्मकल्याण के लिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी तीन शाखाएं हैं वैसे ही उस कल्पवृक्ष के भी उपकेशवंश प्राग्वटवंश, श्रीमालवंश नाम की तीन शाखाएं हो गई। बाद में भी बहुत से आचार्यों ने अजैनों को जैन बना कर उनको महाजनसंघ रूपी वृक्ष की शाखाएं बनाते गये जैसे सेठिया, भटेवरिया, पोसरोला इत्यादि। आगे चल कर उन शाखाओं के प्रतिशाखाएं भी इतनी हो गई कि जिनकी गिनती लगाना अच्छे २ गणित वेत्ताओं के लिये भी मुश्किल बन गया।

जहां तक इस कल्पवृक्ष और उसकी शाखाएं आपस में प्रेम पूर्वक रही वहां तक दोनों का मान महत्व एवं गौरव से उनका सिर ऊंचा रहा और उनकी खूब उन्नति भी की कारण वृक्ष की शोभा शाखाओं से होती है और शाखाओं की शोभा वृक्ष से। यदि वृक्ष बड़ा होने से वह अभिमान के गज पर सवार होकर कह दे कि मैं सब को आश्रय देता हूँ मुझे शाखाओं की क्या जरूरत है और शाखाएं कह दें कि हम तो वृक्ष के सदृश विस्तृत हैं फिर हमें वृक्ष की क्या परवाह है इस प्रकार वृक्ष शाखाएं को अलग कर दे व शाखाएं वृक्ष से पृथक हो जाय। तब उन दोनों का मान महत्व कम हो जाता है यहां तक कि शाखा विहीन वृक्ष को एक समय सुथार काट कर जला देता है और वह कोलसों के काम में आता है तब वृक्ष से अलग हुई शाखाएं स्वयं सूख जाती हैं वे कचरे की भारी बन कर ईंधन के काम आती हैं अर्थात् एक दिन ऐसा आजाता है कि संसार में उस वृक्ष एवं शाखाएं का नामोनिशान तक भी नहीं रहता है।

यही हाल हमारे महाजनसंघ और उसकी शाखाओं का हुआ है जब तक इस अपनी शाखाओं को संभाल पूर्वक प्रेम के साथ अपना कर रखी एवं शाखाएं भी वृक्ष का बहुमान कर अपने आश्रयदाता समझ उसका साथ दिया वहां तक तो दोनों की वृद्धि होती रही। यहां तक कि वे उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँच गये। पर जब से वृक्ष ने शाखाओं की परवाह नहीं रखी और शाखाएं वृक्ष से अलग हो गई उसी दिन से दोनों के पतन का श्रीगणेश होने लगा। फलतः वर्तमान का हाल हमारी आंखों के सामने है।

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष की शाखाओं में सठिया जाति भी एक शाखा है उसकी उत्पत्ति, व वृक्ष के साथ रहना, तथा वृक्ष से कब और क्यों अलग हुई और उसका क्या नतीजा हुआ इन सब का इतिहास आज मैं पाठकों की सेवा में रख देना चाहता हूँ।

मरुधर प्रदेश में बहुत से प्रसिद्ध एवं प्राचीन नगर हैं जिसमें श्रीमालनगर भी मुख्य प्रसिद्ध प्राचीन नगर है और इस नगर की प्राचीनता के विषय में जब तब कई प्रमाण भी मिलते हैं पुनः यह भी कहा जाता है कि इस श्रीमालनगर को देवी महालक्ष्मी ने बसाया था और वहां पर बसने वालों को महालक्ष्मी देवी ने

ऐसा वरदान भी दिया था कि तुम लोग सदाचारी रहोगे वहां तक धन धान्य एव कुटुम्ब से सदा समृद्धि शाली रहोगे। तदनुसार श्रीमालनगर के लोग बड़े ही धनाढ्य थे उस नगर में कोटाधीश तो साधारण गृहस्थों की गिनती में गिने जाते थे तब लक्षाधिपतियों की तो गिनती ही कहां थी ? फिर भी पूर्व संचित कर्म तो सब के साथ में ही रहते हैं।

श्रीमालनगर में जैनधर्म की नींव तो सब से पहले भ० पार्श्वनाथ के पांचवें पट्टधर आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने वीर निर्वाण से करीब चालीस वर्ष में डाली थी। उस समय श्रीमालनगर में सूर्यवंशी राजा जयसेन राज्य करता था उसने ब्राह्मणों के कहने से एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया जिसमें बलि देने के लिये लाखों पशुओं को एकत्र किये थे ठीक उसी समय आचार्य स्वयंप्रभसूरि का पदार्पण श्रीमालनगर में हुआ। और आपने अहिंसा परमोधर्मः का सचोट एव निडरता पूर्वक उपदेश दिया फलस्वरूप राजा-प्रजा के ९०००० घर वालों को जैन धर्म में दीक्षित कर जैन धर्म की नींव डाली। तत्पश्चात् राजा ने जैनधर्म का बहुत अच्छा प्रचार किया।

राजा जयसेन के दो पुत्र थे। १—भीमसेन, जो अपनी माता के पक्ष में रह कर ब्राह्मण धर्म का उपासक बन गया था और दूसरा चद्रसेन जो २ अपने पिता के पक्ष में रह कर जैन धर्म स्वीकार कर उसका ही प्रचार करने में सलग्न रहता था। अत' दोनों भाईयों में कमी-कभी धर्मवाद भी चलता रहता था।

राजा जयसेन के स्वर्गवास होने के बाद, भीमसेन को राजा बनाया गया एव भीमसेन के हाथ में राज सत्ता आते ही उसने धर्मान्धता के कारण जैनों पर कठोर जुलम गुजारना प्रारम्भ कर दिया। अत चन्द्रसेन ने धर्मरक्षार्थ आबू के पास उन्नत भूमि पर एक नगर आबाद कर श्रीमालनगर के दुःख पीड़ित अपने सब साधर्मी भाइयों को उस नूतन नगर में ले आया और उस नूतन नगरी का नाम चद्रावती रखा तया प्रजा ने वहा का शासन कर्त्ता राजा चद्रसेन को मुकर्रर कर दिया। राजा चंद्रसेन की ओर से वहां बसने वालों को सब तरह की सुविधा होने से थोड़े ही समय में नगर खूब अच्छी तरह आबाद हो गया। विशेषता यह थी की वहां के निवासी प्रायः सब लोग जैनधर्म को पालन करने वाले ही थे उनके आत्म कल्याण के लिये नूतन नगरी में कई जिनालय एवं उपाश्रय भी बनवा दिये थे।

इधर श्रीमलनगर से सब के सब जैन निकल गए बस, पीछे रहा ही क्या ? जब राजा भीमसेन ने अपने नगर को शून्यारण्यवत् देखा तब उनकी आंखें खुली कि मैंने ब्राह्मणों की बहकावट में आकर राजनीति को भूल कर जैनधर्म पालने वालों पर व्यर्थ जुल्म कर अपने ही हाथों से अपना अहित किया है पर अब पश्चाताप करने से क्या होने वाला था। खैर, बिना विचारे करता है उसको पश्चाताप तो करना ही पड़ता है।

श्रीमालनगर के पहले से ही तीन प्रकोट थे पर नगर टूटने के बाद ऐसा प्रबंध किया कि पहले प्रकोट में कोटाधिश, दूसरे में लक्षाधिश और तीसरे प्रकोट में साधारण जनता इस प्रकार की व्यवस्था कर उस का नाम भीन्नमाल रख दिया जो राजा भीमसेन के नाम की स्मृति करवाता रहे। भीन्नमाल में सूर्यवंशी राजाओं के पश्चात् चावड़ावंशी बाद गुर्जर लोगों ने राज किया था शायदकुछ समय के लिये भीन्नमाल हूणों के अधिकार में भी रहा था और बाद में परमारों ने भी वहां का शासन चलाया था। उपरोक्त लेख प्रस्तावना के रूप में लिख कर अब मैं मेरे उद्देश्यानुसार सेठिया जाति का इतिहास लिखूंगा। जो आज पर्यंत अंधेरे में ही पड़ा था।

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष की एक शाखा

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष के बीज तो वीरात् ७० वर्षे आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि ने मरुधर देश के उपकेशपुर नगर में बोकर कल्पवृक्ष लगा दिया था तत्पश्चात् उन आचार्यों ने स्वयं एवं आपके बाद परम्परा के आचार्यों ने जल सिंचन करके पोषण किया और अनुकूल जल वायु मिलता रहने से वह कल्पवृक्ष इतना फला फूला कि जिसकी शीतल छाया में लाखों नहीं पर करोड़ों मनुष्य—सुख शांति का अनुभव करने लगे। फिर तो ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों उस कल्पवृक्ष की शाखाएं भी प्रसरित होती गईं। जैसे आत्मकल्याण के लिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी तीन शाखाएं हैं वैसे ही उस कल्पवृक्ष के भी उपकेशवंश, प्राग्वटवंश, श्रीमालवंश नाम की तीन शाखाएं हो गईं। बाद में भी बहुत से आचार्यों ने क्षत्रियों को जैन बना कर उनको महाजनसंघ रूपी वृक्ष की शाखाएं बनाते गये जैसे सेठिया, भरकोटिया, चोरड़िया इत्यादि। आगे चल कर उन शाखाओं के प्रतिशाखाएं भी इतनी हो गईं कि जिनकी गिनती लगाना अच्छे २ पण्डित लेखकों के लिये भी असम्भव बन गया।

जहां तक इस कल्पवृक्ष और उसकी शाखाएं आपस में प्रेम पूर्वक रहीं वहां तक दोनों का मान महत्त्व एवं गौरव से उत्तम स्थिर रूप से रहा और उनकी खूब उन्नति भी की कारण वृक्ष की शोभा शाखाओं से ही है और शाखाओं की शोभा वृक्ष से। यदि वृक्ष बड़ा होने से वह अभिमान के मद पर सवार होकर कहे कि मैं सब को आश्रय देता हूँ मुझे शाखाओं की क्या जरूरत है और शाखाएं कहें कि हम ही वृक्ष के सदस्य विस्तृत हैं फिर हमें वृक्ष की क्या परवाह है इस प्रकार वृक्ष शाखाएं को अलग कर दे या शाखाएं वृक्ष से पृथक हो जाय। तब उन दोनों का मान महत्त्व कम हो जाता है यहां तक कि शाखा विहीन वृक्ष को एक समय सुथार काट कर जला देता है और वह चौकसों के काम में आता है तब वृक्ष से अलग हुई शाखाएं स्वयं सूख जाति हैं वे कठहरे की भारी बन कर ईंधन के काम आती हैं अर्थात् एक दिन ऐसा आजाता है कि संसार में उस वृक्ष एवं शाखाएं का नामोनिशान तक भी नहीं रहता है।

यही हाल हमारे महाजनसंघ और उसकी शाखाओं का हुआ है जब तक वृक्ष अपनी शाखाओं को वात्सल्य पूर्वक प्रेम के साथ अपना कर रखी एवं शाखाएं भी वृक्ष का बहुमान कर अपने आवश्यक समय उसका साथ दिया वहां तक तो दोनों की वृद्धि होती रही। यहां तक कि वे उन्नति के उच्चे शिखर पर पहुँच गये। पर जब से वृक्ष ने शाखाओं की परवाह नहीं रखी और शाखाएं वृक्ष से अलग हो गई उसी दिन से दोनों के पतन का श्रीगणेश होने लगा। फलतः वर्तमान का हाल हमारी आंखों के सामने है।

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष की शाखाओं में सठिया जाति भी एक शाखा है उसकी उत्पत्ति, वृक्ष के साथ रहना तथा वृक्ष से कब और क्यों अलग हुई और उसका क्या नतीजा हुआ इन सब का इतिहास आज मैं पाठकों की सेवा में रख देना चाहता हूँ।

मरुधर प्रांत में बहुत से प्रसिद्ध एवं प्राचीन नगर हैं जिसमें श्रीमालनगर भी मुख्य प्रसिद्ध प्राचीन नगर है और इस नगर की प्राचीनता के विषय में कई एक प्रमाण भी मिलते हैं पुनः यह भी कहा जाता है कि इस श्रीमालनगर को देवी महालक्ष्मी ने बसाया था और वहां पर बसने वालों को महालक्ष्मी देवी ने

सूरिजी—इस प्रकार अज्ञानता के वशीभूत होकर मरना अपघात नहीं तो और क्या है ?

विप्र—क्या काशी जाकर करवत ले कर मरना अज्ञान मरण है ?

सूरिजी—यदि इस प्रकार मरने से ही स्वर्ग मिल जाता हो तो उस करवत के चलाने वाले स्वर्ग के सुखों से वंचित रह कर यहा दुःख क्यों भोग रहे हैं आपके पूर्व उन लोगों को करवत ले कर स्वर्ग पहुँच जाना था पर वे स्वर्ग न जाकर आप जैसे भद्रिक लोगों को ही स्वर्ग में भेजने की एक जाल रच रखी है।

विप्र—महात्माजी ! आपही बतलाइये कि इनके अलावा हम दु'खों से कैसे छुटकारा पा सकते हैं ?

सूरिजी—महानुभावो ! दुखों से मुक्त होने में सब से पहले तो मनुष्य जन्म की आवश्यकता रहती है वह तो आपको प्राप्त हो ही गया है अब इसमें सद्धर्म और सदाचार की आवश्यक्ता है जो एक भव तो क्या पर भवोभव के दुःखों से मुक्त कर सकता है।

विप्र—महात्माजी आप ही बतलाइये कि कौन से धर्म और किस सदाचार से जीव सुखी होता है ?

सूरिजी—विप्रो ! यदि आप अपने दु खों से छुटकारा पाना चाहते हो तो पवित्र जैनधर्म की शरण लो और उसके कथानुसार सदाचार की प्रवृत्ति रखो।

विप्र—महात्माजी ! हम तो जाति के ब्राह्मण हैं अपना धर्म छोड़ कर जैन धर्म का पालन कैसे कर सकते हैं ? हमारी न्याति जाति वाले हमको क्या कहेंगे ?

सूरिजी—विप्रो ! धर्म के लिये वर्ण-जाति की रुकावट हो नहीं सकती है केवल आप ही क्यों पर पूर्व जमाना में इद्रभूति आदि ४४०० ब्राह्मणों ने भगवान् महावीर के पास जैन श्रमण दीक्षा ली थी उनके पश्चात् भी आर्य्य, शय्यभवभट्ट, यशोभद्र, भद्रबाहु, आर्य्य महागिरी, आर्यसुहस्ति, आर्य्यरक्षत, वृद्धवादी, सिद्धसेनादि, चार वेद अठारहपुराणों के पारगत धुरंधर ब्राह्मणों ने जैनधर्म को स्वीकार कर हजारों लाखों जीवों का उद्धार किया है। यह तो दूर की बात है पर आपही के नगर में ६२ कोटीधीश ब्राह्मणों ने जैनधर्म स्वीकार कर उसका ही अच्छी तरह पालन किया या करते हैं फिर आप केवल लोकोपवाद के कारण ही जैनधर्म से वंचित रह कर अज्ञान मरण क्यों मरते हो। मैं आपको ठीक विश्वास दिला कर कहता हूँ कि जैनधर्म कल्पवृक्ष सदृश मनोकामना पूरण करने वाला धर्म है। आप उसको स्वीकार कर सदैव के लिए सुखी बन जाइये।

विप्रो—ठीक है महात्माजी ! आपका कहना सत्य ही होगा और हम जैनधर्म स्वीकार करने के लिए तय्यार भी हैं पर हमें एक बात की शका है वह भी आप की आज्ञा हो तो पूछ लें ?

सूरिजी—विप्रों आप खुशी से पूछ सकते हो, विचारज्ञ पुरुषों का तो यह कर्त्तव्य ही है कि अपने दिल की शंका का समाधान करके ही काम करना चाहिये ताकि पीछे पछताना न पड़े कहिये आपकी क्या शंका है।

विप्र—आपके कहने के मुताबिक जेनधर्म स्वीकार करने पर हम सब तरह से सुखी बन जायँगे। पर हम जैनधर्म पालन करने वालों में भी किसी-किसी को दु खी देखते हैं फिर वे सुखी क्यों नहीं होते हैं।

सूरिजी—विप्रो ! पहले तो आप उन जैनधर्म पालन करने वालों से पूछो कि आप सुखी हैं या दु.खी ? आपको जवाब मिलेगा कि हम परम सुखी हैं। शायद आपने धन पुत्रादि को ही सुख समझ रखा हो, पर ज्ञान दृष्टि से देखा जाय तो धन पुत्रादि जैसे सुख के कारण हैं वैसे दुःख के भी कारण है। अर्थात दुख का मूल कारण तृष्णा और सुख का मूल कारण सतोष है यदि कितने ही धन पुत्रादि मिलने पर भी उसके पीछे तृष्णा लगी हुई है तो वह दु.खी है और धन पुत्रादि के अभाव एव कितने ही निर्धनी क्यों न हो पर

विक्रम की आठवीं शताब्दी में भी भीन्नमाल नगर अच्छी तरह आबाद था। वहाँ के निवासी धन, जन धन से अच्छे सुखी थे एवं सम्पत्तिशाली थे उस समय वहाँ पर भाण नामक राजा राज करता था, कोई-कोई राजाओं के मूल नाम के स्थान उपनाम भी पड़ जाते हैं। इस कारण अच्छे २ विद्वान् भी भ्रम के चक्कर में पड़ कर गोता खाया करते हैं पर सूक्ष्म दृष्टि से खोज शोध करने पर पता मिल ही जाता है।

राजा भाण जैन धर्मोपासक राजा था आपके संसार पक्ष के काका श्रीमल ने दीक्षा ली थी वे सोमप्रभाचार्य के नाम से सुप्रसिद्ध थे उस समय भीन्नमाल में आचार्य उदयप्रभसूरि का आना जाना था और राजा पर आपका बहुत अच्छा प्रभाव था। [illegible] पट्टावली से पाया जाता है कि उदयप्रभसूरि ने श्री भीन्नमाल के ६२ कोटाधीशों को जैनधर्म की दीक्षा देकर जैन श्रावक बनाये थे इत्यादि भीन्नमाल में जैनों की अच्छी आबादी थी।

जीवों को दुःख और सुख की प्राप्ति होना पूर्व संचित कर्मानुसार ही है भीन्नमाल में जैसे बहुत से लोग सुखी बसते थे तो वैसे कई दुःखी लोग भी रहते थे। दुःख का मूल कारण अज्ञान है और अज्ञानी जीवों के दुःखोदय होने पर भी वे अज्ञान से पुनः दुःखों का ही संचय करते हैं। जब अज्ञानी जीवों को असह्य दुःख हो जाता है तब वे येन केन प्रकारेण प्राण छोड़ कर दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं और उन व्यक्तियों को अकालमृत्यु मरण होने से उसका फल भी मिल जाता है जैसे उस समय एक तो मृतपति के पीछे जल जानी आग में जल कर सती होना और दूसरी काशी जाकर करवत लेना।

भीन्नमाल में कई ब्राह्मण बहुत दुःखी थे उनमें से २४ ब्राह्मणों ने दुःख से मुक्त होने के लिये विचार किया कि काशी में गंगा किनारे केदारघाट पर करीब ७ मण लोहे की एक तीक्ष्ण करवत रखी हुई है लोगों की मान्यता है कि उस करवतसे मरने वाला सीधा ही स्वर्ग में जाकर देवताओं के सुखों का अनुभव करता है जैसे पति के पीछे उसकी पत्नी जीते जी धधकती हुई अग्नि में जल कर सती होने पर स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करती है वे ब्राह्मण भी वहाँ जाकर करवत से मरने का निश्चय कर लिया और शुभमुहूर्त घर से निकल कर काशी के लिये रवाना भी हो गये पर शुभ कर्मों का उदय होनेसे रास्तेमें उन विप्रों को आचार्य श्रीउदयप्रभ सूरि से भेंट हो गई जब सूरिजी ने उन विप्रों के चित्त पर चिन्ता के चिन्ह देख कर पूछने लगे—

सूरिजी—विप्रो ! आज आप उदास होकर कहाँ जा रहे हो ?

विप्र—म्लानता लाते हुए दबी जबान से कहने लगे पूज्य गुरुदेव ! संसार भर में केवल आप जैसे निर्मम महात्मा ही सुखी हैं आप के त्याग और तपस्या से इस भव और परभव में आप सुखी होंगे पर हमारे जैसे पामर प्राणी तो इस भव में दुःखी हैं और पर भव में भी दुःखी ही रहेंगे। इस असह्य दारुण दुःख से मुक्त होने की गरज से हम काशी जा रहे हैं वहाँ जा कर करवत लेकर प्राण मुक्त होंगे जिससे इस भव के दुःखों से मुक्त हो जावेंगे और वहाँ से सीधे ही स्वर्ग में जाकर सुखी बनेंगे ऐसी अभिलाषा है।

सूरिजी—इसका क्या सबूत है कि आप अपघात जैसा नारकीय कृत्य करने पर भी स्वर्ग में जाकर सुखों का अनुभव करेंगे ?

विप्र—हमारी परम्परा एवं शास्त्र ही इस बात के साक्षी हैं और सैकड़ों मनुष्य ऐसे करते आते हैं पर हमें दुःख है कि आप जैसे महात्मा इस धार्मिक कृत्य को अपघात एवं नरक का कारण बता रहे हैं

दूं तब एक एक पट्टा करके सब पट्टे निकाल लेना। इत्यादि ॥ (कहीं पर १०८ पाट्टे भी लिखा है)

बस, वल्लभजी वगैरह ने इस बात को सब नगर में फैलादी कि कल आचार्यश्रीजी अपना चमत्कार जनता को बतलावेंगे। ठीक समय पर जनता चमत्कार देखने को एकत्र हो गई पहिले से ऊपरा ऊपरी रखे हुए ८ पट्टे पर सूरिजी आकर विराजमान होकर व्याख्यान देनेलगे इधर श्रावकों ने एक एक करके सब पट्टे निकाल लिये तथापि सूरिजी आकाश में अधर रह कर भी व्याख्यान देते रहे इस चमत्कार को देखकर कई लोग आचार्यश्री के परम भक्त बन जैन धर्म स्वीकार कर लिया। उनके अन्दर सोमदेव, गोविन्द, गोवर्धन, गोकुल, पूर्ण, प्रभाकर, सोमकर्ण, नंदकर्ण, शिव, हरदेव, हरकिशन, रामदास, तथा फतेरजी, धनजी, भावजी, नानाजी, माधवजी, रूपजी, गुणाजी, धरमशीजी, वर्धमानजी, विमलजी, गोविन्दजी, लालजी इत्यादि बहुतों ने जैनधर्म स्वीकार किया।

एक समय सोमदेव गोकलादि सूरिजी की सेवा में उपस्थित होकर अर्ज की कि भगवन् अभी तक हमारे साथ महाजनसंघ का बेटी व्यवहार चालु नहीं हुआ है, इसकी कुछ चर्चा चल रही है तो यह कार्य जल्दी से चालू हो जाय कारण अब हम सब आम तौर पर जैनधर्म स्वीकार कर लिया एवं उसका ही पालन करते हैं इस पर सूरिजी ने वहा के नगरसेठ देवीचन्दजी को बुलाकर थोड़ा-सा इशारा किया कि अब ये विश्वास पूर्वक जैनधर्म का पालन कर रहे हैं, बस इतना-सा इशारा करते ही उन सबके साथ बेटी व्यवहार चालू कर दिया। उस समय के श्रीसंघ की यही तो विशेषता थी कि वे अपने उदार हृदय से दूसरों को आकर्षित करके अपनी संख्या को बढ़ाया करते थे। और समाज पर आचार्यों का कितना प्रभाव था ? कि इशारा मात्र से श्रीसंघ उनका हुक्म उठा लेता था।

आचार्य रुद्रप्रभसूरि की पूर्ण कृपा से सोमदेव के पुण्योदय से इधर तो लक्ष्मी की महरबानी से द्रव्य की पुष्कलता हो गई और उधर राज से भी अच्छा सन्मान प्राप्त हुआ राजा ने सोमदेव को अपना मन्त्री (दीवान) बना लिया और दूसरों को भी यथासम्भव राज कार्यों में स्थान देकर सम्मानित किया अतः राज्य में भी उनकी अच्छी चलती होने लगी।

सोमदेव ने आचार्यश्री के उपदेश से भ० आदिनाथ का मंदिर बनवाया और तीर्थधीराज श्रीशत्रुंजय, गिरनारादि, का संघ निकाला, आते जाते सर्वत्र लेन पहरामनी भी दी स्वामीवात्सल्य कर श्रीसंघ के अलावा सब नगर को भोजन करवाया। संघ में प्रत्येक घर में एकेक पीराजा की लेन दी गुरु महाराज के सामने मुक्ताफल की गहूँली और ५०० दीनार गहूँली पर रखी गई इत्यादि करोड़ों रुपये खुले दिल से खर्च किये। धर्म एवं जन हितार्थ सोमदेव ने पुष्कल द्रव्य व्यय किया इससे राजा प्रजा ने मिल कर सोमदेव को सेठ पदवी दी उस दिन से सोमदेव की संतान सेठ कहलाने लगी। भीन्नमाल गुजरात की सरहद्द पर आबाद होने से कई बातें एवं भाषा गुजराती भी बोली जाती है जैसे गुजरात में सेठ को सेठिया कहते हैं समयान्तर इस जाति के लिये सेठ के बदले सेठिया नाम प्रचलित हो गया। इत्यादि। इस सेठ जाति की देव गुरू धर्म पर भावना-श्रद्धा और सद्कार्य करने से तन, जन एवं धन की बहुत वृद्धि होती रही। एक भीन्नमाल में पैदा हुई जाति, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, मत्स्य, गुजरात, लाट सौराष्ट्र, कच्छ आदि कई देशों में वटवृक्ष की तरह फैल गई इस जाति के सब लोग प्राय. व्यापार ही करते थे पर कुछ लोग राज कार्य भी किया करते थे। इस जाति में सब मिलकर ७२ गौत्र हुए थे पर जाति बढ़ने से एक एक गौत्र से और भी जातियों का प्रादुर्भाव

जिसको संतोष है वह परम सुखी है जो दुःख है वह पूर्व संचित कर्मों का है जैन है वह उन कर्मों को किसी अवस्था में क्षय करना चाहता है जिसमें भी सम्यग्दृष्टि की अवस्था में कर्मोदय होने में वह भोगने में भी ही आनंद का अनुभव करता है यदि कर्म उदय में नहीं आकर सत्ता में पड़े हैं तब भी सम्यग्दृष्टि वे उनकी उदीरणा करके उदय में लाकर भोगलेना चाहते हैं। मित्रो ! अभी आप जैनधर्म के तात्त्विक विषयों को जानते न ही है जब आप जैनधर्म के मर्म को समझ लोगे तब जो आप आज दुःख-दुःख करते हो वह आपको सुख के रूप में दिखाई देने लग जायगा। जिस पदार्थ की मनुष्य तीव्र से तीव्र इच्छा करता है वह स्वयं ही दूर होता चला जायगा। जब आपके हृदय से तृष्णा निकल जायगी तो उतनी ही नजदीक आनन्द का अनु- भवमेव। इत्यादि। सूरिजी ने बड़ी खूबी से समझाया कि मित्रो के ध्यान में आ गया और उन्होंने कहीं जाने के विचार को छोड़ दिया इतना ही क्यों पर उस तात्त्विक उपदेश को ऐसा हृदय में धारण की कि उन को संतोष के लिये विचार दी। फिर समय पाकर—सूरिजी को साथ में लेकर पुनः श्रीमालनगर में आये और अपने अपने कुटुम्ब को सूरिजी के पास लाये और सूरिजी ने उनको धर्मोपदेश दिया और उन सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया और सूरिजी ने भी अपने पास जो वर्द्धमान विद्या से मंत्रित करी-सिद्धि महाप्रभावक वासक्षेप था वह देकर साथ दुर्व्यसन का त्याग करवा कर उन सबको जैन बना लिये। उस दिन तो था ही क्या सूरिजी के इशारे पर महाजनसंघ के अग्रगण्य लोगों ने उन १४ मित्रों के कुटुम्बों को अपना कर अपने शामिल मिला लिये उनको हर तरह से सहायता एवं वाणिज्य व्यापार में साथ जोड़ दिए उसी समय से उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार खुले दिल से करने लग गये। बस, उन मित्रों को जो दुःख था वह रात्रि में चोरी की तरह कहां भाग गया कि जिसका पता ही नहीं लगा बल्कि उन सबकी जैनधर्म पर दृढ़ श्रद्धा हो गई। जैनधर्म की वृद्धि का मुख्य कारण तो उस समय के आचार्यों एवं महाजनसंघ के हृदय की उदारता ही था उन लोगों की यही भावना रहती थी कि हम विधर्मी को जैन, बना उन्हें अपनाकर उनको बराबरी का भाई बना लें और प्रत्येक कार्य में उनको संघ का एक व्यक्ति समझ कर उसका सत्कार कर उत्साह को बढ़ावें और इस सुविधा से ही अजैन लोग बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लेते थे तब ही तो जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी और वे सब तरह से समृद्धिशाली उन्नति के ऊँचे शिखर तक पहुँच गये थे। जब महाजनसंघ के साथ उन नूतन जैनों का रोटी बेटी व्यवहार प्रारम्भ हो गया था तब वह व्यवहार कहां तक चला और बाद में किस समय क्या कारण हुआ कि भोजन व्यवहार रखते हुए भी बेटी व्यवहार बन्द कर उनको पतन के मार्ग पर अग्रेसर बना दिया कि आज वह पतन की चरम सीमा तक पहुँच चुके हैं।

जब भीन्नमाल में १४ ब्राह्मणों ने सकुटुम्ब आत्मघातक जैसा यज्ञधर्म छोड़कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब शेष ब्राह्मणों से यह सहन कैसे हो सके वे उन ब्राह्मणों की खूब निंदा करने लगे कि इनकी जाति में कैसे नास्तिक जन्मे हैं कि सनातन वैदिक धर्म को छोड़ कर नास्तिक जैनधर्म को स्वीकार कर लिया है उन्होंने जैन धर्म में क्या चमत्कार देखा है कारण वह स्वयं भिक्षा मांग कर अपना गुजारा करते हैं यदि जैनाचार्य में कुछ चमत्कार हो तो वे आम जनता के सामने दिखावें। इत्यादि।

इस पर वसतमजी वगैरह ने आकर आचार्यश्री को अर्ज की कि पूज्य गुरुदेव ! हम लोगों को तो आप पर पूर्ण विश्वास है पर धर्म द्वेषियों को कोई चमत्कार अवश्य बतलाना चाहिये इस पर सूरिजी ने कहा कि ठीक है तुम कल आम मैदान में ऊंचा मचान ८ हाथ लगा देना जब मैं आकर वहां पर बैठकर व्याख्यान

पालन कर रही है। ओसवाल, पोरवाड़, श्रीमाल आदि जातियों में से तो हजारों मनुष्य जैनधर्म को छोड़ अन्य धर्म में भी चले गये पर सेठिया जाति में ऐसा उदाहरण कहीं पर भी पाया नहीं जाता है। सेठिया जाति के बहुत से उदार दानीश्वरों ने आत्म कल्याण व जैनधर्म की प्रभावना के लिए पुष्कल द्रव्य व्यय किया है। जिसका वंशावलियों में विस्तार से उल्लेख मिलते हैं पर स्थानाभाव से मैं यहां पर संक्षिप्त में ही पाठकों को दिगदर्शन करा देता हूँ कि—

१—सेठ वल्लभजी का कमलगोत्र—कुलदेवी अम्बिकाजी वल्लभजी के पुत्र कमलसीजी हुए उसके पास पांच करोड़ का द्रव्य था सात खण्ड का मकान रहने के लिये था उसने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया। श्रीशत्रुंजय, गिरनारादि तीर्थों का सघ निकाला। साधर्मी भाइयों के अलावा सब नगर को कई बार मिष्टान् भोजन जीमाकर लहाण दी तथा जैनधर्म की प्रभावना में एक करोड़ द्रव्य व्यय किया आपके परिवार में गुलजी तथा विजयचन्द्रजी भी महान् प्रभाविक पुरुष हुए। तीर्थों का संघ निकाला तब रास्ते में आते और जाते सब ग्रामों में सुवर्ण मुद्रिका की प्रभावना दी थी इत्यादि धर्म के बहुत चोखे और अनोखे काम करके अखण्ड कीर्ति हासिल की थी।

२—सेठ राघवजी रत्नगोत्र कुलदेवी—कालिका आपके परिवार में सेठ अमीपालजी बड़े ही नामांकित पुरुष हुए जिन्होंने भ० शांतिनाथ का मन्दिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी में पुष्कल द्रव्य दिया। तीन बड़े यज्ञ (जीमणवार) करके सब नगर वालों को जीमाये इत्यादि ऐसे कई उदार पुरुष हुये।

३—सेठ लहुजी वत्सगोत्र कुलदेवी चक्रेश्वरी आपकी सतान में सेठ जीवणजी बड़े ही धर्मात्मा पुरुष हुए आपने भ० आदिनाथ का मंदिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाला जिसमें साधर्मी भाइयों की भक्ति के लिये लाखों रुपये व्यय किये याचकों को इच्छित दान दिया तथा जनोपयोगी कार्यों में भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया। वि० स० ११११ में भीन्नमाल पर मुगलों का बड़ा ही जोरदार आक्रमण हुआ युद्ध में लाखों मनुष्य मारे गये हजारों मनुष्यों को कैद कर लिया और भीन्नमाल के महाजनादिकों के घर लूटे जिनमें हीरा पन्ना माणक, मुक्ताफल और सुवर्ण के ऊट के ऊट भर कर ले गये उस समय आपकी संतान में सेठ दलाजी जालोर चले गये और सेठ राजपालजी प्रसग होने से चित्तौड़ चले गये। राजपालजी ने वहां भ० पार्श्वनाथ का मदिर बनवाया और एक बावड़ी खुदवाई। पाच पकवान कर संघ को भोजन कराया और भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

४—सेठ कमलसीजी पद्म गोत्र कुलदेवी अन्नपूर्णा तथा आपकी सतान परम्परा में सेठ सीमधरजी बड़े ही नामी हुए आप बड़े ही उदार और धर्मात्मा थे आपके परिवार में माणाजी हुए आपने सिरोही में भ० पार्श्वनाथ का मदिर बनवाया। तीर्थों का सघ निकाला घर पर आकर उजमणा किया श्रीसंघ को स्वामी वात्सल्य देकर प्रत्येक को एक एक सुवर्ण मुद्रिका और वस्त्र व लड्डूओं की पहरावणी दी। पुरुषों को पेंचा और स्त्रियों को चूंदड़िया दी। आचार्यश्री को आगम लिखवाकर अर्पण किए। राजा को खुश कर जीव हिंसा बन्द कराई इत्यादि अनेक सुकृत के कार्य किये सेठ हरखाजी ने दीक्षा भी ली थी।

५—सेठ झवेरजी नदगोत्र कुलदेवी चामुडा आपके परिवार में सेठ हटमलजी मुगलों के उत्पात के कारण भीन्नमाल छोड़ कर पाटण जाकर वास किया। पाटण के राजा ने आपका अभूतपूर्व सत्कार

हुआ। पर विवाह शादी में ७२ चोहदर गौत्र से ही काम लिया जाता था। और सब कुछ अच्छा ही हुआ परन्तु यह समय तो पंचमआरा एवं कलिकाल का है किसी की अति चढ़ती कुदरत से देखी नहीं जाती है वह किसी न किसी प्रकार से उन्नति में रोड़ा अटका ही देती है इस जाति का जन्म वि॰ सं॰ ७१५ में हुआ था करीब ३०० वर्ष तक तो इस जाति का खूब अभ्युदय होता रहा वे व्यापार एवं राज्य सेवा में खूब बढ़े इधर महाजनसंघ के साथ शादी बेटी व्यवहार हो जाने से भी इनकी गिनती ओसवाल जाति में एवं महाजनसंघ में हो गई।

वि॰ सं॰ ११०२ में सेठ जाति के कतिपय राज कर्मचारियों के हृदय में अभिमान ने वास कर लिया कि मान रूपी हस्ती पर सवार होकर हुकूमत के जरिये जनता को बड़ी भारी तकलीफें भी देने लगे। जाति मत्सरता के कारण औरतों को पर्दे में रखना भी शुरू कर दिया तथा न्याति-जाति में अपनी औरतों को भेजना बन्द कर दिया और भी ऐसी-ऐसी अहंपद की बातें करने लग गये कि वे राजवर्गी सेठिये अपनी लड़की भी अपने बराबरी के सेठियों में ही देने लगे इतना अहंपद करने लगे कि जो कुछ हैं सो हम ही हैं दूसरे तो कुछ भी चीज नहीं है यही कारण है कि महाजनसंघ ने सेठ जाति के साथ बेटी व्यवहार बन्द कर दिया गया उस समय दोनों ओर संख्या अधिक होने से किसी को भी तकलीफ नहीं हुई दूसरा एक यह भी कारण है कि महाजनसंघ जैसे तोड़ना जानते हैं वैसे जोड़ना नहीं जानते हैं कारण तोड़ने में जैसे मुख्य वर्ग एक है वैसे जोड़ने में मुख्य व्यवस्था होनी चाहिये उसका तो प्रायः अभाव था। चाहे भविष्य में इससे कितना ही नुकसान क्यों न हो पर वे टूटा हुआ व्यवहार अपना से पुनः जोड़ नहीं सकते थे। आगे चल कर वस्तुपाल तेजपाल के कारण समाज में दो पार्टियें बन गई उनके बाद भी हजारों मांस मदिरा सेवी क्षत्रियों को दुर्व्यसन से छुड़ा कर महाजनसंघ में शामिल कर लिये पर अपने सहरस व्यवहार वाले भाइयों से टूटे व्यवहार को वे जोड़ नहीं सके यही कारण है कि एक ही महाजनसंघ के कई टुकड़े हो जाने से अपनी ज्ञाति का चकनाचूर हो गया और इस प्रकार संगठन टूट जाने से केवल छोटी-छोटी जातियों को ही हानि हुई सो तो नहीं पर महाजनसंघ को भी कम हानि नहीं हुई उनका संगठन बल, तेज, मान, महत्व मर्यादा उस रूप में नहीं रह सकी इतना होने पर भी इस ओर अद्यावधि में किसी का भी लक्ष नहीं पहुँचा जैसेः—

शहर के बाहर एक बाबाजी का मठ था और उसमें एक चनों की कोठी भरी थी। अकस्मात् बाबाजी के मठ में लाय (अग्नि) लग गई जिससे कोठी के चने स्वयं सुन गये। जब यह खबर शहर में हुई कि बाबाजी के मठ में आग लग जाने से बहुत नुकसान हुआ है। तब शहर के लोग हवा खोरी में घूमते हुवे बाबाजी के यहाँ आये वहाँ सुने हुए चने पड़े थे जिनको हाथ में ले मुठें लगा-लगा कर खाने लगे और बाबाजी से कहने लगे कि महात्माजी आपके नुकसान होने से हमें बड़ा ही दुःख हुआ। बाबाजी ने कहा क्या नुकसान तो हुआ सो हुआ ही पर अभी तक होता ही जा रहा है। बाबाजी के कहने का मतलब यह था कि आग से बचे हुए चना जो भूंजे गये यदि इतना ही रह जाते तो अन्य समय में थोड़े-थोड़े खाकर भाजी भी किया करेंगे तो हमारे कई दिन निकल जायगी। पर जो आते हैं वही मुट्ठ भर कर चना खाना शुरू कर देते हैं। और फिर पूछते हैं कि बाबाजी के नुकसान हुआ। अरे! नुकसान तो अभी होता ही जा रहा है। "ठीक यह युक्ति महाजनसंघ के लिये चरित्र होती है कि नुकसान हुआ और अभी तक होता ही जा रहा है।"

सेठिया ज्ञाति ने जिस दिन से जैनधर्म स्वीकार किया था उस दिन से आज तक श्रद्धा पूर्वक जैनधर्म

पालन कर रही है। ओसवाल, पोरवाड़, श्रीमाल आदि जातियों में से तो हजारों मनुष्य जैनधर्म को छोड़ अन्य धर्म में भी चले गये पर सेठिया जाति में ऐसा उदाहरण कहीं पर भी पाया नहीं जाता है। सेठिया जाति के बहुत से उदार दानीश्वरों ने आत्म कल्याण व जैनधर्म की प्रभावना के लिए पुष्कल द्रव्य व्यय किया है। जिसका वंशावलियों में विस्तार से उल्लेख मिलते हैं पर स्थानाभाव से मैं यहां पर संक्षिप्त में ही पाठकों को दिगदर्शन करा देता हूँ कि—

१—सेठ वल्लभजी का कमलगोत्र—कुलदेवी अम्बिकाजी वल्लभजी के पुत्र कमलसीजी हुए उसके पास पांच करोड़ का द्रव्य था सात खण्ड का मकान रहने के लिये था उसने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया। श्रीशत्रुंजय, गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला। साधर्मी भाइयों के अलावा सब नगर को कई बार मिष्टान् भोजन जीमाकर लहाण दी तथा जैनधर्म की प्रभावना में एक करोड़ द्रव्य व्यय किया आपके परिवार में गुलजी तथा विजयचन्द्रजी भी महान् प्रभाविक पुरुष हुए। तीर्थों का संघ निकाला तब रास्ते में आते और जाते सब ग्रामों में सुवर्ण मुद्रिका की प्रभावना दी थी इत्यादि धर्म के बहुत चोखे और अनोखे काम करके अखण्ड कीर्ति हासिल की थी।

२—सेठ राघवजी रत्नगोत्र कुलदेवी—कालिका आपके परिवार में सेठ अमीपालजी बड़े ही नामांकित पुरुष हुए जिन्होंने भ० शांतिनाथ का मन्दिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी में पुष्कल द्रव्य दिया। तीन बड़े यज्ञ (जीमणवार) करके सब नगर वालों को जीमाये इत्यादि ऐसे कई उदार पुरुष हुये।

३—सेठ लड्डुजी वत्सगौत्र कुलदेवी चक्रेश्वरी आपकी संतान में सेठ जीवणजी बड़े ही धर्मात्मा पुरुष हुए आपने भ० आदिनाथ का मंदिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाला जिसमें साधर्मी भाइयों की भक्ति के लिये लाखों रुपये व्यय किये याचकों को इच्छित दान दिया तथा जनोपयोगी कार्यों में भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया। वि० सं० ११११ में भीन्नमाल पर मुगलों का बड़ा ही जोरदार आक्रमण हुआ युद्ध में लाखों मनुष्य मारे गये हजारों मनुष्यों को कैद कर लिया और भीन्नमाल के महाजनादिकों के घर लूटे जिनमें हीरा पन्ना माणक, मुक्ताफल और सुवर्ण के ऊंट के ऊंट भर कर ले गये उस समय आपकी संतान में सेठ दलाजी जालौर चले गये और सेठ राजपालजी प्रसंग होने से चित्तौड़ चले गये। राजपालजी ने वहां भ० पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया और एक बावड़ी खुदवाई। पांच पकवान कर संघ को भोजन कराया और भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

४—सेठ कमलसीजी पद्म गोत्र कुलदेवी अन्नपूर्णा तथा आपकी संतान परम्परा में सेठ सीमधरजी बड़े ही नामी हुए आप बड़े ही उदार और धर्मात्मा थे आपके परिवार में भाणाजी हुए आपने सिरोही में भ० पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया। तीर्थों का संघ निकाला घर पर आकर उजमणा किया श्रीसंघ को स्वामी वात्सल्य देकर प्रत्येक को एक-एक सुवर्ण मुद्रिका और वस्त्र व लड्डूओं की पहरावणी दी। पुरुषों को पेंचा और स्त्रियों को चूंदड़ियां दी। आचार्यश्री को आगम लिखवाकर अर्पण किए। राजा को खुश कर जीव हिंसा बन्द कराई इत्यादि अनेक सुकृत के कार्य किये सेठ हरखाजी ने दीक्षा भी ली थी।

५—सेठ झवेरजी नद्गोत्र कुलदेवी चामुंडा आपके परिवार में सेठ हटमलजी मुगलों के उत्पात के कारण भीन्नमाल छोड़ कर पाटण जाकर वास किया। पाटण के राजा ने आपका अभूतपूर्व सत्कार

किया । आपको सन्मानित एवं कपड़ा पर नियुक्त किया वहां से आप मेहता कहलाए। तथा वहां से आपने तीर्थों का संघ निकाल कर देव, गुरु, धर्म के कार्यों में लाखों रुपये खर्च किए याचकों को दान में पुष्कल द्रव्य दिया । दूसरे सेठ रामजी चित्तौड़ जाकर बस गये वहां पर आपने भ० नेमिनाथ का मंदिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाला स्वामीवात्सल्य और पहरामणी दी । आचार्यश्री को चातुर्मास कराया। ज्ञान पूजा की ४५ आगम लिखाकर अर्पण किया सेठ रूपजी ने सूरिजी के पास दीक्षाली मरोटजी ने राज्य का काम किया जिससे मेहता कहलाए ।

७—सेठ धनाजी लक्ष्मीगोत्र और कुलदेवी भी लक्ष्मीदेवी आप कोट्याधीश थे । आपके परिवार में नन्दकरणजी नामी पुरुष हुए। भ० आदिनाथ का मन्दिर बनाया। प्रतिष्ठा करवाई आस पास के सब गाँवों वालों को बुलाये । साधर्मीवात्सल्य पहरावणी याचकों को दान आप गरीबों को गुप्त दान दिया करते थे। मुगलों के उत्पात के समय सेठ धनाजी भागकर जालौर चले गए वहां के राजा ने आपका सत्कार कर राज्य के उच्च पद पर नियुक्त किये। जालौर में चोर की लोगों का हौसला बढ़ गया था जिससे अनेक लोग दुःखी थे उसको सदैव के लिये बन्द करवा दिया। आपके परिवार में दूदाजी नामी हुए। जालौर के राज मन से निकल कर सिरोही आये वहां भी धर्म कार्य में बहुत द्रव्य व्यय कर अमर नाम किया।

५—सेठ श्रमणजी गोत्रगोत्र कुलदेवी रिंगलाजा आपके परिवार में सेठ धनाजी प्रतिष्ठित पुरुष हुए आपने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया मूर्ति के नीचे पुष्कल द्रव्य रखकर प्रतिष्ठा कराई अमर भोज और साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी मुगलोत्पात के समय सेठ धन्नामालजी भीन्नमाल को छोड़ कर सिरोही वहां पर भी बहुत से शुभ कार्य किये बाद में वहां से रूपाजी ने लासरी आकर वास किया। इत्यादि।

८—सेठ नागजी मण्डागोत्र कुलदेवी अम्बिकादेवी आपकी संतान में सेठ रूपाजी नामी पुरुष हुए शत्रुंजय का संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा की वापिस आकर स्वामीवात्सल्य कर साधर्मी भाइयों को एक एक सुवर्ण मुद्रिका की पहरावणी दी लाखों रुपया खर्च किया याचकों को पुष्कल दान, दूसरी बार शत्रुंजय की तलेटी के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया मुगलोत्पात के समय भीन्नमाल से बीठाजी ने जालौर आकर वास किया दैविकों की चाकियां कुवाई वहां पर शांतिनाथ का मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कराई। स्वामी वात्सल्य करके प्रत्येक नर नारी को एक एक सुवर्ण की मुद्रा और वस्त्र की पहरावणी दी याचकों को इच्छित दान दिया ।

९—सेठ मणिलालजी पोशोत्र कुलदेवी पावापुरी। एक समय मणिलालजी मारवाड़ जा रहे थे मार्ग में रात्रि हो गई तो एक सिंह ने आकर आक्रमण किया उस समय कुलदेवी ने आकर बचाया और एक थोड़ा कुण्डल का दिया जिसका अंधेरे में भी प्रकाश होता था जिसके द्वारा घर पर पहुँच गये। इसके प्रभाव से बहुत धन हुआ जिसको सुकृत कार्यों में लगाया। आपके परिवार में सेठ आसमालजी नामी पुरुष हुए। आपने भ० नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य खर्च किया आपका लक्ष गरीबों की ओर विशेष था और गुप्त दान दिया करते थे मुगलोत्पात के समय सेठ धर्मपालजी भीन्नमाल से निकल कर सिरोही जाकर बस गये। तथा गोकलजी ने वहां भ० महावीर का उत्तंग मन्दिर बनाया तथा दा भूलजी चित्तौड़ जाकर बसे वहां भी उन्होंने मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय कर धर्म का उद्योत किया।

१०—सेठ मालजी निरमगोत्र कुलदेवी अम्बिका। मालजी निर्धन हो गये थे। सूरीजी से कहा,

सूरीजी ने नवकार मन्त्र का ध्यान बताया उसके साथ कुलदेवी अम्बाजी का ७ दिन तक ध्यान किया जिससे प्रसन्न हो देवी ने अक्षय निधान बतला दिया। देवी की सुवर्णमय मूर्ति बनाकर स्थापित की। तीर्थों का संघ निकाल पुष्कल द्रव्य व्यय किया। शांतिनाथ का मन्दिर बनवाया साधर्मी भाइयों को व श्रीसंघ को वस्त्र व लड्डूओं के अन्दर सुवर्ण की मुद्रिकाएं डालकर पहरावणी दी इत्यादि सुकृत्य कर्मों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया मुगलोत्पात के समय सेठ चन्द्रभाणजी पाटण में जाकर बस गये वहां भी धर्म कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया आपका साधर्मीभाइयों की ओर विशेष लक्ष था।

११—सेठ रूपाजी जाजागोत्र कुलदेवी अंबिकाजी। आपकी संतानों में सेठ गरीबदासजी बड़े ही नामांकित पुरुष हुए। आपने भ० आदिनाथ का मंदिर बनवाया प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय कर धर्मोन्नति की श्रीसंघ को तीन दिन तक पांच पकवान का भोजन कराया। एक दिन सब शहर को जीमाया साधर्मियों को सुवर्ण की मुद्रिकाए पहरावणी में दी। इत्यादि। जब मुगलोत्पात हुआ तब दूसरे गरीबदासजी भागकर जालोर गये वहां भी आपके बहुत द्रव्य बढ़ा। वहां के रावजी को आपने मकान पर बुला कर भोजन कराया और आमला जितने बड़े मोतियों की कंठी अर्पण की जिससे रावजी ने गरीबदास का रुतबा बढ़ाया और जीवहिंसा बंद कराई। इत्यादि। गरीबदासजी लोगों को खूब मीठा भोजन कराते थे अत: लोग उनको मीठ-डिया २ कहने लग गये जिससे उनकी जाति मीठडिया हो गई। गरीबदासजी ने जालोर से तीर्थों का संघ निकाला बहुत द्रव्य व्यय किया। इनके परिवार में सेठ नायकजी भी उदार पुरुष हुए और जैनधर्म की खूब ही प्रभावना की इत्यादि।

१२—सेठ गणधरजी मादरगोत्र कुलदेवी माइंदेवी। आप बड़े ही धनाढ्य और उदार थे श्रीशत्रुंज यादि तीर्थों का संघ निकाला। भ० पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिकाए पहरावणी में दी बहुत धन खर्च किया मुगलों के आक्रमण के समय सेठ भंवरजी सकुटुम्ब बाड़मेर जाकर बसे। वहा भी बहुत द्रव्योपार्जन किया। शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को पहरावणी भी दी इत्यादि।

१३—सेठ धरमसी फारसगोत्र कुलदेवी हिंगलाजा। एक समय धर्मसीजी के बदन में रक्त पित्त की बिमारी हो गई। बहुत उपचार किया, बहुत द्रव्य व्यय किया पर आराम नहीं हुआ। गुरु महाराज से कहा उत्तर में कहा कि बिमारी पापोदय से आती है इसका इलाज धर्म करना है तथा प्रत्येक रविवार को आंबिल तप किया कर और सिद्धचक्र की माला का जाप जप किया कर इत्यादि। नौ रविवार को आंबिल करने से कांचन सी काया हो गई। धमरसी ने शुभ कार्यों में बहुत द्रव्य व्यय किया आपके परिवार में बालाजी हुए उन्होंने भ० पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया शत्रुंजय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी। आचार्यश्री को चातुर्मास कराया। ज्ञानपूजा में मुक्ताफल, सुवर्ण मुद्रिकाएं आई जिससे सूत्र लिखाकर भंडार में रखे। और भी उजमणादि धर्म कार्यों में बहुत द्रव्य व्यय किया। मुगलोत्पात के समय सेठ रतनजी भीन्न-माल का त्याग कर सिरोही चले गये। वहां के रावजी ने इनका सत्कार कर राज कार्य पर नियुक्त किया जिससे वे मेहता कहलाये। रत्नजी के भाई खेमजी कुमलमेर गये वहा भी महावीर का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा कराई साधर्मीभाइयों को भोजन करवा कर पहरावणी में बहुत द्रव्य व्यय किया। इत्यादि।

१४—सेठ वर्धमानजी हरियाणागोत्र कुलदेवी अंबिका। आपके कुल में पद्मसीजी दीपक समान

बाढमेर गये वहाँ भी व्यापार में बहुतसा द्रव्योपार्जन किया तथा वहाँ ऋषमदेव का मंदिर बनवा कर प्रतिष्ठा करवाई। सावर्मीभाइयों को स्वामीवात्सल्य देकर पहरवाणी दी। पुष्कल द्रव्य व्यय किया। इत्यादि।

२१— सेठ मोतीजी फुफहारा गोत्र, २२ —सेठ दानजी, पीपलिया गौत्र, २३—सेठ लालजी भारद्वाज गोत्र, २४—सेठ श्री रत्सजी नेंण गोत्र इन चारों ने अपनी जिन्दगी में ही जो कुछ किया था और आगे इनके संतान न होने से परम्परा नहीं चली।

इन २४ गौत्रों के अलावा ४८ गोत्र ओर भी हैं पर उन गोत्रों की वंशावली हमको नहीं मिली और जो २४ गोत्रों की वंशावली मिली है उनकों भी मैंने स्थानाभाव से संक्षेप में एक-एक गोत्र वालों का एक-एक, दो, दो, उदाहरण नमूने के तौर पर लिख दिये हैं कारण हजार मन वस्तु का नमूना एक मुट्ठी भर से ही पहचाना जासकता है अत. पाठक उपरोक्त सक्षिप्त हाल से ही आप सेठिया जाति के उदारवीर नररत्न को पहचान सकेंगे कि उन्होंने देव गुरु धर्म की कृपा से कितना द्रव्योपार्जन किया और उसको पानी की तरह धर्म कार्यों में किस तरह वहा दिया जो उपरोक्त उदाहरणों से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा। उस जमाने के लोग बड़े ही भद्रिक होते थे उन को गुरु महाराज जैसा उपदेश देते थे वैसा ही करने में सदैव कटिबद्ध रहते थे।

जिस समय का हाल हमने लिखा है उस समय धार्मिक कार्यों में मुख्य एक तो मंदिर बनाना, दूसरा तीर्थों का सघ निकालना, तीसरा आचार्यश्री को चातुर्मास करवा कर अपने घर से महोत्सव कर सूत्र बचाना ज्ञान पूजा कराना, गुरु के सामने गहुली करना। व्रतों के उद्यापन करना निर्बल साधर्मीभाइयों को सहायता देना काल दुकाल में गरीबों की सहायता करना इत्यादि इन शुभ कार्यों में द्रव्य व्यय करके वे अपने को कृतार्थ हुए समझते थे और इन सब बातों का ही उस समय गौरव एव महत्त्व था शक्ति के होते हुए उपरोक्त कार्य से कोई भी कार्य क्यों न हो पर अपने जीवन में वे अवश्य करते थे।

आज से कुछ वर्षों पहले गोड़वाड़ में ऐसी प्रवृत्ति थी की अपने घर पर कोई भी ऐसा प्रसग होता तो ५२ गांव, ६४ गांव, ७२ गांव, ८४ गांव, और १२८ गावों को अपने यहां बुला कर उनको मिष्टान्नादि का भोजन करवा कर पहरावणी दिया करते थे जिनमें कोई तो तांबां पीतल के बर्तन देते कोई वस्त्र, कोई चांदी की चीजे जैसी अपनी शक्ति पर इन कार्यों को करके वे कृतार्थ हुए अवश्य समझते जब बींसवी गई गुजरी शताब्दी में भी उन प्राचीन प्रवृत्ति का नमूना मात्र था तब उस समय जैन समाज उन्नति का उच्चे शिखर पर पहुची हुई थी वे सुवर्ण मुद्रिकाएं वगैरह दें, उसमें आश्चर्य की बात ही क्या ?

हां, वर्तमान में बीस, पच्चीस, या सौ पचास रुपये की सर्विस (नौकरी) करने वाले पूर्व लिखित बातों को कल्पना मात्र मानलें तो कोई आश्चर्य नहीं कारण वे अपनी आजीवीका भी बड़ी मुश्किल से चलाते हैं उनके मगज में इतनी उदारता सुनने का भी स्थान नहीं हो तो यह स्वभाविक ही है। यदि वे मगजमें सुगन्धी तेल की मालिश कर किसी सुंदर वाटिका में बैठ कर शांत चित्त से एक-ऐक शताब्दी में जैन समाज कैसी थी जैसे बींसवी शताब्दी के पूर्व उन्नीसवीं और उन्नीसवीं के पूर्व अठारहवीं, अठारहवीं के पूर्व सतारहवीं शताब्दी में जैन समाज कैसी थी इसी प्रकार एक-एक शताब्दी आगे बढ़ते जाय तो ज्ञात हो सकेगा है कि एक समय जैन समाज तन धन से बड़ी समृद्धिशाली था और एक-एक धार्मिक एवं समाजिक कार्यों में लाखों तो क्या पर करोड़ों का द्रव्य व्यय कर देते थे। उन्निसवी शताब्दी में जैसलमेर के पटवों ने सघ निकाल जिसमें पच्चीस लक्ष द्रव्य खर्चे किये थे।

अस्तु, यहां पर तो हमने केवल एक चेठिया जाति का ही संक्षिप्त से हाल लिखा है और लिखने का मेरा उद्देश्य खास इतना ही है कि वि० सं ७९५ में आचार्य उदयप्रभसूरि ने भीन्नमाल में ११ कुल ब्राह्मणों को जैन बनाये थे उसी समय उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार प्रारंभ कर दिया गया था। जो वि० सं ११०१ तक तो बराबर चलता रहा पर बाद में बेटी व्यवहार बन्द हो गया केवल भोजन व्यवहार ही चालु रहा बेटी व्यवहार किसी कारण से बन्द हुआ हो पर इससे महाजनसंघ को और चेठिया जाति को बड़ा भारी नुकसान हुआ कि चेठिया जाति सर्वत्र फैली हुई लाखों की संख्या में एक समृद्धिशाली जाति भी वह गिरती २ आज अंगुलियों के पैरवों पर गिने जितनी रह गई है इस जाति में आज तो लालटेन ले खोजने पर भी नहीं मिलते हैं यदि है तो बहुत कम लोग हैं। इस जाति के लोग सर्वत्र फैल गये थे पर आज केवल गोड़वाड़ मारवाड़, मेवाड़ मालवे में तथा थोड़ी संख्या में अन्य प्रान्तों में भी होगा। इस जाति के कई लोग तो व्यापार करते हैं पर कई लोग सिलाई का धन्धा भी करते हैं जैसे की किसी समय भावसारी (छेपी) के प्रकार बनाव करते थे गुजरात के, मेवाड़ आज भी भारत में बहुत मशहूर है। ओसवाल जैसी विशाल कौम में कन्या शुल्क और कन्याविक्रय का बोलबाला होरहा है वैसा ही इस जाति में भी मौजूद होने से दिन व दिन संख्या कम होती जा रही है इस जाति की विशेषता यह है कि जिस दिन से इस जाति ने जैनधर्म स्वीकार किया था उस दिन से आज पर्यन्त इस जाति के सब के सब लोग जैनधर्म श्रद्धा पूर्वक पालन करते हैं।

अब भी समय है कि ऐसी-ऐसी कम संख्या वाली जातियों को महाजनसंघ अपना के अपने साथ मिला लें तो इनका अस्तित्व टीका रह सकता है और महाजनसंघ की आयु भी बढ़ सकती है यदि संघ कुम्भकर्णी निद्रा में खर्राटे खेंचता ही रहेगा तो कुछ समय के बाद इन जातियों के नाम पुस्तकों के पृष्ठों में ही दृष्टिगोचर होंगे।

समय की बलिहारी है कि हमारे पूर्वाचार्यों ने तो मांस मदिरादि व्यभिचार सेवन करने वालों को शुद्धि कर उनको संघ में शामिल कर लेते थे और संघ उसी दिन से उन नूतन जैनों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार बड़े ही उत्साह के साथ कर लेता था। तब आज हमारा यह दिन है कि हमारे उत्तम आचार विचार वाले हमारे बिछुड़े हुए भाइयों को भी हम अपने अंदर मिलाने के योग्य भी नहीं रहे हैं।

आज हमारे संघ में ऐसा कोई भाग्यशाली आचार्य नहीं रहा है कि चिरकाल से बिछुड़े हुए साधर्मी भाइयों को यह समझ कर कि आज हम वासक्षेप के विधि विधान से नये जैन बनाने की भावना से ही उनको शामिल कर सके। यदि हमारे उत्तम पवित्र आचार व्यवहार वाले जिनके साथ हमारा बेटी व्यवहार था और आज भोजन व्यवहार है हम एक पंक्ति एवं एक थाली पर बैठ कर भोजन करते हैं उनके लिये ही इतनी संकीर्णता है तब कोई आचार्य पांच पचीस मांस भक्षी राजपूतादि को प्रतिबोध देकर जैन बना लिया हो तो उनके साथ तो बेटी व्यवहार करे ही कौन इतना ही क्यों पर भोजन व्यवहार भी शायद ही कर सकें। फिर तो इस महाजनसंघ के मृत्यु के दिन निकट भविष्य में हो इसमें संदेह ही क्या हो सकता है और इसका कारण भी प्रत्यक्ष है देखिये।

१—बाल विवाह से संतान का अभाव व विधवाओं का बढ़ना।

२—वृद्ध विवाह से भी विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती है।

३—कुजोड़ विवाह का भी यही परिणाम है ।

४—कन्या विक्रय से सुयोग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं ।

५—विधवा और विधुर एवं कुमारों का मृत्यु से संख्या का कम होना ।

६—इस सकीर्णता के कारण बहुत से लोग स्वधर्म छोड़ अन्य धर्म में जाने से भी समाज की संख्या कम होती जा रही है ।

७—कई लोग अपनी आजीविका के साधनों के अभाव में भी स्वधर्म का त्याग कर अन्य सामज में जामिलने से भी अपनी सख्या कम होती है । इत्यादि । और भी कई कारण हैं जिससे समाज दिनबदिन कम होती जा रही है तब दूसरी तरफ आमद के दरवाजों पर ताले नहीं पर वज्रसी सिलाएं ठोक दी गई हैं कि सो वर्षों में भी कोई एक भी व्यक्ति नहीं बढ़ सकता है ।

साधर्मीभाइयों के साथ वेटी व्यवहार नहीं होने के भयंकर परिणाम के लिये आपको दूर जाने की आवश्यक्ता नहीं है केवल एक गुजरात में ही देखिये ओसवाल, पोरवाड़, श्रीमाल के अलावा भावसार, पाटीदार, गुजरवनिया, मोढवणिया नेमा वणिया और लाड़वादि २०-२५ जातियां जैनधर्म पालन करती थी जिनके पूर्वजों के बनाये हुए जैन मन्दिरों के शिलालेख भी आज विद्यमान हैं पर उनके साथ वेटी व्यवहार नहीं होने से इस बीसवी शताब्दी में ही लाखों मनुष्य विधर्मी बन गये हैं वे केवल विधर्मी बन के ही चुपचाप नहीं रह गये पर जैन धर्म की निंदा करके सैकड़ों, हजारों को जैन धर्म से विमुख बना रहे हैं ।

यह दु ख गाथा केवल मैं ही समाज को नयी नहीं सुना रहा हूँ पर समाज का जन समूह जो थोड़ा बहुत समझदार है वह अच्छी तरह से जानता है पर किसी के घुटने में ताकत नहीं है कि वह कूद कर कार्य क्षेत्र में बाहर आवे । जैन समाज ऐसा अज्ञान पूर्ण समाज नहीं है पर वह व्यापार करने वाला समाज है । प्रतिवर्ष दूकानों के नफे नुकसान के आंकड़े मिलाना जानता है अत समाज के घाटे नफे के लिये समझाने को अधिक परिश्रम की भी जरूरत नहीं है यदि इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति से पूछा जाय या उनकी सलाह ली जाय तो सैकड़े नवे मनुष्य सलाह देंगे कि क्या सेठिया, क्या अरुणोदिया, क्या दशा, क्या बीसा, जैनधर्म के पालन करने वाले तमाम एक संगठन में ग्रन्थित हो जाना चाहिये । सबके लिये नहीं पर समाज में दो चार सो आगेवान तैयार हो जाय कि वे सबसे पहले कहें कि हम बेटी देंगे और लेगें फिर देखिये कितनी देर लगती है पर हमारे यहां तो चक्र ही उलटा चल रहा है । सभा सोसायटीयों में प्रस्ताव पास करने पर भं हमारे वड़ाओं को तो बड़ा बराबरी का ही घर होना चाहिये, जब तक स्वार्थ त्याग नहीं करेंगे वहां तक समाज सुधर नहीं सकता है । यदि एक दो व्यक्ति कर भी ले तो उसको न्याति से बाय काट की सजा मिलती है ।

खैर, मेरी तो भावना है कि अभी समय है जब तक नब्ज में गति है तब तक तो इलाज किया जाय तो मरीज के जीवित रहने की उम्मेद है । श्वास के छूट जाने पर तो हेमगर्भ की गोलियां भी मिट्टी के समान ही है । अन्त में हम शासनदेव से प्रार्थना करेंगे कि वे हमारे समाज के अग्रेश्वरों को सद्बुद्धि प्रदान करें कि सैकड़ों वर्षों से निर्जीव कारण से हमारे भाई समाज से बिछुड़े हुए हैं वे पुन' शामिल होकर समाज की आयुष्य में वृद्धि करें ॥ ॐ शांति ॥

———

अस्तु, यहां पर तो हमने केवल एक सेठिया जाति का ही संक्षिप्त से हाल लिखा है और लिखने का मेरा मतलब खास इतना ही है कि वि० सं ७९५ में आचार्य कक्कप्रभसूरि ने भिन्नमाल में ९४ कुल माहणों को जैन बनाये थे उसी समय उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार प्रारंभ कर दिया गया था। वो वि सं० ११०१ तक तो बराबर चलता रहा पर बाद में बेटी व्यवहार बन्द हो गया केवल भोजन व्यवहार ही चालु रहा वही व्यवहार किसी कारण से बन्द हुआ हो पर इससे महाजनसंघ को और सेठिया जाति को बड़ा भारी नुकसान हुआ कि सेठिया जाति सर्वत्र फैली हुई लाखों की संख्या में एक समृद्धिशाली जाति थी वह गिरती २ आज अंगुलियों के पैरवों पर गिने जितनी रह गई है इस जाति में आज तो शायद ही खोजने पर भी नहीं मिलते हैं यदि है तो बहुत कम लोग हैं। इस जाति के लोग सर्वत्र फैल गये थे पर वो केवल गोड़वाड़ मारवाड़, मेवाड़ मालवे में तथा थोड़ी संख्या में अन्य प्रान्तों में भी होंगे। इस जाति के कई लोग तो व्यापार करते हैं पर कई लोग सिलाई का धन्धा भी करते हैं जैसे कि किसी समय भावसार (छीपी) के प्रसार बनाव करते थे गुजरात के, पेवर आज भी भारत में बहुत मशहूर है। ओसवाल जैसी विशाल कौम में कन्या तुलाव और कन्याविक्रय का बोलबाला होता है वैसा ही इस जाति में भी ओसवाल होने से दिन व दिन संख्या कम होती जा रही है इस जाति की विशेषता यह है कि जिस दिन से इस जाति ने जैनधर्म स्वीकार किया था उस दिन से आज पर्यन्त इस जाति के सब के सब लोग जैनधर्म बड़ा पूर्वक पालन करते हैं।

अब भी समय है कि ऐसी-ऐसी कम संख्या वाली जातियों को महाजनसंघ अपना के अपने साथ मिला लें तो इनका अस्तित्व कायम रह सकता है और महाजनसंघ की आयु भी बढ़ सकती है यदि संघ इस कार्य दिशा में उपेक्षा ही रखेगा तो कुछ समय के बाद इन जातियों के नाम पुस्तकों के पृष्ठों में ही दृष्टिगोचर होंगे।

समय की बलिहारी है कि हमारे पूर्वाचार्यों ने तो मांस मदिरादि व्यभिचार सेवन करने वालों की शुद्धि कर उनको संघ में शामिल कर लेते थे और संघ उसी दिन से उन नूतन जैनों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार बड़े ही उत्साह के साथ कर लेता था। तब आज हमारा यह दिन है कि हमारे सदृश आचार विचार वाले हमारे बिछुड़े हुए भाइयों को भी हम अपने अंदर मिलाने के योग्य भी नहीं रहे हैं।

आज हमारे संघ में ऐसा कोई भाग्यशाली आचार्य नहीं रहा है कि चिरकाल से बिछुड़े हुए स्वधर्मी भाइयों को यह समझ कर कि आज हम वासक्षेप के विधि विधान से नये जैन बनाने की सत्ता से ही उनको शामिल कर सके। यदि हमारे सदृश धर्मिष्ठ आचार व्यवहार वाले जिनके साथ हमारा बेटी व्यवहार था और आज भोजन व्यवहार है हम एक पंक्ति मय एक थाली पर बैठ कर भोजन करते हैं उनके लिये ही इतनी संकीर्णता है तब कोई आचार्य पांच पच्चीस लाख वाली राजपूतादि को प्रतिबोध देकर जैन बना लिया हो तो उनके साथ तो बेटी व्यवहार करे ही कौन इतना ही क्यों पर भोजन व्यवहार भी शायद ही कर सकें। फिर तो इस महाजनसंघ के मृत्यु के दिन निकट भविष्य में हो इसमें और ही क्या हो सकता है और इसका कारण भी प्रत्यक्ष है देखिये।

१—बाल विवाह से संतान का अभाव व विधवाओं का बढ़ना।

२—वृद्ध विवाह से भी विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती है।

३—कुजोड़ विवाह का भी यही परिणाम है।
४—कन्या विक्रय से सुयोग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं।
५—विधवा और विधुर एवं कुमारों का मृत्यु से संख्या का कम होना।
६—इस सकीर्णता के कारण बहुत से लोग स्वधर्म छोड़ अन्य धर्म में जाने से भी समाज की संख्या कम होती जा रही है।
७—कई लोग अपनी आजीविका के साधनों के अभाव में भी स्वधर्म का त्याग कर अन्य सामज में जामिळने से भी अपनी सख्या कम होती है। इत्यादि। और भी कई कारण हैं जिससे समाज दिनवदिन कम होती जा रही है तब दूसरी तरफ आमद के दरवाजों पर ताले नहीं पर वज्रसी सिलाएं ठोक दी गई हैं कि सौ वर्षों में भी कोई एक भी व्यक्ति नहीं वढ़ सकता है।

साधर्मीभाइयों के साथ बेटी व्यवहार नहीं होने के भयंकर परिणाम के लिये आपको दूर जाने की आवश्यक्ता नहीं है केवल एक गुजरात में ही देखिये ओसवाल, पोरवाड़, श्रीमाल के अलावा भावसार, पाटीदार, गुजरवनिया, मांढवणिया नेमा वणिया और लाड़वादि २०-२५ जातियां जैनधर्म पालन करती थी जिनके पूर्वजों के बनाये हुए जैन मन्दिरों के शिलालेख भी आज विद्यमान हैं पर उनके साथ बेटी व्यवहार नहीं होने से इस बीसवी शताब्दी में ही लाखों मनुष्य विधर्मी बन गये हैं वे केवल विधर्मी बन के ही चुपचाप नहीं रह गये पर जैन धर्म की निंदा करके सैकड़ों, हजारों को जैन धर्म से विमुख बना रहे हैं।

यह दु ख गाथा केवळ मैं ही समाज को नयी नहीं सुना रहा हूँ पर समाज का जन समूह जो थोड़ा बहुत समझदार है वह अच्छी तरह से जानता है पर किसी के घुटने में ताकत नहीं है कि वह कूद कर कार्य क्षेत्र में बाहर आवे। जैन समाज ऐसा अज्ञान पूर्ण समाज नहीं है पर वह व्यापार करने वाला समाज है। प्रतिवर्ष दूकानों के नफे नुकसान के आकड़े मिलाना जानता है अत समाज के घाटे नफे के लिये समझाने को अधिक परिश्रम की भी जरूरत नहीं है यदि इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति से पूछा जाय या उनकी सलाह ली जाय तो सैकड़ें नवे मनुष्य सलाह देंगे कि क्या सेठिया, क्या अरुणोदिया, क्या दशा, क्या बीसा, जैनधर्म के पालन करने वाले तमाम एक संगठन में ग्रन्थित हो जाना चाहिये। सबके लिये नहीं पर समाज में दो चार सो आगेवान तैयार हो जाय कि वे सबसे पहले कहें कि हम बेटी देंगे और लेंगे फिर देखिये कितनी देर लगती है पर हमारे यहां तो चक्र ही उलटा चल रहा है। सभा सोसायटीयों में प्रस्ताव पास करने पर भी हमारे बड़ाओं को तो बडा बराबरी का ही घर होना चाहिये, जब तक स्वार्थ त्याग नहीं करेंगे वहां तक समाज सुधर नहीं सकता है। यदि एक दो व्यक्ति कर भी ले तो उसको न्याति से नाक काट की सजा मिलती है।

खैर, मेरी तो भावना है कि अभी समय है जब तक नब्ज में गति है तब तक तो इलाज किया जाय तो मरीज के जीवित रहने की उम्मेद है। स्वास के छूट जाने पर तो हेमगर्भ की गोलिया भी मिट्टी के समान हो है। अन्त में हम शासनदेव से प्रार्थना करेंगे कि वे हमारे समाज के अग्रेश्वरों को सद्बुद्धि प्रदान करें कि सैकड़ों वर्षों से निर्जीव कारण से हमारे भाई समाज से बिछुड़े हुए हैं वे पुन शामिल होकर समाज की आयुष्य में वृद्धि करें ॥ ॐ शांति ॥ ———

"भारत के अद्भुत चमत्कार"

वर्तमान आविष्कार युग है इस युग में पाश्चात्य विद्वानों ने साइन्स (विज्ञान) और शिल्प कलाएं वगैरह नित्य नये आविष्कार निर्माण कर संसार को आश्चर्य में मुग्ध बना दिया है। उन नये नये आविष्कारों को देख कर जनता दांतों तले अंगुली दबा कर कहने लगती है कि पाश्चात्य विद्वान मनुष्य है या देवता! कारण वे जो-जो आविष्कार निर्माण करते हैं वह अपूर्व है जिसको न तो नजरों से देखा और न कानों से सुना ही है। इत्यादि। पर जब हम हमारे देश (भारत) का प्राचीन साहित्य का अवलोकन करते तब हमें थोड़ा भी आश्चर्य नहीं होता है। क्योंकि आज से हजारों लाखों वर्ष पूर्व भी हमारे पूर्वज इन सब शिल्प, विज्ञान, शिल्पादि से पूर्ण—रूपेण परिचित थे। अब पाश्चात्य विद्वानों ने अभी तक नया कुछ भी नहीं किया है इतना ही क्यों पर पाश्चात्य विद्वानों ने यह सब हमारे देश (भारत) से ही सीखा है अर्थात् इस प्रकार की विद्याओं के लिए भारत सब देशों का गुरु कह दिया जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगा। कारण भारतीय साहित्य में हजारों लाखों वर्षों पूर्व के मनुष्यों को इस विषय का अच्छा ज्ञान था और भी परमाणु, पुद्गलों की ऐसी-ऐसी अचिन्त्य शक्ति का प्रतिपादन किया है कि पाश्चात्य विद्वान अभी तक वहां नहीं पहुँच सके हैं जिस शिल्प कलादि को भारतीय विद्वानों ने अपने हाथों से कर दिखाई थी वह आज के पाश्चात्य विद्वान इलेक्ट्री सिटी (Electn city) से भी नहीं बतला सकते हैं हमारे भारतीय प्राचीन साहित्य में कई ऐसे भी चमत्कार पूर्ण उदाहरण मिलते है कि जिनको सुनकर संसार दंग मुग्ध बन जाते हैं। पाठकों की जानकारी के लिए कतिपय उदाहरण नमूने के तौर पर बतला दिये जाते हैं।

१—श्री[illegible]सूत्र में ऐसी बात लिखी है कि प्रथम सौधर्म देवलोक में ३२ लक्ष विमान है और प्रत्येक विमान में एक-एक सुघोष घंटा है जब इन्द्रों को प्रत्येक विमान में खबर पहुँचाना हो तब अपने एक विमान की सुघोषा घंटा में दण्ड का दे कर मारे कि वह ३२ लक्ष घंटाओं द्वारा बत्तीस लक्ष विमानों में घोषित हो जाता है। क्या यह प्रयोग वर्तमान के रेडियो से कम है? कदापि नहीं।

२—श्रीप्रज्ञापना सूत्र के चौतीसवें पद में ऐसा उल्लेख मिलता है कि बारहवें देवलोक में देवता स्थित है तब दूसरे लोक में देवी है बीच [illegible] भिन्न नहीं पर असंख्यात क्रोड़ाक्रोड़ योजन का अंतर होने पर भी देव देवांगना का मनोगत भाव मिलता है तब वहां से देवताओं के वीर्य के पुद्गल छूटते हैं और सीधे देवी के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। क्या यह बिना तार के (Television) तार से कुछ कम है। नहीं! पुद्गलों की कैसी शक्ति है और संयोग है कि बीच में कई पृथ्वीपिंड समुद्र वगैरह आते हैं पर वे पुद्गल बिना किसी रुकावट के सीधे देवी के शरीर में अवतीर्ण हो जाते हैं।

३—कई राजकुमारों के लग्न के साथ कन्या का पिता दत्त (दायजा) देते हैं उसमें अन्य-अन्य वस्तुओं के साथ बिना बैलों की गाड़ियां भी दी ऐसा उल्लेख है क्या वह रेल मोटर से कम है? नहीं। रेल, मोटर तो तेल कोयले की अपेक्षा रखती है पर वे गाड़ियां तो बटन दबाने से ही चलती थी।

४—रामकुंवर अमरदत्त की कथा में लिखा है कि एक जंगल की जड़ी बूटी उसके हाथ पर बांध दी जिससे नर गधे के रूप भी बन गया और जड़ी खोलने पर पुनः पुरुष बन गया था।

५—जयविजय राज कुंवर के चरित्र में उल्लेख है कि एक समुद्र के बीच टापु है वहां एक देवी का मंदिर और एक बगीचा है उस बगीचे में एक वृक्ष ऐसा है कि जिसका पुष्प सुगने मात्र से मनुष्य गधा बन जाता है तब पुन. दूसरे वृक्ष का पुष्प सुघते ही गधे से मनुष्य बन जाता है।

६—मदन-चरित्र में एक ऐसी बात मिलती है कि एक राज्य महल में दो ऐसी शीशियाँ है जो चूर्ण से भरकर रखी है उनमें से एक शीशी का चूर्ण मनुष्य की आंख में डालने से वह पशु बन जाता है तब दूसरी शीशी का चूर्ण डालने से पुनः मनुष्य बन जाता है।

७—श्रीसूत्रकृतांग सूत्र के आहार प्रज्ञाध्ययन में लिखा है कि त्रसकाय, अग्निकाय का आहार करे वह कैसा उष्णयोनि वाला त्रस जीव होगा कि अग्निकाय का आहार करने पर भी जीवित रह सके।

८—जयविजय कुंवर को एक तोते ने दो फल देकर कहा कि एक फल खाने से सात दिन में राज मिले और दूसरा फल खाने से हमेशा पांच सौ दीनार मुंह से निकलती रहे और ऐसा ही हुआ था।

९—योनि प्रभृत नामक शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि अमुक पदार्थ पानी में डालने से अमुक जाति के जीव पैदा हो जाते हैं।

१०—प्रभाविक चरित्र में सरसव विद्या से असंख्य अश्व और सवार बना लिये थे और वे युद्ध के काम में आये थे। ऐसे सैकड़ों तरह की घटनाएँ चमत्कार पूर्ण है शायद इसमें विद्या, मन्त्र और देव प्रयोग भी होगा।

११—गजसिंह कुमार के चरित्र में आता है कि एक सुथार ने काष्ट का मयूर बनाया था जिसके एक बटन ऐसा रखा था कि जिसको दबाने से वह मयूर आकाश में गमन कर जाता और उस मयूर पर मनुष्य सवारी भी कर सकता था। यह घटना केवल हाथ प्रयोग से बनाई गई थी।

१२—मदन चरित्र में एक उड़न खटोला का उल्लेख मिलता है कि जिस पर चार मनुष्य सवार हो आकाश में गमन कर सकें इसमें भी काष्ट की खीली का ही प्रयोग होता था।

१३—अभी विक्रमीय तेरहवी शताब्दी में एक जैनाचार्य ने मृगपाक्षी नामक ग्रन्थ लिखा है जिसमें ३६ वर्ग और २२५ जानवरों की भाषा का विज्ञान लिखा है। जिसको पढ़ कर अच्छे २ पाश्चात्य विद्वान भी दांतातले उगुली दबाने लग गये जिस ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है जिसकी समालोचना सरस्वती मासिक में छप चुकी है क्या भारत के अलावा ऐसा किसी ने करके बताया है ?

१४—उपरोक्त बातें तो परोक्ष हैं पर इस समय अहमदाबाद तथा खेड़ा ग्राम में एक-एक काष्ट का वृक्ष है उसकी शाखाओं पर काष्ट की पुतलियाँ हैं जिनके हाथों में मृदंग, सितार, तालादि संगीत के साधन हैं और उस वृक्ष के एक चाबी भी रखी है जब वह चाबी दी जाती है तो वे सब काष्ट पुतलियाँ वाजिंत्र बजाने लग जाति है और नाच भी करती है यह हमारे देश के कलाविज्ञों के हाथ से बनाई हुई कलाएं हैं।

१५—उपदेशप्रसाद नामक ग्रंथ का प्रथम भाग के पृष्ठ १११ पर एक कथा लिखी है कि—

"भारत के वक्षस्थल पर धन, धान कुवे, तालाब एवं वन वाटिका से सुशोभित कोकण नामक देश था उसकी राजधानी सोपारपट्टन में थी। वहा के राजाप्रजा जन नीति निपुण एवं समृद्धशाली थे। व्यापार का केन्द्र होने से लक्ष्मी ने भी अपना स्थिर वास कर रखा था। कला कौशल में तो वह नगर इतना बढ़ा चढ़ा था कि जिसकी कीर्ति रूप सौरभ बहुत दूर दूर फैल गई थी। भ्रम की भांति दूर दूर के व्यापारी लोग व्या...

और कला कौशल्य सीखने वाले लोग आ-आकर अपनी मनोकामना पूर्ण करते थे उस नगर में विक्रम नाम का राजा राज्य करता था और जैसे वह दुश्मनों के लिये विक्रम था वैसे ही गुणीजन सज्जनों का सत्कार और पुरुषार्थियों का उत्साह बढ़ाने के लिये भी सदैव तत्पर रहता था ।

उसी सोपारपट्टन में एक सोमल नाम का रथकार (सुथार) रहता था और अपनी कला कौशल्य में सिद्ध विख्यात भी था । उसके नये-नये आविष्कार से राजा ने भी संतुष्ट होकर अपने राज में सोमल को अध्यक्ष देकर राज्य में उसका अच्छा मान सम्मान बढ़ा रखा था और राज की ओर से उस सुथार को एक सुवर्ण पद भी इनायत किया गया था और उसके नित्य नये आविष्कार एवं हस्त कला देख कर महाजन भी उसकी मुक्त कंठ से भूरि भूरि प्रशंसा किया करती थी ।

उस सोमल रथकार के एक देवक नाम का पुत्र था जब वह बड़ा हुआ तो सोमल अपने पुत्र को पढ़ाने के लिये अच्छा प्रबंध किया तथा अपनी शिल्प कलादि विद्या पढ़ाने का भी उस समय ने बहुत कुछ प्रयत्न किया क्योंकि नीति कारों ने भी कहा है कि—

"पितृभिस्ताडिता पुत्र शिष्यश्च गुरु शिक्षितः ।
घन हतं सुवर्णं च जायते जन मण्डनम् ॥"

अर्थात् पिता पुत्र को गुरु शिष्य को पढ़ाने के लिये ताड़ना, तर्जना भी करते हैं तब ही जाकर पुत्र एवं शिष्य पढ़कर योग्य बनता है जैसे सोना को पीट पीट कर भूषण बनाते हैं तब ही जाकर वे जनता के भूषण बनकर शोभा को प्राप्त होते हैं ।" पर साथ में यह भी कहा है कि "बुद्धि कर्मानुसारिणी" देवक ने पूर्व जन्म में न जाने कैसे कठोर कर्मोपार्जन किये होंगे व ज्ञान की अन्तराय कर्म कैसा बन्धा होगा कि पिता की शिक्षा का थोड़ा भी असर देवक पर नहीं हुआ । यही कारण है कि न तो वह पढ़ाई कर सका और न शिल्पकला का दिव ही बन सका । अर्थात् देवक मूर्ख एवं अपठित रह गया और नीतिकार अपठित मनुष्य को पशुओं से भी बुरा समझा है अपठित व्यक्ति का कहीं पर सत्कार नहीं होता परन्तु वह जहाँ जाता है वहाँ पर उसका तिरस्कार ही होता है यही हाल सोमल के पुत्र देवक का हुआ ।

उस सोमल के एक दासी थी उसका गुप्त व्यवहार एक ब्राह्मण के साथ हो गया था, कारण कर्मों की गति विचित्र होती है जिसके साथ पूर्व भव में जैसा संबंध बंधा हुआ है उसको वो भोगना ही पड़ता है दासी के ब्राह्मण से एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम (कोकास) रखा गया था । जब कोकास बाल्यावस्था का अतिक्रमण किया तब तो वह विद्याभ्यास करने लगा पर विद्याध्ययन करने में उसके आगे विनय भक्ति की आवश्यकता रहती है और दास में यह गुण स्वाभाविक ही हुआ करता है कोकास ने अध्यापक के दिल को प्रसन्न कर सब विद्या पढ़ ली । साथ में वह अपने मालिक सोमल का भी अच्छा विनय और पूर्ण तौर से भक्ति किया करता था जिससे खुश होकर सोमल ने अपनी जितनी शिल्प कलायें थी वह सब कोकास को सिखादी जिससे कोकास की ख्याति भी सोमल की तरह सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई इतना ही क्यों पर राज में कोकास का वही स्थान बन गया कि जिसका सोमल का था कहा भी है कि—

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृ वंशो निरर्थकः । वासुदेव नमस्यन्ति, वसुदेवं न ते जनाः ॥ १ ॥"

मनुष्य चाहे विद्वान हो मूर्ख हो, पंडित हो, समय तो अपना काम करता ही रहता है । कुछ समय के पश्चात् जब सोमल का देहान्त हो गया तो पीछे उसका पुत्र देवक अपठित एवं मूर्ख था यही कारण था कि

उसके सबंधी एवं राजा मिल कर सोमल के घर का सब भार कोकास के सुपुर्द कर घर का मालिक कोकास को बना दिया। तब जाकर देवल की आंखें खुली और अपने अपठित रहने का पश्चाताप करने लगा पर समय के चले जाने पर परिताप करने से क्या होता है। यह तो सब पूर्व संचित शुभाशुभ कर्मों का ही फल है, कहा है कि—

'दासेरोऽपि गृहस्वाम्य मुच्चैः काममवाप्तवान्। गृह स्वाम्यऽपि दासेरय हो, प्राच्य शुभाशुभे॥"

अब तो कोकास सर्वत्र माननीय बन गया कहा भी है कि "यथा राजा तथा प्रजा" कोकास को राजा की ओर से मान पान मिल जाने से वह सतोष मानकर निश्चिंत नहीं बैठ गया पर अपने अभ्यास को और भी आगे बढ़ाता गया जिससे प्राप्त हुआ सत्कार की रक्षा एव वृद्धि भी हो सके। एक समय की बात है कि कोकास के मकान पर दो मुनि भिक्षार्थ आये जिनको देखकर कोकास को बड़ा ही हर्ष हुआ, मुनियों को भाव सहित वंदन किया और रसोड़े में लेजाकर निर्वद्य आहार पानी दिया मुनिने धर्मलाभ दिया और वापस लौटने लगे तो कोकास ने धर्म का स्वरूप पूछा। मुनियों ने सक्षिप्त से अहिंसा मय धर्म कहा जिससे कोकास ने निर्णय पूर्वक जैनधर्म स्वीकार कर लिया और मुनियों की सेवा उपासना कर क्रियाकांड से जानकार हो गया तथा जैनधर्म के तत्वों का अच्छा बोधप्राप्त कर लिया।

उसी समय आवंतीदेश में उज्जैनी नाम की प्रसिद्ध नगरी थी वहां पर विचारधवल नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के राज में चार रत्न थे वे अपने-अपने काम में इतने चतुर एव सिद्ध हस्त थे कि जिनकी प्रशंसा सर्वत्र फैल रही थी उन चारों रत्नो के नाम और काम इस प्रकार थे—

१—रसोइया रत्न—रसोइया रत्न ऐसी रसोई बनाता था कि भोजन करने वाले को जितने समय में भूख लगनी चाहिये तो ऐसा भोजन करके जीमाता था कि उसको उतने ही समय में भूख लगे।

२—शय्या रत्न—शय्या तैयार करने वाला रत्न शय्यापर सो ने वाले को जितनी निन्द्रा लेनी हो,वो ऐसी शय्या तैयार करता था कि सोने वाले को उतनी ही निन्द्रा आवे पहले नहीं जागे।

३—कोष्टागार रत्न—कोठार बनाने वाला रत्न ऐसा कोठार बनावे कि उसमें रखी जाने वाली वस्तु किसी दूसरे को नहीं मिले किन्तु आप ही जान सके तथा ला सके।

४—मर्दन रत्न—मर्दन करने वाल रत्न—जितना तैल मालिश करके जिस के शरीर में रमा दे, उतना ही तैल बिना किसी तकलीफ के शरीर से वापिस निकाल दे।

इन चारों रत्नों के कार्यों पर राजा सदैव खुश रहता था। इन रत्नों की महिमा केवल राजा के राज्य में ही नहीं पर बहुत दूर २ तक फैल गई थी। राजा विचारधवल बड़ा ही धर्मात्माराजा था आप का दिल हमेशा ससार से विरक्त रहता था उसका वैराग्य यहा तक बढ़ गया था कि कोई योग्य पुरुष मिल जाय तो मैं उसको राज देकर संसार का त्याग कर आत्मकल्याण में लग जाऊ पर भोगावली कर्मों की स्थिति पूरी न होने से इच्छा के न होने पर भी संसार में रह कर राज्य चलाना पड़ता था।

पाटलीपुत्र नगर के राजा जयशत्रु ने सुना कि उज्जैन नगरी के राज्य में चार रत्न हैं और वे अपने कामों के बड़े भारी विद्वान हैं पर यदि मैं उज्जैनपति से मांगु तो वे अपने रत्न कैसे दे सकेंगे। अतः मैं चार प्रकार की सेना लेकर उज्जैन नगरी पर धावा बोल दूं और बलात्कार चारों रत्नों को मेरे राज्य में ले आऊ। राजा जयशत्रु ने ऐसा ही किया और चार प्रकार की सेना लेकर आया और उज्जैननगरी को घेर ली। राजा

थी कि छोटे घड़े के साथ मिलने से क्या हो सकता है पर खुदराजा से ही मिलना चाहिये किन्तु बिना किसी की सहायता के राजा से मिलना हो नहीं सकता था अतः कोकास ने एक ऐसा उपाय सोचा कि उसने काष्ट के बहुतसे कबूतर बनाए उन कबूतरों के एक ऐसा बटन लगाया कि बटन दबाने से वे आकाश में गमन कर सके और इस बटन के ऐसे नम्बर लगाये कि उतनी ही दूर जा सके जहां जावे वे ऐसे गिरे कि वहां का पदार्थ स्वयं कबूतर में रखी हुई पोलार में भर जाय उस पोलार की जगह भी ऐसी रखी कि उतना वजन भर जाने पर दूसरा बटन स्वय दब जाय जिससे फिर आकाश में उड़ कर सीधा कोकास के पास आजाय ऐसे एक नहीं पर अनेक कबूतर बनालिये और उन कबूतरों को राजा के अनाज के कोठारों पर उड़ा दिये कबूतरों के बटनों के नंबर के अनुसार सब कबूतर राजा के अनाज के कोठार पर जा पड़े पड़ते ही उनकी उदर (पोलार) में स्वय अनाज भर गया कि कबूतर उड़कर कोकास के पास आगये इस प्रकार हमेशा काष्ट कबूतरों को भेजकर राजा का अनाज मगवाया करे। ऐसा करते-करते कई दिन बीत गये। तब अनाज के भंडार रक्षको ने सोचा कि ये कबूतर किस के हैं एक दिन उन्होंने कबूतरों का पीछा किया तो वे कोकास के पास पहुँच गये। और कोकास को गुन्हगार समझ राजा के पास ले आए। जब राजा ने कोकास को पूछा तो उसने काष्ट कबूतरों की तथा राजा से मिलने की सब बात सत्य-सत्य कह सुनाई। पर सत्य का कैसा प्रभाव पड़ता है।

"सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्रीभिर लीकं मधुरं द्विषा। अनुकूलं च सत्यं च वक्तव्यं स्वामिना सह ॥१॥

कोकास की सत्यता एवं कला कौशल से राजा संतुष्ट हो इतना द्रव्य एव आजीविका कर दी कि उस के सब कुटुम्ब का अच्छी तरह से निर्वाह हो सके। कहा है कि—

"लवण समो नत्थी रसो, विण्णाण समोअ बन्धवो नत्थी। धम्म समो नत्थी निहि, काहे समो वेरिणो नत्थी।

एक दिन राजा ने कोकास से पूछा कि तुम केवल कबूतर ही बनाना जानते हो या अन्य कई और भी शिल्पविद्या जानते हो ? कोकास ने कहा हजूर आप जो आज्ञा करेंगे वही में बना दूगा। राजा ने कहा कि ऐसा गरुड़ बनाओ कि जिस पर तीन मनुष्य सवार हों आकाश में गमन कर सके। कोकास ने राजा की आज्ञा स्वीकार कर गरुड़ बनाना प्रारम्भकिया जो सामग्री चाहती थी वह सब राजा ने मंगवा दी। फिर तो देर ही क्या थी कोकास ने थोड़े ही समय में एक सुन्दर गरुड़ विमान के आकार बनादिया जिसको देख कर राजा बहुत ही खुश हुआ। राजा राणी और कोकास ये तीनों उस गरुड़ पर सवार हो आकाश में गमन करने को निकल गये चलते चलते जा रहे थे कि नीचे एक सुन्दर नगर आया। राजा ने कोकास से पूछा कि—यह कौन सा नगर है। कोकास ने कहा हे राजा। यह भरोंच नाम का एक प्रसिद्ध नगर है यहां पर बीसवें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रत प्रतिष्ठितपुर नगर से एक रात्री में साठ कोस चल कर आए थे। कारण यहा ब्राह्मणों ने एक अश्व मेघ यज्ञ करना प्रारम्भ किया था जिसमें जिस अश्वका होम (बलि) करने का उन्होंने निश्चय किया था वह अश्व तीर्थंकरके पूर्व जन्म का मित्र था उसको बचाने के लिये वे आए थे उस अश्व को बचा दिया बाद वह मर कर देव हुआ उसने यहा पर तीर्थंकर मुनिसुव्रत का मंदिर बनवा कर मूर्ति स्थापन की तथा एक अपनी अश्व के रूप की मूर्ति स्थापन कर इस तीर्थ का नाम अश्वबोध तीर्थ रखा था जो अद्यावधि विद्यमान है और भी इस तीर्थ के उद्धार वगैरह सबधी सब हिस्ट्री राजा को सुनाई। किसी समय पुन लका नगरी के ऊपर आये तब राजा ने पुन. पूछा तो कोकास ने राजा रावण का राज सीता का हरण, रामचन्द्रजी का आना वगैरह सब हाल सुनाया तथा रावण के नौग्रह तो खाट के बन्धे रहते थे। और वे यज्ञ वादियों के यज्ञ का विध्वंस कर डालते थे इस लिये वे

लोग रावण को राक्षसों की गिनती में गिनते थे। राजा रावण और उनकी मंदोदरी अष्टापद तीर्थ पर जाकर तीर्थंकर देव की ऐसी भक्ति की कि सितार बजाते हुए तांत टूट गई थी उसी समय अपने शरीर की नस निकाल कर सितार में जोड़ दी यही कारण है कि वह भविष्य में तीर्थंकर पद धारण करेंगे। इत्यादि।

एक दिन फिर पश्चिम की ओर गये तो नीचे पर्वत देख राजा ने कोकास से पूछा तो उसने कहा नरपति ! यह पुनीत पवित्र एवं महा प्रभाविक श्रीशत्रुंजय तीर्थ है यहाँ पर तेविस तीर्थंकरों के समवसरण हुए। यहाँ ऋषभ प्रभु ने चातुर्मास किया और अनेक महात्मा यहाँ पर मुक्ति को प्राप्त हुए इत्यादि इसी प्रकार गिरनार तीर्थ के लिये कहा कि यहाँ नेमिनाथ प्रभु के तीन कल्याण हुए। पुनः पूर्व की यात्रा करते हुए सम्मेतशिखर का परिचय कराते हुए कोकास ने कहा यहाँ बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। इसी प्रकार कभी पावापुरी, कभी चम्पापुरी, कभी राजगृह, कभी अष्टापद तीर्थ आदि का हाल सुनाया रहा जिससे राजा की भावना पवित्र जैन धर्म की ओर झुकगई और कोकास के प्रयत्न से राजा ने जैनधर्म स्वीकार करके उसकी ही आराधना करने लगा। एक समय कोकास राजा को आचार्य मुनिचन्द्रसूरी के पास ले गया। आचार्यश्री ने राजा को धर्मोपदेश दिया जिसमें साधुधर्म एवं गृहस्थ धर्म का विवरण किया राजा ने गृहस्थ धर्म के द्वादशव्रत धारण किये जिसमें एक व्रत में चारों दिशा सौ-सौ योजन भूमि की मर्यादा की शेष यथाशक्ति में प्रत्याख्यान कर सूरिजी को वंदन कर अपने स्थान पर चले गये पर उनकी आकाश गमन प्रवृति उसी प्रकार चालू रही।

राजा के एक यशोदा नाम की रानी थी और उसी के साथ अधिक स्नेह होने से आकाश गमनसमय साथ में जाया करता जिससे दूसरी विजया नाम की रानी ईर्षा करती थी। जब एक समय राजा यशोदारानी को साथ पर बैठा कर आकाश गमन की तैयारी कर रहा था तो विजयारानी एक गुप्तचर द्वारा उस गरुड़ की लौटने की कील बदलादी जिसकी किसी को खबर नहीं पड़ी जब राजा रानी और कोकास गरुड़ विमान पर सवार हो कर आकाश में गमन किया तो उस समय विमान इतना तेज चला कि थोड़े ही समय में सैंकड़ो कोस चला गया इस हालत में राजा को अपने व्रत की स्मृति हुई और कोकास को पूछा, कि कोकास ! अपने कितने दूर आए हैं ? कोकास ने जवाब दिया कि एक सौ योजन से कुछ अधिक आ गये हैं राजा ने कहा कि कोकास जल्दी से गरुड़ को वापस लौटा दो कारण मेरे सौ योजन की भूमि उपरांत जाने का त्याग किया हुआ है। कोकास ने कहा कि थोड़ी दूर पर जाकर गरुड़ को लौटा दूंगा राजा ने कहा नहीं यहीं से लौटा दो। कोकास ने कहा हुजूर व्रत में अतिचार तो लग ही गया है फिर तत्काल क्यों थोड़ी आगे थोड़ी दूर पर जाने से विमान सुविधा से लौटाया जा सकेगा। राजा ने कहा कोकास ! तुम जैनधर्म की जानकारी रखते हुए भी ऐसी अयोग्य बात क्यों कर रहे हो कारण अनजान पने में भूमि उल्लंघन होने से अतिचार लगता है पर जान बूझ कर आगे जाने में अतिचार नहीं पर व्रत भंग का अनाचार लगता है अतः प्राण भी चला जाय पर एक कदम भी आगे बढ़ना ठीक नहीं है कोकास ने कहा राजन् ! यह कलिंग देश की भूमि है और नजदीक कांचनपुर नगर है यहाँ के राजा के साथ आप का चिरकाल से वैर है यहाँ विमान उतारने से आप को खतरा पैदा होगा अतः आप व्रत भंग की आलोचना कर प्रायश्चित ले लेवें पर आग्रह न कर थोड़ा सा आगे चल कर विमान को लौटाने की आज्ञा दें। राजा ने कहा कि चिन्ता हो वह क्यों न हो पर मैं मेरा व्रत हर्गिज खंडित नहीं करूंगा। अतः राजा की दृढ़ता देख कोकास ने गरुड़ को लौटाने के लिये किल्ली बदल राजा पर गरुड़ नहीं लौटाया। कोकास ने किल्ली को देखी तो अपनी किल्ली नहीं पाई राजा से कहा

गरीबपरवर मेरी खिली किसी ने बदल दी है अतः गरुड़ को पीछे नहीं लौटाया जा सकता है राजा ने कहा तुम विमान को यहीं उतार दो यहां से सब पैदल अपने नगर को चलेजावेंगे। कोकास ने गरुड़ को उतारने की बहुत कोशिश की जब गरुड़ को नीचे उतार रहा था तो उसकी पाखें बन्द हो गई और गरुड़ जाकर समुद्र के पानी पर पड़ गया। जिससे किसी को तकलीफ नहीं हुई। पर वे सब बालबाल बच गये जिससे राजा की जैनधर्म पर विशेष श्रद्धा दृढ़ हो गई। जब कोकास अपने गरुड़ और राजा रानी को समुद्र से पार कर किनारे पर लाया और कहा की आप दोनों गुप्त रूप से यहा विराजें। मैं जाकर नगर से दूसरी खिली बनाकर ले आता हूँ फिर सब गरुड़ पर सवार होकर अपने नगर को चले चलेंगे। पर यह मेरी बात स्मरण में रहे कि इस नगर का राजा आप का दुश्मन है आप न तो किसी से वार्तालाप करें और न अपना परिचय किसी से करावे। इतना कह कर कोकास नगर में गया एक सुथार के वहां जाकर औजार मागा सुथार ने कहा आप यहां ठहरे मैं घर पर जा कर औजार ले आता हूँ। सुथार औजार लेने को गया पीछे उसका एक चक्र अधूरा पड़ा था कोकास ने उसको जितना जल्दी उतना ही सुंदर बना दिया जब सुथार औजार लेकर आया और कोकास को दिया और वह अपनी खिली बनाने लगा इधर सुथार ने अपने चक्र का काम देखा तो उसको बड़ा ही आश्चर्य हुआ उसने सोचा की हो न हो पर यह कारीगर कोकास ही होना चाहिये सुथार किसी बहाने से वहां से चल कर राजा के पास आया और कहा कि मेरी दुकान पर एक कारीगर आया है। मेरे ख्याल से वह उज्जैन के राजा का प्रसिद्ध कारीगर कोकास है। राजा ने तुरन्त सिपाहियों को भेज कर कोकास को जबरन अपने पास बुलाया और पुछा की तुम्हारा राजा काकजंघ कहां है? कोकास कभी झूठ नहीं बोलता था उसने अपने सत्यव्रत को रक्षा करते हुए बहुत कुछ किया पर आखिर जब कोई उपाय नहीं रहा तब राजा का पता बतलाना पड़ा। बस, फिर तो था ही क्या कांचनपुर का राजा कनकप्रभ ने हाथ में आया हुआ इस अवसर को कब जाने देने वाला था। राजा एव रानी को पकड़ मगवाया और कोकास के साथ तीनों को कैद कर दिया इतना ही नहीं बलिक उन तीनों का खान पान भी बन्द कर दिया जब इस अनुचित कार्य की खबर नागरिकों को मिली तो उन्होंने सोचा कि यह तो राजा का बड़ा अन्याय है जिसमें भी खान पान बन्द कर देना तो और भी विशेष है अत. नागरिक लोगो ने विविध प्रकार के पकवान बना कर आकाश में भ्रमण करने वाले पक्षियों को फैंकने के बहाने उछालते २ राजा राणी एवं कोकास जिस मकान में कैद थे वहां भी फेंकने शुरू कर दिया कि उन तीनों का भी गुजारा हो सके इस प्रकार कई दिन गुजर गये। राजा राणी और कोकास बड़े ही दुःख में आपड़े। पर कहा है कि—

'को इस सया सुहिओ, कस्स व लच्छी थिराइपिम्मइ।
को मच्चुणा न गहिओ, को गिद्धो नेव विसए सु॥

खैर, एक दिन राजा ने कोकास के वैर को याद कर उसको जान से मरवा डालने का विचार कर डाला पर जब इस अनुचित कार्य की खबर नगर में हुई तो कई नागरिक लोग एकत्र हो राजा के पास में जाकर अर्ज की कि—

"सर्वेषां बहुमाना र्हः कलावान् स्वपरोऽपि वा।
विशिष्य च महेशस्य मटीयो महिमाप्ति कम्॥ १॥

अर्थात् विद्वान् एव कलावान अपना हो या दूसरों का हो आदर सत्कार करने योग्य होता है। चन्द्र

कलावान् होने से ही संकट में आपने कोकास पर कोपित किया है। हे राजन्! कोकास जैसा कलावान् को मार डालना यह आपको योग्य नहीं है कारण इससे एक तो इस अनुचित कार्य से सर्वत्र आपकी अपकीर्ति एवं अपयश होगा। दूसरा एक बड़ा भारी कलावान आपके हाथों से सदा के लिये खोया जायगा। हे भूपति! मारने की अपेक्षा कोकास जैसा विद्वान आपके हाथ लगा है तो इससे कोई अच्छा काम लेना चाहिये इसमें ही आपकी शोभा है। नागरिकों का कहना मान कर राजाने कोकास को अपने पास बुला कर पूछा कि कोकास तुम एक गरुड़ ही बनाना जानते हो या दूसरा भी कुछ बना सकते हो! इस पर कोकास ने कहा कि जो हुक्म आप दें वही मैं बना सकता हूं राजा ने कहा कि एक ऐसा काष्ठ विमान बना दो कि जिस पर मैं मेरी रानी और मेरे दो पुत्र व मेरा प्रधान एक समय बैठ कर आकाश में सफर कर सकें। राजा की इस बात को कोकास ने स्वीकार कर ली। और राजा ने कोकास के कहने मुजब सब सामान भी मंगा दिया। बस, फिर तो क्या देरी थी। कोकास ने इस कार्य को अपने हाथ लिया। रानी को कारागृह मुक्ति का साधन बनाना शुरू कर दिया। राजा रानी को भी गुप्त समाचार कहला दिया कि अब मैं आपको शीघ्र ही संकट मुक्त कर दूंगा। इधर उज्जैननगरी को एक गुप्तचर भेज कर राजा काकजंघ के पुत्र रामेश को कहला दिया कि राजा रानी और मेरी यह दशा हुई है। अब आप अमुक तिथि तक ऐसे गुप्त तरीके से सैना लेकर [illegible] की राजधानी कंचनपुर पर चढ़ाई करके यहां आ जाना कि मैं मदद कर आपकी विजय करा दूंगा इत्यादि।

इधर कोकास अपना काम बड़ी ही शीघ्रता से करने लगा कि थोड़े ही समय में एक देव यान के सदृश गरुड़ विमान तैयार कर दिया जिसको देख राजा एवं प्रजा का चित्त प्रसन्न हो गया जब राजा उस विमान पर सवार हुआ तो प्रत्येक २ आसन पर राजा रानी, राजा के दो पुत्र और प्रधान बैठ गये कोकास ने विमान में एक ऐसी चाबी रखी थी कि चाबी के लगते ही वे सब आसन ऐसे बन्द होगये कि वे सब बैठने वाले माता के गर्भ में ही नहीं रह गये हों अर्थात् उन आसनों के चारों ओर तरह काष्ठ की कीलें रखी गई थी कि चाबी लगाते ही वे काष्ठ की चाबें सब आसनों को आच्छादित कर दे अर्थात् वे सब प्रकार कारागृह की भांति बन्द हो गये। इधर उज्जैननगरी से सैना लेकर राजपुत्र रामेश आ पहुँचा वह राजा कनक पर आक्रमण कर राज्य कब्जा शुरू कर दिया जिसका सामना करने वाला राजा मंत्री या राजा के दो पुत्र विमान में बन्द हुए पड़े थे। जिन नागरिकों ने राजा रानी कोकास को बचाने में साथ दिये थे उन सबको उत्साह दे दिये। बाकी राज भवन आदि सब कब्जे लिये राजा रानी को कारागृह में से छुड़ा लिये। रामेश और कोकास राज को अपने हस्तगत करना चाहते थे पर राजा काकजंघ ने कहा कि मेरे व्रतों की मर्यादा है जिसमें सौ योजन के बाहर की भूमि मेरे काम की नहीं है। अतः यह राज्य मेरे राज्य से सौ योजन से दूर होने से राज लेने में मेरे व्रत का भंग होता है। इस लिये राज्य और द्रव्य यहीं छोड़ कर राजा रानी कोकास और राजपुत्र रामेश तथा उनकी सैना चलकर उज्जैनी नगरी आ गये।

पीछे लोग एकत्र हो गरुड़ विमान से राजादिकों को निकालने का प्रयत्न किया पर कोकास की ऐसी चाबी लगाई हुई थी कि उनके सब प्रयत्न निष्फल हुए एक सुथार को बुला कर खुलाने के प्रयत्न लगे पर ज्यों ज्यों खुलाया विमान पर चलाया जाने लगा त्यों त्यों अन्दर रहे हुए राजादि को कष्ट होने लगा इनके अन्दर से राजादि चिल्लाने लगे इस हालत में कई अच्छे आदमी चलकर उज्जैन आये और कोकास से प्रार्थना की कि आप हमारे यहां पधार कर राजादिकों को कष्ट मुक्त कर दें। कोकास ने कहा कि आपका राजा

 कोकास ने अपना काम निभाना

हमारे राजा की आज्ञा को स्वीकार करे तो मैं चल सकता हूँ। उन लोगों ने कोकास का कहना स्वीकार किया। तब राजा काकजंघ की आज्ञा लेकर कोकास कांचनपुर गया और गरुड़ विमान के एक चाबी लगाई जिससे उन आसनों पर के आवरण खुल गये और राजादि नये जन्म पावे जितनी खुशी मनाई। कोकास ने कहा कि यह आपके किये हुए अनुचित कार्य का फल मिला है जब एक राजा अपनी विपदावस्था में आपके यहां आगया तो आपका कर्त्तव्य था कि आप उनका स्वागत सत्कार करते पर आपने उलटा ही रास्ता पकड़ लिया। पर हमारे राजा की कितनी दय लुता की उन्होंने आपका राज न लेकर आपको बन्धन मुक्त करने की मुझे आज्ञा देदी इत्यादि शिक्षा देकर कोकास पुन उज्जैन नगरी आ गया।

राजा काकजघ और कोकास संसार से विरक्त होकर एक ऐसे महात्मा की प्रतिक्षा कर रहे थे कि उन महात्माजी की सहायता से अपना शीघ्र कल्याण कर सकें। इतने में आचार्यधर्मघोषसूरि अपने शिष्य मडल के साथ उद्यान में पधार गये। राजा को बधाई मिलने पर बड़े ही समारोह के साथ कोकासादि नागरिकों के साथ राजा सूरिजी महाराज को वदन करने को गया। आचार्यश्री ने बोधकरी धर्म देशना दी जिसको सुनकर राजा एवं कोकास को वि० वैराग्योत्पन्न हो आया। ठीक उसी समय राजा ने सूरिजी से अपना पूर्व भव पूछा। इस पर सूरिजी ने अपने अतिशय ज्ञान से उनका पूर्व भव जान कर राजा को कहा कि हे राजन्! पूर्व जमाने में एक गजपुर नाम का नगरथा वहां पर शैल नाम का राजा राज्य करता था उसके नगर में एकसालग नाम का सुथार भी बसता था उसने राजा की आज्ञा से अनेक जैनमदिरों का निर्माणकिया और करता ही रहता था। उस समय किसी अन्य ग्राम से एक जैन सुथार आया वह भी अच्छा कला निपुण था। सालग ने उसका साधर्मी के नाते स्वागत नहीं किया पर वह मदिर बनाने लग गया तो मेरी आजीविका कम हो जायगा। अत उसने आगत जैन सुथार पर जाति नीचता का दोषारोपण कर उसको राजा द्वारा कैद करवा दिया पर जब राजा अन्य लोगों द्वारा पूछा ताछ की तो उसको मालूम हुआ कि मैंने अन्याय किया है उस सुथार को कैद से मुक्त कर दिया पर इस पातक की आलोचना न करके तुम दोनों मर कर पहले देवलोक में विराधिक देव हुए और वहा से चलकर राजा का जीव तो तुम राजा हुए हो जो छ घटे की कैद के बदले तुमको छ मास की कैद में रहना पड़ा और सुथार का जीव कोकास हुआ है जाति नीचता का कलंक लगाने से कोकास को दासी पुत्र होना पड़ा है इत्यादि। सूरिजी ने ससार का असार पना तथा कृत कर्मों को उसी प्रकार भो ने का सचोट उपदेश दिया। राजा तो पहले से ही ससार से उदासीन हो रहा था ऊपर से मिल गया सूरिजी का उपदेश। बस, फिर तो देरी ही क्या थी उसी समय राजाने अपने पुत्र को राज सौंप कर कोकास के साथ सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा लेकर यथा शक्ति तप, सयम की आराधना करते हुए कैवल्य ज्ञान दर्शन हो आया जिससे अनेक भव्यों का उद्धार कर अन्त में आप इस नाशमान् शरीर एव ससार को छोड़ मोक्ष महल में पहुँच कर अनत एव अक्षय सुखों का अनुभव करने लगे।

ऊपर मैंने जितने उदाहरण लिखे हैं उन सब के इस प्रकार के चरित्र बने हुए हैं पर इस एक नमूने से ही पाठक समझ सकते हैं कि पूर्व जमाने में भारत में कैसे-कैसे शिल्पज्ञ एवं कलाएं थी कि जिनकी बराबरी आज का (Scienee) विज्ञान याद भी नहीं कर सकता है।

कई सज्जन यह खयाल करे कि यदि आपके साहित्य में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं तब उन्होंने चिरकाल से इसका प्रयोग करना क्यों छोड़ दिया है? जैनों के जीवन का मुख्योद्देश्य आत्मकल्याण

श्रावक होकर शनैः २ सुकृत का पात्र हुआ। एक समय पूर्व जन्मोपार्जित कर्मों के उदय से उसे क्षय रोग हुआ तब उसके कौटम्बिक लोग कहने लगे कि—"अपने स्वधर्म का त्याग कर अन्य धर्म स्वीकार करने से ही इसको क्षय रोग हुआ है।" यह सुन कर व्याधिग्रस्त सागरपोत के धर्म भावना में शकाशील होने से पूर्वापेक्षा श्रद्धा में हानि होने लगी। वास्तव में अपने सम्बन्धियों के वचनों की ओर कौन आकर्षित नहीं होता ?

एकदा उत्तरायण पर्व में लिंग-महोत्सव के निमित्त अतिथि, ब्राह्मणों के लिये पुष्कल घृत घट ले जाने में आरहे थे पर असावधानी के कारण बहुत से घृत बिन्दु मार्ग में डाल देने में आये। यह देखकर सागरपोत ने उस धर्म की निंदा की जिससे निर्दय ब्राह्मणों ने लकड़ी और मुष्टि प्रहार से उसको मारा। सेवकों ने तो नृशंसतापूर्वक अनेक प्रकार के प्रहारों से आघात शील किया। उसके पश्चात् उस पर दया भाव लाकर अन्य लोगों ने जाने दिया। वहां आर्तध्यान से मृत्यु को प्राप्त होकर सैंकड़ों तिर्यश्च के भवों में परिभ्रमण कर तू अश्व के रूप में हुआ है। अहो ! अब मेरे पूर्व भव को सुन।

पूर्व चन्द्रपुर में बोधिबीज (सम्यक्त्वे की प्राप्ति) होने के पश्चात् सातवें भव में मैं श्रीवर्मा नाम का विख्यात राजा हुआ। वे भव इस प्रकार जानने चाहिये प्रथम-शिवकेतु दूसरा-सौधर्म देवलोक में तीसरा कुबेरदत्त, चौथा-सनत्कुमार देव में, पांचवा श्रीवज्रकुण्डल में, छट्ठा ब्रह्म देवलोक में सातवां श्रीवर्मा आठवां प्राणत देवलोक में और नवां यह तीर्थंकर का भव, इस प्रकार संक्षेप में अपने नव भवों को बतलाये।

अथ समुद्रदत्त व्यापारिक नगर भृगुपुर से किराने वगैरह की सामग्री लेकर वाहनों से समस्त लक्ष्मी के स्थान रूप चद्रपुर में आया। वहा के राजा को अमूल्य भेंट देकर सतुष्ट किया। राजाने भी दान सम्मान से सतोष प्रगट किया। पश्चात् राजा की कृपा बढ़ने से और साधु जनों का आदर सत्कार करने से जिनधर्म पर उसका अनुराग बढ़ने लगा और राजा को भी क्रमश जैनधर्म का बोध हो गया। वहां आये हुए उसके मित्र सागरपोत के साथ भी समान बोध के कारण राजा की मित्रता होगई। अन्त में समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त कर श्री वर्मा राजा प्रणत देवलोक में महार्द्धिवाला देव हुआ। वहा से चवकर वह मैं वर्तमान क्षेत्र में तीर्थंकर हुआ हूँ।

इस तरह भगवान् के मुख से कर्मकथा सुन कर राजाने अश्व को छोड़देने की अनुमति दी और उसने सात दिन का अनशन किया। समाधि से मृत्यु को प्राप्त होकर सहस्र देवलोक में सत्तर सागरोपम की आयुष्यवाला इन्द्र का सामानिक देव हुआ। वहां दिव्य सुख भोगवता हुआ उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव का स्मरण किया और भृगुपुर में साढ़ा बारह कोटि स्वर्ण की वृष्टि की। इसके साथ ही राजा और नगर के नागरिकों को जिन धर्म का प्रतिबोध दिलवाया। उसी समय सुकृत शाली ऐसे माहमहीने की पूर्णिमा को स्वर्ण रत्न मय श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के चैत्य की स्थापना की माघशुक्ला प्रतिपदा के दिन भगवंन् अश्वरत्न को बोध करने आये और उसी मास की शुक्ल अष्टमी को वह अश्व देवलोक में गया।

इस प्रकार नर्मदा के किनारे पर भृगुकच्छ पत्तन में समस्त तीर्थों में श्रेष्ट ऐसे अश्वावबोध नामका पवित्र तीर्थप्रवर्तमान हुआ। मुनिसुव्रतस्वामी से बारह हजार बारह वर्ष व्यतीत होने पर पद्मचक्रवर्ती ने इसका पुनरुद्धार किया। हरिसेन चक्रवर्ती ने फिर से इस तीर्थका दशवा उद्धार करवाया। इस प्रकार पांच लाख और ग्यारह हजार वर्ष व्यतीत हो गये। ९६ हजार वर्षों में इसके १०० उद्धार हुए। इसके पश्चात् सुदर्शना ने इसका उद्धार करवाया, इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

भरोंच में मुनिसुव्रत तीर्थ

वैताढ्य पर्वत पर एक रत्नपुर चक्रवाल नामके नगर में विजयरथ नाम का राजा राज्य करता था। विजयमाला नाम की उसके रानी थी। विजया नाम की उसके एक पुत्री थी। वह तीर्थों का वंदन करने जा रही थी इतने में आगे उछलता हुआ एक सांप उसके देखने में आया इसके साथ में आने वाला पैदल वर्ग अपशकुन समझ कर उसको मारने लगे। अज्ञानता से इस जीव के वध को नहीं रोकती हुई विजया ने भी इसकी उपेक्षा की। पीछे शान्तिनाथ चैत्य में जाकर उसने भाव से भगवान को वंदन किया। इसी भावना में एक परम निर्मल चारित्र वाली विजया आर्या साध्वीजी को वंदन करके विजया सर्प वध की उपेक्षा का प्रायश्चित्त करने लगी। इससे उसने थोड़े कर्म पुद्गलों का क्षय किया। अन्त में वह अपने पुत्र एवं धन के वियोग से आर्तध्यान करती हुई मृत्यु को प्राप्त हो शकुनि के रूप में पैदा हुई और वह सर्प मृत्यु को प्राप्त होकर शिकारी हुआ।

एकदा भाद्रपद में बहुत दिनों तक बरसात हुई बाद वह शकुनी (चिड़िया) भूखातुर हो अपने साथ बच्चों व स्वयं के लिये खाद्य सामग्री का शोधन करती हुई उस शिकारी के घर गई। वहां से उसने एक मांस का टुकड़ा अपनी चोंच से उठाया। पश्चात् उड़कर आकाश में जाती हुई उसको शिकारी ने तीक्ष्ण बाण छोड़ कर घायल किया। इससे वह श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के चैत्य के सन्मुख गिर पड़ी तथा मरने के छोर पर वह आगई। इतने में पुण्य योग से भानु और सुव्रत नाम के दो साधु वहां आ गये। उन्होंने उस [illegible] जाकर जल सिञ्चन से उसको आश्वासन दिया और पञ्च परमेष्ठी रूप महा मंत्र सुनाया। इस तरह धर्म के ध्यान में लीन हुई शकुनि दो प्रहर में मृत्यु को प्राप्त हुई।

सागर के किनारे पर दक्षिण खंड में सिंहल नामक द्वीप था। वहां कामदेव के समान रूपवान चन्द्र शेखर नाम का राजा राज्य करता था। रूप में रति के समान चंद्रकांता नामक उसके रानी थी। शकुनी मर कर चंद्रकांता रानी की कुक्षि से सुदर्शना नाम की पुत्री हुई।

एक दिन भृगुपुर से वाहन लेकर जिनदास नाम का सार्थवाह वहां आया। उसने रत्नादि बहुमूल्य भेंट राजा को अर्पण की। उसमें से अचानक ही में पूर्व दशा का [illegible] के नाम में नमो और [illegible] माणिक छींक आगई। तत्काल ही उसने महामांगलिक पंचपरमेष्ठी मन्त्र का उच्चारण किया जिसको सुनकर राजपुत्री को मूर्छा आगई और उसको तत्क्षण पूर्व जन्म का स्मरण होगया। राजा के द्वारा पूछने पर उसने अपने पूर्वभव का वृत्तान्त पिता को कह सुनाया। तदनन्तर तीर्थ वंदन के लिये उत्कंठित हुई राजपुत्री ने अत्याग्रह से पिता की अनुज्ञा मांगी पर राजा ने उसको जाने की अनुमति नहीं प्रदान की। इससे उसने अनशन करने की प्रतिज्ञा ले ली। बस, अन्योपाय न होने से अतिवत्सल होने पर भी अपनी पुत्री को राजा ने जिनदास सार्थवाह के साथ जाने की आज्ञा दे दी। अठारह सखियां, सोलह हजार पैदल सिपाही, [illegible], पांच रत्न मोतियों से भरे हुए अठारह वाहन आठ कंचुकी तथा आठ अंगरक्षकों के परिवार को साथ देकर उसको विदा किया। उपवास करते हुए जिनदास के साथ वह राज सुता एक मास में भरुचतीर्थ स्थान पर आई। वहां मुनिसुव्रतस्वामी को वंदन करके महोत्सव किया। तदनन्तर अपने उपकारी साधु और सुव्रत मुनियों को वंदन करके कृतज्ञता के साथ अपने साथ लाया हुआ सब धन उनके सामने रख दिया। निर्लोभता से और मन विरक्त होने से इसका उन्होंने निषेध किया तब कनक और रत्नों के व्यय से उसने उस तीर्थ का उद्धार किया। तब ही से वह तीर्थ शकुनिका-विहार नाम से प्रसिद्ध हुआ पश्चात् बारह वर्ष तक दुष्कर तप का आचरण कर समाधि पूर्वक अनशन व्रत के साथ काल कर ईशाना नाम की देवी हुई। एक समय देवियों के साथ रहते

[illegible] की भेंट

हुए देवी दर्शना की एक विद्यादेवी के साथ मित्रता हो गई। पूर्व भव का स्मरण कर वह जिनेन्द्रदेव की पुष्पादि से पूजा करने लगीं। उसी नगर में उसकी अठारह सखिया मर कर देवियां हुई अतः सबके साथ महाविदेह जिन एव नदीश्वर द्वीप में जिन-प्रतिमा की भावपूर्वक पूजा कर अपने देव भव को सफल बनाने लगी।

एक दिन वह देवी भगवान् महावीर को वंदन करने आई और भक्तिपूर्ण कई प्रकार का नाटक किये बाद में गणधर सौधर्म ने देवी का पूर्वभव पूछा और भगवान् सम्पूर्ण पूर्व भव कह सुनाया। विशेष में प्रभु ने कहा यह देवी तीसरे भव मोक्ष को प्राप्त करेगी। यह भरोंच नगर जो सकुशल रहा है वह, इस देवी की कृपा से ही रहा है।

देवी प्रतिदिन जिन पूजा के लिये तमाम सुगन्धित पुष्प ले आती थी इससे अन्य लोगोंको देवार्चना के लिये पुष्प नहीं मिलता था तब श्रीसंघ ने आर्य सुहस्तिसूरिके शिष्य कालहंससूरि से विज्ञप्ति कर इसका समाधान करवाया।

बाद में सम्राट सम्प्रति ने इसका जीर्णोद्धार करवाया उसमें उपद्रव कर ने वाले व्यन्तर को गुणसुन्दर सूरिके शिष्य कालकाचार्य ने रोका। बादमें सिद्धसेन दिवाकर के उपदेश से राजा विक्रम ने भी इसका पुनरुद्धार करवाया। वीरात् ४८४ वर्ष में आर्य खपटसूरि ने व्यंतरों तथा बौद्धों से इस तीर्थ की रक्षा की। वीरात् ८४५ वर्ष में तुर्कों ने वल्लभी का भंग किया बाद में वे भरोंच आने लगे तो देवी ने उनको रोका। बाद में ८८४ वर्ष में मल्लवादी ने भी बौद्धों एव व्यन्तरों से इस तीर्थ की रक्षा की। आपके उपदेश से सत्यवाहन राजने इस तीर्थ की रक्षा की और पादलिप्तसूरिने ध्वजाप्रतिष्ठा की। आर्य खपटसूरि के वंश में ही प्रस्तुत आचार्य विजयसिंहसूरी हुए जो यमनियमादि उत्तम गुणों से स्वपर आत्मा के कल्याण करने में समर्थ हुए।

आचार्य विजयसिंहसूरि ने शत्रुञ्जय गिरनार को यात्रार्थ सौराष्ट्र में विहार किया और धीरे २ गिरनार पर चढ़े वहां तीर्थ रक्षिका अम्बा नाम की देवी थी प्रसङ्गोपात उसका चरित्र यहां लिखा जाता है ?

कणाद् मुनि स्थापित कासहृद नाम के नगर में सर्वदेव नाम का एक ब्राह्मण था। सत्य देवी नाम की उसकी पत्नी थी। अम्बादेवी नामक इनके आत्मजा थी युवावस्था के प्राप्त होने पर सोमभट्ट नामक कोटि नगरी निवासी ब्राह्मण के साथ उसका लग्न हुआ था। कालन्तर में इनके विभाकर शुभकर नाम के दो पुत्र हुए।

एक समय भगवान् नेमिनाथ के शिष्य सौधर्मसूरिके आज्ञानुयायी दो मुनि अम्बादेवी के घर पर भिक्षा के लिये आये। अम्बादेवी ने उनको शुद्ध आहार पानी प्रदान कर लाभ लिया। यह बात जब सोमभट्ट के कान पर आई तो उसने अम्बादेवी के साथ खूब मारपीट की बस, वह अपने दोनों बच्चों को लेकर गिरनार पर आई और नेमिनाथ को वन्दन कर झंपापात करके मरगई। मरकर वह अम्बिका नाम की देवी होगई।

इधर उसके पति का क्रोध शान्त होने पर उसको अपने किये हुए अकृत्यपर बहुत ही पश्चाताप होने लगा बस, वह भी चलकर गिरनार आया और भगवान् नेमिनाथ को वंदन कर एक कुण्ड में झम्पापात करके मर गया। वह अम्बिका देवी की सवारी में सिंह देव पने उत्पन्न हुआ।

विजयसिंह सूरि तीर्थ यात्रा कर प्रभु के ध्यान में सलग्न हो गये। रात्रि में अम्बिका देवी गुरु को वंदन करने आई। गुरुने कहा— तू पूर्व भव में विप्र-पत्नी थी तेरे पति के द्वारा पराभव को प्राप्त हुई तू मर करके देवी हुई और तेरे पति की भी यही दशा हुई है वह मर कर तेरी सवारी के लिये सिंह देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

कर श्रीमाल नगर चला आया। जब वीर की माता ने वीर का वृत्तान्त पूछा तो साले ने कहा—वीर नाम धराने वाले तुम्हारे वीर को चोरों ने मार डाला है। बस, इतना सुनतेही पुत्र वियोग से दुःखी हो माता ने तत्काल प्राण छोड़ दिये बाद में वीर घर पर आया पर अपनी माता की मृत्यु देख उसको वैराग्य पैदा हो गया। एक एक कोटि द्रव्य एक एक स्त्री* को देकर अवशिष्ट द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगा आप निस्पृहीकी भांति सत्यपुरमें जाकर वीर भगवान की भक्ति में सलंग्न हो गये। षष्ठ आठ उपवास किये व चार प्रकार के पोषधकर प्रासुक भोजन करने लगे। रात्री के समय तो स्मशान में जाकर के ध्यान सलग्न करने में होने लगे।

एक दिन सायंकाल के समय वीर, नगर से बाहिर जारहा था कि जंगमकल्पतरू मुनि श्रीविमलगणि से उनकी भेंट हो गई। मुनि वर्य श्रीविमलगणि† शत्रुञ्जय जाने के लिये वहां आये थे। वीर ने मुनिराज को सम्मुख देख विनय पूर्वक वंदन किया तब गणिजी ने कहा—महानुभाव! मैं तुमको अंगविद्या देने की उत्कण्ठा से ही यहां आया हूँ। गणिजी के उक्त वचनों को सुनकर वीर ने अपना अहोभाग्य समझा और वह गणिजी को अपने उपाश्रय मे ले गया व रातभर उनकी सेवा की। गणिजी ने वीर को दीक्षा देकर तीन दिन अङ्ग की विद्या आम्नाय सिखलाई और कहा थारापद्रनगर के ऋषभप्रसाद में अंगविद्या ग्रन्थ है जिसको तू धारण करके स्वपरात्मा का कल्याण करना। इतना कह वह विमलगणिजी ने शत्रुञ्जय की ओर पदार्पण किया व कुछ दिनों के पश्चात् अनशन पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग के अतिथि हो गये। मुनि वीर गुर्वादेशानुसार थारापद्रनगर में गया और ग्रन्थ को प्राप्त कर अंगविद्या का अध्ययन किया। पश्चात् तप तपने में शूरवीर मुनिवीर ने पाटण की ओर विहार किया। मार्गमें थीराग्राम के वल्लभीनाथ नाम व्यंतर के वहां आप ठहरे। रात्रि के समय व्यतरने विकराल हस्ति एव क्रूर सर्पादि के रूप कर मुनिवीर को उपसर्ग किया पर वीर तो वीर ही थे। वे मेरु की भांति सर्वथा अकम्प रहे। इसमे सन्तुष्ट होकर मुनिवीर को व्यन्तर ने नमस्कार किया और कहा—आप को कुछ चाहें मेरे से मांग सकते हैं। मुनिवीर ने जीव रक्षा के लिये कहा जिसको व्यंतर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस समय पाटण में चामुण्ड राजा राज्य करता था। व्यन्तर ने राजा को बुला कर जीव दया के लिये कहा जिस को राजा ने सहर्ष स्वीकार कर वैसा करने का वचन दे दिया। बाद में मुनि वीर अणहिल्लपाटण पधारे वहा बहुत से भव्योंको उपदेश देकर उनका उद्धार किया।

पाटण में श्रीवर्द्धमानसूरि विराजमान थे। उन्होंने वीरमुनि की योग्यता देख उनको आचार्य पद प्रदान किया। इसके पश्चात् वल्लभीनाथ व्यन्तर प्रत्यक्ष बैठकर वीर सूरि का व्याख्यान सुनने लगा पर उसकी क्रीड़ामय प्रवृत्ति रुक न सकी। अपनी स्वाभाविक आदत के अनुसार वह मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर क्रीड़ा करने लगा जिससे जन समुदाय में बैचेनी फैलगई। वीरसूरि ने व्यन्तरको उपदेश देकर उसको इस कार्य से रोका और लोगों को सुखी बनाया'

---

*उपस्थेति कोटिमेकैका कलत्रेभ्यः प्रदाय सः। गत्वा सत्यपुरे श्रीमद्वीर माराधयन्मुदा ॥ २९॥

†चारित्रमिव मूर्त्तिस्थ मधुरायाः समागतम्। स पर्वं सदेशीयमपश्यद् विमल गणिम् ॥ ३४ ॥
गणिः प्राहातिथिस्तेऽहमङ्ग विद्योपदेशात मिलित्वा ते स्वकालाय यामि शत्रुञ्जये गिरौ ॥ ३८ ॥
तदार्थं ज्ञापयिष्यामि शीघ्र तत्पुस्तकं पुनः। थारापद्रपुरे श्रीमान्नाभेयस्य जिनेशितु ॥ ४१ ॥
चैत्यस्य शुकनासेऽस्तित गृहीत्वा च वाचये। इत्युक्त्वाऽदात् परिव्रज्यां गुरुर्वीरस्य सादरम् ॥ ४६ ॥

विमल गणी की अंग विद्या

एक दिन वीरसूरि ने व्यन्तर से पूछा ‡ क्या अष्टापद तीर्थ जाने की तुम्हारी शक्ति है ? व्यन्तर ने कहा—हाँ, अष्टापद जाने की तो मेरी शक्ति है पर वहाँ के व्यन्तरों के तप तेज के सम्मुख मैं ज्यादा ठहर नहीं सकता हूँ । यदि मैं आपको अष्टापद ले जाऊँ तो आप एक प्रहर से अधिक वहाँ ठहर नहीं सकेंगे । अगर आप अधिक ठहर गये और मैं वहाँ से लौट आया तो आप वापिस नहीं आसकेंगे । वीरसूरि ने व्यन्तर का कहना स्वीकार कर लिया तब व्यन्तर ने एक धवल वृषभ का रूप बना कर वीर सूरि को अपनी पीठ पर बिठाया । वीरसूरि ने अपना मस्तक वस्त्र से आच्छादित कर लिया, पश्चात् वृषभ आकाश में गमन करता हुआ क्षणभर में अष्टापद तीर्थ पर पहुँच गया । चैत्य के द्वार के पास मुनि को नीचे उतार दिया पर वहाँ के देवों के चमत्कार को सहन नहीं करने वाले वीर सूरि एक पुत्तलिका के पीछे छिप कर बैठ गये ।

तीन कोस ऊँचे और एक योजन विस्तीर्ण भरतचक्रवर्ती के करवाये हुए मनोहर आकार एवं एक, अवगाहना युक्त उन चैत्यों में वीरसूरि ने नमस्कार स्तुति कर सब प्रतिमाओं को भाव से प्रणाम किया और बाद में शासन की प्रभावना बढ़ाने के उद्देश से देवताओं के द्वारा चढ़ाये हुए पाँच सात चावल के लिये और वृषभ की पीठ पर बैठ कर वापिस चले आये । इन सुगन्धमय चावलों से सूरिजी का उपाश्रय सुगन्धमय हो गया । वह ऐसा मालूम होने लगा जैसे स्वर्ग भवन हो ।

रात्रि के प्रथम प्रहर में अष्टापद गये हुए सूरिजी दूसरे प्रहर की घड़ी रात्रि व्यतीत होने पर वापिस स्वस्थान पर लौट आये ।

जब उपाश्रय अनुपम सुरभि से सुरभित होगया तो प्रातःकाल शिष्यों ने इसका कारण पूछा । आचार्यजी ने यात्रा का सब हाल यथावत् कह दिया । क्रमशः फैलते २ यह बात संघ को मालूम हुई और संघ के द्वारा राजा को । इस आश्चर्यभरी घटना को सुन कर राजा संघ के साथ सूरिजी के पास आया और यात्रा का हाल पूछने लगा । इस पर आचार्यजी ने कहा—

दो धउला दो सामला दो रत्तुप्पल वन्न । मरगयवन्ना दुन्नि जिण सोलस कंचन वन्न ॥ १ ॥
नियनियमाणिहिंकारविय, भरहि जि नयसायंद । तेमइ भावीहिं वंदिया ए चउवीस जिणंद ॥ २ ॥

अर्थात्—दो श्वेत दो श्याम दो हरे, दो लाल और सोलह स्वर्णमय वर्णवाले अपने २ वर्ण प्रमाण वाले चौवीस तीर्थंकरों को मैंने भाव पूर्वक वंदन किया है ।

राजा ने कहा—ये तो आपके इष्ट देव हैं अतः आप इनका सब वृत्तान्त कह सकते हो पर अब—

‡ [illegible] रात्रावन्यदा [illegible] शक्तिरस्ति किम्, अष्टापद [illegible] ॥११॥
[illegible] ॥१४॥
[illegible] ॥१५॥
× × × × ×
[illegible] ॥१६॥
[illegible] ॥१९॥
[illegible] ॥२१॥
[illegible] ॥२२॥
[illegible] ॥२४॥

समाज के विश्वास योग्य किसी पदार्थ से खातरी करवाइये। इस पर सूरिजी ने वहां से लाये हुए देवताओं के चावलों को जो बारह अंगुल लम्बे और एक अंगुल के जाड़े थे—बतलाये। इससे राजा एवं सकल श्रीसंघ को विश्वास हो गया कि सूरिजी ने अष्टापद तीर्थ की यात्रा अवश्य की है।

एक दिन राजाने अपने मन्त्री वीर को कहा—वीर! मैं न्याय से राज्य चलाता हूँ, पण्डितों को आश्रय देता हूँ, और वचन सिद्ध वीर सूरि जैसे तुम्हारे गुरु के होने पर भी एक चिन्ता मुझे सन्तप्तकर रही है। मन्त्री ने कहा-राजन्! मैं आपका सेवक हूँ, आप जो हो मुझे कहें, मैं उसका उचित उपाय करूंगा। राजा ने कहा—मंत्री! इतनी रानियों के होने पर भी मेरे पुत्र नहीं, इसी की मुझे चिन्ता है। यह सुन कर मन्त्री ने वीरसूरि को कहा और वीरसूरि ने वासक्षेप दिया जिससे राजा के वल्लभ नाम का पुत्र हुआ।

एक समय वीरसूरि अष्टादशसति देश के ढंधराणी ग्राम में पधारे। वहा उपाश्रय में ठहर कर सायंकाल को श्मशान में ध्यान के लिये जाने लगे तो एक राजपुत्र ने सूरिजी से कहा—भगवन्! यहां सर्पों का बहुत भय है अत, आप वहां न पधारें। सूरिजी ने कहा—भव्य! मुनि तो जगल में ही ध्यान करते हैं। इस पर राजपुत्र अपने मकान पर जाकर चिन्ता मग्न हो गया।

उसी समय राजपुत्र के जम्बुफल की भेंट आई। उसने एक जम्बु खाने के लिये लिया पर उसमें सुक्ष्म जन्तु दृष्टिगोचर हुए। जीवों को देख कर वे विचार करने लगे कि दिन में भी इसमें इतने जीव मालूम होते हैं, तब रात्रि भोजन करने वालों का क्या हाल होता होगा? वह तत्काल ब्राह्मणों के पास जाकर उसका प्रायश्चित मागने लगा तो ब्राह्मणों नें कहा—आप स्वर्ण जन्तु बना कर ब्राह्मणों को दान करें जिससे पाप स्वयमेव नष्ट हो जायगा। इस प्रकार सुन कर राजपुत्र ने सोचा कि यह कैसा धर्म और यह कैसा प्रायश्चित? एक जन्तु तो मर गया फिर दूसरा स्वर्ण जन्तु बना कर इनकी उदर पूर्ति करने से आत्म शुद्ध होना नितान्त असम्भव है। राजपुत्र की श्रद्धा उन लोभी ब्राह्मणों से उतर गई। पश्चात् उसने तत्काल जैन मुनि को अपना सब हाल कहा तो मुनियों ने उसको धर्म का स्वरूप इस तरह समझाया कि उसने तत्काल ही भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली।

आचार्य वीरसूरि ने जैनशासन की बहुत ही प्रभावना की। अन्त में आपने अपने पट्टपर श्रीभद्र मुनि को आरूढ़ कर वि० स० ९९१ में अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्गारोहण किया। आपश्री का जन्म वि० स० ९३८ में हुआ और दीक्षा ९८० में, स्वर्गवास वि० स० ९९१ में हुआ।

इस प्रकार जैन शासन के प्रभावक आचार्यों में वीरसूरि भी मन्त्र-प्रभावक आचार्य हुए। ऐसे आचार्यश्री के चरण कमलों में बारम्बार नमस्कार हो।

आचार्य श्रीवीरसूरिः (२)

ऊपर आचार्य श्रीसिद्धसूरी की स्पर्धा में वीरसूरि का उल्लेख किया गया है। आप भावहड़ा गच्छ के आचार्य थे। आपके पूर्व आचार्य भावदेवसूरि के नाम से इस गच्छ का नाम भावहड़ा गच्छ हुआ था। इनके पूर्व के आचार्य पल्लिगच्छ के नाम से मशहूर थे। भावहड़ा गच्छ के संस्थापक तीसरे श्रीभावदेवसूरि ने स्वरचित पार्श्वनाथ चरित्र में अपने को कालकाचार्य की सन्तान बतलाया है। उस ग्रन्थ की प्रशस्ती में देवेन्द्रवंद्य कालकाचार्य के वंश में पल्लिगच्छ की उत्पत्ति होने का लिखा है। इस गच्छ के कई आचार्य अपने

को चन्द्रकुलोत्पन्न भी मानते हैं। जब चंद्रकुल कोटिकगच्छ की शाखा में हुआ है तब देवेन्द्रचंद्र चन्द्रकुल कोटिक गच्छ व विलकुल अलग हैं। सुमति नागल की चौपाई में ऋषि नाम के मुनि ने लिखा है कि पीपलगच्छ के कालकाचार्य वीरात् ९९३ वर्ष में हुए हैं। यदि यह सत्य है तो वीर संवत् ९९३ के कालकाचार्य चंद्रकुल में हुए हैं। अतः पीपलगच्छ विक्रम की छट्ठी शताब्दी जितना पुराना गच्छ कहा जा सकता है। इसी पीपलगच्छ में मानदेवसूरि हुए और उनके नाम से मानदेव गच्छ प्रचलित हुआ। जैसे उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ में पांच नाम, पल्लीवालगच्छ में सात नाम, नागेन्द्रगच्छ में तीन नाम से गुरु परम्परावली चली आ रही है वैसे मानदेवगच्छ में भी मानदेवसूरि, विजयसिंहसूरि वीरसूरि और जिनदेवसूरि इन चार नाम से गुरु परम्परा चली आ रही है। मानदेवगच्छ में वीरसूरि नामकई आचार्य हो गए हैं पर प्रस्तुत वीरसूरि चरित्र व राजा सिद्धराज (जयसिंह) के समसामयिक वीरसूरिजी का ही यहाँ वर्णन है।

प्रस्तुत वीरसूरि महा प्रतिभाशाली आचार्य हुए थे। योग, समाधि, ध्यान, व मंत्र विद्या तो आपके हस्तामलक की भांति प्रत्यक्ष सिद्ध थी। शास्त्रार्थ में वादियों को पराजित करने में कुशल एवं सिद्धहस्त थे। विजय श्री सदैव आपके ही कण्ठाभरण बनती थी। आप चैत्यवासियों के अग्रगण्य नेता और सिद्धराज जयसिंह की राज सभा के एक सम्मानित पण्डित थे और हमेशा राजा के सहवास में रहते थे पर कहा है कि—

"अति परिचयादवज्ञा सतत गमनादनादरो भवति। मलयेभिल्लपुरंध्री चन्दन तरु काष्ठमिन्धनं कुरुते॥"*

इस नीति के अनुसार राजा जयसिंह ने राज्यमद के स्वाभाविक अहंभाव से या उपहास की अनुचित भावना के आवेश में मुस्कराहट के साथ कह दिया कि—

"सिद्ध सूरिजी ! आपका इतना मान, सम्मान, प्रतिष्ठा एवं आदर मेरे राज्याश्रय से ही होता है। यदि आप पाटण को छोड़ कर अन्य प्रान्त में चले जावें तो आपका एक भिखारी भिक्षु जितना ही मान होगा" राजा के उक्त व्यंग्यपूर्ण वचनों को श्रवण कर मुख के आवेश को कृत्रिम हंसी में बदलते हुए सूरिजी ने कहा—इतने दिवस पर्यन्त मैं आपकी अनुमति की ही प्रतीक्षा कर रहा था, आज बिना प्रयत्न मुझे अनुमति मिल गई अतः मैं अब शीघ्र ही अन्यत्र प्रस्थान कर दूंगा। राजा को अपना उक्त आन्तरिक अभिप्राय बतलाकर वीरसूरि शीघ्र ही राज सभा से विदा हो अपने उपाश्रय में आ गये।

इधर राजा को अपने मुख से कहे हुए वचनों का रह २ कर पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगा कि—ये अन्य पण्डितों के समान लोभी या मिथ्याभिमान के पुतले नहीं हैं किन्तु परम निस्पृही महात्मा पुरुष हैं। मेरे अज्ञानता पूर्ण वचनों की असह्य पीड़ा के कारण रुष्ट हो कर सूरिजी मेरे राज्य को छोड़ कर अन्यत्र चले गये तो अच्छा नहीं होगा अतः राजा ने अपने नगर के चारों ओर दरवाजों पर आचार्यश्री को रोकने के लिये योग्य सिपाहियों का पैरा दिये। सूरिजी अपने योग बल से व आकाशगामिनी विद्या की शक्ति से पाटण छोड़ पाली नगर में (मारवाड़) चले आये। दूसरे दिन राजा ने सूरिजी की खबर करवाई तो वे नहीं मिले। इधर पाली के श्रावकों द्वारा सब तिथि, वार, नक्षत्र व आचार्यश्री के पाली में पदार्पण करने की सूचना राजा को मिल गई। राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि सूरिजी एक ही दिन में पेश और निरन्तर निकल कर पाली जैसे सुदूर मरुधर प्रान्तीय क्षेत्र में कैसे चले गये ? राजा ने अपनी व्यग्रता पर बड़ा

*—अत्यन्त परिचय होने से निरादर [illegible]। [illegible]

ही पाश्चाताप किया और अपने प्रधान पुरुषों को सम्मान पूर्वक आचार्यश्री को पुन पाटण में लाने के लिये भेजे। प्रधान पुरुषों ने वहाँ जाकर राजा की ओर से क्षमा याचना करते हुए पाटण में पधारने की प्रार्थना की तो प्रत्युत्तर में वीरसूरिजी ने संतोष देते हुए कहा—अभी तो मैं किन्हीं कारणों से आ नहीं सकता हूँ पर गुर्जर प्रान्त की ओर विहार करने पर पाटण की स्पर्शन अवश्य ही करूंगा। आचार्यश्री के उक्त प्रत्युत्तर को श्रवण कर प्रधान पुरुष पुनः वापिस लौट कर पाटण आये और राजा को सकल वृत्तांत कह सुनाया। राजा ने अपने गर्व एव अज्ञानता पूर्ण उपहास का आन्तरिक हृदय से पाश्चाताप किया।

श्रीवीरसूरि ने पाली से महाबौद्धपुर की ओर पदार्पण किया और तत्रस्थित बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित† कर जिनधर्म की सुयश पताका फहरायी। वहाँ से ग्वालियर स्टेट में आये, वहाँ के राजा ने सूरिजी के प्रकाण्ड पाण्डित्य का बहुत ही सम्मान किया। सूरिजी ने अपनी अपूर्व विद्वता से वहाँ के कई वादियों को परास्त किया जिससे प्रसन्न हो राजा ने छत्र‡, चामर आदि राजचिन्ह दिये। वहाँ से सूरिजी नागपुर को पधारे। नागपुर श्रीसघ ने आचार्यश्री का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

इधर राजा जयसिंह की राजसभा वीराचार्य के अभाव में एकदम शून्यवत् दृष्टि गोचर होने लगी अतः राजा के अपने प्रधान पुरुषों को नागपुर भेजे और उन्होंने राजा की ओर से प्रार्थना की तो वीरसूरि ने ग्वालियर नरेश से प्राप्त राज चिह्नों को उनके साथ राजा सिद्धराज जयसिंह के पास भिजवा दिये। (इसका तात्पर्य शायद राजा को यह मालूम कराना होगा कि जैनाचार्य तुम्हारी सभा में ही नहीं अपितु जहाँ जाते हैं वहाँ ही आदर पाते हैं) कालान्तर में वीरसूरिजी ने क्रमश गुर्जर प्रान्तीय चारूपनगर में पदार्पण किया। राजा जयसिंह भी सूरिजी के दर्शनार्थ चारूप पर्यन्त सम्मुख आया। सूरिजी के चरणों में मस्तक नमाकर अपने अपराध की क्षमा याचना व पाटण पधारने की प्रार्थना करने लगा। आचार्यश्री ने राजा की प्रार्थना को मान देकर पाटण में पदार्पण किया तो राजा ने इन्द्रवत् अपूर्वोत्साह से सूरिजी का पुर प्रवेश महोत्सव किया। पश्चात् राजा अपनेअपराध को विस्मृत करने के लिये प्रार्थना करने लगा—प्रभो! मैंने तो केवल उपहास मात्र में ही आपश्री को उक्त अकथनीय वचन कहे थे जिसके परिणाम स्वरूप मुझे आपश्री की सेवा से इतने समय तक वञ्चित रहना पड़ा। गुरुदेव! मैं महा पापी एव अज्ञानी हूँ। आप उदार हृदय से मेरे इस अपराध के लिये क्षमा प्रदान करें।

एकबार वादीसिंह नाम का सांख्य दार्शनिकवादी पाटण में आया। उसने पाटण में यह उद्घोषणा की कि कोई वादी मेरे साथ शास्त्रार्थ करना चाहे तो मैदान में आकर मेरे से शास्त्रार्थ करे। किसी ने भी वादी के सामने आने का साहस नहीं किया अत. राजा को बहुत अफसोस हुआ। वह तत्काल वेश परिवर्तन कर वीरसूरि के कला गुरु गोविन्दसूरि के पास गया। सांख्याचार्य से धर्म विवाद करने की प्रार्थना की तब गोविन्दसूरि ने कहा—इसमें क्या ? हमारा वीराचार्य ही उसको परास्त कर देगा। सूरि के संतोष प्रदायक वचनों को सुनकर राजा ने प्रात काल सांख्यार्य को अपनी राजसभा में आमन्त्रित किया पर गर्व के आवेश में आकर उसने राजा से कहलाया—यदि तुमको हमारा वचन विलास देखना हो तो तुम तुम्हारे पण्डितों

†—महाबोधपुरे बोद्धान् वादे जित्वा बहूनथ। गोपगिरी मागच्छन् राज्ञा तत्रापि पूजिता ॥१

‡—परप्रपद्विनस्तैश्च जितास्तेपो च भूपति। छत्र चामर युग्मादि राज चिन्हान्य दान्मुदा ॥३ प्र० च०

को साथ में लेकर हमारे मकान पर आओ और भूमि पर बैठकर हमारा अपूर्व कौतुक देखो। राजा ने भी उसके मान को गारत करने के लिये उसकी इस अनुचित शर्त को स्वीकार करली। प्रातःकाल शिष्य समुदाय सहित गोविंदाचार्य को साथ में लेकर राजा सांख्याचार्य के मकान पर गया। आचार्यश्री अपनी कम्बली बिछा कर भूमि पर बैठ गये। पीछे वीरसूरी का आसन रक्खा। राजा स्वयं सन्मुख भूमि पर बैठ गया पर अभिमान का पुतला सांख्याचार्य अपने उच्च आसन पर ही बैठ रहा। आगत समस्त समुदाय को देख उसने तर्क पूछा—मेरे साथ विवाद करने को कौन तय्यार है ? गोविंदाचार्य ने कहा—मैं और मेरे बड़े शिष्यों के साथ तो तुम बाद करने काबिल नहीं हो पर मेरा लघु शिष्य ही तुम्हारे लिये पर्याप्त होगा। बस तत्काल वर्षे विवाद प्रारम्भ कर दिया। बेचारा सांख्याच यं वादीभिन्न केसरी वीरसूरि के सन्मुख नहीं ठहर सका। थोड़ा समय में ही वह पराजित हो अपना श्याम मुंह करके बैठ गया।

राजाने सांख्याचार्य का गला पकड़ कर आसन से नीचे उतार दिया। जब कि वाद करने की योग्यता ही तुममें नहीं तो फिर यह अभिमान का उच्चतम आसन क्यों ? राजाको शिक्षा देना चाहता था पर गोविन्दाचार्य ने कृपापूर्वक उसे छुड़वा दिया।

इसी प्रकार सिद्धराज ने एक बार मालवा पर चढ़ाई की। मार्ग में वीराचार्य का चैत्यवास था। राजा ने वंदन किया। वीराचार्यने आशीर्वाद के रूप में एक काव्य बना कर दिया। जिससे राजा की विजय हुई।

एक बार कमलकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य को भी आपने ही राज सभा में पराजय किया इत्यादि।

श्रीवीराचार्य का जीवन कुछ आकर्षणीय है पर यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसे प्रभाविक पुरुष होने पर भी धर्मी के मार्ग में विघ्न क्यों किया ? इसके दो कारण होसकते हैं या तो अपनी मन्त्र शक्ति बताने की हो या कलिकाल म इसके लिये प्रेरणा की हो। कुछ भी हो उस समय के चैत्यवासियों में ऐसे अनेक प्रतिभाशाली आचार्य हुए जिन्होंने जैनधर्म को राष्ट्रीय धर्म बनाने का सफल प्रयत्न किया। अपनी प्रखर प्रतिभा स जैनधर्म की सर्वत्र प्रभावना एवं उन्नति की।

आचार्य बप्पभट्टि सूरिः

डुबाविधि नामक ग्राम में बप्पनामका क्षत्रिय गृहस्थ रहता था। उसके भट्टी नामकी भार्या थी और सूरपाल नामका एक पुत्र था। जब सूरपाल ५-६ वर्ष की वय का हुआ तो एकदिन अपने पिता से रुष्ट होकर घर से निकल कर मोढेर ग्राम में चला गया। उस समय गुर्जर प्रान्तमें पाटण पुर नामक एक अच्छा आबाद नगर था वहां पर मोढेर गच्छीय सिद्धसेन नामक आचार्य रहते थे।

एक दिन आचार्यश्री ने स्वप्न में महातेजस्वी बालकेशरी को छलांग मार कर चैत्य शिखर के अग्र भाग पर आरूढ़ होते हुए को देखा। प्रातःकाल आपने विचार किया और अन्य मुनियों को अपने स्वप्न का भावीफल सुनाया कि इस स्वप्न से वादी रूप हस्तियों के गण्डस्थल को भेद देने वाले मुनियों में अग्रगण्य शिष्य की प्राप्ति होगी इत्यादि।

जिस दिन सूरपाल मोढेरे में आया था। उसी दिन सिद्धसेनसूरि भि महावीर प्रभुकी यात्रार्थ मोढेरे में पधारे थे। जिस समय सूरिजी मन्दिर में गये उस समय सूरपाल भी वहीं पर बैठा हुआ था।

*—न कश्चित् दृष्टि सम कर्ता नित्यरूपे प्रत्य। स्वयं सर्वे मित्रतानुप्राणयवान् एतके। १।

सूरिजीने बालक की भव्याकृति को देखकर उसकी इच्छा से उसको अपने पास रख लिया और ज्ञानाभ्यास करवाना प्रारम्भ करवा दिया। सूरपाल की बुद्धि इतनी कुशाग्रह थी कि वह किसी भी श्लोक को एक बार पढ़लेता तो उसको कण्ठस्थ हो जाता था वह एक दिन में एक हजार श्लोक बड़ी ही आसानी से कण्ठस्थ करलेता था। भला ! ऐसे होनहार बालक को शिष्य बनाने की किसकी इच्छा न हो ? तदनुसार आचार्यश्री सूरपाल को दीक्षा देने की गर्ज से उसको लेकर उसके ग्राम डुवातिथि आये और सूरपाल के माता पिता को उपदेश दिया कि यदि तुम्हारा पुत्र दीक्षा अङ्गीकार करेगा तो निश्चित ही शासन का उद्धार करने वाला एक महाप्रभावक पुरुष होगा। इस पर पहिले तो बप्प और भट्टि ने आनाकानी की पर बाद में इस दीक्षा के साथ अपना नाम चिरस्थायी रखने की शर्त पर वे मञ्जूर हो गये। बस, आचार्यश्री ने भी सूरपाल के माता पिताओं की अनुमति से मोढेरा में वि० स० ८०७ में वैशाख शुक्ला तृतीय को सूरपाल को दीक्षा देकर उसका नाम मुनि भद्रकीर्ति रखदिया पर उपरोक्त शर्तानुसार प्रसिद्ध नाम बप्पभट्टि नाम का ही व्यवहार किया जाता था। दीक्षानन्तर गुरु ने बप्पभट्टि को योग्य समझ कर उनको सरस्वती का मन्त्र दिया बप्पभट्ट ने उसका निडरता पूर्वक आराधन किया जिससे देवी सरस्वती ने प्रसन्न होकर वरदान दिया।

मुनि बप्पभट्टि एक समय स्थण्डिल भूमिका गये थे। वापिस लौटते समय वर्षा आनेलगी अतः वे एक देवल में ठहर गये। इधर से एक भव्याकृतिवान् नवयुवक आ निकला। मुनिबप्पभट्टि को देखकर उसका साहस उनके प्रति अनुराग हो गया। वह वहीं पर ठहर गया। उसकी दृष्टि उस देवल के एक श्याम पत्थर पर खुदी हुई प्रशस्ति पर पड़ी जिसको आगन्तुक ने ध्यान पूर्वक पढ़ी और मुनि बप्पभट्टि को उसका अर्थ समझाने के लिये विनय पूर्वक प्रार्थना की। मुनिने उसकी आन्तरिक इच्छा को जान कर उसका स्पष्ट अर्थ समझाया जिससे आगन्तुक पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। वर्षा बन्द होने के पश्चात् दोनों चलकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर–मन्दिर में आये। सूरिजी ने मुनि के साथ आये हुए नवयुवक को देखकर उसका नाम पूछा। उसने मुह से न कह कर वहीं अक्षरों में लिख दिया। नाम को पढ़कर सूरिजी को स्मरण हो गया कि–रामसेन नगर के पास जंगल में पीलुडी के झाड़ की एक डाल के वस्त्र की झोली में छमास का बच्चा झूल रहा था और बच्चे की माता पीलू चून कर खा रही थी जिसको पूछने पर मालूम हुआ था कि कन्नौज के राजा यशोवर्मा की एक राणी के षड्यन्त्र से दूसरी रानी निकाल दी गई थी और वह ही इत उत परिभ्रमन कर अपने बच्चे का व अपना जीवन निर्वाह कर रही थी जिसका मैंने मोढेरा के एक सद्गृहस्थान के यहा सर्वानुकूल प्रबन्ध करवाया था उसीका बच्चा आम है। कुछ ही समय के पश्चात वहाँ से विहार कर देने के कारण इस व्यय में आचार्यश्री उसे पहले नहीं पहचान सके थे।

अब तो मुनि बप्पभट्टि के साथ आमकुमार का स्नेह और भी अधिक बढ़ता गया। उसको भी व्याकरण न्याय, धर्म व राजनीति सम्बन्धी विद्याओं का अध्ययन करवाया जाने लगा। इधर पुण्यानुरोग से षड्यन्त्र करने वाली राजा यशोवर्मा की रानी मर गई। राजाने अपने विश्वस्त मन्त्री को भेजकर मोढेरा से रानी और बच्चे को बुलवाया व अपनी मृत्यु के पूर्व ही राजकुमार आम को राज्य दे दिया।

जब राज कुमार आम को राज्य प्राप्त हुआ तो आपने राज्य के प्रधान पुरुषों को गुर्जर प्रान्त में भेजकर बप्पभट्टि मुनि को कन्नौज में बुलवाया। आचार्यसिद्धसेनसूरि ने भी राजा आम का अत्याग्रह देख, मुनिबप्पभट्टि को जाने की आज्ञा देदी। क्रमश मुनिश्री के कन्नौज पधारने से राजा आम को अत्यन्त हर्ष

हुआ। मुनिश्री के स्वागत के लिये बड़ी २ तैय्यारियाँ करने लगा। जिसके साथ में १४०० हस्ति १४०० रथ २० ००० अश्व और करोड़ों की संख्या में पैदल सिपाही थे वहाँ स्वागत-समारोह के विषय में कहना ही क्या ? उत्साहित नागरिकों के साथ राजा बप्पभट्टि मुनि के सम्मुख गया और विनय पूर्वक नमस्कार कर हस्ति पर आरूढ़ होने के लिये प्रार्थना की। इस पर मुनिश्री ने कहा हे राजन् ! संसार त्यागियों के लिये गज सवारी करना उचित नहीं है। इस पर राजाने कहा हे महामतिमन् ! मैंने पूर्व आपके सम्मुख प्रतिज्ञा की थी कि मुझे राज्य मिलेगा तो मैं आपको अर्पण कर दूंगा। अब राज्य का मुख्य चिन्ह हस्ति ऐसा है तो आपको इस पर सवारी कर मेरे मनोरथ को पूर्ण करना चाहिये। इस पर मुनिश्री ने बहुत ही आना-कानी की पर राजा ने भक्ति बलात् हस्ति पर बैठा ही दिया और अविस्मरणीय मानव मेदिनी के बीच सूरिजी का नगर प्रवेशोत्सव करवाया। उस समय का दृश्य ऐसा मालूम होता था कि मानो वीर शत्रु का पराजय करने के लिये एक महान् पराक्रमी योद्धा उग्र एवं भार बैरों की फटकारों से उत्साह पूर्वक समरांगण में जा रहा हो। जब निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के पश्चात् राजसभा में मुनिश्री पधारे तब राजा ने मुनि बप्पभट्टि को सिंहासन पर बैठने के लिए आमन्त्रित किया। मुनिश्री ने कहा-जब तक मैं आचार्य नहीं बनूं तब तक सिंहासन पर बैठ नहीं सकता हूँ। इस पर राजा ने अपने प्रमुख पुरुषों को मुनिश्री के साथ गुर्जर प्रान्त में भेज और आचार्यसिद्धसेनसूरि को विज्ञप्ति कर मुनि बप्पभट्टि को वि० सं० ८११ के चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन सूरिपद दिलवाया। सूरिपद अर्पण करते समय सूरिजी ने उपदेश देते हुए कहा-बप्पभट्टि ! मैंने तुमको योग्य समझ कर सूरिपद दिया परन्तु एक तो जवानी दूसरा राज-सम्मान इससे संयम रत्न की यथावत् रक्षा करते रहना तेरा प्रमुख कर्तव्य है, इस पर बप्पभट्टि ने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि भक्त जनों के यहाँ से कोई भी विगय नहीं लूंगा और आपश्री की शिक्षा को हृदय धार रक्खूंगा।

सूरिपद प्राप्तकरनेवाद बप्पभट्टिसूरि ने पुनः कन्नौज में पदार्पण किया। राजाने पुनः गज सवारी और महामहोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया और अपने राजप्रासाद में लेजाकर सिंहासन के ऊपर बिठाया।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि राजा आम को हमेशा धर्मोपदेश देते थे। फल स्वरूप राजा आम ने कन्नौज नगर में १०१ हाथ ऊंचा जिनमन्दिर बनवा कर अठारह भार स्वर्ण की प्रतिमा करवाई। आचार्य बप्पभट्टिसूरि के हाथों से प्रतिष्ठा करवाकर शुभमुहूर्त में प्रतिमा की स्थापना की। इसके सिवाय ग्वालियर नगर में २३ हाथ ऊंचा मन्दिर बनवा कर लेपमय प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। कहा जाता है कि इस चैत्य के एक मण्डप में एक करोड़ (लक्ष) द्रव्य व्यय हुआ।

इस प्रकार आमराजा के राज्य में सूरिजी का बढ़ता हुआ प्रभाव देख करके जैन समाज के आनन्द एवं उत्साह का पार नहीं रहा पर भिन्न सम्प्रदाय को उतनी खिन्नता स्पर्धा एवं ईर्षा हुई जितना जिनधर्मोपासकों को हर्ष। बस ईर्ष्याग्नि से प्रज्वलित मनुष्य जो अपनी ओर से कब कमी रखने वाले थे, उन्होंने येनकेनप्रकारेण राजा का मन भरना शुरु किया जिससे राजा की सूरिजी के प्रति कुछ उदासीनता हो गई। राजा ने अपनी ओर से उनके सन्मान में कमी करदी जिससे स्वयं सिंहासन के बजाय साधारण आसन देना प्रारम्भ कर दिया। विचक्षण सूरिजी ने जान लिया कि इन ईर्ष्यालु मनुष्यों की करामात का ही परिणाम है अतः उन्होंने राजा आम को इस प्रकार जोरदार शब्दों में समझाया कि राजा ने अपनी भूल स्वीकार कर सूरिजी का पुनः यथा वत् सम्मान करना प्रारम्भ कर दिया।

कालान्तर में सूरिजी की कविता में शृंगार रसके आधिक्य को देख कर राजा के दिल में पुनः कुछ मलीनता पैदा हो गई और उसने सूरिजी की ओर पूर्वापेक्षा कुछ उपेक्षा वृत्ति धारण कर ली। राजा की इस अविवेक पूर्ण स्थिति को देख बिना किसी को कहे सूरिजी ने भी विहार कर दिया। जब निर्दिष्ट समय के अतिक्रमण होने पर भी सूरिजी राज सभा में नहीं आये तो राजा ने तत्क्षण उनकी खबर मंगवाई पर कुछ भी उनको पता न लग सका। सूरिजी ने जाते हुए नगर के द्वार पर एक काव्य लिखा था जिसके आधार पर यह अनुमान किया गया था कि वे विहार करके अन्यत्र चले गये हैं। काव्य निम्न था—

यामः स्वस्तितवास्तु रोहणगिरे मत्त स्थिति प्रच्युता। वर्तिष्यन्त इमेकथं कथमिति स्वप्नेऽपि मैव कृथाः॥
श्रीमँस्ते मणयो वयं यदि भवल्लब्ध प्रतिष्ठास्तदा। ते शृङ्गारपरायणाः क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्ति नः॥"

अर्थात्—हम तो जाते हैं पर रोहणाचल पर्वत के समान हे राजन्! तेरा कल्याण हो। ये मेरे से विलग हुए कैसे अपनी यथावत् स्थिति रख सकेंगे ? इसका स्वप्न में भी विचार मत कर। मणि रूप हमने जो तेरे सहवास से प्रतिष्ठा प्राप्त की है तो शृंगार परायण राजा हमको मस्तक पर धारण करेंगे।

इधर सूरिजी विहार करते हुए गौड़देश की लक्ष्मणावती नगरी में पधार गये वहां वाक्पतिराज नामक विद्वान से उनकी भेंट हुई। उसने सूरिजी को परमयोग्य जान करके उस नगरी के राजा धर्म से उनका परिचय करवाया। इस पर राजा धर्म ने कहा कि मेरी ओर से सूरिजी से यह प्रार्थना है कि जब तक राजा आम खुद आपकी विनती करने को यहां न आवे तब तक आप किसी भी हालत में कन्नौज नहीं पधारे। इसका दूसरा कारण यह भी था कि कन्नौज के राजा आम और लक्ष्मणावती नरेश धर्म के किसी एक बात के कारण परस्पर वैमनस्य था अत. राजा धर्म सूरिजी को सम्मान पूर्वक अपने राज्य में रक्खे और आमराजा के बुलाने पर सूरिजी सहसा कन्नौज चले जाय इसमें धर्मराज अपना अपमान समझता था, खैर! प० वाक्पतिराजा ने जाकर सूरिजी से राजा कथित सब वृतान्त निवेदन किया जिसको सूरिजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। फिर तो था ही क्या ? राजाधर्म ने सूरिजी का बहुत सत्कार पूर्वक नगर प्रवेश करवाया सूरिजी ने भी राजादि को राज सभा में हमेशा धर्मोपदेश देकर धर्म की ओर प्रभावित करते रहे।

इधर आचार्यश्री का पता न लगने से राजाआम बहुत ही विलाप करने लगा। एक दिन बाहिर बगीचे में जाते हुए राजा ने नकुल के द्वारा मारे हुए एक भयंकर सर्प को देखा। बराबर निरीक्षण करते हुए सर्प के मस्तक में एक मणि दृष्टि गोचर हुई। निर्भीकता पूर्वक मुख दबा कर मणि लेकर राजा स्वस्थान आया और विद्वानों के समक्ष एक श्लोक का पूर्वार्द्ध बोला

'शस्त्र शास्त्र कृषिर्विद्या अन्यो यो येन जीवति'

"अर्थात्-शस्त्र, शास्त्र, कृषि और विद्या तथा अन्य जो जिसके आधार पर जी सके"

राजा के इस पूर्वार्द्ध की मनोऽनुकूल पूर्ति राज सभा के पण्डितों में से कोई भी नहीं कर सका तब राजा को बप्पभट्टिसूरि की विद्वत्ता का स्मरण हो आया। वह विचारने लगा—चन्द्र के समक्षखद्योत व हाथीके समक्ष गर्दभके समान बप्पभट्टिसूरि के समक्ष ये पण्डित हैं। बस, राजा ने घोषणा करवादी कि जो मेरे अभिप्रायपूर्वक इस समस्या की पूर्ति करेगा वह एकलक्ष स्वर्णमुद्रा प्राप्ति का अधिकारी होगा। उक्त घोषणा को सुनकर बप्पभट्टिसूरि का पता लगा कर एक जुआरी श्लोकार्द्ध के साथ लक्ष्मणावती नगरी को

गया। सूरिजी को उस समय क्या ? आचार्यश्री ने बिना किसी प्रयत्न के तत्काल उसकी पूर्ति करते हुए कहा-
" सुगृहीतं हि कर्तव्यं कृष्णसर्पमुखं यथा "

अर्थात्—कृष्ण सर्प के मुख के समान उस अच्छी तरह से ग्रहण करना चाहिये।

बस उत्तरार्द्ध लेकर जुआरी राजा के पास आया। राजा ने उचित इनाम देकर उसे सन्तुष्ट किया और बप्पभट्टिसूरि का यश लगने से हर्ष मनाया।

एक बार राजा फिरने के लिये बाहिर गया। वहां पर एक मृत मुसाफिर उनके दृष्टि गोचर हुआ। वहां वृक्ष की शाखा पर जल-बिन्दुओं का मालकपना हुआ एक जलपात्र भी लटकता था अतः राजाने इस प्रकार पूर्वार्द्ध किया बनाया—

'तइया मह निग्गमणे पियाइ थोरं सुएहिं वर्ण,

उस वस्त्र बाहिर निकलते हुए मिचकाम पात्र) अश्रु डालकर रोने लगे। पूर्ववत् इस समस्या की पूर्ति भी कोई नहीं करसका तब वह जुआरी पुनः बप्पभट्टिसूरि के पास गया और सूरिजी के सामने समस्या रखी। आचार्यश्री ने तत्काल उत्तरार्द्ध कहा—

"करवंपि बिंदुनिवडुयं गिहेय तं मज्झ संभरिमं"

अर्थात्— आज जलपात्र के बिन्दुओं को भरता पर याद आता है, इत्यादि। जुआरी पुनः राजा के पास आया और राजा ने पुरस्कार देकर उसे बिदा किया। अब तो आम से रहा नहीं गया। उसी समय ही राजा आम ने अपने विनंति के लिये प्रधान पुरुषों को सूरिजी के पास भेजे पर सूरिजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ अतः जब तक राजा आम स्वयं यहां पर नहीं आवे तब तक मैं भी वहां पर नहीं आसकता हूँ। प्रधान वहां से लौट कर राजा आम के पास आये और सकल वृत्तान्त कह सुनाया।

राजा आम को सूरिजी के दर्शनों की इतनी उत्कण्ठा लगी कि वह तत्काल ही ऊंट पर सवार होकर लक्षणावती की ओर रवाना होगया। चलते चलते गोदावरी के किनारे पर एक ग्राम आया वो राजा ने रात्रि के समय एक देवी के मन्दिर में विश्राम किया। रात्रि में देवी राजा के पास आई और राजा के रूप पर मुग्ध हो उसके साथ भोग विलास किया। कहा है कि पुन्यवान जीव का मनुष्य तो क्या पर देवता भी मिल जाते हैं। प्रातः काल होते ही राजा देवी को बिना पूछे ही रवाना होगया और क्रमशः चल कर बप्पभट्टिसूरि की चरण सेवा में यथा समय उपस्थित हुआ। गुरुदेव के दर्शन से हर्षित हृदय से राजा आम ने धर्म सम्बन्धी वार्तालाप कर रात्रि निर्गमन की।

प्रातः काल ठीक समय पर सूरिजी राज सभा में जाने को तैय्यार हुए। राजा आम भी बेगीदार (पान तम्बोल देने वाले) का रूप बनाकर सूरिजी के साथ राज सभा में गया। वहां समुचित आसन पर बैठने के पश्चात् सूरिजी ने राजा धर्म को राजा आम का आमंत्रण पत्र सुनाया। इस पर राजा धर्म ने दूत से पूछा कि तुम्हारा राजा कैसा है ? इसके उत्तर में दूतने कहा इस बेगीदार जैसे हमारे राजा को समझ लीजिये। बाद में दूतने हाथ में बीजोरे का फल लिया तो सूरिजी ने कहा-दूत ! तेरे हाथ में क्या है। दूतने कहा— बीजपूर (बीजोरा)। इतने में कुबेर का पत्र बतलाते हुए सूरिजी ने बेगीदार को सामने करते हुए कहा— क्या यह तू—वैर पत्र (अरित्र) है ? बेगीदार ने कहा —गुरुदेव ने कठिन प्रतिज्ञा की है पर वह पूरी होने पर हमारे साथ पधारें तो हमारा महोभाग्य है। बाद में बप्पभट्टिसूरि ने एक गाथा कह कर उनके

१०८ अर्थ किये पर राजा धर्म ने इन संकेत सूचक बातों की ओर लक्ष्य ही नहीं दिया ।

राजा आम उस रात्रि में एक वारगणा के वहाँ रहा और एक बढ़िया काकण उसको देकर उसके वहाँ से निकला और एक बहुमूल्य कांकण राज द्वार पर रख कर एक उद्यान में जाकर गुप्त पने रहा ।

दूसरे दिन पुनःठीक समय पर बप्पभट्टिसूरि राज सभा में आये और कान्यकुब्ज जाने के लिये राजा से अनुमति मांगने लगे । इस पर राजा ने कहा-यह क्यों ? सूरीश्वरजी ने कहा-राजा आम कल यहाँ सभा में आया था । जो थेगीदार था वह वास्तव में राजा आम ही था । दूत ने आप से कहा भी था कि तू वर पत्र तथा एक गाथा के अर्थ में मेरा भी यही सङ्केत था ।

इतने में वाराङ्गणा ने काकण को राजा के सम्मुख रखते हुए कहा—रात्रि में मेरे मकान पर एक अनजान पुरुष आया था उसने यह कांकण मुझे दिया है । उधर से द्वारपाल आया और उसने भी कांकण रखते हुए कहा—प्रभो । न जाने किसने यह कांकण द्वार पर रक्खा है । बस, दोनों कांकणों को देखकर उनका सूक्ष्मता पूर्वक निरीक्षण किया तो छोटे २ अक्षरों में राजा आम का नाम पाया गया । इस पर राजा धर्म ने बहुत प्रायश्चित किया कि-अहो । वैरी राजा मेरे पास आया पर उसका मैंने सत्कार तक नहीं किया दीर्घ काल से चले आये वैर के समाधान का समय हाथ लगा था किन्तु वह भी मेरी अज्ञानता के कारण

हस्पारोप्य चकात् पट्टकुञ्जरे धरणीधर । जितक्रोधापभिज्ञानधृतच्छत्र चतुष्टपम् ॥ ८७
जातेसूरिपदेऽस्माकं कल्प्य सिंहासनासनम् । इति तस्य वच श्रुत्वा सिंसोऽन्नासन्य वीधिशान् ॥ ९०
प्रस्व मौद सौहार्दवसुधावीदा सस्तुतः । पुरं पौर पुरन्ध्रीभिराकुलारमक तत ॥ १२१

+ + +

पूर्ण पणं सुवर्णाष्टादश भार प्रमाण भूः । श्रीमतो वर्द्धमानस्य प्रभो र प्रतिमा म भूः ॥ १३७
तथा गोपगिरौ लेप्यमय बिम्बयुतनृप । श्री वीर मन्दिर तत्र त्रयोविंशति हस्तकम् ॥ १४०
सपादलक्षसौवर्णटङ्क निष्पन्न मण्डपम् । व्यधापय जिनंराज्यपमिव सन्मत्त वारणम् ॥ १४१
इत्युक्त्वाऽन्तोनिरीयागात् सगत्यामनृपेण च । कस्मी भिर मीपु भिः सुराभिपंशासा गुरु ॥ २६५

+ + +

अमूदकार्यं निर्वाह ज्ञानहेतुं ततस्तदा । स्नेहादेव निमिमेपिव् तांतु वेषां तदधिये ॥ २८८
सा निळोना कचित् मध्यगणे स्वस्थानगे सत रहः शुश्रुवितु सूरि प्रारेभे धैर्यमिच्चये ॥ २८९
श्रीकर स्पर्शात्तीज्ञारमाऽत्रोपसर्गमुपस्थितम् । विममर्श नृपाज्ञानतमसश्चेष्टितं ध्रुवम् ॥ २९०

+ + +

नाथ ! पाथः पति बाहुदण्डाभ्यां स तरत्यलम् । भिनत्ति च महाशैलं शिरसा तरसा रसात् ॥ ३११
पदेह (?) वहिन्मास्कन्देत् सुससिंहञ्च बाधयेत् श्वेतभिक्षुतव गुर्दप पूर्वं हि विकारयेत् ॥ ३१२
असौमही धराधारा देश पुरमिद मम । भाग्यदोभाग्यभूद् पत्र बप्पभट्टि प्रभुस्थितिः ॥ ३१७
प्रारब्ध गुरुभिमन्त्र परावर्त्तयतः सत । मध्यरात्रे गिरादेवी स्वर्गङ्गविजि मध्यतः ॥ ४१९
हराम्बी तादवारूपा च प्रादुरासीद् रहस्तदा । अहो मंत्रस्य माहात्म्यमहे व्यापि विचेतमा ॥ ४२०

+ + +

उपाश्रयस्थित भव्य कदम्बक निषेवितम् । राजानमिव सच्छत्रं चामरप्रक्रियान्वितम् ॥ ४८९ प्र० च०
सिंहासनस्थित श्रीमद्बप्पसूरिं समैक्षत । उत्ताण हस्त विस्तार सशयाह किमप्यथ ॥ ४८७

लक्षमणावती की राजसभा में राजा आम

सिद्ध सारस्वत गुरुदेव ने उत्तरार्द्ध में कहा—

"इत्थघरे हलियवहु सद्दहमित्तच्छणी वसई"

इस प्रकार मनोऽनुकूल समस्या पूरी होने से राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ ।

एक समय हाथ में दीपक लेकर टेढ़ा मस्तक किये एक स्त्री जा रही थी जिसका कि पति परदेश गया था । राजा ने उसे देख कर पूर्वार्द्ध गाथा कही—

पियसंभरण पलुट्टंतंअंसुधारा निवायभीया ।

गुरु ने उत्तरार्द्ध में कहा—

दिज्जइ वंक गीवाइ दीउपहि नायए

इस प्रकार समस्या पूर्ति हो जाने से राजा परम हर्ष को प्राप्त हुआ । इस प्रकार प्रति दिन के वाद-विनोद से राजा का समय बड़े ही आनन्द से व्यतीत होने लगा ।

एक समय धर्मराज ने एक दूत को आम राजा के पास भेज कर कहलाया कि आप मेरे यहां आये पर मैं अज्ञान पने आपका सत्कार नहीं कर पाया जिसका मुझे बड़ा ही रंज है । खैर, अब भी कुछ नहीं हुआ है । आपस में युद्ध कर लाखों मनुष्यों को क्यों मरवाया जाय। हमारे यहां बौद्धाचार्य वर्द्धन कुञ्जर नामक एक उद्भट विद्वान है जिसको लेकर हम सीमान्त आते हैं । आप भी अपने विद्वान् को लेकर सीमान्त में आ जाइये और दोनों पण्डितों का आपस में वाद होने दीजिये । इन पण्डितों को हार जीत में ही अपनी हार जीत समझ लीजिये कि जिससे शान्ति पूर्वक समाधान हो जाय । आपके पण्डित जीत जाँय तो हमारी हार और हमारे पण्डित जीत जाँय तो आपकी हार । इसकी मञ्जूरी दीजिये । राजा आमने अपनी ओर से मञ्जूरी देदी कारण, आपको बप्पभट्टिसूरि पर पूर्ण विश्वास था। दूत का यथोचित सत्कार कर उसे विसर्जित किया । बस, इधर से राजा धर्म वर्द्धनकुञ्जर बौद्धाचार्य को और इधर राजा आम जैनाचार्य बप्पभट्टिसूरि व मन्त्री सामन्तादि को लेकर सीमान्त प्रदेश पर निर्दिष्ट दिन उपस्थित हो गये दोनों में परस्पर विवाद प्रारम्भ हुआ । बौद्धाचार्य का पूर्व पक्ष था । उसकी ओर से जो कुछ प्रश्न होता बप्पभट्टिसूरि तुरन्त उसका प्रतिकार कर डालते । इस प्रकार ६ मास पर्यन्त वाद चलता रहा । एक समय राजा आमने पूछा गुरुदेव ! वाद कहाँ तक चलता रहेगा कारण राजकार्यों में इतने सुदीर्घ वादविवाद से हानि होती है । सूरिजी ने कहा राजन् ! मैंने तो आपके विनोद के लिये वाद लम्बा कर दिया है । यदि आपको राज्य कार्यों में हानि होती हो तो लीजिये कल ही वाद समाप्त हो जायगा । इस प्रकार कहने के पश्चात् सूरिजीने सरस्वती का मन्त्र पढ़ा । मन्त्र बल से आकर्षित हो सरस्वती देवी नग्नावस्था में स्नान करती हुई उसी रूप में आ गई । बप्पभट्टिसूरि के महाव्रत की दृढ़ता देख प्रसन्न हो उन्हें मनोऽनुकूल वर दिया । तत्पश्चात् सूरिजी ने पूछा—देवी ! वादी किसके आधार से अस्खलित वाद करता है । देवी ने कहा—मेरे वरदान से । सूरिजी ने देवी को उपालम्भ दिया कि तू सम्यग्दृष्टि होकर भी असत्य को मदद करती है । देवी ने कहा—आप कल की सभा में सब को मुख शौच करवाना । वादी मुख शौच करेगा तो इसके मुंह की गुटिका गिर पड़ेगी बस फिर क्या है ? आपकी विजय अवश्यम्भावी है । सूरिजी ने प० वाक्पतिराज द्वारा इस ही तरह करवाया जिससे गुटिका मुंह से निकल गई अतः वह वाद करने में पंगु (असमर्थ) हो गया । [illegible]

सूरीश्वरजी और बौद्धाचार्य के आपस में

वह पराजित हो सम्मा मार से मद मस्तक ही गया। इस प्रकार सूरिजी की मस्तवादेव विजय को देख सभा ने आपको वादी कुञ्जर केशरी की उपाधि दी और तब ही से आप वादी कुञ्जर केशरी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जब वादी की पराजय में राजा धर्म ने अपनी पराजय स्वीकार करली तब राजा आम, धर्म राजा की राज्य सत्ता अपने अधीन करने का विचार करने लगा परन्तु आचार्यश्री के गाम्भीर्य गुण परिपूर्ण उपदेश से राजा आमने धर्मराजा के राज्य को उसके सुपुर्द कर दिया। बाद में वर्द्धन कुञ्जर और बप्पभट्टि सूरि बड़े ही प्रेम के साथ एकत्र हो वीर भुवन में गये। भगवान् महावीर की शान्त, वैराग्य मय प्रतिमा को देख कर बौद्धाचार्य को परम शान्ति हुई और उसने एक स्तुति बनाकर प्रभु के गुणगान किये। बाद में सूरिजी ने जैन धर्म के तत्त्वों के स्वरूप को समझाया जिससे वर्द्धन कुञ्जर के हृदय में जैन धर्म के प्रति श्रद्धा होगई।

एक रात्रि में आचार्य श्री बप्पभट्ट ने तब वर्द्धन कुञ्जर ने पीछे महर में सूरिजी को चार समस्याओं चार समस्याएं पूछी जिसकी सूरिजी ने तत्काल पूर्ति करदी।

एको गोत्रे—स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति । सर्वस्य द्वे—सुमति कुमती सम्पदापत्तिहेतू ॥
वृद्धो यूना—प्रभवति यदा वृद्धि मेदं विनष्टं । स्त्रीपुंवच्च—सह परिचयात्स्यज्यते कामिनीभिः ॥

अब तो बौद्धाचार्य आचार्यश्री की ओर और भी अधिक प्रभावित हुआ और उसके कहने के बाद व्रत भी धारण कर लिये। बाद सूरिजी की आज्ञा लेकर अपने स्थान चला गया और राजा धर्म की आज्ञा से अनुमति लेकर आपने राज्य में चला गया। एकदा बौद्धाचार्य ने राजा धर्म से कहा कि बप्पभट्टिसूरि ने मुझे पराजित किया इसका तो कुछ भी रंज नहीं पर वाक्पतिराजा ने मुझ शोभ करता पर मेरा अपमान करवाया वह मुझे खटक रहा है। राजा ने वर्द्धन कुञ्जर की बात सुन करके भी वाक्पतिराज से प्रीति कम नहीं की।

एक समय यशोराजा पर यशोवर्माराजा चढ़ आया। उस समय वाक्पति कारागृह में बन्द कर लिया गया था पर अपूर्व काव्य रचना से सन्तुष्ट हो राजा ने उसे बन्धन मुक्त कर दिया। वाक्पतिराज वहां से चलकर कन्नौज में आया और सूरिजी से मिला। पूर्वपरिचय के स्वभाव व औचित्य के कारण सूरिजी वाक्पति राज को राज सभा में ले गये। वाक्पतिराजा ने राजा आम की ऐसी स्तुति बनाई कि राजा आम सन्तुष्ट हो गया राजा आम ने राजा धर्म से दुगुना सत्कार सम्मान किया उसकी आजीविका का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया अतः वे वाक्पतिराज सूरिजी एवं राजा के सहवास में आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा आम सूरिजी की विद्वता की प्रशंसा करता हुआ कहने लगा कि आप के जैसा विद्वान् देवताओं में भी नहीं है तो मनुष्य में तो हो ही कैसे सकता ? सूरिजी ने कहा—हे राजन् ! पूर्व जमाने में बड़े २ विद्वान हो चुके हैं कि मैं उनके चरण रज के तुल्य भी नहीं हूँ पर वर्तमान में भी हमारे गुरु भ्राता नन्नसूरि ऐसे विद्वान हैं कि मैं उनके सामने एक मूर्ख ही दीखता हूँ। इस पर राजा वेश परिवर्तित कर नन्नसूरि को देखने के लिये गये तो उस समय नन्नसूरि गुजरात के हलाख्य नगर में विराजते थे। राजा वहां गया तो चामर छत्रं संयुक्त वर्ष सिंहासन पर बैठे हुए नन्नसूरि को देखा। आचार्यश्री के उस वैभव को देख कर राजा आम के हृदय में इस प्रकार की शंका हुई कि त्यागी गुरुओं के यहां इस प्रकार का राज्य वैभव क्यों ? इस विषय में चरित्रकार ने बहुत ही विचार के लिखा पर ...

बढ़ जाने के भय से हम एत द्विषयक सविशेष स्पष्टीकरण न करते हुए इतना ही लिख देना समीचीन समझते कि आचार्यश्री नन्नसूरि की प्रकाण्ड विद्वत्ता के लिये राजा आम को बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि जैनों में ऐसे २ विद्वान् विद्यमान है कि जिसकी बराबरी करने वाले किसी दूसरे मत में नहीं मिलते हैं।

एक दिन एक नट का टोला आया जिसमें एक मातङ्गी बड़ी स्वरूपवान् थी। इसको देख राजा आम उस पर मोहित होगया और उससे मिलने का प्रयत्न करने लगा। इस बात का पता जब बप्पभट्टिसूरि को लगा तो उनको राजा की इस अविवेकता पर बहुत ही पश्चाताप हुआ। बप्पभट्टिसूरि राजा के निर्दिष्ट स्थान पर जाकर समीपस्थ एक पत्थर पर इस तरह का बोधप्रदायक काव्य लिखा कि जिसको राजा ने पढा तो उसको इतनी लज्जा आई कि वह चिता बना कर अग्नि में जल जाने की तैयारी करने लगा। पुन' सूरिजी को चिता की बात मालूम हुई तो वे चल कर राजा के पास आये और इस प्रकार उपदेश दिया कि वेद श्रुति स्मृति के विद्वानों को एकत्रित कर मातगी के विषय का मन से लगे हुए पाप का प्रायश्चित्त पूछा। विद्वानों ने मिल कर कहा कि लोहा की पुतली को तपाकर उसका आलिंगन करने से पाप की शुद्धि होती है। राजा ने लोह की पुतली बनाकर उसको अग्नि में लाल कर आलिङ्गन करने को तैयार हुआ। इतने में पुरोहित तथा आचार्यश्री ने आकर राजाकी भुजाओं को पकड़ते हुए कहा बस मन का पाप मन से ही स्वच्छ हो गया। इत्यादि। राजा को बचा लेने से नगर में बड़ा ही हर्ष हुआ। नागरिकों ने नगर शृङ्गार कर आचार्यश्री को हस्तिपर आरूढ़ करवा कर महामहोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया।

एक दिन सूरिजी ने कहा हे राजन! आत्म-कल्याण करना चाहो तो जैनधर्म का शरण लो। इस पर राजा ने कहा—गुरुजी! पूर्व परम्परा से चला आया धर्म में कैसे छोड़ू ? यदि आपके पास विद्वता है तो आप मथुरा जाकर वैराग्याभिमुख वाक्पतिराजा को जैनधर्म स्वीकार करावें। राजा ने अपने विद्वानों को एव मन्त्रियों को तथा सामन्तों को साथ दे दिये अतः आचार्यश्री चल कर मथुरा आये और बाहराजी के मन्दिर में वाक्पतिराज थे उन से मिले। पहिले तो ब्रह्मा विष्णु और महादेव की यथा गुण स्तुति कर वाक्पति राज को समझाया जिससे उसने देव गुरु धर्म का स्वरूप सुनने की इच्छा प्रगट की। आचार्यश्री ने वाक्पति राज को शुद्ध देव गुरु धर्म का स्वरूप समझाया तत्पश्चात् वाक्पतिराज ने प्रश्न किया हे गुरु! मनुष्य लोक से जीव मोक्ष में जाते हैं तब कभी सब जीव मोक्ष में चले जावेंगे और मोक्ष में स्थान भी नहीं मिलेगा। गुरु ने कहा—हे भव्य! ऐसा कभी नहीं होता है। दृष्टान्त स्वरू। स्थल की सब नदियों रेत खेंचती हुई समुद्र में जाती हैं परन्तु आज पर्यन्त न रेती कम हुई है और न समुद्र ही भरा गया है। यही न्याय ससार के जीवों का भी समझ लीजिये। इस प्रकार कहने से वाक्पतिराज को अच्छा सन्तोष हुआ और गुरु के साथ भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर में जाकर उसने मिथ्यात्व का त्याग किया व शुद्ध सनातन जैनधर्म को स्वीकार किया। अठारह पाप व चार आहार का त्याग कर अनशन व्रत स्वीकार कर लिया। अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म का शरण एव पञ्च परमेष्ठि के ध्यान में १८ दिन तक अनशन व्रत की आराधना की। आचार्य बप्पभट्टिसूरि जैसे सहाय देने वाले थे अत' वाक्पतिराज पण्डित्य मरण मर कर देवयोनि में उत्पन्न हुए।

पूर्व जमाने में नदराजा द्वारा स्थापित शान्तिदेवी है। वहां जिनेश्वरदेव को वन्दनकरने सूरिजी गये और शान्तिदेवी सहित जिनेश्वरदेव कीस्तुति की वह आज भी 'जयति जगद्रक्षाकर' के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरिजी मथुरा से राजपुरुषों के साथ कन्नौज पधारे। राजा ने पहिले ही से अपने अनुचरों से सब

राजा आम नटणी से मोहित—प्रायश्चित

राजा सुन लिया था अतः नगर के बाहिर राजा सन्मुख आया और बड़ा महोत्सव पूर्व सूरिजी को नगर प्रवेश करवाया। राज सभा में राजा ने कहा—पूज्य गुरुदेव! आप महान् शक्ति रखते हैं कि वाक्पतिराज जैसे को प्रतिबोध किया। सूरिजी ने कहा—जहाँ तक मैं आपको प्रतिबोध न दूं वहाँ तक मेरी क्या शक्ति है। राजा ने कहा—मैं प्रतिबोधपाया हुआ हूँ। आपके धर्म पर मुझे दृढ़ श्रद्धा है परपूज्य! मेरे पूर्वजों से चले आये शिवधर्म को छोड़ने में मुझे बड़ा ही दुःख होता है अतः यह पूर्व भव का ही संस्कार मालूम होता है।

सूरिजी कहा—राजन्! तुमने जो पूर्वभव में कष्ट किया उसका सत्फल ही राज्य है।

सभाजनों ने कहा—पूज्यवर! हम लोग राजा का पूर्वभव सुनना चाहते हैं कृपाकर आप सुनावें।

श्री चूडामणि शास्त्र के अनुसार सूरिजी ने कहा—कालिंजर के पास शालवृक्ष की शाखा के दोनों पैर बांधकर अधोमुखी होकर पृथ्वी पर *चमगादड़की* इस प्रकार तप कष्ट करने से यहाँ से तू राजा हुआ है। यदि मेरी बात पर किसी को विश्वास न हो तो उस वृक्ष के नीचे जटा पड़ी है देखलो। राजा ने अपने अनुचरों से जटा मंगवाकर देखी जिससे सब लोग सूरिजी की भूरि २ प्रशंसा करने लगे।

एक समय राजा अपने मकान पर खड़ा हुआ क्या देखता है कि एक युवा रमणी के यहाँ एक जैन मुनि भिक्षा के लिये आया। मुनि को देख रमणी ने भोग की प्रार्थना की पर मुनि अस्वीकार कर बाहिर निकलता था कि मकान के द्वार के किवाड़ स्वयं बन्द होगये। इस पर बाला ने एक लात मारी जिससे उसका पैर का नेवर जाकर मुनि के चरणों में गिर पड़ा। रमणी ने हाव भाव पूर्वक प्रार्थना की पर मुनि पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा इस घटना को देख राजा ने प्राकृत में एक पद बनाकर सूरिजी के सामने रक्खा। सूरिजी ने उसके तीन पद बनाकर पूरी गाथा करदी वह इस प्रकार है।

कवाडमासज्ज वरंगणाए अब्भत्थिउ जुव्वणमत्तियाए। अमन्निए मुक्कपयप्पहारे सनेउरो पव्वइयस्स पाउ॥

इस प्रकार राजा ने एक तपस्वी और भिक्षु को देख एक पाद गुरु के सन्मुख रक्खा जिसको भी गुरु ने पूर्ण कर दिखाया। यह—

भिक्खपरो पिच्छइ नाहिमण्डलं सावि तस्स मुहकमलं। दुण्हंपि कवालं चट्टुयं कायम विलुंपति॥

एक समय एक विद्वान् चित्रकार राज सभा में आया। राजा का चित्र बना कर राजा को दिखलाया पर राजा का चित्त गुरु गुण में लीन था कि चित्र देखने पर भी राजा ने कुछ भी नहीं कहा। इस पर चित्रकार उदास होगया तब किसी ने कहा, कि तू चित्र गुरुराज को दिखला। चित्रकार ने ऐसा ही किया जिसने सूरिजी ने चित्रकार की प्रशंसा की अतः राजा ने एक लक्ष रुपये दिये। बाद में चित्रकार ने चार भगवान् महावीर के सुन्दर चित्र चित्रित कर सूरिजी को अर्पण किये जिससे एक तो कन्नौज, एक मथुरा एक अणहिल्ल पट्टन में और एक सीतारपट्टन में गुरु महाराज ने प्रतिष्ठापूर्वक स्थापन करवाये। मथुरा का चित्रपट म्लेच्छों ने मथुरा का भंग किया वहाँ तक विद्यमान था।

एक समय आम राजा ने राजगृह पर चढ़ाई की पर वहाँ का किला ले नहीं सका। तब गुरु महाराज को पूछा। गुरु ने कहा तेरा पौत्र भोज होगा वह राजगृह विजय करेगा तथापि राजा ने बारह वर्ष तक का घेरा डाल कर फौज वहीं रक्खी। इधर राजा के पुत्र दुन्दुक २ के पुत्र भोज का जन्म हुआ। सामन्त नवजात भोज को लेकर राजगृह गये और भोज को इस प्रकार झुलाया कि उसकी दृष्टि राजगृह के

किले पर पड़ी बस फिर तो कहना ही क्या किला स्वयं टूट पड़ा और राजा की विजय होगई। राजगृह का राजा समुद्रसेन वहां से चला गया। वहां पर यक्ष था वह भी राजा के अधीन होगया। राज ने अपनी आयुष्य पूछी तो यक्ष ने कहा—जब तुम्हारा छ मास का आयुष्य शेष रहेगा तब मैं कह दूगा। बाद में अवसर जान कर यक्ष ने कहा कि हे राजन् गङ्गाजी के अन्दर मगधतीर्थ को जाते हुए जिसकी आदि में मकार है ऐसे ग्राम में तुम्हारी मृत्यु होगी। साथ में यह भी ध्यान रखना कि उस समय जल से धूम्र निकलेगा इत्यादि। इस पर राजा सावधान हो गुरु के साथ तीर्थ यात्रा को निकल गया। साथ में अपनी सैन्यादि सब सामग्री भी ली। सबत्रे पहिले शत्रुञ्जय तीर्थ जाकर युगादीश्वर का पूजन वन्दन किया बाद में वहां से गिरनार गये। वहां दश राजा दश संघ लेकर गिरनार आये पर वे तीर्थ पर अपना हक्क रखते हुए दूसरे को पहिले नहीं चढ़ने देते थे। राजा आम सग्राम करने को तैय्यार होगया पर बप्पभट्टिसूरि ने राजा को युक्ति से समझाया और दिगम्बरों से युक्ति मञ्जूर करवाई। एक कन्या को दिगम्बरों के यहां भेजी और कहा कि आप में शक्ति हो तो इस कन्या को बुलावो। इस पर सूरिजी ने अंबादेवी का स्मरण कर कन्या पर हाथ रक्खा कि अम्बादेवी कन्या के मुख में प्रवेश कर बोली जिससे श्वेताम्बरों की विजय हुई आकाश में बाजे गाजे हुए। तत्पश्चात् पहिले श्वेताम्बरों ने गिरनार पर चढ़ कर नेमिनाथ की पूजा की और वहां पुष्कल द्रव्य व्यय किया। बाद में द्वारिका प्रभासपाटण वगैरह तीर्थों की यात्रा कर वापिस कन्नौज आगया।

अवसर के जान राजा ने अपने पुत्र दुदुक को राज्य स्थापन कर आप गुरु के साथ मगध तीर्थ की यात्रार्थ चले। नाव में बैठे हुए गगा नदी उत्तर ने में ही थे कि जल में धूवां देखा कि राजा को यक्ष की बात याद आई और मगरोड़ा ग्राम में पहुँचा।

आचार्यश्री ने कहा-राजन्! समय आगया है अब तू आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म स्वीकार कर। राजा ने देव अरिहंत, गुरुनिर्ग्रन्थ और धर्म वीतराग की आज्ञा एव सच्चे दिल से जैनधर्म स्वीकारकर लिया।

बीच में राजा ने कहा—हे गुरु! आप भी देह त्याग करो कि देव भव में भी हम मित्र बने रहें। सूरिजी ने कहा—राजन्! यह तुम्हारी अज्ञानता है। जीव सब कर्माधीन है। कौन जाने कौन कहां जायगा मेरी आयुः अभी ५ वर्ष की शेष रही है।

वि० स० ८९० भाद्रशुक्ला पञ्चमी शुक्रवार चित्रा नक्षत्र के दिन राजा आमने पञ्च परमेष्टि का ध्यान और आचार्यश्री के चरण का स्मरण करता हुआ देह त्याग किया।

बाद में सूरिजी को भी बहुत रंज हुआ आखिर आप कन्नौज चले आये। इधर राजा दुदुक एक वैश्या से गमन करने के इश्क में पड़ गया इससे वह विवेक हीन की तरह भोज को मरवाने लगा। राणी, राजा के कृत्य को देख अपने पुत्र भोज को पाटलीपुत्र में अपने मुसाल में भेज दिया।

एक दिन राजा दुंदुक आचार्यश्री को कहा कि जाओ आप भोज को ले आओ। सूरिजी ने कई असोंयोग ध्यान में निकाल दिया। जब राजा ने अत्याग्रह किया तो सूरिजी ने नगर के बाहिर जाकर विचार करने लगे कि भोज को लाऊं और वैश्या सक्तराजा पुत्र को मार डाले, नहीं लाऊं तो राजा कुपित हो जैनधर्म का बुरा करे अत' अनशन करना ही ठीक समझा। तदनुसारसूरिजी २१ दिन के अनशन की आराधना कर पण्डित्य मरण से ईशान देवलोक में देव पने उत्पन्न हुए।

वि० सं० ८०० भाद्र-शु-तीज रविवार हस्तनक्षत्र में आपका जन्म हुआ। ६ वर्ष की वय में दीक्षा।

शस्त्र ग्रहण किया था अतः नगर के बाहिर राजा सन्मुख आया और बड़ा महोत्सव पूर्व सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया । राज सभा में राजा ने कहा-पूज्य गुरुदेव ! आप महान् शक्ति रखते हैं कि वाक्पतिराज जैसे को प्रतिबोध किया । सूरिजी ने कहा—जहाँ तक मैं आपको प्रतिबोध न दूँ वहाँ तक मेरी क्या शक्ति है । राजा ने कहा—मैं प्रतिबोधपागया हूँ । आपके धर्म पर मुझे दृढ़ श्रद्धा है परन्तु ! मेरे पूर्वजों से चले आये शिवधर्म को छोड़ने में मुझे बड़ा ही दुःख होता है अतः यह पूर्व भव का ही संस्कार मालूम होता है ।

सूरिजी कहा—राजन् ! तुमने जो पूर्वभव में कष्ट किया उसका सहस्रफल ही राज्य है ।

सभाजनों ने कहा—पूज्यवर ! हम लोग राजा का पूर्वभव सुनना चाहते हैं कृपाकर आप सुनावें ।

श्री चूलामणि शास्त्रादि के अनुसार सूरिजी ने कहा— कलिंजर के पास शालवृक्ष की शाखा के संगे पैर बांधकर अधोमुखी होकर पृथ्वी पर जटाजूटवाली इस प्रकार तप कष्ट करते थे वहाँ से तू राजा हुआ है । यदि मेरी बात पर किसी को विश्वास न हो तो उस वृक्ष के नीचे जटा पड़ी है देखलो । राजा ने अपने अनुचरों से जटा मंगाकर देखी जिससे सब लोग सूरिजी की भूरि २ प्रशंसा करने लगे ।

एक समय राजा अपने मकान पर खड़ा हुआ क्या देखता है कि एक युवा रमणी के यहाँ एक जैन मुनि भिक्षा के लिये आया । मुनि को देख रमणी ने भोग की प्रार्थना की पर मुनि अस्वीकार कर बाहिर निकलता था कि मकान के द्वार के किवाड़ स्वयं बन्द होगये । इस पर बाला ने एक लात मारी जिससे उसके पैर का नेवर जाकर मुनि के चरणों में गिर पड़ा । रमणी ने हाव भाव पूर्वक प्रार्थना की पर मुनि पर लेश मात्र कुछ भी असर नहीं पड़ा इस घटना को देख राजा ने प्राकृत में एक पद बनाकर सूरिजी के सामने रखा । सूरिजी ने उसके तीन पद बनाकर पूरी गाथा करदी वह इस प्रकार है ।

कवाडमासज्ज वरंगणाए अब्भत्थिओ जुव्वणमत्तियाए । अमन्निए मुक्कपयप्पहारे सनेउरो पव्वइयस्स पाओ ॥

इस प्रकार राजा ने एक गृहस्थी और भिक्षु को देख एक पद गुरु के समक्ष रखा जिसको गुरु ने पूरा कर दिखाया । यह—

भिक्खयरो पिच्छइ नाहिमण्डलं सावि तस्स मुहकमलं । दुहंपि कवालं चुडुलं काला विलुंपति ॥

एक समय एक विद्वान् चित्रकार राज सभा में आया । राजा का चित्र बना कर राजा को दिखाया पर राजा का दिल गुरु गुण में लीन था कि चित्र देखने पर भी राजा ने कुछ भी नहीं कहा । इस पर चित्रकार उदास होगया तब किसी ने कहा कि तू चित्र गुरुराज को दिखला । चित्रकार ने ऐसा ही किया जिसने सूरिजी ने चित्रकार की प्रशंसा की अतः राजा ने एक लक्ष रुपये दिये । बाद में चित्रकार ने चार आगार मूर्तियों के सुन्दर चित्र चित्रित कर सूरिजी को अर्पण किये जिससे एक तो कन्नौज एक मथुरा एक अणहिल्ल पट्टण में और एक मोढेरपट्टण में गुरु महाराज ने प्रतिष्ठापूर्वक स्थापन करवाये । पाटण का चित्रपट म्लेच्छों ने पाटण का भंग किया वहाँ तक विद्यमान था ।

एक समय आम राजा ने राजगृह पर चढ़ाई की पर वहाँ का किला ले नहीं सका । तब गुरु महाराज को पूछा । गुरुने कहा तेरा पौत्र भोज होगा वह राजगृह विजय करेगा क्योंकि राजा ने बारह वर्ष तक का घेरा डाल कर भोज नहीं रक्खी । इधर राजा के पुत्र दुन्दुक २ के पुत्र भोज का जन्म हुआ । आचार्य महाराज भोज को लेकर राजगृह गये और भोज को इस प्रकार सुनाया कि उसकी दृष्टि राजगृह के

किले पर पड़ी बस फिर तो कहना ही क्या किला स्वयं टूट पड़ा और राजा की विजय होगई। राजगृह का राजा समुद्रसेन वहां से चला गया। वहां पर यक्ष था वह भी राजा के अधीन होगया। राज ने अपनी आयुष्य पूछी तो यक्ष ने कहा—जब तुम्हारा छ मास का आयुष्य शेष रहेगा तब मैं कह दूंगा। बाद में अवसर जान कर यक्ष ने कहा कि हे राजन् गङ्गाजी के अन्दर मगधतीर्थ को जाते हुए जिसकी आदि में मकार है ऐसे ग्राम में तुम्हारी मृत्यु होगी। साथ में यह भी ध्यान रखना कि उस समय जल से धूम्र निकलेगा इत्यादि। इस पर राजा सावधान हो गुरु के साथ तीर्थ यात्रा को निकल गया। साथ में अपनी सैन्यादि सब सामग्री भी ली। सबसे पहिले शत्रुञ्जय तीर्थ जाकर युगादीश्वर का पूजन वन्दन किया बाद में वहां से गिरनार गये। वहां दश राजा दश संघ लेकर गिरनार आये पर वे तीर्थ पर अपना हक्क रखते हुए दूसरे को पहिले नहीं चढ़ने देते थे। राजा आम संग्राम करने को तैय्यार होगया पर बप्पभट्टिसूरि ने राजा को युक्ति से समझाया और दिगम्बरों से युक्ति मंजूर करवाई। एक कन्या को दिगम्बरों के यहां भेजी और कहा कि आप में शक्ति हो तो इस कन्या को बुलावो। इस पर सूरिजी ने अंबादेवी का स्मरण कर कन्या पर हाथ रक्खा कि अम्बादेवी कन्या के मुख में प्रवेश कर बोली जिससे श्वेताम्बरों की विजय हुई आकाश में बाजे गाजे हुए। तत्पश्चात् पहिले श्वेताम्बरों ने गिरनार पर चढ कर नेमिनाथ की पूजा की और वहां पुष्कल द्रव्य व्यय किया। बाद में द्वारिका प्रभासपाटण वगैरह तीर्थों की यात्रा कर वापिस कन्नौज आगया।

अवसर के जान राजा ने अपने पुत्र दुदुक को राज्य स्थापन कर आप गुरु के साथ मगध तीर्थ की यात्रार्थ चले। नाव में बैठे हुए गगा नदी उत्तर ने में ही थे कि जल में धूवां देखा कि राजा को यक्ष की बात याद आई और मगरोड़ा ग्राम में पहुँचा।

आचार्यश्री ने कहा-राजन्! समय आगया है अब तू आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म स्वीकार कर। राजा ने देव अरिहंत, गुरुनिर्ग्रन्थ और धर्म वीतराग की आज्ञा एव सच्चे दिल से जैनधर्म स्वीकारकर लिया।

बीच में राजा ने कहा—हे गुरु! आप भी देह त्याग करो कि देव भव में भी हम मित्र बने रहें। सूरिजी ने कहा—राजन्! यह तुम्हारी अज्ञानता है। जीव सब कर्माधीन है। कौन जाने कौन कहा जायगा मेरी आयु अभी ५ वर्ष की शेष रही है।

वि० स० ८९० भाद्रशुक्ला पञ्चमी शुक्रवार चित्रा नक्षत्र के दिन राजा आमने पञ्च परमेष्टि का ध्यान और आचार्यश्री के चरण का स्मरण करता हुआ देह त्याग किया।

बाद में सूरिजी को भी बहुत रज हुआ आखिर आप कन्नौज चले आये। इधर राजा दुदुक एक वैश्या से गमन करने के इश्क में पड़ गया इससे वह विवेक हीन की तरह भोज को मरवाने लगा। राणी, राजा के कृत्य को देख अपने पुत्र भोज को पाटलीपुत्र में अपने मुसाल में भेज दिया।

एक दिन राजा दुदुक आचार्यश्री को कहा कि जाओ आप भोज को ले आओ। सूरिजी ने कई असोयोग ध्यान में निकाल दिया। जब राजा ने अत्याग्रह किया तो सूरिजी ने नगर के बाहिर जाकर विचार करने लगे कि भोज को लाऊं और वैश्या सक्तराजा पुत्र को मार डाले, नहीं लाऊं तो राजा कुपित हो जैनधर्म का बुरा करे अत अनशन करना ही ठीक समझा। तदनुसारसूरिजी २१ दिन के अनशन की आराधना कर पण्डित्य मरण से ईशान देवलोक में देव पने उत्पन्न हुए।

वि० सं० ८०० भाद्र-शु-तीज रविवार हस्तनक्षत्र में आपका जन्म हुआ। ६ वर्ष की वय में दीक्षा।

९५ वर्ष की वय में सूरिपद वि० सं० ८९५ के भाद्र शु० अष्टमी को स्वाति नक्षत्र में आपका स्वर्गवास हुआ।

उस समय आमराजा का पौत्र भोजकुमार अपने मामा के सामन्तों के साथ कन्नौज आया और सुना कि बप्पभट्टिसूरि का स्वर्गवास हुआ है तो बहुत विलाप किया आखिर चिता बना कर सूरिजी के पार्थिव शरीर को चिता में पधराया। उस समय भोजकुमार ने विचार किया कि पितामह का मरण हुआ और उनके गुरु का भी मरण हुआ अब मेरा क्या होगा कारण पिता तो मुझे मारना चाहता है तो मेरे लिये अच्छा है कि मैं गुरुदेव के साथ अग्नि में जल जाऊं। इस पर भोजकुमार की माता आई और पुत्र को बहुत समझाया अतः भोज, माता के वचनों को शिरोधार्य कर सूरिजी का अग्नि संस्कार कर चिन्तातुर होता हुआ मामे के यहाँ चला गया।

इधर राजा दुंदुक काम कर्म से पतित हुआ वैश्या में आसक्त था। राज्य की कुछ भी सार सम्भाल नहीं करने से जनता दुःखी हो रही थी। एक समय भोजकुमार कन्नौज में आया और सज्जनों की मनाई होने पर भी राजसभा की ओर जाने लगा। आगे द्वार पर एक माली बीजौरे के ३ फल लिये बैठा था। राजकुमार जान कर उसने उन फलों को भेंट किया। भोजकुमार राजसभा में जाते ही दुंदुक राजा सिंहासन पर बैठा था तो उसकी छाती में तीनों फलों की ऐसी मारी की उसके प्राण पखेरू उड़ गये। बस, फिर क्या था ? उसके मृत देह को एक द्वार से निकाल कर भोजराज सिंहासन पर बैठ गया। मन्त्री वर्ग ने विधि से भोज का राज्याभिषेक कर सब मन्त्री अमात्य और नागरिक मिल सब भोज को राजा बना उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली।

एक समय राजा भोज आम विहार (मन्दिर) में दर्शन करने को गया था वहाँ बप्पभट्टिसूरि के दो शिष्य अध्ययन कर रहे थे। राजा ने साधुओं का अभ्युत्थानादि नहीं किया और राजा ने सोचा कि ये साधु व्यवहार कुशल नहीं हैं अतः उन्होंने मोढेरा से नन्नसूरि एवं गोविन्दसूरि को बुलाये और वे भी सत्वर कन्नौज में आये। राजा भोज ने दोनों ही सूरियों का बड़ा ही महोत्सव कर स्वागत किया और उनको गुरु पद पर स्थापन कर नन्नसूरि को पुनः गुजरात में जाने की आज्ञा दी और गोविन्दसूरि को अपने पास रक्खा। चरित्रकार फरमाते हैं कि राजा आम ने जैनधर्म की अच्छी सेवा की पर राजा भोज ने उससे भी जैनधर्म की विशेष उन्नति की। जैनधर्म के प्रचार को खूब बढ़ाया और मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि चैत्यवासी होते हुए भी। जैन संसार में एक महान् प्रभाविक आचार्य महापुरुषों की गिनती के आचार्य थे। वादी कुंजरकेशरी ब्रह्मचारी, राजपूजित वगैरह अनेक बिरुदों से विभूषित थे। आपने अपने दीर्घ जीवन में जैन शासन की उन्नति कर जैनधर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। ऐसे प्रभाविक पुरुषों से ही जैनधर्म दे दीप्यमान व राजधर्म से गर्जना करता था।

राजा आम ने कन्नौज में १०१ हाथ ऊंचा मन्दिर बनवा कर अठारह भार सोने की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई तथा गिरनार शत्रुञ्जय के तीर्थ आचार्य संघ निकाल कर तीर्थ यात्रा की। राजा आम के एक रानी वैश्य कुल की थी। उनकी सन्तान जैनधर्म पालन करती हुई राज्य के कोठार का काम करने लगी। उनके विवाहादि सब व्यवहार उपकेशवंश के साथ होने लगे इसलिये वे उपकेश वंश में राज कोठारी कहलाये। इस परम्परा में श्रीमान कर्माशाह हुआ। उसने वि० सं० १५८७ पुनीत तीर्थश्री शत्रुंजय का उद्धार

करवाया। उस समय के शिलालेख में भी इस बात का उल्लेख किया हुआ मिलता है। उस शिलालेख से कुछ अंश यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

स्वस्तिश्रीगुर्ज्जरधरित्र्यां पातासाह श्री महिमूद पट्टप्रभाकर पाताशाहश्रीमदाफारसाह पट्टोद्योत कारकपातसाह श्री श्री श्री श्री श्री बाहदर साह विजय राज्ये संवत् १५८७ वर्षे राज्य व्यापार धुरधरपन श्री मम्माद पान व्यापारे श्री शत्रुंजय गिरौ श्रीचित्रकूटवास्तव्य दो० करमाकृत सप्तमोद्धारसत्का प्रशास्तिर्लिख्यते—

स्वस्ति श्री सौख्यदो जीयाद् युगादिजिननायकः। केवलज्ञान विमलो विमलाचलमण्डनः ॥१॥

श्रीमेदपाटे प्रकटप्रभावे भावेन भव्ये भुवनप्रसिद्धे।
श्रीचित्रकूटो मुकुटोपमानो विराजमानोऽस्ति समस्त लक्ष्म्या ॥ २ ॥
सन्नन्दनो दात् सुरद्रुमश्च तुङ्गः सुवर्णोऽपि विहारमारः।
जिनेश्वर स्नात्रपवित्रभूमिः श्रीचित्रकूटः सुरशैल तुल्यः ॥ ३ ॥
विशालमाल क्षितिलोचनामो रम्योनृणां लोचनचित्रकारी।
विचित्रकूटो गिरिचित्रकूटो लोकस्तु यत्राखिलकूटमुक्तः ॥ ४ ॥

तत्र श्री कुम्भराजोऽभूत कुम्भोद्भवनिभोनृपः। वैरिवर्गः समुद्रोहि येनपीतः क्षणात् क्षितौ ॥ ५ ॥
तत्पुत्रो राजमल्लोऽभूद्राज्ञां मल्लइवोत्कटः। सुतः संग्रामसिंहोऽस्य संग्राम विजयी नृपः ॥ ६ ॥
तत्पट्टभूषणमणिः सिंहेन्द्रवत् पराक्रमी। रत्नसिंहोऽधुना राजा राज लक्ष्मया विराजते ॥ ७ ॥

इतश्च गोपाह्वगिरौ गरिष्ठः श्रीबप्पभट्टि प्रतिबोधितश्च।
श्रीआम राजोऽजनि तस्य पत्नी काचित्नभूव व्यवहारि पुत्री ॥ ८ ॥
तत्कुक्षिजाताः किल राजकोष्ठागाराह्वगोत्रे सुकृतैकमात्रे।
श्री ओशवंशे विशदे विशाले तस्यान्वयेऽमीपुरुषाः प्रसिद्धा ॥ ९ ॥

प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग दूसरा पृ ९

यह शिला लेख तीर्थ श्रीशत्रुंजय का सोलहवाँ उद्धार कर्ता कर्म्मशाहका है कर्म्मशाह गढ़ चित्तोड़ का निवासी था अतः शिलालेख में चित्तोड़ रांणा के उल्लेख के पश्चात कर्म्मशाह के पूर्वजों को आचार्य बप्पभट्टि सूरि ने राजा आम (नागभट्ट) को जैन धर्म की दीक्षा दी उनके एक राणी व्यवहारी या (महाजन) की पुत्री थी उसकी सन्तान को विशाद ओसवंश में शामिल करदी अर्थात् उनकी रोटी बेटी व्यवहार उपकेश वंश के साथ में होने लगा इससे पाया जाता है कि आचार्य बप्पभट्टि सूरि के समय उपकेशवंश विशाल संख्या में एव विशाद प्रदेश में फैल चुका था तब ही तो राजा आम की सन्तान को उस उपकेशवंश के शामिल करदी आगे कर्म्माशाह के पूर्वजों की वंशवृक्ष की नामावली दी है जो इस प्रकार हैं १—सरणदेव २ तत्पुत्र रामदेव ३ तत्पुत्र लक्ष्मणसिंह ४ तत्पुत्र भुवनपाल ५ तत्पुत्र भोजराज ६ तत्पुत्र ठाकुरसिंह ७—तत्पुत्र खेत्रसिंह ८ तत्पुत्र नरसिंह ९ तत्पुत्र तोलाशाह १० तत्पुत्र कर्माशाह ११ तत्पुत्र भिखाशाह—

आचार्य बप्पभट्टिसूरि का समय चैत्यवासियों का साम्राज्य का समय था आचार्य बप्पभट्टिसूरि भी चैत्यवासी ही थे तब ही तो आपने हस्ति एव ऊंट की सवारी की तथा सिंहासन पर भी विराजते थे आपके

गुरुभ्राता नन्नसूरि के तो सिंहासन पर बैठ चामर होना भी लिखा था फिर भी आप चैत्यवासी होते हुए भी जैनधर्म का प्रचार करने में प्राण प्रण से कटिबद्ध रहते थे तथा राज सभा में वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय विजयंति सर्वत्र फहराने में एवं जैनधर्म का उद्योत करने में न सदैव संलग्न रहते थे तब ही तो ग्रन्थ कारों ने आपश्री को प्रभाविक आचार्यों की गणना में गिन कर प्रभाविक पुरुषों में स्थान दिया है। इधर तो आम राजा के परम मानिता आचार्य श्री बप्पभट्टिसूरि थे तब उधर लाटगुजरात और सौराष्ट्र में वनराज चावड़ा के गुरु आचार्य शीलगुणसूरि जैसे अतिशय प्रभावशाली आचार्य—जैसे धर्म रक्षकता के दोनों लॉर्ड हो तथा उपकेशगच्छाचार्यों का सर्वत्र भ्रमण एवं प्रचार इन प्रकार विद्वानों के सामने स्वामी शंकराचार्य और कुमारिलभट्ट जैसों की भी दाल नहीं गल सकी थी अतः उस विकट समय में जैनधर्म को सुरक्षित रखने वाले युग प्रवरों का हमको महान् उपकार समझना चाहिये।

आचार्य श्रीहरिभद्रसूरि

मेदपाट प्रान्त में भूषण स्वरूप चित्रकूट नामक नगर था जो धन धान्य से और सुखी लोगों से सम्पन्न अपनी ख्याति स्वर्ग की स्पर्धा करने वाला था। वहां पर जैतारि नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में चार वेद अठारह पुराण और चौदह विद्या में निपुण हरिभद्र नामक पुरोहित रहता था जो राजा से सम्मानित एवं नगर निवासियों से पूजित था। उसको अपनी विद्वत्ता का इतना गर्व था कि वह पेट पर स्वर्णपट्ट बांधे रहता और हाथ में जम्बु वृक्ष की लता रखता। साथ ही एक कुदाला जाल और निसेनी भी रखा करता था। पूछने पर वह कहता—विद्या से भरा पेट न फूट जाय इसलिये उदर पर पट्टा तथा जम्बुद्वीप में मेरे से कोई वाद करने वाला नहीं इसके लिए जम्बुलता रखता हूँ। वादी यदि पाताल में चला जाय तो कुदाला से खोदकर निकाल लाऊं और आकाश में चला जाय तो निसेनी से चढ़ पकड़ कर ले आऊं। इस प्रकार हरिभद्र पुरोहित गर्व सूचक चिन्ह अपने पास में रखता था। इतना होने पर भी उसने एक ऐसी प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जिस किसी के शास्त्र का अर्थ मैं न समझूंगा तो मैं उसका शिष्य हो जाऊंगा क्योंकि हरिभद्र अपने आपको सर्वज्ञ समझता था।

एक दिन पं० हरिभद्र अपने छात्रों के साथ बड़े ही आडम्बर से राज मार्ग में जा रहा था। इतने में एक मदोन्मत्त हाथी आ गया। उस के भय से हरिभद्र भाग कर जैन मन्दिर के द्वार पर आ पहुँचा। दृष्टि ऊंचा करते ही त्रिलोक पूज्य तीर्थंकर देव की शान्तमुद्रा प्रतिमा उसके देखने में आई पर द्वेष के कारण मजाक में तत्काल एक श्लोक बोला—

वपुरेव तवाचष्टे स्पष्टं मिष्टान्न भोजनम्। नहि कोटर संस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाद्वलः॥

इतने में हस्ति अन्यमार्ग से चला गया और हरिभद्र चलकर अपने मकान पर आ गया। बाद कभी एक दिन वह बहुत आडम्बर के साथ बाहिर जा रहा था कि रास्ते में एक साध्वी का उपाश्रय आया। उसमें याकिनी साध्वी एक गाथा उच्च स्वर से याद कर रही थी—

चक्किदुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीणकेसवो चक्की। केसव चक्की केसव दु, चक्की केसीय चक्कीय॥

हरिभद्र ने गाथा सुन कर विचार किया तो उसको अर्थ नहीं जचा कारण एक तो गाथा प्राकृत की दूसरा संकेत रूपक समास था। अतः उसने साध्वी से कहा माता! यह चक चक क्या कर रही हो?

मैं इसके भाव को समझ नहीं सका। अतः आप समझाइये।

साध्वी ने कहा—जैनागमों का अभ्यास करने की गुरु आज्ञा है पर विवेचन कर पुरुषों को समझाने की आज्ञा नहीं है। यदि आपको समझना हो तो हमारे गुरु महाराज अन्यत्र विराजमान हैं वहाँ जाकर समझ लीजिये।

भट्टजी विचार करते हुए अपने मकान पर आये और शेष रात्रि वहीं व्यतीत की। बाद प्रातः काल नित्य क्रिया से निवृत्त हो घर से निकले कि पहिले तो वे जिनमन्दिर में आये। वहा भगवान की प्रतिमा को देख कर हर्ष के साथ प्रभु की स्तुति की—

"वपुरेव तवाचष्टे भगवन् वीतरागताम्। नहि कोटर संस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाद्वलः॥

बाद में अपनी जिन्दगी को निरर्थक समझते हुए मण्डप में विराजमान आचार्यश्री को देख उसके दिल में अच्छे भाव उत्पन्न हुए कि ये सभ्यता के सागर अवश्य वंदनीय हैं। पर आप थे ब्राह्मण-बस! सूरिजी के समीप आकर क्षणभर स्तब्ध खड़ा होगये। आचार्यश्री ने भट्टजी को देख मन में विचार किया कि ये तो वे ही ब्राह्मण हैं जो अपने आपको अभिमान पूर्वक विद्वान कह कर हस्ति के भय से जिनमन्दिर में आकर प्रभु की मूर्ति का उपहास किया था। हो सकता है, उस समय इनकी दूसरी भावना होगी पर इस समय तो इनके हृदय ने अवश्य ही पलटा खाया है। इसी से इन्होंने आदर पूर्वक जिन स्तुति की है। खैर, देखें आगे क्या होता है? थोड़े समय पश्चात् सूरिजी ने बड़े ही मधुर शब्दों में कहा-अनुपम बुद्धि निधान महानुभाव! आप कुशल तो हैं न? बतलाइये यहा आने का क्या प्रयोजन है? हरिभद्र ने उत्तर दिया-पूज्यवर! क्या मैं बुद्धि निधान हूँ? अरे! मैं तो एक वृद्ध साध्वी की एक गाथा के अर्थ को भी नहीं समझ सका अत. आप ही कृपा कर उस गाथा का अर्थ समझाइये। सूरिजी ने गाथा का अर्थ समझाते हुए कहा—"प्रथम दो चक्रवर्ती हुए, पीछे पाच वासुदेव, पीछे पांच चक्रवर्ती पीछे एक वासुदेव और चक्री, उसके बाद केशव और चक्रवर्ती, तत्पश्चात् केशव और दो चक्रवर्ती बाद में केशव और अन्तिम चक्रवर्ती हुए"

गाथा का सम्पूर्ण अर्थ समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा—हे शुभमति! अगर जैनागमों के सम्पूर्ण ज्ञान की अभिलाषा हो तो आप भगवती दीक्षा स्वीकार करो जिससे अपनी आत्मा के साथ दूसरों की आत्मा का कल्याण करने भी समर्थ हो जावो। सूरिजी के थोड़े से ही सारगर्भित उपदेश ने भट्टजी की भाद्रिक आत्मा पर इस कदर प्रभाव डाला कि हरिभद्र ने अपने दुराग्रह एव परिग्रह का त्याग कर दिया और अपने कुटुम्बियों की अनुमति लेकर आचार्यश्री के चरण कमलों में जैन दीक्षा स्वीकार करली। बस, फिर तो था ही क्या? मुनि हरिभद्र, पहिले से ही विद्वान् थे अत' उनके लिये जैनागमों का अध्ययन करना तो लीला मात्र ही था। वे स्वल्प समय में ही सर्वगुण सम्पन्न होगये। आचार्य श्री ने भी उनको सब तरह से योग्य जान कर सूरिपद दे अपने पट्ट पर स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् आचार्यश्री हरिभद्रसूरि अपने चरण कमलों से पृथ्वी मण्डल को पावन बनाते हुए भव्य जीवों का उद्धार करने लगे।

एक समय हरिभद्रसूरि ने अपनी बहिन के पुत्र हंस और परमहंस को दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिये। उनको जैनागमों का अभ्यास करवा कर प्रकाण्ड पण्डित बनवा दिया पर उनकी इच्छा बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन करने की हुई एतदर्थ उन्होंने गुरु महाराज से आज्ञा मांगी। आचार्यश्री ने भविष्य कालीन अनिष्ट जानकर आज्ञा नहीं दी पर इसका निषेध ही किया और कहा ऐसे विरह को मैं सहन

नहीं कर सकता अतः यहां पर भी बहुत से अन्यमत के शास्त्रों के ज्ञाता आचार्य हैं, तुम उन्हीं के पास जाकर पढ़लो।

भवितव्यता बलवान है, अतः गुरु के वचनों को स्वीकार नहीं करते हुए शिष्यों ने पुनः पुनः प्रार्थना की। इस पर गुरु ने कहा—मेरी तो इच्छा नहीं है पर तुम्हारा ऐसा आग्रह है तो जैसा तुमको रुचे वैसा करो। बस, दोनों शिष्य वेश बदल कर बौद्धों के नगर में आये और खाने पीने का प्रबन्ध होने पर वे बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन करने में संलग्न होगये।

बौद्धाचार्य जहां २ जैनागमों का खण्डन करते थे वहां २ हंस, परमहंस अपनी बुद्धि बल से बौद्धों का खण्डन अपने हाथों से लिख लेते थे। इस प्रकार बहुत समय तक अभ्यास किया। एक दिन इधर तो हंस, बौद्धों का खण्डन लिख रहा था और उधर जोरों से भयंकर वायु चला जिससे अकस्मात् पत्र उड़ गया। वह पत्र दूसरे छात्रों के हाथ लगा और उन लोगों ने जाकर बौद्धाचार्य को दे दिया। इसको पढ़ कर बौद्धाचार्य आश्चर्य के साथ दुःखी भी हुआ कि अहो मेरी असावधानी के कारण जैन धर्म के छात्र मेरा ज्ञान ले जा रहे हैं पर इसका सत्यासत्य का निर्णय कैसे हो सकता है ? इसके लिये सोपान पर एक जैन मूर्ति का आलेखन कर सर्व विद्यार्थियों को ऑर्डर कर दिया कि इस मूर्ति पर पैर रख कर ही नीचे उतरो। इस भीषण हुक्म को सुन कर हंस परमहंस को बड़ा ही विचार हुआ। वे गुरु वचनों को नहीं मानने के कारण उनके लिये यह बड़ा ही विकट समय था। यदि मूर्ति पर पैर नहीं रक्खे जाँय तो जीवितव्य खतरा था और तीर्थंकरों की मूर्ति पर पैर रखना एक जिनदेव की जान बूझ कर महान् आशातना करना था अतः वे विचार विमुग्ध हो गये। इतने में उनको एक उपाय सूझ पड़ा और उन्होंने एक खड़ी का टुकड़ा हाथ में लेकर उस मूर्ति के वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत की भाँति तीन रेखा खींच दी और उसे बुद्ध की मूर्ति बनादी। बस वे भी मूर्ति पर पैर रख कर चले गये इससे सब बौद्धों को मालूम होगया कि वे जरूर ही जैन हैं। बहुत से बौद्ध उन दोनों जैन मुनियों का बदला लेने लगे तब आचार्य ने कुछ धैर्य रखने को कहा। जब वे दोनों रात्रि में शयन गृह में सो गये तो बौद्धों ने उनके चारों ओर पहरा लगा दिया। पर जब वे दोनों जागृत हुए तो वहां से नीचे उतर कर पलायन करने लगे। उनको भागते हुए देखकर मारो २ करते हुए हजारों बौद्ध योद्धा उनके पीछे होगये। इस पर हंस ने परम हंस को कहा कि तू जल्दी से गुरु महाराज के पास जा और मेरी ओर से कहना कि हम लोगों ने आपका वचन स्वीकार न कर जो आपका अविनय किया उसका फल हमें मिल गया है। साथ ही मेरा मिच्छामि दुक्कडं कह कर मेरी ओर से क्षमापना करना। यदि तू वहां तक न पहुँचे तो पास ही में सूरपाल राजा का राज्य है और वह शरणागत प्रतिपालक भी है अतः तू वहां जाकर अपने प्राण बचालेना। परम हंस भागा गया और इस पर हजारों योद्धा टूट पड़े। हंस ने खूब संग्राम किया पर आखिर वह था अकेला ही अतः बौद्धों ने उसको मार डाला।

इधर परम हंस भाग कर सूरपाल राजा के शरण में आया। बौद्धों को भी इस बात का पता लग गया जब उन्होंने राजा को कहा—हमारे अपराधी को हमें सौंप दो। राजा ने कहा—मेरे शरण में आये हुए व्यक्ति नहीं मिल सकते हैं। अन्त में बहुत कुछ कहने सुनने के पश्चात् यह शर्त हुई कि—हम दोनों का आपस में वाद विवाद हो। उसमें यदि इसकी जय होगी तो इसको छोड़ दिया जायगा अन्यथा। हमारा अपराधी हमें देना पड़ेगा। पर हम इस जैन अपराधी का मुँह नहीं देखेंगे अतः पर्दे में रह कर ही इससे हम वाद करेंगे। पर्दा रखने का कारण यह था कि पर्दे में बौद्धों की इष्ट देवी वाणी के साथ बोलती थी।

वाद बहुत दिनों तक चलता रहा पर बौद्धों की ओर से देवी बोलती थी अतः कई दिनों तक किसी की हारजीत का निर्णय न हो सका। इस पर परमहस ने अपने गच्छ की अधिष्ठायिका देवी का स्मरण किया। देवी तत्काल उपस्थित होकर कहने लगी पर्दा हटा कर वाद करने में ही तुम्हारी विजय होगी। दूसरे दिन परमहस ने आग्रह किया कि वाद प्रगट किया जाय। तदनुसार बौद्धों की तत्काल पराजय हो गई राजा ने भी संतुष्ट होकर परमहस को जाने की रजा दी। जब परमहंस चला तो प्रतिज्ञा भ्रष्ट बौद्ध उनके पीछे हो गये। परम हस खूब जल्दी चला पर एक सवार उनके समीप आता हुआ दिखाई पड़ा। दौड़ते २ एक धोबी दृष्टिगोचर हुआ तब उसके कपड़े लेकर परमहंस स्वयं धोने लगा और धोबी को आगे भेज दिया। पीछे से सवार आया और उसने कपड़े धोने वाले से पूछा कि—क्या तुमने यहा से किसी को जाते हुए देखा है ? उसने कहा—हाँ वह यहीं दौड़ता हुआ जा रहा है। जब सवार आगे निकल गया तो परमहस वहां से चलकर सत्वर ही चित्रकूट पहुच गया और गुरु के चरणों को नमस्कार कर मारे लज्जा के मुंह नीचा कर खड़ा हो गया कारण, गुरुकी आज्ञा बिना जाने का फल उसने देख लिया।

थोड़ी देर के पश्चात् परमहंस ने गुरुचरणों में नमस्कार करके बीती हुई सारी हकीकत गुरु महाराज से निवेदन की। अपने सुयोग्य शिष्य हस का बौद्धों के द्वारा मारा जाना सुन कर हरिभद्रसूरि ने शिष्य विरह की बहुत विचारणा की। निरपराध शिष्य को बुरी मौत से मारने के कारण उनको बौद्धों पर क्रोध हो आया। वे चल कर तुरत सूरपाल राजा के पास आये। राजाने सूरिजी का यथा योग्य सत्कार वंदन किया। सूरिजी ने भी उसको धर्मलाभ रूप शुभाशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् सूरिजी ने राजा प्रति कहा—हे शरणागत प्रतिपालक राजन्! आपने मेरे शिष्य परमहंस को अपनी शरण में रख कर बचाया, इसकी मैं कहां तक प्रशसा करूं ? आपके जैसा साहस करने वाला और कौन हो सकता है ? अब मैं प्रमाण लक्षण से बौद्धों का पराजय करना चाहता हूँ और इसलिये मैं आप जैसे सत्य शील न्याय प्रिय राजेश्वर के पास आया हूँ।

राजाने कहा—महात्मन! आपका कहना ठीक है पर एक तो बौद्धों की सख्या अधिक है और दूसरा वे धर्मवाद से नहीं पर बाहुबल से वितण्डावाद विवाद करने वाले हैं अत उनके लिये कुछ विशेष प्रपञ्च रचना की आवश्यकता होगी इसीलिये मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आपश्री के पास कोई अलौकिक शक्ति है।

हरिभद्र सूरि ने कहा—नरेन्द्र! मुझे जीतने वाला कौन है ? मेरी सहायता करने वाली अम्बिका देवी है। इस बात को सुन कर राजा ने खुश हो आपने एक चतुर दूत को पठा कर बौद्धों के नगर में भेजा और बौद्धाचार्य को कहलाया कि—आप तीन लोक में प्रकाश मान हैं फिर भी बौद्धमत से वाद करने वाला एक वादी मेरे नगर में आया हैं। वे वाद कर बौद्धमत को पराजय करने की उद्घोषणा भी करते हैं। इससे हम को बहुत लज्जा आती है अतः आप यहा पधार कर वादी का पराभव करें जिससे दूसरा कोई भी वादी ऐसा साहस न कर सके। इत्यादि

दूत बड़ा ही विचक्षण एव प्रपञ्च रचने में विज्ञ था। वह राजा के उक्त सदेश को लेकर राजा के पास से विदा हो बौद्ध नगर में पहुँचा और अपनी वाक पटुता से राजा के सदेश को बौद्धाचर्य के सम्मुख सुना दिया। इस पर बौद्धचार्य ने क्रोधित होकर कहा—अरे दूत! ससार मात्र में ऐसा कोई वादी मैंने नहीं रक्खा है जो मेरे सामने आकर खड़ा रह सके। हाँ, कोई जैन सिद्धान्त का अनुसरण करने वाला वाचालवादी तुम्हारे यहा आगया हो तो मैं तुम्हारे राजा के सामने क्षणमात्र में उसे परास्त कर सकता हूँ। अरे दूत! क्या वादी

को मृत्यु का भय नहीं है ? दूतने कहा-भगवान् ! आपका कहना सर्वथा सत्य है और मेरा भी यही विचार है। मैं मेरी अल्पमति से आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि यद्यपि आप सर्व प्रकारेण समर्थ हो पर वाद के पूर्व यह शर्त कर लेना अच्छा होगा कि वाद में पराजित होने वाले को तप्तैल की कढ़ाई में प्रवेश करना होगा। दूत के मुख से मनोऽनुकूल शब्द सुनकर बौद्धाचार्य ने दूत की खूब प्रशंसा की और कहा ऐसा करना सर्वथा उचित है। मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। इस पर दूत ने इस बात को विशेष दृढ़ करने के लिये कहा—भगवान ! बहुरत्न वसुंधरा, इस न्याय से कदाचित् जो कि सम्भव नहीं है फिर भी वादी द्वारा आपको पराजित होना पड़े तो अपनी इस शर्त पर आपको भी पूर्ण विचार कर लेना चाहिये। आपके पराजय की मेरी कल्पना आकाशपुष्पवत् असम्भव है तथापि पहिले से विचार करलेना जरूरी है। इस पर बौद्धाचार्य ने कहा—अरे दूत ! इस शंका और कल्पना ने तेरे दिल में कैसे स्थान ले लिया है ? क्या तुझे विश्वास है कि इस संसार में वादी एक क्षण भर भी वाद में मेरे सामने खड़ा रह सकेगा ? तू सर्व प्रकारेण निश्चिन्त हो दृढ़ता पूर्वक मेरे मत्त राजा सूरपाल को कहदेना की वाद विवाद के लिये शीघ्र आते हैं। दूत ! अब तुम जाओ मैं तुम्हारे पीछे शीघ्र ही रवाना हो निर्दिष्ट स्थान पर आरहा हूँ।

बौद्ध नगर से चलकर दूत अपने राजा के पास आया और बौद्धाचार्य से हुए वार्तालाप को राजा के सम्मुख अविकल सुना दिया। राजाने दूत की बहुत प्रशंसा की व समुचित पुरस्कार दिया और हरिभद्र सूरि भी अपने इच्छित कार्य की सिद्धि के लिए बहुत ही आनन्दित हुए।

बस चार दिनों के पश्चात् बौद्धाचार्य अपने विद्वान शिष्यों को साथ में लेकर सूरपाल राजा की राज-सभा में उपस्थित होगये। बौद्धाचार्य ने सोचा कि इस सामान्य कार्य के लिये अपनी सहायिका तारा देवी को बुलाने की क्या जरूरत है ? ऐसे वादियों को तो मैं यों ही क्षण भर में ही परास्त कर दूँगा इस आशय पर उन्होंने देवी को नहीं बुलाई और अपनी योग्यता के बल पर विश्वास रखकर राजसभा में विवाद करने को तैयार होगये। इधर आचार्य हरिभद्रसूरि भी इसके लिये समुत्सुक थे अतः राज सभा में दोनों के बीच वाद विवाद प्रारम्भ होगया।

बौद्धाचार्य ने कहा—यह सब जगत अनित्य है। सत् शब्द केवल व्याकरण की सिद्धि के लिये ही है। इस पक्ष में यह हेतु है कि संसार के सकल पदार्थ क्षणिक एवं अशाश्वत है जैसे जलधर !

हरिभद्रसूरि—यदि सकल पदार्थ क्षणिक हैं, तब स्मरण एवं विचार संतति कैसे बनी रहती है ? पदार्थ को एकान्त क्षणिक स्वीकार कर लेने पर यह कैसे कहा जायगा कि हमने इस पदार्थ को पूर्व देखा।

बौद्धाचार्य—हमारे मनकी विचार संतति अनाकुल और सनातन होती है। उस संतति में इस प्रकार का ज्ञान होता है। जिससे हमारा व्यवहार उसी प्रकार चल सकता है।

हरिभद्रसूरि—यदि मति तथा ज्ञान नहीं है तब सत् अर्थात् क्षणिक भी नहीं रही और संतति ध्रुव होने से तुम्हारे वचनों से ही तुम्हारी मान्यता का खण्डन होगया अतः तुमको अपनी मिथ्या मान्यता शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये।

बौद्धाचार्य हरिभद्रसूरि की तर्क का समाधान नहीं कर सके। लोगों ने बौद्धाचार्य को मौन रहा देखकर यह घोषणा करदी कि बौद्धाचार्य पराजित होगये। अब उनको जबरन पकड़ कर उस तैल की कढ़ाई में डाल दिया जिससे वे शीघ्र ही मृत्युमुख हो गये। बौद्धाचार्य की मृत्यु का हाल देख उनका शिष्य समुदाय

बहुत ही घबरा गया और इधर उधर पलायन करने लगा। उक्त बौद्धाचार्य के शिष्य वर्ग में एक शिष्य बड़ा ही चालाक, एव विद्वान था। वह वाद करने को हरिभद्रसूरि के सन्मुख आया पर हरिभद्रसूरि जैसे तर्क वेत्ता के सम्मुख उनकी दाल कहां तक गल सकती थी ? वेचारा क्षत्र मात्र में पराजित हो गया अत तप्त तेल के कुण्ड का अतिथि बना दिया गया। इस तरह कई शिष्यवाद करने को आये और उन सब का यही हाल हुआ।

हताश हुए बौद्ध भिक्षु अपनी अधिष्ठायिका तारादेवी को याद कर उपालम्भ देने लगे कि—हे देवि ! चिरकाल से हम चदन, केशर, कुकुम धूप और मिष्टान्न से तेरी पूजा करते हैं पर तू इस संकट समय में भी हमारे काम नहीं आई अतः तेरी पूजा हमारे लिये तो निरर्थक ही सिद्ध हुई। इससे तो किसी सामान्य पत्थर की पूजा करते तो अच्छा था। समीप में रही हुई देवी भिक्षुओं के दुर्वचनों को सुनकर देवी बोली अरे भिक्षुओं ! तुम लोगों ने कैसा अन्याय किया है ! दूर देश से ज्ञानाभ्यास के लिये आये हुए जैन श्रमणों को जिन प्रतिमा पर पैर रखवाने का प्रपञ्च किया पर वे धर्मनिष्ट श्रमण अपना सर्वथा बचाव कर चले गये फिर भी तुम लोगों ने बिना अपराध उनको मारडाला। इसी अन्याय के फल स्वरूप तुम्हारे गुरु और भिक्षुओं को यम कलेवा बन पड़ा। मैं सब हाल जानती थी पर अपने ही किये कर्मों का फल समझ कर उपेक्षा कर रही थी। अब भी मैं तुमको कहती हूँ कि तुम लोग अपने स्थान पर चले जाओगे तो मैं पूर्ववत तुम लोगों की रक्षा करती रहूंगी अन्यथा उपेक्षा ही समझना। इतना कहकर देवी अदृश्य होगई, देवी के कहे हुए वचनानुसार बौद्ध लोग भी स्वनिर्दिष्ट स्थान पर चले आये।

यहा पर कई लोग यह भी कहते हैं कि महामत्र के बल से हरिभद्रसूरि बौद्ध भिक्षुओं को जबरन खींच २ कर तप्त तेल कुण्ड में डाल रहे थे तब उनकी धर्म माता याकिनी पञ्चेन्द्रिय जीव मारने का प्रायश्चित लेने को सूरि जी के पास गई तो उनको अपने उक्त कृत्य पर पश्चाताप हुआ और उसे छोड़ दिया।

जब यह वृत्तान्त हरिभद्रसूरि के गुरु जिनदत्तसूरि ने सुना तो शिष्य को शान्त करने के हेतु दो शान्त श्रमणों के हाथ समरादित्य के जीवन की तीन गाथा लिखकर दी और उन्हें हरिभद्रसूरि के पास भेजा। वे दोनों श्रमण भी क्रमश राजा सूरपाल की राज सभा में आये और गुरु सदेश सुनाकर हरिभद्र सूरि की सेवा में तीनों गाथाएं रखदी।

गुणसेण अग्गिसम्मा सींहाणंदा य तह पिया पुत्ता।
सिहजालिणी माइसुआ धण, धणसिरि मोहयपइभज्जा ॥ १ ॥
जय विजया य सहोअर धरणो लच्छी य तहप्पइ भज्जा।
सेण विसेणा य पित्तिय उत्ता जम्ममि सत्तिमए ॥२॥
गुणचंद अ वाणमंतर समराइच्च गिरिसेण पाणोय।
एगस्स त ओ मोक्खोऽणंतो अन्नस्स संसारो ॥३॥

अर्थात् प्रथम भव में गुणसेन और अग्निशर्मा, दूसरे भव में सिंह और आनद पिता पुत्र हुए। तीसरे भव में शिखि और जालीनी माता पुत्र हुए। चतुर्थ भव में धन और धनपती पति पत्नी हुए। पांचवे भव में जय और विजय दो सहोदर हुए, छट्ठे भव में धरण और लक्ष्मी पति-पत्नी हुए, सांतवें भव में सेन

विपेण सिद्ध प्रभु हुए, आठवें भव में गुणसेन और वानव्यन्तर हुए और नववें भव में गुणसेन समरादित्य और अग्निशर्मा गिरिसेन हुआ समरादित्य संसार से मुक्त हुआ और गिरिसेन अनन्त संसारी हुआ।

इसी प्रकार गाथाओं को पढ़ कर अर्थ विचारने में संलग्न हरिभद्रसूरि सोचने लगे कि एक तपस्वी मुनि के पारणे का भंग होने से निदाने के परिणाम स्वरूप भव भव में इतना परिभ्रमण करना पड़ा तब यहां तो क्रोध रूप दावानल की ज्वालायें प्रसारित कर बौद्धमत के साधुओं को बुरी मौत मरना डालने के कटु पाप का मुझे कैसे भीषण फल भोगना पड़ेगा ? इस प्रकार पश्चाताप करते हुए बौद्धों के वैर भाव को छोड़ कर गुरुमहाराज का अवर्णनीय उपकार मानते हुए हरिभद्रसूरि ने सूरपाल राजा की आज्ञा लेकर तत्काल वहां से विहार कर दिया। क्रमशः गुरु के चरणों में आकर धर्मसस्तक नमा कर क्रोध जनित हुए अनर्थ के लिये क्षमा और प्रायश्चित की याचना करने लगे।

गुरु महाराज ने हरिभद्र के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा कि—हरिभद्र ! तू महान् शासन प्रभावक है। तेरे जैसों से शासन की शोभा है। इस प्रकार उनकी प्रशंसा करते हुए सूरि जी ने उनको पाप का योग्य प्रायश्चित दिया।

इतना सब कुछ होने पर भी हरिभद्रसूरि को शिष्य विरह सदा खटकता रहता था। एक समय अम्बिका देवी सूरिजी के पास आई और वंदन करके नम्रतापूर्वक कहने लगी—गुरुदेव ! आप जैसे ज्ञानवानों को शिष्य मोह होना किञ्चित ही एक आश्चर्य की बात है। कारण, कर्म फल तो सबको भोगना ही पड़ता है, इस पर भी आप स्वयं ज्ञानी हैं। आपको तो तप संयम की आराधना कर गुरु सेवा में रहते हुए आत्म कल्याण सम्पादन अवश्य करना चाहिये।

हरिभद्रसूरि ने कहा—देवी ! शिष्य विरह जितना दुःख नहीं है उतना अनपत्यता का दुःख है। इस पर देवी ने कहा—आपके भाग्य में शिष्य सन्तति का होना नहीं है अतः आपके शिष्य आपके निर्माण किये हुए ग्रन्थ ही रहेंगे। बस आज से आप इसी कार्य के लिये प्रयत्न शील रहिये।

देवी के कथनानुसार आपने अपना कार्य प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम तीन गाथाओं से आपने प्रतिबोध पाया था अतः प्रस्तुत तीन गाथा गर्भित समरादित्य चरित्र की रचना की और बाद में क्रमशः १४० व १४४४ ग्रन्थों का निर्माण किया। शिष्य विरह की याद में एक विरहपद सहित अपना सर्व रचना पुष्प चरित्र बनाया। अब ग्रन्थों का विस्तृत प्रचार करने का आप विचार कर रहे थे तब कार्पासिक नामक एक भव्य पुरुष दृष्टिगोचर हुआ। आपको अपने निर्माण किये ग्रन्थों का प्रचार करने के लिये 'कार्पासिक' नाम का सेठ ही योग्य मालूम हुआ। अतः प्राचीन महापुरुषों एवं आराधादि के चरित्र को सुना उसे जैन धर्म की ओर आकर्षित किया। धर्मपूर्वोपदेश सुना कर उसकी जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धा स्थापित करवाई। इसके बाद यथोचित स्वरूप को समझाया। इस पर उसने कहा—गुरु देव ! नाम मात्र जैनधर्म द्रव्य बिना कैसे शोभा देता है ? सूरिजी ने कहा—हे भव्य ! धर्म की आराधना से पुष्कल द्रव्य की प्राप्ति होती है।

कार्पासिकने कहा भगवन् ! यदि ऐसा ही है तो मैं मेरे सब कुटुम्ब के साथ आपकी सेवा करूँगा।

सूरि जी—हे भव्य ! सुन, आज से तीसरे दिन विदेशी व्यापारी नगर के बाहर आवेंगे तो तू उन से पहिले जाकर उनका सब माल खरीद लेना जिससे तुझे बहुत ही लाभ होगा। तू अभी वन आवश्य कर

हरिभद्र की संतति ग्रन्थ ही होंगी

याद रखना कि उस द्रव्य से मेरे निर्माण किये सब शास्त्र लिखवा कर भण्डारों में रखने, साधुओं को पठन पाठन के लिये भेंट करने एव प्रचार करने होंगे।

बस, महा पुरुषों के वचनों में कभी सदेह हो ही नहीं सकता है, तदनुसार कार्पासिक बड़ा ही धनवान् होगया। इस पर उसने सूरिजी की आज्ञा का सम्यक प्रकारेण पालन किया।

सूरिजी ने अन्यभावुकों को उपदेश न देकर एक ही भक्त से ऊच शिखरवाले चौरासी चैत्य बनाये। चिरकाल से जीर्ण शीर्ण हुए और दमक से काटे गये महानिशीथ सूत्र का पुनरुद्धार करवाया। कहा जाता है कि इस कार्य में १—आयरिय हरिभद्देण ××, २—सिद्धसेण ××, ३—वुड्ढवाई ××, ४—जक्खसेण ××, ५—देवगुत्ते ××, ६—जससमद्देणं ××, ७—खमासमणसीसर-विगुत्त ××, ८—जिणदासगणि" ×× । "महानिशीथ सूत्र"

इन आठ आचार्यों ने महानिशीथ सूत्र का उद्धार कर पुन' लिखा था। जो आज भी विद्यमान इत्यादि आचार्य हरिभद्रसूरि ने जैनशास्त्र की महान सेवा एवं प्रभावना की। यदि यह कह दिया जाय कि जैनधर्म के साहित्य निर्माण करने में पहला नम्बर आपका है आप अपनी जिन्दगी में जितने ग्रंथों की रचना की है एक मनुष्य अपनी जिन्दगी में उतने शास्त्र शायद ही पढ़ सके ?

अन्त में आचार्य श्री ने श्रुतज्ञान द्वारा अपने आयुष्य की स्थिति बहुत नजदीक जानकर तत्काल अपने गुरू महाराज के चरणों में उपस्थित हुए चिरकालीन शिष्य विरह को त्याग कर आलोचना पूर्वक अनसन व्रत की आराधना कर समाधि पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया। जैनशासन रूपी आकाश में हरिभद्राचार्य रूपी सूर्य ने अपनी किरणों का प्रकाश दिग-दिगान्त तक प्रसरित कर जैनधर्म का बहुत उद्योत किया ऐसे महापुरुषों का विरह समाज को असह्य होना स्वभाविक ही है अतः उन महापुरुष को कोटी कोटी वन्दन नमस्कार हो।

पूज्याचार्य हरिभद्रसूरि का चरित्र मैंने प्रभाविक चरित्र के आधार पर संक्षिप्त ही लिखा है पर आचार्य भद्रेश्वरसूरि की कथावली में भी आचार्य हरिभद्रसूरि का चरित्र लिखा हुआ मिलता है किन्तु उसके अन्दर सामान्यतय कुच्छ भिन्नता मालुम होती है पाठकों के जानकारी के लिये यहां पर सूचना मात्र करदी जाति है—

आचार्य हरिभद्रसूरि के शिष्यों के नामचरित्र कारने हस और परमहस लिखा है पर कथावली में जिनभद्र और वीरभद्र बतलाया है। शायद शिष्यों के नाम तो जिनभद्र और वीरभद्र ही हो यदि उनके उपनाम हस और परमहस हो तो सभव हो सकता है क्योंकि जैन मुनियों के हस परमहस नाम कहीं पर लिखा हुआ नहीं मिलता है। दूसरा चरित्र में हरिभद्रसूरि अपने ग्रन्थों का प्रचार के लिये 'कार्पासिक' गृहस्थ को प्रतिबोध देकर एवं व्यापार का लाभ बतला एव कार्पासिक को व्यापार में पुष्कल द्रव्य मिल जाने से उसने हरिभद्रसूरि के ग्रन्थों को लिखवाकर सर्वत्र प्रचार किया तथा चौरासी देहरियोंवाला जैनमन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाइ। इत्यादि। तब कथावली में हरिभद्रसूरि ने एक लल्लिग नामक गृहस्थ जो आपके शिष्य जिनभद्र-वीरभद्र के काका लगता था उसका विचार तो ससार का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने का था पर श्रुतज्ञान के पारगामी सूरिजी ने उसको दीक्षा न देकर ऐसी सूचना की कि जिससे वह गरीब स्थिति

स निकल खूब धनाढ्य बन गया और वह सेठ सूरिजी के कार्य में बहुत सहायक बन गया उस लल्लिग सेठ ने सूरिजी के मकान पर एक ऐसा रत्न रख दिया कि सूरिजी रात्रि में भी ग्रन्थ रचना कर सके और रात्रि में वे भींत शिला पर लिखते जिसको दिन में लेखक से लिखवा लेते थे।

कई स्थानों पर यह भी लिखा है कि हरिभद्रसूरि के जब आहार करने का समय हो जाता तब वे शंख बजाकर याचकों को एकत्र कर उनको मनचिन्त भोजन देकर बाद में आप भोजन करते थे पर कई स्थलों में लिखा है कि शंख सूरिजी नहीं पर लल्लिग सेठ बजाता था और याचकों को दान भी वही देता था सूरिजी तो उन याचकों की नम्रता के बदले में भवविरह रूप आशीर्वाद देते थे जिससे सूरिजी का नाम भी भवविरहसूरि पड़ गया था।

हरिभद्रसूरि का समय चैत्यवास का समय था और चैत्यवास करने वालों में शिथिलाचारी भी थे और सुविहिती भी थे—हरिभद्रसूरि के गुरु जिनदत्तसूरि तथा विद्यागुरु जिनभद्रसूरि चैत्य में ही ठहरते थे दूसरे हरिभद्र जिस समय जैनमन्दिर में आया था और प्रभु की सिद्धान्त स्तुति की थी उस समय आचार्यश्री जिनदत्तसूरि मन्दिर में विराजते थे तथा दूसरी बार फिर हरिभद्र जैनमन्दिर में आया और जिनेन्द्रदेव के गुणों की स्तुति की उस समय भी आचार्यश्री जिनमन्दिर में ही ठहरे हुए थे और हरिभद्र को उपदेश भी वहीं दिया था इससे पाया जाता है कि हरिभद्रसूरि के गुरु चैत्यवासी थे तब हरिभद्रसूरि भी चैत्यवासी हो तो असंभव जैसी कोई बात नहीं है पर हरिभद्रसूरि ने अपने ग्रन्थों में चैत्यवासियों के शिथिलाचार के लिये फटकार कर लिखा भी है इससे कहा जा सकता है कि हरिभद्रसूरि सुविहित थे चैत्यवासी नहीं। हरिभद्रसूरि ने चैत्य के लिये विरोध नहीं किया था पर शिथिलाचार का ही विरोध किया था यह बात मैं पहले लिख आया हूं कि चैत्य में ठहरने वाले सब शिथिलाचारी नहीं थे पर कई सुविहित भी थे और उनमें कई चैत्य में ठहरते थे तब कई उपाश्रय में भी ठहरते थे पर चैत्य में ठहरने का विरोध कोई नहीं करते थे विक्रम की ग्यारवीं शताब्दी के पूर्व चैत्य में ठहरने का किसी ने भी विरोध किया हो मेरी जान में नहीं है। हरिभद्रसूरि ने समराइच्च की कथा में उनके पूर्व भवों का वर्णन में लिखा है कि साध्वियों के उपाश्रय में जिन प्रतिमा थी और उस मकान में ठहरी हुई साध्वी को कैवल्य ज्ञान हुआ था यदि चैत्यवास ही अपवादिक होता तो उसमें ठहरने वाली साध्वी को केवल ज्ञान कैसे हो जाता ? क्योंकि भावनिक्षेप रूप स्वयं तीर्थंकरों की मौजूदगी में मुनि उनके पास रहते आहार पानी क्रियाकाण्ड सब कुछ करते थे तब स्थापना निक्षेप रूप जिन प्रतिमा के पास मुनि ठहरते थे तो इसमें विरोध जैसी कोई बात ही नहीं है। आज हमारे चैत्यवास से नफरत है इसका कारण चैत्यवासियों का आचार शिथिलता ही है इसके विषय मैंने एक "चैत्यवास" प्रकरण ही अलग लिखने का निश्चय किया है।

हरिभद्रसूरि का समय हरिभद्रसूरि का समय के लिये पट्टावलियादि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में लिखा हुआ मिलता है कि—

> "पंचसए पणसीए विक्कम कालेउ झत्ति अत्थमिओ ।
> हरिभद्दसूरिसूरो, भवियाणं दिसउ कल्लाणं ॥"

अर्थात् विक्रम सम्वत् ५८५ में हरिभद्रसूरि का स्वर्गवास हुआ था—वर्तमान में विद्वानों की शोध

स्रोजने हरिभद्रसूरि का सत्ता समय विक्रम की आठवो एवं नौवी शताब्दी के विच का समय ठहराया है इस विषय पूज्य पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी म. ने प्रभाविक चरित्र की पर्यालोचना में विविध प्रमाणों द्वारा चर्चा करते हुए पूर्वोक्त समय निश्चत किया है जिज्ञापुश्रों को वहां से जानकारी करनी चाहिये तथा हरिभद्र सूरि समय निर्णय नामक ट्रेक्ट से अवगत होना चाहिये—

"दिवसगणमनर्थकं स पूर्वं स्वकमभिमान कदर्थ्यमान मूर्त्तिः ।
अमनुत स ततश्च मण्डपस्थं, जिनभटसूरि मुनीश्वरं ददर्श ।। ३० ।।
अथ सुगतपुरं प्रतस्थतुस्ताव गणित सद्गुरु गौरवोपदेशौ ।
अतिशय परि गुप्त जैनलिङ्गो न चलति खलु भवितव्यतानियोगः ।। ६० ।।
कतिपय दिवसैरे वा पतुस्तां सुगतमत्तमतिवद्धराजधानीम् ।
परिकलित कलावधूत वेपावतिपठनार्थितया मठं तमाप्तो ।। ६१ ।।
जिनपतिमत संस्थितामिसंधि पति विहितानि च यानि दूषणा नि ।
निहतमतितयायतेर्निरीक्षातिशयवशेन निजागमप्रमाणैः ।। ६४ ।।
दृढ़मिह परिहृत्य तानि हेतून् विशदतरान् जिनतर्क कौशलेन ।
सुगतमत निपेधाख्ययुक्तान् समलिखताम परेपु पत्रकेपु ।। ६५ ।।
इति रहसि च यावदाददाते गुरुपवमानविलोडितं हि तावत् ।
अपगतममुतः परेश्च लब्धं गुरु पुरतः समनायि पत्र युग्मम् ।। ६६ ।।
उदमिपदथ बुद्धिरस्य_ मिथ्याग्रहमकरा कर पूर्णचन्द्ररोचिः ।
अवददथ निजान् जिनेश बिम्बं चलजपुरोनिदधध्वमध्वनीह ।। ७० ।।
नरक फल मिदं न कर्त्र हे श्रीजिनपति मुर्द्धनि पादयोर्निवेशः ।
परिशटित तेरौ वरं विभिन्नौ निज चरणौ नतु जिन देहलग्नौ ।। ७६ ।।
तदनु च खटिनी कृतोपवीतौ जिनपति बिम्ब हृदिप्रकाशसत्वौ ।
शिरसि च चरणो निधाय या तौ प्रयत तमैं रूप लक्षिनो च बौद्धौः ।।७८।।
हत हत परिमापिणस्त योस्तेऽनुपद मिमे प्रययुर्भटास्त दीयाः ।
अतिसविधमुपागतेषु हंसोऽवदिति तत्र कनिष्टमात्मबन्धुम् ।।९०।।
व्रज झगिति गुरोः प्रणाम पूर्वं प्रकथय मामक दुष्कृतं हि मिथ्या।
अभणित करणान्म मापराध' कुविनयतोविहितः समर्पणीयः ।। ९१ ।।
इह निवसति सूरपाल नामा सरण समागत वत्सलः क्षितीशः ।
नगरमिदमिहास्य चक्षुरीक्ष्यं निकटतरं व्रज सन्निधो ततोऽस्य ।। ९३ ।।
अथ बहुदिन वादतो विपण्णः स परमहंस कृती विपद माधात् ।

विमलति गुरुसंकटे विधिरस्य निकषण शासनदेवता क्लिाम्बा ॥१०५॥
रमक इह स तेन दर्शितोऽस्य स्वरितवर स च शीघ्रमेव तेन ।
निज मन्दिरे समार्पि कृत्वा प्रतिवचसे चवस तदीव वाक्यात् ॥११७॥
इति जिनपति शासनेऽपि शक्ते गुरुतर रोप मनुवृतं हि सम्यग् ।
सुमतमत सुगोनिबर्हदीपाः स्वसुमत निर्मयनोत्थ रोप पोपात् ॥१११॥
वचनमिति निशम्य तस्य भूपः सुगतपुरे प्रजिघाय दूतमेव ।
अपि स लघु जगाम तत्र दूतो वचन विचक्षण अरत प्रपञ्च ॥१४२॥
लिखित वच इदंपणे स्थितो यः स विभुतु तस्य बरिट वैलकुण्डे ।
इति भगतु स्वकीप्सया मर्यासामिह विदधेऽस्य गुरुविचार इदः ॥१५ ॥
इति वचननिरूत्तरी कृतोऽसौ सुगतमत मन्नरचचार मौनम् ।
जिन इति विदिते घनैर्निपेते दूततरमेप सुगतशैलकुण्डे ॥ १६६ ॥
यदमिह निरपत्यता हि दुःखं गुरुकुल मापमतं मयिवर्त किम् ।
इति गदति जगाद तत्र देवीभुपु वचनं मम सुनुवर्त समेकम् ॥२०२॥
नहि तव इत्थ कुक्षिपुण्य मास्ते ननु तव शासनभूह सन्ततिस्तवम् ।
इति गदितवती तिरोदधे सा भमपपतिः स च शोक मुत्स सर्व ॥२ ३॥
चिर लिखित विशीर्ण वर्णमन्न मविदरपत्र समूह पुस्तक स्यम् ।
कुसलमतिरिहोद्दधार मैनोपनिषदिदं स महानिशीथ शास्त्रम् ॥२१९॥ ॥ ॥

वादिवेताल आचार्य श्री शान्तिसूरि

गुर्जरप्रान्त में अणहिलपुर पाटण नाम का धन धान्य से समृद्धि शाली एक प्रख्यात नगर था । वहाँ पर इन्द्र के समान कान्तिवाला महान पराक्रमी भीम नामप्रसिद्ध राजा राज्य करता था ।

चंद्रगच्छ रूप सीप के लिए मुक्ता फल समान थारापद्र नाम का प्रख्यात गच्छ था । उस गच्छ में विजय सिंहसूरि इति नामालङ्कृत प्रतिभाशाली आचार्य वर्तमान थे । वे सम्यक् चैत्य के समीप वर्ती स्थानों में रहते हुए भव्यकुमुदोपदेश व सदैव भव्य कमल को विकसित करते थे ।

पाटण के पश्चिम में उन्नतायु नाम का एक ग्राम था । वहाँ श्रीमालवंशीय धनदेव नामक सेठी रहता था । धनश्री नाम की आपके धर्मपत्नी व भीम नाम का एक पुत्र था । इधर आचार्य श्री उन्नतायु ग्राम में पधारे । भीम बालक के शुभ लक्षणों को देखकर आचार्यश्री ने अपने ज्ञान से यह, जान लिया कि—यह बालक यदि दीक्षित होगा तो निश्चय ही शासनोद्धारक होगा । बस, भगवान् आदिनाथ के चैत्य में चैत्यवंदन करके वे तत्काल धनदेव सेठ के यहां गये और भीम बालक की याचना की । माता पिता ने आचार्यश्री के वचनों का सन्मान करते हुए कहा—गुरुवर ! यदि भीम, आपके कार्य में सहायक हो तो गुरु देव ! मैं निश्चय ही कृत कृत्य हूं । इस प्रकार उनकी अनुज्ञा से सूरिजी ने बालक भीम को दीक्षित कर गुणानुरूप उसका श्रीशान्ति

नाम रख दिया। कुछ ही समय में मुनि शान्ति शास्त्रों का पारगामी होगया। आचार्यश्री ने भी अनुक्रम से उन्हें सूरिपद प्रदान कर आप अनशनाराधन में संलग्न होगये। श्रीशान्तिसूरि भी अणहिल्लपुर नरेश भीम राजा की राज-सभा में कवीन्द्र और वादि चक्री रूप में प्रसिद्ध हुए। अर्थात् राजा ने सूरिजी को दो पद्वियों एक ही साथ प्रदान कर दी।

सिद्धसारस्वत तरीके प्रसिद्ध, अवंतिका देशवासी धनपाल नाम का एक प्रख्यात कवि था। दो दिन उपरान्त के दहि में जीव वता कर श्री महेंद्रसूरि गुरु ने उसको प्रतिबोध दिया था। उसने तिलक मञ्जरी नामक कथा बनाकर पूज्यगुरुदेव से प्रार्थना की कि इस कथा का संशोधन कौन करेगा ? इस पर आचार्यश्री ने कहा—शान्तिसूरि तुम्हारी इस कथा का संशोधन करेगा। बस, धनपाल कवि तत्काल चलकर पाटण आया। उस समय सूरिजी उपाश्रय में सूरि मंत्र का स्मरण करते हुए ध्यान संलग्न बैठे थे। उनकी प्रतिक्षा में बाहिर बैठे हुए धनपाल कवीश्वर ने नूतन अभ्यासी शिष्य के सम्मुख एक अद्भुत श्लोक बोला—

खचरागमने खचरोहृष्टः खचरेणांकित पत्र धरः। खचरवरं खचरश्चरति खचरमुखि ! खचरं पश्य ॥

हे मुनि ! आप इसका अर्थ बतला सकते हो तो बतलाओ। इस पर नूतन मुनि ने विना किसी कष्ट के सुदर अर्थ कह दिया धन पाल एक दम आश्चर्य विमूढ़ होगया। पश्चात् धनपालने मेघ समान प्रखर ध्वनि से वहा पर सर्वज्ञ और जीव की स्थापना रूप उपन्यास रचा। इतने में गुरु महाराज सिंहासन पर विराजमान हुए और एक प्राथमिक पाठ के पढ़ने वाले शिष्य को कहा कि—हे वत्स ! स्तम्भ के आधार पर बैठकर तुमने क्या किया ? उस शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! कवि ने जो कुछ कहा, उसको मैंने धारण कर लिया है। गुरु ने कहा—तो सब कह कर सुना दे। आचार्यश्री के आदेश से उसने कवि कथित वचनों को कह सुनाये इस पर कवि के आश्चर्य का पारा वार नहीं रहा। कवि ने साक्षात् सरस्वती स्वरूप शिष्य को अपने साथ भेजने के लिये आचार्यश्री से प्रार्थना की पर वाचना स्खलना के भय से उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब आचार्यश्री को ही मालव देश में पधारने की विनती की। संघ एवं राजा की अनुमति से भीमराजा के प्रधानों सहित आचार्यश्री ने मालव देश की ओर पदार्पण किया। मार्ग में सरस्वती देवी ने प्रसन्नता पूर्वक आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर कहा—चतुरंग सभा समक्ष जब आप अपने हाथ ऊंचे करोगे तब दर्शन निष्णात सब वादी पराजित हो जावेंगे। आचार्यश्री ने भी देवी के वचनों को सहर्ष हृदयङ्गम कर लिये। आगे जाते हुए धारानगरी का राजा भोज सूरिजी के सम्मानार्थ पाच कोस सन्मुख आया। उसने यह घोषणा की कि हमारे वादियों को जो कोई जीतेगा उसको प्रत्येक के उपलक्ष में एक लक्ष द्रव्य इनाम में दिया जावेगा। मुझे गुजरात के श्वेताम्बर साधुओं के बल को देखना है।

पश्चात् वहां राजसभा में प्रत्येक दर्शन के पृथक् ८४ वादीन्द्रों को ऊंचा हाथ कर २ के आचार्यश्री ने जीत लिया। राजाने ८४ लक्षद्रव्य देकर तुरत सिद्ध सारस्वत कवि को बुलाया। उसके पश्चात् भी बहुत से वादी आये और पांच सौ वादियों की जीत में ५ करोड़ द्रव्य व्यय होने से राजा भयभीत हुआ। अब वाद विवाद के कार्य को बंद करके राजाने सूरिजी को वादीवैताल का बिरुद दिया। धनपाल कृत तिलक मञ्जरी कथा का संशोधन करके उसे शुद्ध किया।

इधर गुर्जरेश्वर का विशेषाग्रह होने से कवीश्वर सहित सूरिजी पुन पाटण में पधारे। वहा पर जिन-

देव सेठ के पुत्र पद्म को सर्प ने काट खाया था। सविशेष मन्त्रोपचार करने पर भी स्वस्थ न होने से लोगों ने मृतक की भावना कर एक खड्डे में उसे रख दिया। कुछ समय के पश्चात् अपने शिष्यों के द्वारा सूरिजी को मालूम होने पर वे स्वयं जिनदेव के घर गये और उसको बतलाने के लिये कहा। जिनदेव भी प्रसन्न हो गुरुदेव के साथ स्मशान में गया और उसे बाहिर निकाला। आचार्य ने अमृत तत्व का स्मरण कर उस पर हाथ फेरा जिससे वह जीवित होगया। इससे उन लोगों की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा और वे सब गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े। कृतज्ञता सूचक शब्दों से आचार्यदेव की स्तुति कर उनका बहुत आभार माना।

वादीवेताल शान्तिसूरि धुरंधर विद्वान्, महान् कवि चमत्कारी, विद्या से विभूषित जैनशासन की प्रभावना करनेवाले आचार्य थे। आपने अपने शिष्यों को स्व पर मत की वाचना देकर विद्वान् बनाये थे। वाद विवाद करने में वे सिद्धहस्त या पूर्ण कुशल थे। धर्म नाम के अहंपद् विद्वान् वादी को तो लीलामात्र में ही पराजय कर दिया जिससे वह तत्काल ही सूरिजी के चरण कमलों में नतमस्तक होगया।

एक समय आचार्यश्री के पास द्राविड़ देश का वादी आया पर वह वाद में पशु की भाँति निरुत्तर हुआ। एक दिन पक्षवादी सूरिजी के पास आया परन्तु वह भी सूरिजी के असाधारण पाण्डित्य के सम्मुख लज्जित हो वापिस चला गया इससे प्रभावित हो जन-समाज कहने लगा—जब तक शान्तिसूरि रूप स्वपर-दर्शन धारक सूर्य प्रकाशित है तब तक वादी रूप खद्योत निस्तेज ही रहेंगे।

एक समय शान्तिसूरिजी पाटण नगर में पधारे। वहाँ शासन देवी व्याख्यान के समय नृत्य करने को आई। सूरिजी ने उसके ऊपर बैठने के लिये वासक्षेप डाला। इस प्रकार के प्रतिदिन के क्रम से आचार्यश्री और देवी के वासक्षेप डालना, बैठने की एक प्रवृत्ति पड़ गई। किसी एक दिन सूरिजी वासक्षेप डालना भूल गये अतः पट्ट पर न बैठ कर देवी आकाश में ही स्थित रही। जब रात्रि को शयन करने का समय आया तो देवी उपालम्भ देने के लिये सूरिजी के स्थान पर आई। देवी के दिव्य रूप को देख कर सूरिजी ने अपने शिष्य से कहा है शुभे! क्या यहाँ कोई स्त्री आई है? शिष्य ने कहा—गुरुदेव! मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ इतने ही में देवी ने आकर कहा—प्रभो! आपके वासक्षेप के अभाव में मैं खड़ी रहने से मेरे पैरों में पीड़ा होगई है। आप जैसे महात्माओं को भी इतनी सी बात विस्मृत हो जाय यह आश्चर्य की बात है। अब आपका आयुष्य केवल ६ मास का ही रहा है अतः परलोक की आराधना और गच्छ की व्यवस्था शीघ्र कीजिये। इतना कह कर देवी अदृश्य होगई।

प्रातःकाल होते ही सूरिजी ने गच्छ एवं संघ की अनुमति लेकर अपने ३२—शिष्यों में से तीन मुनियों को आचार्य पद अर्पण किया जिनके नाम वीरसूरि, शालिभद्रसूरि और सर्वदेवसूरि हैं। ये तीनों आचार्य मानों ज्ञान, दर्शन, चारित्र की मूर्ति ही हैं। इनमें वीरसूरि की सन्तान अभी नहीं है पर दोनों सूरियों की सन्तान आद्यावधि विद्यमान है।

आचार्य वादीवेताल शान्तिसूरीश्वर यशा श्रावक के पुत्र सोढ़ के साथ चल कर रैवताचल आये और नेमिनाथ भगवान् के ध्यान में संलग्न हो २५ दिन का अनशन स्वीकार कर समाधि के साथ वि० सं० १०९६ ज्येष्ठ शुक्ला नौमि मंगलवार कृत्तिका नक्षत्र में आचार्य वादीवेताल शान्तिसूरि स्वर्ग के अतिथि हुए। आचार्य शान्तिसूरि जैनशासन में अनगिनत सेवाओं की गणना में महान् प्रभाविक जैन धर्म का उद्योत करने वाले वादीवेतालविरुद धारक महा प्रभाविक आचार्य हुए। ●

आचार्यश्री ने वादियों को पराजय—

आचार्य सिद्धर्षि सूरि

मरुधर की मनोहर भूमि पर श्रीमालनगर जिनचैत्यों से सुशोभित था। ऐतिहासिक क्षेत्रों में इस नगर का आसन सर्वोपरि है। यहां पर धर्मपाल नामक राजा राज्य करता था। चार बुद्धि का निधान रूप राज्य नीति परायण सुप्रभ नाम का राजा के प्रधान मन्त्री था जो राज तन्त्र चलाने में सर्व प्रकार से समर्थ था। स्कंध के समान सर्वभार को वहन करने वाले उस मंत्री के दत्त और शुभंकर नाम के दो पुत्र थे। इन में दत्त कोट्याधीश था और उसके माघ नामक पुत्र था। वह प्रसिद्ध पण्डित और विद्वद्जनों की सभा को रंजन करने वाला था। राजा भोज की ओर से उसका अच्छा सत्कार हुआ करता था। दूसरे शुभकर श्रेष्ठी के लक्ष्मी नाम की प्रिया थी। इनकी उदारता और दानशीलता की प्रशंसा स्वयं इन्द्र महाराज अपने मुंह से करते थे। इच्छित फल को देने में कल्पवृक्ष के समान इनके एक पुत्र था जिसका नाम सिद्ध था। जब सिद्ध कुमार ने युवावस्था में पदार्पण किया तो उसके माता पिता ने उसकी शादी एक सुशीला, सदाचारिणी, सर्वकला कोविदा, सर्वाङ्ग सुंदरी श्रेष्ठि पुत्री के साथ कर दी। कर्मों की विचित्र गति के कारण सिद्ध कुमार के घर में अपार लक्ष्मी के होने पर भी कुसंगति के फल-स्वरूप वह जुआरी होगया। यहां तक कि केवल क्षुधाशांति की गर्ज से ही वह घर का मुंह देखता था। रात्रि की परवाह किये बिना आधी रात तक भी कभी घर आने का नाम नहीं लेता था। जब आता भी था तो वैरागी योगी की भांति रहता था इससे सिद्ध की स्त्री महान् दुखी होगई। बिना रोग के ही उसका शरीर कृष होने लगा। एक दिन सासु ने कहा बहू! क्या तेरे शरीर में कोई गुप्त रोग है? जिसके विषय में लज्जा के मारे अभी तक तू कुछ भी नहीं कह सकी है। तू स्पष्ट शब्दों में तेरे दिल में जो कुछ भी दर्द हो कह दे, मैं उसका उचित उपाय करूंगी। सासुजी के अत्याग्रह करने पर उसने कहा—पूज्य सासुजी! मुझे और तो कुछ भी दुख नहीं है पर आपके पुत्र रात्रिमें बहुत देर करके आते हैं और आने पर भी योगी की तरह बिना अपराध ही मेरी उपेक्षा करते रहते हैं अत: मारे चिन्ता एव उद्विग्नता से मेरी यह हालत हो रही है। इस पर सासु ने कहा—बहु! तू इस बात का तनिक भी रंज मत कर। मैं पुत्र को अच्छी तरह से समझादूंगी। आज तू निश्चय होकर सो जा। उसके आने पर द्वार मैं खोल दूंगी। बस, सासु के वचनों के आधार पर बहु तो सो गई और माता जागृत रही। जब बहुत रात्रि व्यतीत हो गई तो सिद्ध ने आकर किवाड़ खट खटाये और किवाड़ खोलने के लिये आवाज दी। इस पर माता ने कृत्रिम कोप बतला कर कहा—बेटा! इतनी देरी से आता है तो क्या तेरे लिये सारी रात्रि भी जागृत ही रहा करें। इस समय जहाँ द्वार खुला हुआ हो वहां चले जाओ, यहां द्वार नहीं खोला जायगा। माता के सरल किन्तु व्यङ्ग पूर्ण वचनों को सुन कर सिद्ध चला गया। इतनी रात्रि के चले जाने पर सिवाय योगी

* पथि सञ्चरतोतेषां निशि सक्रस्य भारती आदेश प्रददे वाचा प्रसादातिशय स्पृशा ४२
स्वस्वदर्शन निष्णाता ऊर्ध्वहस्तेरवयाकृते। चतुरङ्ग सभाध्यक्ष विद्र विष्यन्ति वादिन। ४३
सकोशंयोनन धारानगरीव समागत्। तस्य तत्र गतस्य श्रीभोजो हर्षेण सम्मुख। ४४
पृष्टैक वादि विजये पणंसंविदधेतदा। मदीया वादिन येन जय्य इत्यमि सान्धिपता। ४५
छत्रलक्ष प्रदास्यामि विजये वादिन प्रति। गूर्जरस्य यलं वीक्ष्यं श्वेतभिक्षोर्मया ध्रुवम्। ४६
शान्ति नम्ना प्रसिद्धोऽस्ति वेताळो वादिदेनाँ पुनः। ततोवादं निपेध्यासौ सम्मान्यत महीयते। ५२
सुव मुस्तयतस्मिन्न दर्शिते गुरवोऽमृतम्। तस्य स्मृत्वाऽस्पृदान् देहंदष्ट प्रचासौ समुत्थित। ६६

यतियों के भवन्त द्वार कौन खुला रखते ? बस, सिद्ध भी एक जैनसाधुओं के उपाश्रय के द्वार को खुला हुआ देख कर उसके अन्दर गया तो ध्यान में संलग्न बैठे हुए एक आचार्य को देखा। आचार्यश्री की दृष्टि भी सिद्ध के ऊपर पड़ी। उन्होंने सिद्ध को उपदेश देना प्रारम्भ किया — महानुभाव ! संसार असार है, लक्ष्मी चञ्चल है, कौटुम्बिक सब स्वार्थ मय सम्बन्ध हैं, शरीर अनित्य है और आयुष्य अस्थिर है अतः मनुष्य भव योग्य प्राप्त उत्तम सामग्री का सदुपयोग कर आत्म-कल्याण करना ही बुद्धिमत्ता है। सूरिजी के उपदेश का सिद्ध की अन्तरात्मा पर इस कदर प्रभाव डाला कि उसकी इच्छा संसार का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने की होगई, इस पर गर्गर्षि ने कहा हम जैन श्रमण हैं। बिना माता पिता की आज्ञा दीक्षा दे नहीं सकते हैं। क्योंकि—इससे हमारा वीतरागत्व दूषित हो हमें अदत्ता दान दोष का भागी होना पड़ता है।

इधर प्रभात में सिद्ध के नहीं आने से उसके घर में बड़ी हलचल मच गई। सेठजी शुभंकर स्वयं पुत्र की खोज में समस्त नगर को खोज डाला। इतने में उपशम अमृत की वर्षाराशि में ओत-प्रोत विचित्र स्थिति युक्त पुत्र को साधुओं के उपाश्रय से आते हुए देखकर पिता ने कहा—पुत्र साधुओं की सत्संग से मुझे परम संतोष है पर व्यसनी पुरुषों की दुःसंगति तो केतुग्रह के समान निमन्त्रित ही दुःखोत्पादक थी। वत्स ! अब घर चलो, तुम्हारी माता उत्कण्ठित हो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारे बिना वह हर तरह से सन्तापित है।

सिद्ध ने विनय पूर्वक कहा—तात ! मेरा हृदय गुरु चरण कमल में भ्रमरवत् लीन हो गया है, अब किसी भी प्रकार की अन्य अभिलाषा न कर जैन दीक्षा स्वीकार करने की मेरी इच्छा है अतः आप सहर्ष आज्ञा प्रदान करें। जहां द्वार खुले हों वहां चला जा' माता के इन वचनों का पालन भी तभी हो सकता है। पिताजी ! इन वचनों के सत्य सिद्ध करूंगा तभी मेरी अवश्य कुलीनता गिनी जायगी।

पुत्र के वचनों को सुन शुभंकर असमंजस में पड़ गया। वह बोला —बेटा ! अपने अपार धन राशि है। दान पुण्य के कार्यों में उसका सदुपयोग कर अपने जीवन को गृहस्थावस्था में रह कर ही सफल बना। तेरी माता के तू इकलौती संतान है और तेरी बहू भी संतान रहित है अतः इस सब का तू ही एक आधार है। वत्स ! मेरे वचनों की अवगणना मत कर !

सिद्ध बोला—पिताजी ! इस लोभ के वचनों से मेरे ऊपर असर होने वाला नहीं है। मेरा मन तो ब्रह्मचर्य में लीन हो गया है अतः गुरु के पैरों में पड़ कर ऐसा कहो कि—गुरुवर्य ! मेरे पुत्र को दीक्षा दो। इसी में मुझे संतोष एवं आनन्द हो।

सिद्धपुत्र का अत्याग्रह देख शुभंकर सेठ को उसी प्रकार करना पड़ा। पवित्र मुहूर्त में गुरु महाराजने उसको दीक्षा दे दी। पश्चात् मास क्षमणादि तपस्या करवा कर क्रम क्रम से पञ्च महाव्रत के आरोपण के समय में गुरु महाराज ने अपनी पूर्व गच्छ परम्परा सुनाते हुए कहा—वत्स ! सुन—पहिले श्री वज्र स्वामी थे। उनके शिष्य श्रीवज्रसेन हुए। वज्रसेनसूरि के नागेन्द्र निवृत्ति चंद्र और विद्याधर ये चार शिष्य हुए। निवृत्ति गच्छ में मुनि निवास सूराचार्य हुए। उन्हीं का शिष्य गर्गर्षि मैं तेरा दीक्षा गुरु हूँ। तुझे सिर पर अठारह हजार शीलांग धारण करने का है, कारण चारित्र की उज्वलता का यही फल है।

गुरु की शिक्षा को स्वीकार कर सिद्धर्षि ने अध्ययन प्रारम्भ किया। और सर्वशास्त्र साहित्य का अभ्यास कर उन्होंने उपदेशमाला की बालावबोधिनी वृत्ति बनाई। इस पर कुवलयमाला नामक कथा के रचयिता इनके गुरुभाई दाक्षिण्य-चन्द्रसूरि ने समरादित्य कथा की विशेषता बताते हुए कहा कि—तुम्हारे जैसे इधर उधर के ग्रंथों

से लेकर के लिख देने से कोई लेखक नहीं गिना जाता है। लेखक तो समरादित्य कथाकार जैसे होने चाहिये।

इस पर सिद्धर्षि ने विद्वानों के मस्तक को कम्पाने वाली उपमितिभवप्रपञ्च नामक स्वतंत्र महाकथा की रचना की जिसे प्रसन्न हो संघ ने व्याख्यान योग्य कथा होने से व्याख्यानकार विरुद्ध दिया। स्वयं दाक्षिण्यचन्द्रसूरि भी मुग्ध हो गये।

अब तो इनकी इच्छा और भी अधिक अभ्यास करने की हुई। उन्होंने विचार किया कि मैंने स्व-पर अनेक मत के तर्क ग्रंथों का अभ्यास कर लिया है पर बौद्ध ग्रंथों के लिये तो उनके देश में गये विना अभ्यास हो नहीं सकता है अतः आतुर बने हुए सिद्धर्षि ने गुरु से निवेदन किया—गुरुदेव! आज्ञा दीजिये, मैं बौद्ध शास्त्रों का अभ्यास करने कोजाऊं। श्रुतज्ञान व निमित्त को देख कर गुरु ने कहा—वत्स! तेरा उत्साह स्तुत्य है पर उनके हेत्वाभासों से तेरा चित्त कदाचित भ्रमित् हो जाय तो उपार्जित किये हुए पुण्य को ही खो बैठेगा। यह बात मैं मेरे निमित्त ज्ञान से जानता हूँ अतः तू तेरे विचारों को बदल दे। इस पर भी तेरी जाने की इच्छा हो और वहां हेत्वाभासों से प्रेरित हो चलित हो जाय तो भी एक बार मेरे पास आना और व्रत के अगरूप रजोहरण वगैरह मुझे दे देना।

सिद्धर्षि ने कहा—गुरुदेव! मैं कृतघ्न कभी नहीं होऊंगा फिर भी धतूरे के भ्रम से मन व्यक्षिप्त हो जायगा तो भी आपके आदेश का तो अवश्य ही पालन करूंगा। ऐसा कह कर गुरु को प्रणाम किया और अव्यक्त वेष में महाबोध नगर को चला गया। वहां पर सिद्धर्षि ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से सब को चकित कर दिया। बौद्धाचार्यों ने अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बहुत प्रयत्न किया पर सब निष्फल हुआ। अन्त में वचन प्रपञ्च द्वारा मनोभावों से उन्हें फुसलाने का प्रयत्न किया और अतिसंसर्ग-परिचय से वे जैन आचार विचार में शिथिल हो गये। कालान्तर में सिद्धर्षि ने बौद्ध दीक्षा भी ग्रहण कर ली। बस! सिद्धर्षि की सविशेष योग्यता से आकर्षित हो उनको गुरु पद पर बौद्ध लोग स्थापित करने लगे तो सिद्धर्षि ने कहा—आते हुए मैंने प्रतिज्ञा ली थी इससे मुझे मेरे पूर्व गुरु के दर्शन, प्रतिज्ञा निर्वाहार्थ अवश्य करना है। बौद्धों ने भी उनको उनके पूर्व गुरु के दर्शनार्थ भेज दिया। क्रमशः उपाश्रय में गर्गर्षि को सिंहासन पर बैठे हुए देख सिद्धर्षि ने कहा—आप उर्ध्वस्थान पर शोभित होते हो। ऐसा कह कर मौन होगये।

गुरु ने भावी समझ कर सिद्धर्षि को आसन देते हुए कहा—हम चैत्यवदन करके आते हैं जितने तुम जरा चैत्यवदन सूत्र की ललितविस्तार वृत्ति देखो।

उक्तग्रंथ को देख कर महामति सिद्धर्षि को अपने किये अकार्य पर रह२ कर पश्चाताप होने लगा। वह विचार ने लगा कि हरिभद्रसूरि ने मुझ पातकी को तारने के लिये ही इस ग्रंथ का निर्माण किया है। धन्य है, मेरे गुरु को जिसने मुझे उक्त प्रतिज्ञा देकर स्खलित होते हुए की रक्षा की है। इस प्रकार गुरुदेव की स्तुति और अपनी आत्मा की गर्हणा करते हुए पुस्तक वांचन में संलग्न थे कि गुरु ने निस्सीहि शब्द से उपाश्रय में प्रवेस किया। सिद्धर्षि ने गुरु चरण में मस्तक नमा कर अपराध के लिये बारम्बार क्षमा मागी। प्रायश्चित के लिये आग्रह किया व गुरु के उचित वचनों को न मानने का पश्चाताप किया।

गुरुने, सिद्धर्षि को सान्त्वना प्रदान कर सन्तुष्ट किया और प्रायश्चित देकर शुद्ध किया। कालान्तर में गच्छ का भार सिद्धर्षि को सौंप कर गर्गर्षि आत्म-निवृत्ति के परम मार्ग में संलग्न होगये। व्याख्यान कर सिद्धर्षि ने भी अपने पाण्डित्य से जैन शासन की खूब प्रभावना की। आप भी चैत्यवासी ही थे

कर कहा—पुत्र ! तू महेन्द्रसूरि के पास दीक्षाले तब ही मैं चिन्ता मुक्त हो सकता हूँ । पिता के वचन सुन कर धनपाल के क्रोध का पारावार नहीं रहा । उसने कहा—पिताजी ! शूद्रो से निन्दित प्रतिज्ञा को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूँ । वेद वेदांग को जानने वाला ब्राह्मण नास्तिक जैन धर्म को स्वीकार करने मात्र से ही अपने पूर्वजों सहित नरक में गिर कर दुःखी होजाता है अतः मैं किसी भी हालत में आपका कहना स्वीकार नहीं कर सकता हूँ फिर आप अपनी इच्छा हो सो करें, इतना कह कर धनपाल चला गया ।

थोड़ी देर के बाद शोभन आया । उसने पिताजी को चिन्तातुर देख कर पिताश्री को चिन्ता का कारण पूछा तो सर्वदेवविप्र ने उसको भी सर्व हाल सुना दिया । अपने दीक्षा के समाचारों को सुन कर शोभान को बहुत खुशी हुई । उसने कहा—पिताजी ! मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य्य करता हूं कारण, एक तो पवित्र जैनधर्म जिससे की आराधना से ही आत्म-कल्याण है और दूसरा पिताश्री का सहर्ष आदेश, भला इससे बढ़ कर और क्या सुअवसर हाथ लग सकता है ?

पुत्र के वचनों को सुन कर सर्वदेव को बड़ा हर्ष हुआ । वह अपने कार्य से निवृत्त हो शोभन को साथ लेकर आचार्यश्री के पास गया । और शोभन को सामने रख कर सूरिजी से प्रार्थना की—दयानिधान ! मेरे दो पुत्रों में से यह शोभन हाजिर है । इसको दीक्षा देकर मुझे ऋण से उऋण करें । सूरिजी ने शोभन को परीक्षा कर उसी समय स्थिर लग्न में उसे दीक्षा दे दी । बाद में धनपाल के भय से वे वहां से विहार कर क्रमशः पाटण पहुँच गये ।

जब धनपाल को खबर हुई कि पिताजी ने शाभन को जैनदीक्षा दिलवा दी है तो उसके कोप का पारावार नहीं रहा । उसने अपने पिताजी को यहा तक कह दिया कि पिताजी ने द्रव्य के लोभ से ही अपने पुत्र को नास्तिक एवं शूद्र जैनों को अर्पण कर दिया है । पश्चात् धनपाल ने सर्वदेव को पृथक् भी कर दिया पर उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ । उसने राजा भोज को उलट पुलट समझा कर मालवा एवं धारानगरी में जैनसाधुओं के आवागमन को ही बद करवा दिया ।

इधर गुरु कृपा से मुनि शोभन ज्ञानभ्यास कर धुरंधर विद्वान बन गये । कालान्तर में मालव प्रान्तीय संघ पाटण में आया और उसने महेन्द्रसूरि से प्रार्थना की—भगवन् ! मालवाप्रान्त से जैनश्रमणों के निर्वासित हो जाने के कारण पाखण्डियों का जोर बहुत ही बढ़ गया है अतः कृपा कर या तो आप स्वयं पधारे या विद्वान् मुनि को हमारे यहां भेजने की कृपा करें जिससे क्षेत्र पुन जैनधर्ममय होजाय । सूरिजीने मालवसंघ का कहना ठीक समझ कर अपने समीपस्थ मुनियों की ओर देखा तब मुनि शोभन ने कहा गुरुदेव ! मालवाप्रान्त में धर्म प्रचारार्थ जाने का आदेश मुझे मिलना चाहिये मैं धारा नगरी जाकर मेरे ज्येष्ठ भ्राता धनपाल को प्रतिबोध करूंगा । शोभन के उत्साह पूर्ण वचनों को सुन कर सूरिजी ने कई गीतार्थ मुनियोंके साथ मुनि शोभन को मालव प्रान्त की ओर विहार करवा दिया । क्रमश मुनि शोभन चलकर धारा नगरी में आगये ।

शोभन मुनि ने अपने दो मुनियों को धनपाल के यहां भिक्षा के लिये भेजे । जिस समय मुनि, भिक्षार्थ धनपाल के घर गये उस समय धनपाल स्नान करने को बैठा था । साधुओंने धर्मलाभ दिया तो धनपाल की स्त्री ने कहा यहां क्या है ? इस पर धनपाल ने कहा-अतिथि अपने घर से खाली हाथ जावें यहठीक नहीं अत. जो कुछ भी हो मुनियों की सवा में हाजिर कर दो । धनपाल की स्त्री ने उन्हें दुग्ध अन्नदिया जिसको मुनियों ने ग्रहण कर लिया । बाद में दही के लिये कहा तो मुनियाने पूछा-दही कितने दिनों का है ? धनपाल की स्त्री

ने कहा—क्या दही में भी जीव होते हैं ? तुम लोग तो दया का ढोंग करते हो। ऐसा हो तो ऐसी बात कीजिये चले जाओ। इस पर धनपाल ने कहा यदि ऐसा ही हो तो आप प्रत्यक्ष में बतलाइये। मुनियों ने उसी दही में अलक्तो डलवाया कि सब जीव ऊपर आ गये। कई जीव तो ऐसे दृष्टिगोचर भी होने लगे अतः इसको देख कर धनपाल के दिल ने पलटा खाया। वह सोचने लगा कि जैनधर्म के ज्ञानियों का ज्ञान बहुत सूक्ष्म एवं विशाल है। दही जैसे पदार्थ में सूक्ष्म जीवों की दया निमित्त भी पहिले से ही नियम बना रखा कि तीन दिन उपरान्त का दही अभक्ष्य है; कितनी दूर दर्शिता है ? कहां दयामय पवित्र जैनधर्म और कहां पशुहिंसामय वैदिक धर्म।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् धनपालने मुनियों से पूछा-आप कहां से आये और आपके गुरु कौन हैं ? मुनियों ने कहा-हम गुर्जर प्रान्त से आये हैं और आचार्य महेन्द्र सूरि के शिष्य धुरंधर विद्वान् शोभनमुनि हमारे गुरु हैं। हम चैत्य के पास ही ठहरे हुए हैं, इतना कह कर मुनि चले गये भोजनादि से निवृत्त हो धनपाल शोभन मुनि के यहां गया। अपने ज्येष्ठ भ्राता को आता देख शोभनमुनिने सामने जाकर उनका सत्कार किया और अपने आसन पर उनको बैठाया। धनपाल ने कहा-आप धन्य हैं कि पवित्र जैनधर्म के आश्रय से आत्म कल्याण कर रहे हैं। मैंने तो राजाभोज द्वारा मालवा प्रान्त में जैनश्रमणों का विहार बंद करवा कर महान् अन्तराय कर्मोपार्जन किया है। न मालूम मैं इस पाप से कैसे मुक्त होऊंगा ? पिताजी सर्वदेव और आप ने हमारे कुल रूप समुद्र में उत्पन्न हो कर हमारे कुल की कीर्ति को उज्वल बनाई है। न अपने कुल में केवल मैं ही ऐसा पापी जन्मा कि पशुहिंसा रूप अधर्म में भी धर्म मान कर सत्यधर्म की अवगणना की है। हे महा भाग्यवान् मुनि ! अब आप मुझे ऐसा मार्ग बतलाइये कि मैं इस पाप से मुक्त हो कुछ आत्म-कल्याण कर सकूं।

शोभन मुनिने धनपाल को अहिंसाधर्म तथा देव गुरु धर्म के विषय में उपदेश दिया जिसका धनपाल की आत्मा पर गहरा प्रभाव पड़ा। बाद में भगवान् महावीर के चैत्य में जाकर धनपाल ने मनोहर शब्दों से भगवान् की स्तुति की तत्पश्चात् धनपाल अपने मकान पर गया।

एक समय राजाभोज के साथ धनपाल महाकाल महादेव के मन्दिर में गया। महादेव को देखते ही वह नमस्कार नहीं करता हुआ एक गवाक्ष में जाकर बैठ गया। राजा भोज ने बुलाया तो वह द्वार के पास बैठ गया। राजा ने सविस्मय इसका कारण पूछा तो धनपाल ने कहा कि—महादेव के पास पार्वतीजी बैठी है अतः शर्म के मारे मैं वहां जा नहीं सका। जहां दम्पति एकान्त में बैठे हों वहां तीसरे का जाना अच्छा नहीं पर लज्जा ही का कार्य है।

राजा भोज—तो इतने दिन शंकर की पूजा करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई ?

धनपाल—अज्ञानभाव के कारण लज्जा ज्ञात नहीं हुई। यदि आप अपनी रमणियों के साथ एकान्त में बैठे हों तो क्या हमारे जैसों से वहां जाया जा सकता है ? दूसरा अन्य देवों का चरण मस्तक वगैरह पूजा जाता है तब शिवजी का लिंग अतः दोनों तरह से संकोच की ही बात है।

एक भृंगी (शंकर के सेवक) की कृश मूर्ति देखकर राजा ने धनपाल से पूछा कि यह भृंगी की मूर्ति दुर्बल क्यों है ?

धनपाल ने सोचा कि यह सत्य कहने का समय है और ऐसे समय में मुझे सत्य कहना ही चाहिये अतः धनपाल ने कहा—

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा शास्त्रस्य किं भस्मना ?
भस्माप्यस्य किमङ्गना यदि च सा कामं परि द्वेष्टि किम् !
इत्यन्योन्य निरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिन ? भृंगी शुष्कशिरावनद्धमधिकं धत्तेऽस्थि शेषं वपुः?

अर्थात् जहां पर दिशारूप वस्त्र हैं वहां धनुष की क्या आवश्यकता ? और सशस्त्रावस्था हो तो भस्म की क्या आवश्यकता ? यदि भस्म शरीर के लगावें तो स्त्री की क्या जरूरत ? यदि रमणी है तो काम पर द्वेष क्यों ? ऐसे परस्पर विरुद्ध चिन्हों से दुःखी होने के कारण इसका शरीर कृष हो गया है।

वहां से निकल कर बाहिर आये तो व्यास याज्ञवल्क्य स्मृति उच्चस्वर से वाच रहा था। राजा स्मृति के सुनने को बैठ गया पर धनपाल को विमुख देख राजा ने कहा-धनपाल ! क्या तेरे दिल में स्मृति के प्रति आदर नहीं है। इस पर धनपाल ने कहा-मैं लक्षण रहित अर्थ को समझ नहीं सकता। भला, साक्षात् विरुद्ध बातें सुनने को कौन तैयार है ? मैंने तो सुना है कि स्मृतियों में विष्टा खाने वाली गायका स्पर्श करने पर पाप छूट जाता है। सज्ञा हीन वृक्ष वदनीय है। बकरे का वध करने से स्वर्ग मिलता है। ब्राह्मणों को दान देने से पूर्वजों को मिलता है, कपटी पुरुष को आप्त देव मानना, अग्नि में होम करने से देवताओं की प्रसन्नता स्वीकार करना इत्यादि श्रुतिस्मृतियों में बतलाई असार लीला को सुनने के लिये कौन बुद्धिमान तैय्यार है ?

एक समय यज्ञ के लिये एकत्रित किये गये पशु पुकार कर रहे थे। उक्त पुकार को राजा भोज ने सुना और धनपाल को पूछा कि ये पशु क्यों पुकार करते हैं ?

प० धनपाल ने कहा—मैं पशुओं की भाषा में समझता हूँ। पशु कह रहे हैं कि सर्व गुण सम्पन्न ब्रह्मा बकरों को कैसे मार सकता है ? दूसरा वे कहते हैं कि हम को स्वर्ग के सुखों की इच्छा नहीं है और न हम ने प्रार्थना ही की। हम तो तृण भक्षण में ही संतुष्ट हैं यदि स्वर्ग का ही इरादा है तो अपने माता पिता पुत्र स्त्री का बलिदान कर स्वर्ग क्यों नहीं भेजतें ?

धनपाल के विपरीत वचनों को सुनकर राज कोपायमान हुआ और धनपाल को मारडालने का विचार किया। पश्चात् राज भवन की ओर आते हुए मार्ग में एक ओर एक बालिका के साथ वृद्धस्त्री को खड़ी देखी। बालिका के कहने पर उसने नव बार शिर धुनाया यह देख राजा ने धनपाल से पूछा, इसपर धनपाल ने कहा—हे नरेश ! आप को देख बालिका वृद्ध से पूछती है कि क्या ये-मुरारि, कामदेव, शंकर कुबेर, विद्याधर चन्द्र, सुरपति या विधाता हैं ? उक्त नव प्रश्नों के लिये नव बार शिर धुना कर वृद्धा कहती है कि नहीं, ये तो राजा भोज हैं। धनपाल के इस चातुर्य से राजा का दिल बदल गया और उसने प० धनपाल को नहीं मारने का निश्चय कर लिया।

एक समय राजा भोज शिकार के लिये जाते हुए प० धनपाल को साथ में ले गये। अन्य शिकारियों ने एक बाण सूअर के ऐसा मारा कि वह आक्रन्दन करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। उस समय अन्य पण्डितों ने राजा को कहा—स्वामी ! स्वयं सुभट हैं अथवा उनके पास में ऐसे सुभट न हो। इतने ही में राजा की

दृष्टि धनपाल पर पड़ी और कहा कि तुमको भी कुछ कहना है ? इस पर धनपाल ने कहा —

रसातलं यातुयदत्र पौरुषं कुनीतिरेषा शरणो ह्यदोषवान् ।
निहन्यते यद्बलिनापि दुर्बलो हहा ! महाकष्टमराजकं जगत् ॥

ऐसा पौरुष पाताल में जावो । ऐसा कौन सा न्याय है कि अशरण निर्बल प्राणियों को बिना अपराध ही मार डालना । मेरी दृष्टि से तो कोई न्यायी राजा ही नहीं है ।

एक समय नवरात्रि में चण्डिदेव की पूजा के लिये सौ बकरों को एक ही साथ में राजा ने मरवा डाला । बाद में यज्ञ वाले लोगों ने राजा की प्रशंसा सुनी पर पं० धनपाल ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि ऐसे अधम्य कार्य करने वाले अपने लिये नरक के द्वार खुला करते हैं और प्रशंसा करने वाले भी उन्हीं के साथ में ।

एक समय महादेव के मन्दिर में पवित्रारोह का महोत्सव चलता था । वहाँ सब के साथ राजा भी आया । राजा ने कहा—धनपाल ! तुम्हारे देव का कभी महोत्सव न होने से वे अपवित्र ही मालूम होते हैं ।

धनपाल ने कहा—पवित्र देव तो अपवित्र को पवित्र बना देता है । फिर पवित्र देव के लिये पवित्रता का महोत्सव कैसे ? आपके देव अपवित्र हैं अतः पवित्रता का महोत्सव करके उनको पवित्र बनाया जा रहा है । लिंग में अपवित्रता होने के कारण ही उनके लिंग की लोग पूजा करते हैं ।

हास्य वदन, रति युक्त, व ताली बजाने के लिये उद्यत हस्त कामदेव की मूर्ति देख राजा ने पं० धनपाल को पूछा कि यह कामदेव क्या कह रहा है ?

सिद्ध सारस्वत पण्डित धनपाल ने कहा—

स एष भुवन त्रय प्रथित संयमः शंकरो, बिभर्ति वपुषाऽधुना विरह कातराः कामिनीम् ।
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं करेण परिताडयन् जयति जातहासः स्मरः ॥

शंकर का संयम तीन भुवन में प्रसिद्ध है पर वे विरह से कातर बन कर स्त्री को साथ में रखते हैं । इससे हास्य संयुक्त प्रिया के साथ में ताली देते हुए कामदेव जयवंत रहे ।

एक समय राजा भोज ने पूछा कि ये चार दरवाजे हैं बतला मैं इनमें से किस द्वार से निकलूंगा ? धनपाल ने इसका उत्तर एक कागज पर लिख कर बन्द लिफाफा राजा को दे दिया । बाद में जब राजा को जाने का काम पड़ा तो वह ऊपर की छप्पर को तोड़ कर निकल गया दोपहर को जब पं० धनपाल वाला और कागज को खोल कर पढ़ा तो यही लिखा हुआ निकला कि राजा छप्पर तोड़कर जावेगा । इससे राजा को विश्वास हो गया कि पं० धनपाल अतिशय ज्ञानी है ।

इस प्रकार पं० धनपाल ने राजा भोज के प्रश्नों का यथार्थ उत्तर दिया तथा कई समस्याएं पूर्ण की । एक दिन राजा भोज ने कहा कि तुम्हारा जैनधर्म तो सत्य पर अवलम्बित है पर जैन साधु जलस्नान से परांगमुख क्यों रहते हैं ? पं० ने कहा कि जल स्नानों से अनेक प्राणियों को त्रास पहुँचता है पर उनके सूख जाने पर अनन्त जीवों की हानि होती है, इत्यादि । पुनः राजा ने कहा—जैनधर्म अच्छा है पर व्यव हार से कई लोगों को रुचि कर नहीं होता । इस पर धनपाल ने कहा—दूध अच्छा है पर संग्रहणी के रोग

वाले को नहीं रुचता है तो इसमें घृत का क्या दोष है ? इत्यादि वाद विनोद होता रहा।

अब पं० धनपाल ने अपना द्रव्य सात क्षेत्र में लगना प्रारम्भ कर दिया। इनमें मुख्य क्षेत्र जिन चैत्य होने से उसने भगवान् आदिनाथ का विशाल मन्दिर बनाकर महेन्द्रसूरि से प्रतिष्ठा करवाई और 'जयजतुकाय' नामक पांच सौ गाथा बना कर प्रभु की स्तुति की।

एक समय राजा भोज ने प० धनपाल से कहा कि आप मुझे कोई जैनकथा सुनावें। इस पर नव-रस संयुक्त तिलक मञ्जरी नामक बारह हजार श्लोक वाला अपूर्व ग्रन्थ बनाकर उसको वादिवेताल शान्ति सूरि से सशोधन करवाया और राजा भोज को सुनाया। राजा ने भी कथा के नीचे स्वर्ण थाल रख कर कथा को आनन्द पूर्वक सुना और धनपाल को कहा कि इस कथा में कुछ रद्दो बदल करो। जैसे मङ्गलाचरण में आदिनाथ के बदले शिव का नाम, अयोध्या के स्थान पर धारा नगरी, शक्रावतार चैत्य की जगह महा-काल, भगवान् के स्थान शकर और इन्द्र के स्थान मेरा नाम (भोज) रख दो तो तुम्हारी कथा या चन्द्रदिवाकर अमर बन जायगी।

प० धनपाल ने कहा—हे राजन्! जैसे ब्राह्मण के हाथ में पय पात्र है और उसमें दारू की एक बूद पड़ने से वह पय पात्र अपवित्र हो जाता है इसी प्रकार आपके कथनानुसार नाम बदलने से ग्राम नगर देश और राजा को हानि पहुँचती है—पुण्य क्षय हो जाता है।

पण्डित के वचन सुन कर राजा को बहुत क्रोध आया। उसने कोपावेश में पुस्तक को लेकर अग्नि में डाल दी जिससे वह भस्म हो गई। इससे धनपाल को भी क्रोध आया वह राजा को उपालम्भ देकर अपने घर पर चला आया। देव पूजन व भोजन वगैरह की चिन्ता को छोड़ कर वह एक खाट पर पड़ गया। इतने में उनकी पुत्री ने आकर चिन्ता का कारण पूछा तो पण्डितजी ने सब हाल कह सुनाया। इस पर पंडित की कन्या ने कहा—इसका आप फिक्र क्यों करते हैं ? आपकी कथा मेरे कण्ठस्थ है। आप देव पूजन व भोजन कर लीजिये मैं आपको कथा सुना दूगी। कवीश्वर ने सब कार्यो से निवृत्त हो पुत्री से कथा सुनी पर कोई शब्द उसको याद नहीं थे अत. उनके स्थान में नये शब्द लगा कर कवीश्वर ने उस कथा को जैसे तैसे पूर्ण की

धनपाल के न आने से राजाभोज ने उसकी खबर करवाई। अन्त में ज्ञात हुआ कि धनपाल, मेरे अन्याय के कारण चला गया है। इस पर राजा को अपने कार्य का बहुत ही पश्चाताप हुआ पर अब क्या किया जा सकता था ?

भरोंच नगर में सूरदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके सावत्री नाम की स्त्री थी तथा धर्म और शर्म नामके दो पुत्र थे और एक पुत्री भी थी। एक समय सूरदेव ने धर्म पुत्र को कहा कि कुछ आजीविका का साधन कर। इस पर रुष्ट हो धर्म, घर से चला गया। क्रमश वह जगले में पहुँचा वहां सरस्वती देवी ने प्रसन्न होकर उसको वरदान दिया। पश्चात् कई अर्से से वह धारानगरी में आया और राजा को कहा कि—मैंने बहुत से वादियों को पराजित किया है अत. आपकी सभा में भी कोई पण्डित हो तो मेरे सामने लावे मैं उसे वाद में पराजित करूंगा।

राजा भोज की सभा में एक भी ऐसा पण्डित नहीं था जो धर्म पण्डित के साथ वाद करने को तैयार हो। उस समय राजा भोज को धनपाल याद आया। राजा भोजने अपने प्रधान पुरुषों को कवीश्वर के पास में भेजा और नम्रता पूर्वक कहलाया कि मेरे अपराध को माफ करो राजा भोज और धारा के

पण्डितों की सभा की इज्जत रखने के लिये आप शीघ्र पधारें इत्यादि। धनपाल ने राजा का इस प्रकार का संदेश सुनकर कहलाया कि मैं तीर्थ सेवा में संलग्न हूँ अतः आने के लिये सर्वथा लाचार हूँ। प्रधान पुरुषों ने राजा भोज को उनके कथित शब्द कह दिये इस पर राजा भोज ने धनपाल को पुनः कहलाया—कवीश्वर! मैं जैसे राजा मुञ्ज का पुत्र हूँ वैसे आप भी हैं कारण, राजा मुंज आप को भी गोद में लेकर बैठता था। उन्होंने आपको कुर्चाल सरस्वती का विरुद दिया इससे आप हमारे बड़े भ्राता हैं। आप की हार तुम्हारी हार और आप की जीत तुम्हारी जीत है। मेरे लिये न भी आवें तो माता की इज्जत के लिये ही आवें, अब इससे अधिक और क्या लिख सकता हूँ? बस, संदेश पहुँचते ही धनपाल वहां से रवाना हो धारा नगरी आया। राजा भोज ने भी पैदल चल कर धनपाल का स्वागत किया और बड़े ही आदर के साथ उसका नगर प्रवेश करवाया। इससे राजा भोज की मृत सभा में नव जीवन का सञ्चार हुआ।

दूसरे दिन इधर से तो पण्डित धनपाल था और उधर से पं॰ धर्म था आपस में खूब विवाद हुआ पर धनपाल के सामने कौन ठहर सकता था? आखिर पण्डित धर्म ने कहा कि—संसार भर में पण्डित एक धनपाल ही है। इस पर धनपाल ने कहा अणहिल्लपट्टन नगर में वादिवैताल शान्तिसूरि महान् पण्डित हैं। आप वहां जाओ और उन से कुछ अध्ययन करो। बस, पं॰ धर्म को जाने का बहाना मिल गया। जब पण्डित धर्म जाने लगा तो राजा भोजने उन्हें एक लाख द्रव्य दिया पर पं॰ धर्म ने स्वीकार नहीं किया। वह चल कर पाटण आया पर वादिवैताल शान्तिसूरि ने पं॰ धर्म को एक क्षण में पराजित कर दिया जिससे उसका गर्व गल कर हेमसा हो गया।

दूसरे दिन राजा भोज ने धर्म को बुलाया पर मालूम हुआ कि वह बिना पूछे ही रवाना हो गया तो इस पर धनपाल ने कहा—

धर्मो जयति नाधर्म इत्यलीकी कृतं वचः । इदं तु सत्यतां नीतं धर्मस्य त्वरिता गतिः ॥

धर्म की जय और अधर्म की पराजय यह, दुनियां में कहावत है पर आज यह मिथ्या सिद्ध हुआ कारण आज धर्म का ही पराजय हुआ है। इससे राजा भोज ने धनपाल की बहुत प्रशंसा की और उसको खूब पुरस्कार दिया।

शोभनमुनि महान् पण्डित और जैनागमों के पारङ्गत थे। उन्होंने यमकालंकार संयुक्त भगवान की स्तुतियां बनाई। वे इस कार्य में इतने संलग्न थे कि एक श्रावक के वहां से तीन बार गोचरी ले आये पर कुछ भी ध्यान न रहा। जब श्रावक ने पूछा तो मुनि ने कहा—मेरा चित्त विक्षिप्त था। गुरु महाराज को मालूम होने पर उन्होंने मुनि शोभन को चित्त विक्षेप का कारण पूछा तो मुनिजी ने कहा—मैं स्तुतियां बना ने के ध्यान में था। गुरुदेव ने स्तुतियों को पढ़ कर बहुत ही प्रशंसा की पर संघ का दुर्भाग्य था कि शोभन मुनीश्वर व्याधि से पीड़ित हो स्वर्गवासी हो गये। बाद में पं॰ धनपाल ने उन जिनस्तुतियों पर टीका निर्माण की।

पं॰ धनपाल ने अपना आयुष्य काल नजदीक जानकर गृहस्थावस्था में रहते हुए ही गुरु महाराज के चरणों में संलेखना पूर्वक समाधि मरण के साथ सौधर्म देवलोक में अवतीर्ण हुए। तत्पश्चात् आचार्य महेन्द्रसूरि भी अनशन पूर्वक समाधि पूर्वक देह त्याग कर स्वर्ग के अतिथि बन गये।

इन महापुरुषों के जीवन चरित्र हमारे जैसे प्राणियों के कल्याण साधन के लिये निरन्तर ही पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं।

श्रीमान् सूराचार्य

विश्व—विख्यात और धनधान्य पूर्ण समृद्ध शाली गुर्जरभूमि के अलकार स्वरूप अणहिल्ल पट्टन नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। वहां भीम भूपति राज्य करता था। उस समय के पाटण में चैत्यवासियों का साम्राज्य वर्त रहा था चैत्यवासियों में द्रोणाचार्य अग्रगण्य नेता थे और राजा भीम के संसार पक्षमें भी मामा थे।

श्री द्रोणाचार्य के ससार पक्ष में एक सग्रामसिंह नाम का भाई था। संग्रामसिंह के एक पुत्र था जिसका नाम महिपाल था। जब संग्रामसिंह का देहान्त हो गया तब उसकी पत्नी ने अपने पुत्र महिपाल को द्रोणाचार्य के सुपुर्द कर दिया। आचार्यश्री ने भी महिपाल को होनहार व भावी महापुरुष होने वाला समझकर अपने पास में रख लिया और ज्ञानाभ्यास करवाना प्रारम्भ करवा दिया। महिपाल की बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि वह दिये हुए पाठ को लीलामात्र में ही कण्ठस्थकर एवं समझ लेता था। इस तरह अपनी बुद्धि व परिश्रम के प्रभाव से वह व्याकरण, न्याय, तर्क छंद अलकारादि साहित्य में धुरधर विद्वान बनगया। द्रोणाचार्य ने महिपाल को शुभमुहूर्त में दीक्षा दे दी और स्वल्प समय में सूरि पद अर्पण कर आपका नाम सूराचार्य रख दिया। सूराचार्य एक महान् प्रतिभाशाली आचार्य थे। आपकी विद्वत्ता की प्रशंसा सर्वत्र प्रसरित थी। वादी तो आपका नाम सुनकर के घबरा उठते और सुदूर प्रान्तों में पलायन कर जाते थे।

एक समय की बात है कि धारा नगरी का राजा भोज अपनी पण्डित सभा का बड़ा गौरव समझता था। वह अपने राज्य के पण्डितों के सिवाय दूसरे राजाओं के पण्डितों को कुछ चीज ही नहीं समझता था। एकदिन राजा भोज ने अपने प्रधान पुरुष को एक गाथा देकर पाटण के राजा भीम के पास भेजा। प्रधान पुरुष ने भी पाटण की राज सभा में आकर अपने राजा की गुण स्तुति की व एक गाथा राजा की सेवा उपस्थित की।

हेला निद्दलिय गइंदकुंभ-पयडियपयावपसरस्स। सीहस्स मएण समं न बिग्गहो नेय संधाणं॥

उक्त गाथा की अवज्ञा करके भी पाटण नरेश ने व्यवहारिक नीत्यनुसार धारा से आये हुए प्रधान पुरुष का उचित सम्मान कर उन्हें राजभवन में ठहरा दिया। और भोजन आदि का सब प्रबन्ध कर दिया।

इधर राजा भीम ने अपने प्रधान पुरुषों को कहा कि अपनी सभा एवं नगर के पण्डितों द्वारा इस गाथा के प्रतिकार में एक गाथा तैय्यार करवावो। प्रधानों ने भी राजा की आज्ञानुसार नगर के सब पण्डितों को इस बात की सूचना करदी। नगरस्थ सकलपण्डित जन समुदाय ने स्व २ मत्यनुकूल गाथाएं उसके प्रत्युत्तर में बना कर राजा भीम को सुनाई पर राजा का दिल किञ्चित् भी सन्तुष्ट नहीं हुआ असतुष्ट मन से राजा ने पूछा—क्या पाटण में और विद्वान कवि नहीं है? इस पर मंत्री वगैरह नगर में निगह करने के लिये चले एवं चलते हुए वे गोवीन्द्राचार्य के चैत्य में आये उस समय चैत्य में महोत्सव हो रहा था जिसमें एक नृतकी ने भक्ति के वस हो नाच किया पर जब उसको श्रम हुआ तो एक स्तम्भ के पास जाकर खड़ी हुइ उस समय सूराचार्य ने एक गाथा बनाइ जिसको सुन कर राज पुरुष मंत्रमुग्ध बनकर राजा भीम के पास जाकर अर्ज करदी "आचार्यगोविंदसूरि के पास सूराचार्य एक महान् विद्वान मुनि हैं। वे कवित्व शक्ति में अनन्यअनुपमेय हैं। कि धारा की गाथा का उत्तर वे ही आचार्य लिख सकेगा। राजा ने कहा कि वे तो अपने राजगुरु ही है बस" उसी समय मत्रियों को भेज कर राजा ने उनको बुलवाया। सूराचार्य के राज सभा में आने पर राजा ने वन्दन कर उक्त गाथा के प्रतिकार में इसी के अनुरूप या इससे सवाई गाथा बनाने के लिये प्रार्थना

की। सूराचार्य ने भी तत्काल एक सुन्दर गाथा बना कर राजा को देदी।

अंधय सुयाणकालो भीमो पुहवीइनिम्मिओ विहिणा। जेण सयं पि न गणियं का गणणा तुज्झ इक्कस्स ॥

इससे राजा भीम बहुत ही सन्तुष्ट होकर कहने लगा—मेरे राज्य में ऐसे २ विद्वान् जब विद्यमान हैं तो मेरा कौन पराभव कर सकता है ? बस, राजा ने गाथा को एक लिफाफे में बन्द कर राजा भोज के मन्त्री को दे दी और उसे यथोचित सन्मान पूर्वक विदा किया।

गुरु महाराज ने शिष्यों को पढ़ाने के लिये सूराचार्य को नियुक्त किया पर सूराचार्य की प्रकृति बहुत ही तेज थी। वे अध्ययन, अध्यापन के समय जरासा व्यतिक्रम करने में रजोहरण की एक डण्डी हमेशा तोड़ देते थे। इससे शिष्यों का अभ्यास तो खूब जोरों से चलता था पर मार से बेचारे सब घबरा जाते थे। एक दिन सूराचार्य ने आदेश दिया कि मेरे रजोहरण में लोहे की डंडी बना कर डालो, इससे तो शिष्य-समुदाय और भी अधिक घबरा गया। किसी ने जाकर गुरुमहाराज से इस विषय में निवेदन किया तो गुरु ने सूराचार्य को उपालम्भ दिया। सूराचार्य ने कहा—मेरी इच्छा शिष्यों का अहित करने की नहीं पर शीघ्र ज्ञान पढ़ाने की है मेरे पढ़ाये हुए शिष्य षट् दर्शन के वाद में विजयी होंगे। गुरुदेव ने कहा तुमको वाद का गर्व है तो राजा भोज की सभा में विजय प्राप्त कर फिर शिष्यों को शिक्षा देना। गुरुदेव के व्यङ्ग पूर्ण वचनों को सुनकर सूराचार्य ने प्रतिज्ञा करली कि जबतक मैं धारानगरी जाकर भोज की सभामें विजय प्राप्त न करलूं तब तक छ ही विगय का त्याग रक्खूंगा। दूसरे दिन शिष्यों की वाचना के लिये अनध्याय (छुट्टी) करदी इससे शिष्य समुदाय में महोत्सव जैसा हर्ष मनाया गया। गोचरी के समय विगय आई पर सूराचार्य ने स्पर्श तक भी नहीं किया इस पर गुरु महाराज ने कहा—मैं तुमको धारा में जाने की आज्ञा न दूंगा पर सूराचार्य ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। इतना ही नहीं सूराचार्य ने तो यहां तक कह दिया कि यदि आप मुझे आज्ञा नहीं देवेंगे तो मैं मेरी प्रतिज्ञा को छोड़ूंगा नहीं पर अनशन ही स्वीकार कर लूंगा। इस पर आचार्यश्री ने कहा वत्स ! तेरी युवावस्था है अतः अपने अखण्ड निर्दोष पवित्रतम ब्रह्मचर्य की यथावत् रक्षा करते हुए अपनी अभीष्ट सिद्ध हस्तगत करना। सूराचार्य ने गुरुवचन को तथास्तु कह कर राजा भीम के पास गमन किया और उनसे धारानगरी जाने की अनुमति मांगी इस पर राजा ने कहा—पूज्यवर ! एक तो आप हमारे धर्माचार्य हैं और दूसरे सांसारिक सम्बन्ध से सम्बन्धी भी हैं अतः मैं विदेश जाने कि आज्ञा कैसे दे सकता हूँ ? इधर तो पाटण में इस प्रकार सूरिजी एवं राजा के परस्पर बातें हो रही थी कि उधर धारानगरी से राजा के प्रधान पुरुष आगये। उन्होंने राजा भीम से प्रार्थना की—हे नरेन्द्र ! हमारे राजा की गाथा के उत्तर में आपके पंडितों की ओर से जो गाथा भेजी गई थी, उससे वह राजा भोज बहुत ही सन्तुष्ट हुए। राजा भोज उस गाथा रचयिता पण्डितजी के दर्शन करना चाहते हैं अतः कृपा कर पंडितजी को हमारे साथ भेज देवें। राजा भीम ने कहा—ऐसे सुयोग्य विद्वान को विदेश में कैसे भेजा जा सकता है ? आप ही स्वयं विचार कीजिये। राजा के निषेधक वचनों को सुनकर के भी धारा के प्रधान पुरुषों ने बहुत ही आग्रह किया तब राजा भीम ने कहा—यदि आप पण्डितजी को ले जाना ही चाहते हैं तो मैं केवल एक शर्त पर भेज सकता हूँ और वह भी यह कि राजा भोज स्वयं हमारे पण्डितजी के सन्मुख आकर स्वागत करे। प्रधानों ने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इधर पास में बैठे हुए सूराचार्य सोचने लगे कि यह तो बड़ा पुण्योदय है। कारण, मैं स्वयं धारानगरी जाना चाहता था पर राजा भोज के प्रधान पुरुष स्वयं आमन्त्रण करने को आगये। यह तो प्रारम्भ में ही शुभ संकेत रूप मङ्गलाचरण हुआ।

राजा भीम ने एक हस्ति, पांच सौ अश्व और एक हजार पैदल साथ में दिये और सूरिजो ने भी शुभमुहूर्त एवं शुभ शकुनों के साथ पाटण से मालवे की ओर विहार कर दिया। भोज के मन्त्रियों ने आगे जाकर राजा भीम की शर्त राजा भोज को सुनादी। राजा भोज सूराचार्य की प्रतीक्षा कर ही रहा था अतः उसने उनके आने के पूर्व ही स्वागत सम्बन्धी सम्पूर्ण साजों को सजवा लिया।

उधर से तो सूरिजी धारा के नजदीक पधार रहे थे और इधर से राजा भोज और नागरिक लोग बड़े ही उत्साह के साथ गज, अश्व, रथ और असंख्य पैदल सिपाहियों को साथ में लेकर सूरिजी के आगमन की इन्तजारी कर रहे थे। क्रमशः हस्तिपर आरूढ़ होकर पाटण से आते हुए आचार्यश्री एव स्वागत के लिये गज सवारी पूर्वक सन्मुख आते हुए राजा भोज की एक स्थान पर भेंट होगई तब दोनों गज से उतर गये। राजा भोजने सूरिजी का बहुत ही सत्कार किया और नगर में प्रवेश करवा कर एक बहुमूल्य चौकी पर गलीचा बिछवा कर सूरिजी को बैठाया। उस समय सूरिजी का शरीर कम्पने लगा तब राजा ने उसका कारण पूछा। उत्तर में आचार्यश्री ने कहा—राजपत्नी और शस्त्रधारियोंसे हमारा शरीर कम्पता है। इस प्रकार के विनोद के पश्चात् सूरिजी ने राजा को आशीर्वाद रूप धर्मोपदेश दिया। बाद में राजा राजमहल में गये और सूरिजी जिन मन्दिरों के दर्शन कर चूड़ा सरस्वती नामक आचार्य के उपाश्रय में गये। सूरिजी का आचार्यश्री ने सन्मान किया और वे वहा आनन्द पूर्वक रहने लगे।

एक समय राजा भोजने षट् दर्शनों के मुख्य २ नेताओं को बुलाकर कहा कि—तुम सब लोग अपना अलग २ मत एवं आचार रखकर लोगों को भरमाते हो अत. ऐसा न करके तुम सब लोग एक हो जाओ। प्रधानों ने कहा—आपके पूर्व परमारवश में कई राजा होगये पर ऐसा कार्य करने में कोई भी समर्थ नहीं हुए। राजा ने कहा—पूर्व राजाओं ने गौडदेश सहित दक्षिण का राज्य थोड़ी लिया था ?

राजा ने अपने मन्तव्यानुसार सब दार्शनिकों को एकत्रित करके उनके आहार पानी का निरुधन कर एक मकान में बद कर दिये। तब सबों ने सूराचार्य से प्रार्थना की कि आप गुर्जर देश के विद्वान एव राजा के मान्य पडित हैं अत. हम सबको कष्ट से मुक्त करावें। इस पर सूराचार्य ने राज मन्त्रियों के साथ राजा को कहलाया कि—मैं थोड़ी देर के लिये आपसे मिलना चाहता हूँ। राजा ने कहा—आप कृपाकर अवश्य ही पधारें। बस, सूराचार्य राजा के पास में गये और दर्शनों के विषय में कहने लगे—राजन्! अनादि काल से चले आये दर्शन न कभी एक हुए हैं और न होने के ही हैं यदि ऐसा ही है तो आपके नगर में ८४ बाजार अलग २ हैं उनको तो एक कर दीजिये बस राजा के समझ में आगया। उसने सबको मुक्त करके भोजन करवाया।

धारा नगरी के विद्यालयों में राजा भोज का बनाया हुआ व्याकरण पढ़ाया जाता था। एक दिन विद्वद्मण्डली एकत्रित हो रही थी उसमें चूड़ा सरस्वती आचार्यश्री भी जा रहे थे तब सूराचार्य ने कहा—मैं भी चलूंगा आचार्य श्री ने कहा—दर्शन को मुक्त करने के श्रम से अभी तक आप श्रमित होंगे अत. आप यहीं रहें पर सूराचर्य को धारा के पण्डितों को परिचय करवाना था इसलिये आग्रह कर आचार्य के साथ हो ही गये। जब सब लोग निश्चित स्थान पर एकत्रित हो गये तब सूराचार्य ने कहा—छात्रों को कौन सा ग्रन्थ पढ़ाया जाता है। अध्यापक ने उत्तर दिया कि राजा भोज का बनाया हुआ व्याकरण पढ़ाया जाता है। पश्चात् अध्यापक एव छात्रों ने व्याकरण का आद्य मगलाचरण कहा—

चतुर्मुखमुखाम्भोजवन हंसवधूर्मम । मानसे रमतां नित्यं शुद्धवर्णा सरस्वती ॥

सूराचार्य ने मंगलाचरण सुन कर कहा कि इस प्रकार के अद्भुत विद्वान् तो इसी देश में उत्पन्न हुए हैं क्योंकि सब विद्वानों ने तो सरस्वती को कुमारी एवं ब्रह्मचारिणी कहा है पर आपके यहां वह वधु मानी जाती है यह एक आश्चर्य की ही बात है। दूसरा जैसे दक्षिण प्रान्त में मामा की पुत्री और छोटे भ्राता की पत्नी देवर से सम्बन्ध कर सकती है वैसे आपके यहां लघु भ्राता के पुत्र की पत्नी गम्य हो सकती होगी। यही कारण है कि वधु शब्द के समीप 'मानसे रमतां मम' शब्द का प्रयोग किया है। हां, देश २ का व्यवहार भिन्न २ होता है। अतः सम्भव है आपके यहां यही रिवाज हो। बेचारे धर्माध्यक्ष इस का कुछ भी उत्तर न दे सके।

सायंकाल के समय धर्माध्यक्ष ने राजा के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। राजा ने अपने सेवकों द्वारा चूड़ा सरस्वती तथा सूराचार्य को बुलवाया। इनके आने के पूर्व एक शिला के बीच छिद्र करवा कर उसको कर्दम से पूर कर राज भवन के आगमन के मार्ग में रख दिया।

जब दोनों आचार्य राज सभा में आ गये थे तो राजा ने धनुष को कान तक खेंच कर बाण को शिला के छिद्र पर चलाया जिसको देख सूराचार्य ने एक काव्योच्चारण किया।

विद्धाविद्धा शिलेयं भवतु परमतः कार्मुकक्रीडितेन । श्रीमन्पाषाण भेदव्यसन रसिकतां मुञ्च २ प्रसीद ॥
वेधे कौतूहलं चेत् कुलशिखरि कुलं बाणलक्षीकरोषि । ध्वस्ताधारा धरित्री नृपतिलक तदा याति पातालमूलम् ॥

राजन्! इस शिला को भेद डाली अब धनुष क्रीड़ा हो चुकी। अब प्रसन्न होकर पाषाण भेदने की रसिकता को छोड़ दो। जो बाण भेदन में तुमको कौतूहल है और इस पर्वत को बाणों के लक्ष बनाते हो तो हे नृप तिलक! यह निराधार पृथ्वी पाताल को चली जायेगी।

इस प्रकार के अद्भुत चमत्कार पूर्ण काव्य से राजा संतुष्ट होगया। अब धर्माध्यक्ष तो सूराचार्य की असाधारण विद्वता पर मुग्ध हो विचार करने लगा—जैनाचार्यों को कौन पराजय कर सकता है? उसमें भी सूराचार्य जैसा प्रखर विद्वान का पराजय तो सम्भव ही नहीं है। राजा भोज ने सूराचार्य का सम्मान कर उपाश्रय पधारने की आज्ञा दी और सूराचार्य भी अपने स्थान पर पधारे। बाद में राजा भोज ने अपनी सभा के पांच सौ पण्डितों को कहा कि तुम सब लोग गुर्जर देश के श्वेताम्बर आचार्य के साथ वाद विवाद करने को तैय्यार हो जाओ पर उन ५०० पण्डितों में से एक ने भी ऊंचा मस्तक कर राजा के वचन को स्वीकार नहीं किया पर निम्न मस्तक कर मौनावलम्बन ही किया। इस पर राजा ने कहा पण्डितों! तुम गृहशूर—अर्थात् घर में ही गर्जना करने वाले हो और मेरे से द्रव्य लेकर पण्डिताई के नाम पर अपना गुजरान चलाने वाले हो। इस पर एक चतुर पण्डित बोला कहा राजन्! 'बहुरत्ना वसुंधरा' कहलाती है। अतः इस गुर्जरेश्वर को जीतने का एक ही उपाय है और वह यह कि किसी मिष्ट एवं चतुर विद्यार्थी को न्याय का अभ्यास करवाकर सब तरह से योग्य बनाइये और वादि के सामने खड़ा कर दीजिये। राजा ने कहा तो यह कार्य आपको ही सुपुर्द किया जाता है। बस, पण्डितों ने स्वीकार कर लिया और वे निपुणता पूर्वक अपने कार्य करने में संलग्न होगये।

जब निर्धारित कार्य सम्पन्न हो गया तब राजसभा में सूराचार्य को वाद के लिये आमन्त्रित किया

गया। ठीक समय पर आचार्यश्री राज सभा में गये और राजा ने भी सूरिजी का यथा योग्य सत्कार कर उन्हें बढ़िया आसन बैठने के लिये दिया जिसको रजोहरण से प्रमार्जन कर सूरिजी भी यथा स्थान विराजमान हो गये। बाद में जिस विद्यार्थी को तैय्यार किया था उसको रत्न जड़ित बहुमूल्य भूषण और बढ़िया रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित कर राज सभा में लाये। राजा ने उसको अपने उत्संग में बैठा कर सूरिजी से निवेदन किया कि यह आपका प्रतिवादी है। इस पर सूरिजी ने आश्चर्य युक्त शब्दों में कहा—यह बच्चा तो अभी दूध मुंहा है। इसके मुंह में दूध की गन्ध आती होगी। युवकों के वाद में यह कैसे खड़ा हो सकता है ? क्या आपकी सभा में कोई युवक एवं प्रौढ़ पण्डित नहीं है ? इस पर राजाने कहा—आपको भले ही यह बात ऐसी दीखती हो पर यह साक्षात् सरस्वती का प्रतिरूप है। इसके साथ खुशी से वाद कीजिये। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसकी हार में सभा के पण्डितों की हार स्वीकार करेंगे। आचार्य श्री ने कहा—ठीक है; यह बालक है अतः भले ही पूर्व पक्ष स्वीकार करे ! इसपर विद्यार्थी ने जिस प्रकार घोखन पट्टी करके पाठ कण्ठस्थ किया था उसी प्रकार अस्खलित सभा में बोल दिया। तब सूरिजी ने कहा—अरे बन्धु ! तू अशुद्ध क्यों बोलता है ? फिर से शुद्ध बोल। विद्यार्थी ने उतावल करते हुए कहा कि मेरी पाटी पर ऐसा ही लिखा हुआ है यह मुझे निश्चय है अतः अशुद्ध नहीं। इस पर सूराचार्य ने कहा—आपके देश में पाण्डित्य नहीं पर शिशुत्व है। अब मुझे अपने स्थान जाने की आज्ञा दीजिये। राजा और राजा की सभा के पण्डितों के चेहरे फीके पड़ गये। वे कुछ भी नहीं बोल सके। अतः सूराचार्य चलकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर आगये।

सूराचार्य राज सभा से चलकर उपाश्रय में आये तो आचार्य चूड़ा सरस्वती ने कहा—सूराचार्य ! आपने जैन शासन का जो उद्योत किया है इसके लिये हमें महान् हर्ष है पर साथ में आपकी मृत्यु का महान् दुःख भी है। राजा भोज अपनी सभा के पण्डितों का पराजय करने वालों को संसार में जीवित नहीं रहने देता है अतः आपकी मृत्यु उक्त नियमानुसार सन्निकट ही है। सूराचार्य ने कहा—आप किसी भी प्रकार का रंज न करें, मेरा रक्षण करने में मैं सर्व प्रकार से समर्थ हूँ।

इधर कविचक्रवर्ती पण्डित धनपाल ने अपने अनुचरों के साथ कहलाया कि पूज्यवर ! हमारे महान् भाग्योदय है, इसीसे आप जैसे विद्वानों का सत्संग प्राप्त हुआ है पर इस भावी विकट परिस्थिति का मुझे बड़ा ही दुःख है अतः कृपा कर सत्वर हमारे यहां पधारे जावें। यहां आने पर किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा, मैं आपको सकुशल गुर्जर भूमि में पहुंचा दूगा। इसप्रकार धनपाल के अनुचर सूराचार्य के पास आकर सब निवेदन कर रहे थे कि राजा की ओर से कई घुड़ सवार वहां आ पहुंचे और चैत्य को चारों ओर से घेर लिया। वे कहने लगे कि राजसभा के पण्डितो को परास्त करने वाले आपके अतिथी को राजसभामें भेजिये कि उनका सन्मान किया जाय और जयपत्र दिया जाय। चूड़ा सरस्वती ने कहा— जल्दी न करो वे अपने क्रिया काण्ड से निवृत्त होकर आवेंगे। इतने में सूराचार्य अणगार के मलीन एवं जीर्ण वस्त्र पहिनकर, वेश परिवर्तित कर पानी लाने को उपाश्रयके बाहिर जारहे थे कि घुड़ सवारों ने उनको रोक दिया और कहा—जब तक गुर्जर पण्डित को हमारे अधीन न करेंगे वहां तक कोई भी भिक्षु बाहिर जा नहीं सकेगा। इस पर भिक्षु ने कहा सूरिजी अन्दर विराजमान हैं, उनको लेजाओ मैं तो यहां रहने वाला हूं। गरमीके मारे तृषातुर बना हुआ पानी के लिये जारहा हूं और तुमलोग मुझे रोकते हो यह ठीक नहीं है। भिक्षुके उक्त वचन से एक सवार को दया आगई और उसने उसे जाना दिया, पर वे ये सूराचार्य ही। सूराचार्य चलकर धनपाल

के पत्तर आवे तो वनपाल बहुत खुश हुआ और अपने विशाल भूमिगृह में छिपा दिया ।

ठीक उसी समय तम्बोली लोग पान के टोकरे लेकर गुर्जर प्रान्त में जा रहे थे । वनपाल ने उनको इच्छानुकूल विपुल द्रव्य देकर कहा—मेरे भाई को सकुशल गुर्जरप्रान्त में पहुँचा देना । तम्बोलियों ने स्वीकार कर लिया । वनपाल ने तम्बोलियों को एक सौ स्वर्ण दीनारें इनायत करदी अतः तम्बोलियों ने सूराचार्य को सुरक्षित रख क्रमशः गुर्जर प्रान्त में पहुँचा दिया । जब गुरु द्रोणाचार्य और राजा भीमने सुना कि सूराचार्य भोजराजा की सभा को विजय कर निर्विघ्न तया गुर्जर भूमि में आरहे हैं तो उन्होंने बड़े ही हर्ष के साथ स्वागत करने की तैय्यारियों की ।

गज, अश्व, रथ पैदल लेकर राजा भीम तथा अनेक नागरिक स्त्री पुरुष स्वागतार्थ सूराचार्य के सम्मुख गये । नगर का शृंगार कर बाजे गाजों की ध्वनि से गगन गुंजादिया । क्रमशः जयध्वनि के साथ सूराचार्य अपने गुरु की सेवा में—चैत्य में आया । राजा और प्रजा ने सूराचार्य के साहस एवं पाण्डित्य की भूरि २ प्रशंसा की और कहा—भोजराजा की सभा को जीतकर जीवित चले आना आप जैसे विद्वानों का ही काम है, इस प्रकार गुरु महाराज ने भी सूराचार्य की विद्वत्ता एवं चतुरता की शोभा की ।

पीछे राजा भोजके आदमियोंने उपाश्रयमें जाकर निगाह की तो एक आगमी साधु का वेश पहना हुआ उपाश्रय में बैठा था जब राजपुरुषों ने उस साधु को सूराचार्य के विषय में पूछा तो उसने कहा मैं सूराचार्य को नहीं जानता हूँ मैं तो सदैव से यहीं रहने वाला साधु हूँ इत्यादि जब आदमियों ने सोचा कि इसमें अपनी ही भूल हुई है कि पानी लाने वाले साधु को जाने दिया वास्तव में वही सूराचार्य थे पर अब क्या हो यदि सत्य बात कही तो भपन ही मारे जायगे । तथापि राजा से अर्ज की कि हे नराधिप ! वनपाल की कारवाई से आचार्य उपाश्रय में नहीं मिला है अतः वनपाल के घर की तपास करना चाहिये । बस । राजा ने वनपाल का तमाम घर, तलघर वगैरह देखा पर वनपाल साफ इन्कार हो गया कि मैंने तो सूराचार्य को राज सभा में ही देखा था न जाने फिर क्या हुआ है । इस बात का राजा भोज ने बड़ा भारी पश्चाताप किया कि गुर्जर के श्वेताम्बर आचार्य धारा के पंडित और राज सभा की इज्जत ले गया । और कुछ समय से राजा ने सुन लिया कि परम पण्डित और धुरंधर विद्वान सूराचार्य गुर्जर भूमि में पहुँच गये हैं फिर तो वे कर ही क्या सकते । राजा भोज को इतना तो ज्ञान हो गया कि मैं मेरी राज सभा के पण्डितों का अभिमान रखता हूँ वह व्यर्थ ही है श्वेताम्बर विद्वानों के सामने हमारी राज सभा कुछ भी गिनती में नहीं है इतना ही क्यों पण्डित वर्ग पण्डितपन का ढोंग रच कर व्यर्थ ही मेरे से द्रव्य ले जाते हैं इत्यादि—

द्रोणाचार्य के स्वर्गवास के पश्चात् गच्छ का भार सूराचार्य ने सम्भाला । आप सदाचारी क्रियोद्धारी और सुविहित शिरोमणि थे । आपने जैन शासन रूप आकाश में सूर्य के सदृश उद्योत प्रकाश कर धर्म की बहुत ही प्रभावना की । वर्तमान तो आपकी का नाम सुनते ही कंपता जाते थे । आपका शिष्य समुदाय भी बड़ा विशाल था । जब सूराचार्य ने अपना आयुष्य समय नजदीक जाना तो अपने पट्ट पर योग्य मुनि पतिष्ठित को आचार्य पद अर्पण कर आपने ३५ दिन के अनशन से समाधि पूर्वक स्वर्गवास किया । इस प्रकार महा प्रभावक सूराचार्य के चरण कमलों में कोटि २ नमस्कार हो ।

द्रोणाचार्य उस समय के चैत्यवासियों में अग्रगण्य नेता थे । जिन्हों के पास आचार्य अभयदेव सूरि ने अपने रचित आगमों की टीकाओं का संशोधन करवाया था जिसका समय विक्रम संवत् ११२० के

११२८ के बीच का माना जाता है। इन द्रोणाचार्य के शिष्य सूराचार्य थे जिनकी विद्वत्ता की धाक से वादियों के समूह घबड़ा घबड़ा कर दूर भागते थे।

कई लोग यह भी कहते हैं कि आचार्य जिनेश्वरसूरि ने वि० सं० १०८० में पाटण का राजा दुर्लभ की राज सभा में सूराचार्य को परास्त किया ? पर उपरोक्त घटनाएँ एवं समय का विचार करने पर पाया जाता है कि वि० सं० १०८० में सूराचार्य को आचार्य पद तो क्या पर उनकी दीक्षा भी शायद ही हुई हो। हाँ राजा भीम के समय सूराचार्य उनकी सभा का एक असाधारण पण्डित था और राजा भीम का राजत्वकाल वि० सं० १०७८ से ११२० का तथा राजा भोज का समय वि० स० १०७८ से १०९९ का है इससे पाया जाता है कि स० १०८० में नहीं पर इस समय के बाद ही सूराचार्य आचार्य पद पर आरुढ़ हुआ होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि न तो जिनेश्वरसूरि और सूराचार्य का राजादुर्लभ की राज सभा में शास्त्रार्थ हुआ न चैत्यवासीयों को किसे ने पराजय किया और न राजा दुर्लभ ने किसी को खरतर विरुद ही दिया था इस विषय का विशेष खुलासा खरतर मतोत्पत्ति प्रकरण में दिया जायगा।

आचार्य श्रीअभयदेवसूरि

मालव प्रान्त में उच्च २ शिखरों व स्वर्णमय दण्ड कलशों से सुशोभित, धन धान्य में समृद्धिशाली स्वर्गपुरी से स्पर्धा करने वाली धारा नाम की एक विख्यात नगरी थी। वहाँ पर पण्डितों का सहोदर एवं आश्रय-दाता राजा भोज राज्य करता था। धारानगरी में यों तो सैकड़ो हजारों कोट्याधीश व्यापारी रहते थे पर उनमें लक्ष्मीपति नामका एक विख्यात व्यापारी था जो धन में कुबेर के समान व याचकों के लिये कल्पवृक्ष वत् आधारभूत तथा धर्म में सदा तत्पर रहने वाला था।

एक समय मध्यप्रान्त की ओर से दो ब्राह्मण जो वेद वेदाङ्ग, श्रुति, स्मृति, पुराण, एव चौदह विद्याओं में निपुण थे धारानगरी में आये। उन दोनों के नाम क्रमश श्रीधर और श्रीपति थे। क्रमशः चलते हुए वे लक्ष्मीपति सेठ के यहाँ भिक्षा के लिये आये और सेठजी ने उनकी भव्याकृति को देखकर सम्मान पूर्वक उन्हें भिक्षा प्रदान की। उस समय लक्ष्मीपति सेठ के यहा एक भींत पर बीस लक्ष टकाओं वाला एक लेख लिखाया जारहा था। अस्तु, वे दोनों ब्राह्मण सेठजी के यहा हमेशा भिक्षार्थ आते और अपनी बुद्धि प्रबलता के कारण उस लेख को पढ़ पढ़ कर याद कर लिया करते।

एक समय धारानगरी जल जाने से सेठजी के घर के साथ लेख भी जल गया जिससे सेठजी को बहुत ही दुख हुआ। जब प्रतिदिन के क्रमानुसार वे दोनों ब्राह्मण सेठजी के घर भिक्षार्थ आये तो सेठजी ने उनको अपने दु ख की सारी बात कह सुनाई। इस पर उन ब्राह्मणों ने उस लेख को ज्यों का त्यों लिख दिया इससे सेठजी बहुत सतुष्ट हुए और उन दोनों विप्रों को भी खूब प्रीतिदान देकर संतुष्ट किया। उनकी बुद्धि एव कुशलता देख कर सेठजी विचारने लगे कि ये दोनों मेरे गुरु के शिष्य हो जावें तो अवश्य ही शासन का उद्योत करने वाले होंगे।

मरुधर के सपादलक्ष प्रान्त में कुर्चपुर नामका नगर है। यहाँ पर मल्ल राजा का पुत्र भुवनपाल राजा राज्य करता था। वहा पर चौरासी चैत्यों के अधिपति श्री वर्धमान सूरि नाम के आचार्य थे। वे शास्त्रों का अध्ययन कर चैत्यवासत्याग कर विहार करते हुए धारानगरी में पधारे। सेठ लक्ष्मीपति भी सूरिजी का आग-

चैत्यवासी बोले—हे नरेन्द्र ! आप पूर्व कालीन इतिहास को ध्यान पूर्वक सुनें पूर्व जमाने में वनराज चावड़ा नामक पाटण का एक विख्यात राजा हो गया है। उसको नागेन्द्र गच्छ के आचार्य देवचंद्रसूरि ने बाल्यावस्था से ही सहायता पहुँचाई तथा पंचासरा के चैत्य में रहते हुए उन्होंने इस नगर की स्थापना करवाइ और वनराज चावड़ा को राजा बनाया। वनराजने वनराजविहार-मन्दिर बनवाया और आचार्यश्री को कृतज्ञता पूर्वक असाधारण सम्मान से सम्मानित किया। उस ही समय श्रीसघ ने राजा के समक्ष ऐसी व्यवस्था की थी कि समुदायों के भेद से समाज में बहुत लघुताआती है अतः इस पाटण नगर में चैत्यवासियों की बिनासम्मति लिये कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सके, इसमें राजा की भी सम्मति थी अस्तु।

पूर्व कालीन नरेश होगये हैं वे राजाके साथ श्रीसंघ की की हुई उक्त मर्यादा का बराबर पालन करते आरहे हैं अतः आपको भी अपने पूर्वजों की मर्यादा का दृढ़तासे पालन करना चाहिये। फिर तो जैसी आपकी इच्छा।

राजाने कहा—पूर्व नृप कृत नियमों का हम दृढ़ता पूर्वक पालन कर सकते हैं। पर गुणी जनों की पूजा का हम उल्लंघन भी नहीं कर सकते हैं। हां, आप जैसे सदाचार निष्ट महापुरुषों के शुभाशीर्वाद से ही राजा अपने राज्य को आबाद बनाते हैं इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है पर मेरी नम्र प्रार्थनानुसार भी आप इन साधुओं को नगर में रहने देना स्वीकार करलें। राजा के अत्याग्रह को भावी भाव समझ कर चैत्यवासियों ने स्वीकार कर लिया।

सोमेश्वर पुरोहित ने तत्काल राजा से प्रार्थना की कि इन साधुओं के रहने के लिये भूमि प्रदान करें। इतने ही में ज्ञानदेव नामक शिवाचार्य राजसभा में आया। राजाने उसका सत्कार कर उसे आसन पर बैठाया। कुछ समय के पश्चात् शिवाचार्य ने कहा राजन्! आज मैं आपसे कुछ कहने के लिये आया हूँ और वह यह है कि यहां दो जैनमुनि आये हैं उनको ठहरने के लिये स्थान दो और निष्पाप गुणीजनों की पूजा करो। मेरे उपदेश का सार भी यही है कि बाल भाव का त्याग कर परम पद में स्थिर रहने वाला शिव ही जिन है। दर्शन में भेद डालना मिथ्यात्व का लक्षण है इस पर राजा ने बाजार में दो दुकानों के बीच में भूसा डालने के स्थान को साधुओं के लिये पुरोहित को दे दिया। उसी भूमिपर पुरोहित ने जिनेश्वर सूरिके लिये उपाश्रय बनाया और उसी मकान में जिनेश्वरसूरि ने चतुर्मास किया। बस, उसी दिन से वसतिवास की स्थापना हुई। बुद्धिसागरसूरिने पाटण में ही रहकर आठ हजार श्लोक वाले बुद्धिसागर नामके व्याकरण का निर्माण किया। बाद जिनेश्वरसूरि धारा नगरी की ओर विहार कर दिया।

कइ लोग यह भी कहते है कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे वहाँ राजा दुर्ल्लभ की राज सभा में चैत्यावासियों के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ जिसमें जिनेश्वरसूरि की विजय हुई उपलक्ष में राजा दुर्ल्लभ ने जिनेश्वरसूरि को 'खरतर' बिरुद दिया परन्तु उपरोक्त लेख से वह बात कल्पित एवं मिथ्या ठहरती है कारण इस लेख में न तो जिनेश्वरसूरि राज सभा में गए थे न किसी चैत्यावासियों के साथ आपका शास्त्रार्थ ही हुआ। और न राजा दुर्ल्लभ ने किसी को विरुद ही दिया। इस लेख में तो स्पष्ट लिखा है कि राजसभा में पुरोहित सोमेश्वर गया था और राजा दुर्ल्लभने चैत्यवासियों को अच्छे एव सदाचार निष्ट कह कर आये हुए साधुओं को नगर में ठहरने देने की सम्मति मांगी थी और पुरोहित के कहने पर राजा ने बाजार में भूसा डालने की बेकार भूमि पड़ी थी जिसको ज्ञानदेव शिवाचार्य के उपदेश से भूमिदान दिया जिस पर जिनेश्वरसूरि के ठहरने के लिये पुरोहितने मकान बनाया और जिनेश्वरसूरिने उसी मकान में चतुर्मास कर पाटण में वसतिवास नाम के

द्वाचत्वारिंशतामिक्षा, दोषैर्मुक्तमलोलुपैः । नवकोटि विशुद्धं चायात, भैक्ष्यमभुञ्जताम् ॥ ६१ ॥
मध्याद्विप्रयाज्ञिकस्मार्त्त, दीक्षितानग्निहोत्रिणः । आहूयदर्शितौतत्र, निर्व्यूढौतत्परीक्षया ॥ ६२ ॥
यावद्विद्याविनोदोऽयं, विरञ्चेरिवपर्षदि । वर्त्ततेतावदाजग्मुर्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः ॥ ६३ ॥
ऊचुश्च ते द्रुतंस्थेव, गम्यतांनगराद्बहिः । अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं, चैत्यबाह्यसिताम्बरैः ॥ ६४ ॥
पुरोधा प्राहनिर्णयमिदंभूपसमान्तरे । इतिगत्वानिजेशानमिदमाख्यातमाषितम् ॥ ६५ ॥
इत्याख्यातेचतैः सर्वैं समुदायेनभूपतिः । वीक्षित प्रातरायासीत्तत्र, सौवस्तिकोऽपि स ॥ ६६ ॥
व्याजहाराद्यदेवास्मद्गृहेजैनमुनीठमौ । स्वपक्षेस्थानमप्राप्नुवन्तौ, संप्राप्ततुस्त ॥ ६७ ॥
मया च गुणागृह्यत्वात्, स्थापितावाश्रये निजे । भट्टपुत्राअमीमिर्मे, प्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः ॥ ६८ ॥
अत्रादिशत मे क्षूण, दण्डं चाऽत्रयथार्हतम् । श्रुत्वेत्याह रिमत कृत्वा, भूपालः समदर्शनः ॥ ६९ ॥
मत्पुरेगुणिनोऽकस्माद्देशान्तरतआगताः । वसन्तः केन वार्यन्ते ?, को दोषस्तत्र दृश्यते ? ॥ ७० ॥
अनुयुक्ताश्च ते चैव, प्राहु श्रृणु महिपते ! । पुरा श्रीवनराजोऽभूत्, चापोत्कटवरान्वय. ॥ ७१ ॥
स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचन्द्रेणसूरिणा । नागेन्द्रगच्छभूद्धारप्राग्वराहोपमास्पृशा ॥ ७२ ॥
पंचाश्रयाभिधस्थानस्थितचैत्यनिवासिना । पुर स च निवेश्येदमत्र, राज्यदधौनवम् ॥ ७३ ॥
वनराजविहारच, तत्रास्थापयतप्रभु । कृतज्ञत्वादसौतेषां, गुरूणामर्हणव्यधात् ॥७४॥
व्यवस्था तत्र चाकारि, सद्घेन नृपसाक्षिकम् । सम्प्रदाय विभेदम, लाघव न यथा भवेत् ॥ ७५ ॥
चैत्यगच्छयतिव्रातसम्मतोवसतान्मुनिः । नगरेमुनिभिर्नात्र, स्वतव्यंतदसम्मतैः ॥ ७६ ॥
राज्ञां व्यवस्था पूर्वेषां, पाल्या पाश्चात्यभूमिपैः । यदादिशसि तत्कार्य्यं, राजन्नेव स्थिते सति ॥ ७७ ॥
राजा प्राह समाचारं, प्राग्भूपानां वय दृढम् । पालयामोगुणवतां, पूजांतुल्लङ्घयेम न ॥ ७८ ॥
भवादृशांसदाचारनिष्ठानामाशिषानृपा । एधतेयुष्मदीयतद्राज्यनात्रास्तिसशयः ॥ ७९ ॥
"उपरोधेन" नोयूयममीषांवसनंपुरे । अनुमन्यध्वमेवच, श्रुत्वा तेऽत्र तदाह्युः ॥ ८० ॥
सौवस्तिकस्तत प्राह, स्वामिन्नेषामवस्थितौ । भूमि काप्याश्रयस्थार्थं, श्रीमुखेनप्रदीयताम् ॥ ८१ ॥
तदासमाययौत, शैवदर्शनिवासव । ज्ञानदेवाभिध क्रूर समुद्रविरुदार्हत ॥ ८२ ॥
अभ्युत्थाय समभ्यर्च्य, निविष्ट निज आसने । राजा व्यजिज्ञपत्किंचिदथ विज्ञप्यते प्रभो ! ॥ ८३ ॥
प्राप्ताजैनर्षयस्तेषामर्प्यतांक्ष्मुपाश्रयम् । इत्याकर्ण्यंतपस्वीन्द्रः, प्राहप्रहसिताननः ॥ ८४ ॥
गुणिनामर्चनांयूय, कुरुध्वं विधुसैनसम् । सोऽस्माकमुपदेशानां, फलपाक श्रियां निधि ॥ ८५ ॥
शिवएवजिनो, बाह्यत्यागात्परपदस्थितः । दर्शनेषुविभेदोहि, चिह्न मिथ्यामतेरिदम् ॥ ८६ ॥
निस्तुषव्रीहिहट्टानां, मध्येऽत्र पुरुषाश्रिता । भूमि पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयायथारुचि ॥ ८७ ॥
विघ्नः स्वपरपक्षेभ्यो, निषेध्य सकलोमया । द्विजस्तत्त्वप्रतिश्रुत्य, तदाश्रयमकारयत् ॥ ८८ ॥
तत प्रभृतिसजज्ञे, वसतीनांपरम्परा । महद्भिः स्थापित वृद्धिमश्नुते नात्र सशय ॥ ८९ ॥
श्रीबुद्धिसागरसूरिश्चक्रेव्याकरणंनवम् । सहस्राष्टकमानतच्छ्रीबुद्धिसागराभिधम् ॥ ९० ॥
अन्यदाविहरन्तश्च, श्रीजिनेश्वरसूरय । पुनर्धारापुरींप्रापु, सपुण्यप्राप्यदर्शनाम् ॥ ९१ ॥

"प्रभाविक चरित्र पृष्ट २०५"

वच्छा ! गच्छह अणहिल्ल पट्टणे सपय जओ तत्थ । सुविहिअजइप्पवेसं चेइअमुणिणं निर्वारिति ॥ १ ॥
सत्तोए बुद्धिए सुविहिअसाहूण तत्थ ये पवेसो । का०वओ तुम्ह समो अन्नो न हु अत्थि कोऽविविऊ ॥ २ ॥
सीसे धरिऊण गुरुणमेयमाणं कमण ते पत्ता । गुज्जरधरावयस अणहिल्लभिहाणय नगर ॥ ३ ॥
गीअत्थमुणिसमेया भमिआ पइमदिरं वसहिहेऊ । सा तत्थ नेव पत्ता गुरुण तो समरिअ वयणं ॥ ४ ॥

भावार्थ—वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि को हुक्म दिया कि तुम पाटण जाओ कारण पाटण में चैत्यवासियों का जोर है कि वे सुविहितों को पाटण में आने नहीं देते हैं अतः तुम जा कर सुविहितों के लिए पाटण का द्वार खोल दो। बस गुरु आज्ञा स्वीकार कर जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि क्रमशः विहार कर पाटण पधारे। वहां प्रत्येक घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिये स्थान नहीं मिला उस समय उन्होंने गुरु के वचन को याद किया कि वे ठीक ही कहते थे पाटण में चैत्यवासियों का ऐसा ही जोर है और उस समय पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और उनके पुरोहित सोमेश्वर ब्राह्मण था। दोनों सूरि चल कर पुरोहित के वहाँ गये परिचय होने पर पुरोहित ने कहा कि आप इस नगर में विराजें। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम्हारे नगर में ठहरने को स्थान ही नहीं मिलता फिर हम कहाँ ठहरें ? इस हालत में पुरोहित ने अपनी चन्द्रशाला खोल दी कि वहाँ जिनेश्वरसूरि ठहर गये। यह सिर्कार चैत्यवासियों को मालूम हुआ तो वे (च० म० उनके आदमी) वहाँ जा कर कहा कि तुम नगर से चले जाओ कारण यहां चैत्यवासियों की सम्मति बिना कोई श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं। इस पर पुरोहित ने कहा कि मैं राजा के पास जा कर इस बात का निर्णय कर लूँगा। बाद पुरोहित ने राजा के पास जा कर सब हाल कह दिया। इधर से सब चैत्यवासी भी राजा के पास गये और अपनी सत्ता का इतिहास सुनाया। आखिर राजा से पुरोहित ने आज्ञा प्राप्त कर वहाँ उपाश्रय बनाया उसमें ही जिनेश्वरसूरि ने चतुर्मास किया उस समय से सुविहित मुनि पाटण में यथा इच्छा विहार करने लगे। इसमें भी राजसभा में जिनेश्वरसूरि नहीं पर पुरोहित ही गया था।

जिनेश्वरसूरि आशापल्ली में पधारे। वहां पर महीधर सेठ रहता था। उसके धनदेवी नाम की स्त्री और अभयकुमार नामका पुत्र था। अभयकुमार सूरिजी के उपदेश को श्रवण कर संसार से विरक्त हो गया क्रमशः आचार्यश्री के पास में ही उन्होंने भागवती दीक्षा ग्रहण करली। सर्वगुण सम्पन्न होने पर वर्द्धमान सूरि की आज्ञा से जिनेश्वरसूरि ने अभयमुनि को सूरिपद अर्पण कर आपका नाम अभयदेवसूरि रख दिया।

[illegible] । तत्थ (तत्र) पुरोहिअस्सासी सोमेसरनामओ [illegible] ॥ ५ ॥
[illegible] (हे राजा) [illegible] । [illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] ॥ ७ ॥
[illegible] ॥ ८ ॥
[illegible] । [illegible] ॥ ९ ॥
"[illegible]
[illegible]" ॥ १० ॥
[illegible] ॥ ११ ॥
[illegible] ॥ १२ ॥
[illegible] ॥ १३ ॥
[illegible] ॥ १४ ॥
[illegible] ॥ १५ ॥
[illegible] ॥ १६ ॥
[illegible] ॥ १७ ॥
[illegible]

बाद में विहार करते हुए वे आप थरापद्रनगर में आये और वहां पर वर्धमानसूरि का अनशन एवं समाधि-पूर्वक स्वर्गवास होगया ।

एक समय ऐसा दुष्काल पड़ा कि जिससे ज्ञान ध्यान में स्खलना होने लगी । जैनागमों तथा उसपर की गई वृत्तियों का भी उच्छेद हो गया । इसको देख शासन देवीने रात्री के समय अभयदेवसूरि को कहा कि दुर्भिक्ष के कारण श्रीशीलाङ्गाचार्य रचित टीकाओं में केवल दो अंग की टीका ही अवशिष्ट रह गई हैं और बाकी सब विच्छेद हो गयी हैं अतः आप अवशिष्ट नव अङ्गों की टीका बनाकर साधु समाज पर उपकार और शासन की अमूल्य सेवा करें । इस पर सूरिजी ने नौ अंगों पर टीका रचकर विद्वान् आचार्यों से उनका संशोधन करवाया श्रीभगवतीजीसूत्र की टीकामें स्वयं आचार्यश्री लिखते हैं कि टीकाओं का संशोधन मैंने द्रोणाचार्य से करवाया जो चैत्यवासियों के अग्रगण्य नेता थे । इनके अलावा सूरिजीने अपनी टीका में यह भी सूचित किया है कि पूर्वाचार्य रचित टीका चूर्णियों के आधार से मैंने टीका की रचना की है । देवी के कहने से प्रथम प्रति देवी के भूषण से लिखवाई और बादमें कई भावुक श्रावकों ने अपने द्रव्य से आगम लिखवा कर आचार्यश्री को अर्पण किये तथा भण्डारों में स्थापित किये ।

एक समय अभयदेवसूरि विहार करके धोलका नगर में पधारे । वहां अशुभकर्मोदय से आपके शरीर में कुष्टरोगोत्पन्न हो गया । इससे कई इर्ष्यालु लोग कहने लगे कि टीका बनाने में उत्सूत्र भाषण एव लेखन से ही अभयदेवसूरि के शरीर में रोग हुआ है । लोगों के मुख से उक्त अपवाद को सुनकर आचार्य अभयदेव सूरि को बड़ी चिन्ता होने लगी । पुण्योदय से एक दिन की रात्री में धरणेन्द्र ने आकर सूरीश्वरजी के शरीर का अपनी जिभ्या से स्पर्श किया इसपर अज्ञात सूरिजी ने सोचाकि मेरा आयुष्य नजदीक आगया है पर दूसरे ही दिन धरणेन्द्र ने प्रगट हो कर कहा कि आपके शरीर का स्पर्श करने वाला मैं हूँ । रोगापहरण के लिए ही मैंने ऐसा किया था अतः एतद्विषयक किञ्चित् भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये सूरिजीने कहा—धरणेन्द्र ! रोग और मरण का तो मुझे तनिक भी भय नहीं है पर इसके लिये इर्ष्यालु लोग शासन की हीलना करें यह जरा विचारणीय या भयोत्पादक है । धरणेन्द्र ने कहा—इस बात का आप तनिक भी खेद न करें । जिन बिम्बके प्रभाव से आपके शरीर का यह रोग निश्चय ही चला जायगा । अब एतदर्थ मेरी बात जरा ध्यान पूर्वक सुनिये । श्रीकान्त नगरी का निवासी धनेश नामका एक धनाढ्य श्रावक जहाजों में माल भर कर समुद्र मार्गसे जारहा था । मार्ग में वाणव्यन्तर देवता ने किसी कारण वश उन जहाजों को स्तम्भित कर दिया और उपदेश दिया । इससे धनेश श्रावकने भूमिसे तीन प्रतिमाएं निकालीं एवं घरपर ले आया उक्त तीनों प्रतिमाओं में एक की स्थापना चारूप नगरमें की जिससे वह चारूप तीर्थ कहलाया और दूसरी की स्थापना अण हिल्ल पाटणमें की । बची हुई तीसरी प्रतिमा को स्तम्भन ग्राम की सेढिका नदी के तट स्थित भूगर्भ में स्थापन की है जिसको आपश्री जाकरके प्रगट करें । पूर्व नागार्जुन ने भी वहां रस सिद्धि प्राप्त कर स्तम्भनपुर नाम का ग्राम आबाद किया । जिन बिम्ब के प्रगट होने से आपके कुष्ट रोग का क्षय होगा और आपकी कीर्ति भी बहुत प्रसरित होगी ।

इतना कह कर धरणेन्द्र देव तो अदृश्य हो गया । प्रातःकाल होते ही सूरिजी ने सब हाल धोलका नगर-निवासी श्रीसंघ को कहा । धरणेन्द्र देवागमन और रोगापहरण का सफल उपाय सुनकर श्रीसंघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा । बस, ९०० गाडों के साथ श्रीसंघ व सूरिजी चलकर सेटी नदी के किनारे पर आये । गोपाल को पूछने पर ज्ञात हुआ कि यहां गाय का दूध स्वयं स्रवित होता है । अग्रगण्य लोगों ने उक्त भूमि को

खोदना प्रारम्भ किया तो भन्दर से पार्श्वनाथ भगवान् की मनोहर मूर्ति प्रगट हो गई। आचार्य अभयदेव सूरि ने 'जयतिहुअण' स्तुति बनाकर प्रभुस्तुति की और श्रीसंघ ने मूर्ति का विधि पूर्वक प्रक्षालन किया जिसको शरीर पर लगाने से आचार्यश्री का रोग चला गया। और स्तम्भन तीर्थ की स्थापना हुई।

श्री मल्लवादी के शिष्य के उपदेश से भक्तों ने चतुर एवं शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलवाकर जिनेश्वर का विशाल एवं सुंदर मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरजी की देख रेख के लिये धर्मेश्वर की ओर से उनको प्रतिदिन एक द्रम्म के रोजगार से रक्खा। उन्होंने उस द्रम्म को अपने कार्यों में खर्च करने से बचाकर उसी मन्दिर में एक देहरी करवाई वह अद्यावधि विद्यमान है जब मन्दिर तैय्यार होगया तो आचार्य श्री अभयदेव सूरि से उसकी प्रतिष्ठा करवाकर जैनधर्म की प्रभावना की।

तदन्तर धरणेन्द्र ने सूरिजी को कहा—प्रभो ! आपने जो ३२ काव्य का स्तोत्र बनाया है उसमें से दो काव्य निकाल दीजिये। कारण, दो काव्यों के रहने से कोई भी व्यक्ति इन काव्यों को पढ़ेगा तो तत्काल मुझे आकर हाजिर होना पड़ेगा इससे मुझे कष्ट होगा। सूरिजी ने भी भविष्य को सोचकर धरणेन्द्र के कथनानुसार दो काव्य निकाल दिये पर अब भी इस स्तोत्र का पाठ करने वालों का संकट दूर हो सकता है।

इस तीर्थ के प्रथम स्नात्र का सौभाग्य मल्लक के श्रीसंघ को मिला। इस स्तम्भन पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्राचीनता के लिये मूर्ति के पृष्ठ भाग पर शिलालेख खुदा हुआ है जिसमें लिखा है कि इक्कीसवें नमिनाथ के शासन के २२२२ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् गौड़ देश के आषाढ़ नामक श्रावक ने तीन प्रति मायें बनाई उनके अन्दर की एक यह प्रतिमा है।

आचार्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् शासन प्रभावक श्री अभयदेव सूरि ने पाटण के कर्ण राजा के राज्यत्व काल में सं० ११३५ स्वर्गवास किया। आचार्य अभयदेवसूरि ने हर तरह से शासन की बहुत ही प्रभावना की। ऐसे परम प्रभावक आचार्यश्री के गुण, स्मरणीय एवं आदरणीय हैं। उनका जैन समाज पर अत्यन्त महान् उपकार हुआ है।

आचार्य वादिदेवसूरि

स्वर्ग सदृश गुर्जर देश के अष्टादशशति प्रान्त में मड्डहत (मदुआ) नामका एक अत्यन्त रमणीय ग्राम था। यहां पर प्राग्वटवंशावतंस श्री वीरनाग नाम के एक कुलसम्पन्न वणिक के पुत्र रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम जिनदेवी था। एक दिन रात्रि में जिनदेवी चन्द्र का स्वप्न देख कर जागृत हुई। प्रातःकाल होते ही उसने अपने गुरुदेव आचार्य चन्द्रसूरिजी को अपने स्वप्न का हाल सुनाया। स्वप्न को सुन कर सूरिजी ने कहा—भद्रे ! यह स्वप्न अत्यन्त शुभ एवं भावी पुण्यपुरुष का सूचक है। तेरे गर्भोदर से देवचन्द्र के समान कोई पुण्यशाली जीव अवतरित हुआ होगा। जिनदेवी ने सूरिजी के वचनों को शुभ एवं आशीर्वाद रूप समझ कर खूब ही हर्ष मनाया। वास्तव में गर्भोदय का हर्ष किस भावी को न हो ?

समयानन्तर माता जिनदेवी ने एक मनोहर पुत्र रत्न को जन्म दिया जिस का नाम पूर्णचन्द्र रक्खा। क्रमशः जब पूर्णचंद्र आठ वर्ष का हुआ तो एक दिन ग्राम में उपद्रव ने अपना पैर पसार दिया। अनुकूलता न होने से वीरनाग मड्डहत ग्राम को छोड़ कर लाट देश के भूषण स्वरूप भरौंच पत्तन में चलागया।

भाग्यवशात् चन्द्रसूरि का भी वहां पर पदार्पण हो गया। वीरनाग को गरीब बना हुआ देख कर

सूरिजीने भरोंच निवासियों को इशारा किया जिससे सकल श्रीसंघने मिल कर वीरनाग का पर्याप्त सम्मान किया एवं उन्हें सर्व प्रकार सहायता पहुँचाकर स्वधर्मी वत्सलता का परिचय दिया। एक समय पूर्णचन्द्र कुछ नमक आदि पदार्थ लेकर नगर में बेचने को गया। मार्ग में उसे एक ऐसे श्रेष्टिवर्य का घर मिला जिसके वहां पूर्वजों द्वारा सञ्चित सौनैया कोलसे के रूप में बन गया था। उस श्रेष्टि ने उक्त द्रव्य को कोयला समझ कर बाहर डालना प्रारम्भ किया इतने ही में बालक पूर्णचन्द्र भाग्यवशात् वहां पहुँच गया। यद्यपि वह सौनैया श्रेष्टि को कोयले के रूप में दीखता था पर पूर्णचन्द्र को वह स्वर्ण रूप ज्ञात होने लगा। वह तत्काल बोल उठा —श्रेष्टिवर्य! आप सौनैयों को बाहिर क्यों कर फेंक रहे हैं। सेठ समझ गया कि निश्चित् ही यह कोई भाग्यशाली पुरुष है। कारण, मेरे भाग्य में न होने के कारण मुझे यह कोलसों के रूपमें मालूम होता है पर वास्तव में यह है सौनया ही। अत. स्वर्णावसर का सदुपयोग कर सेठ ने कहा—वत्स! इस पात्र में डालकर यह सब मेरे घर में रखदो। पूर्णचन्द्र ने भी उनको एक पात्र में इकट्ठा कर निर्दिष्ट स्थान पर रखदिया जिसके उपलक्ष में सेठने बच्चे को सौ सौनैया दिया।

पूर्णचन्द्र सहर्ष अपने घर पर आया और अपने पिताश्री को सब हाल कह सुनाया। वीरनाग ने भी दूसरे दिन प्रसन्न चित्त होकर आचार्य चन्द्रसूरि को पुत्र कथित सब वृत्तान्त कहा, इस पर सूरिजीने कहा—वीरनाग! तुम्हारा पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली है। यदि यह दीक्षा ले तो अपनी आत्मा के साथ ही जगत के जीवों का उद्धार कर सकेगा।

वीरनाग ने कहा—पूज्यवर! यह मेरे एक ही पुत्र है पर आपश्री के आदेश की उपेक्षा भी नहीं कर सकता हूँ। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

इसपर आचार्य चन्द्रसूरि ने भरोंच के श्रावकों को सूचित कर दिया जिससे उन्होंने वीरनाग को ताजीवन के लिये आवश्यकता से अधिक पर्याप्त सहायता पहुँचादी। उधर शुभमुहूर्त में बालक पूर्णचन्द्र को शिक्षा दीक्षा देकर उसका नाम मुनि रामचन्द्र रख दिया। मुनि रामचन्द्र पुण्यशाली एवं कुशाग्र मतिवन्त थे अतः थोड़े ही समय में उन्होंने स्वपर मत के शास्त्रों का गम्भीर मनन पूर्वक अध्ययन कर लिया। इतना ही क्यों पर मुनि रामचन्द्र पर सरस्वती देवी की भी पूर्ण कृपा थी एव उसने मुनि रामचन्द्र को वरदान भी दिया था यही कारण है कि आप सर्वत्र विजय पताका फहरा रहे थे। क्रमश. वे इतने प्रवीण हो गये कि—

१—धोलका में अद्वैतवादी ब्राह्मणों को परास्त किया।
२—काश्मीर के वादी सागर को पराजित किया।
३—सत्यपुर के वादियों से विजय प्राप्त की।
४—नागपुर के गुणचन्द्र दिगम्बर को शास्त्रार्थ में हराया।
५—चित्रकूट में भगवत शिवभूति को ,, ,,
६—गोपगिरि में गङ्गधर वादी को परास्त किया।
७—धारा में धरणीधर वादी को ,, ,,
८—पुष्करणी में वादी प्रभाकर ब्राह्मण का पराजय किया।
९—भृगुक्षेत्र में कृष्ण नामके ब्राह्मण को हराया।

इस प्रकार मुनि रामचन्द्र ने वाद विजय में बड़ी ही प्रख्याती प्राप्त करली। अब तो आपके अनुपम

पाण्डित्य, तर्क शक्ति व वैचित्र्य एवं विषय प्रतिपादन शैली की अपूर्वता से सकल जन समाज आपकी ओर प्रभावित हो गया। वादी लोग तो आपके नाम श्रवण मात्र से ही घबराने लगे।

पं॰ मुनि विमलचन्द्र प्रभानिधान, हरिचन्द्र, क्षेमचन्द्र, कुलभूषण, पार्श्वचंद्र, शान्तिचन्द्र, तथा अशोकचन्द्र आपके सहपाठी—विद्या मन्त्र का अभ्यास करने वाले साथी थे।

आचार्यश्री ने मुनि रामचन्द्र को सूरिपद योग्य सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न एवं पद का निर्वाह करने में सब तरह से समर्थ जान कर सकल श्रीसंघ की अनुमति से आपको सूरिपद विभूषित कर दिया। सूरिपद अर्पणानंतर आपका नाम देवसूरि स्थापित किया।

आचार्य देवसूरि ने वीरनाग की बहिन को दीक्षा देकर उसका नाम चन्दनबाला रक्खा। चन्दनबाला साध्वी भी दीक्षानन्तर तप संयम में संलग्न हो गई।

एक समय आचार्य देवसूरि ने धोलका की ओर विहार किया। उस समय वहां के एक धनसम्पन्न, धर्मनिष्ठ श्रावक ने श्री सीमंधर स्वामी का एक विशाल मन्दिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा के लिये उसने सूरिजी से प्रार्थना की। सूरिजी ने भी उक्त प्रार्थना को मान देकर श्रीसीमंधर स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम पूर्वक करवाई। तदनन्तर सूरिजी ने वहां से सत्तर साधु मन्त्र की ओर विहार किया। क्रमशः आचार्य श्री आबू पर आये तब आपके साथ आये हुए अम्ब-प्रसादजी मन्त्री को सर्प ने काट खाया। इस पर वादी देवसूरि के चरणोदक छांटनेसे मन्त्री तत्काल ही विष मुक्त हो गया। पश्चात् गुरुदेवश्री की यात्रा कर अनन्य पुण्योपार्जन किया।

उसी दिन रात्रि में अम्बादेवी ने प्रगट होकर देवसूरि को कहा कि—उपाध्याय प्रान्त का विहार बन्द करके वापिस आप शीघ्र ही पाटण पधार जाइये कारण आपके गुरुदेवश्री का आयुष्य केवल आठ मास का ही अवशिष्ट रहा है। सूरिजी ने भी देवी के कथन को स्वीकार कर तत्काल ही पाटण की ओर विहार कर दिया। क्रमशः पाटण पहुँच कर गुरुदेव को वंदन किया व अम्बादेवी कथित वचन आचार्यश्री को कह सुनाये। आचार्यश्री चन्द्रसूरि अपने आयुष्य काल को नजदीक जानकर अन्तिम संलेखना में संलग्न होगये।

पाटण में एक भागवत् वादी देवबोध नामका पण्डित आया। उसने अपने पाण्डित्य के गर्व में एक श्लोक लिखकर द्वार पर लटका दिया कि जो कोई पण्डित हो वह मेरे उक्त श्लोक का अर्थ करे—

एक द्वि त्रि चतुर्पंच षण्मेनकमनेनकाः देवबोधे मयि क्रुद्धे षण्मेनक मनेनकः ॥ १ ॥

छः मास व्यतीत होगये पर कोई भी उक्त श्लोक का अर्थ न बतला सका। इस बात का पाटण नरेश को बहुत ही दुःख हुआ कि आज तक मैंने इतने पण्डितों का सत्कार कर राज सभा में रक्खा पर आज एक विदेश का पण्डित इस प्रकार पाटण की राजसभा के पण्डितों का पराजय कर चला जावेगा।

रात्रि के समय अधिष्ठायकी ने राजा को कहा कि हे राजन्! "तू इतनी चिन्ता क्यों करता है? इस श्लोक का अर्थ करने में तो आचार्यश्री देवसूरि समर्थ हैं।" इतना कह कर देवी अदृश्य होगई। देवी के कथनानुसार राजा ने दूसरे ही दिन देवसूरि को बड़े ही सत्कार के साथ राजसभा में बुलाया। देवसूरि ने भी राजसभा में उपस्थित होकर वादी के श्लोक का स्पष्ट अर्थ इस प्रकार किया कि—

एक प्रत्यक्ष प्रमाण को मानने वाला चार्वाक, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों को स्वीकार करने वाले बौद्ध व वैशेषिक, प्रत्यक्ष अनुमान और आगम प्रमाण को मानने वाला सांख्य, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम,

और उपमान प्रमाण को मानने वाले नैयायिक, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव रूप ६ प्रमाण को मानने वाले मीमांसक । इन छ प्रमाण वादियों को चाहने वाले मुझ देवबोध के कोपायमान होने पर ब्रह्मा विष्णु और सूर्य भी मेरे बनजाते हैं अर्थात् सामने कुछ भी नहीं बोल सकते हैं तो फिर विद्वान मनुष्य जैसे सामान्य तो मेरे सामने वाद करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं ? इसप्रकार श्लोकार्थ को कह सुनाने से राजा बहुत ही सन्तुष्ट हुआ । वह देवसूरि को सभाकी लाज रखने वाला परम निष्णात, मेधावी व गुरु समझ कर बहुत ही आदर सत्कार करने लगा और वादिका गर्भ गल जाने से नतमस्त होचला गया।

पाटण निवासी एक बहड नाम के धनी भक्त ने सूरिजी से पूछा कि—भगवन् मुझे कुछ धन-व्यय करने का है सो वह किस कार्य में किया जाय ? इस पर सूरिजी ने उसे जिन मन्दिर बनाने की सलाह दी। बहड ने भी गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया । चतुर, शिलपज्ञ कारीगरों को बुलाकर एक विशाल मन्दिर बनवाया । मन्दिर में स्थापन करने के लिये चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी की मूर्ति बनवाई । प्रतिमाजी के नेत्रों के स्थान ऐसी मणियें लगवाई कि वे रात्रि में भी सूर्य की भाँति सदा प्रकाश करती रहती थी । वि० स० ११७८ में मुनिचन्द्रसूरि का स्वर्गवास हुआ उसके एक वर्ष पश्चात् ही देवसूरि ने बहड के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई ।

आचार्य देवसूरि पाटण से विहार कर नागपुर पधारे तो वहां का राजा आल्हदान सूरिजी के स्वागत के लिये स्वयं सन्मुख आया । अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यश्री का नगर प्रवेश महोत्सव करके उन्हें उचित सम्मान से सन्मानित किया । वहां पर देवबोध नामका वादी आया और उसने देवसूरि को प्रणाम कर एक श्लोक बोला—

यो वादिनो द्विजिह्वान् साटोपं विषय मान मुद्गिरतः शमयति सदेवसूरि–र्नरेन्द्रवंद्यः कथं न स्यात् ॥६६॥

एक समय सिद्धराज ने अपनी सेना के साथ नागपुर पर चढ़ाई करके उसको चारों ओर से घेर लिया । कुछ समय के पश्चात् जब उसने सुना कि यहां देवसूरि विराजमान हैं तो यह सोचकर उसने अपना पड़ाव हटालिया कि जहां हमारे गुरुदेव सूरि विराजमान हैं; मैं उस राजा के दुर्ग को कैसे ले सकता हूँ । बस, उक्त विचारानुसार वह पाटण लौट गया पाटण पहुँचने पर सिद्धराज ने देवसूरि को आमन्त्रित कर पाटण में ही चतुर्मास करवा दिया । चतुर्मास के दीर्घ अवसर को प्राप्त करके सिद्धराज ने तत्काल नागपुर पर चढ़ाई की और वहां के क़िले पर अपना अधिकार कर लिया ।

एक समय करणावती श्रीसघ ने भक्ति पूर्वक देवसूरि से प्रार्थना कर अपने यहां चतुर्मास करवाया । आचार्यश्री ने भी अरिष्टनेमि के चैत्य में व्याख्यान देकर के अनेक भव्यों को प्रतिबोध दे उनका उद्धार किया।

करणाटक देश के राजा और सिद्ध सेन की माता का पिता जयकेशरी राजा का गुरु दक्षिण में रहने वाला, वादियों में चक्रवर्ती, जयपत्रिकी पद्धति को दावे पैर पर लगाने वाला, अभिमान रूपी गज और गर्व रूपी पर्वत पर आरूढ़ हुआ, जैन होने पर भी जैन मतद्वेषी, वर्षाकाल व्यतीत करने के लिये वासुपूज्य चैत्य में ठहरा हुआ, श्रीदेवसूरि के व्याख्यान से ईर्ष्या करने वाला, कुमुदचंन्द्र नाम के दिगम्बर वादी ने चारणों को वाचाल बनाकर देवसूरि के पास भेजा । वे चारण भी कुमुदचद्र की मिथ्या प्रशंसा करते हुए व श्वेताम्बरों को अपमान सूचक शब्द बोलते हुए कहने लगे कि—"हे श्वेताम्बरों ! सर्वशास्त्र के पारगामी दिगम्बराचार्य श्री कुमुदचंद्र के चरण युगलों की सेवा करके अपना कल्याण करो" इत्यादि ।

वादी के आडम्बर पूर्ण मिथ्याभिमान सूचक शब्दों को सुनकरके देवसूरि के मुख्य शिष्य माणिक्य ने कहा कि हे वादिन् ! सिंह के मस्तक पर रहे हुए केसरा को अपने पैरों से कौन स्पर्श कर सकता है ? दीपक बाले को आँखों में कौन धर सकता है, शेषनाग के मस्तक की मणि लेने में कौन समर्थ है इसी प्रकार श्वेताम्बराचार्यों के साथ वाद विवाद करने में कौन शक्तिशाली है । शिष्य के उक्त शब्द सुनकरके देवसूरि ने कहा—हे शिष्य ! कठोर बोलने वाले दुर्जन पर क्रोध करने का अवकाश नहीं है । अर्थात् दुर्जन पर क्रोध नहीं पर दयाभाव ही करना चाहिये ।

देवसूरि की समताने वादी के अभिमान को द्विगुणित कर दिया । वादी ने एक वृद्धासाध्वी पर कुपित हो कर उसकी बड़ी विडम्बना की । जब साध्वी उपाश्रय से मुक्त हुई तो देवसूरि के पास में आकर उपालम्भ पूर्ण शब्दों में कहने लगी—आपका ज्ञान, आपकी विद्या और आपका चारित्र किस काम का है ? जब कि वादी के सामने आप समता पकड़ कर बैठ गये, इत्यादि । आचार्यश्री देवसूरि ने साध्वी को कठोर पूर्ण वचन कह कर पाटण के श्रीसंघ पर एक पत्र लिखा कि यहाँ दिगम्बर वादी कुमुदचन्द्र आया है अतः हम चाहते हैं कि पाटण में इसके साथ वाद विवाद हो । पाटण के संघने इस पत्र का जवाब लिखा कि—आप कृपा करके अवश्य ही पाटण पधारें । राजा सिद्धराज की राजसभा में आप दोनों का वाद विवाद करवाया जायगा आपकी विजय के लिये १ ७ श्रावक श्राविकायें आयम्बिल कर रहे हैं ।

देवसूरि को पाटण के श्रीसंघ का पत्र पढ़ कर बहुत ही प्रसन्नता हुई । उन्होंने वादी के पास वादी को कहला दिया कि हम पाटण जाते हैं, अतः आप लोग भी पाटण पधार जावें । राजा सिद्धराज की राज सभा में अपना परस्पर वाद विवाद होगा । इस बात को कुमुदचन्द्र ने सहर्ष स्वीकार करली । फिर शुभ दिन सूर्य मेषराश में चन्द्रमा ग्यारवें और रिपुहिबी राहु छठे स्थान स्थित रहते तथा और भी शुभ शकुन होते हुए आचार्यश्री देवसूरिने करणावती से पाटण के लिये प्रस्थान कर दिया रास्ते में भी बहुत अच्छे शकुन और शुभ निमित्त कारण मिलते गये ।

इधर दिगम्बराचार्य भी पाटण की ओर विहार करने लगे तो उस समय एक व्यक्ति को छींक हो जाई जो प्रस्थान के लिये अशुभ थी पर विजयकांक्षी दिगम्बरों ने उस पर थोड़ा भी विचार नहीं किया ।

आचार्य देवसूरि क्रमशः विहार करते हुए पाटण पधारे तो मार्ग में उन्हें अच्छे शकुन हुए । पाटण पहुँचने पर पाटण श्रीसंघ ने नगर प्रवेश का बड़ा भारी महोत्सव किया । सूरिजी ने संघ को धर्म देशना दी पश्चात् राजा सिद्धराज से मिले ।

इधर दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र ने करणावती से विहार किया तो मार्ग में उन्हें बहुत ही अपशकुन हुए पर विजयकांक्षी की भांति किसी की भी परवाह नहीं करते हुए वे पाटण चले आये । दोनों के वाद के लिये राजा व मन्त्री मण्डल को एक कर यह शर्त करवा दी कि यदि दिगम्बर हार जावें तो देश से चोरों के भांति बाहिर निकाल दिये जाय और श्वेताम्बर हार जावें तो पाटण में श्वेताम्बरों की सत्ता के स्थान पर दिगम्बरों की सत्ता स्थापित कर दी जाय ।

बाद में राजा जयसिंह सिद्धराज ने अपने पण्डित कवि श्रीपाल को देवसूरि के पास भेज कर कह लाया कि स्वदेशी हो या परदेशी सब ही पण्डितों के लिये परीक्षा मात्र है तथापि आप ऐसा वाद करें कि हमारे सभा की शोभा बनी रहे । देवसूरि ने कहा—आप विश्वास रक्खें, गुरु महाराज के दिये हुए वास के

मैं दृढ़ता पूर्वक वादी को परास्त कर दूंगा ।

वि० स० ११८१ के वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन वाद प्रारम्भ हुआ । राजानीतिज्ञ राजाने निर्दिष्ट स्थान व समय पर दोनों वादियों को आमन्त्रित किया । दि० कुमुदचन्द्राचार्य छत्र, चंदर आदि आडम्बर के साथ सुख पालकी में वैठ कर वादस्थल में आये । आचार्य देवसूरिको न देख करके वे कहने लगे कि क्या श्वेताम्बराचार्य पहिले ही से डर गया जो सभा में हाजिर न हुआ । इतने में देवसूरि भी आ गये । देवसूरि को देखकर दिगम्बराचार्य बोला कि बेचारे श्वेताम्बर मेरे सामने कितनी देर तक ठहर सकेंगे । देवसूरि ने कहा- वाग्युद्ध में तो श्वान भी विजय प्राप्त कर सकता है ।

इतने थाहड़ और नागदेव नाम के दो श्रावक आये । वे कहने लगे पूज्य आचार्य देव ! मैंने आपसे प्रार्थना की थी उससे भी दुगुना द्रव्य व्यय करने को तैयार हूँ । सूरिजीने कहा—अभी द्रव्य व्यय की आवश्यकता नहीं है कारण, आज रात्रि में ही गुरुवर्य आचार्यश्री चन्द्रसूरिजी ने स्वप्न में मुझे कहा है कि वाद में स्त्री निर्वाण का विषय लेना और वादी वैताल शांतिसूरि ने उत्तराध्ययन की टीका में जैसा वर्णन किया है उसके अनुसार ही वाद करना सो तुम्हारी विजय होगी ।

महर्षि उत्साहसागर और प्रज्ञावन्त राम राजा की ओर से सभासद ।

भानु और कवि श्रीपाल देवसूरि के पक्षकार ।

तीन केशव नाम के गृहस्थ दिगम्बरों के पक्षकार ।

सर्व प्रकार से वाद विवाद योग्य विषयों का निर्णय हो जाने के पश्चात् देवसूरि ने कहा—कुछ प्रयोग कीजिये ।

दिगम्बराचार्य बोले—स्त्री-भव में मुक्ति नहीं होती है । कारण अल्पसत्व स्त्रियां मोक्ष जाने लायक पुरुषार्थ कर नहीं सकती हैं ।

देवसूरि—सभी पुरुष या सभी स्त्रियां एक सी नहीं होती हैं । कई स्त्रियां महासत्व वाली भी होती हैं । माता मरुदेवी मोक्ष गई, सती मदन रेखा आदि सत्व शील महिलाओं ने पुरुषों से भी विशेष कार्य करके बतलाया है । अत. उक्त हेतु स्त्री निर्वाण का बाधक नहीं हो सकता है ।

इस प्रकार के लम्बे-चौड़े वाद विवादानन्तर मध्यस्थों ने स्वीकार कर लिया कि देवसूरि का कहना न्यायानुकूल एवं पूर्ण सत्य है । राजा की ओर से मन्जूर किया गया कि देवसूरि विवादमें विजयशील रहे अत' राजा प्रजा ने वाद्यन्त्रों के साथ देवसूरि का स्वागत करके अपने स्थान पर पहुँचाये ।

सिद्धहेमशब्दानु शासन के कर्ता कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि फरमाते हैं कि यदि देवसूरि रूप सूर्य कुमुदचन्द्र रूप अंधकार को हटाने में समर्थ नहीं होते तो क्या श्वेताम्बर मुनि कमर पर कपड़ा धारण कर सकते ?

दिगम्बर वादी इस प्रकार हार खाकर वहां से चला गया । बाद में पाटण नरेश सिद्धराज ने आचार्य देवसूरि को तुष्टिदान देने लगा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया । अन्त में उस द्रव्य से जिन मन्दिर बनाने का निश्चय हुआ । द्रव्य की अल्पता के कारण उसमें कुछ और द्रव्य मिलाकर मेरु की चूलिका के समान सुन्दर मन्दिर बनवाया जिसके लिये स्वर्ण कलश एवं दण्ड ध्वजा सहित पीतल की मनोहर मूर्ति तैय्यार करवाई । इस मन्दिर की प्रतिष्ठा देवसूरि आदि चार आचार्यों ने की । इससे शासन की पर्याप्त प्रभावना

हुई । इस प्रकार अनेक वादों को जीत करके देवसूरि ने शासन के गौरव को अक्षुण्ण रक्खा ।

देवसूरि वाद विवाद में सिद्ध हस्त थे । चौरासी वादों में विजय प्राप्त करने से आप वादी देव सूरि के नाम से विख्यात हुए । आप विद्या मन्त्र एवं कई प्रकार की लब्धियों में निपुण थे । जैनधर्म के उत्कर्ष के लिये आप कमर कस करके तैय्यार रहते थे । आपश्री ने स्याद्वाद रत्नाकर नामक महान् ग्रन्थ का निर्माण कर साहित्य विश्व पर महान् उपकार किया । अन्त में आप अपने पट्टपर भद्रेश्वर सूरि को स्थापित करके वि० सं० १२२६ श्रावण कृष्णा सप्तमी के दिन स्वर्ग वासी हो गये ।

आपका जन्म ११४३ में हुआ दीक्षा ११५२ में अङ्गीकार की, सूरिपद ११७४ में प्राप्त हुआ और स्वर्गवास १२२६ में हुआ । सर्वायु ८३ वर्ष का पूर्ण किया ।

आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरि

अहेरा के नजदीक ही गुर्जर प्रान्तमें अणहिलपुर नाम के एक विख्यात नगर है जिसके अन्तर्गत धुंधुका नाम का एक अत्यन्त रमणीय ग्राम था जहां पर मोढ़ वंशीय चाच नामके सेठ निवास करते थे । आप श्री की परम सुशीला धर्मपरायणा धर्मपत्नी का नाम पाहिनी था । एकदा माता पाहिनी ने स्वप्न में चिन्ता मणि रत्न देखा और मणि के आवेश में अपने वह रत्न अपने गुरु को दे दिया । इस प्रकार का स्वप्न देख सेठानी हर्ष के मारे फूला गई ।

वहां पर चन्द्रगच्छ रूप सरोवर में राजहंस समान अनेक गुणों से सुशोभित श्रीदेवचन्द्रसूरि विराजमान थे जो प्रद्युम्नसूरि के शिष्य थे । प्रातःकाल होते ही पाहिनी ने उस दिव्य स्वप्न को अपने गुरु की सेवा में निवेदन किया तब गुरु ने शास्त्र विहित अर्थ बतलाते हुए कहा—"हे भद्रे ! जिन शासन रूप महासागर में कौस्तुभमणि के समान तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी जिसके सुचरित्र से आकर्षित हो देवता भी उसका गुणगान करेंगे ।"

कालान्तर में पाहिनी को भी वीतराग बिम्बों की प्रतिष्ठा करवाने को दोहला उत्पन्न हुआ जिसको सुनकर सेठजी ने प्रमोद पूर्वक पूरा किया । समय के पूरे होने पर माता पाहिनीने शुभलग्न में एकदम अलौकिक पुत्र रत्न को जन्म दिया जिसके कई महोत्सव मनाये गये और कुटुम्बी की सलाह के अनुसार बारहवें दिन स्वप्नानुसार 'चांगदेव' नाम स्थापित किया गया । क्रमशः द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ते हुए चांगदेव को पांचवें वर्ष में ही सद्गुरु की सेवा करने की इच्छा उत्पन्न हुई । परिणामतः एक दिन मोढ़ चैत्य में देवचन्द्रसूरि चैत्यवंदन कर रहे थे कि उसी समय माता पाहिनी पुत्र सहित मंदिर में आई । वह प्रदक्षिणा देकर भगवान् की स्तुति कर रही थी कि चांगदेव गुरुके आसन पर जा बैठा । इस कौतूहल को देख कर गुरु ने कहा—भद्रे ! वह महा स्वप्न तुम्हें याद है या नहीं ? देख यह दिव्य स्वप्न के फल की भावी सूचिका है । इस प्रकार कहने के पश्चात् गुरु ने माता के पास से पुत्र की याचना की तब पाहिनी ने कहा—प्रभो ! आप इसके पिता के पास से याचना करें यह पुत्र है । इस पर गुरु कुछ नहीं बोले तब पाहिनी ने उस स्वप्न का स्मरण करके गुरु के वचनों को अनुल्लंघनीय समझ रोकते दुःखित हृदय वाली हो उसने अपने प्यारे पुत्र को गुरु महाराज के चरणों में अर्पण कर दिया । गुरुदेव भी चांगदेव को लेकर के स्तम्भन तीर्थ पर आये । वहां पार्श्वनाथ मन्दिर में माघमास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन ब्रह्ममुहूर्त में और शनिवार के दिन आपको दीक्षा

धर्म स्थित और वृषभ के साथ चन्द्रमा का योग होने पर बृहस्पति लग्न में सूर्य और भौम के शत्रु स्थित रहते हुए अर्थात् सर्वांग शुद्ध शुभ मुहूर्त में श्रीमान् श्रेष्टि उदय के महामहोत्सव पूर्वक गुरुमहाराज ने चंगदेव को दीक्षा दी और उसका सोमचन्द्र नाम रक्खा।

क्रमशः यह बात चाच श्रेष्ठी को ज्ञात हुई तो वह तत्काल कुपित होकर स्तम्भन तीर्थ आया और कर्कश वचन बोलने लगा तब उदय श्रावक ने उनको आचार्यश्री के पास में लेजाकर मधुर वचनों से शान्त किया।

इधर मुनि सोमचद्र ने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा सम्पन्न शक्ति द्वारा शीघ्र ही तर्क शास्त्र, व्याकरण और साहित्य विद्या का अध्ययन कर लिया। इतने में एक दिन एक पद से लक्षपद की अपेक्षा भी अधिक पूर्व का चिन्तवन करते हुए उन्हें खेद हुआ कि—अहो ! मुझ अल्प बुद्धि को धिक्कार है। मुझे अवश्य ही काश्मीर वासी देवी का आराधन करना चाहिये। उक्त विचार से प्रेरित हो उन्होंने गुरु महाराज से प्रार्थना की तो देवी का सन्मुख आना जानकरके उन्होंने (गुरु ने) यह प्रार्थना मान्य की। पश्चात् गीतार्थ साधुओं के साथ मुनि सोमचद्र ने ताम्रलिप्ति से काश्मीर की ओर प्रयाण किया। मार्ग में आये हुए नेमिनाथ के नाम से प्रसिद्ध ऐसे रैवतावतार चैत्य में ठहरकर गीतार्थों की अनुमति से सोमचंद्र मुनि ने एकाग्र ध्यान किया। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थापन करके ध्यान करते हुए मुनि सोमचन्द्र को आधीरात में सरस्वती देवी ने साक्षात् प्रगट होकर के कहा—'हे निर्मल मति वत्स ! तू देशान्तर में मत जा। तेरी भक्ति से सन्तुष्ट हुई मैं यहां पर ही तेरी इप्सितेच्छा पूर्ति कर दूगी।' इतना कह कर देवी भारती अदृश्य होगई। इस प्रकार सरस्वती के प्रसाद से मुनि सोमचद्र सिद्ध सारस्वत व विद्वानों में अग्रसर हुए।

श्रीदेवचन्द्र सूरि ने अपने अन्तिम समय में मुनिसोमचन्द्र को सूरिपदयोग्य जानकरके श्रीसघ के समक्ष कुशल नैमित्तिकों से निकाले हुए शुभ मुहूर्त में सूरिपद अर्पण कर दिया। तभी से मुनिसोमचन्द्र हेमचद्र सूरि के नाम से विख्यात हुए। सूरि पदारूढानतर आपकी मातुश्री ने भी चारित्र यानि दीक्षा अङ्गीकार की और उन्हे श्रीसघ की अनुमति से प्रवर्तनी पद व सिंहासन बैठने की आज्ञा प्रदान की।

एकदा आचार्य हेमचन्द्रसूरि विहार करके अणहिल्लपुर नगरमें पधारे। किसी दिन रयवाडी से निकला हुआ सिद्धराज राजा बाजार में एक बाजू खड़े हुए सूरिजी के पास अंकुश से हाथी को लेजाकर कहने लगा—आपको कुछ कहना है ? तब आचार्य बोले—हे सिद्धराज ! शका बिना गजराज को आगे चलावो। दिग्गज भले ही त्रास को प्राप्त हो पर इससे क्या ? कारण पृथ्वी को तो तुमने ही धारण कर रक्खा है यह सुनकर राजा बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और दोपहर को हमेशा राजसभा में आने की प्रार्थना की। आचार्यश्री के प्रथम दर्शन से ही उसको आनद हुआ व दिग्यात्रा में उसकी जय हुई।

एक दिन मालव प्रान्त को जीत करके राजा सिद्धराज आया तो सब दार्शनिकों ने उसको आशीर्वाद दिया। इस पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि एक श्रवणीय काव्य से आशीष देते हुए बोले—हे कामधेनु ! तू तेरे गोमय-रस से भूमि को लीप दे हे रत्नाकर ! तू मोतियों से स्वास्तिक पूरदे, हे चद्रमा ! तू पूर्ण कुम्भ बनजा, हे दिग्गजों ! तुम अपनी सू ड को सीधी करके कल्पवृक्ष के पत्तों से तोरण बनाओ कारण, सिद्धराज पृथ्वी को जीत करके आता है। इससे तो राजा की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। वह रह रह कर बारम्बार राजसभा में धर्मोपदेशार्थ पधारने के लिए प्रार्थना करने लगा।

एक दिन अवन्तिका के भण्डार की पुस्तकों को देखते हुए राजा की दृष्टि में एक व्याकरण आया

जिसको देखकर गुरु से पूछा-भगवन् ! यह क्या है ? आचार्य श्री ने कहा—यह भोज व्याकरण नाम से प्रसिद्ध है । विद्वानों में शिरोमणि मालवपति ने इस विषयों में अनेकों ग्रंथ बनाये हैं । यह सुनकर राजा ने आचार्य श्री से लोकोपकारार्थ नवीन व्याकरण बनाने की प्रार्थना की । सूरिजी ने कहा—राजन् काश्मीर में भारतीदेवी के भण्डार में व्याकरण की आठ पुस्तकें हैं उनको आप अपने आदमी भेज करके मंगावें जिससे व्याकरण शास्त्र रचने में सुविधा हो ।

गुरु के वचनों को श्रवण करके राजा ने अपने आदमियों को काश्मीर देश में भेजे । प्रवर नाम के ग्राम में सरस्वती देवी की चंदनादिक से पूजा करने लगे । इससे संतुष्ट होकर देवी ने अपने अधिष्ठायक को आदेश दिया कि—श्वेताम्बर नाम श्री हेमचन्द्रसूरि मेरे ही अनुरूप हैं अतः उनके लिये व्याकरण की आठों पुस्तकें देकर इनको सम्मान पूर्वक विदा करो ।

आठों पुस्तकों को लेकर वे सब वे अणहिलपुर आये और राजा के सम्मुख उस चमत्कार पूर्ण घटना का वर्णन करने लगे तो राजा को आश्चर्य के साथ ही हर्ष एवं अपने राज्य में वर्तमान ऐसे गुरु के लिये गौरव पैदा हुआ ।

आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरि ने आठों व्याकरण का अवलोकन करके "सिद्धहैम" नामका नवीन एवं अद्भुत व्याकरण बनाया जिसको लिखवा २ कर राजा ने बहुत दूर तक फैलाया । काकल नाम के आठ व्याकरण के ज्ञाता विद्वान् को उस व्याकरण का अध्यापन कराने के लिये नियुक्त किया ।

एक दिन पण्डितों से शोभायमान राजा की राजसभा में एक चारण आया । उसने अपभ्रंशभाषा में एक गाथा बोली ।

हेमसूरि अच्छाणिते ईसरजे पण्डिआ । लच्छिवाणि मुहकणि सांपइ भागी मुहमरुम ॥

इस गाथा को तीन बार बोलनेसे सूरिजीने उसको तत्काल के वास्ते ३ हजार रुपया इनाम दिलवाया।

एक दिन राजा सिद्धराज ने गुरु महाराज से पूछा—अहो भगवन् ! आपके पट्ट योग्य अधिक गुणवान् शिष्य कौन है ? आचार्यश्री ने कहा—बुद्धिशिरोमणि रामचन्द्र नामक मेरा शिष्य है जो समस्त कलाओं में पारंगत एवं कीर्तन से सम्मानित है । उसी समय आचार्य ने राजा को उस शिष्य बताया जो शिष्य ने राजा की स्तुति करते हुए कहा—

मात्रायाप्यधिकं किञ्चिन न सहन्ते जिगीषवः । इतीव त्वं धरानाथ ? धारानाथ ममाकृथाः ॥

इससे राजा सन्तुष्ट हुआ और आचार्यश्री के समान ही शासन प्रभावक होने की भावना प्रगट की

इधर ईर्षालु भागवतलोग सूरिजी के उपदेश व अलौकिक पाण्डित्य जन्य प्रतिभा से असूया को धारण करके राजा को उनके विपरीत अनेक तरह से भ्रम में डालने का प्रयत्न करने लगे पर मुग्ध राजा उनकी ओर उपेक्षा ही करता रहा । एक दिन महाक्षोपाय आचार्यश्री के व्याख्यान में नेमिनाथ चरित्रान्तर्गत पाण्डवों का चरित्र चल रहा था । उसमें पाण्डवों के शत्रुंजय पर सिद्ध होने का वर्णन आया तो ब्राह्मण लोग वेदव्यास विरचित महाभारत से विपरीत प्रसङ्ग को सुनकर राजा से कहने लगे कि अहो स्वामिन् ! वेदव्यास ने अपने भविष्य ज्ञान से युधिष्ठिरादिक का अद्भुत वृत्तांत कहा है उसमें अन्तिम समय में हिमालय पर्वत पर जाने व केदार में रहे हुए शंकर आदि के अर्चन पूजन से अन्तिम आराधना करने का उल्लेख है । पर ये श्वेताम्बर मुनि विपरीत भ्रम फैलाकर जन समाज को धोखे में डाल रहे हैं अतः इसकी तलाश होनी

चाहिये। ईर्ष्यालु ब्राह्मणों के मुख से उक्त बात सुन कर राजा ने उचित विचार करने का आश्वासन देकर उन्हें विदा किया।

इधर राजा ने हेमचन्द्राचार्य को बुला कर पूछा—अहो भगवन् ! क्या पाण्डवों ने जैन दीक्षा ली, और शत्रुंजय पर परमपद प्राप्त किया ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है ?

आचार्य ने कहा—हाँ, उल्लेख तो है पर यह नहीं कहा जा सकता कि वेदव्यास रचित महाभारत में वर्णित हिमालय पर गये हुए ही ये पाण्डव हैं या अन्य हैं।

राजा ने पुनः प्रश्न किया—आचार्यदेव ! क्या पाण्डव भी पहिले बहुत से हो गये हैं ? सूरि-बोले— राजन् ! मैं कहता हूँ सो ध्यान पूर्वक सुनिये। व्यास रचित महाभारत में गांगेय पितामह का वर्णन आता है। उन्होंने युद्ध में प्रवेश करते हुए अपने परिवार को कहा था कि— जहां अबतक किसी का अग्नि संस्कार न हुआ हो वहा मेरा अग्नि संस्कार करना" पश्चात संग्राम में भीष्म पितामह प्राण मुक्त हुए तो उनके वचनानुसार उनके शव को पर्वताग्रभाग पर कुटुम्ब के लोग अग्नि संस्कार के लिये ले गये जहांपर कि मनुष्यों का सञ्चार भी नहीं होता था पर वहांभी दिव्य वाणी हुई कि—

अत्र भीष्म शतं दग्धं पाण्डवानां शतत्रयम्। द्रोणाचार्य सहस्रं तु कर्णसंख्या न विद्यते ॥

अर्थात्—यहा सौ भीष्म जलाने में आये हैं, तीन सौ पाण्डव और हजार द्रोणाचार्य बालने में आये हैं। उसी प्रकार कर्ण की सख्या तो हो ही नहीं सकती है।

उक्त प्रमाणानुसार उस समय जैन पाण्डव भी हो सकते हैं कारण, शत्रुञ्जय पर उनकी प्रतिमाएं हैं। नासिक के चद्रप्रभ मन्दिर में व केदार महातीर्थ में भी पाण्डवों की प्रतिमाए हैं।

हेमचन्द्राचार्य के शास्त्रसम्मत युक्ति पूर्ण समाधान से राजा बहुत प्रसन्न हुआ उसके मन में सूरिजी के प्रति अधिकाधिक श्रद्धा एवं स्नेह पूर्ण सद्भावनाए पैदा होने लगी।

एक समय आमिग नामका राजपुरोहित क्रोध व ईर्ष्या के वश राजसभा में विराजमान आचार्यश्री को कहने लगा कि—तुम्हारा धर्म शम और कारुण्य से सुशोभित है पर उसमें एक न्यूनता है कि आप लोगों के व्याख्यान में स्त्रियां सर्वदा शृंगार सजकर के आती हैं और तुम्हारे निमित्त अकृत और फ्रासुक आहार बनाकर आपको देती हैं तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य किस तरह से स्थिर रह सकता है ? कारण—

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो ये चाम्बुपत्राशना स्तेऽपि। स्त्रीमुख पङ्कजं सललित दृष्टैव मोहंगताः ॥
आहारं सुदृढ़ (सुघृतं) पयोदधियुतं ये भुंजते मानवा।
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यःप्लवेत्सागरे ॥

जल फल और पत्र का आहार करने वाले विश्वामित्र और पराशर मुनि स्त्री के बिलास युक्त मुख को देख करके मोह मूढ़ बन गये तो दूध दधि रूप स्निग्ध आहार भोगी मनुष्यों का इन्द्रिय निग्रह तो समुद्र में विन्ध्याचल पर्वत के तैरने जैसा है।

आचार्यश्री ने कहा—हे पुरोहित ! तुम्हारा यह वचन युक्त नहीं है क्योंकि चित्त वृत्तियें विभिन्न प्रकार की होती हैं जब पशुओं में भी विचित्रता (भिन्नता) दृष्टिगोचर होती है तब चैतन्य युक्त मनुष्य की क्या बात ? कारण—

सिंहोबली हरिणशूकरमांस भोजी, संवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम् ।
पारापतः खर शिलाकण भोजनोऽपि कामी भवत्यनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः ॥

अर्थात् बलिष्ठ सिंह हरिण और सूअर के मांस को खाता हुआ भी वर्ष में एक बार रति सुख को भोगता है और कबूतर शुष्क धान्य खाने वाला होने पर भी प्रतिदिन कामी होता है; इसमें क्या कारण है ?

इस उत्तर का राजा व राजसभा के पण्डितों पर बहुत ही प्रभाव पड़ा । "आचार्य हेमचन्द्रसूरि और पाटण का राजा सिद्धराज जयसिंह का चरित्र बड़ा ही चमत्कारी है साथ में एक देवबोध भागवताचार्य का विस्तार से वर्णन किया है पर हमारा संक्षिप्त उद्देश्य के अनुसार हमने यहाँ सारांश ही लिखा है चाहे जैन धर्म के कितने ही द्वेषी क्यों न हो पर उनके मुख से भी साहस निकल ही जाता है जैसे कि

पातु वो हेमगोपालः कंबलं दण्डमुद्वहन् । षड्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैनगोचरे ॥ १ ॥

राजा सिद्धराज के सन्तान नहीं थी अतः वह उदासीनता धारण कर आचार्य हेमचन्द्रसूरि के साथ तीर्थ यात्रार्थ निकल गया पर राजा पैदल चलता था एक समय राजा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि आप वाहन पर सवारी करावें ? सूरिजी ने इस बात को स्वीकार नहीं करके अपना साधु धर्म का परिचय करवाया इस पर राजा ने भक्ति के वश होकर कहा कि आप कह दो सूरिजी ने कहा हम भिक्षुक हैं । इस पर राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ । पर उस दिन से सूरिजी का और राजा का ३ दिन तक मिलाप नहीं हुआ तब राजा ने सोचा कि सूरिजी गुस्से हो गये होंगे राजा चल कर सूरिजी के तंबु में आये वहाँ सूरिजी आविल कर रहे थे जो पानी में सूखी रोटी भिगोकर खा रहे थे जिसको राजा ने देखा तो उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा राजा ने सूरिजी से प्रार्थना की भगवान् मेरे अपराध की क्षमा बक्षीस करो इस पर सूरिजी ने कहा कि ।

'भुंजी महीश्वर भैक्ष्य जीर्णं वासो वसी महि शयी महि पृष्ठे कुर्वी महि किमीश्वरैः ।'

हम भिक्षा लाकर भोजन करते हैं जीर्ण वस्त्र पहनते हैं और भूमि पर शयन करते हैं फिर हमें राजा से क्या प्रयोजन है । सूरिजी की निःस्पृहता देख राजा की बड़ी श्रद्धा हो गई । राजा ने सूरिजी का बड़ा भारी सत्कार किया बाद राजा सूरिजी के साथ शत्रुंजय पर गये और राजाने भाव सहित युगादीश्वर की पूजा कर बारह ग्राम भेंट (अर्पण) किये और अपने जन्म को कृतार्थ माना । बाद गिरनारतीर्थ जाकर भगवान् नेमिनाथ के चरण युगल की पूजा की राजाने नेमिनाथ का उद्धार देखकर खुशी मनाई इधर सज्जन मंत्री ने कहा नरेश ! इसका पुन्य आपने ही उपार्जन किया है कारण नौ वर्ष पूर्व में यहाँ का सूबा था और राज्य की आमद से व्यतीत सत्ता द्रव्य लगा कर तीर्थ का उद्धार करवाया था आपकी मर्जी में न हो तो मेरे से अभी द्रव्य ले लिरावें ? राजा ने उसका बड़ा भारी अनुमोदन किया और रत्न सुवर्ण पुष्पादि से पूजा कर कर अर्थोंतार्थ ग्राम राजा ने दिये वह अभी तक चलती हैं बाद सूरिजी के साथ राजा प्रभासपट्टन शिव दर्शनार्थ गये और सूरिजी भी साथ में थे सूरिजी ने शिवजी की स्तुति की ।

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्य भिधया यया तया ।
वीत दोष कलुषः स चेद् भवानेक एव भगवन्नमोस्तु ते ॥ १ ॥

किसी भी समय किसी भी तरह किसी भी नाम से क्यों न हो पर जो आप दोष कलुष से रहित हो तो हे भगवान् ! आप और शिव एक ही हो आपको मेरा नमस्कार हो । यहाँ से क्रमशः फिर सर्व संघ

की चिन्ता सहित अंबा देवी के दर्शन पूजन किया उस समय आचार्यश्री ने अष्टम तप कर देवी की आराधना की जिससे देवी आई और कहा कि राजा के भाग्य में सवान नहीं है राजा के भ्राता का पुत्र कुमारपाल है वह पुन्य प्रतापी और राज्य के योग्य है और भी नये राजाओं को जीतकर नाम कमावेगा इत्यादि। बाद सूरिजी से राजा ने सब हाल सुन कर वहा से पाटण आ गये।

क्षत्रियों में शिरोमणि देवप्रसाद जो राजा करण का भाइ था उसका पुत्र त्रिभुवनपाल और उसका पुत्र कुमारपाल जो राज लक्षण कर सयुक्त था देवी ने भी उसके लिये ही कहा था पर फिर भी राजा ने निमितादि शास्त्रों से निर्णय किया तो उन्होंने भी यही बतलाया। भवितव्यता बलवान होती है। सिद्धराज का कुमारपाल पर द्वेष था और उसको मरवा डालने का निश्चय किया था पर कुमारपाल को खबर होने से वह शरीर के भस्म लगा जटा बढ़ा कर एवं शिव भक्त होकर निकल गया। एक समय किसी ने आकर राजा को कहा कि यहाँ ३०० तापस आये हैं। जिसमें कुमारपाल भी है आप सबको भोजन के लिए आमन्त्रण करके देखें जिसके पैरों के चैत्य पद्म चक्र ध्वजादि चिन्ह हों वही तुमारा वैरी कुमारपाल है ऐसा समझ लेना। ठीक राजा ने सब तोपसों को भोजन का आमन्त्रण दिया और उनके पैर भी धोये जब कुमारपाल का वारा आया तो उसके पैरों में पद्मादि शुभ चिन्ह देख कर राजा जाण गया की यही मेरा दुश्मन है कुमारपाल भी समझ गया अत. वह अकस्मात् कमंडल लेकर चला तो वहाँ से हेमचन्द्रसूरि के उपाश्रय गया वहाँ ताड़ पत्रों का ढेर लगा हुआ था उसमें उसको छिपा दिया राजा के आदमी आये देखा पर नहीं मिला अतः चले गये। बाद किसी समय कुमारपाल जारहा या तो राजा के सवारों ने उसका पिछा किया इतने में एक कुम्हार का घर आया कुमारपाल के कहने से उसने अपने निवाड़ा में छिपा लिया। जब सवार निराश होकर चले गये तब कुम्हार के वहाँ से निकल कर कुमारपाल चल धरे और वह खम्मात नगर में आया वहाँ एक उदायन नाम का बड़ा ही धनाढय मंत्री राज्य के काम करता हुआ रहता था उसके पास एक ब्रह्मचारी लड़का रहता था उसने मंत्री के पास जाकर कुमारपाल से सुना हुआ सब हाल कह सुनाया और कहा कि कुमारपाल भुखा प्यासा है कुछ खाने को दें ? पर उदायन ने राज भय से कुछ भी नहीं दिया और कहा कि उसको कहदें कि शीघ्र ही चला जावे। ठीक कुमारपाल चार दिनों का भुखा प्यासा था फिर भी वह चल कर हेमाचार्य के उपाश्रय में आया हेमाचार्य वहाँ चातुर्मास किया था कुमारपाल का आदर कर कहा कि हे भवी नरेश। तुमको सातवे वर्ष में राज की प्राप्ति होगी। इस पर कुमारपाल ने गुरु का परम उपकार माना और उसके मांगने पर गुरु ने श्रावक को कह कर ३२ (चलनी रुपये) दिलाया और कहा कि अब तुम्हारे पास दरिद्र नहीं आवेगा। बस कुमारपाल गुरु को नमस्कार कर वहां से देशान्तर चला गया कभी कापड़िया के रूप में कभी यति सन्यासी के रूप में कभी अवधूत के रूप में भ्रमन करता था कुमारपाल की राणी भोपाल देवी भी पति का पिच्छा नहीं छोड़ा वह भी प्रच्छन्नपणा उनके पिच्छे पिच्छे भ्रमन किया करती थी इस प्रकार कुमारपाल ने सुख दुख का अनुभव करते हुए सात वर्ष ज्यों त्यों कर निकाल दिये।

सवत् ११९९ में सिद्धराजा का देहान्त हो गया। न जाने कुमारपाल के भाग्य ने ही उसको खबर दी हो वह नगर के बाहर श्रीवृक्ष के नीचे आकर बैठ गया ठीक उस समय दुर्गादेवी ने मधुर स्वर से कुमारपाल को गाना सुनाया कुमारपाल ने कहा हे ज्ञाननिधान देवी। यदि मुझे राज मिलने को हो तो तू मेरे मस्तक पर बैठकर मधुर गाना सुना। ठीक देवी ने ऐसा किया और कहा कि निश्चय ही तुमको राज मिलेगा बाद

किसी विक्रमसिंह ने राजा कुमारपाल को जान से मार डालने के लिये षड्यन्त्र रचा पर राजा के प्रबल पुन्य प्रताप के सामने दुश्मनों की क्या चलने वाली थी उस षड्यंत्र से राजा बाल बाल बच गया और सेना लेकर अजयपुर के किल्ला पर धावा बोल दिया खूब जोरदार युद्ध हुआ आखिर इष्ट के प्रभाव से अर्णोराज को पकड़ कर कैद कर लिया और नगर खजाना वगैरह खूब लूटा राजा कुमारपाल बड़ा ही उदार था जो लूट में जिसको माल मिला वह उसको दे दिया कि कई पुश्तों तक भी खाया हुआ नहीं खूटे। तत्पश्चात् विजय के नकारे बजाते हुये राजा ने पट्टन में बड़े ही महोत्सव के साथ प्रवेश किया जनता सिद्धराज की अपेक्षा कुमारपाल की अधिक प्रशंसा करने लगी।

राजा नगर प्रवेश के समय जब भगवान् अजितनाथ का मन्दिर आया तो वहां जाकर सुगंधी धूप पुष्पादि से भगवान् का पूजन किया बाद पार्श्वनाथ के मन्दिर में पूजन की तत्पश्चात् राज महिलों में प्रवेश किया याचकों को पुष्कल दान दिया और जिन लोगों ने युद्ध में काम दिया उन सब की कदर की एवं पुष्कल पारितोषक दिया।

षड्यन्त्र रचने वाले विक्रम को बुला कर उसके कुकृत्य याद दिला कर कैद किया और उसके भाई रामदेव के पुत्र यशोधवल को चंद्रावती का सामंत राज बनाया।

एक समय राजा कुमारपालने वाग्भट्ट मन्त्री को कहा कि धर्मके लिये कौनसे गुरु ठीक है कि अपनेकों सदुपदेश दे सकें ? मन्त्रीने भगवान् हेमचद्रसूरि का नाम बतलाया राजाने पूर्व स्मृति हो आने से मन्त्रीसे कहा कि शीघ्र गुरुजी को बुलाओ अतः मन्त्री गुरुजी को लेकर राजभुवनमें आया राजा खड़े होकर सूरिजी का सत्कार किया और प्रार्थना की भगवान् मुझे जैनधर्म का उपदेश दें। सूरिजीने अहिंसापरमोधर्म. के विषयमें खूब जोरों से उपदेश दिया मांसादि अभक्ष पदार्थों का विवेचन किया जिसका त्याग करना राजा ने स्वीकार किया बाद राजाने चैत्यवन्दन सामयिक पौषध प्रतिक्रमणादि धर्म क्रिया का एवं तात्त्विक ज्ञान सम्पादन किया जिससे जैनधर्म पर राजा की अटल श्रद्धा हो गई एक दिन राजनेगुरुजी से कहा भगवान् मैंने इन दांतों से मांस खाया है अत. इनको गिरा देना चाहता हूँ सूरिजीने कहा हे राजन् इस प्रकार अज्ञान कष्ट से पापों से छुट नहीं सकता है अत. ३२ दांतों के स्थान् उपवन में ३२ जिन मन्दिर बना कर कृतार्थ हो राजा ने ऐसा ही किया। जो ३२ सुन्दर जिनमन्दिर बना कर सूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई।

राजा के नैपाल देशसे २१ अंगुल की चन्द्रकान्त मणि भेटमें आई थी अत राजाने वाग्भट्ट को कहा कि तेरा बनाया मन्दिर मुझे दे दे कि मैं इस मूर्ति को स्थापन करू उत्तर में मन्त्री ने बड़ी खुशी बतलाते हुए कहा कि जरूर मेरा मन्दिर लिरावें।

मन्त्री ने राजा को याद दिलाई कि मेरा पिता अन्त समय कीर्तिपाल से शत्रुञ्जय के उद्धार के लिये कह गये थे और आपने भी फरमाया था कि हमारे खजाने से द्रव्य लेकर जीर्णोद्धार करवादो। इसलिये आपको पुन. स्मरण करवाया है। राजा ने बड़ी खुशी के साथ मन्त्री को इजाजत देदी बाद मन्त्री आदि बहुतसे धर्म भावना वाले बड़े बड़े सेठिये चलकर श्रीशत्रुञ्जय पर गये वहां का मन्दिर वगैरह देखा शिल्पज्ञों को भी दिखाया नकशा भी तैयार करवाया। सब लोग डेरा तबू लगा कर वहां ठहर गये भगवान् की पूजा भक्ति करते हुये जीर्णोद्धार का काम चालू कर दिया।

पालीताना के पास में एक गामड़ा था वहां एक दालिद्र वाणिया (श्रावक) बसता था उसके पास

केवल ६ द्रम्म (टका) थे जिससे घृत लाकर संघ के मकान में बेचता था जिससे उसको एक रुपया १८ द्रम्म पैदास हुई जिसमें एक रुपया का केसर धूप पुष्प वगैरह लेकर प्रभु की उत्साहपूर्वक पूजा की शेष १ द्रम्म बचा वह पहले ६ के साथ मिला कर सात द्रम्म बचे ही आपत्ति से बाँध लिये थे उसके लिये सब सब जितने थे वणिक् थे तो ऐसा ही होता है ।

मन्त्री को देखने के लिये वह वणिक् उत्सुक उसके तंबू के दरवाजा पर आकर खड़ा हुआ देनों से अन्दर पैठ हुआ मन्त्री उसके देखने में आया तो उसने पूर्व संचित पुण्य पाप के फलों पर विचार किया कि कहाँ तो मेरे पास तो कि पूरी रोटी भी नहीं और कहाँ इसका पुन्य कि राज सभी छत्र चामरयुक्त राजा जागीर दार भी इसकी सेवा में खड़े रहते हैं फिर भी यह दादा के मन्दिर का जीर्णोद्धार कर पुण्य का संचय करते हैं इत्यादि विचार करता था इतने में चपरासी आकर उस मैले कपड़े वाले को वहाँ से हटा दिया जिसको मंत्री देखता था उसके बाद मंत्री अपने पास बुला कर उस वणिक्से सब हाल पूछा उसने एक रुपया के पुष्पादि से पूजा करने का हाल सुनाया अतः मन्त्री ने अपना साधर्मी भाई समझ कर आसन पर बैठाया इतने में जीर्णोद्धार की टीप लेकर कई सेठिये आये और हस्ताक्षर करने लगे मन्त्री वणिक्को पूछा कि तुम्हारे भी कुछ करने का है । उसने कहा कि ७ द्रम्म मेरा लगादो तो मैं कृतार्थ हो जाऊं । इसको देख मन्त्री ने बड़ा ही आश्चर्य किया कि इसने बड़ी उदारता की अपने पास का सब का सब द्रम्म दे दिया यह तो मेरा साधर्मी भाई है अतः आदमी को कह कर भंडार से तीन बढ़िया रेशमी वस्त्र और ५०० द्रम्म मंगा कर उसको इनाम में देने लगे। इस पर वह गरीब श्रावक गुस्सा कर बोला कि क्या आप धनवान इसलिये हुये हैं कि गरीबों के पुण्य को मूल्य दे खरीद कर उनको परभव में भी गरीब ही रखना ।

मन्त्री सुन कर आश्चर्य में डूब गया और उसको अपने से भी अधिक धर्मात्मा समझ कर नमस्कार किया बाद वह गरीब अपने घर पर गया और औरत को सब हाल कहा पर औरत तो स्वभाव भिन्न किन्तु न जाने उसको उस दिन सद्बुद्धि कहाँ से आई कि पतिके सहमत होकर सुकृत का अनुमोदन किया बाद पतिने कहा कि अपनी गाय बार बार खूंटा उखेड़ कर भाग जाती है अतः खूंटा को भूमि में खोदलो ! बस पति ने हाथ में कुदाली लेकर भूमि खोदने लगा कि अंदर से ४००० सुवर्ण मुद्रिकाए निकली गरीब वणिक ने अपनी स्त्री को बुला कर द्रव्य बताया तो उसने भी खुश होकर कहा कि यह आदीश्वर बाबा की पूजा का फल है अतः यह द्रव्य अपने नहीं रखना तब वणिकने मंत्री को अपने घर पर बुला कर कहा कि इस द्रव्य को ग्रहण करो ! मन्त्री ने कहा हमारे काम का नहीं तेरे भाग्य का है अतः तूही काम में ले पर वणिक तो मंत्री को कहता ही रहा इतने में दिन पूरा हो गया रात्रि में कपर्दि यक्ष ने आकर वणिक को कहा मैंने तेरी भक्ति से प्रसन्न होकर यह द्रव्य दिखाया है यह तेरे ही तकदीर का है दूसरे दिन दम्पति ने तीर्थ पर जाकर खूब उत्साह से प्रभु पूजा की इत्यादि और ।

मन्त्री का कार्य सम्पूर्ण हुआ कि सं० १२११ में आचार्य हेमचन्द्रसूरि के हाथों से प्रतिष्ठा करवा कर पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण की । राजाकुमारपाल ने कुमार विहार बना कर चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति की तथा ३२ अन्य मन्दिरों की हेमचन्द्र से प्रतिष्ठा करवाई राजा ने अपने राज से प्रायः दुर्व्यसन को दूर किया अपुत्रियों का द्रव्य नहीं लेने की प्रतिज्ञा की ।

कल्याण कटक के राजा की गुजरात पर चढ़ाई करने की खबर कुमारपाल को मिली तो गुरु को

पूछा, आचार्यश्री ने कहा कि शासनदेवी आपकी रक्षा करेगी। सूरिजी ने सूरि मंत्र का जाप किया अधिष्टायक आया और कहा विना उद्यम ही स्वय संकट दूर होगा। चार दिनों में ही सुना कि राजा मृत्यु शरण हो गया है। राजा को गुरु के ज्ञान पर आश्चर्य हुआ।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपनी जिन्दगी में बहुत ग्रन्थों का निर्माण किया था जिसको लिखाने के लिये राजाकुमारपाल ने प्रयत्न किया पर ताड़ के वृक्ष अग्नि से दग्ध हो गये थे प्रदेश से मंगाये वह भी नष्ट हो गये व इस पर राजा को विचार हुआ कि अहो मैं कैसा हतभाग्य हूँ कि गुरु महाराज ने तो इतने ग्रन्थ बनाये तब मैं लिखाने में भी असमर्थ इत्यादि शासनदेवी से प्रार्थना करने से सब वृक्ष पत्र सहित हो गये जिस पर शास्त्र लिखवावे। गुरु उपदेश से राजा ने तारगा पहाड़ पर भगवान् अजितनाथ का उतग मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से हुई।

मन्त्री उदायण का बड़ा पुत्र अवड बड़ा ही पराक्रमी था जिसने कुंकण के राजा माल्लकार्जुन का शिर छेद कर डाला और भी कई स्थान पर दुश्मन का दमन कर पाटण की प्रभुता स्थापन कर राजभक्ति का परिचय दिया।

भरोंच के मुनिसुव्रत मन्दिर जीर्ण हो गया था जिसका उद्धार अर्बड की ओर से हुआ बत्तीस लक्षण पुरुष के लिये योगनियें अर्बड को कष्ट देने लगी इससे अर्बड ने गुरु महाराज को कहा। गुरू महाराज ने देवी देवतों को संतुष्ट कर अवड़ को कष्ट मुक्त किया भरोंच का जीर्णोद्धार करवा कर प्रतिष्ठा कराई। राजा ने गुरू महाराज से सम्वक्त्व धारण किया उस समय राजा ने कहा कि —

तुझाण किं करोहं तुम्भे नाहा भवो यदि गयस्य सयल धणाइं समेउ मइ तुह्य स माप्पिउ आप्पा।

मैं आपका दास हूँ और भवसागर में आप ही एक मेरे नाथ हो भले धन राज भी मुझे सब मिला है तथापि मैंने मेरी आत्मा तो आपको ही अर्पण की है अतः राजा ने अपना राज सूरिजी को अर्पण कर दिया पर सूरिजी ने कहा हे राजन्! हम निर्ग्रन्थ निःसगी को राज से क्या प्रयोजन है फिर भी राजा ने नहीं मानी तब मन्त्रियों ने बीच में पड़ कर यह निर्णय किया कि आज से राजा राज सम्बन्धी कोई भी विशेष कार्य करेगा वह आपको पूछ कर ही करेगा।

एक समय राजा हस्ती पर आरूढ हो बाजार से जा रहा था एक पतित साधु वेश्या के कन्धे पर हाथ रख कर घर से निकला जिसको राजा हस्तीपर रहा हुआ नमन किया इस बात की सूरिजी को खबर हुई तो आपने व्याख्यान में कहा कि—

पासत्थाई वंदमाणस्स नेव किची निज्जरा होइ काया किलेसे एमेव कुणइ तह कम्म बंधवा।

इधर राजा के नमस्कार से उस साधु को बड़ी भारी लज्जा आई कि वह दुर्व्यवहार को छोड़ मार्ग पर आया अन्त में अनशन किया जिसकी खबर राजा को मिली तो राजा अपनी राणीयों वगैरह को लेकर उस मुनि को वन्दन करने को आया मुनि ने कहा राजन्। आप मेरे गुरु हो कि मुझे दुर्गति में गिरते को मार्ग पर लाये हो इत्यादि।

आचार्यश्रीने राजा को विशेष तत्व बोध के लिये योगशास्त्र, त्रिषष्ट सिलाग पुरुष चरित्र, ग्रन्थों की तथा वीतराग स्तोत्रादि की रचना की जिसको पढ़ कर राजाने अच्छा बोध प्राप्त किया राजा ने जैनधर्म की प्रभावना

धर्म प्रचार करने में कुच्छ भी कसर नहीं रखा हेमाचार्य जैसे गुरु और कुमारपाल जैसे भक्त फिर कमी ही क्या १८ देशों में राजा कुमारपाल की आज्ञा वर्त रही थी वहाँतक कुमारपाल प्रत्यीयों अंचा ही थी कि कोई मनुष्य तो क्या पर पशु भी पिया जाया पानी नहीं पी सके तथा राजा ने उद्घोषणा करा दी थी कि मेरे राज्य में कोई भी हलता चलता जीव को मार नहीं सकेगा पर एक समय एक वृद्धिया ने अपनी पुत्री के बाल समारते समय एक जू को हाथ से मार डाली जिसको प्राण दंड देने का हुक्म हो गया पर पुनः दया कर दण्ड बदले स एक जिन मन्दिर उसने बनाया जिसका नाम युका प्रसाद रखा ।

पूर्व जमाने में बीतभय पट्टन के राजा उदायन के प्रभावती रांणी थी उसके वहाँ भगवान् महावीर की मूर्ति थी पर देवयोग से पट्टन दट्टन होने स मूर्ति भूमि में दब गई सूरिजी के व्याख्यान से ज्ञात होकर राजा ने अपने आदमियों को भेज कर वहाँ की भूमि खुदवाई जिससे मूर्ति भूमि से निकली जिसको पट्टन में बड़े ही महोत्सव के साथ राजा ने अपने कल्लेवर गृह में रत्न का मन्दिर बनाना चाहा पर सूरिजी ने मनाई कर दी की कल्लेवर घर में इतना बड़ा मन्दिर न हो । राजाने दूसरी जगह मन्दिर बनाया । और उस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुरुजी से करवाई ।

जैसे सम्राट् सम्प्रति ने जिन मन्दिरों से मेदनि मंडित करवादी थी वैसे कुमारपाल ने भी पट्टन तारंगा जालोर वगैरह सर्वत्र हजारों मन्दिर बना कर जैन धर्म की महान् प्रभावना की थी ।

पूज्याचार्य देव के उपदेश से परमार्हत राजा कुमारपाल ने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय गिरनारादि की यात्रार्थ बड़ाभारी विराट् संघ निकला जिसमें राजा की चतुरंगनी सेना एवं सर्व सामग्री तो था ही साथ राजान्तेवर भी था तथा पूज्याचार्यदेवादि श्वेताम्बर दिगम्बर साधु साध्वियाँ और अन्य साधु एवं लाखों नर नारियों के कारण उस समय भारत में १८०० क्रोड पति थे और लक्षाधिपतियों की तो गिनती भी नहीं थी जब हेमचन्द्राचार्य जैसे गुरु कुमारपाल जैसे भक्त राजा फिर उस संघ में आने से कौन वंचित रहे केवल पाटण का संघ ही नहीं पर और भी अनेक ग्राम नगरों के श्रीसंघ भी इस यात्रा में शामिल हुए थे संघ का ठाठ दर्शनीय था बहुत से भावुक तो ब री पाल नियमों का पालन करते थे तब राजा कुमार पाल गुरु महाराज की सेवा में पैदल चलता था क्रमशः चलते हुए जब तीर्थ का दूरसे दर्शन हुआ तो कुमारपाल ने बधाया तत्पश्चात् चतुर्विध श्रीसंघ ने युगादीश्वर भगवान का दर्शन स्पर्शन तथा पूजा कर अपने कर्मों का प्रक्षालन कर अपने को बड़ी भाग्य समझे । तीर्थ पर अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण स्वामिवात्सल्यादि शुभ कार्य कर संघ पुनः पाटण आया वहाँ भी मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव स्वामिवात्सल्य पूजा प्रभावना और साधर्मी भाइयों को पहरावनी दे कर राजा ने अपनी भक्ति का यथार्थ परिचय दिया । धन्य है भगवान् हेमचन्द्रसूरि को और धन्य है जैन धर्म का उद्योत करने वाले राजा कुमारपाल को सम्राट सम्प्रति के पश्चात् जैनधर्म का उद्योत करने वाला एक राजा कुमारपाल ही हुआ था इनको अन्तिम राजा कह दिया जाय तो भी अत्युक्ति नहीं है ।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि के पुनीत जीवन के विषय में बड़े आचार्यों ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है पर मैंने यहां प्रभाविक चरित्र के अनुसार संक्षिप्त से ही केवल दिग्दर्शन मात्र ही करवाया है । आचार्य हेमचन्द्रसूरि का जन्म वि० सं० ११४५ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के शुभ लग्न में हुआ था सं ११५० वर्ष पांच वर्ष की बाल्यावस्था में दीक्षाली और सं ११६६ वर्ष गुरु ने सर्व गुण सम्पन्न जान कर आचार्य पद

पर अलंकृत किये और ७१ वर्ष जिन शासन की बड़ी २ सेवायें की सं० १२२९ में आप स्वर्गवासी हुए। जैन ससार में आप साढ तीन करोड़ो ग्रन्थ के निर्माण कर्ता कालिकाल सर्वज्ञ के नाम से बहुत प्रसिद्ध हैं।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि का समय चैत्यवासियों का समय था उस समय कई चैत्यवासी शिथिलाचारी थे और कई चैत्यवासी सुविहित उग्रविहारी भी थे आचार्य हेमचन्द्रसूरि के चरित्र से पाया जाता है कि आप मध्यम स्थिति के आचार्य थे आप जैसे उपाश्रय में ठहरते थे वैसे कभी २ चैत्य में भी ठहरते थे जैसे कि—

श्रीरैवतावतारे, च तीर्थे श्रीनेमिनामतः। सार्थे माधुमतेतत्रावात्सीद वहित स्थितिः ॥ २४ ॥

अर्थात् आचार्य श्री खम्भात से विहार कर पहले मकाम नेमि चैत्य में किया था इससे स्पष्ट पाया जाता है कि हेमचन्द्राचार्य चैत्यवास के विरुद्ध नहीं पर सहमत्त ही थे यही कारण है कि हेमचन्द्रसूरि ने चैत्यवास के विरोध में कही पर उल्लेख नहीं किया हाँ जिस किसी ने शिथिलाचार का ही विरोध किया है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि च० चन्द्रगच्छ (कुल) की शाखारूप पूर्णताल्लगच्छ के आचाय थे आपके गुरु का नाम देवचन्द्रसूरि तथा आप प्रद्यम्नसूरि के पट्टधर थे तथा हेमचन्द्रसूरि के पट्टपर रामचन्द्रसूरि आचार्य हुए थे।

प्रभाविक चरित्र के अलावा भी कहीं कहीं पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि और कुमारपाल के चमत्कारी जीवन के विषय उल्लेख मिलते हैं पर यहाँ पर तो सक्षिप्त ही लिखा गया है।

७४॥ शाह की पुरांणी ख्यातें

जैन ससार इस बात से तो पूर्णतया परिचित है कि प्राचीन समय में ७४॥ शाह हो गये हैं और इनके लिये यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि बन्ध लिफाफे पर ७४॥ का अंक अकित किया जाता है जिसका मतलब यह है कि जिसका नाम लीफाफे पर है उसके अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति उस लिफाफे को खोल नहीं सके यदि खोल लेगा तो ७४॥ शाहाओं की आज्ञा का भग करने वाला समझा जायगा।

कई लोग यह भी कहा करते है कि चित्तोड़ पर मुसलमानों ने आक्रमण किया था और आपस में युद्ध हुआ जिसमें मरने वालों की जनेऊ ७४॥ मण उतरी थी इससे बन्द लिफाफे पर ७४॥ का अक लिखा जाता है कि बिना मालिक के लिफाफे खोलने वाले को ७४॥ मण जनेऊ में मरने वालों का पाप लगेगा। पर यह कथन केवळ कल्पना मात्र ही है कारण अव्वल तो जनेऊ प्रायः ब्राह्मण ही धारण करते हैं वे प्रायः युद्ध में नहीं जाया करते है यदि कभी गये भी हो तो इतने नहीं, कारण ७४॥ मण जनेऊ को करीब दशलक्ष मनुष्य धारण कर सकते है अत इतने जनेऊ धारण करने वाले युद्ध में मनुष्य ही नहीं थे तो मरना तो सर्वथा असभव ही है दूसरा जब कि उस युद्ध में मरने वालों की ही ठीक गिनती नहीं लगाई जा सकती थी तब मत्यु व्यक्तियों की जनेऊ का तोल माप कौन लगाने को निटोल बैठा था इत्यादि कारणों से वह किंवदन्ति मात्र कल्पना रूप ही है।

प्रस्तुत ख्यात का नाम ७४॥ शाह लिखा हुआ मिलता है और इस नाम पर ही दीर्घदृष्टि से विचार किया जाय तो स्वय ज्ञात हो सकता है कि शाह शब्द खास तौर महाजन सघ से ही उत्पन्न हुआ है और उस समय महाजन सघ का इतना ही प्रभाव था कि उनकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता था। दूसरा शाह एक महाजन सघ के लिये गौरवपूर्ण पदवी थी और उन लोगों ने देश समाज एव धर्म

की बड़ी २ सेवायें की जिसमें लाखों करोड़ों नहीं पर अरबों खरबों द्रव्य व्यय कर के पुण्य कमाया था इससे ही वे शाह कहलाते थे ।

उस समय महाजनों को अपनी शाह पदवी का बड़ा ही गर्व था और वे इसमें अपना गौरव समझते थे । इस पदवी को पाने के निमित्त शाहों ने कई एक महान कार्य किये हैं जिसमें से कतिपय उदाहरण यहां दिये जाते हैं—

एक समय गुजर भूमि (गुजरात) में महा भयंकर दुर्मिक्ष पड़ा उस समय चांपानेर में बादशाह की ओर से एक सूबा (हाकिम) रहता था उसने एक बार महाजनसंघ के अग्रेसरों को बुलवा कर कहा कि बादशाह के नाम के पीछे शाह आता है परन्तु तुम्हारे नामों के पहले शाह शब्द क्यों लगाया जाता है ? उत्तर में महाजन संघ के अग्रेसरों ने कहा कि हमारे पूर्वजों ने देश और देशवासी भाइयों की बड़ी २ सेवायें की हैं उन्हीं से हमें शाह पदवी राजा बादशाहों ने प्रदान की है। सूबाने तर्क करके फिर कहा कि तुम्हारे पूर्वजों ने जैसे महत् कार्य किये हैं वैसे कार्य क्या आप लोग भी कर सकते हैं महाजनसंघ ने कहा हाँ जी । सूबा ने देश की दुर्दशा बतला कर अकाल पीड़ित व्यक्तियों और पशुओं की अन्न वस्त्र और घास से सहायता करने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि मैं तभी समझूंगा कि आप सचमुच ही शाह कहलाने के योग्य हैं। वरन् आपकी शाह पदवी छीन ली जायगी । इस पर महाजनसंघ अपनी स्वाभाविक उदार वृत्ति से अकाल पीड़ितों की सहायता का वचन देकर अपने स्थान पर आये और एक वर्ष के ३६० दिन होते हैं जिसके लिये एक २ दिन के लिये भिक्षियों का लिखाना प्रारम्भ कर दिया । कुछ दिन तो चांपानेर में लिखे गये । बाद में पाटण गये वहां भी कुछ दिन लिखवाये गये वहां से आगे धोलके की ओर जाते हुए रास्ते में एक हालोला नाम का एक छोटासा ग्राम आया वहां एक ही घर महाजन का था अतः वहाँ ठहरना उचित न समझ कर ग्राम के बाहर शौचादि से निवृत होकर संघ के लोग ग्राम के बाहर से ही निकल जाना ठीक समझ कर आगे चलने लगे । जब इस बात की सूचना वहां के रहने वाले शाह खेमा को लगी तो वह उनके पीछे जाकर संघवालों को अपने घर पर लाया । पर उसका साधारण मकान एवं घर का व्यवसाय देख कर उन संघ के अग्रेसरों ने सोचा कि इस निर्धन व्यक्ति को एक दिन के लिये भी क्यों कष्ट दिया जाय कारण एक दिन का व्यय भी तो लाखों रुपयों का होता है ।

खैर शाह खेमा के आग्रह से वे संघ के लोग वहीं बाजरी की रोटी और भैंस का दही भोजन कर प्रस्थान करने लगे तो उसने इस प्रकार गमन करने का कारण शाह खेमा ने पूछा इस पर संघवालों ने सारा हाल कह सुनाया और चंदा की टीप सामने रख कर कहा कि आप भी यदि चाहें तो इसमें एक दिन लिखवायें । इस पर शाह खेमा ने कहा कि मेरे पिता शाहदेदा वृद्धावस्था के कारण दूसरे मकान पर हैं मैं उन्हें पूछ कर आता हूं । टीप की बीसड़ी लेकर खेमा अपने पिता के पास आया और सब हाल कह कर पूछा कि इसमें अपनी ओर से कितने दिन लिखाये जायं । शाह देदा ने विचार विनिमय के पश्चात् कहा कि खेमा ! ऐसा सुअवसर तुम्हें कब मिल सकता है ? और तेरे घर पर चांपानेर का संघ कब आयगा ? तथा तेरे द्रव्य के सदुपयोग का अन्य क्या अच्छा साधन होगा ? मेरी राय यह है कि तुम सारा ही वर्ष लिखवादो । पिता का कथन खेमा ने बड़े ही हर्ष के साथ शिरोधार्य कर शाह खेमा संघ के पास आया और एक वर्ष अपनी ओर से लिख दिया । इस पर संघ वालों को ज्ञात हुआ कि यह कोई पागल मालूम है कारण

कि चांपानेर और पाटण के अश्वपति और कई करोड़पतियों में से किसी ने भी एक पूरा वर्ष नहीं लिखाया हैं तब वह बाजरे की रोटी खाने वाला साधारण व्यक्ति कैसे एक वर्ष लिख सकता है ! संघ के लोगों ने खेमा के सम्मुख देखा तब खेमा ने कहा कि आप तो भाग्यशाली हैं और आपको तो सदैव लाभ मिलता ही है। मैं एक छोटे से ग्राम का रहने वाला मुझे तो यह प्रथम ही अवसर मिला है कि आज श्रीसघ ने मेरे घर को पवित्र बनाया है। आप प्रसन्नतापूर्वक इस वर्ष का लाभ मुझे दिलवाइये परन्तु बही चौपड़े में मेरा नाम न लिखें। पश्चात् शाह खेमा ने अपने घास के झोंपड़े में सघ वालों को लेजा कर अपना सारा खजाना, जेवरात आदि बतलाया। संघ वाले जेवरात देख कर चकित रह गये। खेमा का खजाना देख कर उसको शालिभद्र सेठ की स्मृति हो आई। बस। शाह खेमा को साथ लेकर सब लोग वापिस चांपानेर आये और कई लोगों ने सूबा के पास जाकर कहा कि आपने जो आज्ञा दी उसमें कई लोगों ने भाग लेना चाहा किन्तु हमारे महाजनसघ में एक ही शाह ने सामह सम्पूर्ण वर्ष का व्यय अपनी ओर से देना स्वीकार कर लिया है। सूबा ने सघ की बात पर विश्वास नहीं किया और कहा कि उस शाह को मेरे निकट लाओ अतः शाह खेमा को कीमती बढ़िया वस्त्राभूषणों से सुशोभित कर एक पालकी में बिठा बड़े ही समारोह से सूबा के पास लाये और सघनायकों ने सूबा से निवेदन किया कि एक वर्ष के लिये हमारी जाति का एक शाह ही सम्पूर्ण वर्ष में जितना नाज और घास चाहियेगा अकेला ही दे सकेगा जो आपकी सेवा में उपस्थित है। आपका नाम शाह खेमा है इत्यादि महाजनों में बोलने एवं बात बनाने का चातुर्य तो स्वाभाविक होता ही है। सूबा ने सघ वालों के मुह से सारा हाल सुना और शाह खेमा को देखा तो उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा। सूबा ने शाह खेमा से वार्तालाप किया और तत्पश्चात् शाह खेमा की प्रशंसा की एवं सत्कार तथा सम्मान किया और कहा कि शाहजी आपको किसी वस्तु की एवं प्रबन्ध की आवश्यकता हो तो फरमाइयेगा। आपने बड़ा भारी कार्य करने का निश्चय किया है। इस पर शाह खेमा ने बड़ा अच्छा अवसर देख कर सूबा से निवेदन किया कि आपकी कृपा से सब काम हो जायगा। यदि आप मुझे कुछ देना चाहें तो मेरे गाव के आस पास बारह ग्राम हैं वहा जीवहिंसा का निषेध कर देने का फरमान करदें सूबा ने सोचा कि शाह खेमा कितना परोपकारी है करोड़ों रुपये अपने गृह से व्यय करने को उतारू हुए हैं फिर भी अपने स्वार्थ के निमित्त कुछ न मांग कर जीव हिंसा का निषेध चाहते हैं यह भी परोपकार का ही कार्य है अतएव सूबा ने उसी समय सख्त फरमान लिख दिया और शाह खेमा को शिरोपाव (वस्त्र विशेष) के साथ फरमान प्रदान कर के अपने प्रधान पुरुषों को संग भेज कर शाह खेमा को विदा किया। जैनकथासाहित्य में शाह खेमा का चरित्र अति विस्तार से लिखा है किन्तु स्थानाभाव के कारण मैंने यहां सक्षेप में ही परिचय दिया है।

इसी प्रकार एक बार देहली के बादशाह ने महाजन लोगों को बुलवा कर कहा कि हमें सोने के पाट (स्तम्भ) की आवश्यकता है अत. एक माह में पाट लाकर उपस्थित करो अन्यथा आप लोगों की शाह पदवी छीन ली जायगी "आज भले इस शाह पदवी का मूल्य एव गौरव नहीं रहा हो अथवा जिसके चित्त में आया वही अपने नाम के पूर्व शाह शब्द लगा देते हों परन्तु उस काल में इस पदवी का बड़ा भारी गौरव समझा जाता था।"

खैर इसके लिये महाजन बादशाह का कथन स्वीकार करके अपने स्थान पर आये और विचार करने लगे कि सोने के पाटों की रकम का तो अभी कोई प्रश्न ही नहीं है यदि जवाहिरात मांगी होती तो इससे

भी अधिक देरी लगती परन्तु सोना इतना कहाँ से लावें । दूसरे, बादशाह ने पात्रों की संख्या भी तो नहीं बतलाई न जाने कितने पात्र माँगेंगे । और ! महाजनों ने अत्यन्त गहन विचार करके निश्चय किया कि यह कार्य तो इस नगरी मनुष्य ही पूर्ण कर सकेगा । अतः देहली से पाँच अग्रेसर निकल गये और सर्वोत्तम इकबाली व्यक्ति की खोज करते जा रहे थे राह में एक स्थान पर पता चला कि गुरु नगर में आर्य जाति का शाह जगा बड़ा ही इकबाली है और सारणी देवी का उन्हें इष्ट है । बस ! वे पाँचों अग्रेसर चल कर शाह जगा के पास आये और सारा वृतान्त कह सुनाया । इस पर शाह जगा ने कहा ठीक है । इसमें देरी कौनसी बड़ी बात है जब तक महाजन का एक बच्चा रहेगा तब तक तो महाजनों की शाह पदवी को कोई नहीं छीन सकेगा । पदवी की रक्षा माताजी करेंगी । आप पूर्ण विश्वास रखें—

उसी दिवस रात्रि में शाह जगा ने अपनी इष्टदेवी का स्मरण किया अतः तत्काल देवी आकर उपस्थित हुई और जगा से कहा कि प्रभु पार्श्वनाथ प्रक्षालन करवा कर तुम्हारे मकान के इस भाग में जितने आपके पात्रादि रखने रक्खे हैं उन पर प्रक्षालन का जल छिड़कवा देना तुम्हारा मनोरथ सफल हो जायगा बस ! इतना कह कर देवी तो अदृश्य हो गई और शाह जगा ने प्रातः होते ही देवी के कथनानुसार प्रभु प्रतिमा का प्रक्षालन करवा कर उस प्रक्षालन के जल को देवी के बतलाये हुए पात्रादि पात्रों पर छिड़क दिया ! फिर तो था ही क्या । देवी के कथनानुसार सब लकड़ सुवर्णमय बन गये । अतः शाह जगाने संघ नायकों को ले जाकर बतलाया कि आपको कितने पात्रों की आवश्यकता है ? आवश्यकीय पात्र इन सुवर्णमय पात्रों में से ले लीजिये । संघ नायकों ने सोचा कि अभी महाजन संघ के पुण्य प्रबल हैं । धन्य है मध्याह्न में तप रहा है । उन्होंने शाह जगा की भूरि २ प्रशंसा की और कहा कि आपने पूर्वजों से जो शाह पदवी प्राप्त की थी उसकी रक्षा का सारा श्रेय आप ही को है शाह जगा ने कहा कि मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ परन्तु आप लोग धन्यवाद के पात्र हैं कि आपने इस पदवी के गौरव को स्थाई रखने और उसकी रक्षा के निमित्त घर का सारा कार्य त्याग कर अथक प्रयत्न करने को कमर कसी है यह जो कार्य सफल हुआ है वह भी श्रीसंघ के ही पुण्य बल से बना है । इसमें मेरी थोड़ी भी प्रशंसा का स्थान नहीं है । क्या ! हा ! वह कितनी निरभिमानता का समय था कि दोनों ओर से मान न करते हुए श्रीसंघ के पूर्वजों का ही अनुमोदन करते रहे । और ! देहली के अग्रेसर सत्वर चल कर देहली आये और बादशाह के पास उपस्थित होकर निवेदन किया कि सोने के पात्र मौजूद-तैयार हैं । आपको कितने पात्र किस नमूने के चाहिये । जाहि उतने ही पात्र मँगवा लिये जाँय । इत्यादि । बादशाह ने सोचा कि महाजन लोगों में बुद्धि विशेष होती है केवल बनावटी बातें ही बनाते होंगे क्या यह भी कभी संभव है कि सोने के पात्र किसी के यहाँ बना रक्खे हों अतएव बादशाह स्वयं ही पात्रों को देखने के लिये तत्पर हो गया । बादशाह खूब सजधज कर सब संघ नायकों के साथ२ चलकर शाह जगाके घर पर आये । जब शाह जगा की सूरत देखी तो बादशाह को पेट की बात पर विश्वास नहीं आया और समझा कि यह क्या स्वर्ण के पात्र दे सकेगा ? परन्तु जब मकान के पीछे दिखलाकर बादशाह को वह गड़े हुए स्वर्णमय पात्रों को दिखलाया गया तो बादशाह देख कर मन्त्र मुग्ध सा बन गया और सोचने लगा कि वास्तव में महाजन लोग ही इस पदवी के योग्य हैं जो कार्य बादशाह नहीं कर सकते वे कार्य भी शाह कर सकते हैं शाह जगा और देहली के महाजनों की प्रतिष्ठा बढ़ाई, खूब सन्मान किया । शाह जगा ने बादशाह को भोजन करवाया बादशाह प्रसन्न होकर शाह जगा को कहा शाहजी आप

को किसी बात की जरूरत हो तो कहिये ? शाहने १२ मासों में जीव नहीं मरने का फरमान मागा बादशाह ने उसी समय हुकम निकाल दिया पश्चात सभी व्यक्ति अपने २ स्थान को गये। इस प्रकार प्राचीन वंशावलियों आदि में कई कथाएँ लिखी मिलती हैं। इसमें सत्यता का अंश कितना है इसके लिये निश्चयात्मक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है किन्तु महाजन संघने इष्ट बलसे ऐसे २ अनेक कार्य किये हैं। अत' उपर्युक्त कथन यदि सत्य भी हो तो इसमें कोई आश्च 'नहीं। शाह खेमा और लूना ये दोनों ७४॥ शाह में सम्मलित हैं।

उस समय महाजनसघ की सख्या करोड़ों की थी। जिनमें ७४॥ विशेष कार्य करने वाले भाग्यशाली शाह हुए हों तो यह असमव नहीं है। प्राचीन पट्टावलियों आदि जैनसाहित्य का अवलोकन करने से यह पाया जाता है कि उस समय महाजनसघ में अनेकाऽनेक दानवीर तथा उदार नर रत्न विद्यमान थे जिन्होंने देश, समाज एवं धर्म के कार्यों में लाखों करोड़ों तो क्या परन्तु कई अरबों द्रव्य व्यय करके यश कमाया था। एक २ ने तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकालने में सहस्रों, लक्षों नर नारियों को सुवर्णमुद्राएं एव स्वर्णाभूषण प्रभावना के तौर पर वितरण किये थे। एकेक ने मन्दिर बनवाने में करोड़ों रुपयों का द्रव्य बात की बात में व्यय कर दिया था तथा एक एक व्यक्ति दुष्काल के समय में सर्वस्व अर्पण कर देते थे। इस प्रकार जनोपयोगी कार्य करने से ही महाजन मां बाप कहलाते हैं और राजा, महाराजा, बादशाह और नागरिकों की ओर से महाजनों को जगतसेठ, नगरसेठ, टीकायत चोवटिये, पंच, वोहरा, साहुकार और शाह जैसे गौरवपूर्ण पद प्रदान किये गये थे। अतः इतनी बड़ी समाज में ७४॥ शाह विशेष जनोपयोगी कार्य करने वाले हुए हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस समय ७४॥ शाह की पाँच प्रतियाँ मेरे पास प्रस्तुत हैं उन पाँचों प्रतियों में लिखे हुए शाह के नाम या काम कुछ शाहाओं को छोड़ के मिलते हुए नहीं हैं इससे पाया जाता है कि ७४॥ शाह केवल एक प्रान्त में ही नहीं पर प्रान्त-प्रान्त में भिन्न २ शाह हुए हैं। जब हम इन पाँचों प्रतियों को इतिहास की कसौटी पर कस कर देखते हैं तब स्थूल दृष्टिसे तो हमारे संकीर्ण हृदयमें अनेक शकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं कि एक-एक शाह ने एक-एक धर्म एव जन कल्याणार्थ इतनी बड़ी रकम क्यों कर व्यय की होगी ? एक-एक सघ में लाखों नर नारियों को स्वर्ण मुद्राएँ एव स्वर्णाभूषण कहाँ से दिये होंगे ? जब कि वर्तमान में पाँच, पचीस एव सौ पचास रुपये मासिक नौकरी करने वाले तथा तैल, नमक, मिर्च का व्यापार करने वाले और कमीशन एव सट्टे से आजीविका चलाने वाले कि जिन्होने अपने जीवन में पाँच पैसा भी कदाचित धर्म के नाम पर व्यय किया हो उन लोगों को उपर्युक्त शका होना स्वभाविक ही है इतना ही क्या पर इन बातों को कानोंमें सुनने जितनी भी उन लोगों में उदारता कदाचित ही हो। कारण जैसे कुआ का मिंडकके सामने समुद्रके विशालता की बात की जाय तो वह कब मान लेगा कि समुद्र इतना विशाल होता है चूंकि उसने तो कुआ के अलावा कोई विशाल स्थान जिन्दगी भर में देखा ही नहीं। इस प्रकार दरिद्रता के साम्राज्य में जन्मे हुए अपनी जिन्दगी के अन्त तक वही हाल देखा है कि नौकरी के पैसे लाने और पेट एव कुटुम्ब का निर्वाह करना उसी प्रकार तांबे पर सोने का पानी चढ़वा कर पहनने वाले के कब यह बात समझ में आ सकती है कि प्राचीन काल में महाजनसघ के पास इतना पर्य्याप्त सोना था पर जब लोग अर्बुदगिरी पर बने हुए विमलशाह तथा वस्तुपाल के मंदिर तथा राणकपुर के बने हुए धना शाह के मंदिर और तारगा शत्रुंजय के मन्दिर देखते हैं तब कुछ अशों में उनकी शङ्का निवारण हो जाती है।

आप इतिहास के कुछ पृष्ठों को खोल कर देखिये कि अत्याचारी व विदेशियों ने भारत के जवाहिरात और स्वर्ण आदि द्रव्य को किस निर्दयता से लूटा है वह भी एक दो दिन या एक दो वर्ष ही नहीं परन्तु सातसौ आठसौ वर्षों तक लूटते ही रहे जो जवाहिरात एवं स्वर्ण से ऊँट ही नहीं पर जहाजों की जहाजें भर-भर कर ले गये थे। एक नादिरशाह बादशाह चन्द घंटों में देहली के चाँदनी बाजार से जवाहिरात के ऊँट के ऊँट भरवा कर ले गया था तब सातसौ आठसौ वर्षों का तो हिसाब ही क्या ? अस्तु

अब अंग्रेजों का नम्बर आता है तो अंग्रेज भी भारत से कम जवाहिरात तथा कम स्वर्ण नहीं लेगये हैं। भारत में अंग्रेजों के आने के पूर्व उनका इतिहास देखने से पता चल जायगा कि युरोप में उस समय कितना सोना था और आज कितना है। वह द्रव्य कहाँ से आया जो आज पाश्चात्य लोग करोड़ों रुपया विद्या प्रचार में तथा नये-नये आविष्कारों में व्यय कर रहे हैं इत्यादि। विचार करने पर यही कहा जा सकता है कि भारतवर्ष धन की खान है और वह द्रव्य विशेष कर महाजनों के ही पास था। अनुमानतः एकसौ वर्ष पूर्व टॉड साहब ने भारत का भ्रमण करने पर लिखा था कि भारत का आधा द्रव्य जैनियों के पास है। अर्वाचीन काल की यह बात है तब प्राचीन काल की समृद्धता में क्या शंका की जा सकती है।

महाजन लोगों को अपने देव गुरु धर्म पर पूर्ण दृढ़ था कि इष्ट के बल से वे मनुष्यों से तो क्या पर देवताओं से भी काम निकलवा लेते थे और ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं।

"जैसे कइयों को पारस मिला, कइयों को सुवर्णसिद्धि रसायन कइयों को तेजमतुरी मिली, कइयों को चित्रावली तब कइयों को स्वर्णमय पुरुष मिला एक को जड़ी बूटी मिली जिससे स्वर्ण बना लिया, एक को देवीने अक्षय थैली दी तो कइयों को अक्षय निधान बतला दिया। इनके अलावा बहुत से लोग विदेशों में व्यापार कर समुद्रोंसे प्राप्त हुई बहुमूल्य जवाहिरात भी ले आये थे। अतः उन महाजनोंके घरके द्रव्य का कौन पता लगा सकता था। दूसरा उस जमाने के महाजनों की यह एक बड़ी भारी विशेषता थी कि वे नाम लक्ष्मी को संचय नहीं कर धर्म कार्य एवं जनोपयोगी कार्यों में लगा देने में अपना कल्याण एवं लक्ष्मी का सदुपयोग समझते थे और ज्यों-ज्यों वे लक्ष्मी सत्कार्यों में व्यय करते थे त्यों त्यों लक्ष्मी उनके यहाँ बिना बुलाये ही आकर निवास कर दिया करती थी। अतः उन महाजनों के किये हुए कार्यों में समझदारों को शंका करने की जरूरत नहीं है।

अस्तु, उन महाजनों का समय तो बहुत प्राचीन काल से प्रारम्भ होता है और उस समय की अपेक्षा से आज बीसवीं शताब्दी उस तरह से गई गुजरी है धन में और संख्या में इसका पतन अपनी सीमा तक पहुँच गया है। तथापि महाजन संघ एकेक धर्म कार्य में दश दश बीस-बीस लाख रुपये खर्च कर देता तो एक बाँया हाथ का खेल ही समझते हैं। जिसके लिये शत्रुञ्जयगिरी के मन्दिर तथा पालीताणे का आगम मन्दिर प्रत्यक्ष उदाहरणरूप हैं तथा मुट्ठी भर मूर्तिपूजक समाज के केवल मन्दिरों का खर्चा प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का ही रहा है। तब आज से १४ ०-१५ वर्ष पूर्व का महाजनसंघ जो उन्नति के ऊँचे शिखर पर था उस समय में पूर्वोक्त कार्य किया हो तो इसमें शंका करने जैसा कोई भी कारण नहीं हो सकता है।

कदाचित पचीस पचास वर्ष की उमर के मासिक नौकरी करने वालों की समझ में एकदम यह बात नहीं आवे तो बालों पर सुगन्धी तेल लगाकर किसी शीतलतायुक्त बगीचे में बैठकर शान्त चित्त से विचार करें कि इस बीसवीं शताब्दी के पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी महाजनों के लिये कैसी थी और उन्नीसवीं के पूर्व

अठारहवीं तथा अठारहवीं के पूर्व सतरहवीं और सतरहवीं के पूर्व सोलहवीं शताब्दी महाजनों के लिये तन, जन तथा धन के लिये कैसी थी। इसी प्रकार एक-एक शताब्दी पूर्व का इतिहास देखते जाइये। आपको महाजनों की ऋद्धि एवं समृद्धि का पता लग जायगा। इतने पर भी दरिद्रता के साम्राज्य में फँसे हुए व्यक्तियों की समझ में नहीं आए तो कर्मों की गहन गति पर ही सतोष करना पड़ता है।

महाजन संघ का समय विक्रम पूर्व कई शताब्दियों से ही प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् भगवान् महावीर के समय के आस पास का ही समय महाजन संघ का समय था और उस समय के आस पास में भारत कैसा समृद्धिशाली था जिसके लिये कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं।

(१) भगवान् महावीर के समय राजा श्रेणिक की रानी धारणी जो मेघकुंवर की माता थी जिसका शयनगृह का तला पांच प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ था।

(२) राजा श्रेणिक ने कलिंग की खण्डगिरी पहाड़ी पर जैन मन्दिर बनवा कर सुवर्णमय मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी तथा सदा १०८ सुवर्ण के चावलों का स्वस्तिक करता था उनके पास कितना सुवर्ण होगा।

(३) सेठ शालिभद्र के घर की जवाहिरात मनुष्य गिन नहीं सकता था। एक समय तो उसने यहाँ तक भी कह दिया था कि राजा श्रेणिक अपने घर पर आया है तो उसको सस्ता या महँगा खरीद कर भंडार में डाल दो। अर्थात् सुख साहिबी में उसे यह भी पता नहीं कि राजा क्या वस्तु है ?

(४) नंदराजाओं ने अपने द्रव्य को भूमि में दबवा कर उनके ऊपर पांच स्तूप बनवाये थे। जिसको शुंगवंशी राजा पुष्पमित्र ने खुदवा कर द्रव्य निकाल लिया था। वह अपार द्रव्य था।

(५) चन्द्रगुप्त मौर्य ने पीत सुवर्ण नहीं पर श्वेत सुवर्ण की मूर्ति बनवाई थी जिसको सम्राट सम्प्रति ने अर्जुनपुरी (गंगाणीग्राम) के मन्दिर में प्रतिष्ठा करवाई थी।

(६) महाजन संघ को देवी ने वरदान दिया था कि "उपकेशे बहुल्य द्रव्यम्"।

(७) सम्राट सम्प्रति ने सवालक्ष नये मन्दिर और सवा करोड़ मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई थी।

(८) महाजन संघ का इतिहास बतला रहा है कि इन महाजनों ने सुवर्णमय बड़ी २ मूर्तियों को बना कर प्रतिष्ठा करवाई थी तब कई एकों ने हीरा पन्ना माणक स्फटिक रत्नों की मूर्तियां बनवाई थी— और कई स्थानों पर अद्यावधि विद्यमान भी है जो विधर्मियों की लूट से बच गई थी।

(९) महाजन संघ के पास के द्रव्य का हिसाब तो बृहस्पति भी नहीं लगा सकता था वे शाह ख्याति में लिखे हुये कार्य किये हों उसमें शंका करना महाजनसंघ के उस समय के इतिहास के अनभिज्ञों लोगों का ही कार्य है।

इतना विवेचन करने के पश्चात् अब हम प्रस्तुत शाह ख्याति पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे कि इसमें थोड़ा बहुत ऐतिहासिक तथ्य है या नहीं ? ऐतिहासिक दृष्टि से ७४।। शाह की ख्याति में प्रत्येक शाह के लिये कम से कम पाँच पाँच बातों पर विचार किया जाय। यथा शाह का नाम २ शाह की जाति ३ शाह के नगर ४ समय और उनके किये हुये ५ शुभ कार्य। जिसमें नाम के लिये तो बहुत से नाम ऐतिहासिक हैं जैसे'—शाहसोमा, शाहसारंग, शाहदेशल, शाहसामंत, शाहविमल, शाहवस्तुपालतेजपाल शाहगोशल, शाहसभरा, शाहपेथा, शाहपेथड़, शाहपुनड़, शाह पाता, शाहरावल, शाहरावण, शाहराणा, शाहखेमा, शाहमोमा, शाहभीमा, शाहभैंसा, शाहगधा, शाहछना, शाहयेरुक, शाहधवल, शाहधरण, शाहकल्याण,

रामपुरावत, मिठडीयाशाह, देवसीशाह रामाणी शाहवागर, शाहबगड, शाहरांका, शाहदूगड़, इत्यादि पूर्वोक्त शाखाओं के नाम अन्य स्थानों पर भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई नामख्याति में हैं उनके लिये भी हम शंका नहीं कर सकते क्योंकि करोड़ों की संख्या में उस समय महाजनसंघ थे तब उनके नाम भी कुछ न कुछ होंगे ही। जब हमें अपने पूर्वजों की पांच सात पीढ़ियों के सिवाय नाम भी स्मरण नहीं हैं तो उन्हों के नामों के विषय की शंका करना तो निर्मूल ही है। हां अर्वाचीन लेखकों ने नामों के अन्त में शाह चन्द रायादि शब्द जोड़ दिये हों इसको अर्वाचीन लेखन पद्धति ही समझना चाहिये। दूसरी बात जाति की है उस समय महाजनसंघ में जातियों की सृष्टि हो गई थी उस की गिनती भी नहीं थी और जो जातियां ख्याति में लिखी हैं वे जातियां ठीक हों तो भी कुछ कहा नहीं जा सकता। अतएव यह शंका भी निर्विवाद असत्य है। तृतीय बात है शाहों के निवास नगरों की। इसके लिये इतना विचार हमें अवश्य करना होगा कि कई प्राचीन नगर तो विधर्मियों के आक्रमण से नष्ट हो चुके हैं और कई एक नगरों के नाम अपभ्रंश होकर बिल्कुल ही बदल गये। और कई प्राचीन नगरों के स्थान नये नगर बस गये और उनके नाम भी नये रक्खे गये हैं जो प्राचीन थे। अतएव नगरों के विषय में ऐसी कोई बाधक शंका नहीं रहती है। चतुर्थ बात है उनके समय की यह बात अवश्य विचारणीय है क्योंकि ख्याति में जो समय अंकित है वह कुछ थोड़े नामों को छोड़ कर प्रायः सब काल्पनिक हैं। एक यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि एक ही जाति में एक नाम के अनेक महाजन हो जाने से भी समय लिखने में गड़बड़ी हो जाती है। और ऐसी गड़बड़ केवल इन शाखाओं की ख्यात के लिये ही नहीं किन्तु अन्य भी ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी दृष्टिगोचर होती है जैसे कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्रसूरि रचित परिशिष्ट पर्व ग्रन्थ आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि का प्रभाविक चरित्र, आचार्य मेरुतुंग सूरि रचित प्रबन्ध चिन्तामणि, आचार्य जिनप्रभ सूरि रचित विविध तीर्थ कल्पादि प्रमाणिक ग्रन्थों में भी समय के विषय कई स्थानों पर त्रुटियां मालूम होती है इसका मुख्य कारण घटना समय के सैकड़ों वर्ष पश्चात् ग्रन्थ लिखे गये हैं इस हालत में ख्याति में समय की त्रुटियां रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पर समय के रद्दोबदल हो जाने पर भी वह घटना कल्पित नहीं कही जा सकती है हां अन्य साधनों द्वारा संशोधन कर उसको ठीक व्यवस्थित बनाना हमारा कर्त्तव्य है और हमने इस विषय में कुछ प्रयत्न भी किया है जैसे बहुत से आचार्यों ने सांवत्सरी पांचमी के स्थान में चतुर्थी को करने वाले कालकाचार्य को वीर की दशवीं शताब्दी में होना लिखा है वास्तव में वे कालकाचार्य वीर की पांचवीं शताब्दी में हुवे थे इसी प्रकार एक नाम के एक नहीं पर अनेक शाह हो जाने से समय का रद्दोबदल हो ही जाता है। एक समय को ठीक संशोधन कर लिया जाय तो शाखा नाम तथा जातियां भी पता लग जायगा कि उस समय वे जातियाँ अस्तित्व में आ गई थी ? या नहीं ? तथा नगर का भी पता लग जायगा कि उस समय वह नगर था या नहीं ? अर्थात् इन शाखाओं की ख्यातों का ऐतिहासिक तत्व केवल एक समय पर ही निर्भर है अतः हम ने पहले इसको लक्ष्य की ओर लक्ष देना चाहिये। अर्थात् सब से पहले समय की खोज करनी चाहिये इसके पश्चात् पाँचवीं बात है शाहओं के कार्यों की। इसके हेतु यह समझना कठिन नहीं है कि उस समय जैन समाज में जैनमन्दिर बनाना तीर्थों के संघ निकालना संघ पूजा करना, स्वामि जाति को जिमाने पर आमन्त्रित करना इन कार्यों में संघ को पहरामनी (प्रभावना) देना जिसमें अपनी शक्ति के अनुसार कोई भी कमी नहीं रखते थे क्योंकि उस समय इन कामों का बड़ा भारी गौरव समझा जाता था। शक्ति के होते हुवे पूर्वोक्त कार्य में

से कोई भी कार्य कर अपने आपको वे कृतार्थ समझते थे। ख्याति का समय तो बहुत प्राचीन कालसे प्रारम्भ होता है परन्तु गोड़वाड़ प्रान्त में तो इस बीसवीं शताब्दी तक भी अपने घर पर प्रसंग आने पर ५२ ग्राम ६४, ७२, ८४ तथा १२८ ग्रामोंके महाजनों को आमन्त्रित किये जाते थे और प्रभावना-लहण पहरावणी में लड्डुओं के साथ पीतल के बर्तन तथा वस्त्रादि दिये जाते थे कई २ चांदी के बरतन भी देते थे तब उस प्राचीनकाल में सुवर्ण दिया जाता हो तो आश्चर्य की कौनसी बात है ? क्योंकि उस समय लोगों के पास नीति न्याय और सत्यतासे उपार्जित द्रव्य ही आया करता था और वह ऐसे ही शुभ कार्यों में लगता था। कई लोगों ने मन्दिर के लिये भूमि पर रुपये बिछवा कर रुपयों के बराबर भूमि ली थी तब कई एकों ने एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक रुपयों के छकड़े के छकड़े जोड़ देने की उदारता दिखलाई थी। सब से उत्तम बात तो यह थी कि उस समय के लोगों के चित्त में पुण्य नाश का कारण माया कपट और तृष्णा बहुत कम थी और देव गुरु धर्म पर उनकी अटल एव पूर्ण श्रद्धा थी। वे यही समझते थे कि लक्ष्मी स्थिर नहीं पर चचल है इसे जितनी शुभ कार्यों में व्यय की जाय वही अपने सग चलेगी अत वे लोग येनकेनप्रकारेण जहां सुअवसर देखा लाखों करोड़ों द्रव्य शुभ कार्यों में व्यय कर दिया करते थे फिर भी समय २ की रुचि और प्रवृत्ति भिन्न२ होती हैं, जैसे वर्तमान में विद्यालय तथा औषधालय आदि प्रचार को अधिक महत्त्व दिया जाता है और इन कार्यों के लिये आज भी लाखों करोड़ों का व्यय किया जाता है। (अवशेष) वैसे ही उस समय मन्दिर बनाने यात्रार्थ सघ निकालने न्याति जाति के लोगों को अपने घर पर बुलवा कर उनका सत्कार सन्मान एव पूजा कर लहण एवं पहरावणी देना तथा याचकों को पुष्कल दान देने में ही वे लोग अपना गौरव समझते थे। वास्तवमें वे लोग अपने कल्याणके साथ दूसरों का भला भी करते थे अत इसके अलावा गौरव की बात ही क्या हो सकती है।

वर्तमान में हमारी समाज में ऐसे विद्वानों (।) की भी कमी नहीं है कि प्राचीन ग्रन्थ पट्टावलियों वंशावलियों की बातों को ऐतिहासिक साधनों की आड़ लेकर कल्पित ठहरा देते हैं। यदि वे विद्वान थोड़ा सा कष्ट उठा कर ठीक शोध खोज करें तो उनको पता मिल जायगा कि हमारे पूर्वाचार्यों ने लिखा है वह ठीक यथार्थ ही है और विशेष सोध खोज करने पर उन बातों के लिये इतिहास का भी सहारा मिल जायगा पर परिश्रम करने वाला होना चाहिये। इतिहास के विषय हम अन्यत्र लिखेंगे।

इस समय ७५॥ शाहाओं की मेरे पास पांच प्रतियां विद्यमान है उनको अलग २ न छपा कर एक ही साथ नम्बरवार छपा देना उचित समझा है कारण ऐसा करने से एक तो पाठकों को एक ही स्थान पांचों प्रतियां पढ़ने की सुविधा मिल जायगी दूसरा एक ही समय में किस २ प्रान्त में कौन कौन शाह हुआ, तीसरा कौन शाह कैसा मान्य हुआ और किस शाह का नाम सब प्रतियों में मिलता है और किस २ ने क्या २ सामान एव विशेष काम किया इत्यादि।

अन्त में मैं यह आशा करता हूँ कि इन ख्यातों द्वारा प्राचीन समय के महाजन सघ का समृद्धशाली बना तथा उनकी उदार भावना देख कर उनकी सतान को गौरव रखना चाहिये कि हमारे पूर्वजों ने किस किस मौलिक गुणों से धन राशि सम्पादन की थी और परोपकार के लिये उस सम्पति का किस प्रकार सदुपयोग किया था। उन गुणों के अभाव हमारी कैसी पतित दशा हुई है ? यदि अब भी हम चाहें तो उन गुणों को हासिल कर हमारे पूर्वजों के पथ के पथिक बन कर वे ही कार्य कर सकते हैं ? खैर इन ७४॥ शाहाओं की ख्यातों को पढ़ कर सद्भावना से अनुमोदन करेगा तो मैं मेरे परिश्रम को सफल हुआ समझूंगा।

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
७	१	शाह सारंग	ऊदारसा	लुंगगोत्र	उज्जैन	वि. स. २५१	२३
	२	,, श्रीपाल	श्रोटासा	कुनहटगोत्र	माडवगढ़	,, २५७	२४
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, चाहड़	मूलासा	सुघड़ गो०	पद्मावती	,, २६६	२५
	५	,, श्रगो	शोभासा	बप्पनाग	शंखपुर	,, २७१	२६
८	१	,, परपट	भोनासा	चोरड़िया	चन्देरी	,, २७७	२७
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, सोनग	दाणासा	कर्णाट गो०	सत्यपुरी	,, २९२	२८
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
९	१	,, गांगो	दोगसा.	भूरि गोत्र	नांदावती	,, ३०२	२९
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, भोमो	कदर्विसा	पटियागोत्र	विराट्नगर	,, ३१७	३०
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,,	
	५	,, मुंजल	महाराम	डिड्डू गो०	पल्हिकापुरी	,, ३२२	३१
१०	१	,, लालो	खुमाणसा	श्रादित्यनाग	नागपुर	,, ३२९	३२
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ३१२	
	३	,, लाघो	मोकनसा	सुचंति	माडवगढ़	,, ३३७	३३
	४	,, सुरजन	लाडूसा	श्रीश्रीमाल	रत्नपुर	,, ३३९	३४
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ३४०	
११	१	,, डुंगर	भैरूसा	समदड़िया	गुरुपुर	,, ३४१	३५
	२	,, जल्हण	राणासा	पोकरणा	पद्मावती	,, ३४३	३६
	३	,, सूरो	मादासा	कुम्मट	कोरटपुर	,, ३३९	३७
	४	,, राणो	गोगासा	प्राग्वट	शिवपुरी	,, ३१८	३८
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
१२	१	,, विजो	रत्नासा	चरडगो०	भोजपुर	,, ३३८	३९
	२	,, धवल	गोशलसा	भूरिगो०	वीरपुर	,, ३७२	४०
	३	,, धीरम	लाघासा	श्रादित्यनाग	उपकेशपुर	,, ३८६	४१
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	

७४॥ शाहों की ख्याति
१२१

शाह नम्बर	प्रति नम्बर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
१९	१	शाह राजसी	सारंगसा	करणावट	खटकूप	वि० सं० ५१६	५८
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, नरपत्त	जसासा	श्री श्रीमाल	भीन्नमाल	,, ५३४	५९
	५	,, देशाल	पातासा	गान्धी	ढेलीपुर	,, ५५२	६०
२०	१	,, ऊमो	कोलासा	विरहट	चित्रकोट	,, ५६५	६१
	२	,, सोमो	कैसासा	चरडगो०	ऊकारपुर	,, ५७०	६२
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, नैनो	जैतासा	वर्धमाना	जावलीपुर		६३
	५	,, ,,	,,	,,	,,		
२१	१	,, अगरो	डावरसा	पोकरणा	देवकीपाटण	,, ५७२	६४
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,	
	३	,, डुगर	दुर्गासा	काकरिया	चंदेरी	,, ५९०	६५
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
२२	१	,, विमल	करमणसा	श्रेष्टि	मेदिनीपुर	,, ६०१	६६
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, आखो	नोंधणसा	तातेड़	चन्द्रपुरी	,, ६०३	६७
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
२३	१	,, मण्डन	यशोवीर	प्राग्वट	चन्द्रावती	,, ६०७	६८
	२	,, ,,	,,	,,	,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, अगरो	मोपतसा	गोलेच्छा	जोगनीपुर	,, ६१२	६९
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
२४	१	,, लादण	लुँबासा	राका	वल्लभीपुरी	,, ६२९	७०
	२	,, ,,	,,	,,	,,	, ,,	
	३	,, शोभन	साहरणसा	श्रीमाल	शिवपुरी	,, ६३७	७१
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, रोडो	धवलसा	भटेवरा	कोरटपुर	,, ६४०	७२

शाह नम्बर	प्रति नम्बर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
३१	१	शाह अर्जुन	छालासा	सुंचंति	उपकेशपुर	वि. सं. ७८३	९१
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, तोलो	चैनासा	श्री श्रीमाल	शीवलपुर	,, ८०२	९२
३२	१	,, कानड़	भावुजीसा	आर्य गोत्र	गोसलपुर	,, ८११	९३
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, थोभण	कर्मासा	चंडालिया	अर्जुनपुरी	,, ८१९	९४
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
३३	१	,, नरसिंह	द्दीपासा	सुघड़	पुरनगर	,, ८३८	९५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, सोमो	कानड़सा	छाजेड़	भीन्नमाल	,, ८५२	९६
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
३४	१	शाह रांणो	खेतासा	चोरड़िया	पाल्हिका	,, ८६२	९७
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	शाह रासो	जोरासा	आर्य	देवपट्टन	,, ८७१	९८
	५	,,	,	,,	,,	,, ,,	
३५	१	शाह शंकर	कानासा	धाकड़	नागपुर	,, ८८२	९९
	२	,,	,,		,,	, ,,	
	३	शाह आसो	सांगासा	देसरड़ा	उपकेशपुर	,, ८९३	१००
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	शाह कल्याण	एकलगसा	कांकरिया	आभापुरी	,, ९०५	१०१
३६	१	शाह लालो	सांढासा	चंडालिया	रत्नपुर	,, ९११	१०२
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	शाह नन्दो	हरखुसा	श्रेष्टि गो०	हंसावली	,, ९१७	१०३
	५	,,	,	,,	,,	,, ,,	

७४॥ शाहाओं की ख्याति—

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
४३	१	शाह रावल	करणामा	कुमट	शाकम्भरी	वि. सं. १०४४	११५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, लादूह	डूगासा	रांका	अजयपुर	,, १०६३	११६
	४	,, विमल	धरघासा	सचेती	शाकम्भरी	,, १०७०	११७
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
४४	१	,, मंत्री विमल	वीरासा	प्राग्वट	पाटण	,, १०८०	११८
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
४५	१	,, भैंसा	रत्नासा	चोरडिया	डिडवाना	,, ११००	११९
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, गधासा	मालाशा	वाफना	डिडवाना	,, ,,	१२०
४६	१	,, राहूल	ठाकुरसा	बोत्थरा	नागपुर	, ११२२	१२१
	२	,, करण	डुगासा	घटिया	जावलीपुर	,, ११२८	१२२
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, घोकल	मोकासा	मालेचा	कोरंटपुर	,, ११४२	१२३
४७	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, पातो	कुशलासा	सुरांणा	सत्यपुर	,, ११५३	१२४
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
४८	१	,, धवल	भैंसासा	गादइया	भीन्नमाल	,, ११०८	१२५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, मुवो	आरमलसा	नाहटा	सोजाली	,, ११७३	१२६

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
५५	१	शाह वछो	शेरासाह	देसरड़ा	डूंगरपुर	वि० सं० १२५२	१३८
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, मोजो	गोविन्दसाह	धाड़ीवल		,, १२५९	१३९
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, गोधो	रूपाशाह	खीवसरा	खटकूप	,, १२६०	१४०
५६	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, १२६३	
	२	,, ,,	,,	,,	,,		
	३	,, फूसा	मयारामसाह	रावडिया	सोजाली	,, १२६५	१४१
	४	,, ,,	,,	,,	,,		
	५	,, समरो	सालगसाह	भद्दारी	नारदपुरी	,, १२७२	१४२
५७	१	,, वस्तुपाल तेजपाल	आसराज	प्राग्वट	पाटण	,, १२८५	१४३
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
५८	१	,, पुनड़	नारायणसाह	वरदिया	नागपुर	,, १२८७	१४४
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, भैंसो	करणासाह	चोरड़िया	नागपुर	,, १२९३	१४५
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
५९	१	,, सांखला	सुन्दरसाह	करणावट	मेदनीपुर	,, १३०७	१४६
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, सहदेव	अड़कमलसाह	लोढा	रूणावती	,, १३०९	१ ७
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	,,
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	,,
६०	१	,, धरण	कानासाह	श्रीमाल	भद्रावती	,, १३१०	१४८
	२	,, जगडु	सल्हासाह	श्रीमाल	भद्रावती	,, १३१३	१४९
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	

७४।। शाहों की ख्याति
१६२

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कर्म
६१	१	शाह खेमो	देदासा	हराया श्रीमाल	दोराणा	वि सं० ११३५	१५०
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	शाह छजाशा	खेतासा	प्रार्थ	गुडानगर	,, ११५०	१५१
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
६२	१	शाह देपल	मोखमसा	बैदमुता	पाल्हनपुर	,, ११६	१५२
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,		,,	,, ,,	
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	१५३
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
६३	१	शाह समधे	देवसरा	बैदमहता	नारदा	,, ११७	
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
६४	१	शाह रायमे	करमासा	भंडारी	नागपुर	,, १४	१५४
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	शाह देवपाल	कक्करसा	प्राग्वट	पाली	,, १४३२	१५५
	४	,, हरखो	चन्द्रभाणसा	सुराणा	नागपुर	,, १४३५	१५६
	५	,, सुगण	सावलसा	श्रेष्ठिगो०	उज्जैन	,, १४८९	१५७
६५	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, सेवो	जैतसीसा	सालेचा	मथुरापुरी	,, १५०४	१५८
	४	,, ,,	,,	,,	,,		
	५	,, हीरो	नाथासा	कुमटिया	विराटपुर	,, १५३०	१५९
६६	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, सावर	नामासा	बरडिया	सिरोही	,, १५३२	१६
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
६७	१	शाह दलपत	देशलसा	संखलेचा	मालपुर	वि. सं. १५६३	१६१
	२	,, कल्याण	जीतमलसा	कोचर	मांडव्यपुर	,, १५६६	१६२
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, चोपक	नेणासा	भशाली	मगलपुर	,, १५७०	१६३
६८	१	,, साचू	गोरखसा	पामेचा	देहली	,, १५८२	१६४
	२	,, राणू	धनासा	कटारिया	सत्यपुरी	,, १५९१	१६५
	३	,, पातो	जैतासा	वैद्यमहता	शुभटपुर	,, १६०१	१६६
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, १६०७	
	५	,, कर्मो	गुमानसा	पोकरणा	पद्मावती	,, ,,	१६७
६९	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, आदू	समरथसा	गुलच्छा	फलवृद्धि	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, भैरू	मालासा	भंडारी	पाली	,, १६०८	१६८
	५	,, सुखो	भैरूसा	मुनोयत	लौद्रवा	,, १६०९	१६९
७०	१	,, पृथ्वीराज	मोखमसिंह सा	चंडालिया	धारानगरी	,, १६१४	१७०
	२	,, ,,	,,	,,	,,		
	३	शाह हाथी	लुंबासा	लोंकड़	सिरोही	,, १६१६	१७१
	४	शाह करमचन्द	संग्रामसा	बच्छावत	बीकानेर	,, १६३५	१७२
	५	,,	,,	,,	,,		
७१	१	शाह भोमो	भारमलसा	कावड़िया	उदयपुर	,, १६४२	१७३
	२	,,	,,	,,	,,		
	३	,,	,,	,,	,,		
	४	,,	,,	,,	,,		
	५	शाह सूरा	सेरासः	सुरपुरिया	मेवाड़	,, १६४४	१७४
७२	१	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	शाह थेरू	,,	भंडसाली	जैसलमेर	,, १६६५	१७५
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	

७—श्री शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला । तीर्थ पर दो मन्दिर बनाये । संघ को स्वामिवात्सल्य जीमाकर सात सात सुवर्ण सोपारियाँ प्रभावना के तौर दीं ।

८—भ० महावीर की १०८ अंगुल सुवर्णमय मूर्ति बनाकर नये मन्दिर में प्रतिष्ठा करवाई । दुष्काल में करोड़ों द्रव्य व्यय किया । सघपूजा में वस्त्र भूषण पहरामणी में दिये ।

९—सम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विधश्रीसघ को पूर्व देश की सर्व यात्रा करवाई वापिस आकर संघ पूजा कर एक-एक सुवर्ण मुद्रा लढ्डू में डाल गुप्तपने लहण दी ।

१०—आपको देवी की कृपा से पारस मिला था । लोहे का सुवर्ण बनाकर धार्मिक एवं जनोपयोगी कार्य्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया । संघपूजा कर साधर्मी भाइयों को सोने की कंठियाँ तथा बहिनों को सोने के चूड़े पहरामणी में देकर शासन की खूब प्रभावना की ।

११—दुष्काल में मनुष्यों को अन्न वस्त्र पशुओं को घास दिया जिसमें सात करोड़ द्रव्य खर्च किया तथा चार बड़े तालाब, चार बावड़ियाँ और सात मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई ।

१२—श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला । सघपूजा कर सोने की सोपारियों की लहण दी ।

१३—सात बार श्रीसंघ को घर पर बुलाया भोजन करवाकर एक एक मुहर की लाहणी दी ।

१४—सात आचार्यों को सूरिपद दिराया । श्री भगवतीजी सूत्र का महोत्सव पूजा करके व्याख्यान में वँचाया जिसमें पाच करोड़ द्रव्य व्यय कर शासन का बड़ा भारी उद्योत किया । ज्ञान भण्डार स्था० ।

१५—सम्मेतशिखरादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विधश्रीसंघ को यात्रा करवाई तथा जाते आते समय पृथक् मार्ग में समुद्र तक साधर्मियों को एक-एक सुवर्ण मुद्रा की लहण दी ।

१६—केशर, कस्तूरी, धूप, कर्पूर की पुष्कल बालदों को खरीद कर मन्दिरों में अर्पण कर दिया ।

१७—शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर भ० आदिनाथ को चन्दन हार अर्पण किया ।

१८—सम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की तमाम यात्रायें श्रीसंघ को कराई । वापिस आकर स्वामिवात्सल्य कर श्रीसंघ को वस्त्राभूषण पहरावणी में दिये ।

१९—सत बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये संघ को घर पर बुलवा कर पूजा की एक एक मुहर दी

२०—आपको गुरु कृपा से तेजमतुरी प्राप्त हुई थी जिससे पुष्कल सुवर्ण बनाकर तीर्थों का संघ निकाला नये मन्दिर बनाये जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया निराधारों को आधार दिया जैनधर्म के प्रचारार्थ करोड़ों का द्रव्य व्यय किया । सघपूजा कर सेर भर की थाली लहण में दी ।

२१—शत्रुंजयादि तीर्थों का सघ निकाल चतुर्विध श्रीसघ को यात्रा करवाई । तीर्थ पर स्वर्णमय ध्वज दंड चढ़ाया । बावन जिनालय का मंदिर बनवाया । रुघ पूजा कर पाँच पाँच मुहरें लहण में दी ।

२२—दुकाल में चौरासी देहरी का मन्दिर बनाया । सात तालाब सात कुए बनाये पुष्कल द्रव्य खर्च किया । और सात यज्ञ करवा कर श्रीसघ की पूजा कर पहरामणी दी ।

२३—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला जाते आते सर्वत्र एक एक सुवर्ण मुहर की लहण दी ।

२४—सात आचार्यों को सूरिपद दिलाया जिसका महोत्सव व साधर्मी भाइयों को पहरामणी भी दी ।

२५—सम्मेतशिखरजी की यात्रार्थ सघ निकाल पूर्व की यात्रा की सघपुजा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया ।

२६—शत्रुंजय गिरनारादि की यात्रार्थ सघ निकाल चतुर्विधश्रीसंघ को यात्रा करवाई एवं लहण भी दी ।

२७—तीन वर्ष तक निरन्तर दुष्काल में आपने खुले दिल से मनुष्य और पशुओं को अन्न वस्त्र एवं घास देकर अनेकों के प्राण बचाये जिसमें तीन करोड़ द्रव्य खर्चा और संघपूजा कर लाहणी दी।

२८—आपको एक महात्मा से स्वर्णरस मिला जिससे पुष्कल सुवर्ण बनाया आपने घर में सुवर्ण मन्दिर एवं रत्नमय मूर्ति स्थापन की सात तालाब सात वापि सात मंदिर सात बार संघ निकाले तथा स्वधर्मी भाइयों को सातबार घर घर बुला कर संघ पूजा कर सुवर्ण थाल प्याला पहरावणी में दिये

२९—सम्मेतशिखरादि तीर्थों का संघ निकाला यात्रा की। संघ पूजा—सोने के प्याले पहरावणीमें दिये।

३०—चौरासी देहरी का विशाल मंदिर बनाया सोने की ९६ अंगुल की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवा संघ पूजा की। जिसमें बढ़िया वस्त्र तथा एक एक सुवर्ण मुद्रा लहण में दी।

३१—दो दुकाल में अन्न वस्त्र घास दिया तथा चार तालाब चार कुर्वे चार मंदिर बनाये। संघ पूजा की।

३२—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला तीर्थ पर ध्वजारोहण चढ़कर लक्ष द्रव्य में माला पहरी घर पर आकर स्वामिवात्सल्य कर संघपूजा पुरुषों को सुवर्ण कंठे स्त्रियों को सुवर्ण हार पहिनाये।

३३—एकादश आचार्यों के सूरिपद के समय महोत्सव—तीन करोड़ द्रव्य जैनधर्म के प्रचार में किया।

३४—आपका व्यापार विदेशों में था एक नीलमणि लाये जिसकी मूर्ति बनाकर घर देरासर में स्थापना की

३५—दुष्काल में देशवासी भाइयों को अन्न वस्त्र पशुओं को घास देकर उनके प्राण बचाये पुष्कल द्रव्य खर्चा।

३६—तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल सकल तीर्थों की यात्रा की आते जाते समुद्र के मध्य तक स्वधर्मी भाइयों को एक एक सुवर्ण मुद्रिका लहण में देकर जैनधर्म का बड़ा ही उद्योत किया।

२७—सात बार बड़े यज्ञ किये शिखरबन्ध मंदिर बना कर प्रतिष्ठाकरवाई बावन मण केशर की बाहर से मंगवाकर भगवान को चढ़ाई संघ पूजा कर पाँच पाँच मोहरें लहण में दी।

२८—चन्द्रपुरी यात्रा दुष्मन हुई संघ निकाल यात्रा की समुद्रतक सब साधर्मियों को एक एक मोहर दी।

२९—गुरु कृपा से चिन्तामणी मिली बावनतस्तु सोने की मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठा करवाई पहरावणी में मोहरें दी।

३०—सात बड़े यज्ञ किये ८४ न्याति घर घर बुला कर भोजन पहरावणी दी। तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला पुष्कल द्रव्य व्यय किया। संघ पूजा करके पहरावणी दी।

३१—सकल तीर्थों की यात्रा कर संघमाला पहरी समुद्र तक एक एक सुवर्ण मुद्रिका लहण में दीनी लोगों के बंध में पड़े गरीब लोगों को करोड़ों द्रव्य देकर मुक्त कराये। संघ पूजा, तीन यज्ञ किये।

३२—चार बार चौरासी जीमणे कराई ५ यज्ञ किये संघ पूजा कर एक एक मुहर लहण में दी।

३३—आपके पास पारस मणि थी लोह का सोना बनाकर १०८ अंगुल सुवर्ण की मूर्ति बना कर प्रतिष्ठा करवाई सब तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला संघ को सोने मुहरों की पहरावणी दी।

३४—सकल तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला संघपूजा कर छः छः सोना मुहरें लहण में दी।

३५—चार यज्ञ चार बार चौरासी जीमणे कराई पुरुषों को सोने की कंठियां बहिनों को सोने के चुड़े दिये।

३६—सर्व तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला तीर्थ पर माला पहरी संघ को पांच ५ मुहर ल० में दी।

३७—चौरासी तालाब खुदवाये चौरासी मंदिर बनवाये राजा को प्रसन्न कर सर्वत्र जीव दया पलाई।

३८—दुष्काल में असंख्य करोड़ों का द्रव्य देशहित अर्पण कर दिया सात बार संघ पूजा भी की।

३९—दुकाल में अन्न वस्त्र व घास दिया चौरासी देहरी का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

४०—शत्रुंजय तीर्थ के लिये संघ निकाला बहुत्तर लक्ष में ध्वजा चढ़ाई पाँच २ मुहरे पहरावणी में दी।
४१—सातवार चौरासी को आगणे बुलाय भोजन करवा सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला समुद्र तक साधर्मी भाइयों को एक २ मुहर पहिरावणी में दी।
४२—संघ निकाला मंदिर बनाये ८४०० मूर्तियों की अंजन सलाका करवा कर प्रतिष्ठा करवाई।
४३—पांच वार दुकाल को सुकाल बनाया सातवार तीर्थ का सघ निकाला सात सात मुहरों की लहण की।
४४—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला चार बार चौरासी घर पर बुलाइ एक एक मुहर लहण में दी।
४५—पाँच बार दुकाल को सुकाल बनाया यात्रार्थ संघ निकाला। संघ पूजा कर पहरामणी दी।
४६—आपको पारस मिल जाने से घर सोने से भर गया १०८ सुवर्ण की मूर्ति सोने के थाल प्र० में दी।
४७—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला ध्वजा चढ़ाई माला पहरी सघ पूजा मोतियों की कठिया पहरामणी में देकर जैन शासन की प्रभावना की।
४८—राजा को खुश कर हिंसा बंद करवाई दुकाल में अन्न दिया धर्म प्रचार में बीस करोड़ धन व्यय किया सिंध के जैनों को म्लेच्छों ने पकड़ कैद कर दिया तब आपने १८ पाट सोने के देकर छुड़ाया देवी की कृपा से अक्षय निधान मिला—स घ पूजा की।
४९—शत्रुंजय तीर्थका सङ्घ तीर्थ पर माला की बोली एक करोड़ द्रव्य खर्च कर माला पहरी सङ्घ पूजादि कार्य।
५०—आठ आचार्यों को पदवी दिलाई सघपूजा की जिसमें दश करोड़ द्रव्य व्यय किया।
५१—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला म्लेच्छ के बदी को छुड़ाया बीस करोड़ द्रव्य—संघ पूजा की।
५२—चारवार चौरासी बुलाई शत्रुंजय का सघ निकाला आठ आठ सोना मुहरें सर्वत्र पहरामणी में दीं।
५३—आपके पास रसकुपिका थी जिससे पुष्कल सोना बनाया। सोने का घर देरासर रत्न की मूर्ति सघ पूजा। सिवाय गुरु के शिर न झुकाने से राजा ने बेड़ियां डाल कारागृह में बन्द कर दिया पर गुरू इष्ट से बेड़िया स्वयं टूट पड़ीं। मन्दिर बनाया साधर्मियों को पहरामणी दी।
५४—तीन दुकाल में अन्नदान चौरासी देहरी वाला मंदिर बनाकर प्र० कराई सघ में पाँच २ मुहरें दी।
५५—सर्व तीर्थों की यात्रा तीनवार पृथ्वी प्रदक्षिणा दी संघ पूजा कर समुद्र तक लहण दी।
५६—सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की सब यात्रायें कीं साधर्मी भाइयों को सोने का माला अर्पण की। संघ पूजा करके पहरामणी दी।
५७—गिरनार पर श्वे० दि० के चार संघ आये एक करोड़ द्रव्य व्यय कर शाह पदवी प्राप्त की सघ पूजा में करोड़ द्रव्य व्यय किया।
५८—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला संघपूजा स्वामिवात्सल्य कर दो दो मुहरें पहरामणी में दीं।
५९—चार बड़े यज्ञ किये चौरासी मंदिर बनाकर १०००० मूर्त्तियों की अजनसलाका करवाई ५ करोड़ द्रव्य व्यय किया। स घ पुजा कर पहरामणी भी दी।
६०—चौरासी न्यात को घर पर बुलाकर भोजन वस्त्र पाँच पाँच मुहरें लहण में दीं।
६१—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की यात्रा स्वामिवात्सल्य संघपूजा पहरावणी में सुवर्ण।
६२—जैन मंदिर बनाकर सुवर्ण के तीन कलश ध्वज दंड चढ़ाकर प्रतिष्ठा संघपूजा पहिरामणी में मुद्रिकाएं।
६३—पूर्व के सब तीर्थों की यात्रार्थ सघ। अष्टापद के मंदिर में सुवर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई।

६४—दीर्घदुष्काल में अन्न घास दिया ८४ देहरी का मंदिर मूलनायक की सुवर्णमय मूर्ति बनाकर प्र० करवाई।

६५—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला मार्ग में ८४ मंदिरों की नींव डलवाई वापिस आकर संघ भोज देकर संघपूजा की। लड्डू के अन्दर एक एक स्वर्ण मुहर प्रभावना में दी।

६६—दुष्काल में गरीबों को ही नहीं पर राजा महाराजाओं को अन्न व पशुओं को घास दी विशाल मंदिर बनाकर सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई संघ को पहरामणी दी।

६७—आचार्यों को सूरिपद दिलाया ४५ आगम लिखा कर अर्पण किये संघपूजा की पहरामणी दी।

६८—तीर्थों का संघ निकाल सर्वत्र यात्रा की तीर्थ पर नौलख मूल्य का हार अर्पण किया संघपूजा।

६९—बीस बार यात्रा कर बीस मंदिर करवाया संघ को घर स्वधर्मी बुलाकर पूजाकर लड्डू दे।

७०—यात्रा करते हुये पृथ्वी प्रदक्षिणा दी सर्वत्र साधर्मियों के घर प्रति प्रत्येक मुहर की लड्डू दी।

७१—सात बड़े यज्ञ किये सात मंदिर बनाये सात बार संघ निकाल यात्रा की पहरामणीभी दी।

७२—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को पूर्व की यात्रा करवाई प्रत्येक एक एक मुहर की लड्डू दी संघपूजा कर पांच २ मुहरों की पहरामणी दी।

७३—म्लेच्छों से गरीबों को कारागृह कर दिये करोड़ों द्रव्य देकर मुक्त करवाये बावन जिनालय का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई संघ पूजा कर पांच २ मुहरें प्रभावना में दीं।

७४—श्रावक पास चित्रावल्ली थी जिससे आकाश चर द्रव्य से भर गया आपने जनोपयोगी कार्यों में एवं धार्मिक कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय कर पुण्योपार्जन किया ७ बार संघपूजा की।

७५—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला संघ पूजा एक एक मुहर पहरामणी में दी।

७६—बावन मंदिर बावन तालाब कूप बावन मुसाफिरगृह बनाये सात बार संघ निकाले संघ पूजा में यथामूल्य और पांच २ मुहरें मुद्रिकाएं पहरामणी में दीं।

७७—ग्यारह आचार्यों को सूरिपद दिलाया जिसका महोत्सव एवं साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी तथा प्रत्येक आचार्य को ४५ ४५ आगम लिखवा कर भेंट किये।

७८—सम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाले पूर्व के तमाम तीर्थों की यात्रा की वापिस आकर स्वामिवात्सल्य कर संघ पूजा कर एक एक मुहर पहरामणी में दी।

७९—जगत्संहारक भयंकर दुष्काल में बिना भेदभाव खुले दिल से सर्वत्र दानशालाएं खुलवाकर अन्न व घास दी। सात मन्दिर सात तालाब बनाये प्रतिष्ठा में संघ पूजा कर सात २ मुहरें स्वधर्मीयों संघ को पहरामणी में दी।

८०—यात्रार्थ संघ निकाल कर सर्वत्र पृथ्वी प्रदक्षिणा देकर साधर्मी भाइयों को एक एक मुहर प्रभावना के तौर पर दी और स्वामिवात्सल्य कर संघ पूजा की।

८१—बावन जिनालय बनाकर मूलनायक भ० महावीर की ९९ अंगुल सुवर्णमय मूर्ति बना जिसके नेत्रों के स्थान दो मणि लगाई जो रात्रि को दिन बना देती थी संघ पूजा भी की।

८२—पांच बार तीर्थों का संघ, ८४ मंदिर प्रतिष्ठा में पांच २ मुहरें पहरामणी में।

८३—जैनागमों की एक एक पेटी प्रत्येक आचार्य को दी संघ पूजा और पहरामणी दी।

८४—तीन दुष्कालों में अन्नघास दिये सात क्षेत्र किये। संघ पूजा कर पहरामणी दी।

८५—चार चौरासी सात यज्ञ ११ बार संघ निकाल संघ पूज कर पहरामणी दी।
८६—संघ निकाला सर्व यात्रा की सोने की सुपारिया पहरामणी में दी।
८७—चौरासी ज्ञानभण्डार स्थापना करके सर्व आगमों की पेटियां दीं।
८८—सात बार तीर्थों के संघ, संघ पूजा एक एक मुद्रिका दी।
८९—शत्रुंजयतीर्थ के मंदिरों का उद्धार पुन. प्रतिष्ठा करना सोने की ध्वजा चढाई।
९०—केशर और कस्तूरी की बालद मदिरों में चढ़ाई।
९१—सात बार चौरासी तीन बार संघ, मंदिर पर स्वर्ण कलश चढ़ाये।
९२—एक शत्रुंजय एक गिरनार पर सोने का तोरण चढ़ाया माला पहराई।
९३—सम्मेतशिखरजी का संघ समुद्र तक सोना मुद्रा की पहरामणी दी।
९४—चौरासी देहरी का मदिर संघ पूजा, पाच-पांच मुहरें पहरामणी में दी।
९५—दुष्काल मे अन्नघास दिया, संघ पूजा स्वर्ण मुद्रिका दी।
९६—आपके पास पारसमणि थी, लोहे का सोना बनाकर संघ पूजा की सेर की थाली पहरामणी में दी।
९७—सकल तीर्थों की यात्रा की सघ पूजा कर एक एक मुहर पहरामणी में दीं।
९८—चौरासी देहरी का मदिर बनवा कर स्वर्ण प्रतिमा स्थापन कराई सघ पूजा की।
९९—सात बार चौरासी घर आगण बुलाई वस्त्राभूषणों की पहरावणी दी।
१००—चार यज्ञ किये दुकालों को सुकाल बनाये ४ मंदिरों की प्रतिष्ठा की।
१०१—आबू और गिरनार पर मदिर बनवा कर स्वर्ण कलश चढ़ाये संघ पूजा की।
१०२—चार बार चौरासी न्याति घर आगन बुलाई एक करोड़ द्रव्य व्यय किया।
१०३—केसर की बालद ऋषभदेव के मन्दिर पर चढ़ाई और संघ पूजा की।
१०४—जनसंहार और तीन वर्ष लगातार दुष्काल पड़ा पांच करोड़ रुपये व्यय किये।
१०५—सात मन्दिर बनवाये स्वर्ण कलश ध्वजा दंड की प्रतिष्ठा और संघपूजा।
१०६—एक बीस आचार्यों को सूरिपद। आगम लिखा कर दिये। सघपूजा की।
१०७—श्रमण सभा करवाई। संघपूजा में सोने की कठियाँ तथा याचकों को दान दिया।
१०८—सात बार सघ निकाला यात्रा की सघ पूजा और एक मोहर दी।
१०९—चार चौरासी घर बुलाई पहरावणी में सोने की सुपारियाँ दीं।
११०—सकल तीर्थों की यात्रा मन्दिर बनवा कर यात्रा कराई और सघपूजा की।
१११—दुष्काल में अन्न घास दिया सहधर्मियों के अर्थ एक करोड़ द्रव्य दिया।
११२—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ सघ और सघ को पांच पांच मुहरें दीं।
११३—केसर धूप कस्तूरी की गुणें मन्दिरों में चढ़ाई संघपूजा की।
११४—मन्दिर बनवा कर मूर्ति सुवर्ण की बनवाई नेत्रों के स्थान दो मणियां लगाई।
११५—सर्व तीर्थों का सघ निकाल पृथ्वी प्रदक्षिणा की एक एक मोहर पहरावणी में दी।
११६—आपके पास चित्रावल्ली थी सघ पूजा और पच्चीस २ मुहरों की पहरावणी दी।
११७—तीन दुष्कालों में तीन करोड़, सात क्षेत्र में सात करोड़ द्रव्य व्यय किया तथा संघपूजा कर

लड्डू के अन्दर पाँच पाँच मुहरें गुप्त रूप से सब साधर्मियों को दी ।

११८—आप नागपुर के राजा भीम के मुख्य सेनापति थे आपने बालू के मकराणोंसे भूमि पर रुपये एवं सोने के पत्ते बिछवा कर भूमि प्राप्त की और उस पर भ० ऋषभदेव का मन्दिर बनाया जो अद्भुत एवं शिल्प का एक आदर्श ही है आज भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान उस मन्दिरों के दर्शन कर मुक्तकंठ से भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे हैं सिंघराज ने कई बार तीर्थों की यात्रा कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी एवं जैन शासन का उद्योत किया । और अनेकों जनोपयोगी कार्य भी किये ।

११९—आप पहिले गरीबावस्था में थे पर जैन शासन के पक्के भक्त एवं श्रद्धा थे गुरु कृपा से आप (कई) स्वर्ण बन गये जिससे गारिया सिक्का चलाया इससे आपकी जाति चोरड़िया से गारिया बन गई । आपने चौहटाने में एक कुआ तथा भाग्यशाली बनाया गरीब भाइयों की गुप्त सहायता पहुँचाई । आपकी भार्या ने शत्रुञ्जय का श्रीसंघ निकाल चतुर्विध संघ को यात्रा कराई पुष्कल द्रव्य शुभ कार्यों में लगाया । संघ पूजा कर संघ को पहरावणी दी । गुजराती लोगों से तैल घृत के व्यापार में कायम रहा घर बैठा घर पानी लाना तथा बड़ लंग गुजराई और भी जैनधर्म का बहुत ही उद्योत किया ।

१२०—आप भी साधारण गृहस्थ थे पर सैंधराज की सहायता से आपके बहुत पुण्य बढ़ गये । आपने सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई । सातबार ए म को घर आपने बुलवा कर भोजन करवा कर पहरावणी दी भ० महावीर का मन्दिर बना कर स्वर्णमूर्ति स्थापन की आचार्य श्री को ४५ आगम लिखा कर अर्पण किये और भी जैनधर्म का काफी प्रचार किया ।

१२१—चार यज्ञ किये संघनिकाल यात्रा कर संघ पूजा में पच्चीस द्रव्य दिया ।

१२२—शत्रुंजय का मंदिर बनवाकर सुवर्ण कलश चढ़ाया एक एक मुहर पहरावणी दी ।

१२३—चार बावड़ी और चार तालाब खुदाये मंदिर की प्रतिष्ठा करवाकर पहरावणी दी ।

१२४—देवी की कृपा से अक्षय निधान मिला जिससे धार्मिक सामाजिक काम किये ।

१२५—पूर्व देश के तीर्थों की यात्रा कर लड्डू एक साधर्मियों को पहरावणी दी ।

१२६—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाल कर पहरावणी में स्वर्ण दिया ।

१२७—सात बार चौरासी न्यात कर आंगन बुलाई वस्त्राभूषणों की पहरावणी दी ।

१२८—चार यज्ञ चार मन्दिर चार तालाब बनवाये संघ पूजा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया ।

१२९—सकल तीर्थों की यात्रा करके साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मालाओं की पहरावणी दी ।

१३०—दो दुष्कालों में करोड़ों रुपयों का भाव बांध दिया संघ पूजा की ।

१३१—दुष्काल में अन्न वस्त्र और पशुओं को घास देकर देश की सेवा की ।

१३२—केशर की बादल खरीद करके मंदिरों को चढ़ाई और संघ पूजा की ।

१३३—विद्वाणी से असंख्य द्रव्य पैदा कर धर्म एवं जनोपयोगी कार्यों में व्यय किया ।

१३४—तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल साधर्मी भाइयों को एक-एक मुहर दी ।

१३५—चार बावड़ी खुदाई, घर घर चार बार बड़े उत्सव यज्ञ किया, वस्त्राभूषणों की पहरावणी दी ।

१३६—सर्व तीर्थों की यात्रा कर पृथ्वी प्रदक्षिणा दी एक एक सुवर्ण मुद्रा सर्वत्र प्रभावना दी संघ पूजा की ।

१३७—देवी ने प्रसन्न हो अक्षय निधान बतलाया जिससे आपने साधर्मी भाइयों को ही नहीं पर देशवासी

भाइयों को धन से सुखी बनाया । सर्व तीर्थों की यात्राकी सात बार न्याति घर आंगने पर बुलाकर सुवर्ण नारियल की प्रभावना दी ।

१३८—सात यज्ञ किये जिसमें ४९ मन हींग लगी संघपूजा कर एक-एक मुहर पहरामणी में दी ।

१३९—चौरासी तालाब खुदवाये ८४ यात्रीगृह और ८४ मदिर बनवाये सघ पूजा की ।

१४०—दुष्काल में एक करोड़ द्रव्य व्यय किया ७ तालाब खुदवाये संघ पूजा की ।

१४१—सर्व तीर्थों का संघ निकाला, यात्रा की, सात-सात सुवर्ण सुपारियाँ संघ में बांटी ।

१४२—शत्रुंजय की यात्रार्थ संघ निकाला तीर्थ पर सुवर्ण ध्वजा चढ़ाई । इक्कीस आचार्यों को सूरिपद ४५-४५ आगम लिखवाकर अर्पण किये संघ पूजा की ।

१४३—मत्री आसपाल ने विधवा कुमारदेवी से पुनर्लग्न किया था जिस कुमारदेवी के चार पुत्र हुये जिसमें वस्तुपाल तेजपाल भी दो पुत्र हैं आपके ही कारण संघ में दो पार्टियां बन गई थीं वे अद्यावधि लोड़े साजन बड़े सज्जन के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैनसंसार में धार्मिक कार्यों में जितना द्रव्य वस्तुपाल तेज-पाल ने व्यय किया उतना द्रव्य उनके बाद शायद ही किसी ने किया हो । जिस समय संघमें इन युगल बन्धुओं के लिये मतभेद खड़ा हुआ उस समय यदि किसी ने इनका साथ नहीं दिया होता और शायद वे जैनसंघ से खिलाफ हो नुकसान पहुँचाना चाहते तो जितना धर्म का उद्योत किया उससे कई गुना अधिक नुकसान पहुँचा सकते । फिर भी जैनसंघ का अहोभाग्य था कि कई लोगों ने जमाना को देख उनका साथ देकर जैनधर्म में उनको स्थिर रखे । कलिकाल की कचहरी में उन युगलवीरों को साथ देने वालों को यह इनाम मिला कि उस समय से आज पर्यन्त उनके साथ रोटी व्यवहार होते हुए भी बेटी व्यवहार नहीं किया जाता है । उस समय के बाद मांस मदिरादि दुर्व्यसन सेवी राजपूतादि की शुद्धि कर उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार कर लिया पर अपने सदृश्य आचार व्यवहार वालों से अभी तक परहेज ही रक्खा जाता है । यही कारण है कि इतर लोग कहते हैं कि जैन तोड़ जानते हैं पर जोड़ नहीं जानते हैं । खैर वस्तुपाल तेजपाल ने अपने जीवन में क्या २ काम किया जिसको संक्षिप्त में कहा जाय तो—

५५०४ देवभुवन के सदृश्य शिखरबन्ध जैनमदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई ।

२०३०० प्राचीन जैनमंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया जिसमें पुष्कल द्रव्य व्यय किया ।

१२५००० नयी जिन प्रतिमाएं बनाई जिसमें पाषाण सर्वधातु तथा सुवर्ण रत्नों की भी शामिल हैं इस कार्य में कई १८ करोड़ रुपयों का उस समय खर्चा हुआ था ।

३ नये ज्ञानभंडार स्थापन करवाये जिसमें स्व-परमत के सर्व शास्त्र संग्रह किये थे और प्राचीन ग्रन्थों को ताड़पत्र या कागजों पर सुवर्ण स्याही से भी लिखवाया था ।

७०० शिल्पकला के आदर्श नमूना रूप हाथीदांत के सिंहासन ।

९८८ धर्म साधन करने के लिये धर्मशालाए एवं पौषधशालाए बनाई ।

५०५ समवसरण के लायक सलमा सितारे एव जरी मुक्ताफल के चन्दरवे करवाये ?

१८९६००००० तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पर जिन मदिर एवं जीर्णोद्धार करवाने में व्यय किये ।

१८८०००००० तीर्थ श्री गिरनारजी पर भ० नेमिनाथ का मदिर बनवाने में तथा अन्य कार्यों में ।

१२८०००००० तीर्थ श्री अर्बुदाचल पर भ० नेमिनाथ का मंदिर बनवाने मेंतथा आप दोनों की पत्नियां

कलितादेवी और मधुपादेवी ने दो गोख बनाने में सहायता लाख रुपये खर्च किये थे देराणी जेठाणी के गोखड़े के नाम से अद्यावधि विद्यमान हैं जिसको भारतीय ही नहीं पर पाश्चात्य भी सैकड़ों विद्वान् देखकर दंग रह जाते हैं।

१००००० सोनइयों के खर्च से बनाया हुआ एक तोरण तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर अर्पण किया
१ ० ० सोनइयों के खर्च से बनाया हुआ एक तोरण तीर्थ श्रीगिरनार पर अर्पण किया
१००००० सोनइयों के खर्च से बनाया हुआ एक तोरण तीर्थ श्रीआबु शाचल पर अर्पण किया
२५०० वार देरासर बनाये जिनमें कई देरासरों में रत्नों की मूर्त्तियां भी स्थापन की
२५० भगवान की रथयात्रा के लिये सुन्दर कारीगरी के काष्ट के रथ बनवाये
२४ भगवान की रथयात्रा के लिये सुन्दर कारीगरी के हस्ति के रथ बनवाये
१८०००० ०० रुपये व्यय कर ज्ञान भंडारों के लिये प्राचीन ग्रंथों की लिखवाया
७०० ब्राह्मण धर्म वालों के लिये सुन्दर पाठशालाएं बनवा कर उनके सुपुर्द करदीं
७०० आम जनता की सुविधा के लिये नित्य चलने वाली दानशालाएं बनाई
१० ४ वैष्णवों के मन्दिर बनाकर उन लोगों के सुपुर्द कर दिये
७०० तापसों के ठहरने के लिये सर्वानुकूलता सहित आश्रम बनाये
१४ मुसलमानों के लिये मसजिदें बनाकर उनको भी संतुष्ट किया
८४ पक्के पाल बन्ध सरोवर बनाकर आम जनता को आराम पहुँचाया
४८४ आपारस पाल वाले तालाब पृथक् २ स्थानों पर कि जहाँ जरूरत समझी
४६४ जनता के गमनागमन करने के मार्ग पर बावडिया बनवा दीं
४० मुसाफिर लोगों के ठहरने के लिये मकान बनवाये जहाँ जरूरत थी
७०० पानी पिलाने के लिये सदैव चलने वाली प्याऊ बनवाई
७ ० पानी के कुवे बनाकर जनता की पानी की तकलीफों को सदैव के लिये मिटा दिया
३१ राजा महाराजाओं को निर्भय बनाने के लिये पक्के २ किले बनवाये
५ ० आपकी ज्वरता के साथ हमेशा ब्राह्मणों की रसोई करवा कर दान दिये जाते
१ तापस सन्यासी एवं आगन्तुक लोगों को भोजन करवाया जाता था
५ जैन श्रमण श्रमणियाँ आपके रसोड़ा से निर्दोष आहार पानी बेहरते थे
२१ आचार्यों को महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद दिलाया
१ ०० सोनइयों को दानशाली मारते में सुकृत के कार्यों में व्यय किया

इनके अलावा भी अनेक सुकृत के कार्य्य कर अपनी उदारता का परिचय दिया उस समय तथा उसके बाद भी बहुतसों के पास लक्ष्मी आई और गई पर वे लक्ष्मी के अभावमें भी लक्ष्मी के प्रभाव में भी सुकृत नहीं कर सके। यह बात तो निश्चित ही है कि संसार में जन्म लेकर अमर कोई नहीं रहा पर जिन लोगों ने इस प्रकार सुकृत का कार्य किया है वह आज भी अमर ही हैं। वस्तुपाल तेजपाल और इनकी पत्नियों ने केवल लक्ष्मी से ही सुकृत किया हो ऐसा नहीं है पर उन्होंने अपने शरीर से भी आचार्योपाध्याय एवं मुनियों की सेवा करने में कमी नहीं रखी थी इन सब बातों को उसी समय के जैनेत्तरों ने भी लिपि बद्ध की थी।

१४४—आप श्रीमान् नारायण सेठ की परम्परा में एक महान् प्रभाविक पुरुष हुये जब आपने मारवाड़ के नागपुर से श्रीशत्रुंजय तीर्थ का विराट सघ लेकर गुर्जर धरा में प्रवेश किया तब वस्तुपाल तेजपाल ने सुना तो वे बहुत दूर से चल सघपति पुनड़ से मिले और आपके इस शुभ कार्य की खूब ही प्रशंसा की। शाह पुनड़ का मान पान केवल जैन समाज में ही नहीं पर, देहली पति बादशाह भी आपका आदर करता था और इस आदर से शाह पुनड़ ने जैनधर्म के भी अनेक कार्य किये थे

१४५—शाह करणा चोरड़िया के चार पुत्र थे शाहवालो शाहटीकु शाहभैंसो और शाहआसल एव चारों भाई बड़े ही भाग्यशाली थे प्रत्येक ने एक २ नाम्मरी का कार्य किया जैसे शाह बाला ने नागपुर में भग० आदीश्वर का मन्दिर बना कर सर्व धातुमय विशाल मूर्ति स्थापन की थी। बादशाह के भय से उस समय मन्दिरों पर शिखर नहीं कराये जाते थे अत. उस समय के बने हुये मन्दिर पर अभी स० १९९२ में शिखर करवाये गये। शाहटीकुने टीकुनाडो बनाया कहा जाता है कि हिन्दू मुर्दोंके जलाने का टैक्स बादशाह दो स्वर्णमुद्रा लेता था जिसको टीकूशाह ने छुड़वा कर नगरवासियों को उस जुल्मी कर से मुक्त किया शाह आसल ने गोचरभूमि के लिये बड़ी रकम देकर कई कोसों तक भूमि छुड़ादी जिसमें आज भी गायादि पशु सुख से चर रहे हैं। शाह भैंसा ने तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल साधर्मी भाइयों को एक एक मुहर लहण में दी।

१४६—देवी ने प्रसन्न हो एक अक्षय थैली दी कि जिससे सर्व तीर्थों की यात्रा की चौवोस भगवान का एक मन्दिर शत्रु जय पर बना कर सुवर्णमय मूर्ति और सोने का कलश चढ़ाया तथा स घ पूजा कर स घ को सुवर्ण जनेऊ की पहरामणी दी।

१४७—दुष्काल में एक करोड़ द्रव्य व्यय कर मनुष्यों को अन्न वस्त्र पशुओं को घास तथा तीन बड़े तलाव तीन वापी और एक मन्दिर बनाया प्रतिष्ठा में संघ को पांच पकवान भोजन करवा कर वस्त्र तथा लड्डू में एक एक स्वर्ण मुद्रिका गुप्त रख पहरावणी दी।

१४८—चार बार सकल सं घ को घर आंगणे बुलाया तिलक कर सुवर्ण सुपारी दी।

१४९—आप पर गुरु कृपा थी तेजमतुरी मिली जिससे सुवर्ण बना कर तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला पूजा की स० १३११-१२ में सुवर्ण द्वारा पुष्कल धान का देश देश में संचय किया और उसमें शुरु से ही ताम्रपत्र लिखा कर डाला कि यह धन मैंने रांक गरीबों के लिये संचय किया है वि० सं० १३१३-१४-१५ लगातार तीन दुष्काल पड़े जिससे साधारण जनता ही नहीं पर राजा महाराजा और बादशाह ने भी जगडुशाह का संचा हुआ धान खाकर प्राण बचाये।

राजा महाराजा तथा बादशाह ने जगडु से प्रार्थना की कि आप हमारा राज लो और हमको खाने के लिये धान दो। इस पर जगडु ने कहा कि संचय किया धान मेरा नहीं है आप उसमें उस समय के ताम्रपत्र देखलें वह धान निराधार रांक भिक्षुओं का है यदि आपको जरूरत हो तो आप भी ले लीजिये। आखिर लाचार हो उस धान को लिया एक कविता में इस प्रकार लिखा है—

१—सिन्ध के राव हमीर को ८००० मुंडा धान दिया। २—उज्जैन के राजा को १८००० मुंडा
३—देहली के बादशाह को २१००० ,, ,, ४—प्रतापसिंह को ३२००० ,,

पहरामणी में पुरुषों के वस्त्रों के साथ पच्चीस पचीस तोले की कंठियाँ बहिनों को चूड़े प्रदान किये।
५५—सकल तीर्थों की यात्रा की संघपूजा कर पाँच २ मुहरें पहरामणी में दी।
५६—चार यज्ञ कर संघ को घर आंगणे बुलाकर तिलक कर पहरामणी दी पुष्कल द्रव्य व्यय किया।
५७—दुकाल में आये हुये भूख पीड़ित मनुष्य पशुओं का पालन किया भ० आदीश्वर का विशाल मंदिर बनाया तीर्थों की यात्रा कर संघ पूजा की एक एक मुहर लहण में दी।
५८—सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की सब यात्रा की आते जाते सर्वत्र लहण दी स्वामिवात्सल्य कर संघ को पहरामणी में पुष्कल द्रव्य दिया याचकों को भी दान दिया।
५९—आपने निराधार साधर्मियों के लिये एवं जैनधर्म के प्रचार के लिये बीस करोड़ द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की सेवा की सात यज्ञ कर संघ पूजा की पुष्कल द्रव्य व्यय किया।
१६०—सातवार चौरासी घर आंगणे बुलई सात मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई और संघ पूजा कर एक एक सुवर्ण सुपारी प्रभावना में दी।
१६१—आपने विदेश से एक पन्ना लाकर ११ अंगुल की मूर्ति बनाकर घर देरासर में प्रतिष्ठा करवाई तथा संघ पूजा कर वस्त्राभूषण वगैरह पहरामणी में दिये।
१६२—आपको पारस प्राप्त हुआ था। लोहे का सोना बनाकर धर्म कार्य में व्यय किया एवं दुष्कालादि में जनसेवार्थ भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला शत्रुंजय पर नया मंदिर बनाया स्वर्णमय ध्वजा दंड चढ़ाया और संघ पूजा कर पचीस २ मुहरें वस्त्र लड्डू पहरामणी में दिये।
१६३—तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला संघ को पहरामणी दी जिसमें सोने की डिबियें दी।
१६४—चौरासी न्याति को अपने घर आंगणे बुलवा कर पाच पकवान भोजन करवा कर सुंदर वस्त्र पोशाक की पहरामणी में दी।
१६५—दुकाल में बड़ी उदारतासे स्थान स्थान पर शत्रुकार मंडावा दिये तथा तीर्थ यात्रा कर संघपूजा की।
१६६—सात बड़े यज्ञ किये साधर्मियों को पहरामणी दी। याचकों को मनोवांछित दान दिया।
१६७—आपके विदेश व्यापार से अनाशय तेजमतुरी हाथ लग गई जिससे पुष्कल सुवर्ण बना कर चार मंदिर चार तालाब चार यज्ञ और चार बार तीर्थों के सघ निकाल कर सर्व तीर्थों की यात्रा की सघ पूजा की पांच २ मुहरें पहरावणी में दीं।
१६८—श्रीशत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला संघपूजा कर पहरामणी दी।
१६ —चार बड़े यज्ञ किये ८४ चार बार घर आंगण बुलाई पहरामणी दी।
१७०—सम्मेतशिखरजी की यात्रार्थ सघ निकाला जाते आते सर्वत्र लहण दी स्वामिवात्सल्य कर सघ को पहरामणी दी और याचकों को दान दिया।
१७२—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ स घ निकाला दुकाल में उदारता व सघ पूजा कर पहरामणी दी।
१७१—शत्रुंजय गिरनार का संघ ७२ लक्ष द्रव्य में संघमाळ संघ को पहरामणी।
१७३—सात बार बावनी, ३ बार चौरासी बुलवा कर भोजन के साथ पहरामणी।
१७४—सात बड़े यज्ञ किये जैन मदिर बनवा कर स्वर्ण प्रतिमा स्थापन की।
१७५—शत्रुंजय गिरनार का स घ निकाल एक एक सुवर्ण मुद्रिका पहरामणी में दी।

वाणीयो वसु विधि निर्मियो, जिहि तुल न तुल्या चक्कवे ॥
कितइक क्रपण करप काजि नवि किणही आवे ।
सुम मारग सेविए सूलसा मही भजावे ॥
तु सारग दूसरा, दूनी सकडे सधारी छ' ।
मह भोपति दगिया, अचल अखियात उथारी ॥
मति हीण मूगल घर्प चढियो, छाया वर घर तो धरा ।
मेरवा तरोवर तु पखे, पछितावे पखी खरा ॥
तुझ बीण असूर अनत सक नवी कोइ माने ।
तुझ विण पात कुपात भला को भेव न जाणे ॥
तुझ विण बदी वदिजात, काविल न बहोडे ।
तुझ विग चाडी करे, चाडके नाक न फोडे ॥
भणि सीहू तुझ विणि दांन गौ, कछु न वात दीसे भली ।
मैरवा आव इक वार तु, हुती अनीति अलवर चली ॥
प्रथम हमीर चहूवांन, वस जिम हूवो हमारी ।
दुजे खीलची साहि, जास माफुर वजीरा ॥
तो पीछे पेरोज, चढ त्रिमलुवा दल कुटयो ।
यहू रांग भुगइ साहि महमुद अहुटयो छ
अवमान अति आयो न को, पातिसाह परगट कहूँ ।
मेरू नरिंद संभारि मणु, तुव जस करि कहण वहू ॥
उदधि वार लगि अखल, भगति परवरी हित ।
महा कोट पुतली असुर आग्रह्या अगम गति ॥
महा बेगम के वैर, लुध एधवथ गहि लुटत ।
सो न हुति क्रम दसा, हीयो ततखिन फुनि फुटत ॥
मेरू न उपरत खगतलि, अतुर वचन अनदिन सह ।
उचरति उमय सरसुरि निसुनि, तव तुहि तीरथ कुण कहत ।

मेरूशाहका भाइ रामाशाहकी कीर्ति

मेरू निजरि करै साहिआलम, राम प्यारि पतिसाहीं मालिम
बहतरि पाल मेवात वसावैं राजकुली निति सेवा आवै ॥

छंद :

सेवै कछवाहा, जोधक जाग्रै, भारथ जोगे मीछ भला ।
मिरवांण चौहाण चंदेल सोलंकी, देवड निसाण जिके दुजला ॥
वड गुजर ठाकुर छेठर छीमर, गौड गहेल महेल मिली ।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली ।
जे तुवर तार पवारक सोढा, सांखला खीची सोनगरा ।
राठौड जी के रायजादा रावत, स्वांमि कांमि संग्राम खडा ॥

* दुनियाके सकट में मबल आधार देनेव ला

जे रावल राजा रांण राजवी, कोडि कला मडलिक मिली ।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर सेवै राज छतीस कुली ॥
भुमिया भुपतिक राइ महा भड, ते दिसे दरबारि खडा ।
जे बमण भट दिवांण, दरसण, जगातिहुजिदार वडा ॥
जे मंगण गीत करै कवि, मांहि महाजन मेल मिली ।
दरबार तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली ॥
जे मीर मीया सीकदारत खोजा, खान मुस्मिक तुरुक तुचा ।
खांआदा मलिक जु मेर मुकदम, ज्वांन पठाण मुगल बचा ॥
जे जामलगाह बलोच हबसी, खेड खत्री जनु मेलमिली ।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली ॥
कवित—राजकुली दरबारि, एक वीनती पठावै ।

इक उभा बोलगै इक वड सेवा आवै ॥
छाजे वसि छतीस एक जी जी करि जपै ।
मनि भावै सो करै एक थाप्या उथपै ॥
अलवर साहि आलम थपियौ, कहे जस कीरति भल ।
दरबारि रांमशाहा तणौ, मोंड वधी मागै महल ॥

विचित्र देशोनु वर्णन

दिसि जिणि सूर उदे दरसाय, जिति लगन दीनि न्याणुं जाय ।
धु अविचल जित्त लग ध्रु तारी, तितलग कीरति राम तुहारी ॥
घडा पहाड जे थि मैव का, लका परे तथि पड लका ।
सौ मण दत हस्ति मुख सारी, तितलग कीरति राम तुहारी ॥
जित लग पुरुष पशु रन पांने, समझै नहीं तेथि परि साने ।
अर्क तेज उतरे अवारी, तितलग कीरति राम तुहारी ॥
जित लग रूप महातर जैसा, उन सेवतां टलै अदेसा ।
सो पर चदन परउपगारी, तितलगि कीरति राम तुहारी ॥
साटिक—रामचन्द्रो रामरुपस्य, रामरुपि मनोहरो ।
रो रवेण भये राम, संकरे देसांतरि गत ॥
दोहा—किति समदां कटलै, परमै कीयौ प्रवेस ।
रांम सदाहा रूपके, नचै जपै नरेस ॥

छंद

जिणि देस नरेश्वर जपै गुण तोरौं, जीव भखे पाषांण जरे ।
संपुर समद वहते सायर, ट घण साम्है नीरति परे ॥
जिणि देस में निख सकै नहि जाइ, घोडी दूधम थांण धुरै ।
तिणि देस नरेसुरराम तुहारी, कीरति कोडि किलोल करै ॥
जिणि देस अजाइय वात जपता, बीछी मीढामानि१ वसे;

१मेंढा जीतना वीछु

वाणीयो वसु विधि निर्मियो, जिहि तुल न तुल्या चक्रवे ॥
कितइक कृपण करप काजि नवि किणही भावे ।
तुझ मारग सेविए सूलसा मही भजावे ॥
तु सारग दूसरा, दूनी सकडे सधारी छ’ ।
मड मोपति दगिया, अचल अखियात उवारी ॥
मति हीण मूगल मर्प बढियो, छाया तर धर तौ धरा ।
मेरवां तरोवर तु पखे, पछितावे पखी खरा ॥
तुझ धीण असूर अनत सक मवो कोइ मांने ।
तुझ विण पात कुपात भला को भेव न जांणे ॥
तुझ विण बदी वदिजात, काबिल न वहोडे ।
तुझ विण चाडी करे, चाडके नाक न फोडे ॥
भणि सीहू तुझ विणि दान गौ, कछु न वात दीसे भली ।
मैरधा आव इक वार तु, इती अनीति अलवर चली ॥
प्रथम हमीर चहूवान, धस जिस हूवो हमारी ।
दुजे खीलची साहि, जास माफुर वजीरा ॥
ती पीछे पेरोज, चढ विमदुखा दल कुट्यो ।
वहू रांग सुगइ साहि महमुद अहूटयो छ
भवमान अति आयो न को, पातिसाह परगट कहूँ ।
मेरू नरिंद समारि भणु, तुव जस करि कवण घहू ॥
उदधि पार लगि अलल, भगति परवरी हित ।
ब्रह्मा कोट पुतली असुर आग्रह्या अगम गति ॥
महा बेगम के वैर, लुन थवथ पहि लुटत ।
सो म हुति क्रम दसा, हीयो ततखिन फुनि फुटत ॥
मेरू न ठपारत खगतलि, अतुर वचन अनदिन सह ।
उचरति उभय सरसुरि निसुनि, तव तुहि तीरथ कुण कहत ।

भेरूशाहका भाइ रामाशाहकी कीर्ति

नेक निजरि करै साहिआलम, राम प्यारि पतिसाहां मालिम
बहतरि पाल मेवात वसावे राजकुली निति सेवा आवे. ॥

छंद .

सेवै कछवाहा, जोधक जादौ, भारथ जोगे भीछ भला ।
सिरवांण चौहाण चंदेल सोलखी, देरह निसाण जिके दुनला ॥
बड गुजर ठाकुर छेटर टोंमर, गौड गहेल महेल मिली ।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली ।
जे तुंवर तार पवारक सोढा, सांखला खीची सोनगरा ।
राठौड जी के रायजादा राउत, स्वामि कामि सग्राम सदा ॥
जे रावल राजा रांण राजवी, कोडि कला मडलिक मिली ।
दरवारि तुहारे रामनरेसुर सेवै राज छतीस कुली ॥
भुमियां भुपतिक राइ महा भड, ते दिसे दरवारि खड़ा ।
जे बमण भट दिवांण, दरसण, जगातिहुजिदार वड़ा ॥
जे मगण गीत करै कवि, मांहि महाजन मेल मिली ।
दरवार तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली ॥
जे मीर मीया सीकदार खोजा, खान मुम्मिक तुरुक मुचा ।
खाआदा मलिक जु मेर मुकदम, ज्वान पठांण मुगल वचा ॥
जे जामलगाह बलोच हबसी, खेड खत्री जनु मेलमिली ।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली ॥
कवित—राजकुली दरबारि, एक वीनती पठावे ।
इक दमा बोलगें इक बड सेवा आवै ॥
छाजे वसि छतीस एक जी जी करि जपै ।
मनि भावे सो करै एक थाप्या उथपै ॥
अलवर साहि आलम थवियौ, कहै जस कीरति भल ।
दरवारि रांमशाहा तणी, मोंट वधी मागै महल ॥

विचित्र देशोनु वर्णन

दिसि जिणि सूर उदै दरसाय, मिति लगन दीनि न्याणु जायं ।
दु अविचल जित लग ध्रु तारी, तितलग कीरति राम तुहारी ॥
घडा पहाड जे थि मेव का, लंका परे सथि पड लका ।
सौ मण दत हस्ति मुख सारी, तितलग कीरति राम तुहारी॥
नित लग पुरुष पशु रन पाने, समझे नहीं तेथि परि साने ।
अर्क तेज उतरे अपारी, तितलग कीरति राम तुहारी ॥
जित लग रूप महातर जैसा, उन सेवता टले अदेसा ।
सो पर चदन परउपगारी, तितलगि कीरति राम तुहारी ॥
साटिक—रामचद्रो रामरुपस्य, रामश्पि मनोहरो ।
रो रवेण भये राम, सकरे देसांतरि गत ॥
दोहा—किति समदां कटले, परमें कीयौ प्रवेस ।
रांम सहाहा रूपके, नावै जपै नरेस ॥

छंद

जिणि देस नरेस जपै गुण तोरौ, जीव भले पाषांण जरे ।
सपुर समद वहते सायर, ट घग सामई नीरति परे ॥
जिणि देस में निस सकै महि जाद, घोडी दूधम थांण घुरे ।
तिणि देस नरेसुरराम तुहारी, कीरति कोडि किलोल करे ॥
जिणि देस अजाइब वात जपता, कीडी मीठामांनि[1] वरे;

[*] दुनियाके सकट में प्रबल भाधार देनेवाला

[1] मैदा भीतना थीडु

स्वामीदास नद के सर्रा हो हाथ हिये हे ।
सबहीको सूरि अभिलाख कवि सुंदर ज्यु ॥
मोरखी के पाये केइ लाख जीव जीये हे ।

सुराणा की उदारता

सूराणा उगम लगै, अलवेसरि उदार ।
परउपगारी कारणे, उदया इण ससार ॥
उदया इण ससार मदा दोसत उन्नत कर ।
खिदरखांन दीयोमांन राज काजे धुरिंधर ॥
न दिन घणा नवेसर; रावराणा सन छडयो ।
रेल्हण छाजूनद, त दिन पुरिख न मनि मड्यो ॥
नरसिंघ मोल्हातसो सर्यो करतब सवायो ।
घोहय के चोलराज आनदे जगत भ्रिवायो ॥
पूनाहल जपक कुल कहल, करमसीह सच्चो कह्यो ।
बाबठे सम घेरोजगठ, सूराणे सत समह्यो ॥

सोहिलशाहकों छद

कविषण कलत्र कहे सुण कता परहरि पोय परदेसे चिंता ।
दुरि दिसावर मम करि तकहु, सुहण सदाफल सोहिलमंगोहु ॥
तुछ काम जे मुटा मुटा बोले, ते नर सोहिल सरि किम तुले ?
त्यागि वार देहि मुह मोटा, दूसम समै अन देवें थोडा ॥१॥
असमे थोडो अन गवं मनमांहि आंणे
पतिभेद जे करे लाहि लाहणि नही जाणे ॥२॥
ढिल मडकी मेवात करे सघ मांहि हित भता ।
मगिणहारां वेसि, सरस अति घाले मता ॥
रहां रंग म रहे चोख कहि, सरस परचि दस सचि करि ।
ससार इसा नर अवतया, किम पुजे सोहिल सरि ॥

दानवीर छजमल वाफणा

सुपरिसो सेणिकराइ जेम सुधम मिय ।
नद मंद जिम घरसत, आधिक जनों लछि बहु दिनिय ॥
सपुत मांण दलपति मनोह ; कहि गिरधर सोमाजगि लिनिय ।
यदे आसकरण आचारिज; करणी अजब स करमण किंनिय ॥
उतपति ओयस थांन, सास्र बापणां सकल नर ।
सांगानेर मझारि; कियो जिन प्रासाद उच कर ॥
ओसवाल मुवाल साह मेरू घरि सुदर ।
घोहथहरा सुचाइ, बंधव छजमल उनत कर ॥
प्रविष्ठा करे श्री जिन तणी कहे धनोजी तम जीयो ।
त्यागियां तिलक ठाकुर तणे; करमचद अगि जस कीयो ॥
आगे नरसिंघ हुवा, अन्न दूरमखमै दीया ।
रतनसीह रंगीक, प्रगट प्रासाद ज कीया ॥
कुलवट येह अचार दांन बहु समाज दिजे ।
ओसवस उदियत किति कहुखहि भणिजे ॥
सिवराज घरे सम्रम मगति, कहि किसनां कीरतिमक ।
गढमल तणो गुण को मिलो, ते छजमल्ल जगे भारमल ॥

जगडू-शाहा का महात्व

सागरांण परणीयो, मांड बंधीयो मंडोवर ।
मडोवर रे धणी, सेर नहीं दीनो सभर ॥
मिळी कोडि मंगता, कोइ उर घोड न सके ।
महाजनको मोड, साह निति वारो अंके ॥
मेवाड धणी मडोवरा, येता थया अनगमा ।
जगडये साह जिमाडिया, सऊ लाख एकणि समा ॥
येता हरो थदे खुदियालम, उपाडीये घिलसीये आधि ।
कासिव हरे कीयो कर मुकतो सचे नंद न लेगो साधि ॥

जहांगीरशाह की महेमानी करनेवाला जगतशेठ झवेरी हीरानद.

मुकरबखांनुं पुछिया नृप नूरजहांमी ।
कब चलां घर मदके लेने महमांनी ? ॥
कछुक महसल किनिये, हे लोक नमेरा ।
कियो अखा घर देखिये हीरानंद केरा ॥
क्या मे नौसरखानदी क्या लोकाताइ ? ।
मै सोदागर साहिदी मुझइ हे बडाइ ॥
बडा आपणा जांणि के कजिये यडेरा ।
एक पियाला खुस करो खुसबुइ केरा ॥
मैगल घणा उमाहिया जनू बद्दल काले ।
आपण सहिजां चलणे ते सह मतिवाले ॥
मुख अधियारी मलीया, गलि चोर बयाले ।
द्रिढ गाडे बहु जीतणे, गढ कोटावाले ॥ २०
सुळ नछित्र सुछत्र, सीसकर चढर ढक दे ।
साहिजादे सग ढवरे; सब पायपुलदे ॥
सुखमल अर जळवार दी पार्यदाज बिछाया ।
जहांगीर से पातिसाहतुं ले घरि आया ॥ २१
परीमा हीरा पेस सुण्या दिठा महुनेरा ।
इुणक्या मार्पा लाल ते, कीमति अधिकेरा ।
येक जीह केसे कहूँ, गणती जो आया ।

विहग गुणरस राम दान सवध सोहे दिशा ।
सौहादर सतपर छेह जान रिध कारजगामेंवशा ॥
हरदास कहे महाराजरो व्यापक वचन उच्चरे ।
तागीया तिलक सहुतणा तेजपाल रणथम सरे ॥

\+ + +

नवसोने बावीतरे गढचट कोइ न आयो गाज ।
विषमी वार सचेती बदिया हाम्यो तो फावियो हरराज ॥
मारवाद मेवाड़ सिन्ध घर सोरठ सारी ।
कादमीर कांगरू गौड़ गिरनार गन्धारी ॥
अलवर घर आगरो छटा भालरपुर थांणे ।
पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षण धरा पार आंगणे ॥
नरलोग कोई पुजिया नहीं समवड़ थारी सारखो ।
चन्द्रभाण नाम युग युग अवचल यह पलटे घन पारखे ॥

कवित मारूजी संचेतीरो

पितपुगद मालमखेत प्रसद्ध सायर मेहा ।
छहड़ जीम याचेत माम जिग्दराज वेहा ॥
धन कालु धनराज सोल आदू ज्ञत विनै ।
मतिसागर महराज दाम सहु अलख दीनै ॥
सीणपट सचेती तेजहर छत मोटी विरुदछाता ।
सर्व जाण अभग चंदभाण भूप उजलदाता ॥
कर को करपण न सके क्रठै का वीहसो म पातै वाय ।
भजा भुको कियो मैर हर हरखावत लाग्यो हाथ ॥
रव पुडरीक गणु रढवडियो वरण अठारा दीपा वरासो ।
मैक मेघ हाडी सोभा हिसशाखा धनराज हरा ॥
लाख घणु घणु लहसाणा लोभ्या किणही न पै टोलार ।
भीमैतिया सुरताण सहोवर पकड़ी बाह आदि पार ॥
पुहवी सुप्रसिद्ध नयर मोखोणो अवचल ।
केसीपुरी पोकरणि शाख सुखा सुनिश्चल ॥
तस सुत गोशल कल्पवृक्ष अविचल जम छाजै ।
खीमेड़ियो गढ़ कल्हसिंह शुशील गल गाजै ॥
पोयड सिखरो प्रगट नर सुकविगद समुचरे ।
पुम्विजा सयण खीवराजरो धनराज सहुसीरे ॥

\+ + +

जोधपुर का समदड़िया मुता सतीदास का कवित.

वादे वाजीराय जा रए हो वाजीरारे सिरे ।
वाग आपीए आदि तजै हरे वहु जास ॥
पत्त धरे छत्रपति माया करे तुस पाण ।
दीवाणरे सिर सरोवर मांडे सतीदास ॥
वदा लखारारी रीत मोद ओपे वढा लाजु ।
तेगधारी बड़ो कहाके वासरे तौल ॥
नीर रा चढ़ाठ नरसिंह राठ दे नेम ।
महादरातों जैहा करयाजे रहे बोल ॥
वाद वदी हाथियों सेठ लाटली कौन वैदे ।
सारी समागखाजी हाँ हुँ चकै किसी चल ॥
दी ठोठ वे राज हरो सार सोधी वांण उगे ।
जाझमा करू वैजोर वस रोठ जाल ॥
मती जोध भाण अचल कचरारी जोर कहे ।
माइदास वखतेरू सपतु संग्रन्थ ॥
जोधु मधु आपु माइदास हुकमचद जौ रहे प्रतापे धरा ॥

बलाह रांक भालरो गीत

कटी लटी करवाल अस चढ अवनी चाले ।
रायमक्त रण चढी रिपुदल भक्षण काले ॥
वीरतां वीड असराल झाकाने केता झाले ।
सुहड़ सुभट भट सिंदूर दुर्जन दे साले ॥
बलाह गोत थांका वरवीर रांका राव सम उद्धरे ।
कवि कल्हण जग जीतण हुला झालो जग सरासिरे ॥

कुम्मट विंजारो कवित

पड्यो इन्द्र घर काल विकराल मृतलोगे पड़ायो ।
बलबल करते बाल मृगनैंणी पति न पायो ॥
समरे कुक्ष जननी जनक हाहा सहु को करे ।
धन विंजा श्रीय विध में अन्नदानधिकोकरे ॥
राव रंक सरिखा भया आवे विंजा द्वार पे ।
प्राण रखो पृथ्वी प्रही अमर नाम संसार पै ॥

॥ ओसवाल ज्ञातिनो रासो ॥

सोह सधौ संसार सीर, इल राजण इलियात,
मखिम अमीच निमधियौ निज उजलावण न्याति ॥
नहीं साढीवाहर न्याति सराहा श्रीमाली वोसवाल सवे ।
डीडू, बघेरवाल दाखी जै, चित्रावाल पल्लीवाल चवे ॥
खैलाल, नराणा, हरसौरा, जुगती जै ओपम जाणे ।
ओती ओसवाल न्याति उजाल, सधौ बढ़ि महत्व वाखाणे ॥
पीणी पोकरवाल भणी बे, वली मेदतमाला कारमहे ।

यो जौनपुर भरहा ठोर जानि पाँणी पथ वाघ मुछालका,
अरधान मांन रुस्तगि हुये, मौठीया कहूँ महिपालका,
अधिकारी टाल्हन धांधीया, जस पल्हवट राजपाल का,
खिती भेरू रामा परगटे, मेवात बहतरि पालका,
गोल्हा सारग समरथ साह, तांबी मेघ प्रमाल का,
घणां विरद अब रांकियाण तिस ऊपरि हठी हठाल था,
भखित्रज तेरा भारमल भमीच जनम भरिसाल का,
मलि मैवासी कीये जेर चढि गिर खु द्या सुरताल का,
जगि उपरि बलि विक्रम जिसा, दालिद्र कस्या जजाल का,
राजा टोडरमल शु मीति, ज्यौं सरवर मांन मराल का,

\+ + + +

साचा गुन खेते कह्या, सवत सोलासे तेतालका ।
हुकमज अकबर पातिसाह परताप जो भारहमालका ॥

ओसवाल भोपालों का रासा
(चाल चौपाई)

शारद मात नमू शिरनामी । कवियों की हूँ अंतर्जामी
विणा पुस्तक धारणी माता । हस वाहनि वयण वर दाता ॥ १ ॥
बारह न्यात बली चौरासी । ओसवाल सब में गुण रासी ।
रास भणु मन धरी उल्लाश । जाति नामक करहूँ प्रकाश ॥ २ ॥
पार्श्वनाथ घर छट्टे पट्टाम्बर । रत्नप्रभसूरि सूरिवर ।
आये मरुधर देश मझारी । उपश नगरे उग्र विहारी ॥ ३ ॥
शिष्य पाचसौ ये गुणवन्ता । मास दोमास तप आचरता ।
कोई नहीं पुच्छे न अन्नपाणी । ज्ञान ध्यान तपस्या मन ठाणी
राय जमात अही विष प्रह्यो । सूरि समीप लाइने धर्यो ॥
चरण प्रक्षाल जलछटकावे । तत्क्षण कु वर सचेतन थावे ॥ ५ ॥
राना मंत्री नागरिक सारा । गुरु उपदेश शिर पै धारा ।
सात दुर्व्यसन दूर निवारी । सवालाख सख्या नरनारी ॥ ६ ॥
जिनके गोत्र प्रसिद्ध अठारा । तातेड़ बापणा कर्णावट सारा ।
बलाह गोत्र की रांका शाखा । मोरक्ष ते पोकरणा शाखा ॥ ७ ॥
विरहट कूलहट ने थी श्रीमाल । सचेती श्रेष्टि उज्जमाल ।
आदित्यनाग चोरड़िया बाजे । भूरि भाद्र समदड़िया गाजे ॥८॥
चिंचट देसरड़ा कुम्मट मेटी । कनौजिया डिड्डू लघुश्रेष्टि ॥
चरड़ गोत कांकरिया आखा । लुगगोत चडालिया शाखा ॥ ९ ॥
सुघड़ सूघड़ ने घटिया गोत । पेता आदू ओसवश उद्योत ।
महाजन संघ थाप्यो गुरुराय । दिन दिनवृद्धि अधिकी थाय ॥१०
वीर सवत् के थे सीत्तर वर्ष । अपूर्व था उस सघ का दर्श ।
अमर यश सूरीश्वर लिनो । धर्म कलि में थिरकर दिनो ॥११॥
भार्य छाजेड़ राखेचा काग । गरुड़ सालेचा भरी जिन माग ।
बाघरेचा कु कु म मे सफला । नक्षत्र आभड़ बहुरी ककां ॥१२॥
छावत वावमार पिच्छोलिया । हथुड़ियों ने शुभ कार्य किया ।
मंडोवरा मल गु देचा जाण । गच्छ उपश पेते पहचान ॥१३
वड जिम शाखा विस्तरी । गणती तेनी को नहीं करी ।
भानु ताप प्रचण्डमध्यान्ह । महाजन सघ को वढियो मान १४
तसमट्ट तातेड़ कहलाया । तोडियाणी आदि मन भाया ॥
बावीस शाखा विस्तरी । भाग्य रवि ने उन्नति करी ॥ १५ ॥
बाप्पनाग प्रसिद्ध बाफणा । नाहटा जंघड़ा वैताला घणा ॥
पटवा बालिया ने दफ्तरी । बावन शाखा विस्तरी ॥ १६ ॥
करणावट की सुनिये बात । जिनसे निकली चौदह जात ॥
बलाह बास वल्लभी करे । शिलादित्य राजा से अडे ॥ १७ ॥
कांगसी ने उत्पात मचायो । वल्लभी को भंग करायो ॥
रांका बांका नाम कमायो । जाति रांका सेठ पद पायो ॥१८॥
छवीस शाखा पृथक कही । समय उन्नति को मानो सही ॥
मोरक्ष गोत्र पोकरणा आदि । सत्तरा शाखा भाग्य प्रसादि ॥१९॥
कुलहट शाखा सूरवा कहांजी । जाति अठारह प्रकट लो जाणी ॥
विरहट गोत भुरंटादि सत्तरे । वड जिम शाखाए विस्तरे ॥२०॥
श्रीश्रीमालो ने सोनो पायो । मान राज से मिलियो सवायो ॥
निलड़ियादि बावीस जात । शुभ कार्यों से हुई विख्यात ॥२१॥
राव उत्पलदेव ने नाम कमायो श्रेष्टिगोत वैद्य मेहता पद पायो ॥
भाला रावतादि एकतीस । श्रेष्ठ काम करते निशदिस ॥२२॥
सुचति शुभ सूचना करे । सचेती हिंगड नाम ज धरे ॥
शाखा तेतालीस निकली । उन्नति में सब फूली फली ॥ २३ ॥
अदित्यनाग था पुरुष प्रधान । प्रकट हुआ था नवनिधान ॥
धर्म तणो किनो उद्योत । महाजन सघ में जागति जोत ॥२४॥
चोरड़िया गुलेच्छा जात । पारख गादइया सुप्रभात ॥
सामसुखा ने घूचा आदि । चौरासी शाखा है प्रसादि ॥२५॥
ओसवंश में नाम कमायो । विस्तार पायो सघ सवायो ॥
इस गोत में भैसा शाह चार । जिनकि महिमा अपरपार ॥२६॥
भूरि गोत भटेवरा लाखा । विस्तरी वडजिम बीस शाखा ॥
भाद्र गोत समदड़िया नाम । गुणतीस शाखा बढिया काम ॥२७॥
चिंचट गोत देसरडा जाणो । उत्तीस जाति सुकाम प्रमाणो ॥
कुम्मट शाखा काजलिया परे । पोस जाति सेवा शिर धरे ॥२८॥
डिड्डू गोत कौचर प्रमाण । तेवीस शाखा शुभ कार्य जाण ॥

महाजन संघ के प्राचीन कवित—

कांकरेचा और शिशोदिया वीर । गच्छ सांडेराव सदा सधीर ॥६४॥
उपकार तणो नहा आवे पार । विनय भक्ति वन्दन वार हजार ॥
गच्छ मंडोवरा आगमिया गच्छ । द्विवन्दनिक जीरावला है स्वच्छ॥
चित्रवाल गच्छ छापरिया और । चौरासी गच्छों का था बहु जोर ॥
थोड़े बहुत प्रमाण में सही । अजैनों को जैन ब नाये कहीं कहीं ॥
साधु साध्वी हुए विच्छेद तमाम । कहीं २ कुल गुरु माण्डे नाम ॥
साहित्य का है आज अभाव । प्रकाशित नहीं हुआ स्वभाव ॥
ओसवंश रत्नाकर था विशाल । गोत्र जातियाँ थी रत्नों की माल ॥
संवत् सतरहसो सीतर मझार । सेवग प्रतिज्ञा की दीलधार ॥
तमाम जातियों का लिखसुनाम । पिच्छे करसु घर का काम ॥
दशवर्ष तक भ्रमण बहु किया । चौदहसौ चमालीस नाम लिख लिया
शेष रह गई एक डोसी जात । डोसी और घणेरी डोसी साचोवात
पन्ना पुराणा मिलियो ज्ञान भण्डार । लिख सुजातियो उनके आधार
ऊपर लिखी जातियों करसु बाद । फिरभी रह जाता है अपवाद ॥
आमी अरणोदिया और अवार । अच्छा आमदेवा आलहडा सार॥
आबगोता आस्ता अर्बुदा जाण । आलोजा ओसरा आसांणी मान ॥
ओरडिया इज्जारा इन्द्राणी परे । उटडा उबडा उमरावज सरे ॥
ऊनिया ऊकारा उसकेरिया मान फटक कटारा कणेरा प्रमाण ॥
कटिबा कटोतिया कसाराकट । कागदिया काजलिया करकट ॥
कासतवाल कांकलिया कापडिया । कान्धल कथिया काल दिया ।
किराड कुँयोज कुकर कुंडलार । कुचेरिया कुपद कसरिया धार ॥
केलवाल केरिया केवडा भारी । कोलिया कावर कहोरकारी ।
खगार खंगणी खर भंडारी । खडभशाली खटवडा उपकारी ॥
खाटा खारीवाल खेलची जाणो । खीची खीचिया खेंचातार्णो ।
खेरिया खेतरपाल खेतसी वीर । खेमानन्दी खुतड खेताणी गमीर ॥
खुसुवालखे तसार खडिया । खाड खेलू खेतासर खोजुरिया ।
खसरोटा खेडीवाल खोसिया । गट्टा गलगट गढवाणी लिया ॥
गुलगुला गेमावत और गौरा । गुजरा गोल किया गीया भौरा ।
गुणतिया गुलखण्डियां गोदा । गोगावत गोवरिया योद्धा ॥
गोसलाणी गोहिल गुजरा । घोषा गीरवा घंघवाल धार ।
चौसरा चीमाणी चौमोहल्ला । चूंगीवाल चेतावत् चवोला ॥
चूदविया चात्र ने चामड । चील चितोदा और चौखड ।
चोखा चूड़ावास ने चपल । चिनी चुडावत चूगा अतलीवक ॥
छ छोड़ छोगा छोटा छा ही । छालिया छीटिया छीवरसाही ।
जाला जोगड जोगावत् शूरा जाणेचा । जीनाणी जेताव जोतूरा ॥
जक्षगोता जालौरी जिन्दा । जेलमी जोगनेरा जेवी प्रसिद्धा ।

झोटा झबरवाल ने झलेश्री । टाटिया टोडरवाल और टकेन्गी ॥
टाडुलिया टीकायत टुकलियां । टांचा टाकलिया टाकीवादियां ।
ठावा ठाकुर ठेठवाल ठठेर । ठगणा ठठवाल और ठंडेर ॥
डागा डाग ढावा डाकलिया । डोडिया डावणां ने डावरिया ।
डावरिया डेलिवाल डेडिया । ढूढवाल ढूंढेढा लिया ॥
तोडरवाल तोलावत् तुल्का । तीखा तेजावत् ने तोमुका ।
थोथा थाभलेचा थानावत् । थाका, थीरा और थीरावत् ॥
दादा दरड दक ने देदावत् । दाउ दीलीवाल और दीपावत् ।
देवड़ा दीसावाल दीवाना । धमाणी धींगड धूपिया आना ॥
धोखा धघलिया धनेचा । धावा धोका धींगा धूलेंचा ।
नाबरिया नाडोला नांदेचा । निधि नेमाणी ने नायेचा ॥
नवसरा नाथसरा नौवेरा । नाणावटी नारा निवेडनेरा ।
पवार पामेचा पालीवाले । पाटणिया पटवा पोमावत् चाले ॥
पड़िहार पारड़िया पालरेचा । पोकरवाल पितलिया पारेचा ।
पालावत् पिपलिया पुहड़ा वीर । पायवत् पोपटिया पगुँ धीर ॥
फूला फूलपगर फोकटिया जाण । फक्कड़ा फेफावत् फला प्रमाण ।
बडोलिया बढाला बलोटा धीरा बालड़ा बहुबोला बावला वीरा ॥
बाबेल बागाणी बघेरवाल । बाबेलिया बछोचा बांठीवाल ।
बुरड बुकंचा बोकडियामान । बोरूंदिया बोगा बजाज पहचान ॥
बुबकिया बुर्ड बेगडा खरा । बालिया बोरेचा बगला धरा ।
भक्कड़ भड़गतियां भडेसरा सही । भीलडिया भाभू भन्शाली कही॥
भडावत् भोपाला भुगड़ी धीर । भीन्नमाला भादवत भुनिहवीर ।
भाला भोगरवाल और भूरा । माटी मलमला ने मल चूरा ॥
मरडिया मीमोयार मे मागदिया । मेहतिया ममाइया मालुकिया।
महुतीयाणी मीनारा ने मुशल । मोयात है मोढो मीठा कुशाल
माडलेचा मालविया ने मेवाड़ा । मालावत मुगा मोथा चाड़ा ॥
मच्छा मुलीवाल अरू मुर्गीपाल । मकाणा मादरेचा वे सुविशाल॥
मोदी मर्ची और मोतिया वडवीर । मोहीवाल मेंदीवाल हुए रणधीर
रायजादा राय मणसाणी ने राठौड । रांकावत् रासाणी रोडा कोद
लालन लुणिया लुणावत जाण । लूंबक लोला लेवा पहचान ॥
लालाणी ललेसरा ने लोलेचा । समरिया साचोरा ने सोलेचा ॥
सिरोया सरवाला ने सेवड्याँ । सोढा सांगाणी शृंगारारिया ॥
सुरपुरियाँ सागरिया सोनीगरा । सोजतिया सिंहावत् उत्तमधरा
सखवाल साधा सुखा सही । हरसोला हाका हेमावत कही ॥
हांसा हसाणी हाला हेडी वीर । हापडा हुला हरियागंभीर ॥
संक्षिप्त से मैं किया विचार । ओसवंश रत्नाकर नहीं आवे पार ॥

धरियो खास विस्वास नेन खुलिया मुख वाचा ।
रोग सोग सब दूर शब्द सतगुरु का साचा ॥
आलस मोड उठियों कहे निंद आइ भलो ।
किस काज मनें ल्याया अठे वूरस कहो साचो गलो ॥
खमा खमा सब कहे उठ गुरु चरणे लागा ।
मंगल धवल अपार बधावा माणदवागा ॥
तोरणछत्र निशाण कलस सौवन बधावा ।
भर मोतियन का थाल सखियन मिल मगल गावे ॥
ओछोंबिया महल बनार घर रतनो चोक पुराविया ।
जदी खोन खाप पग पातिया रतनमय पधराविया ॥
नृपत करे विनती जोड़ कर हाजर ठाढो ।
कृपा करो महाराज धरममें रह सु गाढो ॥
पटा परवाना गाम खजाना खास खुलावु ।
कबहु न लोपु कार हुकम श्रवण सुन पाउ ॥
गुरु कियो त्याग धन वैकार एक वचन मोय दीजिये ।
मिथ्या त्याग जैनधर्म ग्रहो दान शील तप कीजिये ॥
तहत वचन उर धार नृपत श्रावक व्रत लिया ।
पुर शुद्धि फरवाय नार नर भेला किया ॥
मिल मिल वख्यान सुणे गुरु के वायक ।
छट काया प्रति पाल शील सयम सुख दायक ॥
कर मनसो यों सकल मिल मौड कर जोडिया ।
सिद्धान्त ग्राम तिन धर्म को शाक्त पन्थ मुख मोडिया ॥
शील धर दृढ़ साच करे पौषाद पढीक्रमा ।
सामायिक सम भाव समता वे दिन दिन दुणा ॥
हिंसा कहु नहीं ऐस देश में आण फीराई ।
धर्म तण फल मिष्ट सबे सांभल जो भाई ॥
इह भांत जैन धर्म धारियो शाक्त पथ मुख मोड़के
गुरु वचन शिरधरी नृप मान मोद कर जोड़के
इष्ट मिझियो मन मिल गयो, मिल मिल मिल्यो मेल
फूल वास घृत दुध जिय, ज्यो, तिलयन मांही तेल
सहस चौरासी एक लख घर गणती पुर मांह
एकण थाल अरोगिया, मिल भाइ कुल्ड नाह
मोटा जगड़ा छोडिया, गद मद शाख सीपाह ।

नोट —इसके आगे का कवित किसी सजन के पास होवे उसको प्रकाशित करवावें या मेरे पास भेज देवें कि इस अधुरा कवित को पुरा कर दिया जाय ।

निर हिंसक निर कपट है, चलत जैन की राह ॥

पट्टावली आदि प्राचीन ग्रन्थों में और उपरोक्त कविता में क्या २ फरक है वो नीचे लिखा जाता है—

(१) राव उत्पलदेव पँमारवंशी नहीं पर सूर्यवंशी था।

(२) सूरिजी के साथ ८४ नहीं पर ५०० साधु थे

(३) राजा के पुत्र नहीं होना और बाद में देवी ने पुत्र दिया सो बात नहीं है पर राजा के पाँच पुत्र थे।

(४) मुनि भिक्षा के लिये नगर में गये थे पर शुद्ध आहार न मिलने से ज्यों के त्यों लौट आये पर ब्राह्मण के घर की भिक्षा और उसको पारठ देना तथा परठा हुआ आहार सर्प बन जाना और राज पुत्र को काटना ये सब कल्पना मात्र है। सांपकाटा था मन्त्री के पुत्र को जो राजा के जमाई

(५) नूतन श्रावकों की सख्या के विषय सबका मत एक नही है। कारण केई सवालाख १२५००० कोई १८०००० तथा केई १८४००० और केई ३८४००० भी लिखते हैं इसका मुख्य कारण ये है कि सबसे पहले तो १२५००० सवालाख को ही जैन बनाये बाद सूरिजी वहाँ ठहर कर समय समय उपदेश देते गये और जैन बनाते गये इस प्रकार सख्या बढ़ती गई आखीर की सख्या उपकेशपुर में ३८४००० घरों की बन गई हो तो ये सम्भव हो सकता है।

ओसवाल जाति का कवित

"श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर के लिखे एव सग्रह किये लेख प्रबन्धावली' नामक पुस्तक में मुद्रित हुए है जिसके अन्दर से एक त्रुटककवित—

दोहा।

श्री सुरसती देज्यो मुदा, भासै बहुत विशाल ।
भासै सब सकट परो, उत्पत्ति कहुं उसवाल ॥१॥
देश किसे किण नगर में, 'जात हुई छे एह'।
सुगुरु धरम सिखावियो, कहिस्यु भव ससनेह ॥२॥

छन्द ।

पुर सुन्दर धाम बसै सकल, किरण्यावत पावस होय भलं ।
चऊटा चहराधि विराज्ज खरै, पग मेळय जोर सुग्यान धरै ॥
मिन माल करै नित राजवर, भळ भीम नरेंद उपति घर ।
पटराणी के दोय सुतन्न भर, सुरसुन्दर उपल मत्त धरं ॥

४३-आचार्य देवगुप्तसूरि (९वाँ)

आचार्यस्तु स देवगुप्त इतियो गोत्रे सुचिन्त्यात्म के,
विद्यारत्न नयादि भूषित तया राज्ञा समूहैर्नुतः ।
गच्छानामपि सूरिगमद्यस्य समीपे स्वय,
गूढज्ञान विचार मव्यसरणौ रन्तु मनाः श्रद्धया ।

पूज्यपाद, प्रात. स्मरणीय, सुरासुरेन्द्रमानवेन्द्रार्चितचरणारविन्द, श्रीमद्देवगुप्तसूरि, प्रखर प्रतिभासम्पन्न अनन्य विद्वान, प्रचण्ड तेजस्वी, वादीगजकेशरी महाशासन प्रभावक सुविहित शिरोमणि, उग्रविहारी युग प्रवर्तक आचार्य हुए। आपश्री का जीवन अनेक चमत्कारों से परिपूर्ण, जनकल्याण की पवित्र भावनाओं से ओतप्रोत, वाचक वृन्द को चारु पथ का पथिक बनाने वाला है। पट्टावली निर्माताओं ने आपश्री के जीवन चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दिग्दर्शन कराते हुए विशद रूप में लिखा है। हम ग्रन्थ बढ जाने के भय से उतना विस्तृत तो नहीं पर पाठकों के आत्मकल्याण की इच्छा से संक्षिप्त रूप में लिख देते हैं।

मरुधर के वक्षस्थल पर अलंकार रूप पाल्हिका (पाली) नाम की जनमनमोहक नगरी थी। भारत के व्यापारिक क्षेत्रों में इस नगरी ने भी पर्याप्त नाम कमाया था। इस नगरी की आबादी एवं शोभा के विषय में किसी कवि ने इसका साक्षात्कार करते हुए कहा है कि—

"वापी वप्र विहार वर्ण वनिता वाग्मी वन वाटिका ।
वैद्यो ब्राह्मण वादी वेश्म विबुधा वेश्या वाणिग्वाहिना ॥
विद्या वीर विवेक वित्त विनय वाचयमा वल्लकी ।
वस्त्र वारण वाजि वेशर वर चै ति पुरं शोभते" ॥ १ ॥

अर्थात्—वापी (बावडिया) परकोट, मन्दिर, चारवर्ण के लोग, सुन्दर, मधुर भाषी देवाङ्गना जैसी स्त्रियाँ, सभाशृंगार पण्डित, उद्यान, वाटिकाए आयुर्वेद विशारद वैद्य, वेदपाठी ब्राह्मण, तर्क वादी कोविद, उच्च २ अट्टालियों वाले मकान, देवस्थान, वेश्याए, व्यापारी, चतुरङ्गिणीसेनाएं, विद्याकलाकुशल परम दक्ष वीर सुभट, विवेकी लोग, धन-लक्ष्मी, स्वाभाविक विनयगुणसम्पन्न व्यक्ति, त्यागी, महात्मा, सन्यासी, बढ़िया वस्त्र, मदझरते मदोन्मत्त मत्तगज, पवनवेगगामी अश्वराशि, स्त्रियों के नाक के भूषण इत्यादि अट्ठावीस प्रकार व० कार से यह नगरी शोभायमान थी।

इसी पाल्हिका नगरी में उपकेश वशीय सुचति गोत्रीय, शाह राणा नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी निवास करते थे। आपकी गृहदेवी का नाम भूरी था। आप पूर्वजन्मोपार्जित सुकृतपुञ्जोदय से अपार सम्पत्ति एव विशाल कुटुम्ब के स्वामी थे। आपका व्यापार भारत के सिवाय विदेशों के साथ भी था। चीन, जापान, मिश्र, जावा, बलोचिस्तान वगैरह कई स्थानों मे आपकी पेढ़ियाँ स्थापित थीं। जल और स्थल दोनों मार्गों से माल का आना, जाना, लाना, लेजाना प्रारम्भ था। सारांश यह कि आपका व्यापार बड़ा ही जोरों से चलता था। विविध प्रकार के रेशम, हीरा, माणक, पन्ना, पोखराज, मोती, मीनेकपड़े, कटलरी, बस्तर, गुथणाकाम, भरतकाम, अत्तर, तेल, दवा, तेजाना, हाथीदात, जवाहिरात, सोना और क्वचित

चांदी उस काल के व्यापारियों की मुख्य वस्तुएं थी। यह व्यापार पूरेबोरा में होने के साथ ही साथ व्यवस्थित रूपेण चलता था। उपर्युक्त पारी की पीतल, सीसा, कलाई सोना, चांदी आदि खनिज वस्तुएं रत्नादि, धीवा तथा सुख्यामवा आदि खेती से पैदा हुए पदार्थ, धातु के खिलौने, बर्तन रेशम कीमती पत्थर, मोती, कांच, और चीनी मिट्टी के बर्तन आदि मौज शौक की वस्तुएं, जानवरों में घोड़े आदि हिन्द की आयात वस्तुएं थी। इसके विपरीत जानवरों में बन्दर, मयूर, कुत्ता, हाथी आदि कीमती पत्थर, सोना और धातु के बर्तन और इसी प्रकार सामान आदि खनिज वस्तुएं, पोशाक, कोस्पीज, कस्तूरी, मक्खन, हथियार, सूती कपड़े, मलमल, रेशम, रेशमी कपड़े बारदान, मिट्टी और पोर्सिलेन के बर्तन, आदि तैयार माल, दाल, मुरब्बा, साग आदि खाने के पदार्थ हाथीदांत, रंग, गली तेल, अम्बर आदि मौज शौक की वस्तुएं, मरी, सूंठ सीपारी, लौंग, इलायची आदि तेजाना मोटा वगैरह अनाज और कपूर आदि वस्तुओं का निकास था।

पहिले के जमाने में हिन्द के कच्चे माल को तैय्यार करके पर-देश भेजते थे। जिसमें सूती कपड़ा तो चीन से बनाकर रूप व्यापार हुए पक्का हमारे देश का ही काम में लेते थे। रंग गुली वगैरह का तो केन्द्रस्थल (इजारा) ही था। इनके सिवाय रंग बिरंगी चीजें और छींट, लाखों की छापों का बड़ा भी अच्छी तादाद में विदेशों में जाता था। इसकी विशेषोत्पत्ति श्रीस्तंभपुर आदि नगरों में थी। रुई का शुद्ध पोशाक बना कर भांति २ के पदार्थों के रूप में परदेश बाद भेजा जाता था। कई विदेशी व्यापारी लोग भारत में आकर भारतीय व्यापारिक केन्द्रों का निरीक्षण कर आश्चर्यान्वित हो जाते थे और भारतीय कलाकौशल एवं हुन्नर उद्योग की शिक्षा पाकर अपने देश में उसका विस्तृत प्रचार करते थे।

उपरोक्त व्यापार के सिवाय भारतीय व्यापारीवर्ग अपनी करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति लगाकर माल का व्यापार भी किया करते थे। वे पूर्व के देशों का माल खरीद कर पश्चिमीय देशों में बेचते। भारतीय साहसी व्यापारी जापान, ब्रह्मा चीन, मलाया आदि देशों का माल खरीद कर अरबस्थान, इराक, इजिप्त, मीस इटली आदि देशों में विक्रयार्थ भेजते थे। इस विषय का विस्तृत वर्णन व्यापारिक प्रकरण में कर आये हैं अतः यहां ज्यादा नहीं लिखा जा रहा है।

तदनुसार शाह राणा का व्यापारिक क्षेत्र भी बहुत विस्तृत था। शुभ कर्मों के उदय से आपने व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया था। आपका अधिक लक्ष्य स्वधर्मीभाइयों की सेवा की ओर रहता था। हर एक प्रकार से स्वधर्मी भाई को सहयोग देकर उसको उन्नत अवस्था में लाने के लिए आप तन, मन एवं धन से प्रयत्नशील रहते थे। तात्पर्य यह कि परोपकार को अपने जीवन कर्तव्य का एक अङ्ग ही बना लिया था। शाह राणा जैसे द्रव्योपार्जन करने में कुशल थे वैसे उस न्यायोपार्जित द्रव्य का व्यय करने में भी कुशल थे। तीर्थ यात्रा जन्य अतुल पुण्य राशि को सम्पादन करने के लिये आपने तीन बार तीर्थयात्रार्थ संघ निकाले। स्वधर्मी भाईयों को स्वर्णमुद्रिकाओं की पहिरावणी देकर अपने आप को कृतार्थ किया। पट्टावली कर्त्ताओं ने लिखा है कि—इस शुभ कार्य में शाह राणा ने पांच करोड़ रुपयों का द्रव्य व्यय किया था। पालिकादि कई स्थानों में सात मन्दिर बनवाकर जिनपद की आराधना की। एक दुष्काल में लाखों करोड़ों रुपयों का अन्न, घास देकर देशवासी भाइयों एवं पशुओं के प्राण बचाये। शाह राणा इतना उदार हृदयवाला व्यक्ति था कि—इसके घर पर या घर के पास से यदि कोई याचक निकल जाता तो उसकी आशा को बिना किसी भेद भाव के पूर्ण की जाती थी। इसी औदार्य एवं गाम्भीर्य गुण से राणा की शुभकीर्ति चतुर्दिक में विस्तृत थी।

शाह राणा के ११ पुत्र ७ पुत्रियां और अन्य बहुत विशाल परिवार था परन्तु इतना बड़ा व्यापारी एवं विशाल कुटुम्ब का स्वामी होने पर भी शाह राणा की यह विशिष्ट विशेषता थी कि वह अपने स्वकर्म—प्रभुपूजा सामायिकव्रत व्याख्यानश्रवण, पर्वतिथियों में पौषधव्रत, प्रतिक्रमण चतुर्दशी के व्रत वगैरह नित्य नियम में कभी त्रुटि नहीं आने देता था। देव गुरु धर्म पर अटूट श्रद्धा सम्पन्न, श्रावक गुणालंकृत विनय निष्ठ

परमधार्मिक श्रावक था। नित्य नियम तथा पवित्र श्रद्धा से शाह राणा को देव दानव आदि कोई भी स्खलित करने में समर्थ नहीं था। 'यतोधर्मस्ततोजय' इस अटल सिद्धान्त पर पूर्वकालीन जन समुदाय का गहरा विश्वास था। इसी कारण से उस समय के लोग धन, जन, कुटुम्ब परिवार आदि सम्पूर्ण सुखों से सम्पन्न थे। शाह राणा जैसे धर्मज्ञ एव कर्मठ था वैसे ही उनकी धर्मपत्नी एव पुत्रादि कुटुम्ब परिवार भी धर्म कार्य में तत्पर थे।

एक समय पुण्यानुयोग से जगविश्रुत, शान्तिनिकेतन, परम व्याख्याता आचार्य श्री कक्कसूरिजी म० पाल्हिका नगरी को पधारे। श्रीसंघ ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। श्रेष्ठिगौत्रीय शाह दयाल ने तीन लक्ष द्रव्य शुभक्षेत्रों में व्यय किया। आचार्यश्री ने भी स्थानीय मन्दिरों के दर्शन कर आगतजन मण्डलीको सक्षिप्त किन्तु हृदयग्राहिणी देशना दी। इस प्रकार के अपूर्वोपदेश को श्रवण कर जनता भी मन्त्र मुग्ध बन गई। आचार्यश्री ने भी अपना व्याख्यानक्रम नित्यनियम की भाति प्रारम्भ ही रक्खा।

सूरिजी षट् दर्शन के परमज्ञाता थे अत जिस समय तुलनात्मक दृष्टि से एक २ दर्शन का विवेचन करते थे—तब जनता सुनकर दातों तले अगुली लगाने लगती। पक्षपात की ज्वाज्वल्यमान अग्नि में प्रज्वलित व्यक्ति भी आचार्यश्री के व्याख्यान से प्रभावित हो नत मस्तक हो जाता। उसके हृदय में भी सूरीश्वरजी के समागम से जैन धर्म रूप श्रद्धा के अकुर अकुरित होने लगते। जिस समय सूरिजी ससार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कौ-म्बिक व्यक्तियों का स्वार्थजन्य प्रेम शरीर की क्षणभङ्गुरता, आयुष्य की अस्थिरता के विषयों का वर्णन करते—जनता योगियों की भांति ससार से विरक्त होजाती।

शाह राणा और आपका सब कुटुम्ब भी सूरिजी का व्याख्यान हमेशा सुनते थे। सूरीश्वरजी के व्याख्यान से ससारोद्विग्न हो शाह राणा का एक पुत्र मल्ल, सासारिक मोह पाश से विमुक्त होने के लिए, आचार्यश्री की सेवा मे दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गया। उसने अपने उक्त दृढ सकल्पानुसार माता पिताओं से एतद्विषयक निवृत्त्यर्थ आज्ञा मागी किन्तु माता, पिता, स्त्री, पुत्रादि कुटुम्ब कब चाहते थे कि एक घर के सम्पूर्ण भार को वहन करने वाला प्राणप्रिय मल्ल हमको बातों ही बातों में छोड़ दें? अत उन्होंने अनेक प्रलोभनादि अनुकूल उपसर्गों एव परिषहादि प्रतिकूल भयोत्पादक उपसर्गों से मल्ल को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु उक्त सर्व प्रयत्न पानी में लकीर खींचने के समान निष्फल ही सिद्ध हुए। कारण जिसको वैराग्य का सच्चा रग लग गया है, जिसने ससार को कारागृह समझ लिया है वह सहस्रों अनुकूल प्रतिकूल प्रयत्नों से भी घर में नहीं रह सकता है। विवश हो परिवार वालों को आदेश देना ही पड़ा। शाह राणा ने नवलक्ष द्रव्य व्यय कर मल्ल का दीक्षा महोत्सव किया। मल्ल ने भी सात पुरुष एव ग्यारह बहिनों के साथ में वि० स० ७६६ के फाल्गुन शुक्ला तृतीया के शुभ दिन सूरीश्वरजी के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की। दीक्षानन्तर मल्ल का नाम श्री ध्यानसुन्दर मुनि रख दिया गया। मुनि ध्यानसुन्दरजी ने ३८ वर्ष के गुरुकुल वास में सम्पूर्ण शास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य एवं सूरिपदयोग्य सम्पूर्ण गुण सम्पादित कर लिये। अत आचार्य श्री कक्कसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में उपकेशपुर के महावीर मन्दिर में श्री सघ के समक्ष विक्रम स० ८३७ में उ० ध्यानसुन्दर को सूरिपद प्रदान कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी महान प्रतिभाशाली आचार्य हुए। आप दीक्षा लेकर ३८ वर्ष तक आचार्य श्री कक्कसूरिजी की सेवा में रहे। इस दीर्घ अवधि में आपश्री ने आचार्यश्री के साथ देशाटन भी खूब किया। आचार्यश्री कक्कसूरि के समय में दो अत्यन्त विकट प्रश्न उपस्थित थे। एक चैत्यवासियों की आचार शिथिलता का और दूसरा वादियों के सगठित आक्रमणों का। उक्त दोनों प्रश्नों को हल करने में उ० ध्यानसुन्दरजी की भी पूर्ण सहायता थी अत आपश्री भी एतद्विषयक बातों के पूर्ण अनुभवी बन गये थे। ये दोनों प्रश्न आपके शासन में भी थोड़े बहुत रूप में यथावत् विद्यमान रहे। यद्यपि आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने इन

दोनों की प्रबलता को शिथिल बना दिया था तथापि इनका समूल नाश नहीं हुआ था। जैसे न्याय्य में शुष्क स्थान में मोह उपशान्त हो जाता है पर उसकी सत्ता नष्ट न होने से नीचे गिरने पर वह पुनः बलवान बन जाता है यही हाल हमारे सूरिजी के सामने पूर्वोक्त दोनों प्रश्नों का था। यद्यपि वादियों की शक्ति क्षय हो चुकी थी अतः उनका सामना करना साधारण बात थी किन्तु घर की बिगड़ी हुई हालत को सुधारना टेढ़ी खीर थी। आचार्यश्री के सहवास से देवगुप्तसूरिजी ने यह अनुभव कर लिया था कि–दूषित पक्ष की निंदा करना उनको हलका बताना या अपने आप उनसे पृथक होकर अपनी उच्चता की डींग हांकना–समाज में सुधार करने की अपेक्षा बिगाड़ ही करता है। अपने से विलग हुए भाइयों को शान्ति, प्रेम और एकता से अपनी ओर जितना प्रभावित कर सकते हैं उतना उनको ठुकरा करके या अवहेलना करने से नहीं। प्रेम पूर्वक उपालम्भ देकर उनमें आई हुई शिथिलता को दूर करने से उन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। शर्म व उपेक्षावश वे अपने दूषणों को त्यागने का प्रयत्न करते हैं किन्तु इसके विपरीत जब दूषित पक्ष की निर्शंकतया निन्दा की जाती है तब सम्मुख पक्षीय व्यक्ति भी बेधड़क निर्भय हो जाता है। फिर क्रमशः कुछ मनुष्य उनको भी सहायता देने वाले मिल जाते हैं और इस तरह दो पार्टियां हो समाज की कन्द्रित–संगठित शक्ति नष्ट हो जाती है। परिणाम स्वरूप उन्नति कोसों दूर भाग जाती है और अवनति का भीषण तांडव नृत्य नयनों के समक्ष प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने लगता है। कालान्तर में उन्नति का, उत्कृष्ट आचार का दम भरने वाली समस्त मण्डली भी शिथिल हो पूर्व दूषित पक्ष से भी जघन्य श्रेणी की हो जाती है और इस तरह क्रियोद्धारकों के रूप में नवीनर शाखा प्रशाखाओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। क्रमशः संघ में कदाग्रह फूट, ईर्ष्या द्वेष का ही नवीन रूप देखने को मिलता है, प्रेम और ऐक्य भावना तो डरके मारे भग ही जाती है। सूरिजी इस बात के पक्के अनुभवी थे अतः आपने भी आचार्य श्री कक्कसूरिजी म० के मार्ग का अनुकरण करना ही शिथिलाचार निवारण के लिये श्रेयस्कर समझा। शान्ति एवं प्रेम को अपनाकर पूर्वाचार्यों के आदर्श–आचरण का अनुकरण करने से शिथिलाचारियों के बजाय सुविहितों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई।

एक समय आचार्यश्री अपनी शिष्य मण्डली के साथ सिन्ध धरा में परिभ्रमण कर रहे थे। आप श्री के विहार की यह पद्धति थी कि मार्ग के छोटे २ ग्रामों में सर्व साधुओं का यथोचित निर्वाह न होने के कारण थोड़े २ मुनियों को इधर उधर आस पास के क्षेत्रों में प्रचारार्थ भेज देते और बड़े शहर में पुनः सकल शिष्य समुदाय के साथ एकत्रित हो जाते। उक्त पद्धत्यनुसार एक समय ऐसा मौका आया कि आप सौ साधुओं के साथ विहार कर रहे थे और शेष साधुओं को आपने ग्राम की लघुता के कारण इधर क्षेत्र में भेज दिये थे। मार्ग में सूर्यास्त हो जाने के कारण आचार्यश्री अवशिष्ट शिष्य वर्ग के साथ एक दीर्घकाय वटवृक्ष के नीचे शास्त्रीय नियमानुसार ठहर गये। मार्ग जन्य श्रम से श्रमित मुनि समुदाय संथारा पौरसी कर सो गये। कुछ ही क्षणों के पश्चात् थकावट की अधिकता के कारण उन्हें निद्रा आ गई पर आचार्यश्री तो अभी तक भी बैठे ही थे। वहां पर गच्छ मुनि वर्ग का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व रहता है अतः आचार्यश्री भी अपने कर्तव्यानुसार बैठे २ संग्रहणी शास्त्र का स्वाध्याय करने लगे। थोड़े ही समय के पश्चात् वह वृक्षाधिष्ठायक देवता वहां आया तो वृक्ष के पृष्ठ भाग पर मुनि समुदाय को निद्रित अवस्था में सोता हुआ देखकर क्रोध से लाल पीला हो गया। क्रोध के क्रूर आवेश में अपने कर्तव्याकर्तव्य का भान भूल कर सोये हुए साधुओं को दण्ड देने के लिए उद्यत हुआ वह नीचे की ओर आया और तत्काल उसके कानों में सूरिजी की स्वाध्याय के कर्णप्रिय शब्द पड़े। वे शब्द यक्ष को इतने रुचिकर प्रतीत हुए कि वह अपने क्रोध को भूलकर उन्हीं शब्दों को सुनने में तन्मय हो गया। क्रमशः एकाग्रचित्त से जब सुना तब तो यक्ष के आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह सोचने लगा कि–यह सब तो हमारे देव भवन की ही संख्या, लम्बाई, चौड़ाई, हमारे सामानिक देवों की परिषदा का वर्णन देवियों की गिनती है। क्या ये मुनि हमारे देव भवन को देख के आये हैं ? यदि ऐसा न हो तो इनको ठीक २

इस विषय की माहिती कैसे है ? इत्यादि शकाओं के उलझनपाश में वह उलझ गया।

अब तो देव से रहा नहीं गया। उसने पूछा—आप कौन हैं ? आप जो हमारे देव भवन का वर्णन कर रहे हैं वह आप कैसे जान सके हैं ?

सूरिजी ने कहा—हम जैन श्रमण हैं। हमारे तीर्थङ्कर देव सर्वज्ञ थे। उन्होंने केवल एक आपके ही नहीं पर तीनों लोक के चराचर प्राणियों के भावों का वर्णन किया है। उसी सर्वज्ञ प्रणीत ग्रन्थ का ही मैं स्वाध्याय कर रहा हूँ। यह सुनकर यक्ष बड़ा ही प्रसन्न हुआ और अपने किये हुए कुभावों का पश्चाताप कर कहने लगा—भगवन् ! मैंने तो अज्ञानता से सबको मार डालने का विचार किया था। अहो ! मैं कितना पापी एव जघन्य जीव हूँ। प्रभो ! क्या मैं इस सकल्प जन्य पाप से बच सकता हूँ ?

सूरिजी ने कहा—महानुभावों ! आपको जो देवयोनि मिली है वह पूर्व जन्म की सुकृत राशि का ही फल है। इस देव जैसी उत्कृष्ट योनि में ऐसे दुष्ट संकल्पों से निकाचित कर्मों का बन्धन करना सर्वथा अनुपयुक्त है। ये तो साधु हैं, इनकी हत्या का विचार करना तो उत्कृष्ट से उत्कृष्ट पाप का फल नरकादि दुर्गति रूप ही है। अत पाप से सर्वथा बच कर ही रहना चाहिये। भव भवान्तर मे भी कृतकर्मों का शुभाशुभ फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है। अभी तो पूर्वोपार्जित पुण्य राशी की अधिकता के कारण इसकी कटुता का अनुभव नहीं होने पाता है किन्तु पापोदय के समय ऐसी दारूण यातना का उपभोग करना पड़ता है कि—उसका वर्णन शब्दों से सर्वथा अगम्य ही है।

सूरिजी के उक्त उपदेश का यक्ष पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह तत्काल सूरीश्वरजी के चरण कमलों पर गिर पड़ा। अत्यन्त कृतज्ञता सूचक शब्दों में निवेदन करने लगा—पूज्यवर ! आपश्री ने मुझ पामर प्राणी पर महान् उपकार किया है। यदि आपश्री के शब्द मेरे कानों में न पड़े होते तो मैं इतने श्रमणों के हत्या जन्य पाप से अवश्य ही नरक का पात्र बनता किन्तु आप श्री ने जो मेरे पर अवर्णनीय कृपा की है उसके लिये मैं आपका जन्म भर आभारी रहूँगा। प्रभो ! आपके इस उपकार ऋण से मैं कैसे ऊऋण हो सकूंगा ?

सूरिजी—महानुभाव ! अज्ञानता के वशीभूत जीव किन कर्मों को नहीं कर बैठता है ? मैं तो आपको धन्यवाद ही देता हूँ कि आप अपने किये हुए सकल्प जन्य पाप का भी इतना पश्चाताप कर रहे हैं। मेरे उपकार के लिये आपको इतना विचार करने की आवश्यकता नहीं कारण हमारा तो कर्तव्य ही यही है कि अज्ञानता जो मार्ग से स्खलित हुए व्यक्ति को पुन सत्पथ पर आरुढ़ करना। मैंने तो एक मात्र अपने कर्तव्य धर्म का ही पालन किया है फिर भी यदि आपको अपनी आत्मा का कल्याण करने की प्रबल इच्छा है तो आप अपनी इस दिव्य देव ऋद्धि का सदुपयोग जिन शासन के प्रभावना के कार्यों में करके पुण्य सम्पादन करने में भाग्यशाली बनें।

यक्ष—पूज्य गुरुदेव ! हम पामर, अधम, जघन्य प्राणी जैन धर्म की सेवा कैसे कर सकते हैं ? हमारा जीवन तो नाटक, तमाशा, खेल, कोतूहल, दूसरों को कष्ट पहुँचाकर उसी मे प्रसन्नता का अनुभव करने में व्यतीत होता है। प्रभो ! उक्त निकृष्टकार्य तो हमारे जीवन के अङ्ग ही बन गये हैं अत यदि आप श्री की सेवा में रहने का परम सौभाग्य प्रदान करने की कृपा करें तो कुछ अशों में उतकार्य जन्य लाभ सम्पादन किया जा सकता है।

सूरिजी—हरिकेशी मुनि की सेवा में देवता रहता था। एक तपस्वी मुनि की सेवा में यक्ष रहता था, विक्रम की सेवा में आगिया वैताल रहता था वैसे आप भी रह सकते है।

यक्ष—पूज्य गुरुदेव ! मैं तो आपकी सेवा में ही रहा करूगा।

सूरिजी—यक्षदेव ! मुझे तो कुछ भी काम नहीं है। हा, जहाँ शासन सम्बन्धी कार्य हो वहा कुछ सहयोग प्रदान करोगे तो अवश्य ही सुकृतोपार्जन कर सकोगे।

यक्ष—ठीक है पूज्यवर ! आपको मैं वचन देता हूँ कि आप जब मुझे याद करेंगे आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा ।

इस प्रकार वचन देकर यक्ष तो अदृश्य होगया । इधर प्रतिक्रमण का समय होने से सकल साधु समुदाय भी निद्रा से निवृत्त हो क्रमशः प्रतिक्रमण प्रतिलेखनादि क्रियाओं को कर प्रातःकाल सूरीश्वरजी के साथ ही रवाना हो गये । मार्ग से कुछ ही दूर वीरपुर नामक नगर था अतः आचार्यश्री को भी वहीं पर पदार्पण करना था । आचार्यश्री मार्ग को अतिक्रमण कर चल रहे थे कि मार्ग के एक मठाधीश सन्यासी ने अपनी मन्त्र शक्ति के जरिये मार्ग में सर्प ही सर्प कर डाले । चारों तरफ सर्प ही सर्प दीखने लगे । एक पैर रखने जितना स्थान भी साधुओं को दृष्टिगोचर नहीं होने लगा । इधर आचार्यश्री का आगमन सुनकर जो भक्त लोग सामने आये थे वे भी सर्पों की भयङ्करता के कारण वहीं पर रुक गये । इससे आचार्यश्री ने जान लिया कि निश्चित ही यह सन्यासी के मन्त्र की ही करतूत है अतः सूरिजी ने भी स्वाधीनित यक्ष का स्मरण किया । स्मरण करने के साथ ही यक्ष तत्काल अपने वचनानुसार सूरिजी की सेवा में उपस्थित होगया और सर्पों के जितने ही मयूर के रूप बनाकर सर्पों को लेकर आकाश में उड़ गये । इससे सन्यासी को बहुत ही लज्जा मालूम हुई । वह आचार्यश्री के पैरों में नत मस्तक हो कहने लगा—भगवन् ! मैं भी आपका शिष्य हूँ । प्रभो ! मुझे यह विश्वास नहीं था कि जैन श्रमण इतने करामाती होंगे अतः आप जैसों के सामने मैंने मेरी अज्ञानता का परिचय दिया । क्षमा कीजिये दयानिधान ! आपको मुझ पापी के द्वारा बहुत ही कष्ट पहुँचा है । कृपा कर आज का दिन तो आश्रम में ही विराजें जिससे मैं अपने पाप का कुछ प्रक्षालन कर सकूं । आपकी थोड़ी बहुत सेवा का लाभ लेकर कृतार्थ हो सकूं ।

सूरिजी भी सन्यासी के आग्रह से वहीं पर ठहर गये । नागरिक लोग आचार्यश्री का प्रभाव देख मन्त्र मुग्ध बन गये । सब लोग एक स्वर से सूरीश्वरजी की प्रशंसा करने लगे कि सूरीश्वरजी बड़े ही चमत्कारी एवं प्रभावक पुरुष हैं ।

दिन भर दर्शनार्थियों के आवागमन की अधिकता के कारण सन्यासी सूरीश्वरजी के सत्संग का लाभ नहीं उठा सका पर रात्रि में जब एकान्त स्थान में सूरिजी के साथ आत्म कल्याण विषयक जिज्ञासा दृष्टि से सन्यासी ने प्रश्न किया तब सूरिजी ने स्पष्ट समझाया—सन्यासी जी ! आत्म कल्याण न तो कष्टों में कष्टों में है और न चमत्कार दिखाने में ही है । ये तो सब बाह्य क्रियाएं हैं जो समय २ पर आत्मतत्व को बढ़ाने वाली व आत्मा के स्वरूप ज्ञान से आत्मा को पवित्र करने वाली होती है । आत्म कल्याण तो आत्मगुण में परम निवृत्ति पूर्वक विचरण करने से ही होता है । सन्यासी जी ! हमारे साधु सन्यासी हैं और आप भी सन्यासी हो किन्तु आपके और इनके त्याग में कितना अन्तर है ! आप जल, अग्नि, कन्द मूल, फल, वनस्पति आदि सब का उपभोग करते हैं और आरम्भ समारम्भ भी करते हैं पर हमारे श्रमणों के इन सब बातों का आजीवन त्याग होता है । यदि आपकी भी आत्मिक अभिलाषा त्याग वृत्ति स्वीकार करने की है तो आप भी ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करें ।

सूरिजी का कहना सन्यासी को बड़ा ही रुचिकर ज्ञात हुआ । उसने कहा पूज्य गुरुदेव ! आपका कहना सत्य है पर हम लोग अभी तक सभी तरह से आजाद रहे हुए हैं अतः इतने कठिन नियम हमारे से पाले जाने बहुत दुष्कर हैं । दूसरा हमने इतने वर्षों तक इसी पंथ में पूजा प्रतिष्ठा पाई है अतः अब इसका एकाएक त्याग करना बड़ा असम्भव है । इस पर सूरिजी ने कहा—सन्यासीजी ! मैंने तो आपको सत्मार्ग की ओर कर कहा है । चारित्र वृत्ति लेना न लेना तो आपकी इच्छा पर निर्भर है पर पूर्व काल में भी कम्मट परिव्राजक वगैरह ने इसी दशा में रह कर परम पवित्र जैनधर्म की आराधना की है । जैनधर्म के प्रचार से वे बहुत लाभ की दिव्य ऋद्धि के स्वामी हुए और एक भव करके मोक्ष के आराधक भी हो जावेंगे ।

सन्यासी—मैं आपके इन वचनों को स्वीकार करता हूँ और मेरे हृदय की एक शका को भी आपकी सेवा में अर्ज कर देता हूँ। मेरी शका यह है कि—जैसे वैदान्तिक, बौद्ध, चार्वाकादि नाम हैं वैसे जैन भी एक नाम है अत यह तो दुनियाँ में अपने २ नाम की वाड़ाबन्दी ही है। मेरा वेश परिवर्तन करना भी इस बाड़े से छूट कर दूसरे वाड़े मे जाने रूप ही है। अत एतद् विषयक वाड़ाबन्दी से क्या लाभ है।

सूरिजी—धर्म की पहिचान के लिये व एक नाम मे दूसरे में भिन्नत्व का ज्ञात कराने के लिए ही वस्तु स्वरूप को नाम से सम्बोधित किया जाता है। जब दूसरे धर्म वालों ने अपने २ धर्म के नाम रखे तो इस धर्म की पहिचान के लिये भी किसी न किसी नाम करण की आवश्यकता थी ही अत जैन धर्म यह विशिष्ट अर्थ का बोधक है। उदाहरणार्थ—दस पांच वस्तुओं का एक स्थान पर एकीकरण होने के पश्चात् यदि उनके नामों में पारस्परिक भिन्नत्व न होगा तो वे वस्तुएं कैसे पहिचानी जा सकेंगी ? दूसरा एक दुर्गन्धयुक्त स्वास्थ्यगुण नाशक मकान को छोड़कर यदि स्वास्थ्यप्रद रमणीय, मनमोहक प्रसाद का आश्रय ले तो उसमें हानि नहीं पर लाभ ही है। इसी प्रकार सारम्भी, सपरिग्रही धर्म को छोड़कर त्याग, वैराग्य और आत्म शान्ति रूप परम धर्म की आराधना करना कौन सी वाड़ाबन्दी है ?

सूरीश्वरजी के उक्त स्पष्टीकरण से सन्यासीजी को जैन धर्म की विशेषता का ज्ञान हो गया। उन्होंने तत्काल मिथ्यात्व का वमनकर सम्यक्त्व के साथ श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये। इधर वीरपुर नगर में सर्वत्र सूरिजी और सन्यासी जी के चमत्कार की बातें होने लगी। जैनियों के हर्ष का पार नहीं रहा। आचार्यश्री के इस अपूर्व प्रभाव ने उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। वे लोग बड़े ही समारोह के साथ स्वागत की तैयारियां करने लगे। इधर वीरपुर नरेश सोनग को आचार्यश्री के चमत्कार का मालूम हुआ तो वह भी आचार्यश्री के दर्शन एवं स्वागत के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गया। सूरीश्वरजी के स्वागतार्थ सम्मुख जाने के लिये अपनी चतुरङ्गिनी सेना को खूब सजधज कर तैय्यार करवाई। नगर में चारों ओर यथा समय निर्दिष्ट स्थान पर उपस्थित रहने लिये घोषणा करवादी। बस, फिर तो था ही क्या ! सूर्य देव के सहस्रकिरणों से उदयाचल पर उदय होते ही नर नारियां एक वृहज्झुण्ड एकदिशा की ओर जाने के लिये प्रोत्साहित होगया। राव सोनग भी अपने राव उमरावों के साथ सूरिजी की सेवा में उपस्थित हुआ। सूरीश्वरजी ने भी अपनी शिष्य मण्डली एवं सन्यासी के साथ नगर में प्रवेश किया। पश्चात् सार्वजनिक सभा में, सारगर्भित धर्मोपदेश दिया जनता पर आचार्यश्री के उपदेश का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। राव सोनग के पूर्वजों ने जैनाचार्यों के पास दीक्षा ली थी अत. आपका घराना कई समय से जैनधर्मोपासक ही था। जैनाचार्य भी समय २ वीरपुर पधार कर राजा प्रजा को धर्मोपदेश दिया करते थे अत उन सबों के हृदय पर जैनधर्म के स्थायी सस्कार जमे हुए थे।

राव सोनग यों तो सब प्रकार सुखी थे पर सन्तात्यभाव रूप जबर्दस्त चिन्ता उनको रह २ कर सन्तापित करती थी। एक समम मध्याह्न काल में विशेष धर्म चर्चा करने के लिये सूरीश्वरजी की सेवा में राव सोनग उपस्थित हुए तो अन्यान्य बातों के साथ ही साथ वह बात भी प्रसङ्गत निकल आई। इस पर धैर्यावलम्बन देते हुए सूरिजी ने कहा—राजन् ! जैन धर्म कर्म सिद्धान्त को प्रधान मानता है। सिवाय पूर्व सञ्चित कर्मोदय के हुए शुभ या अशुभ कार्य हो ही नहीं सकते अत इस विषय की चिन्ता मे आर्तध्यान करना निकाचित कर्मों को बान्धना है। सर्व अनुकूल सामग्री के सद्भाव होने पर धर्म साधन करना ही उभय लोक के लिये कल्याणास्पद है। धर्म ही सर्व मनो कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष है। जब धर्म से मोक्ष रूप अक्षय सुख की प्राप्ती हो सकती है तब सांसारिक पौद्गलिक सुखों की कीमत ही क्या है। आप जानते हैं कि—किसान लोग धान्य की आशा से खेत में बीज बोते हैं किन्तु चाबुा-घास फूस तो सहज ही में उसके साथ बिना प्रयत्न के हो जाता है। घास के लिये पृथक् बीज बोने या प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती है। अत समझ-

द्वार भव्यजीवों को चाहिये कि धर्म की करणी केवल मोक्ष प्राप्ति की आशा से ही करें। सांसारिक सुख एवं पौद्गलिक आशाओं में करणी के अमूल्य-मूल्य को हार जाना अदूरदर्शिता है। यह याद रखने की बात है कि—धर्माराधना के लिये शुद्धोपयोग और शुद्ध योग्य की आवश्यकता है। शुद्ध उपयोग की निवृत्ति और शुभयोग की प्रवृत्ति कहते हैं। निवृत्ति से कर्म निर्जरा होती है और प्रवृत्ति से शुभ पुन्य संचय होता है। आपको भी मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्माराधन में दत्त चित्त रहना चाहिये। अपने पुन्यों पर सन्तोष करके परम निवृत्ति पूर्वक धर्म ध्यान करना चाहिये।

सूरिजी के उपदेश से राजा की आत्मा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उनकी पुन्याशास्वरूप मानसिक चिन्ता भी सर्वदा के लिये विलीन हो गई। वे बिना किसी पौद्गलिक सांसारिक आशा के धर्म ध्यान में संलग्न हो गये। इस प्रकार सूरिजी के व्याख्यान ने कई लोगों पर कई तरह का प्रभाव डाला। चातुर्मास का समय नजदीक आने से श्रीसंघ तथा राजा सोनग के अत्याग्रह से आचार्य श्री ने यह चातुर्मास भी वीरपुर में ही कर दिया।

आचार्य श्री के चातुर्मास से वीरपुर की जनता को बड़ा ही हर्ष हुआ। सब लोग अपनी २ रुचि के अनुकूल कल्याण मार्ग की आराधना करने में संलग्न हो गये। इस चातुर्मास के विशेषानन्द का अनुभव तो सन्यासी एवं राव सोनग का हुआ। वे आचार्यश्री के प्रस्तुत चातुर्मास के अपूर्व लाभ से अपने आपको कृत-कृत्य समझने लगे। राव सोनग ने तो आचार्यश्री के उपदेश से शासनाधीश भगवान महावीर का नया मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया और सन्यासीजी सूरीश्वरजी की सेवा भक्ति कर ज्ञान ध्यान पढ़ने गुणने में संलग्न हो गये। जैन शास्त्रों का अभ्यास चिन्तवन एवं मनन करने के पश्चात् उनके हृदय में एक बात खटकने लग गई। वे सोचने लगे—मैंने साधु होकर के गृहस्थ के सब किये अतः मेरा दर्जा हल्का हो गया है। मुझे गृहस्थों की श्रेणी में बैठना पड़ता है। मैं जैन साधुओं के आचार विचार से अवगत हो चुका हूँ अब मुझे भी साधुत्व वृत्ति स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है। उक्त संकल्प को सुदृढ़ बना सन्यासीजी सूरीश्वरजी की सेवा में आये और अपने मनः संकल्प को शब्दों के रूप में प्रगट करने लगे। सूरिजी ने भी 'जहा सुहं' शब्द से उन्हें सन्तोष दिया।

सूरिजी पढ़े ही समयज्ञ थे अतः दूसरे ही दिन आपश्री ने अपने व्याख्यान में प्रसङ्गोपात साधु के आचार के विषय में स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया कि—जैन श्रमण दो प्रकार के होते हैं— १—जिनकल्पी २—स्थविर कल्पी। इनमें जिनकल्पी साधु तो पाणि पात्र अर्थात् कुछ भी उपाधि नहीं रखते हैं। क्षुधादि परिषहों से सन्तापित होने पर गृहस्थों के यहाँ भिक्षार्थ जाकर जो कुछ समय पर मिलता है, हाथ में लेकर खा कर लेते हैं। कई २ जिनकल्पी कुछ उपकरण विशेष भी रखते हैं। वे कम से कम रजोहरण और मुख वस्त्रिका और अधिक से अधिक बारह उपकरण रख सकते हैं—यथाहि

> पत्तं[1] पत्ताबंधो[2] पायट्ठवणं[3] च पायकेसरिया[4] ।
> पडलाइं[5] रयत्ताणं[6] गुच्छओ पायनिज्जोगो ॥
> तिन्नेव य पच्छागा[1] रयहरणं[11] चेव होइ मुहपत्ती ।
> एसो दुवालस विहो उवहि जिणकप्पियाणं तु ॥

इन बारह और दो के बीच की संख्या में उपकरण रखना जिनकल्पी के मध्यम उपकरण कहे जाते हैं।

> एत्तो य दुवालसस मत्तय[1] अइरेग चोलपट्टो य ।
> एसो चउदस विहो उवहि पुण थेरकप्पंमि ॥

उक्त बारह उपकरण तथा मात्रक (घड़ा या तृपणी विशेष) और चोलपट्टा ये चौदह उपकरण स्थविर कल्पी साधु रख सकते हैं। साध्वी इनकी अपेक्षा कुछ अधिक उपकरण रख सकती है। कारण स्त्री-पर्याय होने से उन्हें ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये अधिक भण्डोपकरण रखना अनिवार्य हो जाता है। उक्त १४ स्थविर कल्पियों के उपकरणों के सिवाय साध्वी ११ उपकरण और रख सकती है तथाहि

उग्गहणतग[१५] पट्टो[१६] उड्ढोरु[१७] चलणिया[१८] य बोद्धव्वा ।
अब्भितर[१९] बाहरि[२०] नियसणिय[२१] तह कंचुएचेव[२२] ॥
उगच्छिय[२३] वेगच्छिय[२४] सघाडी[२५] चेव खंधकरणीय ।
ओहोवाहिम्मि एए अज्जाणं पन्नवीसं तुं ॥

ऊपर बतलाये हुए उपकरणों का परिमाण एवं प्रयोजन निम्न प्रकारेण हैं—

(१) पात्र—भिक्षा ग्रहण करने के लिये—इसका परिमाण—

"तिन्नी विहत्थी चउरंगुलं च भाणस्स मज्झिमप्पमाण । इत्तो हीण जहन्न अइरेगयरं तु उक्कोसं ॥

अर्थात्—चालीस अंगुल प्रमाण परधीवाला पात्र मध्यम श्रेणी का गिना जाता है। इससे कम जघन्य और अधिक उत्कृष्ट पात्र समझा जाता है। पात्र रखने का प्रयोजन—

छकाय रक्खणट्ठा पायग्गहण जिणेहिं पन्नत्त । जे य गुणा संभोए हवंति ते पायग्गहणे ॥
अतरंत बालवुड्ढासेहाएसा गुरु असहुवग्गे । साहारणुग्गहा लद्धिकारणा पायगहण तु ॥

अर्थात्—छकाय जीवों की रक्षा के लिये और बालवृद्ध ग्लानि की वैयावच्च के लिये जिनेश्वरों ने पात्र ग्रहण एवं धारण करना फरमाया है।

(२) पात्रबंधन (झोली)—जिसके अन्दर पात्र रख कर के भिक्षा लाई जाय। इसका परिमाण—

पयाबन्धप्पमाण भाणप्पमाणेण होइ नायव्वं । जहगठिमि कयमि कोणा चउरंगुला हुति ॥

अर्थात्—पात्रों को बांध देने के पश्चात् किनारा चार अंगुल रह सके उतने प्रमाण की झोली होनी चाहिये।

पत्तट्ठवण तह गुच्छओ य पाय पडिलेहणीया य । तिण्हपि य प्पमाण विहत्थि चउरंगुलचेव ।।
जेहिं सविया नदीसइ अंतरिओ तारिसा भवे पडला। तिन्निव पंच व सत्त व कदलीगब्भोवमा भणिसा ।।

(३) पात्र स्थापन—प्रत्येक पात्र के नीचे ऊन का खण्ड रखा जाता है।

(४) पात्र केसरिका—छोटी चरवाली जो पात्र प्रमार्जन के काम में आती है।

(५) पडिला—गौचरी जाते समय झोली पर डाले जाने वाला वस्त्र विशेष। इसकी संख्या-शीतकाल में ५ उष्णकाल में ३ और वर्षाकाल में ७ रहती है। मुख्य हेतु जीवों की रक्षा का व पात्र आहार गुप्त रहे।

(६) रजत्राण—प्रत्येक पात्र के बीच में रखने के वस्त्र विशेष। पात्र और जीवों की रक्षार्थ।

(७) गोच्छक—पात्रों को झोली में बांधने के पश्चात् उस पर ऊन के दो खण्ड ऊपर नीचे गुच्छे की आकृति से बांधे जाते हैं उसे गोच्छक कहते हैं।

इन पडिला एवं रजत्राण का परिमाण निम्न है—

अड्ढाइज्जा हत्था दीहा छत्तीस अंगुले रुदा, बीय पडिग्गहाओ ससरीराओ य निप्फन्नं ॥
माणंतु रयत्ताणे भाण प्रमाणेण होइ निप्फन्नं, पायहिण करत मज्झे चउरंगलं कमइ ॥

अर्थात्—पात्र स्थापन गोच्छक और पात्र प्रति लेखनी इन तीनों का परिमाण १६ अंगुल का है। पडिला—अढ़ाई हाथ लम्बा और छत्तीस अंगुल चौड़ा होना चाहिये। रजस्त्राण—बर्तन के प्रमाण से चार अंगुल बढ़ता हुआ होना चाहिये।

प्रयोजन—संयमाराधना और जीव रक्षा—तथाहि

रयमाइरक्खणट्ठा पत्तग ठवणं वि उवइस्सति, होइ पमज्जण हेउ गुच्छओ भायणत्थाणं ॥

पायपमज्जण हेउं केसरिया पाए २ इक्किक्का, गुच्छ पत्तग्गठवणं इक्किक्कं गणणमाणेणं ॥

पुप्फफलोदगरयरेणु सउण परिहार पायरक्खणट्ठा, लिंगस्स य संवरणे वेओदय रक्खणे पडला ॥

मूसगरयउक्केरे वासे सिण्हारयपरक्खणट्ठा, हुंति गुणा रयताणे पाए २ य इक्किक्कं ॥

अर्थात्—गोचरी जाते समय पात्रों के नीचे घृतादिक का लेप लग जाने से भूमि पर रखने में जीवों की विराधना होती है उसकी रक्षा के लिये अथवा उससे सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक पात्र के नीचे ऊन का खंड रखना बतलाया है। प्रमार्जन एवं जीव रक्षा के लिये पात्र केसरिया—चरवाली का उल्लेख किया है। पुष्प, फल रज, रेणु, शकुन के परिहार के लिये व वेदोदय के रक्षण के लिये पडिले का उल्लेख किया है। मूषकोत्कर व रज वगैरह से सुरक्षित रखने के लिये तथा वर्षा ऋतु में अपकाय के जीवों की रक्षा के लिये एक २ पात्र में एक १ रजस्त्राण तथा पात्र बन्धन पर गुच्छा रखने का कहा है।

८-६-१ —चादर—इसका परिमाण—

कप्पा आयपमाणा अड्ढाइज्जा य वित्थडा हत्था। दो चेव सुत्तिया उ उण्णिय तइओ मुणेयव्वो ॥

अर्थात्—अपने शरीर के प्रमाण लम्बी और अढ़ाई हाथ चौड़ी दो सूत की और एक ऊन की एवं तीन चादर रखना—कहा गया है। इसका प्रयोजन—

तणगहणानलसेवा निवारणा धम्म सुक्कझाणट्ठा। दिट्ठं कप्पग्गहणं गिलाण मरणट्ठया चेव ॥

अर्थात्—तृण ग्रहण एवं अग्नि सेवन से निवारण करने के लिये व धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान को ध्याने के लिये तथा ग्लान एवं मरणार्थ के लिये तीर्थंकरों ने वस्त्रग्रहण फरमाया है।

(११) रजोहरण—जीवरक्षार्थ एवं प्रमार्जनार्थ—

बत्तीसंगुलदीहं चउवीसंगुलाइं दंडो से अट्ठंगुला दसाओ एगयरं हीणमहियं वा ॥

अर्थात्—बत्तीस अंगुल के रजोहरण में चौबीस अंगुल प्रमाण दण्डी और आठ अंगुल की दसियां (फलियाँ) होनी चाहिये। कदाचित् दण्डी लम्बी हो तो दसियां कम और दसियां लम्बी हो तो दण्डी कम, परन्तु रजोहरण बत्तीस अंगुल का होना चाहिये। प्रयोजन—

उण्णियं उट्टियं वा वि कंबलं पाय पुंछणं तिपरीयल्लमणिस्सिट्ठं रयहरणं धारए एक्कं।

अर्थात्—ऊन का व ऊंट के बालों का व कम्बल इन तीनों में से किसी एक तरह के रजोहरण को धारण कर सकते हैं। किसी स्थान पर पाँच प्रकार के रजोहरण लिखे हैं जिसमें अम्बाड़ी व मूंज का भी रजोहरण रख सकते हैं।

आयाणे निक्खेवे ठाण निसीयण तुयट्ट संकोए पुव्वंपमज्जणट्ठा लिंगट्ठा चेव रयहरणं ॥

अर्थात्—वस्तुओं को ग्रहण करते हुए, रखते हुए खड़े होते हुए, बैठते हुए, सोते हुए संकुचित होते हुए पूर्व प्रमार्जनार्थ व जैन धर्म का चिन्ह स्वरूप रजोहरण का कथन किया गया है। अन्यत्र इसको धर्म ध्वज भी कहा गया है।

(१२) मुखवस्त्रिका—इसका परिमाण—

चउरंगुल विहत्थि एवं मुहणंतगस्सउप्पमाणं । बीयं मुहप्पमाण गणण पमाणेणं इक्किकं ॥

अर्थात्—१६ अंगुल प्रमाण अपने अंगुल से तथा मुखप्रमाण मुख वस्त्रिका एक ही रक्खे । प्रयोजन

संपाइमरयरेणु पमज्जणट्ठावयति मुहपति । नासं मुहं च बंधइ तीए वसहिं पमंज्जतो ॥

अर्थात्—मक्खी, मच्छर, पतंगिये वगैरह जीवों की रक्षा के लिये व रजरेणु प्रमार्जन के लिये मुखवस्त्रिका का विधान है तथा वसति प्रमार्जन के समय व अशुचिस्थान के कारण के समय व दोनों किनारे कान में डाल कर नाक पर्यन्त आच्छादन कर सकते हैं।

(उक्त १२ उपकरण जिनकल्पी मुनियों के लिये कहे गये हैं)

(१३)—मात्रक— (घड़ा या तृपणी विशेष) इस का परिमाण

जो मागहओ पत्थो सविसेसयर तु मत्तगपमाणं । दोसुवि दव्वगहणं वासावासासु अहिगारो ॥

भावार्थ—मागधदेश के परिमाण विशेष का पात्र बतलाया है । इसका प्रयोजन—

आयरिए य गिलाणे पाहुणए दुल्लहे सहसदाणे । संसत्तए भत्तपाणे मत्तगपरिभोगणुन्नाउ ॥

संसत्तभत्तपाणेसु वा वि देसेसु मत्तए गहणं । पुव्वंतु भत्त पाण सोहेउ छुहंति इयरेसु ॥

अर्थ—आचार्य, गलानि, अतिथि वगैरह साधुओं के स्वागतार्थ विशेषोपयोग में आते हैं ।

(१४)—चोलपट्टा—ये कटि भाग में पहिनने के काम में आता है—इसका परिमाण—

दुगुणो चउगणोवा हत्थो चउरंस चोलपट्टोय । थेर जुवाणाणट्ठा सण्हे थूलंमि य विभासा ॥

अर्थात्—यह वस्त्र एक हाथ के पन्ने का होता है । स्थविर और युवक के कटिबन्धानुक्रमश दो हाथ और चार हाथ का होता है । स्थविर के मन्द युवक के स्थुल इस प्रकार से इसका प्रयोजन

वेउव्ववाउडे वाइसे हीए खद्ध पजणणे चेव । तेसिं अणुग्गहट्ठा लिंगुदयट्ठा य पट्टो उ ॥

अर्थात्—शीतोष्णा से रक्षा करने के लिये, तथा लज्जा निवारण के लिये व लिंगाच्छादन के लिये चोलपट्ट की आवश्यकता रहती है ।

(उक्त चौदह उपकरण स्थविर कल्पी मुनियों के होते हैं)

साध्वी के लिए उक्त १४ उपकरणों के सिवाय ११ उपकरण और भी हैं ।

(१५)—अवग्रहान्तक—होडी के आकार वाले गुप्त स्थान को अच्छादित करने का वस्त्र विशेष ।

(१६)—पट्ट—चार अंगुल चौड़ा कमर बांधने के काम में आता है । अवग्रहातक इसी के आधार पर रहता है ।

(१७)—अर्धोरुक—कमर से आधी साथल तक पहिनने की चड्डी ।

(१८)—चलणिका—चड्डी के आकार का ढींचण पर्यन्त पहिनने का वस्त्र विशेष । ये दोनों बिना सीये कसों से ही बांधें जाते हैं ।

(१९)—अभ्यन्तर निवसनी—कमर से जंघापर्यन्त घाघरे के आकार का अन्दर पहिनने का वस्त्र ।

(२०)—बहिर्निवसनी—कमर से पैर की एटी पर्यन्त लम्बे घाघरे के आकार वाला वस्त्र । यह वस्त्र कटि भाग पर नाड़ी से बांधा जाता है । उक्त सर्व कमर के नीचे रखने के लिये साध्वियों के आवश्यक उपकरणों का विधान किया है ।

(२१)—कंचुक—अपने शरीर के प्रमाण कपड़ों से बंधे जाने वाला। स्तनों पर कंचुकाकार।

(२२)—उपकक्षिका—डेढ़ हाथ समचोर से दाहिनी काख (कक्षभाग) ढके रहना वस्त्र।

(२३)—वैकक्षिका—यह पट्टे के आकार की होती है। बायीं बाजू पहिनी जाती है। यह उपकक्षिका और कंचुक को ढकती है।

(२४)—संघाटी—अर्थात् साध्वियें चार चादर रख सकती हैं। ये चारों ३॥ से चार हाथ लम्बी चदर निम्न प्रकार के काम की होती है—

[१]—दो हाथ चोड़ी चादर उपाश्रय में ओढ़ने के काम में आती है।

[२]—तीन हाथ चोड़ी चदर गोचरी के लिये जाते समय काम में आती है।

[३]—तीन हाथ चोड़ी चदर स्थण्डिल भूमिका जाते हुए आढ़ने के काम में आती है।

[४]—चार हाथ के पन की चादर मुनियों के व्याख्यान में वा स्नात्रादि धर्म महोत्सव में जाने के समय काम में आती है क्योंकि वहां अनेक प्रकार के मनुष्य एकत्रित होते हैं अतः साध्वी को अपने अङ्गोपाङ्ग इस तरह से आच्छादित करने पड़ते है कि आंख को भवों और पग की एड़ी भी पुरुष नहीं देख सकते हैं।

(२५)—स्कंधकारिणी—ऊन का चार हाथ समचोरंस वस्त्र जो स्कंध पर डाला जाता है। इत्यादि

यह तो औधिक उपकरण का वर्णन हुआ है पर इनके अलावा औपग्रहिक उपकरणों का भी शास्त्रों में उल्लेख मिलता है। इन औपग्रहिक उपकरणों में जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट उपकरणों के नाम हैं। जैसे उत्तरपट्ट, दण्डपासक पुञ्छणपासक वगैरह। इन सबका प्रयोजन ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना में सहायक होने का ही है। जैन धर्म एक ऐसा विशाल धर्म है कि इसमें अनेकान्त दृष्टि से सब बातों का समावेश अत्यन्त सुगमता पूर्वक हो सकता है। जैन धर्म का हृदय समुद्र के समान गम्भीर है यही कारण है कि इधर पाणिपात्र जिनकल्पी और उधर औधिक औपग्रहिक उपकरणों को रखने वाले साधु को भी मोक्ष मार्ग की आराधना के लिये स्थान दिया गया है। उपकरण—उपाधि रक्खे वा न रक्खे—यह अपनी रुचि एवं दैहिक सामर्थ्य—संहनन शक्ति पर निर्भर है पर परिणामों में विशुद्धता एवं विकास किसी भी अवस्था में होना आत्मोन्नति के लिये आवश्यक ही है।

आगे चल कर सूरिजी ने कहा—सज्जनों! आप जानते हैं कि भूमि शुद्ध होने से उसमें बोया हुआ बीज भी यथानुकूल फल को देने वाला होता है अतः प्रसङ्गोपात दीक्षा लेने वाले मुमुक्षुओं का हाल जान लेना भी आवश्यक है कारण धर्म बीज बोने के लिये भी उचित क्षेत्र शुद्ध व्यवसाय, पराक्रमादि की नितान्त आवश्यकता रहती है। दीक्षा लेने वाला सब प्रकार से योग्य एवं निर्दोष होना चाहिये। जैसे—

१—बाल न हो—बाल दो प्रकार के होते हैं एक वय बाल—जो छोटी अवस्था के कारण दीक्षा के महत्व को समझता नहीं हो और दूसरा ज्ञान बाल जो वय में अधिक होने पर भी दीक्षा के स्वरूप एवं ज्ञान से अनभिज्ञ हो। ये दोनों ही बाल दीक्षा के लिये सर्वथा अयोग्य हैं।

२—वृद्ध—जिसका शरीर एवं इन्द्रिय बल क्षीण हो चुका है जो दीक्षा रूप भार को वहन करने में असमर्थ है। ऐसा वृद्ध भी दीक्षा के लिये अयोग्य है।

३—नपुंसक—स्त्री और पुरुष दोनों की अभिलाषा रखता हो कई प्रकार की कुचेष्टाएं कर अपना व पर का अहित करने वाला हो वह भी दीक्षा के लिये अयोग्य है।

४—क्लीव नपुंसक—जिसके मोहनीय कर्म का प्रबल उदय हो, स्त्रियों को देखने मात्र से काम विकार पैदा हो जाता हो।

५—जड़—जड़ तीन प्रकार के होते हैं १ भाषा जड़ अस्पष्ट भाषी अथवा वा बहुत वाचाल हो। २-शरीर जड़-अर्थात्-शरीर स्थूल बल व प्रमाद परिपूर्ण हो ३—करणजड़—अर्थात् गुरु-हितादिक को नहीं समझे

वाला। ये तीनों जड़ दीक्षा ले लिये अयोग्य हैं।

६—रोगी—जिसके शरीर में खास करके श्वास, जलदर, भगदर कुष्टादि रोग हो।

७—अप्रतीत—ससार में चोरी जारी आदि कुकृत्य किये हो। जिसकी किसी भी तरह से प्रतीति-विश्वास नहीं होता हो ऐसा भी अयोग्य ही है।

८—कृतघ्नी—राजद्रोही, सेठ द्रोही, मित्र द्रोही आदि घृणित कार्य किये हो।

९—पागल—बेभान-परवश हो। जिसको भूत प्रेत शरीर में आता हो।

१०—हीनांग—अन्धा, बहरा, मूक, लूला, लंगड़ा हो।

११—स्त्यानगृद्धि—निद्रा वाला हो। जो निद्रा में सग्राम तक भी कर आवे।

१२—दुष्ट परिणामी—दुष्ट विचार या प्रतिकार की बुरी भावना रखने वाला हो। (जैसे कषाय दुष्ट साधु ने क्रोधावेश में अपने मृत्गुरु के दाँत तोड़ डाले।) विषय दुष्ट स्त्रियों को देख दुष्टता, कुचेष्टा करने वाला हो।

१३—मूढ़—विवेक हीन, जो समझाने पर भी न समझे।

१४—ऋणी—कर्जदार हो।

१५—दोषी—जातिकर्म से दूषित हो, जिसके हाथ का पानी ब्राह्मण, वैश्य नहीं पीते हों।

१६—धनार्थी—रुपये की प्राप्ति या धनाशा से मन्त्रादि विद्या का साधन करने वाला हो।

१७—मुद्दती देवाला—किसी साहुकार के कर्ज की किश्तें करदी हों पर बीच में ही दीक्षा लेना चाहता हो।

१८—आज्ञा—माता, पिता, कुटुम्ब वगैरह की आज्ञा न हो।

उक्त १८ दोष वाला पुरुष और गर्भवती व छोटे बच्चे की मातारूप २० दोष वाली स्त्रियाँ दीक्षा के लिये सर्वथा अयोग्य होती हैं। इन दोषों से दूषित व्यक्तियों को दीक्षा नहीं दी जाती है।

जातिवान, कुलवान, बलवान्, रूपवान, लज्जावान, विनयवान, ज्ञानवान्, श्रद्धावान, जितेन्द्रिय, वैराग्यवान्, उदारचित्त, यत्नावान्, शासन पर प्रेम रखने वालों व आत्म कल्याण की भावना वाला, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ एव १२ प्रकृतियाँ तथा तथा मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, सर्व १५ प्रकृतियों के क्षय अथवा क्षयोपशम वाले व्यक्ति को ही दीक्षा देनी चाहिये। ऐसा योग्य पुरुष ही वैराग्य की भावनाओं से ओत प्रोत होता है और वही पुरुष स्वपर की आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होता है।

श्रोताओं! दीक्षा कोई साधारण बालोचित क्रीड़ा नहीं है कि इसको हर एक चलता फिरता आदमी ही ग्रहण करले। यह तो हस्तियों के उठाने रूप भार है, जो समर्थ हस्ति ही उठा सकता है। शृगाल जैसा तुच्छ पामर प्राणी इसका आराधन कदापि काल नहीं कर सकता है। इसके लिये तो आत्मा सयम, दृढ़ वैराग्य, संसार त्याग की उच्चतम भावनाओं का होना जरूरी है। इसके साथ ही साथ यह भी याद रखने की बात है कि दीक्षा को अङ्गीकार किये बिना जीव का आत्म कल्याण हो ही नहीं सकता। चाहे इस भव में दीक्षा को स्वीकार करो या अन्य भव में—दीक्षा स्वीकार करना तो मोक्ष मार्ग की आराधना के लिये आवश्यक हो ही जाता है। जन्म, जरा और मृत्यु के विषम, भयावह दु खों से विमुक्त करने के लिये भी सबसे समर्थ, साधकतम कारण व अनन्योपाय दीक्षा रूप ही है। बड़े २ चक्रवर्ती राजा महाराजाओं को भी मोक्ष मार्ग की आराधना के लिये चारित्र वृत्ति का आराधन करना ही पड़ा। बिना पौद्‌गलिक पदार्थों का त्याग किये आत्म कल्याण नितान्त अशक्य है।

इस प्रकार सूरिजी ने खूब ही प्रभावोत्पादक वक्तृत्व दिया जिसको श्रवण कर कई भोगी भी योगी बनने के इच्छुक हो गये। सन्यासीजी ने तो व्याख्यान में ही निश्चय कर लिया कि—मुझे अब शीघ्र ही सूरीश्वरजी म० की सेवा में दीक्षा स्वीकार करना है अस्तु,

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् एक कोड़ी—अर्थात् २० मुमुक्षु दीक्षा के लिए सन्यासीजी के साथ और तैयार होगये। बस फिर तो देरी ही क्या थी ? ठीक समय में राव सोनग ने बड़े ही समारोह पूर्वक दीक्षा का महोत्सव किया। सूरीश्वरजी ने भी चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष सन्यासी प्रभृति २० भावुकों को शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में भगवती दीक्षा देकर उनकी आत्मा का कल्याण किया। दीक्षानन्तर सन्यासी का नाम मुनि ज्ञानानन्द रख दिया। दीक्षा वगैरह माङ्गलिक कार्यों के सानन्द सम्पन्न होने पर आचार्यश्री ने शीघ्र ही वहां से विहार कर दिया। इधर राव सोनग के द्वारा बनवाये जाने वाले मन्दिर का काम भी बड़े ही जोरों से व शीघ्रता से प्रारम्भ कर दिया गया। आचार्यश्री ने भी सिन्ध प्रान्तीय उच्चकोट, मारोटकोट, रेणुकोट, मालपुर, कपाली भाड़, आलोशी डामरेलपुर देवपुर, सीतार, मारकोट, नागरकोट वीरपी, वेताल वरदी, गोसलपुर, भारत्ती दीपकोट वगैरह ग्राम नगरों में फिर कर खूब ही धार्मिक क्रान्ति मचाई। चातुर्मास के समय में डामरेल नगर के श्रीसंघ के आग्रह से डामरेलपुर में ही सूरिजी ने चातुर्मास कर दिया।

वीरपुर के रावसोनग ने जिस दिन भगवान्महावीर के मन्दिर की नींव डाली उसी दिन आपकी रानी के गर्भ रह गया। क्रमशः नव मासानन्तर आपके पुत्ररत्न का जन्म हुआ अतः जैनधर्म पर व सूरिजी पर रावजी की श्रद्धा बहुत ही बढ़ गई। जब रावजी ने सुना कि सूरिजी का चातुर्मास डामरेल नगर में हो चुका है तो दर्शनार्थ आप स्वयं जाने को तैय्यार हो गये। सारे नगर में अपने जाने के साथ ही साथ यह घोषणा करवादी कि जिस किसी को आचार्यश्री के दर्शन के लिये डामरेलपुर चलना हो वह सहर्ष मेरे साथ चल सकता है। उसके सम्पूर्ण खर्चे का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर रहेगा। राव सोनग की उक्त घोषणा को सुन बहुत से दर्शनेच्छुक भावुक डामरेल आचार्यश्री के दर्शनार्थ जाने को तैय्यार हो गये। क्रमशः राव सोनग ने भी अपनी रानी नवजात शिशु एवं दर्शनाभिलाषी भावुकों के साथ डामरेलपुर की ओर प्रस्थान कर दिया डामरेल पहुँच कर सघन खुशी एवं भक्ति के साथ आचार्यश्री को वन्दन किया महात्मा ज्ञानानन्दजी मुनि भी उस समय सूरिजी के ही साथ थे। राव सोनग ने कृतज्ञता सूचक प्रसन्नता प्रकट करते हुए नवजात बालक पर आचार्यश्री के कर कमलों से वासक्षेप डलवाया। साथ ही वीरपुर पधार कर मन्दिर की प्रतिष्ठा करने के लिये विनय पूर्ण शब्दों में आग्रह भरी प्रार्थना की। सूरिजी ने-वर्तमान योग—कह कर संतोष दिया। राव सोनग ने भी आठ दिवस पर्यन्त स्थिरता कर पूजा, प्रभावना स्वामीवात्सल्य अष्टाह्निका महोत्सव, और सूरिजी के पीयूषरस प्लावित उपदेश श्रवण का लाभ उठाया। पश्चात् पुनः संघ सहित अपने नगर को लौट आये।

सूरिजी की सेवा में ऐसे ही एक तो वह था और दूसरे संघ पंजाबि नाना विधा परायण ज्ञानसुन्दर नाम के सन्यासी शिष्य थे अतः आपने सिन्धधरा में सर्वत्र परिभ्रमनकर धर्म का खूब ही प्रचार किया। समय पर वीरपुर पधार कर शुभमुहूर्त में राव सोनग के बनवाये हुए महावीर मन्दिर की बड़ी धामधूम से प्रतिष्ठा करवाई। रावजी ने जिनालय प्रतिष्ठा की खुशाली में आगत संघ-समुदाय को भी सुवर्ण मुद्रिका की प्रभावना दी इससे अन्य लोगो पर जैनधर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। क्रमशः इधर उधर परिभ्रमन एवं धर्म प्रचार करते हुए आचार्यश्री ने तीसरा चातुर्मास गोसलपुर में किया। गोसलपुर के चातुर्मास के सानन्द सम्पन्न होने पर आपश्री ने पंजाब प्रान्त में पदार्पण किया। पंजाब प्रान्तीय इतर श्रमण समुदाय को धर्म प्रचार के मार्ग में सविरोध प्रोत्साहित एवं अग्रसर करते हुए आप श्री ने दो चातुर्मास पंजाब प्रान्त में भी कर दिये। पंजाब प्रान्त में आपश्री के आज्ञानुयायी बहुत से मुनि वर्तमान थे अतः मुनि विहीन क्षेत्र में धर्म प्रचारार्थ जाना आप को विशेष श्रेयस्कर एवं रुचिकर ज्ञात हुआ इसी कारण से आपने पंजाब प्रान्त में ज्यादा स्थिरता न कर पूर्व की ओर पदार्पण कर दिया। क्रमशः पूर्व प्रान्तीय तीर्थों के दर्शन करते हुए व ग्राम नगरों में धर्मोद्योत करते हुए आचार्यश्री ने पाटलीपुत्र में चातुर्मास कर दिया। वहां का चातुर्मास सानन्द सम्पन्न करके आपश्री ने कलिङ्ग की ओर पदार्पण किया। कलिङ्ग प्रान्तीय शत्रुञ्जय गिरनार अवतार तीर्थ की यात्रा

कर कुछ समय पर्यन्त कलिङ्ग प्रान्त के आस पास के प्रदेशों में परिभ्रमन कर धर्मोद्योत किया। तत्पश्चात् आप विहार करके महाराष्ट्र प्रान्त में पधारे। महाराष्ट्र प्रान्त में आपके आज्ञानुवर्ती श्रमण वर्ग पहिले ही से विचरते थे। आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचारों ने महाराष्ट्र प्रान्तीय श्रमण मण्डली के हृदयों में नवीन एवं अपूर्व लगन पैदा कर दी। वे सबके सब और भी उत्साह एवं परिश्रम पूर्वक धर्म प्रचार के कार्य में सलग्न हो गये।

इस समय तक महाराष्ट्र प्रान्त में वैदिक धर्मानुयायियों का भी खूब जोर बढ़ गया था पर आचार्य श्री के आगमन के समाचारों ने वैदिक धर्म प्रचारकों को एकदम हतोत्साहित कर दिया। इधर श्वेताम्बर एवं दिगम्बर समुदाय के पारस्परिक प्रेम में भी अभूत पूर्व वृद्धि हो गई अत धर्म प्रचार का कार्य बहुत ही सुगम तया होने लगा आचार्य श्री के पधारने से उनके उत्साह में कई गुनी वृद्धि हो गई अत वैदिक धर्म का विस्तृत प्रचार एक बार पुन दब गया। सूरीश्वरजी के व्याख्यान की स्टाइल बहुत ही आकर्षक थी। एक बार आचार्यश्री के व्याख्यान श्रवण करने वाला व्यक्ति हररोज बिना किसी विघ्न के व्याख्यान श्रवण की उत्कट इच्छा एवं प्रबल आकांक्षा से प्रेरित हो व्याख्यान के ठीक समय में व्याख्यान श्रवणार्थ उपस्थित होता ही था आपने अपनी प्रखर विद्वता सम्पन्न प्रतिभा का प्रभाव साधारण जनता पर ही नहीं अपितु बड़े २ राजा महाराजाओं पर भी डाला। इस समय का इतिहास बतलाता है कि राष्ट्रकूट, चोल, पाण्ड्य, पल्लव, चौलुक्य, कलचुरी, होयल, गंग, कदंब वंशी राजा महाराजा जैनधर्म के परमोपासक* एवं प्रचारक थे।

सूरीश्वरजी म० को वैदिक धर्म की जड़ को खोखली करने के लिये महाराष्ट्र प्रान्त में ज्यादा स्थिरता करना भविष्य के लिये लाभप्रद ज्ञात हुआ अत आपश्री ने जैन धर्म की पताका को महाराष्ट्र प्रान्त के इस छोर से उस छोर तक फहराने के लिये क्रमश पाञ्च चातुर्मास महाराष्ट्र प्रान्त में ही किये। इन चातुर्मासों की दीर्घ अवधि में कई मार्ग स्खलित बन्धुओं को मार्गारूढ किया, कितने ही जैनेतरों को जैनत्व के संस्कारों से संस्कारित किये। एवं नये जैन बनाये कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाकर नये जैनों के संस्कारों को स्थायी एवं दृढ़ किये। कई भावुकों को दीक्षा देकर उनकी आत्माओं का कल्याण किया। कालान्तर में बीजापुर राजधानी में महाराष्ट्र प्रान्तीय श्रमणों की एक सभा की जिसमें श्वेताम्बर व दिगम्बर कई श्रमण एकत्रित हुए। आगत श्रमण मण्डली को आचार्यश्री ने ओजस्वी वाणी के द्वारा उपदेश दिया श्रमण बन्धुओ। इस संघर्ष के भयानक आप मस्थत समय में ही आपकी कसोटी—परीक्षा है। यद्यपि बाह्य मार्गों के विशिष्ट एवं क्रियाओं की पारस्परिक विभिन्नता के कारण अपना समुदाय श्वेताम्बर, दिगम्बर रूप में विभक्त है किन्तु जैन धर्म के विस्तृत प्रचार के समय स्वआम्नाय की संकीर्ण भावना रखना अपने आप अपने पैरों में कुठारा घात करना है। अत भ्रातृत्व के अनुराग पूर्ण व्यवहारों से—जैसा कि अभी दोनों समुदायों के श्रमणों में दृष्टिगोचर है-* जैन धर्म का प्रचार करते रहना चाहिये। अपन श्वे० दि० के रूप में अलग २ दीखते हैं पर भगवान् महावीर के अहिंसा एवं स्याद्वाद धर्म का रक्षण, पोषण, एवं प्रचार करने में एक ही है। याद रक्खो, जब तक अपनी संगठित शक्ति का अभेद दुर्ग जैसा का तैसा रहेगा वहाँ तक कोई भी विधर्मी अपने शासन को किसी भी तरह से धक्का पहूँचाने में समर्थ नहीं होगा और हम अपने कार्य में निरन्तर सफल ही होते जावेंगे। संगठन एवं प्रेम पूर्ण व्यवहार ही अभ्युदय के पाये हैं अत कभी भी इनमें किसी भी तरह का फरक नहीं आने देना चाहिये।

सूरीश्वरजी के उक्त पक्षपात रहित उपदेश एवं प्रेम पूर्ण भ्रातृत्व भाव के बर्ताव ने दिगम्बर एवं श्वेता-

* उस समय के मन्दिर मूर्तियों गुफाएं स्थम्भ लेख तथा दानपत्रादि बहुत से प्रमाण उपलब्ध हो चुके हैं और वे अन्यत्र कई स्थानों पर प्रकाशित भी हो चूके हैं अत यहाँ पर समय एवं स्थान के अभाव नह ~ सके तथापि पाठक ! प्रकाशित हुए प्रमाणों को पढ़कर खात्री कर सकते हैं।

स्वार मुनियों के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। उनके उत्साह में विशेष वृद्धि करने के लिये आगत श्रमण मण्डली में से पद योग्य मुनियों को उपाध्याय गणि गणावच्छेदक आदि पद से विभूषित किए। पश्चात् सूरीश्वरजी के आदेशानुसार विभिन्न २ संघों के विभिन्न २ मुनियों ने विभिन्न २ क्षेत्रों में विहार किया। आचार्य श्री भी विधर्म देश को पावन करते हुए कोरण्ट पधार गये। क्रमशः वीपार पट्टन के सफल चातुर्मासानन्तर आपश्री ने क्रमशः सौराष्ट्रप्रान्त की ओर पदार्पण किया। सौराष्ट्रप्रान्तीय तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय गिरनार आदि पवित्र तीर्थक्षेत्रों की यात्रा कर आत्म शान्ति या अनुपम निवृत्ति आत्मन्नानुभव करने के लिये आपश्री ने कुछ समय पर्यन्त वहाँ पर स्थिरता की। तत्पश्चात् क्रमशः विहार करते हुए लाट, आवन्तिका और मेदपाट प्रान्त के ग्राम नगरों में बहुत समय तक धर्म प्रचार किया। बाद में आपने मरुधर भूमि को पावन करने का निश्चय किया तब मरुधर वासियों ने आचार्य श्री के आगमन के शुभ समाचार सुने तो उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा दिग्विजय करके आये हुए चक्रवर्ती के समान ग्राम २ एवं नगरों २ में आपका समारोह पूर्वक स्वागत होने लगा।

आचार्यश्री ने मरुभूमि में परिभ्रमण करते हुए एक चातुर्मास हिडू नगर में दूसरा नागपुर में और तीसरा उपकेशपुर में किया। उपकेशपुरीय चातुर्मास में देवी सच्चायिका ने आकर परोक्ष रूप में सूरीश्वरजी को एकदिन सविनय वन्दन किया। सूरीश्वरजी ने भी देवी को उच्चस्वर से धर्मलाभ दिया। तत्पश्चात् देवी ने कहा पूज्य गुरुवर्य ! आपश्री ने इस वय परिभ्रमण करते हुए सारे आर्यावर्त को ही प्रतिबोधित दे डाला। धन्य है दयानिधान ! आपकी उत्कृष्ट धर्म प्रचार की पवित्र भावनाओं को और धन्य है आपश्री के उत्कट त्याग वैराग्य को। प्रभो ! आपका धर्म स्नेह, पुरुषार्थ एवं पराक्रम स्तुत्य तथा आदरणीय है। इसपर सूरीश्वरजी ने कहा देवीजी ! इसमें धन्यवाद की क्या बात है ? देवीजी ! परिभ्रमण करते हुए स्वपरकल्याणोत्सुक जन समाज को धर्म मार्ग की ओर प्रेरित करते रहना तो हमारा परम कर्तव्य ही है। धन्यवाद तो है हमारे परमाराध्य पूज्य पाद प्रातः स्मरणीय आचार्यश्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी प्रभृति पूर्वाचार्यों को कि जिन्होंने ताड़ना तर्जना, मानापमानादि रूप असंख्य परिषहों को सहन करके भी सर्वत्र महाजन संघ की स्थापना कर कण्टकीर्ण मार्ग को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बना दिया है। हमारे लिये तो कोई ऐसा क्षेत्र ही अवशिष्ट नहीं रक्खा कि जहा हमें धर्म प्रचार करने में किञ्चित् भी कष्ट सहन करना पड़े। उनके मार्ग का अनुसरण करके हम सुखी अवश्य है पर उनके के सिवाय धन्यवाद योग्य और कोई किया ही नहीं है। हमारे पूर्वाचार्यों इस सब क्षेत्रों में जैन धर्म की नींव डालकर शासन की बहुत ही प्रभावना की है किन्तु हमारे से तो उनके द्वारा किये गये कार्यों का एक शतांश होना भी असम्भव है देवी जी ! जनता इसका भद्रिक एवं सरल परिणामों वाली होती है। यदि उनको साधुओं के आवागमन से बराबर उपदेश मिलता रहे तो वे धर्म में स्थिर रहते हैं अन्यथा मिथ्यात्व का आश्रय ले शिथिल हो किञ्चित् काल में धर्म से पराङ्मुख बन जाते है। इन्हीं सभी उत्तम, अभीप्सित भावनाओं से प्रेरित हो हमारे पूर्वाचार्यों ने आर्यावर्तीय सकल प्रान्तों में मुनि समाज को भेज कर जैन धर्म का विस्तृत प्रचार किया व करवाया। आज जिन मधुर फलों का हम आस्वादन कर रहे हैं वह सभी पूर्वाचार्यों की ही कृपा दृष्टि का ही परिणाम है आज भी उन्हीं के आदर्शानुसार प्रत्येक प्रान्त में साधुओं का विहार होता रहता है अतः मेरा भी सब प्रान्तों में परिभ्रमण कर उत्साह वर्धन करते रहना एक कर्तव्य हो जाता है। इससे कई तरह के लाभ होते हैं—एक तो जन समाज को साधारण तथा उपदेश मिलते रहने से धर्म जागृति होती है दूसरा-प्रान्तीय मुनियों के आचार विचार व्यवहार एवं धर्म के प्रचार का निरीक्षण हो जाता है। तीसरा—तीर्थों की यात्रा का अपूर्व लाभ प्राप्त होता है और चौथा चारित्र की निर्मलता यथावत् बनी रहती है अस्तु,

देवी—पूज्यवर ! इन सबों का विचार तो वही कर सकता है—जिसके हृदय में धर्म प्रचार की उत्कट

अभिलाषा एव कार्य करने का अदम्य उत्साह हो। वास्तव में आपको शासन के प्रति अपूर्व गौरव एव सम्मान है अत आपको वारम्बार धन्यवाद है। प्रभो ! अब आपकी वृद्धावस्था हो चुकी है अत आप मरुभूमि में ही विराजकर हम अज्ञानियों पर कृपा करे, यही मेरी प्रार्थना है। सूरिजी ने 'क्षेत्र स्पर्शना' के रूप में उत्तर दिया और देवी भी सूरिजी को वदन कर क्रमश स्वस्थान को चली गई।

इतने समय पर्यन्त इतर प्रान्तों में दीर्घ परिभ्रमन करने के कारण मरुधर प्रान्तीय श्रमणवर्ग में कुछ शिथिलता आ गई ऐसे समाचार यत्र तत्र कर्णगोचर होने लगे। उक्त समाचारों ने आचार्यश्री के हृदय में पर्याप्त चिन्ता एव दु ख का प्रादुर्भाव कर दिया। शिथिलता निवारण के लिये श्रमण सभा योजना का निश्चय किया और उक्त निश्चयानुसार अपनी मनोगत भावना को दूसरे दिन व्याख्यान में श्रीसघ के समक्ष प्रगट करदी। आचार्यश्री की उक्त योजना को श्रवण कर श्रीसघ ने प्रसन्नता पूर्वक इसका उत्तरदायित्व अपने सिर पर ले लिया। उपकेशपुरीय श्री सघ ने तो शासन के इस महत्व पूर्ण कार्य का लाभ प्राप्त करने के लिये अपने को परम भाग्यशाली समझा। वास्तव में इससे अधिक शासन प्रभावना का कार्य हो ही क्या सकता था ? शासन की बड़ी से बड़ी या कीमती सेवा तो यही थी अत श्री संघ ने विनय पूर्वक प्रार्थना की—भगवन् ! इस सभा का निश्चित दिन निर्धारित कर दिया जाय तब तो हमें हमारे सब कार्य करने में सुविधा रहे। सूरिजी ने कहा—आप लोगों का कहना यथार्थ है पर सभा का समय कुछ दूर रक्खा जायगा तो आस-पास के क्षेत्रों के साधु व सुदूर प्रान्तीय साधु भी यथा समय सम्मिलित हो सकेंगे अत मेरे मन्तव्यानुसार कुछ दूर का ही शुभ दिन मुकर्रर करना चाहिये—श्रीसघ ने कहा—जैसी आप श्री की इच्छा। सर्व मुनियों को एक स्थान पर एकत्रित होने में तो अवकाश चाहिये ही अत दूर का मुहूर्त रखना ही अच्छा रहेगा। सूरिजी ने फरमाया—माघ शुक्ला पूर्णिमा का दिन निश्चित किया जाता है जिससे, चातुर्मासानन्तर तीन मास में श्रमण वर्ग अनुकूलता पूर्वक सम्मिलित हो सके। दूसरा—गुरु महाराज की स्वर्गारोहण तिथी भी है अत सर्व कार्य गुरुदेव की कृपा से निर्विघ्न तया सानन्द सम्पन्न हो सके। श्रीसघ ने भी आचार्यश्री की दीर्घदर्शिता की प्रशसा करते हुए सूरीश्वरजी के कथन को सहर्ष स्वीकार कर लिया। बस, समयानुकूल श्रीसघ ने भी अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यत्र तत्र सर्वत्र अपने योग्य-प्रमाणिक पुरुषों के द्वारा आमन्त्रण पत्रिकाएँ भिजवा दी। श्रमणवर्ग की प्रार्थना के लिये उचित पुरुषों को भेज दिये इससे जन समाज के हृदय सागर में उत्साह की उर्मियां उछलने लगी। बहुत समय बीत गया। ज्यों ज्यों श्रमण सभा का निर्धारित दिन नजदीक आता गया त्यों त्यों उनके हृदय में नवीन २ आशाओं—कल्पनाओं का सुदृढ दुर्ग निर्माण होता गया। सब ही लोग माघ शुक्ला पूर्णिमा क परम पावन दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

ठीक समय पर चारों ओर से श्रमण सघ का शुभागमन हुआ। श्रीसघ की ओर से विना किसी भेद भाव के सबका यथोचित सम्मान किया गया। कुछ समय के लिये मुनियों एव श्रावकों के आवागमन की अधिकता के कारण उपकेशपुर तीर्थ धाम ही बन गया। इससे सबके हृदय में आशातीत उत्साह एव कार्य करने की शक्ति का सञ्चार हुआ। आगुन्तक श्रमण वर्गों में उपकेशपुरशाखा भिन्नमालगच्छ, कोरंटगच्छ एवं वीर परम्परागत मुनियों को मिला कर कुल पाच हजार श्रमण आये थे। ठीक पूर्णिमा के दिन सभा का कार्य सूरिजी के अध्यक्षत्व में प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम सूरिजी के सन्यासी शिष्य ज्ञानानन्द मुनि ने सभा करने के मुख्य उद्देश्यों एव आवश्यकताओं की ओर जन समाज का ध्यान आकर्षित करते हुए सक्षिप्त स्पष्टीकरण किया तत्पश्चात् आचार्यश्री ने आगत श्रमण मण्डली का आभार व्यक्त करते हुये व उनके शासन विषयक इस अदम्य उत्साह की सराहना करते हुए फरमाया कि जिन किन्हीं महानुभावों को सभा के उक्त उद्देश्यानुसार किसी विषय का स्पष्टीकरण करना हो तो वे इस समय खुले दिल से प्रसन्नता पूर्वक अपने मानसिक उद्गारों को प्रगट कर सकते हैं। आचार्यश्री की उक्त सूचना के होने पर भी सभा तो एक दम निस्तब्ध रही

कारण आगत श्रमण समुदाय व सकल संघ आचार्यश्री की अमृतवाणी का ही श्रवणोत्सुक था। दूसरा यह जमाना ही विनय व्यवहार का था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता को देखकर ही आगे कदम बढ़ाता था। अतः किसी ने भी बोलने का तो साहस नहीं किया पर आचार्यश्री की इस अनुपम उदारता के लिये सब ने प्रसन्नता प्रगट की। तत्पश्चात् सूरिजी म० ने अपना प्रभावोत्पादक, हृदयस्पर्शी वक्तृत्व प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर प्रभृति प्रभावक आचार्यों के आदर्श इतिहास को बड़े ओजस्वी शब्दों में सुनाया! इन महापुरुषों ने धर्म प्रचार के लिये किन २ कष्टों को सहन किया है। उनमें से एक शतांश कष्ट भी हमको धर्मोपदेश के कार्यों में प्राप्त नहीं होता है। उन आचार्य देवों ने जिस २ प्रान्तों में धर्म के बीज बोये वे आज पत्र पुष्प, फलकुसुमादि ऋद्धि समृद्धि समन्वित चतुर्दिक में लहराते हुए दीखते हैं। इसका एक मात्र कारण श्रमण वर्ग का सतत् प्रान्त में परिभ्रमन कर धर्मोपदेश रूप जल का सींचन करना ही है। विधर्मियों के अनेक आक्रमणों के सामने हमारे श्रमण वर्ग खूब डट कर रहे हैं और उनकी कहीं पर भी दाल नहीं गलने दी इसका मुझे बहुत हर्ष है। इतना ही क्यों पर मैं स्वयं प्रान्तों २ में परिभ्रमन कर मुनियों के प्रचार कार्य को अपनी आंखों से देखकर आया हूँ अतः श्रमणसंघ के लिये मेरे हृदय में बड़ा भारी गौरव है किन्तु रंज इस बात का है कि कुछ श्रमणों ने सिंह के रूप में भी शृगाल के समान चैत्यों में स्थिरवास कर अपने आचार व्यवहार को एक दम कुत्सित बना दिया है। इससे वे अपनी आत्मा के अहित के साथ ही साथ इतर अनेकों आत्माओं का भी अहित कर रहे हैं। श्रमणों! भगवान् महावीर ने आप पर विश्वास कर शासन को आपके हाथों में दिया है। यदि आप सच्चे वीरपुत्र हैं, अपने वीरत्व का आपको वास्तविक गौरव है आपकी धमनियों में वीरत्व का उष्ण रुधिर प्रवाहित हो रहा हो तो कटिबद्ध होकर शासन प्रभावना एवं प्रचार के समराङ्गण में कूद पड़िये। आज सौगतानुयायियों की तो इतनी प्रबलता रही भी नहीं है। वह तो मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ चरम श्वास ले रहा है पर वैदान्तियों के अपने ऊपर सख्त आक्रमण हो रहे हैं अतः अपने को भी कमर कस कर यत्र तत्र सर्वत्र उनकी दाल नहीं गलने देने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि इस भयानक संघर्ष के समय में हम यों ही गफलत में रह गये तो शासनोत्कर्ष के बजाय शासनापकर्ष ही है। पूर्वाचार्यों के पवित्र कुल के लिये शिथिलता कलंक रूप ही है अतः अपने कर्तव्यों का विचार अपने को अपने आप ही कर लेना चाहिये। अभी तो सावधान होने का समय है अन्यथा कुछ समय के पश्चात् अपनी ही शिथिलता या करने को रह २ कर पश्चाताप करना पड़ेगा। जब समाज अपने को अकर्मण्य, प्रमादी विलासी निस्तेज समझेगा अतः इस प्रकार के कार्यों में चैत्यवास की स्थिरता व आचार व्यवहार की शिथिलता को तिलाञ्जली देकर अपने को अपने आप अपना कर्तव्य मार्ग की ओर अग्रसर हो जाना चाहिये। इस प्रकार यानि श्रमण वर्ग के लिये मार्मिक उपदेश देने पर आचार्यश्री ने दो शब्द श्राद्ध समुदाय के लिये भी कहे—महानुभावों! जैन शासन की रक्षा के लिये चतुर्विध संघ की स्थापना कर भावी जुम्मेवारी श्राद्ध वर्ग पर भी रक्खी है। साधुओं के जीवन व आचार व्यवहार विषयक पवित्रता आपकों पर भी निर्भर है। यदि श्रावक वर्ग अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देता रहे तो श्रमण समुदाय में इतनी शिथिलता आ ही नहीं सकती। ठाणांग सूत्र में श्रावकों को साधुओं के माता पिता कहा है इसका कारण भी यही है कि कोई साधु अपने पवित्र मार्ग से च्युत हो जाय तो माता पिता के माफिक हर एक उपायों से श्रावक च्युत हुए साधु को सन्मार्ग पर ला सकते हैं।

सूरीश्वरजी के उक्त मार्मिक, हृदयग्राही उपदेश का प्रभाव उपस्थित चतुर्विध संघ पर इस कदर पड़ा कि—उनके हृदय में बिजली की भांति नूतन ज्योति चमक उठी। वे अपने कर्तव्य धर्म का गहरा विचार करने लगे तो आचार्यश्री के उपदेश का एक २ शब्द उन्हें महत्वपूर्ण तथा आदरणीय ज्ञात होने लगा। सूरीश्वरजी का कथन उन्हें ठीकर माना मात्र प्रतीत हुआ। वे सूरीश्वरजी की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—अहो! दुःषमकाल जन्य वैयक्तिक शक्तियों की निर्बलता होने पर भी आपश्री ने सारे आर्यावर्त की प्रदक्षिणा कर डाली तो क्या

अपना कर्तव्य इसी प्रकार धर्म प्रचार करने का नहीं है ? वास्तव में अपन लोग अपने मार्ग से स्खलित हो गये हैं अत आचार्यश्री के उपदेश को शिरोधार्य करके अपने को भी अपने कर्तव्य पथ में अग्रसर होजाना चाहिये। इस तरह सूरीश्वरजी के उपदेश को सक्रिय—कार्यान्वित रूप देने का विचार करते हुए आचार्यश्री की पुन पुन प्रशंसा करने लगे। पश्चात् भगवान् महावीर को और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

दूसरे दिन एक सभा और भी हुई। उसमें योग्य मुनियों के योग्य पदाधिकारों के विषय में और साधुओं के पृथक २ क्षेत्र में विहार करने के विषय में विचार किया गया। इस प्रकार श्रमण सभा का कार्य सानन्द सम्पन्न होने पर सघ विसर्जित हुआ। उपकेशपुरीय श्रीसघ ने आगन्तुक संघ का खूब ही सन्मान किया और योग्य पहिरावणी देकर उन्हें विदा किया।

उपकेशपुर श्रीसघ को अपने कार्य में सफलता मिल जाने के कारण आशातीत प्रसन्नता हुई। उन्होंने आचार्यश्री के परमोपकार की एव अनुग्रह पूर्ण दृष्टि की भूरि २ प्रशंसा की। इस सभा के पश्चात् आचार्यश्री का विहार भी प्राय. मरुभूमि में ही होता रहा। केवल एक बार मथुरा और एक बार सघ के साथ शत्रुञ्जय की यात्रा का उल्लेख पट्टावलियों में इस अवधि के बीच—मिलता है। अन्त में आपश्री ने उपकेशपुर में ही अपने सुयोग्य शिष्य उपाध्याय कल्याणकुम्भ मुनि को सूरिमन्त्र की आराधना करवाकर चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष भगवान् महावीर के चैत्य में विक्रम सं० ८९२ के माघ शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन शुभ मुहूर्त में सूरि पद से अलंकृत कर परम्परानुक्रम से आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया आप स्वय २७ दिन के अनशन पूर्वक पञ्च परमेष्टि का स्मरण करते हुए समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये।

आचार्य देवगुप्तसूरि महान् प्रतिभाशाली तेजस्वी आचार्य हुए। आपने अपने ५५ वर्ष के शासन में जैनधर्म की बहुत ही अमूल्य सेवा की। आपकी शासन सेवा का वास्तविक वर्णन करने में साधारण मनुष्य तो क्या पर बृहस्पति जैसे समर्थ भी असमर्थ हैं।

इस उपकेश गच्छ में अजैनों को जैन बनाने की प्रवृति शुरु से ही चली आ रही थी और इस गच्छ में जितने आचार्य हुए उन्होंने थोड़े बहुत सख्या में अजैनों को जैन बनाने का क्रम चलु ही रखा था इसका मुख्य कारण यह है कि इस गच्छ के आचार्यों के किसी एक प्रान्त का प्रतिबन्ध नहीं था वे प्रत्येक प्रान्त में विहार किया करते थे। दूसरा इस गच्छ में शुरु से ही एक आचार्य होने का रिवाज था और सब साधु उन एक आचार्य की आज्ञा में विहार करते थे अत जहां उपकेशवश की थोड़ी घणी बस्ती हो वह उनके मुनि गण विहार करते ही रहते थे जब तक बगेचा को अनुकूल जलवायु मिलना रहता है वह हरावर गुजफार रहता है जैसे अन्य लोगों में पृथ्वी प्रदिक्षण देने का व्यवहार था वैसे इस गच्छ के आचार्यों के सूरिपद पर आरूढ होने पर वे कम से कम एकबार तो सब प्रान्तों में विहार कर वहाँ के चतुर्विध श्रीसध की सार सम्भार कर ही लेते थे।

उन आचार्यों को इस बात का भी गौरव था कि हमारे पूर्वाचार्यों ने महाजन संघ की स्थापना की थी उनका पोषण एवं वृद्धि भी की थी अत उनका यह कर्तव्य ही बन जाता था कि वे प्रत्येक प्रान्त में विहार कर अजैनों को जैन बनाकर उनकी शुद्धि कर महाजन सघ के शामिल मिला ही देते थे उस समय का महाजन सघ भी इतना उदार एव दीर्घदृष्टि वाला था कि नये जैन बनने वालों के साथ बड़ी ही साहनुभूति वात्सल्यता का व्यवहार रखते थे और जैन बनते ही उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार चलु कर देते थे और हर तरह से उनकों सहायता पहुँचा कर अपने बराबरी का बनाना चाहते थे—तब ही तो लाखों की सख्या का महाजनसघ करोड़ों की सख्या तक पहुँच गया था आचार्य देवगुप्तसूरिजी महाराज बड़े ही प्रभावशाली आचार्य थे आपका श्रीसघ पर बड़ा भारी प्रभाव था आपने पूर्वाचार्यों द्वारा स्थापित शुद्धि

की मशीन खूब एकसर भ चलाइ की ममूना क तौर दखिये।

आचार्य श्री देवगुप्तसूरि एक समय सोजत्या पाटन की ओर पधार रहे थे। मार्ग में कालेर ग्राम का एक ग्राम आया। ग्राम से एक कोस के फासले पर एक देवी का मन्दिर था। मन्दिर के समीप ही एक ओर हजारों स्त्री पुरुष 'जय हो देवीजी की' बोलते हुए खड़े थे और दूसरी ओर देवी को बलि देने के लिये मनुष्यों की संख्या के अनुरूप ही हजारों भैंस व बकरे करुणा जनक शब्दों में आक्रन्दन करते हुए खड़े थे। आचार्यश्री का मार्ग मन्दिर पास से बहुत दूर था तथापि बहुत मनुष्यों के समुदाय को एकत्रित हुआ देख विशेष लाभ की आशा से या यात्रियों के इस खास कौतूहल को धर्म रूप में परिणत करने की प्रबल इच्छा से आचार्यश्री ने भी उधर ही पदार्पण करना समुचित समझा। क्रमशः वहाँ पहुँचने पर पशुओं की करुणा जनक स्थिति को देखकर आचार्यश्री के दुःख का पार नहीं रहा। वे इस विभत्स करुणाजनक दृश्य को देखकर मौन न रह सके। उपस्थित जन समुदाय के मुख्य २ पुरुषों को बुलाकर आचार्यश्री समझाने लगे—महानुभाव! आप यह क्या कर रहे हैं? उन लोगों ने कहा—महात्माजी! हमारे ग्राम में कई दिनों से मारि रोग प्रचलित है अतः कई जवान २ व्यक्ति भी रोग की करालता के कारण कराल काल के कवल बन चुके हैं। अब आज हम सब मिलकर देवी की पूजा करेंगे व भविष्य के लिये शान्ति की प्रार्थना करेंगे।

सूरिजी—महानुभावों! यह आपका सोचा हुआ उपाय तो शान्ति के लिए नहीं प्रत्युत् अशान्ति का ही वर्धक है। आप स्वयं गम्भीरता पूर्वक विचार कीजिये कि—रुधिर से भीगा हुआ कपड़ा भी कभी रुधिर से साफ किया जा सकता है? आप आप लोगों के पापों की प्रबलता के कारण ही यह रोग ग्राम भर में फैला और फिर इसकी शांति के लिये धर्म नहीं किन्तु पाप का ही भयङ्कर कार्य कर शान्ति की आशा कर रहे हो—यह कैसे सम्भव है? इस तरह के हिंसात्मक क्रूर कर्मों से शान्ति एवं आनन्द की आशा रखना दुराशा मात्र है। महानुभावों! जैसे आपके शरीर में आत्मा है उसी तरह इन पशुओं के देह में भी है। जैसे आपको दुःख प्रतिकूल है और सुख की अभिलाषा प्रिय है वैसे इन पशुओं को भी दुःख प्रतिकूल सुख की इच्छा अनुकूल है। आपने किञ्चित् जीवन के लिये इन मूक पशुओं की जान लेना क्यों तक समीचीन है। मरते हुए ये जीव आपको किस तरह का दुराशीष देवे होंगे, इसके लिये आप स्वयं ही विचार करलें।

आचार्यश्री के उक्त गम्भीर एवं सार गर्भित शब्दों के बीच ही में समीपस्थ जनसमुदाय बोल उठे—आप लोग तो जैन धार्मिक हैं। आप इन विषयों के विशेष अनुभवी भी नहीं हैं। देवी की पूजा करने पर देवी संतुष्ट हो हमारे रोग को शीघ्र ही शान्त कर देगी। पर बलि देने का विधान तो वेद विहित एवं अनादि है। यह कोई आज का नया विधान नहीं है। इससे तो हमारी हर एक अभिलाषाओं की पूर्ति अन्य ही शीघ्र हो जाती है। जब २ रोगोपद्रव होता है तब २ इस प्रकार से देवी का पूजन करने पर शान्ति का साम्राज्य हो जाता है।

सूरिजी—यह तो आप लोगों का अज्ञानता परिपूर्ण भ्रम मात्र है। देवी तो जगत् के चराचर जीवों की माता है। देवी के लिये जैसे आप पुत्र स्वरूप प्रिय हैं वैसे वे मारने के लिये लाये हुए पशु भी हैं। क्या माता को एक पुत्र को मरवा कर दूसरे पुत्र की शान्ति देखना इष्ट है? दूसरे इन जीवों को मारकर इनके मांस भक्षण का उपयोग भी आप लोग ही करोगे न कि देवी फिर, अपने क्षणिक स्वार्थ के लिये देवी के मिस देवी को बदनाम करना आप लोगों को शोभा नहीं देता। यदि इन जीवों को देवी के ही अर्पण करना है तो रात्रि पर्यन्त इन सबको यहीं रहने दीजिये। देवी को इनके मांसों की बलि लेना ही इष्ट होगा तो वह स्वयं रात्रि के समय इन पशुओं को भक्षण कर लेगी।

पास ही कालेर ग्राम के राव रत्नसिंह[1] बैठे हुए थे। उनको सूरिजी का कहना बहुत ही युक्तियुक्त मालूम

१—राव वंश के पांच पुत्रों में रत्नसिंह भी एक था। इसको कालेर ग्राम जागीरी में मिला था।

हुआ अत वे बोल उठे—महात्माजी का कहना तो ठीक है पर हम उक्त कथन को इस शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि महात्माजी के प्रयत्न से हमारे ग्राम में पूर्णत शान्ति हो जाय।

सूरिजी—महानुभावों ! इन पशुओं को तो आप रात्रि भर यहीं रहने दो और मैं आपके साथ ग्राम में चलता हू व शान्ति का उपाय बतलाता हूँ वह कीजिये। यदि आपके शुभ कर्मों का उदय होगा तो शीघ्र ही शान्ति हो जायगी।

सूरिजी के वचनों के विश्वास पर सब लोग ग्राम में आ गये। ग्राम में आने के पश्चात् सूरिजी ने राव राखेचा से कहा कि आपके ग्राम का सकल जन समुदाय आज रात्रि पर्यन्त मेरे कहे हुए मन्त्र का जाप करे। व कल प्रात काल शान्ति स्नात्र पूजा करवाई जाय जिससे आपके ग्राम में सब तरह से शान्ति हो जाय।

गरजवान् क्या नहीं करता है ? रावजी ने भी ग्राम भर में उद्घोषणा करवाई कि शान्ति के इच्छुक महात्माजी के द्वारा बतलाये जाने वाले मत्र का सब लोग रात्रि पर्यन्त जाप करें। सूरिजी का वह मत्र था "नवकारमत्र"। रावजी एवं ग्रामवासियों ने रात्रि पर्यन्त नवकार मत्र का जाप किया जिससे उस रात्रि में मरने का एक भी केस नहीं हुआ। बस दूसरे ही दिन मन्दिर के वहां बांधे हुए सभी पशुओं को राव राखेचा ने छुड़वा दिये। फिर शान्ति स्नात्र पूजा करवाने से तो ग्राम भर में सर्वत्र शान्ति हो गई अत सूरिजी के व्यक्तित्व का उन लोगों पर गहरा असर हुआ। आचार्यश्री ने भी कुछ समय पर्यन्त वहा स्थिरता कर राजा प्रजा को सदुपदेश दिया व जैन धर्म के तत्वों को समझाया। उन लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर अहिंसा भगवती के परमोपासक बनाये। तथा वहाँ पर एक जैन मन्दिर की नींव भी डलवादी—

पट्टावलीकारों ने इस घटना का समय वि० स० ८७८ चैत्र विद ८ का बतलाया है।

कालेर के बहुत से लोग सूरीश्वरजी के प्रभाव से प्रभावित हो जैन धर्म व अहिंसा भगवती के परम भक्त बन गये थे। राव राखेचा की तो दया धर्म पर बहुत ही रुचि बढ़ गई। उसने आचार्यश्री से विनम्र शब्दों में प्रार्थना की—गुरुदेव। नजदीक ही नवरात्रि का त्यौहार आरहा है अतः आप अभी कुछ समय पर्यन्त यहीं पर स्थिरता करें। कारण, पाखण्डी लोग जन समाज में भ्रम फैला कर देवी के नाम पर पशुवध न कर डालें ? आचार्यश्री ने भी लाभ का कारण सोचकर कुछ समय वहीं पर ठहरने का निश्चय किया अत कई साधुओं को तो आस पास के ग्रामों में विहार करवा दिया और थोड़े बहुत साधुओं के साथ आप तो यहीं पर ठहर गये। सूरीश्वरजी के अन्य साधुओं ने भी वहा के लोगों को जैन धर्म के विधि विधान एवं नित्य कृत्य की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। और इधर आचार्यश्री ने अहिंसा के संस्कारों को दृढ़ करने के लिए व्याख्यान के रूप में अहिंसा का विशद स्वरूप बताना शुरू किया। क्रमश नवरात्रि की स्थापना का दिवस आने लगा तब तो ग्राम भर में बड़ी भारी चहल पहल मच गई। जितने मुंह उतनी बातें सुनाई देने लगी। कई कहने लगे दया तत्व को स्वीकार करने वाले देवी को बलि देकर पूजेंगे या नहीं ? कई कहने लगे—परम्परानुसार दी जाने वाली बलि देवी के लिए नहीं दी गई तो देवी रुष्ट हो सबका सहार कर डालेगी। तब कई कहने लगे-देवी देवता ऐसे घृणित पदार्थ को छूते ही नहीं क्योंकि देवता का भोजन ही अमृत है, इत्यादि। लोगों के हृदय में नाना प्रकार की कल्पनाएँ नवरात्रि के लिये प्रादुर्भूत होने लगी व कुछ क्षणों के पश्चात् विलीन भी।

इधर राव राखेचा ने आचार्यश्री के पास आकर ग्राम के सम्पूर्ण हाल को निवेदन किया। इस पर सूरिजी ने कहा—रावजी ! आप घबरावें नहीं। आज रात्रि में ही आपको मालूम हो जायगा कि दया धर्म का कैसा महात्म्य है ? यह सुनकर राव राखेचा को हर्षान्वित सतोष एवं आनन्द हुआ। वे आचार्यश्री को वन्दन करके अपने घर लौट आये।

उस ही रात्रि को आप सोये हुए थे कि देवी ने आकर कहा—रावजी ! गुरुदेव बड़े ही भाग्यशाली

है। उनके तप तेज का अतिशय प्रभाव मेरे ऊपर पड़ चुका है। मेरे स्थान पर आज से कोई भी किसी भी जीव का वध नहीं कर सकेगा। मेरे मन्दिर के पीछे पश्चिम दिशा में नव हाथ दूर एक निधान भू भाग में स्थित है उसे निकाल कर धर्म कार्य में सदुपयोग करना। वह तुम्हारे ही भाग्य का है अतः तुम ही खोद कर निकाल लेना। इतना सुनते ही रावजी एक दम चौंक बैठे। वे एक दम आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे कि ये देवी के ही वाक्य हैं या स्वप्न है? सारी रात इस ही प्रकार की विचित्र २ विचार धारा में व्यतीत हुई। प्रातःकाल होते ही सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हो वंदन करके स्वप्न का सारा वृत्तान्त आद्य से इति पर्यन्त उन्हें कह सुनाया तब आचार्यश्री ने कहा—रावजी! आप परम भाग्यशाली हैं आपने जो कुछ देखा एवं सुना वह स्वप्न नहीं किन्तु देवी भगवती की ही साक्षात् सूचना है। अतः अब तो देवी के नाम पर होने वाली जीव हिंसा को रोकने के लिये ग्राम भर में अमारी घोषणा हो जानी चाहिये। साथ ही निधान के द्रव्य पर धार्मिक कार्यों के आधारानुसार जैनधर्म की प्रभावना एवं उन्नति भी करनी चाहिए। आचार्यश्री के वचन को शिरोधार्य कर रावजी अपने पर आप और मंत्री शाह मुरा को हुक्म दिया कि—"ग्राम भर में देवी के नाम पर कोई किसी भी जीव की बलि नहीं चढ़ावे" इस प्रकार की उद्घोषणा करवादो। मंत्री ने भी रावजी के आदेशानुसार ग्राम के चतुर्दिक में अमारी पड़हा उक्त घोषणा के साथ बजवा दिया। इस विचित्र एवं नवीन घोषणा को सुन पाखण्डियों के हृदय में खलबली मचगई। वे लोग आचार्यश्री पर दोषारोपण करने लगे की यह सबका ग्राम भर को मरवा डालेगा। इस प्रकार की दुर्भावना के प्रस्फुटित होने पर भी राज सभा के सामने उन बेचारों की कुछ भी दाल नहीं गल सकी। अब नवरात्रि के नव ही दिन आनन्द मंगल से निकल गये और किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ तब जाकर सूरिजी का जनता पर पूरा २ विश्वास हुआ।

रावजी भी देवी के बताये हुए निर्दिष्ट स्थान से दूसरे दिन निधान निकाल कर ले आये। सूरिजी से उसका सदुपयोग करने के लिए परामर्श किया तो आचार्यश्री ने कहा—रावजी! गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में जिन मन्दिर का निर्माण करना तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालना, स्वधर्मी बन्धुओं की हर एक तरह से सहायता करना व अहिंसा धर्म का विस्तृत प्रचार करना इत्यादि मुख्य २ काम हैं।

राव राखेचा ने भी सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने ग्राम में एक विशाल मन्दिर व भगवान् महावीर की मूर्ति बनवाना प्रारम्भ किया। तीन बार तीर्थों का संघ निकाल कर यात्रा कर पुण्य सम्पादन किया। जैन मुनियों के चातुर्मास करवा कर परम प्रभावक श्री भगवती सूत्र का महोत्सव कर संघ को सूत्र सुनवाया। स्वधर्मी बन्धुओं की सहायता प्रदान कर सेवा का सच्चा व आदर्श लाभ लिया। जीव दया के लिये अपूर्व उद्यम कर अनेकों मूक जीवों को अभय दान दिया। जिन शासन में आप भी प्रभावक पुरुषों की गिनती में जैन धर्म के प्रचारक पुरुष हुए।

जिस समय जैनाचार्यों का अहिंसा परमोधर्म के विषय खूब जोरों से प्रचार हो रहा था प्रायः भारत में सर्वत्र अहिंसा भगवती का झंडा फहरा रहा था तब पाखण्डियों ने जंगलों में पहाड़ों के बीच देव देवियों के छोटे बड़े मन्दिर बना कर वहाँ निरपराध जीवों की हिंसा कर मांस मदिरा को खाते पीते एवं व्यभिचार करने लग गये थे फिर भी भाग्यवशात् कहीं-कहीं उन जंगलों में भी उन आचार्यों का पदार्पण हो ही जाता था और वे अपने अतिशय प्रभाव एवं सदुपदेश द्वारा उस अधम कर्म का त्याग करवा कर स्वर्ग की राह पर लाकर उन जीवों का उद्धार कर ही डालते थे अतः उन पूज्याचार्यों का समाज पर कितना उपकार हुआ वह हम जबान द्वारा कह नहीं सकते हैं।

राव राखेचा की सन्तान राखेचा कहलाई। आपके चार पुत्र व तीन पुत्रियें व और भी बहुत सा परिवार था। वंशावलियों में लिखा है—
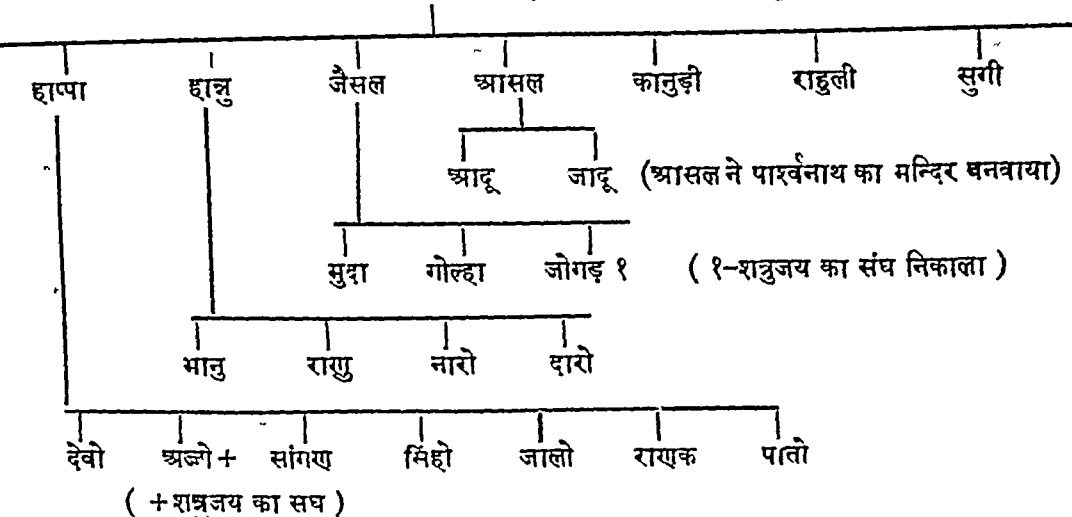
इस प्रकार आपकी वशावली वहुत ही विस्तार से लिखी है। इन्होंने अपने बाहुबल से अपने राज्य का विस्तार पुगल पर्यंत कर दिया था। वि० स० १०१२ में पुगल के राखेचा भोपाल ने तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का सघ निकाला तथा दुष्काल में मनुष्यों व पशुओं को खूब ही सहायता दी इससे राखेचा भोपाल की सन्तान पुंगलिया कहलाई। इन राखेचा गौत्र की वशावलियों में वि० स० ८७८ से वि० सं० १६८३ के नाम लिखे मिलते हैं। उक्त नामावली में १३६ मन्दिर बनवाये जाने का ४२ सघ निकालने का ७ दुष्कालों में पुगलिया गौत्रीय महानुभावों से जन, पशु रक्षणार्थ पुष्कल द्रव्य के दान देने का, ११ कूप व तीन तालाब खुदवाने व ४१ वीरांगनाओं का अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उनके साथ सती होने का उल्लेख मिलता है। वंशावल्योक्त समय के पश्चात् भी वीर राखेचा एव पुगलियों ने स्व-पर कल्याणार्थ किये हुए कार्यों की शोध खोज करने पर इसका पता सहज में ही लगाया जा सकता है। इनकी परम्पराओं के द्वारा निर्मापित मन्दिर मूर्तियों के शिलालेख भी हस्तगत हुए हैं, वे यथा स्थान दे दिये जावेंगे।

२—राठोड़ अड़कमल कितने ही सरदारों को साथ में लेकर धाड़े पाड़ रहे थे एक समय अचानक इधर से तो अड़कमल अपने साथियों के साथ जगल में जारहे थे और उधर से भू भ्रमन करते हुए आचार्य श्री देवगुप्त सूरि अपने शिष्य समुदाय के साथ पधार रहे थे। दोनो की परस्पर एक स्थान पर भेंट हो गई। मुनियों (भिक्षुओं) को देख कर सवारों ने उदास एव खिन्न चित से कहा—अरे ! आज तो भिक्षुकों के दर्शन हुए हैं। अत शुकन ही अप शुकन है। आज धन माल की आशा रखना तो दूर है किन्तु क्षुधा तृप्ति के लिये भोजन मिलना भी दुष्कर है। किसी ने कहा—इनके शरीर को छेद कर थोडा सा खून निकाला जाय तो शुकन पाल हो सकते हैं। इत्यादि

आचार्यश्री ने उन सरदारों की बातें सुनी। वे विचारने लगे—यदि इनके हृदय का भ्रम नहीं मिटाया जायगा तो भविष्य में कभी अन्य जैन श्रमणों को बुरी तरह से सन्तापित करेंगे। अत आपश्री ने निर्भीक-निःशंक चित से कहा—आप लोग क्या कह रहे हैं ? क्या आप लोग हमारे खून को चाहते हैं ? यदि हमारे खून की ही एकमात्र आवश्यकता हो तो आप निस्संकोच खून ले सकते हो। हम सब अपना खून देने के लिए तैय्यार हैं। आपके जैसे खानदान राजपूत-सरदार हम साधुओं के ग्राहक और कब मिल सकते हैं ?

सूरिजी के निस्पृह त्याग वचनों को सुनकर रविरेन्द्रक सरदार का मन लज्जा से अवनत होगया। मारे लज्जा के मुंह को नीचा कर वह कहने लगा—महात्मन्! आप आपके सीधे रास्ते पधार जाइये। आपके सूत्र को हमें किञ्चित् भी दरकार नहीं यदि आपको कुछ देने की इच्छा हो तो आप हमें ऐसा शुभाशीर्वाद दीजिये कि हमारे मन की अभीप्सित अभिलाषायें शीघ्र ही सफलीभूत हो जाँय। आचार्यश्री ने मनोऽभिलाषा पूरक सर्वसुख विधायक परम पवित्र धर्मोपदेश दिया। जिससे उन्होंने भी भविष्य के अभ्युदय की आशा पर सूरिजी के चरणों में नत मस्तक हो जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सूर्यास्त हो जाने से सूरीश्वरजी वृक्ष के इक भाग पर अपना आसन जमा कर प्रतिक्रमणादि सुशील जीवन के नित्य नैमेत्तिक कार्यों में संलग्न हो गये और इधर अड़कमलादि राठौड़ सरदार भी वहीं पर स्थित हो गये।

रात्रि में कुंकुम देवी ने अड़कमल को स्वप्न में कहा कि इस जगह भूमि के अन्दर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा है अतः प्रतिमाजी को निकाल कर यहीं पर शीघ्र ही मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर देना। देवी के उक्त कथन को सुन अड़कमल ने पूछा—आपके कथनानुसार मन्दिर तो बनवा दूँ पर मेरे पास तदनुकूल द्रव्य नहीं है अतः उसके लिये भी तो कोई सुलभ साध्योपाय होना चाहिये। देवी ने कहा—इस विषय की जरा भी चिन्ता न करो—प्रतिमाजी के पास ही अक्षय निधान भूगर्भ में स्थित है उसे निकाल कर अविलम्ब इस कार्य प्रारम्भ कर देना। अड़कमल ने देवी के वचनों को 'तथास्तु' कह कर स्वीकार किया। देवी भी अदृश्य हो पुनः स्वनिर्दिष्ट स्थान पर लौट आई। इस स्वप्न के समाप्त होते ही अड़कमल की आंखें खुल गई। वह प्रातःकाल शीघ्र ही उठकर आचार्यश्री के पास आया और परम कृतज्ञता पूर्वक रात्रि में आये हुए स्वप्न का हाल निवेदन किया। आचार्यश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया—अड़कमल! आप परम भाग्यशाली हैं। देवी की आप पर पूर्ण कृपा है। इस कार्य को करके तो अवश्य ही पुण्योपार्जन करना पर देवी का नाम भी आप ही में सदा के लिये भूमण्डल में अमर कर देना। इस पर अड़कमल ने अत्यन्त दीनता पूर्वक कहा—पूज्य गुरुदेव! मैं तो एक पामर-अधर्म-अकृत्य जीव हूँ। यह सब तो आपकी ही अपार कृपा का परिणाम है।

तत्क्षण ही आचार्यश्री को साथ में लेकर अड़कमल देवी के किये हुए संकेत स्थान पर गया। भूमि को खोदी तो देवी के कहे हुए वचनानुसार एक भव्य पार्श्वनाथ प्रतिमा दीख पड़ी। दूसरे ही क्षण प्रतिमाजी के वाम पार्श्व को खोदा तो एक निधान भी निकल गया। बस, फिर तो था ही क्या? अड़कमल की सब हृदयाभ्यन्तरित अभिलाषायें पूर्ण हो गईं। अब तो चतुर शिल्पज्ञों को बुलवाकर एक ओर तो मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया और दूसरी ओर नया नगर बसाने का कार्य। कुंकुम देवी के दर्शन व स्वप्न के कारण मन्दिर का नाम कुंकुम विहार व नगर का नाम देवीपुरी रखने का निर्णय किया गया।

आचार्यश्री ने उक्त घटना के पश्चात् शीघ्र ही अन्य प्रान्तों की ओर विहार करना प्रारम्भ कर दिया जब तीन वर्षों के पश्चात् मन्दिर का सम्पूर्ण कार्य सानन्द सम्पन्न होगया तो अड़कमल ने आचार्यश्री को बुलवाकर बड़े धूम धाम से—महोत्सव पूर्वक मन्दिर व नगर की प्रतिष्ठा करवाई। कुंकुम देवी को कुलदेवी स्थापित की अतः देव गुरु कृपा से देवीपुरी भी थोड़े ही समय में अच्छा आबाद हो गयी। जब अड़कमल के एक पुत्र हुआ जिस का नाम कुंकुम कुंवर रक्खा। बाद में अड़कमल के क्रमशः पांच पुत्र व तीन पुत्रियें हुई।

इसका समय पट्टावली निर्माताओं ने वि० सं० ८८८ का लिखा। अड़कमल का मूल स्थान कन्नौज था।

अड़कमल के पुत्र कुंकुंम ने श्रीशत्रुञ्जय का बड़ा भारी संघ निकाला। स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिकाओं की पहिरावणी दी तथा और भी कई शुभ कार्य किये जिससे कुंकुम की धवल कीर्ति दूर २ के प्रदेशों में फैल गई। इस सन्तान परम्परा भी क्रमशः कुंकुम जाति के नाम से पहिचानी जाने लगी। वंशावलियों में आपका परिवार इस प्रकार लिखा है—

१—अड़कमल के पुत्र कुंकुम हुये हैं उस जिन भवन ही देव देवी बतलाये गये हैं।

इस प्रकार राव अड़कमल के परम्परा की वंशावली का बहुत ही विस्तार पूर्वक उल्लेख है। क्रमश कुकुम गौत्र कालातिक्रमण के साथ ही साथ कई-शाखा प्रतिशाखाओं के रूप में भी प्रचलित होगया। जैसे कुंकुम, चोपड़ा, गणधर, कूकड़, धूपिया, वटवटा, राकावाल, सघवी और जावलिया। उक्त सब ही शाखाए एक कुकुम गौत्र की हैं। अत ये सब ही एक पिता की सन्तान—बन्धुतुल्य हैं। इनकी कुलदेवी कुकुम देवी है। कोई सघायिका को भी इनकी कुलदेवी मानते हैं। वशावलियों में उपरोक्त जातियों का समय एव कारण इस प्रकार बतलाया है—

१—कुंकुम गौत्र—राव कुकुम की सन्तान कुकुम कहलाई।

२—चोपड़ा—यह नाम चोपड़ा ग्राम के नाम पर हुआ।

३—गणधर—शाह भैरा ने शत्रुञ्जय का सघ निकाला और वहां पर १४५२ गणधरो का एक पट्ट बनवाया तब से भैरा की सन्तान गणधर जाति के नाम से पहिचानी जाने लगी।

४—कूकड़—शाह नरसी ने एक लक्ष रुपये देकर मरते हुए कुंकड़े को प्राणदान दिया तब से ही नरसी की सन्तान कुकड जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई।

५—धूपिया—शाह जोगो ने धूप का व्यापार प्रारम्भ किया पर जब मन्दिरजी के लिये धूप बनाने का मौका आता तब इतनी कस्तूरी एव इत्र डाल देता था कि मन्दिर के आसपास के मकान व मुहल्ले भी धूप की अपूर्व सौरभ से सौरभशील हो जावे। अत लोग उन्हें धूपिया २ कहने लगे। कालान्तर में यही जाति के रूप रूढ़ शब्द हो गया।

६—वटवटा—शाह नाथो बड़ा ही धर्मात्मा पुरुष था। उसने एक देवी का मन्त्र साधन किया था पर स्पष्टोच्चारण नहीं कर सकने के कारण देवी ने अप्रसन्न हो उसे श्राप दे दिया जिससे वह वटवटा बोलने लगा अत लोग उसे वटवटा कहने लगे। कालान्तर में उनकी सन्तान के लिये भी वटवटा शब्द रूढ़—प्रचलित होगया।

७—रांकावाल—गणधरपुरा के पुत्र के राका से राकावाल कहलाने लगे।

८—संघवी—माण्ड्यपुर से शाह सावत ने श्री शत्रुञ्जय का सघ निकाला और स्वधर्मी बन्धुओं को पाच २ स्वर्ण मुहरें व बढ़िया वस्त्रों की पहिरावणी दी अत आपकी सन्तान सघवी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

१—जावलिया—यह नाम ईमी मरूकी का उपहास में पड़ा है।

इस जाति में मुत्सद्दी एवं व्यापारी बड़े १ नामी नररत्न हुए हैं। मेरे पास जो वंशावलियें वर्तमान हैं उनका टोटल लगाकर देखा गया तो—

३६१—जैन मन्दिर बनाये जीर्णोद्धार कराये। ८१—धर्मशालाएं बनवाई।

८२—बार संघों को निकाल कर तीर्थ यात्रा की। १ १—बार श्रीसंघ की पूजा कर पहिरावणी दी।

९—आचार्यों के पद महोत्सव किये। ३—बार दुष्काल में शत्रुकार खुलवाये।

इस जाति की वंशावलियों में वि सं० १६०५ तक के नाम लिखे हुए हैं। ऊपर जिन सत्कार्यों एवं धर्मकार्यों का उल्लेख किया गया है वह एक ग्राम या कुटुम्ब के लिये नहीं अपितु इस जाति के तमाम धर्मवीरों के लिये जो मेरे पास की वंशावलियों में हैं लिखे गये हैं।

एक समय आचार्यश्री मथुराचल की ओर विहार कर रहे थे तो एक गिरिकन्दरा के पास देवी के मन्दिर में बड़ा ही एक यज्ञ हो रहा था उन्होंने सुनकर अपने कतिपय शिष्यों के साथ वहाँ गये तो कई बकरों को काट रहे और बहुत से बकरे भैंसे बध पर बान्ध रहे थे। सूरीजी ने उस कल्याणकारक दृश्य को देखकर बड़े ही निर्भयता पूर्वक उन लोगों को उपदेश दिया। बहुत तर्क वितर्क के पश्चात् राव विनायक पर सूरीजी के उपदेश का कुछ प्रभाव पड़ा और उसने हुक्म देकर शेष बकरे भैंसों को अभयदान पूर्वक छोड़ दिये। जब एक मुख्य सरदार पर असर हुआ तो शेष तो बिचारे कर ही क्या सके ? राव विनायक सूरिजी से प्रार्थना कर अपने ग्राम मंमोरिया में ले गये। सूरिजी ने भी लाभालाभ का कारण जान वहाँ पर एक मास की स्थिरता करदी और अहिंसामय उपदेश देकर राव विनायक के साथ हजारों क्षत्रियों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बना लिए। राव विनायक ने अपनी जागीरी के २४ ग्रामों में उद्घोषणा करवादी कि कोई भी लोग *बिना अपराध किसी जीव को नहीं मारे इत्यादि।*

राव विनायक ने अपने ग्राम में भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाकर समयसुन्दर आचार्य देव के करकमलों से प्रतिष्ठा करवाई। पट्टावलीकारों ने इस घटना का समय वि सं ६३३ का लिखा है तथा आपकी वंशावली भी लिखी है।
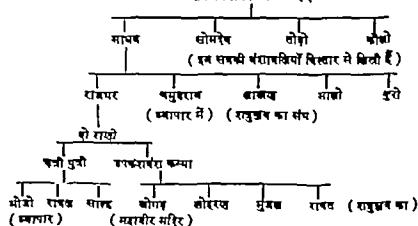
पूज्याचार्य देव के ४५ वर्षों के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

१—उपकेशपुर	के	चोरड़िया	जाति	शाह	रावत ने	दीक्षा ली
२—क्षत्रीपुर	के	पहालिया	,,	,,	धरण ने	,,
३—अग्रपुरी	के	नाहटा	,,	,,	खूमाण ने	,,
४—राजपुर	के	पोकरणा	,,	,,	सारंग ने	,,
५—धोलपुर	के	रांका	,,	,,	पुनड़ ने	,,
६—चर्पट	के	प्राग्वट	,,	,,	नाथा ने	,,
७—रामपुर	के	,,	,,	,,	जोघड ने	,,
८—नागपुर	के	,,	,,	,,	देवा ने	,,
९—पाटोली	के	,,	,,	,,	सूरा ने	,,
१०—भवलीपुर	के	श्रीमाल	,,	,,	फागु ने	,,
११—तीगरडी	के	देसरड़ा	,,	,,	राजसी ने	,,
१२—खुरपुर	के	गुलेच्छा	,,	,,	पेथा ने	,,
१३—नदपुर	के	पल्लीवाल	,,	,,	दुर्गा ने	,,
१४—मायाणी	के	ब्राह्मण	,,	,,	शंकर ने	,,
१५—डागाणी	के	जघड़ा	,,	,,	दोला ने	,,
१६—पारसोली	के	पारख	,,	,,	पोमा ने	,,
१७—दर्पपुर	के	श्रेष्टि	,,	,,	फागु ने	,,
१८—मालपुर	के	तोडियाणी	,,	,,	कल्हा ने	,,
१९—वीरपुर	के	समदड़िया	,,	,,	भैंरा ने	,,
२०—डामरेल	के	बोहरा	,,	,,	माण्डा ने	,,
२१—वारापुर	के	क्षत्रिय	,,	वीर	रामसिंह ने	,,
२२—नेनाग्राम	के	प्राग्वट	,,	शाह	आसा ने	,,
२३—कीराटकुप	के	प्राग्वट	,,	,,	सेहला ने	,,
२४—गालुन्दी	के	प्राग्वट	,,	,,	समरा ने	,,
२५—सनाणी	के	श्रीमाल	,,	,,	सागण ने	,,
२६—डापडी	के	श्रीमाल	,,	,,	रांणा ने	,,
२७—ढेढिया ग्राम	के	भूरट	,,	,,	पोकर ने	,,
२८—चामड़ीया	के	भटेवरा	,,	,,	नारायण ने	,,
२९—माडवगढ़	के	करणावट	,,	,,	चेला ने	,,
३०—उज्जैन	के	डिंगड़	,,	,,	खेमा ने	,,
३१—आघाट नगर	के	अग्रवाल	,,	,,	जैता ने	,,
३२—चित्रकोट	के	अग्रवाल	,,	,,	खीवसी ने	,,
३३—दान्तिपुर	के	प्राग्वट	,,	,,	गोमा ने	,,
३४—चंदेरी	के	सिन्धुड़ा	,,	,,	हीरा ने	,,
३५—मथुरा	के	डिडू	,,	,,	रावल ने	,,

आचार्य देव के ४५ वर्षों के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ

१—पीडाग्री	के	सुघड़	जाति के	शाह	गोमा ने भ० पद्मनाभ का	मन्दिर	करवाया
२—नागोली	के	श्रेष्ठि	"	"	पामा ने भ० पार्श्वनाथ का	"	"
३—देवग्राम	के	मल्ल	"	"	शोमा ने भ० महावीर "	"	"
४—नागपुर	के	कुम्मट	"	"	शादुल ने "	"	"
५—पद्मावती	के	प्राग्वट	"	"	संगण ने "	"	"
६—माण्डवपुर	के	"	"	"	भीमा ने भ० शान्तिनाथ	"	"
७—वैसाली ग्राम	के	"	"	"	मोमा ने "		"
८—राजपुर	के	श्रीमाल	"	"	चोखाने भ० पद्मप्रभु	"	"
९—घोडागाटी	के	सुचंति	"	"	चतरा ने भ० अजितनाथ	"	
१०—नागपुर	के	गुलेचा	"	"	खाजू ने भ० पार्श्वनाथ	"	
११—आघसीपुर	के	ताता	"	"	खाद ने "	"	"
१२—भद्रपुरी	के	मोसाला	"	"	मोडा ने "	"	"
१३—शिवपुरी	के	लघुश्रेष्ठि	"	"	गुणाढ ने भ० महावीर	"	"
१४—हासल ग्राम	के	देसरडा	"	"	पुरा ने "	"	"
१५—पुरणी ग्राम	के	श्रीमाल	"	"	मोख्य ने "	"	"
१६—चान्द्रपुर	के		"	"	नागड़ ने "	"	"
१७—हामरेलपुर	के	"	"	"	देपाल ने वीसविहरमान	"	"
१८—भरचार	के	पल्लीवाल	"	"	करमण ने चउवीस	"	"
१९—रणथंभोर	के	पातावत	"	"	बोहड़ ने भ० महावीर	"	"
२०—चन्द्रपुर	के	रांका	"	"	देपाल ने "	"	"
२१—श्रीकोटीग्राम	के	भमपाल	"	"	मोकरण ने भ० शान्तिनाथ		
२२—आघाट नगर	के	कुमट	"	"	जोगा ने भ० नेमिनाथ		"
२३—रत्नपुरा	के	चोपड़ा	"	"	खेतसा ने भ० आदीश्वर	"	"
२४—पल्लिकापुरी	के	नाहटा	"	"	फागु ने भ० धर्मनाथ	"	
२५—नगपुर	के	सुचंति	"	"	भाला ने भ० मल्लिनाथ	"	
२६—सोपार पट्टन	के	बप्पनागा	"	"	राजसी ने भ० शान्तिनाथ	"	
२७—पद्मपुर	के	करणावट		"	मोकल ने भ० महावीर	"	"
२८—चन्द्रावती	के	विंचट	"	"	सांगा ने "	"	"
२९—कुम्भीनगरी	के	सुरंड	"	"	चांपा ने "	"	"
३—दर्भपुर	के	सोलेलिया		"	पेथा ने भ० पार्श्वनाथ	"	
३१—वेनातट	के	भटेवरा	"	"	संगण ने "		"

आचार्यश्री के ४५ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—चन्द्रावती से प्राग्वट शाखा के	श्रीशत्रुंजय तीर्थ	का संघ	निकाला
२—उपकेशपुर से श्रेष्ठिवर्य शाखा के	"	"	"
३—नागपुर से चोरडिया जैसिंग ने	"	"	

४—सोपार पट्टन से श्रीमाल सागा ने " " "
५—ताम्बावती से राका नरसिंग ने " " "
६—चदेरी से करणावट लाधासोमा ने " " "
७—आघाट नगर से पारख आल्हण ने " " "
८—भवानीपुर से नाहटा जोगड ने " " "
९—खटकूप नगर से कनोजिया हरपाल ने " " "
१०—मथुरापुरी से सुरंट देदा काना ने " " "
११—मालपुर से सुचेति कुम्भा रामा ने " " "
१२—भद्रावती से प्राग्वट नाथा ठाकुरसी ने " " "
१३—शिवनगर से मंत्री कोरपाल ने " " "
१४—बनारसी से समदड़िया गजा ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला
१५—खंडेला नगर से श्रीमाल सूरजन ने श्री शत्रुञ्जय " "
१६—पाल्हिका से भटेवराथाना ने " " "
१७—कोरंटपुर से प्राग्वट राजा ने " " "
१८—पद्मावती से प्राग्वट कुपा ने " " "
१९—नागपुर के तांतेड गोमा ने स० ८४७ में दुष्काल पड़ा उसमें करोड द्रव्य व्यय कर देश वासी भाइयों एव निराधार पशुओं के प्राण बचाये।
२०—पाल्हिका के प्राग्वट रामाने स० ८५२ में बडा भारी दुष्काल पडा जिसमें करोड़ों द्रव्य व्यय किये
२१—उपकेशपुर के श्रेष्टि गोपाल ने स० ८६४ में भयकर दुष्काल पडा उसमें मनुष्यों को अन्न पशुओं को घास दिया।
२२—मेदनिपुर के जाघड़ा रावल ने एक वापी बनाई जिसमें एक लक्ष द्रव्य खर्च किया।
२३—ब्रह्मपुरी के श्रीमाल कर्मा की विधवा पुत्री धापी ने एक तलाव बनाया असख्य द्रव्य लगाया।
२४—जोगणीपुर के चडालिया नेणसी की माता ने एक तलाव एक वापि खुदाई जिसमें बहुत द्रव्य व्यय किया।
२५—उपकेशपुर के देसरड़ा भीमसिंह युद्ध में काम आया उसकी औरत शृँगारदे सती हुई छत्री पूजिजे।
२६—चन्द्रावती रामा जिस युद्ध में काम आया उसकी स्त्री भोली सती हुई छत्री माघ नौवी को।
२७—राजपुरा का मत्री राणक युद्धमें काम आया उसकी स्त्री सुगनी सती हुई छत्री वैशाख वद ३ मैला

इत्यादि वंशावलियों से संक्षिप्त से नामावली मात्र लिखी गई है।

सचेती कुल तिलक आप थे, पट्ट तेतालीसवा पाया था।
देव गुप्त सूरीश्वर जिन का, देवों ने गुण गाया था॥
भूपति भ्रमर चरण कमलों में, झुक झुक शीश नमाते थे।
विद्वता की धाक सुनकर, वादी सब घबराते थे॥

॥ इति भगवान् पार्श्वनाथ के पट्ट तेतालीसवें आचार्य देवगुप्त सूरीश्वर महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए॥
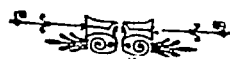
४४-आचार्य-श्रीसिद्धसूरि (९वें)

वीर मेष्ठिकुले तु हीरकसमः सिद्धाख्यसूरिर्महान् ।
दृष्टो वादि समूहमानमथनायाख्ये सुतीक्ष्णाङ्कुशः ॥
निस्यैव तु राजमण्डलमतः कृत्वा परास्तान् परान् ।
सम्याऽक्रम्यपराश धर्मविजयं सम्प्राप पूज्योऽभवत् ॥

परम पूज्य आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी म० जैन धर्म रूप शुभ्र गगन में सूर्य की भांति प्रकाश करने वाले प्रखर विद्वान् अतिशय प्रभावशाली, जिनधर्म प्रचारक आचार्य हुए। आपश्री ने विद्या सम्पादन करने में जितनी निपुणता रक्खी एवं कार्य कुशलता से काम लिया वैसे ही ज्ञान दान करने में, शास्त्राध्ययन करवाने में एवं तात्त्विक सिद्धान्तों के मम को समझाने में चातुर्यकला परिपूर्ण पाण्डित्य का परिचय दिया। ज्ञान दान की असाधारण उदारवृत्ति के साथ ही साथ तपश्चर्या रूप कठोर तपश्चरण को अङ्गीकार करने में भी आप कर्मठ महात्मा थे। तपस्तेजपुञ्ज के अतिशय अवर्णनीय प्रभाव से प्रभावित हुए सुरासुरदैत्यदानवेन्द्र आदि से आप पूजित पादपद्म थे। आपश्री के चरणारविन्द-मकरन्द के अभिलाषी मिलिन्द आपश्री की ज्ञान, तप रूप सौरभ से आकर्षित हो सदैव सेवा के लिये पिपासुओं की भांति उत्कण्ठित एवं लालायित रहते थे। तपश्चर्यादि संयमित जीवन की कठोरता के कारण कई विद्याओं को आप सिद्ध कर चुके थे। सारांश आपके पावन जीवन का अवतरण भी लोक कल्याणार्थ ही हुआ। पट्टावली निर्माताओं ने आपके जीवन के विषय में विशद् प्रकाश डाला है किन्तु ग्रन्थ विस्तार भय से मैं यहाँ संक्षेप में ही लिख देता हूँ।

मरुधर भूमि के अलंकार और स्वर्ग के सदृश शिवपुर नाम का एक असाधारण रमणीय नगर था। यहाँ के निवासी धनधान्य से बड़े ही समृद्धिशाली और तेजस्वी थे। व्यापार में तो वे इतने अग्रसर थे कि—देश विदेश आदि में उनका व्यापार प्रचुर परिमाण में चलता था। व्यापारिक उन्नति के मुख्यतया न्याय, सत्य और पुरुषार्थ रूप तीन साधन हैं। व्यापारिक अवस्था की प्रगतिवृद्धि के साथ ही साथ उक्त तीनों ही साधन प्रचुर परिमाण में वृद्धि गत हो रहे थे। अतः यहाँ के सब लोग सब तरह से सुखी एवं आनंदित थे। नगर के अन्दर व बाहिर कई जिन मन्दिर थे जिनके उच्च शिखरों के स्वर्णमय कलश अन्तरिक्ष में सहस्र रश्मि की प्रखर रश्मियों से प्रदर्शित हो चमकते थे। पवन की तीव्रता के साथ ही साथ मन्दिर की उत्तम पताकाएं फहराती हुई जैन धर्म के भावी अभ्युदय का सूचन कर रही थी। उस नगर के प्रमुख व्यापारियों में अधिक लोग उपकेशवंश के ही थे। इन्हीं में श्रेष्ठि गोत्रीय शाह लिम्बा नामक एक सेठ बड़ा ही विख्यात था। आपकी गृहदेवी का नाम रोली था। आप अपने न्यायोपार्जित शुभ द्रव्य का शुभ स्थानों में उपयोग कर अपने जीवन को सफल किया करते थे। तदनुसार आपने तीन बार तीर्थों की यात्रार्थ वृहत् संघ निकाल कर अक्षय पुण्यराशि का सम्पादन किया। आगत स्वधर्मी भाइयों को स्वर्णमुद्रिकाएं एवं बहुमूल्य वस्त्रों की पहिरावणी दी। सात बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये। याचकों को पुष्कल दान दिया। इस प्रकार और भी अनेक उपयोगी शुभ कार्य किये। स्वधर्मी भाइयों की ओर तो आपका सदैव लक्ष्य ही रहता था अतः जब कभी किसी जातीय बन्धुओं की विशेष परिस्थिति से आप अवगत होते उसे हर तरह से सहायता पहुँचाने का प्रयत्न

करते। उस समय के धर्माचार्यों का जातीय प्रेम विषयक उपदेश ही ऐसा मिलता व आप स्वय भी इस बात के पूरे अनुभवी थे कि स्वधर्मी बन्धु रूप उपवन हरा भरा गुल चमन रहा तो न्याति जाति समाज एव धर्म की भी उन्नति ही है। यही कारण था कि उस समय हमारे आत्म बन्धुओं में दरिद्रता ने आश्रय नहीं लिया था। वे लोग साधारण धार्मिक सामाजिक कार्यों मे लाखों रुपये व्यय कर देते थे किन्तु इतने में भी उनको किसी प्रकार की कल्पना नहीं होती।

शाह लिम्बा के सात पुत्र और पाँच पुत्रिया थी। उक्त पुत्रों में एक पूनड़ नाम का लड़का अत्यन्त तेजस्वी भाग्यशाली एव धीमान् था। आपकी वीरता, उदारता, गम्भीरता, धर्मज्ञता, परोपकार परायणता व स्व० पर की कल्याण भावनाओं की उत्कर्षता दिन दूनी रात चोगुनी बढ़ रही थी। देव, गुरु, धर्म पर तो शिशुकाल से ही आपकी दृढ़ श्रद्धा थी। तात्पर्य यह कि—लघुकर्मी जीव में होने वाले सब ही गुण पूनड़ में यथावत वर्तमान थे।

भाग्यवशात् एक समय भू-भ्रमन करते हुए आचार्यश्री देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली के साथ डिड्डूपुर नगर की ओर पधार रहे थे। डिड्डूपुर निवासियों को जब इस बात की खबर हुई तो उनके हृदयों में धर्म प्रेम का अपूर्व उत्साह प्रादुर्भूत हो गया। वे अत्यन्तोत्साह पूर्वक आचार्य श्री के नगर प्रवेश महोत्सव के कार्य में सलग्न हो गये। क्रमश सूरीश्वरजी के पदार्पण करने पर डिड्डूपुर श्री सघ ने पुष्कल द्रव्य व्यय कर जैनेतर जन समाज को आश्चर्य चकित करने वाला उत्साह प्रद नगर प्रवेश महोत्सव किया। स्थानीय मन्दिरों के दर्शन के पश्चात् आचार्यश्री ने आगत जन समाज को प्रारम्भिक माङ्गलिक धर्म देशनादि पश्चात् सभा विसर्जित हुई। सूरीश्वरजी की व्याख्यानशैली की अपूर्वता ने जन समाज को अपनी ओर इतना आकर्षित किया कि व्याख्यान स्थल व्याख्यान के समय बिना किसी भेदभाव के समाधि पूर्वक खचाखच भर जाता था। जैन और जैनेतर सब ही व्याख्यान श्रवण के लिये उमड़ पडते।

एक दिन प्रसङ्गवशात् आचार्यश्री ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि—महानुभावों! जीव अनादि काल से इस संसार चक्र में चक्रवत परिभ्रमन करता आरहा है स्वकृत शुभाशुभ कर्मों के अनुसार अरहट्ट माल की भाति सुख एव दु'ख का विचित्र अनुभव कर रहा है। कभी शुभ कर्मों की प्रबलता से देव ऋद्धि के अनुपम सुख का आस्वादन करता है तो कभी पाप कर्मों की जटिलता से नरक की नारकीय वेदना का। इस प्रकार सुख दु'ख मिश्रित विचित्र अवस्थाओं में इस जीव ने अनन्त जन्म धारण किये हैं। कहा है—

> एगया देवलोए सु नरएसु वि एगया। एगया आसुर काय अहा कम्मेहिं गच्छइ ॥
> एव भव ससारे ससरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं। जीवो पमाय बहुलो समय गोयम मा पमायए ॥

अर्थात्—यह जीव स्वोपार्जित कर्मों के वशीभूत कभी देव लोक में तो कभी नरक में कभी स्वर्ग के अनुपम देव रूप में तो कभी राक्षसीय रूप में प्रमाद वश ८४ लक्ष जीव योनि का पात्र बनता रहता है अत धर्म कार्य में या आत्म श्रेय में क्षण मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। धर्मकार्य में मन को दृढ़ रखते हुए वीतराग की आज्ञा का आराधना ही इस लोक और परलोक के लिये कल्याण कारी व भव भ्रमन से मुक्त करने वाला है। वीतराग के मार्ग की आराधना करने में भी उत्तम सामग्री की आवश्यकता है वह सामग्री भी अनन्तकाल परिभ्रमन करते हुए कभी पुन्योदय से ही मिलती है। अत आज प्राप्त सामग्री का सदुपयोग करने में ही जीवन के अभीष्ट सिद्धि की सार्थकता है। यदि सुदुर्लभ धर्म करने योग्य उत्तम साधनों के हस्तगत होने पर भी मोक्ष मार्ग की आराधना न की जाय तो पुन पुन' ऐसी सामग्री मिलना बहुत कठिन है। इस मानव देह की अलोकिकता के लिये विशेष कहने की आवश्यकता नहीं हैं। आप स्वय ही मनीषी एव विचारज्ञ हैं। अस्तु

४४-आचार्य-श्रीसिद्धसूरि (९वें)

वीर श्रेष्ठिकुले तु हीरकसमः सिद्धाख्यसूरिर्महान् ।
दक्षो वादि समूहमानमथनामार्गे सुदीक्षाङ्कुशः ॥
नित्यमेव तु राजमण्डलगतः कृत्वा परास्तान् परान् ।
तस्माऽऽसन्नपरान् धर्मविजये तस्माय पूज्योऽभवत् ॥

परम पूज्य आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी म० जैन धर्म रूप शुभ्र गगन में सूर्य की भांति प्रकाश करने वाले प्रखर विद्वान् अतिशय प्रभावशाली, जिनधर्म प्रचारक आचार्य हुए। आपश्री ने विद्या सम्पादन करने में जितनी निपुर्णता दक्षता एवं कार्य कुशलता से काम लिया वैसे ही ज्ञान दान करने में, शास्त्रावलम्बन करवाने में एवं तात्त्विक सिद्धान्तों के मर्म को समझाने में चातुर्यकला परिपूर्ण पाण्डित्य का परिचय दिया। ज्ञान दान की अत्यन्त उदारवृत्ति के साथ ही साथ तपश्चर्या रूप कठोर तपाचरण को अङ्गीकार करने में भी आप कर्मठ महात्मा थे। तपस्तेजपुञ्ज के अचिन्त्य अवर्णनीय प्रभाव से प्रभावित हुए सुरासुरदेवेन्द्रनरेन्द्र आदि से आप पूजित पादपद्म थे। आपश्री के चरणारविन्द-मकरन्द के अभिलाषी मिलिन्द आपश्री की ज्ञान, तप रूप सौरभ से आकर्षित हो सदैव सेवा के लिये पिपासुओं की भांति उपस्थित एवं लालायित रहते थे। तपश्चर्यादि संयमित जीवन की कठोरता के कारण कई विद्याओं को आप सिद्ध कर चुके थे। सारांश आपके पावन जीवन का अवतरण ही लोक कल्याणार्थ ही हुआ। पट्टावली निर्माताओं ने आपके जीवन के विषय में विशद् प्रकाश डाला है किन्तु ग्रन्थ विस्तार भय से मैं यहाँ संक्षेप में ही लिख देता हूँ।

मरुधर भूमि के अलंकार और स्वर्ग के सदृश शिवपुर नाम का एक अत्यन्त रमणीय नगर था। यहाँ के निवासी धनधान्य से बड़े ही सम्पत्तिशाली और ऋद्धवान् थे। व्यापार में तो वे इतने अग्रसर थे कि—देश विदेश आदि में उनका व्यापार प्रचुर परिमाण में चलता था। व्यापारिक उन्नति के मुख्यतया न्याय, सत्य और पुरुषार्थ रूप तीन साधन हैं व्यापारिक अवस्था की समुन्नति के साथ ही साथ उक्त तीनों ही साधन प्रचुर परिमाण में वृद्धि गत हो रहे थे। अतः यहाँ के सब लोग सब तरह से सुखी एवं आनन्दित थे। नगर के अन्दर व बाहिर कई जिन मन्दिर थे जिनके उच्च शिखरों के स्वर्णमय कलश मध्याह्न में सहस्र रश्मि की प्रखर रश्मियों से प्रदर्शित हो चमकते थे। पवन की तीव्रता के साथ ही साथ मन्दिर की उत्तम पताकायें फहराती हुई जैन धर्म के भावी अभ्युदय का सूचन कर रही थीं। उस नगर के प्रमुख व्यापारियों में अधिक लोग उपकेशवंश के ही थे। उन्हीं में श्रेष्ठि गौत्रीय शाह लिम्बा नामक एक सेठ बड़ा ही विख्यात था। आपकी गृहदेवी का नाम रोली था। आप अपने न्यायोपार्जित शुभ द्रव्य का शुभ स्थानों में उपयोग कर अपने जीवन को सफल किया करते थे। तदनुसार आपने तीन बार तीर्थों की यात्रार्थ वृहत् संघ निकाल कर अक्षय पुण्यराशि का सम्पादन किया। आगत स्वधर्मी भाइयों को स्वर्णमुद्रिकायें एवं बहुमूल्य वस्त्रों की पहिरावणी दी। सात बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये। याचकों को पुष्कल दान दिया। इस प्रकार और भी अनेक जनोपयोगी शुभ कार्य किये। स्वधर्मी भाइयों की ओर तो आपका सदैव लक्ष्य ही रहता था अतः जब कभी किसी जातीय बन्धुओं की विशेष परिस्थिति से आप अवगत होते उसे हर तरह से सहायता पहुँचाने का प्रयत्न

करते । उस समय के धर्माचार्यों का जातीय प्रेम विषयक उपदेश ही ऐसा मिलता व आप स्वय भी इस बात के पूरे अनुभवी थे कि स्वधर्मी वन्धु रूप उपवन हरा भरा गुल चमन रहा तो न्याति जाति समाज एव धर्म की भी उन्नति ही है । यही कारण था कि उस समय हमारे आत्म बन्धुओं में दरिद्रता ने आश्रय नहीं लिया था । वे लोग साधारण धार्मिक सामाजिक कार्यों में लाखों रुपये व्यय कर देते थे किन्तु इतने में भी उनको किसी प्रकार की कल्पना नहीं होती ।

शाह लिम्बा के सात पुत्र और पाँच पुत्रियां थी । उक्त पुत्रों में एक पूनड़ नाम का लड़का अत्यन्त तेजस्वी भाग्यशाली एव धीमान् था । आपकी वीरता, उदारता, गम्भीरता, धर्मज्ञता, परोपकार परायणता व स्व० पर की कल्याण भावनाओं की उत्कर्षता दिन दूनी रात चोगुनी बढ़ रही थी । देव, गुरु, धर्म पर तो शिशुकाल से ही आपकी दृढ श्रद्धा थी । तात्पर्य यह कि—लघुकर्मी जीव में होने वाले सब ही गुण पूनड में यथावत् वर्तमान थे ।

भाग्यवशात् एक समय भू-भ्रमन करते हुए आचार्यश्री देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली के साथ डिड्डपुर नगर की ओर पधार रहे थे । डिड्डपुर निवासियों को जब इस बात की खबर हुई तो उनके हृदयों में धर्म प्रेम का अपूर्व उत्साह प्रादुर्भूत हो गया । वे अत्यन्तोत्साह पूर्वक आचार्य श्री के नगर प्रवेश महोत्सव के कार्य में सलग्न हो गये । क्रमश सूरीश्वरजी के पदार्पण करने पर डिड्डपुर श्री सघ ने पुष्कल द्रव्य व्यय कर जैनेतर जन समाज को आश्चर्य चकित करने वाला उत्साह प्रद नगर प्रवेश महोत्सव किया । स्थानीय मन्दिरों के दर्शन के पश्चात् आचार्यश्री ने आगत जन समाज को प्रारम्भिक माङ्गलिक धर्म देशनादि पश्चात् सभा विसर्जित हुई । सूरीश्वरजी की व्याख्यानशैली की अपूर्वता ने जन समाज को अपनी ओर इतना आकर्षित किया कि व्याख्यान स्थल व्याख्यान के समय विना किसी भेदभाव के समाधि पूर्वक खचाखच भर जाता था । जैन और जैनेतर सब ही व्याख्यान श्रवण के लिये उमड़ पड़ते ।

एक दिन प्रसङ्गवशात् आचार्यश्री ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि—महानुभावों ! जीव अनादि काल से इस ससार चक्र में चक्रवत परिभ्रमन करता आरहा है स्वकृत शुभाशुभ कर्मों के अनुसार अरहट्ट माल की भांति सुख एवं दु'ख का विचित्र अनुभव कर रहा है । कभी शुभ कर्मों की प्रबलता से देव ऋद्धि के अनुपम सुख का आस्वादन करता है तो कभी पाप कर्मों की जटिलता से नरक की नारकीय वेदना का । इस प्रकार सुख दु'ख मिश्रित विचित्र अवस्थाओं में इस जीव ने अनन्त जन्म धारण किये हैं । कहा है—

> एगया देवलोए सु नरएसु वि एगया । एगया आसुर काय अहा कम्मेहिं गच्छइ ॥
> एव भव ससारे ससरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं । जीवो पमाय बहुलो समय गोयम मा पमायए ॥

अर्थात्—यह जीव स्वोपार्जित कर्मों के वशीभूत कभी देव लोक में तो कभी नरक में कभी स्वर्ग के अनुपम देव रूप में तो कभी राक्षसीय रूप में प्रमाद वश ८४ लक्ष जीव योनि का पात्र बनता रहता है अत धर्म कार्य में या आत्म श्रेय में क्षण मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । धर्मकार्य में मन को दृढ़ रखते हुए वीतराग की आज्ञा का आराधना ही इस लोक और परलोक के लिये कल्याण कारी व भव भ्रमन से मुक्त करने वाला है । वीतराग के मार्ग की आराधना करने में भी उत्तम सामग्री की आवश्यकता है वह सामग्री भी अनन्तकाल परिभ्रमन करते हुए कभी पुन्योदय से ही मिलती है । अत आज प्राप्त सामग्री का सदुपयोग करने में ही जीवन के अभीष्ट सिद्धि की सार्थकता है । यदि सुरदुर्लभ धर्म करने योग्य उत्तम साधनों के हस्तगत होने पर भी मोक्ष मार्ग की आराधना न की जाय तो पुन पुन ऐसी सामग्री मिलना बहुत कठिन है । इस मानव देह की अलोकिकता के लिये विशेष कहने की आवश्यकता नहीं हैं । आप स्वय ही मनीषी एवं विचारज्ञ हैं । अस्तु

मुमुक्षुओं का तो सर्वप्रथम यही कर्तव्य हो जाता है कि वे मोक्षमार्ग की मुख्यप्रकारेण आराधना करे। मोक्षमार्ग की आराधना या चारित्रवृत्ति की प्रहणता कोई असाध्य वस्तु नहीं है। इसमें तो केवल भावों की ही मुख्यता है। सांसारिक विषय कषायों की ओर से मुंह मोड़कर आत्मोन्नति की ओर लक्ष्य दौड़ाने से आत्म श्रेय का अनुपमानन्द सम्पादन किया जा सकता है। आप लोग जितना कष्ट धनोपार्जन एवं कौटुम्बिक पालन पोषण व रक्षण के लिये उठाते हैं उसमें से एक अंश जितना कष्ट आत्मोन्नति के कार्य में उठाया करें तो मोक्षमार्ग की आराधना बहुत ही सुगमता पूर्वक की जा सकती है। शास्त्रकारों ने फरमाया है—

नाणं च दंसणं चेव चारित्तं च तवोतहा। एय मग्गमणुपत्ता जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥

अर्थात्—ज्ञान दर्शन चारित्र और तप इन चारों की आराधना करने से मोक्षमार्ग की आराधना होती है। यदि मास के एक बार भक्तों की जघन्य आराधना भी की जाय तो आराधक जीव १५ भवों में तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने उपस्थित जन समाज को वैराग्यमय एवं धार्मिक उपदेश दिया कि सभा में आये हुए सभी लोगों के हृदय में वैराग्य की लहरें हिलोरें खाने लग गई। उन्हें संसार असार एवं दुःखा स्पद ज्ञात होने लगा। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से सब लोगों के विचार तो विचारों में ही विलीन होगये पर शा० सिम्भा के पुत्र पूनड़ के हृदय पर उसका गम्भीर असर हुआ। उस क्षण मात्र भी संसार में रहना भयानक ज्ञात होने लगा। वह सोचने लगा—सूरिजी का कहना अक्षरशः सत्य है। यदि प्राप्त स्वर्णावसर का सदुपयोग मोक्ष मार्ग की आराधना में न किया जाय तो जीवन की सार्थकता या विशेषता ही क्या है? ऐसे अवसर पुण्य की प्राप्ति प्रबलता से ही सम्भव है अतः समय को सांसारिक विषय कषायों में खो देना अनुचित है। इस प्रकार के वैराग्य की उत्कट भावनाओं में आचार्यश्री का व्याख्यान समाप्त होगया। सब लोगों ने जय ध्वनि के साथ अपने २ घरों की ओर प्रस्थान किया। पूनड़ भी विचारों के प्रवाह में बहता हुआ अपने घर गया पर उसके मुख पर प्रत्यक्ष झलकती हुई वैराग्य की स्पष्ट रेखा छिपी नहीं रही। उसने जाते ही माता पिताओं से दीक्षा के लिये आज्ञा मांगी। पर वे कब चाहते थे कि गार्हस्थ्य जीवन का सम्पूर्ण भार वहन करने वाला पूनड़ उन सबों को छोड़ कर बातों ही बातों में दीक्षा लेले। उन्होंने पूनड़ को मोह जनक विचारों से संसार में रखने का बहुत प्रयत्न किया पर जिसको आत्मस्वरूप का सद्ज्ञान हो गया वह किसी भी प्रकार प्रलोभन से भी संसार रूप कारागृह में नहीं रह सकता है। पूनड़ का भी यही हाल हुआ। पानी में लकीर खेंचने के समान माता पिताओंके समझाने के सकल प्रयत्न निष्फल हुए। पूनड़ के वैराग्य की बात सारे नगर भर में फैल गई। कई महानुभाव तो पूनड़ के साथ दीक्षा लेने को भी तय्यार हो गये। सूरिजी के त्याग वैराग्य मय व्याख्यान वाणी ने वैरागियों के वैराग्यांकुर को और प्रस्फुरित एवं विकसित कर दिया। आखिर वि० सं० ८७० माघ शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन शा० सिम्भा के महामहोत्सव पूर्वक वैरागी पूनड़ आदि १६ नरनारियों को सूरिजी ने भगवती जैन दीक्षा दे पूनड़ का नाम कल्याणकुम्भ रख दिया! मुनि कल्याणकुम्भ ने भी एक वर्ष पर्यन्त गुरुकुलवास में रह कर वर्तमान साहित्य का गहरा अध्ययन किया। आचार्य पद योग्य सर्वगुण आचार्यश्री की सेवा में रहकर सम्पादित कर लिये। अतः श्रीदेवगुप्तसूरि ने अपने अन्तिम समय में कल्याण कुम्भ मुनि को उपकेशपुर में श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरि पदार्पण कर आपका नाम परम्परानुसार सिद्धसूरि रख दिया। पट्टावलीकारों ने आपके सूरिपद का समय वि० सं० ८८२ माघ शुक्ला पूर्णिमा लिखा है।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महान् प्रतिभाशाली उग्रविहारी, धर्मप्रचारक आचार्य हुए। आपके त्याग, वैराग्य की उत्कटता एवं भावों की उच्चता का जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता था। आपके शासन समय में चैत्यवास की शिथिलता ने क्रम क्रम आरम्भ कर दिया था पर आपके हितकारी उपदेश से एवं क्रियाओं

की कठोरता से उनकी शिथिलता में आशातीत सुधार हुआ। आप कर्म सिद्धान्त के पूर्ण मर्मज्ञ थे अत आप समझते थे कि—जिस जीव का जितना क्षयोपशम हुआ है वह जीव उतना ही निर्मल चारित्र पाल सकेगा। इस विषय में प्रोपेगण्डा कर साधु समाज में छल, कपट, मायामिथ्यात्व का वर्धन करना तो प्राप्त शिथिलता से भी अधिक घातक एवं समाजोन्नति का बाधक है। अस्तु,

जहां तक किसी व्यक्ति से शासन का अहित न होता हो वहां तक उसे सर्वथा हेय नहीं समझना चाहिये। यदि उन्हें क्रियाओं की शिथिलता के कारण समाज से पृथक् कर दिया जाय तो शासन की उन्नति के बजाय अवनति ही की विशेष सम्भावना है। समाज का एक दल उन्हें अवश्य ही मान एवं प्रतिष्ठा से सम्मानित करेगा और इस तरह हमारी अदूरदर्शिता के कारण सामज में वैमनस्य एवं कलह का भीषण ताण्डव नृत्य दृष्टिगोचर होने लगेगा। अत शासन के एक अङ्ग को अपना कर रखना ही भविष्य के लिये हितकर है। दूसरी बात चैत्यवासियों का कई राजा महाराजाओं पर प्रभाव है और जैनधर्म की उन्नति में इनका विशेष सहयोग भी है अत इनके साथ अच्छा वर्त्ताव रखने से एक तो जैन संघ का संगठन दृढ़-मजबूत रहेगा और दूसरा राजकीय सत्ताओं के आधार पर चैत्यवासियों से जैनधर्म का प्रचार बहुत ही सुगमता पूर्वक कराया जा सकेगा। आपसी प्रेम एवं एक्यता की सुदृढ़ शक्ति के कारण वादियों का सुसंगठित आक्रमण भी हमारे शासन बल को विच्छिन्न करने में समर्थ नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार के आपके निर्मल विचार शासन के हित साधन में सदा ही उपकारी सिद्ध हुए। सूरीश्वरजी म० इस प्रकार वात्सल्य भाव को अपनाये हुए भूमण्डल में इधर उधर धर्म प्रचारार्थ परिभ्रमण करने लगे।

सालेचा जाति—आचार्यश्री सिद्धसूरिजी म० विहार करते हुए क्रमश खेटकपुर नगर में पधारे। वहा पर आपश्री का व्याख्यान क्रम प्रति दिन के भांति प्रारम्भ ही था। जैन व जैनेतर समाज आचार्यश्री की रोचक प्रतिपादन शैली से आकर्षित हो सदैव विना किसी विघ्न के व्याख्यान श्रवणक्रम प्रारम्भ ही रखती।

चालुक्य वंश का वीर सालू भी एक बड़ा ही भजनी सरदार था। वह निरन्तर भगवद् भक्ति या भजन में ही मस्त रहता। उसने भी जब आचार्यश्री के व्याख्यान की प्रशंसा सुनी तो भगवद्भक्ति का अनुरागी प्रेमवश आचार्यश्री का व्याख्यान श्रवण करने नियम पूर्वक आने जाने लगा। एक दिन प्रसङ्गत सूरिजी के व्याख्यान में भगवद् भक्ति का प्रसङ्ग चल पड़ा। आये हुए विषय का स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यश्री ने ध्येय व ध्यान का विशद विवेचन किया। विषय का विस्तार करते हुए आपने फरमाया कि-ध्यान का लक्ष्य ध्येय पर ही अवलम्बित है। कई भद्रिक महानुभाव ध्येय की ओर ध्यान नहीं देते हुए एकमात्र भजनादि में ही संलग्न रहते हैं पर ध्येय के साङ्गोपाङ्ग स्वरूप को पहिचाने विना वे भजन आदि धार्मिक कृत्य उस तरह की इष्ट सिद्धि को करने वाले नहीं होते जैसे कि ध्येय को पहिचान कर ध्यान करने वालों के कार्य होते हैं। अत ध्यान अथवा भजनादि पारमार्थिक-आत्मोन्नति के कार्य ध्येय-लक्ष्य बिन्दु को स्थिर करके ही किये जाने चाहिये। उदाहरणार्थ-एक किसी व्यक्ति को सौ कोस दूर नगर को जाना है। वह सौ कोस को पार करने के लिये प्रति दिन १५-२० कोस चलता है पर उसको नगर की निर्दिष्ट दिशा व स्थान का निश्चित ज्ञान नहीं होने के कारण वह अधिक चलने वाला होने पर भी इत उत मार्ग से स्खलित होने के कारण भटकता फिरेगा तब एक आदमी इसके विपरीत एक या आधा कोस ही प्रति दिन चलता है पर वह निर्दिष्ट नगर के ठीक रास्ते से प्रयाण करता है तो अवश्य ही कुछ दिनों के पश्चात् विना किसी विघ्न के वह अपने लक्ष्य बिन्दु नगर को प्राप्त कर लेगा। चलने की अपेक्षा उसका परिश्रम अत्यन्त कठोर व कई गुना ज्यादा है तब लक्ष्य बिन्दु की निश्चिन्तता के कारण अल्प परिश्रमी भी स्वइष्ट सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। अत मनुष्य का भी यह कर्तव्य है कि वह पहले अपने ध्येय को (जिसका ध्यान करता है उसको) पहिचान ले इत्यादि। राव सेलु के यह बात जच गई अत वह किसी समय आचार्यश्री के पास में आकर पूछने लगा-महात्मन!

आपने अपने व्याख्यान में ध्येय व ध्यान के विषय में जो कुछ फरमाया था उसे मैं अच्छी तरह से समझ गया हूँ। सूरिजी ने भी ईश्वर के सत् स्वरूप को समझाते हुए कहा राजजी !

प्रत्यक्षतो न भगवान् ऋषभो न विष्णु रालोक्यते न च हरो न हिरण्य गर्भः
तेषां स्वरूप गुणमागम सम्प्रभावात् । ज्ञात्वा विचार यत कोऽत्र परापवादः ॥

अर्थात्—इस समय प्रत्यक्ष में न तो भगवान् ऋषभ आदि देव हैं और न भगवान् ब्रह्मा विष्णु, महादेव ही हैं, पर उनके जीवन के विषय को आगमों से तथा उनकी आकृति (मूर्ति) से उनकी परिचान की जा सकती है कि ईश्वरत्व गुण किस देव में है ? जिस देव में राग, द्वेष मोह प्रेम क्रीड़ा इच्छादि कोई भी विकार नहीं वही सच्चा देव है। उनकी ही भक्ति, भजन, उपासना करने से जीवों का कल्याण होता है। इस तरह ईश्वर के सच्चे गुणों का आचार्यश्री ने खूब ही स्पष्टीकरण किया।

आचार्यश्री का कहना राव साद् के समझ में आगया। उसने अपने कुटुम्ब सहित जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। अतः प्रभृति वह वीतराग देव का अनन्य भक्त व परमोपासक बन गया। राव साद् जैसे द्रव्य सम्पन्न था वैसे पुत्रादि विशाल परिवार का स्वामी भी था। उसके पाँच सुयोग्य वीर पुत्र थे। राव साद् को आचार्यश्री के व्याख्यान में इतना रस आता था कि वह आचार्यश्री के साथ धर्मालाप करने में अपने बहुत से समय को लगा देता था। धर्म प्रेम के पक्के रंग से वह रंगा गया। जैन धर्म के प्रति उसकी अपूर्व श्रद्धा एवं दृढ़ अनुराग हो गया। धर्म का प्रभाव तो उस पर इतना पड़ा कि—राव साद् ने भगवान् ऋषभदेव का एक मन्दिर बनवाया। शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के लिये संघ निकाल कर स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी दे अपने जीवन को कृतार्थ किया। क्रमशः सब तीर्थों की यात्रा कर अतुल पुण्य सम्पादन किया। इस तरह राव साद् ने अपने जीवन में अनेक धर्म कार्य किये। राव साद् की सन्तान साखेचा जाति के नाम से पुकारी जाने लगी। इस घटना का समय वंशावलियों में वि० सं० ९१२ का लिखा है। साखेचा जाति की वंशावली बहुत ही विस्तार पूर्वक मिलती है—यथा—

इनके वैवाहिक सम्बन्ध के लिये वंशावलीकार कहते हैं कि राजपूतों और उपकेशवंशियों दोनों के ही साथ इनका विवाह सम्बन्ध था।

मेरे पास जो वंशावलियें वर्तमान हैं उनसे पाया जाता है कि सालेचा जाति के लोग व्यापारादि के कारण बहुत से ग्रामों में फैल गये थे। वोहरगतें करने से इनको सालेचा वोहरा भी कहते हैं। इस जाति के उदार नररत्नों ने अनेक ग्रामों में मन्दिर बनवाये। कई बार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाले। स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी में पुष्कल द्रव्य देकर वात्सल्य भाव प्रकट किया। याचकों को तो इतना दान दिया कि उन लोगों ने आपके यशोगान के कई कवित्त एवं गीत बनाकर आपकी धवल कीर्ति को अमर बना दिया।

तुंगड गौत्र—बाघमार—बाघचार जाति—तुंगी नगरी में सुहड़ राजा राज्य करता था। वह ब्राह्मण धर्म का कट्टर उपासक था। उसने ब्राह्मणों के उपदेश से एक यज्ञ करने का निश्चय किया था, और शुभ मुहूर्त में यज्ञ का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उस यज्ञ के निमित्त हजारों मूक पशु एकत्रित किये गये थे। पुण्यानुयोग से उसी समय आचार्यश्री सिद्धसूरिजी भू-भ्रमण करते हुए तुंगी नगरी में पधार गये। जब आपको मालूम हुआ कि यहाँ यज्ञ में हजारों जीवों की बलि दी जायगी तब तो आपका हृदय पशुओं की करुणाजनक स्थिति से भर गया। आप विना किसी संकोच के राजा को अहिंसा धर्म का प्रतिबोध देने के लिये राज सभा में पधार गये। राज सिंहासन से उठ कर वन्दन किया सूरिजी ने धर्मलाभ आशीर्वाद देकर फरमाने लगे कि—राजन्! महान पवित्र दया के सागर स्वरूप अनेक महापुरुषों की खान—इक्ष्वाकु (सूर्य) वंश में उत्पन्न होकर भी अनर्थ परिपूर्ण यह क्या जघन्य कार्य कर रहे हैं?

राजा—महात्मन्! वर्षा के अभाव से गत वर्ष यहाँ दुष्काल था व इस वर्ष भी वर्षा के चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं अतः ब्राह्मणों के कहने से देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये ही यह सब यज्ञ-प्रपञ्च किया जा रहा है। देवी देवताओं के सन्तुष्ट होने पर वर्षा निर्विघ्न हो जायगी अतः सकल जन समुदाय में शान्ति एवं आनन्द का नवीन सौख्य लहराने लगेगा।

सूरिजी—राजन्! यह शान्ति का उपाय नहीं पर इस भव और पर भव में अशान्ति का ही कारण है। दुनियाँ को तो पुन्य पाप आदि जैसे शुभाशुभ कर्मों का उदय होगा—भोगना पड़ेगा पर इस जघन्य कार्य से आपको तो इन जीवों का बदला अवश्य देना पड़ेगा। भला—ये तृण भक्षण कर अपने प्यारे प्राणों की रक्षा करने वाले निरपराधी मूक प्राणी यज्ञ में तड़फ २ कर मरते हुए आपको कैसा आशीर्वाद देवेंगे? इनकी दुराशीश से आपका इस भव परभव में क्या परिणाम होगा? आपको जीव हिंसा रूप कटुफल का अनुभव नारकीय असह्य यातनाओं द्वारा करना पड़ेगा इसका भी आप जरा विचार कीजिये। इस प्रकार सूरिजी ने हिंसा की भीषणता का व नारकीय जीवन की करालता का साक्षात् चित्र राजा के हृदय पटल पर अङ्कित कर दिया। आचार्यश्री के द्वारा कहे गये इन मार्मिक शब्दों ने राजा के हृदय में दया के अङ्कुर अङ्कुरित कर दिये। अतः राजा ने आचार्यश्री के वचनों को हृदयङ्गम करते हुए कहा—महात्मन्! यह यज्ञ तो मेरे द्वारा प्रारम्भ कराया जा चुका है अतः पूरा भी करवाना पड़ेगा पर भविष्य में अबसे जीव हिंसा रूप यज्ञ कभी नहीं करूंगा। मैं आपके सामने ईश्वर की साक्षी पूर्वक उक्त प्रतिज्ञा करता हूँ।

सूरिजी—राजन! हमें तो इसमें किञ्चित् भी स्वार्थ नहीं है हम तो एक मात्र आपके हित के लिए कहते हैं कि परभव में भी आपको किसी प्रकार की यातना का अनुभव नहीं करना पडे। आप स्वयं अपनी बुद्धि से विचार सकते हैं कि जितने जीवों को इस समय आप यज्ञ के लिये मरवा रहे हैं वे ही जीव भवान्तर में आपके शत्रु हो आपके प्राणों के हर्ता बनेंगे। आपको भी इसी तरह की बुरी मौत से मरना पड़ेगा। इस प्रकार आचार्यश्री ने परभवों के दुःखों का साक्षात् चित्र राजा के नयनों के समक्ष चित्रित कर दिया। सूरीश्वरजी के उपदेश से प्रभावित राजा ने किसी की सलाह लिये बिना ही सब पशुओं को छोडकर अभयदान

दे दिया। वे बेचारे निरपराधी मूक जीव भी आचार्यश्री का उपकार मानते हुए व हुलीपुर नरेश को सहर्ष पूर्वक आशीर्वाद देते हुए चले गये और अपने २ बाल बच्चों से उत्सुकता पूर्वक मिले।

जब यह समाचार स्वार्थलोलुपी ब्राह्मणों को मिला तो वे एक दम निस्तेज हो गये। उनके होश हवास उड़ गये। उनकी लम्बी चौड़ी सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फिर गया। वे सबके सब उद्विग्न चित्त हो राजा के पास आये और कहने लगे—नरेश ! आपने नास्तिकों के कहने में आकर यह क्या अनर्थ कर डाला ? गत वर्ष तो दुष्काल पड़ा ही था किन्तु इस वर्ष भी दुष्काल पड़ गया तो सब दुनियाँ ही यम का कवल बन जायगी। वर्षा देवताओं के रुष्ट होने पर तो न मालूम क्या २ दुःख सहन करने पड़ेंगे। राजन् ! किसी क्षुधातुर व्यक्ति के सामने षट्रस संयुक्त भोजन का थाल रखकर पुनः खींच लेना कितना अनुचित एवं भयङ्कर है ? आपने भी तो यही कार्य यज्ञ का प्रारम्भ कर देवी देवताओं के लिये किया है। प्रभो ! अभी तक तो कुछ भी नहीं बिगड़ा है। अभी भी आप पशुओं को मंगवा कर देवताओं को यज्ञ विधि द्वारा देकर जन समाज को सुखी बना सकते हैं। यह सुपोषित परम्परागत धर्म भी है। राजन् ! आपके पूर्वजों ने भी ऐसा ही किया व आपको भी ऐसा ही करना चाहिये।

ब्राह्मणों ने हर एक प्रकार से राजा को समझाने में कमी नहीं रक्खी। भावी भय व यज्ञ से होने वाले सुख रूप प्रलोभन पाश में जकड़ कर स्वस्वार्थ साधना का उन्होंने उत्कट प्रयोग किया पर अहिंसा के रंग में रंगे हुए राजा पर उनके वचनों का किञ्चित् भी असर नहीं हुआ। राजा के हृदय में तो अहिंसा भगवती ने अपना अविचल आसन जमा लिया था अतः उसने साफ शब्दों में कह दिया—पशुवध रूप यज्ञ करवा कर भयङ्कर पाप राशि का उपार्जन करना मुझे इष्ट नहीं है। कुछ भी हो ऐसा दुष्ट-निन्दनीय कार्य अब मेरे से नहीं किया जा सकेगा। राजा का इस प्रकार एक दम निराशाजनक प्रत्युत्तर सुनकर उद्विग्न मन हो ब्राह्मण स्व स्थान चले गये।

इधर राजा ने सूरिजी को बुलाकर कहा—पूज्य महात्मन् ! ब्राह्मण अप्रसन्न हो चले गये—इसकी तो मुझे किञ्चित् भी चिन्ता नहीं पर वर्षा जल्दी होनी चाहिये अन्यथा ब्राह्मण लोग मेरे विरुद्ध बहका कर कहीं प्रजा उपद्रव राज्य में नहीं खड़ा करदें ? भगवन् ! दया धर्म के प्रताप से राज्य भर में वर्षा वगैरह के कारण प्रजा का हर तरह से सुख चैन रहा तो मैं आपका शिष्य बनकर तन, मन, धन से पवित्र जैन धर्म की आराधना करूँगा। इस पर सूरिजी ने कहा—राजन् ! धर्म एक तरह का कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न है। विशुद्ध श्रद्धा पूर्वक धर्म की आराधना करने से वह हर एक अभिलषित अभिलाषा को पूर्ण करने वाला व जन्म, मरण के भयंकर चक्र को मिटाकर मोक्ष के शाश्वत् सुख को देने वाला है। इस प्रकार धर्म के महत्व को बहुत ही गम्भीरता पूर्वक राजा को समझाते रहे। राजा भी आचार्यश्री के वचनों पर विश्वास कर वंदन कर स्वस्थान चला आया।

रात्रि में जब संस्तारा पौरुषी भणाकर आचार्यश्री ने शयन किया तो विविध प्रकार के तर्क वितर्कों की उलझन में उलझे हुए सूरिजी को निद्रा नहीं आई। सोते सोते ही विचार करने लगे—राजा धर्म सिद्धान्त से सर्वथा अनभिज्ञ है। अतः इसका निर्णय स्वयं देवी के द्वारा ही करना चाहिये। बस सूरिजी एकाग्र चित्त से देवी का ध्यान करने लगे। देवी सच्चायिका ने भी अवधिज्ञान से आचार्यश्री के मनोनिहित भावों को देखा तो तत्काल परोक्ष रूप में आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित हो वंदन किया। आचार्यश्री ने भी धर्मलाभ देते हुए अपने आगमन का कारण पूछा तो देवी ने कहा—पूज्य गुरुदेव ! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। आपकी धर्म रक्षा बड़ी अनवरत है। वर्षा तो आज से आठवें दिन होने वाली है और इसका यश श्रेय भी आपको ही मिलने वाला है। देवी के इन वचनों से आचार्यश्री को पूर्ण सन्तोष होगया। देवी भी आचार्यश्री को वंदन कर यथा स्थान चली गई।

इधर राज्य द्वार से लौटे हुए निराश ब्राह्मणों ने जनता को बहकाने व भ्रम में डालने का प्रपञ्च प्रारम्भ किया। नगरी में सर्वत्र इस बात का शोर गुल मच गया। हर जगह ये ही चर्चाएं होने लगी। जब क्रमश. यह चर्चा राजा के कर्णगोचर हुई तब तो वह एक दम विचार मग्न हो गया। उद्विग्न मन हो वह पुन चलकर सूरिजी के पास आया और बोला—प्रभो! मेरी लज्जा रखना आपके हाथ है। दयानिधान! सारे शहर में ब्राह्मणों ने मेरे विरुद्ध उग्र आन्दोलन मचा दिया है।

सूरिजी—राजन्! आप निश्चिन्त रहें। जो होने का है वह होकर ही रहेगा। आप तो जैन धर्म पर अचल श्रद्धा बनाये रक्खें। धर्म के प्रभाव से सदा आनन्द ही रहेगा। लोग अपनी स्वार्थ साधना के लिये मिथ्या अफवाहे फैला रहे हैं उन्हें उनका प्रयत्न करने दीजिये। हम लोग भी अभी तो यहीं पर ठहरेंगे। आप तो धर्माराधन में दृढ चित्त रहिये।

सूरिजी के इस कथन से राजा के हृदय को कुछ शान्ति का अनुभव अवश्य हुआ पर ब्राह्मणों के उग्र प्रपञ्च ने राजा के सकल्प विकल्प को और भी वर्धित कर दिया। क्रमश चिन्तानिमग्न राजा के विचारधाराओं में सात दिन निकल गये। पर वर्षा के कुछ भी चिन्ह नभमण्डल में दृष्टिगोचर नहीं हुए अत उसे और भी प्रपाञ्चिक व्याकुलता सताने लगी। इधर आठवें दिन वर्षा के चिह्नों के थोडे से चिन्ह होते ही मूसलधार जलवृष्टि हुई जिससे राजा ही क्या पर, ब्राह्मणों के सिवाय सब ही नगरी के लोग प्रसन्न हो गये। सब नगर निवासी सूरिजी व सूरिजी के धर्म और राजा की भूरि २ प्रशसा करने लगे। राजा और प्रजाने भी जैन धर्म व अहिंसा धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर बिना विलम्ब जैन धर्म स्वीकार कर लिया।

इस घटना का समय वशावलियों में वि० स० ६३२ ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी का बतलाया है।

राजा सुहड का नाम कहीं कहीं सूर्यमल्ल भी लिखा है। सूर्यमल्ल का पुत्र सलखण था। एक बार सलखण घोड़े पर चढकर कहीं जा रहा था। मार्ग में सूर्यास्त होने का समय हो जाने के कारण वेणी नगर के पास पहुच कर दरवाजे के बाहिर एक मकान में ठहर गया। एक अपरिचित व्यक्ति को वहा ठहरा हुआ देख किसी वेणी ग्राम वासी ने कहा—महानुभाव! यहा रात्रि में एक बाघ आता है और मनुष्यों को मार डालता है। अत इस ग्राम के दरवाजे भी रात्रि में बन्द रहते हैं। कोई भी मनुष्य बाघ के भय से रात्रि में बाहर नहीं जाता है इसलिये आप भी नगर में ही पधार जाइये। सलखण ने अपनी शक्ति के अभिमान में उक्त व्यक्ति की बात को नहीं सुनी। लोगों ने राजकीय सत्ता के द्वारा सलखण को वहा से हटाने का प्रयत्न किया पर राजकीय सुभटों—अनुचरों के वचनों की भी परवाह नहीं की। वह युवावस्था के अभिमान में सावधान हो नगर के बाहिर ठहर गया। रात्रि के समय इधर से बाघ आया और उधर से अप्रमत्त सलखण ने शस्त्र चलाया जिससे बाघ वहीं ठार हो गया। प्रात काल कौतूहल देखने के लिये अनेकगण नगरी के बाहिर आये तो बाघ को मरा हुआ देख कर राजा के पास सब समाचार भिजवा दिये। राजा भी उक्त बहादुर व्यक्ति के पराक्रम को देखने के लिये स्वय चलकर आया और परम हर्ष पूर्वक सलखण से मिला। प्रसन्नता प्रगट करते हुए व सलखण के शौर्य की प्रशसा करते हुए सम्मानपूर्वक उसे अपनी नगरी में लेगया। उसके क्षत्रियोचित बल कौशल से प्रसन्न होकर लाख सरपाव और एक अच्छी जागीरी प्रदान कर उसे अपने यहा पर ही रख लिया। इस सलखन की सन्तान ही भविष्य में बाघमार के नाम से सम्बोधित हुई। किन्हीं २ वशावलियों में बाघमार गौत्र के 'मा' के स्थान पर भूल से 'चा' लिखा गया है। अत बाघमार के बदले बाघचार भी पाया जाता है। वास्तव में मूल गौत्र तो बाघमार ही है। बाघचार तो अपभ्रश के रूप में पीछे से रूढ हुआ है। इस जाति के उदार नर पुङ्गवों ने जैन जाति की अवर्णनीय सेवा की है। इनकी वशावली निम्न प्रकारेण है—

है पर ग्रन्थ बढ जाने के भय से विशद विवेचन नहीं किया गया है। इस जाति के लोगों को चाहिये कि वे अपनी जाति के महापुरुषों के इतिहास का सग्रह करें।

मंडोवरा जाति—प्रतिहार देवा वगैरह क्षत्रियों को वि० स० ६३५ में आचार्यश्री सिद्धसूरिजी ने मास मदिरा का त्याग करवा कर जैन बनाये। आपका मूल स्थान माण्डव्यपुर होने से आप मण्डोवरा के नाम से प्रख्यात हुए। इस जाति की एक समय बहुत ही उन्नत अवस्था थी। मण्डोवरा जात्युत्पन्न महापुरुषों ने देश, समाज एव धर्म के हित करोड़ों का द्रव्य व्ययकर अपनी उज्वल सुयश ज्योत्स्ना को चतुर्दिक् में विस्तृत की। इस जाति के वीरों के नाम से रत्नपुर, बोहरा, कोठारी, लाखा, पातावत आदि कई शाखाए निकली। इन शाखाओं के निकलने के कारण एव समय का विस्तृतोल्लेख वशावलियों में मिलता है पर ग्रन्थ बढ जाने के भय से केवल नामावली मात्र लिख दी जाती है। मेरे पास जितनी वशावलियें हैं उनके आधार पर मण्डोवरा जाति के श्रीमन्तों ने—

१३६—जिन मन्दिर एव धर्मशालाए बनवाई।
१३—बार तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाले।
७—कूए, तालाब एव वावडी खुदवाई।
१७६—सर्वधातु एव पाषाण की मूर्तिया बनवाई।
२६—बार सघ को अपने यहां बुला, श्री सघ की पूजा की।
५—बार पैंतालीस २ आगम लिखवा कर ज्ञानवृद्धि की।
१—एक उजमणी में तो नवलक्ष रूपये व्यय किये।

इत्यादि, कई महापुरुषों ने अनेक शुभ कार्य कर स्वपर के कल्याण के साथ जैन धर्म की प्रभावना की।

मल्ल जाति—खेड़ीपुर के राठौड़ रायमल्ल को वि० स० ६४६ में आचार्यश्री सिद्धसूरिजी ने प्रतिबोध देकर जैन धर्म में दीक्षित किया। आपकी सन्तान उपकेश वश में मल्ल जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई। मल्ल जाति का इतना अभ्युदय हुआ कि कई नामी पुरुषों के नाम पर कई शाखाए चल पड़ी जैसे-माला, बीतरागा कीडेचा, सोनी, सुखिया, महेता नरवरादि कई जातियें बनगई। मेरे पास की वशावलियों से इस जाति के दानवीरों ने निम्नलिखित शुभ कार्य किये—

७५—मन्दिर व धर्मशालाए बनवाई।
३७—बार यात्रार्थ तीर्थों के सघ निकाले।
४८—बार श्रीसघ को अपने घर पर बुलाकर सघ पूजा व पहिरावणी दी।
२८—वीर योद्धा युद्ध में काम आये और १२ स्त्रिया सत्ती हुई।
१—खेड़ीपुर से पूर्व दिशा में पगवावड़ी बन्धवाई जिसमें सवालक्ष रुपये व्यय हुए।
४—बार जैनागम लिख कर भण्डार में रखवाये।

इत्यादि, अनेक शुभ कार्य किये। यह तो केवल मेरे पास की वशावलियों के आधार पर ही लिखा है पर इनके सिवाय भी बहुत से सुकृतोपार्जन के कार्य किये जो दूसरी वशावलियों में पाये जाते हैं।

छाजेड़ जाति—आचार्यश्री सिद्धसूरिजी म० एक समय विहार करते हुए शिवगढ पधार गये। शिवगढ निवासियों ने आपश्री का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही ठाठ से किया। सूरीश्वरजी ने भी तदुपयोगी अहिंसादि के विषयों पर अपना व्याख्यान क्रम प्रारम्भ रक्खा। जिस समय आचार्यश्री शिवगढ में विराजते थे उस समय शिवगढ नरेश राठौड़ राव आसल के पुत्र कज्जल का विवाह था। एक दिन आचार्यश्री के शिष्य थंडिल भूमिका को गये हुए एक साधु वृक्ष की ओट (आड) में बैठा था कि इधर से किसी एक राजपूत

ने शिकार के लिये बाण फेंका। भाग्यवशात् वह बाण ध्यानस्थ भूमिकार्य बैठा हुआ साधु की जंघा में आर पार निकल गया। साधु भी तीर की भयङ्कर पीड़ा से अभिभूत हुआ वहीं पर मूर्छित हो गिर पड़ा। जब दूसरे साधु ने आकर मूर्छित साधु को देखा तो बाण फेंकने वाले असावधान शिकारी राजपूत पर उसे बहुत ही क्रोध आया। क्रोधावेश में मुनि ने दो चार शब्द अत्यन्त ही कठोर कह दिये। अब तो क्षत्रिय का चेहरा भी तमतमा उठा। अपराध स्वीकार करने के बदले उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—जाओ तुम चाहो सो कर सकते हो। यह मुनि यहां क्यों बैठा था। मैं कुछ भी नहीं जानता। यदि तुमने भी ज्यादा किया तो दूसरे बाण से तुमको भी घायल कर दूंगा। इत्यादि—

साधु सीधा वहां से रवाना हो आचार्यश्री के पास आ गया और मूर्छित साधु के विषय का सब हाल कह सुनाया। सूरिजी ने कहा मुनियों! जैन धर्म के स्वरूप को ठीक समझो। इस साधु के असातावेदनीय कर्म का उदय था। बाण वाला तो केवल निमित्त कारण ही था। मुनि ने कहा—पूज्य गुरुदेव। आपका कहना तो सर्वथा सत्य है पर क्षत्रिय लोग उद्दंडता से अत्याचार कर रहे हैं उनको भी तो किसी न किसी तरह रोकना चाहिये। भगवन्! यदि क्षत्रियों का इस निष्ठुरता या नृशंसता पूर्ण क्रूरता के लिये कुछ भी हितशिक्षा न दी जायगी तो दूसरे साधु साध्वियों का इधर विचरना भी कठिन हो जायगा। व हर एक मुनि के प्रति इस तरह का दुष्ट व्यवहार करने में नहीं हिचकिचावेंगे। आचार्यश्री को भी मुनि का उक्त कथन अक्षरशः वास्तविक ज्ञात हुआ। वे भी इसका सफल उपाय सोचने में संलग्न होगये।

इधर शिवगढ़ निवासी महाजनसंघ को मुनिराज की मूर्छितावस्था का सब हाल कर्णगोचर हुआ तो उन लोगों के क्रोध एवं दुःख का पार नहीं रहा। शिवगढ़ के जैन महाजन किसी अपरिलोचित संग्राम भीरु नहीं थे। वे क्षत्रियों का सामना करने में बड़े ही बहादुर एवं शूरवीर थे। उनकी संख्या भी शिवगढ़ में कम नहीं थी। श्रेष्ठि कहलाने वाले वे धर्मानुयायी ओसवाल जैसे संख्या में अधिक थे वैसे वीरता में भी बड़े प्रसिद्ध थे। उनकी तीक्ष्ण तलवार चलाने की दक्षता ने बड़े २ युद्धविजयी योद्धाओं को चकरा दिया था। क्षत्रियत्व का अभिमान रखने वाले राजा लोग भी उन्हें लोहा मानते थे। अतः धर्मावहेलना से कुपित हुए वाले महाजनसंघ की कोपाग्नित अति भयङ्कर स्थिति होगई। दोनों ओर से पार्टियें बन गईं एक ओर अहिंसाधर्मोपासक जैन महाजनसंघ था तो दूसरी ओर क्षत्रिय वर्ग। इस साधारण बार्ता के इस भीषण स्थिति में पहुंच जाने पर भी महाजनों ने क्षत्रियों से कहा—आप लोग आप लोगों के द्वारा किये गये अपराध के लिये आचार्यश्री से क्षमायाचना कर लेवें तो इसका निपटारा शान्ति से हो जाय्गा पर वीरत्व का अभिमान रखने वाले क्षत्रियों को यह स्वीकार करना रुचिकर नहीं ज्ञात हुआ अतः वे तो संग्राम के लिये ही उद्यत होगये। परिणाम स्वरूप इसका निपटारा तलवार की तीक्ष्ण धार पर आपड़ा।

आचार्यश्री के सामने तो दोनों ओर की विकट समस्या आ पड़ी। इधर एक मुनि के लिये परस्पर रक्तपिपासु होना उन्हें उचित ज्ञात न हुआ तो उधर शासन की लघुता व जैनियों की अकर्मण्यता भी भविष्य के लिये घातक ज्ञात हुई। इस विकट उलझन में उलझे हुए आचार्यश्री ने रात्रि में देवी सच्चायिका का स्मरण किया और देवी भी अपने कर्तव्यानुसार तत्काल आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होगई। देवी ने वंदन किया और सूरिजी ने धर्मलाभ रूप दुए कहा—देवीजी! यहां बड़ी ही विकट समस्या खड़ी हुई है अब इसका निपटारा किस तरह किया जाय। देवी ने उपयोग लगा कर कहा—गुरुदेव! इस विषय में आपको किसी तरह से चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। यह मामला तो प्रातःकाल ही शान्ति पूर्वक सानन्द निपट जायगा। आप परम भाग्यशाली हैं आपको तो इस मामले में सुयश—लाभ ही मिलेगा। इतना कह कर देवी तो वन्दन कर स्वस्थान चली गई। इधर क्षत्रियों ने रात्रि में मांस पकाया। अकस्मात् उसमें किसी जहरी जानवर का जहर भी मिल गया। रात्रि में आनन्द, कल्लू प्रभृति सकल क्षत्रिय समुदाय ने उस अमरस

भोज्य का भोजन किया अतः वे सबके सब विष व्यापी शरीर वाले होगये। प्रातःकाल होते ही लोगों ने उन्हें अचैतन्यावस्था में देखा तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। कोई कहने लगे-निरपराधी साधु के बाण मारने का यह कटुफल मिला है तो कोई—मन्त्र तन्त्र विशारद साधु समुदाय ने ही कुछ कर दिया है। कोई जैन मुनियों की करामात है। इस प्रकार जन समाज में विविध प्रकार की कल्पनाओं ने स्थान कर लिया। जब यह बात ओसवालों को ज्ञात हुई तो उन्होंने सोचा कि यह तो एक अपने ऊपर कलंक की ही बात है अतः शेष बचे हुए मास की परीक्षा करवानी चाहिये। मास की परीक्षा करने पर स्पष्ट ज्ञात होगया कि मास में विषैला पदार्थ मिला हुआ है।

इतने में ही किसी ने कहा जैन महात्मा बड़े करामाती होते हैं। उनके पास जाकर प्रार्थना करने से वे सबको निर्विष बना देवेंगे। बस, सब लोग आचार्यश्री के पास आकर करुणाजनक स्वर में प्रार्थना करने लगे। सूरिजी ने भी हस्तागत स्वर्णावसर का विशेषोपयोग करते हुए उन लोगों को धर्मोपदेश दिया तथा देव, गुरु, धर्म की आशातना के कटुफलों को स्पष्ट समझाया इस पर उन लोगों ने अपना २ अपराध स्वीकार करते हुए आचार्यश्री से क्षमा याचना की और कहा-महात्मन्! यदि आप इन सबों को निर्विष कर देवेंगे तो हम सब लोग आपश्री का अत्यन्त उपकार मानेंगें। जैसे महाजन लोग आपके भक्त हैं वैसे हम और हमारी सन्तान परम्परा भी आपके चरण किङ्कर होकर रहेंगे। इत्यादि।

महाजनों ने आचार्यश्री के चरणों का प्रक्षालन कर वह जल उन विषव्यापी क्षत्रियों पर डाला। सूरीश्वरजी के पुन्य प्रताप से व देवी सच्चायिका की सहायता से वे सब क्षत्रिय सचेतन हो बैठ गये। कज्जल के साथ सब ही क्षत्रियों ने आचार्यश्री के चरणों में नमस्कार किया। सूरिजी ने कहा महानुभावों! भविष्य में साधु तो क्या पर किसी भी निरापराधी जीवों को कष्ट नहीं पहुचाना चाहिये आप क्षत्री है अतः स्वात्मा परात्मा की रक्षा करना चाहिये। इत्यादि तदान्तर सूरिजी ने तुलनात्मक धर्म का स्वरूप समझाया। कारण केवल चमत्कार देखकर अज्ञातपने से धर्म स्वीकार करने वालों की नींव बड़ी कमजोर होती है। अतः समयज्ञ सूरिजी ने उन लोगों को इस प्रकार समझाया कि वे स्वयं हिंसामय धर्म एवं लोभी गुरुओं से घृणित हो पवित्र अहिंसामय धर्म एवं निस्पृही त्यागी गुरु की ओर आकर्षित होकर बिना विलम्ब उन सबने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। इससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई। इतर धर्म व दर्शनों पर भी जैनियों के महात्म्य का अच्छा प्रभाव पड़ा।

इस घटना का समय पट्टावलीकारों ने वि० सं० ९४२ का लिखा है। क्षत्रियों ने इस दिन की स्मृति के लिये शिवगढ़ में भगवान् महावीर का मन्दिर भी बनवाया है। क्रमशः राव कज्जल का पुत्र धवल हुआ और धवल का पुत्र छाजू हुआ। छाजू बड़ा ही भाग्यशाली था। छाजू पर देवी सच्चायिका की पूर्ण कृपा थी। देवी की कृपा से इनको निधान भी मिला था। छाजू ने शिवगढ में भगवान् पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर बनवाया तथा शत्रुञ्जयादि तीर्थों के लिये संघ निकाल कर स्वधर्मी बन्धुओं को वस्त्र व स्वर्णमुद्रिकादि के साथ मोदक की प्रभावना एवं पहिरावणी दी। इन शुभ कार्यों में छाजू ने एक करोड़ रुपये व्यय कर अपने कल्याण के साथ अपनी धवल कीर्ति को चतुर्दिक में अमर बना दी। इस छाजू की सन्तान ही आगे छाजेड़ जाति से सम्बोधित की जाने लगी। इस जाति का क्रमशः इतना अभ्युदय हुआ कि इनकी संख्या कई ग्राम नगरों में वट वृक्ष के भांति प्रसरित होगई। इनका वैवाहिक सम्बन्ध जैसे क्षत्रियों के साथ था वैसे उपकेशवंशियों से भी प्रारम्भ था। छाजेड़ जाति से—नखा, चावा, सघवी, भाखरिया, नागावत, मेहता, रुपावतादिक कई शाखाएं निकली। मेरे पास जितनी वंशावलियें हैं उनमें वर्णित इस जाति के नर पुङ्गवों के द्वारा किये गये कार्यों का टोटल लगाया तो—

२५३—जैन मन्दिर, धर्मशालाएं तथा जीर्णोद्धार करवाये।

९१—बार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल संघ को पहिरावणी दी।
११४—बार संघ को घर बुलाकर श्रीसंघ की पूजा की।
७—आचार्यों के पद महोत्सव किये।
१६—ज्ञान भण्डारों में आगम पुस्तकादि लिखवाकर रक्खीं।
११—कूए, तालाव, बावड़ियाँ बनवाईं।
८—बार दुष्काल में करोड़ों का द्रव्य व्यय कर शत्रुकार दिये।
४९—वीर पुरुष युद्ध में काम आये और १४ स्त्रियां सती हुईं।

इसके सिवाय भी इस जाति के बहुत से वीरों ने राजाओं के मन्त्री, महामन्त्री, सेनापति आदि पदों पर रह कर महाजनों की अमूल्य सेवा की। कई नरेशों की ओर से दिये हुए पट्टे परवाने अब भी इस जाति की सन्तान परम्परा के पास विद्यमान हैं।

छाजेड़ जाति का वंश वृक्ष

राव भासल (सोमदेव)
|
काजल (महावीर का मन्दिर बनाया)
|
धवल
|
तीर्थों का संघ यात्रार्थ] छाजू [छाजेड़ कहलाये
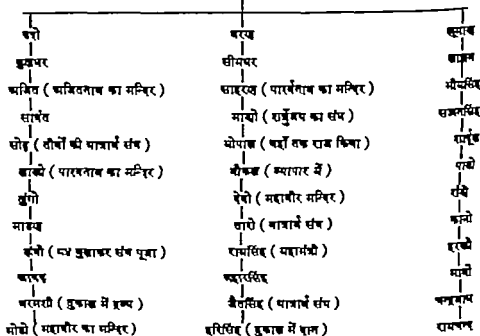
धनो	करण	कुमार
गुणधर	सीमधर	जालण
अजित (अजितनाथ का मन्दिर)	साहरण (पार्श्वनाथ का मन्दिर)	भीमसिंह
सावंत	मालो (शत्रुंजय का संघ)	सज्जनसिंह
सोढ़ (तीर्थों की यात्रार्थ संघ)	गोपाल (यहाँ तक राज किया)	रायचंद
लाखो (पारसनाथ का मन्दिर)	धीकम (व्यापार में)	पासो
ढूंगो	देवो (महावीर मन्दिर)	रूपो
माडण	नारो (यात्रार्थ संघ)	कानो
रूपो (घर बुलाकर संघ पूजा)	रामसिंह (महामंत्री)	हरखो
जालप	बहादुरसिंह	मानो
धरमसी (दुकाल में द्रव्य)	जैतसिंह (यात्रार्थ संघ)	जगनाथ
मोढो (महावीर का मन्दिर)	हरिसिंह (दुकाल में दान)	रामचन्द

यह तो क्रमश मूल नाम लिखे हैं इनका परिवार एव शाखें तो विस्तार से वशावलियों में है यदि उन सबको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ वन जाता है वे दिन इस जाति के उन्नति के दिन थे—

गान्धी जाति—आचार्य परमदेवसूरि एक समय आर्बुदाचल की ओर पधार रहे थे। जगल में एक देवी के मन्दिर के पास एक ओर तो बहुत से क्षत्री लोग खड़े थे दूसरी ओर बहुत से भैंसे बकरादि निरापराधि मूक पशु बन्धे हुए थे। आचार्यश्री के दो मुनि रास्ता की भ्राति से उस देवी के मन्दिर के पास आ निकले और उन्होंने उस जघन्य कार्य को देख शीघ्र ही जाकर सूरिजी को कहा और सूरिजी चलकर वहाँ आये तथा उन लोगों को उपदेश देने लगे। पर उन घातकी लोगों पर कुछ भी असर नहीं हुआ फिर भी सूरिजी हताश न होकर उनके अन्दर कुछ लोगों को अलग लेकर समझाया तो उनके समझ में आ गया कि देवी जगदम्बा है चराचर प्राणियों की माता है रक्षा करने वाली है। अत. इन भैंसा बकरादि को मुक्त कर अभयदान दिया और बहुत से क्षत्रियों ने सूरिजी के समीप अहिंसामय जैन धर्म को स्वीकार कर लिया जिसमें मुख्य राव खगार, रावचूड़ा, रावअजड़, रावकुम्भादि थे इसका समय वशावलियों में वि० स० ५०६ का बतलाया है।

राव संभार की—सन्तान परम्परा की सातवीं पुश्त में राव कजरव हुआ। आपके भी पुत्रों में एक सारंग नाम के पुत्र ने केसर कस्तूरी कर्पूर धूप इत्र सुगन्धी तैलादि का व्यापार करने से लोग उनको गान्धी कहने लग गये उन से व उपकेशवंश में गान्धी नाम से प्रसिद्ध हुए। आगे चल कर शाह वस्तुपाल देवराज के कारण जाति में दो पार्टियाँ होगई जैसे छोटाधड़ा बड़ाधड़ा अर्थात् छोटा साजन और बड़ा साजन, गान्धी जाति में भी दोनों तड़ के गान्धी आज विद्यमान हैं।

२—दूसरा राव धूड़ा की—सन्तान परम्परा में राव देवा बड़ा नामी पुरुष हुआ उस पर देवी चक्रेश्वरी की पूर्ण कृपा थी जिससे उसने मंडोर में भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया तीर्थों का संघ निकाल सब यात्रा की स्वधर्मी भाइयों को पहरावणी दी उन से देवा की संतान उपकेशवंश में देवसरा कहलाई। आगे चलकर देवा की परम्परा में शाह नारा ने चन्द्रावती दरबार के भण्डार का काम करने से वे भण्डारी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

३—तीसरा राव भवड की—सन्तान परम्परा में शाह लाधा ने बोहरगत जागीरदारों को कर्ज में रकम देन लेन का धंधा करने से वे बोहरा के नाम से मशहूर हुए।

४ चोथा राव कुम्भा की—सन्तान परम्परा की आठवीं पुश्त में शाह सबलो हुआ आपने शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला। भ० आदीश्वरजी का मन्दिर बनाया। और शिखर गवाक्षों की स्थापना करवा कर संघ को वस्त्र सहित एक एक सुवर्ण मुद्रिका पहरावणी दी। उस दिन से लोग आपको गवाक्ष नाम से पुकारने लगे। अतः आपकी सन्तान की जाति गवाक्ष कहलाई। इत्यादि आपका वंशवृक्ष विस्तार से लिखा हुआ है।

देवड़िया बोहरा—आचार्य सिद्धसूरि के आज्ञावर्ती पं० रामकुशल प्रमुख मुनियों के परिवार से विहार करते हुए चन्द्रावती नगरी पधार रहे थे। उधर से जंगल से कई घुड़सवार आ रहे थे उन्होंने वड वृक्ष के पास बावड़ी पर विश्राम लिया। भाग्यवशात् पण्डित रामकुशल भी अपने मुनियों के साथ वटवृक्ष के नीचे विश्राम लिया। उन राजपूतों में से एक आदमी पंडितजी के पास आकर पूछा आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं? पं० जी ने कहा हम जैन श्रमण हैं और हमारे जाने का निश्चय स्थान मुकर्रर नहीं है। हम धर्म का उपदेश देते हैं जहाँ धर्म का लाभ हो वहीं चले जाते हैं आदमी ने पूछा कि आप भूत भविष्य या निमित्त शास्त्र भी जानते हैं। यदि जानते हैं तो बतलाइये हमारे रावजी के संतान नहीं है आप ऐसा उपाय बतलावें कि हम सब लोगों की मनोकामना पूर्ण हो जाय? पण्डितजी ने अपना निमित्त ज्ञान एवं स्वरोदय बल से जान लिया कि रावजी के पुत्र तो होने वाला है। अतः आपने कहा कि यदि आपके रावजी के पुत्र हो जाय तो आप क्या करोगे? आदमी ने कहा कि आप जो मुँह से मांगों वही हम कर सकेंगे। जो ग्राम परगना मांगें या धन मांगें? पण्डितजी ने कहा कि हम निस्पृही निर्ग्रन्थों को न तो राज की जरूरत है और न धन की ही यदि आप के मनोरथ सफल हो जाय तो आप अपने रावजी के साथ मंगलकारक परम पुनीत जैनधर्म को स्वीकार करलें कि जिससे आपका शीघ्र कल्याण हो। आदमी ने जाकर रावजी को सब हाल कहा अतः रावजी भी पण्डितजी के पास आए और पण्डितजी ने रावजी को वासक्षेप दिया और रावजी प्रार्थना कर पण्डितजी को अपने नगर सोजत में ले आये पण्डितजी एक मास वहाँ विराजे और हमेशा व्याख्यान होता रहा रावजी आदि आपका सब परिवार एवं राज कर्मचारी व्याख्यान का लाभ लिया करते थे। इतना ही नहीं पर उन लोगों की श्रद्धा भी क्रमशः जैन धर्म की ओर झुक गई पर जब तक रावजी जैन धर्म स्वीकार न करें वहाँ तक दूसरे भी कैसे धारण करें। और एक मास के बाद पण्डितजी वहाँ से विहार कर दिया।

पीछे राव माधवजी की राणी ने गर्भ धारण किया जिससे रावजी वगैरह को मुनिजी के वचन स्मरण में आने लगे क्रमश गर्भ स्थिति पूर्ण होने से रावजी के देव कुँवर जैसा पुत्र का जन्म हुआ जिसके खुशी और आनन्द मगल का तो कहना ही क्या था अब तो रावजी को रह रह कर पण्डितजी ही याद आने लगे महाजनों को बुलाकर कहा कि पण्डितजी कहाँ पर हैं तथा उन महात्माओं को जल्दी से अपने यहाँ बुलाना चाहिये ? महाजनों ने कहा उनका चातुर्मास सिन्ध धरा में सुना था पर वे चातुर्मास में कहीं पर भ्रमन नहीं करते हैं। तथापि रावजी ने अपने प्रधान पुरुषों को सिन्ध में भेजकर खबर मगवाई वे प्रधान पुरुष खबर लेकर आये कि पण्डितजी का चातुर्मास मालपुर में है। खैर चातुर्मास के बाद रावजी की अति आग्रह होने से पण्डितजी सोनगढ पधारे रावजी ने नगर प्रवेश का बड़ा ही सानदार महोत्सव किया और रावजी अपने परिवार अन्तेवर और कर्मचर्य के साथ पण्डितजी से जैन धर्म स्वीकार कर लिया इससे जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। रावजी ने अपने नगर में भ० महावीर का सुन्दर मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य सिद्ध सूरिजी ने करवाई। रावजी ने शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ भी निकाला और साधर्मी भाइयों को लहणी एव पहरावणी भी दी उसका रोटी वेटी व्यवहार जैसे राजपूतों के साथ जैसे ही महाजन संघ के साथ भी शुरु हो गया इत्यादि—

राव माधोजी की इग्यारवीं पुश्त में शाह नोधणजी बड़े ही भाग्यशाली हुए उन्होंने ढेलड़िया गाँव में वोरगत (लेनदेन) का धंधा किया जिससे लोग उनको ढेलड़िया वोहरा कहने लगे इस जाति के अनेक दान वीर उदार नर रत्नों ने देश समाज एव धर्म की बड़ी बड़ी सेवाए करने में खुल्ले दिल लाखों करोड़ो का द्रव्य व्यय किया जिसका उल्लेख वशावलियों में विस्तार से मिलता है।

ढेलड़िया जाति के कई लोग व्यापार करने लगे तब कई लोग राज के मत्री महामत्री आदि उच्च पदों पर नियुक्त हो राजतन्त्र भी चलाते रहे। इस जाति की जन सख्या भी बहुत विस्तृत हो गई थी जिससे कई शाखाएँ भी फैल गई जिसमें एक शाखा के कतिपय नाम यहाँ लिख दिये जाते हैं।

चापसी
|
ताराजी
|
रूपजी
|
भानाजी
|
लिखमीचन्दजी
|
मानमलजी
|
शिवदानमलजी
|
इन्द्रमलजी
|
पूनेमलजी
|
मूलचन्दजी
|
लालचन्दजी

इनके अलावा और भी बहुत सी शाखाओं का इतिहास वर्तमान में विद्यमान है पर स्थानाभाव यहाँ पर दिया नहीं गया है प्रत्येक जाति वालों को चाहिये कि वे अपनी २ जाति का यथार्थ इतिहास लिख कर जनता के समाने ही नहीं पर अपनी सन्तान को तो अवश्य पढ़ाना चाहिये—

वशावलियों के देखने से मालुम होता है कि जैन धर्म पालन करने वाली जातियों में प्रत्येक जाति की वंशावली में कम से कम उनके पूर्वजों द्वारा मन्दिरों का निर्माण यात्रार्थ तीर्थों के सघ एव सघ पूजा का तो उल्लेख मिलता ही है पर सबका उल्लेख करने के लिये इतना ही विशाल स्थान चाहिये जिसका अभाव है।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज अपने समय के एक बड़े ही युग प्रवर्तक आचार्य थे। आपका सारा जीवन जिन शासन की सेवा से ओत प्रोत है। जहां जाना वहाँ नये जैन बनाना व पुराने जैनों की रक्षा करना तो आपश्री का ध्येय ही बन गया था। विशेषता यह थी कि आपके शासन में करोड़ो की संख्या मे जैन थे पर किसी भी स्थान पर पारस्परिक मनोमालिन्य नहीं था। यदि कहीं पर किसी कारणवश क्लेश ने जन्म भी ले लिया तो वह अपनी अवधि को अधिक समय तक स्थायी नहीं रख सकता। कारण, समाज पर आपका अधिक प्रभाव था। आपके समय में चैत्यवास का साम्राज्य था और उनमें सुविहित व शिथिलाचारी दोनों

प्रकार का समाज था पर आप उनको एक रथ के दो पहिये समझ कर शासन रथ को चलाने में बड़ी ही कुशलता से काम लेते थे। अतः आपका प्रभाव दोनों पर समान रूप से था। आप श्री का शिष्य समुदाय भी बहुत विशाल था व उग्रविहारी सुविहित मुनियों की भी कमी नहीं थी। अतः कोई भी प्रान्त उपकेश-गच्छीय मुनियों के विहार से रिक्त नहीं रहता। स्वयं आचार्यश्री भी प्रत्येक प्रान्त में विहार कर धर्म प्रचारार्थ प्रेषित श्रमण समुदाय को धर्म प्रचार के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। आचार्यश्री इस छोर से उस छोर तक भारत की प्रदक्षिणा कर मुनियों के कार्यों का निरीक्षण करते थे। आपने अपने ६० वर्ष के शासन में अनेक मुमुक्षुभावुकों को दीक्षा दी। अनकों अजैनों को जैन बनाये। अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा कर जैन शासन की ऐतिहासिक नींव को दृढ़ की। श्रीसंघ के साथ कई बार तीर्थों की यात्रा कर पुण्य सम्पादन किया। वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजयपताका को फहराथी।

इस प्रकार आचार्यश्री का जैन समाज पर बहुत ही उपकार है। इस अवर्णनीय उपकार को जैन संघ का प्रत्येक व्यक्ति स्मृति से विस्मृत नहीं कर सकता है। यदि हम ऐसे उपकारियों के उपकार को भूल जावें तो जैन संसार में हमारे जैसे कृतघ्नी और होंगे ही कौन ? शास्त्रकारों ने तो कृतघ्नता को महान् पाप बतलाया है। इतना ही क्या पर जिस समाज में उपकारी के उपकार को भुला जाता है उस समाज का पतन करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं रुक सकता है। हमारी समाज के पतन का मुख्य कारण भी कृतघ्नत्व ही है।

आचार्यश्री सिद्धसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में नागपुर के आदित्यनाग गौत्रीय चोरड़िया शाखा के परम भक्त मन्त्री सम्पत शाह मंत्री के न्याय पार्जित द्रव्य व्यय से किये हुए महा महोत्सव पूर्वक आदिनाथ भगवान् के चैत्य में चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय गुणसुन्दर को सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम परम्परानुसार कक्कसूरि रख दिया। इस शुभ अवसर पर योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान की गई। अन्त में आप अपनी अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये। क्रमशः २४ दिन के अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

पूज्याचार्य देव के ६० वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएँ।

१—चन्द्रपुर	के	प्राग्वटवंशी	जाति के	शाह	मुंजल ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
२—भद्रावती	के	,, ,,	,,	,,	देवाने	,,	,,
३—नरवर	के	श्रेष्ठिगौत्र	,,	,,	कुम्भाने		
४—डबकोर	के	चोरड़िया		,,	आसलने	,,	
५—त्रिभुवनगढ़	के	भाद्रा	,,	,,	हाकान		,,
६—माजमेर	के	भरड	,,	,,	माकमने	,,	
७—वीरपुर	के	मल्ल		,,	रूपाने	,,	
८—चेबाड़ी	के	चंडालिया	,,	,,	पमाने	,,	,,
९—पद्माली	के	कुबेरा	,,	,,	फूआने	,,	,,
१०—दुधी	के	पोकरणा	,,	,,	सुगनि	,,	,,
११—सराड	के	बांका	,,	,,	बाखदान	,,	,,
१२—जैतपुर	के	दिगड़	,,	,,	पोमाने	,,	
१३—हाथोड़ी	के	गुलेच्छा	,,	,,	भामाने	,,	,,
१४—करजी	के	मोदिबाणी	,,	,,	कुरपाने	,,	,,
१५—वर्धमानपुर	के	भूरिया	,,	,,	राजसीने	,,	,,

१६—चाकोली	के	धावड़ा	जाति के	शाह	नेतसीने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
१७—विजापुर	के	आच्छा	,,	,,	रत्नसीने	,,	,,
१८—हथुड़ी	के	भाभू	,,	,,	भीमाने	,,	,,
१९—गुढनगर	के	पारख	,,	,,	रणधीराने	,,	,,
२०—नाणापुर	के	सुरवा	,,	,,	पारसने	,,	,,
२१—ब्राह्मणपुर	के	राजसरा	,,	,,	हरखाने	,,	,,
२२—श्रीपुर	के	झावाणी	,,	,,	पुनड़ने	,,	,,
२३—चीसलपुर	के	भाला	,,	,,	चमनाने	,,	,,
२४—नैवर	के	पोकरण	,,	,,	चतराने	,,	,,
२५—हालोर	के	चिंचा	,,	,,	दलपतने	,,	,,
२६—ब्रह्मी	के	चोसरिया	,,	,,	कानड़ने	,,	,,
२७—सारंगपुर	के	सोलागोत्र	,,	,,	मेघाने	,,	,,
२८—घरखेरी	के	उड़कगोत्र	,,	,,	नोढ़ाने	,,	,,
२९—नदपुर	के	दुघड़	,,	,,	वाराने	,,	,,
३०—सारणी	के	वर्धमाना	,,	,,	कुमारने	,,	,,
३१—भवानीपुर	के	केसरिया	,,	,,	हाफाने	,,	,,
३२—आघाट	के	श्रीमाल	,,	,,	समराने	,,	,,
३३—वीरपुर	के	श्रीमाल	,,	,,	बुचाने	,,	,,
३४—मालपुर	के	प्राग्वट	,,	,,	पाबुने	,,	,,
३५—मोकाणो	के	,,	,,	,,	मेमाने	,,	,,
३६—धनपुर	के	,,	,,	,,	भालाने	,,	,,
३७—पल्हिका	के	,,	,,	,,	दैपालने	,,	,,

इनके अलावा भी वंशावलियों में दीक्षा लेने वाले नर नारियों के बहुत से नामों का उल्लेख मिलता है पर मैंने मेरे उद्देश्यानुसार केवल थोड़े से नाम नमूने के तौर पर लिख दिये हैं जिससे आचार्यश्री के विहार का पता लग जाय कि आपश्री का विहार क्षेत्र कितना विशाल था।

पूज्याचार्यदेव के ६० वर्षों के शासन में जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं।

१—सुसोली	के	जघड़ा	जाति के	शाह	धर्मदेव ने	भ० महावीर का		म० प्र०
२—खावड़ी	के	भमराणी	,,	,,	शाहदेव ने	,,	,,	,,
३—खुखोरी	के	पाचोरा	,,	,,	लालागने	,,	,,	,,
४—राजपुर	के	काजलिया	,,	,,	गांगाने	भ० पार्श्वनाथ का		,,
५—चन्द्रावती	के	धापा	,,	,,	छाजूने	,,	,,	,,
६—हर्षपुर	के	वडवडा	,,	,,	करत्याने	,,	,,	,,
७—हसावली	के	गुगलेचा	,,	,,	माणाने	भ० ऋषभदेव का		,,
८—गाघोडी	के	जमघटा	,,	,,	चाहड़ने	,,	,,	,,
९—बुचासणी	के	भंभोलिया	,,	,,	खेताने	भ० शान्तिनाथ का		,,
१०—गरासणी	के	सेठिया	,,	,,	वोहत्यने	,,	,,	,,

११—सरीपुर	के	श्रीमाल	ज्ञाति के	शाह	मालजा ने	भ० शान्तिनाथ का	म प्र०
१२—सोवलपुर	के	श्रीमाल	„	„	मेराज ने	„ विमलनाथ	„
१३—पद्मावती	के	प्राग्वटा	„	„	सज्जन ने	„ धर्मनाथ	„
१४—राजगढ़	के	प्राग्वटा	„	„	वासा ने	„ अजितनाथ	„
१५—मालगढ़	के	प्राग्वटा	„	„	ईसर ने	„ आदिनाथ	
१६—मारवी	के	लाबेड़	„	„	भाखु ने	„ म आदिनाथ का	„
१७—मोटा गांव	के	केसरका	„	„	भैरा ने	„ महावीर	
१८—चन्द्रीपुरा	के	श्रेष्ठि	„	„	रामा ने	„ „	„
१९—मुड़वा	के	चोरड़िया	„	„	भाखा ने	„	„
२०—कानोडी	के	कोठारी	„	„	पेंड ने	„ पार्श्वनाथ	„
२१—कावपुर	के	सेठ	„	„	रूपा ने	„ „	„
२२—जावेली	के	सठिया	„	„	भावा ने	„ „	„
२३—पाटली	के	पल्लीवाल	„	„	करण ने	„ नेमिनाथ	„
२४—गोसावी	के	पमिया	„	„	भुगा ने	„ सीमंधर	„
२५—हंसावली	के	भमवाल	„	„	मोका ने	„ अभ्रापद	„
२६—मेदनीपुर	के	चौहाना	„		साहरण ने	„ महावीर	„
२७—चन्द्रपुरि	के	बोहरा	„	„	सम्मु ने	„ „	„
२८—महमापुर	के	गुलगुला	„	„	देवा ने	„ „	
२९—देवपट्टण	के	भूरंट	„	„	पांचा ने	„ „	„
३०—सोपारपट्टण	के	कनौजिया	„	„	संखा ने	„ पार्श्वनाथ	„
३१—मुधा पाटण	के	बिंव	„	„	करण ने	„ शान्तिनाथ	„
३२—कटोली	के	महासेवा	„	„	देवाने	„ „	„
३३—भेसावी	के	टाकलिया	„	„	धनाढ़ ने	„ मल्लीनाथ	„
३४—मोहलीगाम	के	डांगीवाल	„	„	नोंधण ने	„ नेमिनाथ	„
३५—सूरपुर	के	हिंगड़	„	„	अर्जुन ने	„ चौमुखजी	

पूज्याचार्य देव के ६० वर्षों के शासन में सघादि शुभ कार्य

१—नागपुर	के	चोरड़िया	शाह	सिंहाने	शत्रुञ्जय	का संघ निकाला	आचार्य श्री
२—मुग्धपुर	के	श्रेष्ठि ज्ञाति	„	सोनाने	„	„	„
३—हमीरपुर	के	भरेवरा	„	करमणने	„	„	„
४—पद्मावतीपुरी	के	रांका-सेठ	„	मदसिंगने	„	„	„
५—मारवपुरी	के	जावड़ा	„	राजाने	„	„	„
६—शिवपुरी	के	संचेती	„	कैसावं	„		„
७—किराटकूप	के	कनौजिया	„	लाखाने	„	„	„
८—भरोंच	के	प्राग्वट	„	रत्नाने	„	„	„
९—सोपार	के	पोकरणा	„	सूजाने	„	„	„
१०—वीरपुर	के	मूमिया	„	रायाने	„	„	„

११—उपकेशपुर	के	डागरेचा	,,	आसलने	,,	,,	,,
१२—रत्नपुर	के	वागड़िया	,,	भीमाने	,,	,,	,,
१३—पद्मावती	के	पल्लीवाल	,,	रोडाने	,,	,,	,,
१४—चित्रकूट	के	प्राग्वट	,,	वालाने	,,	,,	,,
१५—डिङ्गपुर	के	प्राग्वट	,,	धन्नाने	,,	,,	,,

१६—मदनपुर के विरहटगौत्री शांखला की विधवा पुत्री ने एकलक्ष द्रव्य से वापी करवाई।
१७—मालपुर के प्राग्वट जाजा की धर्म पत्नी ने तीन लक्ष में एक तलाव बनाया।
१८—उपकेशपुर के तांतेड़ दाना ने अपने पिता के श्रेयार्थ शत्रुञ्जय पर बावड़ी बन्धाई।
१९—नागपुर के पारख रघुवीर ने गायों चरने की भूमि खरीद कर गोचर बनाया।
२०—धर्मपुर के डिङ्गु भैंकरण ने सदैव के लिये शत्रुकार खोल दिया।
२१—पल्हिकापुरी के मंत्री गुणाकार ने दुकाल में एक करोड़ द्रव्य व्ययकर लोगों को प्राणदान दिया।
२२—हसावली का सचेती लाढूक ने दुकाल में सर्व स्वार्पण किया कुलदेवी ने अक्षय निधान बतलाया।
२३—चन्द्रावती के प्राग्वट भैराकों पारस प्राप्त हुआ जिससे जनसहार कहत में राजा राणों का अन्न दाता।
२४—शिवगढ़ का श्रेष्टि०—सारंगा युद्ध में काम आया उसकी दो स्त्रियाँ सती हुईं छत्री पूजी जाती है।
२५—डमरेल का भाद्र गो०—मंत्री सल्ह युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२६—उपकेशपुर का चिंचट—गणपत युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२७—चन्द्रावती का प्राग्वट—मोकल युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सती हुई माघ सप्तमी का मेला लगे।
२८—कोरटपुर का श्रीमाल—लाखण युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सती हुई छत्री बनाई थी।

पट चावीसवें सिद्ध सूरीश्वर श्रेष्टि कुल दिवाकर थे,
दर्शन ज्ञान चरित्र वारधि, गुण सब ही लोकोत्तर थे।
थे वे पयनिधि करुणा रसके, पतित पावन बनाते थे,
ऐसे महापुरुषों के सुन्दर, सुरनर मिल गुण गाते थे॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौचालीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए।

४५-आचार्यश्री कक्कसूरि (१०वें)

मूलार्यान्वियमस्तु कक्क इति वा सूरिर्मनः सत्कृती ।
सम्मेत शिखरेषु कोटि मयना संस्थाप्य विर्धं ददौ ॥
संघायैव च नित्यमुक्ति करो जैनस्य धर्मस्य वै ।
येनात्यापि प्रदीप शक्ति च रविर्देदीप्यतेऽस्मैनमः ॥

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रतापी प्रखर विद्वान् कठोर तप करने वाले धर्म प्रचारक एवं युग प्रवर्तक आचार्य हुए। आपश्री के जीवन का अधिकांश भाग आत्म कल्याण था जन कल्याण के काम में ही व्यतीत हुआ। सूरिजी ने विविध प्रान्तों एवं देशों में परिभ्रमण कर जैन धर्म का खूब ही उद्योत किया। पट्टावली निर्माताओं ने आपके पवित्र जीवन का बहुत ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया है पर यहाँ पर मुख्य २ घटनाओं को लेकर आपके जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है।

पाठकगण पिछले प्रकरणों में पढ़ आये हैं कि आचार्यश्री देवगुप्त सूरि के उपदेश से राव गोसल ने जैन धर्म की दीक्षा लेकर सिन्ध धरा पर एक गोसलपुर नाम का नगर बसाया था। आपके जितने उत्तराधिकारी हुए वे सब के सब जैनधर्म के प्रतिपालक एवं प्रचारक हुए। आपकी सन्तान आर्यों के नाम से मशहूर हुई थी। आर्य गौत्रीय बहुत से व्यक्ति व्यापारिक धन्धों में भी पड़ गये थे। उन व्यापारी आर्यों में शाह जगमल नाम का एक धनी सेठ भी गोसलपुर में रहता था। आपका व्यापार क्षेत्र बहुत विशाल था। आपने न्याय नीति पूर्वक व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया तथा उस द्रव्य को आत्म कल्याणार्थ खूब ही खुले दिल से (उदारवृत्ति से) शुभ कार्यों में व्यय कर अतुल पुण्य राशि को सम्पादन किया। शाह जगमल ने अपने जीवन काल में तीन बार तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाले कई बार स्वधर्मी बन्धुओं को पहिरावणी में स्वर्ण मुद्रिकादि पुष्कल द्रव्य दिया। दीन, अनाथों को एवं याचकों को तन मन, धन से सहायता कर पुण्य राशि के साथ ही साथ सुयश राशि का भी एकत्रित किया। याचकों ने तो कवित्त सवैयादि छन्दों के द्वारा आपके यशगान को जग जाहिर कर दिया। पूर्वोपार्जित पुण्योदय की प्रबलता से शाह जगमल धन में दूसरे धन वैश्रमण थे वैसे कौटुम्बिक परिवार की विशालता में भी अग्रगण्य ही थे। आपकी गृहदेवी भी आपके अनुरूप सर्व गुण धारी पातिव्रत नियमनिष्ठ धर्मप्रिय थी। आपकी धर्मपत्नी का नाम सोनी था। माता सोनी ने अपनी पवित्र कुक्षि से सात पुत्र व चार पुत्रियों को जन्म दे जीवन को सार्थक किया था। उन सातों पुत्रों में एक मोहन नाम का पुत्र अत्यन्त भाग्यशाली तेजस्वी एवं बड़ा भावी होनहार था।

एक बार पुण्यानुयोग से लब्धप्रतिष्ठित प्रभावक आचार्यश्री सिद्धसूरिजी म० का आगमन क्रमशः गोसलपुर में हुआ। आपश्री के उपदेश से प्रभावित हो शाह जगमल ने सम्मेत शिखरजी की यात्रा के लिये एक विराट् संघ निकाला। 'छ री' पाली संघ के साथ शाह जगमल का आत्मज मोहन भी था। मोहन की बाल्य वय से ही धर्म की ओर अभिरुचि थी। उसे धार्मिक प्रभावनाओं एवं चर्चाओं में बहुत ही आनंद आता था। अतः वह आचार्यश्री के साथ पैदल ही धर्म चर्चा एवं मनोद्भूत शंकाओं का समाधान करता हुआ संघ के साथ सम्मेतशिखरजी की यात्रा के लिये चलने लगा। जब उसने पाद विहार के कष्टों का अनुभव किया तो

उसे मुनित्व जीवन के परम पवित्र आचार विचार एव महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व पर बहुत ही आश्चर्य हुआ। पादत्राणभाव में पैदल चलने के साधारण कष्टों के सिवाय अन्य २२ परिषहादि के कष्टों का उसे ज्ञान हुआ व आचार्यश्री के साथ प्रत्यक्षानुभव किया तब तो उसकी विस्मय जन्य कौतूहल के साथ ही साथ जिज्ञासा वृत्ति भी बढ गई। समय पाकर आचार्यश्री से पूछने लगा-भगवन्! आप तो श्रीसघ के नायक हैं, बड़े बड़े राजा महाराजा एव कोटाधीशों के गुरु हैं फिर, आप इस तरह साधारण दीनवृत्ति से निर्वाह कर इन दारुण दु खों को व्यर्थ ही में क्यों सहन कर रहे हैं?

सूरिजी—मोहन! अभी तुम बालक हो। मुनित्व जीवन की चारित्रविषयक सूक्ष्म वृत्ति का तुम्हें ज्ञान नहीं है। साधुत्व जीवन के निर्मल आचार-व्यवहार से सर्वथा अनभिज्ञ हो। मोहन! हमारी, तुम्हारी सुख ऋद्धि की तो बात ही क्या पर नवनिधान के स्वामी अक्षय सम्पत्ति के मालिक चक्रवर्तियों ने भी अपनी सुख साहिबी को लात मार कर इस प्रकार के कष्टों (!) को सहन करना स्वीकार किया था। मोहन! बाह्य दृष्टि से तुम्हें या अन्य किसी को यह कष्ट दीखता हो पर हम लोगों को तो तुम लोगों द्वारा देखे जाने वाले इन कष्टों में भी सौख्य का ही अनुभव होता है। जब तुम लोगों को कभी हजार दो हजार की कमाई का स्वर्णावसर प्राप्त होता हो और उसमें थोडा बहुत कष्ट भी सहन करना पडता हो, तो क्या उस किञ्चित् कष्ट को देख प्रमादी की तरह उस अलभ्य अवसर को यों ही हाथ से जाने दोगे?

मोहन—नहीं गुरुदेव! हस्तागत ऐसे अवसर को थोडे कष्टों के लिये खोदेना तो अदूरदर्शिता ही है। हम लोग तो ऐसे समय में साधारण क्षुधापिपास के कष्टों को ही क्या पर जीवन की भीषण यातनाओं को भी विस्मृत कर जी जान से इस प्रकार के द्रव्योपार्जन में सलग्न हो जाते हैं। पर आचार्य देव! उसमें तो हमको रुपयों पैसों का लोभ होता है। अत थोड़ी देर का या चिरकाल का कष्टसहन करना भी हमें अनिवार्य हो जाता है पर आपको तो यावज्जीवन के इस दारुण कष्ट में क्या लोभ या लाभ है। जिसके कारण कि साक्षात् दीखने वाले दु ख को भी सुख समझते हैं।

सूरिजी—मोहन! तुम्हारे रुपयों का लाभ तो क्षणिक आनन्द को देने वाला किञ्चित् पौद्गलिक सुख स्वरूप है पर हमको मिलने वाला लाभ तो शाश्वत तथा भव भवान्तरों के सुख के लिये भी पर्याप्त है।

मोहन—गुरुदेव! ऐसा कौनसा अक्षय लाभ है, कृपा कर मुझे भी स्पष्टीकरण पूर्वक समझाइये।

सूरिजी—मोहन! क्या तुम भी उस लाभ को प्राप्त करने के उम्मेदवार हो?

मोहन—आचार्य देव! कौन हतभागी होगा कि लाभ का इच्छुक न रहता होगा! फिर आपके द्वारा वर्णित किया जाने वाला लाभ तो अक्षय लाभ है फिर ऐसे लाभ को कौन नहीं चाहता होगा?

सूरिजी—मोहन! जीव अनादि काल से जन्म, जरा, मरण रूप असह्य दु खों का अनुभव कर रहा है। उन अपरिमित यातनाओं का अन्त करने वाली और अक्षय सुख को सहज ही प्राप्त कराने वाली यह भगवती दीक्षा है। देखो 'देहदुक्खं महाफल' अर्थात् सम्यग्दर्शन व ज्ञान के साथ इस शरीर का जितना दमन किया जाय उतना ही भविष्य के लिये आत्मिक सुख के अक्षय आनन्दता को प्राप्त कराने वाला होता है। इसी से पूर्वोपार्जित दुष्कर्मों की निर्जरा होती है और कर्मों की निर्जरा होना ही मोक्ष है अत मुनिजन चारित्र जन्य कष्ट को भी सुख ही समझते हैं।

मोहन—सूरिजी के द्वारा कहे गये थोडे से शब्दों में अपने जीवन के वास्तविक महत्व को समझ गया। उसके हृदय में दीक्षा लेने की भावना रूप वैराग्याङ्कुर अङ्कुरित होगया। कष्टों को सहन करने का नवीनोत्साह आगया। मार्ग में होने वाले पाद विहार जन्य कष्ट में भी आत्मिकानन्द की लहर लहराने लगी। उसे इस बात का अच्छी तरह से अनुभव होगया कि सुख दु ख आत्मिक परिणामों की जघन्योत्कृष्टता पर अवलम्बित है। उदाहरणार्थ-चक्रवर्ती महाराजाओं को पुष्प शय्या पर सोते हुए एक पुष्प कलि के अव्यवस्थित होने पर

उन्हें संस्कार विकृत जन्म नाना तरह का परिताप होता है पर दूसरे ही दिन इस प्रकार की सुख सामग्री का त्याग कर दीक्षा अङ्गीकार करके अनेक कष्टों को सहन करते हुए भी उन्हें आत्मिकानन्द का वास्तविक अनुभव होता है। पुष्पवत् कोमल सुख शैया पर शयन करने वाले चक्रवर्तियों को पशुओं के ठहरने योग्य कण्टकाकीर्ण स्थान में भी पारमार्थिक सौख्य का भान होता है। वास्तव में परिणामों की उत्कर्षापकर्षता का तारतम्य ही जीवन में सुख दुःख का उत्पादक है। वही जीव और शरीर के एक होने पर भी विचार श्रेणी की निम्नोन्नतावस्था जीवन की वास्तविक कार्य को विचारों की निम्नोन्नतानुसार परिवर्तित एवं परिवर्द्धित कर देती है। इस प्रकार वह भावनाओं में बढ़ता ही गया।

मोहन का वयःक्रम यद्यपि १८ वर्ष का ही था फिर भी उसका चित्त संसार से एक दम विरक्त हो गया। जब क्रमशः श्रीसंघ सम्मेत शिखर तीर्थ के पवित्र स्थान पर पहुँचा तब मोहन ने अपने माता पिता से स्पष्ट शब्दों में कहा—पूज्यवर ! मेरी इच्छा आचार्यश्री के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करने की है। बज्र प्रहारवत् पुत्र के वाक्य शब्दों को सुनकर माता पिताओं के आश्चर्य व दुःख का पार नहीं रहा। माता सोनी ने मोहन के विचारों को अन्यथा करने का प्रयत्न किया पर मोहन के अचल निश्चय को अनुकूल प्रतिकूल अनेक आशाजनक उपायों से भी चलायमान करने में माता सोनी समर्थ नहीं हुई। आखिर मोहन को दीक्षा का आदेश देना ही पड़ा। मोहन ने भी अपने कई साथियों के साथ बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि पर बड़े ही समारोह-महोत्सव पूर्वक आचार्यश्री के हाथों से दीक्षा स्वीकार की। सूरीश्वरजी ने भी १३ नर नारियों को दीक्षा दे मोहन का नाम मुनिसुन्दर रख दिया। मुनि-मुनिसुन्दर ने २४ वर्ष पर्यन्त गुरुकुल में रह कर जैनागम न्याय-व्याकरण-काव्य-साहित्य-ज्योतिष-तर्क अलङ्कार-गणित-मंत्र यंत्रादि अनेक विद्याओं एवं सामयिक साहित्य का अध्ययन कर लिया। आचार्यश्री ने भी मुनि मुनिसुन्दर को सर्वगुण सम्पन्न जानकर वि. सं. ९८१ में नागपुर में चोरड़िया गोत्रीय शाह मल्लूक के महा महोत्सवपूर्वक आदिनाथ भगवान् के चैत्य में चतुर्विध श्री संघ की मौजूदगी में सूरि पद दे दिया। आचार्य पदवी के साथ ही परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया गया।

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज महा प्रभाविक आचार्य हुए। आपश्री जैसे आगमों के ज्ञाता थे वैसे मंत्र यंत्र विद्याओं में भी सिद्धहस्त थे। एक बार आप पांचसौ साधुओं के साथ विहार करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पधारे। क्रमशः सौराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की पवित्र यात्रा करके पश्चात् सौराष्ट्र प्रान्त में परिभ्रमण कर धर्म प्रचार करते हुए आपश्री ने कच्छ प्रदेश को पावन किया। जब आपश्री अपनी शिष्य मण्डली के सहित भद्रेश्वर में पधारे तब कच्छ प्रान्तीय आपके आज्ञानुयायी श्रमण वर्ग शीघ्र ही आचार्यश्री के दर्शनों के लिये भद्रेश्वर नगर में उपस्थित हुए। आगत श्रमण समुदाय को उचित सम्मान से सम्मानित कर आचार्यश्री ने उनके धर्म प्रचार के प्रशंसनीय कार्य पर प्रसन्नता प्रगट की। उनका समुचित स्वागत करते हुए योग्य मुनियों को यथायोग्य पदवियां भी प्रदान की। ऐसा करने से मुनियों को अपने पदों के उत्तरदायित्व का स्मरण हुआ और वे पूर्वापेक्षा भी अधिक उत्साह पूर्वक धर्म प्रचार के कार्य में कटिबद्ध हो गये। एक चातुर्मास कच्छ प्रान्त में कर आपश्री ने सिन्ध प्रान्त की ओर पदार्पण किया। सिन्ध प्रान्त में जैसे उपकेशवंशीय श्रावकों की संख्या अधिक थी वैसे आचार्यश्री के आज्ञानुवर्ती श्रमण समुदाय की संख्या भी विशाल थी। पावोली वीरपुर, उच्चकोट, मारोटकोट, डामरेल शंखोली, शिवपुर वगैरह ग्राम नगरों में विहार करते हुए सूरिजी ने डामरेल में चातुर्मास कर दिया। आपश्री के डामरेल के चातुर्मास में धर्म की पर्याप्त प्रभावना हुई। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री ने विहार कर अपनी जननी जन्मभूमि गोसलपुर की ओर पदार्पण किया। आपश्री के पधारने से गोसलपुर निवासियों के हृदय में धर्म स्नेह उमड़ आया। एक माई का सुपुत्र जिस नगर में जन्मधारण कर अपने कुल गौत्र के साथ ही साथ अपनी जन्म भूमि को भी

असर बना दी तथा आचार्य पद से विभूपित हो चातुर्दिक में जन कल्याण करते हुए अपने वर्चस्व से सबको नतमस्तक बनाते हुए पुन उसी नगर को पावन करे तो कौन ऐसा कमनसीब होगा कि उसको इस विपय में आनद न हो ? किस हतभागी को अपने देश कुल एव नगर के नाम को उज्वल करने वाले के प्रति गौरव न हो ! वास्तव में ऐसा समय तो नगर निवासियों के लिये बहुत ही हर्प एव अभिमान का है। अत गोसलपुर का सकलजन समुदाय (राजा और प्रजा) आचार्यश्री के पदार्पण के समाचारों को श्रवण करते ही आनन्द सागर में गोते लगाने लग गया। क्रमश अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यश्री का नगर प्रवेश खूब महोत्सव किया। सूरिजी ने भी स्वागतार्थ आगत जन मण्डली को प्रारम्भिक माङ्गलिक धर्म देशनादी ! आचार्यश्री की पीयूप वर्पिणी मधुर, ओजस्वी व्याख्यान धारा को श्रवण कर गोसलपुर निवासी आनन्दोद्रेक में ओत प्रोत हो गये। किसी की भी इच्छा आचार्यश्री के व्याख्यान को छोड कर जाने की नहीं हुई। वे सब सूरिजी के वचनामृत का पिपासुओं की भाति अनवरत गतिपूर्वक पान करने के लिये उत्कण्ठित हो गये। कालान्तर में सबने मिलकर चातुर्मास का लाभ देने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी धर्मलाभ को सोचकर गोसलपुर श्रीसघ की प्रार्थना को सहर्प स्वीकृत करली। क्रमश' आचार्यश्री के त्याग वैराग्यादि अनेक वैराग्योत्पादक, स्याद्वाद, कर्मवादादि तत्त्व प्रतिपादक, सामाजिक उन्नतिकारक व्याख्यान प्रारम्भ हो गये। सूरिजी के वैराग्यमय व्याख्यानों से जन समुदाय के हृदय में यह शका होने लगी कि सूरिजी अपने साथ ही साथ अन्य लोगों को भी ससार से उद्विग्न कर कहीं दीक्षित न करलें ? कोई कहने लगे इसमें बुरा क्या है ? हजारों मनुष्य ऐसे ही मर जाते हैं। ऐसा कौन भाग्यशाली है कि आचार्यश्री के समान पौद्गलिक सुखों को तिलाञ्जलि दे विशुद्ध चारित्र वृत्ति का निर्वाह कर स्वात्मा के साथ अन्य अनेक भव्यों का भी कल्याण करे। देखो, मोहन ने दीक्षा ली तो क्या बुरा किया ? अपने माता पिता एवं कुल जाति के साथ ही साथ सारे गोसलपुर के नाम को उज्वल बना दिया। धन्य है ऐसे माता पिताओं को एवं धन्य है ऐसे महापुरुपों को। इस प्रकार आचार्यश्री की सर्वत्र प्रशसा होने लगी।

आचार्यश्री का मोहनी मन्त्र (वैराग्य) गोसलपुरवासी बहुत से भावुकों पर पड़ ही गया। करीब ११ भाई, बहिन दीक्षा के उम्मेदवार बन गये। कई मास मदिरा सेवी भी अहिंसा धर्म के अनुयायी हो गये। चातुर्मासानन्तर ११ भावुकों को दीक्षा दे सूरिजी ने पञ्चाल प्रान्त की ओर पदार्पण किया। दो चातुर्मास पञ्चाल प्रान्त में करके आचार्यश्री ने खूब ही धर्म प्रचार किया। श्रावस्ति नगरी में एक सघ सभा की जिसमें कुरु, पञ्चाल, शूरसेन, सिन्ध वगैरह में विहार करने वाले मुनिवर्ग व आसपास के प्रदेश के श्राद्ध समुदाय भी एकत्रित हुए। सूरिजी के उपदेश से श्रीसघ में अच्छी जागृति हुई। मुनियों के हृदय में धर्मप्रचार का नवीन उत्साह प्रादुर्भूत होगया। सघ सभा की सम्पूर्ण कार्यवाही समाप्त होने के पश्चात् आगत श्रमण समुदाय के योग्य मुनियों को उपाध्याय, गणि, गणावच्छेदक आदि पदवियों से विभूपित कर उनके उत्साह में वर्धन किया। वहा से तीर्थयात्रा करते हुए आप मथुरा में पधारे। वहा श्रीसघ ने आपका अच्छा सत्कार किया। जिस समय सूरिजी मथुरा में विराजते थे उस समय मथुरा में बौद्धों का कम पर वेदान्तियों का विशेप प्रचार था तथापि जैनियों का जोर कम नहीं था। जैन लोग बड़े २ व्यापारी उत्साही एव श्रद्धा सम्पन्न थे।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० प्रखर धर्म प्रचारक थे। आप जहा २ पधारते वहा २ खूब ही धर्मोद्योत करते। मथुरा में आपने पुन जैनत्व का विजयडङ्का बजवा दिया। मथुरा में आई हुई धार्मिक शिथिलता को आपने निवारित कर सुप्त जन समाज को जागृत किया व धर्म कार्य में कटिबद्ध होने के लिये प्रेरित किया। पश्चात् मथुरा से विहार कर क्रमश छोटे बड़े ग्राम नगरों में पर्यटन करते हुए मत्स्य देश की राजधानी वैराट नगर में पधारे। वहा से अजयगढ़ पधार कर सूरिजी ने चातुर्मास वहीं पर कर दिया। मरुधर वासियों को आचार्य श्री के अजयगढ़ में पधारने की खबर लगते ही बहुत आनंद आगया। सूरिजी के दर्शनार्थ आने

जाने वालों का तांता बंध गया। श्रावक लोग अपने २ नगर को पावन करने के लिये आचार्यश्री से आग्रह पूर्ण प्रार्थना करने लगे। सूरिजी ने भी भवभगढ़ के चातुर्मासानन्तर १२ पुरुष, महिलाओं को दीक्षित कर मारवाड़ प्रदेश की ओर पदार्पण कर दिया। क्रमशः पद्मावती शाकम्भरी, हिंडपुर, हंसावली, पद्मावती मेदिनीपुर, मुग्धपुर, होते हुए नागपुर पधारे। श्रीसंघ के आग्रह से वह चातुर्मास भी नागपुर में ही आचार्यश्री ने कर दिया।

मुग्धपुर में एक प्रभूत धन का स्वामी विशाल कुटुम्ब वाला सदाशंकर नामका ब्राह्मण रहता था। उसके हृदय की यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि मैं किसी भी मंत्र तंत्रादि के प्रयोग से किसी नगर के राजा प्रजा को अपनी ओर आकर्षित कर अपना परम भक्त बनाऊं जिससे मेरा जीवन निर्वाह शान्ति एवं सम्मान पूर्वक किया जासके। उक्त भावना से प्रेरित हो किसी विशेष आशा से एक समय वह ब्राह्मण किन्हीं चैत्यवासियों के उपाश्रय में गया और चैत्यवासी आचार्यों की विनय भक्ति, वैयावच कर प्रार्थना करने लगा—पूज्येश्वर! कृपा कर मुझे कोई ऐसे मंत्र की साधना करवावें कि मेरा मनोरथ शीघ्र सफल हो जाय। पहले तो आचार्यश्री ने कई बहाने बना कर उदासीनता प्रगट की पर जब भूदेव ने अत्याग्रह किया तो आचार्यश्री ने उसके ऊपर दया लाकर एक मंत्र की साधना बतलादी। छः मास की साधना विधि बतलाने पर ब्राह्मण ने भी आचार्यश्री के कथनानुकूल मंत्र साधन प्रारम्भ कर दिया। जब मन्त्र साधन के केवल तीन दिन ही अवशिष्ट रहे तब वह अन्तिम दिनों में मंत्र की साधना के लिये श्मशान में जाकर ध्यान करने लगा। अन्तिम दिन में रात्रि को देवोपसर्ग हुआ जिससे वह अवाक्मान हो पागलों की तरह नखरा नखरा करने लग गया। सदाशंकर पागल होजाने के कारण उसके कौटुम्बिक पारिवारिक बड़े ही दुःखी होगये। उन लोगों ने सदाशंकर के पागलपन नाशक बहुत ही उपाय किये पर दैविक कोप के आगे वे सब के सब उपचार निष्फल होगये। इस प्रकार कई वर्षों व्यतीत होगया। भूदेव के उठने बैठने, खाने पीने, हंसने, बोलने में सिवाय नखरा २ चिल्लाने के कोई दूसरी बात नहीं थी। चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० मुग्धपुर पधारे। ब्राह्मण लोग आचार्यश्री के प्रभाव व उपदेश से पहिले से ही प्रभावित थे अतः आचार्य दर्शन करते ही वे सदाशंकर को सूरिजी के पास लाकर प्रार्थना करने लगे—पूज्य महात्मन्! हम लोग बड़े ही दुःखी हैं। आपतो परोपकारी महात्मा हैं अतः हमारे इस संकट को शीघ्र ही मिटाने की कृपा कीजिये! दयानिधान! हम आपके उपकार को कभी नहीं भूलेंगे।

सूरिजी—यदि यह ठीक हो जाय तो आप लोग इसके बदले में क्या करेंगे?

ब्राह्मणगण—आपको मन्येऽभिलषित अभिलाषा की पूर्ति करेंगे। आप जो कहेंगे वही आदेश के अनुसार करेंगे।

सूरिजी—हम तो किसी वस्तु या पौद्गलिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। हां, आप लोगों को अपने आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म अवश्य स्वीकृत करना होगा। इसमें हमारा तो किंचित भी स्वार्थ नहीं है।

आचार्यश्री के इन वचनों से वे लोग विचार विमुग्ध बन गये। किसी के भी मुंह से हां या ना का कोई सन्तोषप्रद प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त हुआ तब, आचार्यश्री ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—ब्राह्मणों! जैनधर्म किसी व्यक्ति या जाति विशेष का धर्म नहीं। इसको पालन करने में सकल जन समुदाय जातीय बन्धनों से विमुक्त स्वतंत्र है। आप ब्राह्मण लोगों के लिये तो जैनधर्म ही आदि धर्म है। सर्व प्रथम भगवान् ऋषभदेव की शिक्षा से चार वेद बनाकर भरतेश्वर चक्रवर्ती ने आपके पूर्वजों को दिये। आपके पूर्वजों ने वेदों के द्वारा विश्व में सद्धर्म का प्रचार किया पर स्वार्थ लोलुपी ब्राह्मण कालान्तर में धर्मभ्रष्ट हो वेदों के असली तत्त्व को ही परिवर्तित कर दिया। अतः भगवान् महावीर ने पुनः ब्राह्मणों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जिससे इन्द्रभूत्यादि प्रभृति ब्राह्मणों ने जैन दीक्षा को स्वीकार स्वात्मा के साथ अनेक भव्यों का उद्धार किया। क्रमशः शय्यंभवसूरि,

यशोभद्र, भद्रबाहु, मुकुन्द, रक्षित, सिद्धसेन और हरिभद्रादि अनेक वेद निष्णात, अष्टादशपुराण स्मृतिपारङ्गत विद्वान ब्राह्मणों ने अपने मूलधर्म को स्वीकार कर उसकी आराधना की। आपको भी स्वार्थ के लिये नहीं किन्तु आत्म कल्याण के लिये ऐसा करना ही चाहिये। हा, यदि जैनधर्म के सिद्धान्तों के विषय में आपको किसी भी तरह की शका हो तो आप लोग मुझे पूछकर निश्शंक तया उसका निर्णय कर सकते हैं। इत्यादि—

ब्राह्मणों को आचार्यश्री का उक्त कथन सर्वथा सत्य एव युक्तियुक्त ज्ञात हुआ। उन्होंने आचार्यश्री के वचनों को हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लिया। तब सूरिजी ने कहा—सदाशकर को रात्रि पर्यन्त हमारे मकान में रहने दो और आप सब लोग अपना अवसर देखलें (पधार जावें)। आचार्यश्री के वचनानुसार सब लोग वहां से चले गये। रात्रि में आचार्यश्री ने न मालूम क्या किया कि प्रात काल होते ही सदाशकर सर्वथा निर्दोष होगया। ब्राह्मणों ने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार जैनधर्म को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस दिन से वे नक्षत्र नाम से कहलाने लगे। इतना ही क्यों पर नक्षत्र नाम तो उनकी सन्तान के साथ में भी इस प्रकार चिपक गया कि इनकी सन्तान परम्परा ही नक्षत्र के नाम से पहिचानी जाने लगी। क्रमश यह भी एक जाति के रूप में परिणित होगई।

इस घटना का समय पट्टावली निर्माताओं ने वि० स० ६६४ मिगसर सुद ११ का लिखा है।

किसी व्यक्ति, जाति एव धर्म का अभ्युदय होता है तब चारों ओर से अनाशय उन्हें लाभ ही लाभ होता है। यही बात पुनीत जैनधर्म के लिये भी समझ लीजिये वह समय जैनधर्म के अभ्युदय–उन्नति का था। उस समय जैनियों की सुसगठित शक्ति ने वादियों के आक्रमणों को सफल नहीं होने दिया। समाज पर जैनाचार्यों का अच्छा प्रभाव था। उनके हुक्म को समाज देव वचन के भाति शिरोधार्य करता था। हजारों श्रमण श्रमणियां एक आचार्य की आज्ञा के अनुयायी थे। जैन श्रमण जहा कहीं जाते–नये २ जैन बनाकर ओसवाल सघ में शामिल करते। जैन महाजन सघ की भी इतनी उदारता थी कि–राजपूत हो, वैश्य हो, या ब्राह्मण हो, जिस किसी ने जिस दिन से जैनधर्म का वासक्षेप ले लिया उसी दिन से वह जैन समझा जाने लगा। उनके साथ रोटी वेटी व्यवहार करने में भी किसी भी तरह का सकोच नहीं किया जाता जिससे उनके हृदय में नये पुरानों के बीच मतभेद के भाव या सङ्कीर्णता के विचार ही प्रादुर्भूत नहीं होते। आर्थिक सहायता प्रदान कर स्वधर्मी बन्धु के नाते उन्हें अपने समान बना लेने में तो उनकी विशेष उदारता थी। व्यापार क्षेत्र तो ओसवालों का पहिले से ही विस्तृत था अत वे जब कभी चाहते हजारों नवीन ओसवाल भाइयों को व्यापार क्षेत्र में लगा देते। नवीन जैन बने हुए व्यक्तियों के साथ रोटी वेटी व्यवहार हो जाय और उदार वृत्ति पूर्वक उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की जाय फिर तो उनके उत्साह में कमी ही किस बात की रह सकती ? वे लोग भी प्रसन्न चित्त हो हर एक सुविधा को पा धर्माराधन में सलग्न हो जाते।

उस समय महाजन संघ का राजा प्रजाओं में भी बड़ा आदर था प्राय राजतंत्र, वोहरगत एव व्यापार उनके ही हाथ में था। ये लोग अत्यन्त उदार वृत्ति वाले थे। काल, दुकाल में करोड़ों का द्रव्य व्यय कर देशवासी बन्धुओं को सहायता करते थे यही कारण था कि जैन बनने वाले नवीन व्यक्तियों को हर एक तरह से सुविधाए प्राप्त थीं।

वंशावलियों में नक्षत्र जाति की वशावली को बहुत ही विस्तार पूर्वक लिखी है। इस जाति के उदार नर रत्नों ने बहुत २ अद्भुत कार्य किये हैं। इन्हीं शुभ कार्यों के कारण इस जाति के महापुरुषों की धवल कीर्ति आज भी वशावलियों में अङ्कित है—
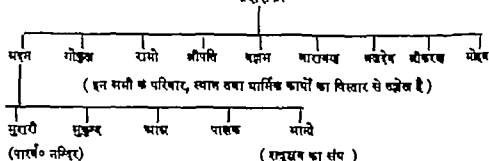
इसी भवत्र जाति से वि० सं० ११२१ में पौषा शाखा निकली। पौषा शाखा के लिये लिखा है कि व्यापारार्थ गये हुए भवत्र जाति वाले कई लोगों ने लाड प्रदेश खम्भात में अपना निवास स्थान बना लिया था। उस प्रान्त में उन्हें व्यापारिक क्षेत्र में बहुत ही लाभ पहुँचा। उन्होंने व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया। कालान्तर में भवत्र वासुपूज्य शाह दखपत ने एक विशाल मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया। एक दिन वह भोजन करने के निमित्त थाली पर बैठा ही था कि घृत में एक मक्खिका पड़कर मर गई। दखपत ने घृत में मृत मक्खिका को अपने पैर पर रखली। इसी समय किसी विशेष कार्य के लिये एक कारीगर भी वहाँ आगया। उसने भी सेठजी की यह करतूत देखली अतः उसके हृदय में शंका होने लगी कि ऐसा कृपण व्यक्ति भी कहीं मन्दिर बनवा सकता है ? सेठजी की उदारता की परीक्षा के लिये कारीगर ने कहा—सेठ साहब ! मन्दिर की नींव खुल गई है। प्रातःकाल ही १०० मन घृत की जरूरत है अतः इसका शीघ्र ही प्रबन्ध होना चाहिये। सेठ ने कहा—इसकी चिन्ता मत करो, कल आ जायगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही १०० मन घृत के कुप्पे सब आ गये। कारीगरों ने सेठजी के सामने ही घृत को नींव में डालना प्रारम्भ किया तब सेठजी ने कहा—कारीगरों ! मन्दिरजी का कार्य है। काम कच्चा नहीं रह जाय, घृत की और आवश्यकता हो तो और मंगवा देना पर मन्दिर का कार्य सुचारु रूप से मजबूत करना। सेठजी की इस उदारता पर एक बार बरबस गत की स्मृति से कारीगर को हंसी आ गई। सेठजी ने हंसी का कारण पूछा तो कारीगर ने कहा—सेठजी ! कल घृत में एक मक्खी गिर गई जिसको तो आपने पैरों पर रगड़ी और यहाँ मन के मन घृत के भरे हुए कुप्पे बेकार होगये अतः मुझे कल की बात याद आ कर हंसी आगई। सेठजी ने कहा—कारीगरों ! हम महाजन हैं। बेकार तो एक रत्ती भी नहीं जाने देते और आवश्यकता पड़ने पर करोड़ों रुपयों की भी परवाह नहीं करते। कहा—तुम ही सोचो, यदि मक्खी को यों ही डाल देता तो कितनी चींटियें आ जाती ? पैरों पर रख देने से घी चर्म नरम होगया और चींटियों की हिंसा भी बच गई। कारीगर ने कहा—सेठजी ! धन्य है आपकी महाजन बुद्धि को और धन्य है आपकी दया के साथ उदारता को !!!

शा दखपत ने ९२ देहरीवाला विशाल मन्दिर बनवाया व आचार्यश्री के कर कमलों से बड़े ही समारोह पूर्वक मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करवाई। जिसमें आगत साधर्मियों को पांच पांच मुहरें लड्डू में गुप्त डाल कर पहरामणी दी। दखपत की सन्तान ही भविष्य में 'पौषा' शब्द से सम्बोधित की जाने लगी।

संघवी—भवत्र गौत्रीय शा माला ने वि० सं० ११८९ में नागपुर से विराट् संघ निकाला अतः आपकी सन्तान संघवी कहलाई।

गरिया—भवत्र जाति के शा लखमा की गरिया ग्राम के जागीरदार के साथ अनबन होने के कारण

वे पाटण में चले गये। वहा उनको गरिया २ कहने लगे अत इनकी सन्तान गरिया कहलाने लगी।

खजान्ची—वि० सं० १२४२ में गरिया गौत्रीय रूपणसी ने धारा नगरी के राजा के खजाने का काम किया जिससे रूपणसी की सन्तान खजान्ची कहलाई। रूपणसी के पुत्र उदयभाण ने धारा में भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १२८२ में माघ शु० ५ को सूरिजी ने करवाई।

मूल नक्षत्र जाति और उनकी शाखाए—वंशावलियें जो मेरे पास हैं उसमें इस जाति के कुल धर्म कार्य निम्नलिखित मिले हैं—

८७—जैन मन्दिर, धर्मशालाए और जीर्णोद्धार।
२३—वार यात्रार्थ तीर्थों के सघ निकाले।
४२—वार श्रीसघ को अपने घर बुलाकर सघ पूजा की।
४—वार सूत्र महोत्सव कर ज्ञानार्चना की।
३—आचार्यों के पद महोत्सव किये।
१—मुग्धपुर में वड़ी वापिका बनवाई।
१३—इस जाति के वीर योद्धा युद्ध में काम आये और ७ स्त्रियां सती हुई।
२—दुष्काल में अन्न और घास देने का भी उल्लेख है।

इस प्रकार नक्षत्र जाति के वीरों ने अनेक प्रकार से देश, समाज एव धर्म की वड़ी २ सेवाए की हैं। इस समय नक्षत्र जाति के ओसवालों के घर कम रहे हैं। कई लोगों को तो अपनी मूल जाति का भी पता नहीं—यह भी समय की बलिहारि ही कही जा सकती है।

कागजाति—आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज एक समय लोद्रवा पट्टन की ओर पधार रहे थे। मार्ग में एक काग नामक नदी आई। नदी के तट पर कागर्षि नाम का एक सन्यासी तापस चौरासी धूनियें लगाकर तपस्या कर रहा था। उक्त तापस के तपस्तेज से प्रभावित हो रोली ग्राम के जागीरदार भाटी पृथ्वीधर तापस के लिये भोजन लेकर आये हुए खडे थे। जब आचार्यश्री काग नदी के तट पर पहुचे तो तापस ने आसन से उठकर सूरिजी का अच्छा सत्कार—सम्मान किया। और पास म पड़े हुए एक आसन को लेकर तापस ने कहा—महात्मन्! विराजिये। पर सूरिजी भूमिका प्रमार्जन कर अपने पास की कम्वली विछाकर आचार्यश्री वहीं पर विराज गये। पास ही में आपका शिष्य समुदाय भी यथा स्थान स्थित हो गया। तब तापस ने पूछा—क्या आप हमारे आसन पर नहीं बैठ सकते हैं?

सूरिजी—हम तो आपके अतिथि हैं किन्तु हमारा आचार भूमि को प्रमार्जन करके ही बैठने का है। देखिये यह रजोहरण भी इसी काम के लिये है। इससे प्रमार्जन करते हुए किसी भी जीव का विघात नहीं होता है।

तापस—तो क्या हमारे आसन के नीचे जीव हैं?

सूरिजी—जीव हैं या नहीं, इसके लिये तो हम कुछ भी नहीं कह सकते पर हमारा व्यवहार भूमि प्रमार्जन करने का है।

बस, तापस ने अपना आसन उठाया तो उसके नीचे बहुत सी चीटियाँ पाई गई। अब तो तापस पूर्ण लज्जित हो गया। सूरिजी ने कहा—तपस्वीजी! एक आसन में ही क्या पर इस ज्वाजल्यमान अग्नि में भी न मालूम कितने जीवों का अनायास ही सहार होता होगा? क्या इस विषय में भी आपने कभी गम्भीरता पूर्वक विचार किया है? यदि आपको आत्म कल्याण करना ही इष्ट है तो इन बाह्य निरर्थक कर्म बन्धक क्रिया काण्डों से क्या लाभ है? आत्मकल्याण के लिये तो आभ्यन्तरिक आत्मशुद्धि होना आवश्यक है।

तापस भद्रिक परिणामी और सरल स्वभावी था अतः कहने लगा-महात्मन् ! हमारे गुरुओं ने जो हमें मार्ग बतलाया है उसी का अनुसरण करते हुए हम परम्परा से चलते आरहे हैं। कृपाकर अब आप ही आत्मिक शुद्धि का विस्तृत स्वरूप समझाने का कष्ट करें। आचार्यश्री ने भी तापस के आत्म कल्याणार्थ आत्म स्वरूप, आत्मा के साथ अनादि काल से लगे हुए कर्मों का सम्बन्ध स्वरूप कर्म आदान व मिथ्यात्व के कारण और कर्मों से मुक्त होने के लिये सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र और तप का विस्तृत स्वरूप कह सुनाया। अन्त में आचार्यश्री ने तपस्वीजी को सम्बोधित करते हुए कहा-तपस्वी जी ! गृहस्थ लोग अपने खजाने के ताला लगाया करते हैं। उसको खोलने वाली चाबी छोटी सी होती है पर बिना चाबी के ताले को किन्ना ही पीटो पर वह खुल नहीं सकता। घृत, दधि में प्रत्यक्ष स्थित होता है उसको कितनी ही बार इधर उधर कर लोभिये पर बिना मंथ (बिलोने) के घृत नहीं निकलता है। इसी प्रकार आत्म स्वरूप को भी समझ लीजिये। आत्मा स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा स्वरूप है पर वह बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, एवं तप के विशुद्ध नहीं होता। जैसे ताला चाबियों के द्वारा सहज ही में खोला जा सकता है। घृत-मन्थ द्वारा बहुत ही सुगमता पूर्वक निकाला जा सकता है वैसे ही उक्त साधनों के द्वारा आत्ममल को दूर कर परम निर्मल सच्चिदानन्दमय ईश्वरीय स्वरूप प्राप्त बनाया जा सकता है।

तापस—तो हमें भी कृपा कर आत्मा से परमात्मा बनने के विशुद्ध स्वरूप को बतलाइये।

सूरिजी—आप इस हिंसा मय बाह्य क्रियाकाण्ड को त्याग कर अहिंसा भगवती की पवित्र दीक्षा से दीक्षित होजाइये। आपको अपने आप आत्मा से परमात्मा बनन का उपाय व सन्मार्ग का ज्ञान मार्ग प्राप्त हो जायगा।

सूरिजी और तापस की पारस्परिक चर्चा को पास ही में बैठे हुए रोजी ग्राम के जागीरदार पृथ्वीधर बहुत ही ध्यान पूर्वक सुन रहे थे। उनके साथ आये हुए अन्य क्षत्रियों की आकांक्षा वृत्ति भी धर्म के विशिष्ट स्वरूप को जानने के लिये जागृत हो उठी। वे सब के सब उत्कण्ठित हो देखने लगे कि अब तापसजी क्या करते हैं ?

तापस ने थोड़े समय मौन रह कर गम्भीरता पूर्वक विचार किया, पश्चात् विभूति को मस्तक करते हुए आचार्यश्री के सामने मस्तक झुका कर कहने लगा-प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिये तैय्यार हूँ। बतलाइये मैं क्या करूं ? सूरिजी ने भी उनको जैन दीक्षा का स्वरूप समझा कर अपना शिष्य बना लिया। तपस्वीजी का नाम गुणानुरूप तपोमूर्ति रख दिया। पृथ्वीधर आदि उपस्थित क्षत्रिय समुदाय को वासक्षेप पूर्वक शुद्ध कर उपकेश वंश में सम्मिलित कर लिया। कार्य की स्मृति के लिये सूरिजी ने कहा-आज से आप उपकेश वंश में काग जाति के नाम से पहिचाने जावेंगे। पृथ्वीधर प्रमुख क्षत्रिय वर्ग ने सूरिजी का कहना स्वीकार कर लिया। इसके साथ में ही प्रार्थना की कि गुरुदेव ! आप हमारे ग्राम में पधार कर हमें आपकी की सेवा का लाभ दें व मार्ग स्खलित बन्धुओं को जैनधर्म की दीक्षा देकर हमारे समान उनका भी कल्याण करें। सूरिजी ने लाभ का कारण सोचकर अपने शिष्य समुदाय के साथ रोजी ग्राम में पदार्पण किया। वहाँ की जनता को सदुपदेश दे जैनधर्म में उन्हें दीक्षित किया।

इस घटना का समय पट्टावली निर्माताओं ने वि सं १ ११ के वैशाख सुद पूर्णिमा का बताया है। इस जाति में भी बहुत से दानी मानी, नामी नर रत्न पैदा हुए जिन्होंने अपने कार्यों से संसार में बहुत ही नाम कमाया। इस जाति का मूल पुरुष पृथ्वीधर-भाटी राजपूत था। इनकी वंश परम्परा निम्न है—
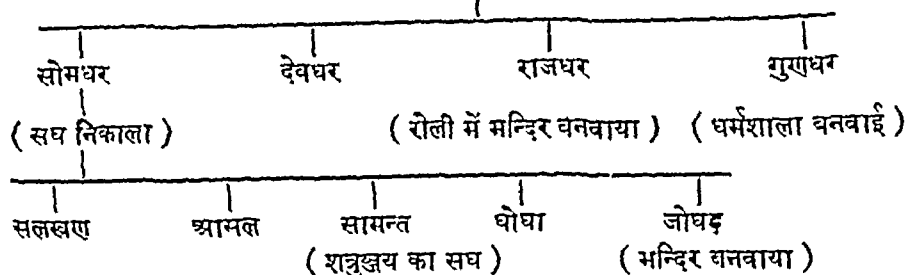
१—वि० सं० १०४५ में धामा ग्राम में सोमधर के पुत्र जोघड़ ने शान्तिनाथजी का मन्दिर वनवाया।

२—वि० स० १०८६ में सोमधर के दूसरे पुत्र आसल ने शत्रुञ्जय का सघ निकाल कर स्वधर्मी वन्धुओं को पहिरावणी दी व तीन स्वामी वात्सल्य किये।

३—वि० स० ११३८ में घोघा के पुत्र दैपाल ने लोद्रवा में पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर वनवाया।

४—वि० स० १२२१ मादलपुर में शाह रामा ने भगवान् महावीर का मन्दिर वनवाया।

५—वि० स० १२३६ नागपुर से काग जाति के शाह वीर ने शत्रुञ्जय का संघ निकाला।

६—वि० स० १६१५ तक की वशावलियाँ मेरे पास में हैं उनमें काग जाति की खासी नामावली लिखी है। वशावलियों से पाया जाता है कि काग जाति के व्यापारी वर्ग भी व्यापार निमित्त सुदर प्रान्तों में जाकर वस गये थे। इस जाति की हंसा, जालीवाहु, कुकड, निशानिया, भंगिया, सचवी, कोठारी, मेहतादि कई शाखा-प्रतिशाखाएं निकली थी। इससे पाया जाता है कि एक समय यह जाति वहुत उन्नति पर थी। वर्तमान में तो काग जाति का मादलिया ग्राम में एक घर ही रह गया है ऐसा सुना जाता है। वशालियों के आधार पर इस जाति के उदारचित्त श्रीमन्तों ने निम्न शासन प्रभावक कार्य किये—

६२—मन्दिर एवं धर्मशालाए वनवाई।
२६—वार तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाले।
३६—वार सघ को वुलाकर सघ पूजा की।
४—वीर योद्धा इस जाति के युद्ध में काम आये।
२—वीरांगनाए अपने मृत पति के साथ सती हुई।

इत्यादि अनेक कीर्तिवर्धक कार्यों का उल्लेख वशावलियों में इस जाति के सम्बन्ध में पाया जाता है।

एक वार आचार्यश्री कक्कसूरिश्वरजी महाराज अपनी शिष्य-मण्डली के साथ विहार करके पधार रहे थे। मार्ग में भयानक अरण्य को अतिक्रमण करते करते ही भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओर प्रयाण कर गये। सूर्यास्त होजाने के कारण आप चारित्र वृत्ति विषयक नियमानुसार अरण्य स्थित एक मन्दिर में ही ठहर गये। आपश्री का शिष्य समुदाय मार्ग जन्य श्रम से श्रमित होने के कारण जल्दी ही निद्रादेवी की सुखमय गोद का आश्रय लेने लग गया पर आचार्यश्री की आखों में निद्रा का या प्रमाद का किञ्चित् मात्र भी विकार पैदा नहीं हुआ। वे ज्ञान ध्यानादि पवित्र क्रियाओं में निमग्न होकर समय को व्यतीत करने लगे। मध्य रात्रि के शून्य एव निनाद विहीन नीरव समय में यकायक सिंह पर वैठी हुई एक देवी मन्दिर में आई। वहा पर साधुओं को सोते हुए देख देवी के क्रोध का पारावार नहीं रहा। देवी क्रोधाभिभूत हो वोल उठी—अरे साधुओं ! तुम लोग यहा क्यों पड़े हो ? [illegible] त्याग करदो अन्यथा सव ही को अभी अपना ग्रास

बना लूँगी। देवी के इस भिन्न भिन्न कठोर वचनों को सुनकर आचार्यश्री ने कहा—देवीजी! जरा शान्ति रक्खो। जंगल के बहुत से निरपराध मूक पशुओं के मारने पर भी आपकी क्षुधाग्नि शान्त नहीं हुई हो और निष्कारण वृत्ति के निर्वाहक दुर्लभ्य साधुओं का भी मारना चाहती हो तो मार सकती हो पर मुनियों के प्राण हरण के पश्चात् तो आपकी भी क्षुधा शान्त हो जायगी न। खैर! आज से ही इस बात की प्रतिज्ञा कर लेवें कि मुनियों के प्राण हरण करने के पश्चात् मैं किसी भी जीव का अपघात नहीं करूंगी। इस प्रकार की भविष्य के लिये प्रतिज्ञा कर आप अपना प्रथम परिचय मुझे ही बनावें। आचार्यश्री के निडरता पूर्ण उपदेशात्मक स्पष्ट वचनों को श्रवण कर देवी एक दम निस्तब्ध होगई। कुछ क्षणों के लिये वह आश्चर्य विमुग्ध हो विचार संलग्न होगई। पश्चात् धीमे स्वर से बोली—आप लोग हमारे इस मकान में क्यों व किस की आज्ञा से ठहरे! कल यहाँ मेरी पूजा होने वाली है अतः आप लोग यहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर देवें।

सूरिजी—ठीक है कल आपकी पूजा होगी तो हम भी आपकी पूजा करेंगे।

देवी—नहीं, मैं आप लोगों की पूजा नहीं चाहती हूँ आप लोग यहाँ से चले जावें।

सूरिजी—देवीजी! हम जैननिर्ग्रन्थ (मुनि) हैं। रात्रि में गमनागमन करना हमारे लिये शास्त्रीय व्यवहार से विल्कुल विपरीत है। अतः शास्त्रीय आज्ञा का लोपकर किञ्चित् भय या दबाव से यहाँ चला जाना सर्वथा अयुक्त है। इस पर आप तो जगदम्बा माता कहलाती हो। जब पुत्र माता के यहाँ आवे तब पुत्रों के आगमन से माता को इस प्रकार कोप करना व क्रोधावेश में आकर प्रिय सात्विक पुत्रों का अपमान करना क्या माता के लिये शोभास्पद है? देवीजी! जरा ज्ञानदृष्टि से भी विचार कीजिये कि पूर्व जन्म के सुकृतोदय से तो आप का इस प्रकार दिव्य देवर्द्धि प्राप्त हुई है पर इस निरपराध पशुओं के क्रूर, निष्ठुर, राक्षसीय जघन्य भयङ्कर कार्यों को करके भविष्य में कैसी गति प्राप्त करेंगी? पूर्व जन्म में तो आप बहुत से जीव सत्वों के रक्षक प्रति पालक थे अतः सुरलोक के सुख के पात्र हुए पर इन सब पुण्योत्पादक कार्यों के विपरीत इस देव योनि में जगत् की माता के रूप में भी जीव भक्षक बनकर अपना न मालूम कितना अधःपतन करेंगी। देवीजी! मेरे इन वचनों को आप किञ्चिन्मात्र भी बुरा मत मानियेगा। मैं आपसे जिज्ञासा वृत्ति पूर्वक पूछना चाहता हूँ कि इस प्रकार के पापाचार या जीव भक्षक कार्यों में आपका क्या स्वार्थ साधन होता है? फिर पराए मूक पशुओं की असमय बलि लेकर अपने आपको कृतकृत्य मानना कहाँ तक समुचित है? देवीजी! बिना स्वार्थ के या किसी विशेष प्रयोजन के अभाव में तो मन्द मनुष्य भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता फिर आप तो ज्ञानवान् देव हैं। आपको ऐसा कौन गुरु मिला कि पापाचार का उपदेश देकर सीधा नरक का भयङ्कर रास्ता बतलाया। देवीजी! सच्चा सपूत तो वही हो सकता है जो अपनी माता का हित इच्छुक हो उसके भावी जीवन को निर्माण करने के सुलभ साधनों को उपलब्ध करे। उसके भविष्य के कण्टकाकीर्ण मार्गों को सबल प्रयत्नों द्वारा स्वच्छ कर चारु रमणीय बना दे। उसकी गति को सुधारे। अतः मैं भी पुत्र के रूप में आप से यही निवेदन करूंगा कि आप इस जघन्य निकृष्टतम पापाचार को सर्वथा त्याग दें। भविष्य के लिये भी दृढ़ प्रतिज्ञा करलें कि—मैं किसी भी जीव का किसी भी प्रकार से वध नहीं करूंगी। इत्यादि।

देवी ने आचार्यश्री के एक २ शब्द को बहुत ही ध्यान पूर्वक सुना। आचार्यश्री के परमार्थ मार्ग के दिग्दर्शक वक्तव्य के समाप्त होने पर देवी ने उन वचनों पर गहरा विचार किया तो सूरिजी का एक २ शब्द सत्य एवं युक्तियुक्त ज्ञात हुआ। वह स्थिर चित्त से विचार करने लगी—जीवों का बदला तो भव भवान्तर में देना ही पड़ेगा। फिर भी इस जीववध में मेरा तो किञ्चित् भी स्वार्थ नहीं है। केवल मेरे नाम के बहाने ये पाखण्डी लोग हजारों जीवों को अपना स्वार्थ साधन करने के लिये मार कर खा जाते हैं। रुधिर एवं मांस से सनी हुई अस्थि राशियां मेरे पवित्र स्थान पर छोड़ जाते हैं, जिसकी दुर्गन्ध का अनुभव मुझे कई दिनों तक करना पड़ता है। सब तरह से जीव हिंसा में सिवाय हानि के किञ्चित् भी लाभ तो है ही नहीं

देवी से जीव हिंसा छोड़ाई

अत विचार कर देवी बोली—भगवन्! अज्ञातता के कारण मार्गस्खलित हो, सुखावह चारु पथ का त्याग कर अरण्य के भयावह, दुःखप्रद, मार्ग से प्रयाण करती हुई मुझ अभागिनी को आपश्री ने आज सन्मार्ग पर आरूढ कर बहुत ही उपकार किया है। मैं आज से ही आपकी चरण किङ्करी-सेविका होकर आपश्री की सेवा में रहने की प्रतिज्ञा करती हूँ। अब से मेरे नाम पर एक भी प्राणी का अपघात नहीं हो सकेगा। प्रभो! मैं व्याघ्रेश्वरी देवी हूँ। आप जिस समय मुझे याद फरमावेंगे उसी समय में आपश्री की सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी। इस पर सूरिजी ने कहा—देवीजी! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि देव योनि में विवेक एव ज्ञान होता है, यह सत्य है फिर भी मैंने आपको अपनी ओर से अत्यन्त कठोर शब्द कहे इसके लिये आप क्षमा प्रदान करें। साथ ही आपने जो प्रतिज्ञा की है उसके लिये धन्यवाद भी स्वीकार करें। अब से आप वीतराग जिनेश्वरदेव की भक्ति-सेवा किया करें जिससे आपके पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का क्षय होवे और भविष्य के लिये शुभ गति एव सद्धर्म की प्राप्ति होवे। सूरिजी के उक्त कथन को देवी ने तथास्तु कह कर शिरोधार्य किया। पश्चात् वदन करके अदृश्य होगई।

प्रातःकाल इधर तो आचार्यश्री अपने शिष्य समुदाय के साथ प्रतिक्रमणादि क्रिया से निवृत्त हुए और उधर से व्याघ्रपुर नगर के रावगजसी एव अन्य नागरिक लोग खूब सजधज कर उत्साह के साथ भैंसे एव बकरे की बलि को लिये हुए मन्दिर के समीप आ पहुँचे। जब आगतजन समुदायने मन्दिर में साधुओं को देखे तो उन लोगों ने कहा—महात्माजी! आप लोग बाहिर पधार जाइये। यहा अभी हम लोग देवी को पूजा करेंगे अत आपको इतना कष्ट देना पड़ता है। सूरिजी ने कहा-सरदारों! आप लोग देवी के भक्त हैं और देवी की पूजा करने आये हैं पर ये भैंसे बकरे क्यों लाये हैं?

सरदार—इससे आपको क्या प्रयोजन है? हम कहते हैं कि आप मन्दिर से बाहिर पधार जाइये।

सूरिजी—जैसे आप देवी के भक्त हैं वैसे हम इन भैंसे बकरों के भी प्राण रक्षक हैं। इनको मारने तो क्या पर कष्ट पहुँचाने तक भी नहीं देवेंगे, समझे न सरदारों?

सरदार—महात्मन्! यदि हम देवी को बल बाकुल न देवेंगे तो देवी कुपित हो हम सब को मार डालेगी।

सूरिजी—यदि आपको देवी के कोप का ही भय हो तो उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। आप निस्सकोचतया इन पशुओं को छोड़दें।

सरदार—पर, आप पर विश्वास कैसे किया जाय?

सूरिजी—सरदारों! मैंने देवी को उपदेश दिया और देवी ने भी प्राणिवध रूप बलि को नहीं लेने की दृढ प्रतिज्ञा करली है। आप भी निर्भीक होकर इन पशुओं को निर्भीक होकर अभय दान दे देवें।

सूरिजी के उक्त कथन पर एक सरदार को विश्वास नहीं हुआ। उसने एक बकरे के गले में निर्दयता पूर्वक छुरा चला ही दिया। पर देवी की प्रेरणा से वह घाव बकरे के गले में न लग कर स्वय मारने वाले सरदार के गले ही में लग गया। इस चमत्कार पूर्ण दृश्य को देखकर तो सब ही आश्चर्य चकित एवं भय भ्रान्त हो गये। अब तो सूरिजी के कहने पर सब को विश्वास होगया। आचार्यश्री ने भी तत्र उपस्थित राव गजसी आदि क्षत्रिय वर्ग को उपदेश देकर जैन धर्म की दीक्षा से दीक्षित किया। इन्हे अहिंसा धर्म के परमोपासक बनाकर उपकेश वश में सम्मिलित किया। उनको समझाया कि आप लोगों की कुल देवी व्याघ्रेश्वरी है। देवी की पूजा भी कुकुम, चदन, श्रीफल, मोदक आदि सात्विक पदार्थों से ही की जाती है न कि प्राण वध रूप विभत्स्य बलि से।

इस घटना का समय वशावली निर्माताओं ने वि० स० १००६ का लिखा है। रावगजसी की वशावली निम्न प्रकारेण है—

रावगजसी के दो रानियें थीं। एक क्षत्रिय वंश की दूसरी उपकेशवंश की।

क्षत्रिय रानी से चार पुत्र हुए—१ दुर्गो २ कानड़ ३ बाघो और ४ सांगो रावगजसी का पाटवी ज्येष्ठ पुत्र दुर्गा था। एक समय दुर्गा और बाघा के परस्पर तकरार होगई। आपसी कलह में दुर्गा ने बाघा को व्यङ्ग किया—अरे मैं कुछ पुरुषोचित पुरुषार्थ हो तो नवीन राज्य क्यों नहीं स्थापित कर लेता ? इस ताने के मारे अपमानित हो बाघा न व्यामेश्वरी देवी के मन्दिर में जाकर तीन दिवस पर्यन्त अट्टम व्रत ध्यान लगाया। तीसरे दिन देवी ने प्रत्यक्ष कहा—बाघा ! राज्य तो तेरे तकदीर में नहीं लिखा है, पर मैं तुमको सोने से भरे हुए सोलह चरू बतला देती हूँ। उस धन को प्राप्त करके तो तू राजा से भी अधिक नाम कर सकेगा। बाघा ने भी देवी के कथन को सहर्ष शिरोधार्य कर लिया। देवी ने भी अपने मन्दिर के पीछे भूमिस्थित १६ चरू स्वर्ण से परिपूर्ण बतला दिये। बस फिर तो था ही क्या ? बाघा ने भी रात्रि के समय उन १६ चरुओं को लाकर अपने कब्जे में कर लिया। देवी की कृपा से प्राप्त द्रव्य का सदुपयोग करने के निमित्त सब से पहिले बाघा ने अपने नगर के बाहिर भगवान् महावीर स्वामी का ८४ देहरियों वाला एक विशाल मन्दिर बनवाया। मन्दिर के समक्ष ही धर्म ध्यान करने के लिये दो धर्मशालाएं बनवाई। इस प्रकार वह देवी से प्राप्त द्रव्य से पुण्योपार्जन करता हुआ सुख पूर्वक विचरने लगा। उसी समय प्रकृति के भीषण प्रकोप से एक महा-भयंकर भीषण दुष्काल पड़ा। दया से परिपूर्ण उदार हृदयी बाघा ने देश भाइयों की सेवा के निमित्त करोड़ों रुपयों का दान कर स्थान २ पर मनुष्यों एवं पशुओं के लिये अन्न एवं घास की दानशालाएं उद्घाटित की। एक बड़ा तालाब खुदवा कर जल कष्ट को निवारित किया। अब पांच वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात् मन्दिर का सम्पूर्ण कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया तब आचार्यश्री देवगुप्तसूरि को बुलवा कर महामहोत्सव पूर्वक मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करवाई। आचार्यश्री का चातुर्मास करवाकर बहुत द्रव्य व्यय किया। भगवती सूत्र का महोत्सव कर ज्ञानार्चना की। चातुर्मास के बाद संघ सभा कर जिन शासन की प्रभावना की व योग्य मुनियों को आचार्य पदवियाँ प्रदान करवाई। उसी समय पवित्र तीर्थ श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा के लिये एक विराट् संघ निकाला। संघ में सम्मिलित होने वाले स्वधर्मी बन्धुओं को पहिरावणी प्रदान करने में ही करोड़ों रुपयों का द्रव्य-व्यय किया। देवी के वरदानानुसार शा० बाघा ने केवल जैन संसार के हित के लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये अनेक जनोपयोगी कार्य किये। अपना नाम इन शुभ कार्यों से राजाओं की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत किया। शाह बाघा की उदारवृत्ति की धवल ज्योत्स्ना इस तरह चतुर्दिक में प्रकाशित होगई। यही कारण है कि शाह० बाघा की सन्तान भी भविष्य में बाघा के नाम से बापरेचा नाम से सम्बोधित की जाने लगी। वंशावलियों में बाघ की सन्तान परम्परा का विस्तृत उल्लेख है पर नमूने के तौर पर यहां साधार रूप में लिख दी जाती है यथा—

उपकेशवंश की रानी से पांच पुत्र पैदा हुए यथा—(१) रामण (२) मालदास (३) हरख (४) माणो (५) चापो।
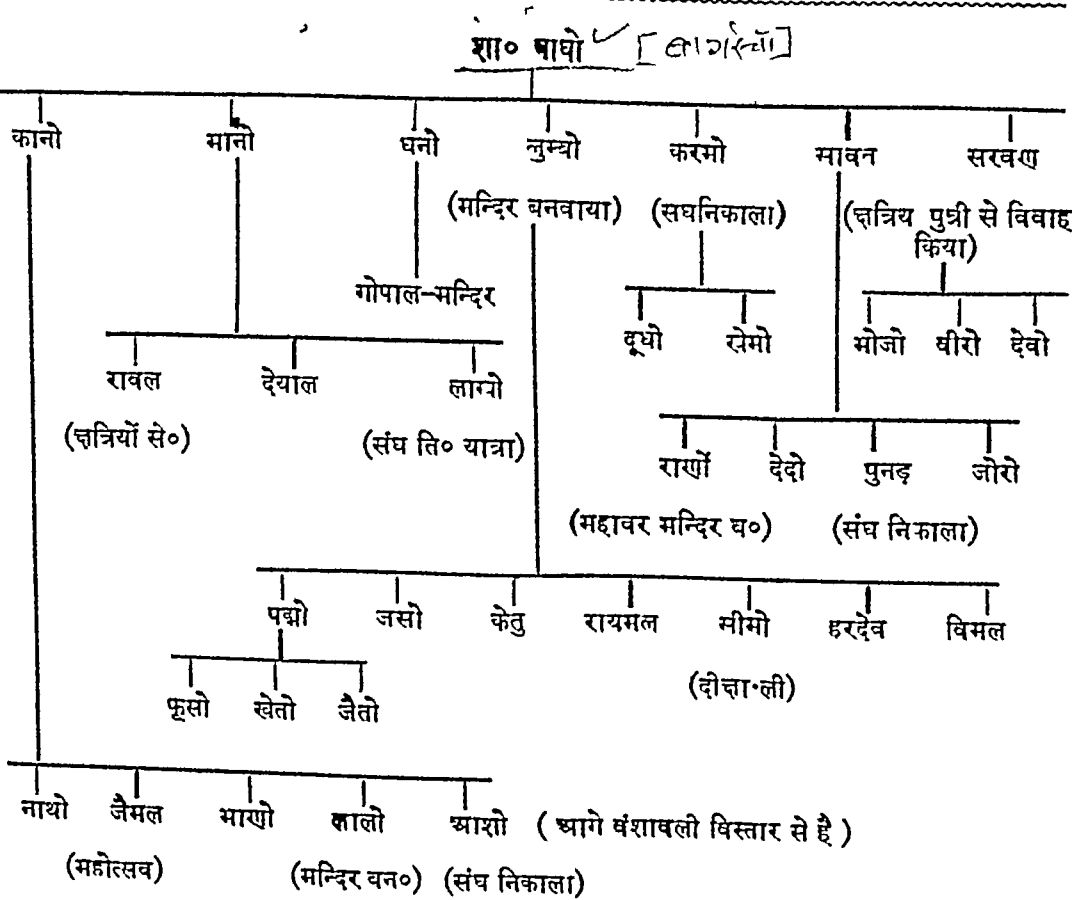
इस प्रकार बहुत ही विस्तृत वंशावलिया हैं पर स्थानाभाव से यहां उतनी विशद नहीं लिखी जासकी। मेरे पास वर्तमान वशावलियों के अनुसार बाघरेचा जाति के उदार नर रत्नों ने निम्न प्रकारेण देश समाज एव धर्म के कार्य किये हैं। यथा—

१४२—मन्दिर, धर्मशालाएं एवं जीर्णोद्धार करवाये।
५३—बार तीर्थ यात्रा के लिये संघ निकाले।
१९—बार आगम बाचना का महोत्सव किया।
७२—बार संघ को घर बुलवा कर सघ पूजा की।
६—बार दुष्काल में शत्रु कार (दान शालाएं) उद्‌घाटित कीं।
७—आचार्यों के पद महोत्सव किये।
५३—वीर योद्धा समाम में वीर गति को प्राप्त हुए।
१३—वीराङ्गनाए अपने पतियों के पीछे सतिया हुईं।

इनके सिवाय भी अनेक प्रकार के धार्मिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्य करके इस जाति के नर रत्नों

न अपनी उज्ज्वल कीर्ति को सर्वत्र अमर बना दी। एक समय तो इस जाति की इतनी संख्या बढ़ गई थी कि कालान्तर में कई नामी पुरुषों के नाम से कई शाखायें प्रतिशाखायें प्रगट निकली। जैसे-सान्ती, संचेती, सालेचा, भाडूला मरिचादि न सब श्रेष्ठि जाति की ही शाखायें हैं। वर्तमान में तो किन्हीं २ स्थानों पर इस जाति के घर दृष्टिगोचर होते हैं पर जिस समय जैनियों की संख्या करोड़ों की थी उस समय इस जाति की भी विस्तृत-संख्या थी। यह तो पड़ती का चक्र संसार में चलता ही रहता है। समय बड़ी भी बलवान् गति है। आज तो इस जाति के सपूत अपने पूर्वजों के गौरव को भी भूल बैठे हैं यही पतन का कारण है।

इस प्रकार आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने अनेक क्षत्रियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर महाजन संघ की अभिवृद्धि की। उस समय के आचार्यों का-जिसमें भी उपकेश गच्छाचार्यों का तो यह मुख्य ध्येय ही था। जिन २ नवीन क्षेत्रों में पदार्पण करना उन २ क्षेत्र निवासियों को जैनत्व के संस्कार से संस्कारित कर महाजन संघ में सम्मिलित करना तो उन्होंने अपना कर्तव्य ही बना लिया था। यही कारण था कि उस समय का जैन समाज धन जन, कुटुम्ब परिवार, संख्यादि सब में बढ़ता हुआ था।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० के चमत्कार के विषय में कई उदाहरण मिलते हैं पर स्थानाभाव से सबको यहां पर स्थान नहीं दिया जा सकता है। उपरोक्त थोड़े बहुत उदाहरणों से ही पाठक इस बात को समझ सकेंगे कि उस समय के आचार्यों का विहार क्षेत्र बहुत विशाल था। आचार्य बनने के पूर्व आचार्य पद योग्य उन्हें कितनी योग्यतायें हासिल करनी पड़ती इसका अनुमान भी सूरीश्वरों की कार्यशैली से सहज ही लगाया जा सकता है। उनकी उपदेश शैली का जन समाज पर कितना प्रभाव पड़ता था वे देवी देवताओं को भी कितनी निर्भीकता पूर्वक प्रतिबोध देते थे सब जैनों को बनाकर उनके साथ किस तरह का व्यवहार रखते सब साधारण जनता के लिये भी उनका हृदय कितना विशाल एवं गम्भीर था इत्यादि अनेक बातों का स्पष्टीकरण आचार्यश्री के जीवन वृत्त का पठन से किया जा सकता है। उनके जीवन की मुख्य विशेषता तो यह थी कि उस समय में भी आज के समान कई गच्छ समुदाय एवं शाखाओं के वर्तमान होने पर भी उनमें परस्पर क्लेश कदाग्रह नहीं था। वे एक दूसरे को अपने से अधिक सिद्ध कर जिन शासन की प्रभुता को प्रदर्शित करते। वे तो अपने कर्तव्य-पथ की ओर लक्ष्य कर जिन शासन की प्रभावना में ही अपने मुनि जीवन की सार्थकता समझते। तब ही तो वे पारस्परिक प्रेम एवं स्नेह के बल पर शासन का इतना अभ्युदय कर सके थे।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने अपने ४६ वर्ष के शासन में दक्षिण महाराष्ट्र से पूर्व दिशा के प्रान्तों पर्यन्त विहार करके लाखों मनुष्यों को मांस मदिरा का त्याग करवाया। उन्हें जैन दीक्षा से दीक्षित कर पूर्वाचार्यों के समान उपकेश वंश की वृद्धि की। अनेक तापस, सन्यासी एवं गृहस्थों को जैन दीक्षा देकर उन्हें मोक्षमार्ग के आराधक बनाये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठायें करवाईं। देवी देवताओं के बहाने बलि दिये जाने वाले मूक पशुओं को अभयदान दिया। कई योग्य मुनियों को पद प्रतिष्ठित कर विविध २ प्रान्तों में विहार करवाया। आप स्वयं ने सब प्रान्तों में परिभ्रमण कर मुनियों के उत्साह को वृद्धि गत किया। इस प्रकार आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने जैन धर्म की अमूल्य सेवा की जिसको जैन समाज एक क्षण भर भी नहीं भूल सकता है।

अन्त में देवी सच्चायिका के परामर्शानुसार अपनी आयु अल्प जान कर आचार्यश्री ने नागपुर के शा० … के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय पद्मप्रभ को सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया। अन्त में १४ दिन के अनशन समाधि पूर्वक आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० स्वर्ग पधार गये।

आपके मृत शरीर के निर्वाण महोत्सव में शा० … ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया। केवल चन्दन के काष्ठ से ही आपका अग्नि संस्कार किया गया। आपश्री की अग्नि संस्कार की रक्षा पर भी लोग इस प्रकार टूट पड़े कि रक्षा के अभाव भूमि में खाड़ी खड्ड पड़ गई। अहा ! हा !! उस समय का चमत्कारी, उपकारी

महात्माओं पर जनता की कैसी श्रद्धा एवं भक्ति थी ? सच कहा जाय तो उस विश्वास एवं श्रद्धा ही उनके अभ्युदय का मुख्य कारण था। चाहे सुविहित हो चाहे शिथिल चैत्यवासी हो पर परस्पर एक दूसरे की श्रद्धा न्यून नहीं करते थे वे जानते थे कि आज मैं दूसरों की श्रद्धा विश्वास न्यून कर दूंगा तो दूसरा मेरा विश्वास उठा देगा इससे गृहस्थ लोग श्रद्धा एवं विश्वासहीन हो जायगे। इससे शासन एवं समाज का पतन होना निश्चय है अतः वे दीर्घदर्शी प्रत्येक व्यक्ति की आचार्य एवं मुनियों के लिये श्रद्धा बढ़ाया करते थे जब से मुनियों में ऐसी कुत्सित भावना पैदा हुई कि अपनी प्रशंसा, दूसरों की निंदा तब से ही समाज का पतन प्रारम्भ हुआ। क्रमशः उसने उग्र रूप धारण कर ही लिया।

यों कहो तो उन भाग्यशाली पुरुषों का पुन्यबल बड़ा ही जबर्दस्त था कि उनके जरिये से जो शासन का कार्य होता वह अच्छे से अच्छा लाभप्रद ही होता था आज हमारे संकीर्ण हृदय में उस समय की विशाल बातों को स्थान नहीं मिलता हो पर वास्तव में उनके जीवन की एक एक घटना यथार्थ को लिये हुए प्रमाणिक ही कही जा सकती है।

पूज्याचार्य देव ने अपने ५६ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं को जैन दीक्षाएं दीं।

१—रणथंभोर	के	बाफना	जाति के	मोहन ने	दीक्षा ली
२—गोपगिरी	के	तोडियाणी	,,	पारस ने	,,
३—मारणपुर	के	मगनाड़िया	,,	पुनड़ ने	,,
४—योगनीपुर	के	छाजेड़	,,	पेथा ने	,,
५—ब्रह्मपुरी	के	आर्य	,,	पुना ने	,,
६—राजपुर	के	राम्बेचा	,,	गोमा ने	,,
७—नाणपुर	के	श्रेष्टि	,,	पालु ने	,,
८—विजयपुर	के	चोरड़िया	,,	वीरम ने	,,
९—कालेरा	के	सचेंति	,,	भोजा ने	,,
१०—लोद्रवापुर	के	श्रीश्रीमाल	,,	सोला ने	,,
११—दीवबंदर	के	नक्षत्र	,,	पद्मा ने	,,
१२—राजोरी	के	गुरु	,,	पर्वत ने	,,
१३—पाटली	के	चंडालिया	,,	धापा ने	,,
१४—कुरड़ी	के	ककरिया	,,	भागा ने	,,
१५—छत्रीपुरा	के	पोकरणा	,,	खेता ने	,,
१६—विजोरा	के	देसरड़ा	,,	भैरा ने	,,
१७—नाडुली	के	कुंकुम	,,	जैतसी ने	,,
१८—मेदिनीपुर	के	सुघड़	,,	मलुका ने	,,
१९—आमेर	के	सुरट	,,	मूला ने	,,
२०—सगानेर	के	गोगला	,,	लाखण ने	,,
२१—करोली	के	केसरिया	,,	धीरा ने	,,
२२—अर्जुनपुरी	के	डिड्डू	,,	आसा ने	,,
२३—भाभेसर	के	प्राग्वट	,,	भाला ने	,,
२४—विराटपुर	के	,,	,,	आदू ने	,,

१७—जुरोरी	के	प्राग्वट जाति के	चणोट ने	भगवान्	पार्श्वनाथ	मन्दिर की प्र०	
१८—वर्धमानपुर	के	,, ,,	कूपा ने	,,	,,	,,	,,
१९—खेटकपुर	के	,, ,,	हडाउने	,,	,,	,,	,,
२०—करणावती	के	,, ,,	जावड ने	,,	,,	,,	,,
२१—चन्द्रावती	के	गुणधर ,,	अजित ने	,,	धर्मनाथ	,,	,,
२२—कुन्तिनगरी	के	नक्षत्र ,,	सादा ने	,,	विमलनाथ	,,	,,
२३—चदेरी	के	गुरुड ,,	लाखा ने	,,	पार्श्वनाथ	,,	,,
२४—हर्षपुर	के	चोरड़िया ,,	समधर ने	,,	,,	,,	,,
२५—भवानीपुर	के	पोकरणा ,,	भाला ने	,,	सीमंधर	,,	,,
२६—नागपुर	के	प्राग्वट ,,	भोपाल ने	,,	पदमनाथ	,,	,,
२७—उपकेशपुर	के	,, ,,	मणण ने	,,	आदिनाथ	,,	,,
२८—नारदपुरी	के	,, ,,	माला ने	,,	,,	,,	,,
२९—सीतलपुर	के	,, ,,	रूघा ने	,,	नेमिनाथ	,,	,,
३०—सोजलपुर	के	,, ,,	जावड ने	,,	मल्लिनाथ	,,	,,
३१—तीतरी	के	श्रीमाल ,,	माडा ने	,,	पार्श्वनाथ	,,	,,
३२—चुड़ी	के	,, ,,	सावत ने	,,	,,	,,	,,
३३—धोलपुर	के	,, ,,	ठाकुरसी ने	,,	महावीर	,,	,,

पूज्याचार्य श्री के ५९ वर्षों के शासन में तीर्थ यात्रार्थ संघादि शुभ कार्य

१—खटकूप	के	श्रेष्टि	जाति के	सिहक ने	शत्रुञ्जय तीर्थ की	यात्रार्थ	संघ
२—पाल्हिका	के	तातेड़	,,	पूजा ने	,,	,,	,,
३—नारदपुरी	के	सचेति	,,	पारस ने	,,	,,	,,
४—चन्द्रावती	के	प्राग्वट	,,	कर्मा ने	,,	,,	,,
५—नागपुर	के	चोरलिया	,,	आदू ने	,,	,,	,,
६—हमरेल	के	पोपीवाल	,,	अर्जुन ने	,,	,,	,,
७—मथुरा	के	पारख	,,	देवड़ा ने सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ			
८—चन्द्रपुरी	के	छाजेड	,,	पोलाक ने शत्रुञ्जय की यात्रार्थ संघ			
९—आभापुरी	के	मल्ल	,,	गुणाढ ने सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ			
१०—पद्मावती	के	प्राग्वट	,,	फूसा ने शत्रुञ्जय की यात्रार्थ संघ निकाला			
११—स्थम्भनपुर	के	श्रीमाल	,,	रामा ने	,,	,,	,,
१२—वटपुर	के	श्रीमाल	,,	सरवण ने	,,	,,	,,
१३—रूपनगर	के	राखेचा	,,	साखला ने	,,	,,	,,
१४—विजयपुर	के	नक्षत्र	,,	भोजा ने	,,	,,	,,
१५—हस्तीकुन्ट	के	हथुडिया	,,	भादू ने	,,	,,	,,
१६—काकपुर	के	केलावत	,,	माडा ने	,,	,,	,,
१७—शाकम्भरी	के	लघुश्रेष्टि	,,	राजसी ने	,,	,,	,,
१८—उपकेशपुर	के	कुम्मट	,,	शाह नारा ने दुकाल में अन्न वस्त्र घास दिया			

१९—नारदपुरी के बाफणा जाति के शाह नागदेव ने दुकाल में अन्न वस्त्र वास दिया
२०—शाकम्भरी के राका „ „ देवपाल ने „ „ „ „
२१—नारदपुरी के प्राग्वट „ „ पोसल ने „ „ „ „
२२—विजयपट्टन के पोकरणा „ „ लाखण की पत्नी जैती ने तालाब खुदवाया।
२३—चन्द्रपुर के भाद्रेच „ „ सुखानी विधवा पुत्री सुन्दर ने एक वापि बंधाई।
२४—चर्पटनगर के मटेवरा „ „ लाखा की „ „ रामी ने तालाब बनवाया।
२५—पद्मावती के प्राग्वटवंश के „ „ फोफा की माता ने बाद वगर तालाब बंधाया।
२६—नागपुर के कनोजिया वीर बीरम युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२७—गोसलपुरी के कामदार वीर रणजीत „ „ „ „
२८—उपकेशपुर के श्रेष्टि वीर समरथ „ „ „ „
२९—कविरा के राखेचा वीर ठाकुरसी „ „ „ „
३०—कोरंटा के समदड़िया वीर रूपवीर „ „ „ „
३१—चन्द्रावती के प्राग्वट वीर रोड़ा „ „ „ „

इनके अलावा भी सूरीश्वरजी के शासन में अनेक महानुभावों ने अपनी न्यायोपार्जित चंचल लक्ष्मी को देश समाज एवं धर्म के हित व्यय करके कल्याणकारी पुण्य जमा किया उसमें जैसे आचार्यों का उपदेश था वैसे ही भावुक लोग सरल हृदय और भव भीरू थे कि ऐसे पुनीत कार्य में पीछे नहीं पर सदैव आगे पैर बढ़ाते ही रहते थे।

पट्ट पैंतालीस कक्कसूरीन्द्र मार्तण्ड सम आभा थे,
चन्द्र समान शीतलता जिनकी जैनधर्म प्रचारक थे।
वीर वाणि उपदेशामृत से भव्यों का उद्धार किया,
प्रतिष्ठा औ दीक्षा देकर शासन का उद्योत किया ॥

इतिश्री भगवान् पार्श्वनाथ के पैंतालीसवें पट्टधर कक्कसूरि नाम के महा प्रतिभाशाली आचार्य हुए॥

४६-आचार्यश्री देवगुप्तसूरि (१०वाँ) [चोरड़िया]

सूरिश्चोरड़िया प्रधान पुरुषो गुप्तोत्तरो देवमाक् ।
शिष्यान् स्वान् स विहार माज्ञपितवान् प्रान्तेषु सर्वेषु च ॥
जित्वा वादीजनामनेक गणना संख्यापितान् सुव्रती ।
शिष्यॉस्तॉश्च विधाय कीर्ति लतिकामास्तीर्णवान् भूतले ॥

परम पूजनीय आचार्यश्री देवगुप्त सूरिश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली, उग्र विहारी, सुविहित शिरोमणि, प्रखर विद्वान, सफल वाङ्गमय साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित, जिन-शासन के प्रखर प्रचारक आचार्य हुए।

आप दशपुर नगर के आदित्य नाग गौत्रीय चोरड़िया शाखा के मन्त्री सारङ्ग की पतिधर्म परायण, परम सुशीला, गृहिणी रत्नी के होनहार लाडिले पुत्र थे। आपके जन्म के समय मन्त्री सारङ्ग ने महोत्सव मात्र में ही एक लक्ष द्रव्य व्यय किया था। कारण, आपके पूर्व इनके कोई भी सन्तान नहीं थी। अत पुत्रोत्सव के अपूर्वोत्साह में इतने रुपये व्यय करना भी नैसर्गिक ही था। माता रत्नी की कुक्षि में जब एक पुण्यशाली जीव अवतरित हुआ तब अर्धनिशा में उसने षोड्शकला से परिपूर्ण चन्द्र का स्वप्न देखा। जन्म महोत्सवानन्तर पूर्वदृष्ट स्वप्नानुवत् पुत्र का नाम भी चन्दकुवर ही रख दिया। मन्त्री सारङ्ग पहिले से ही अपार सम्पत्ति का धनी धन वैश्रमण था पर चन्द्र के जन्म के पश्चात् तो उसके घर में हरएक प्रकार की ऋद्धि सिद्धि लहराने लगी। इकलौते पुत्र का पालन पोषण भी बहुत ही लाड़ प्यार से होने लगा। जब क्रमश चद २-३ वर्ष का हुआ तब तो उसकी तुतलाती हुई मधुर वाणी ने केवल माता पिताओं के ही मन को नहीं अपितु हर एक दर्शक के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। कौटम्बिक पारवारिक लोगों के लिये तो चक्षुवत् अव लम्बन भूत व दीर्घ कालीन चिन्ता शोक के शमन के लिये शान्ति मन्त्र सिद्ध हुआ। गार्हस्थ्य जीवन की जटिल समस्याओं में उलझा हुआ उद्विग्न खिन्न हृदय व्यक्ति भी चन्द की तोतली वाणी को श्रवण कर चिन्ता मुक्त हो जाता। इस तरह हरएक व्यक्ति को हर्षित एवम प्रमुदित करने वाला चन्द, द्वितीया के चन्द्र की भांति हर एक बातों में बढने लगा।

जब चन्द की वय विद्या पठन योग्य हुई तब सारङ्ग ने चन्द के लिये धार्मिक, व्यापारिक, राजनैतिक आदि हरएक विषय में सविशेषानुभव पूर्ण परिपकता प्राप्त करने के लिये योग्य साधनोंको उपलब्ध कर दिया। कुशाग्रमति चन्द भी शिशु अवस्थोचित बाल चापल्य में यौवन-गाम्भीर्य को प्रकट करता हुआ एकाग्र चित्त से पठन कार्य में सलग्न हो गया। इधर चंद की माता रत्नी ने भी चन्द के पश्चात् क्रमश चार पुत्र एव तीन पुत्रियों को जन्म देकर अपने स्त्री जीवन को सफल बनाया। चारों पुत्रों के नाम—सूजो, गोरख, अमरो और लालो तथा पुत्रियों के नाम पॉची, सरजू, वरजू निष्पन्न कर दिये। जब चद की वय सोलह वर्ष की होगई तब तो उसने आवश्यक विद्या एव कलाओं में भी पूर्ण निपुणता प्राप्त करली। अब तो रह रह कर सारङ्ग के पास बड़े बड़े उच्च घरानों के चद के लिये विवाह के प्रस्ताव आने लगे। इतना होने पर भी मन्त्री सारङ्ग की आन्तरिक अभिलाषा चन्द की परिपकावस्था (२५ वर्ष की वय) में विवाह करने की थी चंद भी पिता के इन दूरदर्शिता पूर्ण विचारों में सहमत था पर माता रत्नी को इन दोनों के उक्त विचार रुचिकर नहीं ज्ञात हुए। वह तो नव

१९—पाल्हिका के बाफणा जाति के शाह भागदेव ने दुकाल में अन्न वस्त्र वस्त्र दिया
२०—शाकम्भरी के राका „ „ देवपाल ने „ „ „ „
२१—भारतपुरी के प्राग्वट „ „ पोमल ने „ „ „ „
२२—विक्रमपट्टन के पोकरणा „ „ लाखण की पत्नी वीवी ने तालाब खुदवाया।
२३—चन्द्रपुर के धाकड़ „ „ हुंगाकी विधवा पुत्री सुन्दर ने एक वापि बंधाई।
२४—चर्पटनगर के मरोवटा „ „ भाखा की „ „ रामी ने तालाब बनवाया।
२५—पद्मावती के प्राग्वटवंश के „ „ कोला की माता ने पाव लक्ष तालाब बंधाया।
२६—नागपुर के कनोजिया वीर वीरम युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२७—गोशाली के कामदार वीर रणधीर „ „ „ „
२८—उपकेशपुर के श्रेष्ठि वीर समरथ „ „ „ „
२९—कबिरा के राखेचा वीर ठाकुरसी „ „ „ „
३०—चोरडा के समदडिया वीर रूपवीर „ „ „ „
३१—चन्द्रावती के प्राग्वट वीर योधा „ „ „ „

इनके अलावा भी सूरीश्वरजी के शासन में अनेक महानुभावों ने अपनी न्यायोपार्जित चंचल लक्ष्मी को देश समाज एवं धर्म के हित व्यय करके कल्याणकारी पुन्य जमा किया उसमें जैसे आचार्यों का उपदेश था वैसे ही भावुक लोग सरल हृदय और भव भीरू थे कि ऐसे पुनीत कार्य में पीछे नहीं पर सदैव आगे पैर बढ़ाते ही रहते थे।

> पट्ट पैंतालीस कक्कसूरीन्द्र आर्य्यगोत्र रत्नाकर थे,
> चन्द्र समान शीतलता जिनकी जैनधर्म प्रचारक थे।
> वीर वाणि उपदेशामृत से भव्यों का उद्धार किया,
> प्रतिबोध को दीक्षा देकर शासन का उद्योत किया॥

इतिश्री भगवान् पार्श्वनाथ के पैंतालीसवे पट्टधर कक्कसूरि नाम के महा प्रतिभाशाली आचार्य हुए॥

४६-आचार्यश्री देवगुप्तसूरि (१०वाँ) [चोरड़िया]

सूरिश्चोरड़िया प्रधान पुरुषो गुप्तोत्तरो देवभाक् ।
शिष्यान् स्वान् स विहार माज्ञपितवान् प्रान्तेषु सर्वेषु च ॥
जित्वा वादिजनामनेक गणना संस्थापितान् सुव्रती ।
शिष्यॉस्तॉश्च विधाय कीर्ति लतिकामास्तीर्णवान् भूतले ॥

परम पूजनीय आचार्यश्री देवगुप्त सूरिश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली, उग्र विहारी, सुविहित शिरोमणि, प्रखर विद्वान, सफल वाङ्गमय साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित, जिन-शासन के प्रखर प्रचारक आचार्य हुए।

आप दशपुर नगर के आदित्य नाग गौत्रीय चोरड़िया शाखा के मंत्री सारङ्ग की पतिधर्म परायण, परम सुशीला, गृहिणी रत्नी के होनहार लाडिले पुत्र थे। आपके जन्म के समय मन्त्री सारङ्ग ने महोत्सव मात्र में ही एक लक्ष द्रव्य व्यय किया था। कारण, आपके पूर्व इनके कोई भी सन्तान नहीं थी। अत पुत्रोत्सव के अपूर्वोत्साह में इतने रुपये व्यय करना भी नैसर्गिक ही था। माता रत्नी की कुक्षि में जब एक पुण्यशाली जीव अवतरित हुआ तब अर्धनिशा में उसने षोड़शकला से परिपूर्ण चद्र का स्वप्न देखा। जन्म महोत्सवानन्तर पूर्वदृष्ट स्वप्नानुवत् पुत्र का नाम भी चन्दकुवर ही रख दिया। मन्त्री सारङ्ग पहिले से ही अपार सम्पत्ति का धनी धन वैश्रमण था पर चन्द्र के जन्म के पश्चात् तो उसके घर में हरएक प्रकार की ऋद्धि सिद्धि लहराने लगी। इकलौते पुत्र का पालन पोषण भी बहुत ही लाड़ प्यार से होने लगा। जब क्रमश चद २-३ वर्ष का हुआ तब तो उसकी तुतलाती हुई मधुर वाणी ने केवल माता पिताओं के ही मन को नहीं अपितु हर एक दर्शक के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। कौटम्बिक पारवारिक लोगों के लिये तो चक्षुवत् अव लम्बन भूत व दीर्घ कालीन चिन्ता शोक के शमन के लिये शान्ति मन्त्र सिद्ध हुआ। गार्हस्थ्य जीवन की जटिल समस्याओं में उलझा हुआ उद्विग्न खिन्न हृदय व्यक्ति भी चन्द की तोतली वाणी को श्रवण कर चिन्ता मुक्त हो जाता। इस तरह हरएक व्यक्ति को हर्षित एवम् प्रमुदित करने वाला चन्द, द्वितीया के चन्द्र की भांति हर एक बातों में बढने लगा।

जब चन्द की वय विद्या पठन योग्य हुई तब सारङ्ग ने चन्द के लिये धार्मिक, व्यापारिक, राजनैतिक आदि हरएक विषय में सविशेषानुभव पूर्ण परिपकता प्राप्त करने के लिये योग्य साधनोंको उपलब्ध कर दिया। कुशाग्रमति चद भी शिशु अवस्थोचित बाल चापल्य में यौवन-गाम्भीर्य को प्रकट करता हुआ एकाग्र चित्त से पठन कार्य में सलग्न हो गया। इधर चंद की माता रत्नी ने भी चन्द के पश्चात् क्रमश चार पुत्र एव तीन पुत्रियों को जन्म देकर अपने स्त्री जीवन को सफल बनाया। चारों पुत्रों के नाम—सूजो, गोरख, अमरो और लालो तथा पुत्रियों के नाम पॉंची, सरजू, बरजू निष्पन्न कर दिये। जब चद की वय सोलह वर्ष की होगई तब तो उसने आवश्यक विद्या एव कलाओं में भी पूर्ण निपुणता प्राप्त करली। अब तो रह रह कर सारङ्ग के पास बडे बड़े उच्च घरानों के चद के लिये विवाह के प्रस्ताव आने लगे। इतना होने पर भी मन्त्री सारङ्ग की आन्तरिक अभिलाषा चन्द की परिपक्वावस्था (२५ वर्ष की वय) में विवाह करने की थी चंद भी पिता के इन दूरदर्शिता पूर्ण विचारों में सहमत था पर माता रत्नी को इन दोनों के उक्त विचार रुचिकर नहीं ज्ञात हुए। वह तो नव

वधू को-सुहागन देखने के लिये तीव्र उत्कण्ठित एवं लालायित थी। आखिर माता के अत्याग्रह से चन्द्र का विवाह २१ वर्ष की वय में मतिकुलोत्पन्न शाह देवा की पुत्री मालती से होगया। जैसे चंद्र सब विद्याओं का निधान था वैसे मालती भी स्त्रियोचित सब कार्यों में प्रवीण थी। दोनों पति पत्नियों में परस्पर रूप एवं गुणों की अनुकूलता होने के कारण उनका दाम्पत्य जीवन बहुत ही प्रेम एवं शान्ति पूर्वक व्यतीत हो रहा था। चन्द्र अपने माता पिताओं की सदा चाकरी विनय करने में तत्पर था वैसे मालती भी विनयशील सदा-शील एवं गृहकार्य में कुशल थी। चंद्र और मालती के गार्हस्थ्य सुख के सामने स्वर्ग के अनुपम सुख भी नहीं के बराबर थे, ऐसा लिखना भी अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा।

मन्त्री सारङ्ग का घराना शुरु से ही जैनधर्मोपासक था। माता सदा नित्य नियम और षट्कर्म करने में सदैव तत्पर रहती थी। सारङ्ग के पिता अर्जुन ने भी वरापुर में एक मन्दिर बनवाया था। सारङ्ग ने दो मंजिल पर देरासर बनवा कर स्फटिक की प्रतिमा स्थापन करवाई थी। शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाले थे। स्वधर्मी बन्धुओं को स्वामीवात्सल्य के साथ एक २ स्वर्ण मुद्रिका व वस्त्र बहुतों को प्रभावना दी। इस प्रकार अन्य बहुत से शुभकार्यों में खूब उदारवृत्ति से द्रव्य व्यय कर अनन्त पुण्योपार्जन किया।

सारङ्ग के बाद मन्त्री पद चंद्र को मिला। चंद्र अमात्यावस्था में चंद्रसेन के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपने की गति विधि का देख मन्त्री चन्द्रसेन ने अपने लघु भ्राताओं को व्यापार में जोड़ दिये जिससे अन्य भाई स्वरुचि के अनुकूल व्यापारिक क्षेत्र में लग गये। मन्त्री सारङ्ग का परिवार वंशावली रचयिताओं ने इस प्रकार लिखा है—
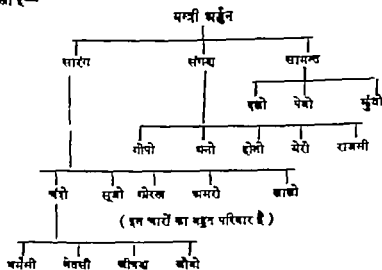
मन्त्री अर्जुन

- सारंग
  - चंदो
    - धर्मसी
    - नेतसी
    - वीसल
    - जोगो
  - सूजो
  - नेरस
  - अमरो
  - कानो
- संगण
  - गोपो
  - धन्नो
  - होलो
  - मेरो
  - राजसी
- सामन्त
  - रत्नो
  - पेथो
  - मुंजो

(इन चारों का बहुत परिवार है)

मन्त्री चंद्रसेन जैसे पारिवारिक सुख से सम्पन्न थे वैसे लक्ष्मीदेवी के भी कृपा पात्र थे। चंद्रसेन ने भी शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाल कर स्वधर्मी भाइयों को खूब उदार वृत्ति से प्रभावना दी। याचकों को भी पुष्कल (मन-इच्छित) द्रव्य प्रदान कर संतुष्ट किया जिससे आपकी सुयश ज्योत्स्ना चारों ओर छिटकने लगी।

एक समय आचार्यश्री कक्कसूरिजी महा० क्रमशः विहार करते हुए वरापुर में पधारे श्रीसंघ ने आपका शानदार स्वागत किया। मन्त्री चंद्रसेन ने अपार प्रवेश महोत्सव एवं प्रभावना में सवालक्ष द्रव्य व्यय किया।

नगर के प्रवेश के पश्चात् स्थानीय मन्दिरों के दर्शन कर आपश्री ने प्राथमिक माङ्गलिक देशना प्रारम्भ की। इस तरह आपने अपना व्याख्यान क्रम प्रतिदिन की भांति यहा पर भी प्रारम्भ रक्खा। सूरिजी स्वय बड़े ही त्यागी वैरागी एवं गुणानुरागी थे अत आपश्री के व्याख्यान में भी वही रग बरसता था। जिस समय आप ससार की असारता त्याग की उपादेयता एव आत्म कल्याण की आवश्यकता पर विवेचन करते थे तब लघु कर्मी जीवों का हृदय गद्‌गद् हो जाता था। उन्हें समार के प्रति उदासीनता एव उद्विग्नता के वैराग्योत्पादक भाव पैदा हो जाते थे। वे आचार्यश्री के व्याख्यान के आधार पर इन विचारों में निमग्न हो जाते कि—मनुष्य भवयोग्य सुदुष्कर उत्तम साधनों के मिलने पर भी उनका यथावत् सदुपयोग नहीं किया तो भविष्य के लिये वे ही साधन व्यर्थ किंवा पश्चाताप के हेतु हो जावेंगे। उन्हीं विचारशील मेधावियों में मन्त्री चन्द्रसेन भी एक था। मन्त्री ने खूब तर्क वितर्क एव मानसिक कल्पनाओं से आत्मा को काल्पनिक सन्तोष देना चाहा पर अन्त में आचार्यश्री के गम्भीर उपदेश से वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि—असारिक प्रपञ्चों से सर्वथा विमुक्त होकर सूरीश्वरजी की सेवा में भगवती दीक्षा स्वीकार करना ही भविष्य के लिये हितकर है। वास्तव में—"बुद्धिफल तत्व विचारणच" मनुष्य सम्यग्दृष्टि पूर्वक आत्म शान्ति के अमोघ उपाय की गवेषणा करे तो उसे यथा सम्भव शीघ्र ही यथा साध्य सुगम मार्ग मिल ही जाता है। बस, मन्त्री चद्रसेन ने भी अपने कुटुम्ब को एकत्रित कर कह दिया—अब मेरी इच्छा ससार को तिलाञ्जली देकर दीक्षा लेने की है। यदि अन्य किसी को भी आत्मकल्याण सम्पादन करने की उत्कृष्ट भावना हो तो वह शीघ्र ही मेरे साथ तैयार होजाय। मत्री के एक दम सूखे वचन श्रवण कर सकल परिवार के लोग निराशा सागर में गोते खाने लगे। चारों ओर इन वैराग्योत्पादक वचनों से करुण आक्रंदन मचगया। मंत्री के परिवार वालों में से कोई भी यह नहीं चाहता था कि हमारे सिर के छत्ररूप चन्द्रसेन हमको इस प्रकार यकायक छोड़कर चारित्र वृत्ति स्वीकार करलें। वे तो उनसे तमाम जिन्दगी मुफ्त में काम लेना चाहते थे। पर मत्री कोई नादान बालक या किसी के बहकावे में आया हुआ नहीं था। उसने तो आत्म स्वरूप को विचार करके ही आत्मिक उन्नत परिणामों के आधार ससार को तिलाञ्जली देने का (चारित्रवृत्ति लेने का) विचार किया था, अत किसी प्रकार से सासरिक—प्रापञ्चिक स्वरूप को समझाकर अपने परिवार वालों से दीक्षा के लिये सहर्ष आज्ञा प्राप्त करली। जब यह खबर नगर के घर घर पहुँच गई तब तो आपके अनुकरण रूप में १७ पुरुष व आठ महिलाए और भी तैय्यार होगई। चद्रसेन के पुत्र धर्मसी ने अपने पितादि की दीक्षा के महोत्सव में सवालक्ष से भी अधिक द्रव्य व्यय कर शासन की खूब प्रभावना की आचार्यश्री ने भी उक्त २६ मुमुक्षुओं को भगवती दीक्षा देकर उनका आत्मोद्धार किया। क्रमश मंत्री चद्रसेन का नाम दीक्षानंतर मुनि पद्मप्रभ रख दिया।

मुनि पद्मप्रभ ऐसे तो पहिले से ही विचक्षण मतिवान् कुशाग्र बुद्धि वाला था। उसने सांसारिक अवस्था में रहते हुए भी व्यावहारिक एव धार्मिक विद्याओं में निपुणता प्राप्त करली थी फिर सूरिजी म० की अनुपम कृपादृष्टि और स्थविरों की विनय, वैयावृत्य रूप श्रद्धा पूर्ण भक्ति से उसने अल्प समय में ही वर्तमान साहित्य, आगम, न्याय, व्याकरण, कोष, काव्यादि सकल तत् समयोपयोगी विषयों में भी अनन्यता हस्तगत करली। क्रमश आचार्यश्री की सेवा में रहते हुए आचार्य पद के सम्पूर्ण गुण भी प्राप्त कर लिये। आचार्यश्री ने पद्मप्रभ मुनि को अपने पट्ट के लिये सवथा योग्य समझ कर गुरु परम्परा से आई हुई विद्या, मन्त्र एव आम्नायों को पद्मप्रभ मुनि को प्रदान करदी। विनयवान् पद्मप्रभ मुनि ने भी ३३ वर्ष पर्यन्त गुरुदेव श्री की सेवा में रह कर सूरिजी म० की बहुत श्रद्धा पूर्ण सेवा की फिर ऐसे विनयशील शिष्य के लिये गुरु कृपा से कौनसी बात दुसाध्य रह सकती है ?

पहिले के आचार्यों का प्रभाव एव चमत्कार बढ़ाने के मुख्य कारण भी उनके जीवन के प्रमुख अङ्ग विनय गुण, नम्रता एव लघुता ही हैं। वे प्रखर प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् एव सर्वगुण सम्पन्न होकर भी मान या

कीर्ति की सुस्थित भविष्य के हित की पावन आकांक्षा से गुरुकुल वास से दूर नहीं रहना चाहते थे। वे तो गुरुकुल में रह कर आत्मिक गुणों की उन्नति करने में ही अपने को भाग्यशाली एवं गौरवान्वित समझते थे। इसके विपरीत आज का शिष्य समुदाय साधारण मारवाड़ी जनता या शास्त्रानभिज्ञ मनुष्यों का मनोरंजन करने के लिये कल्पसूत्र (इसका भी सच्चे ज्ञानपूर्ण मर्मज्ञता के साथ अध्ययन नहीं) एवं श्रीपाल चरित्र पर कर व्याख्यान पीठ में ही आपने ज्ञान ध्यान की इतिश्री समझ लेता है या अपने आपको इतने में ही कृत्कृत्य बना लेता है। इतने से अध्ययन के पश्चात् तो गुरु से अलग रह कर अलग विचरने में ही अपने को सौभाग्यशाली समझता है। इसी अविवेकता एवं मिथ्याभिमान के कारण योग्यता उनसे हजार हाथ दूर भागती है। इससे न तो वे अपना भलाकर सकते हैं और न किसी दूसरे का कल्याण ही। इतना ही क्या पर, यह वेषधारियों रूप चपी रोग के सर्वत्र फैल जाने के कारण वर्तमान में हमारे आचार्य नाम धराने वाले कई डजन आचार्यों के विद्यमान होने पर भी शत्रुञ्जय जैसे पवित्र तीर्थ के साठ हजार रुपये प्रति वर्ष करके देने पड़ते हैं, कारण आज के आचार्य केवल नाममात्र के ही हैं। उनमें कोई विशेष चमत्कार या दूसरों पर स्थायी प्रभाव डालने वाली अलौकिक शक्ति नहीं है।

हमारे चरित्र नायक मुनि पद्मप्रभ को सूरिजी ने उनकी योग्यतानुसार पण्डित्य, वाचनाचार्य और उपाध्याय पद से भूषित किया और अन्तिम समय में तो आचार्य कक्कसूरि ने व्याघ्रपुर नगर के शाह भाषा के महा महोत्सव पूर्वक सूरि पद प्रदान कर आपका नाम आचार्य देवगुप्त सूरि रख दिया।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैन संसार में एक महा प्रभावक आचार्य हुए। आपकी विद्वता के सामने वादी सदा ही नत मस्तक रहते थे। आप अपने पूर्वजों के आदर्शानुसार प्रत्येक प्रान्त में विहार कर धर्मोद्योत करने में संलग्न थे। आपके आदेशानुसार विविध २ प्रान्तों में विचरण करने वाले आपके आज्ञानुयायी हजारों साधु साध्वियों की समुचित व्यवस्था का सम्पूर्ण भार आपश्री पर था। यही कारण था कि, उस समय आचार्य पद एक उत्तरदायित्व पूर्ण एवं महत्व पूर्ण पद समझा जाता था। वर्तमान कालानुसार हर एक को (चाहे वह सूरि पद के योग्य न भी हो) सूरि नहीं बना दिया जाता था।

आचार्यश्री के विहार क्षेत्र की विशालता के लिये पट्टावलियों एवं वंशावलियों में बहुत ही विस्तारपूर्वक उल्लेख है। मरुधर, लाट, कोंकन, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पञ्जाब कुरु, कुनाल, विहार, पूर्व कलिङ्ग शूरसेन, मत्स्य पुण्ड्रवर्धन, चेदी आवन्तिका मेदपाट और महाराष्ट्रादि विविध २ प्रदेशों में आपका सतत विहार होता ही रहता था। आपने इन प्रान्तों में परिभ्रमन कर धर्म प्रचार भी खूब बढ़ाया।

आचार्य देव गुप्त सूरि विहार करते एक समय पावागढ़ की ओर पधार रहे थे। इधर क्षत्रिय राव जाखा अपने साथियों के साथ मृगया यानि जीव वध रूप शिकार करने को जा रहा था। मार्ग में आचार्यश्री एवं राव जाखा दोनों की परस्पर भेंट हो गई। सूरिजी ने उनको अहिंसाधर्म का मार्मिक उपदेश देकर जैन धर्मानुयायी बना लिया। परम्परानुसार उनको उपकेशवंश में सम्मिलित कर उपकेशवंश का गौरव बढ़ाया। इस घटना का समय पट्टावलीकारों ने विक्रमी सं० १०२६ का लिखा है। राव जाखा की वंश परम्परा वंशावली के आधार पर निम्न प्रकारेण है।

दुल्ला ने गुद का बहुत ही जोरदार व्यापार किया इससे आपकी सन्तान गुदेचा नाम से प्रसिद्ध हुई। राव दुल्ला ने श्री शत्रुञ्जय का बहुत ही बड़ा संघ निकाला था और स्वधर्मी भाइयों को स्वर्ण मुद्रिकादि की प्रभावना व याचकों को पुष्कल दान दिया था जिससे आपकी कीर्ति चतुर्दिक में प्रसरित होगई थी।

इस गुदेचा जाति की एक समय बहुत ही उन्नति हुई थी। गुदेचा जात्युत्पन्न महानुभावों में बहुत से तो ऐसे महापुरुष पैदा हुए कि जिनके नाम की अनेक प्रकार की जातिया शाखाए एवं प्रशाखाए होगई। उदाहरणार्थ-नागोलिया वागोणी, मच्छा, गुंदगुन्ा, रामानिया, धामावत् इत्यादि अनेक शाखाए गुदेचा गोत्र की ही हैं। इस जाति की वंशावलियाँ बहुत विस्तृत है तथापि इस जाति के नरपुङ्गवों से किये गये कार्यों का टोटल वंशावलियों के आधार पर निम्न प्रकारेण है—

१०६ जैन मन्दिर, धर्मशालाए एवं जीर्णोद्धार करवाये।
२४ वार यात्रार्थ तीर्थों के संघ निकाले।
५२ बार संघ को अपने घर बुलाकर संघ पूजा की।
५ बार जैनागम लिखवा कर ज्ञान भण्डार में स्थापित करवाये।
१३ वीर संग्राम में वीरता पूर्वक वीर गति को प्राप्त हुए।
६ वीराङ्गनाए पतिदेव के पीछे सती हुई।

इत्यादि अनेक पुण्योपार्जन के कार्य कर जैन धर्म की उन्नति एवं प्रभावना की। इस जाति की कुछ वंशावलियां विक्रम सं० १०२६ से १६०६ तक की लिखी हुई मुझे प्राप्त हुई हैं, उन्हीं के आधार पर इस जाति के महापुरुषों के द्वारा किये गये कार्यों के आंकड़े लिखे हैं। दूसरी तो न जाने कितनी वंशावलियां और होंगी? इस जाति के महानुभावों को अपने पूर्वजों के इतिहास को एकत्रित कर जन समाज के सम्मुख रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

इस प्रकार आचार्य देवगुप्तसूरि ने भू भ्रमन कर अनेकों मांस मदिरादि कुव्यसन सेवियों को प्रति-

बोध देकर अहिंसाधर्मोपासक—जिनधर्मानुयायी बनाये। उन्हें उपकेश वंश में सम्मिलित कर पूर्वाचार्यों के आदर्शानुसार उपकेश वंश की वृद्धि की। यह कार्य तो आपके पूर्वजों से अनवरत गति पूर्वक चलता ही आ रहा था।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि का शिष्य समुदाय भी खूब विशाल संख्या में था। वे जिस किसी क्षेत्र में जाते, नये जैन बनाकर अपनी चमत्कार पूर्ण शक्ति का एवं प्रभाविकता का परिचय दे ही देते थे। एक समय आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी म० शिवगढ़ आघाटपुर, भिन्नमाल सत्यपुर, कोरंटपुर, शिवपुरी इत्यादि नगरों में धर्म प्रचार करते हुए चंद्रावती पधारे। तत्रस्थ श्रीसंघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। सूरिजी ने अपनी वैराग्योत्पादि का व्याख्यान धारा चन्द्रावती में भी नित्य नियमानुसार प्रारम्भ रक्खी। त्याग, वैराग्य एवं आत्म कल्याण विषयक प्रभावोत्पादक व्याख्यानों का श्रवण कर संसारोद्विग्न कर भावुक संसार से विरक्त हो गये। प्राग्वट वंशीय शाह मूता मे जो अपार सम्पत्ति का स्वामी था; जिसके माता, पत्नी सेना और सैमा नाम के चार पुत्रादि विशाल परिवार था—श्री के देहान्त हो जाने से आत्म कल्याण करना ही अपना ध्येय बना लिया था। श्रीशत्रुञ्जय का एक विराट् संघ निकाल कर पवित्र तीर्थाधिराज की शीतल छाया में दीक्षित होने का उसने मनोगत दृढ़ संकल्प कर लिया। अपने साथ ही अपने आत्म-कल्याण की उत्कट भावना वाले भावुक व्यक्तियों को भी दीक्षा के लिये तैयार कर लिये। उक्त मनोगत विचारों की दृढ़ता होने पर श्री संघ के शाह मूता ने सूरिजी से चातुर्मास की प्रार्थना की। सूरिजी ने भी लाभ का कारण जान चातुर्मास चन्द्रावती में ही कर दिया। बस फिर तो था ही क्या? नगर निवासियों का उत्साह खूब ही बढ़ गया। शाह मूता ने भी आचार्यश्री एवं चतुर्विध श्रीसंघ का आदेश लेकर संघ के लिये आवश्यक तैयारियाँ करना प्रारम्भ कर दी। समयानुसार दूर दूर आमन्त्रण पत्रिकायें एवं मुनियों की प्रार्थना के लिये योग्य मनुष्यों को भेज दिये। उनको अपने द्रव्य का शुभ कार्यों में सदुपयोग कर दीक्षा द्वारा आत्म कल्याण करना था अतः किसी भी तरह के शुभ कार्य में विलम्ब करना उचित न समझा। शाह मूता के पुत्र भी इतने विनयवान् एवं आज्ञा पालक थे कि उन्होंने अपने पिताजी के इस कार्य में किञ्चिन्मात्र भी विघ्न उपस्थित नहीं किया। वे सब एकमत से पिताजी के इस कार्य में सहमत थे। वे इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि बापकोपार्जित द्रव्य पर किञ्चित् भी हमारा अधिकार नहीं, फिर इस धर्म कार्य में द्रव्य का सदुपयोग तो मानव जीवन के लिये परमत श्रेयस्कर ही है। अहा! वह कैसा स्वावलम्बन का पवित्र समय था कि सब लोग अपने भाग्य पर विश्वास रखते थे। वे दूसरे की आशा पर जीना (चाहे अपना पिता ही क्यों न हो) कृतघ्नता समझते थे।

चातुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी के शुभ दिवस आचार्यश्री ने शाह मूता को संघपति पद अर्पण कर संघ को शत्रुञ्जय यात्रार्थ प्रस्थान करवा दिया। चार दिवस पर्यन्त नगर के बाहिर ठहर कर मौन एकादशी की आराधना चन्द्रावती में ही अत्यन्त समारोह पूर्वक की। बाद शुभ शकुनों से रवाना हो मार्ग के मन्दिरों के दर्शन करते हुए पवित्र तीर्थराज की स्पर्शना की। आठ दिवस पर्यन्त अष्टाह्निका-महोत्सव पूजा, प्रभावना स्वधर्मी वात्सल्यादि धार्मिक कृत्य कर संघपति मूता ने संघ में आगत स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिका के साथ मोदक एवं बहुमूल्य वस्त्रादि वस्तुओं की प्रभावना दी। अपने पुत्रों की अनुमति से अपने ९ साथियों के साथ सूरिजी के कर कमलों से दीक्षा स्वीकार की। सूरिजी ने मूता का नाम विनय रुचि रख दिया। दीक्षा के माङ्गलिक कार्य के पश्चात् आचार्यश्री वहां से विहार कर कच्छ सिन्ध, आदि प्रान्तों में परिभ्रमण करते हुए पञ्जाब प्रदेश में पधार गये।

इधर नव दीक्षित मुनि विनयरुचि को ज्ञानावरणीय कर्म के प्रगाढ़ोदय से बहुत परिश्रम करने पर ज्ञान नहीं आ सका। उनकी बुद्धि इतनी कुण्ठित थी कि वे जिस पाठ को दिन को रट रट कर कण्ठस्थ करते व रात्रि

में वह अपने आप ही विस्मृत हो जाता था। परिणाम स्वरूप मुनि विनयरुचि ने बारह मास में प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रियाए भी बड़ी कठिनाइयों से सीखीं फिर अधिक की तो आशा ही क्या की जासकती है? इतना सब प्रकृति का प्राकृतिक कोप होते हुए भी मुनि विनयरुचि ज्ञान ध्यान से हताश नहीं हुआ। उन्होंने तो अहर्निश नियमानुसार कटाकट किया एवं कण्ठ शोषन प्रारम्भ ही रक्खा। तीव्र स्वर से पाठोच्चारण कर घोखने के नित्य क्रम से समीप में शयन करने वाले मुनियों को निद्रा भी नहीं आने लगी। अत. एक साधु ने रोज की कटाकटी से उद्विग्न हो अधीरता पूर्वक व्यङ्ग किया—मुनिजी! आप रात दिन इस प्रकार का कण्ठ शोषन कर ज्ञानाध्ययन करते हो तो क्या किसी राजा को प्रतिबोध देकर जिनशासन का उद्योत करोगे? मुनि विनयरुचि ने उक्त मुनिश्री के उक्त व्यङ्ग का शान्ति एव नम्रता पूर्वक प्रत्युत्तर दिया-पूज्य-मुनिजी! मैं तो एक साधारण साधु हूँ। मेरी तो शक्ति ही क्या? पर आपश्री जैसे मुनि पुङ्गवों के शुभाशीर्वाद से यह कार्य भी कोई सर्वथा असम्भव नहीं है। मुनि विनयरुचि के हृदय में ज्ञान पढ़ने की तीव्र उत्कण्ठा तो पहिले से ही थी पर अब तो मुनिश्री के उक्त कटाक्ष पूर्ण व्यङ्ग से राजा को प्रतिबोध देने की भावना ने भी जन्म ले लिया।

एक दिन रात्रि के समय मुनि विनयरुचि आचार्य देव की सेवा में बैठे हुए ज्ञान ध्यान कर रहे थे कि ज्ञान नचढ़ने के कारण अचानक सूरीश्वरजी से पूछा भगवन्! मैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौनसा कठोर कर्मोपार्जन किया है कि इतना परिश्रम करने पर भी मैं यथावत् मनोऽनुकूल ज्ञानोपार्जन नहीं कर सकता हूँ। गुरुदेव! कृपया मुझे ऐसा कोई अमोघ उपाय बताइये कि जिसके द्वारा मैं मेरा मनोरथ सिद्ध कर सकूं। सूरिजी ने एक सरस्वती देवी का मन्त्र और उसकी साधना विधि बतलाते हुए कहा—तुम काश्मीर जाकर सरस्वत्याराधन करो, तुम्हारे मनोरथ सफल हो [illegible]। सूरिजी के वचन को तथास्तु कह कर मुनि विनयरुचि ने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार कर लिये। काश्मीर जाने की उत्कट अभिलाषा ने उनके हृदय मे अडिग आसन जमा दिया। क्रमश आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त कर मुनि विनयरुचि ने थोड़े मुनियों को साथ में ले काश्मीर की ओर विहार कर दिया। काश्मीर पहुँच कर मुनि विनयरुचि ने तो चउविहार उपवास की तपस्या पूर्वक सरस्वती के मन्दिर में ध्यान लगा दिया और साथ में आये हुए अवशिष्ट मुनिगण नगर के बाहिर अवस्थित हो मुनित्व क्रिया करने में सलग्न हो गये। चउविहार २१ उपवास की अन्तिम रात्रि में देवी ने अदृश्य होकर कहा-मुनिजी! मैं आपकी श्रद्धा पूर्ण भक्ति से बहुत प्रसन्न हुई हूँ अब जो कुछ इच्छा हो लीजिये मैं देने को तैय्यार हूँ। मुनि ने कहा माताजी! मुझे और क्या चाहिये? केवल एक विद्या के लिये वरदान चाहिये जिससे मेरा पढ़ा हुआ ज्ञान स्खलित न हो सके। देवी, मुनिजी के सर्वथा निस्पृह वचनों को सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुई। मुनिश्री की इच्छानुकूल उन्हें वरदान दिया कि आप जो चाहोगे वह ज्ञान सर्वथा अस्खलित रहेगा और आपको सर्वत्र ही विजय श्री प्राप्त होगी। देवी के वचनों को 'तथास्तु' शब्द से सहर्ष स्वीकार कर मुनि विनयरुचि जहाँ अन्य मुनि ठहरे हुए थे, वहाँ आये और २१ दिन के चउविहार उपवास का पारणा किया। अब तो जिस मुनि को एक पद याद करना मुश्किल था आज उसी को सब के सब शास्त्र एक वार के पठन मात्र से ही कण्ठस्थ हो जाने लगा।

इधर श्रीनगर निवासियों को मालूम हुआ कि यहा जैन श्रमण आये हैं तो जैनियों के उत्कर्ष के असहिष्णु कई गीर्वाण भाषा विशारद विप्रगण मुनिश्री को पराजित या लज्जित करने के बहाने मुनि विनयरुचि के स्थान पर आकर उनसे सस्कृत भाषा में धर्म सम्बन्धी कई तरह के प्रश्नोत्तर करने लगे। मुनिश्री ने भी सरस्वती देवी की अतुल कृपा से उन्हें ऐसे समुचित प्रत्युत्तर दिये कि वे लोग आश्चर्यान्वित हो दांतों तले अगुली दबाने लगे। उन्होंने मुनिश्री की विद्वत्ता से प्रभावित हो उपदेश श्रवण की इच्छा प्रगट की और नित्य अपना इसी प्रकार का क्रम जारी रखने के लिये विनम्र प्रार्थना की। मुनिश्री ने भी कई दिनों तक वहां स्थिरता कर षट्दर्शनों का प्रतिपादन एव जैनदर्शन का महात्म्य बताया, जिसको श्रवण कर बहुत से लोग जैनधर्म की

और आकर्षित हुए। तदनन्तर आप सीधे आचार्यश्री की सेवा में पधारे। आचार्यश्री ने भी इसी प्रकार प्रवास के वृत्तान्त को श्रवण कर खूब सन्तोष प्रगट किया।

इस तरह पञ्जाब प्रान्त में धर्म जागृति की नवीन क्रान्ति मचाते हुए आचार्यश्री ने भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याण भूमि स्पर्शनार्थ काशी की ओर विहार किया। श्रीसंघ ने आपश्री का बहुत ही समारोह पूर्वक स्वागत किया। आचार्यश्री ने भी जन समाज में धर्मोद्योत करने के लिये अपना व्याख्यान क्रम प्रारम्भ ही रक्खा। उस समय काशी के ब्राह्मण जैनियों से बहुत ही द्वेष रखते थे। उन्हें जैनियों का अभ्युदय, मान, प्रतिष्ठा किञ्चित् भी सहन नहीं हो सकती थी। वे लोग यदा कदा अपनी काली करतूतों का परिचय दे दिया करते थे। तदनुसार एक दिन आचार्यश्री के आदेश से काशी क्षेत्र में मुनि विनयरुचि ने व्याख्यान दिया। आपश्री ने अपने व्याख्यान में षट्दर्शन के स्वरूप को तुलनात्मक दृष्टि से प्रतिपादन करते हुए जैन दर्शन को सर्वोत्कृष्ट सबल साध्य बतलाया। यथा-मुनिश्री की यह सत्य किन्तु ब्राह्मणों को अरुचिकर ज्ञात होने वाली बात काशी नगरी के विप्र समुदाय को कैसे सहन हो सकती थी? बस पूर्वापर का विचार किये बिना ही उन्होंने जैनों का आह्वान कर दिया कि जैन श्रमणों ने जो मुंह से कहा—यदि प्रमाणों से सिद्ध करने को तैय्यार हो जांय तो हम उनके साथ शास्त्रार्थ करने को तैय्यार हैं।

उस समय काशीपुरी में उपकेशवंशियों की घनी आबादी थी। वे सबके सब बड़े व्यापारी एवं लक्षाधीश-कोट्याधीश धर्म प्रिय श्रावक थे। वे लोग आचार्यश्री के परम भक्त, देव गुरु, धर्म के अनुरागी थे। इन लोगों ने ब्राह्मणों की जाहिर घोषणा के लिये आचार्यश्री से शास्त्रार्थ करने के बारे में परामर्श किया तो सूरिजी ने सहर्ष उत्तर दिया इसमें आनाकानी की बात ही क्या है? शास्त्रार्थ करके धर्म की वास्तविकता को जगजाहिर करना तो हमारा परम कर्त्तव्य ही है। काशी के ब्राह्मणों से धर्म चर्चा करने में मैं क्या? मेरे शिष्य ही पर्याप्त हैं। बस, फिर तो था ही क्या? ब्राह्मणों के आह्वान को जैनियों ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। ठीक समय में मध्यस्थों के अध्यक्षत्व में शास्त्रार्थ विषयक निर्णय के लिये एक सभा हुई। इधर से मुनि विनयरुचि और उधर से ब्राह्मण समाज। दोनों के शास्त्रार्थ का विषय था—वेदविहित हिंसा हिंसा न भवति। ब्राह्मणों ने अपने पक्ष की प्रामाणिकता के विषय में जो प्रमाण पेश किये थे मुनिश्री ने उन्हीं प्रमाणों को युक्ति पुरस्सर खण्डित कर अहिंसा भगवती का इस प्रकार प्रतिपादन किया कि वादियों को अपने आप मस्तक झुकाना पड़ा। इससे जैनधर्म की बहुत ही प्रभावना हुई। काशी के सकल संघ की अनुमति से मुनि विनयरुचि को पण्डित पद से विभूषित किया तथा श्रीसंघ के अत्याग्रह से आचार्यश्री ने वह चातुर्मास वहीं पर कर दिया। इस चातुर्मास कालीन दीर्घ अवधि में जैनधर्म के उद्योत के साथ ही साथ बहुत सा ब्राह्मण समाज भी सूरिजी का भक्त एवं अनुरागी बन गया।

चातुर्मासानन्तर आचार्यश्री ने वहां से प्रस्थान कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मथुरा नगरी में पदार्पण किया। वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी का सुन्दर सत्कार किया। आचार्यश्री का व्याख्यान तो हमेशा होता ही था अतः जैन जैनेतर सकल जन समाज गहरी तादाद में आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ उठाने लग गये। मथुरा में उस समय बौद्धों का बहुत कम प्रभाव था पर ब्राह्मणों का पर्याप्त प्रचार था। सूरिजी के अपरिमित प्रभाव के सामने वो वे कुछ नहीं कर सके कारण, उन्होंने पहिले से ही काशी के शास्त्रार्थ की पराजय को सुन रक्खा था। श्रीसंघ के अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चातुर्मास मथुरा में ही कर दिया। श्रेष्ठि गोत्रीय धीरा शाखा के शाह सारङ्ग ने दोनों आचार्यों के गुणज्ञान की भक्ति निमित्त सवा लक्ष रुपये ज्ञान खिलवाने में व्यय किये। इसके सिवाय भी कई प्रकार के उपकार हुए। चार महिला व ३ पुरुष आचार्यश्री के व्याख्यान से प्रभावित हो, भव निस्तारिणी दीक्षा लेने को उद्यत होगये। चातुर्मास समाप्त होते ही उन महानुभावों को दीक्षा देकर सूरिजी ने वहां से विहार कर दिया।

क्रमश विहार करते हुए और धर्मोपदेश देते हुए आपश्री अजयगढ़ पधारे। वहा से आपने मरुभूमि की ओर पदार्पण किया। आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचारों से मरुधरवासियों के मारे खुशी के हर्ष का पार नहीं रहा। आपश्री के पूर्वजों से ही यह प्रवृत्ति चली आई थी कि जब आचार्यश्री विशाल शिष्य समुदाय के साथ किसी बड़े नगर से विहार करते तब मार्ग जन्य कठिनाइयों एव असुविधाओं के कारण अपने योग्य मुनियों के साथ थोड़े २ साधुओं को देकर आसपास के छोटे बड़े ग्रामों की ओर विहार करवा देते और किसी बडे शहर में या योग्य क्षेत्र में पुन सब सम्मिलित हो जाते। तदनुसार आचार्य देवगुप्तसूरि ने अजयगढ से विहार किया तो थोड़े २ साधुओं को योग्य मुनियों के साथ समीपस्थ प्रत्येक ग्रामों की ओर विहार करवाया जिसमें उपाध्याय विनयरुचि को शाकम्भरी नगरी की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान की। मुनि विनयरुची ने भी गुरुदेव की आज्ञा को विनय के साथ शिरोधार्य कर शाकम्भरी की ओर पदार्पण कर दिया। शाकम्भरी निवासियों को उपाध्याय श्रीविनयरुचिजी के पधारने के समाचार प्राप्त हुए तब उन लोगों को बहुत ही प्रसन्नता हुई। क्रमश मुनिश्री के शाकम्भरी पधारने पर शाकम्भरी निवासियों ने आपश्री का अत्यन्त समारोह पूर्वक स्वागत किया। मुनि श्रीविनयरुचिजी थे देवी सरस्वती के परमोपासक अत आपका व्याख्यान भी अत्यन्त मधुर, रोचक एव चित्ताकर्षक था। व्याख्यान को श्रवण करने वाला जन समाज व्याख्यान श्रवण मात्र से मन्त्रमुग्ध हो जाता। जैनधर्मानुयायी आपके व्याख्यान का लाभ उठावे इसमें तो आश्चर्य ही क्या ? पर अजैन राजा प्रजा भी आपके व्याख्यान का लाभ अत्यन्त रुचि के साथ लेने लगे। कहा है—जहाँ सहस्र सज्जन होते हैं वहा एक दो दुर्जन तो मिल ही जाते हैं, तदनुसार तत्रस्थ वाममार्गियों ने मुनिश्री के विरुद्ध एक बवण्डर उठाया। वे लोग स्थान २ पर जन समाज को भ्रम में डालने लगे कि जैन नास्तिक हैं, सत्यधर्म का विध्वस करने वाले हैं पर इसमें वे ज्यादा सफलता नहीं प्राप्त कर सके। जैन लोगों का मुनिश्री पर पूर्ण विश्वास था अत उन्होंने राज सभा में शास्त्रार्थ करवाकर वाममार्गियों को सर्वदा के लिये लज्जित करने का निश्चय कर लिया। निर्दिष्ट निश्चयानुसार ठीक समय में सभा एव शास्त्रार्थ हुआ पर सरस्वती प्रदत्त वरदान धारक उपाध्याय विनयरुचिजी की विचक्षण प्रज्ञा के सामने वे पाच मकार से मोक्ष मानने वाले बेचारे वाममार्गी कहा तक ठहर सकते थे ? आखिर वे पराजित हो अपना मुह नीचे कर चले गये। इस शास्त्रार्थ की अपूर्व विजय से वहाँ के राजा प्रजा पर उपा० श्री के पाण्डित्य का गजब का प्रभाव पड़ा। वे लोग उपा० विनयरुचिजी म० की एव जैन धर्म की भूरि २ प्रशसा करने लगे। इस तरह उपा० श्री ने कई स्थानों पर जैन धर्म की प्रभावना की।

पूज्याचार्यश्री के शासन में और भी कई प्रभाविक मुनि हुए जिसमें एक सोमसुन्दर मुनि का समुन्नत उदाहरण पाठकों के सामने रख देना ठीक समझता हूँ कि एक समय आचार्यश्री अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दे रहे थे उसमें अष्टमा नदीश्वर द्वीप का वर्णन आया, जिसमें ५२ जिनालयों का वर्णन सूरीश्वरजी ने बड़े ही विस्तार से किया, इस पर सूरिजी के एक शिष्य जिसका नाम सोमसुन्दर था उसने सविनय सूरिजी से प्रार्थना की कि भगवन् ! मेरी उत्कष्ट भावना है कि मैं इन शाश्वाते जिनालयों की यात्रा कर अपने जीवन को सफल बनाऊ ? सूरिजी ने कहा वत्स ! नन्दीश्वर द्वीप नजदीक नहीं है कि भूचर–मनुष्य पैरों से चलकर यात्रा कर सकें। उस तीर्थ की यात्रा तो देवता ही कर सकते हैं या जघाचारण, विद्याचारण मुनि तथा आकाश-गामिनी विद्या जानने वाला ही कर सकता है। इस पर शिष्य ने कहा प्रभो ! कुछ भी हो मुझे नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा अवश्य करनी है। सूरिजी ने कहा मुने ! इसके लिये दो ही रास्ते हैं या तो तपश्चर्या द्वारा आकाश-गामिनी विद्या हांसिल करो या किसी सम्यग्दृष्टि देवता की आराधना करो कि तुम्हारे मनोरथ सिद्ध हो सकें। ठीक उसी दिन से मुनि सोमसुँदर ने तपश्चर्या करना आरम्भ कर दिया। कहा है कि सच्चे दिल की भावना होती है वह येनकेन प्रकारेण सफल हो ही जाती है। मुनिजी ने छ मास तक निरन्तर अष्टम-अष्टम तप के

पारणान्त तप कर के सम्यग्दृष्टि देव की आराधना की जिसमें आपका पूर्व भव का एक गरीब साधर्मी भाई जो पूर्वभव में आपकी सहायता से धर्म से चलचित्त होता हुआ स्थिर मन होकर अन्त में समाधि पूर्वक मर कर देव हुआ था उसका उपयोग मुनि सोमसुन्दर की भावना की ओर लगा कि वह अपने पूर्वभव के महान् उपकारी समझ कर मुनि की सेवा में उपस्थित होकर वंदन किया। और अपने अवधिज्ञान से पूर्वभव में किया हुआ उपकार का हाल सुना कर बोला कि पूज्य गुरु महाराज ! मुझे जो देव ऋद्धि प्राप्त हुई है वह आपकी पूर्ण कृपा का ही फल है अब आप कृपा कर मेरे लायक कार्य हो वह फरमाकर मुझे कृतार्थ बनावें ! मुनिजी को तो इतना ही चाहिये था मुनि ने कहा महानुभाव ! मुझे नन्दीश्वर द्वीप के शाश्वत जिनालयों की यात्रा करने की उत्कृष्ट इच्छा है। इस देव ने कहा कि आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये मैं आपको नंदीश्वर द्वीप में लेजा कर उतार दूंगा। आप यात्रा करलें, पुनः यहां पर ले आऊंगा पर स्मरण रखें कि आप वहां अधिक नहीं ठहर सकेंगे। बस यात्रा की उत्कंठ भावना वाले मुनि देव की पीठ पर सवार होगये देव चलता हुआ मुनिजी से कह रहा था कि अब जम्बुद्वीप का उल्लंघन कर लवण समुद्र पर आये हैं अब धातकी खण्ड पर आये एवं कालोदधि समुद्र पर। पुष्करार्द्ध के यहां तक मनुष्य बसते हैं और सूर्यचन्द्र का चराचर भी यहीं तक है आगे पुनः पुष्करार्द्ध तदनन्तर पुष्कर समुद्र। बाद वारुणी द्वीप वारुणी समुद्र, क्षीर द्वीप, घृत समुद्र, इक्षु द्वीप, इक्षु समुद्र इनका लम्बा चौड़ा सब माप जम्बुद्वीप है बाद स्थान दुगुणा करने से इक्षु समुद्र ८११२ अर्थात् च्यासी करोड़ बावनें लाख योजन का लंबा चौड़ा है इसके नंदीश्वर द्वीप आता है वह १६३८४०००० योजन का लम्बा है। बाद मित्र देव ने मुनिजी को नन्दीश्वर द्वीप के मध्य भाग में आया हुआ पूर्व के अञ्जनगिरी पर्वत पर उतार दिया।

मुनिजी वहां के रत्नमय मन्दिर की रचनादि को देख आंखों में चकाचौंध हो गये पुनः देव के साथ ही साथ मन्दिर का सर्वत्र अवलोकन कर मूल गभारा में आकर श्रीमुख भगवान् के दर्शन चैत्यवन्दन स्तुति कर अपना जीवन को कृतार्थ बनाया मुनि के हर्ष का पारावार नहीं रहा इतना मुनि के कहने से प्रतीत हुआ। अस्तु मुनिजी ने वहां पर जिनप्रासाद एवं मन्दिरों की ऊंचाई चौड़ाई वगैरह देखी वह आपकी तीव्र गामिनी प्रज्ञा से याद रख वहां की यात्रा कर पुनः देव की पीठ पर सवार हो शीघ्र ही स्वस्थान आगये साथ में वहां के देवताओं की की हुई पूजा से एक सुगन्धी पुष्प देवता देव से ले आए थे। देवताने मुनि को अपने स्थान पर उतार कर वन्दन किया और पुनः प्रार्थना की कि हे परोपकारी गुरु महाराज ! आपका तो मेरे ऊपर असीम उपकार हुआ है अतः भविष्य में मेरे लायक सेवा हो तो स्मरण कीजिये कि आपके ऋण से किंचित् अवकाश होजाई इत्यादि कह कर स्वस्थान चला गया। बाद आचार्यश्री तथा अन्य साधु निद्रा मुक्त हो अपने स्वाध्याय एवं ध्यान में लग गये पर अकाल अनुपम पुष्प की सौरभ से एक दम सुवासित होने से वे सोचने लगे कि आज इतनी सुवास कहां से आरही है क्या आस पास में ऐसा पदार्थ का प्रादुर्भाव हुआ है ! इतने में तो मुनि सोमसुन्दर ने आकर आचार्यश्री के चरणारविंद में वन्दन करके हस्तबद्धन और पूर्ण हर्ष के साथ निवेदन किया कि पूज्याराध्यवर ! आपकी अतुल कृपा से मेरा चिरकाल का मनोरथ सफल होगया है। आचार्यश्री के ख्याल में आ गया कि मुनि की भावना नंदीश्वर की यात्रा की थी शायद किसी देव की सहायता से इसके मनोरथ सफल हो गए हों अतः आचार्यश्री ने सब हाल पूछा और मुनि ने आद्य से इति तक सब हाल कह सुनाया। साथ में वहां से लाए हुए पुष्प का भी समाचार कह कर वह पुष्प सूरिजी के सामने रख दिया जिसकी सौरभ से केवल एक उपाश्रय ही नहीं वरन् आस पास का प्रदेश भी सुगन्ध युक्त बन गया। देवताओं का पुष्प वनस्पति का नहीं था कि जिसकी सुगन्ध स्वल्प समय में ही समाप्त हो जाय पर यह पुष्प तो रत्नमय था जिसके वर्ण गंध रस और स्पर्श कई वर्षों तक कम हो ही नहीं सके।

प्रातःकाल होते ही भोजकों वालों में इस बात की चर्चा होने लगी पर किसी को पता भी नहीं लगा।

जब श्रावक वर्ग सूरिजी के पास व्याख्यान सुनने को आए और उस सुगन्ध के आश्चर्य की चर्चा व्याख्यान में की तब सूरीश्वरजी महाराज ने फरमाया कि श्रावकों ! सुगन्ध का मूल कारण मुनि सोमसुन्दर है। यह मुनि नन्दीश्वर तीर्थ की यात्रार्थ नन्दीश्वर द्वीप में गया था और वहां की यात्रा कर पुन आते समय एक देवनामी पुष्प साथ में लेता आया उस पुष्प की सौरभ सर्वत्र प्रसारित हुई है। इस पर उपस्थित सब लोगों को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। हा आचार्य पादलीप्त सूरि वगैरह के चरित्र में आकाश गमन विद्या का वर्णन तो आता है, आचार्य वज्रसूरि आकाश गमन विद्या से दुर्भिक्ष में संघ का रक्षण किया तथा प्रभू पूजा के लिये श्रावकों के अत्याग्रह से बीस लक्ष पुष्प आकाश गमन विद्या के बल से ले आए पर नंदीश्वर द्वीप की यात्रा करने का अधिकार आज पर्यन्त नहीं सुना था।

आचार्यश्री ने मुनि सोमसुन्दर को सभा में बुलवा कर संघ के समक्ष सब हाल कहने को कहा इस पर मुनि सोमसुन्दर ने नन्दीश्वर द्वीप का सब हाल कह सुनाया। यद्यपि यह सब हाल शास्त्रों में विद्यमान है तथापि आपने अपनी आँखों से और देव की सहायता से जो देखा सुना वह यथावत् अर्थात् ज्यों का त्यों कह दिया। जैसे —

१—नन्दीश्वर नाम का आठवा द्वीप है १६३८४००००० लम्बा चोड़ा है।

२—इस द्वीप के मध्य भाग में अरिष्ट रत्नोमय चारों दिशाओं में चार अंजनगिरी पर्वत हैं और प्रत्येक अजनगीरी १००० योजन धरती में और ८४००० योजन धरती ऊपर ऊची है। भूमि पर दस हजार योजन का विस्तार चौड़ा है बाद क्रमश कम होता–होता ऊपर एक हजार योजन का विस्तार रह जाता है।

३—अजनगिरी पर्वत के ऊपर का तल रत्न जड़ित है जिस पर एक सिद्धायतन है जिसको देख कर मेरे हर्ष का पारावार नहीं रहा। जहाँ-जहाँ नजर दौड़ाई तो रत्नों की चमक दमक ने मेरे दिल में बड़ा भारी आश्चर्य उत्पन्न कर दिया। वह जिन मन्दिर एक सौ योजन का चौड़ा पचास योजन का पहुल बहुतर योजन का उँचा था जहां तक मनुष्य की दृष्टि पहुँच ही नहीं सकती है तथा उस मन्दिर के चारों दिशाओं में चार दरवाजे हैं वह सोलह योजन ऊचा आठ योजन चौड़ा है। उन चारों मुख्य मडपों के आगे चार प्रक्षेप मडप हैं जो सौ योजन लम्बा पचास योजन चौड़ा है। साधिक सोलह योजन ऊँचा है उन प्रक्षेप मडपों के मध्य भाग में एक मणिपीठ चबूतरा है जो आठ योजन लम्बा चार योजन चोड़ा उस पर एक सिंहासन देवदूष वस्त्रसहित तथा एक वज्रमय अकुश और उन अंकुशों के अन्दर घट के प्रमाण की मुक्ताफल की मालाएँ सुन्दर ढङ्ग से पोई हुई और पीछे फून्दा भी लगा हुआ है उन प्रक्षेप घर मडपों के आगे एक-एक स्तूप जो साधिक सोलह योजन के विस्तार वाला है प्रत्येक स्तूप के चारों दिशाओं में चार मणिपीठ चबूतरे हैं उन मणिपीठ पर चार चार शात मुद्राए पद्मासन सहित जिन प्रतिमाए हैं जो स्तूप के सन्मुख मुंहकर विराजमान हैं। वहाँ पर हमने बड़े ही हर्ष और आनन्द से स्तुति-दर्शन किया उन प्रत्येक स्तूप के आगे एक-एक मणिपीठ चबूतरा है और उस प्रत्येक मणिपीठ पर एक-एक चैत्यवृक्ष जो उनके सर्वाङ्ग विचित्र रत्नोमय है उन चैत्यवृक्षों के आगे और आठ योजन का मणिपीठ आता है और प्रत्येक मणिपीठ पर एक-एक महिन्द्रध्वज सहस्र ध्वजाओं के साथ चौसठ योजन ऊची आकाश के तले को उल्लंघन करने वाली खूब लहरा रही है उन प्रत्येक इन्द्रध्वज के आगे जाने पर एक-एक नन्दापुष्करजी वापि आती है वह एक सौ योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी और दस योजन गहरी जो अनेक प्रकार के कमल, तौरण, ध्वज, चामर, छत्र से बहुत ही शोभायमान दर्शकों के मनको आनन्द पहुचाने वाली है। उन नन्दा पुष्करणी के आगे एक-एक वन खण्ड आ गया है जिसकी शोभा का वर्णन एक जिह्वा से नहीं किया जा सकता है मेरा दिल वहाँ से हटने को बिलकुल नहीं होता था और उन वन खण्डों के प्रत्येक दिशा में ४००० गोल व ४००० चौखूटे आसन लगे हुए हैं जो देवागना एव देवता वहाँ यात्रार्थ आवे हैं, उनके बैठने के लिये काम आते हैं यह तो एक अंजनगिरी पर्वत का मूल एक मन्दिर के चार

दरवाजों के चारों तरफ के पदार्थ हैं उनको देख मैं मूल मन्दिर में गया वहां सोलह योजन का मणिपीठ है उसके ऊपर एक देवच्छन्दा जो सोलह योजन लम्बा चौड़ा और साधिक सोलह योजन ऊंचा है जिसके अन्दर शान्तमुद्रा पद्मासन एवं वीतराग भाव को प्रदर्शित करने वाली १०८ जिन प्रतिमाएं विराजमान है जिनके दर्शन करते ही मैं तो आनंद सागर में मग्न हो गया। मेरे आत्मा के एक-एक प्रदेश में वीतराग भावना का प्रादुर्भाव हुआ। और वीतराग वर्णित आगमों के लिए मैं बार-बार विस्मित चित्त होने लगा। खैर, बाद मैं देव के साथ दूसरे अंजनगिरी पर जाकर दर्शन किया तो वो रचना यहाँ अंजनगिरी पर है वह दूसरे और बाद में तीसरे और चौथे अंजनगिरी पर देखी। दर्शन चैत्यवन्दन स्तुति कर अपने जीवन को कृतार्थ बनाया।

प्रत्येक अंजनगिरी पर्वत के चारों ओर चार-चार बावड़ियां हैं जो एक लक्ष योजन लंबी पचास हजार योजन चौड़ी और एक हजार गहरी तोरण दरवाजा ध्वजा चामर छत्र अष्टाष्ट मंगलीक से सुशोभित है प्रत्येक वापि के मध्य भाग में एक-एक दधि मुख पर्वत है एक हजार योजन भूमि में और ६४०० योजन भूमि से ऊंचा दस हजार योजन का मूल में चौड़ा तथा इतना ही ऊपर के तला में चौड़ा है सफेद दही के समान रत्नों के ये पर्वत हैं अर्थात् चार अंजनगिरी के चारों तरफ १६ वापिकाएं और सोलह वापिकाओं में सोलह दधिमुख पर्वत हैं और इन १६ पर्वतों पर १६ सिद्धायतन सब चार-चार दरवाजे वाले जैसे अंजनगिरी के मंदिर का मैंने पूर्व में बयान किया है उसी प्रकार के ही ये मंदिर हैं।

पूर्व कथित १६ बावड़ियों के अन्तर में दो-दो रतिकरगिरी पर्वत आये हैं और ऐसे ३२ रतिकरगिरी पर्वत हैं। ये एक-एक हजार योजन के ऊंचे हैं और इतने ही चौड़े झालराकार सर्व रत्नमय है और इन ३२ रतिकरगिरी पर ३२ जिन मन्दिर हैं जो पहले कहे प्रमाण वहां भी जाकर मैंने बड़े ही हर्ष के साथ दर्शन चैत्यवन्दन स्तुतियें की जिसका आनन्द था वो उस समय मेरी आत्मा ही अनुभव कर रही थी सो आपकी है या परमात्मा जानते हैं इन ३२ पर्वतों के अलावा चार रति करे पर्वत जो रत्नोंमय हैं उन चारों पर्वतों के चारों ओर सोलह राजधानियां हैं जिनमें आठ तो शक्रेन्द्र की अग्रम हिषियों और आठ ईशानेन्द्र की अग्रम हिषियों की हैं जब भगवान् के कल्याणक दिनों में तथा अन्य पर्वादिक में वे देवांगना नन्दीश्वर में आती है तब वे देव देवियों अपनी राजधानियों में विश्राम लेती है मतलब इन में आराम करती हैं इत्यादि इस नन्दीश्वर द्वीप के महात्म्य का कहां तक बयान किया जा सकता है यदि देवता के पीठ पर वापस आने की अवधि नहीं होती तो मैं यहां से वापिस आने की इच्छा तक भी नहीं करता पर क्या किया आप देव के साथ मुझे वापिस आना पड़ा मैंने वहां से रवाना होते २ देखा कि आकाश के अन्दर कई चारण मुनि भी शायद वहां यात्रार्थ जाते थे मैंने वहाँ की स्मृति के लिये एक पुष्प लाया हूँ जो इस मकान को ही नहीं पर सोपारक तक को सौरभमय बना रहा है। मुनि सोमसुन्दर ने ऊपर बतलाया हुआ नन्दीश्वर द्वीप के पदार्थों की संक्षेप गिनती निम्न लिखित है—

१—चार अंजनगिरी पर्वत ऊंचा ८४　　योजन प्रमाण।
२—सोलह वापियों-लाख योजन लंबी पचास हजार योजन चौड़ी।
३—सोलह दधिमुख पर्वत ऊंचा ६४००　योजन।
४—बत्तीस रतिकरगिरी पर्वत ऊंचा एक हजार योजन।
५—पूर्वोक्त बावन पर्वतों पर बावन जैन मंदिर १००-५०-७२ योजन।
६—पूर्वोक्त बावन जैन मन्दिर चौमुख चार द्वार वाले हैं।
७—पूर्वोक्त बावन मन्दिरों में ५६१६ जिन प्रतिमाएं हैं वे जघन्य सात हाथ उत्कृष्ट पाँच सो धनुष की सपरकर्मोमय पद्मासन पर विराजमान हैं।
८—सब मन्दिरों के २०८ मुख मंडप हैं।
९—मुख मंडप के आगे २०८ प्रेक्षाघर मण्डप हैं।

१०—प्रक्षेप घर मढप के आगे २०८ स्तूप आये हैं ।
११—स्तूपों के चारों ओर जिन प्रतिमाए ८१६ हैं ।
१२—स्तूपों के आगे चबूतरों पर २०८ चैत्यवृक्ष हैं ।
१३—चैत्यवृक्ष के आगे चबूतरों पर २०८ इन्द्रध्वजें है ।
१४—इन्द्रध्वजें के आगे २०८ पुष्करणी वापियों हैं ।
१५—वापियों के आगे २०८ सुन्दर वन खण्ड हैं ।
१६—वनखण्डों के अन्दर देवताओं के बैठने के गोल एव चौखुने चबूतरे हैं ।

इस प्रकार मुनि सोमसुन्दर के मुंह से नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन सुनकर चतुर्विध श्रीसघ ने मुनिजी की यात्रा का साश्चर्य अनुमोदन किया और अपने जीवन को कृतार्थ समझा और शास्त्र कथित नन्दीश्वर द्वीप पर विशेष श्रद्धा सम्पन्न बने ।

मुनि सोमसुन्दर ने अपनी प्रतिभा का जनता पर अच्छा प्रभाव डाला इतना ही क्यों पर मुनि सोमसुन्दर ने इधर उधर भ्रमण कर कइ दश हजार जनता को जैनधर्म की दीक्षा देकर महाजन सघ मे वृद्धि की ।

देवादि की सहायता से केवल एक सोमसुन्दर मुनि ने ही ऐसे तीर्थों की यात्रा की हो ऐसी बात नहीं है पर और भी कई महात्माओं ने देवादि की मदद से तीर्थों की यात्रादि कर शुभ कार्य किये हैं जैसे आचार्य वीरसूरि की अष्टापद की यात्रा का वर्णन हम पहले कर आये हैं तथा आचार्य यशोभद्रसूरि का चमत्कारी घटना पूर्व जीवन प्रसगोपात यहा लिख देते हैं जिससे जैनधर्म की महान् प्रभावना हुइ थी ।

भगवान् महावीर की सतान के ८४ गच्छ हुए कहे जाते हैं यदि शुरु से सख्या लगाई जाय तो गच्छों की संख्या तीन सौ से अधिक मिलेगी । पर प्रचलित शब्द ८४ का ही चला आता है । खैर, उन गच्छों में सढेरा (व) गच्छ भी एक प्राचीन गच्छ है इस गच्छ में भी बड़े २ प्रभाविक आचार्य हुए हैं और उन्होंने जैन शासन की प्रभावना के साथ कई अजैनों को जैन बनाया महाजन सघ की खूब ही वृद्धि की थी इस गच्छ के आचार्यों की परम्परा भी ईश्वरसूरि, यशोभद्रसूरि, शालिभद्रसूरि, सुमतिसूरि और शातिसूरि इन पाच नामों से ही क्रमश परम्परा चली आ रही है जैसे उपकेशगच्छ एवं कोरटगच्छ तथा पल्लीवालादि गच्छ में प्रवृति थी । यों तो इस गच्छ में बहुत प्रभाविक आचार्य हुए थे पर यहा पर तो मैं एक यशोभद्रसूरि के विषय में ही कुछ लिखूगा ।

आचार्य यशोभद्रसूरि का जन्म मारवाड़ के पलासी नाम के ग्राम में प्राग्वट वशभूषण शाह पून्यसार के गृहदेवी गुणसुदरी की पवित्र कुक्षि से वि० स० ६५७ तथा एक पट्टावली मे ६४७ वर्षे आपका जन्म हुआ था । उस होनहार पुत्र का नाम सौधर्म रखा था । और सौधर्म की दीक्षा अति बाल्यावस्था मे हुई थी और इस दीक्षा का एक ऐसा चमत्कारी कारण बताया गया है कि —

साढेराव गच्छ के आचार्य ईश्वरसूरि अपने ५०० मुनियों के परिवार में विहार कर रहे थे पर आपके पीछे पट्टधर योग्य कोई साधु उनके लक्ष में नहीं आये तब वे एक समय मुडारा ग्राम में आये और वहा पर बदरीदेवी की आराधना की जिससे देवी आई सूरिजी ने उसे अपने पात्र मे उतारली जब देवी जाने लगी तो सूरिजी ने साग्रह उससे पूछा कि देवी ! क्या मेरा गच्छ विच्छेद होगा या कोई योग्य पुरुष मिलेगा ? देवी ने कहा पलासी का प्राग्वट पून्यसार गुणसुन्दरी का पुत्र सौधर्म छोटी अवस्था में पाठशाला में पढ़ता था और वहा एक ब्राह्मण का लड़का भी पढ़ता था । एक दिन सौधर्म ने ब्राह्मण लड़के से दुवातिया मागा ब्राह्मण बालक ने अपना दुवातिया सौधर्म को दिया पर असावधानी से भूमि पर गिरने मे वह फूट गया बाद में ब्राह्मण बालक ने सौधर्म से दुवातिया वापस मांगा तो बदले में अच्छे-अच्छे दुवातिये देने लगा पर ब्राह्मण बालक ने हट पकड़ ली कि मेरा दुवातिया ही मैं लूगा । इस पर आपस में बहुत खेंचाताणी हो गई जिससे

दोनों अध्यापक के पास गये उन्होंने भी समझाया पर आखिर बालक ने अपना हठ नहीं छोड़ा इतना ही क्यों पर इसने क्रोध में आकर एक प्रतिज्ञा भी करली।

चित्र पुत्र पुरी दई गाली, क्रूर करेंगु तुम कपाली। छु पठ हुं संयम सही, नहीं तरी मरहु मणिम पई ॥

इस पर सौधर्म ने भी गुस्सा कर के कहा कि—

वच ते यह वाहिड सुधर्म, जो ये संयम मादरु कर्म। भूमी न मारे तुम प्रायश्चित, नहीं तर नहीं सुवट वमिरो ॥

(उपाध्याय समयकृत यशोभद्रसूरि रास)

यही कहती है कि इस सौधर्म का बालक दीक्षा ले कर आपके गच्छ का भार वहन करेगा। ऐसी भद्रता होगा। बाद में आचार्य ने संघ से कहा और संघ के साथ चलकर आचार्य पल्हाली आए और गुणसुन्दरी के पास जाकर पुत्र की याचना की पर यह कब बन सकता था कि माता अपना इकलौता पुत्र पर भी बालभाव वाले का मांगा हुआ दे दे पहले तो गुणसुन्दरी खूब गुस्से हुए पर बाद में श्रीसंघ ने उसको खूब समझाई और उसको सौधर्म की दीक्षा के भावी लाभ तथा इसमें तुम्हारा ही गौरव है इत्यादि उपदेश से प्रभावित होकर गुणसुन्दरी ने अपना एकमात्र इकलौता सा पुत्र को गुरु चरणों में अर्पण कर दिया। बाद में ईश्वरसूरि ने उस पांच छः वर्ष के होनहार बालक को दीक्षा दे दी। बाद दीक्षा के छः मास में ही वह शास्त्रों का पारगत पंडित हो गया। इतना ही क्यों पर वे सूरिपद के योग्य सर्वगुण भी सम्पादित कर लिये।

तत्पश्चात् ईश्वरसूरि पुनः मुंडारा में आये बाद गौत्र के साथ बदरीदेवी की आराधना की। देवी स्वयं आकर संघ समक्ष सौधर्म मुनि के मस्तक पर गन्ध में पुष्पों की माला डाल कर सूरिपद अर्पण कर आपका नाम यशोभद्रसूरि रख कर अदृश्य हो गई। यशोभद्रसूरि विकार का पराजय करने के लिये छः विगई का त्याग रूप तप करना प्रारम्भ कर दिया।

यशोभद्रसूरि विहार कर पाली आए श्रीसंघ ने अपूर्व महोत्सव कर नगर प्रवेश करवाया सूरिजी की अमृतमय देशना श्रवण कर श्रीसंघ ने अपने जीवन को कृतार्थ किया। एक दिन सूरिजी सूर्य के मन्दिर के पास निर्दोष भूमि देख ध्यान बैठे सूर्य ने सूरिजी की ध्यान के अनुसार विकट तपस्या जान कर हीरा पन्ना, मणि मुक्ताफल आदि दिए पर सूरिजी ने तो उनके सामने देखा तक नहीं इस पर सूर्य ने सोचा कि ऐसा पवित्र सूरि मेरे मन्दिर में आवे तो मैं कृतार्थ बनूं। सूर्य ने बरसात बरसाई जिससे सूरिजी सूर्य के मन्दिर में चले गये सूर्य ने कपाट बन्द कर कहा कि आप कुछ मांगो ? सूरिजी ने कहा हम निर्ग्रन्थ हैं हमको कुछ भी नहीं चाहिये। सूर्य बहुत आग्रह किया तो सूरिजी ने सूक्ष्म (बहुत छोटे) जीव देखने का गुण सीखावें। सूर्य ने कहा कि कल में पूर्ण लेकर आपके मकान पर आऊंगा। इत्यादि वार्तालाप कर सूरिजी अपने स्थान पर आ गये।

सूर्य ने शुभकारियों से अनेक विद्याओं के मंत्र एक पुस्तक में लिख कर तथा एक अंजन कुपिका के विशेष धारण कर सूरिजी के पास आया और दोनों वस्तु सूरिजी के आगे रख कर सूर्य अदृश्य होगया सूरिजी ने अंजन आंखों में लगा कर देखा तो सब जीवों की राशी (छोटा से छोटा) भी दीखने लगा। तथा पुस्तक से विद्यायें भी सिद्ध करली। बाद में विचार किया कि पीछे के लोग ऐसी विद्याओं का दुरुपयोग न कर सकें अतः अपने शिष्य मुनि बलभद्र से कहा कि जाओ इस पुस्तक को सूर्य के मन्दिर में रख आओ। पर मार्ग में पुस्तक खोलकर पढ़ना नहीं। मुनि बलभद्र पुस्तक लेकर जा रहा था उसके दिल में आई कि इसमें कौनसी विद्या है। अतः मार्ग में पुस्तक खोल तीन पत्रे निकाल लिये। बाद में पुस्तक को सूर्य के मन्दिर में रख कर मुंह मोड़ कर रोने लगा इस पर सूर्य ने कहा कि हे भद्र ! रोता क्यों है ? जा मैंने तुझे तीन पन्ने दिये बस ! बलभद्र मुनि स्वस्थान आगये।

यशोभद्रसूरि इन विद्याओं से तत्त्वनिधि अणिमासिद्धि तथा आकाशगामिनी वगैरह कई विद्याओं को सिद्ध

करली थी जिससे प्रतिदिन शत्रुञ्जय, गिरनार, सम्मेतशिखर, अष्टापद चम्पा-पावापुरी तीर्थों की यात्रा करके ही भोजन करते थे। सूरिजी पाली से विहार करके माढेराव आये वहा मन्दिर की प्रतिष्ठा पर धारणा से अधिक लोग बाहर से आये उनके लिये भोजन बनाने में घृत कम होगया इस बात की खबर सूरिजी को पड़ते ही पाली का एक जैनोतर धनिक के यहा से घी मंगवा दिया, जब कार्य समाप्त हुआ तो सूरिजी ने कहा कि पाली के व्यापारी के घी के दाम चुकादो। अब माढेराव वाले पाली जाकर उस सेठ को घृत के दाम देने लगे तो उसने कहा मैंने घृत ही नहीं दिया तो दाम किस बात के लेऊं। पर जब उसने अपने घृत की कोठिया देखी तो उसको सूरिजी के चमत्कार पर महान आश्चर्य हुआ उसने कहा कि संसार में राजदंड, यमदंड, चोरदंड, अग्निदंड और जलदंड हम सहन कर लेते हैं पर मेरी दुकान से एक महात्मा ने घृत मंगवाया वह भी श्रीसंघ के काम के लिये इसके दाम यदि मैं न लेऊं तो मन्दिर प्रतिष्ठा जैसे पुण्य कार्य में मेरा इतना-सा सीर हो जायगा। इस बात की खबर जब सूरिजी को मालूम हुई तो उस भव्य को लघुकर्मी जान, और सेवा में आने पर प्रति बोध देकर जैन धर्मी बनाया।

सूरिजी विहार करते हुए एक दफा चित्रकूट पधारे। जब आघाट नगर मे राजा अल्लट का मंत्री गुणधर ने एक मंदिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा के लिये चित्रकोट जाकर यशोभद्र सूरि को लाया और बड़े ही समारोह के साथ प्रतिष्ठा करवाई जिसका राजा पर भी बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। एक दफे राजा के साथ सूरिजी एवं सब चैत्यपरिपाटी करने को चले तो रास्ते मे एक अवधूत मिला उसने अपने मुह का स्पर्श किया इस पर सूरिजी ने दोनों हाथों से मसल दिया जिससे हाथ श्याम हो गये। अवधूत चमत्कार पाकर नमन कर चला गया। इस पर राजा ने पूछा कि अवधूत के और आपके क्या संकेत हुआ, हम समझ नहीं सके। इस पर सूरिजी ने कहा हे राजन! उज्जैन नगरी के महाकालेश्वर के मन्दिर में दीपक की अग्नि से चद्रवा जलने लगा अवधूत ने मुह स्पर्श कर संकेत किया मैंने विद्या बल से उसे हाथों से मसल कर बुझाया जिससे हाथ श्याम होगये राजा ने इस बात की ख्यात्रि करने के लिये अपने आदमियों को उज्जैन भेजे। वहा जाकर उन्होंने ठीक तपास की तो उसी समय उसी टाइम उसी तरह से चद्रवा जलने का प्रमाण मिला तो फिर वापिस आकर राजा को सब हाल सुनाया जिससे राजा को गुरु वचनों पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। अत राजा अल्लट ने गुरु से जैन धर्म स्वीकार कर जैन धर्म का पालन करने लगा।

एक दिन आघाट नगर[1], रहेट[2], कवि लाण[3] सगरी[4] और भैसर[5] इन पाचों नगरों के सघ प्रतिष्ठा के लिये आये सूरिजी ने सब को एक ही मुहूर्त दिया और कहा कि प्रतिष्ठा के समय में आकर प्रतिष्ठा करवा दूगा बस, ठीक समय पर विद्याबल से पाच रूप बना कर पांचों जगह एक साथ प्रतिष्ठा करवा दी। जब कविलाण में जन सख्या अधिक होने से नवमुत कुवों का पानी बिलकुल समाप्त हो गया। इस प्रकार ६५ कुवों में सूरिजी ने अथाह जल कर दिया इस चमत्कार को देख राजा प्रजा गुरु के पक्के भक्त बन गये।

आघाट नगर का एक श्रेष्टिवर्य्य ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला जिसमें आचार्य यशोभद्र सूरि को भी साथ में लिया। सघ क्रमशः अणहिल्लपुर पट्टन के पास पहुँचा तो वहा का राजा मूलराज बड़े ही समारोह के साथ सूरिजी के दर्शनार्थ आया, सूरिजी ने धर्मोपदेश दिया जिसको सुन राजा ने प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप तो सदैव के लिये पट्टण में ही निवास कर भव पीड़ितजनों का कल्याण करें। सूरिजी ने उत्तर में कहा कि हे नरेश! हम निर्ग्रन्थो का ऐसा आचार नहीं कि हम एक स्थान पर ही ठहर जाय। तथापि राजा ने एक बार मकान पवित्र करने की प्रार्थना की कि सूरिजी राज भवन में पधारें। राजा बाहर निकल कर मकान के कपाट बन्द कर दिये सूरिजी ने लघुरूप बना कर किवाड़ के छिद्र से निकल कर आकाशगामिनी विद्या से सघ में शामिल हो गये और एक आदमी के साथ राजा को धर्म लाभ कहलाया। राजा ने मकान को देखा तो

१—आघट नगर उदयपुर के पास में, २—रहेट शायद रोहट या करहेट होगा, ३—साकम्बरी ४—भैसरोड़ होगा।

आचार्य नहीं इससे सूरिजी के चमत्कार से राजा बड़ा ही आश्चर्यान्वित हुआ। संघ मार्ग में आगे चल कर पानी के अभाव से दुःखी हुआ। एक सूखे तालाब को सूरिजी ने विद्याबल से भर दिया। इत्यादि बहुत चमत्कारों के साथ संघ तीर्थ पर पहुँचा। शत्रुंजय की यात्रा कर गिरनार गये वहाँ प्रभो को रत्नजड़ित भूषण धारण करवाये। सब लोग नीचे आये संघपति प्रभु दर्शनार्थ गये तो प्रतिमा पर एक भी भूषण नहीं देखा सूरिजी के पास आकर प्रार्थना करी कि प्रभो! यह आक्षेप संघ पर आवेगा। सूरिजी ने कहा कि एक मनुष्य आभूषण लेकर आघाट गया है तीसरे दिन पकड़ा जायगा। ऐसा ही हुआ भूषण वापिस लाकर प्रभो को धारण करवाये।

सूरिजी ब्रह्मपुर में पधार कर चातुर्मास किया और वहाँ पर एक अवधूत योगी आया जो कि दुराचारी बाबा मायावी ही था उसने व्याख्यान की सभा में अपनी दाढ़ी के बालों के दो सर्प बना कर छोड़े पर सूरिजी ने दो नौलिया बना कर छोड़े कि सर्प को पकड़ ले गये। एक समय एक साध्वी सूरिजी को वन्दन करने को आती थी अवधूत ने उसे पागल बना दी। जब सूरिजी को ज्ञात हुआ तो आपने घास का एक पुतला बना कर संघ को दिया कि यदि अवधूत न माने तो एक अंगुली काट देना।—श्रावक पुतला लेकर अवधूत के पास गये और उसको बहुत समझाया कि साध्वी को अच्छी कर दो पर उसने एक भी नहीं सुनी तो फिर श्रावक ने पुतला की एक अंगुली काटी तत्काल अवधूत की अंगुली कट गई फिर कहा अभी भी समझ जा वरना सिर काट दिया जायगा। तब अवधूत ने कहा कि १०८ पानी के घड़ों से इसको स्नान करा दो ताकि यह ठीक हो जायगी। इस प्रकार करने से साध्वी ठीक हो गई। इसी प्रकार अवधूत ने कई प्रपंच किये पर सूरिजी के सामने उसकी कुछ भी नहीं चल सकी आखिर राज सभा में ८४ वार हुए उनमें अवधूत ही पराजय हुआ।

सोमसुन्दर एक पट्टावली में कवि दीपविजय ने यह भी लिखा है कि सं १ १ में यशोभद्रसूरि और एक शिव भक्त के आपस में विवाद हुआ इसमें दोनों ने एक एक मन्दिर उड़ाकर नाडोलाई में ले आये वे दोनों मन्दिर अद्यावधि वहाँ विद्यमान हैं इत्यादि सूरिजी के चमत्कार अपार हैं और इन विद्या चमत्कारों से एक तो जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना की और दूसरा अवधूत योगियों के जैनधर्म पर बहुत आक्रमणों से जैनधर्म एवं जैन संघ की रक्षा भी की।

आचार्य यशोभद्रसूरि अपने सदुपदेश एवं आत्मीय चमत्कारों से कई राजाओं एवं साधारण जनता को जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की खूब वृद्धि की। एक समय आप नारदपुरी में पधार कर राव लाखण के लघु भ्राता रावदूदा को उपदेश देकर जैनी बनाया। रावदूदा की संतान आशापुरी माता के भंडार का काम करने से वे आगे चल कर भंडारी कहलाये। इसी प्रकार गुगलिया धारोला, कांकरिया दुगड़िया बोहरा चतुर सिसोदियादि १२ जातियों के आदि पुरुषों को आचार्य यशोभद्रसूरि ने उपदेश देकर जैनधर्मी श्रावक बनाये थे।

जब सूरिजी ने अपने ज्ञान द्वारा अपनी आयुष्य शेष छः मास का रहा जाना तब श्रीसंघ के समीप आलोचना निंदना कर शुद्ध भावों से निशल्य हो गये तथा श्रीसंघ को कहा कि मेरे मरने के बाद मेरे मस्तक की खोपड़ी फोड़ तोड़ के चूर चूर कर डालना नहीं तो कहीं मेरी खोपड़ी अवधूत के हाथ लग गई तो जैनधर्म का काफी नुकसान करेगा। इत्यादि कह कर आचार्य यशोभद्रसूरि ने समाधि पूर्वक स्वर्ग के अतिथि बन गये। पीछे से श्रीसंघ ने गुरु आज्ञा का पालन किया बाद में अवधूत आया पर उसके मनोरथ सफल हो नहीं सके। कारण उसके आने के पूर्व ही गुरु आज्ञा का पालन श्रीसंघ ने कर दिया था।

आचार्य यशोभद्रसूरि जैसे संसार में एक महान् प्रतिभाशाली एवं चमत्कारी आचार्य हुए हैं आपके अलौकिक जीवन के लिये कई महात्माओं ने विस्तृत संख्या में ग्रन्थों का निर्माण किया था पर अभी तक वह

साहित्य प्रकाश में नहीं आया है केवल आपका ही क्यों पर अभी तो ऐसे बहुत महापुरुषों का जीवन अन्धेरे में ही पड़ा है फिर भी जमाना स्वयं प्रेरणा कर रहा है। अत जितना मशाला मिला है उसके आधार पर मुनिवर्य श्री विद्याविजयजी महाराज ने आचार्य यशोभद्रसूरि के जीवन के विषय में एक विस्तृत लेख लिख कर जैन श्वे० कान्फ्रेन्स का मासिक पत्र हेरल्ड में मुद्रित करवाया था उसके आधार या कुछ अन्यत्र देखकर मैंने पूज्याचार्य देव का सक्षिप्त से जीवन लिखा है आचार्यश्री के लिये दो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।

(१)

सोहम कुलरत्न पट्टावली में कवि दीपविजयजी लिखते हैं:—

साडेरा गच्छ में हुआ जसोभद्र सूरिराय। नवसें हें सतावन समें जन्म वरस गछराय ॥ १ ॥
सवत नवसें हें अडसठें सूरि पदवी जोय। बदरी सुरी हाजर रहें पुन्य प्रबल जस जोय ॥ २ ॥
सवत नव अगण्यौतरे नगर मुंडाडा माहिं। साडेरा नगरें वली किधी प्रतिष्ठा त्याँह ॥ ३ ॥
बुद्दा किन्न रसी वली खीम रीषि मुनिराज। जसोभद्र चोथा सहु गुरु भाई सुख साज ॥ ४ ॥
बुहाथी गछ निकल्यो मलधारा तस नाम। किंन्न रसीथी निकल्यो किंन्न रसी गुन ग्रॉन ॥ ५ ॥
खीम रसीथीय निपनो कोर वट बालग गछ जेह। जसोभद्र साढेर गछ च्यारे गछ सनेह ॥ ६ ॥
आबु रोहाई विचे गाम पलासी माहें। विप्र पुत्र साथे बहु भणता लडिया त्याहें ॥ ७ ॥
खडिओ भागो विप्रनो करे प्रतिज्ञा एम। माथानो खडीओ करूं तो ब्राह्मण सहि नेम ॥ ८ ॥
ते ब्राँह्मण जोगी थई विद्या सिखी आय। चोमासुं नडुलाईमें हुता सूरि गछराय ॥ ६ ॥
तिया आयो तिहिज जटिल पूरव द्वेष विचार। बाघ सरप विछी प्रमुख किधा केई प्रकार ॥ १० ॥
सवत दस दाहोतरें किया चौरासी वाद। वल्लभीपुरथी आणिओ ऋषभदेव प्रासाद ॥ ११ ॥
ते जोगीपण लाविओ सिव देहरो मन भाय। जैनमति सिवमति वेहु दोय देहरॉ ल्याय ॥ १२ ॥
ते हमणा प्रासाद छें नड्डुलाई सेंहेर मम्कार। एहनो वरवण छें बहु कथा कोस विस्तार ॥ १३ ॥

(२)

नाडोलाई में सवत् १५५७ का शिला लेख है जिसकी नकल।

॥ ६० ॥ श्रीयशोभद्रसूरि गुरुपादुकाभ्या नम,

सवत् १५५७ वर्षे वैशाखमासे। शुक्लपक्षे षष्टया तिथौ शुक्रवासमि पुनर्वसु ऋक्षप्राप्त चन्द्रयोगे। श्री सडेरगच्छे। कलिकालगौतमावतार। समस्तभविकजन मनोऽम्बुज विबोधनैकदिनकर। सकललब्धिनिधानयुगप्रधान। जितानेकवादीश्वरवृन्द प्रणतानेकनरनायक मुकुटकोटिस्पृष्टपादारविंद। श्रीसूर्यइव महाप्रसाद। चतु पष्टि सुरेन्द्र सगीयमान साधु वाद। श्रीषडेरकीयगण रक्षका वतस। सुभद्राकुक्षि सरोवर राज [ह] सयशोवीर साधु कुलांबर नभोमणि सकलचारित्रिचक्रवर्ति चक्रचूडामणि भ० प्रभुश्री यशोभद्रसूरय। तत्पट्टे श्रीचाहुमानवशशृगार। लब्धसमस्तनिरवद्यविद्याजलधिपार श्रीबदरीदेवी गुरुपदप्रसाद स्वविमल कुलप्रबोध नैक प्राप्त परमयशोवाद भ० श्रीशालिसूरि त० श्रीसुमतिसूरि। त० श्रीशातिसूरि। त० श्रीईश्वरसूरि। एव यथा क्रममनेक गुणमणिगण रोहणगिरीणां महासूरीणा वशे पुन श्रीशालिसूरि। त० श्रीसुमतिसूरि तत्पट्टालकारहार भ० श्रीशांतिसूरिवराणां सपरिकराणा विजयराज्ये ॥ अद्येह श्रीमेदपाटदेशे। श्रीसूर्यवशीयमहाराजाधिराज श्रीशिलादित्यवशे श्रीगुहिदत्तराउल श्रीबप्पाक श्रीखुम्माणादि महाराजान्वये। राणा हमीर श्रीखेतसीह। श्रीलषमसीह पुत्र श्रीमोकलमृगाक वंशोद्योतकार प्रताप मार्तण्डावतार। आसमुद्रमहिमण्डलाखण्डल। अतुलमहाबल राणा श्री कुम्भकर्ण पुत्र राणा श्रीरायमल विजयमान प्राज्यराज्ये। तत्पुत्र महाकुमार श्रीपृथ्वीराजानुशासनात्। श्रीऊपकेशवशे राय भण्डारीगोत्रे राउलश्री लाखणपुत्र श्रीम० दूदवशे म० मयूर सुत म० साहूलह।

कपुत्राभ्यां सं० सीहा-समराभ्यां मदेवीर १ सं कमलीपाटा साकाहि सुपुत्रेण गुणाभ्यां श्रीनमस्कारयुतां पुर्वा सं १६४ आचार्यमद्रसूरिसिंहातिक्षमयानीदायां सं० साधर कारित देवकुलिकापूजारिर साधर माप श्रीजिन चमभ्वा श्रीमातीपाटरक्षा स्थापना कारिता गुणाश्रीशान्तिसूरि पट्टे देवसुन्दर इत्यपरशिष्यनामभिः आ० श्रीधर सूरिभिः इति कपुसगर्दसरिय प्रि० आचार्य श्रीधरसूरिया प्रतीसा सूत्रधार सोमार्केन ॥ शुभम् ॥

(श्री भाडवाड़ ग्राम के मन्दिर में वर्तमान है)

"इति महाप्रभाविक आचार्य यशोभद्रसूरि का संक्षिप्त जीवन"

जैसे मुनि सोमसुन्दर ने आत्मीय चमत्कार से देव के जरिये श्री नन्दीश्वरद्वीप के ५२ जिनालय की यात्रा खूब आनन्द के साथ की इसी प्रकार आचार्य यशोभद्रसूरि भी अपने आत्मीय चमत्कारों से प्रतिदिन पंच महातीर्थों की यात्रा किया करते थे इन महा पुरुषों के अलावा भी बहुत से प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं कि जिन्होंने अपने सम्यग्ज्ञान एवं तपश्चर्य के प्रकाण्ड प्रभाव से धरणेन्द्र तो क्या पर सुरसुरेन्द्र को आकर्षित बना कर शासन की प्रभावना के कई कार्य किये थे। आचार्य वीरसूरि का चरित्र हम ऊपर लिख आये हैं कि आपने भी देवता की सहायता से अष्टापद तीर्थ की यात्रा की थी और वहाँ से वापिस लौटते समय देवताओं के प्रभु को चढ़ाये चावल ले आये थे जैसे सोमसुन्दर मुनि पुष्प लाया था अस्तु।

आचार्य देवगुप्तसूरि के शासन में एसे ऐसे कई प्रतिभाशाली मुनि हुए थे और ऐसे चमत्कारी मुनियों के प्रभाव से ही शासन की सर्वत्र विजय विजयन्ती फहरा रही थी सूरिजी तो आज्ञावर्ती अन्यान्य मुनिगण आदेशानुसार अन्य प्रान्तों में विहार करते हुए जैन शासन का उद्योत करते थे अनेक मांस मदिरा सेवियों को प्रतिबोध देकर महाजनसंघ के शामिल कर उसकी संख्या में खूब वृद्धि कर रहे थे। एक समय सूरिजी महाराज विहार करते हुए नागपुर पधारे। तथा अन्यत्र विहार करने वाले मुनिराज भी सूरिजी के दर्शनार्थ नागपुर में आकर सूरिजी के दर्शन किये—

उस समय का नागपुर अच्छा नगर था। उपकेशवंशियों की आबादी का तो वह एक केन्द्र स्थान ही था। धन, जन एवं व्यापारिक स्थिति में सब से सिरताज था। श्रीसंघ के अत्याग्रह से वह चातुर्मास तो सूरीश्वरजी ने नागपुर में ही कर दिया। आदित्य नाग गौत्रीय गुलेच्छा शाखा के शा० ... ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर श्री भगवती सूत्र की आराधना की। महाप्रभावक भगवती सूत्र को बाँचकर आचार्यश्री ने संघ को सुनाया। इसके सिवाय भी कई भावुकों ने अनेक प्रकार से तन, मन एवं धन से लाभ उठाया। विशेष में आचार्यश्री का सम्यक्वैराग्य व्याख्यान श्रवण कर श्रेष्ठि गौत्रीय मन्त्री करमण के पुत्र सज्जन ने छ मास की विवाहित पत्नी को त्याग कर दोनों ने सूरिजी की सेवा में भागवती, भव विध्वंसिनी दीक्षा लेने का निश्चय किया। चातुर्मासानन्तर उन भावुकों का अनुकरण कर करीब १६ की पुरुष दीक्षा के लिये और भी तैय्यार हो गये। शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में सूरिजी ने सज्जन प्रभृति १६ वैरागियों को दीक्षा देकर उनका आत्म कल्याण किया। इसी शुभ मुहूर्त में चम्पनाम गौत्रीय नाहटा शाखा के धनवीर शा ... दुर्गा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की भाशातीत प्रभावना हुई। तत्पश्चात् सूरिजी ने मुग्धपुर, कुर्चपुर, मेदिनीपुर, खजवाड़ि, रूपपुर, प्रद्युम्ननगर, शाकम्भरी, माधवपुरी, माण्डव्यपुर होते हुए उपकेशपुर की ओर पधारे। उपकेशपुर निवासियों का इस बात की खबर पड़ते ही उनके धर्मोत्साह का पारावार नहीं रहा। सुचन्ति गौत्रीय शा० काका ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी के नगर प्रवेश का शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने भी चतुर्विध श्रीसंघ के साथ भगवान् महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर आगत जन समाज को संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित मांगलिक देशना दी। सूरिजी म० का इस समय उपकेशपुर में बहुत ही वर्षों से पदार्पण हुआ था अतः जनता के हृदय में अत्यन्त हर्ष एवं धर्म-स्नेह बढ़ गया। सभी सचाधिका भी बड़ा करा बग्गा के लिए आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हो कर पुरुष-सम्मान किया करती थी। सूरिजी भी उनसे शासन

सम्बन्धी वार्तालय एवं परामर्श समयानुकूल किया करते थे। एक दिन देवी ने आचार्य श्री से प्रार्थना की- पूज्यवर! आपने अपने परमोपकारी शरीर से जैनधर्म एवं गच्छ की बड़ी कीमती सेवा की है। अब आपकी वृद्धावस्था है अतः आप अपने पट्ट पर योग्य मुनि को सूरि पद प्रदान कर परम निवृत्ति पूर्वक आत्म साधन करें। अब यहीं पर स्थिरवास कर हमको कृतार्थ करें जिससे हमें दर्शन का लाभ बराबर मिलता रहे। इस पर सूरिजी ने कहा-देवीजी! आपका कहना सौलह आना सत्य है। मेरी इच्छा उपा० विनयरुची को पद प्रतिष्ठित कर सर्वथा निवृत्ति मय मार्ग का अनुसरण करने की है।

देवी—उपा० विनयरुची आपके पट्टधर होने के सर्वथा योग्य है। इस प्रकार कह कर सघायिका ने आचार्य श्री को वन्दन किया। सूरिजी ने भी उन्हें धर्म लाभ दिया। देवी भी धर्मलाभ रूप शुभाशीर्वाद प्राप्त कर स्वस्थान चली गई।

आचार्यश्री की वृद्धावस्था के कारण व्याख्यान कमी २ उपा० विनयरुची दिया करते थे। एक समय संघ के अग्रेश्वरों ने मिलकर प्रार्थना की पूज्य गुरुदेव! आपकी वृद्धावस्था है अतः योग्य मुनि को सूरि पद प्रदान कर आपश्री गच्छ के भार से सर्वथा चिन्ता मुक्त हो जावें। यहाँ के श्रीसघ की इच्छा है कि उपा० विनयरुची को सूरि पद से विभूषित किया जावे फिर तो जैसा आपको योग्य एवं उचित ज्ञात हो कुछ भी हो सूरि पद महोत्सव का लाभ तो यहां के श्रीसघ को ही मिलना चाहिये। सूरिजी को यह बात पहिले देवी ने कही थी और आज श्रीसघ की भी अग्रह पूर्ण प्रार्थना हुई अतः समयज्ञ सूरिजी ने यह प्रार्थना अविलम्ब स्वीकार करली। डिड्डू गौत्रीय शा० तेजसी ने सूरि पद के महोत्सव के लिये चतुर्विध श्रीसघ से आदेश मागा और श्री सघ ने भी उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान की। वि० सं० १०३३ के आषाढ शुक्ला प्रतिपदा के शुभ दिन डिड्डू गौत्रीय शा० तेजसी के किये हुए महा-महोत्सव के साथ भगवान् महावीर के चैत्य में चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष उपाध्याय पद विभूषित उपा० विनयरुची को आचार्यश्री ने सूरि पद से विभूषित किया। और परम्परानुसार आपका नाम सिद्ध सूरि रख दिया इसके साथ ही साथ अन्य योग्य मुनियों को उनकी योग्यतानुसार उपाध्याय, पण्डित, वाचनाचार्य, महत्तर, प्रवर्तकादि पदवियाँ प्रदान की। इस सुअवसर पर बहुत से भक्त जन बाहर से आये थे वे स्वधर्मी बन्धु भी महोत्सव में सम्मिलित थे। शाह तेजसी ने सकल श्रीसघ के नरनारियों को बढ़िया स्वर्णमुद्रिकादि की प्रभावना देकर नवलक्ष रुपये व्यय किये। इससे जैन शासन की अत्यन्त प्रभावना हुई व शाह तेजसी ने अक्षय पुण्योपार्जन किया।

उपकेशगच्छाचार्यों का यह नियम था कि अपने पद पर किसी योग्य मुनि को सूरि पद कमी क्यों न दे देते पर चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति जो रत्नप्रभसूरि से चली आई थी—जिस दिन नूतनाचार्य के हस्तगत करते उसी दिन से वे पट्टधर गिने जाते।

पूज्याचार्य देव के २२ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं को जैन दीक्षाएं

१—नागपुर	के	चोरड़िया	जाति के	शाह	माना ने	सूरिजी के पास	दीक्षाली
२—मेदिनीपुर	के	आर्य	"	"	सलखण ने	"	"
३—पासोड़ी	के	भुरट	"	"	रामा ने	"	"
४—दान्तिपुर	के	सकासेठ	"	"	हरखा ने	"	"
५—हर्षपुर	के	श्रेष्टि	"	"	दुर्जन ने	"	"
६—विजासणी	के	जांघड़ा	"	"	फूसा ने	"	"
७—भवानीपुर	के	दरड़ा	"	"	दुर्गा ने	"	"
८—पाटण	के	पोकरणा	"	"	नाथा ने	"	"

९—रूपावती	के	गुलेच्छा	जाति के	शाह	गोपा ने	सूरीजी के पास दीक्षा ली	
१०—हंसावलि	के	श्रीश्रीमाल	„	„	गोविन्द ने	„	„
११—कन्नुपुर	के	संचेती	„	„	राव गोदा ने	„	„
१२—दासाली	के	मुथा	„	„	गोरख ने	„	„
१३—पद्मावती	के	साखा	„	„	माधा ने	„	„
१४—सोनगढ़	के	भुभुरा	„	„	स्वरूपचन्द ने	„	„
१५—डागीपुर	के	कंकरिया	„	„	नरसिंह ने	„	
१६—रामपुर	के	सुघड़	„	„	लोकजी ने	„	„
१७—हासनी	के	चंडालिया	„	„	नथमल ने	„	„
१८—चर्पट	के	बापना	„	„	मेघा ने	„	„
१९—चत्रीपुर	के	दानड़	„	„	देपाल ने	„	„
२०—मालपुर	के	गान्धी	„	„	चतुरा ने	„	„
२१—माढ़ी	के	चंडालिया	„	„	जीवण ने	„	
२२—पालड़ी	के	डेडलिया	„	„	जोधा ने	„	„
२३—मुग्धीमन	के	डेरिया	„	„	लाधा ने	„	„
२४—राटपुर	के	सुघड़	„	„	धन्नू ने	„	„
२५—नन्दपुर	के	कमोजिया	„	„	डुंगरे ने	„	
२६—सरोखी	के	मालरह	„	„	रूपा ने	„	„
२७—योगनीपुर	के	„	„	„	मुंजल ने	„	„
२८—रामपुर	के	„	„	„	मल्लपाल ने	„	„
२९—वीरपुर	के	„	„	„	कूंपा ने		
३०—श्रीमुखन	के	„	„	„	सारंग ने	„	„
३१—डामरेल	के	„	„	„	सेहारण ने	„	„
३२—मालपुरा	के	श्रीमाल	„	„	सेत्रपाल ने	„	
३३—शीवोड़ी	के	„	„	„	धोकल ने	„	
३४—रूपकोट	के	„		„	पूर्णचन्द ने	„	„
३५—रेणुकोट	के	„	„	„	पमा ने	„	„

आचार्यश्री के २२ के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ

१—चांदपुर	के	सुरवा	जाति के	शाह	सुरा ने	भ० महावीर के म०	प्रतिष्ठा करवाई
२—नवपुरी	के	साखा	„	„	आसल ने	„	„
३—रत्नपाल	के	श्रेष्ठि	„	„	मोखा ने	„	„
४—आघाट	के	चारख	„	„	कुशल ने	„	„
५—सीतली	के	भाद्रा	„	„	मैना ने	„	„
६—चित्रकोट	के	चार्य	„	„	मोजा ने	म० पार्श्वनाथ	„
७—मदनपुर	के	सामैद	„	„	कुमार ने	„	„
८—वीरपुर	के	श्रीमाल	„	„	सालखा ने	„	

९—छागाणी	के	श्रीश्रीमाल	जाति के	शाह	सुरजण ने	नेमिनाथ	भ० की प्रतिष्ठा करवाई
१०—नाणापुर	के	तोडियाणी	"	"	सारंग ने	"	"
११—ब्राह्मणपुर	के	सालु	"	"	सज्जन ने	शान्तिनाथ	"
१२—कुकडग्राम	के	सुघड़	"	"	हावर ने	"	"
१३—राजपुर	के	भटेवरा	"	"	छाजू ने	मल्लिनाथ	"
१४—मगलपुर	के	बोहरा	"	"	जोधा ने	"	"
१५—मुडस्थल	के	कोठारी	"	"	ऊँकार ने	आदीश्वर	"
१६—जाबलीपुर	के	जालेचा	"	"	उदा ने	"	"
१७—जुजारी	के	मोरवाल	"	"	अर्जुन ने	"	"
१८—पादवाडी	के	ककरिया	"	"	भोपाल ने	म० महावीर	"
१९—खीवसर	के	चाकला	"	"	महेराज ने	"	"
२०—मुग्धपुर	के	राखेचा	"	"	महीपाल ने	"	"
२१—अजयगढ	के	कुम्मट	"	"	हरपाल ने	विमलनाथ	"
२२—वीरपुर	के	कनोजिया	"	"	नानग ने	सुमतिनाथ	"
२३—चन्द्रावती	के	कल्हाणी	"	"	नारायण ने	आदिनाथ	"
२४—ढेलिग्राम	के	मत्री	"	"	नरशी ने	"	"
२५—नदपुर	के	जघड़ा	"	"	कोला ने	शान्तिनाथ	"
२६—दशपुर	के	समदड़िया	"	"	करमण ने	"	"
२७—उज्जैन	के	प्राग्वट	"	"	काना ने	"	"
२८—महादुर्ग	के	"	"	"	करत्या ने	भ० पार्श्वनाथ	"
२९—नारायणगढ	के	"	"	"	राणा ने	"	"
३०—ओनन्दपुर	के	"	"	"	राणांक ने	"	"
३१—सोपारपट्टण	के	"	"	"	रामा ने	"	"
३२—भरोंचनगर	के	"	"	"	चुड़ा ने	म० महावीर	"
३३—करणावती	के	श्रीमाल	"	"	आदू ने	"	"
३४—वडप्रद्र	के	"	"	"	ओटा ने	"	"
३५—खम्भात	के	"	"	"	आखा ने	"	"

आचार्यश्री के २२ वर्षों के शासन में तीर्थों के संघादि शुभकार्य

१—उपकेशपुर	के	गुलेच्छा	जाति के	शाह	मोकल ने	शत्रुञ्जय का	संघ निकाला
२—पद्मावती	के	सुचंति	"	"	भैकरण ने	"	"
३—भरोंच	के	श्रेष्टि	"	"	मोकम ने	"	"
४—सोपार	के	देसरड़ा	"	"	माला ने	"	"
५—खम्भात	के	कुम्मट	"	"	राजसी ने	"	"
६—उज्जैन	के	डिड्ड	"	"	खेतसी ने	"	"
७—माण्डव	के	नोलखा	"	"	सावतसी ने	"	"
८—पाल्ही	के	मुगेड़ा	"	"	मारू ने	"	"

४७-आचार्यश्री सिद्धसूरि (१०वाँ)

सिद्ध सूरि रितीह नाम्नि सुघड गोत्रे सुधर्मा यती।
यो मन्त्रस्य सुजाल बन्धन विधेरात्मानमापालयत् ॥
दासत्व मुनिधानमेव कृतवान् प्राप्तः ससूरेः पदम्।
धर्मस्योन्नयने च देव भवने यत्नस्यकर्त्रे नमः॥

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज अपने समय के अनन्य, परोपकार धर्मनिरत परम प्रतापी, सहस्त्ररश्मि की शुभ्र रश्मिराशिवत् तपस्तेज की प्रकीर्णता से प्रखर तेजस्वी, षोडश कला से परिपूर्ण कलानिधि की पीयूषवर्षिणी शान्ति सौख्य प्रदायक रश्मिवत् शीतल गुणधारक, शान्तिनिकेतन, ज्ञानध्यानादि सत्कृत्य कर्ता, उपकेशवश वर्धक, जिनेश्वर गदित यमनियम परायण, जिनधर्म प्रचारक, महा प्रभावक सूरि पुङ्गव हुए।

इस रत्नगर्भा भरत वसुन्धरान्तर्गत मेदपाट प्रान्तीय देव पट्टन नामक विविध सरोवर कूप तड़ाग वाटिकोपवन उपशोभित, उत्तुग २ प्रसाद श्रेणी की अट्टालिकाओं से जनमनाकर्षक, परम रमणीय नगर में आपश्री का जन्म हुआ। आप सुघड़-गौत्रीय पुण्यशील शाह चतरा की सुमना भार्या भोली के 'लाडुक' नामाङ्कित बडे मनस्वी पुत्र थे। आपके पूर्वज अक्षय सम्पत्ति के आधार पर अनेक पुण्योपार्जन कार्य कर अपने पवित्र नाम को जैन इतिहास में अक्षय बना गये थे। करीब तीन बार शत्रुञ्जय, गिरनारादि पवित्र तीर्थाधिराजों की यात्रा के लिये विराट् सघ निकाले व सघ में आगत स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिकादि योग्य प्रभावनाओं से सम्मानित किया। दर्शन पद की आराधना के लिये शत्रुञ्जय तीर्थ पर प्रभु पार्श्वनाथ का जिनालय बनवाया। मुनियों के चातुर्मास का अक्षय लाभ लेकर लक्षाधिक द्रव्य से ज्ञानार्चना की व ज्ञान भण्डार की स्थापना की।

पर काल की गति अत्यन्त ही विचित्र है। पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मों की कराल कुटिलता तदनुकूल फलास्वादन कराये विना नहीं रहती हैं इसी से तो शास्त्रकारों ने भव्य जीवों के हितार्थ स्थान २ पर भीषण यातनाओं का दिग्दर्शन करवाते हुए "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" लिखा है। मेधावी-मननशील मनीषियों को सतत आत्म स्वरूप विचारते हुए कर्मोपार्जन कार्यों से भयभीत रहना चाहिये। निकाचित कर्मों का बधन करना सहज (उपहास मात्र में ही सम्भव) है, पर उनके द्वारा उपार्जित कटु फलों का अनुभव करना भुक्त भोगियों से ही ज्ञातव्य है।

धन्य वे श्रमणवत् उदारवृत्ति से लाखों रुपयों को व्यय करने वाली चतरा की सन्तान लाडुक आज लाभान्तराय की भीषणता के कारण लक्ष्मीदेवी के कोप का भाजन बन गया था। गृहस्थोचित साधारण स्थिति के होने पर भी धर्म प्रिय लाडुक ने अपने नित्य नैमैत्तिक धार्मिक कृत्यों में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने दी। उधर अन्तराय कर्म की प्रबलता से दीनता एव गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी प्रापञ्चिक जटिलता अपना दो कदम आगे बढा रही थी और इधर लाडुक उन सब बातों की उपेक्षा करता हुआ धर्मकार्य में अग्रसर होता जारहा था। देवी सच्चायिका का सकल मनोरथ पूरक, कल्पवृक्ष-चिन्तामणि रत्नवत् वाञ्छितार्थप्रद सुदृढ़ इष्ट होने पर भी अपने अपने कर्मों के विपाकोदय को सोच कर आर्थिक चिन्ता निवारणार्थ देवी की आरा-

बना कर देवी से द्रव्य याचना करना मुनासिब नहीं समझा। श्रावक, ने तो धर्म कार्य में संलग्न रह कर भविष्य को सुधारना ही स्वकर्त्तव्य बना लिया।

एक समय वाग लिया मिथ्यात्व एक योगी देवपट्टन नगर में आया। उसने अपने नाना प्रकार के भौतिक चमत्कारों से उक्त नगर निवासियों को अपनी ओर सहसा आकर्षित कर लिया। अल्प प्रज्ञ जन समाज उसका परम भक्त बन गया। क्रमशः कई दिनों के पश्चात् एकाएक किसी प्रसङ्ग पर किसी विशेष व्यक्ति के द्वारा श्रावक की गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी चिन्तनीय स्थिति विषयक सभी हकीकत योगी को ज्ञात हुई। उक्त बातों के मालूम होने पर योगी को श्रावक की निस्पृहता एवं निरीहतापर परम विस्मय हुआ। कारण, अधिकांश नगर निवासी चमत्कार प्रिय जन समुदाय उसकी ओर आकर्षित एवं आश्चर्यान्वित था पर श्रावक विचारणीय स्थिति का साधारण गृहस्थ होने पर भी मंत्र यंत्रादि की विशेष आशाओं से विमुख—योगी के आश्चर्य का कारण ही था। बहुत दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् भी श्रावक द्रव्य के लोभ से योगी के पास न आया तब योगी ने स्वयं उसको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये जाने का निश्चय किया। क्रमशः श्रावक के पास आकर योगी कहने लगा—श्रावक! किन्हीं हितैषी व्यक्तियों के द्वारा तुम्हारी वास्तविक परिस्थिति का पता लगने पर तुम्हारी निस्पृहता पर आश्चर्य तथा असहायता पर दुःख हुआ अतः मैं स्वयं ही (मेरे यहां तुम्हारे नहीं आने के कारण) उपस्थित हुआ। श्रावक! तुम किसी तरह की चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें एक शर्त पर एक ऐसा दारिद्र्य विनाशक मंत्र बतलाऊंगा कि जिसके द्वारा तुम्हारा कोष ही सर्वदा के लिये अक्षय हो जायगा। पर तुम्हें इस उपकार के बदले जैनधर्म को छोड़ कर हमारा धर्म स्वीकार करना होगा। योगी के उक्त सर्व वचनों को शान्ति पूर्वक श्रवण करते हुए मननशील श्रावक सोचने लगा—क्या मैं इस तुच्छ, एवं विनाशी चञ्चलचपला व चपललक्ष्मी के मनगढ़न्त प्रलोभन से अपने अमूल्य-आत्मीय धर्म का त्याग कर आत्म प्रतारणा के दोष से दूषित होऊं ! नहीं, यह तो कभी हो ही नहीं सकता। जैन दर्शन में दुःख और सुख धन और निर्धनता को कर्मों का परिणाम बतलाया है। कर्म की रेखा पर रेख मारने में तो अनन्त शक्तिशाली तीर्थङ्कर, चतुर्दिक विजयी चक्रवर्ती भी समर्थ नहीं। कर्मों के शुभाशुभ विपाकोदय को न्यूनाधिक करने में या रहोबदल करने में शक्तिशालियों का शक्ति शस्त्र भी कुण्ठित हो जाता है तो मिथ्यात्व क्रूर परिणामों वाले कुत्सित एवं में रत योगी मेरे कर्मों को अन्यथा करने में कैसे समर्थ होसकता है ? फिर भी श्रावक अपनी गृहपत्नी की कसौटी या धर्म परीक्षा के लिये योगी कथित सकल मंत्र प्रयोगी एवं धर्म परिवर्तन रूप बातों को कहकर उससे उचित परामर्श पाने के निमित्त पूछने लगा—प्रिये ! आर्थिक संकट निवारक योगी का आज सर्वोत्तम संयोग हुआ है। यदि कहो तो उनके धर्म को अपनाकर अक्षयनिधि रूप मन्त्र प्राप्त कर लिया जाय।

पत्नी—क्या पैसे जैसे क्षणिक द्रव्य के लिये भी आप धर्म को तिलाञ्जली देने के लिये उद्यत होगये ? मैं तो ऐसे पातक प्रयोगों का अनुमोदन करने मात्र के लिये तत्पर नहीं हूँ। ये सब भौतिक साधन भौतिक सुख के साधन अवश्य हैं तथापि धर्म रूप कल्पवृक्षवत् अक्षय सुख के दातार नहीं। कङ्कर तुल्य द्रव्य निमित्त चिन्तामणि रत्न रूप धर्म का त्याग करना मेरी दृष्टि से समीचीन नहीं।

अपने ही विचारों के अनुरूप दृढ़ धर्म विचार या अपने से भी दो कदम आगे बढ़े हुए धर्मानुराग को देख श्रावक को बहुत ही सन्तोष एवं आत्मिकानन्द का अनुभव होने लगा। वह रह २ कर पवित्र धर्म परायण पत्नी के गुणों पर अपने आपको गौरवशील समझने लग गया। पत्नी की दृढ़ता को देख पुत्रों की परीक्षा निमित्त श्रावक, पुत्रों को समझाने लगा—प्रिय पुत्रों ! गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी अनेक जटिलता पूर्ण समस्याओं को सुलझाने के लिये आज स्वर्गोपम योगी प्रदत्त अक्षय कोष प्राप्ति का अनुपम संयोग प्राप्त हुआ है। यदि तुम लोगों की इच्छा हो तो केवल धर्म परिवर्तन रूप साधारण कार्य से ही उक्त कार्य साध्य किया जा सकता है।

पुत्र—पूज्य पिताजी ! आपश्री का कहना किसी अंश में ठीक अवश्य कहा जा सकता है पर धर्म रूप अमूल्य रत्न का सर्वदा के लिये विक्रय कर नारकीय यातनाओं का कारण भूत हिंसा धर्म का अनुगामी होना और वह भी नगण्य द्रव्य के प्रलोभन से—क्या श्रेयस्कर कहा जासकता है ? पिताजी सा० हम तो आपके अनुभव एवं ज्ञान के सम्मुख एक दम अल्पज्ञ हैं, पर आप ही गम्भीरता पूर्वक विचार करिये कि यदि योगी की किञ्चित् बाह्य कृपादृष्टि से अपने को अक्षय द्रव्य की प्राप्ति भी होगई तो क्या वह परलोक के लिये श्रेयरूप हो सकेगी ? लक्ष्मी तो प्राय पापका ही हेतु है धार्मिक भावों की प्रबलता में दारिद्रय जन्य दारूण दु ख भी सुख रूप है और धन्य वैश्रमण की अनुपमावस्था में अधार्मिक वृत्ति रूप सुख भी दुःख रूप है कुछ भी हो पिताजी सा० ! हम तो ऐसा करने के लिये सर्वथा तैय्यार नहीं ।

दैन्यवृत्तिप्रादुर्भूत विषय विषमावस्था में भी पुत्रों के सराहनीय सहन शक्ति एव प्रशसनीय धर्मानुराग को देख लाडुक, गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी प्रापञ्चिक जटिलता को स्मृति-विस्मृत कर हर्ष विमुग्ध बन गया। कुछ क्षणों के लिए उसे पारिवारिक धार्मिक भावनाओं के आधिक्य से स्वर्ग से भी ज्यादा सुख का अनुभव होने लगा। वह अपने आपको इस विषम दशा में भी भाग्यशाली एवं सुखी समझने लग गया।

इस तरह के दीर्घ विचार विनिमय के पश्चात् दृढ़धर्म रग रक्त लाडुक योगी से कहने लगा—महात्मन् ! आपकी इस उदार कृपा दृष्टि के लिये मैं आप का अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे आपकी इस अनुपम दया के लिए हार्दिक प्रसन्नता है। इसके लिये मैं आपका हार्दिकाभिनन्दन करता हुआ कृतज्ञता पूर्ण उपकार मानता हूँ, पर मैं पवित्र जिनधर्मोपासक हूँ। इस प्रकार के मन्त्र तन्त्र एव पाखण्ड धर्म को मैं धर्म समझ कर विश्वास नहीं करता। धर्म रूप अक्षय निधि के बलिदान के बदले भौतिक—दु:खोत्पादक—आध्यात्मिक सुख विनाशक अक्षय कोप को प्राप्त करना मुझे मनसे भी स्वीकार नहीं। क्षणिक प्रलोभन के बाह्य सुख आवेश में पारमार्थिक जीवन को मिट्टी में मिलाना निरी अज्ञानता है। यदि आप अपनी सिद्धि से दुनिया को सुखी बनाना चाहते हैं तो ससार में कई लोग इसकी निर्निमेष दृष्टि पूर्वक आशा लगाये बैठे हैं, उन पर ही आपश्री उदार कृपा करें। मुझे तो मेरे धर्म एव कर्म पर पूर्ण विश्वास है।

गार्हस्थ्य-जीवन-यापन करने योग्य अवर्णनीय यातनाओं का अनुभव करने वाले लाडुक की इस प्रकार धार्मिक निश्चलता, सुदृढ़ता, एव स्थिरता को देख योगी के मानस क्षेत्र में आशा-निराशा का विचित्र द्वन्द्व मच गया। द्रव्य के क्षणिक प्रलोभन के बदले धर्म परिवर्तन करवाने की विशेप आशा से आये हुए सविशेपोत्सुक योगी को लाडुक का सूखा प्रत्युत्तर श्रवण कर आश्चर्य के साथ ही साथ अपनी मनोगत सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फिरने का पर्याप्त दुःख हुआ। मुख पर ग्लानी एव उदासीनता की स्पष्ट रेखा झलकने लगी फिरभी चेहरे की उद्विग्नता को कृत्रम हर्ष से छिपाते हुये लाडुक को पूछने लगे—लाडुक ! तुम्हें ऐसा अपूर्व और निश्चल ज्ञान किसने दिया है ?

लाडुक—हमारे यशस्वी गुरुदेव श्रीदेवगुप्तसूरि बड़े ही ज्ञानी एव सुविहित महात्मा हैं, उन्हीं की महती कृपा दृष्टि का कुछ अश मुझ अज्ञ को भी प्राप्त हुआ है। उनके जैसे उत्कृष्ट त्यागी वैरागी महात्मा अन्य दूसरे मिलना जरा दुर्लभ हैं।

योगी—अच्छा, त्याग एवं निस्पृहता की अमिट छाप डालने वाले आप श्री के गुरुदेव इस समय कहा पर वर्तमान हैं ? क्या मैं उनसे मिलना चाहूँ तो मिल सकता हूँ ?

लाडुक—बेशक, वे कुछ ही दिनों में यहाँ पधारने वाले हैं, ऐसा सुना गया है। आपश्री भी कुछ दिवस पर्यन्त यहीं पर विराजित रहें तो आप भी उन महा पुरुप के दर्शन करके अपने आपको कृतकृत्य बना सकेंगे।

एकदा लाडुक अपने मकान का स्मर काम करवा रहा था तो भूमि खुदवाने पर सुकृत पुञ्जोदय के कारण भूगर्भ से उसे एक बड़ा भारी निधान प्राप्त हो गया। अस्तु, वह विचार करने लगा—'अहो महाश्चर्य !

यदि मैं सद्धर्म का बलिदान कर धन के किंचित् प्रलोभन से उस योगी की जाल में फंस जाता तो भविष्य में मेरी क्या दशा होती ? पवित्र और आत्मकल्याणकारी धर्म के मुकाबले धन की क्या कीमत ? वास्तव में धन के व्यामोह में धर्म का त्याग करना निश्चित ही भयंकर दुर्दशा है। जैन दर्शन के कर्म सिद्धान्त ने तो मुझे इस अवस्था में अपनी सम्पूर्ण दशाओं का सक्रिय अनुभव करवा कर धर्मवाद पर अटूट श्रद्धाशील बना दिया है। जैन धर्म के सर्वज्ञ गदित अनुभवात्मक सिद्धान्तों के समक्ष अन्य दर्शनीय सिद्धान्त क्षणभर भी नहीं स्थिर रह सकते हैं। धन्य है परम-पवित्र पाप भञ्जक, मङ्गल कारी जिनधर्म को और धन्य है इस धर्म प्रेम में रंगे हुए निष्पक्ष जिनधर्मानुयायियों को इस प्रकार भक्ति भावना में डूबे हुए भव्य भावना भूषित भावुक ने इस नियम को भी संसार-बन्धन और भव वृद्धि का कारण समझ अनन्त पुण्योपार्जन के साधन रूप सप्तक्षेत्रों में व्यय प्रारम्भ कर दिया। गार्हस्थ्य जीवन की असह्य यातनाओं को दिव्यवृत्ति से सहन करने वाले स्वधर्मी बन्धुओं का प्रचुर परिमाण में आर्थिक सहायता कर अपने जीवन को सार्थक करने लगा। भावना पूर्वक दान वृत्ति से याचकों के द्वारा यशः सम्पादन करने में अपने आपको सौभाग्यशील समझने लग गया। संघ निकालना, स्वामीवात्सल्य संघ पूजा एवं ज्ञानार्चनादि धार्मिक अङ्गों की आराधना करने में उदार वृत्ति से द्रव्य का सदुपयोग कर जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को प्रभावना के द्वारा बढ़ाने लग गया। योगी को उसकी गजब की दान शक्ति जब किसी तरह मालूम हुई कि मैं जिसे साधारण स्थिति का मनुष्य समझता था वह इस कदर दान पुण्य कर रहा है तो बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी इस आशातीत सन्तोष पूर्ण स्थिति को देख कर वो योगी का रहा सहा घमण्ड भी पराजयी (नष्ट) होगया। वह जिस काम के लिये आया था, उसमें अपने प्रयत्न पूर्ण निष्फल समझ अपना सा मुंह लेकर बैठ गया।

एकदा पुण्यानुयोग से पारस कुमकमल दिवाकर, भव्यपुण्डरीक-विबोधक, प्रभूपमार्थ परम पूज्य आराध्य देव आचार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वरजी का पदार्पण ग्रामानुग्राम कोरण्टपट्टन नगर में होगया। संसार असमनिधिसरूप, पुण्डरपुण्डरीक आचार्यश्री के शुभ शुभागमन से देवपट्टनपुर निवासियों के हर्ष का पारावार नहीं रहा। भव्य भावुक ने भक्तिरस से ओतप्रोत हृदय से सवालक्ष द्रव्य व्यय कर श्रीसंघ के साथ सूरीश्वरजी का प्रवेश महोत्सव बड़े शान और समारोह के साथ किया। जब उस कृत्रिम योगी को खबर लगी कि महादानी भावुक के गुरु का पदार्पण इस नगर में होगया है तब वह भावुक को साथ लेकर दर्श-हितैषी सूरिजी के पास गया और अपने मन में जो इस प्रकार की शंकाएं थी कि आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध कैसे, क्योंकर होता है ? और उनका फल किस प्रकार मिलता है ? स्याद्वाद का वास्तविक रहस्य क्या है ? जैन दर्शन के मुख्य २ सिद्धान्त क्या हैं ? आदि सूरिजी के सामने उपस्थित की। सूरिजी इस बात योगी को ऐसे उत्तम ढंग से समझाया कि भावुक और योगी के विचारों में एकदम विरक्ति पैदा होगई। संसार उन्हें अग्निकर कारागृह रूप लगने लग गया। जीवन के महत्व को समझ कर वे सूरिजी के पास ही दीक्षा लेने के उत्सुक बन गये। सूरीश्वरजी को विरक्ति का कारण बतला कर अनुमति प्राप्तार्थ वे स्व स्व स्वस्थान और गये।

अब भावुक ने अपने कौटुम्बिक लोगों को एकत्रित कर अपने वैराग्य के कारण का स्पष्टीकरण किया तो उनका रहा सहा शान्ति सुख भी हवा होगया। वे लोग आश्चर्य के साथ ही साथ बहुत दुःखी होगये। पर वे आधारभूत भावुक के विराग को वे क्षण भर भी सहन करने में समर्थ नहीं हुए।

भावुक ने भी संसार के यथार्थ स्वरूप को समझा कर कर लोगों को (उनमें से) वैराग्यान्वित बना दिये। अतः ही सभी तो उनके साथ ही दीक्षा लेने के लिये उद्यत होगई। बस भावुक ने अपने पुत्रों को गृहकार्य में स्थापित कर अपने निवास को उन्हें सौंप दिया। विचारशील विनयवान पुत्रों ने भी अपने माता पिता योगी प्रभृति मुमुक्षु दीक्षोत्सुक भावुकों का आशा निर्विघ्न व्यवस्था कर दीक्षा महोत्सव किया। भावुक ने भी

योगी के साथ स्वयं सपत्नी सूरिजी के पदाम्बुजों में भूवर्द्विनाशिनी दीक्षा परम वैराग्य पूर्वक ग्रहण करली। आचार्यश्री ने भी लाडुक को "सोम-सुन्दर" अभिधान से अलकृत किया।

मुनिश्री सोम सुन्दर गुरु चरणों की भक्ति में अनुरक्त रह तत्कालीन एकादशाङ्गादि जितने आगम थे-सबका सम्यक् रीत्या अभ्यास कर लिया। इसके सिवाय अध्यात्मवाद, नयवाद, परमाणुवाद, ज्योतिष, मन्त्र यन्त्र विद्याओं में भी अनन्यता प्राप्त करली। अन्य दर्शनों का अभ्यास करने में तो किसी भी तरह की कमी नहीं रक्खी, क्योंकि उस जमाने में इसकी परम आवश्यकता थी। राजा महाराजाओं की राजसभा में उस जमाने में खूब शास्त्रार्थ हुआ करते थे और वादियों के शास्त्रों से ही वादियों को पराजित करने में बड़ा गौरव समझा जाता था और यह तब ही हो सकता था जब उनके शास्त्रों का अभ्यास किया गया हो। इस तरह अपने दर्शन के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन के साथ ही साथ मुनि सोमसुन्दर ने अन्य दर्शनों में भी अनन्यता प्राप्त करली। कुशाग्र बुद्धि मुनि सोमसुन्दर ने गुरुदेव कृपा से किसी भी तरह की कभी नहीं रहने दी। उन्होंने तो स्थविरों की वैयावच्च कर मुनि जीवन योग्य सब गुणों को प्राप्त करने में किसी भी तरह की कमी नहीं रहने दी।

इधर मुनि सोमसुन्दर (लाडुक) के साथ जिस योगी महात्मा ने दीक्षाली थी, उसका नाम दीक्षानंतर मुनि धर्मरत्न रख दिया था। मुनि धर्मरत्न ने भी जैनधर्म के सम्पूर्ण तत्वों, सिद्धान्तों एव आगमों का अवगाहन-मन्थन कर जैन दर्शन में गजब की दक्षता प्राप्त करली। योग बल की चमत्कार शक्ति एवं तात्विक बुद्धि की श्लाघनीय पटुता के कारण मुनि धर्मरत्न ने स्थान २ पर जिनधर्म का अभ्युदय कर जैन धर्म की प्रभावना की। कालान्तर में अलग विचरने योग्य सर्व गुण सम्पन्न हो जाने पर आचार्यश्री ने पाठक पद से विभूषित कर मुनि धर्मरत्न को १०० मुनियों के साथ धर्म प्रचारार्थ अन्य प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा प्रदान की। मुनि धर्मरत्न ने भी गुर्वादेश को शिरोधार्य कर अपनी चमत्कारिक शक्तियों से जैन धर्म की आशातीत प्रभावना की।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि ने मुनि सोमसुन्दर को सकल शास्त्र निष्णात, विविध विद्या पारङ्गत गच्छ-भारवाहक सर्वगुण सम्पन्न समझ परम्परागत सूरि मन्त्राराधन करवाकर मन्त्र, यन्त्र, चमत्कारिक शक्तियां एव आम्नायों को प्रदान की। पश्चात् अपनी अन्तिम अवस्था में अपना मृत्यु समय जान कर जाबलीपुर के आदित्यनाग गौत्रीय पारख शाखा के धर्म प्रेमी, श्रावकव्रत नियम निष्ठ श्रावक श्री नेमाशाह द्वारा किये गये महा-महोत्सव के साथ आपको आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम "सिद्धसूरि" के रूप में परिवर्तित कर दिया। इधर धर्मरत्न मुनि की बढ़ती हुई योग्यता का आदर कर आचार्यश्री ने उनको उपाध्याय पद प्रतिष्ठित किया। सच है योग्य पुरुषों से योग्य व्यक्तियों का योग्य सत्कार होता ही है।

स्वनाम धन्य आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज महान् चमत्कारी विद्वान् एव धर्म प्रचारक थे। स्वपर मत के सकल शास्त्रों के पूर्ण मर्मज्ञ होने से आपके गम्भीर उपदेश प्राय राजाओं की राज सभा में बड़ी ही निडरता के साथ होते थे। यही कारण था कि अनेक सेठ, साहूकार, राजा, महाराजा और मन्त्रियों पर आपका गहरा प्रभाव था।

ओसवालों में गरुड़ जाति—आचार्यश्री सिद्धसूरिजी अपने शिष्य मण्डल के साथ परिभ्रमन करते हुए मरुधर प्रान्तीय सत्यपुर शहर की ओर पधार रहे थे कि मार्ग में एक अरण्य के भयानक स्थान में एक देवी के मन्दिर के पास बहुत से मनुष्यों को एकत्रित होते हुए देखा। जन समुदाय के समीप ही बहुत से दीन, मूक पशु दीन बदन से क्रन्दन करते हुए व बहुत से वनचर जीवों के रक्त रजित कलेबर भूमि पर बिखरे हुए दृष्टिगोचर हुए। आचार्यश्री सिद्धसूरि ने मूकजीवों का जगल में ऐसा करुणाजनक दृश्य देखा तो निरपराध मूक पशुओं के वात्सल्य भाव के कारण आपका हृदय दया से परिप्लावित होगया। आप से ज्यादा समय

पश्चात् मौन व स्थिरता न रह सकी । शीघ्र ही [illegible] के मन्दिर के पास स्थित जन समुदाय के सम्मुख जाकर कहा—महानुभावों ! आप दीखने में तो उच्च खानदान एवं कुलीन घराने के मालूम होते हैं । मुख पर स्वाभाविक जन रक्षक प्रतिभा गुण की झलक झलक रही है फिर भी न मालूम आप लोग ऐसे जघन्य कुत्सित एवं हेय काम में प्रवृत्त क्यों हो रहे हैं ? मैं यह बात अच्छी तरह से समझता हूँ कि इसमें आप लोगों का किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है । यह तो किसी मांसाहारी नरपिशाच की कुसंगत एवं मिथ्या उपदेश के कुसंस्कारों का ही परिणाम है । उन्हीं की जाल में फंस कर ही आप लोगों ने ऐसे अनुचित कार्य को कर्त्तव्य रूप समझा है । इसका पाप एवं दोष का कारण समझने वाले केवल आप ही नहीं पर बहुत से क्षत्रिय हैं जो मांस भक्षियों की कुसंगति से अपना अधःपतन करते ही जा रहे हैं । क्षत्रिय वीरों का परमधर्म तो दुःखी जीवों के रक्षक बन कर अपने जातीय कर्त्तव्य को अदा करना रहा था पर मिथ्या उपदेशकों के वाग्जाल रूप मोहनीय भ्रम के भ्रम में फंसे हुए उन लोगों ने अपने परम पवित्र कर्त्तव्य व परम्परागत जातीय व्यवहार की स्मृति विस्मृति कर रक्षक रूप पवित्र एवं आदरणीय धर्म को छोड़ दिया । आज तो वे रक्षक होने के बजाय निरपराधु मूक पशुओं को भगवन् निष्ठुर हृदय से आहत कर भक्षक बन गये हैं । इसी में अपना शौर्य पराक्रम, कर्त्तव्य एवं धर्म की इति श्री समझली है ।

इतना सब कुछ होने हुए भी अहिंसा भगवती के उपासक आचार्यों के सदुपदेश श्रवण से व उनकी आध्यात्मिक चमत्कार पूर्ण शक्तियों की अलौकिकता से बहुत से क्षत्रियों ने, अपने पूर्वजों का पवित्र, गौरव वर्धक सन्मार्ग प्रवर्तक इतिहास श्रवण कर इस क्रूर कर्म का त्याग कर दिया है उन्होंने उन महापुरुषों की सत्संग से अपने जीवन को अहिंसा धर्म से ओतप्रोत बना लिया है । अब तो केवल इस प्रकार छुप छिप कर जंगलों में अपनी पापवृत्ति का पोषण करने वाले थोड़े बहुत लोग ही रह गये हैं । इस समय आप स्वयं गम्भीरता पूर्वक विचार कर इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि यदि यह कार्य शास्त्र विहित व धर्मकल्याणकारी ही होता तो इस प्रकार छिप कर क्यों किया जाता ? अच्छा कार्य तो पब्लिक में सर्व समक्ष किया जाता है, इत्यादि ।

सूरिजी के इस परमार्थिक एवं विशुद्ध उपदेश को श्रवण कर बहुत से लोग [illegible] । पर इस काम के करने में जो अग्रेसर या प्रमुख व्यक्ति थे वे बीच ही बोल उठे—महात्मन् ! आपको किसने आमन्त्रित किया कि आप आकर इस प्रकार हमें उपदेश देने लगे । यह तो हमारी वंश परम्परा से चला आया आरोग्य शील स्वर्ग हित सुख एवं कल्याण का कारण है । शास्त्र या वेद विहित होने से सब प्रकार से करणीय है । बलिदान से यही समस्त [illegible] व बलि दिये जाने वाले पशु को भी स्वर्ग की प्राप्ति होगी । इससे सब तरह से श्रेय एवं कल्याण का ही कारण होगा । आप इस बात को अच्छी तरह से नहीं समझते हैं अतः आप यहां से पधार जाइये । हमारे परम्परागत कार्य को बीच में आपको दखल करने की आवश्यकता नहीं ।

सूरिजी—देवानुप्रिय ! यदि इन मूक प्राणियों को आप स्वर्ग में भेजकर देवी को प्रसन्न करना चाहते हो तो आप स्वयं या आपके कौटम्बिक लोग देवी को प्रसन्न करने के साथ स्वर्ग के सुख का अनुभव क्यों नहीं करते ।

इस प्रकार सूरिजी ने अकाट्य प्रमाणों, प्रबल युक्तियों एवं उदाहरणों से इस प्रकार समझाया कि उन लोगों में चौहान और [illegible] आदि को उन पशुओं पर दया भाव पैदा होगया । सूरिजी के उपदेशानुसार उन्होंने हुक्म दे दिया कि इन सब पशुओं को शीघ्र ही अभय मुक्त अमर कर दिये जांय । बस फिर तो देर ही क्या थी ? अनुचरों ने सब पशुओं को छोड़ दिये । वे मूक प्राणी भी अपनी अन्तरात्मा से सूरिजी को आशीर्वाद देते हुए स्वनिर्दिष्ट स्थान की ओर भाग छूटे । मानो उन्होंने नूतन जन्म का ही प्राप्त किया हो इस तरह अत्यन्त उत्सुकता के साथ अपने बाल बच्चों से जा मिले ।

तत्पश्चात् सूरिजी ने राव महाराव आदि वीर क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किये। सत्यपुर से तीन कोस की दूरी पर मालपुरा नामका रावजी की जागीरी का ग्राम था अब रावजी ने अपने ग्राम को पावन बनाने के लिये व अपने समान अन्य बन्धुओं का उद्धार करने के लिये सूरीश्वरजी से अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे। रावजी की प्रार्थनानुसार उपकार का कारण जान कर सूरिजी थोड़े साधुओं के साथ वहाँ गये एव वहीं ठहर गये। उस ग्राम के लोगों को धर्मोपदेश देकर के श्रावकों के करने योग्य कार्यों का बोध करवाया। जैनधर्म के तत्वज्ञान एव शिक्षा दीक्षा से परिचित किया। उस समय के जैनाचार्यों की दूरदर्शिता तो यह थी कि वे जहा नये जैन बनाते वहा सब से पहिले धर्म के भावों को सर्वदा के लिये स्थायी रखने के लिये जिन मन्दिर निर्माण का उपदेश देते। कारण, प्रभु प्रतिमा धर्म की नींव को मजबूत बनाने के लिये व धार्मिक भावनाओं की स्थिरता के लिये प्रमुख साधन हैं। तदनुसार सूरिजी ने रावजी को उपदेश दिया और रावजी ने सूरिजी के कहने को स्वीकार कर मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों पर्यन्त सूरिजी ने वहा स्थिरता की पश्चात् अपने कई साधुओं को वहां रख आपने अन्यत्र विहार कर दिया। इस घटना का समय पट्टावली कारों ने वि० स० १०४३ का लिखा है।

जब राव महाराव का बनवाया हुआ मन्दिर तैयार होगया तो प्रतिष्ठा के लिये आचार्यश्री सिद्धसूरि को आमन्त्रित कर सम्मान पूर्वक बुलवाया। श्रीसूरिजी ने भी वि० स० १०४५ के माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन बड़े ही धूमधाम से प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की बहुत प्रभावना हुई। अहा! जैनाचार्यों का हम लोगों पर कितना उपकार है? प्राणियों के रुधिर से रजित हस्तवाले, जैनधर्म की निंदा व जैन श्रमणों का तिरस्कार करने वाले आज जैनधर्म को विश्व व्यापी बनाने की उन्नत भावना में अग्रसर होगये हैं।

अस्तु वंशावलियों में राव महाराव का परिवार इस प्रकार लिखा है—

इत्यादि, वि सं १८८२ तक की वंशावलियां लिखी मिलती हैं।

धाम महाराज का पुत्र शिव और शिव का पुत्र सांवत था। सांवत ने सत्यपुर को अपना निवास स्थान बना लिया था। सांवत की साङ्गोपाङ्ग भक्ति से प्रेरित हो देवी ने गरुड़ पर सवार हो रात्रि के समय स्वप्न में सांवत को दर्शन दिये। उस समय सांवत अर्धनिद्रा निद्रित था। अतः सवार को व देख सका ही देख सका। इतने में एकाएक आवाज हुई भक्त! तेरे गायें बांधने के स्थान की भूमि में एक शुभ निधान है। वह निधान तेरी भक्ति से प्रसन्न हो मैं तुझे अर्पण करती हूँ। इस द्रव्य को धर्म कार्य में लगाकर अपने जीवन को सफल बनाना इतना कह कर देवी अदृश्य होगई। सांवत जागृत होकर चारों ओर देखने लगा तो न दीखा गरुड़ और न दीखा स्वप्न भासा ही। तथापि सांवत ने इसको शुभ स्वप्न समझ शेष रात्रि को धर्मध्यान में व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही उसने सीधे मन्दिर में जाकर भगवान् के दर्शन किये। बाद ही में स्थित पौषधशाला में विराजित गुरु महाराज के दर्शन कर उनकी सेवा में रात्रि को आये हुए स्वप्न का आद्य वृत्तान्त कह सुनाया। सांवत के मुख से स्वप्न वृत्त को श्रवण कर गुरु महाराज ने कहा—सांवत! तू बड़ा ही भाग्यशाली है। तेरे पर भगवती देवी की पूर्ण कृपा हुई। पर ध्यान रखना इस द्रव्य का सदुपयोग सदा धर्म कार्यों में या शासनोत्कर्ष में ही करना। गुरुदेव के शुभ वचनों को शिरोधार्य कर गुरु मुख धर्मलाभ रूप शुभाशीर्वाद को प्राप्त कर सांवत अपने घर पर चला आया।

जिस रात्रि में सांवत ने उक्त कथित निधान का स्वप्न देखा उसी रात्रि में सांवत की स्त्री शान्ता—जो क्षत्रिय वंश की थी—स्वप्न में पारस प्रभु की प्रतिमा को देखकर जागृत हुई। जब उसने अपने पतिदेव से अपने स्वप्न की सारी हकीकत कही तो सांवत के हर्ष का पारावार नहीं रहा। हर्षोन्मत्त सांवत ने अपनी पत्नी से कहा—प्रिय! तू भाग्यशालिनी है। तेरी कुक्षि में अवश्य ही कोई भाग्यशील जीव अवतरित हुआ है जिसके प्रभाव से जैसा तुझे स्वप्न आया है वैसे मुझे भी निधान प्राप्त होने रूप एक अच्छा स्वप्न आया है। समयज्ञ सांवत दोनों के बतलाए हुए स्थान की भूमि को खोदकर निधान निकाल लाया बस, अर्थप्राप्ति की प्राप्ति के साथ ही साथ जनोपयोगी, पुण्य सम्पादन करने योग्य कार्य भी प्रारम्भ कर दिये। सांवत को कोई इस स्थिति के सम्बन्ध में पूछता तो वह कहता था कि यह सब गरुड़ का प्रताप है। अतः कालान्तर में लोग उन्हें गरुड़ नाम से सम्बोधित करने लग गये। आगे चलकर तो आपकी सन्तान भी गरुड़ जाति के नाम से मशहूर हो गई। इस प्रकार ओसवालों में ऐसा मच्चा काग, चील, मच्छी, सांड, सियाल आदि कई जातियां बन गई।

इधर सांवत के प्रबल पुण्योदय से आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का पधारना सत्यपुर में होगया। सांवत ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का बड़े ही समारोह पूर्वक पुर-प्रवेश करवाया। आचार्यश्री के उपदेश से शत्रुञ्जय की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला जिसमें नव लक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिकाओं की प्रभावना दी। इस तरह के अनेक कार्यों से जैनधर्म की प्रभावना के साथ ही साथ स्वयं ने अक्षय पुण्य सम्पादन किया। इसके विषय में कई कवित्त भी मिलते हैं जिसमें इनको चारणों ने गरुड़ नाम श्रीकृष्ण की उपमा दी है।

सांवत की स्त्री शान्ता ने शुभ समय में एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पारस रक्खा गया। जब पारस क्रमशः आठ वर्ष का हुआ तब सत्यपुर के राजा के अनबन के कारण सांवत ने रात्रि समय सत्यपुर का त्याग कर नाडूल की ओर प्रस्थान किया। जब सत्यपुर नरेश को इस बात की खबर हुई तो उन्होंने [illegible] सवारों को सांवत का पीछा करने के लिये भेजा। सांवत को मार्ग में ही सवार मिल गये [illegible] [illegible] उसको पुनः सत्यपुर की ओर चलने के लिये अत्यन्त प्रेरित किया। सवारों की उक्त बात [illegible] दिया तब परस्पर शब्दों में मुठभेड़ होगई। सांवत की वीर एवं महाराजश्री का

सांवत की स्त्री शान्ता के पुत्र पारस

किन्तु एक ओर तो चार सशस्त्र सवार और एक ओर अकेला पूरी शस्त्र सामग्री से रहित सांवत। इतना होने पर भी सांवत ने चारों सवारों को धराशायी कर दिया पर सावत भी सुरक्षित न रह सका। उसके शरीर पर बहुत ही भयङ्कर घाव लग गये परिणाम स्वरूप कुछ ही समय के पश्चात् वह भी स्वर्ग का अतिथि बन गया। सांवत की स्त्री शान्ता ने पतिदेव के साथ चिता में सती होने का आग्रह किया पर पारस के करुणाजनक रुदन एव बालोचित स्नेह के कारण वह ऐसा करने से सहसा रुक गई। इस समय स्त्री स्वभावोचित निर्बलता बतलाना अपने ही हित एव भविष्य का घातक होगा ऐसा सोच कर उसने बहुत ही धैर्य एवं वीरता के साथ अपने माल को सुरक्षित कर आगे चलना प्रारम्भ किया। क्रमश. वे फल वृद्धि नाम के एक नगर को प्राप्त हुए उस समय फलवृद्धि नगर में हजारों घर जैनियों के थे। पट्टावलियों के आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि धर्मघोष सूरि ने अपने ५०० मुनियों के साथ फल वृद्धि में चातुर्मास किया था। अत' उक्त कथन में संशय करने का ऐसा कोई स्थान ही नहीं रह जाता है।

पारस अपनी माता के साथ सानन्द फलवृद्धि नगर में रहने लगा। उस समय स्वधर्मी बन्धुओं के प्रति जातीय महानुभावों का बहुत ही सम्मान एवं आदर था। वे अपने स्वधर्मी बन्धु को अङ्गजवत् पालन पोषण करते थे व समृद्धिशाली बनाते थे। तदनुसार पारस तो अन्य स्थान मे आया हुआ तेजस्वी, होनहार लड़का था। अत कालान्तर में पारस का विवाह पोकरण जाति के शा० साधु की कन्या जिनदासी के साथ हो गया। वे सब सकुटुम्ब फल वृद्धि में ही आनन्द पूर्वक रहने लगे।

पारस पूर्व सञ्चित कर्मोदय के कारण साधारण स्थिति में आ पड़ा था तथापि पारस की माता वीर क्षत्रियाणी एवं जैन धर्म के कर्म सिद्धान्त की मर्मज्ञ थी। वह पारस के कार्य सहायक बन, उसे सांत्वना प्रदान कर बड़ी ही दक्षता के साथ अपना कार्य चलाया करती थी।

एक समय पारस अर्ध निद्रावस्था में सो रहा था कि अर्द्धरात्रि के समय देवी पद्मावती ने स्वप्नान्तर होकर कहा—पारस ! नगर की पूर्व दिशा में केर के झाड़ के बीच जहा एक गाय का दूध स्वयं स्रवित हो जाता है,—भगवान् पार्श्वनाथ की श्यामवर्णीय चमत्कारी प्रतिमा है। जिस समय तू उसको जाकर देखेगा, पञ्चवर्ण के पुष्प उस स्थान पर पड़े हुए मिलेंगे। उस प्रतिमा को निकाल कर एक मन्दिर बनवाना व शुभ मुहूर्त में उसकी प्रतिष्ठा करवाना। इत्यादि

पारस ने सावधान बने हुए मनुष्य के समान देवी की सब बातों को ध्यान पूर्वक सुनी। प्रत्युत्तर में उसने निम्न शब्द कहे—देवीजी ! मैं सब कार्य आपकी कृपा से यथावत् कर सकूंगा इसके लिये मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूंगा पर इस समय मेरे पास इतना अधिक द्रव्य नहीं है कि मैं एक विशाल मन्दिर बनवा सकू देवी ने कहा—तेरे पास क्या है ? पारस बोला-मेरे पास तो खाने के लिये जव मात्र हैं।

देवी—जब तुझे द्रव्य की आवश्यकता हो—एक जब की छाब भर कर रात्रि के समय प्रस्तुत केर के झाड़ के नीचे रख आना सो प्रात'काल होते ही वे सब स्वर्णमय हो जावेंगे। पर याद रखना मेरे ये वचन तेरी माता के सिवाय तू किसी को मत कहना, अन्यथा सुवर्ण होना बन्द हो जायगा। पारस ने भी देवी के उक्त वचनों को 'तथास्तु' कह कर शिरोधार्य कर लिये। देवी भी तत्क्षण अदृश्य होगई।

प्रात'काल पारस ने सब बात अपनी माता से कही तो माता के हर्ष का पारावार नहीं रहा। वह सहसा कह उठी—पारस ! तू बड़ा भाग्यशाली है भगवती पद्मावती देवी की तेरे ऊपर महती कृपा है। पारस देवी के बतलाये हुए निर्दिष्ट स्थान पर अब बिना विलम्ब चलें और चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा को अपने घर ले आवें। पारस यथा योग्य पूजा सामग्री और गाजे बाजे के साथ संघ को लेकर देवी के किये हुए सकेत स्थान पर गया। वहा केर के झाड के बीच जहा पञ्चवर्ण के पुष्पों का ढेर देखा-भगवान् पार्श्वनाथ एवं भगवती पद्मावती की स्तुति कर भूमि को खोदी तो श्यामवर्ण, विशालकाय चमत्कारिक पार्श्व-

इत्यादि वि सं १८४२ तक की वंशावलियां लिखी मिलती हैं।

गुरु महाराज का पुत्र शिव और शिव का पुत्र सांवत था। सांवत ने सत्यपुर को अपना निवास स्थान बना लिया था। सांवत की साङ्गोपाङ्ग भक्ति से प्रेरित हो देवी ने गरुड़ पर सवार हो रात्रि के समय स्वप्न में सांवत को दर्शन दिये। इस समय सांवत अर्धनिद्रा निद्रित था। अतः सवार को न देख सकने पर भी देख सका। इतने में अकस्मात आवाज हुई भक्त! तेरे पाये बांधने के स्थान की भूमि में एक गुप्त निधान है। वह निधान तेरी भक्ति से प्रसन्न हो मैं तुझे अर्पण करती हूं। इस द्रव्य को धर्म कार्य में लगाकर अपने जीवन को सफल बनाना इतना कह कर देवी अदृश्य होगई। सांवत जागृत होकर चारों ओर देखने लगा तो न दीखा गरुड़ और न दीखा कहने वाला ही। तथापि सांवत ने इसको शुभ स्वप्न समझ शेष रात्रि को धर्मध्यान में व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही उसने सीधे मन्दिर में जाकर भगवान् के दर्शन किये। पास ही में स्थित पौषधशाला में विराजित गुरु महाराज के दर्शन कर उनकी सेवा में रात्रि को आये हुए स्वप्न का आद्योपान्त वृत्त सुनाया। सांवत के मुख से स्वप्न वृत्त का श्रवण कर गुरु महाराज ने कहा—सांवत! तू बड़ा ही भाग्यशाली है। तेरे पर भगवती देवी की पूर्ण कृपा हुई। पर ध्यान रखते हुए इसका सदुपयोग सदा धर्म कार्यों में या शासनोत्कर्ष में ही करना। गुरुदेव के शुभ वचनों को शिरोधार्य कर गुरु महाराज का शुभाशीर्वाद को प्राप्त कर सांवत अपने घर पर चला आया।

जिस रात्रि में सांवत ने देवी कथित निधान का स्वप्न देखा उसी रात्रि में सांवत की स्त्री शान्ता—जो क्षत्रिय वंश की थी—स्वप्न में पार्श्व प्रभु की प्रतिमा को देखकर जागृत हुई। जब उसने अपने पतिदेव से अपने स्वप्न की सारी हकीकत कही तो सांवत के हर्ष का पारावार नहीं रहा। हर्षोन्मत्त सांवत ने अपनी पत्नी को कहा—प्रिय! तू भाग्यशालिनी है। तेरी कुक्षि में अवश्य ही कोई भाग्यशील जीव अवतरित हुआ है जिसके प्रभाव से जैसा तुझे स्वप्न आया है वैसे मुझे भी निधान प्राप्त होने रूप एक महा स्वप्न आया है। तत्पश्चात् सांवत देवी के बताये हुए स्थान की भूमि को खोदकर निधान निकाला गया बस अतुलनिधि की प्राप्ति के साथ ही साथ जनोपयोगी, पुण्य सम्पादन करने योग्य कार्य भी आरम्भ कर दिये। सांवत को कोई इस स्थिति के सम्बन्ध में पूछता तो वह कहता था कि यह सब गरुड़ का प्रताप है। अतः कालान्तर में लोग उन्हें गरुड़ नाम से सम्बोधित करने लग गये। आगे चलकर तो आपकी सन्तान भी गरुड़ जाति के नाम से मशहूर हो गई। इस प्रकार ओसवालों में हंसा मच्छा काग, चील मच्छी सांड, सियाल आदि कई जातियां बन गई।

इधर सांवत के प्रबल पुण्योदय से आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का पधारना सत्यपुर में होगया। सांवत ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का बड़े ही समारोह पूर्वक पुर-प्रवेश करवाया। आचार्यश्री के उपदेश से शत्रुञ्जय की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला जिसमें नव लक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वधर्मी बन्धुओं का स्वर्ण मुद्रिकाओं की प्रभावना दी। इस तरह के अनेक कार्यों से जैनधर्म की प्रभावना के साथ ही साथ स्वयं ने अक्षय पुण्य सम्पादन किया। इसके विषय में कई कवित्त भी मिलते हैं जिसमें इनको भाटों ने गरुड़ नाथ श्रीकृष्ण की उपमा दी है।

सांवत की स्त्री शान्ता ने शुभ समय में एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पारस रक्खा गया। जब पारस क्रमशः आठ वर्ष का हुआ तब सत्यपुर के राजा के अनबन के कारण सांवत ने रात्रि समय सत्यपुर का त्याग कर नागपुर की ओर पलायन किया। जब सत्यपुर नरेश को इस बात की खबर हुई तो उन्होंने चार सशस्त्र सवारों को सांवत का पीछा करने के लिये भेजा। सांवत को मार्ग में ही सवार मिल गये अतः उन्होंने नृपादेशानुसार उनको पुनः सत्यपुर की ओर चलने के लिये अत्यन्त प्रेरित किया। सवारों की उक्त बात को सांवत ने स्वीकृत नहीं किया तब परस्पर दोनों में मुठभेड़ होगई। सांवत भी वीर एवं महापराक्रमी था

किन्तु एक ओर तो चार सशस्त्र सवार और एक ओर अकेला पूरी शस्त्र सामग्री से रहित सांवत। इतना होने पर भी सावत ने चारों सवारों को धराशायी कर दिया पर सावत भी सुरक्षित न रह सका। उसके शरीर पर बहुत ही भयङ्कर घाव लग गये परिणाम स्वरूप कुछ ही समय के पश्चात् वह भी स्वर्ग का अतिथि बन गया। सांवत की स्त्री शान्ता ने पतिदेव के साथ चिता में सती होने का आग्रह किया पर पारस के करुणाजनक रुदन एवं बालोचित स्नेह के कारण वह ऐसा करने से सहसा रुक गई। इस समय स्त्री स्वभावोचित निर्बलता बतलाना अपने ही हित एवं भविष्य का घातक होगा ऐसा सोच कर उसने बहुत ही धैर्य एवं वीरता के साथ अपने माल को सुरक्षित कर आगे चलना प्रारम्भ किया। क्रमश. वे फल वृद्धि नाम के एक नगर को प्राप्त हुए उस समय फलवृद्धि नगर में हजारों घर जैनियों के थे। पट्टावलियों के आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि धर्मघोष सूरि ने अपने ५०० मुनियों के साथ फल वृद्धि में चातुर्मास किया था। अत' उक्त कथन में संशय करने का ऐसा कोई स्थान ही नहीं रह जाता है।

पारस अपनी माता के साथ सानन्द फलवृद्धि नगर में रहने लगा। उस समय स्वधर्मी बन्धुओं के प्रति जातीय महानुभावों का बहुत ही सम्मान एवं आदर था। वे अपने स्वधर्मी बन्धु को अङ्गजवत् पालन पोषण करते थे व समृद्धिशाली बनाते थे। तदनुसार पारस तो अन्य स्थान मे आया हुआ तेजस्वी, होनहार लड़का था। अत कालान्तर में पारस का विवाह पोकरणा जाति के शा० साधु की कन्या जिनदासी के साथ हो गया। वे सब सकुटुम्ब फल वृद्धि में ही आनन्द पूर्वक रहने लगे।

पारस पूर्व सञ्चित कर्मोदय के कारण साधारण स्थिति में आ पड़ा था तथापि पारस की माता वीर क्षत्रियाणी एव जैन धर्म के कर्म सिद्धान्त की मर्मज्ञ थी। वह पारस के कार्य सहायक बन, उसे सान्त्वना प्रदान कर बड़ी ही दक्षता के साथ अपना कार्य चलाया करती थी।

एक समय पारस अर्ध निद्रावस्था में सो रहा था कि अर्द्धरात्रि के समय देवी पद्मावती ने स्वप्नान्तर होकर कहा—पारस ! नगर की पूर्व दिशा में केर के झाड़ के बीच जहा एक गाय का दूध स्वय स्रवित हो जाता है,—भगवान् पार्श्वनाथ की श्यामवर्णीय चमत्कारी प्रतिमा है। जिस समय तू उसको जाकर देखेगा, पञ्चवर्ण के पुष्प उस स्थान पर पड़े हुए मिलेंगे। उस प्रतिमा को निकाल कर एक मन्दिर बनवाना व शुभ मुहूर्त में उसकी प्रतिष्ठा करवाना। इत्यादि

पारस ने सावधान बने हुए मनुष्य के समान देवी की सब बातों को ध्यान पूर्वक सुनी। प्रत्युत्तर में उसने निम्न शब्द कहे—देवीजी ! मैं सब कार्य आपकी कृपा से यथावत् कर सकूंगा इसके लिये मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूंगा पर इस समय मेरे पास इतना अधिक द्रव्य नहीं है कि मैं एक विशाल मन्दिर बनवा सकू देवी ने कहा—तेरे पास क्या है ? पारस बोला—मेरे पास तो खाने के लिये जव मात्र हैं।

देवी—जब तुझे द्रव्य की आवश्यकता हो—एक जव की छाब भर कर रात्रि के समय प्रस्तुत केर के झाड़ के नीचे रख आना सो प्रात.काल होते ही वे सब स्वर्णमय हो जावेंगे। पर याद रखना मेरे ये वचन तेरी माता के सिवाय तू किसी को मत कहना, अन्यथा सुवर्ण होना बन्द हो जायगा। पारस ने भी देवी के उक्त वचनों को 'तथास्तु' कह कर शिरोधार्य कर लिये। देवी भी तत्क्षण अदृश्य होगई।

प्रात काल पारस ने सब बात अपनी माता से कही तो माता के हर्ष का पारावार नहीं रहा। वह सहसा कह उठी—पारस ! तू बड़ा भाग्यशाली है भगवती पद्मावती देवी की तेरे ऊपर महती कृपा है। पारस देवी के बतलाये हुए निर्दिष्ट स्थान पर अब बिना विलम्ब चलें और चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा को अपने घर ले आवें। पारस यथा योग्य पूजा सामग्री और गाजे बाजे के साथ सघ को लेकर देवी के किये हुए सकेत स्थान पर गया। वहा केर के झाड़ के बीच जहा पञ्चवर्ण के पुष्पों का ढेर देखा—भगवान् पार्श्व-नाथ एवं भगवती पद्मावती की स्तुति कर भूमि को खोदी तो श्यामवर्ण, विशालकाय चमत्कारिक पार्श्व-

प्रतिमा निकल आई। प्रतिमाजी के बाहिर निकलते ही अष्ट द्रव्य से पूजन कर, जयध्वनि से मंगलगान गाते हुए समारोह पूर्वक बधाया। पश्चात् कई लोगों ने मूर्ति को उठाने का प्रयत्न किया पर वह इतनी भारी बनगई कि किसी के उठाये न उठाई जासकी। जब पारस स्वयं उठाने गया तो प्रतिमाजी पुष्पवत् कोमल या भार विहीन हो गई। पारस ने अपने सिर पर भगवान् पार्श्व-प्रतिमा को उठाई व गाजे बाजे के साथ बड़े ही उत्साह पूर्वक अपने घर पर लाया। सकल श्रीसंघ एवं नागरिक लोग इस चमत्कार पूर्ण घटना से प्रभावित हो पारस की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। वे आपस में वार्तालाप करने लगे—पारस बड़ा ही भाग्यशाली है पारस के घर को आज पार्श्व प्रभु ने स्वयं पावन किया है। बस पारस ने भी चतुर, शिल्पकला निष्णात शिल्पज्ञों को बुलवा कर बावन देहरी वाला विशाल मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिदिन देवी के वचनानुसार एक हाथ भर निर्दिष्ट स्थान पर रख आता और प्रातःकाल वापिस स्वर्ण ले आता। इस प्रकार देवी की कृपा से प्राप्त द्रव्य की पुष्कलता के कारण मन्दिर शीघ्र ही तैयार होने लगा।

भवितव्यता किसी के द्वारा मिटाये मिट नहीं सकती है। यही कारण था कि एक दिन किसी ने पारस से द्रव्य आगमन का कारण पूछा तो उसने देवी के वचन को विस्मृत कर सहसा स्वर्ण लाने के भेद को बतला दिया। फिर तो था ही क्या? देवी का कहना अन्यथा कैसे हो सकता? दूसरे दिन जब स्वर्ण न होकर कंकर ही रह गये। पारस को इसका बहुत ही पश्चाताप एवं अपनी भूल का दुःख हुआ पर अब उससे होना जाना क्या था? मन्दिरजी का मूल गुम्भारा रंग मण्डप शिखर आदि बना पर शेष काम यों ही अधूरा रह गया। पारस की माता ने कहा—बेटा चिन्ता करने का कोई कारण ही नहीं है। जितना काम होने का था उतना ही हुआ अब इसके लिये व्यर्थ ही पश्चाताप न करो। अब तो इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाकर भाग्यशाली बनो। तीर्थङ्करों की इतनी बड़ी मूर्ति जो अतिथि के रूप में अपने घर पर विराजमान है गृहस्थ के घर में रह नहीं सकती। इसकी प्रतिष्ठा जल्दी करवाने में ही श्रेय है क्योंकि भविष्य न मालूम क्या करेगा? पारसने भी माता के उक्त हितकर वचन को सहर्ष स्वीकार कर लिया और वह प्रतिष्ठाकी सामग्री का संग्रह करनेमें संलग्न होगया।

उस समय आचार्य धर्मघोषसूरि ने पांच सौ शिष्यों के साथ फलवृद्धि नगर में चातुर्मास किया था। अतः पारस ने जाकर सूरिजी से प्रार्थना की—प्रभो! मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर हमको कृतार्थ कीजिये। सूरिजी ने कहा—पारस! प्रतिष्ठा करवाने के लिये मैं इन्कार नहीं करता हूँ पर नागपुर विराजित आचार्यश्री देवगुप्तसूरि को भी प्रार्थना पूर्वक ले आओ—हम सब मिल करके ही प्रतिष्ठा करवायेंगे। अहा! हा! कैसी उदारता? कैसी विशाल भावना? कितना प्रेम व कैसा उत्तम आदर्श? सूरिजी जानते थे कि पारस, उपकेशगच्छीय आचार्यों का प्रतिबोधित श्रावक है। अतः ऐसे स्वर्णोपम समय में उन आचार्यों का होना जरूरी है। शासन मर्यादा व व्यवहार उपादेयता भी यही है। सूरिजी के उक्त कथन को लक्ष में रख पारस ने नागपुर जाकर आचार्यश्री देवगुप्तसूरि से प्रतिष्ठार्थ पधारने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा—वहां आचार्यश्री धर्मघोषसूरिजी विराजते हैं वे भी तो प्रतिष्ठा करवा सकते थे।

पारस—पूज्य गुरुदेव! मुझे स्वयं आपकी प्रार्थना के लिये आचार्यश्री ने ही भेजा है।

यह सुनकर सूरिजी बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रार्थना को स्वीकार कर नागपुर से तत्काल फलवृद्धि की ओर विहार कर दिया। क्रमशः फलवृद्धि के समीप पहुँचने पर वहां के श्रीसंघ एवं आचार्यश्री धर्मघोष सूरि ने अपने शिष्यों के साथ सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। इस प्रकार आचार्य द्वय के पारस्परिक अपूर्व वात्सल्य भाव से श्रावकों में भी आशातीत अनुराग मिश्रित सद्भाव का संचार हुआ। इन दोनों आचार्यों के सिवाय फलवृद्धि में और भी बहुत से साधु साध्वी विराजमान थे। अतः उन सबके सान्निध्य में फलवृद्धि नगर में वि० सं० ११८१ माघ शुक्ला पूर्णिमा को भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से करवाई।

पट्टावल्यादि ग्रन्थों से पाया जाता है कि फलवृद्धि के पार्श्वनाथ मन्दिर का जो अवशिष्ट काम रह गया था उसको नागपुर के सुराणों ने पूरा करवा कर वि० सं० १२०४ में पुन वादी देव सूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई थी। फलौदी के मन्दिर में इस समय कोई लेख नहीं है पर एक डेहरी के पत्थर पर निम्न शिला लेख है—

"सवत् १२२१ मार्गसिर सुदि ६ श्री फलवर्द्धिकाया देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ चैत्ये श्रीप्राग्वट वशीय रोपिमुणि म० दसादाभ्यो आत्म श्रेयार्थ श्रीचित्रकूटीय सिलफट सहित चद्रको प्रदत्त' शुभम् भवतु"

"बाबू पूर्ण० स० जैन लेख स० प्रथम खण्ड शि० ले० नं० ८७०"।

इस लेख से पाया जाता है कि वि० स० १२२१ के पहिले इस मन्दिर की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इस प्रकार इस जाति के महानुभावों ने जैन ससार में बहुत ही ऐतिहासिक कार्य किये जिनका वर्णन उपलब्ध है।

पारस श्रेष्टि ने पूज्याचार्य देव से साग्रह प्रार्थना की भगवान् आप कृपा करके यह चातुर्मास हमारे यहाँ करावे हमारी भावना और भी कुछ लाभ लेने की है ? सूरिजी ने कहा—पारस ! मेरे चतुर्मास के लिये तो क्षेत्र स्पर्शना होगा वही बनेगा पर तेरे जो कुछ भी लाभ लेने का विचार हो उसमें विलम्ब मत करना कारण अच्छे कार्यों में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं दूसरा मनुष्यों की आयुष्य का भी विश्वास नहीं है इत्यादि। इस पर पारस ने कहा पूज्य गुरु महाराज आप फरमाते हो कि कारण से ही कार्य होता है। अतः आपका कारण से ही मेरा कार्य सफल होने का है। सूरिजी ने कहा ठीक कहता है। एक समय फलवृद्धि संघ एकत्र हो बहुत आग्रह से सूरिजी से पुन चातुर्मास की विनती की और लाभालाभ का कारण जान कर सूरिजी ने संघ की प्रार्थना को स्वीकार करली बस ! फिर तो था ही क्या पारस को बड़ा ही हर्ष हुआ एक ओर तो पारस के धर्म की ओर भाव बढने लगा दूसरी ओर व्यापारादि कार्य में द्रव्य भी बढ़ता गया अत एक दिन सूरिजी से पारस ने अर्ज की प्रभो ! मेरा विचार श्रीशत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकालने का है सूरिजी ने कहा 'जहाँ सुखम्' ठीक पारस ने श्रीसघ से आदेश लेकर सघ के लिये सब सामग्री जमा करना प्रारम कर दिया था और चातुर्मास के बाद मार्गशीर्ष शुक्ला १३ को सूरिजी की नायकता एव पारस के सघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। इस कार्य में पारस ने खुले दिल से पुष्कल द्रव्य व्यय किया। यात्रा से आकर साधर्मी भाइयों को वस्त्र, लड्डू में एक-एक सुवर्ण मुद्रा गुप्त डालकर पहरावणी में दी इत्यादि पारस वास्तव में पारस ही था आपकी सन्तान परम्परा ने भी जैनधर्म की अच्छी से अच्छी सेवा की थी। वशावलियों में बहुत विस्तार से उल्लेख मिलता है। मेरे पास जो 'गरुड़' जाति की वशावलिया हैं जिसमें— इस गरुड़ जाति के उदार वीरों ने शासन-सम्बन्धी इस प्रकार के कार्य किये।

६२ जैन मन्दिर, धर्मशालाए व जीर्णोद्धार करवाये।
२६ वार तीर्थों की यात्रार्थ विराट सघ निकाला।
३८ वार सघ को अपने घर पर बुलवा कर प्रभावना दी।
३ आचार्यों के पद महोत्सव किये।
४ वार आगम लिखवा कर भण्डारों में स्थापित करवाये।
६ कूवे बनवाये १ बावड़ी बन्धवाई।
१४ वीर पुरुष सग्राम में वीर गति को प्राप्त हुए।
४ वीराङ्गनाएं अपने मृत पति के साथ सती हुईं।

इस प्रकार अनेक कार्यों का उल्लेख वंशावलियों को पढ़ने से जाना जा सकता है। आज इस जाति के नाम के कोई भी घर दृष्टिगोचर नहीं होते पर वशावलियों के आधार पर यह निश्चयरूपेण अनुमान लगाया जा सकता है कि एक समय इस जाति की संख्या पर्याप्त परिमाण में थी। इस गरुड जाति के अनेक महा

पुरुषों के नाम पर अनेक शाखा प्रशाखायें प्रचलित हुई। जैसे कि—मरड़, चोखावत, सोनी, मूलण, संघी फलाणी, पड़ा, फलोदिया आदि।

मुग्रा जाति—पंवार सरदार मूरसिंह अपने साथी सरदारों के साथ ग्रामान्तर जा रहे थे इधर विहार करते हुए आचार्य परमानन्द सूरि अपने शिष्यों के साथ जंगल में आरहे थे जिन्हों को देखकर उन सरदार अपशुकन की भावना कर दो चार शब्द साधुओं से कहे इतने में पीछे से आचार्यश्री भी पधार गये और उन सरदारों को जैन मुनियों के आचार विचार के विषय में उपदेश दिया तथा अपने रजोहरण के अन्दर था हुआ अष्ट मंगलरूप पात्र दिखाया सूरिजी का उपदेश सुन राव मूरसिंह ने जैन मुनियों के त्याग वैराग्य और शुभभावना पर प्रसन्न होकर धर्म का स्वरूप समझने की जिज्ञासा प्रकट की फिर तो था ही क्या सूरिजी ने क्षत्रियों का धर्म के विषय युक्ति पुरस्सर समझाया कि मूरसिंह पहले शिव भक्त था और मद्य मांस सेवन करता था उसके हृदय में यह बात ठीक जच गई कि आत्म कल्याण के लिये तो विश्व में एक जैनधर्म ही उपादेय है सूरिजी से प्रार्थना की कि यहां से चार कोस हमारा मारपुर ग्राम है वहाँ पर आप पधारें हम आपका धर्म सुनेंगे क्योंकि मेरी रुचि जैनधर्म की ओर बढ़ी है इत्यादि। सूरिजी मूरसिंह का कहना स्वीकार कर मारपुर की ओर चल दिये। मूरसिंह ने सूरिजी की खूब भक्ति की और हमेशा सूरिजी का व्याख्यान सुन गहरी दृष्टि से विचार किया और आखिर कई लोगों के साथ उसने जैनधर्म को स्वीकार कर उसका ही पालन किया। मूरसिंह ने मारपुर में भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया मूरसिंह के सात पुत्र थे वे भी सबके सब जैन धर्म की आराधना करते थे उन्होंने भी अनेक कार्य जैनधर्म की प्रभावना के लिये इससे मूरसिंह की सन्तान को मूरा मूरा कहने लगे बाद चलकर मूरा शब्द जाति के नाम से रूढ़ होगया इस जाति की उत्पत्ति के अलावा वंशावलियाँ मुझे नहीं मिली अतः यहाँ नहीं लिखी गई है।

झाबक पोल—आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज परिभ्रमन करते हुए मालवा प्रदेश में पधारे। मालवा निवासी परमार वंशीय मांसाहारी हिंसानुगामी क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उन्हें अहिंसा भगवती एवं जैन धर्म के उपासक बनाये। उस समुदाय में मुख्य राव झाहड़ था। झाहड़ का पुत्र धना बड़ा ही धर्मात्मा था। उसने अपने न्यायोपार्जित द्रव्य से शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर जिनशासन की प्रभावना की थी। धारानगरी के बाहिर भगवान् महावीर का मन्दिर बनवाकर आपने प्रतिष्ठा करवाई थी। इस तरह दर्शन पद की आराधना के साथ ही साथ अनेक शासन-अभ्युदय के कार्य किये। आपका समय पट्टावलीकारों ने वि० सं० १००२ का लिखा है। आपकी संतान झाबक के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपकी वंशावली इस प्रकार मिलती है।

राव झाहड़
- झूंपा
  - (महावीर म०) वरधवल
    - गेहो
      - करमण
      - भादेव
      - बापू
      - नठरी
      - वैजो
      - सुखो
      - वीरम
    - पाल्हो
    - कानड़
    - पुनड़ (संघ निकाला)
  - कालिया
  - सखो
  - पाल्हो
  - दुर्गो
- सोमा
- धाना (संघ)
- हमीर
- बोथो
- करणी
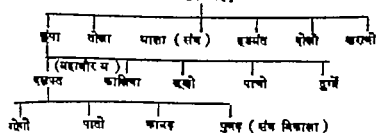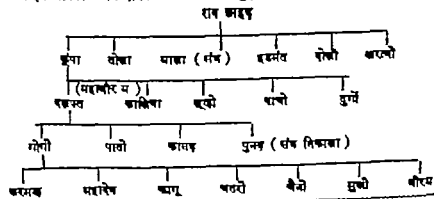
इस प्रकार बहुत ही विस्तार पूर्वक वशावलिया मिलती हैं। वि० स० १६०३ के फाल्गुन शुक्ला २ तक के नाम वशावलियों में लिखे मिलते हैं। इस जाति के उदार नर पुङ्गवों ने शासनोत्कर्ष एव पुण्य सम्पादन करने के लिये इस प्रकार के सुकृत कार्य किये हैं—अर्थात—

८७—जैन मन्दिर एव धर्मशालाए बन वाई।
२६—वार तीर्थ यात्रार्थ विराट संघ निकाले।
३१—वार संघ को घर बुलवाकर पहिरावणी दी।
५—वार आचार्य पद के महोत्सव किये।
६—वार जैनागमों को लिखवाकर भण्डारों में स्थापित करवाये
१५—वीर पुरुष युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए।
११—वीराङ्गनाए अपने मृत पति के साथ सती हुईं।

इत्यादि कई ऐसे कार्य किये जिसका वशावली आदि ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन मिलता है। यदि उन सब कार्यों को पृथक् २ विशद रूप में वर्णन किया जाय तो एक २ जाति के लिये एक २ ग्रन्थ बन जाय।

आचार्यश्री सिद्ध सूरिजी महाराज महान् प्रभावक पुरुष हुए। आपने अपने पूर्वजों की भांति अनेक प्रान्तों में परिभ्रमन कर जैनधर्म की पर्याप्त प्रभावना की। कई वैरागी भावुकों को भगवती दीक्षा देकर जैन श्रमण समुदाय में वृद्धि की। कई जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठाए करवा कर जैन इतिहास की नींव को दृढ की। कई वार तीर्थ यात्रार्थ सघ निकलवा कर तीर्थ यात्रा की। इस प्रकार आपने शब्दतोऽगम्य जैनशासन की सेवा की जिसको एक क्षण भर भी नहीं भूला जा सकता है।

अन्त में आपश्री ने चित्रकोट नगर में श्रेष्टि गौत्रीय शा० मांडा के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्यायश्री भुवन कलश को सूरि पद मे विभूषित कर वि० स० १०७४ वैशाख शुक्ला १३ के दिन सौलह दिनों के अनशन पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये।

आचार्यश्री शिष्य के जम्बुनाग का जीवन वृत्त—आचार्यश्री सिद्धसूरि के शासन में जम्बुनाग नाम के एक मुनि जो अनेक चमत्कार पूर्ण विद्याओं में पारङ्गत एव ज्योतिष विद्या विशारद थे—महा प्रभावक हुए। आपने अपनी आत्म-सत्ता के बल पर या चमत्कार पूर्ण अलौकिक शक्तियों के आधार पर कई जैनेतरों को जैनधर्म मे प्रति-बोधित किया। एक समय जम्बुनाग मुनि यथाक्रम पृथ्वी पर विहार करते हुए मरुधर प्रान्तीय लुद्रवा (लोद्रवा) नामके शहर में पधारे। वह भीम सदृश महा पराक्रमी तरुण भाटी नाम का राजा राज्य करता था।

लोद्रव सघ ने जम्बुनाग मुनि से विज्ञप्ति की-प्रभो! हम लोगों का विचार यहा पर जिन मन्दिर बनवाने का है पर यहा के ब्राह्मण लोग हमें वैसा करने नहीं देते हैं। इस समय आप जैसे विद्यावली, चमत्कारी पूज्य पुरुषों के चरण कमल यहा होगये हैं फिर भी हमारे मन के मनोरथ सफल न हों तो फिर कभी होने के ही नहीं हैं। श्रीसघ की विनम्र पूर्ण प्रार्थना को श्रवण कर जम्बुनाग मुनि ने कहा—आप लोग सर्व प्रथम राजा के पास जाकर मन्दिर निर्माणार्थ भूमि मांगो। श्रीसघ ने भी मुनिश्री के वचनामृतानुसार राजा के पास जाना निश्चय किया। क्रमश राजा के पास उपहार (नजराना) भेंट करते हुए जिन मन्दिर बनाने के लिये योग्य भूमि की याचना की। राजा ने भी उपकेशवशियों की इस उचित प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर भूमि प्रदान करदी। राजा की उदारता से विना कष्ट भूमि के प्राप्त होजाने पर उन लोगों ने जिन मन्दिर का काम प्रारम्भ किया तो ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता के घमण्ड में आकर मन्दिर का काम रोक दिया।

जम्बुनाग को इस बात की खबर लगते ही वे ब्राह्मणों के पास जाकर कहने लगे—त्रिजगज्जनपूजनीय,

इस प्रकार वहुत ही विस्तार पूर्वक वशावलिया मिलती हैं। वि० स० १६०३ के फाल्गुन शुक्ला २ तक के नाम वंशावलियों में लिखे मिलते हैं। इस जाति के उदार नर पुङ्गवों ने शासनोत्कर्ष एवं पुण्य सम्पादन करने के लिये इस प्रकार के सुकृत कार्य किये हैं—अर्थात—

८७—जैन मन्दिर एव धर्मशालाए वन वाई।
२६—वार तीर्थ यात्रार्थ विराट सघ निकाले।
३१—बार संघ को घर बुलवाकर पहिरावणी दी।
५—वार आचार्य पद के महोत्सव किये।
६—वार जैनागमों को लिखवाकर भण्डारों में स्थापित करवाये
१५—वीर पुरुष युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए।
११—वीराङ्गनाए अपने मृत्र पति के साथ सती हुईं।

इत्यादि कई ऐसे कार्य किये जिसका वशावली आदि ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन मिलता है। यदि उन सब कार्यों को पृथक् २ विशद रूप में वर्णन किया जाय तो एक २ जाति के लिये एक २ ग्रन्थ वन जाय।

आचार्यश्री सिद्ध सूरिजी महाराज महान् प्रभावक पुरुष हुए। आपने अपने पूर्वजों की भांति अनेक प्रान्तों में परिभ्रमन कर जैनधर्म की पर्याप्त प्रभावना की। कई वैरागी भावुकों को भगवती दीक्षा देकर जैन श्रमण समुदाय में वृद्धि की। कई जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठाए करवा कर जैन इतिहास की नींव को दृढ़ की। कई वार तीर्थ यात्रार्थ सघ निकलवा कर तीर्थ यात्रा की। इस प्रकार आपने शब्दतोऽगम्य जैनशासन की सेवा की जिसको एक क्षण भर भी नहीं भूला जा सकता है।

अन्त में आपश्री ने चित्रकोट नगर में श्रेष्टि गौत्रीय शा० माडा के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्यायश्री भुवन कलश को सूरि पद से विभूषित कर वि० सं० १०७४ वैशाख शुक्ला १३ के दिन सौलह दिनों के अनशन पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये।

आचार्यश्री शिष्य के जम्बुनाग का जीवन वृत्त—आचार्यश्री सिद्धसूरि के शासन में जम्बुनाग नाम के एक मुनि जो अनेक चमत्कार पूर्ण विद्याओं में पारङ्गत एव ज्योतिष विद्या विशारद थे—महा प्रभावक हुए। आपने अपनी आत्म-सत्ता के बल पर या चमत्कार पूर्ण अलौकिक शक्तियों के आधार पर कई जैनेतरों को जैनधर्म मे प्रति-बोधित किया। एक समय जम्बुनाग मुनि यथाक्रम पृथ्वी पर विहार करते हुए मरुधर प्रान्तीय लुद्रुया (लोद्रवा) नामके शहर में पधारे। वह भीम सदृश महा-पराक्रमी तणु भाटी नाम का राजा राज्य करता था।

लोद्रव संघ ने जम्बुनाग मुनि से विज्ञप्ति की-प्रभो! हम लोगों का विचार यहा पर जिन मन्दिर बनवाने का है पर यहा के ब्राह्मण लोग हमें वैसा करने नहीं देते हैं। इस समय आप जैसे विद्यावली, चमत्कारी पूज्य पुरुषों के चरण कमल यहा होगये हैं फिर भी हमारे मन के मनोरथ सफल न हों तो फिर कभी होने के ही नहीं हैं। श्रीसघ की विनम्र पूर्ण प्रार्थना को श्रवण कर जम्बुनाग मुनि ने कहा—आप लोग सर्व प्रथम राजा के पास जाकर मन्दिर निर्माणार्थ भूमि मागो। श्रीसघ ने भी मुनिश्री के वचनामृतानुसार राजा के पास जाना निश्चय किया। क्रमश राजा के पास उपहार (नजराना) भेंट करते हुए जिन मन्दिर बनाने के लिये योग्य भूमि की याचना की। राजा ने भी उपकेशवशियों की इस उचित प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर भूमि प्रदान करदी। राजा की उदारता से विना कष्ट भूमि के प्राप्त होजाने पर उन लोगों ने जिन मन्दिर का काम प्रारम्भ किया तो ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता के घमण्ड में आकर मन्दिर का काम रोक दिया।

जम्बुनाग को इस बात की खबर लगते ही वे ब्राह्मणों के पास जाकर कहने लगे—त्रिजगज्जनपूजनीय,

परमाराध्य प्रत्यक्ष माहात्म्य, परमपिता परमात्मा श्री जिनदेव के मन्दिर निर्माण रूप परम पावन कार्य में आप लोग विघ्न रूप अन्तराय कर्मोपार्जन क्यों कर रहे हैं ! यदि आपके हृदय में धार्मिक द्वेष की अामस्त्र नाम ज्वाला ही प्रज्वलित हो रही हो या आपको अपने शास्त्र पाण्डित्य के मिथ्याभिमान का ओछापन सता रहा हो इस प्रकार के अनुचित कार्य में प्रवृत्ति करता रहा हो तो आपके इच्छित विषय के पारस्परिक शास्त्रार्थ से आपका मद्य मिटाया जा सकता है। अरे साथ मनोऽनुकूल विषय पर शास्त्रार्थ कर आप लोग निर्णय करले कि आपका अहमत्व कहां तक ठीक है ?

मुनि जम्बुनाग के सचोट शब्दों से ब्राह्मणों के हृदय में अपमान का अनुभव होने लगा उन्होंने न्याय व्याकरण, व दार्शनिक विषयों को छोड़कर अपने सर्व प्रिय ज्योतिष विषय में शास्त्रार्थ करना निश्चित किया। वे लोग इस बात को समझ रहे थे कि जैन श्रमण धर्मोपदेश देने में या दार्शनिक तत्त्वों का प्रतिपादन करने में ही कुशल होते हैं, ज्योतिष विषय में नहीं। अतः ज्योतिष निर्णय में वे लोग हमारी समानता करने में या हम तक पहुँचने में सर्वथा असमर्थ हैं। इस विषय में वे हमको कभी पराजित कर ही नहीं सकेंगे इस मिथ्याभिमान के कारण ज्योतिष के विषय को ही शास्त्रार्थ का मुख्य विषय बना लिया।

मुनि जम्बुनाग ने भी सर्वतोमुखी विद्वत्तासम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ब्राह्मणों के उक्त शास्त्रार्थ विषय को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके लिए मध्यस्थ वृत्ति पूर्वक न्यायमन्त्र प्राप्त करने लिए दोनों पक्ष के महानुभावों ने स्वयं नगर का ही मध्यस्थ निर्वाचित किया। राजा ने उस पुन लिये जाने पर उन्होंने दोनों की परीक्षार्थ (मुनि जम्बुनाग एवं ब्राह्मणों को) अपना (राजा का) भावी २ वर्षफल लिख लाने का आदेश दिया। साथ ही यह घोषणा की कि—मेरा गत मास विभाजक वर्ष फल जिसका अधिक होगा वही विजयी समझा जायगा। इस पर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणों ने राजा के दिन २ का भावी फल लिखा तब जम्बुनाग ने भी २ का भावी फल लिखा। क्रमशः वर्ष फल के लेखन काय के समाप्त हो जाने पर दोनों पक्ष के महानुभावों ने अपने अपने लेख राजा को सौंप दिये। राजा ने उनको पढ़कर (उन्हीं कागज) खजांची को सौंपते हुए कहा—"इनको सर्वथा सुरक्षित रखो, जिसका लिखना सत्य होगा वही विजयी प्रतिष्ठित किया जायगा"। अस्तु,

जम्बुनाग ने अपने भावीफल में लिखा था कि, अमुक दिन में हस्ती भरी होने पर शत्रु यवन सम्राट् सुस्थित पचास हजार वीरों के साथ सुसज्जित हो तेरे राज्य को लेने की इच्छा से आवेगा। यदि यवन करने के समय आप यवनों पर आक्रमण करोगे तो यवन आपके हस्तगत हो जायेंगे। हे राजन् ! उस समय आप यह विचार मत करना कि मेरे पास फौज कम है और शत्रु के पास फौज विशेष है फिर मैं इसको कैसे जीत सकूंगा। देखो यवन सम्राट को आप जीत सकोगे, विश्वास कराने वाला मुझे यही संकेत मानना चाहिये कि—जब आप यवनों को जीतने को जाओगे, तब मार्ग में आप एक पाषाण के दो टुकड़े करोगे—विश्वास कर लेना कि मैं अवश्य जीतूंगा।

इस प्रकार जम्बुनाग मुनि के द्वारा लिखे हुए समय में ही यवनों ने अचानक आकर पड़ाव डाल दिया राजा भी उस लिखित संवाद के विश्वास पर अपने हृदय में धैर्य धारण कर चंचल वीरों को एवं अपनी फौज को साथ में ले पृथ्वीतल को कम्पाता हुआ यवनों की ओर चल पड़ा। अपने नगर के समीप के शिवालय मन्दिर में स्थित सुल्तान नाम की अपनी गोत्र देवी को जीतने की इच्छा से नमस्कार करने के लिये गया।

ऊपर लिखा हुआ मुनि जम्बुनाग के [illegible] श्लोक [illegible] चरित श्लोक १ [illegible] ११९ [illegible] अनुसार [illegible] श्लोक [illegible] लिये [illegible] चरित भी [illegible] जायगा—

उत्त मन्दिर के अग्र भाग में स्थित एक पाषाण स्तम्भ को देख, मुनि जम्बुनाग के कथन का विश्वास जानने के लिये उस स्थम्भ को खड्ग से आहत किया तो एक दम वह दो टुकड़े होगये। मुनि जम्बुनाग के वचनों की दृढ़ प्रतीति के कारण राजा ने उस यवन सेना पर एकदम आक्रमण किया। जिस प्रकार मदराचल पहाड़ ने सागर मथा वैसे ही परिवर भाटी राजा ने यवन सैन्य को मथ डाला। क्षण भर में यवन राज मुम्मुचि को कारागर में आबद्ध कर उसका सारा खजाना लूट लिया। यवन सेना अनाथ (मालिक रहित) होकर नष्ट भ्रष्ट हो चारों दिशाओं में भाग गयी। भाटी राजा भी गुम्मुचि को साथ में ले, आयार्य जम्बुनाग के पास आया और प्रणाम कर बोला—पूज्य गुरुदेव! आपके आदेश और प्रसाद से मैंने इस शत्रु को जीता है। प्रभो! आपका कथन सौलह आना सत्य हुआ। अत अब मुझे मेरे योग्य सेवा कार्य फरमाकर कृतार्थ करें। इस पर मुनि ने कहा—हम निस्पृहियों के लिये क्या जरुत है? हमें तो किसी भी वस्तु या अनुकूल आदेश की आवश्यकता नहीं पर फिर भी आपकी आन्तरिक अभिलाषा मेरे मनोगत भावों को पूर्ण करने की है तो आप अपने शहर में जिनराज का एक भव्य मन्दिर बनवाने दीजिये। राजा ने भी गुरु के वचन को तथास्तु कह कर शिरोधार्य कया और ब्राह्मणों को तिरस्कृत कर अपने नगर में जिन मन्दिर का निर्माण करवाया। मुनि जम्बुनाग ने स्वय भगवान् महावीर का मूल प्रतिबिम्ब स्थापित किया उस दिन से लेकर ब्राह्मणों की भी जम्बुनाग पर उत्तम प्रीति हो गई।

मुनि जम्बुनाग ने साहित्य क्षेत्र में भी सर्वाङ्गीण उन्नति की। आपश्री ने कौन २ से ग्रन्थों का निर्माण किया इसका यथावत् पता तो नहीं चलता है पर इस समय आपके बनाये केवल दो ग्रन्थ विद्यमान हैं। एक वि० स० १००५ का बनाया हुआ मुनिपति चारित्र तथा दूसरा वि० स० १०२५ में रचा हुआ जिन-शतक (स्तोत्र) नमाका विद्वज्जन प्रशसनीय चण्डिका शतक के समान ही दुरुह और अनेक अर्थो वाला, विद्वानों के मन को मुग्ध करने वाला ग्रन्थ है। इस प्रकार की साहित्य सेवा के अलावा आपने अनेक मास मदिरा सेवियों को भी प्रतिबोध कर जैनधर्म की दीक्षा दी है।

मुनिश्री जम्बुनाग के अन्यान्य शिष्यों में देवप्रभ नामके महाप्रभावक, महत्तर पद विभूषित शिष्य हुए। आपने भी श्री जिनशासन की बहुत ही प्रभावना की देवप्रभ के पश्चात् आपके शिष्य श्रीकनकप्रभ महत्तर पद पर अवस्थित हुए। कनकप्रभ के शिष्य जिनभद्र मुनीश्वर हुए जिनको गच्छ के अधिनायकों ने उपाध्याय पद प्रदान किया। उक्त तीनों महापुरुषों का जीवन चरित्र, 'उपकेश गच्छ चरित्र' में विशद रूप से नहीं मिलता, तथापि पट्टवल्यादि अन्य ग्रन्थों से पाया जाता है कि आपने जैन शासन का बहुत ही अभ्युदय किया।:

एक दिन जिनभद्र मुनीश्वर अपने शिष्य समुदाय के साथ विहार करते हुए गुर्जर प्रांत में पधारे। उस समय पाटण में कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरि प्रतिवोधित राजा कुमारपाल का राज्य था। हेमचद्राचार्य का उन पर पर्याप्त प्रभाव था। श्री उपाध्यायजी म० ने पाटण में अपना व्याख्यान क्रम प्रारम्भ रक्खा। वैराग्योत्पादक व्याख्यान श्रवण से एक क्षत्रिय कुमार जो सांसारिक सम्बन्ध में पाटण नरेश (कुमार पाल के पहिले के राजा) सिद्धराज के भतीजा लगता था—संसार से विरक्त हो गया। उपा०जी म० के सन्मुख उक्त क्षत्रिय कुमार ने अपने हृदयान्तर्हित भावों को प्रगट किया। उपाध्यायजी म० ने भी उसके मुख की क्षत्रियोचित स्वाभाविक प्रतिभा व शुभ चिह्न, लक्षणों को देखकर यह अनुमान लगा लिया कि यदि यह संसार से विरक्त हो दीक्षित होवेगा तो अपने साथ ही अन्य कितने ही भावुकों का कल्याण व जिन शासन का अभ्युत्थान करेगा। इस पर इसकी स्वयं की भावना भी दीक्षा लेने की है ही अत उसकी माता को समझा कर [तुम्हारा पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली एवं वर्चस्वी है। यदि यह दीक्षित हो जाय तो घर के नाम को उज्वल करने के साथ ही साथ जिन शासन को उत्कर्षावस्था में पहुचाने वाला व अपने नाम के साथ ही साथ माता पिताओं के एवं कुल के नाम को अपने असाधारण कार्यों से जैन ससार में अमर करने वाला होगा]

क लिया ! माता ने भी उसके बढ़ते हुए वैराग्य को एवं जिनभद्र मुनीश्वर के वचनों को लक्ष्य में रख उसे दीक्षा लेने की सहर्ष आज्ञा प्रदान करदी । उपाध्यायजी ने भी भावी प्रभावक, तेजस्वी चरित्र-कुमार को दीक्षित कर, मुनि पद्मप्रभ नाम रख दिया । मुनि पद्मप्रभ को सर्व गुणों का आधार व शासन की उन्नति करने का प्रधान हेतु समझ, शास्त्राभ्यास करवाना प्रारम्भ करवा दिया । नवदीक्षित मुनि ने पूर्व जन्म में ज्ञानार्चना, भक्ति, एवं ज्ञानाराधना को यथेष्ट परिमाण में की थी । अतः वे कुछ ही समय में शास्त्रमर्मज्ञ व अपने समय के अनन्य विद्वान् हो गये । वीणावादिनी मस्त वभी सरस्वती की आप पर इतनी कृपा थी कि संगीत एवं वक्तृत्व कला में तो आप असाधारण पाण्डित्य हस्तगत कर लिया कि आप जिस समय व्याख्यान देना प्रारम्भ करते थे तब मानव देहधारी तो क्या पर देव देवांगना भी स्तम्भित हो जाते थे । जब समय हो जाने पर आप व्याख्यान समाप्त कर देते थे तो श्रोताजन को बड़ा ही आघात पहुँचता था और वे पुनः व्याख्यान के लिये लालायित रहते थे इत्यादि । आप इस प्रकार व्याख्यान के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये । मुनि पद्मप्रभ की योग्यता पर प्रसन्न होकर श्री उपाध्यायजी महाराज ने मुनि पद्मप्रभ को वाचक पद से विभूषित कर उसका सम्मान किया ।

एक समय आप पुनः इत उत परिभ्रमण करते हुए पाटण पधारे । नित्य नियम क्रमानुसार वाचकजी के कई व्याख्यान (पब्लिक) हुए । मुनि पद्मप्रभ की प्रतिपादन शैली की अलौकिकता से आकर्षित हो जन समाज नित्य नूतनोत्साह से विराट संख्या में व्याख्यान मण्डप का लाभ लेने लग गया । तात्त्विक विषयों के स्पष्टी करण की असाधारणता के कारण नगर भर में आपका सुयश ज्योत्स्ना विस्तृत होगई । अनन्तर श्री हेमचंद्रसूरि ने उस नवदीक्षित पद्मप्रभ को अनोत्तर (अति अलौकिक-सर्वश्रेष्ठ) वाचक गुण सम्पन्न प्रखर व्याख्याता जानकर व्याख्यान के समय (प्रातःकाल) उस पद्मप्रभ को कौतुक से बुलाया । आचार्यश्री स्वयं प्रच्छन्न स्थान पर बैठ कर बहुत ही ध्यानपूर्वक मुनि पद्मप्रभ के व्याख्यान-विवेचन शक्ति व तत्त्व प्रतिपादन को श्रवण करने लगे । राजा कुमारपाल भी मुनि श्री के आश्चर्योत्पादक व्याख्यान सभा में उपस्थित हो सम्मिलित हुआ । अब मुनिजी विवेचन एवं स्पष्टीकरण करने की अलौकिकता बोलने की मधुरता श्रोताओं को चुम्बकवत् आकर्षित करने की विचित्रता ने समासीन जन समाज राजा कुमारपाल एवं आचार्यश्री हेमचंद्रसूरि को भी आश्चर्य विमुग्ध बना दिया । इस व्याख्यान ने सूरिजी के हृदय में मुनि पद्मप्रभ के प्रति अगाध स्नेह पैदा कर दिया । उनकी इच्छा वाचकजी को अपने पास रखकर अपने युग के असाधारण महा प्रभावक बनाने की होगई । अतः उक्त इच्छित अभिलाषा से प्रेरित हो उन्होंने उपाध्यायजी से वाचक मुनि पद्मप्रभ की याचना की । इसमें सूरिजी का—वाचकजी के द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करवाने का ही परम सुखद आदरणीय ध्येय होगा पर यह बात उपा० ने स्वीकृत नहीं की । अब तो हेमचन्द्रसूरिजी बलात् भी उसको लेने का प्रयत्न करने लगे अतः उपाध्यायजी को बहुत ही चिन्ता हो गई । वे सोचने लगे कि—यहां का राजा कुमारपाल हेमचन्द्राचार्य का भक्त है । अतः यहां पर ऐसी स्थिति में रहना भयावह है । बस दोनों गुरु शिष्य रात ही में ऐसे विषम मार्ग से विहार कर सिणवली (सिणवली) नामक एकान्त व विराम स्थान में पहुँच गये कि वहां राजाओं की सेना या गुप्तचरों से भेद लगना भी दुष्प्राप्य था । जब हेमचन्द्राचार्य को इस बात की खबर लगी कि उपाध्यायजी म० रात्रि में ही चले गये हैं तो उन्होंने राजा कुमारपाल को प्रतिवचन प्रेरणा की । राजा ने भी योग्य पुरुषों को उपाध्यायजी को ढूंढने के लिये भेजा पर विषम मार्ग का अनुसरण करने वाले उपाध्यायजी का पता वे न लगा सके । अन्त में हताश हो वे जैसे के तैसे पुनः लौट आये ।

उपाध्यायजी व वाचक पद्मप्रभ मुनि जिस स्थान पर ठहरे थे उसके नजदीक ही एक ग्राम था । वहां की विसोई नाम की देवी किसी पात्र के शरीर में अवतीर्ण हो कहने लगी—हे भद्रपुरुषों ! तुम्हारे यहां जो ये दो श्वे० साधु पधारे हैं उनको शीघ्र ही जाकर इस बात की सूचना करो कि वाचक पद्मप्रभ मुनि को देवी ने

बुलवाया है। अत शीघ्र ही देवी के निर्दिष्ट स्थान पर चलो। उस ग्राम के भद्रिक पुरुषों ने देवी प्रोक्त वचनों को ग्राम स्थित मुनियों को वदन कर कह सुनाये। उपाध्यायजी म० ने भी वाचक पद्मप्रभ को देवी के पास भेज दिया। जब वाचकजी विसोई देवी के स्थान पर गये तो देवी ने कहा—"हे भाग्यशाली ! मैं त्रिपुरा देवी को नमन करने गई थी। उन्होंने मुझे कहा था कि-तुम्हारे वहा पद्मप्रभ नामक श्वे० साधु आवेगा उसको मेरी ओर से कह देना कि तुमने तीन भव तक मेरी आराधना की पर स्वल्प आयुष्य होने के कारण मैं सिद्ध न हो सकी। अब तुम हमारी आराधना करो मैं तुम्हारे लिये वरदाई (सिद्ध) हो जाऊंगी।" ऐसा कह कर त्रिपुरादेवी ने मुझे विसर्जित की और मैं आपको सूचना देने के लिये यहा आई। आपको देवी कथित सकल वृतान्त कह दिया अब आप इस बात को नहीं भूलें। आप त्रिपुरादेवी का स्मरण कीजिये कि आपको पूर्व साधित मन्त्र भी स्मृति रूप हो जाय। वाचक पद्मप्रभ ने देवी विसोई की बात को सुनकर त्रिपुरादेवी का ध्यान लगा लिया। बस देवी के प्रभाव से पूर्व जन्म पठित देवी साधक मन्त्र की ताजा स्मृति हो आई। मन्त्र-स्मरण के साथ ही वाचकजी अपने गुरु उपाध्यायजी के पास आये और उन्हें विनय पूर्वक सब हाल सुना दिया। उपाध्यायजी को देवी की अनुपम कृपा के लिये अत्यन्त प्रसन्नता हुई और ऐसा होना सम्भव भी था। अपने या अपने शिष्य के अनुपमेय उत्कर्ष में किसी को अपरिमित आनन्द का अनुभव न हो ?

अब उपाध्यायजी की यह इच्छा हुई कि किसी योग्य प्रदेश में जाकर देवी के कथनानुसार वाचकजी को मन्त्र साधन की अनुष्ठान क्रिया करवाई जाय। इस उच्चतम विचारधारा से प्रेरित हो वे सपादलक्ष प्रान्त में परिभ्रमन करते हुए नागपुर शहर में पधारे। उन वाक् संयम श्रेष्ठ मुनि ने नागोर में पदार्पण कर वहां के नागरिक-श्रावकों को अनुष्ठान के लिये कहा परन्तु भवितव्य के कारण उन्होंने शिर धून दिया कारण उनके तक़दीर ही इस काम के योग्य नहीं थे। अनन्तर वे गुरु शिष्य सिन्ध प्रान्तान्तर्गत डमरेल्लपुर नगर में पधारे। वहा गच्छ में पूर्ण भक्ति रखने वाला यशोदित्य नामका श्रेष्टि भक्त श्रावक रहता था। उसी डमरेल्लपुर में हमेशा प्रातःकाल उठकर सवा करोड़ स्वर्ण मुद्रा का दान करने वाला सुहड़ नामका राजा राज्य करता था।

श्री उपाध्यायजी म० के वहां पधार जाने पर गुरु आगमन के महोत्सव में मन्त्रीय शोदित्य ने डमरेल्लपुर नरेश को भी आमन्त्रित किया। भक्ति परायण वह राजा भी मन्त्री की प्रार्थना को मान दे सपरिवार पुर प्रवेश महोत्सव में सम्मिलित हुआ।

समय पाकर वाचक पद्मप्रभ मुनि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न विद्वत्ता द्वारा राजा और प्रजा की सभा में मधुर एव हृदय ग्राही ओजस्वी गिरा में व्याख्यान दिया। अश्रुतपूर्व मनोमुग्धकारी व्याख्यान को श्रवण कर प्रसन्नता के मारे राजा ? विनयपूर्वक अर्ज करने लगा—स्वामिन ! मेरे द्वारा समर्पित किये हुए ३२००० द्रम्म (उस समय का प्रचलित सिक्का विशेप) ३२००० घोड़े व ३२००० ऊंटनियें आप स्वीकृत करें। यह सुन गुरु महाराज ने उत्तर दिया—राजन् ! परम निस्पृह, परिग्रह को नहीं रखने वाले, अच्छे कार्यो का आचरण करने वाले, परोपकार धर्म निरत, मधुकरी पर जीवन निर्वाह करने वाले हम भिक्षुकों को इस लौकिक द्रव्य से क्या प्रयोजन है ? हमें तो ऐसे धन की किञ्चित भी दरकार नहीं। इस पर राजा ने कहा—मेरा किया हुआ दान अन्यथा नहीं हो सकता—किये हुए दान को मैं अपने पास नहीं रखना चाहता हूँ। यह सुन समीपस्थ सेठ यशोदित्य बोले—राजन् ! इन द्रम्मों को तो किसी धर्म कार्य में भी लगाया जा सकता है पर इन अश्व एव ऊंटों का क्या किया जा सकता है ? इसके प्रत्युत्तर में राजा ने घोड़ों और ऊटनियों की सख्याक्रम के अनुसार ६४०००) हजार द्रम्म (सिक्के) मूल्य स्वरूप लेलो यह सेठ को कहा। सेठ ने भी राजा को प्रसन्न रखने के लिये ६४ हजार द्रम्म ग्रहण कर सामरोदी नामकी नगरी में श्री उपाध्यायजी महाराज से प्रतिष्ठित एक भव्य जिनालय बनवाया।

तदन्तर वाचक पद्मप्रभ ने यशोदित्य की सहायता से पाञ्चाल (पञ्जाब) प्रान्त में जाकर त्रिपुरादेवी

की साङ्गोपाङ्ग साधना की। त्रिपुरादेवी भी उक्त साधना से प्रसन्न हो प्रत्यक्ष आकर वाचकजी से कहने लगी-प्रभो ! आपकी आराधन भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ। अब आपको जो कुछ इष्ट हो मांगिये-मैं प्रसन्नता पूर्वक आपकी मनोकामना को पूर्ण करने के लिये तैय्यार हूँ। इस पर वाचकजी ने वचन सिद्धि रूप सच्चा वर मांगा। एवमस्तु कृपामयि वाचकजी को 'तथास्तु' कह कर देवी अन्तर्ध्यान होगई। इधर वाचकजी का भी वाक्य सिद्ध हो गया। वे जैसा अपने मुख से बोलते ठीक वैसा ही होने लगा।

एक दिन उपाध्यायजी कहीं बाहिर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें कोई उपासक बैल की पीठ पर बोझ लादे विदेश से आता हुआ मिला। श्रीवाचकजी से भेंट कर उस उपासक ने उनको वंदना की तब वाचकजी ने उससे पूछा—तुम्हारे पास क्या माल है ? यह सुन उपासक ने, शायद उपाध्यायजी को कुछ देना पड़े इस भय से काली मिर्च को भी उड़द बताया। वाचकजी के "ऐसा ही हो" कहने पर सचमुच वे मिर्चें भी उड़द हो गई। अब तो वह घबराता हुआ इसका कारण खोजने लगा। जब उसे पता चला कि वे वाक्य सिद्ध हैं तो उनकी वचन महिमा को जानकर बड़े ही विस्मय के साथ अपने असत्य भाषण के लिये वह पश्चाताप करने लगा। वह वाचकजी के सम्मुख अपने अपराध की क्षमा याचना करता हुआ गिड़गिड़ाने लगा। वाचकजी ने भी सहज दयाभाव से प्रेरित हो कहा—"यदि ये उड़द वास्तव में काली मिर्च थे तो अब भी वही हो जाँय" उनके ऐसा कहने पर तत्क्षण वे उड़द काली मिर्चें बन गये।

एक ऐसा ही उदाहरण और बना। तदनुसार एक ब्राह्मण भिक्षा में मिले हुए चाँवल धान्य (चौले) को सिर पर उठाये जाते हुए वाचकजी को मिला। वाचकजी ने उससे सहज ही पूछा—हे ब्राह्मण ! तुम्हारी गांठ में क्या चाँवल हैं ? उसने कहा—नहीं, ये तो चौले हैं। मुनि ने कहा—ये चौले नहीं चाँवल हैं। ब्राह्मण ने अपनी गांठ खोल कर देखा तो उसे चाँवल ही नजर आये।

इस तरह वाचक मुनि पद्मप्रभ, त्रिपुरादेवी के वरदान से वाक्य सिद्ध गुण-सम्पन्न हो गये तब उनके गुरु ने उन्हें वाचनाचार्य नाम वाले योग्य पद पर स्थापित कर दिया। वाचनाचार्य पद पर विभूषित होने के पश्चात् इन्होंने गुरु शिष्यों के क्रमशः गुर्जर प्रान्त की ओर विहार कर दिया। उस समय किसी ग्राम देश की प्रधान रानी अहंकार में मस्त हो किसी दार्शनिक साधु सन्यासी या विद्वान् के सामने बैठ जाने पर भी अपना आसन नहीं छोड़ती थी। उसके इस अकम्प अहंकार को मिटाने के लिये एक दिन वाचनाचार्य मुनि पद्मप्रभ उसके घर गये। रानी ने मुनिजी का न सत्कार किया और न वह आसन छोड़ करके ही मुनिजी के सम्मानार्थ दो कदम आगे आई।

वाचनाचार्यजी—श्रीमति ! आपको यह गौरव (अभिमान) किस निमित्त है ? क्या व्याकरण, काव्य तर्क छंद आदि की परीक्षा करना चाहती हो ?

रानी—इन शब्दों से हमें क्या प्रयोजन है ? मैं तो अध्यात्म योग विद्या के अभिज्ञ साधु समझती हूँ। इसके सिवाय केवल मस्तक मुड़ाने से क्या होता है ? जब अध्यात्म योग विद्या में निपुणता ही किसी साधु में दृष्टिगोचर नहीं होती तब किसका नमन व किसका पूजन किया जाय ?

यह सुनकर जरा मुसकान के साथ पद्मप्रभ ने उत्तर दिया—श्रीमतीजी ! क्या आप तर्क, व्याकरण, साहित्य, निमित्त (शकुन—ज्योतिष) गणित आदि के ज्ञान को अत्यल्प देखती हो ?

रानी—इन निस्सार वस्तुओं में क्या ? मैं तो अध्यात्म विद्या में स्थित हूँ और समग्र ब्रह्माण्ड को स्वयं रूप में जानती हूँ। मुझसे पृथक मैं किसी को नहीं देखती जिसको कि मैं नमस्कार करूं।

वाचनाचार्य—रानीजी ! मैं अष्टांग योग और कुम्भक पूरक तथा रेचक इन त्रिविध प्राणायामों को जानता हूँ। इस पर रानी ने आश्चर्यान्वित कहा—पूरक तथा रेचक प्राणायाम के कुछ चमत्कार बताओ। मुनि ने बनियों से रूई मंगवा कर कहा—जब मैं पूरक प्राणायाम को श्वास वायु द्वारा पूर्ण करके निमग्न हो

बैठ जाऊं तब तत्क्षण मेरे मस्तक, कान, नाक मुह और आखों के छिद्रों में रूई के फोहे रख देना। ऐसा कह पद्मासन जमा पूरक को पूर्ण कर एड़ी से चोटी तक एकदम स्थिर हो गये। रानी से प्राणायाम करने के पूर्व ही पूछा था कि निरुद्ध श्वास वायु को किस छिद्र से छोड़ू ? उनके ऐसा कहने पर रानी ने प्रत्युत्तर दिया—दशम द्वार (ब्रह्म रन्ध्र) से पवन को छोड़ो क्योंकि एक यही द्वार छिद्र रहित है। रानी का प्रत्युत्तर सुन मुनि पद्मप्रभ ने पूरक द्वार से भरे हुए श्वास वायु को उस रानी के कथनानुसार दशम द्वार से छोड़ा जिससे तत्रस्थ रूई उड गई और अन्य स्थान स्थित ज्यों की त्यों रह गई।

इस चमत्कार को देख रानी ने अपने आसन से उठकर मुनि के चरणों में नमस्कार किया और कहा—आज से आप हमारे पूज्य आराध्य तथा सदा सेवनीय गुरू हैं। यह कह कर स्वर्ण निर्मित चतुष्काष्टी (चौकी) तथा कपरिका (कवली) एवं श्रेष्ठ आव वाले मोती और रत्नों से युक्त एक झुवना बनवा कर गुरू को भेंट किया। इस पर मुनि ने नहीं स्वीकार करते हुए जैन श्रमणों के यम नियमों को समझाया और उस द्रव्य को शुभ कार्य में लगाने के लिये प्रेरित किया।

इस प्रकार योग विद्या और वचन सिद्धि से प्रभावित हो वाचनाचार्य श्री पद्मप्रभ के चरण कमलों में वड़े २ राजा महाराजा आकर मस्तक नमाते थे। कहना होगा कि आपश्री ने अपनी चमत्कार शक्ति से जैन धर्म की बहुत ही प्रभावना की।

इस प्रकार राजा आदि महापुरुषों से निरन्तर पूज्यमान महामुनि वाचनाचार्य पद्मप्रभ एक समय सपाद लक्ष (साभर, अजमेर) देशों में विहार करने के लिये निकले उस समय खरतर गच्छ के आचार्यश्री जिनपति सूरि के साथ पद्मप्रभ वाचनाचार्य ने गुरु के काव्याष्टक के सम्बन्ध में विवाद किया। श्री सम्पन्न अजयमेरु (अजमेर) के किले पर राजा वीसलदेव की राज सभा में श्री जिनपति* सूरि को जीत लिया।

इस प्रकार जम्बुनाग आचार्य की संतति (शिष्य परम्परा) का वाचनाचार्य पद्मप्रभ तक वर्णन किया है। इन महापुरुषों ने अपने पाडित्य व चमत्कारिक शक्तियों से जैन शासन की आशातीत उन्नति एव प्रभावना की है। इन्हीं तेजस्वी आचार्यों की अलौकिक सत्ताने जिन शासन को अन्य दर्शनों के सामने आदर्श के रूप में रक्खा। ऐसे महापुरुषों के चरण कमलों में कोटि २ वदन हो।

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

१—सत्यपुरी	नगरी के	छाजेड़	जाति के	शाह	सूराने	सूरिजी के पास दीक्षाली
२—भीन्नमाल	के	आर्य	"	"	विजा ने	"
३—भूति	के	पारख	"	"	कुम्मा ने	"
४—शिवगढ	के	राखेचा	"	"	पाता ने	"
५—सोनाली	के	पोकरणा	"	"	भोला ने	"
६—दामाणी	के	पाल्लीवाल	"	"	जैता ने	"
७—चोसरी	के	प्राग्वट	"	"	करमा ने	"
८—कोरंटपुर	के	"	"	"	जीवा ने	
९—खीमाणदी	के	श्रीमाल	"	"	डावर ने	

* खरतर गच्छ की पट्टावली के अनुसार जिनपति सूरि का जन्म वि० सं० १२१० में हुवा। वि० सं० १२१८ में दीक्षा, वि० स० १२२३ में आचार्य और वि० स० १२७७ में स्वर्गवास हुआ और अजयगढ़ में विशालदेव का राज स० १२२४ तक रहा तब वाचनाचार्य पद्मप्रभ का समय के लिये राजा कुमारपाल का राज्य-समय वि० स० ११९९ से १२४९ का है, इसी समय में उपाध्याय जिनभद्र व वाचक पद्मप्रभ हुए।

१६—थेरापाद्र	के	श्रीश्रीमाल	जाति के	शाह	मैकरण ने	भ०	मल्लि०	प्र०
१७—पुनारी	के	नागपुरिया	"	"	भोपाल ने	"	महावीर	"
१८—लाव्यपुरी	के	छाजेड़	"	"	रावल ने	"	"	"
१९—शालीपुर	के	भटेवरा	"	"	सुरवा ने	"	"	"
२०—सोपारपट्टन	के	चोरडिया	"	"	रावण ने	"	"	"
२१—पद्मपुर	के	प्राग्वट	"	"	हरपाल ने	"	"	"
२२—उज्जैन	के	"	"	"	चापसी ने	"	पार्श्व०	"
२३—माण्डवापुर	के	"	"	"	सुगाल ने	"	"	"
२४—चन्द्रावती	के	"	"	"	वादर ने	"	"	"
२५—टेलिपुर	के	"	"	"	गोपाल ने	"	"	"
२६—शिवपुरी	के	श्रीमाल	"	"	गोवींद ने	"	सीम०	"
२७—देवाल	के	"	"	"	मुकन्द ने	"	आदी०	"
२८—जावली	के	"	"	"	तोला ने	"	"	"

आचार्यश्री के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—खम्भात नगर	से	श्रीमाल	संखला ने	श्री शत्रुञ्जय का	संघ निकाला
२—					
३—अणहीलवाडा पटण	से	प्राग्वट	रामा ने	"	"
४—मुजपुर	से	श्रीमाल	देवशी ने	"	"
५—नरवर	से	आर्य	जिनदेव ने	"	"
६—नागपुर	से	चोरडिया	अर्जुन ने	"	"
७—खटकुप	से	कनोजिया	दैपाल ने	"	"
८—उपकेशपुर	से	श्रेष्टि	जैसिंग ने	"	"
९—आमेर	से	राखेचा	लुवा ने	"	"
१०—मथुरा	से	जांघडा	दीपा ने	"	"
११—शौरीपुर	से	बाफणा	धीरा ने	"	"
१२—शालीपुर	से	सुखा	फूआ ने	"	"
१३—पालीकापुरी	से	राका	जुजार ने	"	"
१४—नारदपुरी	से	प्राग्वट	गोकल ने	"	"
१५—चन्द्रावती	से	प्राग्वट	जोध्दा ने	"	"
१६—पद्मनपुर	से	श्रीमाल	सहारण ने	"	"
१७—नादपुर	से	छाजेड	सादु ने	"	"
१८—विसनगर	से	भुवेडिया	पोपा ने	"	"

१९—माडव्यपुर के कुम्मट लुणा की पत्नी ने एक तालाव खुदाया।
२०—नागपुर चोरडिया भोला की पुत्री ने एक बावड़ी बनाई।
२१—डीहूपुर के जेतावत जगदेव ने एक कुआ खुदवाया।
२२—कोरंटपुर के श्रीपाल सेवा ने एक तालाव खुदवाया।

२३—पद्मावती के प्राग्वट हरपाल की पत्नी ने तलाव खुदाया।
२४—रायणपुर के संचेती भाखा ने दुकाल में करोड़ों का दान दिया।
२५—पाली का पल्लीवाल सांगा ने दुकाल में अन्न वस्त्र दान में दिये।
२६—वीरपुर का भाद्र आसग युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२७—चन्देरीपुर का चोरड़िया पारमल युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२८—चन्द्रावती का प्राग्वट नराइण युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।

पैंतालीसवें पट्ट प्रभाकर, सिद्ध सूरीश्वर नामी थे।
दृढ़ थे दर्शन ज्ञान चरण में, शिव सुन्दरी के कामी थे॥
ग्रन्थ निर्माण किये अपूर्व, कई ग्रन्थ कोश भराये थे।
उन्नति शासन की करके, मन्दिरों पे कलश चढ़ाये थे॥
अम्बुनाम ज्योतिष विद्या में, सफल निपुणता पाई थी।
कोरंटा में आकर, विप्रों से विजय भेरी बजवाई थी॥
था नहीं करने देते थे वहाँ पर, मन्दिर प्रतिष्ठा करवाई थी।
ग्रन्थ किया निर्माण आपने, विद्वता की छाप दिखाई थी॥

इति श्रीभगवान् पार्श्वनाथ के पैंतालीसवें पट्टधर आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वर महाप्रभाविक आचार्य हुए

४८-आचार्यश्री कक्कसूरिजी (बारहवें)

आचार्यस्तु स कक्कसूरि रमवघो पाप्य नागान्वये ।
जाति स्वामपि नाहटेति विदितां रत्नं यथाऽभूषयत् ॥
लक्षस्य द्राविणस्व धारणतया हारेण कण्ठे प्रभोः ।
भक्तिं भक्तजनैः सुरक्तमन सा चक्रे कृती सुव्रती ॥
पत्न्या साधर्मनेक भूरि जनतां दीक्षायुतां मुक्तिगाम ।
कृत्वा प्राप्य च सूरि पद्धतिमय जैनमतं चोन्नयन् ॥
धन्यो वै बहुशः स्वधर्म निरतो धन्यः सुमान्यो भवेत् ।
भैंसा शाह जनात्स्वयं गदइया शाखामकार्षीदिपे ॥

परम प्रभावक, परम पूज्य, आचार्य देव श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली, उग्र विहारी, शुद्धाचारी, सुविहित शिरोमणी, बाल-ब्रह्मचारी, कठोर तपस्वी, चन्द्र की तरह शीतल, सूर्य की भांति तेजस्वी, मेरू सदृश अचल, पृथ्वीवत् धैर्यवान, विविध गुण-गणालंकृत, धर्म प्रचारक, महान् शक्तिशाली आचार्य हुए हैं। आपका जीवन-काल जन कल्याणार्थ व्यतीत हुआ। आप अनेक लब्धियों, विद्याओं एवं कलाओं में पारङ्गत थे। श्री रत्नप्रभ सूरि प्रतिबोधित सच्चायिका देवी के सिवाय जया, विजया, सिद्धायिका, अम्बिका, मातुलादि अनेक देवियाँ आपके परम पवित्र, अनुपम उपदेशामृत का आस्वादन कर अपने जीवन को सफल मानती थीं। कई राजा महाराजा आपके चरण कमलों की सेवा करने में अपने को परम भाग्यशाली समझते थे। पट्टावली रचयिताओं एवं चरित्रकारों ने आपका जीवन विस्तार से लिखा है पर ग्रन्थ-कलेवर बढ़ जाने के भय से यहाँ उतना विशाद रूप न देकर सामान्यतया मुख्य २ घटनाएँ ही लिखी जाती हैं।

विश्व-विश्रुत भारत भू० अलंकार स्वरूप, इन्द्र की अमरापुरी से भी स्पर्द्धा में विजय शील, गुर्जर प्रान्तीय राजधानी अणहिल्लपुर नामक परम उन्नतशील नगर था। इस नगर की स्थापना के विषय में जैन ग्रन्थकारों ने लिखा है कि—

पचासरा के चैत्यवासी आचार्य श्री शीलगुण सूरि एक समय विहार कर क्रमश जङ्गल में जा रहे थे। मार्ग में एक वृक्ष की शाखा पर झोली में रक्खे हुए नवजात शिशु को झूलता हुआ देखा। प्रकृति नियमानुसार सब वृक्षों की छाया बदल कर पश्चिम की ओर जा रही थी तब बालक पर स्थित छाया किसी भी रूप में परिवर्तित न होकर मन्त्र शक्ति के आलौकिक आश्चर्य के समान नवजात शिशु पर तथावत् रूप में स्थित थी। उक्त अद्भुत आश्चर्य को देख सूरिजी ने विचार किया कि—यह अवश्य ही कोई भाग्यशाली एव होनहार बालक होना चाहिये जिसके कारण प्रकृति का नैसर्गिक नियम भी सहज ही में परिवर्तित हो गया। बस वे आश्चर्य चकित हो विचार सलग्न हो गये। उस बालक की बालक्रीड़ा जो भावी अभ्युदय का स्पष्ट सूचन कर रही थी—सूरिजी देख २ कर प्रसन्न एवं हर्षित हो गये। कुछ ही समय के पश्चात् उस बच्चे की माता बच्चे के समीप आई। सूरिजी ने बाई को देखकर पूछा—बाई! इस विकट जंगल में तुम्हें अकेली रहने का क्या

कारण है ? सूरिजी के उक्त सरल एवं शान्तिमय वचनों को सुनकर उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। प्रकंपित श्वासोच्छ्वास की प्रबलता से यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि वह किसी महान् दुःख से दुःखित थी वह बोलने व अपने भावों को यथावत् व्यक्त करने में हिचकिचा रही थी पर सूरीश्वरजी ने सहायक आश्वासन सूचक शब्दों में पूछा तब उस महिला ने अपना हाल निम्न प्रकारेण सुनाया।

महात्मन् ! मेरा नाम रूपसुन्दरी है। एक दिन मैं राज-महलों में रहने वाली मोतियों से भी मंहगी थी पर दुर्दैव वशात् आज मेरी यह दशा हुई है कि इस भयावह अरण्य में भी मुझे अकेली को ही रहना पड़ा है। अभी ही पुत्र को जन्म दिया है और येनकेन प्रकारेण फल फूलों के आधार पर मैं अपना जीवन यापन कर रही हूँ। प्रभो ! मेरी भयजनक हालत का दुःखानुभव मुझे ही है शत्रु को भी परमात्मा कदाचित् ऐसा दुःख प्रदान न करे। सूरिजी ने रानी का हाल सुनकर उसको धैर्य दिलाते हुए कहा—माता चकित एवं खिन्न होने का समय नहीं है। कर्मों की कराला के सम्मुख तुम हम जैसे साधारण पुरुष की तो क्या ? पर तीर्थङ्कर चक्रवर्ती जैसे अनन्त शक्ति के धारक पदवी धरों का भी वश नहीं चलता है कर्मों की स्वाभाविक गति ही अत्यन्त विचित्र है अतः स्वोपार्जित पुरातन पापकर्मों का इस प्रकार कठोर उदय समझ करके ही सर्व प्रकारेण शान्ति पूर्वक सहन करते रहना चाहिये। अब किञ्चिन्मात्र भी मत घबराओ सब तरह से आनन्द एवं उल्लास ही होगा। इस तरह रूपसुन्दरी को कर्म-महात्म्य बताते हुए शान्तमना प्रदान कर आचार्यश्री स्वयं पञ्चासर में आये और योग्य श्रावकों को यथोचित्तक सर्वप्रकारेण अनुकूल सूचना दी। आचार्यश्री के उक्त उचित परामर्श को पाकर श्रीसंघ के प्रतिष्ठित श्रावक सूरिजी कथित निर्दिष्ट स्थान पर गये और रूपसुन्दरी व उनके नवजात शिशु को बड़े ही सम्मान पूर्वक अपने घर पर ले आये, उनको अच्छी तरह से दिलाशित कर उन्हें हर तरह से अपनाने का श्रेय सम्पादन किया।

रानी रूपसुन्दरी भी आचार्यश्री शीलगुण सूरि का महान् उपकार समझ कर उनकी परम भक्तिवान् श्राविका बनगई और सूरीश्वरजी के नित्यप्रति अनुपम उपदेशों को सुनकर अपने दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगी। उसका बचा जो वन में जन्मा था और वन में जन्मने के कारण वनराज नामाङ्कित था द्वितीया के चन्द्र के समान नित्यप्रति हर पक्षवालों में बढ़ रहा था। धार्मिक पवित्र संस्कारों से ओतप्रोत अपनी माता के साथ में वनराज भी प्रतिदिन सूरीश्वरजी के उपाश्रय में आया जाया करता था। इससे उसके कोमल हृदय पर धार्मिक संस्कारों का आश्चर्यकारी प्रभाव पड़ा जब वनराज क्रमशः शिक्षा प्राप्त करने योग्य हुआ तो धार्मिक शिक्षा के साथ ही साथ राजकीय एवं व्यापारिक शिक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया। वनराज भी कुशाग्रमति एवं व्यवहार कुशल था। अतः उसने कुछ ही समय में हर एक विषयों में आशातीत प्रगति करली।

एक समय वनराज हवाखोरी के लिये जंगल में गया था। वहाँ उसने कई गवालों को गायें चराते हुए देखा। किन्हीं बातों के स्वाभाविक प्रसङ्ग से वनराज ने अपने हृदयाभ्यन्तरित उद्गारों को व्यक्त करते हुए गोपालों से नये राज्य—स्थापन करने के विषय में कहा। इस पर एक प्रतिष्ठित गोपाल ने कहा—यदि आप मेरे नाम से नया नगर व नया राज्य आबाद करना चाहें तो मैं आपको एक ऐसा उत्तम स्थान बताऊँ कि जिसके आधार पर सब कार्य सुगमता पूर्वक किये जासके। वनराज ने गोपाल की उक्त हितकर बात को सहर्ष स्वीकार करली और गोपाल ने भी पूर्व वर्णित एक सिंह के सामने बकरे के द्वारा बतलाई गई वीरता के अद्भुत स्थान को वनराज्य स्थापना के लिये बतला दिया। गवाल का नाम 'अणहिल' था अतः नवीन नगर भी अणहिलपुर पट्टन नाम से बसाने का निश्चय कर लिया। सायंकाल के समय जब वनराज अपने घर आया तब उसने गोपालों के साथ हुए अखिल वृत्त को सूरीश्वरजी की सेवा में कह सुनाया। सूरिजी ने भी अपने स्वर्णोदय एवं निमित्त ज्ञान से भविष्य के लाभ को जान कर वनराज के इस अनुपम उत्साह को और

भी अधिक वर्धित किया। बस, फिर तो था ही क्या ? वनराज ने भी अपने से वयस्थविर, ज्ञान स्थविरों के उचित परामर्शानुसार उक्त उन्नत भूमि पर छड़ी रोप दी। जब मनुष्य के शुभ कर्मों का उदय होता है, सुकृत पुञ्ज का आधिक्य रहता है तब तत्सम्बन्धी अखिल निमित्त भी अच्छे ही मिल जाते हैं। तदनुसार वनराज को भू गर्भ से अक्षय द्रव्य राशि प्राप्त होगई। अब तो उसके उक्त विचार और भी अधिक परिपक्वावस्था को प्राप्त होगये। उसका उत्साह द्विगुणित होगया। उसने एक ही साथ राजमहल, देवमन्दिर और गुरु महाराज के उपाश्रय, इन तीनों की नींव एक साथ ही डाली। नगर सम्बन्धी उचित सामग्री के तैय्यार हो जाने पर उसने मरुधरवासी अनेक उपकेशवंशियों, श्रीमालों, प्राग्वटों को बहुत सन्मानपूर्वक आमन्त्रित किये और उन्हें हर एक तरह की अनुकूल सुविधाएं प्रदान की। जैसे—भूमि का कर (टेक्स) नहीं लेना, उच्च एवं योग्य पदों पर आसीन करके उनको हरएक तरह से सम्मानित करना, नगर में अग्रगण्य स्थानों को देना इत्यादि। इस प्रकार के उचित आदर को प्राप्त कर व अनेक प्रकार की अनुकूल सुविधाओं के प्रलोभन से बहुत से लोग आ आ करके उक्त नवीन नगर में बसने लग गये।

वि० स० ८०२ के वैशाख शुक्ला तृतीया के रोहिणी नक्षत्र में अणहिल्लपुर पट्टन में गुरु महाराज के वासक्षेप पूर्वक वनराज का सिंहासनाभिषेक होगया। ठीक उसी समय वल्लभी से बलाह गौत्री शाह धवल को बड़े ही सम्मान पूर्वक बुलवाया जिनको सुवर्ण पद बकसीस कर नगर सेठ बनाये तब से धवल की सन्तान सेठ नाम से मशहूर हुई—राज्याभिषेकानन्तर वनराज ने अपने पूर्व परिचित चाम्पा शाह को मन्त्री पद पर नियुक्त किया। चाम्पा शाह स्वयं राजनीतिज्ञ एवं व्यवहार कुशल था। अत उनके मन्त्रीत्व में वनराज के राज्य ने कुछ ही समय में आशातीत उन्नति करली। इसके सिवाय भी अन्य महाजनों को योग्य स्थान में नियुक्त कर वनराज ने अपने राज्य की नींव को सुदृढ़ बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया जो बहुत अशों में यथावत् सफल भी हुआ। अनेक प्रकार के अनुकूल साधनों के सद्भाव से दिन प्रतिदिन नगर की आबादी, व्यापारिक उन्नति बढ़ती गई। वास्तव में जहां व्यापारी और व्यापार की उन्नति होती है वहा आबादी बढने में देर भी क्या लगती है।

आचार्य प्रवर श्री शीलगुण सूरि और आपके शिष्य श्री देवचन्द्रसूरि का प्रभाव वर्धक व्याख्यान हमेशा होता था। धार्मिक विषयों के स्पष्टीकरण के साथ ही साथ राजकीय गम्भीर विषयो पर भी समयानुकूल प्रकाश डाला जाता था। राजा के साथ प्रजा का कैसा सम्बन्ध होना चाहिये ? व प्रजा के साथ राजा का क्या कर्त्तव्य है ? राजा प्रजा की उन्नति के मुख्यतया क्या २ उपाय हैं ? राष्ट्र के साथ धर्म का कैसा सम्बन्ध होना चाहिये इत्यादि विषयों पर सामान्यतया हमेशा प्रकाश डाला जाता था। व्याख्यान के सिलसिले में एक दिन आचार्यश्री ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि—व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और धर्म की उन्नति में मुख्य कारण संगठन है। सगठन में एक ऐसी अपूर्व शक्ति रही हुई है कि उसकी समानता लक्ष योद्धाओं की विच्छिन्न शक्ति भी नहीं कर सकती है। व्यक्ति भिन्न २ प्रकृति वाला होता है पर वह ज्ञातीय संगठन में सगठित हो जाने पर स्वच्छन्दाचारी या जीर्ण शक्ति नहीं बन सकता है। जातियों के पृथक २ होने पर भी यदि वह एक विशेष समाज में सगठित हो तो उसमें दु शील, दुराचार बढ़ नहीं सकता है और न किसी विनाशकारी शक्ति का प्रादुर्भाव ही हो सकता है। समाज के अलग २ होने पर भी यदि धर्म संगठन की सुदृढ़ शक्ति-सम्बन्ध से सम्बन्धित हो तो फूट, कुसम्प रूपी चोर घुस ही नहीं सकता है। धर्म सगठन धर्मोपदेशकों के आधार पर अवलम्बित है। यदि एक श्रद्धा प्ररूपना वाले एक ही आचार वाले धर्मोपदेशक होवे हैं तो धार्मिक सगठन बड़ा ही मजबूत रहता है। इसके विपरीत जहा भिन्न २ श्रद्धा, प्ररूपना एव आचरना वाले धर्मोपदेशक होते हैं, उनसे धर्म के नाम पर जनता में उतनी ही अधिक राग, द्वेष, कलह, कदाग्रह, फूट, कुसम्प फैलकर सगठन रूपी दुर्ग का एक २ जमा हुआ पत्थर पृथक् २ हो ससार का भयकर पतन होता जाता

है । इत्यादि संगठन विषयक हृदयग्राही उपदेश दिया जिसका राजा प्रजा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा । धार्मिक संगठन शक्ति का यथावत् प्रभाव रखने के लिये आचार्यश्री के उक्त उपदेशानुसार राजा वनराज चावड़ ने चतुर्विध श्री संघ को एकत्रित कर पाटण शहर के लिये सबके परामर्शानुसार यह मर्यादा बांधदी कि पाटण में सिवाय चैत्यवासियों के कोई भी श्वेताम्बर साधु नहीं ठहर सकता है । यदि अन्य साधुओं को ठहरना ही होवे तो वे चैत्यवासियों के परामर्शानुसार ही ठहर सकते हैं ।

उक्त प्रस्ताव में आचार्यश्री शीलगुणसूरिजी को न तो कोई निजी स्वार्थ था और न किन्हीं भावनाओं में पक्षविपक्ष परिवर्तन ही करना था । शीलगुणसूरि तो निवृत्ति कुल के आचार्य थे पर उस समय पाटण में अनेक गच्छ के चैत्यवासियों का ही आना जाना और चैत्यवासियों के ठहरने योग्य ही चैत्य, उपाश्रय थे । अतः किसी को भी इस विषय की रोक टोक नहीं थी । केवल पाटण के राजा प्रजा को यही भय था कि चैत्यवासियों के अलावा दूसरे साधु क्रिया उद्धारक एवं सुविहितों के बढ़ाने से हमारी संगठित शक्ति को छिन्न भिन्न न कर डालें । वास्तव में उनका उक्त विचार भी था यथार्थ एवं दूरदर्शितापूर्ण ही था ।

पाटण के श्रीसंघ का किया हुआ ठहराव करीब पौने तीन सौ वर्ष पर्यन्त बराबर प्रवाहित रूप में चलता रहा । यही कारण था कि आचार्यश्री सिद्धसूरि के शासन में पाटण सर्व प्रकारेण उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ था । जैनसंघ की पर्याप्त आबादी थी । जैन समाज तन धन, कुटुम्ब परिवार से पूर्ण सुखी था । उस समय पाटण में कई करोड़पति और करीब ढाई हजार कोट्याधीश रहते थे । उस समय लक्षाधीश तो साधारण गृहस्थों की संख्या में गिने जाते थे । अतः उनकी तो संख्या ही नहीं थी । इन सबों में परस्पर भ्रातृभावजन्य प्रेम एवं धर्म स्नेह का नाता था । सर्वत्र स्नेह का ही साम्राज्य था । कलह कदाग्रह, ईर्षा, द्वेष ने अपनी असहायता का स्थान देख कर पाटण को दूर से ही त्याग दिया था ।

पाटण नगर में बाप्पनाग गौत्रीय नाहटा जाति का श्रीचंद नामक कोट्याधीश व्यापारी रहता था । आपका व्यापार भारत पर्यन्त ही परिमित नहीं था किन्तु पाश्चात्य प्रदेशों पर्यन्त उन्नत रूप से था । जल एवं स्थल दोनों ही मार्ग से व्यापार प्रचुर रूप में चलता था । आपके पिताश्री पुनड़ शाह व्यापारार्थ विदेशों में गये थे । वहां से वे एक बहुमूल्य माणक लाये थे । उसकी खाद संयुक्त प्रमाण की भगवान् महावीर की मूर्ति बनवा कर घर में देरासर स्थापित किया था । उस प्रतिमा की सेवा पूजा का काम सेठ श्रीचंद के सब कुटुम्ब वाले परम भक्तिपूर्वक किया करते थे । शाह श्रीचन्द के पूर्वज व्यापारार्थ मरुधर के उपकेशपुर से आये थे । वंशावलियों से पता मिलता है कि श्रीचंद की पांचवी पीढ़ी के पूर्व शाह नरदेव उपकेशपुर से पाटण आये थे उस समय पाटण नया ही बसा था । पाटण आने के बाद नरदेव का वंश वटवृक्ष की भांति फलता फूलता रहा ।

शाह श्रीचन्द के पांच पुत्रों में सबसे लघु मोखा था । वह भी अपने पिता के समान ही कोट्याधीश एवं प्रबल व्यापारी था । मोखा ने कई बार व्यापारार्थ विदेश की यात्रा की थी । और वहां से कई प्रकार के जवाहरात भी लाये थे । मोखा की धर्मपत्नी का नाम मोहिनी था । मोखा के लाये हुए रत्नादि जवाहिरात में से बढ़िया २ नग चुनकर भगवान् की प्रतिमा के कण्ठ में धारण करवाने के लिये परम भक्तिमान्, दृढ़ श्रद्धालु श्राविका मोहिनी ने एक सुन्दर हार बनवाया । इस सुन्दर हार के चातुर्य एवं कला को देखकर विविध कला निष्णात मनुष्य भी आश्चर्य विमुग्ध हो जाते । पतिव्रत धर्म परायणा मोहिनी ने हार को सुन्दर ढंग से तैयार कर अपने परमाराध्य पति देव को कहा—स्वामिन् ! कृपया इस हार को प्रभु-प्रतिमा के कण्ठ में पहिनाकर चैत्य वंदन कीजिये मैं भी अभी ही आती हूँ । शा मोखा हार की रचना देख बहुत खुश हुआ और अपनी स्त्री की भूरि भूरि प्रशंसा की । बाद में आप महावीर के मंदिर में जाकर द्रव्य पूजा की और प्रभु के कण्ठ में हार पहिनाकर परम भक्ति पूर्वक चैत्यवंदन किया । जब चैत्यवंदन करके मोखा बाहिर आया उसी समय श्राविका मोहिनी मन्दिर में गई पर मूर्ति के कण्ठ में हार नहीं देखा । प्रभु प्रतिमा के कण्ठ में हार को न देख

उसके दिल में विचार हुआ कि हार, बहुमूल्य होने से शायद पतिदेव ही अपने साथ ले गये होंगे। इस तरह उसका मानसिक निश्चय होजाने पर भी उसने शान्ति-पूर्वक चैत्य वन्दन किया और अपने मकान पर आकर मानसिक भ्रम के कारण अपने पतिदेव को मधुर उपालम्भ दिया। उसने कहा—देव! आप भाग्य शाली हैं कि विदेश में जाकर इस तरह के अमूल्य रत्न, जवाहरात लाये और उसका हार प्रभु के कोमल कण्ठ में स्थापन कर भक्ति का खूब ही लाभ लूटा पर मैं कैसी अभागिनी हूँ मुझे हार सहित प्रभु प्रतिमा की भक्ति का लाभ ही नहीं मिला। पतिदेव! इतनी तो मेरे ऊपर भी कृपा रखनी थी। मैंने कोई ऐसा अक्षम्य अपराध भी नहीं किया कि जिसके आधार पर मैं इतना अधिकार प्राप्त करने से वंचित रहूँ। प्रभो! हार भी मैंने ही तैय्यार किया था तो क्या मुझे इतना अधिकार भी नहीं कि मैं चैत्य वन्दन करूं वहा तक प्रभु के कण्ठ में हार देख सकूं।

अपनी धर्मपत्नी के मधुर किन्तु उपालम्भ सहित वचनों को सुनकर भोजा ने अफसोस के साथ कहा—मैंने खास आपके लिये ही हार भगवान् के कण्ठ में रख छोड़ा था फिर यह उपालम्भ कैसे?

श्राविका मोहिनी—तो क्या मैं असत्य कहती हूँ, प्रभो।

१
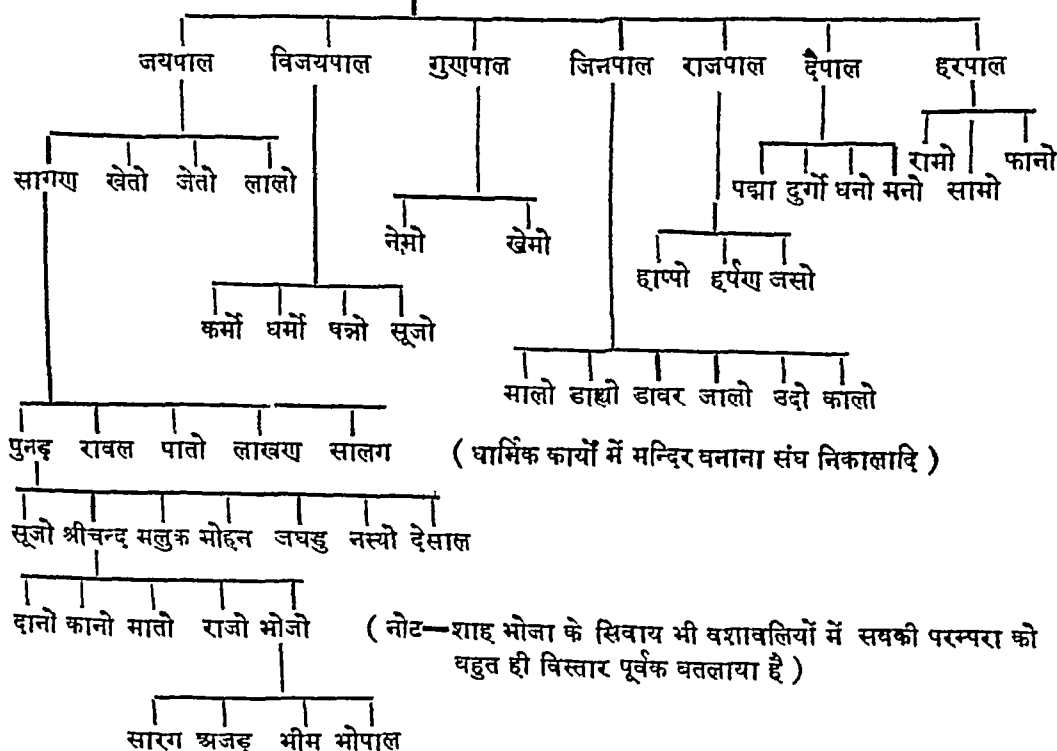
मोखा—जहाँ आप सांसारिक कार्यों में भी असत्य का आचरण नहीं करती तो फिर इस पवित्र धर्म के कार्य में तो झूठ बोल ही कैसे सकती हो ? पर मैं भी झूठ नहीं कहता हूँ। मैं भी बराबर भगवान् के कण्ठ में हार रखकर बाहिर आया था। उसके बाद सिवाय आपके और कोई आया भी तो नहीं फिर यह सम्भव ही कैसे ?

मालिका—फिर हार कहाँ गया आप जाकर भी तो जरा निगाह कीजिये।

मोखा—मेरे जाने की क्या जरूरत है, मैंने तो भगवान् को चढ़ा दिया अब उसकी जुम्मेवारी अधिष्ठायक के ऊपर है।

मालिका—आपने हार भगवान् को अर्पण कर दिया वह तो अच्छा किया और इसमें मेरी भी सम्मति थी पर हार की निगाह तो अवश्य ही करनी चाहिये। यदि आपने उसकी सारी जुम्मेवारी अधिष्ठायक के ऊपर रक्खी है और उसके अनुसार यदि अधिष्ठायक उस ओर लक्ष्य देता तो हार कैसे चला जाता ? हार का गुप्त-प्रकारेण पता लगने पर ही मुझे सन्तोष होगा।

इस प्रकार एकाएक हार के गायब हो जाने के विषय में परस्पर दम्पति के हमेशा वार्तालाप हुआ करता था।

इधर जिन शासन शृंगार, परमोपकारी महा-प्रभावक आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज विहार करते पाल्हण की ओर पदार्पण कर रहे थे। इसकी खबर वहाँ के श्री संघ को हुई तो पाल्हण वासी जन-समाज के हर्ष का पारावार नहीं रहा। श्रीसंघ ने सूरीश्वरजी का बहुत ही ठाठ पूर्वक नगर-प्रवेश महोत्सव किया। आचार्यश्री ने भी समयानुकूल माङ्गलिक धर्म देशना दी जिसका जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस प्रकार आचार्यश्री का व्याख्यान प्रतिदिन होता था। प्रसङ्गोपात एक दिन सूरिजी ने मनुष्य जन्म योग्य सामग्री की दुर्लभता और संसार की असारता पर अत्यन्त प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया। उस वैराग्य पूर्ण व्याख्यान को श्रवण कर कई मुमुक्षु संसार से विरक्त हो गये उनमें शाह मोखा भी एक था।

व्याख्यान श्रवणानंतर मोखा जब अपने निर्दिष्ट स्थान पर आया तो आपकी धर्मपत्नी ने कहा—अहा ! आज सूरिजी ने कैसा रोचक एवं हृदयग्राही व्याख्यान दिया है।

मोखा—तो क्या तुमको भी उस विषय का कुछ रङ्ग लगा है ?

मोहिनी—रङ्ग तो लगता है पर एकाएक संसार छूटता कहाँ है ?

मोखा—तो फिर तुम उस बन्दर जाती ही बात करते हो।

मोहिनी—सो कैसे।

मोखा—एक छोटे मुँह का घड़ा था। उसमें चने भरे हुए थे। एक बन्दर ने अपने दोनों रिक्त हाथ चने के प्रलोभन से घड़े में डाल और दोनों हाथों में चने भर लिये पर अब मुट्ठी भरी होने से हाथ घड़े से बाहिर नहीं निकल सके। अत वह निरुपाय हो चिल्लाने लगा कि—चने ने मुझे पकड़ लिया है, पर समझदार चने ने बन्दर को पकड़ रक्खा है या बन्दर ने चने को पकड़ रक्खा है ? इस पर मोहिनी ने कहा—चने ने बन्दर को नहीं पकड़ा है पर बन्दर ने चने को पकड़ा है। बस यही बात आप अपने लिये भी समझ लीजिये। संसार ने आपको नहीं पकड़ा है पर आपने संसार को मजबूती से पकड़ रक्खा है। यदि आप चाहें तो आज भी संसार का त्याग कर आत्म कल्याण कर सकती हो। पतिदेव के उक्त वचनों को श्रवण कर मोहिनी ने कहा तो—क्या आप मुझे संसार छोड़ने का उपदेश दे रहे हैं ?

मोखा—हाँ, मैं स्वयं भी संसार को छोड़ना चाहता हूँ।

मोहिनी—तो फिर किस की ओर से विलम्ब है ? यदि आप संसार को छोड़ दें तो मैं आपके साथ ही हूँ।

भोजा—अब दीक्षा लेने के बाद तो हार का झगड़ा तो नहीं रहेगा न ?

गोहिनी—यद्यपि हार से मेरा ममत्व नहीं है पर 'किम् जात' यह खटका तो रह ही जायगा। जैसे एक गृहस्थ ने अपनी गर्भवती स्त्री का त्याग कर किसी सन्यासी के पास दीक्षाली पर जब ध्यान करने बैठा तो उसके मन में रह २ कर यह विचार आने लगा कि मेरी स्त्री के लड़का हुआ या लडकी ? इन्हीं विचारों में दिन व्यतीत होने लगे पर प्रभु—ध्यान में उक्त विचारों का मन स्थिर न हो सका। इस प्रकार जब छ मास व्यतीत हो गये तब उसके गुरु ने कहा–वत्स ! तेरा चित्त ध्यान में क्यों नहीं लगता है ? क्या 'किम् जात' का रोग तो नहीं लग गया है ? शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! मेरे हृदय से यह 'किं जात' का रोग ही नहीं निकलता है और इसी कारण से ध्यान में भी मन स्थिर नहीं रहता है। गुरु ने कहा तो आज तुम अपने घर पर भिक्षा के लिये जाओ शिष्य गुर्वादेशानुसार भिक्षा के लिये नगर में गया तो कौतूहलवश सब से पहिले अपने घर पर गौचरी के लिये गया। वहा नवजात शिशु को बालोचित क्रीड़ा करते हुए देखा तो अपने आप 'किं जात' का रोग मिट गया। बस, तत्काल ही भिक्षा लेकर अपने गुरु के पास आया और निर्विघ्नतया ध्यान में सलग्न हो गया। उसके हृदय से पुत्र को देख कर 'किं जातं' का रोग ही मिट गया और उसे सन्तोप हो गया कि मेरी औरत के पुत्र हुआ है।

दैवयोग से उसी रात्रि को अधिष्ठायिका ने वह हार रात्रि में लाकर भोजा को दे दिया। प्रात काल अपनी धर्मपत्नी को हार दिखलाते हुए भोजा ने कहा–प्रिये ! यह हार रात्रि में मुझे अधिष्टायिका ने लाकर दिया है। बोलो अब इस हार के लिये क्या करना चाहिये ? सेठानी मोहिनी ने कहा–हार वापिस अधिष्ठायिक को दे दीजिये और जल्दी से ही दीक्षा की तैय्यारी कीजिये। अब एक क्षण का विलम्ब भी असह्य है। पत्नी के उक्त वचनों के बल पर भोजा ने अधिष्ठायिक की आराधना की और अधिष्ठायिक को उक्त हार सौंप दिया। अधिष्ठायिक ने भी ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि श्रीसघ के दर्शनों के समय तो हार प्रभु के कण्ठ में दृश्यमान होता और पश्चात् अदृश्य हो जाता। यह एक दिन के लिये नहीं पर हमेशा का ही क्रम था।

इधर शाह भोजा और आपकी पत्नी दीक्षा लेने को बिल्कुल तैयार होगये। नगर भर में यह दीर्घ उद्घोपणा करवादी कि जिस किसी को भी किसी भी प्रकार की आवश्यकता हो—मैं तन, मन, धन से उसकी सहायता सेवा करने को तैयार हूँ। जो कोई चाहे दीक्षा ले, चाहे आचार्यश्री की सेवा में रह कर आत्म कल्याण करे। इस पर ३४ नर नारी दीक्षा लेने के लिये तैयार होगये। वि० सं० १०५५ वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभ दिन शाह भोजा के किये हुए महामहोत्सव के साथ सूरिजी ने उन मोक्षाभिलापी ३६ स्त्री पुरुपों को भगवती दीक्षा देकर निवृत्ति पथ का पथिक बनवाया। शाह भोजा का नाम भुवनकलश रख दिया।

मुनि भुवनकलश की वय ४१ वर्पकी थी पर सूरिजी की उदार कृपा और भुवनकलश मुनि के अनुपम उत्साह से आप थोड़े ही समय में वर्तमान साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित बन गये। उस समय की यह एक विशिष्ट विशेपता थी कि कोई भी मुनि कितना ही विद्वान क्यों न हो जावे, वह गुरुकुल वास से अलग रहना नहीं चाहता था। जो गुण, योग्यता और गौरव गुरुकुल वास से प्राप्त होता है वह अलग रहने में नहीं। मुनि भुवनकलश ने लगातार १९ वर्प गुरुकुल वास में रह कर सर्व प्रकार से योग्यता हस्तगत करली थी। आचार्यश्री सिद्धसूरि ने भी वि० सं० १०७४ के माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन, श्रेष्टि पद्मा के महामहोत्सव पूर्वक मुनि भुवनकलश को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० परमप्रभावक, जैन धर्म के जगमगाते सितारे थे। वादियों पर तो आपकी इतनी धाक जमी हुई थी कि आपका नाम सुनते ही वे दूर दूर भागते थे। आचार्यश्री ने जिस दिन सूरिपद का भार अपने कन्धे पर लिया था उसी दिन छट छट पारणा तथा पारणे में केवल एक ही विगय लेने की भीपण प्रतिज्ञा करली थी। इस प्रकार शुद्ध निर्मल और कठोर तपस्या के कारण आपको कई अपूर्व २

लब्धियाँ एवं चमत्कार पूर्ण शक्तियाँ प्राप्त होगई थीं। देवियाँ आपके चरणों की सेविकाएं बनगई थीं। आपश्री व्याख्यान शैली इतनी मधुर, रोचक, आकर्षक एवं हृदयग्राहिणी थी कि बड़े २ राजा महाराजा भी सुनने के लिये लालायित रहते आपश्री की तत्त्व समझाने की शैली इतनी सरस, सरल एवं रोचक थी कि अल्प बुद्धि वाले श्रोताओं का मन सूरिजी की सेवा से विलग रहना नहीं चाहता था। आपश्री क्रमशः विहार करते हुए नागपुर (नागौर) पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आसन्न समारोह पूर्वक आचार्यश्री का स्वागत किया और चातुर्मास के लिये अत्यन्त आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। विक्रम १०७४ का वह चातुर्मास आपने नागपुर में ही किया। आपश्री का व्याख्यान हमेशा धाराप्रवाहिक व्याख्या से होता था। एक दिन आपने परमपावन तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय का माहात्म्य बतलाते हुए उक्त तीर्थ का इतना रोचक वर्णन किया कि व्याख्यान स्थित सकल जन-समाज का मन सहसा ही तीर्थ यात्रा करने के लिये आकर्षित होगया। तत्काल ही आदित्यनाग गौत्रीय चोरड़िया शाखा के धन कुबेर शा० करमण की इच्छा संघ निकालने की होगई। शत्रुञ्जय तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने की इन्होंने उसी व्याख्यान में खड़े होकर आज्ञा मांगी और श्रीसंघ ने उत्साह के साथ सहर्ष आदेश भी दे दिया। बस फिर तो था ही क्या ? शा० करमण ने अपने आठों पुत्रों को बुला कर संघ सामग्री तैय्यार करने की आज्ञा देदी। शा० करमण ने सुदूर प्रदेशों में अपने आदमियों को भेजकर साधु साध्वियों को विनती करवाई और श्रावक वर्ग के लिये स्थान २ पर आमन्त्रण पत्रिकाएं भिजवाईं। मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन सूरिजी की नायकता और संघपति करमण के अध्यक्षत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। पट्टावलीकार लिखते हैं कि इस संघ में ३०० साधु साध्वियाँ और एक लक्ष से अधिक श्रावकगण थे। जब संघ क्रमशः उपकेशपुर नगर पहुँचा तो वहाँ के संघ ने उक्त संघ का अच्छा स्वागत किया। परस्पर प्रेम भावना को बढ़ाने के लिये दोनों की ओर से एक २ दिन स्वामीवात्सल्य हुआ। मन्दिरों में ध्वजा महोत्सव आदि हुआ। बाद वहाँ से रवाना हो संघ उपकेशपुर नगर आया। वहाँ भी पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य, अष्टाह्निका महोत्सव एवं ध्वजा महोत्सव किया। वहाँ से ग्रामों एवं नगरों के मन्दिरों के दर्शन करता हुआ संघ ने तीर्थाधिराज का दूर से दर्शन कर मोतियों से बधाया और तीर्थ पर जाकर सेवा पूजा भक्ति कर अपने जन्म को पवित्र बनाया जिस समय नागपुर का संघ शत्रुञ्जय पर आया था उस समय करीब पाँच सात नगरों के संघ और भी वहाँ उपस्थित थे। सबका समागम परस्पर प्रेम में एवं आनन्द में वृद्धि कर रहा था। पूजा, प्रभावना स्वामीवात्सल्य अष्टाह्निका महोत्सव एवं ध्वजारोहण में संघपति करमण ने अत्यन्त उदारतापूर्वक द्रव्य व्यय किया। जब माला का समय आया तो साढ़े सात लाख की बोली से माला मरुधर के आदित्यनाग गौत्रावतंस संघपति करमण के कण्ठ में सुशोभित हुई।

मरुधर वासियों में धन का बड़ा भारी गौरव था। वे धार्मिक क्षेत्रों में तन मन और धन से द्रव्य व्यय करते थे; यही कारण था कि शा करमण माला के लिए साढ़े सात लाख का द्रव्य बोलने में नहीं हिच किचाया। सम्पूर्ण कार्यों के सानंद सम्पन्न होने पर संघ वापिस लौटते समय पाटण नगर में आया जो सूरिजी की जन्मभूमि थी। पाटण के संघ ने आगत संघ का अच्छा सत्कार किया। वहाँ राजा ने संघ को प्रीति-भोज और परिधापनी दी। संघपति करमण ने पाटण के मन्दिरों के दर्शन कर चढ़ावा चढ़ाया। तत्पश्चात् संघ रवाना होकर नागपुर आया। श्रीसंघ ने आगत संघ का समारोह पूर्वक स्वागत कर बड़े ही महोत्सव के साथ बधाया। संघपति करमण ने संघ को स्वामीवात्सल्य, और साथ में स्वर्ण मुद्रिका तथा सुंदर वस्त्रों की प्रभावना देकर विसर्जित किया। अहा ! उस समय जैन समाज की धर्म पर कितनी श्रद्धा थी ? एक २ धार्मिक कार्यों में लाखों रुपये व्यय कर वे महापुरुष लाखों मनुष्य के पुण्य बन्ध के कारण बन जाते थे।

इधर आचार्यश्री भी संघ के साथ नागपुर पधारे और वहाँ से उपकेशपुर की ओर विहार कर दिया।

स० १०७६ का चातुर्मास उपकेशपुर श्रीसघ के आग्रह से उपकेशपुर में ही किया। चातुर्मास कालपर्यन्त आपके विराजने से धर्म की अच्छी उन्नति एवं प्रभावना हुई। आपके त्याग वैराग्य मय उपदेश से सात पुरुष और तीन स्त्रियों ने वैराग्य पूर्वक दीक्षा ली। वहा से विहार कर सूरिजी मरुभूमि के छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए पाली नगर में पधारे। १०७७ का चातुर्मास पाली में किया। वहां पर अप्पनाग गौत्रीय शा० मूला ने आगम भक्ति कर भगवती सूत्र वचवाया। तप्त भट्ट गौत्रीय शा० बाला मेहराज ने अष्टाह्निका महोत्सव करवाया जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वधर्मी बन्धुओं को यथायोग्य प्रभावना दी।

चातुर्मास के पश्चात् श्रेष्टिगौत्रीय शा० भाणा के सुपुत्र ऊदा ने ६ मास की विवाहित पत्नी का त्याग कर सजोड़े आचार्यश्री के चरण कमलों में भगवती दीक्षा अङ्गीकार की। इस दीक्षा महोत्सव समारोह मे प्रभावनादि पुन्योपार्जिक कार्यों में सवालक्ष द्रव्य व्यय कर जैन-शासन की महत्ता बढ़ाई। इस तरह सानंद चातुर्मास के सम्पन्न होने पर भिन्नमाल, सत्यपुर, शिवगढ, जावलीपुर, कोरटपुर वगैरह नगरों में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए चन्द्रावती पधारे। श्रीसघ के अत्याग्रह से १०७८ का चतुर्मास चन्द्रावती मे ही किया। आपश्री के विराज ने से उक्त नगर मे जैन-धर्म का पर्याप्त उद्योत हुआ। आपने ३६० पंवार क्षत्रियों को जैन बनाकर प्राग्वट वश सम्मिलित कर दिया।

इधर शाकम्भरी नगरी मे किसी दैविक प्रकोप से मरी रोग का प्रचण्ड उपद्रव प्रारम्भ हो गया था। ब्राह्मण समुदाय ने अपने मन्तव्यानुसार रोगोपशमन के लिये जप, जाप, यज्ञ, हवन वगैरह बहुत उपाय किये फिर भी अभीष्ट की सिद्धि न होसकी। रोग-शान्ति के अभाव में संघ के प्रमुख २ व्यक्ति चलकर के आचार्यश्री कक्कसूरि के पास मे प्रार्थनार्थ आये और सूरीश्वरजी को अथ से इति पर्यन्त नगरी सम्बन्धी दुःख गाथा कह सुनाई। आचार्यश्री को एतदर्थ शाकम्भरी नगरी पधारने के लिये आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी उपकार का कारण जानकर चातुर्मास समाप्त होते ही शाकम्भरी की ओर पदार्पण कर दिया। इससे जैनियों को ही नहीं अपितु सकल नागरिकों को विश्वास हो गया कि जैन साधु बड़े ही उपकारी, निस्पृही, सयमी, ब्रह्मचारी एव दयालु होते हैं। इनके पदार्पण से हम लोगों का दुःख निश्चिय ही मिट जायगा। इधर आचार्यश्री ने भी जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव शान्ति स्नात्र आदि प्रारम्भ करवा दिया। आप अट्ठम तप कर अपने इष्ट की आराधना में सलग्न होगये। विधि विधान पुरःसर बृहद् शान्ति स्नात्र पूजा करवाई। देवी देवताओं को समुचित बल बाकुल दिया। इस तरह क्रमश सर्व प्रकारेण उपद्रव शान्ति होगई। इस तरह के चमत्कार से बहुत से अजैनो ने आचार्यश्री के उपदेश से प्रभावित हो जैनधर्म स्वीकार किया। सूरिजी ने भी उन्हें जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ में सम्मिलित कर दिया।

पूर्व कालीन यह एक विशिष्ट विशेषता थी कि महाजन संघ जैनधर्म स्वीकार करने के पश्चात् हर एक व्यक्ति को अपनाने में किञ्चिन्मात्र भी नहीं हिचकिचाता था। स्वधर्मी बन्धु के नाते उसे हर तरह की सहायता प्रदान कर धार्मिक सस्कारों को सुदृढ बनाता रहता था इसी से भीषण २ धार्मिक सघर्ष कालों में भी जैनधर्म उन्नत बदन से यथावत् ससार के अन्य धर्मों के सामने स्थिर रह सका। हमारे धर्म गुरु (आचार्यों) का समाज पर इतना प्रभाव था कि उनके आदेश का उल्लंघन कोई समाज का व्यक्ति कर ही नहीं सकता था। जहा कहीं नये जैन हुए उन्हें अपना भाई समझ कर महाजन सघ तत्काल ही उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार कर लेता था। इससे जैनधर्म स्वीकार करने वालों को किसी भी तरह की तकलीफ नहीं होने पाती। इतना ही क्यों पर सब तरह से सम्मानित होने के कारण उन्हें जैनधर्म स्वीकार करने में अपूर्व आनन्दानुभव होता।

श्री सघ की एकत्रित प्रार्थना से वि० स० १०७९ का चातुर्मास आचार्यश्री को शाकम्भरी नगरी में ही करना पड़ा। नित्य क्रमानुसार आचार्यश्री के व्याख्यान का जन-समाज पर आशातीत प्रभाव पड़ा। सूरिजी

के उपदेश से सुश्रावक गाँधीय शाह फागु ने भगवान् महावीर का मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया और मन्दिरजी के समीप ही पौषध, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक कृत्यों के लिये पौषधशाला भी बिहरी। श्रीश्रीमाल शा० अर्जुन ने वीतराग प्रणीत आगम-ज्ञान की भक्ति कर महा प्रभाविक श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में बंचवाया। उक्त ज्ञानोत्सव में एक लक्ष द्रव्य व्यय किया। इस तरह उक्त चतुर्मास में आचार्यश्री के विराजने से जैनधर्म की महती प्रभावना हुई।

एक समय आचार्यश्री स्थण्डिल भूमि को पधार कर वापिस लौट रहे थे। इधर एक ओर से बहुत से अश्वारोही किसी अनिश्चित स्थान की ओर जारहे थे। मार्ग में परस्पर दोनों का समागम (मिलन) होगया। विचक्षण आचार्यश्री ने उन सैनिकों के बाह्य चिन्हों को देख कर ही यह अनुमान कर लिया कि ये अवश्य ही क्षत्रिय वंशोत्पन्न व्यक्ति हैं और आखेट (शिकार) के लिये वन की ओर जारहे हैं। सूरिजी का प्रभाव उनकी विद्वत्ता एवं आचार विचारों की निर्मलता के कारण पहिले से ही इस वक्त सर्वत्र प्रसरित था अतः आचार्यश्री के तपस्तेज का प्रभाव उन अश्वारोही सैनिकों पर भी तत्काल पड़ा। उन घुड़ सवारों में से प्रमुख व्यक्ति चौहान राव भामद ने घोड़े पर बैठे हुए सूरिजी को वंदन किया। सूरिजी ने धर्म लाभ देते हुए पूछा—रावजी! आज किधर जाना हो रहा है? रावजी ने कहा—महाराज! हम लोग तो सांसारिक मायाजाल एवं प्रपञ्चों में फंसे हुए पातकी जीव हैं और पाप के कार्य का ही करणीभूत बना अपने मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

सूरिजी-रावजी! पाप का कटुफल भी तो आपको ही भोगना पड़ेगा न?

रा० भामद—हाँ यह तो निश्चित एवं सर्वधर्म सम्मत निर्विवाद कथन है महात्मन्! पर किया ही क्या जाय? हम लोगों के लिये तो यह एक व्यसन ही होगया।

सूरिजी—यदि किसी सिंह को मनुष्य मारने का व्यसन पड़ जाय तो?

रा० भामद—तो क्या तत्काल ही उसे मौत के घाट उतारना चाहिये।

सूरिजी—तो उसी तरह फिर आपके लिये———————?

आचार्य देव के उक्त कथन का उत्तर देते न बना। रावजी ने एकदम मौनावलम्बन ले लिया। अतः सूरिजी ने पुनः अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया—

महानुभावों! जैसे आपको अपना जीवन प्यारा है वैसे ही समस्त चराचर प्राणियों को अपने २ प्राण प्रिय हैं। भगवान् ने आचाराङ्ग सूत्र में कहा है कि—

"सव्वे सुह साया दुह पडिकूला अप्पिय वहा पिय जीविणो जीविउ कामा सव्वेसि जीवियं पियं" अर्थात् सुखेच्छा व सुख प्राप्ति जगज्जीवों के लिये अनुकूल है और दुःख सर्वथा प्रतिकूल है। जीवन सब को प्रिय है मरना सबको अप्रिय है अतः किसी भी जीव को मन, वचन काया से तज्जीवित-घातना नहीं पहुँचानी चाहिये। क्योंकि—"सव्वे जीवावि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं" अर्थात् संसार के सकल प्राणी जीने की इच्छा करते हैं मरने की नहीं। अतः किसी भी प्राणी का वध करके पाप का भागी होना निश्चय ही दुःखप्रद है। दूसरी बात किसी मृत कलेवर का स्पर्श हो जाने पर तो आप लोग स्नान वगैरह से शुद्धि करते हो पर जीते हुए जीवों की घात करके उसका मांस भक्षण करने से आप लोगों की क्या गति होगी? आप जैसे वीर क्षत्रियों को यह शोभा नहीं देता है। भगवान् रामचन्द्र श्रीकृष्ण तथा महाबली पाण्डवों का रक्त आपकी नसों में विद्यमान है इसी वास्ते आप ऐसे अति-गर्हित कार्य को करने में भी अपनी बहादुरी समझते हो। अरे! आप लोगों के रक्षारक्षण के लिये तो कुदरती गुड़ शक्कर, घृत मेवादि अनेक पदार्थ वर्तमान हैं फिर बेचारे निरपराधी मूक प्राणियों का वध करके परभव के लिए पाप का भार क्यों लाद रहे हो?

इस प्रकार अहिंसा विषयक सूरिजी के सरल और वक्तृत्व ने उन लोगों के ऊपर इतना प्रभाव डाला कि उन सबों का हृदय दया से लबालब भर आया। आखिर क्षत्रिय तो क्षत्रिय ही थे। दया उनके लिये कोई

बाहिर की वस्तु नहीं थी । केवल बुरी सगति के कारण दया पर पर्दा पड़ गया था सो आचार्यश्री के उपदेश से वह भी दूर होगया । उन सैनिकों के प्रमुख राव आभड़ ने कहा–गुरुदेव ! आपका कहना अक्षरांश सत्य है और हम भी आज से ही शिकार और मास, मदिरा का त्याग करते हैं । हम ही क्या ? पर हमारी सतान परम्परा भी अद्य-प्रभृति कभी भी मास मदिरा का स्पर्श नहीं करेगी । राव आभड के सुदृढ़ वचनों को सुन कर सूरिजी ने कहा–रावजी ! मैं आपको धन्यवाद देता हूँ । मुझे इतनी उम्मेद नहीं थी कि आप मेरा थोड़ा सा उपदेश श्रवण करके ही इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लेंगे । खैर इस प्रतिज्ञा पालन के लिये कुसगति का त्याग कर सुसगति में रहना चाहिये ।

रावजी ! आप जानते हो कि यह मानव जन्म बड़ी ही कठिनाइयों से मिलता है । आत्म-कल्याण के लिये खास कर यह ही उपयोगी है । सिवाय मनुष्य-भव के अन्य भवो में आत्म कल्याण सम्भव नहीं है अत आपका भी कर्तव्य है कि आप लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्ति कर आत्म-साधन करें ।

रावजी की सूरिजी पर इतनी श्रद्धा होगई कि वे आचार्यश्री की सेवा से विलग रहना ही नहीं चाहते थे । उनके हृदय में यह बात अच्छी तरह से ठस गई कि सूरिजी निस्पृही और परोपकारी महात्मा हैं । इनका कहना निस्वार्थ भाव से हमारे हित के लिये ही होता है अत रावजी ने कहा–गुरुदेव ! हम अज्ञानी लोग आत्म-कल्याण के कार्यों में समझते ही क्या हैं ? हमारा विश्वास तो आप पर है । अत आप बतलावें वही करने को हम तैय्यार हैं । सूरिजी ने कहा–आप वीतराग-प्रणीत जैन धर्म को स्वीकार कर इसकी आराधना करें जिसमे आप लोगों का शीघ्र ही कल्याण हो । रावजी ने सूरिजी का उक्त कथन सहर्ष स्वीकार कर लिया और नगर में आकर करीब तीन सौ स्त्री पुरुषों ने सूरिजी से वास क्षेप पूर्वक जैनधर्म को स्वीकार कर लिया । उसी दिन से राव आभड आदि क्षत्रियवर्ग महाजन सघ में सम्मिलित हो गये और उनके साथ सब तरह का सम्बन्ध प्रारम्भ होगया । रावजी के दिल में बड़ा ही उत्साह था । वे सूरिजी के व्याख्यान का प्रतिदिन बिना लघन के लाभ लेते थे और धर्म कार्य में हमेशा तत्पर रहते थे ।

एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में मन्दिर बनवाने का वर्णन इस प्रकार किया कि एक नगर देरासर या कम से कम घर देरासर बनवाना तो श्रावक का कर्तव्य ही है । सकल जीवों के हितार्थ नगर देरासर बनवाना तो श्रावक के लिये परमावश्यक ही है पर इतना समार्थ्य न हो तो घर देरासर बनावाने में तो आगे पीछे करना ही नहीं चाहिये । आचार्यश्री के उक्त उपदेश ने सब लोगों पर बहुत ही प्रभाव डाला पर राव आभड़ पर तो उसका आशातीत प्रभाव पडा । उसने तत्काल ही घर देरासर बनवाने का निर्णय कर लिया । जब घर देरासर के लिये नींव खोदी तो भाग्यवशात् भूमि से अक्षय निधान मिल गया । बस फिर तो था ही क्या ? रावजी की श्रद्धा धर्म पर और भी दृढ़ होगई और उनका उत्साह द्विगुणित हो गया । जब रावजी ने आकर सब हाल गुरु महाराज से कहा तो सूरिजी ने प्रसन्नता के साथ में उनके उत्साह को बढ़ाते हुए कहा—रावजी ! आप परम भाग्यशाली हैं । यह सब धर्म का ही प्रताप है । धर्म से ही मनुष्य का अभ्युदय होता है । आपको जो निधान मिला है यह तो एक साधारण सी बात है पर धर्म से जन्म, जरा, मरण के भयकर दुःख भी सहसा मिट जाते हैं और अक्षय सुख की प्राप्ति हो जाती है । राव आभड़ ने घर देरासर के सिवाय नगर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ का एक विशाल मन्दिर बनवाना भी प्रारम्भ किया । चातुर्मास के पश्चात् ही धर्म के रग में रगे हुए राव आभड़ ने शत्रुञ्जय की यात्रा के लिये एक विराट् सघ निकाला । सघ पतित्व की माला को धारण कर सूरिजी के साथ में राव आभड़ ने परम पवित्र तीर्थों की यात्रा की । पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य और स्वधर्मी बन्धुओं को पहिरावणी देकर रावजी ने परमार्थ के साथ इस लोक में भी अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करली । वास्तव में मनुष्यों का जब अच्छा उदय काल होता है तब उसको निमित्त कारण भी तथावत् अभ्युदय के मिल ही जाते हैं । जब तीन वर्षों के अथाह परिश्रम एव द्रव्य व्यय के पश्चात्

मन्दिर बनकर तैय्यार हो गया तब सूरिजी को बुलाकर रावजी ने बड़े ही समारोह के साथ प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठा के समारोह से इतर धर्मानुयायियों पर पवित्र जैन धर्म के संस्कारों का ऐसा सुदृढ़ प्रभाव पड़ा कि उन लोगोंने कई समय के मिथ्यात्व का वमन कर परम पावन जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया।

राव आमदू की संतान ओसवंश में आमदू जाति के नाम से विख्यात हुई। इस जाति का वंशावलियों में बहुत विस्तार मिलता है पर मैं इसकी वंशावली संक्षिप्त रूप में ही उद्धृत करता हूँ—यथापि—

इसके अलावा प्रत्येक व्यक्ति की वंश परम्परा की रूपरेखा पृथक् २ बतलाई जाय तब तो बहुत ही विस्तार हो जाता है। अतः ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से इसको इतना विशद रूप न देकर सामान्य रूप में नमूने के तौर ही लिखना हमारा ध्येय है। अपनी २ जाति के उत्कर्ष को चाहने वाले उत्साही व्यक्ति अपनी परम्परा का विशद इतिहास जन-समाज के सम्मुख प्रस्तुत रखकर जातीय उन्नति में हाथ बटावें। इस आमदू जाति के शूरवीर दानवीरों ने अनेक स्थानों पर जैन मन्दिर बनवाये। कई स्थानों से तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाले, कई दुष्कालों में स्थान २ पर दानशालाएं स्थापित की इत्यादि अनेक शासन-प्रभावक काम किये जिनका पृथक् २ वर्णन किया जाय तो निश्चित ही एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जाता है। मैं केवल मेरे पास आई हुई वंशावलियों में वर्णित कार्यों की नोंध लगाकर यहां मांडके लिख देता हूँ।

१ इस जाति के उदार नररत्नों ने ८७ जिन मन्दिर बनवाये।
२ इस जाति के कार्य परायण महानुभावों ने १६ बार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाले।
३ „ „ „ ३७ „ संघ को अपने यहा बुलाकर संघ पूजा की।
४ „ „ „ ७ „ दुष्काल मे शत्रुकार दिये।
५ „ „ „ ५ „ तीन तालाब और दो कुए खुदवाये।
६ इस जाति के २२ शूरवीर युद्ध में काम आये और साथ में महिलाएं सती हुई।

इसके सिवाय अन्य भी कई छोटे मोटे परमार्थ के कार्य किये जिनका ग्रन्थ विस्तार भय से विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने आठ वर्ष पर्यन्त मरुधर प्रान्त में लगातार विहार करके जैनधर्म का पर्याप्त उद्योत किया। अजैनों को जैन बना कर ओसवंश में सम्मिलित करना तो आपश्री के पूर्वजों से ही चला आया था। अत' आप उनके मार्ग का अनुसरण करने में पीछे कैसे रहने वाले थे ? एक समय उपकेशपुर में विराजते हुए आपको विचार आया कि मरुधर प्रान्त में विचरण करते हुए तो पर्याप्त समय होगया है। अत किन्हीं दूसरे प्रान्तों में धर्म प्रचारार्थ विचरण करना चाहिये। पर किन प्रान्तों में विहार करना यह उनके लिये विचारणीय या निर्णय का प्रश्न बन गया था। इतने में देवी सचायिका ने परोक्षपने आचार्यश्री के निवास स्थान पर प्रवेश कर वंदन किया। सूरिजी ने भी देवी को धर्मलाभ रूप आशीर्वाद दिया। आचार्यश्री के मनोगत भावों को अवधिज्ञान के द्वारा जानकर देवी ने स्वयमेव कहा—पूज्यवर ! आप मेदपाट प्रान्त से ही अपना विहार क्षेत्र प्रारम्भ कीजिये। निश्चित् ही आपको समय २ पर अच्छा लाभ होगा। सूरिजी ने भी देवी के वचनों को हृदयङ्गम करते हुए कहा—देवीजी ! आपने ठीक मौके पर आकर मुझे सलाह दी है। इस तरह शासन सम्बन्धी कुछ और वार्तालाप करके देवी अदृश्य होगई। सूरिजी ने भी अपना विहार मेदपाट की ओर करना निश्चित किया। क्रमश' शुभ मुहूर्त में ५०० मुनियों के साथ विहार भी कर दिया। पट्टावली निर्माताओं ने आपके विहार का वर्णन भी अन्यान्य वर्णनों के साथ विस्तारपूर्वक किया है। यहा इस वर्णन को इतना विशद रूप न देकर इतना ही लिखना पर्याप्त है कि आपने १०८४ का चतुर्मास आघाट नगर में किया। १०८५ का चतुर्मास चित्रकूट में, १०८६ का उज्जैन में, १०८७ का चंदेरी में चतुर्मास किया। वहाँ पर सर्वत्र धर्मोद्योत करते हुए आप मथुरा पधारे। उस समय वहां पर कोरंट गच्छाचार्य सर्वदेवसूरिजी विराजमान थे। आचार्य सर्वदेव सूरी और सकल श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। उस समय कोरंटगच्छाचार्यों का विहार क्षेत्र मथुरा भी प्रमुख रूप से बन गया था। मथुरा में कोरंट गच्छीय मुनियों का आवागमन प्राय प्रारम्भ ही था। उनमे यह क्षेत्र कदाचित् ही खाली रहता। इसी कोरंट गच्छ में एक माथुरी शाखा थी। इस शाखा का प्रादुर्भाव आचार्य नन्नप्रभसूरि से हुआ था। इस शाखा के आचार्यों के भी ये ही तीन नाम होते थे जैसे-नन्नप्रभसूरि, ककसूरि और सर्वदेवसूरि जिस समय हमारे चरित्रनायक आचार्य ककसूरिजी महाराज मथुरा में पधारे उस समय माथुरी शाखा के सर्वदेवसूरि वहां विराजमान थे। उनके तथा तत्रस्थ श्रीसंघ के अत्याग्रह से हमारे चरित्रनायकजी का वह चातुर्मास मथुरा में ही होगया। उस समय मथुरा में बौद्धों का कोई प्रभाव नहीं था पर बौद्ध भिक्षु यत्र तत्र स्वल्प संख्या में अपने मठों में रहते थे। वैदान्तिकों का प्रचार कार्य अवश्य बढ़ता जारहा था पर जैनियों की आबादी पर्याप्त होने से उन पर वह अपना किञ्चित् भी प्रभाव न डाल सका। आचार्यश्री के विराजने से तो सबका उत्साह और भी बढ गया था। सूरिजी की प्रभावोत्पादक व्याख्यान शैली जन समाज को मन्त्र मुग्ध बना कर उन्हें अपने कर्तव्य मार्ग की ओर अग्रसर करने में परम सहायक हो रही थी। इतर धर्मावलम्बियों को जैनियों का उक्त प्रभाव कैसे अच्छा लगने वाला था ? अत उन्होंने कई प्रकार के मिथ्या आक्षेप कर अपने पाण्डित्य के अहमत्व में उन्हें शास्त्रार्थ के लिये आम-

निश्चय किया पर मथुरा के जन भी इतने कमजोर नहीं थे जो उनकी शृगाल भभकियों से खड्डे ही में दब जावें। आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का विराजना तो निमित्त हो उनके उत्साह का वर्धक था। अतः उन्होंने निःशंक उनका आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। बेचारे वादियों के पास अब इधर एवं वेद को नहीं मानने वाला एक नास्तिक मत है। परम्परागत इस मिथ्या प्रचार व विवाद और बोलने का ही क्या था ? पर आचार्य कक्कसूरि ने सभा के बीच प्रबल प्रमाणों और अकाट्य युक्तियों द्वारा यह साबित कर बतलाया कि जैन कट्टर आस्तिक एवं सच्चिदानंद वीतराग सर्वज्ञ को मानने वाले ईश्वर भक्त हैं। पर सृष्टि का कर्त्ता, हर्त्ता एवं जीवों के पाप पुण्य के फल को देने दिलाने वाला नहीं मानते हैं। इस प्रकार न मानना भी युक्ति सङ्गत एवं प्रमाणोपेत है। असली वेदों को मानने के लिये तो जैन इन्कार करते ही नहीं हैं और पशु हिंसा रूप वेदों को मानने के लिये जैन तो क्या पर समझदार अजैन भी तैय्यार नहीं हैं। आचार्यश्री के प्रमाणों से सकल जनता हर्षित हो गई ब्राह्मणों की बोलती हुई विसर्जित होगई। इस तरह शास्त्रार्थ में विजयमाला जैनियों के कण्ठ में ही शोभायमान हुई। जैनधर्म का तो इतना प्रभाव पड़ा कि कई अजैन व्यक्तियों ने आचार्यश्री की सेवा में जैनधर्म को स्वीकार कर परम्परा के मिथ्यात्व का त्याग किया।

एक दिन सूरिजी ने तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि का महत्व बताते हुए पूर्व-प्रान्त स्थित सम्मेतशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी के रूप २२ तीर्थंकरों की निर्वाण भूमिका प्रभावोत्पादक वर्णन किया। जन समुदाय पर आपके ओजस्वी व्याख्यान का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। परिणाम-स्वरूप कन्नौज गोत्रीय शाह ख्याता शाखा के मुख्या चक श्री आसल ने आचार्यश्री के उपदेश से प्रभावित हो चतुर्विध संघ के सम्मुख प्रार्थना की कि मेरी इच्छा पूर्व प्रान्तीय तीर्थों का यात्रार्थ संघ निकालने की है। यदि श्रीसंघ मुझे आदेश प्रदान करे तो मैं कृतकृत्य हुआ होऊंगा। श्रीसंघ ने भी सहर्ष धन्यवाद के साथ आसल को संघ निकालने के लिये आज्ञा प्रदान करदी। श्रीसंघ के आदेश को मानकर आसल ने सब तरह की तय्यारियां करना प्रारम्भ कर दिया। सुदूर प्रान्तों में आमंत्रण पत्रिकाएं भेजी व मुनिराजों की प्रार्थना के लिये स्थान २ पर मनुष्यों को भेजा। निर्दिष्ट तिथि पर संघ में जाने के इच्छुक व्यक्ति निर्दिष्ट स्थान पर एकत्रित हो गये। वि० सं० १०८१ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन सूरिजी की नायकता और आसल के संघपतित्व में संघ ने तीर्थयात्रार्थ प्रस्थान किया। मार्ग के तीर्थस्थानों की यात्रा करता हुआ संघ क्रमशः सम्मेतशिखर पहुँचा। बीस तीर्थंकरों के चरण कमलों की सेवा पूजा यात्रा कर सब ने अपना अहोभाग्य समझा। वहां पर पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य अष्टाह्निका महोत्सव एवं ध्वजारोपण आदि प्रभावनात्मक, शुभ्रतोपार्जक कार्य कर अक्षय पुण्य राशि का अर्जन किया। पश्चात् वहां से विहार कर संघने चम्पापुरी और पावापुरी की यात्रा की। राजगृह आदि विशाल क्षेत्रों का स्पर्शन कर संघ ने कलिंग की ओर प्रस्थान किया। वहां कुमार, कुमारी (शत्रुञ्जय, गिरनार) अवतार की यात्रा की। इस प्रकार अनेकों तीर्थ स्थानों की यात्रा के पश्चात् आचार्य कक्कसूरि ने अपने मुनियों के साथ पूर्व की ओर विहार किया। आचार्य सर्वदेवसूरि के अध्यक्षत्व में संघ पुनः मथुरा पहुँच गया। इधर सूरिजी का पूर्व प्रान्तों की ओर परिभ्रमन होने से जैनधर्म का काफी बचाव एवं प्रचार हुआ। आचार्यश्री का एक चतुर्मास पाटली पुत्र में हुआ पश्चात् सम्मेत शिखरजी की यात्रा कर आप आस पास के प्रदेशों में धर्मोपदेश करते हुए वहीं पर परि

१ इस लेख से पाया जाता है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी पर्यन्त तो पूर्व की ओर व कलिंग प्रान्त में जैनियों की अच्छी आबादी थी। कलिंग देश की उदयगिरि खण्डगिरि पहाड़ियों पर प्राप्त विक्रम की दशवीं शताब्दी के उत्तरार्ध शताब्दी के शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि विक्रमी दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी पर्यन्त जैनियों का अस्तित्व रहा है। इतना ही क्यों पर विक्रम की बारहवीं शताब्दी में कलिंग देश पर सूर्यवंशीय प्रतापरुद्र नामक जैन राजा का राज्य था। अब तक ही क्या जैन का अब भी बहुत परिमाण में अस्तित्व है, पर वो प्रायः शिथिलाचारी ही है।

भ्रमन करते रहे। पश्चात् क्रमश छोटे बड़े ग्राम नगरों में होते हुए आपने भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याणक भूमि श्री बनारस की यात्रा की। श्रीसघ के अत्याग्रह से वह चतुर्मास सूरिजी को वहीं पर करना पड़ा। चतुर्मासानन्तर सूरिजी ने पञ्जाब प्रान्त की ओर विहार किया। वहाँ पर आपके आज्ञानुयायी बहुत से मुनि पहिले से ही विचरण करते थे। जब आचार्य महाराज पञ्जाब में पधारे तब आपके दर्शनार्थी साधु, साध्वी एव श्रावक श्राविकाओं के दर्शन का तातासा लग गया। जहा २ आप विराजते वहा २ का प्रदेश एक तरह से यात्रा का धाम ही बन जाता। इस तरह आपने केवल दो चतुर्मास ही पञ्जाब में किये। एक शालीपुर दूसरा लव्यपुरी। लोहाकोट में आपने एक श्रमण सभा की जिसमें पञ्जाब प्रान्तीय मुनिवर्ग सब ही सम्मिलित हुए। आचार्यश्री ने तदुपयोगी उपदेश देने के पश्चात् योग्य मुनियों को योग्य पदविया प्रदान कर उनके उत्साह में खूब ही वृद्धि की तदनन्तर सूरिजी ने सिन्ध भूमि में पदार्पण किया। आचार्यश्री के आगमन को श्रवण कर वहा की जनता के हर्ष का पारावार नहीं रहा। जिस समय आप सिंध में पधारे उस समय सिंध प्रान्त में जैनधर्म का काफी प्रचार था। बहुतसे मुनि जो सिन्ध पान्त में विचरते थे—आचार्यश्री कक्कसूरि के पदार्पण के समाचारों को सुनकर कोसों पर्यन्त सूरिजी के स्वागतार्थ पधारे। सूरिजी ने भी क्रमशः एक चातुर्मास गोसलपुर, दूसरा डामरेल, तीसरा मारोटकोटनगर, इस प्रकार तीन चतुर्मास सिंध प्रान्त में किये और चतुर्मासानतर सिंध के प्राय सभी क्षेत्रों का स्पर्शन कर जनता को धर्मोपदेश दिया। वीरपुर नगर में एक श्रमण सभा की। वहां भी योग्य मुनियों के योग्यता की कदर कर योग्य पदवियों से उन्हें सम्मानित किया। तदनन्तर सूरिजी ने कच्छ भूमि में प्रवेश किया। वहा पर भी आपके आज्ञानुवर्ती श्रमणगण विचरण करते थे। आपश्री ने एक चतुर्मास कच्छ के भद्रेश्वर नगर में किया। वहा से सौराष्ट्र प्रान्त की ओर पदार्पण किया। सर्वत्र परिभ्रमन करते हुए परम पावन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की तीर्थ यात्रा की। जिस समय आप सिद्धिगिरि पर पधारे उस समय सिद्धिगिरि की यात्रार्थ चार पृथक् २ नगरों के चार सघ आये थे। इनमें तीन सघ तो मरुधर वासियों के और एक सघ भरोंच नगर का था। स्थावर तीर्थों की यात्रार्थ आये हुए भावुकों को स्थावर तीर्थ के साथ ही सूरिजी रूप जंगम तीर्थ की यात्रा का भी लाभ मिल गया। मरुधर वासियों ने सूरिजी के दर्शन की बड़ी खुशी मनाई और मरुभूमि की ओर पदार्पण करने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी क्षेत्र-स्पर्शना शब्द कह कर उन्हें विदा किया।

इस तरह कई अर्से तक आचार्यश्री ने शत्रुञ्जय की शीतल छाया में रह कर निवृत्ति का सेवन किया बाद वहाँ से विहार कर सौराष्ट्र एव लाट प्रान्त में परिभ्रमन कर वह चतुर्मास भरोंच में किया। बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतस्वामी की यात्रा कर तत्रस्थित जन समाज को धर्मोपदेश दिया। आपश्री के चतुर्मास पर्यन्त वहां पर विराजने से धर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ। चतुर्मासानन्तर विहार कर कोंकण की राजधानी सोपारपट्टन तक परिभ्रमन किया और वह चतुर्मास शौर्य्यपुर में किया। उस समय शौर्य्यपुर जैनियों का केन्द्र स्थान था। अत आपके विराजने से वहाँ जिन शासन की खूब उन्नति हुई। तदनन्तर आप विहार करते हुए करीब पन्द्रह वर्ष के पश्चात् पुन मरुधर प्रान्त में पधारे। इन पन्द्रह वर्षों के परिभ्रमन की दीर्घ अवधि में आपने १५० नरनारियों को श्रमण दीक्षा दी। हजारों मास मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर ओसवश में सम्मिलित किये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाए करवाई। कई वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर शासन की प्रभावना की। इस तरह आपने अपनी सकल शक्तियों के सयोग से जैन धर्म की पर्याप्त सेवा की।

आचार्य श्री की अब नितान्त वृद्धावस्था होगई। अब आप अपनी शेष जिन्दगी मरुभूमि में ही व्यतीत करना चाहते थे। मारवाडी भक्त लोग भी यही चाहते थे कि सूरीश्वरजी महाराज मरुभूमि में विराज कर हम लोगों पर उपकार करते रहें। सच्ची भावना फलवती हुए बिना नहीं रहती है तदनुसार सूरीश्वरजी महाराज मरुधर में परिभ्रमन करते हुए उपकेशपुर में पधार ही गये। श्रीसंघ ने भी आचार्यश्री की शक्ति को जीर्ण देख-

कर अत्याग्रह से उपकेशपुर में स्थिर वास करने की प्रार्थना की । सूरिजी ने अपने शरीर की हालत देख तथा लाभालाभ का विचार वि० सं० ११०५ का चातुर्मास उपकेशपुर में वहीं स्थिरवास कर दिया । आपके पास यों तो बहुत से मुनि रहते थे पर उनमें देवचन्द्रोपाध्याय नामक एक शिष्य सर्वगुण सम्पन्न सर्वत्र शासन चलाने में समर्थ था । सूरिजी का उस पर पहले ही विश्वास था फिर भी विशेष निश्चय के लिये देवी सच्चायिका की सम्मति ले ली । अपित धरामरार्धन्नश्वर सूरिजी ने अन्तिम समय में चिंच गौत्रीय देवराज शाखा के शा जैकरण के द्वारा सात लक्ष द्रव्य व्यय कर किये गये अष्टाह्निका महोत्सव के साथ भगवान् महावीर के मन्दिर में चतुर्विध श्री संघ के समक्ष उपाध्याय देवचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया । बस आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० गच्छ चिन्ता से विमुक्त हो अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये अन्त में २१ दिन के अनशन पूर्वक समाधि के साथ आपश्री ने देह त्याग कर सुरलोक में पदार्पण किया ।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० महान प्रभावक आचार्य हुए । आप २१ वर्ष पर्यन्त गृहवास में रहे १९ वर्ष सामान्य व्रत और ३४ वर्ष तक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो ७८ वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया । वि० सं ११०८ के चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन आपका स्वर्गवास हो गया ।

आचार्य कक्कसूरिजी के पूर्व क्या वीर सन्तानिये और क्या पार्श्वनाथ सन्तानिये क्या चैत्यवासी सुविहित और क्या शिथिलाचारी अनेक गच्छों के होने पर भी सब एक रूप हो शासन की सेवा करते थे । सिद्धान्त भेद, क्रिया भेद विचार भेदादि का विभिन्न २ गच्छों में विभिन्नत्व नहीं था । एक दूसरे को लघु दिखलाने रूप नीच कार्य में किसी के हृदय में जन्म नहीं लिया । यही कारण था कि उस समय पर्यन्त जैनियों की संगठित शक्ति सुदृढ़ थी ।

धर्मवीर भैंसाशाह और गदइया जाति—चित्रपुर-दिल्लवाना नामक एक अच्छा आबाद नगर था । यहाँ पर महाजनों की घनी आबादी थी दिल्लवाना निवासी अच्छे धनाढ्य एवं व्यापारी थे । उक्त व्यापारी समाज में आदित्यनाग गौत्रिय चोरड़िया जाति के प्रसिद्ध व्यापारी एवं प्रतिष्ठित साहूकार श्री भैंसाशाह के पास के धन वैभवादि भी निवास करते थे । आप जैसे सम्पत्तिशाली थे वैसे उदारता में भी अनन्य थे । अपने धर्म एवं पुण्यों के काम में लाखों ही नहीं पर करोड़ों रुपयों का सदुपयोग कर कल्याणकारी पुण्योपार्जन किया । स्वधर्मी बन्धुओं की ओर आपका विशेष लक्ष्य रहता था । जहाँ कहीं उन्हें किसी जैन बन्धुओं की हलकी स्थिति के विषय में ज्ञात हुआ वहाँ तत्काल समयोपयोगी सहायता पहुँचाकर उसकी दैन्य स्थिति का अपहरण किया । इस प्रकार के धार्मिक कार्यों में आपको विशेष दिलचस्पी थी और इसीसे आप धर्म सम्बन्धी प्रत्येक काम में अपरिमित लाखों रुपया व्यय कर परमोल्लास पूर्वक भाग लिया करते थे । तीर्थयात्रार्थ चौथ बार संघ निकाल कर आपने संघ में आगत स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्णमुद्रिकाओं की प्रभावना दी । कई बार संघ को अपने घर पर आमन्त्रित कर तन, मन, धन से सब पूजा की । यों तो आप प्रकृति के परम भद्रिक एवं सबके साथ स्नेह पूर्ण वात्सल्यभाव रखने वाले सज्जन एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे पर वप्पनाग गौत्रीय बीरधर गधाशाह के साथ आपका विशेष धर्मानुराग था । धर्म कार्य एवं अन्य सर्व सामान्य कृत्यों में दोनों का सहवास एक दूसर को सविशेष सहयोगप्रद था । किसी समय दुर्दैव वशात् गधाशाह की स्थिति अत्यन्त नरम हो गई उस समय भैंसाशाह ने आपको अच्छी सहायता प्रदान कर अपनी समानता सा बना लिया ।

वि० सम्वत् १०८१ में जब एक भीषण जन संहारक दुष्काल पड़ा था—भैंसाशाह ने लाखों रुपये व्यय कर दुष्काल को सुकाल बना दिया । भैंसाशाह और गधाशाह के नाम भले ही पशुओं जैसे हों पर इन दोनों महापुरुषों में वर्तमान गुण तो देवताओं से भी अधिक थे ।

समय परिवर्तनशील है । ज्ञानियों ने बारम्बार फरमाया है कि संसार असार है, लक्ष्मी चंचल है,

सम्पत्ति स्वप्नवत् है, कुटुम्ब स्वार्थी है। शुभाशुभकर्मों का चक्र दिन रात की भांति हमेशा चलता ही रहता है न जाने किस समय किस भव के सचय किये हुए कर्मों का उदय होता है और किस परिस्थिति में उसे भोग लिये जाते हैं। अत मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि अनुकूल सामग्री के सद्भाव होने पर आत्म-कल्याण के परम पवित्र कार्य में संलग्न हो जाना चाहिये। ठीक, भैंसाशाह का भी यही हाल हुआ। एक दिन वह अपार सम्पत्ति का मालिक था पर अशुभ कर्मोदय से लक्ष्मी भैंसाशाह पर यकायक कुपित हो गई। फिर तो कहना ही क्या था! शाह पर चारों ओर से आपत्तियों के आक्रमण होने लगे। कर्मों की विचित्रता के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है कारण—

कर्म तारी कला न्यारी हजारों नाच नचावे छ। घड़ी मां तू रडावे ने घड़ी मां तू हँसावे छै॥

भैंसाशाह भी कर्मों की पाशविक सत्ता से अछूता न रह सका। रह २ कर उस पर आपत्तियों के पहाड़ गिरने लगे। इधर तो देशावर भेजा हुआ माल व जहाजें समुद्रशरण हो गई और उधर दूसरे व्यापार में भी भारी क्षति उठानी पड़ी। क्रमश पापकर्म पुञ्ज के आधिक्य से भैंसाशाह को अपने कुटुम्ब परिवार का निर्वाह करना भी कठिन हो गया। कहा है कि जब मनुष्य के दिन मान फिर जाते हैं तब अन्य तो क्या पर शरीर के कपड़े भी शत्रु हो जाते हैं।

भैंसाशाह का श्वसुराल भिन्नमाल नगर में था। भैंसाशाह की धर्मपत्नी आपसी गृह-क्लेश के कारण अपने पुत्रों को लेकर भिन्नमाल में चली गई थी। केवल भैंसाशाह और आपकी वृद्ध मातेश्वरी ही घर पर रही। इतना होने पर भी भैंसाशाह को इस बात का तनिक भी रज नहीं था। वे तो इससे और भी अधिक प्रसन्न हुए कारण उन्हें हमेशा की अपेक्षा धर्माराधन का समय विशेष रूप में प्राप्त होता गया। वे निर्विघ्नतया धर्म कार्य में संलग्न हो आत्म कल्याण करने लग गये।

गधाशाह ने अपने परमोपकारी सुहृद्वर, एव स्वधर्मी बन्धु भैंसाशाह की इस प्रकार की परिस्थिति देखकर समयानुसार एक दिन भैंसाशाह से कहा कि आपकी कृपा से मेरे पास बहुतसा द्रव्य है। अत आप को जितने द्रव्य की आवश्यकता हो उतना मेरे से ले लीजिये। इसमें संकोच या शर्म की कोई बात ही नहीं है कारण, एक तो आप हमारे स्वधर्मी बन्धु हैं दूसरे आपका मेरे ऊपर महान उपकार है आज जो मैं सुख, शांति एवं आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ वह सब भी आपकी ही कृपा का मधुर फल है। यह सब धनराशि आपकी ही दया के बदौलत है। अत मेरी प्रार्थना है कि आप इसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।

भैंसाशाह—गधाशाह! आप जानते हो कि ससारी जीव अपने कृतकर्मों के अनुसार ही सुख दु ख भोगते हैं। कर्मों के कटुफलों का यथार्थानुभव किये बिना तीर्थङ्कर जैसे महापुरुष भी उन्हें अन्यथा करने में समर्थ नहीं हुए हैं। दूसरा सम्यग्दृष्टि जीवों का तो कर्तव्य भी है कि उदीरणा करके पूर्व सञ्चित कर्मों को उदय में लावे और उन्हें शान्ति के साथ भोगे। जब उदीरणा किये बिना स्वय ही कर्म उदय में आजावें तब तो बड़ी ही खुशी के साथ कर्मों को भोगने चाहिये। कर्मों की सम्यग्निर्जरा के समय में इस प्रकार किसी से नया कर्जा लेना निश्चित ही नूतन कर्मोपार्जन के साधन हैं। शाहजी! इस समय में किसी की भी सहायता नहीं चाहता हूँ और आपकी उदारता एवं मेरे प्रति दर्शाई गई सद्भावना के लिये आपका उपकार मानता हूँ।

गधाशाह—भैंसाशाह! मैं आपको कर्ज की तौर पर रकम नामे लिखकर नहीं देता हूँ पर स्वधर्मी भाई के नाते प्रार्थना करता हूँ कि इसे आप स्वीकार करें।

भैंसाशाह—आप किसी भी रूप में दें पर मेरा हक ही क्या है कि मैं इस प्रकार का कर्जा लेकर नये कर्मों का सञ्चय करूँ।

गधाशाह—यदि आपकी किसी भव की रकम मेरे यहाँ जमा होगी तो उसको वसूल करनेमें क्या हर्ज है।

भैंसाशाह—यदि जमा होगी तो भी उस जमा को उठाना मेरा कर्त्तव्य नहीं है। पूर्व की जमा कभी होगी तो उस यों ही रहने दीजिये।

गदाशाह ने कई प्रकार से प्रयत्न किया पर भैंसाशाह ने उनकी एक भी बात को स्वीकार नहीं की। उन्होंने तो स्वोपार्जित कर्मों को इसी तरह भोगकर उनसे मुक्त होना ही समुचित समझा। एक गदाशाह ही नहीं पर बहुत से व्यक्ति भैंसाशाह की मेहरबानी से सम्पत्तिशाली बने थे अतः अपने कर्त्तव्य ऋण को अदा करने के लिये उन सबों ने उनसे प्रार्थना की व भैंसाशाह के ससुराल वालों ने भी मिलनसार पधार जाने के लिये प्रयत्न किया पर भैंसाशाह ने किसी की भी नहीं सुनी।

एक समय गदाशाह भैंसाशाह के मकान पर गया। समय रात्रि का था। जब भैंसाशाह किसी भी तरह सहायता लेने को तय्यार न हुए तब गदाशाह ने गुप्त रीति से भैंसाशाह के घर पर एक बहुमूल्य गहना छोड़ दिया। प्रातःकाल होते ही गहने को अपने घर में पड़ा हुआ देख भैंसाशाह के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वे सोचने लगे कि यह आभूषण मेरा तो नहीं है। शायद किसी सज्जन पुरुष ने मेरी हालत को देखकर मेरी सहायतार्थ डाला है पर बिना अधिकार का द्रव्य मैं काम में कैसे ले सकता हूँ। बस, उन्होंने नगर भर में उद्घोषणा करवादी कि जिसका गहना हो वह ले जावे अन्यथा मैं मन्दिरजी में अर्पण कर दूंगा। गदाशाह जानते थे कि जेवर मेरा है। पर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। गदाशाह के सिवाय उस गहने का कोई दूसरा मालिक तो था ही नहीं तब दूसरा बोल भी कैसे सकता था ? उद्घोषणानन्तर भी उसकी मालकियत साबित न हुई तो भैंसाशाह ने अधिकार बिना के द्रव्य का उपभोग करना अनुचित समझ कर उसे मन्दिरजी में अर्पित कर दिया।

हम पूर्व लिख आये हैं कि जैन धर्म की मुख्य मान्यता निश्चय पर थी। निश्चय को आधार बना लेने वाले व्यक्ति के हृदय में चिन्ता व आर्त्त-ध्यान स्थान कर ही नहीं सकता है। धर्मवीर भैंसाशाह भी निश्चय पर अडिग थे और उन्होंने उत्कृष्ट परिणामों की तीव्र धारा में अपने पूर्वोपार्जित निकाचित कर्मों को इस प्रकार निर्जरा कर डाली कि अब उनके कोई अशुभ कर्मोदय अवशिष्ट रहा ही नहीं। अब तो पुण्य की प्रबलता किसी शुभ निमित्त की राह देख रही थी।

इधर परमोपकारी लब्धिपात्र, करुणासागर आचार्यश्री ककसूरीश्वरजी महाराज ने भूभ्रमन करते हुए डिडवाना की ओर पदार्पण किया। जब आचार्यश्री के पदार्पण के समाचार श्रीसंघ को ज्ञात हुए तो उनके हृदय में सूरीश्वरजी के पदार्पण के समाचारों से अमूल पूर्व हर्ष का संचार हुआ। श्रीसंघ ने क्रमशः सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह पूर्वक किया। गदाशाह ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी की उत्साहपूर्वक भक्ति की। पर भैंसाशाह की निर्धन अवस्था पूर्वक कोरी परम श्रद्धापूर्ण भक्ति से ही आचार्यश्री बड़े प्रसन्न थे। सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर डिडवाने में मासकल्प पर्यन्त स्थिरता की। एक मास की सुदीर्घ अवधि में सूरीश्वरजी का शिष्य समुदाय भिक्षार्थ हमेशा नगर में जाता था पर भैंसाशाह के ऐसी अन्तराय थी कि उनके यहाँ एक दिन भी भिक्षार्थ मुनिराजों का शुभागमन न हो सका। शाह को इस बात का बड़ा रंज था पर वे क्या कर सकते थे ? अन्यथा वहां मासकल्प के अन्तिम दिन दैवानुयोग से गौचरी के लिये स्वयं सूरिजी पधारे। भैंसाशाह ने अपने यहां आने के लिये आचार्यश्री को बहुत ही आग्रह किया तब दया करके सूरिजी भी उनके यहां गये। शुभ का अनुकूल संयोग मिलने पर भी भैंसाशाह के पास आचार्यश्री के पात्रों में डालने के लिए क्या था ? केवल बाजरी के सोगरे और ग्वार की फली। भैंसाशाह इस अयोग्य वस्तुओं को देने में पहिले तो बहुत ही संकुचित हुए फिर भी अन्य योग्य वस्तु के अभाव में उस नीरस वस्तु को भी परमश्रद्धा एवं उत्कृष्ट भावना से पात्र में प्रक्षिप्त किया। यद्यपि आहार सामान्य था पर भावों की प्रबल उत्कृष्टता ने उसमें किंचित् भी सामान्यता या न्यूनता नहीं आने दी सूरिजी भी उनकी आन्तरिक

भावों की निर्मलता से बहुत ही प्रसन्न हुए। क्रमश वापिस लौटते हुए समीप स्थित कण्डे की राशि पर भाग्य की प्रेरणा से या पुण्योदय से आचार्यश्री ने अपना रजोहरण फेर दिया जिससे वे सबके सब स्वर्ण के रूप में परिणित हो गये। बस, सूरिजी ने तो अपना उक्त चमत्कार बतलाकर शीघ्र ही प्रस्थान कर दिया। इधर भैंसाशाह भी गोमायु-राशि को स्वर्णमय देख कर आश्चर्य चकित हो गया। वह रह २ कर सूरिजी का परमोपकार मानने लगा। भैंसाशाह के अशुभ कर्मों का अन्त हो चुका, उपादान कारण उज्वल था ही केवल एक निमित्त कारण की आवश्यकता थी सो सूरिजी जैसे अनन्य आचार्य का समयानुसार मिल ही गया। वास्तव में महात्मा लोगों की कृपा से क्या दुःसाध्य है? अर्थात्—कुछ भी नहीं। कालकाचार्य ने वासक्षेप डाल कर कुम्भकार के निवाड़े (भट्टी) को स्वर्णमय बना दिया। सिद्धसेन दिवाकर ने विद्या से स्वर्ण किया तो वज्रसूरि ने एक पट्ट पर बैठा कर दुष्काल के समय में श्रीसंघ को सुखी बनाया। जावड शाह एव जगडू शाह को तेजमतूरी मिली जिससे सारा घर ही स्वर्णमय होगया सेठ पाता को एक थैली मिली शा० जसा को पारस मिला। जैतारण के भण्डारीजी की थैली तो एक दम अखूट बन गई। मेडता के शाह की सम्पत्ति अक्षय हो गई इत्यादि २ महात्माओं की कृपा से अनेक भावुकों के मनोरथ सफल हो गये। भैंसाशाह पर भी तो उसी तरह गुरू कृपा थी। आज उनके घर से दारिद्र्य सहसा, बिना किसी प्रयत्न के भाग छूटा। लक्ष्मी ने तो कुकुममय पवित्र पैरों से भैंसाशाह के मकान पर पदार्पण किया जिससे कण्डे की राशि मात्र कनक कण्डे के रूप में परिवर्तित हो गई। इस घटना के दूसरे दिन ही सूरिजी ने विहार कर दिया। भैंसाशाह ने भी अपने ऊपर उपकार करने वाले गुरुदेव की यथोचित सेवा भक्ति कर अपने घर पर चले आये। उस अक्षय स्वर्ण राशि का गदइया नामक सिक्का बनाया और पुण्य की प्रबलता से प्राप्त उस द्रव्य के द्वारा बहुत से सामाजिक एव धार्मिक कार्य किये भैंसाशाह के अनुपम गुणों एव उदारता की स्मृति करने वाली तीन वस्तुए तो अद्यावधि भी विद्यमान हैं। (१) जैन मन्दिर (२) पानी की सुविधा के लिये बनवाया हुआ कूप (३) नगर रक्षण के लिये परकोट। अस्तु

उस गदइया सिक्के के कारण भैंसाशाह को लोग गदइया कहने लगे जो कालान्तर में उनकी सन्तान परम्परा के लिये जाति के रूप में व्यवहृत होने लगी। यों तो भैंसाशाह पहिले से ही उदार दिल वाला था पर अनायास प्राप्त धन राशि के सदुपयोग में तो उन्होंने अनन्य उदारता बतलाई। याचकों को प्रभूत दान दिया जिससे उनकी कीर्ति दशों दिशाओं में सुविस्तृत हो गई।

ससार के रगमञ्च पर नित्यप्रति विचित्रता के विचित्र नृत्य हुआ ही करते हैं तदनुसार हजारों सज्जनों में एक दो दुर्जन भी तो प्रकृतित मिल जाते हैं इन दुर्जनों ने अपने वाक् प्रपञ्च से भैंसाशाह और डीडवाना नरेश के ऐसा परस्पर कलह करवा दिया कि भैंसाशाह को डिडवाना छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। कर्मानुयोग से उस ही समय भैंसाशाह का साला भी वहा पर आगया। उसने शाह को भिन्नमाल पधारने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। अत. भैंसाशाह भी अपनी मातेश्वरी एव सकल धन राशि लेकर भिन्नमाल चले गये। अब से आप सकुटुम्ब भिन्नमाल में ही निवास करने लगे।

इधर आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज ग्रामनुग्राम परिभ्रमन करते हुए एक समय भिन्नमाल पधारे। शा० भैंसा ने नवलक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव किया। कुछ समय के पश्चात् सूरीश्वरजी के उपदेश से भैंसाशाह ने एक सघ सभा भरने का भी आयोजन किया जिसमें सुदूर प्रान्तीय चतुर्विध संघ को यथायोग्य आमन्त्रण पत्रिकाओं एव योग्य पुरुषों को भेज कर आमन्त्रित किया। योग्य तिथि पर आचार्यश्री के नेतृत्व में इस विराट् संघ का कार्य प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम सूरिजी ने सभा के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करते हुए वर्तमान कालीन सामाजिक परिस्थिति पर जबर्दस्त भाषण दिया जिसका उपस्थित जन-समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सभा में कृत प्रस्तावों को क्रियात्मक रूप देकर आचार्यश्री ने योग्य

मुनियों को योग्य पदवियाँ प्रदान की। मुनि देवभद्र को सूरि योग्य सकल गुणों से सुशोभित देखकर उन्हें सूरि पदार्पण किया। परम्परागत नामावली के अनुसार आपका नाम श्री देवगुप्तसूरि रख दिया। इसके सिवाय-ज्ञान कलशादि सात मुनियों को उपाध्याय पद, हर्षवर्द्धनादि ५ मुनियों को गणिपद, देवसुन्दरादि नवमुनियों को वाचनाचार्य, शांति कुशलादि ग्यारह मुनियों को पण्डित पद से विभूषित किया। इस शुभ कार्य में मैंसाशाह ने ग्यारह लक्ष द्रव्य व्यय कर कल्याणकारी पुण्योपार्जन किया।

पूज्याचार्य देव के ३४ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएँ

१—चन्द्रीपुर	के	विहुनौग	जाति के	शाह	करमण ने	सूरिजी की सेवा में दीक्षाली
२—रायपुर	के	देसरडा	,,	,,	डूगर ने	,,
३—पद्मिनीपुर	के	नवड़	,,	,,	पद्मा ने	,,
४—कुचेरपुर	के	सिंघवी	,,	,,	देवा ने	,,
५—भोपाणी	के	बोहरा	,,	,,	कुम्भा ने	,,
६—मणपुरी	के	पोकरणा	,,	,,	रोडा ने	,,
७—कांतिपुर	के	रांका	,,	,,	भाखर ने	,,
८—उपकेशपुर	के	चींचा	,,	,,	धरणा ने	,,
९—नागपुर	के	गुलेच्छा	,,	,,	चांपसी ने	,,
१०—शंखपुर	के	बापणा	,	,,	पूना ने	,,
११—खोरंटपुर	के	सुरवा	,,	,	धमा ने	,,
१२—पाल्हिका	के	मुरड	,,	,,	माला ने	,,
१३—डांगीपुर	के	संचेती	,,	,,	नारायण ने	,,
१४—पासोली	के	मादलिया	,,	,,	जैता ने	,,
१५—मानपुर	के	चंडालिया	,,	,,	करमण ने	,,
१६—माघाट नगर	के	चौमुहता	,,	,,	माहरण ने	,,
१७—मोकलपुर	के	कानडिया	,,	,,	आसू ने	,,
१८—आबलीपुर	के	तोडियाणी	,,	,,	मसरा ने	,,
१९—पद्मावती	के	श्रेष्ठि	,,	,,	गुणाढ ने	,,
२०—वरापुर	के	बाफणा	,,	,,	सेमा ने	,,
२१—चित्रकोट	के	सखाणी	,,	,,	पेथा ने	,,
२२—माडवगढ़	के	पल्लीवाल	,,	,,	जोधड ने	,,
२३—कन्नौज	के	प्राग्वट वंश	,,	,,	मल्ला ने	,,
२४—भरोंच	के	,, ,,	,,	,,	माला ने	,,
२५—लखमनपुर	के	,, ,,	,,	,,	दाल्हा ने	
२६—धोपार	के	,, ,,	,,	,,	हरपाल ने	,,
२७—करणावती	के	,, ,,	,,	,,	मानू ने	,,
२८—ठाणापुर	के	श्रीमाल वंश	,,	,,	धोमा ने	,,
२९—वर्धमानपुर	के	,, ,,	,,	,,	अर्जुन ने	,,
३०—सावली	के	,, ,,	,,	,,	नागदेव ने	,,
३१—देवपुर	के	,, ,,	,,	,	वीरम ने	

आचार्यश्री के ३४ वर्षों के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—शाकम्भरी	के	चोरड़िया	जाति के	शाह	भैरा ने	भ० पार्श्व०	के मन्दिर	की प्र०
२—दुधानी	के	भरकोटा	,,	,,	पोलाक ने	,,	,,	,,
३—पादोरी	के	नाहटा	,,	,,	पेथड़ ने	,,	,,	,,
४—नागपुर	के	पारख	,,	,,	पुनड़ ने	महा०	,,	,,
५—भवानीपुर	के	समदड़िया	,,	,,	नेणसी ने	,,	,,	,,
६—भीन्नमाल	के	तातेड़	,,	,,	वछा ने	,,	,,	,,
७—रालोड़ी	के	करणावट	,,	,,	कोला ने	,,	,,	,,
८—रामपुर	के	आर्य्य	,,	,,	खरथा ने	शान्ति०	,,	,,
९—कीराटकुम्प	के	छाजेड़	,,	,,	जोगड़ ने	,,	,,	,,
१०—मुधार	के	भटेवरा	,,	,,	गोंदा ने	आदिश्वर	,,	,,
११—देवपटन	के	मकवाणा	,,	,,	रावल ने	केसरिया	,,	,,
१२—सुसाणी	के	रांखेचा	,,	,,	सारग ने	मल्लि०	,,	,,
१३—वेलकावी	के	डुगरवाल	,,	,,	चतार ने	,,	,,	,,
१४—खटकूंप	के	काग	,,	,,	घुड्ड ने	महा०	,,	,,
१५—हर्षपुर	के	कांकरेचा	,,	,,	भारमल ने	,,	,,	,,
१६—कुकाणी	के	रावत	,,	,,	भीम ने	पार्श्व०	,,	,,
१७—अरणीग्राम	के	हिंगड़	,,	,,	गोदा ने	,,	,,	,,
१८—रेणूकोट	के	मोसालिया	,,	,,	नोंधण ने	,,	,,	,,
१९—माराटेकोट	के	सुघड़	,,	,,	डावर ने	,,	,,	,,
२०—धीरपुर	के	चंडालिया	,,	,,	राजा ने	सीम०	,,	,,
२१—मालपुर	के	मल्ल	,,	,,	केसा ने	पार्श्व०	,,	,,
२२—धेरापद्र	के	कुकुम	,,	,,	नेना ने	,,	,,	,,
२३—नार	के	कांकरिया	,,	,,	फूआ ने	अजित०	,,	,,
२४—लालपुर	के	ढिड्डु	,,	,,	रोला ने	ऋषभ०	,,	,,
२५—पृथ्वीपुर	के	देसरडा	,,	,,	टोडा ने	वास०	,,	,,
२६—सोपारपटन	के	प्राग्वट वश	,,	,,	सीवसी ने	विमल०	,,	,,
२७—राक्षोड़ी	के	,,	,,	,,	रांणा ने	शान्ति०	,,	,,
२८—नाकुलवाडा	के	,,	,,	,,	भोजा ने	पार्श्व०	,,	,,
२९—श्रीपुर	के	,,	,,	,,	देवा ने	,,	,,	,,
३०—सोद्रवापुर	के	श्रीमाल वश	,,	,,	दुर्गा ने	महा०	,,	,,
३१—दीपकोट	के	,,	,,	,,	सज्जन ने	,,	,,	,,

पूज्याचार्य देव के ३४ वर्षों के शासन में तीर्थों का संघादि शुभ कार्य

१—नागपुर	के	चोरडिया	शादुल ने	श्री शत्रुञ्जय का	संघ निकाला
२—उपकेशपुर	के	श्रेष्टि	लाडुक ने	,,	,,
३—नारदपुरी	के	बाफणा	वीरा ने	,,	,,

४—आघाटपुर	के	मूर्ति	कर्मा ने	श्री शत्रुंजय का संघ निकाला	
५—चन्द्रावती	के	संचेती	हरपाल ने	,,	,,
६—चित्रकोट	के	प्राग्वट	भाखा ने	,,	,,
७—सोपारपट्टन	के	श्रीमाल	सांगार ने	,,	,,
८—मथुरा	के	सालेचा	जापा ने	,,	,,
९—पीसागढ़	के	बाफेस	हुआ ने	,,	,,
१०—पालिका	के	श्रीश्रीमाल	पोकर ने	,,	,,
११—वीरपुर	के	प्राग्वट	साहूने	,,	,,
१२—कोरंटपुर	के	कुम्मट	पता ने	,,	,,
१३—उज्जैन	के	रांका	सुखा ने	,,	

१४—चंदीपुर के श्रीश्रीमाल भाखा ने दुकाल में करोड़ों द्रव्य व्यय कर अन्न घास दिया।
१५—विजयपुर के पोकरणा नराता ने दुकाल में पुष्कल द्रव्य व्यय कर भाइयों के प्राण बचाये।
१६—कोरंटपुर के महता महारसिंह युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सती हुई छत्री कराई।
१७—चन्द्रावती के प्राग्वट सूखो युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
१८—राजपुर के श्रीश्रीमाल मालदेव　　,,　　　,,
१९—नागपुर के गुलेच्छा समरथ　　,,　　,,　　,,
२०—पद्मासी के प्राग्वट रामो　　,,　　,,　　,,
२१—मथासणी के आर्य भरमा की पुत्री मारी ने तालाब खुदाया जिस में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।
२२—चंपपुर के बाफेस भैरा की माता ने बावड़ी बनाई　　,,　　,,　　,,।
२३—वर्धमानपुरी के समदड़िया गोरा ने एक तालाब एक कुआ बनाया　,,　　,,　　,,।

इनके अलावा भी सूरिजी के शासन में अनेक शुभ कार्य हुए जिनके विस्तृत उल्लेख वंशावलियों में मिलते हैं। पर स्थानाभाव यहाँ नमूना मात्र बतलाया है।

> कम्पनाम बाहटा जाति, जिसके वीर शिरोमणि थे ।
> 　　　　आठ चालीस वे पट्ट विराजे, कक्कसूरीश्वर गुणमणि थे ॥
> भैंसाशाह का कुछ लिखवा, ऊंचा सुयश बनाया था ।
> 　　　　लिखवाया वीर भैंसा ने, जिससे नदिया पद पाया था ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के अड़तालीसवें पट्टधर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए।

४९-आचार्य देवगुप्तसूरि (बारहवें)

सूरिः पारख जाति शृङ्ग वदयं, देवाख्य गुप्तः सुधीः
भैंसा शाह कभिन्नमाल नगरे, भक्तोऽभवद्यः स्वयम्।
निष्कास्यैषं च सोत्सव विधियुतं, सिद्धाचलं संघकम्ः
चक्रे व प्रति शोधनं च जनताभ्यो गुर्जरेभ्यो व्रती।
सूरिः सूर समः स्वकर्म करणे देवालय स्थापने,
ग्रन्थानां बहुधा च संकलनता, निर्माणतास्व प्ययम्।
दीक्षादान सुधा प्रपासु नितरां धर्मोन्नतेः कारकः
ख्यातिं प्राप्य तपस्यया विजयतां स्वाध्याय शीलः सदा ॥

शासन प्रभावक धर्म प्रचारक, दीर्घ तपस्वी, नानाविद्याविभूषित, विविध लब्धि कला सम्पन्न श्रीमान् देवगुप्तसूरि नामक जग विश्रुत आचार्य हुए। आपश्री के अलौकिक चमत्कार पूर्ण जीवन के सम्बन्ध में पट्टावल्यादि ग्रन्थों में सविशद उल्लेख मिलता है पर ग्रन्थ विस्तार भय से यहां सक्षिप्त रूप में मुख्य २ घटनाओं को लेकर ही पाठकों की सेवा में आपका जीवन चरित्र उपस्थित कर दिया जाता है।

पाठकवृन्द, पूर्व प्रकरणों में बराबर पढ़ते आ रहे हैं कि एक समय सिन्ध भूमि पर जैन धर्म का पर्याप्त प्रचार था। उपकेश गच्छीय मुनियों के निरन्तर भ्रमण व उपदेश वगैरह के सविशेष प्रभाव से सिन्ध धरा धर्म भूमि बन गई थी। यदाकदा उपकेशगच्छआचार्यों के पदार्पण करते रहने से वहाँ विपुल धार्मिक क्रान्ति व सविशेषोत्साह फैलता रहता था। श्राद्ध समुदाय के आधिक्य से सिन्ध धरा जिन मन्दिरों से सुशोभित थी। वहां के श्रावक लोग बहुत ही धार्मिक श्रद्धासम्पन्न एव देव गुरु भक्ति में लाखों रुपये सहज ही में व्यय करने वाले थे यद्यपि यहां व्यापारार्थ आगत जैन मरुधर व्यापारी ही निवास करते थे पर जैनाचार्यों के द्वारा नवीन जैनों के बनाये जाने से व उनको उपकेश वश में सम्मिलित करने से शनै २ जैनियों की घनी आबादी होगई थी। प्राय सिन्धभूमि पूर्वाचार्यों एव मुनियों के पुन २ विचरण करते रहने से जैनमय ही बन गई थी। इसी सिन्ध भूमि में डामरेलपुर एक प्रमुख नगर था जो व्यापारिक एवं सामाजिक स्थिति में सर्व प्रकारेण समुन्नत था।

मरुधर व्यापारी समाज में आदित्यनाग गौत्रीय गुलेच्छा शाखा के दानवीर धर्मपरायण, लब्ध प्रतिष्ठित पन्ना शाह नाम के एक प्रमुख व्यापारी थे। शाह पन्ना जैसे विशाल कुटुम्ब के स्वामी थे वैसे अक्षय सम्पत्ति के भी मालिक थे पर्यायान्तर से वे धन-वैश्रमण ही थे। शाह पन्ना का व्यापार क्षेत्र भारत भूमि पर्यन्त ही परिमितावस्था में नहीं अपितु पाश्चात्य प्रदेशों के साथ में भी घनिष्ठतम व्यापारिक सम्बन्ध था जिससे आपके नाम की ख्याति इत उत सर्वत्र प्रसरित थी। स्थान २ पर आपकी पेढ़िया थी। सैकड़ों ही नहीं पर हजारों स्व-धर्मी एव देशवासी बन्धुओं को व्यापार में अपने साथ रखकर उनको हर तरह से लाभ पहुचाने के प्रयत्न में रहते थे शाह पन्ना के तेरह पुत्र और छ' पुत्रियें थी। इनमें एक चोखा नाम का पुत्र बड़ा ही होनहार एव परम

सिन्ध प्रान्त का डामरेल नगर

मान्यशाली था पद्मो शाह का चोखा पर असीम अनुराग था। पितृ भक्त चोखा भी अपने पिताश्री के हरएक कार्य में सहयोग प्रदान कर उनकी हर तरह से सेवा किया करता था। जब चोखा की वय क्रमशः बीस वर्ष की हुई तो उसी नगर के भाद्र गौत्रीय समदड़िया शाखा के शाह गोसल की सुपुत्री, सर्व कलाकोविदा रूपगुण सम्पन्ना 'राजी' के साथ सम्बन्ध (सगपण) हो गया था अब तो वय की अनुकूलता के कारण विवाह की भी समारोह पूर्वक तैय्यारियाँ होने लगी।

इधर परम प्रभावक, शासन उद्योतक आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराजने भी अपने शिष्य समुदाय के साथ डामरेलपुर की ओर पदार्पण किया। जब ये शुभ समाचार वहां के श्रीसंघ को मिले तो उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उन्होंने बड़े ही समारोह पूर्वक सूरिजी के नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी ने भी स्वागतार्थ आगत जन मण्डली को धर्मोपदेश देकर उन्हें कृतकृत्य किया जिससे उपस्थित जन-समुदाय पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। व्याख्यान क्रम तो आचार्य देव का नित्य नियम की भांति सर्वदा प्रारम्भ ही था। प्रसङ्गोपात्त एक दिन के व्याख्यान में नरक निगोदों का वर्णन चल पड़ा। उनके दुःखों का वर्णन करते हुए मारकीय जीवन का शास्त्र वर्णित ऐसा वास्तविक चित्र खींचा कि श्रोता वर्ग एक दम वैराग्य की अपूर्व धारा में बहने लगे। संसार भय से भीरु मनुष्यों का हृदय व्याख्यान श्रवण से भयभीत एवं कम्पित होने लग गया। वे लोग भविष्य कालीन इस प्रकार के दुःखों से विमुक्त होने के लिये प्रयत्न करने लगे। संक्षिप्त में जन मण्डली को एक क्षण भी संसार में रहना अच्छा नहीं लगने लगा।

पुण्यानुयोग से उस दिन शाह पद्मा का सारा कुटुम्ब भी व्याख्यान में उपस्थित था। परम श्रद्धालु धर्म प्रेमी भद्रात्मक चोखा ने भी आचार्यश्री का व्याख्यान बहुत ध्यान लगाकर सुना था। उसके हृदय में तो सूरिजी के शास्त्रीय वर्णन से आत्म-कल्याण की उत्कट भावनाएं जागृत होगई। वह रह रह कर सोचने लगा कि इस जीव ने पुराकृत पापपुञ्ज के आधिक्य से अनन्तवार नरक निगोद के असह्य दुःखों को भी सहन किया है। वर्तमान समय में उक्त सम्बन्धी दुःख राशि से विमुक्त होने के लिये हमें सब साधन भी यथावत् उपलब्ध हैं। केवल विषय कषाय की प्रबलता के कारण ही इसका दुरुपयोग किया जारहा है। अरे! नरक निगोद के असह्य दुःखों से स्वतंत्र होने के लिए तो हमें यह स्वर्णोपम समय मिला है और इसमें भी यदि दुःखों की वृद्धि के ही विषम कार्य किये जाँय तो दुःख से मुक्त होने के सम्भव उपाय ही क्या है? आचार्य देव का कथन तो सर्वथा सत्य है कि दुःखों से विमुक्त होने की इच्छा रखने वाले भव्यों को दुःख मय असार संसार का त्याग कर दीक्षा स्वीकार करलेनी चाहिये। बस कुमार चोखा की भावना सूरिजी के पास दीक्षा लेने की होगई व्याख्यान समाप्त्यनंतर वह तत्काल ही अपने घर गया और अपने माता पिता से कहने लगा कि यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं दीक्षा स्वीकार करना चाहता हूँ। प्यारे पुत्र के संसार से विरक्त दुःखोत्पादक वचनों को सुनकर माता मोली को मूर्छितावस्था प्राप्त होगई। जब जलवायु के उपचार से उसे सावधान किया गया तो वह नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित करने लगी। वह ऐसी हुई ही बोली—बेटा। तेरा यह शब्द मुझे शूलवत् हृदय विदारक मालूम होता है। यदि तू मुझे जीवित अवस्था में ही देखना चाहता है तो भूल चूक करके भी मुख से ऐसे शब्द मत निकालना। शाह पद्मा ने कहा बेटा! यह तो तुम्हें अच्छी तरह से मालूम है कि तुम्हारी सगाई कभी से ही करदी गई है। दो मास के पश्चात् तो तेरी शादी का शुभ मुहूर्त है अतः लोगों में व्यर्थ ही में हंसी हो, ऐसे अप्रासङ्गिक शब्दों को निकालना तुम्हे उचित नहीं है। बेटा! तेरी मांग (जिसके साथ वाग्दान-सम्बन्ध हुआ उसको) दूसरा कोई परने यह हमारी प्रतिष्ठा में मिलन ही कलंक कालिमा पोतने वाला है अतः तुमको अपनी इज्जत एवं खानदान का भी विचार करना चाहिये। जीतेजी-तब भी हो मैं तुम्हें दीक्षा स्वीकार करने की आज्ञा कभी भी प्रदान नहीं करूंगा। इस तरह चोखा एवं उनके माता पिता के बीच पर्याप्त वादाचाली होती रही उसको कुमार ने अनुकूल प्रतिकूल वचनों से पर्याप्त परिश्रम किया

गया पर वैराग्य रञ्जित स्वान्त चोखा पर ससार वर्धक, मोहोत्पादक वचनों का किञ्चित् भी प्रभाव नहीं पडा।

इधर जमाई चोखा के वैराग्य के समाचारों को चोखा के श्वसुर शा० गोसल ने सुना तो वे आश्चर्य चकित हो गये। वे नाना प्रकार के विचारसागर में गोते खाने लगे और रह रह कर उनको ये भावनाएं सताने लगी कि जमाई चोखा यदि दीक्षा के लिये उद्यत हैं तो मैं मेरी प्रिय पुत्री का विवाह इस हालत में उनके साथ कैसे कर सकता हू ? असमंजस में पडे हुए शा० गोसल ने उक्त सकल समाचार अपनी धर्मपत्नी से कहे, इस पर सकल कुटुम्ब परिवार में बड़ी भारी हलचल मच गई। जब श्रेष्टि सुता रोली ने सुना कि जिसके साथ मेरा भावी सम्बन्ध जोड़ा जा रहा है, वे असार ससार से विरक्त हो दीक्षा लेने को तैय्यार होगये हैं तो उसके आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वह चिन्तामग्न हो विचारने लगी कि यदि यह सत्य है तो मुझे क्या करना चाहिए। निदान अनेक तर्क वितर्कों के पश्चात् उसने यह निश्चय किया कि जब एक पतिदेव को मैं अपने हृदय से अपना जीवन अर्पणकर चुकी हूँ तो इस भव में वे ही मेरे जीवनाधार पति बन चुके हैं। यदि वे वैराग्य भावना से दीक्षा स्वीकार करेंगे तो बड़ी ही खुशी की बात है, मैं भी उनके साथ ही दीक्षा स्वीकार कर आत्म कल्याण के मार्ग में सलग्न हो जाऊंगी। क्या भगवान् नेमिनाथ के साथ राजुलदेवी ने दीक्षा अङ्गीकार नहीं की थी ? दीक्षा तो निश्चित ही आत्मोद्धार का साधन है और वह आत्म कल्याण इच्छुक भावुक व्यक्तियों से ग्राह्य भी है। इस प्रकार के सुनिश्चित विचार से उसकी आत्मा में अपूर्व आनद का सद्भाव होने लग गया।

एक समय शा० पद्मा और गोसल की आपस में भेंट हुई तो शा० पद्मा ने कहा—शाहजी ! चोखा अभी नादान है। सूरिजी के वैराग्योत्पादक व्याख्यान को श्रवण कर वह दीक्षा लेने के आग्रह पर तुला हुआ है। अभी तो मैंने उसको येनकेन प्रकारेण समझा कर रक्खा है पर अभी के वैराग्य को देख कर उसका ज्यादा समय पर्यन्त ससार में रहना कठिन ज्ञात होता है अत विवाह कार्य जल्दी ही सम्पन्न कर देना चाहिये जिससे सासारिक प्रपञ्चों में पड़ा हुआ उसका मन कभी भी दीक्षा के लिये उद्यत न हो सकेगा। शा० पद्मा के उक्त वचनों को सुन कर शा० गोसलने कहा कि विवाह जल्दी करने के लिये तो मैं भी तैय्यार हूँ पर वे जब इस तरह वैराग्य की प्रबल भावनाओं से आकर्षित हो दीक्षा के लिये तैय्यार हैं तो फिर पुत्री को यकायक वैरागी व्यक्ति के साथ ग्रन्थित करने में जरा विचार है। इस पर शा० पद्मा ने कहा-शाहजी ! आप इस बात का जरा भी विचार मत कीजिये। वह तो बालोचित नादानी के कारण ही बाल हठ करता है पर विवाह होजाने के पश्चात् उसकी वैसी अवस्था नहीं रहेगी। मैंने उसको अच्छी तरह समझा दिया है अत अब अविलम्ब लग्न की तैय्यारिया होने दीजिये।

शा० पद्मा के आश्वासनजनक वचनों को सुनकर गोसल शाह अपने घर पर आया और अपनी प्राण प्रिय पुत्री को बुलाकर उसकी माता के सामने पूछने लगा कि कुवरजी दीक्षा लेने को तैय्यार हैं तब शा० पद्मा विवाह के लिये जल्दी कर रहे हैं। अत तुम लोगों की इसमें क्या सम्मति है। रोली तो माता पिताओं की शर्म एव स्वाभाविक लज्जा के कारण अपने हृदय के वास्तविक उद्गार प्रगट नहीं कर सकी पर रोली की माता ने कहा—जमाईजी जब आज ही दीक्षा की बातें करते हैं तब ऐसे वैरागी दीक्षेच्छुकों को पुत्री देने में वह क्या सुख प्राप्तकर सकेगी ? अभी तो रोली कुमारी है और कुंवारी के सौ घर और एक वर ऐसी लोकोक्ति भी है। अत अगर कुवर चोखा दीक्षा ले लेवेंगे तो रोली की सगाई दूसरे के साथ करदी जावेगी।

माता के अपने निश्चय से प्रतिकूल उक्त वचनों को श्रवण कर रोली से नहीं रहा गया। उसे इस समय में लज्जा रखना या अपने मानसिक भावों को दबाना अनुचित ज्ञात हुआ। वह बीच में ही बोल उठी— "मां ! क्या एक कन्या के दूसरा पति भी हो सकता है ? दीक्षा लेना और न लेना तथा सुख, दुःख को प्राप्त करना तो पूर्व संचित कर्म राशि के आधार पर है पर मैंने एक पति का नाम धारण कर लिया है। अत अब

दूसरा पति कदापि नहीं करूंगी।" गेलाशाह अपनी पुत्री के एक दृढ़ संकल्प को सुन कर पुत्री का शाह पद्मा के आत्मज कुंवर बोत्था के साथ में जल्दी से ही करने को तैय्यार होगये। उन्होंने शाह पद्मा के यहाँ कहला दिया कि मैं आपके आदेशानुसार जल्दी ही लग्न करने को तैय्यार हूँ और आप भी अपनी ओर से जल्दी ही तैय्यारी कीजिये। बस, दोनों ओर से विवाह की जोरदार तैय्यारियें होने लगी। बोत्था की आन्तरिक इच्छा विवाह करने की नहीं थी पर माता पिता के दबाव एवं विशेष आग्रह से ही उसने ऐसा करना स्वीकार किया। क्रमशः शुभ तिथि मुहूर्त में विवाह का कार्य भी सानंद सम्पन्न होगया। जब प्रथम रात्रि में कुंवर बोत्था अपनी पत्नी के महल में गया तो वहाँ योगीश्वर की भांति परमनिवृत्ति पूर्वक ही बैठ गया। राग, रंग एवं भोग-विलास सम्बन्धी साधनों के पूर्ण अभाव को देख कर कुंवरी रोली ने लज्जा त्याग कहा—

पूज्यवर ! मैंने सुना है कि आप दीक्षा लेने वाले हैं।

बोत्था—हाँ, मेरी इच्छा दीक्षा लेने की थी और अब भी उसी रूप में है।

रोली—तो फिर आपने विवाह ही क्यों किया ?

बोत्था—विवाह करने की आन्तरिक इच्छा के न होने पर भी माता पिता के आग्रह के कारण विवश, मुझे ऐसा करना पड़ा।

रोली—यह सत्य है कि आप माता पिता के आग्रह मात्र से ही इस ओर प्रेरित हुए होंगे पर इस मिथ्या आग्रह के वशीभूत हो एक बाला के जीवन को फन्दे में डालना आपको शोभा देता है ? यदि आपका इस किसी के लिहाज से बिना इच्छा के ही कार्य करने का है तो थोड़ी आग्रह मेरी भी रखिये मैं आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना करती हूँ कि आप कुछ वर्षों तक संसार में रह कर मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिये। कुछ वर्षों के पश्चात् मैं भी आपके साथ दीक्षा स्वीकार कर लूंगी।

बोत्था—जब आपकी अन्तिम इच्छा भी दीक्षा लेने की है तब फिर थोड़े दिनों पर्यन्त संसार में रहने से क्या फायदा है ? संसार तो महान् दुःखों की खान है। सिवाय कर्म बंध के इसमें कुछ लाभ तो है ही नहीं। दूसरा थोड़े दिनों का विश्वास भी तो नहीं किया जासकता है कारण न मालूम काल कब किस दिन, किस समय कण्ठ पकड़ कर अपने घर ले जायगा। अतः मेरी सलाह है कि आप भी जल्दी कीजिये जैसा कि शालिभद्रजी के बहनोई और बहिन ने किया था।

रोली अपने मन में अच्छी तरह से समझ गई कि आपके हृदय में दीक्षा का पक्का रंग लगा हुआ है। किसी भी तरह वे अपने इस निश्चय से परावर्त्तित नहीं हो सकते हैं अतः उसने भी उनके निश्चय में अपनी सम्मति देदी और उनके साथ ही दीक्षा के लिये तैयार हो कहने लगी—नाथ आप निश्चिन्त दीक्षा स्वीकार कर सकते हैं। मैं भी आपके ही पथ का अनुसरण कर अपने आपको सौभाग्यशाली बनाऊँगी। आप मेरी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहें।

बोत्था—धन्य है आपको और आपकी माता की कुक्षि को। आपका निश्चय निश्चित ही सराहनीय एवं अनुकरणीय है। मुझे यह आशा नहीं थी कि आप सहज ही में मेरे निर्दिष्ट निश्चय में सहयोग प्रदान कर इस तरह आत्मकल्याण के मार्ग में सहसा उद्यत हो जावेंगे। मैं, आपके द्वारा इस निश्चय का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

इस प्रकार दम्पति का एक दिल से दीक्षा लेने का निश्चय होगया। फिर तो था ही क्या ? अभी तक तो इसकी चर्चा दो हाथ की ही थी पर प्रातःकाल में सर्वत्र नगर में यह बात बिजली की भांति फैल गई कि कुंवर बोत्था ने एक ही रात्रि में अपनी पत्नी को उपदेश देकर दीक्षा के लिये तैय्यार करली। अब तो ये निकट भविष्य में ही दीक्षा स्वीकार कर लेंगे। जिन्होंने यह बात सुनी उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा। ठीक है बात भी आश्चर्य करने काबिल थी कारण, यह तो एक दूसरा ही जम्बुकुमार निकला।

इधर शाह पद्मा और शाह गोसल दोनों एकत्रित हो विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? दीक्षा की भावनाओं को परिवर्तित करने के लिये तो जल्दी से जल्दी लग्न किया पर यहा तो एक के बदले दोनों ने दीक्षा लेने का विचार कर लिया । दोनों शाहों ने अपने पुत्र पुत्रियों को बहुत कुछ समझाया पर वहाँ भी हलद पतग का रग नहीं था कि वे सहसा ही अपना कृत निश्चय त्याग देते । यहा तो लग्न का महोत्सव ही दीक्षा के रूप में परिणत होगया । इस प्रकार दम्पति के प्रबल वैराग्य को देख कर के कई स्त्री पुरुष उनका अनुकरण करने को तैय्यार होगये । इधर पूज्यवर आचार्य देव का त्याग एव वैराग्यमय उपदेश भी धारा-प्रवाहिक रूप से प्रारम्भ था जिसके प्रभाव से नागरिकों के सिवाय इधर तो शाह पद्मा अपनी धर्मपत्नी के साथ और उधर शाह गोसल अपनी पत्नी के साथ दीक्षा की तैय्यारिया करने लगे । इस महोत्सव में दोनों की ओर से करीब पन्द्रह लक्ष द्रव्य व्यय करके बड़े ही समारोह के साथ उत्सव किया गया । स्व धर्मी बन्धुओं को प्रभावना व याचक को पुष्कल दान दिया । वि० स० १०७६ के फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी के शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न मे ४२ नर नारियों को आचार्यश्री कक्कसूरि ने भगवती दीक्षा देकर चोखा का नाम देवभद्र मुनि रख दिया । इस प्रभावोत्पादक कार्य से सिन्धधरा में जैनधर्म का पर्याप्त उद्योत हुआ ।

वास्तव में वह लघुकर्मियों का ही समय था कि वे थोड़े से उपदेश को श्रवण करके ही दुःखमय सासारिक जीवन का सहसा त्याग कर आत्म-कल्याण के मार्ग में सलग्न हो जाते थे, वह भी एक दो नहीं पर एक के अनुकरण में अनेक । यही कारण है कि उस समय प्रत्येक प्रान्त में सैकड़ों साधु साध्वी विहार करते थे और उन तपस्वी मुनियों के त्याग वैराग्य का प्रभाव भी जैन जैनेतरों पर पर्याप्त रूप में पड़ता था ।

मुनि देवभद्र पर सूरिजी की पूर्ण कृपा थी । उन्होंने सूरिजी के चरण-कमलों में रहकर आपका विनय, वैय्यावच्च एव सेवा भक्ति करके आगमों के ज्ञान को इस प्रकार सम्पादन करना प्रारम्भ किया कि थोड़े ही समय में आप धुरधर विद्वान बन गये । आप अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के सविशेष प्रभाव से न्याय, व्याकरण, तर्क, छन्द, अलंकार, ज्योतिष और अष्टाग योग निमित्तादि ज्ञान में बड़े ही निपुण हो गये । यही कारण था कि स० १०८८ चन्द्रावती के सघ ने महा महोत्सव पूर्वक आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया और भिन्नमाल नगर में शाह भैंसा ने सप्तलक्ष द्रव्य व्यय कर आचार्य पद का अति समारोह पूर्वक महोत्सव किया । वि० स० ११०८ के वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन आचार्य पद प्रदान कर कक्कसूरीश्वरजी महाराज ने आपका नाम परम्परानुसार देवगुप्तसूरि रख दिया । अखिल गच्छ का भार आपको अर्पण कर आप परम निवृत्ति पूर्वक आत्म-ध्यान में सलग्न हो गये ।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी महाराज महा प्रतिभाशाली, बाल-ब्रह्मचारी, धुरधर विद्वान् एवं धर्म प्रचारक आचार्य हो गये हैं । आपके अलौकिक तपस्तेज की सविशेष सत्ता से जन समाज आपकी ओर स्वयमेव आकर्षित हो जाता था । आपश्री की व्याख्यान शैली तो इतनी मधुर, रोचक एवं हृदयग्राहिणी थी कि जिस किसी ने आपका एक बार भी व्याख्यान सुन लिया वह हमेशा के लिये व्याख्यान श्रवण की इच्छा से उत्कठित बना रहता । षट् दर्शन के पूर्ण मर्मज्ञ होने से आप वस्तु तत्व का विवेचन इतनी स्पष्टता पूर्वक करते थे कि जैन व जैनेतर शास्त्र विदग्ध समाज भी दातों तले अगुली लगाने लग जाता । अपने गुरुदेव की साङ्गोपाङ्ग सेवा-भक्ति कर आपने कई चमत्कार पूर्ण विद्याओं एव कलाओं को हस्तगत कर लिया था कि जिनका शासन के उत्कर्ष के लिये समय २ पर उपयोग किया करते थे । इन्हीं विद्याओं के बल पर स्थान २ पर आपने शासन की इतनी प्रभावना की कि जिसका वर्णन करना निश्चित ही लेखन शक्ति से बाहिर है । आपश्री का शिष्य समुदाय भी विस्तृत-सख्या में था योग्य मुनिवर्ग योग्य पदों पर प्रतिष्ठित थे और समयानुसार प्रत्येक प्रान्तों में विचरण कर जैनधर्म का उद्योत करते रहते । कहना होगा कि आचार्य देवगुप्तसूरि अपने समय के अनन्य युग प्रधान आचार्य थे ।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने भैंसाशाह के अत्याग्रह से वह चातुर्मास भिन्नमाल नगर में कर दिया। शाह भैंसा ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर आगम-महोत्सव किया और व्याख्यान में महाप्रभावक श्रीभगवतीसूत्र बचवाया। शाह की माता ने गुरु गौतम स्वामी के द्वारा पूछे गये ३६००० प्रश्नों की ३६००० स्वर्ण मुद्रिकाओं से परम श्रद्धापूर्वक अर्चना की। इस प्रकार आपके चातुर्मास में धर्म का बहुत ही उद्योत हुआ।

धर्मवीर भैंसाशाह की धर्मनिष्ठा माता की कई दिनों से यह भावना थी कि यदि गुरु महाराज का शुभ संयोग मिल जाय तो परम पावन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा के लिये संघ निकाल कर यात्रा की जाय, क्योंकि अब उनकी अत्यन्त वृद्धावस्था हो चुकी थी और काल का क्या पता कि वह किस वक्त आकर के अचानक हमला करदे। वे अपने मनोरथसिद्धि की इन्तजारी कर रही थी कि उनके प्रबल भाग्योदय से सूरिजी का चातुर्मास यहीं होगया। हस्तागत इस अमूल्य स्वर्णावसर का सविशेष सदुपयोग करने के लिए धर्मिष्ठ माता ने अपने परमप्रिय पुत्र भैंसाशाह से एतद्विषयक परामर्श किया। भैंसाशाह जैसे धर्मानुरागी पुरुष ऐसे पुण्योपार्जक कार्यों के लिये इन्कार हा ही कैसे सकते थे? अपने मातेश्वरीजी के इन परमादेय वचनों को सहर्ष स्वीकार करते हुए उनकी इस उत्तम भावना के लिये भैंसाशाह ने हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की और समारोह पूर्वक शत्रुञ्जय की यात्रा के लिए विराट संघ निकालने की अनुमति देदी। अब भैंसाशाह की ओर से संघ के लिये विपुल तैय्यारियां होने लगी। निर्दिष्ट समय पर चतुर्विध संघ विराट संख्या में निर्दिष्ट स्थान पर एकत्रित होगया। आचार्यश्री के द्वारा बतलाये हुए शुभ मुहूर्त में संघ ने तीर्थाधिराज की ओर प्रस्थान कर दिया परन्तु किन्हीं खास कारणों से भैंसाशाह का संघ में जाना न होसका। माता ने पूछा—परम प्रिय वत्स! यदि मार्ग में कहीं खर्चे के लिये रकम की आवश्यकता पड़ जाय तो उसके लिये कोई ऐसा समुचित उपाय तो होना ही चाहिये जिससे कठिनाई का सामना न करना पड़े। यद्यपि मार्ग व्यय के लिये मेरे पास रकम कम नहीं है पर प्रसङ्गवश किसी कारण विशेष से हमें विशेष जरूरत आ पड़े तो क्या किया जायगा? पुत्र ने उत्तर दिया—माताजी जहाँ आपको आवश्यकता दृष्टिगोचर हो वहां मेरे नाम से रकम ले सकती हो, मेरे नाम से रकम देने में कोई भी आपको इन्कार नहीं करेगा। फिर भी कर्त्तव्यशील भैंसाशाह ने अपनी मां को विश्वास दिलाने के लिये एक डिबिया में अपनी मूछ का बाल डालकर उसे भली प्रकार से पेकिंग कर अपनी माताजी को दिया और कहा—यदि आपको आवश्यकता पड़े तो इस डिबिया को गिरवे (बंधक) रख कर, जितनी आवश्यकता हो उतनी रकम ले लेना परन्तु मार्ग में किसी भी तरह से धन खरचने में संकीर्णता-कृपणता न करना। उदार हृदय से इच्छानुकूल द्रव्य का सदुपयोग कर खूब लाभ लेना। इतना कह कर भैंसाशाह ने अपनी माता और संघ को तीर्थयात्रा के लिये विदा किया।

माता आचार्यश्री के नेतृत्व में संघ को लेकर क्रमशः छोटे बड़े तीर्थों की यात्रा करती हुई सिद्धाचल पर पहुँची। परमपावन तीर्थ की यात्रा कर अपने मानसिक तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने की पवित्र भावनाओं के सफलीभूत हो जाने से भैंसाशाह की माता ने खूब ही उदार हृदय से द्रव्य का व्यय किया अष्टाह्निका महोत्सव पूजा प्रभावनादि कार्यों का सानन्द सम्पन्न कर माता ने खूब ही लाभ लिया। लाभ भी क्यों नहीं लेती जिसके भैंसाशाह जैसे धर्मनिष्ठ सुपुत्र फिर खर्च करने में कमी ही किस बात की होती? शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा कर संघ पुनः स्वस्थान की ओर लौट रहा था तब मार्ग में पाटण नामक एक विशाल नगर आया। संघ ने वहां की भी यात्रा की। उस समय पाटण में सैकड़ों कोटिध्वज थे। उनके ऊंचे २ मकानों पर उन्नत पताकाएं फहरा रही थीं। लक्षाधीशों की तो पत्तिक वर्ग में गिनती ही कहीं गिनी जाती थी? ऐसे पाटण में भैंसाशाह की माता ने भी उनकी स्पर्द्धा में खूब ही द्रव्य व्यय किया। यही कारण था कि माता का खजाना खाली होगया। भैंसाशाह के पूर्वोक्त कथनानुसार भैंसाशाह की माता अपने कार्यकर्त्ता व्यक्तियों को साथ लेकर पाटण में ईश्वरदास नामक एक सेठ के यहां गई। माता के कार्यकर्त्ताओं ने सेठ से कहा—ये

दान कुबेर भैंसाशाह सेठ की मातेश्वरी हैं। आप संघ को लेकर तीर्थों की यात्रा करने गई थीं। इन माताजी ने धर्म कार्य में परमोत्साह पूर्वक उदार दिल से इतना द्रव्य व्यय किया है कि इस समय इनका खजाना खाली हो गया है। आप कुछ द्रव्य इनको दीजिये। वतन पहुँचते ही हम आपकी रकम शीघ्र भिजवा देवेंगे। आप इस विषय में सर्वथा निश्चिन्त रहिये अन्यथा यह डिबिया गिरवे रख लीजिये। सेठ ने उक्त बातों पर सविशेष लक्ष्य न देते हुए हसी ही हँसी में कह दिया—हम भैंसाशाह को नहीं जानते, हमारे यहां कई भैंसे पानी भरते हैं, उन्हें ही हम तो भैंसे समझते हैं। सेठ के उक्त अहंकार पूर्ण उपेक्षणीय वचनों को सुनकर माता के दिल में बड़ा ही रोष हुआ। बस, वे सत्वर वहां से अपने संघ में चली आई। संघ में आगत लोगों को जब यह मालूम हुआ कि संघ की अभिनेत्री पाटण में द्रव्य का इन्तजाम करने गई थीं और इस तरह की अनहोनी घटना घटी तो उन लोगों को भी अपार दुःखानुभव हुआ। उन्होंने मिलकर इतना बेशुमार द्रव्य माता के सामने रख दिया और कहा—हे धर्म माता! आपको जरुरत हो उतना द्रव्य काम में लीजिये। यह सब द्रव्य आप ही का है। किसी भी तरह का विचार या चिन्ता न करते हुए आप इसका स्वेच्छानुपूर्वक उपयोग कीजिये। माता उस द्रव्य में से ऋण लेकर अपना कार्य करती हुई क्रमशः भिन्नमाल के पास आपहुँची।

संघ के सानन्द निवृत्ति के समाचारों से भैंसाशाह के हर्ष का पार नहीं रहा। उन्होंने संघ का बड़े ही समारोह से स्वागत करके नगर प्रवेश करवाया और मातेश्वरी से कुशल-क्षेम के समाचार पूछे। माता ने कहा—वत्स! तुम्हारे जैसे सौभाग्यशाली मेरे सुपुत्र हों फिर यात्रा की कुशलता का कहना ही क्या,—बड़े ही आनन्द पूर्वक मैंने यात्रा करके अपना जीवन सफल किया है। भैंसाशाह ने पूछा माता मेरा नाम कहां तक प्रचलित है? माता ने कहा—'इस नगर के दरवाजे तक'। माता के इस शुष्क, नीरस किन्तु सत्य उत्तर से भैंसाशाह समझ गये कि माता को अवश्य ही मार्ग में तकलीफ उठानी पड़ी है। अतः सविस्मय उन्होंने अपनी जननी से पूछा—माता! यह क्या कह रही हो? इस पर उनकी माता ने पाटण का समस्त हाल कह सुनाया। भैंसाशाह को अपनी जननी के मुख से पाटण के श्रेष्ठी के उपेक्षणीय समाचारों को सुनकर अतिशय दुःख हुआ। उन्होंने इसका प्रतिकार करने का अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया।

एक दिन वीररत्न भैंसाशाह ने अपने व्यापारियों को इस गर्ज से पाटण भेजा कि वहां जाकर वे घृत और तेल की इतनी खरीदी कर लेवें कि वहां के व्यापारी किसी हालत में भी इतना घृत तेल नहीं तोल सके। मारवाड़ के व्यापारी तो व्यापार में इतने कुशल एवं प्रकृतितः इतने हिम्मत बहादुर होते हैं कि उनके मुकाबले में दूसरे व्यापारी तनिक भी नहीं ठहर सकते हैं।

तुम लोग जाकर शीघ्र ही अपनी मरु भूमि का गौरव एवं व्यापारिक कुशलाता का वहाँ ऐसा अक्षय परिचय दो कि मारवाड़ियों के व्यापार की छाप उन पर सर्वदा के लिये अंकित हो जाय। मरुधर वासियों की व्यापारिक कुशलता को वे लोग स्मृति विस्मृत न कर सकें।

ऐसे तो मारवाड़ी व्यापारी समाज स्वभावतः व्यापार निष्णात होती ही है, उस पर अपने सेठ की सर्व सुविधाजनक आज्ञा तो निश्चित ही उनको अपनी सर्वाङ्गीण योग्यता दिखलाने के लिये पर्याप्त थी। बस, मारवाड़ के कुशल व्यापारी मालिक भैंसाशाह की आज्ञा को पाकर पाटण में जाकर घृत-तेल की खरीदी करनी प्रारम्भ करदी। ज्यों २ खरीदी होती गई त्यों २ भाव भी बढ़ाते गये। पाटण के व्यापारियों ने जब खूब तेज भाव देखा तो अपने आस पास के ग्रामों के आधार पर अधिक माल देना कर दिया। शाह के व्यापारियों को भी अब पाटण के व्यापारियों को छकाने का अच्छा अवसर हाथ लग गया। बस, शाह के व्यापारियों ने जिन २ से माल लेना किया था उन्हें तो रकम देदी और निकटस्थ ग्रामों में अपने आदमियों को भेज कर सब माल तेजी के भाव से खरीदना प्रारम्भ कर दिया। अब तो पाटण के व्यापारियों को आसपास के ग्रामों से माल—घृत, तेल मिलना महामुश्किल होगया। इधर भाव में तेजी होजाने के कारण लोभवश समीपस्थ

ग्रामों के आधार पर जो माल देना किया था उसकी भी पाटण निवासियों को सप्लाई करना कठिन मालूम पड़ने लगा कारण पाटण के व्यापारियों को पहिले रुपये देकर फिर ग्रामों से माल खरीदना प्रारम्भ कर दिया अतः पाटण के व्यापारियों को ग्रामों का माल भी नहीं मिल सका। अब निश्चित मुद्दत पर पहिले लिये हुए रुपयों का घृत तेल देना भी उनके लिये विकट समस्या होगई।

इधर माल तोलने की मुद्दत भी निकट थी। उस समय रेलवे आदि का कोई साधन तो था ही नहीं कि जिसके आधार पर मुद्दत पर दूर देशों से माल मंगवा कर तोल देते। जब मैंसाशाह के व्यापारी माल तुलवाने के लिये आये तो पाटण के व्यापारियों ने जो थोड़ा बहुत माल इधर उधर से मंगवा कर इकट्ठा किया था सो ही फिलहाल तोलने के लिये तैय्यार होगये। इधर मैंसा शाह के व्यापारियों ने ग्राम के बाहिर नदी के अन्दर दो खड्डे तैय्यार करवाये और एक खड्डे में खरीद किया हुआ घृत और दूसरे खड्डे में तेल तोल २ कर डालने के लिये पाटण के व्यापारियों को कह दिया। यह देखकर पाटण के व्यापारीगण अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए कि लाखों करोड़ों रुपयों का घृत तेल इस प्रकार मिट्टी में डलवाने वाले ये समर्थ व्यापारी कौन हैं ? कारण यह तो उनके लिये एक दम नूतन एवं आश्चर्योत्पादक ही था। आज तक उन लोगों ने लाखों करोड़ों के माल को इतने तेज भाव में खरीद कर के उपेक्षादृष्टि से इस प्रकार मिट्टी में डालने वाले निश्चिन्त एवं शक्तिसम्पन्न व्यापारी को नहीं देखा था। और, जो माल उन व्यापारियों के पास हाजिर था उसे तोल, तोल कर नदी के किनारे इन खड्डों में भर दिया। शेष बहुतसा माल देना रह गया पर पाटण के व्यापारियों के पास अब अवशिष्ट रुपयों के देने का साधन कहां था ? बेचारे सब व्यापारी बड़ी आफत में फँस गये।

अपने पास किसी भी प्रकार से अवशिष्ट रुपयों का माल देने का समर्थ साधन न होने के कारण पाटण का व्यापारी-समाज हतारा एवं निरुत्साही हो मैंसाशाह के व्यापारियों के पास गया और उनसे पूछने लगे कि-आप लोगों का मूल निवास स्थान कहां का है ? आपने यह माल किसके लिये खरीदा है। रुपये देकर या लाखों करोड़ों के द्रव्य को व्यय करके आप लोग माल की खरीदी कर रहे हैं और इसे इस प्रकार नदी की मिट्टी में क्यों डलवाया जाता है ?

व्यापारियों ने उत्तर दिया—हम लोग स्वनाम धन्य वीरशिरोमणि व्यापारी समाज के अधिनायक, एवं वैभवशाली श्रीमान् मैंसाशाह के व्यापारी एवं मुनीम गुमास्ते हैं और उनकी आज्ञा से ही सब माल की खरीदी की गई है। उनका पुत्र इतना समर्थ है कि नदी की बालुका में डाला हुआ घृत और तेल उनकी दुकान में, जो मारवाड़ में है वहां पहुँच जाता है। जितना आप लोगों ने माल तोला है, उतना ही वहां पहुँच जायगा। शेष जो माल तोलना है वह जल्दी से ही तोल दीजिये जिससे हम शीघ्र ही हमारे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जावें पाटण निवासी आश्चर्य विमूढ़ हो विचार करने लगे कि न मालूम ऐसा कौनसा व्यापारी है जो इस प्रकार व्यापारिक कुशलता बतलाते हुए न माल खरीदी करते हुए किञ्चित् भी नहीं हिचकिचाता है। मुनीमों ने नागरिकों को आश्चर्य विमुग्ध देख कर स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि-शायद आप लोग जानते होंगे कि एक समय हमारे सेठजी की माता श्रीशत्रुञ्जय की यात्रार्थ संघ लेकर गई थी और पुनः लौटते हुए पाटण में भी एक दो दिन की स्थिरता की थी। खर्च के लिये द्रव्य समाप्त हो जाने से आपके यहां के किसी प्रतिष्ठित सेठि से कर्ज मांगा था इस पर कहा गया था कि-मैंसा तो हमारे यहाँ पानी भरता है उसी नरपुङ्गव मैंसाशाह के हम मुनीम हैं। अब आप देर न कीजिये और शीघ्र शेष माल तोल दीजिये कि हमको रुकना न पड़े।

अब तो पाटण के गुर्जर व्यापारियों की आँखें खुल गईं। उन व्यापारियों में सेठियाजी ईश्वर भी शामिल थे, उन्हें अपनी भूल स्पष्ट नजर आने लग गई। अब उनके पास कोई दूसरा साधन न होने से उन व्यापारियों से क्षमा मांगते हुए निवेदन किया कि-हमने आसपास के ग्रामों में भी माल लाने के लिये आदमी भेजे परन्तु आपने तो वहां से भी माल खरीद लिया अतः हम सब तरह से लाचार हैं। आप अपनी रकम वापिस

ले लीजिये और नफे नुक़सान के लिये जो आप हुक्म फरमावें हम नजर करने को तैय्यार हैं।

नरवीर भैंसाशाह के गुमाश्तों ने कहा—हमें नफा नुक़सान लेने की तो हमारे मालिक की इजाजत ही नहीं है और विना इजाजत के हम ऐसा करने के लिये पूर्ण लाचार हैं। हमें तो केवल माल ले जाने का ही आदेश है अत आप अपनी जवान एव इज्जत रखना चाहें तब तो किसी भी तरह जितना माल देना किया है उतना माल शीघ्र तोल दें। अब बेचारे वे लोग बड़े ही पशोपेश में पड गये कारण, उन्हें माल मिलने का कोई जरिया ही नहीं रहा। जहां २ माल था वहाँ २ से तो इन लोगों ने तेज भाव में भी खरीद लिया था अत जब जिले भर में ही माल न रहा तो वे लोग उन्हें सप्लाई भी कैसे करते ? किसी प्रकार का साधन न होने के कारण पाटण निवासियों ने एतद्विषयक बहुत अनुनय विनय किया परन्तु मुनीम, गुमास्तों के हाथ में भी क्या था कि वे नरवीर भैंसाशाह की विना इजाजत कुछ सैटल कर देते। अन्त मे पाटण के अग्रगण्य नेता मिलकर सब भिन्नमाल गये और वहा जाकर नरकेशरी भैंसाशाह से मिले। बहुत अनुनय विनय करने के पश्चात् उन लोगों ने उनकी माता के किये गये अपमान के लिये हार्दिक क्षमा—याचना की। तब भैंसाशाह ने कहा—आप हमारे स्वधर्मी बन्धु हैं। आपको इतना विचार तो करना था कि एक व्यक्ति सघ निकाल कर यात्रा करता है तो क्या आपसे कर्ज रूप मे ली हुई रकम को वह अदा नहीं कर सकेगा ? यदि उसके पास इतना सामर्थ्य न हो तो वह सघ यात्रा के लिये तैय्यार भी कैसे हो सकता है। यह तो किसी कारण से ऐसा सयोग प्राप्त होगया कि आपसे कर्ज लेने की आवश्यकता पड गई। खैर, स्वधर्मी बन्धु के नाते भी यदि आप कर्ज देने को तैय्यार न हुए तो कम से कम ऐसे अपमानजनक शब्द तो नहीं कहने थे। इसके सिवाय आपके पूर्वज भी इसी मरुभूमि से गुर्जर प्रान्त को गये तो आप लोग भी मूल मारवाड़ के ही निवासी हैं। अत अपनी मातृभूमि के गौरव को भी नहीं भूलना चाहिये था।" इस प्रकार मधुर किन्तु हृदयविदारक शब्दों को सुनकर पाटणियों ने अपनी प्रत्येक भूल स्वीकार कर मुहुर्मुहू क्षमा याचना की। इस पर वीर भैंसाशाह ने कहा कि—आपके गुजरात में भैंसे पर पानी लाने की जो प्रथा है उसे सर्वथा बद करवादें तो मैं आपको माफ कर सकता हूँ। पाटण के व्यापारीगण ने किसी भी तरह इस कर्ज से विमुक्त होने के लिये उपरोक्त शर्त को सहर्ष स्वीकार करली।

कई वशावलियों में यह भी लिखा है कि भैंसाशाह ने गुजरातियों की एक लाग खुलवाई थी जो आज पर्यन्त खुली ही रहती हैं। कई स्थानों पर ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि पाटण के मारवाड की ओर दरवाजे पर नररत्न भैंसाशाह की ऊचे पैर की हुई एक पाषाण की मूर्ति स्थापन की गई थी कि जिसके नीचे से पाटण के लोग निकले। खैर, कुछ भी हो, पाटण के व्यापारियों ने अपनी भूल के लिये भैंसाशाह से माफी जरूर मागी। पाटण बाहिर जिस नदी में तेल और घृत डाला गया था, उस नदी का नाम ही तेलिया नदी पड़ गया है। आज भी प्राय लोग इस नदी को तेलिया नदी के नाम से पुकारते हैं।

प्राचीनकालीन लोगों को इष्ट बल था, चारित्र शुद्धि थी, सत्य और ईमान पर बड़ी श्रद्धा थी, धर्म में सुदृढ़ता और गरीबों से सहानुभूति रखने रूप बड़ी ही दयालुता थी। यही कारण था कि वे लोग सहसा ही बडे २ कार्यों को कर गुजरते थे। नरवीर भैंसाशाह को देवी सच्चायिका का बड़ा इष्ट था इसी से पाटण की नदी में डाला हुआ घृत तेल माण्डवगढ की दुकान की घृत तेल की वापिकाओं में पहुँच जाता था।

श्रीमान चन्दनमलजी नागोरी, भैंसाशाह सम्बन्धी एक लेख में लिखते हैं कि माण्डवगढ़ में भैंसाशाह की घृत-तेल की वापिकाओं के खण्डहर आज भी कहीं २ दृष्टिगोचर होते हैं। माण्डवगढ़ में भैंसाशाह की घृत तेल की जगी दुकान होने का यह अच्छा प्रमाण है। हाँ, एक बात है कि श्रीमान् नागोरीजी के लेख में भैंसाशाह के समय में अवश्य अन्तर पड़ता है पर इसका कारण यह है कि आदित्यनाग गोत्रीय चोरडिया शाखा में भैंसाशाह नाम के चार व्यक्ति हुए हैं अत समय में भूल एव भ्रान्ति हो जाना स्वाभाविक ही है।

आचार्यश्री कक्कसूरि की महती कृपा से एक दिन का दुःखी भैंसाशाह परम ऋद्धि को प्राप्त हुआ और उस ऋद्धि बल से अनेक पुण्योपार्जन के कार्य किये। और भैंसाशाह ने जिस धन और जोश के साथ धर्म प्रचार कर शासन की प्रभावना की वह निश्चित ही वखाणनीय है।

पट्टावलीकार लिखते हैं कि श्रीमान् भैंसाशाह की माता संघ लेकर वापिस भीनमाल आई उस समय भैंसाशाह ने स्वामिवात्सल्य करके संघ को पहरावणी पहरावणी सुवर्ण मुद्रिकायें रत्न कर सहित मयों पुष्प पहरावनी दी थी। याचकों को तो इतना दान दिया कि उन्होंने आपकी शुभ कविता से मशहूर गुंजा दिया था।

मात थारी मत बात, पेय अब बात समर रे। कब पकड़ तोप काम धन माल मन बैठ करे॥
परगल थहे बिव बीन खजाना सुल्स परपे। पदत पारम भाप ईस पर मात पर्व पे॥
थाल मही मप पुत के भाषा ग्रन्थ ठर म दोपे। पर कर भैंसा पानी भरे, किम भैंसा मात कैसा पे।
पुत पुच्छे निज मात को, कुशल मात की बात। किम केमा तुम पुत्र का, नाम पसल सु प्रयात॥
उधर माता में दिया, नगर दुवार तुम नाम। ठगी बात दे मात को, भैंसा रहोम कियो काम॥
व्यापारी पठाण के थनीर किया थी तेल। पग देह सारा किया, प्रबल बुद्धि का खेल।
कोश मोश गांव में, दह माल भस तोल। हारिया गुजर वाणिका बोल्यो न पाछो बोल॥
मैंघ नीर कुहाविओ ब्लाम दुकार एक। धारदस सुत भैंसा भयो राखी मरुधर टेक॥
सप्पन कोटि गुजरात पात भय पडम प्रसिद्धि। सबाविक्रम प्रसिद्ध रहे स्थिर पे रिद्धि सिद्धि॥
नव खण्ड कुमोज नाप राव राणा सब आवे। ग्यारह सौ आठ हल कवि कीर्ति बखाणे॥
पहुंच गाउ मण्डप मुकुट सुभग सुघसे पोरपो। भैंसाम सेठ धारदस तणो, अपणा पोल निभाइयो॥

इत्यादि वंशावलियों में बहुत से कवित्त मिलते हैं पर स्थानाभाव से सबके सब यहां दिया नहीं जाता है तथापि उपरोक्त नमूना से ही पाठक अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

आचार्य देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली युग प्रवर्तक आचार्य हुए हैं आपका विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत था। उपकेशगच्छ के पूर्वाचार्य की पद्धति अनुसार आचार्यपद प्रतिष्ठित होने के बाद कम से कम एकबार तो मरुधर लाट कोंकण सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध पंजाब कच्छ शूरसेन मत्स्य आवंती मेदपाटादि प्रान्त में विहार करके धर्म प्रचार अवश्य किया करते थे तदनुसार आचार्य देवगुप्तसूरि भी प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर अपने आज्ञानुवर्ति साधुओं की सार संभाल श्रावकों को धर्मोपदेश तथा अजैनों को जैन बनाने में अच्छी सफलता प्राप्त की थी इस विहार के अन्दर जैसे अजैनों को जैन बनाते थे वैसे अनेक मुमुक्षुओं को भगवती दीक्षा दे उनका उद्धार किया तथा जैनधर्म की नींव मजबूत रखने को अनेक भावुकों के बनाये जैन मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी इसी प्रकार दर्शन शुद्धि के लिये कई स्थानों से आप स्वयं एवं आपके आज्ञानुवर्ति मुनिराजों ने तीर्थ यात्रार्थ संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा भी की थी। आपका जीवन पट्टावलीकारों ने बहुत विस्तार से लिखा था पर मैंने यहां स्थानाभाव से संक्षिप्त में ही लिखा है।

एक समय सूरीश्वरजी महाराज चन्द्रावती नगरी की विशाल परिषदा में व्याख्यान दे रहे थे उस समय एक महिक भाषी उस परिषदा का अपूर्व ठाठ और सूरिजी का व्याख्यान देखे तो बड़ा ही प्रेम सहसा बोल उठा है कि क्या आज का दिन उत्तम है कैसे हम लोगों के शुभ कर्मों का उदय है कि जैसे महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्करों का व्याख्यान होता है वैसे ही आज यहां पर पूज्य गुरुदेव का व्याख्यान हो रहा है इत्यादि।

तीर्थङ्करों के समवसरण की अनेक स्थानों पर रचना बनाई गई

नन्दीश्वर द्वीप की रचना फलोदी व नागोर में श्री संघ ने करवाई
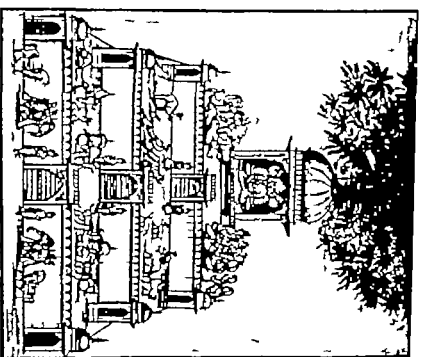
इस पर सूरीश्वरजी महाराज ने फरमाया कि महानुभाव ! आपका भाव कितने ही भक्ति का हो पर कोई भी बात अपनी मर्यादा में होती है तबतक ही शोभा देती है मर्यादा का उल्लंघन करने पर गुण भी अवगुण एव प्रशसा भी निंदा का रूप धारण कर लेती है क्योंकि कहा तो सर्वज्ञ तीर्थङ्कर भगवान् और कहां मेरे जैसा अल्पज्ञ ? तीर्थङ्कर भगवान् केवलज्ञान केवलदर्शन से लोकालोक के चराचर पदार्थों के भाव एक ही समय में हस्तामल की तरह देखते हैं तब मेरे जैसे अल्पज्ञ को प्राय कल की बात भी याद नहीं रहती है। अत आपने मेरी प्रशसा नहीं बड़ी भारी निन्दा की है और मैं इससे सख्त नाराज भी हू। आयन्दा से सब लोगों को खयाल रखना चाहिये कि कोई भी शब्द निकाले पर पहले उनको खूब सोचे समझे बाद ही मुँह से निकालें। प्रसगोत्पात में आज थोड़ासा तीर्थङ्कर देवों के व्याख्यान का हाल आपको सुना देता हूँ।

तीर्थङ्कर भगवान् अपने कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन द्वारा सम्पूर्ण लोकालोक के सकल पदार्थ को प्रगट हस्तामल की माफिक जाना देखा है उन तीर्थङ्करों की विभूतिरूप समवसरण अर्थात् जिस पवित्र भूमि पर तीर्थङ्करों को कैवल्य ज्ञानोत्पन्न होता है वहाँ पर देवता समवसरण की दिव्य-रचना करते हैं। जैसे वायुकुमार के देवता अपनी दिव्य वैक्रिय शक्ति द्वारा एक योजन प्रमाण भूमि मण्डल से तृण काष्ट काकरे कचरा धूल मिट्टी वगैरह अशुभ पदार्थों को दूर कर उस भूमि को शुद्ध स्वच्छ और पवित्र बना दिया करते हैं।

मेघकुमार के देवता एक योजन परिमित भूमि में अपनी दिव्य वैक्रिय शक्ति द्वारा स्वच्छ निर्मल शीतल और सुगन्धित जल की वृष्टि करते हैं जिससे बारीक धूल-रज उपशान्त हो सम्पूर्ण मण्डल में शीतलता छा जाती है। और ऋतु देवता अर्थात् षट् ऋतु के अध्यक्ष देव षट् ऋतु के पैदा हुए पाच वर्ण के पुष्प जो जल से पैदा हुये उत्पलादि कमल और थल से उत्पन्न हुए जाइ जूई चमेली और गुलाबादि वह भी स्वच्छ सुगन्धित और ढीचण (जानु) प्रमाण एक योजन के मण्डल में वृष्टि करते हैं और देवता उन पुष्पों द्वारा यथास्थान सुन्दर और मनोहर रचना करते हैं। यथा समवायग सूत्रे—

"जलथलय भासुर पभूतेण विठंठाविय दसदवण्णेण कुसुमेण जाणुस्सेहप्पमाण मित्ते पुप्फोवयारे किज्जई" प्रभु के चौंतीस अतिसय में यह अठारवा अतिशय है।

व्यन्तर देव अपनी दिव्य वैक्रिय शक्ति द्वारा मणि—चन्द्रकान्तादि रत्न-इन्द्र नीलादि अर्थात् पाच प्रकार के मणि रत्नों से एक योजन भूमि मण्डल में चित्र विचित्र प्रकार से भूमि पिठीका की रचना करते हैं।

पूर्वोक्त पाच प्रकार के मणि रत्नों से चित्र विचित्र मण्डित, जो एक योजन भूमिका है उस पर देवता समवसरण की दिव्य रचना करते हैं। जैसे—अभिंतर, मध्य, और बाहिर एव तीन गढ अर्थात् प्रकोट बना के उनको भीतों (दिवारों) पर सुन्दर मनोहर कोसी से (कागरों) की रचना करते हैं। जैसे कि—

(१) अभिंतर का प्रकोट रत्नों का होता है, उसपर मणि के कागरे और वैमानिक देव रचना करते हैं।
(२) मध्य का प्रकोट सुवर्ण का होता है, उसपर रत्नों के कागरे और ज्योतिषी देव रचना करते हैं।
(३) बाहिर का प्रकोट चादी का होता है, उसपर सोने के कागरे, और रचना भुवनपतिदेव करते हैं।

इन तीनों प्रकोटों की सुन्दर रचना देवता अपनी वैकयलब्धि और दिव्य चातुर्य द्वारा इस कदर करते हैं कि जिसकी विभूती अलौकिक है, उस अलौकिकता को सिवाय केवली के वर्णन करने को असमर्थ है।

समवसरण की रचना दो प्रकार की होती है। (१) वृत–गोलाकार (२) चौरास–जिस में वृताकार समवसरण का प्रमाण कहते हैं कि समवसरण की भींते ३३ धनुष ३२ अगुल की मूल में पहूली है, ऐसी छः भींतें हैं पूर्वोक्त प्रमाण से गिनती करने से दो सौ धनुष होती है और वह प्रत्येक भींत ५०० धनुष ऊची होती है।

भिंते और प्रकोट का अन्तर शामिल करने से ८००० धनुष अर्थात् एक योजन होता है।

अब प्रकोट ? के बीच में अतर बतलाते हैं कि चादी के प्रकोट और स्वर्ण के प्रकोट के बीच में ५००० सोवाणा अर्थात् पगोतिये होते हैं। प्रत्येक एक हाथ के ऊचे और पहूले होने से १२५० धनुष के हुए और दर-

जाने के पास ५ धनुष का परतर (सम जगह) एवं १३०० धनुष का अन्तर है। तथा स्वर्ण प्रकोट और रत्न प्रकोट के बीच में पूर्वोक्त १३०० धनुष का अन्तर है। मध्य भाग में २६०० धनुष का मणि पीठ है। दूसरी और १३००-१३० का अन्तर एवं २ ०-२६ । २६० । २६०० कुल ८०० धनुष अर्थात् एक योजन हुआ, और चांदी का प्रकोट के बाहर जो १० ० पगोथिये हैं वे एक योजन से अलग समझना। प्रत्येक गढ़ के रमणिय चार २ दरवाजे होते हैं। तथा भगवान के सिंहासन के भी १ ० पगोथिये होते हैं। भगवान् के सिंहासन के मध्य भाग से पूर्वादि चारों दिशाओं में दो दो कोस का अन्तर है वह चांदी का प्रकोट के बाहर का प्रदेश तक समझना। वृत (गोल) समवसरण की परिधी तीन योजन १३३३ धनुष एक हाथ और आठ अंगुल की होती है। इस प्रकार वृत समवसरण का प्रमाण कहा अब चौरस का प्रमाण करते हैं।

दूसरा चौरंस समवसरण की भींतें १००-१ ० धनुष की होती है, और चांदी सुवर्ण के अन्तर १५० धनुष का तथा स्वर्ण व रत्नों के प्रकोट का अन्तर १ धनुष का। एवं २५ ० धनुष। दूसरी तरफ भी २५०० व तथा मध्य पीठिका २६०० ध० और ४०० धनुष की चारों दिवारें। २५ । २५ । २६०० । ४०० । कुल आठ हजार धनुष अर्थात् एक योजन समझना। शेष प्रकोट दरवाजे पगोथिये वगैरह सर्वाधिकार वृत समवसरण के माफिक समझना।

अब प्रकोट (गढ़) पर चढ़ने के पगोथियों का वर्णन करते हैं। पहिले गढ़ में जाने को समभूमी से चांदी के गढ़ के दरवाजे तक दश हजार पगोथिए हैं, और दरवाजे के पास जाने से ५० धनुष का सम परतर आता है। दूसरे प्रकोट पर जाने के लिए ५ पांच हजार पगोथिये हैं। दरवाजे के पास ५० धनुष का सम परतर आता है और तीसरे गढ़ पर जाने के लिये ५ पगोथिये हैं। और उस जगह २६०० धनुष का मणिपीठ चौतरा है। उस मणिपीठ से भगवान् के सिंहासन तक जाने में दश हजार पगोथिए हैं।

समवसरण के प्रत्येक गढ़ के चार २ दरवाजे हैं। और दरवाजे के आगे तीन २ सोपान मणि रत्न (पगोथिये) हैं समवसरण के मध्य भाग में जो २६ धनुष का मणिपीठ पूर्व कहा है उसके ऊपर दो हजार धनुष का लम्बा चौड़ा और तीर्थङ्करों के शरीर प्रमाण ऊंचा एक मणिपीठ नामक चौतरा होता है कि जिस पर धर्मनायक तीर्थङ्कर भगवान् का सिंहासन रहता है। तथा धरती के तल से उस मणिपीठिका के ऊपर का तला ढाई कोस का अर्थात् धरती से सिंहासन ढाई कोस ऊंचा रहता है। कारण ५० । ५ ० । १ एवं बीस हजार सोपान हैं प्रत्येक एक २ हाथ के ऊंचे होने से ५ धनुष का ढाई कोस होता है।

अब अशोक वृक्ष का वर्णन करते हैं। वर्तमान तीर्थङ्करों के शरीर से बारह गुणा ऊंचा और साधिक योजन का लम्बा पहुला जिस अशोक वृक्ष की सघन स्निग्ध और सुगंधित छाया है तथा फल फूल पत्रादि लक्ष्मी से सुशोभित है। पूर्वोक्त अशोक वृक्ष के नीचे बड़ा ही मनोहर रमणिय एक देवछंदा है, उस पर चारों दिशा में सपाद पीठ चार रमणिय सिंहासन हुआ करते हैं।

उन चारों सिंहासन अर्थात् प्रत्येक सिंहासन पर तीन २ छत्र हुआ करते हैं, पूर्व सन्मुख सिंहासन पर त्रैलोक्यनाथ तीर्थङ्कर भगवान् विराजते हैं शेष दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशा में देवता तीर्थङ्करों के प्रतिबिम्ब (जिन प्रतिमा) विराजमान करते हैं। कारण चारों ओर रही हुई परिषदा अपने २ दिल में यही समझती हैं कि भगवान् हमारी ओर विराजमान हैं; अर्थात् किसी को भी निराश होना नहीं पड़ता है। समवसरण स्थित सब लोग यही मानते हैं कि भगवान् चतुर्मुखी अर्थात् पूर्व सन्मुख आप खुद विराजते हैं। शेष तीन दिशाओं में देवता भगवान् के प्रतिबिम्ब अर्थात् जिन प्रतिमा स्थापन करते हैं और वह चतुर्विध संघ को वन्दनीक पूजनीक भी है।

समवसरण के प्रत्येक दरवाजे पर आकाश में लहरें खाती हुई सपरवार से महत्वमान सुन्दर ध्वजा, छत्र चामर मकरध्वज और अष्टमङ्गलिक यानी स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त वर्धमान, भद्रासन कुंभकलश,

मच्छयुगल, और दर्पण एवं अष्टमंगलिक तथा सुन्दर मनोहर विलास सयुक्त पूतलियों पुष्पों की सुगन्धित मालायें, वेदिका और प्रधान कलश मणिमय तोरण वह भी अनेक प्रकार के चित्रों से सुशोभित है और कृष्णागार धूप घटीए करके सम्पूर्ण मण्डल सुगन्धिमय होते हैं। यह सब उत्तम सामग्री व्यन्तर देवताओं की बनाई हुई होती है।

एक हजार योजन के उत्तंग दंड और अनेक लघु ध्वजा पताकाओं से मण्डित महेन्द्रध्वज जिसके नाम धर्मध्वज, मणिध्वज, गजध्वज, और सिंहध्वज गगन के तला को उलांघती हुई प्रत्येक दरवाजे स्थित रहे। कुकुंमादि शुभ और सुगन्धी पदार्थों के भी ढेर लगे हुए रहते हैं। विशेष समझने का यही है कि जो मान कहा है, वह सब आत्म अङ्गुल अर्थात जिस जिम तीर्थङ्करों का शासन हो उनके हाथों से ही समझना।

समवरसण के पूर्व दरवाजे से तीर्थंकर भगवान् समवसरण में प्रवेश करते हैं, प्रदिक्षणा पूर्वक पादपीठ पर पॉव रखते हुए पूर्व सन्मुख सिंहासन पर विराजमान हो सबसे पहिले "नमो तित्थस्स" अर्थात् तीर्थ को नमस्कार करके धर्मदेशना देते हैं ? अगर कोई सवाल करे कि तीर्थङ्कर तीर्थ को नमस्कार क्यों करते हैं ? उत्तर में ज्ञात हो कि—

(१) जिस तीर्थ मे आप तीर्थंकर हुए इसलिए कृतार्थ भाव प्रदर्शित करते हैं। (२) आप इस तीर्थ में स्थित रह कर वीसस्थानक की सेवा भक्ति आराधन करके तीर्थंकर नामगौत्र कर्मोपार्जन किया इसलिये तीर्थ को नमस्कार करते हैं। (३) इस तीर्थ के अन्दर अनेक केवली या तीर्थङ्करादि उत्तम पुरुष एवं मोक्षगामी होने से तीर्थंकर तीर्थ को नमस्कार करे बाद अपनी देशना प्रारभ करते हैं। (४) साधारण जनता में विनय धर्म का प्रचार करने के लिये इत्यादि कारणों से तीर्थंकर भगवान् तीर्थ को नमस्कार करते हैं।

देशना सुनने वाली बारह परिषदा का वर्णन करते हैं, जो मुनि, वैमानिकदेवी, और साध्वी एवं तीन परिषदा अग्निकोण में—भवनपति, ज्योतीषी व्यंतर इनकी देवियों नैरूत्य कौण में–भवनपति, ज्योतीषी, व्यतर ये तीनों देवता वायव्य कौणमें, वैमानिकदेव, मनुष्य, मनुष्य स्त्रियों एव तीन परिषदा ईशान कोण में। अतएव बारह परिषदा चार विदिशा में स्थित रह कर धर्मदेशना सुनती हैं।

पूर्वोक्त बारह परिषदा से चार प्रकार की देवांगना और साध्वी एव पांच परिषदा खड़ी रह कर और चार प्रकार के देवता, नर, नारी और साधु एव सात परिषदा बैठकर धर्मदेशना सुने। यह बारह ही परिषदा सबसे पहिले, जो रत्नों का प्रकोट है, उसके अन्दर रह कर धर्मदेशना सुनती हैं।

पूर्वोक्त वर्णन आवश्यक वृति का है। फिर चूर्णीकारों का मत है कि मुनि परिषदा समवसरण में बैठ करके तथा वैमानिक देवी और साध्वी खड़ी रह कर व्याख्यान सुनती हैं। और शेष नव परिषदा अनिश्चितपने अर्थात् बैठकर या खड़ी रह कर भी तीर्थंकरों की धर्मदेशना सुन सके। तथा आवश्यक निर्युक्तिकारों का विशेष मत है कि पूर्व सन्मुख तीर्थंकर विराजते हैं। उनके चरण कमलों के पास अग्निकौन में मुख्य गणधर बैठते हैं और सामान्य केवली जिन तीर्थ प्रत्ये नमस्कार कर गणधरों के पीछे बैठते हैं उनके पीछे मन पर्यवज्ञानी उनके पीछे वैमानिक देवी, और उनके बाद साध्वियां बैठती हैं। और साधु साध्वियों और वैमानिक देवियों एवं तीन परिषदा, पूर्व के दरवाजे से प्रवेश होकर के, अग्निकौन में बैठे। भवनपति व्यन्तर व ज्योतीषियों की देवियों एवं तीन परिषदा दक्षिण दरवाजे से प्रवेश होकर नैरूत्य कौन में, पूर्वोक्त तीनों देव परिषदा पश्चिम दरवाजे से प्रवेश होकर वायु कौन में और वैमानिक देव नर व नारी एवं तीन परिषदा उत्तर दरवाजे से प्रवेश होकर के ईशान कौन में स्थित रह कर व्याख्यान सुने, पर यह ख्याल में रहे कि मनुष्यों में अल्पऋद्धि महा-ऋद्धि का विचार अवश्य रहता है। अर्थात् परिषदा स्वय प्रज्ञावान होती है कि वह अपनी २ योग्यतानुसार स्थान पर बैठ जाती हैं, परन्तु समवसरण में राग, द्वेष, इर्षा, मान, अपमान लेशमात्र भी नहीं रहता है।

दूसरे स्वर्ण के प्रकोट में तिर्यञ्च अर्थात् सिंहव्याघ्रादि, तथा हस सारसादि पक्षी जाति वैरभाव रहित,

शान्त चित्त से जिन देशना सुनते हैं। तथा ईशान कौन में देवरचित देवछंदा है। जब तीर्थंकर पहिले पहर में अपनी देशना समाप्त करने के बाद उत्तर के दरवाजे से उस देवछन्दे में पधारते हैं, तब दूसरे पहर में रत्नमी रचित सिंहासन पर विराजके तथा पादपीठ पर विराजमान हो गणधर महाराज देशना देते हैं।

तीसरे प्रकोट में हस्ती अश्व सुखपाल वायु रथ वगैरह सवारियों रखी जाती हैं, चौरस समवसरण में दो २ और वृत्त में एकेक सुन्दर वापियों हुआ करती हैं, जिसमें स्वच्छ और निर्मल जल रहता है।

प्रथम रत्नों के गढ़ के दरवाजे पर एकेक देवता हाथोंमें शस्त्र लिए प्रतिहार के रूप में खड़े रहते हैं।

(१) पूर्व दिशा के दरवाजे पर सुवर्ण कान्ति शरीर वाला सोमनामक वैमानिक देवता, हाथ में धनुष लेकर खड़ा रहता है।

(२) दक्षिण के दरवाजे पर गोर वर्णमय यम नामक व्यन्तर देव हाथ में दण्ड लेकर दरवाजे पर खड़ा रहता है।

(३) पश्चिम के दरवाजे पर रक्तवर्ण शरीर वाला वारुण नामक ज्योतिषी देव हाथ में पाश लेकर खड़ा रहता है।

(४) उत्तर के दरवाजे पर श्यामवर्णमय कुबेर (धनद) नामक भुवनपति देव हाथ में गदा लेकर खड़ा रहता है। ये चारों देव समवसरण के रक्षार्थ खड़े रहते हैं।

दूसरे सुवर्ण प्रकोट के प्रत्येक दरवाजे पर देवी युगल प्रतिहार के रूप में स्थित है, जिनके नाम जया, विजया अजिता अपराजिता, क्रमशः उनके शरीर का वर्ण स्वेत, अरुण, (लाल) पीत, (पीला) और नीला हाथ में अभय अंकुश पाश और मकरध्वज, नाम के शस्त्र (शास्त्र) हैं।

तीसरे चान्दी के प्रकोट के प्रत्येक दरवाजे पर प्रतिहार देवता होते हैं जिनके नाम तुम्बरु, खट्वांगी कपालिक और जटामुकुटधारी, इन चारों देवताओं के हाथ में छड़ी रहती है, और शासन रक्षा करना इनका कर्त्तव्य है।

तीर्थंकरों के समवसरण का शास्त्रों में बहुत विस्तार से वर्णन है, पर बालबोध के लिए आचार्यों ने लघु ग्रन्थ में सामान्य, (संक्षिप्त) वर्णन किया है। इस समवसरण की देवताओं का समूह अर्थात् इन्द्र के आदेश से चार प्रकार के देवता एकत्र होकर रचना करते हैं। अगर महाऋद्धि सम्पन्न एक भी देवता चाहे तो पूर्वोक्त समवसरण की रचना कर सकता है फिर अधिक का तो कहना ही क्या ? पर अल्पऋद्धिक देव के लिए भजना है-वह करे या न भी कर सके।

समवसरण की रचना किस स्थान पर होती है ? यह कहते हैं कि जहां तीर्थंकरों को कैवल्यज्ञानोत्पन्न होता है वहां नियमात्मक समवसरण होता ही है और शेष पहिले जहां पर समवसरण की रचना नहीं हुई हो अर्थात् जहां पर मिथ्यात्व का जोर हो अधर्म का साम्राज्य वर्त रहा हो पाखण्डियों की प्रबलता हो, ऐसे क्षेत्र में भी देवता समवसरण की रचना अवश्य करते हैं। और जहां पर महाऋद्धिक देव और इन्द्रादि भगवान को वन्दन करने को आते हैं वे देवता भी आवश्यकता समझे तो समवसरण की रचना करते हैं जिससे शासन का उद्योत, धर्म प्रचार और मिथ्यात्व का नाश होता है। शेष समय पृथ्वी पीठ और सुवर्णकमल की रचना निरन्तर हुआ करती है जिस पर विराजमान हो प्रभु देशना देते हैं—

इस प्रकार के समवसरण प्रत्येक तीर्थंकरों के एक केवलज्ञान उत्पन्न हो वहां और एक अन्यत्र एवं दो दो समवसरण तो होते ही हैं पर इस अवसर्पिणी काल में भ० ऋषभदेव के आठ समवसरण हुए कारण उस समय के लोग भद्रिक प्रकृति के थे और युगलधर्म को नजदीक समय में ही छोड़ा था अतः उनके लिये खास जरूरत थी तब भ० महावीर के शासन में १२ समवसरण हुए कारण उस समय मिथ्यात्व का जोर बहुत बढ़ा हुआ था यज्ञ वादियों की बड़ी प्रबलता थी। अतः आपके समवसरण हुए शेष २२ तीर्थंकरों के दो दो ही

हुए इत्यादि विस्तार से व्याख्यान करते हुए सूरिजी ने कहा महानुभावों ! तीर्थंकरों का व्याख्यान में दो प्रकार की लक्ष्मी-विभूति होती है १—बाह्य २—अभिन्तर । जिसमें बाह्य तो अष्ट महाप्रतिहार्य होते हैं और अभिन्तर में केवलज्ञान केवलदर्शन । उन लोकोत्तर महापुरुषों की अपेक्षा यहाँ अंश मात्र भी नहीं है । धन्य है उन महानुभावों को कि जिन्होंने तीर्थङ्कर भगवान् के समवसरण में जाकर उनका व्याख्यान सुना है इत्यादि सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर काफी प्रभाव हुआ और सब की भावना हुई कि श्रीतीर्थङ्कर भगवान के समवसरण में जाकर उनका व्याख्यान सुने ।

इस प्रकार आचार्य देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज ने २० वर्ष तक शासन की अति उच्च भावना से सेवा की आपने बहुत से मांस मदिरा सेवियों को उपदेश रूपी अमृत पान करवा कर जैनधर्म में दीक्षित किये बहुत मुमुक्षुओं को श्रमण दीक्षा दी और कईएकों श्रावक के व्रत दिये इनके अलावा जैनधर्म को स्थिर रखने वाले जिनालयों की प्रतिष्ठाएं करवाई तथा जन कल्याण की उज्ज्वल भावन को लक्ष में रख तीर्थों की यात्रार्थ बड़े बड़े संघ निकलवा कर भावुकों को यात्रा का लाभ दिया इत्यादि आपश्री के किये हुए उपकार को एक जिभ्या से कैसे कहा जासकता है खैर सूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में योग्य मुनि को सूरि बनाकर आप अन्तिम संलेखना एवं अनसन और समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये ।

पूज्याचार्य श्री के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएँ

१—नागपुर	के	चोरडिया	जाति के	शाह	पोमा ने	सूरिजी के पास	दीक्षाली
२—जाखोड़ी	के	पोकरणा	,,	,,	धर्मा ने	,,	,,
३—नन्दपुर	के	श्रेष्टि	,,	,,	सगण ने	,,	,,
४—कोरटपुरी	के	जाघड़ा	,,	,,	खेमा ने	,,	,,
५—पलडी	के	राखेचा	,,	,,	गोमा ने	,,	,,
६—दातरडी	के	सालेचा	,,	,,	खीवसीं ने	,,	,,
७—चन्द्रावती	के	आर्य्य	,,	,,	नोंधण ने	,,	,,
८—शिवपुरी	के	छाजेड़	,,	,,	खुमाण ने	,,	,,
९—ढेलीपुर	के	सुखा	,,	,,	चमना ने	,,	,,
१०—मालपुर	के	सुरंट	,,	,,	गोविन्द ने	,,	,,
११—राजपुर	के	भोपाला	,,	,,	भूता ने	,,	,,
१२—हापड़	के	विनायकिया	,,	,,	चूड़ा ने	,,	,,
१३—मानपुर	के	काग	,,	,,	प्हाद ने	,,	,,
१४—कुशमपुर	के	बोत्थरा	,,	,,	धोकल ने	,,	,,
१५—पाल्हिका	के	रांका	,,	,,	कुम्पा ने	,,	,,
१६—गुदडी	के	डिड्डू	,,	,,	देदा ने	,,	,,
१७—नारणपुर	के	कुम्मट	,,	,,	माधु ने	,,	,,
१८—रणथम्भोर	के	नाहटा	,,	,,	लाधा ने	,,	,,
१९—नरवर	के	संचेती	,,	,,	डूगर ने	,,	,,
२०—कीराटकुंप	के	पारख	,,	,,	फरमा ने	,,	,,
२१—वीरपुर	के	प्राग्वट	,,	,,	हुल्ला ने	,,	,,
२२—दान्तिपुर	के	,,	,,	,,	मेकरण ने	,,	,,

१३—पालनपुर	के	प्राग्वट	जाति के	शाह	पाता मे	सूरिजी के पास	दीक्षा
१४—सारडी	के	,,	,,	,,	रामा मे	,,	,,
१५—जयपुर	के	,,	,,	,,	राजा मे	,,	,,
१६—पद्मावती	के	श्रीमाल	,,	,,	दुर्गा मे	,,	,,
१७—भगवानपुर	के	,,	,,	,,	ईडू मे	,,	,,

आचार्यश्री के २० शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—मादड़ी	के	समदड़िया	जाति के	शाह	चोखाने	भ० महा०	के मन्दिर	की प्र०
२—माडुकड़ी	के	आर्य	,,	,,	अर्जुन मे	,, ,,	,,	,,
३—हीसोली	के	श्रेष्टि	,,	,,	वीरा मे	,, ,,	,,	,,
४—नागपुर	के	मंत्री	,,	,,	सारंग मे	,, पार्श्व०	,,	,,
५—चांचाणी	के	पारख	,,	,,	मेघा मे	,, ,,	,,	,,
६—रत्नपुर	के	तातेड़	,,	,,	नागदेव मे	,, ,,	,,	
७—नागु	के	बाफणा	,,	,,	भोमा मे	,, ,,	,,	,,
८—गोलु	के	करणेड़	,,	,,	कुम्भा ने	,, महा०	,,	,,
९—नागाणा	के	सालेचा	,,	,,	समर्थ मे	,, ,,	,,	,,
१०—खेड़ियाग्राम	के	चोरड़ा	,,	,,	माला मे	,, ,,	,,	,,
११—चम्पापुर	के	मठेवरा	,,	,,	गम्भीर मे	,, ,,	,,	,,
१२—खेवड़ी	के	बैदमूता	,,	,,	भोजा मे	,, आदीश्वर	,,	,,
१३—कम्मीपुरा	के	मढोवरा	,,	,,	देवा मे	,, ,,	,,	,,
१४—चंद्रावती	के	प्राग्वट	,,	,,	रोड़ा मे	,, ,,	,,	,,
१५—हाडिनगरी	के	श्रीमाल	,,	,,	देपाल ने	,, अजित०	,,	,,
१६—करणावती	के	श्रीश्रीमालिया	,,	,,	संखा मे	,, शान्ति	,,	,,
१७—महावीपुर	के	करणावट	,,	,,	जोगा मे	,, ,,	,,	,,
१८—देवीग्राम	के	कोटा	,,	,,	चतरा ने	नेमीनाथ	,,	
१९—मुग्धाग्राम	के	नाग	,,	,,	हरपाल मे	,, महा०	,,	
२०—वड़नगर	के	खजानची	,,	,,	द्वारका मे	,, ,,	,,	,,
२१—देराणपुरा	के	प्राग्वट	,,	,,	सी मे	,, ,,	,,	,,
२२—राजोली	के		,,	,,	भुणा मे	,, पार्श्व०	,,	,,
२३—शुभोली	के	,,	,,	,,	गोमा मे	,, ,,	,,	,,
२४—भरतपुर	के	श्रीमाल	,,	,,	मेवा मे	,, ,,	,,	,,
२५—पमपुर	के	,,	,,	,,	रामा मे	,, महावीर	,,	,,

आचार्यश्री के २० वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—उपकेशपुर	के	श्रेष्टि	जाति के	शाह सांगा मे	श्री शत्रुंजय का	संघ निकाला
२—माडव्यपुर	के	मंत्री	,,	प्रभु रघुवीर मे	,,	,,
३—नेमिनीपुर	के	सुचेन्ती	,,	केशवा मे	,,	,,
४—चन्द्रनगर	के	बाफणा	,,	शाह भाखर मे	,,	,,

सूरिजी के शासन में मन्दिरों की

५—चित्रकोट	के	तोडियाणी	,,	भोपा ने	,,	,,
६—उज्जैन	के	समदड़िया	,,	भोमा ने	,,	,,
७—चंदेरी	के	पोकरण	,,	दुर्जण ने	,,	,,
८—मथुरा	के	आर्य्य	,,	कचरा ने	,,	,,
९—चन्द्रावती	के	प्राग्वट	,,	लुथा ने	,,	,,
१०—लाठ्वपुर	के	मंत्री	जाति के	जुजार ने	सम्मेत शिखर का	
११—बनारसी	के	श्रेष्टि	,,	कुमार ने	,,	,,
१२—पद्मावती	के	श्रीमाल	,,	रावण ने	शत्रुञ्जय का संघ निकाला	
१३—रत्नपुर	के	छाजेड़	,,	भोमा ने	,,	,,
१४—राजपुर	के	चोरडिया	,,	धरण ने	,,	,,
१५—नागपुर	के	समदड़िया	,,	जैतसी ने	,,	,,

१६—नारायणगढ़ के डिडु जाति के शाह रत्नसी ने स० ११९४ का दुकाल में करोड़ द्रव्य व्यय किये।
१७—चन्द्रावती के प्राग्वट जाति के भाण ने सं० ११२२ का दुकाल में ,, ,,
१८—देवकीपाटण के श्रीमाल जाति के शाह भूता की पुत्री सिणगारी ने तालाब में एक लक्ष द्रव्य लगा।
१९—बेनातट के सचेती नरसी की माता रुकमणी ने एक बावड़ी बन्धाने में लक्ष द्रव्य लगाया।
२०—वीरपुर का श्रेष्टि जाति के मंत्री राघो युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२१—उच्चकोट का आर्य्य वीरम युद्ध में ,, ,, ,,
२२—उपकेशपुर का लघु श्रेष्टि थिरो ,, ,, ,, ,,
२३—नागपुर का चोरडिया पेथो ,, ,, ,, ,,
२४—नारदपुरी का प्राग्वट अमरो चार चौरासी घर आंगण बुलाकर पाच २ सुवर्ण मुद्रा श्राद्ध में दी।
२५—शिवपुर श्रीमाल शूरा ने सात बड़ यज्ञ (जीमणवार) कर संघ पूजा में सुवर्ण थाली दी।
२६—चित्रकोट पोकरणा कुम्मा ने चौरासी न्याति को अपने वहाँ बुलाकर सुवर्ण की कटियों पहरावणी में दी।

उनपचासवें पट्ट पारखवर, देवगुप्त सुरीश्वर थे।
सिद्धगिरी का संघ साथ में, भैंसाशाह अमेश्वर थे॥
अपमान किया माता का गुर्जर, बदला जिसका लीना था।
उद्योत किया सूरि शासनका, अमरनाम शुभ किना था॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के उनपचासवें पट्ट पर महान् प्रतिभाशाली देवगुप्तसूरीश्वर आचार्य हुए।

श्रीउपकेश गच्छ में खटकूप शाखा—आचार्यश्री कक्कसूरि के अनन्तर श्रीसिद्धसूरि नाम के आचार्य हुए। आप सूरि पद के योग्य सर्वगुण सम्पन्न शक्तिशाली आचार्य थे, पर खटकूप नगर के भक्त श्रावकों के अत्याग्रह से आप खटकूप नगर में कई वर्षों तक स्थिरवास करके रह गये। इस पर गच्छ के शुभचिन्तक श्रमणों ने विचार किया कि बिना ही कारण गच्छनायक आचार्य श्रीसिद्धसूरि एक नगर में स्थिरवास कर बैठ गये यह ठीक नहीं किया। इसका प्रभाव अन्य श्रमण समुदाय पर बहुत बुरा पड़ेगा कारण आज तक उपकेशगच्छाचार्यों ने अति विकट एवं दीर्घ विहार करके महाजन संघ का रक्षण पोषण एवं वर्धन किया है। अब इस प्रकार आचार्यश्री का एक नगर में स्थिर वास कर बैठ जाना उपकेशगच्छ के समाज में शिथिलता का पोषक है अतः अवश्य ही आचार्यश्री को भी प्रान्तीय व्यामोह छोड़ कर अपना विहार क्षेत्र विशाल बनाना चाहिये। उक्त आदर्श विचार श्रेणी से प्रेरित हो श्रमणगण मुनियों ने आचार्यश्री सिद्धसूरि से नम्रता पूर्वक प्रार्थना की—"प्रभो! क्षमा कीजियेगा हमें विवश हो आपश्री को एक स्थान पर स्थिरवास को देख कर कहना पड़ता है कि—आप सब तरह से समर्थ शक्तिवंत हैं। अतः पूर्वाचार्यों के अनुपम आदर्शों के अभिमुख होकर आपश्री को भी जिनधर्म की प्रभावना एवं मुनिसमुदाय पर आदर्श प्रभाव डालने के लिये अवश्य ही दीर्घ विहार रखना चाहिये"। इस विनम्र प्रार्थना पर सूरिजी ने न तो उत्तर दिया और न विहार ही किया। इस हालत में श्रमणों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"आपको हर एक दृष्टि से विहार क्षेत्र की ओर कदम बढ़ाना चाहिये अन्यथा हमें आपश्री के स्थान पर दूसरा आचार्य निर्वाचित करना पड़ेगा।" इस पर भी सूरिजी ने किञ्चित् भी उत्तर नहीं दिया अतः श्रमण संघ ने परस्पर परामर्श कर देवचिमल नाम सुयोग्य मुनि को सूरिपद से अलंकृत कर आपका नाम श्रीसिद्धसूरि रख दिया। खटकूप नगर में रहने वाले सिद्धसूरि और उनके शिष्य गण के सिवाय अखिल गच्छ का संचालन कार्य नूतन सिद्धसूरि करने लगे—जो गच्छ का भार वहन करने में सर्वथा समर्थ थे।

खटकूप नगर में रहने वाले सिद्धसूरि की आज्ञा में भी बहुत से साधु साध्वी थे पर वे अपने अन्तिम समय में किसी को भी अपना पट्टधर नहीं बना सके अर्थात् बिना सूरि पद अर्पण किये ही आप अकस्मात् स्वर्गवासी होगए। अतः आपके विद्वान् शिष्य पद्मप्रभ ने स्वर्गीय सिद्धसूरि के गच्छ का सब भार अपने ऊपर लेकर उसका यथानुकूल संचालन करने लगे।

यह तो आप अच्छी तरह पढ़ते आ रहे हैं कि अब तक उपकेश गच्छ में जितने भेद, एवं शाखाएँ पृथक् २ हुए हैं इनमें (समुदाय विभिन्नत्व में) अधिक सहायता श्रावक लोगों की ही है। खटकूप नगर के श्रावक यदि सिद्धसूरि का पक्ष नहीं करते तो इस शाखा का प्रादुर्भाव ही नहीं होता पर काल को ऐसा ही अभीष्ट था। जैसे भिन्नमाल के संघ ने मुनि कुंकुंद का पक्ष कर उनको आचार्य बना दिया तो उपकेश गच्छ में दो शाखाएँ होगई। इसी प्रकार खटकूप नगर के श्रावकों ने सिद्धसूरि का पक्ष किया तो कुंकुंद शाखा के भी दो टुकड़े होगये। एक भिन्नमाल की शाखा दूसरी खटकूप की शाखा। इतना सब कुछ होने पर भी उस समय इतनी मर्यादा तो अवश्य ही थी कि बिना किसी अनुशासन और बिना किसी योग्य पुरुष द्वारा पद दिये कोई अपने आप आचार्य नहीं बन सकता था। यही कारण था कि सिद्धसूरि के पट्ट पर कोई योग्य आचार्य नहीं बना। केवल पद्मप्रभ मुनि ने ही उस गच्छ का सब उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

एक समय पद्मप्रभ भ्रमण करते हुए मथुरा नगरी की ओर पधारे। वहां किसी नागभट्ट नाम के प्रभावक व्यक्ति ने भारतचन्द्र (दिगम्बर) मुनि के पास दीक्षा ली और नगर के बाहर सिद्धान्ताभ्यास कर रहा था जिसको मुनि पद्मप्रभ ने देखा। उस नम्र मुनि को होनहार समझ कर पद्मप्रभ ने उन्हें उपदेश दिया एवं श्वेताम्बर दीक्षा से दीक्षित कर लिया। कालान्तर में नागमुनि को सर्वगुण सम्पन्न गच्छ धुरन्धर समझ कर सिद्धसूरि के पट्टधर उन्हें सूरि बनाकर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। आचार्य कक्कसूरि ने

गृहस्थों को श्रमण दीक्षा देकर अपने गच्छ में श्रमण समुदाय की पर्याप्त वृद्धि की। दीक्षा के इच्छुक उक्त भावुकों में कृष्णार्षि नामका एक प्रज्ञाशील, तप शूरा विप्रश्रमण भी था। कृष्णार्षि तेजस्वी एव सर्व कलाकुशल था पर दुर्भाग्य वशात् आपकी दीक्षानन्तर कुछ ही समय में आचार्यश्री कक्कसूरि का स्वर्गवास होगया। अत आप उनकी सेवा का ज्यादा लाभ न उठा सके। उस समय यक्षमहत्तर मुनि अपनी वृद्धावस्था के कारण खटकूपनगर में ही स्थिरवास कर रहते थे। अत कृष्णर्षि आचार्यश्री के देहावगमनानन्तर शीघ्र ही चल कर यक्षमहत्तर मुनि के पास आगये। थोड़े समय पर्यन्त वीर मन्दिरस्थ यक्षमहत्तर मुनि की सेवा में रहते हुए कृष्णार्षि ने उपसपदादि करणीय क्रियाओं का अनुष्ठान किया पर कुछ ही काल के पश्चात् यक्षमहत्तर मुनि अपने गच्छ का सम्पूर्ण भार कृष्णार्षि को सौंप कर अनशन पूर्वक स्वर्ग पधार गये।

कृष्णार्षि ने देवी चक्रेश्वरी के आदेशानुसार चित्रकूट में जाकर किसी आचार्य के पास अपने एक शिष्य को पढ़ाया। उसको सब तरह से योग्य व सर्वगुण सम्पन्न बनाकर आचार्य पद पर स्थापित कर दिया। परम्परानुसार आपका नाम देवगुप्त सूरि निष्पन्न किया। जब गच्छ का सम्पूर्ण भार देवगुप्तसूरि ने सम्भाल लिया तो कृष्णार्षि स्वतत्र होकर विहार करने लगे। आप ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक समय नागपुर में पधारे नागपुर निवासियों ने आपका बहुत ही शानदार स्वागत किया। आपने भी अपना प्रभावशाली वक्तृत्व प्रारम्भ रक्खा। जन समाज बड़े ही उत्साह से प्रति दिन व्याख्यान में उपस्थित होने लगी। आप बड़े ही विद्यावली एव चमत्कारी महात्मा थे। अत अपनी चमत्कार शक्ति के अनुपम प्रयोग से नागपुर निवासी सेठ नारायण को जैनधर्म की ओर आकर्षित करके उनके ४०० कुटुम्बियों को जैनधर्मानुयायी बना लिये। श्रेष्टि वर्यश्रीनारायण तो कृष्णार्षि का पूर्ण भक्त बन गया। वास्तव में सर्वत्र चमत्कार को ही नमस्कार किया जाता है। कृष्णार्षि के अनुपम उपदेश को श्रवण करने से नारायण के हृदय में जैन मन्दिर बनाने की पवित्र एव नवीन भावना ने जन्म ले लिया। अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने में जिन मन्दिर निर्माण को ही उन्होंने सर्वोत्तम साधन समझा। बस, उक्त भावना से प्रेरित हो वह समय पाकर कृष्णार्षि से प्रार्थना करने लगा—गुरुदेव ! मेरी भावना एक जिन मन्दिर बनवा कर द्रव्य का सदुपयोग करने की है।

कृष्णार्षि—'जहासुह" श्रेष्टिवर्य ! मन्दिर बनवा कर दर्शनपद की आराधना करना श्रावकों का परम कर्तव्य है। पूर्वकालीन अनेक उदार नररत्नों ने जैन मन्दिरों का निर्माण करवा कर पुण्य सम्पादन करने के साथ ही साथ अपने नाम को भी अमर कर दिया। मन्दिर एक धर्म का स्तम्भ है, यह महान् पुण्योपार्जन कारण एव अनेक भावुकों के कल्याण का साधन है। इस कार्य में जरासा भी विलम्ब करना बहुत विचारणीय है।

श्रेष्टि ने भी गुर्वाज्ञा को 'तथास्तु' कह कर शिरोधार्य कर लिया। अपने मनोगत भावों की सिद्धि के लिये बहुमूल्य भेंट को लेकर वहा के राजा के पास गया और मन्दिर के लिये भूमि की प्रार्थना करने लगा राजा पर श्रेष्टि का अच्छा प्रभाव था अत राजा ने कहा—श्रेष्टिवर्य ! तुम बहुत ही भाग्यशाली हो जो जन कल्याणार्थ मन्दिर बनवाकर आत्म कल्याण कर रहे हो। इस आत्म कल्याण के कार्य में मेरी ओर से तुम्हें भूमि के लिये छूट है। मन्दिर के लिये तुम्हें जो स्थान योग्य मालूम पड़े—तुम प्रसन्नता के साथ आवश्यकतानुकूल परिमाण में ले सकते हो। इस परम पुण्यमय कार्य में इतना हिस्सा तो मेरा भी रहने दो। भूमि के लिये लाई हुई इस भेंट को पुन लेजाओ। सेठ ने अत्यन्त कृतज्ञता पूर्वक राजा के हार्दिक भावों का अभिनन्दन किया। वह वंदन कर अपने घर आया और अपने गुरुश्री से इस विषय में परामर्श कर नागपुर के दुर्ग में मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया। जब क्रमश मन्दिर तैय्यार होगया तो नारायण सेठ ने कृष्णार्षि से प्रार्थना की प्रभो ! मन्दिर तैय्यार होगया है। अत इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हमें कृतार्थ करें। आपश्री के मन्त्रों से तो पाषाण भी पूजनीय बन जाता है।

कृष्णार्षि ने कहा कि हे—भाग्यशाली ! तुमने बड़ा ही उत्तम कार्य किया है। जब मन्दिर तैय्यार हो

गया तो प्रतिष्ठा भी अच्छी ही होनी चाहिये पर श्रेष्ठिवर्य ! हमारे पूज्य आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी अभी गुर्जर प्रान्त में विचरते हैं अतः प्रतिष्ठा भी उन्हीं पूज्य पुरुषों के हाथ से होना अच्छा है। तुम आचार्यश्री को आमन्त्रणपत्र भेज कर यहां बुलाने का प्रयत्न करो। गुरु के वचनों को विनयपूर्वक स्वीकार कर सेठ नारायण ने अपने पुत्रों को प्रार्थना पत्र के साथ आचार्यश्री की सेवा में गुर्जर प्रान्त की ओर भेजा। उन्होंने आचार्यश्री के निर्दिष्टस्थान पर जाकर सूरिजी को प्रार्थना पत्र दिया व नागपुर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी लाभ का कारण सोचकर प्रार्थना को स्वीकार करली। आचार्यश्री जब क्रमशः विहार करते हुए नागपुर पधारे तो वहां के श्रीसंघ एवं नारायण सेठ ने आपका भव्य स्वागत समारोह किया। तदनन्तर शुभमुहूर्त में सूरिजी एवं कृष्णर्षि ने सेठ के मन के मनोरथ को पूरी करने वाली महामांगलिक प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की पर्याप्त प्रभावना हुई। श्रेष्ठिवर्य नारायण का बनवाया हुआ मन्दिर इतना विशाल था कि उस मन्दिर की व्यवस्था के लिये ७२ पुरुष व ७२ स्त्रियां सभासद निर्वाचित किये गये। इससे यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उस समय स्त्रियां भी मन्दिरों की सार सम्भाल में सभासद के रूप चुनी जाती थीं।

मुनि कृष्णर्षि जैसे उत्कृष्ट तपस्वी थे वैसे विद्यामन्त्र में भी परम निपुण थे। आपने सपादलक्ष प्रान्त में परिभ्रमन करके जैन धर्म का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित कर दिया। क्या राजा और क्या प्रजा ? सब ही आपकी ओर आकर्षित थे।

मुनि कृष्णर्षि ने कठोर तप के प्रभाव से बहुत सी लब्धियां प्राप्त करली थी। आपने अपने लब्धि प्रयोग से गिरनार मण्डन भगवान् नेमिनाथ के दर्शन कर गुडाग्राम होते हुए मथुरा नगरी के पार्श्वनाथ के दर्शन किये। पश्चात् क्षीर समुद्र के जल सदृश दुग्ध क्षीर से पारणा किया।

एकदा कृष्णर्षि ने आचार्यश्री देवगुप्तसूरि से प्रार्थना की—पूज्यवर ! आप अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को सूरिमन्त्र की आराधना करवा कर पट्टधर बना दीजिये। इससे गच्छ परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रहेगी। कारण आचार्यश्री कक्कसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् भी कई वर्षों तक पट्ट खाली रहा फिर भी अन्य गच्छियों से आपको सूरिपदारोपन करवाया अतः आप अपनी मौजूदगी में ही योग्य मुनि को सूरिपदारूढ़ करदें तो भविष्य के लिये हितकर होगा। आचार्यश्री देवगुप्तसूरि ने कृष्णर्षि की बात को यथार्थ समझ कर अपने पट्टपर मुनि अमरसिंह को सूरि मन्त्र की आराधना करवा कर अपना पट्टधर बना लिया। परम्परानुसार आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया। सिद्धसूरि ने भू भ्रमण कर कई नर नारियों को दीक्षा देकर गच्छ को खूब वृद्धि की। श्रीसिद्धसूरि ने भी अपने वीरदेव नाम के शिष्य को सूरि बनाकर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। कक्कसूरि ने अपने शिष्य वासुदेव को सूरि बनवा कर उनका नाम श्रीदेवगुप्तसूरि निष्पन्न किया। इस प्रकार इस शाखा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई पर कलिकाल के इस क्रूर साम्राज्य में एक गच्छ की इस प्रकार वृद्धि होना प्रकृति से असह्य था। परिणाम स्वरूप आचार्यश्री देवगुप्त सूरि के स्थान पर सिद्धसूरि हुए। आप एक समय अमरपुरी सदृश सम्पत्तिशाली चम्पावती नगरी में पधारे। श्रीसंघ ने आपका बहुत ही समारोह पूर्वक शानदार स्वागत किया। आपका व्याख्यान हमेशा होता था जिसका जन समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ता था। एक समय आचार्यश्री सिद्धसूरि के शरीर में असह्य वेदना उत्पन्न होगई। आपश्री के शरीर की चिन्तनीय हालत को देख कर श्रीसंघ ने आग्रह किया—पूज्यवर ! आप चिरकाल तक शासन की सेवा करते रहें यह हमारी शुभ भावना है फिर भी अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को पट्टधर बनावें तो अच्छा है। श्रीसंघ की उक्त प्रार्थना पर सूरिजी ने विचार किया शरीर का क्या विश्वास है ? यदि श्रीसंघ का ऐसा आग्रह

[illegible] देवी चक्रेश्वरी के आदेश से श्रीडि नारायण की [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] हुई। [illegible] वाद [illegible] करते हैं। [illegible] है। इनकी परम्परा में [illegible] हुआ।

है तो मेरा भी कर्तव्य है कि मैं अपने पट्टपर किसी योग्य मुनि को पट्टधर बना दूं। बस, श्रीसंघ की समुचित प्रार्थना को मान देकर शुभ मुहूर्त में अपने सुयोग्य शिष्य हर्षविमल को सूरिजी ने सूरि पदारूढ़ कर दिया। परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। अपने पास में साधुओं की अधिकता होने से कक्कसूरि को आसपास में विहार करने की आज्ञा दे दी। सूरिजी के आदेशानुसार नूतनाचार्य भी कई मुनियों के साथ विहार कर गये। कालान्तर में श्रीसिद्धसूरिजी पुण्य कर्मोदय से सर्वथा रोग विमुक्त होगये पर नूतनाचार्य कक्कसूरि वापिस आकर आचार्यश्री से न मिले इससे सिद्धसूरिजी ने अपने पास के साधुओं को भेजकर कक्कसूरि को बुलवाये पर वे गच्छ नायकजी के बुलवाये जाने पर भी सेवा में उपस्थित न हुए। इस हालत में सूरिजी के हृदय में शंका पैदा हुई कि—मेरी मौजूदगी में भी इनकी यह प्रवृत्ति है तो मेरे बाद ये गच्छ का निर्वाह कैसे करेंगे ? अब पुनः गच्छ के समुचित रक्षण के लिये नूतन आचार्य बनाना चाहिये। बस, श्रीसंघ के परामर्शानुसार आपश्री ने अपने विद्वान् एवं योग्य शिष्य श्रीमेरुतिलकोपाध्याय को सूरि पद प्रदान कर उनका नाम कक्कसूरि रख दिया। तत् पश्चात् आचार्यश्री सिद्धसूरि अनशन पूर्वक चन्द्रावती में स्वर्गस्थ होगये।

इस समय सिद्धसूरि के दो पट्टधर होगये थे। उन दोनों का ही नाम कक्कसूरि ही था। पहिले सूरि बनाये गये कक्कसूरि की शाखा चन्द्रावती की शाखा और बाद में बनाये कक्कसूरि की मूल खटकुंप शाखा ही रही। इन दोनों शाखाओं के आचार्यों की पट्टपरम्परा कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि के नाम से चली आरही है। चन्द्रावती की शाखा कहां तक चली—इसका पता नहीं पर खटकुंप नगर की शाखा तो नगी पौसालों के नाम से बीसवीं शताब्दी में भी विद्यमान है। खेतसीजी और खीवसीजी नाम के दो यति अच्छे विद्वान एवं प्रसिद्ध इस शाखा में थे। आपकी गादी पर एक यति इस समय भी मौजूद है। इन सिद्धसूरि की सन्तान परम्परा के कई आचार्यों ने मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई जिनके शिला लेख मिलते हैं। अस्तु।

आचार्य श्री कक्कसूरि—मारोट कोट नगर में जोइया (क्षत्रिय) वंश का काकू नाम का माण्डलिक राजा राज्य करता था। उसने अपने प्राचीन किले प्रकोट को, अपनी विशाल बल वृद्धि के लिये व दृढ़ दुर्ग बनाने के हेतु नींव के लिये भूमि खुदवाई। नींव से भगवान् नमिनाथ की विशाल मूर्ति निकल आई। प्रभु प्रतिमा को भूगर्भ से निकली हुई देख राजा की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उसको भविष्य का शुभ शकुन समझ राजा ने विद्वान ज्योतिषी को बुला कर इस विषय में पूछताछ की तो उन्होंने कहा—राजन् कार्यारम्भ में प्रभु प्रतिमा से बढ़कर और क्या शुभ शकुन हो सकता है ? यह तो नगर के व आपके लिये परमहित, सुख, क्षेम एवं कल्याण का कारण है। इस प्रकार अपने मनको पूर्ण संतुष्ट कर राजा ने नागरिकों को बुलवा कर कहा—हमारे सुकृतोदय से प्रत्यक्ष भगवान की प्रतिमा प्रगट हुई है। अतः इसे आप सम्भालें और मेरे द्रव्य से मन्दिर बनवा कर प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा करवावें। श्रावकों ने बड़े ही हर्ष के साथ राजा के आदेश को शिरोधार्य कर लिया। बस, शुभमुहूर्त में शिल्पज्ञ कारीगरों को बुला कर मन्दिर बनाने की आज्ञा दी। कारीगरों ने बृहत् संख्या में मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया और क्रमशः वह निर्विघ्न सम्पन्न भी होगया। मन्दिर बनाने में विशेषता यह थी कि राजा व अन्तःपुर समाज भी अपने महल में रह कर प्रभु प्रतिमा का दर्शन निर्विघ्नतया कर सकता था।

इसी सुअवसर पर आचार्यश्री कक्कसूरिजी का पधारना सिंध प्रान्त में होगया। आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचारों को प्राप्त कर राजा की ओर से प्रधान मंत्री और नगर के नागरिक सूरिजी की सेवा में हाजिर हुए। उन्होंने अपने मारोटकोट नगर के सब हाल कह कर प्रतिष्ठा के लिये आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी लाभ का कारण सोचकर श्रीसंघ की प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार करली। आप तत्क्षण मारोट कोट, उक्त प्रार्थनानुसार पधार भी गये। राजा आदि नागरिकों ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। राजा के अत्याग्रह से सूरिजी ने शुभमुहूर्त में बड़े ही समारोह से नेमिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। राजा

की ओर से भगवान् की भक्ति के लिये परिकर व पूजा की सर्वोत्तम सामग्री का यथोचित प्रबन्ध कर दिया गया। उस समय मारोटकोट में श्रावकों के चार सौ घर तथा पांच पौषधशालाएं थी। इससे अनुमान किया जाता है कि मारोटकोट एक समय जैनियों का केन्द्र स्थान था। जैनियों की इतनी विशाल आबादी के अनुसार मारोटकोट में इसके पूर्व भी कई मन्दिर * होंगे ऐसा अनुमान किया जाता है।

मारोटकोट के राजा के बनवाये मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाने से राजा प्रजा पर जैनधर्म का खूब ही प्रभाव पड़ा। यथा राजा तथा प्रजा की लोकोक्त्यानुसार राजा ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो प्रजा के लिये कहना ही क्या था ?

सूरिजी मारोटकोट की प्रतिष्ठा के पश्चात् भ्रमन करते हुए राजपुर्रा में पधारे। वहां भी आपका व्याख्यान हमेशा हुआ करता था। वहां के राजा सुरदेव भी हमेशा आपके व्याख्यान में आया करते थे। सूरिजी ने एकदा मन्दिर बनवाने के कल्याणकारी पुन्य एवं भविष्य के लाभ को बतलाते हुए फरमाया कि—जबतक मन्दिर यावत् बना रहता है वहां तक श्रावक समुदाय उनकी सेवा पूजा किया करता है। उनके इस लाभ का परिकिच्छित भाग मन्दिर बनाने वाले को भी मिलता है। इसके स्पष्ट करण के लिये मारकोट के राजा का ताजा उदाहरण सुनाया जिससे राजा सुरदेव की इच्छा भी अपनी ओर से मन्दिर बनवाने की होगई। उसने श्रावकों को बुलवा कर अपने निजके द्रव्य से भगवान् शान्तिनाथ के मन्दिर को बनाने की आज्ञा प्रदान करदी। बस, फिर तो देर ही क्या थी ? श्रावकों ने यथा क्रम शीघ्र ही मन्दिर तैय्यार करवा दिया। जब मन्दिर अच्छी तरह से तैय्यार होगया तो राजा ने सूरिजी को बुलवा कर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। इस शुभ काम में राजा ने स्वराजकीय प्रभावानुसार पुष्कल द्रव्य व्यय किया और आने वाले स्वधर्मी बन्धुओं की अच्छी प्रभावना की।

सूरिजी बड़े ही दीर्घदर्शी थे। अतः आपश्री ने पूर्वोक्त दोनों मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाकर उन भूपतियों को ऐसा उपदेश दिया कि प्रति वर्ष उन दोनों की ओर से अपने २ मन्दिर में अष्टाह्निका महोत्सव भी होने लगा। राजा ने सूरिजी के सर्व अनुकूल वचनों का देव वाणी के अनुसार सादर स्वीकार कर लिया।

आचार्यश्री कक्कसूरि के पास एक शान्ति नामका मुनि था। वह जैस विद्वान एवं वक्तृत्वकला में निपुण था वैस धर्माभिमानी भी था। कभी २ सूरिजी के साथ भी वाद करता था पर वह वाद केवल शुष्कवाद नहीं था अपितु परमार्थिक रहस्य को लिये हुए रहता था। एक दिन गुरु शिष्य मन्दिर के विषय में बातें कर रहे थे, इतने में सूरिजी ने पूछा—शान्ति ! तू भी किसी राजा को प्रतिबोध देकर मन्दिर बनवायगा ? इसके उत्तर में शान्ति ने तुरन्त उत्तर दिया—गुरुदेव ! यदि मैं किसी राजा को प्रतिबोध देकर मन्दिर बनवाऊंगा तो प्रतिष्ठा करने को तो आप पधारोगे न ? सूरिजी ने कहा—बेशक ! बस फिर तो था ही क्या शान्ति मुनि ने सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार कर दिया। क्रमशः त्रिभुवनपुर्रा में जाकर वहां के राजा को प्रतिबोध दिया। धर्मोपदेश देते हुए मन्दिर के विषय को मुख्य रक्खा। जैन मन्दिर बनवाने के अनन्य पुन्योपार्जन करने के

* सिंध के कोट नाम से चूरमें के देविवाल भगवान की जैन प्रतिमा मिली इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि एक समय सिन्ध प्रांत में जैनधर्म राजाओं का धर्म रहा था। आचार्यश्री यक्षदेवसूरि और कक्कसूरि के जीवन पर से स्पष्टया बतला जाता है कि—सिन्ध प्रान्त में बहुत राजा प्रजा का धर्म जैनधर्म ही था। आगे चलकर हम इस विषय में बतलायेंगे कि—विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में सिन्ध प्रान्त में केवल एक उपकेश गच्छीय श्रावक के अधिकार में पांच सौ मन्दिर थे। चौदहवीं शताब्दी तक सिंध में मुसलमान जैसे इतनी जाति [illegible] कर सकते थे। मुसलमानों के अत्याचार से सिंध प्रान्त का त्याग कर श्रावक लोग मरुधरादि प्रान्तों में चले गये थे। दूसरे मुनियों के विहार का भी अभाव होने इसी से प्रायः सिंध प्रान्त जैन समाज विहीन होगई है।

दृष्टान्त, उदाहरण बतलाये। राजा ने मुनि शान्ति के उपदेश को हृदयङ्गम कर अपने दुर्ग में एक मन्दिर बनवाया। जब मन्दिर तैयार होगया तो राजा ने शान्ति मुनि को बुलवाकर कहा—गुरुदेव ! मन्दिर तैय्यार है इसकी प्रतिष्ठा करवाइये। मुनि ने कहा—राजन् ! प्रतिष्ठा तो हमारे आचार्य ही करवा सकते हैं। आप आचार्यश्री कक्कसूरि को बुलवाइये। इस पर राजा ने अपने प्रधान पुरुषों को भेजकर सूरिजी को बुलवाया। जब सूरिजी त्रिभुवनदुर्ग में पधारे तो राजा, प्रजा एवं शान्ति मुनि ने गुरुदेव का भव्य स्वागत किया। शान्तिमुनि ने सूरिजी से अर्ज की, आचार्य देव ! मन्दिर तैय्यार है, प्रतिष्ठा करावें। सूरिजी ने धर्म स्नेह से कहा—शान्ति ! तू भाग्यशाली है।

सूरिजी ने शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में प्रतिष्ठा करवाकर जैनधर्म की पर्याप्त प्रभावना की। सूरिजी के प्रखर प्रभावर्धक उपदेश से राजा ने अपने राज्य में सर्वत्र अहिंसा की उद्घोषणा कर जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया।

अहा—ताना-माना हो तो भी ऐसा हो कि जिससे जैनधर्म की प्रभावना हो। आचार्यश्री ने तो केवल ताने में ही शान्ति मुनि को कहा था पर शान्ति मुनि ने तो उसे ही प्रत्यक्ष करके बतला दिया, क्या यह कम महत्व की बात है।

उस समय के आचार्य चाहे चैत्य में ठहरते हों पर जैनधर्मानुराग तो उनके नस २ में भरा हुआ था। वे जहां जाते वहां ही नये जैन बना देते। इससे पाया जाता है कि उस समय के आचार्य बड़े ही प्रभावशाली, उग्रविहारी, उत्कृष्टाचारी थे तभी तो राजा महाराजाओं पर उनका प्रभाव पड़ता था।

आचार्य कक्कसूरिजी म० युगप्रवर्तक, महाप्रभाविक आचार्य हुए। आपश्री का जैन समाज पर जो उपकार है वह भूला नहीं जा सकता है।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि और वीणावाद—चन्द्रावती के प्राग्वट वंशीय वीर जगदेव ने आचार्यश्री कक्कसूरि के उपदेश से दीक्षा ली थी। समयान्तर जब उन्होंने सूरिपद योग्य सम्पूर्ण गुणों को धारण कर लिया तब आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० ने आपको सूरिपद प्रदान कर परम्परानुसार आपका नाम देवगुप्तसूरि निष्पन्न कर दिया। जब आचार्यश्री कक्कसूरि का स्वर्गवास होगया तब गच्छ का सम्पूर्ण भार श्री देवगुप्तसूरि पर आ पड़ा। गच्छ का असाधारण उत्तरदायित्व आपके सिर पर था तथापि आप जिनभक्ति में इतने तल्लीन रहते कि कभी २ भक्त्यावेश में वीणा को भी बजाने लगते। यह कार्य चारित्र वृत्ति विघातक था। अतः श्रीसंघ के प्रमुख व्यक्तियों ने उनसे कहा—आचार्यदेव ! यह कार्य आप जैसे महापुरुषों के लायक नहीं है। यदि आपकी भी इस प्रकार की प्रवृत्ति (साधुधर्म के प्रतिकूल) हो गई तब तो आपके शिष्य समुदाय पर भविष्य में इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? पर इस प्रकार की विनयपूर्ण प्रार्थना पर अमल करने के बजाय आप अपनी प्रवृत्ति पूर्वापेक्षा भी दूनी रफ्तार से बढाने लगे। विवश सकल श्रीसंघ एक स्थान पर एकत्रित हो आचार्यश्री को वीणा बजाने रूप अनुचित प्रवृत्ति के लिये सख्त उपालम्भ दिया। इस व्यसन को सर्वथा त्याग करने के लिये उन्हें हर तरह से बाध्य किया पर सूरिजी को तो जिनभक्ति रूप गायन व वीणा की झंकार (जो जिन भक्ति को द्विगुणित करती थी) इतनी प्रिय थी कि वे उसे नहीं त्याग सके। जैसे मदोन्मत्त हाथी अंकुश की किञ्चित भी परवाह नहीं करता उसी तरह सूरिजी ने श्रीसंघ की इस बात पर कुछ भी लक्ष्य नहीं दिया।

आचार्यश्री ने प्राग्वट जैसे पवित्र एवं उच्च खानदान में जन्म लिया था। वे स्वभाव से ही गम्भीर एवं शास्त्रमर्मज्ञ थे। वे समझ गये कि वीणावादन शास्त्र निंद्य मुनि नियम विघातक है। मेरी यह प्रवृत्ति साधु धर्म के प्रतिकूल एवं अनुचित है पर अब मेरे से छूटना भी अशक्य है, फिर भी शास्त्र एवं श्रीसंघ के खिलाफ इस प्रकार की प्रवृत्ति रखने में जिन शासन को क्षति ही है। अतः या तो इस हेय प्रवृत्ति को छोड़ना या इस

पद का त्याग करना ही श्रेयस्कर है । इस पर खूब दीर्घ दृष्टि से विचार कर सूरिजी ने संघ के समक्ष मन्द स्वर से कहा—महानुभावों मैं यह जानता हूँ कि मेरी यह प्रवृत्ति सर्वथा अनुपादेय है पर अब मैं मेरी आत्मा पर विजय प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ हूँ । मेरी आन्तरिक अभिलाषा तो मेरे पद पर अन्य किसी योग्य मुनि को सूरि बना कर अन्य प्रदेश में चला जाने की है जिससे आप (सकल श्रीसंघ) को सन्तोष हो और मेरी जिनभक्ति में भी किञ्चित् बाधा उपस्थित न हो । आचार्यश्री के एकदम ममत्व रहित वचनों को सुनकर श्रीसंघ को आश्चर्य एवं दुःख हुआ कारण, एक सुयोग्य आचार्य जिसकुल निर्जीव कारण के लिये पद त्याग करें यह सर्वथा विचारणीय था । श्रीसंघ ने सूरिजी को बहुत ही समझाने का प्रयत्न किया पर परिणाम सन्तोषजनक न निकला । लाचार संघ को आचार्यश्री का कहना स्वीकार करना पड़ा । सूरिजी ने भी अपने योग्य शिष्य गुणभद्र मुनि को सूरि पद प्रदान कर परम्परानुसार आपका नाम श्रीसिद्धसूरि रख दिया । आप पदत्याग कर सिद्धाचल पर चले गये और अपनी जिन्दगी शत्रुञ्जय गिरनारादि पवित्र तीर्थों पर तीर्थङ्करों की भक्ति में ही व्यतीत की ।

कर्म के अकाट्य सिद्धान्तानुसार जिस जिस जीव के जिन २ कर्मों का क्षयोपशम एवं उदय होता है तदनुसार ही जीव की प्रवृत्तियां होजाती हैं फिर भी जाति एवं कुल का यथोचित प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा । श्रीसंघ के उपालम्भ एवं शासन मर्यादा एवं जिन शासन की भावी क्षति को लक्ष्य में रख सूरिजी ने अपना पद त्याग करने में भी विलम्ब नहीं किया । केवल पदत्याग ही नहीं अपितु अपने वेश में भी यथायोग्य परिवर्तन कर डाला । यद्यपि भक्ति करना बुरा नहीं था तथापि साधु कर्त्तव्य के प्रतिकूल होने से आपने साधु वेश का भी त्याग कर दिया । इस घटना का समय पट्टावली में वि० सं० ११२८ का बतलाया है । व जिनमान्य शाखा के आचार्य थे ऐसा पट्टावलियों में उल्लेख है ।

आचार्य कक्कसूरिजी जिस समय डामरेल नगर में जैनधर्म का प्रचार खूब जोरों से बढ़ा रहे थे पर एक बात कई स्वार्थी लोगों से सहन नहीं हुई अतः उन लोगों ने किसी विद्यामन्त्र वादी को डामरेल नगर में बुलाकर अपना प्रचार-कार्य बढ़ाने का प्रयत्न शुरू किया और भद्रिक जनता को भौतिक चमत्कारों से अपनी ओर आकर्षित भी करने लगा । ठीक है परमार्थ के अज्ञात लोग इस लोक के स्वार्थ में अन्ध बनकर अपने धर्म में शंका करने लग गये साधारण जनता ही क्यों पर वहाँ के राव हमीर भी उन मन्त्र वादियों के भ्रम चक्कर में भ्रमित हो गया अतः धर्मप्रेमी लोगों ने सूरिजी से प्रार्थना की । इस पर सूरिजी के पास गुणसुन्दर मुनि जो विद्यामन्त्रों का पारगामी था उसको आदेश दे दिया । अतः मुनि गुणसुन्दर राज सभा में गया और राव हमीर को कहा कि आप परम्परा से जैनधर्म के उपासक हैं और आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म सर्वोत्कृष्ट धर्म है पर इसके साथ जैनधर्म में विद्यामन्त्र की भी कमी नहीं है यदि आपको परीक्षा करनी हो तो हम तैयार हैं इत्यादि प्रेरणात्मिक शब्दों से रावजी को उत्साहित बनाया इस पर रावजी ने आये हुए विद्यावादियों को कहा और उन्होंने अपनी परीक्षा देने की उत्कण्ठा बतलाई उन लोगों का खयाल था कि इतने दिनों में जैन सेवड़े कुछ भी बोल नहीं सके तो अब वे क्या कर सकेंगे । जैन सेवड़े केवल त्याग वैराग्य के ही उपदेशक हैं इत्यादि ठीक निश्चय दिन दोनों पक्ष के साधु व उनके भक्त लोग राज सभा में उपस्थित हुए और अपने २ विद्यामन्त्र की परीक्षा देनी प्रारम्भ की । पट्टावलीकार लिखते हैं कि विविध प्रकार से प्रयोग किया पर आखिर में विजयमाला जैनों के ही कण्ठ में शोभायमान हुई । यही कारण था कि दूसरे दिन वादी गुप्तरूप रात्रि में ही पलायन होगया और आचार्य कक्कसूरि अपने शिष्यों के परिवार से यह चातुर्मास डामरेल नगर में ही कर दिया ।

५०-आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज (११ वाँ)

सिद्धसूरि रथाज निष्ठ गदई शाखा सुरत्नं महत्,
विद्या लब्धि गणेषु लब्ध महिमो वापाख्य नागान्वये ।
कंदर्पेण च निर्मिते सुभवने गच्छीय सूरेरयम्,
लोके भाव हरेति नामक तया ख्यातस्य चोपद्रवम् ।
शान्त्वानेक जनांश्च जैन मतकान् कृत्वा सुधर्मा व्रती,
जातोऽनेक जनादृतः शुभ गुणो धर्म प्रभा वर्धकः
साहित्यिक सुसेवया च समय नीत्वा व्ययं अव्ययम्
दृष्ट्वा ज्ञान मयेन शुद्ध नयन द्वन्द्वेन प्रामोदरम् ॥

परम श्रद्धेय, शासन प्रभावक, नाना चमत्कार विद्या-कला विभूषित, दीर्घ तपस्वी, न्याय व्याकरण-काव्य तर्क छन्द अलंकारादि विविध शास्त्र विशारद चारित्र चूडामणि, उत्कृष्ट क्रियापालक, महोपकारी आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज जैन जगत के के अलङ्कार स्वरूप परमादरणीय-पूजनीय थे। आपने अपनी सकल शक्तियों के सयोग एवं अपार पाण्डित्य के आधार पर जिन-शासन की जो सेवा प्रभावना एव वृद्धि की है वह निश्चित ही स्तुत्य है। आपके जीवन सम्बन्धी छोटी मोटी चमत्कार पूर्ण घटनाओं का सविशद उल्लेख किया जाय तो सम्भवत एक खासा मोटा ग्रन्थ तैय्यार हो जाय पर हम उतना लम्बा चौडा वर्णन नहीं करते हुए आपके जीवन सम्बन्ध की प्रमुख घटनाओं का हमारे इप्सित उद्देश्यानुसार सक्षिप्त ही वर्णन करेंगे। इन्हीं घटनाओं के आधार पर वाचक समुदाय आचार्यश्री के चमत्कार पूर्ण चरित्र का सविशेषानुमान कर सकेंगे।

भारतीय विविध प्रान्तों में व्यापारादि से समृद्धिशाली, भारत-भू-अलकार स्वरूप सुविशाल मरुधर प्रान्त जग विश्रुत है। इसी पवित्र मरुभूमि में भिन्नमाल नामक एक ऐतिहासिक नगर था। इसके पूर्व इस नगर का नाम श्रीमालपुर था। लक्ष्मीदेवी वहा की अधिष्ठायिका थी अत वहा के लोग कोट्याधीश लक्षधीश हो तो आश्चर्य की बात ही नहीं है। दरिद्रय दु ख तो उनसे कोसों दूर भाग गया था। जिस नगर की अधिष्ठायिका ही लक्ष्मी हो वहा दरिद्रता का निवास सम्भव भी कैसे है ? लोग धनधान्य, जन परिवार से समृद्धिशाली एव पूर्ण सुखी थे। उद्विग्नता एव खिन्नता के स्थान पर सर्वत्र प्रसन्नता ही दृष्टिगोचर होती थी।

भिन्नमाल नगर का प्राकृतिक दृश्य मन मोदक एवं आनदोत्पादक था। विविध वर्णों से वर्णित प्रासाद श्रेणियों की उत्तुगता एव फल पुष्प पादपय कलिकादि से परिशोभित उपवनों की कमनीयता, कुञ्ज, निकुञ्ज कूप सरोवर वापिकाओं की रमणीयता स्वर्गपुरी के सौंदर्य का स्पर्द्धा के साथ तिरस्कार कर रही थी। वसन्त ऋतु के सुन्दर समय में आनन्दोन्मत्त कोकिलकाकली, वृक्षों पर बैठी हुई विहगम राशि कलरव भ्रम से अत्यन्त श्रमित मानव के अथाह श्रम को क्षण भर में अपहरण कर लेता था। विविध ऋतुओं का विविध सौंदर्य निश्चित ही अपूर्व था।

पाठक, पूर्व प्रकरणों में पढ आये हैं कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने सर्व-प्रथम मरुभूमि में पदार्पण

किया था। मारवाड़ प्रान्तीय श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर में आपने राज से पहिले जैनधर्म के बीजारोपण किये। राजा जयसेनादि ९००० घरों को परम पवित्र जैनधर्म की दीक्षा से दीक्षित कर उन्हें सत्पथानुयायी बनाया। इस तरह आचार्यश्री के कठोर प्रयत्न से रक्ताभिषाहारी भिन्नमाल नगर धर्मपुर बनगया। सर्वत्र जैनधर्म की अहिंसा–पताकाएं दृष्टिगोचर होने लगी। पर काल की कुटिल गति एवं भयानक चक्र से कोई भी सुरक्षित न रह सका। यही कारण था कि कालान्तर में राजपुत्र भीमसेन और चंद्रसेन के परस्पर मनो मालिन्य होगया। बस चन्द्रसेन ने आबू के पास चंद्रावती नगरी बसाई जिससे भीमसेन की धर्मान्धता से पीड़ित जैन जनता नूतन नगरी चंद्रावती में आगयी। अब तो श्रीमाल नगर में शिवधर्मोपासक ही रह गये। इस हालत में राजा भीमसेन ने अपने श्रीमाल नगर के तीन प्रकार बनवाये, जिसमें प्रथम परकोट में कोट्याधीश एवं धर्मपति दूसरे में लक्षाधीश एवं तीसरे परकोट में सर्व साधारण जनता। इस प्रकार नगर की व्यवस्था कर आपने अपने नाम पर नगर का नाम भिन्नमाल रख दिया।

जिस समय का हम इतिहास लिख रहे हैं उस समय भिन्नमाल में पोरवाड़ों श्रीमालों के सिवाय उपकेश वंशीय लोग भी सुविशाल संख्या में आबाद थे और वे बड़े व्यापारी व कैसे राज्य के उच्च पदाधिकारों पर भी प्रतिष्ठित थे। वे लोग धनाढ्य एवं व्यापार कला पटु थे। इनमें जगत्प्रसिद्ध, नरपुङ्गव भैंसाशाह भी एक थे।

पाठक वर्ग भैंसाशाह की जीवन घटनाओं व्यापारिक कुशलताओं एवं आपकी माता के द्वारा निकाले गये संघ के वृत्तान्त को तो पूर्व प्रकरणों में पढ़ ही आये हैं। जैन समाज के लिये ही नहीं अपितु समस्त व्यापारी एवं जन साधारण समाज के लिये आप गौरव के विषय थे। आप पर आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज एवं आपके पट्टधर श्रीमान् देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज की परम कृपा थी। देवी सच्चायिका का आपको इष्ट था और उसी प्रबल इष्ट के आधार पर आपने कई असाधारण काम कर दिखलाये थे। आपने अपने जीवन रंगमञ्च पर कर्म सूत्रधरों का विचित्र २ नाटक देखा उनके भीषण यातनाओं एवं दारिद्र्य जन्य असह्य दुःखों को सहन किया पर अपने कर्त्तव्य मार्ग से किञ्चित भी स्खलित नहीं हुए। आपका ही नहीं पर आपकी धर्मपरायणा धर्म-पत्नी श्रीमती सुगनीबाई का भी इस भयंकर अवस्था में इतना उच्चकोटि का धैर्य गुण था कि न दुःखित होने के बजाय समय २ पर अपने पति देव प्रोत्साहन एवं सहायता दिया करती थी। नीतिकारों ने महिलाओं के गुण बतलाये थे सब गुण माता सुगनी में विद्यमान थे। माता सुगनी उदार दिल से प्रत्येक धर्म कार्य में परमोत्साह पूर्वक भाग लिया करती थी। आपका जीवन बड़ा ही शान्तिमय एवं उत्साह की शुभ भावनाओं से ओतप्रोत था।

भैंसाशाह और सुगनी के सात पुत्र व पांच पुत्रियां थी। इनमें धवल नाम का एक पुत्र बड़ा ही होनहार एवं पुण्यशाली था। भैंसाशाह की सब आशाएं उसी पर अवलम्बित थी। गार्हस्थ्य जीवन, सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यों एवं व्यापारिक स्थलों में धवल का सहयोग स्तुत्य, प्रशंसनीय एवं आदरणीय था।

जिस समय भैंसाशाह की माता ने तीर्थ श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला था और किसी विशेष कारण से भैंसाशाह का संघ में जाना न होसका तब उस विराट् संघ की सब व्यवस्था का भार धवल पर ही अवलम्बित था। धार्मिक कार्यों में कुमार धवल की शुरू से ही अभिरुचि थी यही कारण था कि आचार्यश्री देवगुप्त सूरि की सेवा भक्ति में धवल सदैव उपस्थित रहता था।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने धवल की भव्य आत्मा जानकर एक दिन उपदेश दिया—धवल ! यदि तू दीक्षा ले तो निश्चित ही मेरे जैसा आचार्य होकर संसार का उद्धार करने में समर्थ बन सकता है।

धवल—पूज्य गुरुदेव ! मेरा ऐसा भाग्य ही कहां है कि दीक्षा लेकर आपश्री के चरणारविन्द की सेवा कर सकूं। पूज्येश्वर ! हम गृहस्थ हैं और हमारे पीछे उपाधियां लगी हुई हैं जिससे मुझे दीक्षा दुःसाध्य

है। धन्य है आप जैसे त्यागी वैरागी श्रमण निर्ग्रन्थों को जिन्होंने सासारिक जीवन सम्बन्धी सम्पूर्ण उपाधियों एवं प्रपञ्चों का त्याग कर मोक्षमार्ग जैसे उत्कृष्टतम मार्ग आराधन में सलग्न होगये। गुरुदेव ! दीक्षा, कोई साधारण कार्य नहीं है। यह हस्तिओं का भार हम जैसे गीदड़ कैसे सहन कर सक्ते हैं ?

सूरिजी—धवल ! तेरा कहना कुछ अशों में ठीक है कि ससारी जीवों के अनेक उपाधिया लगी रहती हैं और उन उपाधियों से मुक्त होकर सर्वथा स्वतत्र होने के लिये ही तीर्थंकर देवों ने उपदेश दिया है उनके उपदेश से केवल साधारण व्यक्तियों ने ही नहीं अपितु बड़े २ राजा महाराजा एव चक्रवर्तियों ने भी सब उपाधियों का त्याग कर दीक्षा स्वीकर की है। हमारे पास में जितने साधु वर्तमान हैं उनके पीछे भी थोड़ी बहुत उपाधिया तो अवश्य थी पर ससार भ्रमन से भयभ्रान्त हो सर्पकञ्चुलवत् उसका त्याग कर आज प्रमोदपूर्वक मोक्ष मार्ग की आराधना कर रहे हैं। दूसरा दीक्षा का पालन करना कठिन है, यह बात तो सर्वथा सत्य ही है पर जब नरक निगोद के दुखों का श्रवण करेगा तो ज्ञात होगा कि दीक्षा का दु'ख उस दु'ख के समक्ष नगण्य ही है। तुम तो क्या ? पर सेठ शालीभद्र को तो देखो कि वे कितने सुकुमाल और कितने धनी थे ? पर जब उन्होंने भी ज्ञान एवं अनुभव दृष्टि से ससार के दु खों का अनुभव किया तब बिना किसी सकोच एव कठिनाई के सहसा ही संसार सम्बन्धी सम्पूर्ण सुख साधनों का त्याग कर दीक्षा स्वीकार करली अत आत्म कल्याण की भावना वालों के लिये दीक्षा जैसा कोई सुख ही नहीं है। शास्त्रों में तो यहा तक बतलाया है कि पन्द्रह दिन की दीक्षा वालों को जितना सुख है उतना व्यन्तर देवताओं को भी नहीं है। इस तरह क्रमश एक वर्ष के दीक्षित व्यक्ति के सुखों की बराबरी सर्वार्थ सिद्ध महाविमान के अनेक ऋद्धियों के स्वामी देवता भी नहीं कर सकते हैं। धवल ! जरा गम्भीरता पूर्वक आन्तरिक आत्मा से आत्मिक अनत सुखों का विचार तो कर ! अरे ये पौद्गलिक सुख साधन तो अपनी सीमित अवस्था को लिये हुए ही पैदा होते हैं। अत सर्व समर्थ साधनों के होते हुए हमें मोक्ष के अक्षय सुखों की प्राप्ति का ही उपाय करना चाहिये जिससे कभी भी हमें सांसारिक जन्म जरा मरण रूप दु'खों का अनुभव नहीं करना पड़े।

धवल—गुरुदेव ! आपका कहना तो सत्य है, पर यदि मैं दीक्षा लेने का विचार भी करूं तो मेरे मात-पिता मुझे कब दीक्षा लेने देवेंगे।

सूरिजी—धवल ! तू दीक्षा ले या मत ले, इसके लिये हमारा कोई आग्रह नहीं है उपदेश देकर किसी भी भव्यात्मा का कल्याण करना हमारा परम कर्तव्य है और उसी कर्तव्य धर्म से प्रेरित हो मैंने तुझे उपदेश दिया है। यदि तेरी आन्तरिक इच्छा दीक्षा लेने की हो तो मेरे अनुमान से मैंसाशाह कभी भी इस पवित्र कार्य में अन्तराय नहीं डालेंगे। पहिले तो तू तेरी आत्मा का निश्चय करले। आत्मिक दृढ़ता एवं मन स्थिरता के बिना सयम साधक वृत्तियों का निर्वाह सर्वथा दु'साध्य है। अत' सर्व प्रथम आत्मा को वैराग्य के पक्के रग से रगना अनिवार्य है।

धवल—गुरु महाराज ! मैंने तो मेरी आत्मा से यह दृढ निश्चय कर लिया है कि मेरे माता पिता मुझे सहर्ष दीक्षा के लिये आज्ञा प्रदान करेंगे तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के आपकी सेवा में शीघ्र ही भगवती दीक्षा स्वीकार करलूगा।

सूरिजी—धवल ! अपना कल्याण करना यह तो एक साधारण बात है और वह गृहस्थावस्था में रह कर ही सहज साध्य है पर दीक्षा लेकर शासन की सेवा और हजारों का कल्याण करना यह निश्चित ही विशेष कार्य है। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि तू दीक्षा लेगा तो गच्छाधिपति बनकर अनेक भव्यों का कल्याण करेगा।

धवल—तथास्तु गुरुदेव ! इस प्रकार सूरिजी के आदरणीय वचनों को सहर्ष स्वीकार कर आचर्यश्री

को वंदन किया और तत्काल अपने कार्य में लग गया। इधर सूरिजी के सम्पर्क से धवल की वैराग्य भावना द्विगुणित होने लग गई।

जब संघ यात्रा कर पुनः भिन्नमाल आया तब धवल ने अपने माता पिता से कहा—पूज्यवर! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मेरी इच्छा सूरिजी के पास दीक्षा लेने की है। पुत्र के इस प्रकार वैराग्यमय वचनों को श्रवण कर धवल की माता को दुःख हुआ पर भैंसाशाह ने तनिक भी रंज नहीं किया। वे तो प्रसन्न चित्त होकर कहने लगे बेटा! तू भाग्यशाली है। मेरे दिल में केवल एक यही भाव थी कि मेरे घर से कोई एक आधा दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करे तो मैं सर्वथा कृतकृत्य होजाऊं कारण अब मेरे यही कार्य शेष था। देखा, मन्दिर मैंने बना लिया, और संघ यात्राजी ने निकाल दिया। सूरिपद का महोत्सव, चातुर्मास एवं आगम भक्ति भी कर चुका हूँ। बस अब यही एक कार्य अवशिष्ट रहा है जिसकी पूर्ति तेरे द्वारा हो रही है। बेटा मेरा कर्तव्य तो यह है कि मैं भी तेरे साथ दीक्षा लूं और दीक्षा अङ्गीकार करना मैं अच्छा भी समझता हूँ पर क्या करूं अन्तराय एवं चारित्र मोहनीय कर्म के प्रबल उदय से दीक्षा के लिये मेरा उत्साह नहीं बढ़ता है। दूसरी मेरी वृद्धावस्था आ चुकी है और वृद्धा माता की सेवा करना मेरा परम कर्तव्य भी है। अतः इच्छा के होते हुए मैं दीक्षा के लिये सब प्रकार से लाचार हूँ।

अपने पतिदेव के उक्त समर्थक एवं वैराग्यवर्धक वचनों को सुनकर धवल की माता को अतिशय दुःख हुआ। उसने कोप के साथ कहा—आप भले ही धवल को दीक्षा दिलाने का प्रयत्न करें पर मैं धवल को कभी भी दीक्षा नहीं लेने दूंगी। भैंसाशाह ने कहा—मैं धवल को दीक्षा के लिये प्रयत्न नहीं करता हूँ पर धवल का निश्चित विचार दीक्षा लेने का होगा तो मैं अनुमोदन अवश्य करूंगा। आपको भी मोह जन्य प्रेम का त्याग कर मेरी बात का समर्थन करना चाहिये क्योंकि संसार में जन्म लेकर मरने वाले तो बहुत हैं पर अपने माता पिता एवं कुल के नाम को उज्ज्वल करने वाले विरले ही हैं—

"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्। परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥"

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एवं राजा श्रेणिक ने अपने कुटुम्ब को आदेश दे दिया था कि हमारे से तो अन्तराय कर्मोदय के कारण दीक्षा ली नहीं जाती है पर जो कोई दीक्षा लेना चाहता हो उसके लिये हमारी सहर्ष आज्ञा है। दीक्षा का महोत्सव भी हम लोग करने को तैय्यार हैं। भला अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये दीक्षा जैसे महत्व पूर्ण कार्य में अन्तराय देना कितनी भूल है! अब तो आपको प्रसन्न चित्त होकर धवल को दीक्षा की आज्ञा प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार भैंसाशाह ने अपनी धर्मपत्नी को समझाया कि वह भी सहर्ष धवल को दीक्षा के लिये आज्ञा प्रदान करने को तय्यार होगई।

धर्मप्रिय भैंसाशाह ने आचार्यश्री देवगुप्तसूरि की सेवा में जाकर निवेदन किया कि पूज्यवर! बड़ी खुशी की बात है कि धवल आपश्री के पास दीक्षा लेना चाहते हैं। हमको इस विषय का बड़ा ही गौरव है। आप खुशी से उसे दीक्षा देकर उसका आत्म-कल्याण करें। सूरिजी ने भैंसाशाह के उक्त निस्पृह एवं मोह रहित वचनों को सुनकर आश्चर्य किया कि इस प्रकार अपने सुयोग्य पुत्र को दीक्षा के लिये आज्ञा देना इस मोहराजा के साम्राज्य में एक भैंसाशाह ही है। कुछ समय तक गम्भीरतापूर्वक मनन करने के पश्चात् सूरिजी ने कहा—शाहजी! धवल बड़ा भाग्यशाली है पर आप उनसे भी अधिक पुण्यशाली हैं कि जिससे निर्मोही की तरह अपने पुत्र को सहर्ष दीक्षा के लिये आज्ञा प्रदान कर रहे हैं। आपके जैसे उदार गम्भीर एवं निर्मोही श्रावक संसार में कम ही हैं। इस तरह परस्पर वार्तालाप होने के पश्चात् भैंसाशाह ने जिन मन्दिरों में अष्टाह्निका महोत्सव करवाना प्रारम्भ किया। सूरिजी ने भी दीक्षा के लिये वैशाख शुक्ला पूर्णिमा का शुभ मुहूर्त निश्चित किया। धवल के अनुकरण रूप में करीब ११ नर नारियां दीक्षा के लिये उद्यत हो गये। भैंसाशाह के

महा-महोत्सव पूर्वक निर्दिष्ट समय पर सूरिजी ने द्वादश मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा देदी और धवल का नाम दीक्षानतर मुनि इन्द्रहस रख दिया। इस महा महोत्सव में उदारचित्त दानवीर भैंसाशाह ने पूजा, प्रभावना व स्वधर्मी बन्धुओं को प्रभावना देने में पाँच लक्ष द्रव्य 'व्ययकर कल्याणकारी पुण्योपार्जन किया।

इधर मुनि इन्द्रहस सूरिजी की सेवा में रहकर विनय, वैयाक्तृत्य भक्तिपूर्वक ज्ञान-सम्पादन में सलग्न होगया। आपकी बुद्धि पहिले से ही कुशाग्र थी फिर सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा तब तो कहना ही क्या ? आप स्वल्प समय में ही धुरधर विद्वान हो गये। जैनागमों के अलावा व्याकरण, काव्य, तर्क, छन्द वगैरह के पारंगत हो गये। पट् द्रव्य एव पट् दर्शनों के तो आप बड़े ही मर्मज्ञ थे कई वादियों के साथ राज-सभाओं में शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजयपताका चारों ओर फहरा दी थी। वादियों पर आपकी इतनी धाक जमी हुई थी कि वे आपके नाम मात्र से दूर २ भागते थे।

आचार्य देवगुप्त सूरि धर्मोपदेश करते हुए एक समय जाबलीपुर नगर में पधारे। वहा के श्रीसंघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। सूरिजी महाराज ने भी सघ को प्रभावशाली धर्म देशना दी जिसका जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। श्रीसंघ के अत्याग्रह से वह चातुर्मास आपने जाबलीपुर में ही किया। आपश्री के विराजने से जनता का खूब उत्साह बढ़ गया। श्रेष्टि गौत्रीय शाह निम्बा ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर महा-प्रभावक श्रीभगवती सूत्र का महा महोत्सव किया। वरघोडा चढा कर शानदार जुलूस के साथ हाथी पर भगवती सूत्र की स्थापना कर चातुर्मास में वाचने के लिये आचार्यश्री के करकमलों में समर्पण किया। सूरिजी ने भी अपने अथाह पाण्डित्य व ओजस्वी वक्तृत्वशैली से श्रवणोच्छुक भावुकों को भगवती सूत्र सुना कर जाबलीपुर में नवीन धार्मिक क्रान्ति मचा दी।

प्रसङ्गानुसार एक दिन सूरिजी ने परमपावन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय के महात्म्य का बड़े ही प्रभावोत्पादक शब्दों में विवेचन किया जिससे सकल श्रोताओं की इच्छा तीर्थ यात्रा करने की होगई। बोथरा गौत्रीय शाह लाखण ने व्याख्यान में ही चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष तीर्थयात्रार्थ सघ निकालने की प्रार्थना की श्रीसघ ने शाह लाखण को धन्यवाद के साथ सहर्ष सघ निकालने की अनुमति देदी। सूरिजी ने भी शाह लाखण के इस धार्मिक उत्साह की भूरि २ प्रशसा की। श्रीसघ से सहर्ष आदेश को प्राप्त कर शाह लाखण यात्रार्थ सामग्री एकत्रित करने में सलग्न होगया। इधर चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् शुभदिन यात्रार्थ प्रस्थान करने का मुहूर्त दिया। शाह लाखण ने भी उक्त मुहूर्त के पूर्व स्थान २ पर निमत्रण पत्रिकाए भेजी व साधु साध्वियों की विनती के लिये योग्य पुरुषों को प्रेषित किये। निर्दिष्ट समय पर सब ही निर्दिष्ट स्थान पर एकत्रित होगये। आचार्यश्री के नेतृत्व व शाह लाखण के अध्यक्षत्व में विराट् सघ शत्रुञ्जय की यात्रा के लिये रवाना हुआ। मार्ग में आये हुए छोटे मोटे तीर्थों की यात्रा कर सघ जब शत्रुञ्जय के सन्निकट पहुँचा तब रत्न, मोती व जवाहिरातों से बधाया। क्रमश: शत्रुञ्जय पहुँचते ही पूजा, प्रभावना, अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण आदि विपुल धार्मिक कार्यों में विपुल द्रव्य व्यय कर शाह लाखण ने अनन्त पुण्योपर्जन किया।

आचार्य देव की वृद्धावस्था व शरीर की अत्यन्त कमजोर हालत को देखकर समयानुसार शाह लाखण ने प्रार्थना की—भगवन्! आपकी वृद्धावस्था होचुकी है अत हमारी प्रार्थना है कि शत्रुञ्जय के परम पावन स्थान पर आपके सुयोग्य व विद्वान शिष्य मुनिश्री इन्द्रहंस को आचार्य पद प्रदान किया जावे। हमारी दृष्टि से तो मुनि इन्द्रहस सब तरह से योग्य हैं फिर आपको जैसा उचित ज्ञात हो। आचर्यश्री ने भी समयानुकूल की गई शाह लाखण व समस्त श्रीसघ की प्रार्थना को मान देकर शाह लाखण के महामहोत्सव पूर्वक शत्रुञ्जय के पवित्र स्थान पर शुभ दिन मुनि इद्रहस को सूरिपद से अलकृत कर दिया। परम्परानुसार आपका नाम श्रीसिद्धसूरि स्थापित किया।

आचार्यश्री सिद्धसूरि के शासन में उपकेशपुर, उपकेशवशियों का केन्द्र स्थान था। कलिकाल की

विकराल-कूरदृष्टि के कारण उपकेशवंश में पारस्परिक मनोमालिन्य एवं क्लेश कदाग्रह ने अपना आसन जमा लिया था। गृह क्लेश की इस असामयिक जटिलता के कारण कितने ही आत्मार्थी सज्जनों ने—

"संकिलेसकरं ठाणं दूरओ परिवज्जए"

इस शास्त्रीय वाक्यानुसार अपना मूल निवास स्थान एवं गृह का त्याग कर निर्विघ्न स्थान पर अपना निवास स्थायी बना लिया था। वास्तव में जिस स्थान पर रहने से क्लेश कदाग्रह वर्धित हो और निकाचित कर्म बन्धन के कारण अपना अमगल अहित हो ऐसे स्थान को दूर से छोड़ देना ही भविष्य के लिये हितकर है। अहा! वह कैसा पवित्र समय था? जन समाज कर्म बन्धन की कुटिलता से कितना भीरु एवं धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था? इस कर्म बंध से डरकर हजारों लाखों की जायदाद का त्याग कर देना दुस्त्यज मातृभूमि का निर्मोही के समान मोह छोड़ देना अरे २ व्यवसाय वाले लक्षाधीश एवं कोट्याधीशों का हजारों वर्षों के निवास स्थान को त्याग कर अपरिचित प्रान्त में चले जाना—साधारण बात नहीं थी। यह तो ऐसे ही महानुभावों से बन सकता है जो पाप भीरु एवं धर्मानुरागी हों। उपकेशपुर का त्याग करने वालों में कोट्याधीश श्रीमान् चसर श्रेष्ठिवर्य भी एक थे। आप कौटुम्बिक क्लेश से व्यथित हो चौरासीकूप नगर में जा बस थे। वैसे ही सुचंति कुल दिवाकर शा० करर्पी सेठ भी अपने कुल-क्लेश के कारण उपकेशपुर का त्याग कर निकल गये थे। आपने क्रमशः अणहिल्लपुर पट्टन तक पहुंचे जब वहां के साधर्मियों को इस बात की खबर मिली तो उन लोगों ने अपने साधर्मी भाई समझ कर सब तरह की सुविधा के लिए आमन्त्रण किया सेठजी ने उन साधर्मियों का सहर्ष उपकार माने और उनके आमन्त्रण को स्वीकार भी किया तत्पश्चात् उन स्थानीय साधर्मी भाइयों की सलाह लेकर आप बहुमूल्य भेट के साथ वहां के धर्म प्रेमी नरेश महाराजा सिद्धराज जयसिंह के दरबार में हाजिर होकर भेट अर्पण की इस पर राजा ने प्रसन्न हो सेठजी को अपने आगमन का कारण पूछा तो सेठजी ने कहा—राजन्! मैंने आपकी बहुत ही समय से कीर्ति सुनी है। अतः मेरी इच्छा आपश्री की छत्रछाया में रह कर निर्विघ्न समय यापन करने की है। इस समय मैं सकुटुम्ब आपश्री के सुखमय राज्य में रहने के लिये ही आया हूँ।

उस समय के नरेश इस बात को भली भांति जानते थे कि उपकेशवंशी लोग बड़े ही व्यवसायी एवं जबरदस्त व्यापारी होते हैं। व्यापार ही राज्य की आमदनी एवं उन्नति का मुख्य जरिया है। इसीसे राज्य की मान प्रतिष्ठा है। यही कारण था कि राजा ने सेठ करर्पी का बहुत ही आदर सत्कार किया। मकानादि अनुकूल पदार्थों की सगवड़ कर उन्हें सन्तुष्ट किया बस फिर तो था ही क्या? सेठ करर्पी ने उपकेशपुर के समान पाटण को ही अपना निवास स्थान बना लिया। पूर्ववत् अपना व्यापार क्रम प्रारम्भ कर दिया। पुण्योदय से सेठ करर्पी ने व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया।

पुण्यानुयोग से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी का चातुर्मास पाटण में होगया। सेठ करर्पी सूरिजी का परम भक्त था अतः वह निरन्तर आचार्यश्री के व्याख्यान-श्रवण का लाभ उठाता एवं तन, मन, धन से उनकी सेवा भक्ति करता। एक दिन व्याख्यान में प्रसंगानुसार जिनालय निर्माण का विषय चल पड़ा अतः शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर मन्दिर बनाने के महान् पुण्य का वर्णन करते हुए सूरिजी ने फरमाया—

"कारपि जिणायणेहिं मंडियं सव्व मेइणीवट्टं। दाणाइचउक्केणवि सुठ्ठुवि गच्छिज्ज अच्चुययं न परउ गोयम गिहित्ति ॥"

भावार्थ—जिनेश्वर भगवान् के मन्दिरों से समस्त पृथ्वी को शोभायमान करके तथा दान आदि चार प्रकार धर्म का अच्छी तरह सेवन करके श्रावक बारहवें देवलोक तक जासकता है। हे गौतम! इससे ऊपर नहीं जा सकता है। यह तो उत्कृष्ट विधान है पर एक मन्दिर भी बनावे तो भी तीर्थंकर की आराधना होजाती है।

का सेठ करर्पी पाटण में

इस प्रकार शास्त्रीय प्रमाणों से मन्दिर निर्माण के पुण्य फल का स्पष्टीकरण करते हुए उदाहरण दिया कि—जैसे एक मनुष्य कूवा खोदता है। खोदते समय वह मिट्टी कीचड़ आदि जुगुप्सनीय पदार्थों से अवश्य व्याप्त शरीर वाला होजाता है पर जब कूवे से पानी वगैरह निकल आता है तब वह मिट्टी, कीचड़ एवं अन्य घृणास्पद वस्तुओं को हटा कर एक दम निर्मल बना देता है। इतना ही नहीं पर कूए की स्थिरता पर्यन्त कूप निर्माता का नाम भी अमर बन जाता है। कूप के जल का आस्वादन करने वाले उसे शुभाशीर्वाद देते हुए अपनी तृषा को शात करते हैं उसी प्रकार मन्दिर बनवाने में पत्थर, पानी, चूना, मिट्टी वगैरह पदार्थों की जरुरत रहती है और वे पदार्थ भी सब आरम्भ रूप ही दीखते हैं पर मन्दिर के तैय्यार हो जाने पर जब भगवान् की प्रतिमा तख्तनशीन होती है तब निर्मल भक्ति एवं पवित्र भावना के पवित्र जल से उक्त सब पातक (जो भविष्य में पुण्य का हेतु ही है) प्रक्षालन हो जाता है। इसके साथ ही साथ जब तक वह मन्दिर रहता है तब तक जिनालय निर्माता का नाम अमर हो जाता है। हजारों, लाखों भव्य जीव जिन दर्शन पूजा कर अनेक प्रकार से लाभ हांसिल करते हैं। मन्दिर बनाने वाले को धन्यवाद देते हैं और मन्दिर बनाने वाला भी अक्षय पुण्य का भागी होता है। देखिये—सम्राट सम्प्रति को हुए कई शताब्दियां बीत गई पर लोग अभी तक उनके बनवाये हुए मन्दिरों की सेवा पूजा कर अपना कल्याण कर रहे हैं। जिनालय निर्माताओं का पवित्र यशोगान करके अपने कण्ठ को पवित्र एवं उनकी ख्याति को अमर कर रहे हैं। श्रावक के कुल में जन्म लिया तो अनुकूल सामग्री के सद्भाव होने पर मन्दिर बनवाना, संघ निकालना, भगवती आदि प्रभाविक सूत्रों को महा महोत्सव पूर्वक बचवाना, आचार्यों का पद महोत्सव करवाना, स्वामी वात्सल्य, संघ पूजा-प्रभावनादि जिन धर्म प्रभावक कार्यों को अवश्य ही करना चाहिये। ये श्रावकों के मुख्य कर्त्तव्य एवं धर्म प्रभावना के प्रधान हेतु हैं। चाहे जव जितना मन्दिर एवं तिल जितनी प्रतिमा ही क्यों न करावे पर अपने जीवन काल में मन्दिर बनवा कर दर्शन पद की आराधना एवं सुलभ बोधित्व पुन्य सञ्चय अवश्य ही करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का प्रभावशाली व्याख्यान श्रवण कर श्रेष्ठिवर्य कदर्पी की इच्छा एक जिन मन्दिर बनवाने की हुई। समय पाकर कदर्पी सूरिजी के पास आया और विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगा पूज्यवर! मेरी मानसिक अभिलाषा है कि मैं जिनालय बनवाने में भाग्यशील बन अपने जीवन को कृतार्थ करूं। सूरिजी ने कहा "जहासुखम्" पर धर्म कार्य में विलम्ब या विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है।

उस समय पाटण में राजा सिद्धराज राज्य करता था। जैनाचार्यों का राजा पर गहरा प्रभाव था। सेठ कदर्पी बहुमूल्य भेट लेकर राजा के पास गया और भेट को सम्मुख रखते हुए हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। राजा ने कहा—सेठजी! आपको किस बात की जरूरत है? सेठ ने कहा—राजन्! परम पूज्य आचार्य देव के प्रभाव से मेरी इच्छा मन्दिर बनवाने की हुई है अत आपश्री से मन्दिर योग्य भूमि की याचना करने के लिये ही मैं आपश्री की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ यह सुन राजा के हर्ष की सीमा न रही उन्होंने उत्फुल्ल हृदय से कहा—सेठजी! इसमें भेंट की क्या आवश्यकता है? यह तो जैसे आपका कर्तव्य है वैसे मेरा भी कर्तव्य ही है। भला—आप जैसे भाग्यशाली निजके द्रव्य को व्यय कर परमार्थ के लिये मन्दिर बनवाने का अक्षय लाभ प्राप्त कर रहे हैं तो भूमि प्रदान का साधारण लाभ मुझे भी मिलना चाहिये।

सेठ—नरेश! आप परम भाग्यशाली हैं जो इस प्रकार सहानुभूति बतलाकर मेरे उत्साह में वृद्धि कर रहे हैं पर यह भेंट तो केवल मैं मेरे फर्ज को अदा करने के लिये ही नजर कर रहा हूँ न कि, भूमि के मूल्य रूप में। हम गृहस्थ लोगों का यह कर्तव्य है कि देव, गुरु या स्वामी (राजा) के पास जावे तो यथाशक्ति भेंट देकर अपना कर्तव्य धर्म पूरा करे। अत मैंने मेरे कर्तव्य के सिवाय यह कोई विशेष कार्य नहीं किया।

इस प्रकार परस्पर सहानुभूति प्रदर्शक श्रेष्ठाचार की बातें बहुत समय तक होती रही। राजा ने भी

अपनी ओर से मन्दिर के लिये आवश्यक भूमि को प्रदान कर सेठ के गौरव को बढ़ाया। क्रमशः राजा का आभार स्वीकार करता हुआ सेठ करपीं गुरुदेव के पास आकर अपने व नृप के पारस्परिक वार्तालाप को सुनाने लगा। वृत्तांत श्रवण के पश्चात् आचार्यश्री ने कहा—करपीं ! तू बड़ा ही भाग्यशाली है। करपीं ने भी सूरिजी के वचन को आशीर्वाद रूप में समझ कर शुभ शकुन के प्रति गाँठ लगाली। साथ ही अविलम्ब चतुर शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलाकर मन्दिर कार्य प्रारम्भ कर दिया।

जब मन्दिर के लिये कुछ मुख्य वगैरह सामान अन्य प्रदेशों से मंगवाया तो चुङ्गी महकमा के अधिकारियों ने उस माल का टेक्स मांगा। करपीं ने कहा—महानुभाव ! यह सामान मन्दिर के लिये आया है अतः इसका हासिल आपको नहीं लेना चाहिये। धर्म के कार्य निमित्त आने जाने वाली वस्तुओं का टेक्स राज नीति विरुद्ध है, पर महकमा वालों ने हासिल छोड़ना नहीं चाहा। जहाँ मन्दिर के लिये लाखों का व्यय करना स्वीकार किया वहाँ चुङ्गी का थोड़ासा द्रव्य भारी नहीं था पर करपीं ने इससे होने वाले भविष्य के परिणाम को सोचा कि—इस प्रकार हासिल लेना और देना अच्छा नहीं है। यदि कोई साधारण व्यक्ति ऐसा कार्य करे तो उनके लिये निभना मुश्किल है। बस करपीं तत्काल पाटण नरेश के पास गया और चुङ्गी महकमे की आय की रकम में कुछ विशेष वृद्धि कर सारा महकमा अपने हस्तगत कर लिया। इस कार्य को हाथ में लेने के साथ ही साथ यह उद्घोषणा करवादी कि मन्दिर या परमार्थ के कार्य के लिये आने जाने वाली वस्तुओं का अब से हासिल नहीं लिया जावेगा।

करपीं का प्रारम्भ किया हुआ मन्दिर बहुत ही तेजी के साथ हो रहा था। जब मन्दिर का मूल गम्भारा एवं रंगमण्डपादि तैय्यार होगये तो करपीं की इच्छा भगवान की अलौकिक प्रतिमा तैय्यार करवाने की हुई। मूर्ति सुवर्ण स्वर्णमय एवं कुछ अंश में पीतल आदि दूसरी धातुओं के मिश्रण से बनवाने का निश्चय किया गया। इसके लिये इस कार्य के सविशेष मर्मज्ञों को बुलवाया गया।

जिस स्थान पर करपीं ने मन्दिर बनवाया था उसके पास ही भावड़ा गच्छ का प्राचीन मन्दिर था उस समय उस मन्दिर में भावड़ा गच्छीय वीर सूरि नाम के आचार्य रहते थे। शायद उनको इर्षा हुई होगी कि करपीं का विशाल मन्दिर बनवाने से हमारे मन्दिर की कान्ति एक दम फीकी पड़ जावेगी अतः इस नवीन मन्दिर का बनना उनको खटकने लगा। श्रीवीरसूरिजी बड़े ही चमत्कारी एवं विद्यावली आचार्य थे। उन्होंने इस मन्दिर के काम में विघ्न करना चाहा अतः इधर तो ४१ अंगुल की मूर्ति बनाकर उस पर अच्छी तरह से लेप कर सब प्रकार की तैय्यारी करली और उधर सुवर्णादि सर्व धातुओं का रस अग्नि प्रयोग से तैय्यार होता कि वीरसूरि अपने मन्त्र बल से आकाश में बादल बनवाकर केवल उसी स्थान पर जहाँ मूर्ति बन रही थी वर्षा बरसाना प्रारम्भ कर देता। बस रस शीतल हो मन्द पड़ जाता अतः इस दुर्घटना से मूर्ति बन ही नहीं सकी। जब करपीं ने किसी अज्ञात कारण को जानकर दूसरी बार रस तैय्यार करवाया पर दूसरी बार भी वही हाल हुआ तब तो उसके दुःख का पारावार नहीं रहा। वह नितान्त व्यथित एवं खिन्न होगया। आचार्यश्री सिद्धसूरि के पास आकर विनय प्रार्थना करने लगा—गुरुवर ! मेरा ऐसा क्या दुर्भाग्य है कि आपके आशीर्वाद से किया हुआ कार्य भी एक दम मांगलिक रूप होने के बजाय भिन्न रूप हो रहा है। यह सुन सूरिजी को भी आश्चर्य एवं दुःख हुआ। उन्होंने शीघ्रता से पूछा—करपीं ! ऐसा क्या विघ्न हुआ करता है ? सेठ ने सब हाल अथ से इति पर्यन्त कह सुनाया और प्रार्थना की गुरुवर ! आप जैसे प्रबल चमत्कार की विद्यमानता में भी मैं इस कार्य में सफल न होसका तो फिर सफलता की आशा रखना ही व्यर्थ है।

इधर सूरिजी ने कुछ समय पर्यन्त गम्भीरता से विचार किया तो ज्ञात हुआ कि यह सब दूसरे की उन्नति को नहीं देखने रूप असहिष्णुता का ही परिणाम है। जिस नूतन मन्दिर के लिये खुशी मनानी थी उत्साहभर शुभ वचनों से सेठजी के उत्साह का वर्धन करना था वहाँ भी वीरसूरि जैसे प्रभावक महात्मा

को विघ्न करना सूझा ? खैर ! कदर्पी को सूरिजी ने कहा—किसी भी तरह से घबराने की आवश्यकता नहीं है इस बार मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। तुम तो अपना कार्य पूर्ववत् प्रारम्भ रक्खो। बस आचार्यश्री के सन्तोषप्रद वचनों को श्रवण कर सेठ कदर्पी ने तीसरी बार क्रिया की और वीर सूरि ने भी अपनी पूर्ववत् प्रवृत्यानुसार पुनः आकाश में बादल बनवाये। इसको देख सिद्धसूरिजी ने मन्त्र बल से उन बादलों को छिन्न भिन्न कर डाले अतः उनका थोड़ा भी प्रभाव प्रतिमा पर नहीं पड़ सका। बस सूत्रधारों ने सर्वाङ्ग सुन्दर मूर्ति तत्क्षण तैय्यार करदी। सेठ ने मूर्ति के दोनों नेत्रों के स्थान दो ऐसी अमूल्य मणियाँ लगाई कि जिनका प्रकाश सहस्र रश्मिवत् रात्रि को भी दिन करने लगा। सेठजी का कार्य निर्विघ्नतया सफल होगया तब वह अञ्जनशलाका एवं प्रतिष्ठा की तैय्यारियां बहुत ही समारोह पूर्वक करने लग गया। आचार्यश्री सिद्धसूरि ने सर्व दोष विवर्जित शुभमुहूर्त दिया तब उक्त मुहूर्त पर खूब धूमधाम से प्रतिष्ठा करवा कर चरमतीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी की मूर्ति स्थापित करदी। सेठ कदर्पी ने इस प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया। स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिका की प्रभावना देकर उनका सत्कार किया।

उस मन्दिर में जो अवशिष्ट काम रह गया था उसको करवाने में सेठ कदर्पी तो सर्व प्रकार से समर्थ था पर आपके आत्मीय सम्बन्धी बप्पनाग गौत्रीय शा० ब्रह्मदेव ने बहुत ही आग्रह किया कि—"इतना लाभ तो मुझे भी मिलना चाहिये"। अतः शेष रहा हुआ कार्य ब्रह्मदेव से सम्पन्न हुआ। अहा ! यह कैसा मान पिपासा की आशा से रहित पवित्र समय था कि एक समर्थ धनाढ्य ने अपने द्रव्य से सम्पूर्ण मन्दिर बनवाया पर थोड़े से कार्य के लिये सहर्ष उदारवृत्ति पूर्वक दूसरे को आज्ञा प्रदान करदी। आज सवा सेर घृत की बोली से पूजा करनी हो और दूसरे ने भूल से करली हो तो मन्दिर में ही जग मच जाता है। इसका मुख्य कारण यही कि आज नाम पैदा करने की कुत्सित भावना ही रह गई है जिसकी पूर्व जमाने में गन्धमात्र भी नहीं थी। अतः सेठ कदर्पी के मन्दिर का शेष कार्य ब्रह्मदेव ने सम्पूर्ण करवा दिया।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज जैसे जैनागमों के पारगत थे वैसे विद्या मंत्र एवं निमित ज्ञान के भी परम ज्ञाता थे। पास में रहे हुए आचार्य वीर सूरिजी की करामात आपके सामने नहीं चल सकी तब अन्य मतियों के लिये तो कहना ही क्या था यदि उस समय इस प्रकार के चमत्कार एवं विद्याबल न होता तो अन्य मतियों के आक्रमण से जैनधर्म की रक्षा करना एक बड़ा भारी प्रश्न बन जाता जब कि उस समय के साधारण मुनियों के पास भी कई प्रकार की विद्या एवं लब्धियाँ थीं तब आचार्यपद धारक के लिये तो परमावश्यक ही थी हाँ वे अपनी विद्या लब्धियों को काम में ले या नहीं ले पर होना बहुत जरूरी बात थी और इस प्रकार वादियों के आक्रमण से जैनधर्म की रक्षा करसके उनको ही अखिल शासन की जुम्मेवरी का सूरि पद दिया जाता था हम प्राचीन इतिहास को देखते हैं कि कई आचार्यों का पट्ट खाली रह जाता पर वे अयोग्य को आचार्य पद जैसे जुम्मेवरी का पद नहीं देते थे तब ही वे सूरि हो शासन की प्रभावना कर सकते थे जिसमें भी उपकेश गच्छ में तो प्रभु पार्श्वनाथ से एक ही आचार्य होते आये थे हाँ कोई शाखा अलग निकल गई और उनके आचार्य अलग होगये यह बात दूसरी पर उन पृथक् शाखा में भी आचार्य एक ही होता था उन आचार्यों में कितनी योग्यता थी कि वे एक होते हुए भी सर्व प्रान्तों में विहार करने वाले तमाम साधु साध्वियों की सार सम्भार किया करते थे।

आचार्य सिद्धिसूरिजी महाराज महान् प्रभाविक युग प्रवर्तक आचार्य हुए आपका विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत था आप प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का खूब जोरों से प्रचार किया करते थे शुद्धि की मशीन आपके पूर्वजों से ही चली आ रही थी जहाँ आपका पधारना होता वहा थोड़ी बहुत संख्या में अजैनों को जैन बना ही डालते और उन नूतन जैनों के आत्म कल्याणार्थ जैन मन्दिर एवं ज्ञान प्रचारार्थ पाठशाला आदि स्थापना करवा देते उस समय धार्मिक पढ़ाई तो प्रायः जैन मुनि ही करवाते थे जिससे गृहस्थों में

विनय भक्ति का व्यवहार बढ़ता रहने से उन लोगों की देवगुरु धर्म पर दृढ़ श्रद्धा बनी रहती थी और थोड़ा भी सद्ज्ञान गुरु परम्परा से होने से वह जीवन पर्यन्त विस्तार पाता रहता था जब आज हम उनके सब उस समय से विपरीत होता देखते हैं गृहस्थ तो क्या पर जिस गच्छ में एक दो दर्शन आचार्योपाध्याय होवे पर भी उनके शिष्य अन्यमतियों के पास पढ़ते हैं। अरे शिष्य ही क्यों पर वे आचार्योपाध्यायजी उन अन्यमतियों के पास पढ़ते हैं न जाने वे शासन का क्या उद्धार करेंगे। सबसे पहले तो इस आदमी पढ़ाई में जैनधर्म के मूल विनय गुण का ही सर्वनाश हो जाता है कारण एक ओर तो पण्डितजी गादी लगाकर बैठ जाते हैं तब दूसरी ओर मुनि वा आचार्यादि जिसमें कौन किसका विनय करे कारण पण्डितजी तो विद्या गुरु होने का घमण्ड रखते हैं तब मुनि वा आचार्य अपने त्यागवृत्ति एवं संयम का गौरव रखते हैं। भला वह पढ़ाई क्या काम पड़ती है ? जमाने ने तो यहाँ तक प्रभाव डाला है कि युवा साध्वियाँ भी अन्य मती पण्डितों के पास एकेली बैठ कर पढ़ती हैं। जब कि वे साधु साध्वियाँ जिनाज्ञा का आराधना नहीं करके अर्थात् जिनाज्ञा का भंग करके पढ़ाई कर भी ले तो वे सिवाय उदरपूर्ति के अलावा क्या कर सकते हैं ? आज हम देखते हैं कि नये जैन बनाने तो दूर रहे पर जो पूर्वाचार्य बना गये उनका रक्षण भी हमारे से नहीं होता है हाँ समाज में थोड़ी थोड़ी बातों के लिये क्लेश कदाग्रह करके फूट कुसम्प अवश्य फैलाया जाता है और यही उनके मान पूजा प्रतिष्ठा का मुख्य कारण है इससे ही उनका निर्वाह होरहा है और प्रसंगोपात दो शब्द लिख दिये हैं।

आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज का परोपकारी जीवन पट्टावलीकारों ने बहुत विस्तार से लिखा है पर यहाँ स्थानाभाव से इतना ही कह देता हूँ कि आचार्यश्री ने अपने ४१ वर्ष के शासन में सर्वत्र विहार कर कई मांस आहारियों को जैन धर्म में दीक्षित किये अनेकों को जैन धर्म की श्रमण दीक्षा दी अनेक जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठायें करवाई कई बार यात्रार्थ भावुकों को उपदेश दे श्रीसंघ को तीर्थों की यात्रा का लाभ दिया विशेषता यह थी कि आप भ० पार्श्वनाथ की परम्परा के होते हुए भ० महावीर की परम्परा के साथ क्षीर नीर की तरह मिल कर रहते थे दूसरे आपके भी कई आचार्य निश्रा पर उनके साथ भी आपका द्वितीय भाव नहीं था यही कारण है कि उस समय के साहित्य में किसी के साथ किसी का खण्डन मण्डन का उल्लेख नहीं मिलता है। तब ही तो वे सबको साथ में लेकर जैन धर्म की विजय विजयंति सर्वत्र फहरा रहे थे।

प्रसंगोपात हम अन्य गच्छों के आचार्यों द्वारा बनाये हुए नूतन जैनों का संक्षिप्त उल्लेख कर रहे हैं।

१ कोरंट गच्छाचार्यों के बनाये हुए अजैनों से जैन श्रावकों की जातियें—जैसे उपकेशगच्छाचार्यों ने अजैनों से जैन बनाने की मशीन स्थापन कर लाखों नहीं पर करोड़ों अजैनों को जैन बना कर जैनधर्म को जीवित रखा है इसी प्रकार कोरंट गच्छाचार्यों ने भी अजैनों को जैन बना कर उनके हाथ बढ़ाये थे॥

पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ आये हैं कि भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि हुए आपके लघु गुरु भाता कनकप्रभसूरि थे जिनको कोरंटपुर के श्रीसंघ ने आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये तब से पारस नाथ परम्परा की दो शाखायें होगई। जैसे उपकेशपुर के आस पास विहार करने वाले आचार्य रत्नप्रभसूरि की सन्तान उपकेशगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई तब कोरंटपुर के आस पास विहार करने वाले आचार्य कनकप्रभसूरि के समय वाले कोरंटगच्छ के नाम से मशहूर हुए। और उपकेशगच्छ में आचार्य रत्नप्रभसूरि, यक्षदेवसूरि, ककसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि एवं पाँच नामों से क्रमशः परम्परा चली आ रही थी। इसी प्रकार कोरंटगच्छ में आचार्य कनकप्रभसूरि सोमप्रभसूरि मानप्रभसूरि, ककसूरि और सर्वदेवसूरि इन पाँच नामों से क्रमशः परम्परा चली आई। इस प्रकार १४ पट्ट तक तो उपरोक्त दोनों में पाँच-पाँच नामों से पट्ट क्रम चला आया पर उसके आगे देवी सच्चायिका के आदेशानुसार उपकेश गच्छ में रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि ये दो नाम रखना बन्द कर दिये अर्थात् उपरोक्त दो नाम भण्डार कर दिये कि

अन्य गच्छीय] के बनाये श्रावक

भविष्य में होने वाले आचार्यों के प्रस्तुत दो नाम नहीं रखे जाँय पर ककसूरि देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि इन तीन नामों से ही परम्परा चले और इसी प्रकार ३५ वें पट्ट के पश्चात् उक्त तीन नाम से ही परम्परा चली आई है इसी प्रकार कोरंटगच्छ वालों ने भी आचार्य कनकप्रभसूरि सोमप्रभसूरि इन दो नामों को भंडार कर शेष आचार्य नन्नप्रभसूरि, ककसूरि और सर्वदेवसूरि इन तीन नामों से ही अपनी परम्परा चलाई।

आचार्य स्वयप्रभसूरि ने श्रीमाल नगर और पद्मावती नगरी में जिन अजैन राजा प्रजा को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये थे और आगे चलकर वे ग्राम नगरों के नाम पर श्रीमाल और प्राग्वट वंश से प्रसिद्ध हुए तब आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के राजा प्रजा के लाखों वीर क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर महाजन संघ की स्थापना की और आगे चलकर समयान्तर में वे उपकेशवंशी कहलाये।

उधर श्रीमाल नगर से अर्बुदाचल तक का प्रदेश एवं आचार्य स्वयप्रभसूरि के बनाये श्रीमाल एवं प्राग्वटवंश आचार्य कनकप्रभसूरि और आपकी सन्तान परम्परा के आचार्यों की आज्ञा में रही और उपकेश वंश आचार्य रत्नप्रभसूरि और उनकी परम्परा के आचार्यों की आज्ञा में रहे। आज्ञा का तात्पर्य यह है कि उन लोगों को व्रत प्रत्याख्यान करवाना आलोचना सुनकर प्रायश्चित देना संघादि शुभ कार्यों में वासक्षेप देना और सार सम्भाल, रक्षण, पोषण वृद्धि करना इत्यादि शायद संकुचित दृष्टि वाले इन कार्यों को वाड़ा बन्दी समझने की भूल न कर बैठे पर इन कार्यों को संघ की व्यवस्था कही जा सकती है और इसी प्रकार संघ व्यवस्था चलती रही वहां तक संघ में सर्वत्र सुख, शांति, प्रेम, स्नेह, एकता और संगठन का किला मजबूत रहा कि जिसमें राग, द्वेष, क्लेश कदाग्रह रूप चोरों को घुसने का अवकाश ही नहीं मिला तथा इस प्रकार की व्यवस्था से उन आचार्य्यों के अन्दर आपसी प्रेम एकता की वृद्धि होती गई। और इस एकता के आदर्श स्वरूप एक आचार्यों के कार्यों में दूसरे आचार्य हमेशा सहायक बन मदद पहुचाते थे प्राचीन पट्टावलियादि ग्रंथों में बहुत से ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि उपकेश गच्छ के आचार्यों ने जिस प्रदेश में विहार किया कि जहां श्रीमाल, प्राग्वट वंश की अधिक वस्ती थी वहां अजैनों का जैन बना कर उन्हें श्रीमाल, प्राग्वट वंश में शामिल कर दिये और जिन कोरटगच्छाचार्य्यों ने ऐसे प्रदेश में विहार किया कि जहां उपकेश वंश के लोगों की अधिक संख्या थी वहां उन्होंने अजैनों को जैन बना कर उपकेशवंश में शामिल कर दिये थे। हां, ये तो दोनों गच्छ पार्श्वनाथ की परम्परा के थे पर जब हम इतिहास को देखते हैं तब यह भी पता मिलता है कि भगवान् महावीर की परम्परा के आचार्यों ने जहाँ तहाँ अजैनों को जैन बनाये थे वहां श्रीमाल, प्राग्वट और उपकेशवंश इन तीनों वंशों में से जिस किसी भी विशेष आस्तित्व होता उनके ही शामिल मिला देते थे। यदि उनके हृदय में संकीर्णता ने थोड़ा ही स्थान प्राप्त कर लिया होता तो वे अपने बनाये श्रावकों (अजैनों को जैन) को पूर्व स्थापित वंशों में न मिला कर अपने बनाए जैनों का एक अलग ही वंश स्थापन कर देते पर ऐसा करने में वे लाभ के बजाय हानि ही समझते थे उनको वाड़ा बन्दी नहीं करनी थी पर करनी थी जैन शासन की सेवा एवं जैन धर्म का प्रचार। जहां तक दोनों परम्परा के आचार्य्यों का हृदय इस प्रकार विशाल रहा वहां तक दिन दूनी और रात चौगुनी जैन धर्म की उन्नति होती रही। जैन जनता की संख्या बढ़ती गई, यहां तक कि महाजन संघ शुरु से लाखों की संख्या में थी वहां करोड़ों की संख्या में पहुँच गई। प्राचीन पट्टावलियों एवं वंशावलियों से हमें यह भी स्पष्ट पता चल रहा है कि उपकेशवंश, श्रीमालवंश और प्राग्वटवंश यह एक ही महाजन संघ की, नगरों के नाम पर पड़े हुए पृथक् २ नाम एवं शाखाए हैं। परन्तु उन सब शाखाओं का रोटी बेटी व्यवहार शामिल ही था। अरे! इतना ही क्यों? पर जिन क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर महाजन संघ में शामिल कर लिया था बाद में भी कई वर्षों तक उनका बेटी व्यवहार जैनोतर क्षत्रियों के साथ में भी रहा था। वे समझते थे कि किसी क्षेत्र को संकीर्ण कर देना पतन का ही कारण है और हुआ भी ऐसा ही ज्यों ज्यों वैवाहिक क्षेत्र संकीर्ण होता गया त्यों त्यों समाज का पतन होता गया। पर पूर्व जमाने में समाज

की बागडोर मात्र जैनाचार्यों के ही हाथ में थी वे लोग जो कुछ करते उसको महाजन संघ शिरोधार्य कर लेता था तथा इस उदारवृत्ति का प्रभाव अन्य लोगों पर काफी पड़ा था जिन अजैनों ने जैन धर्म स्वीकार किया था वे केवल धर्म को अपनाके ही नहीं पर कई लोग अपनी व्यवहारिक सुविधाएं को भी साथ में देखी थी और जैन लोग भी नये जैन बनने वालों को सब तरह की सुविधाएं कर देते थे। कारण उस समय के महाजन संघ के हाथ में एक तो व्यापार और दूसरा राज तंत्र ये दो शक्तियें महान् थी कि नये जैन बनने वालों को उनकी योग्यतानुसार किसी भी कार्य में लगा कर उनको सहायता पहुँचा सकते थे। और यह क्रम विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक थोड़ा बहुत प्रमाण रूप में चला ही आरहा था जिन मांस मदिरा सेवी क्षत्रियों को आचार्यों ने प्रतिबोध देकर जैन बनाये उसी समय उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार बड़े ही उत्साह के साथ चालू कर देते थे इनकी सावूती के लिये भिन्न-भिन्न जाति के राजपूत पृथक् २ समय में जैनधर्म स्वीकार किया था पर उन सबका रोटी बेटी व्यवहार अद्यावधि शामिल चला आरहा है।

प्रसंगोपात इतना लिखने के पश्चात् अब हम कोरंटगच्छाचार्यों के बनाये श्रावकों की जातियों की उत्पत्ति का हाल संक्षेप से लिख देते हैं।

पहले तो मुझे इस बात का खुलासा कर देना जरूरी है कि उपकेशवंशादि वंश की जितनी जातियाँ पूर्व जमाने में थी एवं वर्तमान में हैं वे किसी आचार्यों ने स्थापन नहीं की थी न उन जातियों के नाम करण होने का निश्चय समय ही है और न अजैनों से जैन बनते ही वे जातियां बन गई थी परन्तु पूर्वाचार्यों ने जो अजैन लोगों का अभक्ष खान पान एवं अत्याचार और अधर्म एवं हिंसादि छुड़ा कर जैन श्रावक बनाये थे बाद समयान्तर में कई-कई कारणों से जातियों के नामकरण होते गये। जिन कारणों को इसी ग्रन्थ के पिछले पृष्ठों पर हम लिख आये हैं जिज्ञासु महानुभाव पृष्ठ पलट कर देख लें।

यह बात भी हम ऊपर लिख आए हैं कि पूर्व जमाने में किसी गच्छ समुदाय के आचार्यों ने अजैनों को जैन बनाये वे पूर्व बनाये हुए वंशों में शामिल कर दिये थे पर अपनी आज्ञा वर्ती के लिये अपने बनाये श्रावकों को पृथक् २ नहीं रखे थे। पर विक्रम की नवमी दशवीं शताब्दी के आचार्यों के हृदय ने पलटा खाया और वे अपने बनाये श्रावकों को अपने गच्छ के उपासक बनाये रखने को उन नूतन श्रावकों की जातियों को अपने गच्छ के नाम से बोलने लगे जिसमें कोरंटगच्छ के आचार्य भी शामिल आजाते हैं।

कोरंटगच्छ के आचार्यों के लिये मैं ऊपर लिख आया हूँ कि पहले पांच नामों से और बाद में तीन नामों से ही उनकी पट्ट परम्परा चली आई थी। जैसे उपकेशगच्छ की परम्परा पाठकों की सुविधा के लिये यहां दोनों गच्छ के आचार्यों की नामावली लिख दी जाती है इसका एक कारण यह भी है कि जैसे उपकेश गच्छाचार्यों का समय लिखा मिलता है वैसे कोरंटगच्छ के सब आचार्यों का समय लिखा हुआ नहीं मिलता है। अतः उपकेश गच्छाचार्यों की नामावली साथ में दे देने से कोरंटगच्छाचार्यों के समय का भी अनुमान लगाया जा सकेगा।

भगवान् पार्श्वनाथ से ३२ वें पट्ट तक तो दोनों गच्छों के आचार्यों की पांच-पांच नामों से परम्परा चलती आई बाद में तीन तीन नाम से जिसकी नामावली यह दे दी जाती है।

भगवान् पार्श्वनाथ
|
१—गणधर शुभदत्ताचार्य
२—आचार्य हरिदत्तसूरि
३—आचार्य समुद्रसूरि

४—आचार्य केशीश्रमणाचार्य
५—आचार्य स्वय प्रभसूरि

६—आचार्य रत्नप्रभसूरि (१)
७—आचार्य यक्षदेवसूरि
८—आचार्य कक्कसूरि
९—आचार्य देवगुप्तसूरि
१०—आचार्य सिद्धसूरि
११—आचार्य रत्नप्रभसूरि (२)
१२—आचार्य यक्षदेवसूरि
१३—आचार्य कक्कसूरि
१४—आचार्य देवगुप्तसूरि
१५—आचार्य सिद्धसूरि
१६—आचार्य रत्नप्रभसूरि (३)
१७—आचार्य यक्षदेवसूरि ११५
१८—आचार्य कक्कसूरि १५७
१९—आचार्य देव गुप्तसूरि १७४
२०—आचार्य सिद्धसूरि १७७
२१—आचार्य रत्नप्रभसूरि (४) १९९
२२—आचार्य यक्षदेवसूरि २१८
२३—आचार्य कक्कसूरि २३५
२४—आचार्य देवगुप्तसूरि २६०
२५—आचार्य सिद्धसूरि २८२
२६—आचार्य रत्नप्रभसूरि (५) २९८
२७—आचार्य यक्षदेवसूरि ३१०
२८—आचार्य कक्कसूरि ३३६
२९—आचार्य देवगुप्तसूरि ३५७
३०—आचार्य सिद्धसूरि ३७०
३१—आचार्य रत्नप्रभसूरि (६) ४००
३२—आचार्य यक्षदेवसूरि ४२४
३३—आचार्य कक्कसूरि ४४०
३४—आचार्य देवगुप्तसूरि ४८०
३५—आचार्य सिद्धसूरि ५२०

१—आचार्य कनकप्रभसूरि (१)
२—आचार्य सोम प्रभसूरि
३—आचार्य नन्नसूरि
४—आचार्य कक्कसूरि
५—आचार्य सर्व देवसूरि
६—आचार्य कनकप्रभसूरि (२)
७—आचार्य सोमप्रभसूरि
८—आचार्य नन्नप्रभसूरि
९—आचार्य कक्कसूरि
१०—आचार्य सर्व देवसूरि
११—आचार्य कनकप्रभसूरि (३)
१२—आचार्य सोमप्रभसूरि
१३—आचार्य नन्नप्रभसूरि
१४—आचार्य कक्कसूरि
१५—आचार्य सर्व देवसूरि
१६—आचार्य कनकप्रभसूरि (४)
१७—आचार्य सोम प्रभसूरि
१८—आचार्य नन्नप्रभसूरि
१९—आचार्य कक्कसूरि
२०—आचार्य सर्व देवसूरि
२१—आचार्य कनकप्रभसूरि (५)
२२—आचार्य सोम प्रभसूरि
२३—आचार्य नन्नप्रभसूरि
२४—आचार्य कक्कसूरि
२५—आचार्य सर्व देवसूरि
२६—आचार्य कनकप्रभसूरि (६)
२७—आचार्य सोमप्रभसूरि
२८—आचार्य नन्नप्रभसूरि
२९—आचार्य कक्कसूरि
३०—आचार्य सर्वदेवसूरि

इस समय दोनों गच्छों में आदि के दो नाम भण्डार कर दिये गये। फिर बाद में दोनों गच्छो में तीन-तीन नामों से पट्ट क्रम चला जैसे —

३६—आचार्य कक्कसूरि ५५८ ३६—आचार्य नन्नप्रभसूरि

३७—आचार्य देवगुप्तसूरि ५०१		३७—आचार्य कक्कसूरि
३८—आचार्य सिद्धसूरि (७) ६११		३८—आचार्य सर्वदेवसूरि (७)
३९—आचार्य कक्कसूरि ६६		३९—आचार्य नन्नप्रभसूरि
४०—आचार्य देवगुप्तसूरि ६८०		४०—आचार्य कक्कसूरि
४१—आचार्य सिद्धसूरि (८) ७२४		४१—आचार्य सर्वदेवसूरि (८)
४२—आचार्य कक्कसूरि ७७८		४२—आचार्य नन्नप्रभसूरि
४३—आचार्य देवगुप्तसूरि ८३७		४३—आचार्य कक्कसूरि
४४—आचार्य सिद्धसूरि (९) ८९२		४४—आचार्य सर्वदेवसूरि (९)
४५—आचार्य कक्कसूरि ९५२		४५—आचार्य नन्नप्रभसूरि
४६—आचार्य देवगुप्तसूरि १०११		४६—आचार्य कक्कसूरि
४७—आचार्य सिद्धसूरि (१०) १०३३		४७—आचार्य सर्वदेवसूरि (१०)
४८—आचार्य कक्कसूरि १०७४		४८—आचार्य नन्नप्रभसूरि
४९—आचार्य देवगुप्तसूरि ११०८		४९—आचार्य कक्कसूरि
५०—आचार्य सिद्धसूरि (११) ११९८		५०—आचार्य सर्वदेवसूरि (११)

कोरंटगच्छ के आचार्यों में ४५ वें पट्ट के पूर्व हुए आचार्यों ने अजैनों को जैन बनाए उनको तो वे पूर्व स्थापित उपकेशवंश में ही शामिल मिलाते गये पर ४५वें पट्टधर आचार्य से उनके बनाये अजैनों को जैन, जिनकी आगे चल कर जातियाँ व नाम संस्करण हुए वे जातियाँ मात्र अपने गच्छ के नाम से ही रखी गई थी उन जातियों के विषय में ही यहां लिखा जाता है।

कोरंटगच्छ के अन्तिम श्रीपूज्य सर्वदेवसूरिजी जिनका प्रसिद्ध नाम अजीतसिंह था वे विक्रम संवत् १९ के आस पास बीकानेर पधारे थे वहां पर उपकेशगच्छ के आचार्य कक्कसूरिजी विद्यमान थे उन्होंने कोरंटगच्छ के श्रावकों को तथा श्रीसंघ को उपदेश देकर आगत श्रीपूज्य का अच्छा स्वागत सम्मेला करवाया और उनको उपकेशगच्छ के उपाश्रय में ही ठहराया। दोनों गच्छ के श्रीपूज्य एक ही स्थान पर ठहरे इससे पाया जाता है कि उनके आपस में अच्छा मेल मिलाप था। वे कई दिन तक दोनों बीकानेर में श्रीपूज्यजी ठहरे और आपस में वार्तालाप करते रहे जब कोरंटगच्छ के श्रीपूज्य बिदा होने लगे तब उनके पास कोरंट गच्छाचार्यों द्वारा प्रतिबोध पाये हुए १९ जातियों की उत्पत्ति एवं उनकी वंशावली की एक बही थी वो उनके पीछे कोई योग्य शिष्य न होने से उपकेश गच्छाचार्य कक्कसूरिजी की सेवा में भेंट करदी वह उनकी दीर्घ दृष्टि ही तो थी।

वह बही यतिवर्य माणकसुन्दरजी के पास थी। वि० सं० १९७४ का मेरा चातुर्मास जोधपुर में था। उस समय यतिवर्य ज्ञानसुन्दरजी रायपुर से, माणकसुन्दरजी राजलदेसर से, और यतिवर्य चन्द्रसुन्दरजी आदि जोधपुर आये थे और उनसे गच्छ संबंधी वार्तालाप हुआ था। कई प्राचीन पट्टावलियां राजाओं बादशाहों के दिये फरमान, पट्टे, सनदें वगैरह मुझे भी दिखाये उनके अन्दर कोरंटगच्छाचार्यों की दी हुई वह बही भी थी यद्यपि उस समय इस विषय पर मेरी इतनी रुचि नहीं थी तथापि कोई भी नई बात नोट करलेने की मेरी शुरू से ही आदत थी तदनुसार मैंने उनके पन्द्रह लेखों के साथ कोरंटगच्छाचार्यों के प्रतिबोधक श्रावकों की जातियों की उत्पत्ति वगैरह की नोंध मेरी नोंध पुस्तक में करली तदनुसार मैं यहां पर उन जातियों की उत्पत्ति लिख रहा हूँ।

कोरंटगच्छ के पट्ट क्रम में ४५ वें पट्ट पर आचार्य नन्नप्रभसूरि एक महान् प्रतिभाशाली आचार्य थे आपकी कठोर तपश्चर्या से कई विद्या एवं लब्धियों आपको स्वय वरदाई थी। आपकी व्याख्यानशैली तो इतनी आकर्षित थी कि मनुष्य तो क्या पर कभी कीभी देव देवियां भी आपकी अमृतमय व्याख्या देशना सुनने को ललायित रहते थे। एक समय आचार्यश्री विहार करने जा रहे थे कि जंगल में आपको कई घुड़ सवार तथा अनेक सरदार मिले—

क्षत्रियों ने सूरिजी महाराज को नमस्कार किया।

सूरिजी ने उच्च स्वर से धर्म लाभ दिया।

क्षत्रियों ने—महात्माजी केवल धर्म लाभ से क्या होने वाला है कुछ चमत्कार हो तो बतलाओ।

सूरिजी—आप लोग क्या चमत्कार देखना चाहते हैं ?

क्षत्रिय—महात्माजी। हम निर्भय स्थान चाहते हैं ?

सूरिजी—आप अकृत्य कार्यों को छोड़ कर जैन धर्म की शरण ग्रहण करलें आप इस लोक में क्यों भवोभव में निर्भय एव सुखी बन जाओगे ?

क्षत्रिय—महात्माजी ! आपके सामने हम सत्य बात कहते हैं कि हम लूट, खसोट कर, धाड़ा डालने का धधा करते हैं यद्यपि हम इस धधे को अच्छा नहीं समझते हैं तथापि हमारी आजीविका का एक मात्र यही एक साधन है।

सूरिजी—महानुभावों ! इस धंधे से इस भव में तो आप त्रसित हो भय के मारे इधर-उधर भटक रहे हैं तब परभव में तो निश्चय ही दु:ख सहन करना पड़ेगा। यदि आप इस भव में और परभव में सुखी होना चाहते हैं तो जैन धर्म की शरण लें।

क्षत्री—महात्माजी ! हम जैन धर्म स्वीकार कर भी लें तो क्या आप हमारी सहायता कर सकेंगे।

सूरिजी—धर्म के प्रभाव में मैं ही क्यों पर महाजन सघ भी आपकी सहायता कर आपको सर्व प्रकार से सुखी बना देगा।

क्षत्री—ठीक है महात्माजी ! आपके कहने के अनुसार हम जैन धर्म की शरण लेने को तय्यार हैं तो सूरिजी ने उस जगल में ही मुख्य पुरुप धूहड़ आदि जितने सरदार उस समय उपस्थित थे उन सब को वास क्षेप और मत्रों से शुद्ध कर जैन धर्म के देवगुरु धर्म का सक्षिप्त से स्वरूप को समझा कर जैन बना लिये और उस दिन से ही उनको सात दुर्व्यसनों का त्याग करवा दिया और उन सरदारों ने भी बड़ी खुशी के साथ सूरिजी के वचनों को शिरोधार्य कर लिया। राव धुवड़ सूरिजी को अपने ग्राम धुसाणी में ले गया और वहां अपने कार्य में शामिल रहने वाले आम पास के सब सरदारों को बुलवा कर सूरिजी की सेवा में उपस्थित किये और सूरिजी ने उन सबों को उपदेश देकर जैन बना लिये इस बात की खबर इधर तो पद्मावती और उधर चन्द्रावती नगर में हुई बस उसी समय सैकड़ो की सख्या में भक्त लोग सूरिजी के दर्शनार्थ आये और उन्होंने सूरिजी की भूरि भूरि प्रशसा की। इस पर सूरिजी ने कहा श्रावको ! केवल प्रशसा से ही काम नहीं चलता है पर जैसे हम लोग उपदेश देकर अजैनों को जैन बनाते हैं आप लोगों को भी उनके साथ सामाजिक व्यवहार कर उनका उत्साह बढाना चाहिये। बस, फिर तो कहना ही क्या था उस समय जैनाचार्यों का उतना ही प्रभाव सघ पर था कि इशारा करते ही उन्होंने सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर उन नूतन जैनों को सब तरह से सहायता पहुँचा कर अपने भाई बना लिये। वे ही लोग आगे चल कर धाड़ावालों के नाम से ओलखाने लगे बाद धाड़ा का धाड़ीवाल शब्द बनगया।

इसी प्रकार एक समय धुवड़ ने आकर आचार्यश्री से अर्ज की कि हे प्रभो ! आज माघ कृष्णा त्रयोदशी है बहुत से लोग रावड़िया भैरूं के स्थान पर एकत्र होकर बहुत से भैसों और बकरों को मार कर भैरूं का

मेला मनावेंगे। इत्यादि राव पुत्र के शब्द सुन कर दया के दरियाव आचार्य कक्कसूरि कुछ आदि कई मत लोगों को साथ लेकर पहाड़ों के बीच रावलिया भैरूं के स्थान पर आये वहां पर देखा तो चारों ओर जन मेदिनी मिली हुई है बहुत से भैरूं भक्त वाममार्गियों के सेवा लोग गेरू रंगीन लाल वस्त्र पहिने हुए कमर में से बड़े घूगरे लगाये हुए और मदिरा पान में मस्त बने हुए तीक्ष्ण छुरे हाथों में लिये हुए भैरूं के मन्दिर के बाहर खड़े थे। भैसों और बकरों के गले में पुष्पों की माला डाली हुई थी और भैरूं पूजा की तय्यारी होरही थी कि सूरिजी वहां पहुँच गये। बस सूरिजी को देखते ही उन पाखण्डियों का क्रोध के मारे शरीर लाल चसुर होकर कांपने लगा। राव पुत्र ने आकर सूरिजी से कहा प्रभो! मामला बड़ा विकट है मुझे भय है कि पाखण्डी लोग मदिरा में मस्त बने हुए कहीं आपकी आशातना न कर बैठे। अतः यहाँ से चल कर अपने स्थान पर पहुँच जाना चाहिये। सूरिजी ने कहा पुत्र घबराते क्यों हो मनुष्य को मरना एकवार ही है आप जरा धैर्य रखो। बस! अहिंसा के उपासक सूरिजी के पास आकर एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। सूरिजी ने अम्बा देवी का मन से स्मरण किया तत्काल देवी आदरांत सूरिजी की सेवा में आ उपस्थित हुई। सूरिजी ने कहा—तुम्हारे जैसी समदृष्टि देवियों के होते हुए भी इस प्रकार के घोर अत्याचार होते हैं। क्या ऐसे निर्दय मनुष्यों को तुम शिक्षा नहीं दे सकती हो? देवी ने कहा हे प्रभो! इन लोगों के आधीन बीच इनके देव देवी रहते हैं अन इनके देवों का सामना करने से शेष समुह हमारी इनत इनकी समझते हैं। अतः इनकी उपेक्षा ही की जाती है। सूरिजी ने कहा कि और, इस विषय में तो फिर कुछ कहेंगे पर यह जो मेरे सामने अत्याचार हो रहा है इसका तो निवारण हो ही जाना चाहिये। देवी ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य करली। अब वे लोग भैरूं के सामने भैंसे बकरे लाकर मारने के लिये तलवारें, छुरे और भाले हाथों में लेकर हाथ ऊंचे उठाने तो हाथ ऊंचे के ऊंचे रह गये और भैरूं की स्थापना (मूर्ति) से आवाज निकली कि मैं इस बलि को नहीं चाहता हूँ इन सब पशुओं को यहाँ से शीघ्र छोड़ कर मुक्त करदो वरन मैं तुम्हारा ही भोग लूंगा। सब उपस्थित लोग विचार करने लगे कि अपनी वंश परम्परा से वर्ष में इसी दिन भैरूं की पूजा की जाती है, बलि न देने पर बड़ा भारी क्षोभ रहता है आज यह क्या चमत्कार है कि एक तरफ हाथ ऊंचे रह गये और दूसरी ओर स्वयं भैरूं बोल कर कहता है कि इन पशुओं को छोड़ दो इत्यादि। पर कई लोगों ने कहा कि अरे एक जैन सेवड़ा यहाँ आकर बैठा है यह सब उसी की तो करामात न हो? बस जितने लोग वहां थे उन सबके जच गई कि दूसरा कारण हो ही नहीं सकता है। अतः कुछ अगेवान चलकर सूरिजी के पास आये और प्रार्थना की कि आपने यह क्या किया है? आपने हमारे वंश परम्परा से चले आये हुए मेला को बन्द कर दिया? सूरिजी ने कहा कि सब लोगों को यहां बुलाओ फिर मैं उत्तर दूंगा। बस सब लोग सूरिजी के पास आगये। तब सूरिजी ने उन लोगों को उपदेश दिया कि महानुभावो! आपके लिये संसार में बहुत से पदार्थ हैं। गुड़, खांड, घृत, दूध, मेवा-मिष्ठान्न फिर समझ में नहीं आता कि आप लोगों की अमूल्य सेवा करने वाले अबोल पशुओं के कोमल कंठ पर निर्दयता पूर्वक छुरा चला कर क्यों मारते हो? क्या इस अनर्थ का भवान्तर में आपको बदला नहीं देना पड़ेगा पर जब भवान्तर में आपके गले पर इसी प्रकार का छुरा चलेगा तब आपको मालूम होगा कि जीवों की हिंसा के कैसे कटु फल लगते हैं इत्यादि। ऐसा उपदेश दिया कि सुनने वालों की आत्मा भय के मारे कम्पाने लग गई। वे लोग बोले कि महात्माजी! हम लोग तो हमारी जिन्दगी में इस प्रकार देवी देवताओं को एक वर्ष में कई स्थानों पर बलि दी है क्या इन सबका फल हमें नरक में भुगतना ही पड़ेगा। सूरिजी ने कहा कि तुम बाजार से व्यापारी की दुकान से उधार माल लाते हो एक बार या अनेक बार। ऐसे कर्ज को आप चुकाते हो या नहीं अर्थात् वे उधार देने वाले अपनी रकम आप से वसूल करते हैं या नहीं? सब लोगों ने कहा हाँ करजा तो चुकाना ही पड़ता है। तब यह भी तो एक कर्ज ही है इसको भी अवश्य चुकाना पड़ेगा। याद रखो आज तुम मनुष्य हो और यह जीव पशु है पर भवान्तर में यह पशु

यदि मनुष्य बन जायगा और तुम पशु बन जाओगे तो क्या वे तुम्हारे कंठ पर छूरा नहीं चलावेंगे इत्यादि। इस पर वे पातकी लोग पराभव के पाप से डर कर बोले कि महात्माजी! इसका उपाय भी है कि हम इस पाप से बच सकें। सूरिजी ने कहा कि आपके लिये यही एक उपाय है कि आप इन सातों दुर्व्यसनों को त्याग कर अहिंसा धर्म का पालन करो और जहाँ ऐसा हलका कार्य होता हो वहाँ पर जाकर प्रेम पूर्वक रोको और जीवों को अभयदान दिलाओ। ठीक है जब जीवों के शुभोदय होता है तब उनको निमित्त कारण भी वैसा ही मिल जाता है सूरिजी ने उन सैकड़ों सरदारों को वासक्षेप एवं मंत्रों से शुद्धि कर जैनी बना लिये वे ही लोग भैरू को नाम स्मृति के कारण रातड़िया कहलाये। और अन्य देव देवियों के बजाय उनके कुल देवी अंबादेवी की स्थापना करदी इत्यादि। उन आचार्यों के एक तो पुण्य बल जबर्दस्त थे दूसरी उनकी साधना इतनी जबर्दस्त थी कि समय पर देव देवी उनके कार्य में सहायता कर दिया करते थे। जब आचार्य श्री को अपने किये कार्य में आशातीत सफलता मिलती गई तो उनका उत्साह बढ़ जाना स्वभाविक ही था। बस आचार्य श्री इसी कार्य पर उतारू हो गये कि देवी देवताओं के नाम पर होने वाली घोर हिंसा बन्द करवा कर वीर क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित कर समाज की संख्या बढ़ानी।

जब पाखण्डियों को इस बात की खबर लगी कि जैन सेवड़े तो अब ग्रामों एवं जङ्गलों में फिर २ कर लोगों को जैन बना रहे हैं और इस प्रकार इनका प्रचार होता रहेगा तो अपनी तो सब की सब दुकानदारी ही उठ जायगी। इसके मुख्य कारण दो हैं। एक तो म्लेच्छों के आक्रमणों से भी देश में त्राहि त्राहि मच गई थी। दूसरा कारण कई काल दुष्काल भी ऐसे ही पड़ते थे कि लोगों की आर्थिक स्थिति विकट बन गई थी। जब जैनों के पास पुष्कल द्रव्य होने से वे लोग धन का लालच देकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं तो अपने को भी कहीं पर एक सभा करके अपने धर्म का रक्षण करना चाहिये इत्यादि। इस उद्देश्य से वाममार्गियों के बड़े २ नेता और उनके भक्त लोगों की एक सभा आबू के पास पृथ्वीपुर में जहाँ कि महादेवजी का एक बड़ा ही धाम था जब इस बात की खबर आचार्य नन्नप्रभसूरि को लगी तो वे आप भी पृथ्वीपुर से दो कोस सीरोल ग्राम में जहाँ महाजनों के कई सौ घर थे वहाँ धर्म महोत्सव के नाम पर बहुत से ग्रामों में आमन्त्रण देकर भावुक लोगों को एकत्रित किये। बस, दो कोस के फासले पर दोनों धर्मों की सभाओं का आयोजन होगया पर गृहस्थ लोग तो आपस में मिलना भेटना वार्तालाप करना एवं धर्म के विषय में भी थोड़ी थोड़ी चर्चा करने लग गये। पर कई लोगों की यह भी इच्छा हुई कि अलग २ सभाएँ करके लोगों को क्यों लड़ाया जाय। दोनों धर्मों के आगेवान ही एकत्र हो धर्म के विषय में निर्णय क्यों नहीं कर लिया करें कारण गृहस्थ लोग तो हमेशा अज्ञानी होते हैं उनको तो उपदेशक जिस रास्ते ले जाय उस रास्ते ही चले जा सकते हैं। ठीक दोनों ओर के गृहस्थ लोग मिलकर पहले तो आचार्य नन्नप्रभसूरि के पास आये और प्रार्थना की कि आप दोनों तरफ के महात्मा एकत्र हो धर्म का निर्णय क्यों नहीं कर लेते हो? सूरिजी ने कहा हम तो आपके कथन को स्वीकार कर लेते हैं और हम इसके लिये तय्यार भी हैं। बस, बाद में वे लोग चल कर शिवोपासक वाममार्गी एवं ब्राह्मणों के पास आये वहा भी वही अर्ज की पर वे लोग यह नहीं चाहते थे कि हम जैनों के साथ वाद विवाद करें वे तो अपने ही भक्त लोगों को अपने धर्म में स्थिर रहने की कोशिश करते थे पर जब उन लोगों के भक्तों ने एवं वाममार्गियों ने अधिक जोर दिया लाचार होकर उनको भी स्वीकार करना पड़ा। बस, नियत समय पर दोनों ओर के मध्यस्थों के बीच धर्म के विषय में शास्त्रार्थ हुआ जिसमें जैनों का पक्ष तो हमेशा अहिंसा का रहा तब वाममार्गियों एवं ब्राह्मणों का पक्ष तो क्रियाकांड, यज्ञ, होम, देव देवियों को बलि देने का ही रहा था युक्ति प्रयुक्ति भी अपने-अपने मत की पुष्टि के लिये ही कही जाती थी आखिर में अहिंसा के सामने हिंसा का पक्ष कहा तक ठहर सकता था। ज्यों ज्यों वाद विवाद में ऊंडे उतरते गये त्यों त्यों हिंसा का पक्ष निर्बल होता गया। आखिर में विजयमाल अहिंसा के पक्ष में ही शोभायमान

होती नजर आई हिंसा के पक्ष में पृथ्वीपुर का राव सांखला अमेसर था उसकी समझ में आया कि हिंसा कभी धर्म का कारण हो ही नहीं सकता है दूसरा जैन निर्ग्रन्थों का आचार विचार परोपकार की शैली आदि और उनका निस्पृहता ने रावजी पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा । रावजी ने सूरिजी से आत्मकल्याणार्थ धर्म स्वरूप पूछा उत्तर में सूरिजी ने अहिंसा परमोधर्म का विस्तृत विवरण के साथ स्वरूप बतलाया और साथ में देवगुरु धर्म का भी ठीक २ विवेचन किया और कहा रावजी आत्म कल्याण के लिये सबसे पहले तो देव गुरु पर श्रद्धा होनी चाहिये तब जाकर धर्म के ऊपर निश्चय परिणाम स्थिर हो सकता है । अब आप स्वयं प्रज्ञावान् हैं विचार करलो कि कौन से देवगुरुओं की उपासना करें कि जिससे आत्मा का कल्याण हो सके ! रावजी ने ठीक समझ लिया कि सिवाय परोपकार के सूरिजी ने अभी तक तो कोई भी बात स्वार्थ की नहीं कही हैं इनका आचार तो यहाँ तक है कि इनके लिये बनाई गई रसोई या इनके लिए सामान लेकर जावे तो वह भी इनके काम की नहीं । इससे अधिक त्याग क्या हो सकता है । इनकी तपश्चर्या भी बड़ी उग्र है कि अन्य किसी के मत में देखने में नहीं आती है इत्यादि विचार कर रावजी अपने कुटुम्ब एवं अपने बहुत से साथियों के साथ सूरिजी के चरण कमलों में श्रद्धापूर्वक जैन धर्म को अङ्गीकार कर लिया।

राव सांखला ने अपने यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ का उत्तंग मन्दिर बनवाया जिस पर सुवर्ण कलश चढ़ा कर प्रतिष्ठा करवाई । रावजी ज्यों ज्यों धर्म कार्य में आगे बढ़ते गये त्यों त्यों उनके पूर्व सञ्चित पुण्य भी उदय होते गये रावजी को प्रत्येक कार्य में अधिक से अधिक लाभ मिलता गया साथ में आचार्यों का उपदेश भी मिलता गया इधर महाजनसंघ के साथ भी रावजी का सब तरह का व्यवहार होने लगा । एक बार राव सांखला ने सूरिजी को बुला कर प्रार्थना की कि प्रभो ! मेरा विचार तीर्थ यात्रा करने का है । अतः संघ निकलवा आप तो और भी हमारे हजारों भाइयों को तीर्थयात्रा का लाभ मिल सकता है । अतः आपकी इसमें क्या सम्मति है । सूरिजी ने कहा रावजी ! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं गृहस्थ का तो यह खास कर्त्तव्य ही है कि साधन सामग्री के होते हुए तीर्थयात्रा अवश्य करे और अपने साधर्मी भाइयों को भी यात्रा करावें । बस, फिर तो था ही क्या रावजी ने बड़े ही पैमाने पर संघ निकालने की तैयारियां शुरू करदी और सर्वत्र आमंत्रण भी भिजवा दिये । ठीक समय पर सूरिजी ने वासक्षेप के विधि विधान से राव सांखले को संघपति पद अर्पण कर संघ निकाला । सर्व तीर्थों की यात्रा कर, संघ के वापिस आने पर स्वामीवात्सल्य कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी देकर विसर्जन किये । इसी दिन से ही राव सांखला की सन्तान सखलेचा के नाम से प्रसिद्ध हुई और आगे चल कर उनकी जाति ही सखलेचा हो गई।

इस संखलेचा जाति का भाग्यरवि इतने प्रताप से तपने लगा कि इनकी संतान की बहुत वृद्धि हुई और व्यापारार्थ एवं राजसत्ता से अनेक स्थानों में वटवृक्ष की तरह फैल गई । इस जाति में बहुत से दानी मानी उदार एवं नररत्न हुए हैं कि देश-समाज एवं धर्म की बड़ी सेवाएं कर अपनी उज्ज्वल कीर्ति को अमर बना दी थी इस जाति में कईयों ने चांदी पीतल के बरतनों का काम किया वे कासलिये कहलाये । कइयों ने राज के कोठार का काम किया जिससे कोठारी कहलाये । कई लाखा नाम को लोग भाने से लखांणी कहलाए । कई विराट संघ निकालने से संघी कहलाए । कइयों ने राज के खजाने पर काम किया जिससे खजांची कहलाये इत्यादि । एक ही जाति की अनेक शाखाएं बन गई । जब तक मनुष्य के पुण्यों का उदय होता है, पुण्यों का ही संचय करता है देवगुरु धर्म पर अटूट श्रद्धा रखता है और मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड़ाने वाले के उपकार को सदैव याद करता है और उनके लिये प्रत्युपकार करता रहता है वहां तक उसके पुण्य बढ़ते ही रहते हैं। अहा ! हा !! उस समय एक सखलेचा ही क्यों पर इस महाजन संघ की जहां देखो वहां बढ़ता सितारा ही चमकता था ।

जब से लोग अपने उपकारी पुरुषों का उपकार भूल कर कृतघ्नीपना का घोर पाप शिर पर उठाया

शुरु किया ! बस ! उसी दिन से इनका पतन प्रारम्भ हुआ। क्रमश आज जो दशा हुई है वह सबके सामने विद्यमान है मैं तो आज भी शासनदेव से प्रार्थना करता हूँ कि प्रत्येक जातियाँ वाले अपने-अपने परमोपकारी पुरुषों के गुणों का स्मरण कर उनके प्रति पूज्य भाव रक्खेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि पुन: पूर्वावस्था का अनुभव करने लग जायँ।

हम ऊपर लिख आए हैं कि कोरंट गच्छाचार्यों का विशेष विहार अर्बुदाचल के आस पास के प्रदेश में हुआ करता था जिसमें आचार्य नन्नप्रभसूरि तो इतने प्रभाविक आचार्य हुए कि उन्होंने अपने विहार क्षेत्र को जैनमय बना दिया था जिसमें अधिक लोग राजपूत ही थे। आचार्यश्री को इतनी सफलता मिलने का मुख्य कारण एक तो उस समय भारत में म्लेच्छ लोगों का क्रूरता पूर्वक आक्रमण हुआ करते थे जिसके मारे राजपूत लोगों की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। वे इधर से उधर और उधर से इधर जान बचाते हुए भटकते फिरते थे। दूसरा कारण उस समय जैन समाज की बागडोर जैनाचार्य्यों के ही हस्तगत थी वे किसी को भी उपदेश देकर जैन बना लेते तो उनके इशारे मात्र से ही महाजन संघ उनको अनेक प्रकार से मदद कर उसी समय से सारा जैन समाज उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार चालू कर देता था। उस समय महाजन संघ के हाथ में एक ओर तो राज तंत्र था और दूसरी ओर था व्यापार। अत नये जैन बनने वाले कितने ही मनुष्य क्यों न हो पर उनको योग्यता के अनुसार काम में लगा ही देते थे। महाजन संघ की इस उदारता का भी जन साधारण पर कम प्रभाव नहीं पड़ता था। अज्ञान जनता धर्म की अपेक्षा अपनी सुविधा का पहले विचार करती है जब उनको इच्छा के अनुसार सुविधाए मिल जाती थी तब धर्मों में अहिंसा परमोधर्म जो सब में प्रधान है, स्वीकार करने में दूसरा विचार ही नहीं करती थी। यही कारण है कि उन आचार्य्यों को अपने कार्यों में सर्वत्र सफलता मिलती जाती थी।

आचार्य नन्नप्रभसूरि ने वि० सं० १०१३ के आस पास अर्बुदाचल के समीप विहार कर बहुत से राजपूतों को जैनधर्म की दीक्षा दी उनमें मुख्य पुरुष राव धवल थे। वे चौहान राजपूत थे उनके पुत्र सुरजन और सुरजन के पुत्र सगण था वहां से वे व्यापार करने लग गया था सागण के पुत्र बोहित्य हुआ। बोहित्य पर कुलदेवी की पूर्ण कृपा थी जिसमे उसके एक तरफ तो सन्तान और दूसरी तरफ धन धान्य की वृद्धि होती गई वह इतनी कि बोहित्य ने चन्द्रावती में शासनाधीश भगवान् महावीर का मंदिर बनाया तथा श्रीशत्रुञ्जय, गिरनारादि तीर्थों की यात्रार्थ विराट् संघ निकाला और चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा करवा कर पहरावणी में सुवर्ण मुद्राए सुवर्ण थाल में रख कर दीं याचकों को तो इतना दान दिया कि उनके घरों से दारिद्र चोरों की भांति भाग छूटा इत्यादि। बोहित्थ ने अपने न्यायोपार्जित लक्ष्मी में से सवा करोड़ द्रव्य पूर्वोक्त शुभ कार्यों में व्यय किया। बोहित्थ इतना नामी पुरुष हुआ कि आपके पश्चात् आपके नाम की स्मृति का सूचक बोत्थरा नाम से ओलखाने लगी। फिर तो बोहित्य की सन्तान इतनी फूली फली कि इनके अन्दर ज्यों ज्यों नामांकित पुरुष होते गये त्यों त्यों उनके नाम की शाखाएं भी निकलती गई। जैन बोत्थरा, बच्छराज के नाम पर बच्छावत् शाखा जिसमें कर्मचंद बच्छावत बड़ा ही मशहूर हुआ। इसी प्रकार फोफलिया-मुकिम वगैरह कई शाखाएं निकलीं।

इसी प्रकार कोरंटगच्छाचार्य्यों में ४५ वें पट्ट पर नन्नप्रभसूरि और ४६ वें पट्ट पर कक्कसूरि और ४७ वें पट्ट पर सर्वदेवसूरि और ४८ वें पट्टपर पुन श्रीनन्नप्रभसूरि नाम के आचार्य भी बड़े ही प्रतिभाशाली हुए हैं उन्होंने भी बहुत से अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ की खूब वृद्धि की थी और उन प्रतिबोधित श्रावकों के कई-कई कारणों से जातियां बन कर उनके नाम संस्करण हो गये जो आज भी विद्यमान हैं जैसे धाडीवाल रातड़िया, मल्लेचा और बोथरों की उत्पत्ति ऊपर लिख आए हैं यदि इसी प्रकार शेष जातियों की उत्पत्ति लिखी जाय तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जाने का भय रहता है। अत मैं यह खास मुद्दा की बात ही लिख देता हूँ।

४—भींवसर, मूल चौहान राजपूत थ कोरंटगच्छीय आचार्य ककसूरि ने वि सं० १०११ में प्रतिबोध देकर जैन बनाये और भींवसर ग्राम के नाम पर वे लोग भींवसरे कहलाए हैं। इनके पूर्वजों ने अनेकों मन्दिर बनवाये कई बार तीर्थों के संघ निकाल कई बार दुष्कालों में स्वधर्मी भाइयों एवं पशुओं के प्राण बचाए इत्यादि।

५—मिनी यह भी चौहान राजपूत थ इनके पूर्वजों ने भी जैनधर्म स्वीकार करके जैनधर्म की बड़ी २ सेवाएं की हैं। इस जाति के नामकरण के लिये वंशावलियों में ऐसी कथा लिखी है कि इस जाति में एक सहजपाल नाम का धनी पुरुष हुआ। वह किसी व्यापारार्थ द्रव्य लेकर जा रहा था कि रास्ते में कई ठाकुर लुटेरे मिल गये। जब सहजपाल को लूटने लगे तो सहजपाल घबराया बन गया था पर उसकी बुद्धि ने सिखाया और बोला ठाकुरों! आप लोग बिना हिसाब धन क्यों ले रहे हैं। हां, आपको धन की जरूरत है तो धन तो मंडवालो, सरदारों ने कहा कि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम अपना धन मांडलो। इस हालत में शाह ने कागज बही निकाल कर ठाकुरों के नाम धन लिख लिया और कहा कि ठाकुरों इस धन में किसी की साख डलवाने की सख्त जरूरी है। ठाकुर ने कहा इस जंगल में किस की साख दिलावें जाय? शाह ने कहा कि साख बिना तो धन किस काम का? ठाकुरों ने कहा इस लुंकड़ी की साख डालदें। ठीक शाह ने ऐसा ही किया। ठाकुर माल ले गये। शाह ने सबकी जोड़ लगाई तो करीब ५ ०) रु० का माल था सठजी अपने मकान पर आगये। कई दो चार वर्ष गुजर गये। बाद में एक समय वे ही ठाकुर ग्राम में आये। शाह ने पल्ला पकड़ कर कहा ठाकुरों अभी तक मेरे धन के रुपये वसूल नहीं हुए ठाकुर ने कहा—कौनसे रुपये? शाह ने कहा—क्या आप भूल गये इत्यादि। आपस में तकरार होगई तब दोनों राज में गये। शाह ने जोर जोर से कहा कि देख लीजिये इन ठाकुरों ने हमसे द्रव्य लेकर धन लिख दिया और इस धन में मिन्नी की साख भी डलवाई है इस पर ठाकुर बोले—शाहजी आप राज कचहरी में भी झूठ बोलते हैं। मिन मिन्नी की साख कब डलवाई थी? शाह तो अक्सर वो लुंकड़ी की इस पर न्यायाधीश ने समझ लिया कि ठाकुरों ने रकम जरूर ली है और शाह ने भी बड़ी बुद्धिमत्ता की है कि लुंकड़ी के स्थान पर मिन्नी का नाम लेकर ठाकुरों से सच बोला ही लिया। न्यायाधीश ने कहा ठाकुरों आपने लुंकड़ी की साख डलवाई तब भी सेठजी से रुपये तो जरूर लिये थे इस पर ठाकुरों को सेठजी की रकम का फैसला करना पड़ा उसी दिन से सेठजी की संतान मिन्नी नाम से प्रसिद्ध हुई। समयान्तर तो सेठजी की जाति ही मन्नी होगई है।

इसी मिन्न जाति में भी बहुतसे दानी मानी नर रत्न होकर कई मंदिर बनाए कई संघ निकाल कर यात्रा की और स्वधर्मी भाइयों को सुवर्ण मोहरों की पहरावणी दी। कइयों ने दुष्कालों में लाखों करोड़ों का द्रव्य व्यय कर अटल कीर्ति उपार्जन की। दफ्तरी, रूपाखी, लाडुआ, संघी आदि कई जातियां भी इसी मिन्नी जैन की शाखाओं में से निकली।

इसी प्रकार सूरिजी ने पंवार मालवाजियों को मांसाहारी आदि व्यसन छुड़ाकर जैन बनाया। आपने धर्म कर्मों में बहुत भाग लिया। अतः आपकी संतान मांसलोत के नाम से पहचानी जाती है।

इसी प्रकार ४८ वें पट्ट पर आचार्य नन्नप्रभसूरि भी बड़े ही प्रतिभाशाली और महाप्रभाविक आचार्य हुए हैं क्योंकि भी हजारों अजैन क्षत्रियों को जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की वृद्धि की थी उनके बनाये हुवे गोत्रों के कवल नाम ही लिख दिये जाते हैं जैसे—सुचेता कोठारी कोरंटिया कपुरिया बाकड़ गुगलेचा, नागगोता, मार, सठिया बरडा, मद्दुप सोनेचा, मकवाया, सिन्दूरिया ढालिया मुंकिया, हमालिया, चांडु गेचा, पोसालचा, बालोडिया सहलोती, नागणा श्रीमालानिया बोहेरा जोगणेचा सोनावत, भाखेचा सिवाड़ा निवाड़ा इस प्रकार कोरंटगच्छाचार्यों की नदी में कुल ११ जातियों की उत्पत्ति तथा इन जातियों के बनाए हुए मन्दिरों की प्रतिष्ठा तथा तीर्थयात्रार्थ निकाले हुए संघ एवं स्वधर्मी भाइयों को दी हुई पहरावणी

दुष्कालादि में देश सेवा तथा जनोपयोगी तालाब कुवें वगैरह करवाने का और इन जातियो के वीर पुरुषों ने अपने देश वासियों के तन मन धन एवं बहिन बेटियों के सतीत्व धर्म की रक्षा के लिये युद्ध कर म्लेच्छों को परास्त किये तथा अपने प्राणों की आहुती देकर बड़ी बड़ी सेवाए की तथा उन युद्ध में काम आने वालों की धर्मपत्नियाँ जो अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा एव पति के अनुराग मे उनके पीछे उनकी धकधक करती हुई चिता की अग्नि में सती होगई इन सब बातों का उल्लेख वशावलियों में किया गया है पर ग्रथ बढ़ जाने के भय से यहा पर इतना ही लिखा है। हां, कभी समय मिला तो एक अलग पुस्तक रूप में छपवा कर पाठकों के कर कमलों में रख दिया जायगा।

बांठिया जाति को वि० स० ६१२ में आचार्य भावदेवसूरि ने आबू के आस पास परमा नाम के गाव के राव माधुरादि को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। उन्होंने तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का विराट सघ निकाला जिसमें इतने मनुष्य थे कि जगल में बाठ बाठ पर आदमी दीखने लगे और सघपति ने उदारता से बाठ बाठ पर रहे हुए प्रत्येक नर नारी को पहरावणी दी जिससे जनता कहने लग गई कि संघपतिजी का क्या कहना है आपने बाठ बाठ पर पहरावणी दी है बस उसी दिन से आपकी सन्तान बांठिया नाम से प्रसिद्ध हुई। इस जाति में बहुतसे ऐसे नामाकित पुरुष हुए कि वि० स० १३४० के आस पास में बांठिया रत्नाशाह के संघ में रुपयों की कावड़ें ही चल रही थी। इसमे वे कवाड के नाम से मशहूर हुए। वि० स० १६३१ में बादशाह को वोहरे की जरुरत पड़ी, जोधपुर दरबार को कहा तो आपने मेड़ता के बांठियों को बतलाये। पर उनके पास इतनी रकम न होने से कुछ चिंता होने लगी एक दिन शाहजी व्याख्यान में गये थे, पर वे उदास थे। व्याख्यान के बाद आचार्य ने शाहजी को उदासी का कारण पूछा तो शाहजी ने कहा कि दरबार के कहने से हम बादशाह के वोहरे तो बन गये हैं पर हमारे पास इतनी रकम नहीं है न जाने बादशाह किस समय कितनी रकम माँग बैठे। इस पर आचार्यश्री ने कहा कि आपके घर में जितने सिक्के हों उतनी थैलिया बना कर उसमें सिक्के डाल कर रख देना। शाहजी ने ऐसा ही किया जब समय पाकर आचार्यश्री शाहजी के यहां गये तो उन सिक्के वाली थैलियों पर वासक्षेप डाल कर कहा कि इन थैलियों में से किसी को भी उलटना नहीं, जितना चाहो द्रव्य निकालते ही रहना बस, फिर तो था ही क्या। शाहजी रात और दिन में एक-एक थैली से रुपये निकाले कि शाहजी के घर में ऐसा कोई स्थान ही नहीं कि जहा रुपये रक्खे जाय अत शाहजी के मकान के पीछे एक पशु बांधने का नोहरा था उसके अन्दर ८४ खाड़े खुदवा कर उनके अन्दर वे ८४ सिक्कों के रुपये भर कर उन पर रेती डाल दी और पक्का जाबता भी कर दिया।

जब बादशाह ने सोचा कि कभी रकम की आवश्यकता हो जाय तो बोहरे की परीक्षा तो कर ली जाय कि कभी काम पड़ जाय तो कितनी रकम दे सके अत बादशाह चल कर जोधपुर आया और जोधपुर नरेश को लेकर मेड़ते आये शाहजी को बुला कर कहा कि आप हम को कितनी रकम दे सकेंगे ? शाहजी ने कहा कि आप किस सिक्के के रुपये चाहते हैं। बादशाह ने कहा कि आपके पास कितने सिक्के हैं ? शाहजी ने कहा हम महाजन हैं मुल्क में जितने सिक्के चलते हैं वह हमारे पास मिलते हैं। बादशाह ने सोचा कि महाजन लोग अपनी वाक् पटुता से ही शेखी फाकते हैं। बादशाह ने कहा आप एक एक सिक्के की कितनी रकम दे सकते हो ? शाहजी ने कहा मेड़ता और देहली तक एक एक सिक्के के रुपयों के छकड़े से छकड़ा जोड़ दूगा। बतलाइये आपको कितनी रकम की जरूरत है ? बादशाह को शाहजी के कहने पर विश्वास नहीं हुआ। बादशाह ने शाहजी से कहा कि चलिये आपके रुपयों का खजाना बतलाइये। शाहजी मकान से उठ कर नौहरे में आये और अपने अनुचरों को बुलाकर तैय्यार रखा बाद में बादशाह और दरबार को बुलाया। उस नौहरे में घास फूस था बादशाह ने कहा कि हम आपकी रकम का खजाना देखना चाहते हैं शाहजी ने नौकरों को आर्डर दिया और वे कुसी पावड़ों से रेती दूर कर एक एक सिक्के का नमूना बतलाने लगे कि बादशाह

धर्म दरबार देख कर आश्चर्यान्वित बन गये कि सच शाह तो शाह ही है इन महाजनों की बराबरी संसार में क्या राजा और क्या बादशाह कोई नहीं कर सकते हैं ? उस दिन से इन बांठियों की जाति शाह हो गई। इनके भाई हरखाजी थे उनकी संतान हरखावतों के नाम से प्रसिद्ध हुई इस प्रकार बांठियाँ जाति की शाखाएं प्रसिद्धि में आई। बांठियाँ जाति का शुरू से आज तक का कुर्सीनामा श्रीमान् कनकमलजी शाह अजमेर वालों के पास विद्यमान है जिज्ञासुओं को मंगवाकर पढ़ लेना चाहिये।

३—बरडिया—आचार्य कृष्णर्षि एक समय विहार करते हुए नागपुर में पधारे वहां पर एक नारायण नाम का सेठ रहता था उसका धर्म तो ब्राह्मण धर्म था पर उसके दिल में कुछ अर्से से शंका थी जब कृष्णर्षि नागपुर में आये तो नारायण ने गुरुजी के पास जाकर धर्म के विषय में प्रश्न किया तो गुरुजी ने अहिंसा परमोधर्म के विषय में बड़ा ही रोचक और प्रभावपूर्ण जोरदार उपदेश दिया जिसको सुन कर नारायण ने अपने ५० साथियों के साथ जैन धर्म को स्वीकार कर लिया।

श्री कृष्णर्षि के उपदेश से श्रेष्टि नारायण ने एक मन्दिर बनाने का निश्चय किया। अतः वहाँ बहुमूल्य भेट लेकर राजा के पास गया नजराना करके भूमि की याचना की। इस पर धर्मात्मा नरेश ने कहा सेठजी देव मन्दिर के लिये भूमि निमित्त भेट की क्या जरूरत है ? आप भाग्यशाली हैं कि अपने धाम से द्रव्य व्यय कर सर्व साधारण के हितार्थ मन्दिर बनाते हैं तब भूमि जितना काम तो मुझे भी लेने दीजिये। अत: आपको जहाँ पसन्द हो भूमि ले लीजिये इत्यादि। सेठ नारायण ने किले के अन्दर ही भूमि पसन्द की। राजा ने आदेश दे दिया बस सेठ ने बहुत जल्दी से जैन मन्दिर बनवा दिया। अधिक कारीगर एवं मजदूर लगाने से मन्दिर जल्दी से तैयार हो गया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य देवगुप्तसूरि के कर कमलों से करवाई और उस मन्दिर की सार संभार के लिये एक संस्था कायम की जिसमें ७२ पुरुष एवं ७२ स्त्रियाँ सभासद बनाये गये इससे पाया जाता है कि एक समय मन्दिरों की सार संभार में स्त्रियाँ भी अच्छा भाग लिया करती थी।

इनकी सन्तान परम्परा में पुनड नाम का एक नामांकित श्रेष्टि हुआ। देहलीपति बादशाह का वह पूर्ण कृपा पात्र था अर्थात् बादशाह पुनड का बड़ा ही मान सन्मान रखता था एक समय पुनड ने नागपुर से एक यात्रार्थ शत्रुञ्जय गिरनार का बड़ा भारी संघ निकाला जब गुर्जर भूमि में पदार्पण किया तो वस्तुपाल तेजपाल ने उस संघ पति एवं संघ का बड़ा भारी सम्मान किया। वस्तुपाल तेजपाल के गुरु आचार्य जगच्चन्द्रसूरि वगैरह संघ में शामिल हुए। और अधिक परिचय के कारण श्रीमान पुनड शाह उन आचार्यों की उपासना एवं समाचारी करने लग गये अद्यावधि तपागच्छ के ही उपासक बने हुए हैं।

४—संघी जैन जातियों में यों तो संघी प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं कारण जिस किसी ने तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर पहरावणी देता है वे ही संघी कहलाते हैं पर हम यहाँ पर उस संघी जाति की उत्पत्ति को लिखते हैं कि जो अजैनों से जैन बनते ही वे संघी कहलाए।

वि० सं० ११११ में आचार्य सर्वदेवसूरि विहार करते हुए आबू के आस-पास पधारे वहाँ एक देवलिया नाम का अच्छा कस्बा था वहाँ पर संघराव नामक पंवार राजा राज करता था जब आचार्य सर्वदेव सूरि देवलिया नाम में पधारे तो संघराव वगैरह सूरिजी के दर्शनार्थ आये। सूरिजी ने धर्मोपदेश दिया जिसको श्रवण कर संघराव प्रसन्न चित्त हुआ तत्पश्चात् संघराव ने सूरिजी से प्रार्थना की कि भगवान् मेरे धन सम्पत्ति तो बहुत है पर पुत्र नहीं है ? सूरिजी ने अपने स्वरोदय ज्ञान से देख कर कहा रावजी संसार में धर्म कल्प वृक्ष है। आप जैन धर्म की उपासना करो तो इस भव और परभव में हितकारी है। बस, सूरिजी के वचन पर संघराव ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। अन्तराय कर्म हटते ही एक वर्ष में ही रावजी के पुत्र हो गया जिसका नाम विजयराव रखा अब तो रावजी की धर्म पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। जब विजयराव बड़ा हुआ तब उसने अपने माता पिता की इजाजत लेकर विराट संघ निकाला और साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिकाएं

पहरावणी में दी। इस सघ में रावजी ने लाखों द्रव्य व्यय किया। अपने ग्राम में भी भगवान् पार्श्वनाथ का उत्तग मदिर बना कर आचार्यश्री से प्रतिष्ठा करवाई जब से आपकी सतान सघी नाम मे प्रसिद्ध हुई।

कई भाटों ने सघी जाति को ननवाणा बोहरा से होना भी लिख मारा है पर यह बिलकुल गलत बात है उस समय ननवाणा बोहरा का नामकरण भी नहीं हुआ था। ननवाणा बोहरा तो करीब विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में पल्लीवाल ब्राह्मण जोधपुर के पास कोई १० मील के फासले पर नदवाणा गाव में रहते थे जब वहाँ से अन्यत्र गये तो वे नदवाणा ग्राम के होने से बोहरगतें करने से ननवाणे बोहरे कहलाये। अत यह कहना मिथ्या है कि सघी ननवाणे बोहरे थे। वास्तव में संघी पवार राजपूत थे इस जाति का कुर्सीनामा सोजत के सघियों के पास आज भी विद्यमान है।

झामड़-जाति-वि० स० ६८८ में आचार्य सर्वदेवसूरि अपने ५०० शिष्यों के साथ विहार करते हुए हथुडिनगरी के पास पधारे थे, उधर से राव जगमालादि शिकार कर नगर में प्रवेश कर रहे थे जब रावजी के पास शिकार देखी तो आचार्यश्री के दिल में राजा के प्रति बडी अनुकम्पा तथा जीव के प्रति करुणा भाव उत्पन्न हुआ। अहो! अज्ञानी जीव! कुत्सित सगति से किसी प्रकार कर्मबन्ध कर अधोगति के पात्र बन रहे हैं। राजा के साथ ही साथ में सूरिजी ने भी नगरी में प्रवेश किया। राजा घोड़े पर सवार था। सूरिजी को देखकर अपने नेत्र नीचे कर लिये। सूरिजी ने देखा तो सोचने लगे कि जब राजा के नेत्रों में इतनी शरम है तो यह अवश्य समझ सकेंगे।

सूरिजीने कहा—नरेश! कहा पधारे थे।

नरेश ने शरम के मारे कुछ भी जवाब नहीं दिया।

सूरिजी—नरेश! जरा पर भव को तो याद करो आपको क्षत्रिय वश में अवतार लेने का यही फल मिला है कि बिचारे निराधार केवल तृण भक्षण कर जीने वाले प्राणियों का रक्षण करना आपका परम कर्त्तव्य था जिसके बदले भक्षण करने को उतारु हुए हो। परन्तु जब भवान्तर में यदि मूक प्राणी मरकर कहीं आप जैसे सत्ताधारी होगये और आप इनके जैसे मूक पशु होगये तो क्या आपसे इस प्रकार बदला नहीं लेंगे?

नरेश—महात्माजी! आपका कहना तो सत्य है पर किया क्या जाय यह तो हमारी जाति सम्बन्धी व्यवहार एव आचार ही हो गया है।

सूरिजी—जाति सबन्धी व्यवहार तो ऐसा नहीं था पर खराब संगत से कई लोग ऐसी बुरी आचरणाए कर अपने आपको नरक में डालने का दु:साहस कर रहे हैं।

नरेश—महात्माजी! हम घुड़ सवार हैं और आप पैरों पर खड़े हैं। अत इस समय तो हम जाते हैं कल आप राज सभा में पधारें आपका उपदेश हम सुनेंगे।

सूरिजी—नरेश! आपका विचार अत्युत्तम है पर यह तो नियम करते कि आज से मांस का भक्षण नहीं करूगा।

नरेश—सूरिजी की लिहाज से राजा ने कहा कि आज मैं मॉस का भक्षण नहीं करुंगा। बस, राजा अपने स्थान पर गया और सूरिजी भी नगरी में निर्वद्य स्थान में जाकर ठहर गये।

राजा ने अपने मकान पर जाकर निर्मल बुद्धि से विचार किया तो आपको ज्ञात हुआ कि महात्माजी का कहना ही यथार्थ है परभव में बदला तो अवश्य देना ही पड़ेगा।

जब साथ के लोग जो शिकार लेकर आये थे जिसका मॉस तय्यार किया और राजा के लिये थाल में परुस कर लाये तो राजा ने कहा कि मैंने तो महात्माजी के सामने प्रतिज्ञा की है कि आज मैं मॉस नहीं खाऊगा। अत मैं आज मॉस खाना तो क्या पर सामने भी नहीं देखूगा इस पर शेष लोगों ने भी विचार किया कि जब राजा मास नहीं खाते हैं तब हम कैसे खा सकेंगे। पर आज हीं तो कल नही सही राजा कल

भी तो भोजन करेगा। बस यह बनाया हुआ मांस का भोजन क्यों का त्यों पड़ा रहा। अब तो यह बात जनरोवरादि सर्वत्र फैल गई। दूसरे दिन कुछ समय के बाद सूरिजी राज सभा में पधारे। राजा ने सिंहासन से उतर कर सूरिजी का सम्मान किया और उचासन पर विराजने की प्रार्थना की। सूरिजी भूमि प्रमार्जन कर अपनी कम्बली बिछा कर योग्य स्थान पर बैठ गये। सूरिजी को आया देख बहुत से दूसरे लोग भी सभा में आगए। कुछ अन्दर में जनाना सरदार भी बैठ गये। तत्पश्चात् सूरिजी ने अपना उपदेश देना प्रारम्भ किया जिसमें पहले हिंसा के कटु फल का बयान किया। बाद में अहिंसा से होने वाले कार्यों का सविस्तार विवेचन किया। तत्पश्चात् जैन तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में अवतार लेकर अहिंसा का खूब जोरों से उपदेश दिया इत्यादि सूरिजी ने ऐसा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया कि राजा के एक-एक प्रदेश में सूरिजी का उपदेश और मीर की तरह निवास कर दिया। बस क्षत्रिय जैसी वीर जाति के समक्ष में आजाने के बाद तो कहना ही क्या ? राजा और रानी व पुत्रादि सब लोगों ने मांस मदिरादि बुरे कर्मों को त्याग कर जैनधर्म अर्थात् अहिंसा परमोधर्मः को स्वीकार कर लिया फिर तो 'यथा राजातथा प्रजा' वाली युक्ति से और भी बहुत से लोगों ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया।

राव जगमाल ने अपने नगरी में भ० महावीर का मंदिर बनवाया राव जगमाल के बड़े पुत्र भाखर ने तीर्थों की यात्रार्थ बड़ा भारी संघ निकाला। श्री शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा कर वापस आए और स्वामी वात्सल्य कर संघ पूजा कर पहरावणी दी। आगे चल कर राव भाखर की संतान भाखड़ नाम से मशहूर हुई। तथा कई स्थानों पर यह भी लिखा मिलता है कि भाखड़ के वृक्ष के नीचे ग्राम बाहर में सूरिजी ने वासक्षेप दिया था जिससे वे खूब ही फूले फले। इससे वे भाखड़ की सन्तान भाखड़ कहलाये तथा बादक बंबक वगैरह इस भाखड़ जाति की शाखाएं हैं फिर तो इस भाखड़ वाली भाखड़ जाति बन गई। भाखड़ के भाखड़ के नीचे भाखड़ कहलाये और इस जाति की उत्तरोत्तर इतनी वृद्धि हुई कि सर्वत्र प्रसरित होगई और कई उदार एवं वीर नररत्नों ने देश समाज एवं धर्म की बड़ी-बड़ी सेवाएं की और कई कारणों से इस जाति की कई शाखायें रूप जातियें बन गई। इस जाति की वंशावलियों तपागच्छ के कुलगुरु लिखते हैं।

४—सुराणा जाति-वि० सं० ११९२ में आचार्य धर्मघोषसूरि विहार करते हुए जगमाल के आस पास में व्यसापुर नगर में पधारे वहां के पंवार रावसूर को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। राव सूर की संतान सुराणा कहलाई। राव सूर के लघु भ्राता राव संखला की संतान संखला कहलाई। कुल देवी माता सुंमाणी।

मालकर जाति—वि० सं० ११३२ में आचार्य धर्मघोषसूरि विहार करते हुए मलखजी नगर में पधारे वहां के चौहान राव पृथ्वीपालादि को प्रतिबोध देकर वासक्षेप के विधि विधान से जैन बनाए। राव पृथ्वीपाल के साथ पुत्र थे उसमें कुमुद और महीपाल व्यापार करने लग गये और मुकुन्द ने अपने नगर में भ० महावीर का उत्तंग मन्दिर बनाया। मुकुन्द का पुत्र साहरण हुआ उसने बड़े मलखर अर्थात् जहाजों द्वारा विदेशों में माल ले जाना तथा वहां से आते समय वहां का माल एवं जवाहरात वगैरह लाना यह व्यापार किया। साहरण ने व्यापार में अपार द्रव्य उपार्जन किया। इसने आचार्यश्री के उपदेश से तीर्थ यात्रार्थ बड़ा भारी संघ निकाला और साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्राएं पहरावणी में दी। आपके जहाजघर का व्यापार होने से वे जहाजघर नाम संस्करण हुआ जिसका ही अपभ्रंश मलखर हुआ है।

कई भाटों ने मलखरों के लिए एक कल्पित ख्यात बना रखी है कि सं० ६१ में पाटण के चौहान भूरसिंह ने राजा का राग मिटा कर जैन बनाया उस भूरसिंह की संतान मलखर कहलाई। पर यह कथन सर्वथा मिथ्या है कारण प्रथम तो पाटण में किसी समय चौहानों का राज ही नहीं रहा है और न पाटण की राजधानी में भूरसिंह नाम का कोई राजा ही हुआ है।

सुराणा जाति की एक समय इतनी वृद्धि हुई थी कि इस जाति के लोग धर्म की इतनी श्रद्धा वाले लोग

हुए थे कि उन सुराणों के नाम का एक गच्छ का भी प्रादुर्भाव हुआ जिसका ८४ गच्छों मे सुराणा गच्छ का भी नाम है सुराणा गच्छ का शुरू से ही इतिहास नागोर के महात्मा गोपीचन्दजी के पास है उन्हों के पास की वंशावलियों में जैसे धर्मघोष सूरि ने सुराणों, साखलों एवं भणवट के पूर्वजों को उपदेश देकर जैन बनाये हैं वैसे नाहरों के पूर्वजों को भी आचार्यश्री धर्मघोषसूरि ने सं० ११२६ में मुंडियाड (मुग्धपुर) के ब्राह्मणों को उपदेश देकर जैन बनाया बाद में नारा की संतान नारा कहलाई। पर नागपुरिया तपागच्छ वाले अपनी वंशावलियों मे नाहर जाति के पूर्वजों को नागपुरिया तपागच्छ के आचार्यों ने बनाया बतलाते हैं शायद पूर्व जमाने में महात्मा लोग अपनी वंशावलियों की बहियों को अपने सम्बन्धी अन्य गच्छियों को मुशालादि में तथा बेटी की शादी में पहरावणी में भी देदिया करते थे जैसे सांडेरा गच्छ के महात्मा ने अपने १२ जातियों के नाम लिखने की बहियों को किसी प्रसंग पर आसोप के खरतरगच्छीय महात्माओं को दे दी तब से ही उन १२ जातियों के गौत्र खरतरगच्छ के महात्मा लिख रहे हैं।

दूसरा एक कारण और भी है कि पूर्व जमाने में मन्दिरों के आस पास मे रहने वाले गृहस्थों को मदिरों के गोष्टिक (सभासद) बनाये जाते थे उसका अर्थ तो इतना ही था कि नजदीक घर होने से वे मदिर की सार सभाल ठीक तरह से कर सकेंगे। फिर मन्दिर किसी भी गच्छ के लोगों ने बनाया हो और सभासद बनने वाले किसी गच्छ के आचार्यों के प्रतिबोधक श्रावक क्यों न हो ? पर वहां तो केवल मन्दिर की सार सभाल का ही उद्देश्य था पर काफी समय निकल जाने से जिस गच्छ के आचार्यों ने उन सब सभासदों (गोष्टिकों) पर अपने आचार्यों ने तुम्हारे पूर्वजों को प्रतिबोध देकर जैन बनाये थे। इस प्रकार अपना हक जमा दिया करते थे। हां, वे गोष्टिक बनने वाले शुरु से या एक दो या चार पुश्त तो इस बात को जानते थे कि हमारे पूर्वजों को प्रतिबोध देने वाले आचार्य अमुक गच्छ के थे। तथा हम अमुक गच्छोपासक श्रावक हैं पर समयाधिक व्यतीत हो जाने से तथा अधिक परिचय के कारण अथवा उनके साथ प्रतिक्रमणादि क्रिया कांड एवं तप व्रतादि करने से उन लोगों के संस्कार भी ऐसे पड़ गये इसमे इतनी गड़बड़ मच गई कि कई लोग तो अपने प्रतिबोधक आचार्य एव उनके गच्छ को भी साफ २ भूल ही गये। इतना ही क्यों ? पर कभी-कभी गच्छों के वाद विवाद का मौका आता है तब अज्ञानी लोग उनके पूर्वजों को मास-मदिरादि छुड़ाने वालों के अवगुण वाद बोल कर उनकी आशातना करके कृतघ्नी रूप वज्रपाप की गठरी शिर पर उठाने को भी तैयार हो जाते हैं। अथवा कई मूल जातियों से शाखाएँ निकलती हैं उसमें भी कारण पाकर ऐसे नामों का होना पाया जाता है। एक शिलालेख में नाहर चित्रावल गच्छ के होना भी लिखा है। नाहरों को चाहिये कि वे अपनी जाति की उत्पत्ति का ही पता लगा कर कृतार्थ बनें।

१—नागपुरिया तपागच्छ—इस गच्छ में चन्द्रसूरि, वादिदेवसूरि, पद्मसूरि, प्रसन्नचन्द्रसूरि, गुणसुन्दरसूरि, विजय शिखरसूरि आदि महाप्रभाविक आचार्य हुए हैं जिन्होंने इधर उधर विहार कर हजारों नहीं पर लाखों मास मदिरा दुर्व्यसन सेवियों को आत्मीय चमत्कार एव सदुपदेश देकर जैनधर्मी बना कर महाजन सघ की खूब ही वृद्धि की। उन श्रावकों के कई-कई कारण पाकर जातियाँ बन गई जिसके नाम ये हैं —

१—गोहलाणी, नवलखा, मुतेड़िया। २—पीपाड़ा, हीरण, गोगड़, शिशोदिया। ३—रूलीवाल बेगाणी ४—हिंगड़-लिंगा। ५—रामसोनी। ६—भावक, भमड़। ७—ललाणी, छजलाणी, घोड़ावत,। ८—हीराऊ केलाणी। ६—गोखरू, चौधरी। १०—जोगड़। ११—छोरिया, सामड़ा। १२—लोढ़ा। १३—सूरिया, मीठा। १४—नाहर। १५—जड़िया इत्यादि इन ऊपर लिखी जातियों की उत्पत्ति एव धर्म कार्यों की नामावली इनके कुल गुरुओं के पास में मिलती है। इनके अलावा श्री श्रीमाल, हींगड़, लिंगा नक्षत्र जाति की नामावली भी इन पोशालों वाले कहीं कहीं लिखते हैं किन्तु यह जातियाँ उपकेशगच्छाचार्य प्रतिबोधित पर ऊपर लिखेनुसार मन्दिरों के गोष्टिक बनने से या वंशावलियों के इधर की उधर चली जाने से या अधिक परिचय के

कारण एक गच्छ के श्रावकों की वंशावलियों दूसरे गच्छ वाले मांडने लग गये हैं।

२—अंचल गच्छाचार्यों में आचार्य जयसिंहसूरि, धर्मघोषसूरि, महेन्द्रसूरि, सिंहप्रभसूरि, अजित देवसूरि, आदि बहुत प्रभाविक आचार्य हो गये हैं उन्होंने भी हजारों अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ की खूब उन्नति की थी। आगे चल कर उन नूतन श्रावकों की भी कई जातियों बन गई जैसे कि १—गाल्हा, २—आलगोता, ३—गुरु ४—सुभद्रा, ५—बोहरा ६—सियाल, ७—कटारिया कोठेचा रत्नपुरा बोहरा, ८—नागड़गोता ९—मिठड़िया बोहरा १०—परबेचा ११—बडेर, १२—गाँधी १३—देवानन्दा, १४—गोतमगोता १५—डोसी १६—सोनीगरा १७—कोटिया १८—हरिया १९—नेड़िया २०—बोरेचा। इन जातियों की उत्पत्ति वगैरह का सब हाल पं० हीरालाल हंसराज जामनगर वालों के पास है जिसमें कितनेक हालात तो अंचलगच्छ की बड़ी पट्टावली में छप भी गये हैं। संक्षिप्त जैन गोत्र संग्रह नामक पुस्तक में भी छपा है।

३—मलधारगच्छ—इस गच्छ में भी पूर्णचन्द्रसूरि, देवानंदसूरि, नारचन्द्रसूरि देवानंदसूरि, पारचन्द्र सूरि, तिलकसूरि आदि महान् प्रतापी आचार्य हुए हैं। इन महापुरुषों ने भू भ्रमण कर हजारों जैनेतरों को प्रतिबोध देकर श्रावक बनाए और उस समय से ही उनको महाजन संघ में शामिल मिला लिए तथा उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार चालू कर दिया। आगे चल कर कोई-कोई कारणों से उनकी जातियां बन गई उनके नाम निम्नलिखित हैं—

१—पगारिया (गेलड़िया कोठारी संघी), २ कोठारी गीरिया, ४ बंब* ५ गंग ६ गेहलड़ा ७ खीव सरा आदि कई जातियों की वंशावलीयों को मलधार गच्छ के कुलगुरु लिखा करते हैं।

४—पूर्णिमियागच्छ—इस गच्छ में भी महान् विद्वान् एवं प्रभाविक आचार्य हुए जिसमें चन्द्रसूरि, धर्मघोष सूरि, मुनिरत्नसूरि, सोमतिलक सूरि आदि कई आचार्य हुए। उन्होंने भी हजारों जैनेतरों को उपदेश देकर जैनधर्मी बना कर महाजन संघ की खूब ही वृद्धि की। आगे चल कर कई-कई कारणों से उन नूतन जैनों की जातियां बनगई जिनके नाम ये हैं —

१—साढ २—सियाल ३—साखेचा ४—पूनमिया ५—मेघाणी ६—पनेरा इत्यादि। इन जातियों की वंशावलियें पुनमिया गच्छ की पोसालों वाले लिखा करते हैं।

५—नागपुरियागच्छ—इस गच्छ में भी कई प्रभाविक आचार्य हुए हैं। जिसमें आचार्य शान्तिसूरि, सिद्धसूरि, देवप्रभसूरि वगैरह कई आचार्य हुए जिन्होंने अपने विहार के अन्दर बहुत से अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ की अच्छी वृद्धि की थी। आगे चल कर कई कई कारणों से उन नूतन जैनों की भी कई जातियें बन गई जिनके नाम ये हैं:—

१—रत्नपुरा, २—गांधिया ३—बड़ा श्रीपति—तलेरा ४—कोठारी। इनकी भी कई शाखाएं होगई इन जातियों की वंशावली ये ही नागपुरिया पोसालों के कुल गुरु लिखा करते हैं।

६—सुराणागच्छ—इस गच्छ में आचार्य धर्मघोषसूरि हुए जो ऊपर लिख आये हैं आदि कई आचार्य प्रभाविक हुए हैं उन्हीं महापुरुषों ने अपने विहार के अन्दर कई अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ में शामिल करके उनकी खूब वृद्धि की बाद में कई कारणों से अलग-अलग जातियां बन गई जैसे १—सुराणा, २—सांखला ३—मकवट ४—मिठड़िया ५—सोनी ६—ढलवाल ७—छजेड़, ८—मालूरादि जातियों की वंशावली सुराणागच्छ के महात्मा लिखते हैं। जैसे नागोर में म० गोपीचन्दजी वगैरह।

---

* पंच पंच कडुआमच्छ वाले आचार्यों के अभिप्रेरित होना भी कहा जाता है। अतः इसका कारण मैं ऊपर लिख आया हूँ कि मन्दिरों के बनाने से या वंशावलियों इधर उधर देने से।

७—पल्लीवालगच्छ—इस गच्छ मे भी कई प्रभाविक आचार्य हुए हैं, आचार्य यशोभद्र सूरि, प्रद्योम्न-सूरि अभयदेव सूरि वगैरह जिन्होंने कई अजैनो को जैन बनाए। समयान्तर में कई कारणों से उनकी कई जातिया बनगई और उन आचार्यों से पल्लीवालगच्छ का भी प्रादुर्भाव हुआ। १—धोखा, २—बोहरा ३—डूगरवालादि जातियों पल्लीवाल गच्छोपासक कही जाती हैं।

कदरसागच्छ—इस गच्छ में आचार्य पुण्यवर्धन सूरि, महेद्रसूरि, आदि कई प्रभाविक आचार्य हुए हैं। उन्होंने अपने भ्रमण के अन्दर कई जैनत्तरों को जैन बनाये आगे चल कर कई कारणों से उनकी कई जातिया बन गई जैसे-१—खाबड़िया, २—नाग, ३—घ्रय बंग, ४ दूधेड़िया ५—कटोतिया वगैरह इन जातियों की वंशा-वलिया इस गच्छ के महात्मा ही मांडते हैं।

सादेरावगच्छ—इस गच्छ में आचार्य ईश्वरसूरि, यशोभद्रसूरि, शालभद्रसूरि, सुमतिसूरि, शांतिसूरि, वगैरह महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं उन्होंने भी बहुत से जैनेत्तरों को जैन धर्म की दीक्षा देकर महाजन संघ में शामिल किये और आगे चल कर कई जातिया बन गई जिसकी नामावली निम्न है —१-गुगलिया, २-भण्डारी, ३-चुतर, ४-दूधेड़िया, ५-धारोला, ६-काकरेचा, ७-बोहरा, ८-शीशोदिया इत्यादि १२ जातियों के नाम सादेराव गच्छ की पोशालों वाले लिखते थे पर किसी समय एक पोशाल वाले ने अपनी वंशावलियो की बहियाँ किसी प्रसग पर आसोप के खरतरगच्छीय महात्माओं को दे दी तब से कहीं कहीं पर उपरोक्त जातियों की वंशावलिया आसोप के खरतरगच्छीय महात्मा भी लिखते हैं।

बृहद्तपागच्छ—इस गच्छ में भी महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं जैसे जगचन्द्रसूरि, देवीद्रसूरि, धर्मघोषसूरि, सोमप्रभसूरि, सोमतिलकसूरि, देवेसुन्दरसूरि, सोमसुन्दरसूरि, मुनिसुन्दरसुरि, रत्नशिखरसुरि, आदि बहुत से आचार्य ऐसे हुए कि जिन्होंने बहुत से अजैनों को धर्मोपदेश देकर जैन बना कर महाजन संघ में शामिल कर उसकी वृद्धि की फिर आगे चल कर कई कारणों से उन नूतन जैनों की कई जातिया बन गई जैसे १-वरड़िया, वरदिया, बाहुदिया, २-बाठिया, कवाड़ शाह, हरखावत, ३ छरिया, ४-डफरिया, ५-लल-वाणी, ६-गांधी, वैधगांधी, राजगाधी, ७-खजानची, ८ बुरड़, ९-सघवी, १०-मुनोयत, ११-पगरिया, १२-चौधरी, १३-सोलंकी, १४-गुजराणी, १५-कच्छोले, १६-मोरख्ये, १७-सोलेचे, १८-कोठारी, १९-खटोल, २०-बिनायकिया, २१-सराफ, २२-लोकड़, २३-मिन्नी, २४-आचलिया, २५-गोलिया, २६-ओसवाल, २७-गोटी, २७-मादरेचा, २९-सोलेचा, ३०-माला, इत्यादि बहुतसी जातियों के नाम हैं।

८—इस महाजन सघ में संघी, कोठारी, खजानची, इत्यादि कई ऐसी जातियाँ हैं कि जिनका नाम-करण केवल काम करने से हुए हैं और ऐसे काम प्रत्येक जाति वालों ने किये हैं और प्रत्येक जातियों में पूर्वोक्त नाम मिलते भी हैं तब इनकी पहचान कैसे की जाय ? इसके लिये या तो उनके मूल गौत्र एवं जाति का नाम पूछने से या नख पूछने से पता लग जाता है कि यह संघी फलां जाति के हैं।

दूसरा एक जाति का नाम एक गच्छ के अलावा दूसरे गच्छ में भी आता है जैसे नाहर, गंग, बग, नक्षत्रादि के इसका कारण यह हो सकता है कि या तो एक-एक मूल जाति की शाखाए ऐसी निकल गई जैसे एक गुगलिया जाति है तथा दूसरी किसी जाति वाले ने कहीं पर गुगल का व्यापार किया तब वे भी गुगलिया कहलाने लग गये तथा जब से महात्माओं में लग्न सादी होने लगी तब से एक पोशाल के महात्मा अपनी वंशावलियों की बहियों मुशाला में या दत्त-दायजा में भी दूसरे पोशाल वालों को देदेते नतीजा यह हुआ कि उन जातियों की पहले अन्य गच्छ वाले वंशावलिया लिखते थे बाद दूसरी पोशालों वाले उनके नाम लिखने लग गये फिर दो चार पुश्त तक तो गृहस्थों को ज्ञान रहा कि हमारा मूल गच्छ तो फलां है पर बहियों के बदलने से दूसरे गच्छ के महात्मा हमारे नाम लिखते हैं परन्तु समयान्तर में वे गृहस्थ भी इस बात को भूल जाते हैं और अधिक परिचय के कारण जो वंशावलियाँ लिखते हैं उनके पास अपने पूर्वजों की नामावली मिल जाने

से उसी गच्छ वालों को अपने पूर्वजों को प्रतिबोधक मान लेते हैं और वे नूतन पोशाल वालों ने भी ऐसी कल्पित बहियें बनाली। जिसमें न तो पूर्वाचार्य आचार्यों के नाम हैं न स्थान का पता है न जिस मूल पुरुष को उपदेश दिया उसका ही ठिकाना है अर्थात् सत्य इतिहास पर ऐसा पर्दा पड़ जाता है कि जिससे सत्यवस्तु खोज कर निकालना बड़ा मुश्किल बन जाता है जिससे कई जातियों का १६०० वर्ष जितनी प्राचीन होने पर भी उनको ८००-९०० वर्ष जितनी अर्वाचीन ठहरा दी जाती है अब उन जातियों के पूर्वजों ने प्राचीन अर्वाचीन के बीच का समय १५०० वर्ष जितना समय में उन्होंने देश समाज एवं धर्म की सेवाय करोड़ों रुपये एवं अपने प्यारे प्राणों का बलिदान किया था, उनका नाम निशान भी नहीं मिलता है।

एक अंग्रेज विद्वान ने ठीक ही कहा है कि जिस राष्ट्र, समाज एवं जाति को नष्ट करना हो तो पहले उन सबका इतिहास को नष्ट करदें वे राष्ट्र समाज जाति स्वयं नष्ट हो जावेंगे कारण जब तक अपने पूर्वजों के गौरव पूर्ण कार्य का खून अपनी नशों में नहीं उबलेगा तब तक वे अपनी उन्नति के पथ पर कभी बढ़ेंगे ही नहीं जब जिस व्यक्ति को अपने पूर्वजों के किये हुए गौरव पूर्ण कार्यों का थोड़ा भी ज्ञान नहीं है वे तो यही समझते हैं कि हमारे पूर्वज हमारे जैसे ही होंगे और जैसे हम हमारी जिन्दगी को व्यतीत करते हैं वैसे ही उन्होंने भी अपनी जिन्दगी व्यतीत की होगी इत्यादि।

जैसे एक व्यक्ति के पूर्वजों ने एक मंदिर बनाया है तथा किसी अत्याचारियों से अपनी बहन बेटियों एवं धनजन की रक्षार्थ युद्ध कर प्राणार्पण कर दिया उस स्थान पर चबूतरा एवं छत्री बनी है पर उस व्यक्ति को इस बात का थोड़ा भी ज्ञान नहीं है वहाँ तक वह मन्दिर व छत्री चबूतरा उसकी नजरों के सामने होने पर भी उस मन्दिर छत्री के लिये उसके हृदय में थोड़ा भी स्थान नहीं है पर कभी पुराने पोथे संभालने में या किसी अन्य प्रकार से उसको बोध हुआ कि यह मन्दिर या छत्री हमारे पूर्वजों की अमर कीर्ति है तब उसके हृदय में अपने पूर्वजों के गौरव का स्थान अवश्य बन ही जायगा और जहाँ तक बन सकेगा वह उनकी बेपरवाही नहीं होने देगा और उनका जीर्णोद्धारादि कार्य कर उनको चिरायु बनाने की अवश्य कोशिश करेगा। यह एक इतिहास का अपूर्व चमत्कार है।

मेरे ख्याल से तो इस महाजन संघ की पतनदशा का मुख्य कारण यही है कि वे अपने पूर्वजों के उज्ज्वल अतीत के इतिहास को भूल गये हैं। आज हम अपनी नजरों से देख रहे हैं कि कई जातियां हमारे से हजार दर्जे पतन की चरम सीमा तक पहुँच गई थी और उनके उत्थान की किसी प्रकार से उम्मेद नहीं थी पर उनके उपदेशकों ने साधारण जनता तक को इतिहास का उपदेश देकर उनको घोर निद्रा से जागृत किया जिससे वे स्वल्प समय में ही अपनी उन्नति के पथ पर अग्रेसर हो गये हैं। अतः महाजन संघ को भी चाहिये कि वे अपने पूर्वजों के गौरव पूर्ण इतिहास से अवगत हो उन्नति के पथ का अवलंबन करें। मेरा यह परिश्रम केवल महाजन संघ को अपने पूर्वजों के इतिहास का बोध करवाने मात्र का है इत्यादि।

पूज्याचार्य सिद्धसूरिजी ने अपने ४६ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं को दीक्षाएँ दी

१—शंखपुर	के	कम्मोनिया	जाति के	शाह	माल्हा ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
२—मालिकादुर्ग	के	करणावट	"	"	पुनड़ ने	"	"
३—हर्षपुर	के	आर्य	"	"	जोगड़ ने	"	"
४—मुग्धपुर	के	बाफणा	"	"	मुकन ने	"	"
५—माण्डवीपुर	के	राङ्का	"	"	धनराज ने	"	"
६—नागपुर	के	चोरड़िया	"	"	मोकल ने		"
७—पोलासपी	के	श्रेष्ठि	"	"	सुमाल ने	"	"

८—राजपुर	के	तोडियाणी	जाति के	शाह	चुड़ा ने	सूरिजी के पास दीक्षा ली	
९—खटकूप	के	नाहटा	"	"	रोड़ा ने	"	"
१०—डिडुपुर	के	रांका	"	"	पाता ने	"	"
११—अजयगढ़	के	मुरंट	"	"	साहरण ने	"	"
१२—शाकम्भरी	के	सुरवा	"	"	गोगा ने	"	"
१३—मेदिनीपुर	के	काजलिया	"	"	केसा ने	"	"
१४—पाल्ही	के	काग	"	"	नोंधाण ने	"	"
१५—नन्दपुर	के	भाला	"	"	लाडुक ने	"	"
१६—माडव्यपुर	के	ढेढिया	"	"	सुखा ने	"	"
१७—कोरटपुर	के	केसरड़ा	"	"	भाणा ने	"	"
१८—डामरेल	के	कुम्मट	"	"	भाला ने	"	"
१९—रेणुकोट	के	पोकरणा	"	"	गुणाढ्य ने	"	"
२०—मालपुर	के	जाघड़ा	"	"	रावत ने	"	"
२१—भोजपुर	के	सचेती	"	"	लाधा ने	"	"
२२—वीरपुर	के	प्राग्वट	"	"	लुया ने	"	"
२३—मधुमती	के	"	"	"	फूश्रा ने	"	"
२४—वर्द्धमानपुर	के	"	"	"	हावर ने	"	"

आचार्यश्री के ४६ वर्षों के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—लोद्रवा	के	भाटी	जाति के	शाह	भुरा ने	भ०	महा०	के मन्दिर	की प्र०
२—देवपुर	के	फाग	"	"	विमल ने	"	"	"	"
३—आलोट	के	सुरवा	"	"	धरणने	"	"	"	"
४—मंगलपुर	के	मुरंट	"	"	नारायण ने	"	"	"	"
५—हरीपुर	के	नार	"	"	पुरा ने	"	पार्श्व०	"	"
६—पाटण	के	भुरा	"	"	श्रीपाल ने	"	"	"	"
७—आनन्दपुर	के	चण्डालिया	"	"	जिनदेव ने	"		"	"
८—वल्लभीपुरी	के	प्राग्वट	"	"	पर्वत ने	"	महा०	"	"
९—पाटणअणहिल्ल	के	श्रेष्टि	"	"	हाप्पा ने	"	"	"	"
१०—स्तम्भनपुर	के	श्रीमाल	"	"	कोला ने	"	"	"	"
११—वडप्रद	के	सुचती	"	"	गोरा ने	"	आदीश्वर	"	"
१२—खेटकपुर	के	प्राग्वट	"	"	जाला ने	"	"	"	"
१३—सोपारपटण	के	सुघड़	"	"	खीवड़ाने	"		"	"
१४—भरोंच	के	श्रीमाल	"	"	चाम्पा ने	"	नेमीनाथ	"	"
१५—करणावती	के	बाफणा	"	"	छाहड़ ने	"	"	"	"
१६—गोसलपुर	के	आर्य	"	"	जैना ने		मल्लि०	"	"
१७—वत्तशिला	के	पारख	"	"	झामणने	"	धर्म०	"	"
१८—शालीपुर	के	डिडू	"	"	नोढ़ा ने	"	विमलनाथ	"	"

१८—सालपुर के चोरड़िया जाति के शाह धर्मा ने भ० महावीर के मन्दिर की प्र०
२०—मथुरापुरी के करणावट „ „ गोरा ने „ „ „ „
२१—रणथंभोर के संचेती „ „ वेद ने „ „ „
२२—हंसावली के श्रेष्ठि „ „ दुर्गा ने „ „ „ „
२३—चन्द्रपुर के पोकरणा „ „ पेथा ने „ सीमंधर „ „
२४—शाकम्भरी के चौहान „ „ बक्का ने „ आदि तीर्थङ्कर „ „
२५—पद्मावती के प्राग्वट „ „ वीरम ने „ महावीर „ „

आचार्यश्री के ४६ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—सोपारपट्टन से श्रेष्ठि जाति के मोकल ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला
२—मथुरा पट्टन से चोरड़िया „ जिनदास ने „
३—देवपट्टन से संचेती मालदेव ने „ „
४—चन्द्रावती से चंडालिया „ साजू ने „ „
५—कोरंटपुर से माला „ पोकर ने „ „
६—भीनमाल से भद्र „ नारायण ने „ „
७—सत्यपुरी से चरिया „ भैरवी ने „
८—नारदपुरी से बाफणा „ बालक ने „ „
९—वीरपुर से कनोजिया धनाड़ ने „ „
१०—उमरेलनगर से भाद्र „ गोपाल ने „ „
११—माण्डपुर से कुम्मट „ सुखा ने „ „
१२—उपकेशपुर से बाफणा „ करमण ने „ „
१३—नागपुर से रांका „ मोकल ने „ „
१४—कन्नूज से बोथरा „ काजल ने „ „
१५—विजयपट्टन से सुरंट „ गोरख ने सं० ११४४ के दुष्काल में लाखों के माल बचाये।
१६—उज्जैन से डेडिया „ भूता ने सं० ११२९ के दुष्काल में करोड़ों द्रव्य व्यय किया।
१७—माण्डवगढ से समदड़िया „ सांवला की माता ने एक वापी बंधाई लाखों का व्यय किया।
१८—चित्रकोट से पोकरणा „ राजा की पुत्री मानी ने शत्रुञ्जय किया एक कुआ बनाया।
१९—पाल्हिका से प्राग्वट „ मंत्री रणवीर युद्ध में काम आया आपकी स्त्री सती हुई।
२०—मैसिंगपुर से श्री श्रीमाल „ हरदेव „ „ „ „
२१—राजपुर के प्राग्वट पर्वो „ „ „
२२—चान्दीपुर के श्रीमाल „ नारायण „ „ „ „

यह पचासवें सिद्ध सूरीश्वर, महाप्रभ शासन के वीर थे।
आत्म बल विभूषित पूरण, सागर जैसे गम्भीर थे॥
वीर सूरि मन्दिर बम्भ के, जिसका द्रव्य लगाया था।
कदर्पि ने मन्दिर बनाया प्रतिष्ठा कर यश पाया था॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के पचासवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए।

भगवान् महावीर की परम्परा के २७ पट्टधरों का हाल तो हम ऊपर लिख आये हैं शेष यहाँ लिखा जाता है। सत्तावीसवें मानदेवसूरि के समय वीरात् १००० वर्ष सत्य मित्राचार्य के साथ पूर्वो का ज्ञानविच्छेद हुआ। तथा आर्य्य नागहस्ति १ रेवतीमित्र २ ब्रह्मद्वीप ३ नागार्जुन ४ भूतदिन्न ५ और कालिकसूरि ६ एव छः युग प्रधान यथाक्रमः से वज्रसेनसूरि और सत्यमित्र के बीच के अन्तर में हुए।

२८—आचार्य विबुधप्रभसूरि, आप आचार्य मानदेवसूरि के पट्टधर आचार्य हुए।

२९—आचार्य जयानन्दसूरि, आप आचार्य विबुधप्रभसूरि के पट्टधर हुए।

३०—आचार्य रविप्रभसूरि, आप आचार्य जयानन्दसूरि के पट्टधर हुए। आप श्री ने वीरात ११७० अर्थात् विक्रम स० ७०० वर्ष नारदपुरी नगरी में, भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई। तथा वीरात् ११६० वर्ष पीछे आचार्य उमास्वाति यु० प्र० आचार्य हुए।

३१—आचार्य यशोदेवसूरि—आप आचार्य रविप्रभसूरि के पट्टधर आचार्य हुए आपके शासन समय में चैत्यवासी शीलगुणसूरि देवचन्द्रसूरि आचार्य हुए जिन्होंने वनराज चावड़ा की सहायता की और वनराज चावड़ा ने वि० स० ८०२ में अणहिल्ल पाटण की स्थापना की तथा राजा वनराज चावड़ा ने आचार्य शील गुणसूरि देवचन्द्रसूरि का महान उपकार समझकर तथा श्रीसंघ का सगठन बना रहने की गर्ज से श्रीसंघ के समक्ष एव सम्मति पूर्वक यह मर्यादा बान्ध दी कि पाटण में चैत्यवासी आचार्यों की सम्मति लिये बिना कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकेगा इत्यादि। तथा इसी समय में बायट गच्छ के आचार्य बप्पभट्टिसूरि हुए जिन्होंने ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध कर जैन बनाया। आपके एक रानी वैश्य पुत्री थी जिसकी संतान विराट् ओसवंश में शामिल करदी वे लोग राजा के कोठार का काम करने से कोठारी कहलाये। उनकी परम्परा में कर्माशाह चितौड़ में हुआ जिसने पुनीत तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का सोलहवाँ उद्धार करवाया। आचार्य श्री का समय चैत्यवास का समय था और उस समय जैन समाज का भाग्य रवि मध्यान्ह में तपता था अर्थात् सब तरह से जैनसमाज उन्नति पर था।

३२—आचार्य प्रद्युम्नसूरि—आप आचार्य यशोभद्रसूरि के पट्टधर थे। आप भी भी महान प्रभाविक आचार्य हुए।

३३—आचार्य मानदेवसूरि—आप आचार्य प्रद्युम्नसूरि के पट्टधर हुए थे। आपने उपधान विधि की रचना की।

३४—आचार्य विमलचन्द्रसूरि—आप आचार्य मानदेवसूरि के पट्टधर थे।

३५—आचार्य उद्योतनसूरि—आप आचार्य विमलचन्द्रसूरि के पट्टधर हुए थे-आपश्री भी जैन शासन में प्रतिभाशाली आचार्य हुए। आप एक समय अर्बुदाचल की यात्रार्थ पधार रहे थे रास्ते में टेलीग्राम के पास एक विशाल वटवृत्त आया आपश्री ने वहीं पर निवास कर दिया तथा आचार्यश्री ने अपने पीछे शासन का रक्षण करने योग्य विद्वान का विचार कर रहे थे आपने अपने ज्ञान बल से सर्व श्रेष्ट शुभ मुहूर्त एवं निमित कारण जान कर वि० स० ६६४ में मुनिवर्य्य सर्वदेव को सूरिपद से विभूषित किया। कई कई स्थानों पर सर्वदेवादि ८ मुनियों को आचार्य पद प्रदान किया भी लिखा है। आपश्री के वृद्धहस्तों से एवं शुभ निमित में दिया हुआ आचार्य पद शासन के लिये हितकारी हुआ इस समय के पूर्व इस परम्परा का नाम वनवासी गच्छ था पर सूरिजी ने वटवृक्ष के नीचे ठहर कर सूरि पद देने से वनवासीगच्छ का नाम वटगच्छ होगया।

"प्रधान शिष्य सन्तत्या, ज्ञानादि गुणै, प्रधान चारित्रैश्च, वृद्धत्वा, वृद्दद्गच्छ इत्यादि"

३६—आचार्य सर्वदेवसूरि आप आचार्य उद्योतन सूरि के पट्टधर थे परन्तु कई पट्टावली कार श्री प्रद्युम्नसूरि तथा मानदेवसूरि को पट्टधर नामावली में नहीं मानते हैं उनके हिसाब से ३६ वाँ नहीं पर ३४ वाँ पट्ट ही आता है। आचार्य सर्वदेवसूरि अपने लब्धि सम्पन्न सुशिष्यों के परिवार से रामसेन्य नगर में पधारे वहाँ पर

वि० सं० १०१० में श्री ऋषभदेव प्रभु के चैत्य तथा चन्द्रप्रभ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाकर धर्म का उद्योत किया। और चन्द्रावती नगरी के मंत्री कुंकुण के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर मंत्री को प्रतिबोध कर उसको भगवती जैन दीक्षा से दीक्षित किया इत्यादि।

"चरित्र शुद्धि विधिवद्वि मागमा द्विधाय सम्यग विश्व प्रबोधनम्।
चकार जैनधर शासनोन्नतिं च शिष्य सम्पन्ना मितयो गु गौतमः ॥
भूपाद शामे शरदां सहस्रे १०१० यो राम सैन्य ह पुरे चकार।
नाभेय चैत्यऽष्टम वीतराज—बिंबं प्रतिष्ठितं विधिवत् सदनघे ॥
चंद्रावती भूपति नेत्र कल्पं श्रीकुंकुणं मंत्रिय पुव माद्रि।
निर्मापितो तुंग विशाल चैत्य, योऽदीक्षत् शुद्धि गिरःप्रबोध्य ॥

वि सं० १०२९ में धारानगरी में सहर पण्डित धनपाल नामका कवि जो जैनधर्म का परमोपासक था जिसने देशी नाम माला का निर्माण किया था आपके लघु भ्राता शोभन ने आचार्य महेन्द्रसूरि के पास दीक्षा ली। आप बड़े ही ज्ञानी एवं कवि हुए थे आपने ही धनपाल को जैनधर्म में श्रद्धा सम्पन्न बनाया। आपके बनाये चौबीस तीर्थङ्कर के चैत्यवन्दन स्तुतियां वर्तमान में विद्यमान हैं। वि० सं० १०९६ थिराद गच्छीय वादी वैताल शान्तिसूरि जिन्होंने धारानगरी के राजा भोज की सभा के पण्डितों को पराजय किया था जिसके उपहार में राजा ने सवालक्ष मुद्रायें प्रदान की पर आप तो थे निर्पेक्ष। आप उस द्रव्य को जैन मन्दिर में लगाया पं० धनपाल की तिलक मञ्जरी का संशोधन आपने ही किया था तथा उत्तराध्ययन पर टीका रची और १०९६ में स्वर्ग पधारे।

१७—आचार्य देवसूरि—आप आचार्य सर्वदेव सूरि के पट्टधर थे "रूपश्री रिद्धी भूपप्रदत्त विरुदधारी" अर्थात् राजाने आपको रूपश्री विरुद दिया था आपश्री बड़े ही चमत्कारी जैन शासनमें प्रभाविक आचार्य हुए।

१८—आचार्य सर्वदेवसूरि—आप देवसूरि के पट्टधर आचार्य हुए आपश्री ने जैनशासन का उद्योत किया आपके शिष्य समुदाय भी गहरी तादाद में थे उन्हों के अन्दर से मुनि यशोभद्र और नेमिचन्द्रादि आठ योग्य मुनियों को आचार्य पदार्पण कर शासन के उत्कर्ष को बढ़ाया।

१९—आचार्य यशोभद्रसूरि और नेमिचन्द्रसूरि एवं दोनों आचार्य सर्वदेवसूरि के पट्टधर हुए आप दोनों आचार्य महान् प्रतिभाशाली थे आपके शासन समय भी धर्म धुरंधर आचार्य अभयदेवसूरिजी हुए आचार्य अभयदेवसूरि महा प्रभाविक आचार्य हुए आपने नौ अङ्गों पर टीका रचने के अलावा स्तम्भन तीर्थ भी प्रकट किया था आपश्री का जीवन चरित्र प्रभाविक चरित्र के अनुसार पूर्व लिख आये हैं।

भगवान् महावीर की परम्परा के उपरोक्त ३९ पट्टधर आचार्यों की नामावली जो हम क्रमशः लिख आये हैं जो कि एक चन्द्रकुल की परम्परा कही जा सकती है। इनके अलावा नागेन्द्रकुल विद्याधर कुल और निर्वृत्तकुल के परम्परा के आचार्य तथा इन आचार्यों की शाखा के रूप में कई गच्छ पृथक् निकले जैसे वड़गच्छ, सांडेरावगच्छ, हर्षपुरियागच्छ, पूर्णतालगच्छ, मलधारगच्छ, राजगच्छादि कई गच्छों में भी महान् प्रभाविक आचार्य हुए और उन्होंने शासन के उद्योत एवं प्रभावना के प्रभावशाली कार्य किये हैं तथा जैनधर्म के आधार-स्तम्भ रूप ग्रन्थों की रचना भी की है। उन सबका विवरण जितना मुझे उपलब्ध हुआ है उन सबको आगे के पृष्ठों में यथाक्रम दिये जावेंगे। यह बात मैं प्रस्तावना में लिख आया हूँ कि मैंने जिस प्रकार इस ग्रन्थ को लिखने का आयोजन पहले से किया था पर कई कारण ऐसे उपस्थित हुए कि उसका पालन हो नहीं सका अतः जैसा सुविधा देखा वैसा ही आगे पीछे लिख दिया है फिर भी पाठकों को इस ग्रन्थ में सब बातें पढ़ने में सुविधा अवश्य हो गई है।

पहले यथा स्थान लिखना रह गया था वह यहाँ पर लिख दिया जाता है।

"मण १ परमोहि २ पुलाए ३ आहार ४ खवग ५ उवसम ६ कप्पे ७ संयम तिग ८ केवल ९ सिज्झणा १० य, जंबुम्मि वुच्छिण्णा ॥१॥"

मनपर्यव ज्ञान, परमावधि ज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारिक लब्धि, क्षपकश्रेणी, उपशमश्रेणी, तीन संयम (प्रतिहार विशुद्ध सुक्ष्मसंपराय, यथाख्यात) केवल ज्ञान, और सिद्ध होना अर्थात् मोक्ष एव दश बोल भ० जम्बुस्वामि के पश्चात् विच्छेद हो गये।

एकं समय भगवा सक्केसु विहरति सामगामे तेन खोपन समयेन निगन्थो नायपुत्तो पावायं अधुना काल कतो होति तस्स काल किरियाय भिन्न निगन्था द्विधिकजाता भण्डनजाता कलहजाता विवादपन्ना अण्णु मण्णां मुख सत्तीहिं वितुदेन्ता विहरति"

"मज्झिम निकाय बौद्ध ग्रन्थ से"

उपरोक्त पाठ का सारांश मैंने पहले महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में जो इस पुस्तक में लिख दिया था जो मुझे मुख जबानी याद था पर अब उसका मूल पाठ भी मिल गया। उसको यहाँ लिख दिया जाता है। इस भ्रांति पूर्ण पाठ का समाधान उसी स्थान पर कर दिया है कि जहाँ इस की चर्चा की गई है यहाँ तो केवल उस ग्रन्थ का मूल पाठ ही लिखा है।

मन्दिर मूर्तियों पर खुदे हुए शिलालेख

श्रीमद् उपकेशगच्छाचार्य विक्रम पूर्व ४ अर्थात् वीरात् ७० वर्ष से जैन श्रावक भक्तों के बनाये मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठायें करवाते आये हैं जिसमें कई शताब्दियों तक तो ऐसा जमाना गुजर गया था कि उस समय के लोग आत्मश्लाघा व मानवृद्धि के भय से शिलालेख खुदाते ही नहीं थे। उस समय के राजा महाराजाओं ने भी बहुत से मन्दिर एवं मूर्तियों की प्रतिष्ठायें करवाई थी पर वे अपना नाम नहीं खुदाते थे जैसे सम्राट् सम्प्रति ने सवालक्ष नये मन्दिर और सवा क्रोड़ मूर्तियों की प्रतिष्ठायें करवाई थी पर उन्होंने किसी एक मूर्ति पर भी अपना नामांकित नहीं करवाया था जब एक सम्राट् का ही यह हाल है तो साधारण मनुष्य तो अपना नाम कैसे खुदा सकता था अर्थात् शायद वे इस बात को शरम की बात ही समझते होंगे।

और ! जब मूर्तियों पर नाम खुदाना शुरू हुआ तब अन्य मन्दिर मूर्तियों पर नाम खुदाया भी होगा पर उस समय की मन्दिर मूर्तियाँ बहुत कम रह गई इस का कारण शायद विधर्मियों की धर्मान्धता हो कि उन्होंने बहुत से मन्दिर मूर्तियों को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दिए हों उदाहरण के तौर पर हमारा पवित्र तीर्थ श्रीशत्रुञ्जय है उस पर बहुत प्राचीन समय से ही मन्दिर थे और समय समय इसके उद्धार भी हुए और नये नये मन्दिर भी बनवाने पर आज इतनी प्राचीन मन्दिर मूर्तियाँ वहाँ नहीं मिलती हैं। जैसा हाल मन्दिरों का हुआ वैसा ही शास्त्रों का हुआ।

प्राचीन समय में जैन श्रमण सब ज्ञान मुख जबानी ही याद रखते थे। अतः उनको ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता ही नहीं थी इतना ही क्यों पर लिखित पुस्तक अपने पास में रखने की भी सख्त मनाई थी यदि कोई रख भी ले तो उसके लिए प्रायश्चित का भी विधान किया है अतः जैन श्रमण सब ज्ञान कण्ठस्थ ही रखते थे और अपने शिष्यों को आगमादि का ज्ञान भी मुख जबानी ही करवाते थे पर जब काल के बुरे प्रभाव से मनुष्यों की याद शक्ति कम होने लगी और केवल ज्ञान कण्ठस्थ ही रखने का आग्रह किया गया तो आगम विस्मृत होने के भय से आचार्यों ने पुस्तक पर लिखने की प्रवृति शुरू की। यह बात जैन शासन में खूब ही प्रसिद्ध है कि आर्य्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने वल्लभी नगरी में संघ सभा कर आगमों को पुस्तकारूढ करवाया। यद्यपि श्रीक्षमाश्रमणजी के पूर्व भी पुस्तक के लिखे जाने के प्रमाण मिलते हैं पर क्षमाश्रमणजी के समय से तो जैन श्रमणों में आम तौर से पुस्तकें लिखना लिखवाना प्रारम्भ हो गया था और स्थान स्थान ज्ञान भण्डार की स्थापना भी करवाती थी पर आज हम ज्ञान भण्डारों को देखते हैं तो पूज्य क्षमाश्रमणजी के समय के ही क्यों पर आपके पीछे भी कई शताब्दियों का लिखा हुआ एक ग्रन्थ तो क्या पर एक पन्ना तक भी नहीं मिलता है। इसका कारण भी जैसे विधर्मियों ने मन्दिर मूर्तियों को तोड़ फोड़ कर नष्ट करदी वैसे ज्ञान भण्डारों को भी अग्नि में जला कर पानी में डूबा कर नष्ट कर डाले। यही कारण है कि प्राचीन समय के मन्दिर मूर्तियाँ और आगम ग्रन्थ के साहित्य नहीं मिलते हैं। तथापि हमारे आचार्यों की परम्परा से पारम्पर्यज्ञान भी चला आ रहा था जैसे गुरु अपने शिष्यों को अपने पूर्वजों से चले आये कण्ठस्थ ज्ञान की शिष्य को शिक्षा देते थे जब वे शिष्य गुरु बनते थे तब वे भी अपने शिष्यों को वह ज्ञान याद करवा दिया करते थे और इस प्रकार परम्परा से चले आये ज्ञान को पारम्पर्याम्नाय अर्थात् पारम्परा व्यवहार के नाम से कहते थे वह जैन शासन में बहुत प्रसिद्ध है और इसी ज्ञान के आधार पर पट्टावलियादि ग्रन्थ लिखे गये थे।

कई कई आचार्यों के शासन में जितना काम होता वह लिख कर अपने पास में भी रखते थे कि आचार्यश्री के शासन में किस किस भक्त श्रावक ने शत्रुञ्जयादि तीर्थों के संघ निकाले किस श्रावक ने किसने

मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्टाएँ करवाई इत्यादि और विक्रय स० ७६५ से तो प्रत्येक आचार्य अपने शासन काल में हुए कार्य की नोंध कर ही लेते ये इतना ही क्यों पर श्रावकों की वंशावलिया भी लिखना प्रारम्भ हो गया था। इस प्रकार दीर्घ दृष्टि से प्रारम्भ किया हुआ कार्य का फल यह हुआ कि मन्दिर मूर्त्तिया और ज्ञान भण्डारों के नष्ट भ्रष्ट होजाने पर भी हमारे आचार्य एवं श्राद्ध वर्ग का कितना ही इतिहास सुरक्षित रह सका। और उस साहित्य के आधार पर आज हम जैनाचार्य एव उनके भक्त श्रावकों का इतिहास तैय्यार कर सकते हैं। इतना ही क्यों पर मैंने इस ग्रन्थ में प्रत्येक आचार्य के जीवन के अन्त में भावुकों की दीक्षाएँ, श्रावकों के बनाये मन्दिर एव मूर्त्तियों की प्रतिष्टाएँ, तीर्थों के सघ, वीरों की वीरता, दुष्काल में करोड़ों का द्रव्य व्यय कर देशवासी भाइयों एव पशुओं के प्राण बचाने वालों की नामावली तथा कई जनोपयोगी कार्य जैसे-तालाब, कुँए, वापियां, धर्मशालाएँ वगैरह बनाने वालों की शुभ नामावली दे आये हैं। उक्त साहित्य के अलावा वर्तमान पुरातत्व की शोध खोज से तथा वर्तमान में विद्यमान मन्दिर मूर्त्तियों के शिलालेख मिले हैं जिनको ज्ञान प्रेमियों ने मुद्रित भी करवा दिये है। उन मुद्रित पुस्तकों में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्यों के करकमलों से करवाई प्रतिष्टाओं के शिलालेख यहाँ दर्ज कर दिये जाते है। पाठक पढ़कर कम से कम अनुमोदन तो अवश्य करें—

१—"वरिस सएसु अ णवसु, अठारह समग्गलेसु चेतम्मि। णक्खते विहुहथे वुहवारे, धवल बीआए ॥१६॥"

× × × ×

ऐस सिरि कक्कुएण जिणस्स, देवस्स दुरियाणिदलण। करावियं अचलमिम भवण भत्तीए सुह जणय ॥२२॥

× × × ×

अप्पि अमेअ भवण सिद्धस्स धणेसरस्य गच्छमि०। घावू पूर्ण० लेखाक ६४५

मारवाड़ में यह शिलालेख सबसे प्राचीन है घटियाला ग्राम से मिला है। इस शिलालेख में प्रतिहार कक्व ने जिनराज की भक्ति से प्रेरित हो मन्दिर बनाकर धनेश्वर गच्छवालों को सुपुर्द किया लिखा है।

२—मारवाड़ के गोड़वाड़ प्रान्त में हथुड़ी नाम की एक प्राचीन नगरी थी। वहाँ पर राष्ट्रकूट (राठौर) राजाओं का राज्य था और वे राजा प्राय सब जैन धर्म के उपासक थे जिसमें हरिवर्मन का पुत्र विदग्धराज ने आचार्य केशवसूरि की सन्तान में वासुदेवाचार्य के उपदेश से वि० सं० ९७३ में जिनराज का मन्दिर बनवाया था जिसका बड़ा शिलालेख बीजापुर के पास में मिला था वह बहुत विस्तृत है। उस लेख में विदग्धराज के अलावा आपके उत्तराधिकारी मम्मट वि० स० ९९६ में उस जैन मन्दिर को कुछ दान दिया है। वह भी शिलालेख में लिखा है। तथा मम्मट का पुत्र धवल ने वि० स० १०५३ में अपने पितामह के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था जिसका उल्लेख भी प्रस्तुत शिलालेख में है उस शिलालेख का कुछ अश यहाँ दे दिया जाता है।

"रिपु वधु बदनेन्दु हृतद्युति समुदपादि विदग्धनृप स्तत ॥ ५ ॥"

स्वाचार्यैर्यो रुचिरवाच (नैर्व्वा) सुदेवाभिधानैर्बोधं नीतो दिनकर करैर्न्नीर जन्माकरोव।

पूर्व्वं जैनं निजमिव यशोऽकारयद्धस्तिकुण्ड्या। रम्य हर्म्यंगुरुहिमगिरे. श्रृङ्गश्रृङ्गा रहरी ॥ ६ ॥

× × × ×

राम गिरिनन्द कलिते विक्रम काले गतेतु शुचिमासे श्रीमद्बलभद्र गुरोर्व्विदग्धराजेन दत्तमिदम् ॥

नवसुशतेपु गतेषु तु षण्णवतीसमधिकेषु माघस्य कृष्णैकादश्यामिह समर्थित मम्मट नृपेण ॥

इत्यादि लेख बहुत बड़ा है। श्रीमान् बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के जैन लेख संग्रह प्रथम खण्ड पृ० २३४ में मुद्रित हो चुका है।

भवत्सोम्यो वणिग्जिन्दक संज्ञित । इन्दुवत्कान्ति · · · 'लय' ॥ १६ ॥ चदुह्वरा ··· ह्याप्रसाद युक्ता स्वयशोभिरामा । सदानुसत्री स्वपतिनदीन मार्गणाघात···· · तरगा ॥ १७ ॥ तस्मात्तस्यामभूद्धर्मो त्रिवर्ग ···· ॥ १८ ॥ यन्नाकारि सितेतरच्छवि ·· 'नत्वा दिनं याचितै ध्यर्थेन्नार्थि जनरपि प्रतिगत यद्गेहमभ्यर्थित । किं चान्यद्भुवने दरोरु सरसि व्याप ···· नीर नीर दसित · ॥ १६ ॥ जिनेन्द्र धर्म्मे प्रति युक्त योनयो·· तायें··· · · कुमतेर्म्मनागपि । मि · ···वसतोपिहि मण्डलेथषान सन्मणीना भवतीदृकाषता · ·· ···॥ २० ॥ यदि वादि · ·· संज्ञिता · · ···जाकलावपि ॥ २१ ॥ तत्र ब्रह्म वौ स्वर्गसम्प्राप्ते तन्महिलया । दुर्गया प्रतिमा कारि स · ·· ब्रधामनि ॥ २२ ॥ आम्रकात्सर्वदेव्यातु·· ·· · ·· यत·· · ··· देवदत्त ·· ·· मिवागमे ॥· प्रतिदिन मिति ·· या कार्य्यं प्रति विदधते यद्वदधिक ॥ धैर्य्यवन्तो पिये त्यन्त भीरय परलोकत । भोगि · ह्निको ··· ष दूरगा ॥· ·· ति वला वतत्स · ··· ···· भि **पुनरय भूमण्डनो मण्डपः। पूर्वस्यां ककुभि त्रिभारा** विकल **सन्गोष्ठिकानु**······ जिन्दक · ····मतदु ·· · व्य · · ·· कृतयो · **·नेन.जिनदेव धाम तत्कारित पुनरमुष्य भूषण।** मत्स दग्दरयते द्वेजयत्री भूजयन्त ···· **संवत्सर दशशत्यामधिकायां वत्सरै** अयो दशभि **फाल्गुन शुक्ल तृतीया भाद्र पदाजा····· ·· सं० १०१३·** · · व्योम ॥ प्राजापत्य वृषदपि मना गत्तमालोपयोयी शख चक्र स्फुटमपिव ·· ·· करोव पाया भुवन गुरुभ्रति··· · ··· · ॥ भावद्गौर्ग्गूढ़ वह्निर्गुरु भर वित्त भनमूर्द्धाभिर्द्धार्य्यते घोयावन्मेरुर्म्मेरुभिर्भ्रि वियु ते · । वशिखमुखच्छेद · ·· ·· श्रीमद्ध ·· दशा प्रच · · ·· ··· नित्यमस्तु ॥ जयतु भगवास-ताव· · ··· कीर्तिर्भ्रि रीवि वपु सदा ॥ यस्मादस्मिन्निजस्मन्यवरि पति पति श्री · · ·· समा · प्रकट सुतारनो ······ सूत्रधारत्व ·· व्विवि ·· दित मिद ॥

"श्रीमान् बाबू पूर्णचन्दजी नाहर के जैनलेख संग्रह प्रथम खण्ड लेखाँक ८०६"

५—स० १०३५ आषाढ सुद १० आदित्यवारे स्वाति नक्षत्रे श्री तोरण प्रतिष्ठापि मिवि
बाबू पूर्ण० प्रथम खड लेखांक ७८६ ।

६—सं० १०७८ फाल्गुन वदि ४ श्रीपार्श्वनाथ.बिंब का० प्र० श्रीककसूरिभि ७६२

७—ॐ सं० ११०० मार्गशिर सुदि ६ ·· ·· ···शालिभद्र ···· ··देवकर्म श्रेयोर्थं कारित जिनत्रिकम्
बाबू पूर्ण० सं० प्रथम खण्ड लेखांक ८०३ ।

८—स० ११२५ वर्षे वैशाख सुद १० श्रीमाली माल्हण भा० ल्हाणी निमित पंचायतीर्थीबिंब प्र० उ०
धातु० लेखाक ५३४ मातरसुमति देहरे—

६—सं० ११७२ फाल्गुन सुदि ७ सोमे श्रीऊकेशीय सावदेव पत्न्या आम्रदेव्या कारित कुकुन्दाचार्ये प्रतिष्ठता—
। धातु० लेखांक ६१७

१०—स० १२०२ आसाढ़ सुद ६ सोमे श्रीप्राग्वटवशे आसदेव देवकी सुत । महं बहुदेव धनदेव सूर्यदेव जसायु रमणाख्या बन्धव महं धनदेव श्रेयोऽर्थे तत्सुत बालण धवलाभ्या धर्मनाथ प्रतिमा कारितं श्रीकुकुदाचार्यै प्रतिष्ठिता
लेखांक १३५ शत्रुञ्जयतीर्थ पर।

११—सं १२०२ आषाढ़ सुद ६ सोम श्रीश्रीमालवंशे आसदेव सुतस्य यशोदेवस्य पत्न्या श्रे० बोल्ह सीताद सुता शान्ति मात्रा श्रेयोऽर्थं वरसुत मही बाहड़ यशशाम्भ्यां श्री शान्तिनाथ प्रतिमा कारिता श्री कुकुदाचार्यै प्रतिष्ठितं ॥ लेखांक १३८ श्री शत्रुञ्जय पर

१२—सं १२ १ आषाढ़ सुद ६ सोमे सूत्र० सोढ़ा सालसुत सूत्र केशा बोल्ह सहज सोढ़्या वामदे स्वपितृभि श्रीविमलवसति का तीर्थे श्रीकुंथुनाथ प्रतिमा कारिता श्री कुकुदाचार्यै प्रतिष्ठिता । मंगल महा श्री श्री। लेखांक १४२ तीर्थश्री शत्रुञ्जय पर।

१३—सं १२ १ आषाढ़ सुद ६ सोम श्री० व अमरसेएसुत मई वाघ·· ··स्वपितृ श्रेयोऽर्थे प्रतिमा कारिता श्रीकुकुदाचार्यैप्रतिष्ठिता मंगलमई व । लेखांक १४० शत्रुञ्जय तीर्थ पर

१४—सं १२ १ आषाढ़ सुद ६ सोम श्री ऋषभनाथ बिम्ब प्रतिष्ठितं श्रीकुकुदाचार्यै प्रतिष्ठितः मंगलमई व वसराकेन स्वपितृ व बमसुर्मे श्रेयोर्थं प्रतिमा कारिता । लेखांक १४ तीर्थ श्री शत्रुञ्जयपर

१५—सं १२१२ ज्येष्ठ वदि ८ मासे चंद्रा कुकुदाचार्यैः प्रतिष्ठिता जिन सं लेखांक १२४।

१६—सा० वासपुत्रसितुसहिंद श्रीशान्तिनाथ कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरि भिः बिम्ब लेखांक २११

१७—सं १२४५ फाल्गुन सुदि ५ बुधेद् श्रीमहावीर रथशाला निमित्तं·· ··पालित्या पीथ देव चंद बन्धु पशोप भार्य सम्पूर्ण श्राविकाया आत्म श्रेयार्थ समस्त गाष्ठि प्रत्येन च आत्मीय सज्जन वर्ग समेतेन आत्मीय स्वगृहत्वं । २२२६ आबू पूर्व० लेखांक ८००

१८—सं १२४५ फाल्गुन सुदि ५ बुधेद् श्रीमहावीर रथशालान्निमित्तं पालित्या पीथ देवचन्द बन्धु यशोधरभाय सम्पूर्ण श्राविकया आत्म श्रेयार्थं आत्मीय सज्जन वर्ग समस्तम स्वगृहत्वं आबू पूर्व० लेखांक ८०१

१९—सं १२४९ माघ वदि १४ शनिवार दिने श्री मज्जिनमहोपाध्याय शिष्यै श्रीकमलप्रभ महत्तरा मिश्र कायोत्सर्गा कृता लेखांक ८०८

२०—"सं १२२१ कार्तिक सु १२ सुभेन शुभो सहदिग पुत्रै राजू हरी गुणदी भाई सर्व प्रकारे चतुर्विंशति बिम्ब मातृ पद्मिका निज मातृ अम्बय श्रेयार्थ कारिता श्री कक्कसूरि भि प्रतिष्ठिता (ओसियां) आबू पूर्व जैन लेख संग्रह लेखांक ७५।

२१—सं १२६१ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १२ श्री मद्उपकेशगच्छे श्रे० महाराज श्रे० महिसवयोः श्रेयोर्थे श्रीपार्श्वनाथ बिंब का प्र श्री सिद्धसूरिभि ॥ ईडर

२२—सं १२१ वर्षे वैशाख सुदि ५ उपकेश ज्ञाती बापनाग गोत्रे सा सागर भा० सीताद पु० देवा भीमा भा० राजार सहितेन श्री आदिनाथ बिंब कारापितं प्रतिष्ठा श्री उपकेशगच्छीय श्रीसिद्धसूरि संताने म इ० लेखांक ८५६

२३—सं १३·· ··वर्षे आषाढ़ सुदि १ उपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्री·· ··श्रीशांतिनाथबिंब का प्र श्रीदेवगुप्तसूरिभि ॥ बाबूरा—नरसिंहजी की पोल दादापार्श्व जिना

२४—सं० १३१४ वर्षे फाल्गुण सुदि ३ शुक्रे श्रीसाधु मार्योसमरे भाख्य भार्या जयतशिपुत्र मदरोप जाव रवाकर्ष पितृ मातृ श्रेयोर्थ श्रीनेमिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्त सूरिभिः ॥ जैसलमेर ना० ले २२१५

२५—सं १३१५ वर्षे फाल्गुण सुदि ४ शुक्रे। श्रे पासदेवपुत्र रतनदेव वरल मा० आमकरे श्रे० राम श्री पार्श्वनाथबिंबं कारितं (प्र) श्रीकक्कसूरिभिः। उदयपुर शीतल जिन

२६—सं० १३१५ (।) वर्ष वैशाख वदि ७ गुरौ (।) श्रीमदुपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य सनाने श्रीवरदेवसुत शुभचन्द्रेण श्रीसिद्ध सूरीणां मूर्ति कारिता श्रीकक्कसूरि (भि) प्रतिष्ठिता। पालनपुर

२७—स० १३२३ माघशुदि ६··· ········श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारित प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्त सूरिभि ॥ शत्रुञ्जय—

२८—(१) ॐ सं० १३३७ फा० २ श्री मामा मणोरथ मदिर योगे श्रीदेव (२) गुप्ताचार्य शिष्येण समस्त गोष्ठिवचनेन पं० पद्मचंद्रेण (३) अजमेरु दुर्गे गत्वा द्विपचासत जिन बिंबानि सच्चिकादेविग (४) (ण) पति सहितानिकारितानि प्रतिष्ठतानि······ सूरिणा ॥ लोद्रवा लेखांक २५६५

२९—स० १३३७ फार्तिक सुदि २ श्री मामा मणोरथ मन्दिर योगे श्री देवगुप्ताचार्य शिष्येण समस्त गोष्टि वचनेन प० पद्मचन्द्रेण अजमेरु दुर्गे गत्व द्विपचाशत जिन बिंबानि सचिकादेविगणपति सहितानि कारितानि प्रतिष्ठितानि मूरिणा (यह यह लेख दुबारा लि०)

३०—सं० १३४५ श्री उपकेच्छे श्री ककुन्दाचार्य सताने नाहर सु० अरसिंह श्रेयशे पुत्र । उपाराय (?) पंचभि श्रीशान्तिनाथ का० प्र० श्रीसिद्धमूरिभि. (जैसलमेरनी) न० २२२६

३१—स० १३४६ वर्षे पोरवाड पहु॰व.भार्य देवसिरि श्रेयसोर्यं पुत्री चुलहर झाझण कागडादिभि । श्री आदिनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठितं श्री उप० श्रीसिद्धसूरिभि जैसलमेर नं० २२३८

३२—स० १३४८ वर्षे वैशाख सुदि १५ रवौ श्रीउपकेशगोत्रे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्रे० वेल्हू भा० देमला तत्पुत्र श्रे जनमोहेन मकुटम्बेन आत्मश्रेयसे पार्श्वनाथ बिंब कारितं प्र० श्रीदेवगुप्तसूरिभि नाणावेडा (मारवाड़) न० लेखांक ६२१

३३—स० १३४६ वर्षे माघ शुक्ला ५ उपकेशज्ञातौ बापनागगोत्रे स० खेमा मह० पुली पु० चहाड भ० धीणी तत्पुत्र सल्हाकेन श्रीमहावीर बिंब कारिता ककसूरि पट्टे देवगुप्तसूरि प्रतिष्ठितं। नं०

३४—स० १३५६ ज्येष्ट वद ८ श्रीउपकेशगच्छ श्रीककसूरि संताने सा० सालण भा० सुहवदेवी पुत्र काल्हणेन श्रीशान्तिनाथ बिंब कारित पित्रो श्रे० प्रति० श्रीसिद्धसूरि "मारवाड़ पार्श्व जिनालय न० १०५४

३५—स० १३५६ श्रीशान्तिनाथ बिंब करित श्रीककसूरि प्रतिष्ठितं "करेडा पार्श्वनाथ नं०

३६—सं० १३६२ वर्षे वैशाखमासे शुक्लपक्षे ५ पंचम्या तिथो गुरुदिने उपकेशवंशे मा० सारग भार्य सुहगदव्या पु० तोलकेन श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा कारिता प्र० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धसूरिभि ।

३७—स० १३६८ वर्षे ज्येष्ट वदि १३ शनौ श्री श्रीमाल ज्ञा० सौवीर संताने मह—साहण पुत्र आदा अबड आर्य पेमल श्रेय से श्रीआदिनाथ बिंब पु० देवलेन का० प्र० पिप्पलाचार्य श्रीककसूरि

'अहमदाबाद शान्ति जिन०

३८—स० १३७३ वर्षे श्रीउपकेशगच्छ श्रीककुन्दाचार्य मताने वैद्यशाखायां सा० हसल अमरसिंह श्रेयसे हसल पुत्र जवात भा० धामादेवाभ्यां श्रीशान्तिनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित श्री सिद्धसूरिभि ।

धातु० नं० १६६ बगोदा—चिंतामणी पार्श्व देहरे

३९—स० १३७३ हरपाल गगपाल पूतानिमित्त सिहाकित (महावीर) बिंब का० प्र० गच्छी (उपकेशगच्छीय) देवेन्द्रसूरिभि ॥ श्री जिन-भाग दूसरा डभोई श्रीशामलापार्श्व जिना०

४०—स० १३७८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ६ सोमे श्री उपकेशिगच्छे श्री ककुदाचार्य सन्ताने मेहड़ा ज्ञाति (य) सा० लाहडान्वये धाँधल पुत्र सा० छाजुमोपवि भोजा भरह प्रभृति श्रीआदिनाथ कारित प्रतिष्ठा श्री भि ।

जि० न० २०६ शत्रुञ्जय

४१—सं० १५४१ वर्षे आषाढ़ वदि ८ श्री उपकेशगच्छे श्रे० श्रृंगार भा० कासलदे पु० भीम भा० मायश्र पु० भाखा आसधीर श्रमरापुत्र कुटम्ब श्रेयसे चतुर्विंशतिपट्ट कारित ॥ प्र० श्री कक्कुदाचार्य संताने श्री कक्कसूरिभिः ॥ भरेव

४२—सं० १५८० वर्षे माह सुदि ६ सोमे श्री उपकेशगच्छे वेसट गोत्रे सा० गोसलभ्य० वेसंग भा० धामलदे श्रे० भादमण० श्रा० देवचन्द्रपुत्र भा० सहजपाल भा० धारल सा० समरसिंह पितृश्य सा० पद्मा तत्पुत्र सा० सागर सौंगा प्रमुखै चतुर्विंशतिपट्ट का० प्र० श्रीकक्कुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ॥

खंभात चिन्तामणी पार्श्व० जिना०

४३—सं० १५७० महा सुदि ६ भौम उपकेशगच्छे आदित्यनाग गोत्रे सा० चिरदेवारमल स० मंडुक भा० मोसारि पुत्र सरपाल भा० अरमघा भादघलसिंह देवसिंह पासचन्द्र पूर्णसिंह सहितापथीं कुटुम्ब श्रेयार्थं श्री शान्तिनाथ बिंबं का० कक्कुदाचार्य संतान श्रीकक्कसूरिभिः ॥ धातु सं० ७११ चम्पापुर

४४—सं० १५८० ज्येष्ठ सुदी १४ श्री उपकेशगच्छे श्रे० म० आमा० मीणदे पु० देहा भमा नियमात श्रेयसे श्री कुमारिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री कक्कुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ।

ब० ले० ११४८ सुर (बीकानेर) शान्ति

४५—सं० १५८२ वर्षे फागुण सुदि ——श्रीपार्श्वनाथ बिम्बं कारिता प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिभिः ।

उदयपुर देवाड़ शिलाले० १०१२

४६—सं० १५८६ वर्षे ज्येष्ठ वदि ४ सोमे श्रीउपकेशगच्छे कलनाम गोत्रे गोसह भार्या सुपारे पुत्र योका क्षेम मातृपित्रोः श्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्रीकक्कुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ॥

जैसलमेर—चौपाल—२२५१

४७—सं० १५८७ वर्षे माघ सुदि १ रवौ श्रीउपकेशगच्छ भूरिशागोत्रे सा० धीरमल सा० मोल्हा भार्या वसतारे पुत्र काप आसालगी मातृपित्रो श्रे० श्री मल्लिनाथ बिंबं का० प्र० श्रीकक्कुदाचार्य संताने प्रभु श्रीकक्कसूरिभिः ॥ धातु—भदोरा—वासियोरी चन्द्रप्रभ—सं० १४१

४८—सं० १५८८ वर्ष माघ सुदि ६ सोम उपकेशगच्छे आदित्यनागगोत्रे सा० श्रीदेवमल सा० मंडुक भा० मुक्तादि पुत्र सरपाल अरमघशाम् भाद मनसिंह देवसिंह पासचन्द्र पुनसी स देवाय कुटुम्ब श्रे० शांतिनाथ बिंबं का० प्र० कक्कुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥ धातु सं० ७०६ पेथापुर

४९—सं० १५९१ श्री उपकेशगच्छे श्रीकक्कुदाचार्य संताने सोमसर भार्या कौरिका आत्मश्रे० श्रीसुमति बिंबं कारितं श्रीकक्कसूरिभिः ॥ २२९१ जैसलमेर—चन्द्रप्रभ

५०—सं० १५९९ वैशाख सुदि ३ उपकेशगच्छे श्रीकरिया गोत्रे सा० माला भा० मोली पु० देवाश्र श्रीनेमिनाथ बिंबं का० प्र० कक्कसूरिभिः ॥ जैसलमेर

५१—सं० १६०० वर्षे वैशाख सुदि उपकेशगच्छे श्रीश्रेष्ठि गोत्रे संघपति सा० देवदत्तमल सा० पाछ भार्या मलकदेव्या संघ श्री/ संग——सिंह पु० मूल सं० ताहू सहायकैः श्रीसंभवनाथ बिं० प्रमुख समवसरणं प्रति श्रीकक्कसूरिभिः ॥ बीकानेर १०७१

५२—सं० १६०५ वैशाख सु० ५ श्री उपकेशगच्छ तातहड गोत्र म० सा—— भा० मचारे नदी पुत्र संघ सा० चाहड़ेन मधुसूदेन श्रीरिषभ बिंबं का० प्र० श्रीकक्कुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥

धातु—बीकानेर ४०

५३—सं० १४०१ वैशाख ४ श्रीआदित्यनाग गोत्रे सघ० कुलियात्मज स० झामा पुत्रेण स पुत्र श्रेयसो श्रीशान्तिनाथ बिंब कारित प्रति० श्रीकक्कसूरिभि बाबू० न० ७२६

५४—स० १४११ वर्ष ज्योष्ट शुक्ला ११ उ० चोर० मा० वाग, नाथा, जोघा पितृ श्रेयसे श्रीआदिनाथ बिंब का प्र० सिद्धसूरिसताने देवगुप्तसूरिभि जैसलमेर

५५—स० १४१४ वर्षे वैशाख सुदि १० गुरौ संघपति देशल सुत समरा समरश्रीयुग्म सा० सालिंग सा० सज्जन सिंहाभ्या कारित प्रतिष्ठित कक्कसूरि शिष्यै. श्रीदेवगुप्तसूरिभि । शुभ भवतु जिन० लेखाक ३७

५६—सं० १४२२ वैशाख शु० ११ बुधे श्रीउपकेशाग .....प्र० ककुदाचार्य संताने श्रीदेवगुप्त सूरिभि

५७—स० १४२६ वर्षे माघ वदि ७ चिंचट गोत्रे वसट वास्तव्य साधुश्री सहजपाल भार्या नयणा देव्याआत्मश्रेय से श्रीशातिनाथ बिंब का० प्र० ककुंदाचार्य सतानीय देवप्रभ सूरिभि

५८—म० १४३० वर्षे उपकेश ज्ञातीय श्रे० रहिया भा० रही पु० रूपा जाल्हण जोगा खेतू एभि पितु श्रे० बि० का० प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्तसूरिभि बा० लेखांक २२७४

५९—स० १४३२ फागण सुदि ३ शुक्रे उपकेश ज्ञातौ चेचट गोत्रे वेशट शाखा यां स० देसल सताने स० समरसिंह सु० सा० डुगरसिंह भा० डूलह देव्या सु० समरसिंह श्रे० श्रीआदिनाथ बिंबं का० प्र० ककुदाचार्य सताने श्रीदेवगुप्तसूरिभि धातु० लेखाक ६३५

६०—स० १४३६ पौष वदि सोमे उपकेश हखीमा भार्यावाऊ पुत्र—केन पितु श्रेयसे श्रीपार्श्वनाथ बिंब का प्र० उपकेशगच्छे श्रीदेवगुप्तसूरिभि धातु० लेखाक ६१७

६१—स० १४४५ पौष सुदि १२ बुधे ऊ० श्रे० जोला भा० हीरीपुत्रलाला केन श्रीशान्तिनाथ बिंब का० प्र० उ० गच्छे श्रीसिद्धसूरिभि बाबू खड १—लेखाक ४६०

६२—स० १४४५ वर्षे वैशाख वदि ३ सोमे उपकेश ज्ञातो उर्घटगोने सा० उदा भा० अनुपमा पुत्राभ्यां सा० रामा—लाखा भ्यां पितृ श्रे० श्रीशान्तिनाथ बिंब का०प्र० उपकेशगच्छे श्रीककुन्दाचार्य सताने श्रीदेवगुप्त सूरिभि बि० ध० न० ६०

६३—स० १४५७ वर्षे वैसाख सुदि ३ शनौ उपकेशगच्छे घेघड़ भा० केली मा० भूपणा भार्याेमी पु० सीगकेन (१) पितृ मातृ श्रेयसे श्रीआदिनाथ बिंब का० प्र० श्रीश्रीमाले श्रीरामदेवसूरिभि बाबू लेखाक १४६०

६४—स० १४६२ वर्षे वैशाख शुद्धि ३ बुधे श्रीउपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य सताने श्रीकक्कसूरीणा मूर्त्ति श्री सघेन कारिता प्रतिष्टिता श्रीदेवगुप्तसूरिभि

६५—स० १४६८ वर्षे ज्येष्ठ वदि १३ रवौ ऊकेशवशे गाहड़ीया गोत्रे सा० देपाल पुत्र आना भार्या मीमिणि श्रेयोऽथ श्रीशातिनाथ बिंबं कारित प्रति० उपकेशगच्छे श्रीदेवगुप्तसूरिभि बाबू पू० १०६२

६६—स० १४६८ वर्षे आषाढ शुदि ३ रवौ उपकेशज्ञातौ वेसटान्वये चिंचट गोत्रे सा० श्रीदेसलसुत साधु श्रीसमरसिंह नदन मा० श्रीसजनसिंह सुत सा० श्रीसगरेण पितृ मातृ श्रेय से श्रीआदिनाथ प्रमुख चतुर्विंशति जिन पट्टक कारित श्रीउपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य सताने प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्तसूरिभि बाबू पू० लेखाक १०७२

६७—सं० १४७० वर्षे माघ सुदि २ गुरौ बाफण गोत्रेसाह लुंभा सुत देपाल भा० मेलादे पु० जोगराज भा० जसमादे श्रीपार्श्वनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठितं उपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्याभिधान प्र० देवगुप्तसूरिभि । बाबू पूर्णचन्द २०६२

६८—सं० १४७१ वर्षे माघ सुदि १३ बुध दिने ऊकेश वंशे बापणा गोत्रे सा० सोहड़ सु० सारं भा०... पितृ... निमित्त श्रीशान्तिनाथ बिंब का० प्र० उपकेशगच्छे श्रीदेवगुप्तसूरिभि

ना पू० ले० ७७४

६९—सं० १४८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ५ उपकेश ज्ञातीय आयचणाग गोत्रे सा आसा भा वाछि पु माहू माहू भा रूपी पु० कामा तारहा सोवड़ श्रीनेमिनाथ बिंबं का० पूर्वज नि पु आत्म श्रे० उपकेश कुक० प्र श्रीसिद्धसूरिभि

बाबू पूर्णचन्द लेखांक ७०

७०—सं० १४९१ वर्षे वैशाख वदि ११ रवौ उपकेश ज्ञाती सा० कुंप भा कुंअरदे पुत्र मधा भा० माणकदे पु सायर सहितेन श्रीवासुपूज्य बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छे सिद्धाचार्य संताने मेवुरीय श्रीदेवगुप्तसूरिभि

धर्म० ले १२९ जयपुर शीतलनाथ

७१—सं० १४९२ वर्षे वैशाख वदि ५ उपकेश ज्ञा राका गोत्रे सा मूणा भा देवलदे पु कानू ल्हूणा भा पकजोरे पु केल्हा ठाणा गाल्हा वजा सोमी श्रेय कारापितं नि० पुण्यार्थं आत्म श्रे० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सं प्र श्रीसिद्धसूरिभि

लेखांक १०००

७२—सं० १४९४ वर्षे वैशाख वदि १२ रवौ उपकेश ज्ञातीय सा० कुंपा भा० कुंअरदे पुत्र मधा भा० माणकदे पु० सायर सहितै श्रीवासुपूज्य बिंबं क प्र उपकेशगच्छ सिद्धाचार्य संताने मधुरमा श्रीदेवगुप्त सूरिभिः

बाबू लेखांक १००२

७३—संवत १४९५ वर्षे जेठ सुदि ११ चंद्रवारे उपकेशगच्छ का० उपकेश ज्ञातीय बापणा० सा बाद जजीधा (?) भा० कोडलदे पु० साधा भाय शिवराजकेन मातृ पितृ श्रेय से श्री शान्तिनाथ बिंबं कारा प्रतिष्ठितं श्री सिद्धसूरिभि

बाबू लेखांक १०८

७४—सं० १४९५ वर्षे वैशाख सुदि ५ उपकेश ज्ञा० बप्पणा गोत्रे सा० देल्हा भा० देल्हणदे पु० कानू पूना घोघा नाथू भा सारखी पु मेलाकेन सीहा पूर्वज नि श्रीवास पूज्य बिंबं आत्म श्रेयो० श्री उपके० कक सू प्र श्री सिद्धसूरिभि

बाबू लेखांक २१७४

७५—सं० १४९५ वर्षे वैशाख सुदि ३ बुधे उपकेश ज्ञाती बप्पणाग गोत्रे सा कुशा पुत्र सा० धाकलेन पित्रो श्रेय से श्री चन्द्रप्रभ बिम्बं का प्र० श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्री सूरिभि

बाबू पूर्णचन्द लेखांक २११९

७६—संवत १४९६ वर्षे कार्तिक सुदि ११ सोमे उपकेश ज्ञातीय सा० भादा भार्या सुगुणदे पु० राणा मामा सजपा (के) न निज मातृ पितृ श्रेयसे श्रीशान्तिनाथ प्रासादे श्रीमुनिसुव्रत देवप्रतिमा । कारिता उपकेश गच्छे श्रीसिद्धाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्त सूरिभिः ॥ श्र ॥ श्री ॥ महत्तवारीयकैः ॥

बाबू लेखांक ११८२

७७—सं० १४९८ वैशाख सुदि १... ...सन्ताने श्री... ...भार्या रतन श्री ... ...सहित सहितेन मातृ पितृ श्रेय स श्री पार्श्वबिंबं का प्र श्री कक्कसूरिभि ।

बाबु लेखांक सं०

७८—सं० १४९८ वर्षे पोष सुदि ३ शनौ उपकेश ज्ञातौ श्रीसार गोत्रे वेसटान्वये सा वाहू भा० महगलदे पु सधवीर भा सेव पु देवा श्री वंताम्बा पित्रो श्रेयसे श्री विमलनाथ बिंबं का० प्र श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्री सिद्धसूरिभिः

बाबू लेखांक ४४

७९—सं० १४९८ वर्षे वैशाख वदि १ दिने गुरुवासरे श्री शान्तिनाथ बिंबं का० प्र श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्री श्रीसिद्धसूरिभिः ।

८०—संवत् १४४१ वर्षे माह सुदि ५ बुध दिने गादहियागोत्रे सा० शिवराज सा० सहजाकेन माता पदमाही निमित्त श्रीपार्श्वनाथ बिंब कारित श्रीउपकेशगच्छे प्र० श्री सिद्धसूरिभि । बाबू लेखांक १५४६

८१—संवत् १४६३ वैशाख सुदि ५ उप० ज्ञा० आदित्यनाग गोत्रे सा० पदमा पुत्र पेढा भ० पूजी पुत्र सीमाकेन श्री श्रेयासनाथ बिंब का० श्री उपकेशगच्छे कुक० प्र० श्री सिद्धसूरिभि । बाबू लेखांक ११८२

८२—संवत् १४६३ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ३ सोमे उपकेश० कनउजगोत्रे भूपीया शाखीया व० पता सुत मोना केन निम मातु सभादेव्या' निमित श्री आदिनाथ बिंब का० उप० ककुदाचार्य सन्ताने प्र० श्रीसिद्धसूरिभि ॥ (पञ्चतिथि) धातु प्र० २५१

८३—संवत्—१४६४ वर्षे उ० चा प्र '' 'दीता भा० देवल पुत्र गुणसेन भा० गुरुदे निमित्त श्री सुविधानाथ बिंब कारापितं प्रतिष्ठित उपकेशगच्छे भट्टारक श्री सिद्धसूरिभि । बाघमार ज्ञातीय ॥ बाबू पूर्णचन्द लेखाक २४११

८४—संवत् १४६५ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ४ गुरौ उपकेश ज्ञातौ सुचिंति गोत्रे साह भिम्कु भार्या जयनादे पुत्रा सा० नान्हा भोजकेन मातृ पितृ श्रेयसे श्री शान्तिनाथ बिंब कारित श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सताने प्रतिष्ठित भ० श्री श्री श्री सर्व सूरिभि । बाबू लेखाक ५३१

८५—संवत् १४६६ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ४ गुरौ उपकेश ज्ञातौ सुचिती गौत्रे साह लाधा भार्या सरजूदे पुत्र साह रामा राजाकेन मातृ पितृ श्रेयसे शान्तिनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठा श्री श्री श्री सर्व सूरिभि । बाबू लेखाक १६४१

८६—संवत् १४६७ वर्षे आषाढ़ वदि ८ रवौ उपकेश ज्ञातौ साह सपुरा भार्या सीतादे पुत्र कर्मसिंहेने श्रीनेमिनाथ बिंब पितृ मातृ श्रेयसे कारित उपकेशगच्छे श्री सिद्धाचार्य सन्ताने प्र० श्री देवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखाक २३८

८७—संवत् १४६६ वर्षे फागुण वदि १ गुरौ उपकेश सुरगोत्रे साह सिवराज भार्या माकु पुत्र पासा सहसा भातृ वयराज पुण्यार्थं श्री शीतलनाथ बिंब का० प्रति० श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्री कक्कसूरिभि । बाबू लेखाक २१६

८८—संवत् १४६६ वर्षे फागुण वदि २ उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे साह देसल भार्या देसलदे पुत्र धमी भार्या सुहगदे युतेन स्वश्रेयोऽर्थं श्री आदिनाथ बिम्ब का० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सं० प्रति० श्री कक्कसूरिभि । बाबू लेखाक ४७१

८९—संवत् १४६६ वर्षे ओसवाल ज्ञातौ मं० जसवीर भार्या सरसू सु० म० नाईआकेन भार्या नयणादे सु० पचा जावड़ मेघादे धरमनादि कुटुंबयुतेन स्वश्रेयोऽर्थं श्री महावीर बिंब का० प्र० तपा श्री मुनिसुंदरसूरिभि ।

९०—संवत् १४६६ वर्षे फागण वदि ७ उपकेश० सुचिंती गोत्रे साह वीरा भार्या माउलदे पुत्र देवा भार्या कउतिगदे युतेन श्रीविमलनाथ बिंब का० प्र० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभि । धातु लेखांक ८२५

९१—संवत् १५०१ वर्षे माघ वदि ६ बुधे उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे साह फालू पुत्र वील्हा भार्या देवादे आत्मश्रेयसे श्री श्रेयांस बिंबं कारित श्री उपकेशगच्छे ककुदाचा˚ सन्ताने प्रतिष्टितं श्रीकुम्कुमसूरिभि । बाबू लेखांक ७३०

९२—संवत् १५०१ वर्षे आषाढ़ सुदि २ उपकेशगच्छे आदित्यनाग गोत्रे साह देवसीह भार्या मेवू पुत्र सोनपालेन श्री शीतलनाथ बिम्बं का० प्र० श्री कक्कसूरिभि ॥ पञ्चतीर्थी ॥ बाबू लेखांक ७३१

९३—संवत् १२ २ वर्षे वैशाख वदि ४ शुक्रे उपकेशगच्छे श्रेयस धर्मसिंह भार्या धर्मादे पुत्र धनराज भार्या धांधलदेपुत्रेण स्वमातृ पित्रादिश्रेयोऽर्थं श्री शीतलनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने भ० श्रीकक्कसूरिभिः। धातु लेखांक ८३१

९४—संवत् १२०२ वर्षे माघ सुदि १ शुक्रे श्रीउपकेशज्ञातीय श्रेयसे चांपा भार्या चांपलदे पुत्र वीरपाल भाम श्रे० स्वामीमन मा० रही भ्रमरसु पुत्रकेन पितु निमित्तं श्रीचंद्रप्रभ बिंबं का० उपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने भ श्री ककसूरिभिः। धातु लेखांक ९८२

९५—संवत् १२ १ वर्षे माघ सुदि १ शुक्रे उ० श्रे चांदा भार्या चांपलदे पुत्र लाखा भार्या लखमादे पुत्र गोविन्द निवृत्त गोपा भार्या गंगादे पितृ धर्मसी भार्या धर्मादे प्रभृति मातृ पितृ श्रेयोऽर्थं श्री कुंथुनाथ बिंबं का उ० सिद्धाचार्य सन्ताने भ भ श्री कक्कसूरि पट्टे श्री देवगुप्तसूरिभिः॥ धातु लेखांक १०११

९६—संवत् १२ १ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ११ शु० श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने चिंचट गोत्रे साह श्रीमल पुत्र रामा भार्या श्रीमादी पुत्र मिथ्याकेन पत्नी पुत्र स्वश्रेयोऽर्थं श्री श्रेयांस बिंबं का ‥ ‥ ‥।

धातु लेखांक ११२४

९७—संवत् १२ ४ वर्षे अम्बिका देवी प्र० श्री कक्कसूरिभि धातु लेखांक

९८—संवत् १२०४ वर्षे फागुन शुक्ला ११ शनौ मा० श्रे० गोवल भार्या करमादे तयो पुत्र पांचा भार्या मानी पुत्री मातृ पितृ श्री पद्मप्रभु बिंबं कारापितं प्रति० उपके० सिद्धा० भट्टारिक श्री कक्कसूरिभिः

धातु लेखांक १०१४

९९—संवत् १२०४ वर्षे माघ शुक्ला ६ शुक्रे श्रीउपकेश ज्ञातौ कुर्कट गोत्रे साह गेला भार्या देमाई पुत्र साह धापाकेन भार्या धमलदे युतेन पित्रो पितृव्य श्रे श्री सुमतिनाथ बिंबं का० प्र श्री उपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य सन्ताने श्री कक्कसूरिभिः बि० ध म २०१

१००—संवत् १२ ४ वर्षे ज्येष्ठ वदि ११ सोमे मा ज्ञातीय सहंगोत्रा भार्या देमाई पुत्र भाखरकेन स्वश्रेयोऽर्थं श्री पार्श्वनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठितं उपकेशगच्छे श्री सिद्धाचार्य सन्तान देवगुप्तसूरिभि

धातु लेखांक ६ ४

१०१—संवत् १२०२ वर्षे माघ वदि ७ गुरौ उपकेश ज्ञातौ साह जगमल भार्या जसमादे पुत्र सोनाकेन मित्र पितृ मातृ श्रेयसे श्री शांतिनाथ बिंबं का० उपकेशगच्छे श्री सिद्धाचार्य सन्ताने भ० श्री कक्कसूरिभिः

१०२—संवत् १२०२ आषाढ सुदि ६ श्री उपकेश सुचिंतित गोत्रे साह सीहा भार्या भावलदी पुत्र साह सोनाकेन पुत्र पौत्र युतेन आत्म पु ‥‥‥श्री चंद्रप्रभ बिंबं का प्र श्रीउपकेशगच्छे श्रीकक्कसूरिभिः। सं०

धातु लखांक ११८५

१०३—संवत् १२०२ वर्षे वैशाख सुदी ६ श्रीउपकेशज्ञातीय चालिलनाग गोत्रे साह ठाकुर पुत्र साह धवलसीह भार्या धवलश्री पुत्र साह साधू भार्या मोहण श्री पुत्र श्रीचंद सोमराज मिलत् पत्नी पित्री श्रेयसे श्री अजितनाथ चतुर्विंशति पट्टः कारापित। श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य संतान प्रतिष्ठित। भट्टारक श्री सिद्ध सूरिः तत्पट्टालंकार हार श्री कक्कसूरिभि। धातु लेखांक १३००

१०४—संवत् १२०६ फागुन वदि ६ श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य‥‥‥गोत्रे साह समधर पु० श्रीराज भार्या परमाई पुत्र गुर‥ ‥मन सवदारंगाभ्यां पितु श्रे० श्री सम्भवनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिभिः। लेखांक १४८०

१०५—संवत १५०६ वर्षे चैत्र गुरु उ०ज्ञा० श्रे० गोना भार्या चमकू पुत्र हेमा पौमा भार्या देमति नामनी स्वभाए श्रेयोऽर्थ श्री विमलनाथ बिंबं का० प्र० उपफेशगच्छे सि० भ० ककसूरिभिः। धातु लेखाँक १३०५

१०६—संवत् १५०७ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १० उप० चिपड़ गोत्रे साह रावा भार्या जेठी पुत्र देढाकेन मातृ पितृ पुण्या० आत्म श्रे० श्री शान्तिनाथ बिंबं का० उपफेशगच्छे प्रति० श्रीककसूरिभि'। धातु लेखाक १०८३

१०७—संवत १५०७ वर्षे कार्तिक सुदि ११ शुक्रे प्राग्वाट कोठारी लाम्बा भार्या लाखणदे पुत्र को० परवत ... .. मोला डाहा नाना डुगर युतेन श्रीसभवनाथ बिंब कारितं उएसगच्छे श्री सिद्धाचार्य सताने प्रति० श्री ककसूरिभि। धातु लेखाँक १२५०

१०८—सं० १५०७ वर्षे (जेष्ठ) शुक्ला १० उप० चिपड़ गोत्रे सा० रावा भार्या जेठी सु० रड़ाकेन मातृ पितृ पुण्या० आत्म श्रे० श्रीशान्तिनाथ बिंब का० उपकेश कु० प्रति० श्रीककसूरिभि'।
वि० लेखाक नं० २३३

१०९—संवत् १५०७ वर्षे चैत्र वदि ५ शनौ उपकेश ज्ञातौ कोरंटा गोत्रे साह वीसल भार्या नीतृ पुत्र सालिग सवसलजेसा भार्या महितेन आत्मश्रेयसे श्रीसुमतिनाथ बिंब का० उएसगच्छे प्रतिष्ठितं श्रीककसूरिभि'। धावू लेखाक २३२५

११०—संवत १५०७ वर्षे जेठ वदि ४ बुधे दा० सा० भू० अभिनन्दन बिंबं काउ० सिद्धाचार्य संताने प्रति० श्रीककसूरिभि'। धातु लेखाँक ७००

१११—संवत् १५०८ वर्षे माह सुदि ५ गुरौ उप० ज्ञातीय .. करणाभ्यां श्रेयसे श्री उपकेशगच्छे कक्कुदाचार्य सताने श्री समभवनाथ बिम्ब कारित प्रतिष्ठित ... .. सूरिभि.। धावू लेखांक २३२७

११२—संवत् १५०८ वैशाख शुक्ला ५ श्रीउपकेशज्ञातीय भूरभा गोत्रे साह कउरसिंह पुत्र सताने रउला भार्या महणश्री पुत्र संताने भीमा भार्या भीमश्री पुत्र दासा कान्हा वरदेव सहिते श्री पार्श्वनाथ बिंब का० श्री उपकेशगच्छे कक० ककसूरिरिभिः। धातु लेखाक १३३२

११३—संवत् १५०८ वर्षे वैशाख वदि ६ शनौ प्रा० मं० धना भार्या ललितादे सु० बहूआ ठाकुर सीवा प्र० भार्या कर्मादे द्वि० शाणी सुत काज जिणा भार्या पनी युतेन मातृ पितृ भ्रात्रादि श्रेयोऽर्थ श्री सुमतिनाथ बिंब का० उकेशगच्छे सिद्धाचार्य सन्ताने प्रति० श्री ककसूरिभि। धातु लेखाँक ९६

११४—सवत् १५०८ वर्षे वैशाख सुदि ५ दिने सोमे ओसवाल ज्ञातीय सुचिंती गोत्रे साह धन्ना भार्या अमरी पुत्र तोलूकेन स्वपूर्वज रीजा पुण्यार्थं श्रीवासुपूज्य बिंब का० प्र० श्रीककसूरिभि।
धावू-लेखांक १३३७

११५—संवत १५०९ वर्षे माघ सुदि ५ सोमे उपकेश ज्ञातौ श्रेष्ठिगोत्रे साह कूरसी पुत्र पासड़ भार्या जइतलदे पुत्र पारस भार्या पाल्हणदे पुत्र पदा परवत युतेन पितृ श्रेयसे श्रीसंभवनाथ बिंबं कारित उ० श्री कक्कुदाचार्य संताने प्रतिष्ठितं श्रीककसूरिभि'। धावू-लेखांक १२५६

११६—संवत् १५०९ वैशाख वदि ११ शुक्रे श्रीउपकेशवंशे चीचट गोत्रे देसलहर कुले साह सोला पुत्र साह श्रीसिंघदत्त नाम्ना श्रेयोऽर्थ श्रीकुंथुनाथ मुख्य देवयुत चतुर्विंशति जिन पट्ट कारित प्र० श्रीउकेशगच्छे श्रीककसूरिभि। धातु लेखाँक ९७१

११७—सवत् १५०९ वर्षे चैत्र वदि ११ शुक्रे उपकेश ज्ञातीय पीहरेचा गोत्रे साह गोवल पुत्र पदमा भार्या पमलदे तया श्रीमुनिसुव्रत बिंबं का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे श्रीककसूरिभि। वि० ध० नम्बर २५१

११८—संवत् १२०६ वर्षे वैसाख वदि ३ दिने उसवाल ज्ञातीय श्रे० ठाकुरसी भार्या राजपुत्र से देवसी भार्या मानरि पुत्र साह वपू भार्या सरू भारा वीरा सहितेन मातृ पितृ श्रेयसे श्रीसुविधिनाथ बिंबं चतुर्विंशति पट्ट कारित उपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य संताने श्रीककसूरिभिः प्रतिष्ठितं श्रीः ॥ वि० सं० नम्बर १२५

११९—संवत् १२१ वर्षे चैत्र वदि १० शनौ प्रा० ज्ञा० श्रे० सारंग भार्या सोल पुत्र आका वछा ३ सामकादिसुतन स्वश्रेयसे श्रीसुमतिनाथ बिंब का० श्रीऊकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने प्र० श्री कक्कसूरिभिः।

बाबू लेखांक ८८

१२०—संवत् १२११ माघ वदि ४ श्री उपकेशगच्छे आदित्यनाग गोत्रे साह मरसिंग भार्या सोनाको पुत्र चाहडेन पितृ श्रेयसे श्रीपद्मप्रभ बिंबं का० प्र० श्री कु० श्रीककसूरिभिः। बाबू लेखांक ४३८

१२१—सं० १५११ वर्षे माह सुदि ८ बुधे श्री श्रीमाल ज्ञा० सीपा भार्या इर्पू पुत्र पर्मसी ......भार्या गउरी कुमरी सुतेन पितृ मातृ इर्वेश श्रेयोऽर्थं श्रीआदिनाथ बिंबं का० उपकेशगच्छे सिद्धाचार्य संताने श्रीकक्क सूरिभिः ॥ ना० प्रथम भाग १२११

१२२—सं० १५१२ वर्षे माघ सुदि ५ सोमे ......श्रीसुमतिनाथ बिंबं का० प्र० मालवगच्छे श्री वीर सूरिभिः ऊकेशगच्छे श्रीककसूरिभिः। बाबू लेखांक ४०१

१२३—सं० १५१२ वर्षे फागुण सुदि ८ शुक्रे श्री उपकेश ज्ञाती श्रेष्टि गोत्रे वैद्य शा० सा० भमा भार्या सलखू पुत्र रामा भार्या रूपमदे पुत्र माणकेन भार्या मावलदे सुतेन आत्मश्रेयसे मातृ पित्रर्थं श्रीविमलनाथ बिंबं कारितं उपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य.........सूरिभिः। प्रतिष्ठितं। बाबू लेखांक १११४

१२४—सं० १५१२ वर्षे वैशाख सुदि ५ ओसवाल ज्ञाते साह महला भार्या महघादे सुत साह सीपाकेन भार्या सूहेसरि प्रमुख कुटुम्बयुतेन श्रीआदिनाथ बिंबं का० श्रीककसूरिभिः। बाबू लेखांक ४३४

१२५—सं० १५१२ वर्षे फागुण सुदि १२ भाडलया (भाद्रचया ?) गोत्रे साह भमा भार्या रूपी पुत्र मोकल भार्या माहणदे पुत्र हासादियुतेन स्वमातृ श्रेयसे श्रीसंभवनाथ बिंबं का० ऊकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने प्र० प्र० श्रीककसूरिभिः। १११

१२६—सं० १५१२ माघ सुदि ७ बुधे श्री ओसवाल ज्ञाती आदित्यनाग गोत्रे साह सिंघा पुत्र नरोत्ता भार्या देवाही पुत्र वरारवेन मातृ पितृ श्रेयसे श्रीअनन्तनाथ बिंबं कारितं श्रीउपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य संताने प्रतिष्ठितं श्रीककसूरिभिः। ११५१

१२७—संवत् १५१२ माघ वदि ७ बुधे उपकेश ज्ञाती आदित्यनाग गोत्रे साह ठेका पुत्र सुहडा भार्या सोना पुत्र सादा वच्छा हेंसा पासा देवादिभिः पित्रो श्रेयसे श्रीसुमतिनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं उपकेश गच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीककसूरिभिः। लेखांक १२११

१२८—संवत् १५१२ वर्षे फाल्गुन सुदि १२ श्रीउपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य सन्ताने श्रीउपकेशज्ञाती श्रीआदित्यनाग गोत्रे साह आसा भार्या मीनू पुत्र लालू भार्या लालणदे पितृ मातृ श्रेयोऽर्थं श्रीआदिनाथ बिंबं प्रति० ककसूरिभिः। लेखांक १२११

१२९—संवत् १५१२ माघ सुदि १ बुधे श्रीओसवाल ज्ञाती सुराणा शाखा ग्रामी गो० सा० सारंग भार्या नयणी पुत्र श्रीमालेन भार्या वीमी पुत्र श्रीवंतसुतेन मातृ श्रेयसे श्रीआदिनाथ बिंबं कारितं उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सं० प्र० श्रीककसूरिभिः। १२०१

१३ —सं० १५१२ वर्षे वैशाख वदि ११ शुक्रे श्रीमाली ज्ञातीय मं० धर्मसिंह भार्या धनु पुत्र सोमे

आमई'' ''''इराकेन भार्या लखी सहितेन निज श्रेयसे श्रीअजितनाथ बिंब का० उकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य सताने श्रीककसूरिभि. प्रतिष्टित । धावू० लेखाक १५०४

१३१—सं० १५१३ वर्षे चैत्र सुदि ६ गुरौ उप० आदित्यनाग गोत्रे साह वछराज भार्या सनवत पुत्र लखमा भार्या लाखणदे पुत्र समार सहितेन मातृ पितृ पुण्यार्थं श्रीमुनि सुव्रत बिंब का० प्र० उकेशगच्छे कुकु० श्रीककसूरिभि । धातु लेखाँक ८७६

१३२—सं० १५१४ वर्षे माघ सुदि १ कडी ग्राम वास्तव्य ओसवाल ज्ञातीय श्रे० धामा० भार्या मलखू सुत परवतेन भार्या चंपाई सुत लखानाकर तथा भ्रातृ नरपद सालिग काहना नारद प्रमुख कुटुम्ब युतेन श्री श्रेयास बिंब श्रे० साम श्रेयोऽर्थं कारितं प्रतिष्ठित श्रीककसूरिभि । वि० ध० न० २६५

१३३—सं० १५१४ वर्षे फागुण सुदि १० सोमे उपकेश ज्ञातौ श्रेष्टि गोत्रं महाजनी शा० म० पद्मसी पुत्र म० गोपा भार्या महिगलदे पुत्र जीवा धन्नाभ्यां पितु श्रे० श्रेयास बिंब का० प्र० उपकेशग० श्रीककुदाचार्य स० श्रीककसूरिभि पारस्कर वास्तव्य । धावू लेखाक २३३५

१३४—स० १५१४ वर्षे फागुण सुदि १० सोमे उपकेश ज्ञा० श्रेष्ठिगोत्रे महाजनी शाखायां म० वानर भार्या विमलादे पुत्र नाल्ह भार्या नाल्हणदे पुत्र पुजासहितेन श्रीशातिनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशग० ककुदाचार्य सं० श्रीककसूरिभि ।. पारस्कर वास्तव्य ॥ श्री ॥ भ्रातृव्य सग्रामे । धावू लेखांक २५७७

१३५—सं० १५१४ वर्षे फागुण सुदि १० सोमे उपकेश ज्ञा० मा० कर्म्मसी भार्या रूपिणी पुत्र अमरा पुत्री साधूतया स्वश्रेयसे श्रीकुथुनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित उपकेशगच्छे कुक्दाचार्य स० श्रीककसूरिभि सुरपत्तन ॥ वि० ध० २६५

१३७—सं० १५१४ वर्षे मार्गशीर्ष सुदि १० शुक्रे उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे सं० गुणधर पुत्र साह डालण भार्या कपूरी पुत्र साह खेमपाल भार्या जिणदेवाई पुत्र साह सोहिलेन भ्रातृ पासदत्त देवदत्त भार्या नानू युतेन पित्रौ पुण्यार्थं श्रीचद्रप्रभ चतुर्विंशति पट्ट कारित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्री ककसूरिभि श्रीभट्ट नगरे ।

१३८—स० १५१५ वर्षे फागुन सुदि ६ रवौ ऊ० आईचणा गोत्रे साह समदा सवाही पुत्र दसूरकेन आ.त्मश्रेयसे शीतलनाथ बिंब का० प्रति श्री ककसूरिभि । धावू लेखाक ५५८

१३९—१५१५ वर्षे मार्गशीर्ष सुदि १० गुरौ उपकेश ज्ञा० वृद्धसतनीय श्रे० तेजा भार्या तेजलदे पुत्र चोंपा भार्या चांपलदे तया निज श्रेयसे श्री चद्रप्रभ स्वामि बिंबं का० उपकेशगच्छे सिद्धाचार्य सताने स० श्री सिद्धसूरिभि प्र० पूलग्रामे श्रीशुभ भवतु । धातु प्रथम भाग ८६०

१४०—सवत् १५१७ वर्षे माघ वदि ५ दिने श्रीउकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीउपकेशज्ञातौ बिंवट गोत्रे स० दादू पुत्र स० श्रीवत्स पुत्र सुललित भार्या ललतादे पुत्र साहणकेन भार्या ससारदेयुतेन पितरौ श्रेयसे श्री अजितनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठित श्रीककसूरिभि । वाबू लेखक १८८३

१४१—सं० १५१७ वर्षे कार्तिक वदि ६ उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे साह धर्मा पुत्र समदा सघ पीमाक भ्रातृ सायर श्रेयसे श्रीकुंथुनाथ बिंब का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे कुंदकुंदाचार्य संताने श्रीककसूरिभि । पचतीर्थी । वि० ध० नबर ३०८

१४२—सं० १५१७ वर्षे माघ वदि ८ सोमे उपकेश ज्ञातीय लघु श्रेष्ठि गोत्रे महाजन शाखायां म० मला पुत्र म० कर्मण पुत्र म० माल्हा भार्या सलखणदे पुत्र म० सहजाकेन स्वमातृ पित्रो पुण्यार्थं श्रीचद्रप्रभ बिंबं प्रतिष्ठित उपकेशगच्छे कुकदाचार्य सताने श्रीककसूरिभि । ले० न०

१४३—सं १५१० वर्षे वैशाख सुदि ५ सोमे श्री श्रीमाल ज्ञातीय लघुसंतानीय दोसी महाराज भार्या रूपिणि तया स्वमर्त्रुश्रेयसे श्रीशांतिनाथ बिंबं कारापितं द्विवन्दणीकगच्छे भ० श्रीसिद्धसूरिभिः प्रतिष्ठितं दानं खेड़ी ग्राम पंचतीर्थी ।

१४४—सं १२८८ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ९ शनौ उपकेश ज्ञातौ कुर्कट गोत्रे साह जना पुत्र साह जाला पुत्र साह गणपति पुत्र साह हरिराजेन भार्या हमीरदे पुत्र समरसी अमरसी रतसी विजयसी पुत्र साह धर्मसी श्रे० श्रीअजितनाथ बिंबं कारितं प्र० श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥ श्रीः ॥

बा० सं० ७४२

१४५—सं० १२११ वर्षे ज्येष्ठ शुक्ला १२ सोमे ओसवाल ज्ञातीय शाह धनपाल भार्या धनाश्रेष्ठया पुत्र देवा सुत पु राज प्रमृति कुटुम्ब समन्वितया सपुत्रे श्रेयसे शीतलनाथ बिंबं का० प्र उपकेशगच्छे सिद्धाचार्य संताने देवगुप्तसूरिभिः ॥

धातु प्रथम भाग ९८०

१४६—सं १२१६ माघ वदि ८ बुधे ओसवाल ज्ञातीय सा० श्रीमसी भार्या कुमारी पुत्र जेसिंगनामा भ्रातृ गोविन्देन भार्या हमीरादेवीपुत्रेण स्वश्रेयसे श्री कुंथुनाथ बिंबं का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्रीदेवगुप्त सूरिभि ।

धातु प्रथम भाग १०५४

१४७—सं १५११ वर्षे ज्येष्ठ वदि ११ शुक्रे उपकेश ज्ञातीय श्रीश्रेष्ठि गोत्रे उपकेशगच्छे साह सोमा भार्या धमाई पुत्र साधू भार्या सुहागदे सुत ईसा सहितेन स्वश्रेयसे श्रीसुमतिनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिभिः सीरोदा वास्तव्य ।

धातु लेखांक ६

१४८—संवत १५२ वर्षे वैशाख सुदि २ सोमे उपकेश ज्ञा० मह० काल्ह भार्या भाणू पुत्र ३ जावड़ पत्ता करमसी स्वमातृ निमित्तं श्रीचंद्रप्रभ स्वामि बिंबं कारापितं उपकेशगच्छे श्रीकक्कसूरिभि सत्यपुर-वास्तव्य

बि० प० सं १४८

१४९—संवत् १५१० वर्षे मार्गशीर्ष वदि १२ उपकेश ज्ञातौ श्रेष्ठि गोत्रे शाह सांगण पुत्र स० सोमाकेन भार्या कामलदे पुत्र समस्त स   भूर पुत्र संसारचन्द्र निमित्तं श्रीचन्द्रप्रभ स्वामि बिंबं का प्र उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभि ।

धातु लेखक १२०१

१५०—सं १५९० वर्षे वैशाख वदि ५ दिने श्रीमालीय ज्ञातौ लघु शाखायां सं० जसा भार्या बाई पु० सं० साईयाकेन भा पूरी पुत्र सं खेता प्रमुख सहितेन श्रीशांतिनाथ बिंबं का श्रीउपकेशगच्छे ककसूरि संताने प्र श्रीकक्कसूरिभि

धातु सं० ७४४

१५१—सं १५१० वर्षे मार्ग सुदि ६ शनौ श्रीवाग्भटमेरौ सं० करमा भार्या गुरदे पुत्र सिंघराज सुश्रावकेण भार्या रत्नू पुत्र श्रीवराज भ्रा हंसराज भ्रातृव्य श्रोवराज सं वसराज सहितेन मातु श्रेयसे श्रीपार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री श्री ओसवालगच्छे श्रीकक्कसूरिभिः । श्रीरस्तु ।   बा सं ७६१

१५२—सं १५२ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमे उपकेश ज्ञा मह ( ) काल्ह भार्या भरम् पुत्र ३ जावड़ पत्ता करमसी स्वमातृ नि (?) श्रीचंद्रप्रभ स्वामि बिंबं कारापितं उपकेशगच्छे श्रीकक्कसूरिभि सत्यपुर वास्तव्यः

धातु लै ११९८

१५३—सं १५१ वर्षे ज्येष्ठ वदि १ सोमे पताका गोत्रे ठ साह देवराज भार्या देवलदे पुत्र देवा भार्या रत्न पुत्र बाबापुत्रेण मातृ पितृ श्रेयोऽर्थं श्री श्रीपार्श्वनाथ बिंबं का प्र० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः

धातु प्रथम भाग ११११

१५४—स० १५२१ वर्षे वैशाख सुदि १० श्रीउपकेश ज्ञातीय बापणा गोत्रे साह देल्हा पुत्र देल्हा भार्या धाई पुत्र साह लूला भीमा कान्हा स० भीमाकेन भार्या बीराणि पुत्र श्रवणा माहू भाभू सहितेन श्रीशातिनाथ मूल नायक प्रभृति चतुर्विंशति जिनपट्ट का० श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य सताने प्र० श्रीसिद्धसूरि पट्टे श्रीकक-सूरिभि ॥ शुभम् ॥ बाबू लेखाँक १३८६

१५५—स० १५२१ वर्षे वैशाख वदि २ रवौ श्री श्रीमाल ज्ञातीय श्रे० करमसी भार्या लामी पुत्र मैघु भ्रातृ गोपा जयता मेघा भार्या भानु पुत्र मातर सालिग डूंगर भूगर पित्राही भ्रातृ भीमु मालिग भार्या लखी पुत्र सूरा कामा युतेन पिट् पिट् वा ... स्वश्रेयमे श्रीकुंथुनाथ बिंबं कारित · गच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने प्रतिष्ठित भ० श्रीदेवगुप्तसूरिभि । धातु प्रथम भाग ७७०

१५६—स० १५२१ वर्षे वैशाख सुदि ३ गुरौ ओसवाल ज्ञातीय-वृहत् सतानीय श्रे० वीरा भार्या वल्हादे सुत पेता गुणीआ पेता भार्या अधकू गुणीआ भार्या गगादे पेताकेन पितृव्य हीरा निमित्त श्रीविमलनाथ बिंब का० प्र० श्री बिंवदणीकगच्छे श्रीदेवगुप्तसूरिणा पट्टे श्रीसिद्धसूरिभि । धातु प्रथम भाग १११

१५७—स० १५२१ वर्षे वैशाख शुक्ला ३ गुरौ ओसवाल ज्ञातीय वृहत् सतानीय श्रे० वीरा भार्या वल्हादे पुत्र पेता गुणिआ पेता भार्या अधकू स्वकुटुम्य युतेन स्वपितृ मातृश्रेयोऽर्थं श्रीशीतलनाथ बिंब का० प्र० बिवदणिकगच्छे श्रीदेवगुप्त सूरीणा पट्टे श्रीसिद्धसूरिभि । धातु प्रथम भाग १०२

१५८—स० १५२१ वर्षे माह वदि ५ गुरौ उप० आववाण गौत्रे लघु पारेख नाथा भार्या माहू पुत्र कडुआ भार्या राणी पुत्र सहदे आत्मश्रे० श्रीनेमिनाथ बिंब का० बिवंदनीकगच्छे प्र० श्रीसिद्धसूरिभि' ऊनाउ०

१५९—सं० १५२२ वर्षे फागण सुद ३ रवौ · ... श्रीशीतलनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीककसूरिभि ।

१६०—संवत १५२४ ज्येष्ठ वदि ४ श्रीउपकेश ज्ञातौ साह श्रीशक्तिसिंघ भार्या सहजलदे · साह सोमा भार्या आपु नाम्न्या आत्म श्रेयसे श्रीअजितनाथ बिंबं कारित प्रतिष्ठित श्रीउपकेशगच्छे श्रीककसूरिभि । श्रीअजितनाथ प्रणमति बाई आपू नाम्न्या । बाबू लेखांक ५०

१६१—संवत् १५२४ वर्षे मार्गशीर्ष सुदि ११ शुक्रे उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे साह सीधर पुत्र ससारचन्द्र भार्या सादाडी पुत्र श्रीवन्त शिवरताभ्यां मातृ पुण्यार्थं श्रीशीतलनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीउप-केशगच्छे श्रीककुदाचार्य सन्ताने श्रीककसूरिभि । नागपुरे ॥ श्री ॥ बाबू लेखाक १२७४

१६२—सवत १५२४ वर्षे मार्गशिर वदि ४ रवौ उपकेशज्ञातीय लिंगा गोत्रे साह पीघा भार्या ऊदी पुत्र साह चेडन भार्या सूहवादे पुत्र शेपा सरूजन अरजन अमरा सहितेन स्वपुत्रे श्रीकुन्थुनाथ बिंब का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्रीसिद्धसूरिपट्टे श्रीककसूरिभि । बाबू लेखाक १४४३

१६३—स० १५२५ वर्षे ज्येष्ठ वदि १ चिंचट गोत्रे साह श्रीरतन भार्या अमरादे पुत्र साह श्रीसूरपालेन भार्या रामति पुत्र सिंघराज सधारण श्रीवत सहितेन मातृ पित्रौ श्रेयसे श्रीसुमति बिंब का० प्र० श्रीकक-सूरिभि । धातु नम्बर २६७

१६४—स० १५२५ वर्षे फागुण वदि १२ डींगड गोत्रे साह फोल्हा भार्या कमल श्री पुत्र स० वाला भार्या पुत्री पुत्र रूपा खेमा हेमा पुत्र नरसिंह भार्या केलू पुत्र जडतायुतेन श्रीवास पूज्य बिंब कारित उपकेश-गच्छे प्र० श्रीककसूरिभि । धातु नम्बर ६१६

१६५—स० १५२५ वर्षे ज्येष्ठ वदि १ शुक्रे उपकेश पत्तन वास्तव्य साह देवा भार्या कपूरी पुत्र साह आसा भार्या नाऊ पुत्र हर्षा भार्या साहआ रत्नसी साह आसकेन रत्नमी नमि० श्री वासुपूज्य बिंब उप श० श्रीसिद्धाचार्य सन्ताने प्र० भ० श्रीसिद्धसूरिभि । बाबू लेखाक ५१

१६६—संवत् १५२६ वर्षे वैशाख वदि ५ दिने उपकेश ज्ञातौ प्राहस गोत्रे सा ... पुत्र राज पुत्र सुरजन सींहा ... मातृ पितृ पुण्यार्थं आत्म श्रेयसे श्रीवासु पूज्य बिंबं कारापितं प्र० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने प्र० श्रीकक्कसूरिभिः । बाबू लेखांक ११४

१६७—संवत् १५२७ वर्षे पौष वदि ५ शुक्रे प्राग्वट मे० हरराज भार्या भमरी पुत्र समधरथ भार्या भार्ं प्रमुख कुटुम्ब सहितेन स्वश्रेयसे श्रीकुन्थुनाथ बिंबं कारितं प्रति० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धाचार्य सन्ताने श्री देवगुप्तसूरि पट्टे श्रीसिद्धसूरिभिः । बाबु लेखांक

१६८—संवत् १५२८ वर्षे वैशाख वदि ६ चंद्रे उपकेश ज्ञातो आदित्यनाग गोत्रे साह देवा पुत्र माखे भार्या जयसिरि पुत्र सायर भार्या मेहिणि नाम्न्या पुत्र गुणा पूना सहज सहितया स्वपुण्यार्थं श्रीसंभवनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छ ककुदाचार्य सन्ताने श्रीदेवगुप्तसूरिभिः । बाबू लेखांक १२४

१६९—सम्वत् १५२८ वर्षे वैशाख वदि ६ चन्द्रे दिने । उपकेश ज्ञाती वृद्ध श्री गोत्रे पोका साखा पोला पुत्र साहिग भार्या नाथादे पोसद नाम्न्या भार्या जसवादे पुत्रादि युतेन पित्रोः पुण्यार्थं श्रीनमिनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छीय श्रीककुदाचार्य सं० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥ बाबू लेखांक १२०१

१७०—संवत् १५३ वर्षे माघ सुदि १३ सोमे प्राग्वट ज्ञातो श्रेष्ठ लीमा भार्या भरधू पुत्र पंचायण गिरूया भार्या सोखी पुत्र नाथादि कुटुम्ब सहितेन श्री श्रेयांसनाथ बिंबं कारितं । उपकेश गच्छे सिद्धाचार्य संताने प्रतिष्ठितं श्री सिद्धसूरिभिः । (पंचतीर्थी) बाबु नंबर २२१

१७१—संवत् १५३ वर्षे वैशाख सुदी ६ उपकेशज्ञातीय श्रेष्ठि गोत्रे साहस मूजा भार्या मूजी पुत्र राणा प्रथम भार्या सोमलदे निमित्तं तत्पुत्र देवा अपर भार्या कुंअरि पुत्र नगराज पौत्र झाझू युतेन श्री अभिनन्दन बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीदेवगुप्तसूरिभिः श्रीपत्तन । बाबु नंबर १३०

१७२—संवत् १५३१ वर्षे पौष वदि १० गुरौ ओसवाल ज्ञातीय कनूझा गोत्रे व० नरसिंह भार्या नल्हादे पुत्र देवा व० श्रीपाल भार्या सिरीयादे पुत्र श्रीवत्स युतेन व० श्रीराजेन आत्मश्रेयसे श्रीअरनाथ बिंबं कारितं प्र० उ० ककुदाचार्य श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥ बाबु नंबर १ १

२७३—संवत १५३३ वर्षे आषाढ सुदि २ रवौ प्राग्वाट ज्ञा० पा० हेमा भार्या मनी पुत्र रूपा भार्या मनी पुत्र परिवुनी स्वश्रेयसे श्री शान्तिनाथ बिंबं का० उकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य सन्तानीय श्रीदेवप्रभसूरिभिः ।

बाबु नंबर १२०५

१७४—संवत् १५३४ वर्षे माघ शुक्ला ६ उपकेशगच्छे ज्ञातीय गादहीया गोत्रे साह भोजा भार्या रामादे पुत्र भाखा भार्या वस्मादे पुत्र हर आसा मेरादि सहितेन श्रीवासुपूज्य बिंबं कारितं श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने प्र० देवगुप्तसूरिभिः ।

१७५—संवत् १५३४ वर्षे आषाढ सुदि १ गुरौ उकेश ज्ञातो श्रेष्ठि गोत्रे म० सिंघा भार्या कमलादे पुत्र सामलयुतेन स्वश्रेयसे श्रीपद्मप्रभ बिंबं कारितं श्री ककुदाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ।

बाबू लेखांक १०२१

१७६—संवत् १५३५ वर्षे आषाढ द्वितिया दिने उपकेशज्ञातीय आर्या गोत्रे वृद्धशाखा शाखायां साह मरीमा पुत्र पर्वत भार्या मचकदे पुत्र मूलाकेन आत्मश्रेयसे श्री पद्मप्रभु बिंबं कारितं ककुदाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठितं श्री देवगुप्तसूरिभिः बाबू लेखांक १०११

१७७—संवत् १५३६ वर्षे आ० सुदि ६ सोमे श्री श्रीमाल ज्ञातीय श्रे० परबत भार्या भार्ं कुंअरि पुत्र श्रे

हासा भा० गारा कीका भार्या देई श्रे० सिद्धराज श्रेयोऽर्थं अंबिका गोत्र देवी कारापिता श्री कक्कसूरि पट्टे श्रीदेवप्रभ (? गुप्त) सूरिभि प्रतिष्ठिता । धातु नजर २३०

१७८—सवत् १५३७ वर्षे वैशाख सुद ३ उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य सताने उपकेश ज्ञातीय वाफणा गोत्रे साह "' वड भार्या जसमादे पुत्र सोहड़ादे पुत्र वस्ता आत्मश्रेयोऽर्थ श्री अजितनाथ बिंब का० प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखांक २१०४

१७९—सवत् १५३८ वर्षे फागण सुद ३ उपकेश ज्ञातौ । बाघमार गोत्रे । म० कुशला भार्या कमलादे नाम्न्या पुत्र रणधीर रणवीर सूढा नरबग सादा धरम धीरा सहितया स्वपुण्यार्थं श्री० सुविधिनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्रीदेवगुरु सूरिभि श्रीगूणीयाणा ग्रामे ।

१८०—सवत १५४२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ सोमे श्रीउपकेश ज्ञातौ । बागरड़ गोत्रे । स० ईसर पुत्र स० हांसा भार्या हासलदे पुत्र स० मडलीकेन भार्या तारू पुत्र स० हेमराज युतेन स्व श्रेयसे श्री शातिनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्रीदेवगुप्त सूरिभि श्री पत्तने । बाबू लेखांक २५३६

१८१— .... .. श्री सुविधिनाथ बिंब प्र० श्री देवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखांक २३८१

१८२—संवत १५३४ वर्षे आषाढ़ वदि ८ गुरौ उपकेश ज्ञातौ हुंडो यूरा गौत्रे स० गागा पुत्र पदमसी पुत्र पामा भार्या गोहणदेव्या पुत्र पाल्हा श्रीवत सहितया स्वपुण्यार्थं श्रीआदिनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठित उपकेशगच्छे श्रीदेवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखांक १३०३

१८३—सवत् १५४५ वर्षे पोष वदि तिथौ उपकेश ज्ञातौ ठाकड़ीआ गोत्रे सघवी धणसी पुत्र स० सोनपाल पुत्र स० खेता भार्या कुतिगदे सहितेन ... . बिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्तसूरिभि । श्रीउपकेशगच्छे धातु प्र० नजर १०१४

१८४—सवत १५४६ वर्षे माघ वदि ४ सुचिंतित गौत्रे साह सोनपाल सु० साह दासू भार्या लाड़ीबा (ना) म्न्या पुत्र सिवराज भार्या सिंगारदे पुत्र चूहड धन्ना आसकरणादि सहितया स्व पुण्यार्थं श्रीअजितनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सताने श्री देवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखांक ३०

१८५—स० १५४६ वर्षे आषाढ वदि २ ओसवाल ज्ञातौ श्रेष्टि गोत्रे वैद्य शाखाया साह सिंघा भार्या सिगारदे पुत्र वींका छाजू ताभ्यां पुत्र पौत्र युताभ्यां श्री चद्रप्रभ बिंबं साह सिंघा पुण्यार्थं कारापित प्र० श्री देवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखांक १२६३

१८६—स० १५४८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ६ बुधे भ० श्री हेमचन्द्राम्नाये स० नगराज पुत्र दामू भा० स० हंसराज हापु . .. . ।

१८७—सं० १५७६ वर्षे वैशाख सुदि १० शु० श्रीउपकेश ज्ञातीय पीहरेचा गौत्र साह भावड़ भार्या भरमादे आत्मश्रेयोऽर्थं श्री जीवित स्वामी श्री सुविधिनाथ बिंब कारापितं प्रतिष्ठित श्री उसवालगच्छे श्रीकक्कसूरि पट्टे श्री देवगुप्तसूरिभि । बाबू लेखांक ६७६

१८८—स० १५५२ श्रीसुमतिनाथ बिंब ऊकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने भ० श्रीकक्कसूरिभि । (पंचतीर्थी) धातु प्र०

१८९—स० १५५४ वैशाख सुदि ३ श्रीपार्श्वनाथ बिंब प्र० श्रीचन्द्रसूरिभि उकेशगच्छे ।

१९०—सवत् १५५६ वर्षे वैशाख सुदि ६ शनौ श्रीस्तभन तीर्थ वास्तव्य श्रीउसवश साह गणपति भार्या गंगादे सु० साह हराज भार्या घरमादे सु० साह रतसीकेन भार्या कपुरा प्रमु० कुटुम्बयुतेन राणापुर मडन श्री चतुर्मुख प्रासादे देवकुलिका का श्री उसवालगच्छे श्रीदेवनाथसूरिभि । बाबू लेखांक ७१०

१६१—सं १४८८ वर्षे शु ११ गुरौ उपकेश ज्ञातौ श्री रांका गौत्र साह पाल्हण सुत साम्म् इतेन महीप·········पुनन आत्म श्रेयसे श्री मुनिसुव्रत स्वामि बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीमदुपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्रीककसूरि पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरिभिः । बाबू लेखांक ११७

१६२—संवत् १४८८ वर्षे वैशाख सुदि ११ गुरौ श्री उसवाल ज्ञाती कठउतिया गोत्रे । सं० पदमसी भार्या पदमलदे पुत्र पासा भार्या मोहणदे । पुत्र पाल्हा श्रीवंत तन साह पाल्हाकेन स्व भार्या हेमाई पुण्यार्थं श्री श्रेयांस बिंब का० । प्र० । ककुदाचार्य सन्ताने उपकेशगच्छे भट्टारक श्री देवगुप्तसूरिभिः ।

बाबू लेखांक ११११

१६३—संवत् १४९१ वर्षे आसाढ़ सुदि २ उसवाल ज्ञाती कनोज गोत्रे साह लेडा पुत्र सहमसा भार्या सुहिडादे पुत्र ठाकुरसि ठकुर पुत्रेन आत्म श्रेयसे मातृपितृ पुण्यार्थं शीतलनाथ बिंबं का० । प्र० श्री देवगुप्तसूरिभिः । बाबू लेखांक ११०१

१६४—॥ ॐ ॥ संवत् १४९६ वर्षे आसाढ़ सुदि १० बुधे ओसवाल ज्ञाती गाणाहद—गोत्रे साह माह भार्या गमनादी पुत्र सुभसिंह । भार्या मोगरदे स्वकुटम्ब युतेन श्री कुन्थुनाथ बिंबं कारित प्रतिष्ठितं श्री ककुदाचार्य संताने उपकेशगच्छे भ० श्री देवगुप्तसूरिभिः । बाबू लेखांक ११८८

१६५—संवत् १४९६ वर्षे आषाढ़ सुदि १ आइचणाग गोत्रे देवाश्री रामाभार्या साह सुरजन भार्या सूरमदे पुत्र सहसमल्लेन भार्या शीतादि पुत्र पाता ठाकुर भार्या द्रोपदी पौत्र कमा पीमा श्रीवंत युतेनात्म पुण्यार्थं श्री सुमतिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री उपकेशगच्छे भ० देवगुप्तसूरिभिः ॥ श्री ॥ बाबू लेखांक ४११

१६६—संवत् १४९६ वर्षे वैशाख वदि ११ शुक्रे उपकेश ज्ञाती पीहरेचा गोत्रे साह गेल्हा पुत्र सा——भार्या पाल्ह पुत्र साह नर्बदेन भार्या सोमादे पुत्र आपड । भार्या चड———पितृ श्रे श्रीमुनिसुव्रत बिंब का प्र श्री उपकेश श्री ककसूरिभिः । श्रीककुदाचार्य संताने । बाबू-लेखांक ६०२

१६७—संवत् १४९ वर्षे पौष वदि ८ गुरुवासरे उपकेश ज्ञाती चिंचिम गोत्रे साह मोल्हा भार्या हंसू पुत्र ३ सिवा सारा सिवा मिधा भार्या रोहिणी पुत्र देवाकेन भार्या देवलदे सहितेन भाहा मेघा सहितेन च पूर्वज निमित्तं श्री अरनाथ बिंबं का प्र० श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्रीककसूरि पट्टे श्री देवगुप्त सूरिभि । जेसलमेर बाबू लेखांक २१०७

१६८—संवत् १४९२ वर्षे वैशाख सुदि १ रवौ श्री बाफणा गोत्रे स बेहू भार्या सिंगारी पुत्र ३ साह भादू साह हुदा साह आल्हा तन्मध्यात् साह आल्हा भार्या मेघाही नाम्न्या स्वश्रेयसे स्वपुण्यार्थं च श्रीमुनि-सुव्रतनाथ बिंबं का प्र श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्री देवगुप्तसूरिभिः । बाबू लेखांक १९८

१६९—संवत् १४९२ वर्षे वैशाख शुक्ला १० रवौ श्रीउपकेश ज्ञाती श्री चारित्रनाग गौत्रे चोरवेडिया शाखायां स चाचाय पुत्र रत्नपालेन स श्रीवंत च पुपुमल युतेन मातृ पितृ श्रे श्री संभवनाथ बिंबं का० प्र श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्री देवगुप्तसूरिभिः बाबू लेखांक ४६७

१७०—संवत् १४९२ वर्षे वैशाख सुदि ६ रवौ श्री कुकुट गोत्रे उपकेश ज्ञाती साह सुपिचा भार्या अपकाई सुतसा ३ समरसिंहेन भार्या रूपाई भातृ प्रमुख कुटुम्ब युतेन श्री सुविधिनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री ओसवालगच्छे श्री सूरिभि ।

१७१—संवत् १४९३ वर्षे माह सुदि ५ गुरौ श्रेष्ठि गोत्रे साह चाचा भार्या चाचलदे सु हारा भार्या पाल्ह सु हिरा विराट भांगा सहजपाल युतेन श्री पद्मप्रभु बिम्बं कारितं उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने भ श्री देवगुप्तसूरिभि प्रतिष्ठितं । बाबू लेखांक २०

२०२—संवत् १५६६ वर्षे फाल्गुन सुदी ३ सोमवासरे उपकेशवंशे राका गोत्रे शाह श्रीरंग भार्या देऊ पुत्र करमा भार्या रूपादे स्वश्रेयसे आतम-पुण्यार्थं नमिनाथ बिंब कारित प्र० उपकेशगच्छे भ० श्रीसिद्धसूरिभि ।

२०३—संवत् १५६७ वर्षे वैशाख सुदि १० बु० श्री उपकेश ज्ञातौ स० सादिल सुदी सं० हासा भार्या छाजी नाम्नया स्व पुण्यार्थं श्रीपार्श्वनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने भ० श्रीसिद्धसूरिभि. । बाबू-लेखांक १६५६

२०४—संवत् १५६८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ८ रवौ उपकेश ज्ञातौ चोपट गोत्रे देसल शाखाया साह सूरपाल भार्या रामति पुत्र साह सधारणेन भार्या पदमाई पुत्र सहमकिरण समरसी सहितेन भ्राई पारवती पुण्यार्थ श्रीअरनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्तसूरि पट्टे भ० श्रीसिद्धसूरिभि । धातु लेखांक ५३४

२०५—संवत् १५७१ वर्षे फागुण सुदि ३ शुक्रे उसवाल ज्ञातीय आदित्यनाग गोत्रे साह सहदे पुत्र साह नयणाकेन कलत्र पुत्रादि परिवार युतेन पुण्यार्थं श्रीमुनि सुव्रत स्वामि बिंब कारितं प्रतिष्ठित श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने भट्टारक श्री श्रीसिद्धसूरिभि ॥ अलावलपुरे ॥ श्रीरस्तु ॥ १५७४

२०६—सं० ७२ वर्षे चैत्र वदि ३ बुधे उसवाल ज्ञातीय चोरवेड़िया गोत्रे सन्ताने सोहिल तत्पुत्र सघव सिंघराज तस्य पुण्यार्थे संताने सिद्धपालेन श्री शान्तिनाथ बिंबं कारापित श्री उसवालगच्छे श्री सिद्धसूरि प्रतिष्ठित । पूजक श्रेयसे ॥ श्री ॥ १५७५

२०७—संवत् १५७४ वर्षे वैशाख सुदी दशमी शुक्र ओसवाल ज्ञातीय राका शाखाया मलह गोत्रे स० रत्नापुत्र स० राजा पुत्र स० नाथू भार्या वल्हा पुत्र सन्ताने चूहड़ भार्या हीमू पुत्र स० महाराज भार्या सभा पुत्र सोहिल लघुभ्रातृ महिपति भार्या माणिकदे सु० भरहपाल भार्या मलूही पुत्र धनपाल स० हेमराज भार्या उदयराजी पुत्र संघा गोराज भ्रातृ सेन्य रत्न भार्या श्रीपासी पुत्र सघराज समस्त कुटुम्ब सहितेन सुश्रावकेन हेमराजेन श्रीधर्मनाथ बिंब कारापित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने प्रतिष्ठित भ० श्रीसिद्धसूरिभि ॥ श्रीरस्तु ॥ १४५०

२०८—संवत् १५७६ वर्षे वैशाख शुदि ६ सोमे उपकेश ज्ञातौ बप्पणा गोत्रे लघुशाखीय फोफलिया शाखाया स० नामण भार्या कल्ली पुत्र ४ संताने अमरसी भाणा भोजा भावड़ सं० अमरसिंहने भार्या अमरादे युतेन स्वपुण्यार्थं श्रीवासुपूज्य बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने भ० श्रीसिद्धसूरिभि ॥ शुभम् भवतु पूजकस्य पत्तन वास्तव्य ॥ धातु प्र० १०८

२०९—संवत् १५७९ वैशाख सुदि ६ सोमे उपकेश ज्ञातौ बलाह गोत्रे राका शाखाया साह पासउ भार्या हापु पुत्र पेथाकेन भार्या जीका पुत्र १ देपा हुदादि परिवार युतेन स्वपुण्यार्थं श्रीपद्मप्रभ बिंबं कारितं प्रतिष्ठित श्रीउपकेशगच्छे ककुदचार्य संताने भ० श्री सिद्धसूरिभि दन्तराइ वास्तव्य । बाबू लेखांक ७४

२१०—संवत् १५८५ वर्षे आषाढ सुदि ५ सोमे श्रीउसवाल ज्ञातीय आइचणाग गोत्रे चोरवेड़िया शाखायां सं० नरता भार्या जइतलदे पुत्र स० चूहड़ा भार्या मूरी सुत ऊधरण चंद्रपाल आत्मश्रेयोऽर्थं श्री आदिनाथ बिंब कारित उपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठित श्री श्री श्रीसिद्धसूरिभि । बाबू लेखांक १५६

२११—संवत् १५८८ वर्षे ज्येष्ठ वदि सोमे श्री अलवर वास्तव्य उपकेश ज्ञातीय वृद्ध शाखायां आयचणाग गोत्रे चोरवेड़िया शाखाया स० साहणपाल भार्या सहलालदे पुत्र सं० रत्नदास भार्या सूरमदे श्रेयोऽर्थं श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्रीसुमतिनाथ कारापितं बिम्ब प्रतिष्ठित श्रीसिद्धसूरिभि । १४६४

२१२—संवत् १५९१ वर्षे वैशाख वदि २ सोमे श्रीमाल ज्ञातौ श्रेष्ठ बड़ूया भार्या वाली पुत्र रत्नाकेन भार्या लखमादे पुत्र सिंघा भार्या वरादि कुटुम्ब युतेन स्वश्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिंब का० प्र० चित्रवालगच्छे श्री वीरचन्द्रसूरिभि ॥ अहमदावादे ॥ धातु प्रथम भाग

२१३—संवत् १५१२ वर्षे आषाढ़ सुदि ९ दिने आदित्यनाग गोत्रे वेलावी शाखायां शाह मुरता पुत्र हासा पुत्र सत्तारय शा० नरपाल सत्तारय भार्या सूहवदे ४ श्री करण रंगा समरथ अमीपाला सत्तारय श्रेयसे कारितं । श्रीउपकेशगच्छे भट्टारक श्री सिद्धसूरिभिः श्री अभिनन्दन बिंबं प्रतिष्ठितं । तत्पुत्र पौत्रीय श्रेये भातु ।
लेखांक नं० ११९

२१४—संवत् १५२१ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमवारे श्री आदित्यनाग गोत्रे चोरवेडिया शाखायां साह पारा पुत्र ऊदा भार्या पदमादे पुत्र कामा राजमल देवदत्त ऊदा पुण्यार्थं शान्तिनाथ बिंबं कारापितं उपकेश० सिद्धसूरिभिः प्रति— — ।
नाहर नम्बर ११४०

२१५—१५१४ संवत् वर्षे माघ सुदि ९ उप० ज्ञातौ गादहीया गोत्रे साह कोहा भार्या रत्नादे पुत्र भाका भार्या वल्मीदे पुत्र हरा आत्म श्रेयसे सिवि सहि भव श्रीवासपूज्य बिंबं कारितं श्री कुकुदाचार्यं संताने प्र० देवगुप्तसूरिभिः ॥ श्री ॥
नाहर लेखांक ९८

२१६—॥ ॐ ॥ श्री संवत्सरे नृप विक्रमादित्य समयात् संवत् १५२५ भाद्रपद मासा शुक्लपक्षे ७ सातमी तिथौ शनिवारे श्री वैद्य गोत्रे । श्री सचिया चिदनोदता । मंत्रीश्वर त्रिभुवन तत्पुत्र पूना० तत्पुत्र मुहता चोहा तत्पुत्र मुहता खेतसी तत्पुत्र मुहता नीसल १ नाहमल २ नीसल पुत्र मुहता श्री करमन तत्पुत्र मुहता पना गढसिवाणे साको करे मूआ । पितापुत्र मुहता श्री नारायण १ सातूल २ सूजा ३ सिंघा ४ सहसा ५ मुहता श्री नारायणनुं राणा श्री अमरसिंघजी मया करेने गाँव नाको दीयो मुहतो नारायण भरतह १ साहमल देव श्रीमहावीरनु मन्दर भेट पूजा साह केसर दीवेल धाव दीयो दीपतूल वरोस । उत्थापे तिणेनुं गाई रो——— सं । तुरक उत्थापे तिणेनुं सुवर रो सूं सगसे — ——को उथापजो— ———— गर्भ माता रो । चढियो गांव दीवलावे——बो सि—प । इवापस—गांव—नम १ चेविसो — तको उथापजो । दीजो भी उथापसी तिणनु गनाह गांव मुहता श्रीनारायण भार्या अमरंगदे तत्पुत्र मु श्री राज— —मयमल———वा। पुत्री ज (प) जमी———मारायण तिथी भार्या भवलदे पुत्र जसवंत १ सहितं श्री— गच्छे भट्टारक श्री सिद्धसूरि विद्यमान — — —। श्री ——चंद शिष्य चोपा लिखित प————— ज श्री— लिखु ———।
नाहर लेखांक ८८

२१७—संवत् १८८१ मिती आषाढ़ सुदि १२ कारितं चोरवेडिया साह सोवन प्रतिमा । प्रतिष्ठितं च श्रीकर्पूर प्रिय सूरिभिः ।
नाहर लेखांक १०७४

२१८—संवत् १५५८ शाके १४२३ मि माघ सुदि ११ गुरौ श्री नेमनाथ मूर्ति प्रतिष्ठितं शुभं भवतु ।

२१९—॥ ॐ ॥ संवत् १५४० वर्षे वैशाख सुदी ५ भृगुवारे चगरीपुरे चोरडा

२२०—संवत् १६११ ज्येष्ठ सुदि १२ श्रीमदुपकेशगच्छे श्रीमहाराज के सहित तयो० श्रेयोऽर्थं श्री पार्श्वनाथ बिंबं का प्र० श्री सिद्धसूरिभिः ।
नाहर नं० १४ ?

२२१—संवत् १२८३ वर्षे कक्कसूरि— —गच्छे श्रेष्ठि धरापर सुत सहदेव पार्श्वनाथ बिंबं का० ।
नाहर नं० १४२

२२२—संवत् १३२१ माघ सुदि ६ ———श्रीपार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ।
नाहर नम्बर २१०

२२३—संवत् १४०७ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १२ श्रीउपकेशगच्छे ककाचार्य संताने सहजपाल भार्या कमलादे पुत्र गोगल भार्या नागलदे सहितेन पितृ मातृ श्रेयोऽर्थं श्रीपार्श्व बिंबं का प्र ककसूरिभिः (पंचतीर्थी)
नाहर नम्बर १२९

२२४—सवत् १४४३ वर्षे वैशाख सुदि ७ उकेस० साह खीमा भार्या खीमई पुत्र रणमल पुत्र भीमाकेन तृ पितृ श्रेयोऽर्थं श्रीचन्द्रप्रभ बिंब का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धाचार्य सतान श्रीकक्कसूरिभि ।
धातु प्र० नम्बर

२२५—सवत १४८५ वर्षे आसाढ सुदि ३ रवौ उकेशज्ञा० चिचट गोत्रे साह श्रीसोनपाल पुत्र सदय-रा भार्या विमलादे पुत्र साह शुभकरण मातृ श्रेयसे श्रीआदिनाथ चतुर्विंशति पट्ट का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे क्कुदाचार्य सताने श्रीसिद्धसूरिभि । धातु प्र० नम्बर ११७५

२२६—स० १४६४ वर्षे माघ सुदि १० शनौ उपकेश ज्ञातौ चिचट गोत्रे वेमटान्वय साह सोढल ार्या पताहदे पुत्र सोमदत्त भैरव मपार चान्गे पित्रो श्रेयसे श्रीशीतलनाथ बिंब का० प्र० उपकेशगच्छे सेंहसूरिभि । धातु प्र० न० १०१२

२२७—सं० १५०४ वर्षे फागुन सुदि ५ बुधे उप० ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे साह डुगर भार्या लाहिणि त्र साह सालहा भार्या सरस्वती पुत्र सलखाभ्या आत्म श्रेयोर्थं श्रीकुंथुनाथ बिंब का० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य ० सं० प्र० श्रीकक्कसूरिभि । धातु प्रथम नम्बर १३३

२२८—सवत् १५०६ वर्षे आसाढ सुदि ५ बुधे उपकेश ज्ञातौ श्रे० ठाकुरसी भार्या देजा पुत्र हरदासेन पेतृ ठाकुरसी श्रेयोर्थं भ० श्रीदेवगुप्तसूरि उपदेशेन श्रीसुमतिनाथ बिंबं का० प्रति० सूरिभि ।
धातु प्र० नबर ११५२

२२९—सम्वत् १५११ वर्षे माघ सुदि ५ सोमे उसवाल ज्ञाति लिगा गोत्रे समदड़िया उडकोण० सुरड भार्या " पुत्र कर्म्मा केन भार्या कसीरादे पुत्र हेमा मसार चान्दा देवराजयुक्तेन स्वश्रेयसे श्री नेमिनाथ बिंबं कारित श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य सताने प्र० श्री कक्कसूरिभि' । धातु नम्बर १३

२३०—स० १५१२ वर्षे वैशाख सुदि ५ ओसवाल गोत्रे साह महणा भार्या महणदे सुत सीपाकेन भार्या पुजेसरि प्रमुख कुटुम्बयुतेन श्रीआदिनाथ बिंब का० प्र० श्रीकक्कसूरिभि । बाबू पू० न० ४०१

२३१—सं० १५१५ फागण सुदि ११ भोमौ श्री उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे चोरवड़िया शाखायां साह देवाल० भार्या देवाई पुत्र गुणधर भार्या मानादे पुत्र सज्जण भार्या साहणी पुत्र करण झांझण सेकरणादि सयुक्तेन मातृ पितृ श्रेयोसार्थं नेमिनाथ प्रतिमा का० प्र० श्रीउप० सिद्धसूरिभि । धातु नम्बर

२३२—संवत् १५२२ वर्षे वैशाख सुदि १५ उपकेश ज्ञातौ छाजेड़ गोत्रे साह माढा भार्या भिरती पुत्र माल्हाकेन श्री आदिनाथ बिंब का० प्र० भट्टारक श्री देवगुप्तसूरिभि । धातु नम्बर

मन्दिर मूर्तियों के मुद्रित शिला लेखों की इस समय ९ पुस्तकें मेरे पास हैं उन पुस्तकों के अन्दर से उपकेश-गच्छाचार्यों द्वारा करवाई प्रतिष्ठाऐं के शिलालेखों को मैंने एकत्र कर उनको सवत् क्रमवार करके मैंने मेरे ग्रन्थ में छपाना प्रारम्भ किया। जब मैंने प्रसगोपात अन्य शिलालेखों को देखे तो ज्ञात हुआ कि उन पुस्तकों के प्रकाशित करवाने वालों ने ठीक सावधानी नहीं रखी। अत बहुत त्रुटियाँ रह गई हैं कई कई शिलालेख तो सूची में देने से भी रह गये उनको मैंने पीछे से संग्रह किया इसलिये जो मैंने पहले सवतों को क्रमशः रखने की योजना की वह नहीं रह सकी। यही कारण है कि संवत् आगे पीछे आये हैं। दूसरा इस बात का भी ज्ञान हो गया कि केवल मेरी उतावल की प्रवृत्ति से तथा नजर कम पड़ने से मेरे ग्रन्थ में अशुद्धी रह जाती थी पर इन विद्वानों की पुस्तकों में भी त्रुटियाँ कम नहीं रहती हैं यह भी केवल मेरे की ही नहीं पर प्रकाशित करवाने वालों की भी त्रुटियाँ बहुत रह जाती हैं इसलिये ही तो कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य हमेशा भूल का पात्र हुआ करते हैं।

२३३—सं० १५११ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ३ उपकेश ज्ञातौ श्रेष्ठि धनपाल भार्या मेघी सुत सलखसी भार्या चांदू सुत सागर समर पम्मा मोकल भ्रातृ हेमाकेन भार्या वर्जू प्रमुख कुटम्बयुतेन स्वश्रेयसे श्रीअजितनाथ बिंब का० प्र० श्रीकक्कसूरिभिः (श्रामामापे)   बाबु नम्बर १६६०

२३४—संवत् १५१७ वर्षे पौष वदी १० बुधे उपकेश श्रेष्ठि पम्मा भार्या मेलू पुत्र रतना भार्या दुर्गी पुत्र मापाकेन भार्या⋯⋯पुत्र हरखा पद्मा श्रीकादि सहितेन स्वश्रेयसे भार्या धर्मेन निमित्त मूल नायक श्रेयसे प्रमुख चतुर्विंशति पट्ट कारितेन उकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः आचार्य श्री धनदेवसूरि प्रमुख परिवार सहितेन प्रतिष्ठितं   बाबु नम्बर १२

२३५—संवत् १५२१⋯⋯वै⋯⋯उकेशज्ञा० पो⋯⋯साह गोगा भार्या गोगादे पुत्र⋯⋯देवा हरपाल ⋯⋯आदि⋯ का प्र०⋯⋯देवगुप्त⋯⋯

२३६—संवत् १५४२ वर्षे माघ सुदि १३ उपकेशज्ञातौ सद्गोत्रे समदड़िया शाखायां साह कान्हा भार्या केली पुत्र लाखा चाचा रामा भरमा सहितेन स्व मातृ पितृ श्रेयसार्थे श्री विमलनाथ बिंबं का० प्र० श्री सिद्धाचार्य संतान प्र० देवगुप्तसूरिभिः ।   बाबु नम्बर

२३७—सं० १५⋯⋯वै⋯ ⋯ ⋯ मात्लगोत्रे⋯⋯⋯⋯रांका केन श्री⋯⋯ ⋯⋯ प्र०⋯⋯ सिद्धसूरिभिः ।

२३८—सं० १५४१ वर्षे वैशाख सुदि ७ उपकेश ज्ञातौ साह भीमा भार्या खेमाई पुत्र रत्नमल पुत्र भीमाकेन मातृ पितृ श्रेयसार्थं श्रीचन्द्रप्रभ बिंबं का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः । श्री

२३९—सं० १५०१ वर्षे माघ सुदि १४ सोमे उपकेशवंशे वेसट गोत्रीय साह सलखण पुत्र साह भाजड़ तनीप साह गोसल भार्या गुणमति कुक्षि सम्भवेन संघपति आशाधरानुजेन साह सुलक्षाधावत संघपति साधु श्रीदेशलेन पुत्र साह सहजपाल साह साहणपाल साह सांमत साह समर साह सांगण प्रमुख कुटम्ब समुदायोपेन निज कुलदेवी श्रीसच्चिका मूर्ति कारिता यावत् व्योम्नि चन्द्रार्को यावन्मेरुमहीधरो तावत् श्रीसच्चिकामूर्तिः ।

२४० —सं० १५०१ वर्षे माघ सुदि १४ सोम श्रीमदुपकेशवंशे वेसट गोत्रे साह सलखण पुत्र साह भाजड़ तनय साह गोसल भार्या गुणमती कुक्षि समुत्पन्न संघपति साह आशाधरानुजेन साह लूणसीहाग्रजेन संघपति साधु श्रीदेशलेन साह सहजपाल साह साहणपाल साह सामंत साह समरसिंह साह सांगण साह सोम प्रभृति कुटम्ब समुदायोपेन वृद्ध भ्रात संघपति आशाधर मूर्ति श्रेष्ठि मालण पुत्री संघपति रत्नी श्रीमूर्ति समन्विता कारिता आसधर श्रेयस्कर⋯⋯पुण्डरीक मगमति ।

२४१—सं० १५०१ वर्षे माघ सुदि १४ सोम⋯⋯रांघजी मल्लिनाथदेव मूर्ति संघपति श्रीदेशलेन कारिता श्रीपुण्डरीक चैत्ये   ×   ×

उपरोक्त तीनों शिलालेख प्राचीन जैन लेख संग्रह द्वितीय भाग ४४-४५ लेखांक ३४-३५-३६ मुद्रित हुए हैं।

श्रीमद् उपकेशगच्छ की द्विवन्दनीक शाखा के आचार्यों के करकमलों से करवाई हुई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के शिलालेख

१—सवत् १५७७ वर्षे वैसाख वदि ११ बुधे लांवडी वास्तव्य उकेश ज्ञातीय व्य० पीमसी भार्या वानू—पुत्र व्य० गणमा भार्या वावू पुत्र व्य० केल्हाकेन भार्या मामू वृद्ध भा० घूघा पुत्र मेघादि कुटुम्ब युतेन श्री मुनिसुव्रत स्वामी चतुर्विंशति पट्ट कारित प्रतिष्ठित ।। *वम्रगत चांइसगीया श्रीमर्तसूरि श्री उकेश विवदणीक* गच्छे प्रतिष्ठा कारिता । *(अवर अस्पष्ट है)   जैन लेख सग्रह प्रथम खड लेखांक १८

२—सवत् १५६६ वर्षे माह वदि ६ दिने प्राग्वट ६ ज्ञातीय पार विलाईआ भार्या हेमाई सुत देवदास भार्या देवलदे सहितेन श्री चन्द्रप्रभस्वामि बिंब कारित प्रतिष्ठित द्विवदनीकगच्छे भ० श्री सिद्धिसूरीणा पट्टे श्री श्री ककसूरिभि. कालू र ग्रामे ।।   जैन लेख संग्रह खड वेसाक ६६७

३—१५८३ वर्षे वैशाख सुदि दिने उसवाल ज्ञाति म० वानर भार्या रही पुत्र सं० नाकर म० भाजो म० ना० भार्या क्षर्पाने पुत्र पधु वनु भोजा भार्या भवलादे एवं कुटुम्ब सहितै स्वश्रेयोर्थ सुविधिनाथ बिंबं कारित प्रतिष्टित विवदणीक ग० भ० श्री देवगुप्तसूरिभि । भारठा ग्रामे ।   जैन लेख सग्रह प्रथम खड लेखांक ६६८

४—सवत् १६०३ वर्षे वैशाख सुदि ११ गुरो दिने पूज्य परमपूज्य भट्टारक श्री श्री ककसूरिभि गण २१ सहिता यात्रा सफली कृता श्री कवलगच्छे लि० प० शिवसुन्दर मुनिना ।। श्रीरस्तु ।।

जैन लेख सग्रह प्रथम खड लेखांक ७१७

५—सवत् १५१२ वर्षे माह सुदि ५ सोमे वाडिज वास्तव्य भावसार जयसिंह भार्या फाली पुत्र पोचा भार्या जामी पुत्र लीवा लखण लाहू उमालु पोचाकेन । श्री सुविधिनाथ बिंब कारापित श्रीविवदणीक गच्छे श्रीसिद्धाचार्य सताने प्रतिष्ठित श्रीसिद्धसूरिभि ।   बावू पू० लेखांक १६५८

६—सवत् १५२४ वर्षे वैसाख सुदि ३ वियापुर वासि श्री श्रीमालि ज्ञा० म० लषमीधर भार्या जासू पुत्र म० जूठाकेन भार्या डीरू द्वि जसमादे प्रमु० पुत्रादि कुटुम्बयुतेन स्वश्रेयोर्थं श्रीधर्मनाथ बिंब कारित प्रतिष्ठित । श्री विवदनीय गच्छे श्रीककसूरिभि ।   बावू० पू० लेखांक १७२७

७—सं० १५१२ वर्षे मार्ग (र्ग) वदि २ बुधे वाडिजवास्तव्य भा० मूलू भार्या धनी पुत्र गोयद पेथा गोयद भार्या हूली पेथा माता नाथी सकलकुटुम्बसहितेन स्वश्रेयमे श्रीकुथुनाथ बिंब कारित श्रीद्विवदनीकगच्छे वृद्धशाखाया भ० श्रीककसूरिभि । ( ) प्रतिष्ठित ।। श्रीरस्तु ।।   वि० ध० स० २७४

८—स० १५१७ वर्षे वैशाप (ख) सुदि ३ सोमे उ (ओ) सवाल ज्ञातीय लघुसतानीय श्रे० वीधा भार्या वीमलदे पुत्र (०) नादा भार्या " भोजायुतेन भ्रातृ सादानिम (मि) त्तं श्रीपार्श्वनाथ बिंब कारापित विवदणी (नि) कगच्छे भ० श्रीककसूरिभि प्रतिष्ट्ि (ष्ठि) तं ।।   वि० ध० स० ३१२

९—सवत् १५२७ वर्षे पौष सुदि १३ सोमे प्राग्वटज्ञातीय श्रेष्ठि धना भार्या मेचू पुत्र वाछाकेन भार्या साधू पुत्र जीवराज सहितेन स्वश्रेयोऽर्थं श्रीवासुपूज्य बिंब कारित द्विवदनीकगच्छे भट्टारक श्रीककसूरिभि प्रतिष्ठित भाजोडा ग्रामे ।।   जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ४६७

१०—स० १५५२ वर्षे वैशाख सुदि ३ शनौ ओसवाल ज्ञातौ मं० दामा भार्या रगी सुत थावरकेन

भार्या २ पुहुती माणिकदे सुत गेहा षेढा फिकादिभि सहितेन स्व श्रेयसे श्रीमुनि सुव्रत चतुर्विंशति पट्ट का० श्री बिंबं वृद्धिकगच्छे श्रीसिद्धाचार्य सन्ताने प्र० श्रीकक्कसूरिभि । कना…… वास्तव्य ।

धातु लेखांक १२०

११—सं० १४९४ वर्षे वैशाख सुदि ५ विघापुरवासी श्री श्रीमाल ज्ञा० मं० धरमसीवर भार्या माँगू पुत्र चन्द्र भार्या वीझू नाम्न्या स्वश्रेयोऽर्थं श्री सम्भवनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं ……… … (द्विवंदनीक) गच्छे श्री… ……सूरिभि । 　　　　जैन धातु प्र० ले० सं० भाग दूसरा लेखांक १२०

१२—सं० १५११ वर्षे माह वदि ८ सोमे प्राग्वाट ज्ञातीय मंत्रिसंग्रसिंह भार्या हांसी पुत्र धरसिंह भार्या धर्मभवरेसुवेन श्रीश्रेयांसनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं द्विवंदनीकगच्छे भ० सिद्धसूरिभि ।

जैन धातु प्रतिमा लेख सं० भाग दूसरा लेखांक २ १

१३—संवत् १५६० वर्षे वैशाख सुदि ३ दिने ओसवाल ज्ञा० लघु संताने मं० ईसाख भार्या संपूरी सुत मं० गोविंद भार्या गंगादे सुतसहितेन स्वश्रेयसे श्रीकुंथुनाथ बिंबं का० श्री द्विवंदनीकगच्छे सिद्धाचार्य संताने प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिभि वेटकग्रामवास्तव्यः ॥ 　　　　जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ७९९

१४—संवत् १५६१ वर्षे ज्येष्ठ सुदि २ बुधे श्रीमाल्लवंशे वृद्धशाखायां संघपति कुम्पा भार्या गुरदे पुत्र सं० ईसराज भार्या हांसलदे सुश्राविकया पुत्र सं० हर्षा सुरूप कुटुम्बसहितया निज श्रेयोऽर्थं श्रीसुविधिनाथ बिंबं का० प्रति० श्रीकक्कसूरिभि श्रीस्तंभतीर्थे ॥ 　　　　जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ६६१

१५—संवत् १५६० वर्षे वैशाख सुदि १० दिने ओसवाल ज्ञातीय मं० समधर भार्या श्रीश्री पुत्र मं० माथा भार्या चंगी पुत्र मं० मारद मं० सरवण द्वितीया भार्या पूतली पुत्र राजपाल सहितपाल तृतीया भार्या धर्मी पुत्र वस्तुपाल सहितेन स्वश्रेयोऽर्थं श्री श्री श्री वासुपूज्य बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री द्विवंदनीकगच्छे सिद्धाचार्ये भ० श्रीदेवगुप्तसूरिभि मंडलग्रामे वास्तव्य ॥ 　　　　धातु लेखांक ११८

१६—सं० १५८५ वर्षे वैशाख सुदि १२ सोमे प्राग्वट ज्ञातीय श्रे० गोविंद भार्या गोरी पुत्र धरणाक भार्या… बी पुत्र भाकर भार्या पना २ रे कुटुम्बयुतेन श्रीसंभवनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं द्विवंदनीकगच्छे भ० श्रीकक्कसूरिभि ॥ 　　　　जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ७२१

१७—संवत् १५ कार्तिक वदि ५ गुरौ ओसवाल ज्ञातौ मं० धनपाल भार्या हाछ पुत्र श्रे० देवा भार्या धरमादे पुत्र साह भाला भार्या माणू सहितेन स्वश्रेयसे श्रीधर्मनाथ बिंबं का० श्रीद्विवंदनीकगच्छे सिद्धाचार्य संताने भ० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः । विठलाये वास्तव्य ॥ 　　　　धातु प्रतिमा नम्बर १०७५

१०—संवत् १५२१ वर्षे वैशाख सुदि ३ गुरौ ओसवाल ज्ञातीय वृद्धसंतानीय श्रे० वीरा भार्या वल्हादे सुत देता सुश्राविका देता भार्या चमकू सुश्राविका भार्या गंगादे श्रेयार्थम पितृ ज्योतीरा निमित्त श्री विमलनाथ बिंबं का० प्र० श्रीद्विवन्दनीकगच्छे श्री देवगुप्तसूरियां पट्टे श्रीसिद्धसूरिभि । 　　　　धातु प्रथम भाग लेखांक १०१

१८—संवत् १५२१ वर्षे वैशाख सुदि ३ गुरौ ओसवाल ज्ञातीय वृद्धसंताने श्रे० वीरा भार्या वल्हादे पुत्र देता सुश्राविका देता भार्या चमकू स्वकुटुम्ब युतेन स्वपितृ मातृ श्रेयोर्थं श्री शीतलनाथ बिंबं का० प्र० द्विवंदनीकगच्छे श्री देवगुप्तसूरियां पट्टे श्री सिद्धसूरिभि । 　　　　धातु प्रथम भाग लेखांक १११

१९—संवत् १५११ वर्षे पौष वदि ४ गुरौ ओसवाल ज्ञातीय दोसी भीमा भार्या चमकू पुत्र दो० धन्ना भार्या पुरी पुत्र भीमा सहदेवाभ्यां सहितमात्म स्वमातृ पितृ श्रेयोर्थं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः ।

धातु प्रथम भाग लेखांक ६४

२०—सवत् १५२१ वर्षे माघ वदि ५ गुरौ उप० आयवाण गोत्रे लघु० पारेख नाथा भार्या माहू पुत्र कडुआ भार्या रांणी पुत्र सहदे आतम श्रे० श्रीनेमिनाथ विंब का० द्विवन्दनीकगच्छे प्र० सिद्धसूरिभि उनाउ।

धातु—प्रथम भाग नम्बर १८८

२१—संवत् १५१७ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमे श्री श्रीमाल ज्ञातीय लघु सन्तानीय दोसी महिराज भार्या रूपिणी तया स्वभर्त्रऽऽत्म श्रेयसे श्री शान्तिनाथ बिंबं का० द्विवन्दनीकगच्छे भ० श्री सिद्धसूरिभि.। प्रतिष्ठितं दानकोड़ी ग्राम (पचतीर्थी) धातु—प्रथम भाग नम्बर २३५

२२—सम्वत् १५१४ माह सुदि ६ बुधे उपकेश ज्ञाती लघु सन्तानीय म० सामल भार्या लाडी पुत्र कल्हाकेन भार्या कल्हणदे पुत्र धीरा सहितेन आत्म श्रेयसे श्री नेमीनाथ बिंब का० प्र० श्रीउप० द्विवन्दनीक गच्छे श्री सिद्धसूरिभि डाभी ग्रामे। धातु—प्रथक भाग नम्बर ४४३

२३—सम्वत् १५२१ वर्षे पोष सुदी ११ शनै उपकेश ज्ञातीय लघुसन्तानीय मं० मोजा भार्या टीबु पुत्र नागा धर्मसी खीमा भार्या मेली पुत्र रतनासहितेन खेमाकेन पितृ मातृ श्रेयोऽर्थं श्रीनेमीनाथ बिंब कारित श्रीद्विवन्दनीकगच्छे वृद्ध शाखायां प्रतिष्ठितं श्री सिद्धसूरिभि उनाउ ग्रामे। धातु—प्रथम भाग नम्बर ४७६

२४—सम्वत् १५०८ वर्षे वैशाख सुदी ५ शनौ प्राग्वट ज्ञा० लघु शाखाया'' ' फरणा भार्या लीलादे सुत लाडा भार्या मोतमा श्री शान्तिनाथ बिंब का० प्र० द्विवन्दनीक पक्षे प्र० श्री देवगुप्तसूरिभिः।

धातु—प्रथन भाग नम्बर ०६८

२५—सवत १४७६ वर्षे पौष वदी ५ शुक्रे ओसवाल ज्ञातौ० श्रेष्ठ भादा भार्या लालु पुत्र विशाल भार्या विल्हणदे सुत चुडा कुटम्ब सहितेन उ० विमलनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठित द्विवंदनीकगच्छे देवगुप्तसूरिभि।

धातु—प्रथम भाग नम्बर ७६६

२६—संवत् १५३७ वर्षे वैशाख सुदि १० सोमे प्राग्वट ज्ञातौ श्रेष्ठ रत्ना भार्या रायसि पुत्र आदा भार्या कपुरी सुत फूरा सहितेन श्री वासपूज्य बिम्ब का० प्र० द्विवन्दनीकगच्छे भ० श्रीसिद्धसूरिभि।

धातु—प्रथम भाग नम्बर ८४४

२७—संवत् १५७३ वर्षे वैशाख वदि ५ दिने श्री ओसवंशे साह तुला भार्या टीबु सुत साह धनपाल भार्या टबकू पुत्र साह समरा भार्या श्रीयादे साह परवत भार्या पाल्हणदे साह नरसिंह भार्या सलाई साह परवतेन स्वभ्रातृनान्य श्रेयोऽर्थं श्री संभवनाथ बिंब का० श्री द्विवन्दनीकगच्छे प्र० श्री देवगुप्तसूरिभि।

धातु—प्र० भाग नबर १०८५

२८—संवत १५६६ वर्षे शाके १४५५ प्रथम ज्येष्ठ वदि २ रवौ उपकेश० श्रेष्ठ सूरा भार्या पुद्गली पुत्र नीसल भार्या पुगी पुत्र देवराज युक्तेन श्री चन्द्राप्रभ बिम्बं का० ऊकेशगच्छे श्री सिद्धाचार्य सन्ताने द्विवन्दनीक पक्षे भ० श्री देवगुप्तसूरिभि प्र० श्रीईडर वास्तव्य। धातु—प्रथम भाग नबर १११५

२९—सवत १३३४ वर्षे ज्येष्ट वदि २ सोमे प्राग्वट ज्ञातौ व्य० वरसिंह सुत व्य० सालिग भार्या साहू सुत देवराजकेन भार्या रत्नाइ० भ्रातृ वानर अमरसिंह प्रमुख कुटम्बयुक्तेन श्री श्रेयसनाथ बिंबं का० प्र० द्विवन्दनीकगच्छे श्रीसिद्धसूरिभि। विसलनगर वास्तव्यं। धातु—प्रथम भाग नंबर १५११

भागवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में उपकेशगच्छ की दूसरी शाखा में श्रीकोरटगच्छाचार्यों ने मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवाई जिसके मुद्रित शिलालेख

१—संवत् १३८३ वर्षे फागण सुदि ८ कोरंटगच्छे ...... श्रीसा...... धर्मनाथ बिंबं कारित प्रतिष्ठितं कक्कसूरिभिः ॥ बा० पू० लेखांक २०८०

२—(१) ॐ संवत् १३३० वर्षे ज्येष्ठ वदि ११ बुधे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सन्ताने......
(२) साह भीमा पुत्र विसधेन एतत् भरतमदन कुक्षा महराज साह काक्षी श्रेयार्थं बिंबं (कारि)
(३) (ता) प्रतिष्ठितं । श्रीसर्वदेवसूरिभिः ॥ जैन लेख संग्रह दूसरा लेखांक १३५०

३—(१) ॐ संवत् १३४० ज्येष्ठ वदि १ शुक्रे पत्तीवाल भार्या वीरपाल भा० पूर्णसिंह भार्या वन-
(२) श्रादेवि पुत्र कुमरसिंह केलिसिंह भार्या ठ०...... आत्मश्रेयोर्थं ॥ श्रीपार्श्वनाथ बिंबं का-
(३) रितं प्रतिष्ठितं श्रीकोरंटकीय...... सूरिभिः ॥ शुभम् ॥ बा पू लेखांक १०८२

४—(१) सवत् १७०८ वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे ५ पंचम्यां तिथौ गुरु दिने श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्ना- चार्य संताने साह साह कर्मा भार्या कुंरदे पुत्र साह मदन वर पूर्णसिंह भार्या पूर्णसिरि सुत साह पोमा मूल सं० नमपाल गेला वला प्रमुख समस्त कुटुम्बं श्रेयसे श्री कुन्थुनिदेव प्रसादे साह थोबुलेन श्रीविमलनाथस्य कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरि पट्टे श्रीककसूरिभिः । बा० पू० लेखांक १ १४

५—संवत् १४३० वर्षे वैशाख वदि १० सोमे । श्री कोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य्य सन्ताने उपकेश ज्ञा से सोमा भार्या सूमलदे पुत्र सोनाकेन पितृ मातृ श्रे० श्री आदिनाथ बिंबं का प्र श्री सांवदेव सूरिभिः । बा० पू लेखांक १ ३०

६—संवत १४८४ वर्षे वैशाख सुदि १ रवौ श्री कोरंटकीयगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने उपकेश ज्ञातीय सं० महणसिंह भार्या माणकदेवी स म मल्हेन पुत्र सुधा सहितेन भार्या हेमा श्रेयोर्थं श्रीसंभवनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं कक्कसूरिभिः ॥ जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ११ २

७—संवत् १४८१ वर्षे फागण सुदि १२ गुरौ कोरंटवालगच्छे उपकेश ज्ञातीय ठाकुरालेचा गोत्रे वयसी पुत्र भाफाकेन श्रेयसे श्री धर्मनाथ बिंबं कारितं प्रति सांवदेव सूरिभिः ॥ बा० पू० लेखांक १०८२

८—संवत् १४८६ फागुण वदि ६ बुधे उपकेश ज्ञातीय साह जयमी भार्या रूपाई पुत्र्या वा रैसिंघी मात्या क० विसोद वासा स्वश्रयोनिमित्तं श्रीशांतिनाथ बिंबं का० प्रति श्रीकोरंटगच्छे श्री कक्कसूरि पट्टे श्री सावदेव सूरि ॥ बा० पू० लेखांक १११०

९—संवत् १५ ६ वर्षे माह वदि ५ श्रीकोरंटकीयगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने । उ० ज्ञा० सं० सुचन्ती गोत्रे मोर्चा भामरमुखना पुत्र वाला भार्या बुली पुत्र मोल्हा भार्या माणिक पुत्र केलादि श्रीवासपूज्य बिंबं कारितं प्र० श्री सांवदेव सूरिभिः । जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ११८३

१०—संवत् १५०८ वैशाख वदि ११ दिने उपकेश ज्ञातीय डागलिक गोत्रे । साह पिना भार्या वाल्हू पुत्र संघवी पासवीरेण भार्या संपूरदे सहितेन स्वश्रेयसे श्री शंभवादि चौवीसजिनपट्टादि पट्ट का प्र० श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सन्ताने श्रीकक्कसूरि पट्टे सावदेव सूरिभि ॥ श्री ॥ जैन लेख सं भाग दूसरा लेखांक १०११

११—सवत् १५०६ वैशाख वदी ११ शुक्रे श्रीकोरटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने । उवएस वशे । सखवालेचा गोत्रे श्रे० लखमसी भार्या सासलदे पुत्र रामा भार्या रामदे पुत्र वेजा नाम्ना स्वमाता पित्रौ श्रेयसे श्री वासुपूज्य विंब का० प्र० श्री सांवदेव सूरिभिः । जैन लेख सग्रह भाग दूसरा लेखाक २०१२

१२—स० १५१७ वर्षे माह सुदि १० बुधे श्रीकोरटगच्छे उपकेश ज्ञा० काला पमार शाखायां साह सोना भार्या सहजलदे पुत्र सादाकेन भ्रातृ चउडा भादा नेमा सादा पुत्र रणवीर वणवीर सहितेन स्वश्रेयसे श्रीचन्द्रप्रभ बिंब कारित श्री कक्कसूरि पट्टे श्रीपाद · ···· जैन लेख सग्रह भाग दूसरा लेखाक १४०४

१३—सवत् १५१८ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ६ बुधे श्रीकोरटगच्छे । उपकेश मड़ाहड वा० साह श्रवण भार्या राऊ पुत्र साल्हा भार्या सांपू पुत्र जाजण सहितेन स्वमातृपितृ श्रेयोर्थं श्रीचद्रप्रभ बिंबं कारित । प्रतिष्ठित श्री सांवदेव सूरिभि । जैन लेख स० भाग दूसरा लेखाक १७२६

१४—सवत् १५३२ वर्षे वैशाख सुदि ६ सोमे श्री कोरटगच्छे श्रीमन्नाचार्य सन्ताने उप० पोमालेचा गोत्रे साह जगनाथ भार्या जासहदे पुत्र साह सारग भार्या सँसारदे पुत्र साह मेहा नरसि सहितेन श्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिंब प्र० श्री सांवदेव सूरिभि । जैन लेखाक संग्रह भाग दूसरा लेखांक १३८०

१५—सवत् १५३३ वर्षे माह सुदि ५ दिने । धारूडेचा गोत्रे साह कोहा भार्या सोनी पुत्र साह सीहा सहजा मीहा भार्या हीरू श्रेयसे श्री कुन्थुनाथ बिंब कारित प्र० श्री कोरटगच्छे श्री नन्नसूरिभि ।
जैन लेख सग्रह भाग दूसरा लेखांक १६६८

१६—सवत् १५६७ वर्षे वैसाख सुदि १० उ० सुचिंति गोत्रे साह जेसा भार्या जस्मादे पुत्र मोडा भार्या हर्षु आत्मपुन्यार्थं श्री आदिनाथ बिंब कारित । को० श्री नन्नसूरिभि प्रतिष्ठित ॥ श्री ॥
जैन लेख सँग्रह भाग दूसरा लेखांक १६४२

१७—संवत् १३८३ वर्षे माघ सुदि ५ श्री कोरंटगच्छे श्रावक कर्म्मण भार्या वसलादे पुत्र भाचाकेन भ्रातृव्य नाग पितृ कर्मणनिमित्त श्री महावीर बिंब कारापितं प्रतिष्ठित श्रीवज्रसूरिभि ।
जैन लेख सग्रह भाग तीसरा लेखांक २२५१

१८—संवत् १५६५ वर्षे वैशाख सुदि ७ गुरौ उसवाल ज्ञातीय श्रीसुन्धागोत्रे साह जगदा पुत्र साह होला भार्या हीमादे पुत्र रामा रिणमा पित्रौ पुण्यार्थे श्री अजितनाथ बिंब कारापित प्र० कोरटगच्छे भगवान श्री कक्कसूरिभिः । जैन लेख सग्रह भाग तीसरा लेखांक २४८८

१९—सवत् · ·· अषाढ़ वदी ८ कोरंटगच्छे जापदेव भार्या जासू पुत्र चाहड़देव गीदा जगदेव पामदेव पार्श्वनाथ प्रतिमा कारिता प्रतिष्ठिता श्रीकक्कसूरिभि । जैन लेख सँग्रह भाग तीसरा २३७६

२०—सवत् १३४० वर्षे उयसवाल ज्ञातीय साह लाखणा श्रेयोऽर्थं श्रीआदिनाथ बिंब माता चापल श्रेयोऽर्थं श्रीशांतिनाथ बिंबं कुमरसिंहेन आत्म पुण्यार्थं श्री पार्श्वनाथ भार्या लखमादेवी श्रेयोर्थं श्रीमहावीर बिंबं सुत खेतसिंह पुण्यार्थं श्री नेमीनाथ बिंब कारितं साह कुमरसिंहेन प्रतिष्ठितं कोरटकगच्छे श्री नन्नसूरि सन्ताने श्री कक्कसूरि पट्टे श्री सर्वदेवसूरिभिः । जैन लेख सग्रह भाग पहिला लेखांक ११५

२१—संवत १४६२ वर्षे वैशाख वदि ५ श्री कोरंटकीय गच्छे साह उ० शंषवालेचा गोत्रे साह वासमाल भार्या लक्ष्मीदे पुत्र ३ प्रता मिहा सूरांयामी पितृ श्रेयसे श्री सम्भवनाथ बिंब कारित पुताकेन का० प्र० श्रीसावदेव सूरिभि । जैन-लेख सँग्रह भाग पहिला लेखांक ७६६

२२—सवत् १५०६ वर्षे वैशाख वदि ११ शुक्रे श्रीकोरटगच्छे श्री नन्नाचार्य सन्ताने उवएश वशे डाग-

शिक गोत्रे साह धना पुत्र सा० पासवीर भार्या संपूरदे नाम्न्या निज श्रेयोऽर्थं श्री कुन्थुनाथ बिंबं कारापितं प्र० श्री कक्कसूरि पट्टे सद्गुरु चक्रवर्ति भट्टारक श्री सावदेवसूरिभिः ।   जैन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक ४१०

२३—सं० १५५१ वर्षे माह सुदि ६ दिने सुरवेचा गोत्रे साह कोढा भार्या सोनी पुत्र साह सीहा सहजा सीहा भार्या होर्रं श्रेयोऽर्थं श्री कुंथुनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री कोरंटगच्छे श्री ..... सूरिभिः ।

जैन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक १०

२४—सं० १५०५ वर्षे वैशाख सुदि ७ बुधे उपकेश ज्ञातीय वृद्धशाखीय पोकरणेचा गोत्रे सा० पीमा भार्या भमी-पुत्र साह श्रीवंत भार्या सोनाई पुत्र सकल युतेन स्वश्रेयसे श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्र० श्रीकोरंट गच्छे श्रीकक्कसूरिभिः ॥ श्री ॥   जैन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक १०१

२५—संवत् ११६१ वर्षे फागु (ल्गु) ण सुदि ८ सोम श्रीकोरंटकगच्छे श्री नन्नाचार्य सन्ताने श्री नन्नसूरि (री) णां पट्टे श्री कक्कसूरिभिर्निज गुरुमूर्ति [ ] कारिता

प्राचीन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक ११

२६—संवत् १४६१ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमे प्राग्वट ज्ञातीय सं० सोमित भार्या चाम्पलदेवि पुत्र मातृ पित्रोः श्रे० श्री आदिनाथ बिंबं का० प्र० श्री कोर (रं) ट गच्छे नन्नसूरिभिः ।

प्राचीन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक १०१

२७—संवत् १५०० वर्षे मार्ग (मा) सुद २ सोमे उप० सुंघा गोत्र सं० वेजा भार्या रूपी पुत्र सं० भरमसेन आत्म श्रे श्री श्रेयांस बिंबं का प्र० श्री कोरंटगच्छे भ श्री सावदेवसूरिभिः ।

प्राचीन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक २२१

२८—संवत् १५१० वर्षे माघ सुदि १ बुधे श्रीकोरंटगच्छे उपकेश ज्ञातीय कामा परमाणंदाभार्या श्राविका लूणाम्ब्या आत्मश्रेयसे श्रीसुमतिनाथ बिंबकारितं प्रतिष्ठितं (ष्ठि) तं श्रीकक्कसूरि पट्टे श्रीसावदेवसूरिभिः ॥ वर्धमानगर वास्तव्य ॥   प्रा० ले० सं भाग पहिला लेखांक १ २

२९—संवत् १५२१ वर्षे वैशा० सुदि ४ बुधे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने । उपकेशे महाजनी गो० त्रे मना भार्या मीणलदे पुत्र श्रे भरमदेन भार्या बाल्ह पुत्र जिणदास युतेन स्वश्रेयसे श्री श्रेयांसजिन बिंबं का प्र श्रीकक्कसूरि पट्टे श्रीसावदेवसूरिभिः ॥   प्रा ले सं भाग पहिला लेखांक १०१

३०—संवत् १५२१ वैशाख सु ५ बुधे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने श्री उ ज्ञा० मंडूपायागोत्रे श्रे गोसल भा चांपू पुत्र श्रे० चांपा भा मरी (ही) पुत्रादियुतया भाया कर्मा सीहाभ्यां श्रेयसे श्रीश्रेयांसजिनबिंबं कारितं प्रतिष्ठि (ष्ठि) तं श्रीकक्कसूरि पट्टे पूज्य श्रीपा (सा) वदेवसूरि (भिः) श्री ॥ (सावदेव सूरि)

प्रा ले सं भाग पहिला लेखांक १०२

३१—संवत् १५३४ माघ सुदि ११ शुक्रे श्रीउपकेशज्ञातीय वृद्ध-शाखीय साह जिणदत्त भार्या हांसी पुत्र ( ) साह पासा भार्या रामति पुत्र साह मिहाकेन श्रीसंभवनाथ बिंबं का० श्रीकोरंटगच्छे श्रीसावदेवसूरिभिः प्रतिष्ठितं   प्रा ले सं भाग पहिला लेखांक ४७१

३२—संवत् १०७४ वर्षे फाल्गुण सुदि ५ गुरौ श्रीकोरंटकीयगच्छे श्री कक्कसूरिशिष्य सर्वदेवसूरीणां मूर्तिः श्रीसपुर सा० भोजा संघपतिना कारिता श्रीकक्कसूरिभिः प्रतिष्ठिता मंगलं भवतु संघस्य ।

प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ४४४

३३—संवत् १५०८ वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे ५ पंचम्यां तिथौ गुरुदिने श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने मह० कउरा भार्या मह बाकु पुत्र मह० पेथड मह० मदन मह पूर्णसिंह भार्या मह पूर्णसिरि मह

दूदा मह धांधल म० धारलदे म० चापलदेवी पुत्र मौरसिंह हापा उणसिंह जाणा नीछा भगिनी धा० वीरी भागिनेय हाल्हा प्रमुख स्वकुटुम्ब श्रेयसे म० धांधुकेन श्रीयुगादिदेव प्रासादे जिनयुगल कारित। प्रति० श्रीककसूरिभि ॥ प्रा० जैन लेख सग्रह भागदूसरा लेखांक २३९

३४—स० १४०८ वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे ५ पंचम्यां तिथौ गुरुदिने श्री श्री कोरंटकगछे श्रीनन्नाचार्य संताने मह० कउरा भार्या कुरदे पुत्र मह० मदन म० पूर्णसिंह भार्या पूर्णसिरि सुत मह० दूदा म० धाधल मूलू म० जसपाल गेहा रुदा प्रभृतिकुटुंब श्रेयसे श्रीयुगादिदेव प्रासादे मह० धांधुकेन श्री (जिन) युगलद्वय कारित प्रतिष्ठित श्रीनन्नसूरि पट्टे श्रीककसूरिभि' प्रा० जैन लेख सग्रह भाग दूसरा लेखाक २४०

३५—स० १४२६ वर्षे वैशाख सुदि २ रवौ श्रीकोरटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सताने मुडस्थलग्रामे श्रीमहावीर प्रासादे श्रीककसूरिपट्टे श्री सावदेवसूरिभि, जीर्णोद्धार कारिता प्रासादे कलशादडयो प्रतिष्ठा तत्र देवकुलिकायाश्चतुर्विंशति तीर्थंकराणा प्रतिष्ठा कृता देवेपुवनमध्यस्थेष्वन्येष्वपि बिंबेपु च शुभमस्तु श्रीश्रमणसंघस्य॥ प्रा० जैन लेख सग्रह भाग दूसरा लेखांक २७४

३६—सवत् १२१२ ज्येष्ठ वदि ८ भोमे श्रीकोरटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सताने श्रीओसवन्ने मन्त्रिधाधुकेन श्रीविमलमंत्रिहस्तिशालायां श्रीआदिनाथसमवसरण कारयाचक्रे श्रीनन्नसूरिपट्टे श्रीककसूरिभि प्रतिष्ठित । वेलापल्ली वास्तव्येन । प्रा० जै० लेख सग्रह भाग दूसरा लेखाक २४८

३७ · ·· · माघ सुदि १३ श्रीकोरटकीयगच्छे नन्नाचार्य संताने चैत्ये श्रीककसूरीणा शिष्येण प० . . प्रा० जैन लेख सँग्रह भाग दूसरा लेखाक ५५५

३८—सवत् १३१२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १३ श्रीकोरटकीय" · नन्नचार्य सताने श्रीभावदेव भार्या सालूणि पुत्र पासडेन' मातु श्रेयसे श्रीशान्तिनाथ विंव का० प्र० श्रीसन्त (शांति) देवसूरिभि ॥ जैन धातु प्रतिमा लख सग्रह भाग दूसरा लेखाक २०४

३९—संवत् १३३२ ज्येष्ठ सुदि १३ श्रीकोरण्टकीयराज्ये श्रीनन्नाचार्य सन्ताने श्रीसावदेव भार्या सालूणि पुत्रणसाहेन स्वमातु श्रेयसे श्रीशांतिनाथ बिम्ब कारापितं प्र० श्रीसर्वदेवसूरिभि जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक १८६

४०—सवत् १४६१ वर्षे माघ सुदि १० सोमे उपकेशज्ञातीय साह अशाभार्या वा० रुपादे तत्सुतेन साह पोपटाह्वयेन भार्या श्री० धरमाईसहितेन पितृमातृश्रेयसे श्रीशीतलनाथ बिम्ब कारित प्रतिष्टित श्रीकोरटगच्छे श्रीसावदेवसूरिभि ॥ जैन धातु प्रतिमा लेख सग्रह भाग दूसरा लेखाक ७५०

४१—स० १४६६ आषाढ़ सुदि ३ गुरौ श्री श्रीमाली ज्ञा० वृद्धशखीय म० ठाकुरसी पुत्र म० मणोसी भार्या हर्पूपुत्रमह० सहणकेन समस्तपूर्वजमातृपितृश्रेयोऽर्थं मूलनायक श्री श्री अभिनन्दन जिनचतुर्विंशतिपट्ट कारित प० श्रीकोरटगच्छे नन्नाचार्य सन्ताने श्रीककसूरि पट्टे श्रीसावदेव सूरिभि' जैन धातु प्रतिमा लेख सग्रह भाग दूसरा लेखांक ७६४

४२—सवत् १५०९ ज्येष्ठ वदि ९ शुक्रे श्रीकरटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सन्ताने ओसवालवन्शे सौगन्धिकठाकुरवाछा भार्या परवूश्रेयसे दौहित्रिक्रमाणिकेन श्रीवासुपूज्यबिम्ब का० प्रतिष्ठा० सावदेवसूरिभि जैन० धातु प्र० लेख सग्रह भाग दूसरा लेखांक २०३

४३—संवत् १५०९ वर्षे ज्येष्ठ वदि ९ शुक्रे श्रीकोरटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सन्ताने श्रीउपकेशवन्शे सौगन्धिकसाहधणसी पुत्र साह पाल्हा भार्या पाल्हणदे पुत्र नींबा भार्या रंगाईपुत्रसाहमाणिक नाम्ना सुश्रावकेण आत्मपुण्यार्थ श्रीवासुपूज्यमूलनायक युतश्चतुर्विंशति तीर्थंकरपट्ट कारापित' प्रतिष्ठित' पूज्य श्रीककसूरि पट्टे

श्री श्री श्री सावदेवसूरिभिः माहमाशिक मार्या हर्षाद्दिपुप्य प्रतिर्भवतु ॥

जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक १४२

४६—संवत् १२१२ वर्षे फागुण सुदि ११ बुधे श्रीकोरंटगच्छे उपकेशज्ञातीयमाह्वम मार्या धन्देवीपुत्र श्रेष्ठिवाय श्रेष्ठिश्रात्मा श्रे० कास्याकेन भ्रातृवरामसंयोऽर्थे श्रीसंभवनाथ बिम्ब कारितं प्रति० श्रीसोमदेवसूरिभिः

जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ८८।

४६—सम्वत् १४१० माघ सुदि ५ दिन श्रीउपकेशवंशे लघुशाखायां श्रेष्ठि जयपाल भार्या धरणू पुत्र चोपर मार्या माईनाम्न्या स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथ बिंबं कारितं श्रीकोरंटगच्छे श्रीककसूरि पट्टे श्रीसावदेवसूरिभिः प्रतिष्ठितं चाहीवाडामामे ॥

जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ११८

४७—संवत् १४११ वैशाख सुदि ५ साम श्रीवायडज्ञातीय व्यव० कान्हडमार्या सहजलदे पुत्र कर्मण मार्या केलू पुत्र नगराज मलिराज श्रावक नगराजेन मार्या रंमिपुत्र धनारिवुतेन स्वश्रेयसे श्रीमुनिसुव्रतबिंबं कारितं श्रीकोरंटगच्छे श्रीसर्वदेवसूरिभिः प्रतिष्ठितं ॥ जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लखांक ६११

४०—सम्वत् १४११ वैशाख सुदि ५ सोम श्रीओसवंशे वृद्धशाखीय श्रे० श्रीवरणुसुतसे सारंग भार्या सहजलदे पुत्र श्रे० हापा मार्या महकूपुत्रके माणिकजीवाभ्यां पुत्र पौत्र गृ गारिताभ्यां स्वश्रेयसे श्रीश्रेयांसबिंबं कारितं श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सन्ताने श्रीककसूरि पट्टे प्रभु श्रीसावदेवसूरिभिः प्रतिष्ठितं धनाढामाम ॥

जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ७८८

४८—संवत् १४२९ वर्षे माघ सुदि ५ सोमे श्रीकोरंटगच्छे ओसवाल ज्ञा० सुराणोत्र श्रे० काडू मार्या डाही पुत्र नाका मार्या नाथी सु० रत्नपाल महजा श्रीरत्नपालसुतेन श्रीमुनिसुव्रतस्वामि बिंबं का० प्रतिष्ठितं श्रीसावदेवसूरिपट्टे श्रीनन्नसूरिभिः ॥ शुभं भवतु ॥ जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक १२१

४६—संवत् १४६६ वष ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे त्रयोदशीतिथौ भौमवारे श्रीमाली ज्ञातीय लघुशाखीय सा० हापा मार्या हमाई पुत्र सा० वस्तिराजेन मार्या पीमाइपुत्र जयचन्द्रयुतेन स्वश्रेयसे श्रीवासुपूज्य बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकोरंटगच्छे भट्टारक श्रीनन्नाचार्यसूरिभिः श्रीस्तंभतीर्थे नगरे ॥

जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक १ ६१

५०—सम्वत् १४७३ वर्षे आसाढ सुदि ९ गुरौ श्रीओसवालज्ञा० वृद्धशाखीयसा० धर्मा मार्या धनश्रीपुत्रा हवा साह सदयकिरण मार्यया मानाइनाम्न्या श्रीआदिनाथ बिंबं का० प्र० कोरंटगच्छे श्रीनन्नसूरिभिः मातरमामे ॥ जैन धातु प्र० सं० भाग दूसरा लेखांक ७१६

५१—सं० १५११ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १९ शनौ ओ० ज्ञा० साह हमा सं० साह सिंघराजेन श्रीसुपार्श्व बिंबं कारितं श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नसूरिभिः प्रति० ॥ जैन धातु प्र० लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक ९५१

५२—सं० १५१२ वर्षे शाके १३७७ प्रवर्त्तमाने साह श्रीवामार्या श्रीवारे पुत्रीबाईरजाई बिम्ब कारापितं श्रीशान्तिनाथः । धर्मार्थाय प्रतिष्ठितं च श्रीकोरंटगच्छे भट्टारिक श्री ५ नन्नसूरिभिः श्रीशांतिनाथ बिम्ब प्रतिष्ठितं शुभं ॥ जैन धातु प्र० लेख सं० भाग दूसरा लेखांक ५११

५३—संवत् १५२१ वर्षे वैशाख वदि ६ बुधे उपकेश ज्ञाती म० संसार मार्या श्रीमाइ नाम्न्या पुत्र हरिचन्द्र नरबद श्रीमीवाइ सहितया आत्मश्रेयोऽर्थे श्री धर्मनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकोरंट गच्छे श्री नन्नाचार्य सन्ताने श्रीककसूरि पट्टे श्री सावदेवसूरिभिः । धातु प्रथम भाग नम्बर १४

५४—संवत् १५११ वर्षे————वदि ५ रवौ श्री कोरंटकगच्छे उपकेश ज्ञा० सिवा भार्या

धारू सु० डुगर भार्या देन्हू सँ० कान्हा भार्या दकू डुगर कान्हानिमित स० वानर माधवेन श्री विमलनाथ 'बिंय का० प्र० श्री सावदेवसूरिभि' धातु प्रथम भाग नम्बर २०१

५५—सवत १४५६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ८ सोमे उपकेश ज्ञातौ मंह सागण भार्या सींगारदे पुत्र मन्नाया सहिते भ्रातृ वाछू भाम्ट जाया वल्हणदे श्रेष्ठ श्री सँभवनाथ बिंव कारित प्रतिष्ठित श्री कोरण्ट गच्छे श्री नन्नसूरिभि । धातु प्रथम भाग नवर ३६२

५६—सवत १५६५ वर्षे माघ वदि १२ लाडउली नगर वास्तव्य ओसवाल ज्ञातीय शाह जेसा भार्या जसमादे पुत्र नरसिंहेन भार्या नायकदे पुत्र साह जयवन्त श्रीवन्त देवचन्द सूरचन्द हरिचन्द प्रमुख कुटम्ब युक्तेन श्री मुनिसुव्रत स्वामि बिम्ब का० प्र० श्री कोरण्ट गच्छे श्री ककसूरिभि. ।
धातु प्रथम भाग नम्बर ४५५

५७—सवत १३६४ वर्षे चैत्र वदि ५ भोमे ' ···· श्रेयोर्थं सुत मोहणसिंह का० प्र० सर्वदेवसूरिभि ।
धातु प्रथम भाग नम्बर ५८३

५८—सवत् १५१३ वर्षे श्री धर्मनाथ बिंब श्री कोरण्ट गच्छे श्री ककसूरि पट्टे प्र० श्री सावदेवसूरिभि ।
धातु प्रथम भाग नम्बर ७३६

५९—सवत् १५३० वर्षे माघ वदि ८ सोमे श्री कोरण्टगच्छे उप० ज्ञातौ साह आसा भार्या आसलदे पुत्र साह माधवकेन श्री घमे श्री सुमतिनाथ बिंब का० प्र० श्री नन्नाचार्य सन्ताने श्री ककसूरि पट्टे श्री सावदेवसूरिभि । धातु प्रथम भाग नम्बर ८११

६०—सवत् १५५२ वर्षे आषाढ सुदि १ रवौ श्री कोरण्टगच्छे श्री नन्नाचार्य सन्ताने उपकेशवंशे शखवालेचा गोत्रे श्रेष्ठ खेता भार्या खेतलदे पुत्र नाथा पहिराज हरिराज नाम लिखित श्री अजितनाथ बिंबं का० प्रति० सावदेवसूरि पट्टे श्री नन्नसूरिभि । श्री नाथ पुण्यया । धातु प्रथम भाग नम्बर ८६२

६१—सवत् १५२५ फागुण सुदि ७ शनौ ओसवाल ज्ञातौ साजण भार्या गरमटि पुत्र देवराजेन भार्या जासू पुत्र लखमसी युक्तेन स्वमातृ श्रेयसे श्री विमल जिन बिंब का० कोरण्टगच्छे प्र० श्री सरवदेवसूरिभि ।
धातु प्रथम भाग नम्बर ८५०

६२—संवत् १५३१ वर्षे वैशाख वदि ११ चन्द्रे श्री ओसवशे सँ० दुल्हा सु० म० नाथा भार्या गोमति पुत्र मं० जाणाकेन भार्या पुहती पुत्र हर्षामनादि कुटम्बेन शृगारितेन मातृ पित्रो श्रेयसे श्री चन्द्रप्रभ बिंब का० श्री कोरण्टगच्छे श्री ककसूरि पट्टे श्री सावदेवसूरिभि प्र० ॥ धातु प्रथम भाग नम्बर ६५५

६३—संवत १४६६ वर्षे फागण वदि २ गुरौ ओसवाल ज्ञातीय मँ० छाहड भार्या मचू पुत्र वयजा पुत्री माइ पुनी स० अजितनाथ बिंब का० प्र० श्री कोरण्टगच्छे श्रीसावदेवसूरिभि ।
धातु प्रथम भाग नम्बर १०२७

६४—संवत् १५०६ वैशाख वदि ६ शुक्रे श्री कोरण्टगच्छे श्री नन्नाचार्य सन्ताने उपशवंशे डागलिया गोत्रे साह राववीर भार्या सापू पुत्र घसतानाम्ना पितृ श्रेयसे श्रीकुन्थुनाथ बिंबं का० प्र० श्री सावदेवसूरिभि'।
धातु प्र० भाग नम्बर १०९२

६५—सवत् १५२५ वर्षे ज्येष्ठ शुक्ला उकेश ज्ञातौ साह सहदेव पुत्र सूरा भार्या रामू पुत्र खीमाकेन आत्म श्रेयसे श्री चन्द्रप्रभ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री कोरण्टगच्छे श्री ककसूरिपदे श्री सावदेवसूरिभि ।
धातु प्रथम भाग नम्बर १२०३

६६ सं० १५०४ वर्षे ज्येष्ट शुक्ला ६ रवौ श्री कोरण्ट गच्छे उपकेश ज्ञातौ साह सालिग भार्या सुलेसरि

पुत्र रूपाकेन भार्या मीमी सहितेन मातृ पितृ निमित्त श्री चन्द्रप्रभ बिंबं का० प्र० श्री सावदेवसूरिभिः।

धातु प्रथम भाग नम्बर १२८४

६७—संवत्१५२१ माघ वदि ८ दिने उकेश० शाह् कल्हा भार्या कपुराई पु० कुंभा सहजा भार्या ठाकुर भार्या चमराई पुत्राइ प्र० कुटम्ब युतेन श्री आदिनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं कोरंटगच्छे श्री सावदेवसूरिभिः

धातु प्रथम भाग नम्बर ८११

६८—संवत् १२२० वर्षे ज्येष्ठ वद ९ श्री कोरंटकीयगच्छे श्री पद्मसिंह भार्या सिरु पुत्र पुरुषसिंह विजयसिंह स्व पितृ श्रेयसे " बिंबं का० प्र० मावदेवसूरिभिः धातु प्रथम भाग नम्बर १२९८

६९—सं १२८९ वर्षे मिती मार्गशीर्ष सुद ११ " श्रीकोरंटगच्छे श्रीमालवंशे सा० कुरु भार्या रूपमाई पुत्र मोकल धारा नारायणमोकल भार्या सांगी पुत्र सहजाकेन श्री पार्श्वनाथ बिंब कारितं प्र० श्री नन्नाचार्य संताने श्री कक्कसूरि पट्टे सर्व देवसूरिभि । माणोरे वास्तव्यम् ॥

७०—सं० १४८० वर्षे वैशाख सुदि ११ श्री उपकेश वंशे श्रेष्ठगोत्रे आपड़ा शाखायां सा० देसपाल भार्या देवाइ पुत्र केला गो० जोधा केन मातृपितृ श्रेयसे श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा कारित प्र० श्री कोरंटकिगच्छे श्री नन्नसूरि सन्ताने सर्वदेवसूरि पट्टे नन्नप्रभसूरिभिः।

७१—सं० १२ ९ वर्षे वैशाख सुदि ५ उपकेशज्ञाती चोपड़ा गोत्रे सा० सारंगम रूपमी पुत्र कड़ा भार्या जेलवदे तत्पुत्र हेमा भ्राता कान्हा हेमा भार्या हमाई पुत्र सहजाकेन श्री युगादिदेव बिंबं कारितं प्रतिष्ठ श्री देवगुप्तसूरिभिः।

७२—सं० १५४१ वर्षे माघ सुदि १३ मान्वर वंश सा० माला भार्या संपाइ पुत्र रामा नाथ देसार सर्व कुटुम्बिन सहित मातृपितृ श्रेयसे श्री मुनिसुव्रत बिंबं कारापितं प्र० श्री उपकेशगच्छे श्री सिद्धसूरिभिः। आसिका पुर्व वास्तव्य शुभम् ॥

७३—सं० १५५५ ज्येष्ठ सुदी ११ दिने श्री उपकेशज्ञाती सुचिंति गोत्र हिंगड़ शाखायां सा० कुशा भार्या वाला पुत्र नारायण भार्या मोल्ही पुत्र रांका संगम धातु पेथा केन स्व मातृपितृ श्रेयसार्थ श्रीअजितनाथ बिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं श्री उपकेशगच्छीय ककुदाचार्य सन्ताने श्री कक्कसूरि पट्टे श्री देवगुप्तसूरिभि ।

७४—सं १५६१ आषाढ़ सुदि १ ----दिने श्री उपकेशवंशे चोरड़ा गोत्रे गदहिया शाखायां सं० रूपसी भार्या रूपाइ पुत्र करल भार्या कर्मा पुत्र रावत भीमा सहितेन श्री महावीर बिंबं कारितं प्र० श्री उपकेश गच्छे आचार्य सिद्धसूरिभि ।

इत्यादि इन तीनों शाखाओं के और भी बहुत से शिलालेख हैं पर शिलालेख जो मुद्रित हो चुके हैं उनमें से ही यहाँ उद्धृत किये हैं। हमने जिन शिलालेखों के नीचे जिन जिन पुस्तकों के नम्बर अङ्क किया है उसमें कहीं कहीं असावधानी एवं समय के अभाव से कहीं कहीं गलती रह गई है उसको शुद्धि पत्र में लिखादी गई है कई कई शिलालेख कई भण्डारों से वा अन्य स्थानों से भी लिये गये हैं कि जिन्हों के नीचे नम्बर नहीं दिये गये हैं।
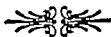
विशेषाभार

यों तो इस ग्रन्थ को लिखने में जिन २ महानुभावों की ओर से तथा जिन २ ग्रन्थों से मुझे सहायता मिली थी उनकी शुभनामावली ग्रन्थ की आदि में प्रकाशित करवादी गई थी पर जिन २ ग्रन्थों से मैंने विशेष सहायता ली है उनका विशेष उपकार मानना मेरा खास कर्त्तव्य समझ कर पुन यहाँ नामावली लिखदी जाती है।

१—आचार्य श्री प्रभाचन्द्रसूरि रचित प्रभाविक चरित्र के अन्दर जिन २ प्रभाविक आचार्यों का जीवन लिखे हुए थे उन सबका जीवन मैंने हिन्दी भाषा भाषियों के लिये हिन्दी में लिख दिये हैं हाँ कहीं अधिक विस्तार था उनको सक्षिप्त जरूर कर दिया है।

२—कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्रसूरि के निर्माण किया परिशिष्ट पर्व तथा त्रिषष्टि सिलाग पुरुष चरित्र के अन्दर से भी बहुत कुछ मदद ली गई है।

३—आचार्य मेरुतुगसूरि विरचित प्रबन्ध चिन्तामणि नामक ग्रन्थ से भी बहुत कुछ ममाला लिया गया है।

४—आचार्य विजयानन्द (आत्मारामजी) सूरिजी म० के लिखे जैनतत्त्व निर्णय प्रसाद जैनतत्त्वादर्श और जैन धर्म विषय प्रश्नोतर ग्रन्थों मे भी जैन धर्म की प्राचीनता तथा चार आर्य्यवेदादि के विषय में भी कई लेख लिये गये।

५—आचार्य श्री विजय धर्म सूरिश्वरजी आचार्य बुद्धिसागरसूरीजी श्री जिनविजयजी और बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के मुद्रित करवाये जैन मन्दिर मूर्तियों के शिलालेखों के अन्दर से बहुतसे शिलालेख यथा स्थान पर उद्धृत किये गये हैं।

६—पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी म० के लिखी 'वीर निर्वाण सम्वत् और जैन कालगणना तथा श्रमण भगवान महावीर नामक पुस्तकों से सहायता ली गई है।

७—श्रीमान चन्द्रराजजी भडारी द्वारा प्रकाशित 'भारत के हिन्दू सम्राट नामक किताब से मौर्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त के विषय में कई लेख लिये गये हैं।

८—श्री महावीर प्रसादजी द्विवेदी ने भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रचार शीर्षक एक लेख सरस्वती मासिक में मुद्रित करवाया था जिसको उपयोगी समझ यहा दे दिया गया है।

९—प्राचीन कलिंग और खारवेल नामक पुस्तक तथा प्राचीन जैन स्मारक (बंगालप्रान्त) और जैन साहित्य संशोधक त्रिमासिक पत्र में (प० सुखलालजी) उड़ीसा प्रान्त से मिला हुआ महामेघवाहन चक्रवर्ती राजा खारवेल का प्राचीन शिलालेख हिन्दी अनुवाद के साथ मूल शिलालेख इस ग्रन्थ में दिया गया है।

१०—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के सग्रह किये हुए प्राचीन जैन स्मारक (बम्बई मैसूर प्रान्त) के अन्दर से जैन धर्म पर विधर्मियों के अत्याचार तथा वल्लभी राजाओं का ताम्रपत्रादि कई उपयोगी बातें ली गई हैं।

११—श्रीयुत त्रिभुवनदास लेहरचन्द शाह बड़ोदा वाले का लिखा 'प्राचीन भारतवर्ष नामक ग्रन्थ से प्राचीन सिक्के एव स्तूम्भ और कई देशों के राजाओं की वंशावलियादि।

उपरोक्त महानुभावों के अलावा भी किसी भी ग्रन्थ से मैंने सहायता ली हो और वर्तमान मे उनका नाम मेरी स्मृति में न भी हो तथापि हम उन्हों का आभार समझना तो भूल ही नहीं सकते हैं।

"ज्ञानसुन्दर"

मूल–सुधार

मेरी लिखी पुस्तकें पढ़ने वाले सज्जन इस बात से तो भलीभांति परिचित हैं कि कई अनिवार्य कारणों से कहीं कहीं गलतियाँ रह जाती हैं जैसे एक तो व्याकरण ज्ञान की कमी, दूसरा स्वभाव से जल्दी काम करने की प्रकृति तीसरा समय कम और काम अधिक, चतुर्थ चातुर्मास के अलावा भ्रमण में रहने से प्रूफ मिलने में गड़बड़ी तथा प्रेस वालों की लापरवाही पाँचवाँ सहायक का अभाव और छट्ठा नेत्रों की रोशनी कम होजाना इत्यादि कारणों से कहीं कहीं गलतियाँ रह जाती हैं। दूसरा छपाई का काम ही ऐसा है कि मेरे लिये तो उपरोक्त कारण हैं पर अच्छे २ विद्वान लोग प्रेस में आते जाते और सैकड़ों बार पत्रिकों की संशोधन करते रहते हुए भी उनके ग्रन्थों में अशुद्धियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसका उपाय यही है कि रही हुई अशुद्धियों के लिये ग्रन्थ के अन्त में शुद्धिपत्र दे दिया जाए तदनुसार मैंने भी इस ग्रन्थ में रही हुई साधारण गलतियों के लिये शुद्धिपत्र लिखा दिया है। पर खास खास लिखने में ही असावधानी रही हुई भूलों के लिये यहाँ पर सुधार लिख दिया जाता है।

इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १६२ पर हूण राजा तोरमण के विषय—

× × × तोरमण की राजधानी को भिन्नमाल में होना लिखा है वह गलती है। × × दूसरा यहाँ पर हरिगुप्ताचार्य रहते थे और उन्होंने तोरमण को उपदेश देकर जैन धर्म का अनुरागी बनाया और तोरमण ने यहाँ भ० आदीश्वर का जैन मन्दिर बनाकर अपनी भक्ति का परिचय दिया। × × तीसरा कुवलयमाला कथा का समय विक्रम की सातवीं शताब्दि का लिखा है। इन तीनों बातों का सुधार निम्नलिखित है जो कुवलयमाला कथा में निम्नलिखित प्रमाण मिलता है। यथा—

"अत्थिपि पयडा पव्वइया सरिया अह चन्दभागत्ति। तीरम्मि तीए पयडा पव्वइया णाम रयण सोहिल्ला ॥ जत्थट्ठिय भुत्ता पुहइ सिरि तोरराएण ॥" 'तस्स गुरू हरिउत्तो आयरिओ आसि गुत्त वंसाओ" सग काले वोलीणे वरिसाण सएहिं सत्तहिं गएहिं एग दिणेणूणेहिं रइया अवरण्ह वेलाए ॥

इसमें कहा है कि उत्तरापथ में चन्द्रभागा नदी के किनारा पर पव्वइया नामक नगर में तोरमण राजा की राजधानी थी और तोरमण के गुरु थे गुप्तवंश के आचार्य हरिगुप्तसूरि। × × कुवलयमाला कथा का रचना समय शाक संवत् सात सौ में एक दिन न्यून बतलाया है परन्तु शाक संवत के बदले भूल से विक्रम संवत् छप गया है। तीसरी बात तोरमण ने जैनमन्दिर बनाया की है। इसके लिये मैंने पन्यासजी श्रीकल्याणविजयजी म० (तप गच्छ के मुनि) की सेवा में जिज्ञासु होकर कई प्रश्न भेजे थे। उनमें राजा तोरमण और उनके उत्तर अधिकारी मिहिरकुल के विषय के प्रश्न भी थे। उत्तर में श्रीपन्यासजी महाराज ने ता० २-८-३१ के पत्र में लिखा था कि तोरमण ने भ० आदीश्वर का मन्दिर बनाकर अपनी भक्ति का परिचय दिया। दूसरा मिहिरकुल के विषय में लिखा है कि उसके हाथ राज सत्ता आने से जैनों आदि धर्मों पर अत्याचार गुजारना प्रारम्भ कर दिया यह भी यहाँ तक कि मिहिरकुल देश छोड़ने के धन, मान और धर्म को रक्षा होना असम्भव था इसलिये वहाँ का संघ मरुधर प्रान्त का त्याग करके लाटगुजर की ओर चले गये। उन जाने वालों में उपकेश वंश के लोग भी थे। पन्यासजी ने यह भी लिखा है कि उपकेश वंश नामकरण विक्रम की चौथी शताब्दि के आस पास में हुआ था इत्यादि। प्रश्नों के उत्तर के अन्त में आपश्री ने यह भी लिखा है कि मैंने ग्रन्थ प्रशस्तियों तथा प्राचीन मूर्तियों के आधार पर ही यह उत्तर लिखा है।

मैंने यह खुलासा इसलिये किया है कि कई लोगों का यह भी ख्याल है कि मिहिरकुल ने केवल बौद्धों

पर ही अत्याचार गुजारे थे पर जैनों पर नहीं अर्थात् जैनों पर जुलम करने का प्रमाण नहीं मिलता है। इससे पाया जाता है कि अभी उन लोगों की शोधखोज अधूरी है। अत' इस विषय मे और भी उद्यम करना चाहिये।

पृष्ठ १७४ पर मैंने उपकेशवश वालों के साथ ब्राह्मणों का सम्बन्ध क्यों नहीं ? तथा कब और किस कारण से टूट गया ? इस विषय में "श्रीमाली वाणियों का ज्ञाति भेद" नामक पुस्तक के अन्दर से दो श्लोक उद्धृत करके ऊहड़ मत्री की कथा लिखी और प्रमाण के लिये उक्त पुस्तक के अनुसार समरादित्य कथा जो आचार्य हरिभद्रसूरि की बनाई हुई है। का नाम लिखा था और जैसे समरादित्य कथा पर मे कई आचार्यों ने कथा का सार सस्कृत में लिखा वैसे किसी न प्रस्तुत कथा पर से समरादित्य चरित्र भी लिखा होगा पर श्री अगरचन्दजी नाहटा के एक लेख से ज्ञात हुआ कि श्री शोभाग्यनन्दसूरि ने स्वरचित विमल चरित्र में उपकेश जाति की ख्यात लिख कर उसके अन्त में लिखा है कि "इति समरादित्य चरित्रानुसारेण उपकेश जाति की ख्यात" इस लेख से पाया जाता है कि समरादित्य चरित्र करने उपकेश ज्ञाति की ख्यात लिखी और उस ख्यात को शोभाग्यनन्दसूरि ने अपने विमलचरित्र में उद्धृत की है। अत मेरा लिखा प्रमाण तो यथार्थ ही है पर उसके प्रमाण के लिये नाम का फरक अवश्य है जो समरादित्य कथा और सार के स्थान पर समरादित्य चरित्र होना चाहिये था। अब पाठक ऐसा ही समझे। और दो श्लोकों को मैं पहले का पीछे और पीछे का पहले छप जाना उस ग्रन्थकार की ही गलती है। जिसको भी सुधार कर पढे।

पृष्ठ १६५ पर कोटा राज के अन्तर्गत अटरू नाम ग्राम में भैंसाशाह के बनाये मन्दिर में स० ५०८ के शिलालेख के विषय में मैंने उस शिलालेख का मिलना मुन्शी देवीप्रसादजी का नाम लिख दिया था कारण मैंने कोई २० वर्ष पूर्व मुन्शी देवीप्रसादजी की लिखी 'राजपूताना की शोध खोज नामक पुस्तक पढकर नोट बुक में नोंध करली थी जब प्रस्तुत पुस्तक लिखी उसमें उस शिलालेख को मुन्शी देवीप्रसादजी की शोध खोज से मिला लिख दिया। परन्तु श्री अगरचन्दजी नाहटा के लेख से ज्ञात हुआ कि उस शिलालेख में स० ५०८ के साथ चैत्र सुद ५ मगलवार की मिति भी खुदी हुई है और वह शिलालेख मुन्शी देवीप्रसादजी की शोध से नहीं पर पण्डित रामकरणजी की शोध से मिला था. यदि यह बात ठीक है तो पाठक उस लेख को मुन्शी देवीप्रसादजी की शोध खोज। नहीं पर पण्डित रामकरणजी की शोध खोज से मिला समझे। पर शिलालेख का होना प्रमाणित है।

पृष्ठ १६७ पर राजकोष्टागर गोत्र के विषय में मैंने लिखा था कि आचार्य बप्पभट्टिसूरि ने गोपगिरि— ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन बनाया उसके एक राणी व्यवहारिया कुलोत्पन्न भी थी उसकी सतान को विशाद ओसवश में मिलादी उन्होंने राज के कोठार का काम किया जिससे उसकी जाति राज कोष्टागर अर्थात् राज कोठारी हुई जो अद्यावधि विद्यमान है। इसी राज कोठारी जाति में विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में स्वनाम धन्य कर्म्माशाह हुआ उसने तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का सोलहवाँ उद्धार करवाया था जिसका शिलालेख उस समय का खुदवाया हुआ आज भी मौजूद है जिसका श्लोक मैंने यथास्थान दे भी दिया आगे के श्लोकों में कर्म्माशाह के पूर्वजों की नामावली भी दी है वे श्लोक यहाँ पर लिख दिये जाते हैं।

श्री सारंगदेव नाम तत्पुत्रोरामदेव नामाऽभूत। लक्ष्मीसिंह पुत्रो (त्रस) तत्पुत्रो भुवनपाल स्व्यः ॥१०॥
श्री भोजपुत्रो ' रसिंहाख्य एव तत्पुत्रः। पेताक स्तत्पुत्रो वरसिंह स्तत्सु''' ॥११॥
तत्पुत्र स्तोलाख्य. पत्नीतस्य ( ) प्रभूतकुल जाता। तारादेऽपर नाम्नी लीलू पुण्य प्रभापूर्णा ॥१२॥
तत्कुक्षि समुद्भूताः षद् पुत्र (.) कल्प पादपा कारा॥ धर्मानुष्ठान पराः श्रीवन्तः श्रीकृतो ऽन्येषाम्॥१३॥
प्रथमोर (त्ना) ख्यसुतः सम्यक्त्वोद्द्योत कारका कामम्। श्रीचित्रकूट नगरे प्रासादः कारितो येन ''॥१४॥

इन श्लोकों में कर्माशाह के पूर्वज सारंगशाह से लेकर कर्माशाह के पुत्र तक के नाम हैं जैसे १ सारंग २ रामदेव ३ लक्ष्मीसिंह ४ भुवनपाल ५ भोजराज ६ ठाकुरसिंह ७ खेतसिंह ८ नरसिंह ९ तोलाशाह १० कर्माशाह ११ भिषो इत्यादि शिलालेख में तोलाशाह के छः पुत्रों का परिवार का उल्लेख किया है।

उपरोक्त शिलालेख को अप्रमाणिक एवं जाली मानने का कोई भी कारण पाया नहीं जाता है यदि ऐसे शिला लेखों को भी अप्रमाणिक माना जाय तब तो इसके अभावे हमारे पास सबल प्रमाण ही क्या हो सकता है इस शिलालेख को परिपुष्ट करने के लिये आचार्य बप्पभट्टिसूरि और आम राजा का विस्तृत जीवन विद्यमान है उसमें भी स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य बप्पभट्टिसूरि ने राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन बनाया और राजा आम ने ग्वालियर में एक जैन मन्दिर बनाकर उसमें सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी अतः इस प्रमाण में थोड़ी भी शंका नहीं की जा सकती है।

पृष्ठ १६२ पर मैंने वल्लभी का भंग के विषय में कांकसीवाली कथा लिखी थी पर उस समय मेरे पास केवल पट्टावलियां एवं वंशावलियों का ही आधार था पर बाद में आचार्य जिनप्रभसूरि का लेख—"विविध तीर्थ कल्प" नामक ग्रन्थ देखने में आया तो उसमें भी इस कथा का ठीक प्रतिपादन किया हुआ दृष्टिगोचर हुआ जिसको यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है।

"इओ य गुज्जरधराए पच्छिमभागे वल्लहित्ति नयरी रिद्धि समिद्धा। तत्थ सिलाइच्चो नाम राया देवाण रयण खचिय कंकसी लुद्धेण रंकनामसिद्धि पराभूओ सो अ कुविओ तव्विग्ग हणत्थं गज्जणवइ हम्मीरस्स पभूअं अत्थं दाऊणं तस्स महंतं सेन्नं आणिए। तम्मि अवसरे वल्लहीओ चंदप्पहसामि पडिमा अंबासित्तवाल जुआ अहिट्ठा बलेण गयणपहेण देवपट्टणंगया रहारूढा य देवया बलेण वीरणाहपडिमा अहिट्ठायगदेव संचरंति आसोअ पुण्णिमाए सिरिमालं पुरमागया अवसेसा वि साइसया देवा जहोचियं ठाणं गया पुरदेवयाए अ सिरि वद्धमाणसूरीण उवसग्गो जाणाविओ भणियं च भिक्खालद्धं खीरं रुहिरं होऊण पुणो खीरं हविस्सइ जत्थ साहूहिं ठायव्वं ति। तेण य मिलेच्छ सिन्नेणं भग्गं सव्वं पयारं करिय वल्लहीयं गयरी वलहिया वलहीनाहो सो राया मारिओ गओ सट्ठाणं हम्मीरो।"

"विविध तीर्थकल्प पृष्ठ ११"

आचार्य जिनप्रभसूरि लिखते हैं कि वल्लभी का शिलादित्य राजा रत्नजड़ित कांकसी के लिये रांका सेठ का अपमान कर जबरन् कांकसी छीन ली जिससे कुपित हो सेठ रांका ने प्रभूत द्रव्य देकर हम्मीर का सैना लाकर वल्लभी का भंग करवाया राजा मारा गया इत्यादि। हाँ इस घटना का समय सूरिजी ने विक्रम ८४५ का लिखा पर वल्लभी का भंग कईवार होने से समय लिखने में भ्रांति पड़ जाना असंभव नहीं है जैन पंचमी की सांवत्सरी चतुर्थी को कालकाचार्य ने वीरात् ४५३ के आसपास की थी पर कालकाचार्य वीरात् ९९३ में हो जाने से कई लेखकों ने पंचमी की चतुर्थी करने का समय भी वीरात ९९३ का लिख दिया है यही बात जिनप्रभसूरि के लिये बन गई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है और कांकसी वाली घटना जिनप्रभसूरि ने लिखी है वह पट्टावलियों से ठीक मिलती हुई है।

मैंने मेरे ग्रन्थ के पृ० १२२ से २१२ तक में महाजनसंघ, उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय में प्रमाणों का संग्रह कर यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि महाजन् संघ की उत्पत्ति का समय ठीक वीरात् ७० वर्ष का है पट्टावलियों के साथ कई ऐतिहासिक प्रमाण भी उद्धृत किये हैं जिनमें कई चालीसे जो गलतियाँ रह गई थी उसका सुधार ऊपर लिख दिया है। और उपरोक्त प्रमाणों से महाजन संघ की मूलोत्पत्ति का समय विक्रम पूर्व ४०० वर्ष सिद्ध हो जाता है।

इसके अलावा सम्राट सम्प्रति का जीवन पर दृष्टि डाली जाय तो इस विषय पर और भी अच्छा प्रकाश पड़ सकता है। इस विषय में एक प्रश्न खड़ा होता है कि महाजन संघ की उत्पत्ति सम्राट् सम्प्रति के पूर्व हुई थी या बाद में!

यह बात तो सर्व सम्मतसी है कि आचार्य रत्नप्रभ सूरि जिस समय मरुधर में पधारे थे उस समय मारवाड़ में सर्वत्र नास्तिक-तांत्रिक एवं वामर्गियों के अखाड़े जमे हुए थे अर्थात् मरुधर में सर्वत्र उन लोगों का ही साम्राज्य था जैन धर्म का तो नाम निशान तक भी नहीं था यही कारण था कि उस समय रत्नप्रभसूरि तथा आपके मुनियों को सैकड़ों कठिनाइयों एव परिसहों को सहन करना पड़ा था और शुद्ध आहार पाणी के अभाव दो दो चार चार मस तक भूखे प्यासे भी रहना पड़ाथा। फिर भी उन महान् उपकारी पुरुषों ने उन परिसह-कठिनाइयों को सहन करके भी वहाँ के मास मदिरा एवं व्यभिचार सेवित राजा प्रजा और लाखों वीर क्षत्रियों की शुद्धि कर जैन धर्म में दीक्षित कर एक नया और बिलकुल नया काम किया था इससे भी पाया जाता है कि मरुधर में रत्नप्रभसूरि आये थे उसके पूर्व न तो मरुधर में किसी मुनियों का विहार हुआ था और न वहाँ जैनधर्म पालन करने वाला एक मनुष्य भी था।

अब हम यह देखेंगे कि मरुधर जैन धर्म विहीन था वह सम्राट सम्प्रति के पूर्व था या बाद में ? इसके लिये यह विचार किया जासकता है कि सम्राट सम्प्रति ने मरुधर के पड़ोस में आया हुआ आवती प्रदेश में रहकर भारत में सर्वत्र जैनधर्म का प्रचार करवाया तथा सवालाख नये मन्दिर एव सवाकरोड़ नयी मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाइ थी उस समय मरुधर जैन धर्म से वंचित तो किसी हालत में नहीं रह सका हो—मारवाड़ में कइ स्थानों पर सम्राट सम्प्रति के बनाये हुए मन्दिर मूर्तियें विद्यमान हैं जैसे नारदपुरी (नाडोल) में भ० पद्मप्रभका मन्दिर सम्राट सम्प्रति का बनाया कहा जाता है अर्जुनपुरी (गांगाणी) में भी सम्राट् सम्प्रति ने सुफेद सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्यसुहस्तसूरी के कर कमलों से करवाइ थी तथा अन्य भी कइ स्थानों पर सम्राट् सम्प्रति के बनाये मन्दिर मूर्तियों का होना पाया जाता है। जब सम्राट् ने लाखोमन्दिर मूर्तियें स्थापना करवाइ तो थोड़ी बहुत मरुधर में स्थापित करवाइ हों तो इसमें सन्देह करने जैसी कोइ बात ही नहीं है अत सिद्ध होता है कि सम्राट के समय मरुधर में जैन धर्म का प्रचार था।

शायद कोई भाई यह सवाल करे कि सम्राट सम्प्रति के बाद में भी वज्रसूरि के समय द्वादश वर्षीय दुकाल पड़ा था अत सम्प्रति के बाद किसी समय मरुधर में जैन धर्म का अभाव और वाममार्गीयों का सर्वत्र साम्राज्य जम गया हो ? उस समय या बाद में रत्नप्रभसूरि मरुधर में आकर महजन सघ की स्थापना रूपी नया कार्य किया हो तो यह बात सभव हो सकती है।

वज्रसूरि का समय विक्रम की दूसरी शताब्दी का है और उस समय मरुधर में जैन धर्म होने के तथा जैन श्रमणों का मरुधर में विहार होने के कई प्रमाण मिलते हैं जैसे कोरटापुर के महावीरमन्दिर में एक देवचन्द्रोपाध्याय रहते थे और वे चैत्यवासी एव चैत्य की व्यवस्था भी करते थे उस समय सर्वदेवसूरि नाम नाम के सुविहित आचार्य बनारसी से शत्रुञ्जय जाने के लिये विहार किया वे क्रमश कोरटपुर में आये और आप अपने सदुपदेश से देवचन्द्रोपाध्याय का चैत्यवास छोड़ा कर एव उनको आचार्य पद देकर उग्रविहारी बनाये। इसी प्रकार नारदपुरी में आचार्य प्रद्योतनसूरिआये और वहाँ के श्रेष्ठि जिनदात के पुत्र मानदेव को दीक्षा दी वे मानदेवसूरि होकर नारदपुरी के नेमि चैत्य में स्थिरवास कर रहते थे जिन्होंने लघुशान्ति बनाकर तक्षशीला के उपद्रव्य को शान्त किया। इससे पाया जाता है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में भी मरुधर में जैनधर्म मौजूद था। कोरटपुर में जो महावीर का मन्दिर था वह मन्दिर शायद आचार्य रत्नप्रभसूरि ने दो रूपयना कर एक उपकेशपुर में और दूसरा कोरटपुर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई थी वही मन्दिर हो। कारण उनके बाद किसी न कोरटपुर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाइ हो ऐसा प्रमाण देखने में नहीं आया अत वह मन्दिर उसी समय का हो तो भी कोई असंभव जैसी बात नहीं है खैर। कुछ भी हो अपने तो विक्रम की दूसरी शताब्दी में मरुधर मे जैन धर्म का अस्तित्व देखना है वह सिद्ध हो गया—

बाद हूणो के राज समय का प्रमाण मिलता है कि मिहिरकुल के अत्याचारों के कारण मरुधर के कई

जैन श्रमणों जन्म भूमि का त्याग कर लाट गुर्जर की ओर चले गये थे तथा इसके बाद मान्यमूर्तियों का निर्माण समय में भी मरुधर में जैनधर्म होने के पुष्कल प्रमाण मिल सकते हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से यह तो स्पष्ट निर्णय हो चुका है कि सम्राट सम्प्रति के समय और आप के बाद में भी किसी समय मारवाड़ जैन धर्म से वंचित नहीं था तब आचार्य रत्नप्रभसूरि का मरुधर में पधारना भी सम्प्रति के बाद में तो होना बिलकुल सिद्ध नहीं होता है कारण सम्प्रति के बाद मरुधर ऐसा नहीं था कि मुनियों के विहार में सैकड़ों कठिनाइयाँ उपस्थित हों जिससे जैन श्रमणों को दो-दो चार चार मास शुद्ध आहार पानी के अभाव भूखा प्यासा रहना पड़े। इससे यह निश्चय हो जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि मरुधर में सम्राट सम्प्रति के पूर्व ही पधारे थे तब यह देखना होगा कि सम्प्रति के पूर्व पार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभ सूरि कब हुए थे ? बस ! पता लग जायगा कि पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि वीरात् ५२ वर्षे सूरिपद प्राप्त हो वीरात् ७० वर्षे उपकेशनगर में पधार कर वहां के राजा प्रजादि लाखों वीर क्षत्रियों को प्रति बोध कर जैन धर्म में दीक्षित किये और उन नूतन जैनों का संगठन मजबूत रखने को तथा भविष्य में शेष पे मांस भक्षी क्षत्रियों के साथ पुनः मिल न जाय इस गर्ज से उन्होंने महाजन संघ नाम की संस्था स्थापना कर दी जो यथावधि विद्यमान है।

पाठकों ! अब तो ओसवाल जाति की मूलोत्पत्ति के लिए सूर्य जैसा प्रकाश हो गया कि निःसंदेह ओसवाल जाति की मूलोत्पत्ति वीरात् ७० वर्षे में ही हुई थी यदि इस प्रकार सूर्य के प्रकाश में भी किसी कौशिक को नहीं दीखे तो सिवाय उनके अभिनिवेश का प्रबल उदय के और क्या कहा जा सकता है।

प्राचीन अर्वाचीन ग्रामों की नामावली

यह बात अनुभव सिद्ध है कि बड़े नगरों की अपेक्षा ग्रामों में रहने वालों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है यही कारण है कि लोग नगरों की बजाय ग्रामों में रहना पसन्द करते हैं। जब हम मन्दिर मूर्तियों के शिलालेखों को देखते हैं तो बहुत से ग्रामों के लोगों ने मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई थी पर वर्तमान में उन ग्रामों से बहुत से ग्रामों का पता नहीं लगता है इसका मुख्य कारण एक तो विधर्मियों के आक्रमण ने बहुत ग्रामों को नष्ट भ्रष्ट कर दिए वहाँ हजारों घर महाजनों के थे वे ग्राम उजाड़ पड़े हैं जिसमें मन्दिर था जिससे तो हम जान सकते हैं कि यहाँ पहले ग्राम था जैसे राणकपुर मुच्छालामहावीर सामथर वामणवाडादि पर बिना मन्दिर के ग्रामों को तो हम पहचान भी नहीं सकते हैं दूसरा कई ग्रामों के नाम भी रहते परन्तु अपभ्रंश भी हो गए हैं कुछ नमूने के तौर पर यहाँ लिख दिये जाते हैं।

प्राचीन ग्राम	अर्वाचीन ग्राम	प्राचीन ग्राम	अर्वाचीन ग्राम	प्राचीन ग्राम	अर्वाचीन ग्राम
उपकेशपुर	ओसियाँ	नागपुर	नागोर	मेदिनीपुर	मेड़ता
मुग्धपुर	मुंढियाड़	लक्ष्मपुर	रिणसर	कूर्चपुरा	कुचेरा
हर्षपुर	हरसोला	डीडूपुर	डीडवाणा	खट्टाबनी	खटू
अम्बिकापुरी	आसोप	शंखपुर	संखवाय	पद्मवनी	पुष्कर
पद्मावती	पाडुग्राम	आनन्दीपुर	आबोर	विक्रमपट्टण	फलोधी
पुष्करणी	पोकरण	हंसावली	हरसौर	महाणीपद्य	मालपी
मालापुर (गढ़)	मनजेरा	नागपुर	बोपड़ा	रामिपुर	रामोवाड़ा

प्राचीन अर्वाचीन ग्रामों की नामावली

प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम	प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम	प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम
राजपुर	राजोला	ब्रह्मपुरी	विरामी	चन्दपुर	चादेलाव
डागीपुर	डागोयाव	वलीपुर	वावरडा	वेनापुर	घनाड़
देवपुर	देवलिया	मुगीपट्टण	मुदीयाड़ (२)	चत्रीपुरा	खेतार
अर्जुनपुरी	घाघाणी	अहिपुर	नागोर	रामपुरी	रामासणी
रामपुरा	रामपुरियो	माडव्यपुर	मडोर	रत्नपुरा	
वीरपुर	अज्ञात	दशपुर	देशूरी	नारपुरी	नाडोल
मादड़ी	सादड़ी	खडीपुर	खोड़-खारी	कोलापुरपट्टण	कोरटा
देवकुल पट्टण	देलवाड़ा	शिवपुरी	सिरोही	दशपुर नगर	मन्दसौर
पाल्हिका	पाली	फेफावती	पाली	प्रभावती पट्टण	पाली
सोजाली	सोजत	ताम्रावती	सोजत	ताम्रावती	खम्भात
करणावती	राजनगर (अहमदाबाद)	खेटकपुर	खेडा	मधुमति	महुआ
वर्द्धमानपुर	वढवाण	प्रल्हादनपुर	पालनपुर	वा	वामणवाडा
राणकपुर	मन्दिर रहा है	वल्लभीपुरी	वला	वटप्रद-वटपुर	वड़ोदा
ईलादुर्ग	ईडर	दुर्भावती	डभोइ	पद्मपुर	नासिक
रूप नगर	रूपावास	वलीपुर	वाला	विराटपुर	बीलाड़ा
काकपुर	काकेलाव	सुरपतन	सुरपुरा	शौर्यपुर	सुरत
सत्यपुरी	सात्तोर	शिवगढ	शिवाना	महलपुर	मादलो
चूडापट्टन	चडावल	आरासण	कुमरिया	कुन्ती पट्टण	कुमरिया
देवगिरी पतन	दौलताबाद	लव्यपुरी	लोहाकोट (लाहौर)	आघाट नगर	आहेड़
महादुर्ग	चितौड़	रत्नपुरी	रतलाम	गोपाचल	ग्वालियर
मडपाचल (दुर्ग)	माडूगढ	सोपार पट्टण	सोपला	ठाणापुर	थाणा
योगनीपुर	देहली	ढेलीपुर	देहली	अजयगढ़	अजमेर
शाकम्भरी	सांभर	ललितपुर	लालडी	गुड नगर	गुड़ा
चन्द्रावती	जगल	रत्नपुरा	जगल	उम्बरी	जंगल
डिड्डूनगर	डिडवाना	भट्टपुर	भेटडा	घटियाला	
हस्तीकुंडी	हथुडी	विद्यापुर	विजयपुर	नागहृद	नागदो
भर्याण पतन	भीयाणी	किराटकुंप	कीराडू	मरूकोट	मारोट
वाग्भट्ट रूरु	वाहडमेर	व्याघ्रपुर	वागरो	पुलाग्राम	पूलु
सिनहृदी	सिंदरडी	किष्कन्दा	केकिन्द	वृद्धनगर	वडनगर
हटीपुर	हापट	मुग्धपुर	मुढ़ारो	इन्द्रप्रस्त	देहली
कर्पट्टक	कापरड़ा	नन्दकुलावती	नारडाद	पाटद्ली	पालडी
पाटली पुत्र	पटना	वीरपल्ली	वीरपुर	भीमपल्ली	अज्ञात
सूद्रपल्ली	अज्ञात	सिंहपल्ली	अज्ञात	सोनपल्ली	,,
आसापल्ली	,,	सुवर्णगिरि	जालौर	नगर	नकोड़ा
करहेटक	करेड़ा	देवकुल पट्टण	पुर	पादलिप्तपुर	पालीताणा
राटपुर	रोयट	वामरेल	अज्ञात	वीरपुर	अज्ञात

प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम	प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम	प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम
मालपुरा	अज्ञात	विक्रमपुर	अज्ञात	सांगाणु	अज्ञात
त्रिभुवनगिरि	„	रणथम्भदुर्ग	„	आसलपुर	„
सम्बलपुर	„	सनाढ नागरी	„	वसनगर	„
केसरिया कूप	„	केसरकोट	„	पुलपदी	„
पंचालकपुर	„	धर्मावती	„	वंभरी ग्राम	„
पोलापद्र	„	राहोप	„	डाहोली	„
वडोदी	„	मुकनपुर	„	पोलनपुर	„
भाषोसी	„	भिलाणी	„	घोखोट	„
हाप्पा	„	मेनाडी	„	बीजोडी	„
नागम्मा	„	मजोडी	„	खीकरी	„
खोखर	पालारियो	गोवीन्दपुर	„	जागोदा	बाकोदा
छोदारा	छवेरा	मोजपुर	मोजार	मायकपु	अज्ञात
मोलसी	„	करकोट	अज्ञात	मनाडी	„
भीलडी	अज्ञात	कालोडी	„	गगनपुर	„
डाकोडी	„	सज्जनपुर	„	मेडसरा	
सोवटी	„	गरोडी	„	माखडा ग्राम	„
मावर ग्राम (गु)	„	वारिघासनगर	„	देशाणडी	„
बनाड	„	दाम खेडीग्राम	„	कामीग्राम	„
विसलनगर	„	पृथ्वीपालग्राम (गरसीका)	„	श्रीपत्तन (गु)	„
भक्तापालपुर	„	हस्तराड	„	नाभाग्राम	„
कामुरग्राम	„	मयलोडा	„	कला	„
पेरणग्राम	„	मलमग्राम	„	पारकर	„
भीमड्नगर	„	पुलग्राम	„	सीपीरा	„

मुख्य २ घटनाओं का समय

वीर संवत् पूर्व का समय

२५० वर्ष भगावान् पार्श्वनाथ का जन्म पोष वद १०
३२० ,, भगवान् पार्श्वनाथ की दीक्षा पोष वद ११
२५० ,, भगवान् पार्श्वनाथ का निर्वाण सम्मेत शिखर पर
२५० ,, गणधर शुभदत्ताचार्य संघ नायक पद पर
२२६ ,, आचार्य हरिदत्तसूरि संघ नायक पद पर
२२२ ,, सावत्थी नगरी में लोहित्याचार्य की दीक्षा
२१८ ,, लोहित्याचार्य को महाराष्ट्र प्रान्त में भेज कर धर्म प्रचार
१५६ ,, आचार्य हरिदत्तसूरि का पद त्याग और समुद्रसूरि संघनायक तथा विदेशी आचार्य का उज्जैन में पदार्पण राजा राणी व केशीकुँवर की दीक्षा—कौसाम्बी नगरी में यज्ञ का आयोजन केशीश्रमण द्वारा अहिंसा का प्रचार
८४ ,, समुद्रसूरि का पद त्याग और केशीश्रमणाचार्य सघ नायक
७८ ,, कपिलवस्तु नगरी के राजा शुद्धोदन के वहाँ राजकुँवार बुद्ध का जन्म
७२ ,, क्षत्रियकुण्ड नगर के राजा सिद्धार्थ के वहाँ भगवान् महावीर का जन्म
४८ ,, पार्श्वनाथ सतानिया मुनि पेहित का कपिलवस्तु में जाना और धर्मोपदेश
४८ ,, राजकुँवर बुद्धि का अपनी ३० वर्ष की आयु में दीक्षा लेना
४४ ,, सिद्धार्थ राजा और त्रिसला राणी का स्वर्गवास
४३ ,, भगवान् महावीर का गृहवास में वर्षदान का प्रारम्भ
४२ ,, भ० महावीर ने अपनी ३० वर्ष की आयुष्य में दीक्षा ली (एकेले)
४१ ,, महात्मा बुद्ध राजगृह के सुपार्श्वनाथ का मन्दिर में ठहरे (वहाँ तक जैन थे)
३५ ,, मुडस्थल तीर्थ (आबू के पास में) की स्थापना मूर्ति की प्रतिष्ठा केशीश्रमण ने की
३० ,, भगवान् महावीर प्रभु को वैशाख शुक्ला १० को केवल ज्ञानोत्पन्न हुआ
३० ,, भ० महावीर रात्रि में ४८ कोश चलकर महासेनोद्यान में पधारे समवसरण हुआ
३० ,, वैशाख शुक्ला ११ के व्याख्यान में इन्द्रभूति आदि ४४११ ब्राह्मणों को दीक्षा दी
३० ,, भ० महावीर राजगृह नगर में पधारे राजकुँवर, मेघकुँवर, नन्दीषेण को दीक्षा और राजा श्रेणिक, अभयकुँवार, सुलसादि ने धर्म स्वीकार किया
२९ ,, भ० महावीर ब्राह्मण कुण्ड नगर में पधार कर जमाली आदि ५०० उनकी स्त्री १००० के साथ तथा ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्द को दीक्षा दी
२८ ,, भ० महावीर कौशम्बी नगरी में पधारे वहाँ राजा उदाई की भुआ जयन्ति को दीक्षा बाद श्रावस्ति नगरी में पधार कर सुमनभद्र सुप्रतिष्ठको दीक्षा दी तथा वाणिज्य ग्राम के गाथापति आनन्द और उसकी स्त्री सिवादेवी को श्रावक के व्रत दिये
२७ ,, भ० राजगृह नगर में पधारे गोतम ने काल के विषय के प्रश्न पूछे प्रभु ने उत्तर दिये तथा प्रसिद्ध सेठ धन्ना शालीभद्र को दीक्षा दी
२६ ,, भ० चम्पानगरी पधार कर राजकुमार महचन्द्र को दीक्षा दी, और वितभयपट्टण में जाकर

भगवान महावीर निर्वाण सम्वत्

१ वर्ष गणधर इन्द्र भूति–गोतम स्वामी को केवल ज्ञानोत्पन्न
१ „ गणधर सौधर्म स्वामी को शासन नायक पद
१ „ आचार्य स्वयंप्रभसूरि केशी श्रमणाचार्य के पट्टधर
१ „ पार्श्वनाथ परम्परा के निग्रन्थगच्छ का नाम विद्याधरगच्छ हुआ
१२ „ गणधर इन्द्रभूति की मोक्ष–गोतम स्वामी की मोक्ष
१२ „ गणधर सौधर्म स्वामी को केवल ज्ञानोत्पन्न होना
१८ „ वैशाल के राजा चेटक का पुत्र शोभनराय कलिंग में आकर वहाँ का राजा बना
२० „ गणधर सौधर्म स्वामी की मोक्ष और जम्बु स्वामी संघ नायक पद पर
२१ „ जम्बु स्वामी को केवल ज्ञानोत्पन्न होना
३६ „ शिशुनाग वशी राजा कूणिक के पद पर राजा उदाई का राज
३६ „ आचार्य स्वयप्रभसूरि का पूर्व से मरुधर में आना और श्रीमाल० पद्मावती नगरी में नये जैन बनाये
३६ „ आर्य्य शय्यंभव भट्ट का जन्म
४० „ विद्याधर रत्नचूड़ की नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा
४० „ रत्नचूड़ विद्याधर ५०० के साथ में स्वयंप्रभसूरि के पास दीक्षा (मूर्त्ति साथ में रखकर)
५२ „ आचार्य स्वयप्रभसूरि का पद त्याग रत्नप्रभसूरि को आचार्य पद-गच्छनायक
५२ „ मगध के सिंहासन पर अनुरुद्ध का राज्याभिषेक
६० „ शिशुनाग वश राज का अन्त और नन्दवंश के राजाओं का राज प्रारम्भ
६२ „ यशोभद्रसूरि का जन्म
६४ „ आचार्य जम्बुस्वामी की मोक्ष दशबोल का विच्छेद
६४ „ आचार्य प्रभवस्वामी सघ नायक आचार्य पद प्रारम्भ
६६ „ आर्य्य सभूति विजय का जन्म
७० „ आचार्य रत्नप्रभसूरि ५०० मुनियों के साथ उपकेशपुर में पधारे
७० „ उपकेशपुर के राजा मत्री और लाखों वीर क्षत्रियों को जैनधर्म की दीक्षा
७० „ नूतन जैनों का सगठन एव 'महाजन संघ' सस्था का जन्म
७० „ उपकेशपुर और कोरटपुर नगरों में महावीर मन्दिरों की एक मुहूर्त में प्रतिष्ठा
७५ „ आचार्य प्रभव स्वामी का पद त्याग और शय्यंभवसूरि संघ नायक
७७ „ राजा उत्पलदेव का बनाया पहाड़ी पर के पार्श्व मन्दिर की प्रतिष्ठा
७७ „ उपकेशपुर से उपकेशगच्छ और कोरटपुर से कोरंटगच्छ नामकरण
८० „ उपाध्याय वीरधवल को आचार्य पद और यक्षदेवसूरि नाम
८४ „ आचार्य रत्नप्रभसूरि का शत्रुञ्जय तीर्थ पर स्वर्गवास संघ ने विशाल स्तूप बनाया
८४ „ आचार्य यशोभद्र सूरि की दीक्षा
८४ „ आचार्य यक्षदेव सूरि गच्छ नायक पद पर आरूढ़
८४ „ भ० महावीर के बाद ८४ वर्ष का शिलालेख अजमेर के अजायबघर में
८४ „ आचार्य भद्रबाहु का जन्म

८६	वर्षे	आचार्य यक्षदेव सूरि का सिन्ध भूमि की तरफ विहार
८६	„	सिन्ध का शिवनगर में आचार्य यक्षदेव सूरि का व्याख्यान
६१	„	शिवनगर के राजा रुद्राट के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा
६१	„	सिन्ध के राव रुद्राट राजकुँवर कक्क की दीक्षा-महामहोत्सव
६१		मुनि कक्क की प्रतिज्ञा अपनी जन्म भूमि का उद्धार करना
६७	„	शय्यंभवसूरि ने स्वपुत्र मनक को दीक्षा दी और दशवैकालिक सूत्र का निर्माण
६८	„	आर्य्य शय्यंभवसूरि का स्वर्गवास और यशोभद्रसूरि संघ नायक
१०८	„	आर्य्य संभूतिविजय की दीक्षा
११६	„	आर्य्य स्थूलिभद्र की जन्म मतान्तर १९ वर्षे
१२८	„	आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक पद
१३६	„	आर्य्य भद्रबाहु स्वामि की दीक्षा
१४८	„	आर्य्य यशोभद्र सूरि का पद त्याग और संभूति विजय और भद्रबाहु पट्टधर
१५३	„	आठवाँ नन्द राजा की कलिंग पर चढ़ाई और जिन मूर्ति ले जाना
१५३	„	आर्य्य महागिरि का जन्म
१५५	„	मगध की गादी पर मौर्य चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक और जैन मंत्री चाणक्य ।
१५०	„	आर्य्य स्थूलिभद्र की दीक्षा
१५६	„	आर्य्य संभूतिविजय का पद त्याग और भद्रबाहु संघ नायक
१६	„	पूर्व में द्वादशवर्षीय दुष्काल के अन्त में पाटलीपुत्र में संघ सभा
१७०	„	पूर्व आर्य्य भद्रबाहु ने तीन छेद सूत्र और दश निर्युक्तियों की रचना की
१७०	„	आर्य्य भद्रबाहु का कुमार पर्वत पर अनशन व्रत
१७०	„	आर्य्य भद्रबाहु स्वामी का पद त्याग और स्थूलिभद्र संघ नायक
१७५	„	आर्य्य महागिरी की दीक्षा
१८०	„	मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का पद त्याग बिन्दुसार मगधेश्वर
१६२	„	आर्य्य सुहस्ती का जन्म
१८२	„	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
२०४	„	मौर्य राजा बिन्दुसार का पद त्याग अशोक का राज्याभिषेक
२१४		जिनशासन में आषाढाचार्य तीसरा निन्हव
२१५		आर्य्य स्थूलिभद्र का पद त्याग और महागिरि संघ नायक
२२	„	जिनशासन में अश्वमित्र नामक चतुर्थ निन्हव
२२२	„	आर्य्य सुहस्तीजी की दीक्षा
२२१		आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
२२८	„	जिनशासन में गर्गाचार्य नामक पांचवा निन्हव
२२८	„	कलिंग के सिंहासन पर क्षेमराज का राज्य
२३६	„	सम्राट् अशोक की कलिंग पर चढ़ाई मतान्तर—— —
२४४	„	अशोक का पद त्याग और सम्प्रति का राज्याभिषेक
२४५	„	आर्य्य महागिरिजी का पद त्याग और सुहस्ती सूरि संघ नायक
२४६		सम्राट् सम्प्रति ने मगध को छोड़ उज्जैन में राजधानी कायम की

२४९ वर्ष आर्य्य महागिरि का गजपद पर स्वर्गवास

२५३ ,, आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक

२४६ ,, सम्राट् सम्प्रति ने उज्जैन में आर्य्य सुहस्ती सूरि द्वारा जैनधर्म स्वीकार किया

२८८ ,, आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेव सूरि गच्छ नायक पद

...... आवती सुखमाल की दीक्षा आर्य्य सुहस्ती के करकमलों से

. आवंती पार्श्वनाथ का मन्दिर महाकाल ने बनाया जिस पर ब्राह्मणों ने लिंग स्थापन०

२९० ,, आर्य्य बलिसिंह जो आर्य्य महागिरि के पट्टधर का स्वर्गवास

२९१ ,, आर्य्य सुहस्ती सूरि का पद त्याग आर्य्य सुस्थी-सुप्रतिबोध सघ नायक

२९३ ,, सम्राट् सम्प्रति का पद त्याग और वृद्धरथ का राज मत्तान्तर ३०० वर्ष

३०० ,, सम्राट् खारवेल कलिंगपति इसके लिये बहुजनों का मतभेद है।

३०४ ,, मौर्यराजा वृद्धरथ को धोखे से मार पुष्प मित्र मगद का राजा बना

३०५ ,, पुष्प मित्र का जैन बोद्धों पर अत्याचार एक मस्तक काटने वाले को १०० दिनार

३१३ ,, सम्राट खारवेल का पद त्याग और वक्रराय का राज्याभिषेक

३३४ ,, आर्य्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग और ककसूरि गच्छ नायक

३३५ ,, आर्य्य उमास्वति जिन्होंने तत्वार्थ सूत्र बनाया

३३५ ,, युगप्रधानाचार्य गुणसुन्दर सूरि

३३६ ,, आर्य्य सुस्थीसूरि

३४५ ,, रांका सेठ ने काकसी के कारण वल्लभी का भग करवाया

३७३ ,, उपकेशपुर में महावीर मूर्त्ति के ग्रन्थ छेद का उपद्रव्य

३७३ ,, उपकेशपुर में आचार्य ककसूरि के अध्यक्षत्व में शान्ति स्नात्र में १८ गौत्र के स्नात्रिय

३७६ ,, आचार्य श्यामाचार्य पन्नवणा सूत्र के कर्ता

३९१ ,, आचार्य ककसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक

४१४ ,, युगप्रधानाचार्य स्कन्दिल सूरि

४१३ ,, मगद के सिंहासन नभवहान का राज

४२६ ,, आर्य्य दिन—सघ नायक पद पर

४५० . युगप्रधान आचार्य रेवती मित्र

४५३ ,, आचार्य खपटसूरि मत्तान्तर ४८४ वर्ष

४५३ ,, कालकाचार्य की बहिन साध्वी सरस्वती का अपहरण

४५३ ,, कालकाचार्य ने म्लेच्छ देश से सैना लाकर गर्दभील को सजा दिलाई

४५३ ,, उज्जैन पर शक राजाओं का अधिकार (मतान्तर ४६६)

४५३ ,, बलमित्र भालुमित्र का भरोंच में राज इन्होंने उज्जैन पर भी ८ वर्ष राज किया

४५७ ,, कालकाचार्य ने पचमी की सांवत्सरी चतुर्थी को की प्रतिष्ठितपुर के राजा के कारण

४५८ ,, आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक

४६४ ,, आचार्य पादलिप्त का शिष्य नागार्जुन ने पादलिप्तपुर नगर बसाया

४६६ ,, आचार्य कालक ने उज्जैन का भंग करवाया उज्जैन पर शकों का राज मत्तान्तर है

४६७ ,, युगप्रधानाचार्य मांगु

४७० ,, भगवान् महावीर के निर्वाण को ४७० वर्ष हुए

४७० वर्ष राजा विक्रमादित्य ने अपना संवत् चलाया
४० „ आचार्य सिद्धसेनदिवाकर ने राजा विक्रम को जैन धर्मोपासक बनाया
४०० „ आचार्य सिद्धसेन ने अवंति पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रकट की (महाकाल मन्दिर)

विक्रम सम्वत प्रारम्भ

१४ „ राजा विक्रमादित्य ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का विराट संघ निकाला
२१ „ राजा विक्रम शिवामंत्री द्वारा पावड़ नगर के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया
२२ „ वज्रसेन सूरि का जन्म
२४ „ युगप्रधानाचार्य धर्मसूरि
२५ „ आचार्य जीवदेवसूरि की विद्यमानता आपश्री महान् चमत्कारी विद्यावली
३१ „ वज्रसेन सूरि की दीक्षा
२६ „ आर्य्य वज्रसूरि का जन्म
„ राजा विक्रम ने ॐकार नगर में जैन मन्दिर बनाया
१ „ आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का प्रतिष्ठान नगर में स्वर्गवास
४१ „ आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक
४५ „ तीर्थ श्री शत्रुंजय का व्यवहार अर्थात् तीर्थ बौद्धों के हाथ ही जाना
५ „ आचार्य विमलसूरि ने पद्मचरित्र नामक ग्रन्थ बनाया
६१ „ युगप्रधानाचार्य भद्रगुप्तसूरि का स्वर्गरोहण
६१ „ आचार्य रक्षितसूरि ने चार अनुयोग पृथक २ किये
७४ „ आर्य्य रक्षितसूरि का स्वर्गवास मतान्तर ६१ वर्ष
७८ „ आचार्य श्री गुप्त का शिष्य— त्रिराशी मत निन्हव
७८ „ आचार्य वज्रसूरि को सूरिपद
१०८ „ प्राग्वटवंशीय जावड़ ने श्री शत्रुंजय का उद्धार कराया
१०७ „ तक्षशिला में जगमल राजा का राज जिसके वहां से जावड़ मूर्ति लाया
११४ „ गोष्ठिक माहिल नामका सातवां निन्हव ।
आचार्य सिंहगिरि धनगिरि का समय तथा समित सूरि ने ५ तापसों को प्रतिबोध
— — भारत में जनसंहार द्वादशवर्षीय दुष्काल
११४ „ आर्य्य वज्रसूरि का स्वर्गवास आर्य्य
११५ „ आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेवसूरि गच्छ नायक
११५ आचार्य देवानन्दसूरि ने कच्छ-भद्रेश्वर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
१२२ „ सत्यपुरी में नाहड़ा सुवर्ण मय की प्रतिमा की प्रतिष्ठा जज्जगदेव सूरि ने की
१२२ „ उपाध्याय देवचन्द्र जो कोरंटपुर के महावीर मन्दिर में ठहरते थे
१२५ „ कोरंटपुर के मंत्री नाहड़ के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा
१२० „ युगप्रधानाचार्य आर्य्य रक्षित सूरि का स्वर्गवास मतान्तर १२-७४ वर्ष
१३८ „ कृष्णर्षि आचार्य के शिष्य शिवभूति द्वारा दिगम्बर मत की उत्पत्ति
१३८ „ आर्य्य वज्रसेनसूरि के समय द्वादशवर्षीय दुष्काल

१४० वर्ष युगप्रधान दुर्बलिकापुष्प सूरि का स्वर्गवास
१४६ ,, श्रेष्ठि पुत्र चन्द्रनागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर की दीक्षा
१५० ,, आचार्य यक्षदेवसूरि ने दुष्काल के अन्त सोपारपट्टन में आगम वांचना दी
१५० ,, आचार्य वज्रसेन सूरि का पद त्याग
१५३ ,, चन्द्रनागेन्द्रादि चारों मुनियों को आचार्य पद प्रतिष्ठित किये यक्षदेवसूरि ने
१५७ ,, आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
१ .
१ ...
१७४ ,, आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
१ ७ ,, आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
१६७ ,, आचार्य चन्द्रसूरि से कोटीगच्छ का नाम चन्द्रकुल या चन्द्र गच्छ हुआ
१६८ ,, राजा कनकसेन ने वीरपुर नामक नगर को आबाद किया
१६६ ,, आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याद आ० रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक
२०० ,, आचार्य जज्जगसूरि ने सत्यपुरी के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
२०२ ,, अदित्यनगर गौत्र से चोरड़िया शाखा निकली
२०२ ,, मथुरा में आचार्य स्कदिल की आगम वाचना एवं स्वर्गवास
२०२ ,, मथुरा का ओसवंश पोलाक ने विवरण सहित आगम लिखवाये
२०२ ,, भीन्नमाल नगर में अजितदेवराज का राज और म्लेच्छों का आक्रमण
२०५ ,, आचार्य सामन्तभद्रसूरि ने वन में रह कर तप करने से चन्द्र गच्छ का वनवासी गच्छ नाम
२१८ ,, आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेवसूरि गच्छ नायक
२१६ ,, युगप्रधानाचार्य नागहस्तिसूरि का स्वर्गवास
२२२ ,, आभानगरी का सेठ जगाशाह ओसिया में आकर महोत्सव कर याचकों को दान दिया
२३० ,, आचार्य रविप्रभसूरि ने नारदपुरी में नेमि चैत्य की प्रतिष्ठा करवाई
२३५ ,, आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
२५८ ,, आचार्य प्रद्योतनसूरि महान् प्रभाविक आचार्य हुए
२६० ,, कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायकाचार्य
२७८ ,, युगप्रधानाचार्य [रोगोपद्रव की शान्ति की]
२८० ,, आचार्य मानदेवसूरि जिन्होंने नारदपुरी में रह कर लघुशान्ति बना तक्षशीला का
२८१ ,, उपकेशपुर के श्रेष्टि सारग को सुवर्णरसायण प्राप्त हुआ
२८२ ,, आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
२९० ,, आचार्य मानतुंगसूरि जिन्होंने भक्तामर स्तोत्र बना कर राजा हर्षदेव को जैन बनाया
२९८ ,, आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक
३०० ,, आचार्य वीरसूरि ने नागपुर में नेमि चैत्य की प्रतिष्ठा करवाई
३१० ,, आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेवसूरि गच्छ नायक
३३६ ,, आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायकाचार्य
आचार्य जयानन्दसूरि
३५३ ,, युगप्रधानाचार्य सिंहसूरि (ब्रह्मद्वीपी शाखा के)

३८०	वर्ष	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
३००	„	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
३५५	„	आचार्य देवानन्दसूरि
३५५	„	वल्लभी नगरी का भंग—बप्पाद गौत्र व रांका शाखा जिसमें काकसी का कारण—
४००	„	आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक
४१२	„	चैत्यवासियों की प्रबल सत्ता का समय
४१४	„	आचार्य मल्लवादी ने बौद्धों का पराजय कर शत्रुंजय पर अधिकार
४२४	„	आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेवसूरि गच्छ नायक
४२६	„	वडाहीवी शाखा का प्रादुर्भाव
—		आचार्य विमलसूरि
	„	आचार्य नरसिंहसूरि
----	„	आचार्य समुद्रसूरि
४५४	„	युगप्रधानाचार्य नागार्जुनसूरि
४७०	„	आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग कक्कसूरि गच्छ नायक पद पर
४८	„	चन्द्रावती नगरी में संघ सभा
४७७	„	आचार्य धनेश्वरसूरि ने शिलादित्य के राज में शत्रुंजय महात्म्य ग्रन्थ बनाया
४८	„	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
४६२	„	आर्य्य देवर्द्धिगणि ने आचार्य देवगुप्तसूरि से दो पूर्व के ज्ञान पढ़े
५ ०	„	शिवशर्माचार्य ने कर्मप्रकृति नामक ग्रन्थ लिखा
५०२	„	आचार्य यशोभद्रसूरि ने खम्भात के मन्दिर पर ध्वजारोहण कराई
५०८	„	भैंसाशाह ने भटरु ग्राम में मन्दिर बनाया जिसका शिलालेख
५ ८	„	भैंसाशाह और रोड़ा वनजारों ने भैंसरोड़ा ग्राम आबाद किया
५१		आर्य्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने वल्लभी में आगम पुस्तकारूढ़ किया
५१	„	व शीगच्छे वेताल शान्तिसूरि वल्लभी में विद्यमान थे
५११		युगप्रधानाचार्य भूतदिन्न
५२१	„	कालकाचार्य वल्लभी में थे उनका मत में १२ वर्ष का काल
५२१		आनन्दपुर के राजा ध्रुवसेन के शोक निवारणार्थ कल्पसूत्र सभा में बांचना शुरू
५२	„	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
५५४	„	कालकाचार्य का स्वर्गवास
५३०	„	आचार्य मानदेवसूरि भक्तामर —समय
५३०	„	सत्यमित्र युगप्रधानाचार्य के साथ पूर्वज्ञान विच्छेद
—	„	आचार्य रत्नप्रभसूरि यक्षदेवसूरि दो नाम भंडार में स्थापन किये
५५८	„	आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
५८५	„	युगप्रधानाचार्य हरिल का स्वर्गवास
----	„	आचार्य विबुधप्रभसूरि
	„	आचार्य जयानन्दसूरि
५८५	„	भीनमाल में चावड़ा वंशी विमराजा का राज था

१०७३ ,, आचार्य देवगुप्तसूरि (जयसिंहसूरि) ने नवपदप्रकरण ग्रन्थ रचा
१०७४ ,, आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और ककसूरि गच्छनायक
१०७८ ,, पाटण के राजा दुर्लभ का राजपद त्याग
१०८० ,, पाटण में राजा भीम का राज
१०८० ,, मुहम्मद गजनी ने पट्टन सोमनाथ महादेव का मन्दिर और लिंग तोड़ा
१०९६ ,, वादि वेताल शान्तिसूरि ने धारा की राज-सभा में विजय प्राप्ती की तथा श्री उत्तराध्ययनजी की टीका रची और बाद आपका स्वर्गवास हुआ
.. आचार्य अभयदेवसूरि को 'सूरि-पद'
११०८ ,, आचार्य ककसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छनायक
११०९ ,, श्री जीरावला पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा
१११३ ,, श्री गिरनार तीर्थ के मन्दिर का शिला लेख
११२० ,, द्रोणाचार्य ने आचार्य अभयदेवसूरि की टीका का संशोधन किया
११२२ ,, थेरापद्र गच्छीय नेमिसाधु ने रुद्राट का काव्यालंकार पर टीप्पण
११२८ ,, आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छनायक
११२९ ,, आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययन सूत्र पर टीका रची
११३२ ,, आचार्य जिनदत्तसूरि का जन्म
११३५ ,, आचार्य अभयदेवसूरि का स्वर्गवास मतान्तर ११३९
११३५ ,, आचार्य अभयदेवसूरि के पद पर वर्द्धमानसूरि आचार्य हुए
११४१ ,, आचार्य जिनदत्तसूरि की दीक्षा
११४३ ,, आचार्य वादीदेवसूरि का जन्म
११४५ ,, आचार्य हेमचन्द्रसूरि का कार्तिक पूर्णिमा का जन्म
११५० ,, सिद्धराज जयसिंह का पाटण में राजाभिषेक
११५० ,, आचार्य हेमचन्द्रसूरि की दीक्षा
११५२ ,, आचार्य वादीदेवसूरि की दीक्षा
११५६ ,, आचार्य हेमचन्द्रसूरि को आचार्य पद
११५९ ,, आचार्य चन्द्रप्रभसूरि ने पूर्णिमायागच्छ निकाला
११५९ ,, आचार्य   ने विधि पक्ष नामक गच्छ निकाला
११६४ ,, जिनवल्लभसूरि ने चितोड़ में आश्विन कृष्णा त्रोदशी को छटा कल्याण की प्ररूपणा की
११६७ ,, जिनवल्लभ का सूरि पद और स्वर्गवास
११६९ ,, आचार्य जिनदत्तसूरि को सूरिपद
११७४ ,, वीसावाल गच्छ के धनेश्वरसूरि की विद्यमानता
११७४ ,, आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और ककसूरि गच्छनायक पद पर
११७४ ,, आचार्य वादीदेवसूरि को सूरि पद पर
११७७ ,, मलधारी हेमचन्द्राचार्य की विद्यमानता
११८० ,, आचार्य धर्मघोषसूरि ने फलोदी ५०० ठाणे से चातुर्मास किया
११८१ ,, श्री फलोदी पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा

५०५　फसारों　"　"　"　"

इनके अलावे ओसवाल पोरवाल श्रीमालों के ८४००० वार संघ आये

४ जैनेतर धर्म में काल का मान इस प्रकार माना है

१७२८००० वर्ष का कृतयुग का काल

१२९६००० वर्ष का एक त्रेतायुग काल

८६४००० वर्ष का एक द्वापर काल

४३२००० वर्ष का एक कलि युग काल

वर्तमान कलियुग काल है जिसके ५०४४ वर्ष व्यतीत हो चुके शेष ४२६९५६ वर्ष रहे हैं

५ ईरानी बादशाह सिकन्दर भारत में आया उस समय एक ईरानी लेखक ने भारत के विषय में लिखा है कि भारत की जनता

१—किसी भी मकान के दरवाजे पर ताला नहीं लगाया जाता था

२—स्त्रियों अपने पति के अलावा ब्रह्मचर्य व्रत पालन करती थी

३—भारत के लोग बड़े ही पराक्रमी और परिश्रम जीवी थे

४—कोई भी व्यक्ति झूठ नहीं बोलता था यानि सत्यवादी लोग थे

६ वि० स० १५८७ कर्माशाह के उद्धार की प्रतिष्ठा के समय तमाम गच्छ के आचार्य और श्री संघ ने यह निर्णय किया कि इस शत्रुञ्जय तीर्थ पर किसी गच्छ का भेदभाव एवं पक्षपात नहीं रखा जायगा

७ वल्लभी नगरी में वि० स० ५१० में श्रीसंघ सभा हुई आर्य्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी की अध्यक्षता में आगम पुस्तकारूढ़ हुए उस समय वहाँ पर राजा प्रसेन का राज था।

८ श्रीमान् देशलशाह ने चौदह वार तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला जिसमें चौदह करोड़ द्रव्य खर्चा तथा आपके पुत्र समरसिंह ने शत्रुञ्जय का पन्द्रहवाँ उद्धार करवाया जिसमें २७०००००० रुपये व्यय किये

९ कर्म्मासिंह ने शत्रुञ्जय के सोलहवें उद्धार में १२५००००० द्रव्य व्यय किया

१० वि० सं० १६६१ में एक जनपहार दुकाल पड़ा जिसमें सवजी राजिया वाजिय ने अपने करोड़ों का द्रव्य अर्थात सर्वस्व देश के अर्पण कर दिया था

११ चीनी लोग भारत की यात्रार्थ आये थे

१ ईस्वी सन् ४४० के आसपास फाइयन चीनो आया वह १५०० ताडपत्र के ग्रन्थ लेगया

२ ई० सन् ६४० के आसपास हुयनत्संग आया वह १५५० ताडपत्रक ग्रन्थ ले गया

३　"　"　"　"　"　"　२१७५　"　"　"

४ ई० सन् ७६४ के आसपास आया वह २५५० ताडपत्र के ग्रन्थ ले गया था।

१२ भारत में कई सवत् चलते थे जैसे महावीर सवत्, बुद्धसवत्, शकसवत्, विक्रम सवत्, सिंह संवत्, वल्लभी सवत, गुप्त संवत्, कुशान सवत, हेमकुमार सवत् इत्यादि

१३ गुर्जर प्रदेश के राजाओं के राज में जैन मुत्सद्दियों का अग्र स्थान था

१ श्रीमाल चम्पाशाह, उदायण, चाहड, बाहाड, अम्बड इत्यादि

२ प्राग्वट नीनग, लहरी, वीर, विमल, वस्तुपाल, तेजपालादि

३ ओसवालादि और भी सन्तु मेहता मुख्यमंत्री पृथ्वीपाल आशुक सज्जन समरादि इत्यादि ६०० वर्षों तक वीर उदार जैनों ने ही राजतंत्र चलाया था।

१४ गुर्जर एवं सौराष्ट्र देश में कई बन्दर आये हुए हैं जैसे

१ खम्भात बदर २ वेरावल बदर ३ मांगरोल बदर ४ दीव बदर ५ घोघा बन्दर ६ भरोंच बंदर ७ गंधार

६०१	,,	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
६०६	,,	रत्नाशाह ने गिरनार तीर्थ पर सोने का मन्दिर रत्नों की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई
६३१	,,	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
६४५	,,	युगप्रधानाचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण—आगमों पर भाष्य बनाये
६६०	,,	आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
६६४	,,	थाणेश्वर में हर्षवर्धन का राज्याभिषेक
६७६	,,	हीजरी सम्वत् का प्रारम्भ समय
६८०	,,	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
६८४	,,	आचार्य देवगुप्तसूरि ने राव गोसल भाटी को जैन बनाया 'श्रेष्ठि' जाति कहलाई
६८५	,,	राव गोसल भाटी जैन ने गोसलपुर नगर आबाद किया
... .		गोसलपुर में आचार्य देवगुप्तसूरि का चातुर्मास हुआ
७१०	,,	आचार्य रविप्रभसूरि नाडोलाई में नेमि चैत्य की प्रतिष्ठा करवाई
७२०	,,	युगप्रधानाचार्य उमास्वाति
७२०	,,	चतुर्थ कालकाचार्य (रत्न संचय की गाथा से)
७२३	,,	थानेश्वर के राजा ने जैन धर्म स्वीकार किया
७२४	,,	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
७३०	,,	आचार्य स्वातिसूरि से पूर्णिमा की पाक्षी चतुर्दशी को होने लगी
७३३	,,	जिनदास महत्तर आगमों पर चूर्णियों की रचना की
७३४	,,	जिनदास गणि-चूर्णिकार
७३५	,,	आचार्य सर्वदेवसूरि विद्यमान
७४५	,,	राजकुमार शक की जैन दीक्षा
७४६	,,	जयन्त राजा . .की गादी पर राजा हुआ
७५०	,,	कुमारिल भट्ट की विद्यमानता—तथा मतान्तर ...
७५०	,,	शंकराचार्य की विद्यमानता दोनों समकालीन
७६०	,,	राजा भाण के काका की दीक्षा और सोमप्रभाचार्य नाम
७७२	,,	आचार्य उदयप्रभ सूरि को सूरिपद
७७४	,,	आचार्य उदयप्रभसूरि ने भीन्नमाल के ६२ कोटाधीशों को जैन बनाये
७७५	,,	राजा भाण को उदयप्रभसूरि ने जैनधर्म की दीक्षा दी
७७८	,,	आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
७८०	,,	युग प्रधानाचार्य पुष्पमित्र सूरि
७९०	,,	भाण राजा का जयमल ओसवाल की पुत्री रत्नाबाई से विवाह मतान्तर ....
७९५	,,	राजा भाण का तीर्थयात्रार्थ शत्रुञ्जय का संघ
७९५	,,	आचार्यों की मर्यादा का लिखत और वंशावलियां लिखना प्रारम्भ
७९५	,,	भिन्नमाल के २४ ब्राह्मणों को जैन बनाना और सेठिया जाति
८००	,,	आचार्य बप्पभट्टिसूरिका जन्म
८००	,,	आचार्य शीलगुण सूरि का उपदेश से वनराज चावड़ा का जैन होना
८०२	,,	वनराज चावड़ा ने पाटण नगर को आबाद किया

८०२ „ भाम्बट नागग पाटण का दंडनायक
८०३ „ भाम्बट नागग का पुत्र कोहरी राजा की ओर से हस्तियों की खरीद के लिए भिरेरा गया
८०४ „ वनराज चावड़ा ने पंचासरा पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
८०७ „ आचार्य बप्पभट्टि सूरि की दीक्षा सिद्धसेनाचार्यों के हाथों से
८१० „ राजकुँवार आम और मुनि बप्पभट्टि की भेट
८११ „ मुनि बप्पभट्टि को हस्ती पर बैठा कर राजा आम ने सम्मेलन किया
८११ „ मुनि बप्पभट्टि को सूरि पद राजा आम के आग्रह से
८१५ „ चम्पाशाह पाटण के मुख्य मन्त्री ने चम्पानगर बसाया
८२६ „ युगप्रधान संभूति विजय का स्वर्गवास
८२४ „ शंकराचार्य और कुमारेल भट्टका दक्षिण में विहार
८३४ „ आचार्य उद्योतन सूरि ने कुवलय माला कथा लिखी
८४४ „ जावलीपुर में वत्सराज का राज
८६० „ आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग-देवगुप्तसूरि गच्छनायक
८८४ „ हरिवंश काव्य का कर्ता पं. धनंजय हुए
८८६ „ युगप्रधानाचार्य मंडर संभूति हुए
९ ० „ कनौज में राजा भोज का राज जिसने जैन धर्म की महान् उन्नति की
९१५ „ प्रतिहार राजा कक्कने जैन मन्दिर बना कर धनेश्वर गच्छ वालों को सौंपा शिलालेख
९१५ „ कृष्णर्षि के शिष्य जयसिंहसूरि ने उपदेशमाला बनाई
९३३ „ शीलांगाचार्य ने आगमों पर टीकायें बनाई
९३२ „ आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
९५४ „ यशोभद्रसूरि ने नाडोली ग्राम से जैन मन्दिर उड़ा कर नारदपुरी में लाये
९६५ „ यशोभद्रसूरि ने चौरासी वादकर वादियों को पराजय किया
९७३ „ हथुंडी नगर के राजा विदग्धराज के बनाया जैन मन्दिर का शिलालेख
९७५ „ आचार्य सिद्धर्षिसूरि जिन्होंने भुवनसुन्दरी कथा लिखी थी
९९५ „ आचार्य बप्पभट्टिसूरिका गोपगिरी में स्वर्गवास
९९६ हथुंडी का राजा विदग्धराज के पुत्र मम्मट ने मन्दिर को कुछ दान दिया
९९८ „ पाटण में सोलंकी मूलराज का राज्याभिषेक
१०११ , उपकेशपुर के मन्दिर के शिलालेख तथा १ ११ की प्रशस्ति शिलालेख
१ ११ „ आचार्य कक्कसूरि का पदत्याग और देवगुप्तसूरि गच्छनायक पद
१०१४ „ यशोभद्रसूरि ने पांचरूप बना कर एक साथ पांच नगरों में प्र की
१०२५ „ शोभन मुनिजी ने जिनस्तव पर टीका रची
१ २६ „ वटशिला का नाम बदल कर गजनी हुआ
१०२६ „ धनपाल कवि ने देशी नाम माला बनाई
१०३३ २७„ आचार्य देवगुप्त सूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छनायक
१०४२ „ आचार्य पार्श्वनागसूरि ने आत्मानुशासन की रचना की
१०४५ „ कोरिंटा के मन्दिर में तोरण पट का शिलालेख
१ ८८ आचार्य अभयदेवसूरि की दीक्षा

२६	"	रत्नप्रभसूरि	सोपारपट्टण	राणी माता	देदाशाह	भद्रगोत्र	गुणतिलक	"	२६८	"	३१०
२७	"	यक्षदेवसूरि	वीरपुर	राहुली	गोसल	भूरिगोत्र	जयानन्द	"	३१०	"	३३६
२८	"	कक्कसूरि	आभापुरी	जैती	धरमण शाह	श्रेष्ठिगोत्र	धर्मविशाल	"	३३६	"	३५७
२९	"	देवगुप्तसूरि	कोरटपुर	फूल्ली	लुम्बाशाह	श्रीमालवंश	पूर्णानन्द	"	३५७	"	३७०
३०	"	सिद्धसूरि	जावलीपुर	जैती	जगाशाह	मोरक्षगोत्र	अशोकचन्द्र	"	३७०	"	४००
३१	"	रत्नप्रभसूरि	शंखपुर	फेंफी	धन्नशाह	तप्तभट्ट	शान्तिसागर	"	४००	"	४४०
३२	"	यक्षदेवसूरि	करणावती	रोहणी	सारंग	कनोजिया	प्रमोदरत्न	"	४४०	"	४८०
३३	"	कक्कसूरि	शिवपुरी	मैना	यशोदित्य	चोरलिया जाति	सोमप्रभ	"	४८०	"	५२०
३४	"	देवगुप्तसूरि	खटकूम्प	मोरी	राजसी	करणावट	राजहंस	"	५२०	"	५३८
३५	"	सिद्धसूरि	चित्रकोट	नाथी	ऊमासा	विरहट गोत्र	शिखरप्रभ	"	५३८	"	५५८
३६	"	कक्कसूरि	मेदिनीपुर	कर्मादेवी	करमणशाह	श्रेष्ठिगोत्र	विनयसुन्दर	"	५५८	"	६०१
३७	"	देवगुप्तसूरि	भद्रावती	मातारामा	यशोवीर	प्राग्वट वंश	मेरूप्रभ	"	६०१	"	६३१
३८	"	सिद्धसूरि	मालपुरा	दाड़मदेवी	देदासा	बप्पनाग गोत्र	ज्ञानकलश	"	६३१	"	६६०
३९	"	कक्कसूरि	पद्मावती	सरजू	सलखण	तप्तभट्टगोत्र	दयारत्न	"	६६०	"	६८०
४०	"	देवगुप्तसूरि	नारदपुरी	विजोली	वींजाशाह	चोरलिया	विमलप्रभ	"	६८०	"	७२४
४१	"	सिद्धसूरि	उपकेशपुर	फागु	अर्जुनशाह	सुंचतिगोत्र	चन्द्रशिखर	"	७२४	,	७७८
४२	"	कक्कसूरि	गोसलपुर	सेणी	भीमाशाह	आर्यगोत्र	मूर्ति विशाल	"	७७८	"	८३७
४३	"	देवगुप्तसूरि	पाल्हिकापुरी	मूली	राणाशाह	नाहटा जाति	ध्यानसुन्दर	"	८३७	"	८९२
४४	"	सिद्धसूरि	डिड्डूपुर	रोली	लिम्बाशाह	श्रेष्ठि,गोत्र	कल्याण कुम्भ	"	८९२	"	९५२
४५	"	कक्कसूरि	गोसलपुर	सोनी	जगमाल	आय गौत्र	मुक्तिसुन्दर	"	९५२	"	१०११
४६	"	देवगुप्तसूरि	दशपुर	कानी	सारंगशाह	चोरलिया	पद्मप्रभ	"	१०११	"	१०३३
४७	"	सिद्धसूरि	लोद्रावापुर	फूइ	फूआशाह	सुघड़ गोत्र	सोमसुन्दर	"	१०३३	"	१०७४
४८	"	कक्कसूरि	अणहीलपट्टन।	मणि	भीचन्द	जघडा	भुवनकलश	"	१०७४	"	११०८
४९	"	देवगुप्तसूरि	डामरेल	भोली	पद्माशाह	गोलेच्छा	देवभद्र	"	११०८	"	११२८
५०	"	सिद्धसूरि	भिन्नमाल	सुगनी	भैसाशाह	गदइया	इन्दहंस	"	११२८	"	११७४

इस ग्रन्थ में भगवान् पार्श्वनाथ के ५० पट्टधरों का इतिहास लिखा गया है अत• यहाँ पर ५० पट्टधरों का संक्षिप्त से कोष्टक में वर्णन कर दिया है।